॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

657

कल्याण

श्रीगणेश-अङ्क

[४८वें वर्षका विशेषाङ्क]

(परिशिष्टाङ्कसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण

श्रीगणेश-अङ्क

[४८वें वर्षका विशेषाङ्क]

(परिशिष्टाङ्कसहित)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

सं० २०७८ बीसवाँ पुनर्मुद्रण १,०००
कुल मुद्रण ६३,५००

❖ मूल्य—₹ 200
(दो सौ रुपये)

—— भक्त-मन-रञ्जन, द्विरद-मुख गाइए ——

अकथ अपार भव-पंथ के चले को श्रम-
हरन, करन बिजना-से बर-दाइए।
इहि लोक-परलोक सुफल करन कोक-
नद-से चरन हिये आनि कै जुड़ाइए॥
अलि-कुल-कलित कपोल ध्याइ ललित,
अनंदरूप सरित में 'भूषन' अन्हाइए।
पाप-तरु-भंजन, बिघन-गढ़-गंजन,
भगत-मन-रंजन, द्विरद-मुख गाइए॥

—महाकवि भूषण

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार; सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री
सह-सम्पादक—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
web : gitapress.org e-mail : booksales@gitapress.org
फोन : (0551) 2334721, 2331250, 2331251

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

निवेदन

मानव-जीवनका चरम लक्ष्य देवत्वकी प्राप्ति है और आसुरभाव उसमें प्रधान प्रबल विघ्न है। भगवान् गणेश विघ्नेश्वर हैं। उनकी कृपादृष्टि होनेसे विघ्नोंका पर्वत अपने-आप धराशायी होकर क्षणमात्रमें विनष्ट हो जाता है। अतएव साधना या उपासना अथवा किसी भी धार्मिक तथा मांगलिक कार्यके आरम्भमें श्रीगणेशका पूजन-स्तवन किये बिना सिद्धि प्राप्त होना सम्भव नहीं है। हमारे सनातन हिन्दू-धर्मके आचारानुसार समस्त कार्योंके आरम्भमें श्रीगणेशके स्मरण, नमन, स्तवन और पूजन आदिका विधान है। इसीलिये किसी कार्यका शुभारम्भ 'श्रीगणेश'-नामोच्चारणपूर्वक किया जाता है। '**आदौ पूज्यो विनायकः**'—इस उक्तिके अनुसार श्रीगणेशकी अग्रपूजा सर्वत्र सुप्रसिद्ध और प्रचलित ही है।

श्रीगणेशजी सर्वस्वरूप, परात्पर, पूर्णब्रह्म साक्षात् परमात्मा हैं। 'गणपति-अथर्वशीर्षमें—'**त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रः**' इत्यादिके द्वारा उन्हें सर्वरूप कहा गया है। 'गणेश' शब्दका अर्थ है—जो समस्त जीव-जातिके 'ईश' अर्थात् स्वामी हों। '**गणानां जीवजातानां य ईशः (स्वामी)—स गणेशः।**' सृष्टिके उत्पादनमें आसुरी शक्तियोंद्वारा जो विघ्न-बाधाएँ उपस्थित की जाती हैं, उनका निवारण करनेके लिये स्वयं परमात्मा गणपतिके रूपमें प्रकट होकर ब्रह्माजीके कार्यमें सहायक होते आये हैं। ऋग्वेद-यजुर्वेद आदिके '**गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे**'—इत्यादि मन्त्रोंमें भगवान् गणपतिका सुस्पष्ट उल्लेख मिलता है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु आदि गणोंके अधिपति श्रीगणनायक ही परमात्मा कहे गये हैं। धर्मप्राण भारतीय जन वैदिक एवं पौराणिक मंत्रोंद्वारा अनादिकालसे इन्हीं अनादि तथा सर्वपूज्य भगवान् गणपतिकी पूजा करते चले आ रहे हैं। तात्पर्य, गणपति चिन्मय हैं, आनन्दमय हैं, ब्रह्ममय हैं और सच्चिदानन्दरूप हैं। उन्हींसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है और उन्हींके कारण इसकी स्थिति है तथा अन्तमें उन्हींमें इस विश्वका लय हो जाता है। अतः ऐसे परमतत्त्वका समस्त कार्योंके आरम्भमें स्मरण तथा पूजन उपयुक्त ही है।

भगवान् श्रीगणेशजीकी अनन्तानन्त महिमा तथा अर्चनाकी प्रक्रियासे जन-सामान्यको परिचित करानेके उद्देश्यसे 'कल्याणके ४८वें वर्ष [सन् १९७४ ई०]-में' श्रीगणेश-अङ्कका प्रकाशन किया गया था। उसी समयसे इसके पुनर्मुद्रणकी पाठकोंके द्वारा निरन्तर माँग बनी हुई थी। सुधी पाठकोंके आग्रहको स्वीकार करके सन् १९९५ ई० में इसका पुनर्मुद्रण किया गया। उसी समयसे अबतक केवल विशेषाङ्कका पुस्तकरूपमें प्रकाशन किया जाता रहा। बीच-बीचमें परिशिष्टाङ्ककी उपयोगी सामग्रीसहित प्रकाशित करनेके लिये पाठकोंके सुझाव भी आते रहे। भगवान् श्रीविघ्नेश्वरकी असीम अनुकम्पासे अब परिशिष्टाङ्कसहित परिवर्धित संस्करणके रूपमें इस विशेषाङ्कको पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्षका अनुभव हो रहा है। इसमें परिशिष्टाङ्क जोड़ दिये जानेसे पूर्व प्रकाशित विशेषाङ्कसे १६८ पृष्ठ बढ़ गये हैं। अतः जिनके पास पूर्व प्रकाशित विशेषाङ्क है, ऐसे पाठकोंके लिये भी इसकी उपयोगिता बढ़ गयी है।

आशा है, कल्याणके अन्य पुनर्मुद्रित विशेषाङ्कोंकी भाँति बहुआयामी विषयोंके इस विशद् संग्रहको अधिकाधिक संख्यामें अपनाकर पाठकगण लाभान्वित होंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

फरवरी-अङ्ककी विषय-सूची

मार्च-अङ्ककी विषय-सूची

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यं निर्जरासुरनरा अखिलार्थसिद्ध्यै भूर्यन्तरायहतयेऽनुदिनं नमन्ति।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि॥

वर्ष ४८ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, जनवरी, १९७४ { संख्या १ पूर्ण संख्या ५६६

स्तौमि गणेशं परात्परम्

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम्।
विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम्॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्।
सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२१। १०३-४)

जो परम धाम, परम ब्रह्म, परेश, परम ईश्वर, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं; प्रधान-प्रधान सुर, असुर और सिद्ध जिनका स्तवन करते हैं, जो देवरूपी कमलके लिये सूर्य और मंगलोंके आश्रय-स्थान हैं, उन परात्पर गणेशकी मैं स्तुति करता हूँ।

वेदोक्त श्रीगणेश-स्तवन

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत्क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥

(ऋग्वेद १०। ११२। ९)

ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋग्वेद २। २३। १)

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(तैत्तिरीय आरण्यक, प्रपाठक १०, अनुवाक १)

गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे
निधीनां त्वा निधिपतिँ हवामहे वसो मम।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥

(शुक्लयजुर्वेद २३। १९)

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो।
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः॥

(शुक्लयजुर्वेद १६। २५)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥

(ऋग्वेद १। ४०। १)

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥

(ऋग्वेद १। ४०। ३)

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥

(ऋग्वेद १। ४०। ५)

~~~o~~~
~~~

श्रीगणेशद्वारा भक्त वरेण्यको अपने स्वरूपका परिचय

शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप। याभेदबुद्धिर्योगः स सम्यग्योगो मतो मम॥
अहमेव जगद्यस्मात् सृजामि पालयामि च। कृत्वा नानाविधं वेषं संहरामि स्वलीलया॥
अहमेव महाविष्णुरहमेव सदाशिवः। अहमेव महाशक्तिरहमेवार्यमा प्रिय॥
अहमेको नृणां नाथो जातः पञ्चविधः पुरा। अज्ञानान्मां न जानन्ति जगत्कारणकारणम्॥
मत्तोऽग्निरापो धरणी मत्त आकाशमारुतौ। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च लोकपाला दिशो दश॥
वसवो मनवो गावो मनवः पशवोऽपि च। सरितः सागरा यक्षा वृक्षाः पक्षिगणा अपि॥
तथैकविंशतिः स्वर्गा नागाः सप्त वनानि च। मनुष्याः पर्वताः साध्याः सिद्धा रक्षोगणास्तथा॥
अहं साक्षी जगच्चक्षुरलिप्तः सर्वकर्मभिः। अविकारोऽप्रमेयोऽहमव्यक्तो विश्वगोऽव्ययः॥
अहमेव परं ब्रह्माव्ययानन्दात्मकं नृप। मोहयत्यखिलान् माया श्रेष्ठान् मम नरानमून्॥

(श्रीगणेशपुराणान्तर्गत श्रीगणेशगीता १। २१—२९)

भगवान् श्रीगणेश कहते हैं—नरेश्वर वरेण्य! श्रीशिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और मुझ गणेशमें जो अभेदबुद्धिरूप योग है, उसीको मैं सम्यक् योग मानता हूँ; क्योंकि मैं ही नाना प्रकारके वेष धारण करके अपनी लीलासे जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करता हूँ। प्रिय नरेश! मैं ही महाविष्णु हूँ, मैं ही सदाशिव हूँ, मैं ही महाशक्ति हूँ और मैं ही सूर्य हूँ। मैं अकेला ही समस्त प्राणियोंका स्वामी हूँ और पूर्वकालमें पाँच रूप धारण करके प्रकट हुआ था। मैं ही जगत्के कारणोंका भी कारण हूँ; किंतु लोग अज्ञानवश मुझे इस रूपमें नहीं जानते। मुझसे अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लोकपाल, दसों दिशाएँ, वसु, मनु, मनुपुत्र, गौ, पशु, नदियाँ, समुद्र, यक्ष, वृक्ष, पक्षीगण, इक्कीस स्वर्ग, नाग, सात वन, मनुष्य, पर्वत, साध्यगण, सिद्धगण तथा राक्षसगण उत्पन्न हुए हैं। मैं ही सबका साक्षी जगच्चक्षु (सूर्य) हूँ। मैं सम्पूर्ण कर्मोंसे कभी लिप्त नहीं होता। मैं निर्विकार, अप्रमेय, अव्यक्त, विश्वव्यापी और अविनाशी हूँ। नरेश्वर! मैं ही अव्यय एवं आनन्दस्वरूप परब्रह्म हूँ। मेरी माया उन सम्पूर्ण श्रेष्ठ मानवोंको भी मोहमें डाल देती है।

* * * *

अजोऽव्ययोऽहं भूतात्मानादिरीश्वर एव च। आस्थाय त्रिगुणां मायां भवामि बहुयोनिषु॥
अधर्मोपचयो धर्मापचयो हि यदा भवेत्। साधून् संरक्षितुं दुष्टांस्ताडितुं सम्भवाम्यहम्॥
उच्छिद्याधर्मनिचयं धर्मं संस्थापयामि च। हन्मि दुष्टांश्च दैत्यांश्च नानालीलाकरो मुदा॥

(३। ९—११)

मैं ही अजन्मा, अविनाशी, सर्वभूतात्मा, अनादि ईश्वर हूँ और मैं ही त्रिगुणमयी मायाका आश्रय ले अनेक योनियोंमें प्रकट होता हूँ। जब अधर्मकी वृद्धि होती है और धर्मका ह्रास होने लगता है, तब साधुजनोंकी रक्षा और दुष्टोंका वध करनेके लिये मैं अवतार लेता हूँ। अधर्मराशिका नाश करके धर्मकी स्थापना करता हूँ। दुष्ट दैत्योंको मारता हूँ और सानन्द नाना प्रकारकी लीलाएँ करता हूँ।

~~~०~~~
~~~

श्रीशिवा-शिवद्वारा श्रीगणेशका गुणगान

श्रीशक्तिशिवावूचतुः

नमस्ते गणनाथाय गणानां पतये नमः। भक्तिप्रियाय देवेश भक्तेभ्यः सुखदायक॥ १॥
स्वानन्दवासिने तुभ्यं सिद्धिबुद्धिवराय च। नाभिशेषाय देवाय ढुण्ढिराजाय ते नमः॥ २॥
वरदाभयहस्ताय नमः परशुधारिणे। नमस्ते सृणिहस्ताय नाभिशेषाय ते नमः॥ ३॥
अनामयाय सर्वाय सर्वपूज्याय ते नमः। सगुणाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मणे निर्गुणाय च॥ ४॥
ब्रह्मभ्यो ब्रह्मदात्रे च गजानन नमोऽस्तु ते। आदिपूज्याय ज्येष्ठाय ज्येष्ठराजाय ते नमः॥ ५॥
मात्रे पित्रे च सर्वेषां हेरम्बाय नमो नमः। अनादये च विघ्नेश विघ्नकर्त्रे नमो नमः॥ ६॥
विघ्नहर्त्रे स्वभक्तानां लम्बोदर नमोऽस्तु ते। त्वदीयभक्तियोगेन योगीशाः शान्तिमागताः॥ ७॥
किं स्तुवो योगरूपं तं प्रणमावश्च विघ्नपम्। तेन तुष्टो भव स्वामिन्नित्युक्त्वा तं प्रणेमतुः॥
तावुत्थाप्य गणाधीश उवाच तौ महेश्वरौ॥ ८॥

श्रीगणेश उवाच

भवत्कृतमिदं स्तोत्रं मम भक्तिविवर्धनम्॥ ९॥
भविष्यति च सौख्यस्य पठते शृण्वते प्रदम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव पुत्रपौत्रादिकं तथा॥
धनधान्यादिकं सर्वं लभते तेन निश्चितम्॥ १०॥

॥ इति शक्तिशिवकृतं गणाधीशस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

श्रीशक्ति और शिव बोले—भक्तोंको सुख देनेवाले देवेश्वर! आप भक्तिप्रिय हैं तथा गणोंके अधिपति हैं; आप गणनाथको नमस्कार है। आप 'स्वानन्दलोक' के वासी और सिद्धि-बुद्धिके प्राणवल्लभ हैं। आपकी नाभिमें भूषणरूपसे शेषनाग विराजते हैं; आप ढुण्ढिराज देवको नमस्कार है। आपके हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं। आप परशु धारण करते हैं। आपके हाथमें अंकुश शोभा पाता है और नाभिमें नागराज; आपको नमस्कार है। आप रोगरहित, सर्वस्वरूप और सबके पूजनीय हैं; आपको नमस्कार है। आप ही सगुण और निर्गुण ब्रह्म हैं; आपको नमस्कार है। आप ब्राह्मणोंको ब्रह्म (वेद एवं ब्रह्म-तत्त्वका ज्ञान) देते हैं; गजानन! आपको नमस्कार है। आप प्रथम पूजनीय, ज्येष्ठ (कुमार कार्तिकेयके बड़े भाई) और ज्येष्ठराज हैं; आपको नमस्कार है। सबके माता और पिता आप हेरम्बको बारंबार नमस्कार है। विघ्नेश्वर! आप अनादि और विघ्नोंके भी जनक हैं; आपको बार-बार नमस्कार है। लम्बोदर! आप अपने भक्तोंका विघ्न हरण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। योगीश्वरगण आपके भक्तियोगसे शान्तिको प्राप्त हुए हैं। योगस्वरूप आपकी हम दोनों क्या स्तुति करें। आप विघ्नराजको हम दोनों प्रणाम करते हैं। स्वामिन्! इस प्रणाममात्रसे आप संतुष्ट हों।

ऐसा कहकर शिवा-शिवने गणेशजीको प्रणाम किया। तब उन दोनोंको उठाकर गणाधीशने कहा—'आप दोनोंद्वारा किया गया यह स्तवन मेरी भक्तिको बढ़ानेवाला है। जो इसका पठन और श्रवण करेगा, उसके लिये यह सौख्यप्रद होगा। इसके अतिरिक्त यह भोग और मोक्ष तथा पुत्र और पौत्र आदिको भी देनेवाला होगा। मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा धन-धान्य आदि सभी वस्तुएँ निश्चितरूपसे प्राप्त कर लेता है।

॥ इस प्रकार 'श्रीशक्तिशिवकृत गणाधीशस्तोत्र' पूरा हुआ॥

~~~०~~~
~~~

श्रीगणेशद्वारा अपने स्वरूपका परिचय

श्रीसिद्धि-गणराज

शक्तिसहित श्रीमहागणपति

श्रीशिव-परिवारमें श्रीगणेश

शिवाको पुण्यक-व्रत करनेकी प्रेरणा
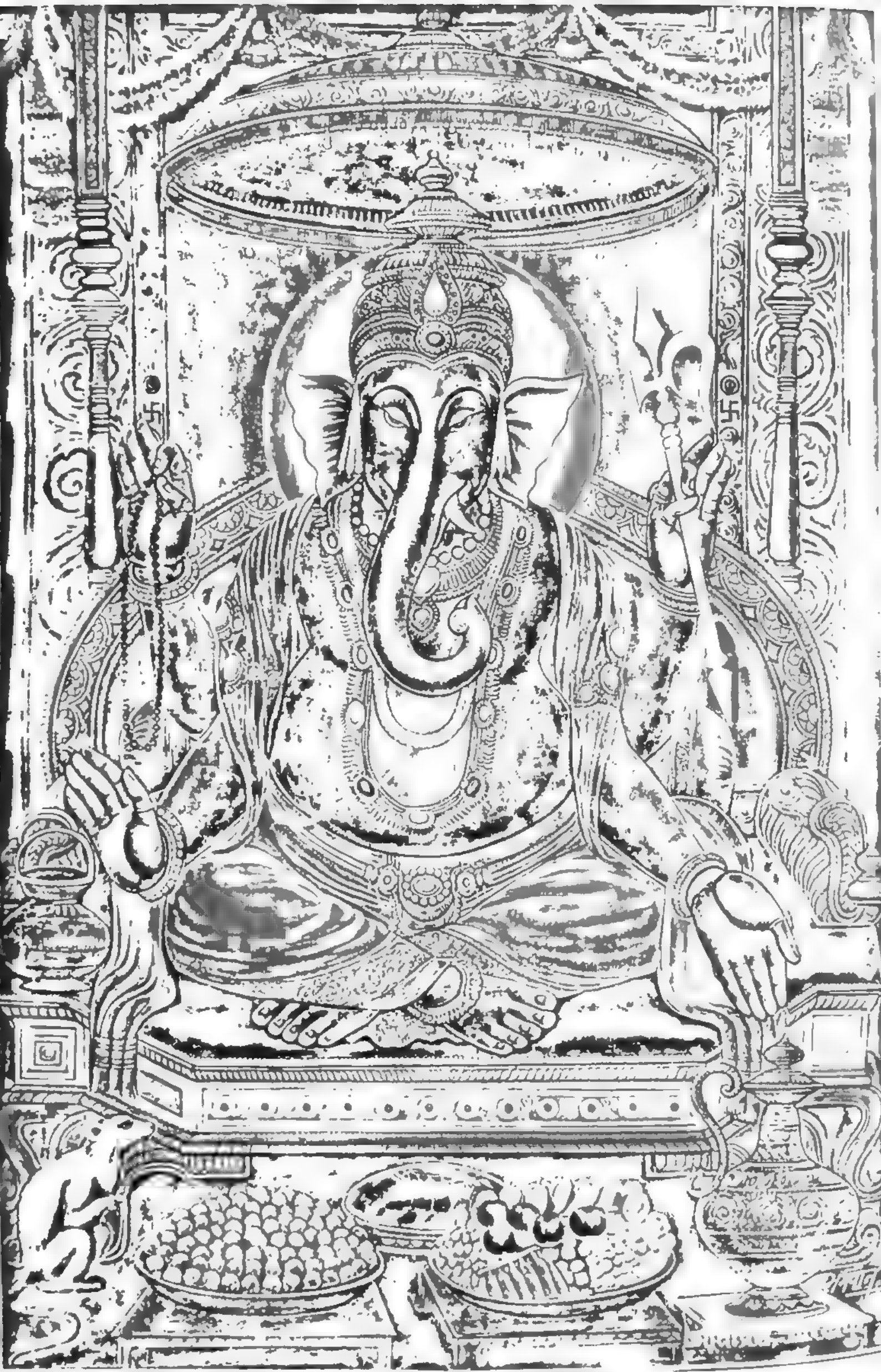
भगवान् श्रीगणेश
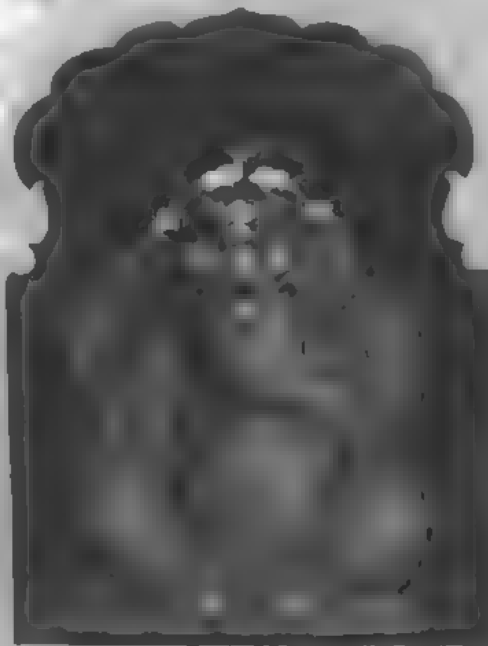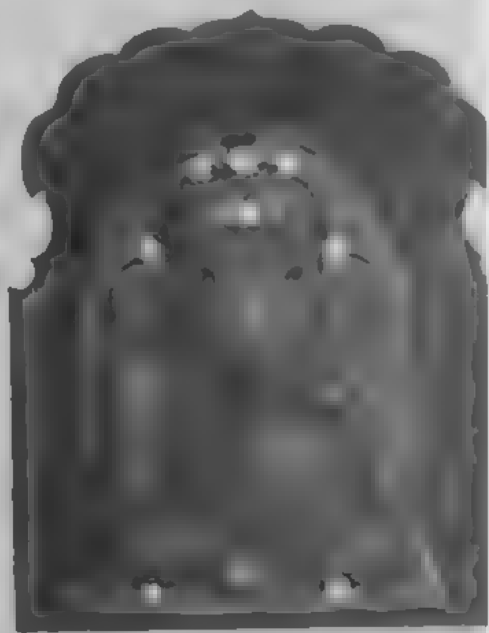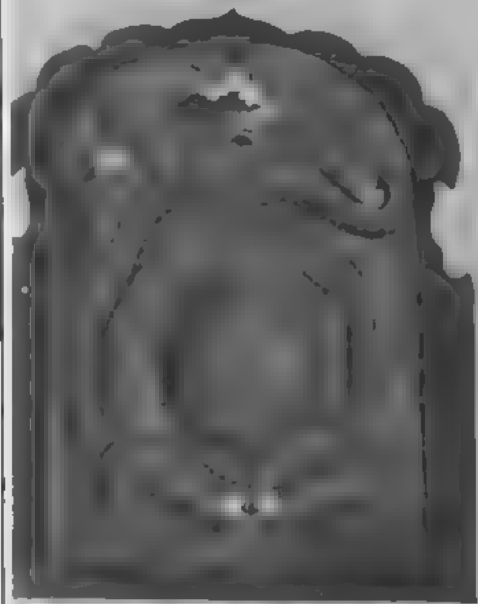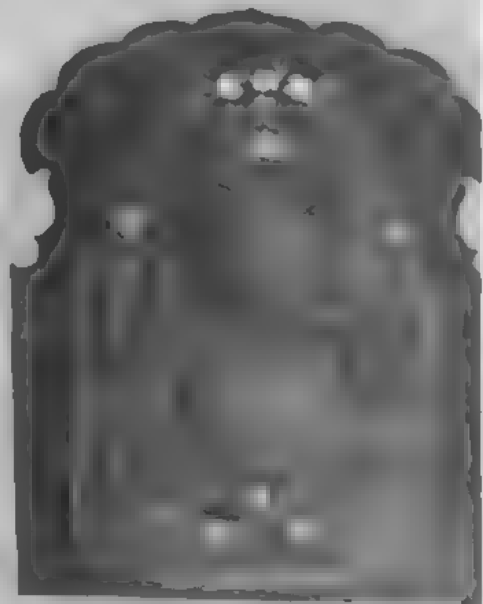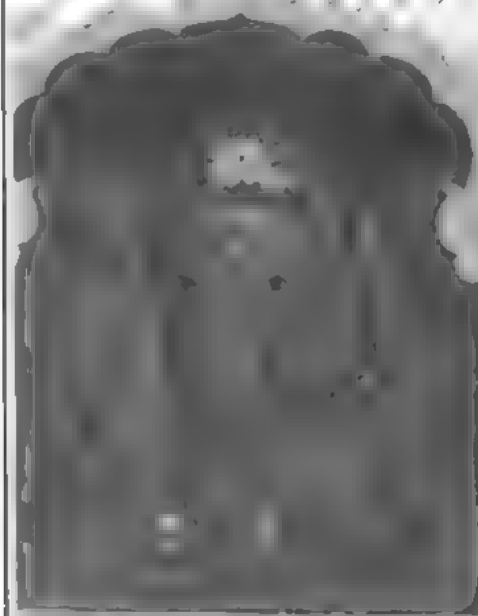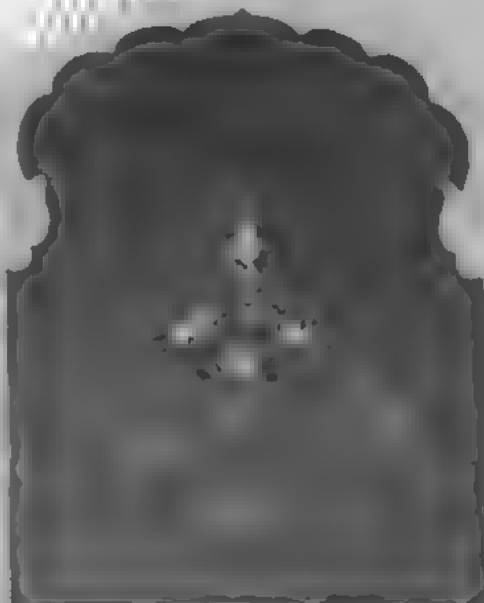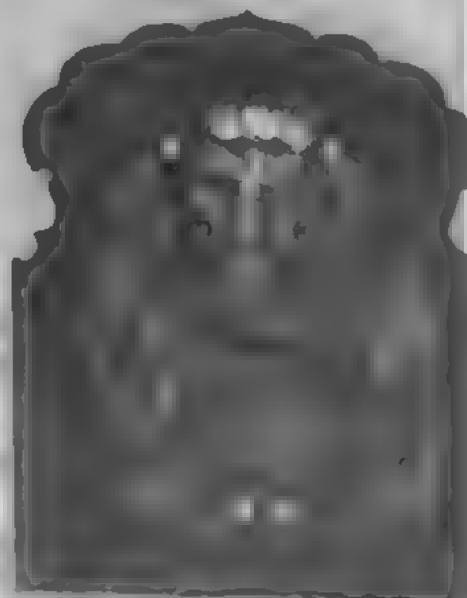
महाराष्ट्रके प्रमुख अष्ट विनायक

अभयदाता मूषकध्वज

देवताओंद्वारा श्रीगणेशका अभिनन्दन

देवा ऊचुः

गजाननाय पूर्णाय सांख्यरूपमयाय ते। विदेहेन च सर्वत्र संस्थिताय नमो नमः॥ १॥
अमेयाय च हेरम्ब परशुधारकाय ते। मूषकवाहनायैव विश्वेशाय नमो नमः॥ २॥
अनन्तविभवायैव परेषां पररूपिणे। शिवपुत्राय देवाय गुहाग्रजाय ते नमः॥ ३॥
पार्वतीनन्दनायैव देवानां पालकाय ते। सर्वेषां पूज्यदेहाय गणेशाय नमो नमः॥ ४॥
स्वानन्दवासिने तुभ्यं शिवस्य कुलदैवत। विष्णवादीनां विशेषेण कुलदेवाय ते नमः॥ ५॥
योगाकाराय सर्वेषां योगशान्तिप्रदाय च। ब्रह्मेशाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मभूतप्रदाय ते॥ ६॥
सिद्धिबुद्धिपते नाथ सिद्धिबुद्धिप्रदायिने। मायिने मायिकेभ्यश्च मोहदाय नमो नमः॥ ७॥
लम्बोदराय वै तुभ्यं सर्वोदरगताय च। अमायिने च मायाया आधाराय नमो नमः॥ ८॥
गजः सर्वस्य बीजं यत्तेन चिह्नेन विघ्नप। योगिनस्त्वां प्रजानन्ति तदाकारा भवन्ति ते॥ ९॥
तेन त्वं गजवक्त्रश्च किं स्तुमस्त्वां गजानन। वेदादयो विकुण्ठाश्च शंकराद्याश्च देवपाः॥ १०॥
शुक्रादयश्च शेषाद्याः स्तोतुं शक्ता भवन्ति न। तथापि संस्तुतोऽसि त्वं स्फूर्त्या त्वद्दर्शनात्मना॥ ११॥

(मुद्गलपुराण)

देवता बोले—गणेश्वर! आप गजके समान मुख धारण करनेवाले, पूर्ण परमात्मा और ज्ञानस्वरूप हैं। आप निराकाररूपसे सर्वत्र विद्यमान हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। हेरम्ब! आपको किन्हीं प्रमाणोंद्वारा मापा नहीं जा सकता। आप परशु धारण करनेवाले हैं। आपका वाहन मूषक है; आप विश्वेश्वरको बारंबार नमस्कार है। आपका वैभव अनन्त है; आप परात्पर हैं; भगवान् शिवके पुत्र तथा स्कन्दके बड़े भाई हैं; देव! आपको नमस्कार है। जो पार्वतीको आनन्दित करनेवाले उनके लाड़ले लाल हैं, देवताओंके रक्षक हैं और जिनका श्रीविग्रह सबके लिये पूजनीय है, उन आप गणेशको बार-बार नमस्कार है। भगवान् शिवके कुलदेवता आप अपने स्वरूपभूत स्वानन्दधाममें निवास करनेवाले हैं। विष्णु आदि देवताओंके तो आप विशेषरूपसे कुलदेवता हैं; आपको नमस्कार है। आप योगस्वरूप एवं सबको योगजनित शान्ति प्रदान करनेवाले हैं; ब्रह्मभावकी प्राप्ति करानेवाले आप ब्रह्मेश्वरको नमस्कार है। नाथ! आप सिद्धि और बुद्धिके प्राणपति तथा सिद्धि और बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं; आप मायाके अधिपति तथा मायावियोंको मोहमें डालनेवाले हैं; आपको बार-बार नमस्कार है। आप लम्बोदर हैं; जठरानलरूपसे सबके उदरमें निवास करते हैं; आपपर किसीकी माया नहीं चलती; आप ही मायाके आधार हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। विघ्नराज! गज सबका बीज है। उस बीजरूप चिह्नसे ही योगीजन आपको पहचानते तथा आपका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं। गजानन! उस बीजस्वरूप गजचिह्नके कारण ही आप 'गजमुख' कहलाते हैं। हम आपकी क्या स्तुति कर सकते हैं? आपकी स्तुति करनेमें तो वेदादि शास्त्र तथा शंकर आदि देवेश्वर भी कुण्ठित हो जाते हैं; शुक्र आदि विद्वान् और शेष आदि नाग भी आपके स्तवनमें समर्थ नहीं हैं; तथापि आपके दर्शनरूप स्फूर्तिसे हमने आपका स्तवन कर लिया है।

~~~ o ~~~
~~~

आदिकवि वाल्मीकिद्वारा श्रीगणेशका स्तवन

चतुःषष्टिकोट्याख्यविद्याप्रदं त्वां सुराचार्यविद्याप्रदानापदानम्।
कठाभीष्टविद्यार्पकं दन्तयुग्मं कविं बुद्धिनाथं कवीनां नमामि॥ १॥

गणेश्वर! आप चौंसठ कोटि विद्याओंके दाता तथा देवताओंके आचार्य बृहस्पतिको भी विद्या-प्रदानका कार्य पूर्ण करनेवाले हैं। कठको अभीष्ट विद्या देनेवाले भी आप ही हैं। (अथवा आप कठोपनिषद्रूपा अभीष्ट विद्याके दाता हैं।) आप द्विरद हैं, कवि हैं और कवियोंकी बुद्धिके स्वामी हैं; मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

स्वनाथं प्रधानं महाविघ्ननाथं निजेच्छाविसृष्टाण्डवृन्देशनाथम्।
प्रभुं दक्षिणास्यस्य विद्याप्रदं त्वां कविं बुद्धिनाथं कवीनां नमामि॥ २॥

आप ही अपने स्वामी एवं प्रधान हैं। बड़े-बड़े विघ्नोंके नाथ हैं। स्वेच्छासे रचित ब्रह्माण्डसमूहके स्वामी और रक्षक भी आप ही हैं। आप दक्षिणास्यके प्रभु एवं विद्यादाता हैं। आप कवि हैं एवं कवियोंके लिये बुद्धिनाथ हैं; मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

विभो व्यासशिष्यादिविद्याविशिष्टप्रियानेकविद्याप्रदातारमाद्यम्।
महाशाक्तदीक्षागुरुं श्रेष्ठदं त्वां कविं बुद्धिनाथं कवीनां नमामि॥ ३॥

विभो! आप व्यास-शिष्य आदि विद्याविशिष्ट प्रियजनोंको अनेक विद्या प्रदान करनेवाले और सबके आदि पुरुष हैं। महाशाक्त-मन्त्रकी दीक्षाके गुरु एवं श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करनेवाले आप कवि एवं कवियोंके बुद्धिनाथको मैं प्रणाम करता हूँ।

विधात्रे त्रयीमुख्यवेदांश्च योगं महाविष्णवे चागमाञ् शङ्कराय।
दिशन्तं च सूर्याय विद्यारहस्यं कविं बुद्धिनाथं कवीनां नमामि॥ ४॥

जो विधाता (ब्रह्माजी)-को 'वेदत्रयी' के नामसे प्रसिद्ध मुख्य वेदोंका, महाविष्णुको योगका, शंकरको आगमोंका और सूर्यदेवको विद्याके रहस्यका उपदेश देते हैं, उन कवियोंके बुद्धिनाथ एवं कवि गणेशजीको मैं नमस्कार करता हूँ।

महाबुद्धिपुत्राय चैकं पुराणं दिशन्तं गजास्यस्य माहात्म्ययुक्तम्।
निजज्ञानशक्त्या समेतं पुराणं कविं बुद्धिनाथं कवीनां नमामि॥ ५॥

महाबुद्धि-देवीके पुत्रके प्रति गजाननके माहात्म्यसे युक्त तथा निज ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न एक पुराणका उपदेश देनेवाले गणेशको, जो कवि एवं कवियोंके बुद्धिनाथ हैं, मैं प्रणाम करता हूँ।

त्रयीशीर्षसारं रुचानेकमारं रमाबुद्धिदारं परं ब्रह्मपारम्।
सुरस्तोमकायं गणौघाधिनाथं कविं बुद्धिनाथं कवीनां नमामि॥ ६॥

जो वेदान्तके सारतत्त्व, अपने तेजसे अनेक असुरोंका संहार करनेवाले, सिद्धि-लक्ष्मी एवं बुद्धिको दाराके रूपमें अंगीकार करनेवाले और परात्पर ब्रह्मस्वरूप हैं; देवताओंका समुदाय जिनका शरीर है तथा जो गण-समुदायके अधीश्वर हैं, उन कवि एवं कवियोंके बुद्धिनाथ गणेशको मैं नमस्कार करता हूँ।

चिदानन्दरूपं मुनिध्येयरूपं गुणातीतमीशं सुरेशं गणेशम्।
धरानन्दलोकादिवासप्रियं त्वां कविं बुद्धिनाथं कवीनां नमामि॥ ७॥

जो ज्ञानानन्दस्वरूप, मुनियोंके ध्येय तथा गुणातीत हैं; धरा एवं स्वानन्दलोक आदिका निवास जिन्हें प्रिय है; उन ईश्वर, सुरेश्वर, कवि तथा कवियोंके बुद्धिनाथ गणेशको मैं प्रणाम करता हूँ।

अनेकप्रतारं सुरक्ताब्जहारं परं निर्गुणं विश्वसद्ब्रह्मरूपम्।
महावाक्यसंदोहतात्पर्यमूर्तिं कविं बुद्धिनाथं कवीनां नमामि॥ ८॥

जो अनेकानेक भक्तजनोंको भव-सागरसे पार करनेवाले हैं; लाल कमलके फूलोंका हार धारण करते हैं; परम निर्गुण हैं; विश्वात्मक सद्ब्रह्म जिनका रूप है; 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके समूहका तात्पर्य जिनका श्रीविग्रह है, उन कवि एवं कवियोंके बुद्धिनाथ गणेशको मैं नमस्कार करता हूँ।

इदं ये तु कव्यष्टकं भक्तियुक्तास्त्रिसन्ध्यं पठन्ते गजास्यं स्मरन्तः।
कवित्वं सुवाक्यार्थमत्यद्भुतं ते लभन्ते प्रसादाद् गणेशस्य मुक्तिम्॥ ९॥

जो भक्ति-भावसे युक्त हो तीनों संध्याओंके समय गजाननका स्मरण करते हुए इस 'कव्यष्टक' का पाठ करते हैं, वे गणेशजीके कृपा-प्रसादसे कवित्व, सुन्दर एवं अद्भुत वाक्यार्थ तथा मानव-जीवनके चरम लक्ष्य मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं।

श्रीमच्छङ्कराचार्यद्वारा श्रीगणेशकी स्तुति

मुदा करात्तमोदकं सदा विमुक्तिसाधकं कलाधरावतंसकं विलासिलोकरञ्जकम्।
अनायकैकनायकं विनाशितेभदैत्यकं नताशुभाशुनाशकं नमामि तं विनायकम्॥ १॥
नतेतरातिभीकरं नवोदितार्कभास्वरं नमत्सुरारिनिर्जरं नताधिकापदुद्धरम्।
सुरेश्वरं निधीश्वरं गजेश्वरं गणेश्वरं महेश्वरं तमाश्रये परात्परं निरन्तरम्॥ २॥
समस्तलोकशङ्करं निरस्तदैत्यकुञ्जरं दरेतरोदरं वरं वरेभवक्त्रमक्षरम्।
कृपाकरं क्षमाकरं मुदाकरं यशस्करं नमस्करं नमस्कृतां नमस्करोमि भास्वरम्॥ ३॥
अकिञ्चनार्तिमार्जनं चिरन्तनोक्तिभाजनं पुरारिपूर्वनन्दनं सुरारिगर्वचर्वणम्।
प्रपञ्चनाशभीषणं धनञ्जयादिभूषणं कपोलदानवारणं भजे पुराणवारणम्॥ ४॥
नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मजमचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम्।
हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि सन्ततम्॥ ५॥
महागणेशपञ्चरत्नमादरेण योऽन्वहं प्रगायति प्रभातके हृदि स्मरन् गणेश्वरम्।
अरोगतामदोषतां सुसाहितीं सुपुत्रतां समाहितायुरष्टभूतिमभ्युपैति सोऽचिरात्॥ ६॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं गणेशपञ्चरत्नस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

जिन्होंने बड़े आनन्दसे अपने हाथमें मोदक ले रखे हैं; जो सदा ही मुमुक्षुजनोंकी मोक्षाभिलाषाको सिद्ध करनेवाले हैं; चन्द्रमा जिनके भालदेशके भूषण हैं; जो भक्तिभावसे विलासित होनेवाले लोगोंके मनको आनन्दित करते हैं; जिनका कोई नायक या स्वामी नहीं है; जो एकमात्र स्वयं ही सबके नायक हैं; जिन्होंने गजासुरका संहार किया है तथा जो नतमस्तक पुरुषोंके अशुभका तत्काल नाश करनेवाले हैं, उन भगवान् विनायकको मैं प्रणाम करता हूँ। जो प्रणत न होनेवाले—उद्दण्ड मनुष्योंके लिये अत्यन्त भयंकर हैं; नवोदित सूर्यके समान अरुण प्रभासे उद्भासित हैं; दैत्य और देवता—सभी जिनके चरणोंमें शीश झुकाते हैं; जो प्रणत भक्तोंका भीषण आपत्तियोंसे उद्धार करनेवाले हैं, उन सुरेश्वर, निधियोंके अधिपति, गजेन्द्रशासक, महेश्वर, परात्पर गणेश्वरका मैं निरन्तर आश्रय ग्रहण करता हूँ। जो समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले हैं; जिन्होंने गजाकार दैत्यका विनाश किया है; जो लम्बोदर, श्रेष्ठ, अविनाशी एवं गजराजवदन हैं; कृपा, क्षमा और आनन्दकी निधि हैं; जो यश प्रदान करनेवाले तथा नमनशीलोंको मनसे सहयोग देनेवाले हैं, उन प्रकाशमान देवता गणेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अकिंचनजनोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा चिरंतन उक्ति (वेदवाणी)-के भाजन (वर्ण्य विषय) हैं; जिन्हें त्रिपुरारि शिवके ज्येष्ठ पुत्र होनेका गौरव प्राप्त है; जो देव-शत्रुओंके गर्वको चूर्ण कर देनेवाले हैं; दृश्य-प्रपञ्चका संहार करते समय जिनका रूप भीषण हो जाता है; धनंजय आदि नाग जिनके भूषण हैं तथा जो गण्डस्थलसे दानकी धारा बहानेवाले गजेन्द्ररूप हैं, उन पुरातन गजराज गणेशका मैं भजन करता हूँ। जिनकी दन्तकान्ति नितान्त कमनीय है; जो अन्तकके अन्तक (मृत्युंजय) शिवके पुत्र हैं; जिनका रूप अचिन्त्य एवं अनन्त है; जो समस्त विघ्नोंका उच्छेद करनेवाले हैं तथा योगियोंके हृदयके भीतर जिनका निरन्तर निवास है, उन एकदन्त गणेशका मैं सदा चिन्तन करता हूँ।

जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल मन-ही-मन गणेशका स्मरण करते हुए इस 'महागणेश-पञ्चरत्न' का आदरपूर्वक उच्चस्वरसे गान करता है, वह शीघ्र ही आरोग्य, निर्दोषता, उत्तम ग्रन्थों एवं सत्पुरुषोंका संग, उत्तम पुत्र, दीर्घ आयु एवं अष्ट सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है।

॥ इस प्रकार श्रीशंकराचार्यद्वारा रचित 'श्रीगणेश-पञ्चरत्न-स्तोत्र' पूरा हुआ॥

'एकदन्तं शरणं व्रजामः'

[एकदन्तशरणागतिस्तोत्रम्]

देवर्षय ऊचुः

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १॥

देवर्षिगण कहते हैं—जो सदात्मस्वरूप, सबके आदिकारण, मायारहित तथा '**सोऽहमस्मि**' (वह परमात्मा मैं हूँ)—इस अचिन्त्य बोधसे सम्पन्न हैं; जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, उन एक—अद्वितीय एकदन्तधारी भगवान् गणेशकी हम शरण लेते हैं।

अनन्तचिद्रूपमयं गणेशमभेदभेदादिविहीनमाद्यम्।
हृदि प्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ २॥

जो अनन्त चिन्मय हैं; अभेद और भेद आदिसे परे हैं; आदि पुरुष हैं और हृदयमें ज्ञानमय प्रकाश धारण करते हैं, अपनी बुद्धिमें स्थित हुए उन एकदन्त गणेशकी हम शरण लेते हैं।

समाधिसंस्थं हृदि योगिनां यं प्रकाशरूपेण विभातमेतम्।
सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ ३॥

जो सदा समाधिस्थ रहते, योगियोंके हृदयमें प्रकाशरूपसे उद्भासित होते और सदा निरालम्ब समाधिके द्वारा अनुभवमें आनेवाले हैं, उन्हीं एकदन्तधारी भगवान् गणेशकी हम शरण लेते हैं।

स्वबिम्बभावेन विलासयुक्तां प्रत्यक्षमायां विविधस्वरूपाम्।
स्ववीर्यकं तत्र ददाति यो वै तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ ४॥

जो स्वीय बिम्बभावसे विलासशीला, विविधस्वरूपा, प्रत्यक्ष दृश्यरूपा माया है, उसमें जो अपने वीर्य (बल)-का आधान करते हैं, उन एकदन्तधारी भगवान् गणेशकी हम शरण लेते हैं।

त्वदीयवीर्येण समर्थभूतस्वमायया संरचितं च विश्वम्।
तुरीयकं ह्यात्मप्रतीतिसंज्ञं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ ५॥

प्रभो! आपके ही वीर्यसे—बल-वैभवसे सामर्थ्य-शालिनी हुई जो आपकी निजी मायाशक्ति है, उसीके द्वारा इस सम्पूर्ण विश्वकी संरचना हुई है। आप जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे परे, आत्मबोधस्वरूप, तुरीय परमात्मा हैं। ऐसे आप एकदन्तधारी भगवान् गणेशकी हम शरण लेते हैं।

त्वदीयसत्ताधरमेकदन्तं गुणेश्वरं यं गुणबोधितारम्।
भजन्तमत्यन्तमजं त्रिसंस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ ६॥

भगवन्! आपकी ही सत्ता धारण करनेवाले जो एकदन्त हैं, वे तीनों गुणोंके स्वामी होते हुए उन गुणोंका बोध करानेवाले हैं। वे आप अजन्मा परमेश्वरके अत्यन्त भजनमें संलग्न हैं। तीनों लोकों, तीनों गुणों, तीनों अवस्थाओं एवं तीनों देवोंमें विद्यमान उन एकदन्त गणेशकी हम शरण लेते हैं।

ततस्त्वया प्रेरितनादकेन सुषुप्तिसंज्ञं रचितं जगद् वै।
समानरूपं ह्युभयत्रसंस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ ७॥

प्रभो! फिर आपके द्वारा प्रेरित नादने सुषुप्ति-नामक जगत्‌की सृष्टि की है। दोनों अवस्थाओंमें समानरूपसे विराजमान उन आप एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

तदेव विश्वं कृपया प्रभूतं द्विभावमादौ तमसा विभान्तम्।
अनेकरूपं च तथैकभूतं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ ८॥

वह सुषुप्ति-संज्ञक जगत् ही, जो आदिकालमें तमसे आच्छन्न था, आपकी कृपासे दो रूपोंमें प्रकट हुआ। जो अनेकरूप होते हुए भी एकरूप हैं, उन भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

ततस्त्वया प्रेरितकेन सृष्टं बभूव सूक्ष्मं जगदेकसंस्थम्।
सुसात्त्विकं स्वप्नमनन्तमाद्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ ९॥

तदनन्तर आपके द्वारा प्रेरित बिन्दुसे सूक्ष्म जगत्‌की सृष्टि हुई, जो एकमात्र आपमें ही स्थित है। जो परम सात्त्विक, स्वप्नमय, अनन्त एवं सबके आदिकारण हैं, उन भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

तदेव स्वप्नं तपसा गणेश सुसिद्धरूपं विविधं बभूव।
सदैकरूपं कृपया च तेऽद्य तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १०॥

गणेश! वह सूक्ष्म जगत् ही स्वप्न है, जो आपके संकल्पमय तपसे सुसिद्धरूप हो विविध भावोंमें प्रकट हुआ। वह आपकी कृपासे सदा एकरूपमें स्थित है। आज हम उन्हीं भगवान् एकदन्तकी शरण लेते हैं।

त्वदाज्ञया तेन त्वया हृदिस्थं तथा सुसृष्टं जगदंशरूपम्।
विभिन्नजाग्रन्मयमप्रमेयं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ ११॥

आपकी आज्ञासे क्रियाशील हुए उस स्वप्नके द्वारा आपने ही अपने हृदयमें विराजमान जगत्‌के अंशरूप जगत्‌की उत्तम सृष्टि की है। वह विभिन्न जाग्रत्कालीन वस्तुओंसे उपलक्षित है। हम अप्रमेय शक्तिशाली उन भगवान् एकदन्तकी शरण लेते हैं।

तदेव जाग्रद्रजसा विभातं विलोकितं त्वत्कृपया स्मृतेन।
बभूव भिन्नं च सदैकरूपं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १२॥

वही जाग्रत् जगत् रजोगुणसे व्यक्त होकर, आपकी कृपा एवं स्मृतिसे प्रत्यक्ष दिखायी देता है। जो सदा एकरूप होते हुए भी विभिन्न रूपोंमें प्रकट हुए हैं, उन भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

सदेव सृष्ट्वा प्रकृतिस्वभावात्तदन्तरे त्वं च विभासि नित्यम्।
धियः प्रदाता गणनाथ एकस्तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १३॥

प्रकृतिके स्वभावसे सद्रूप जगत्की ही सृष्टि करके आप उसके भीतर नित्य विराज रहे हैं। एकमात्र गणनाथ ही बुद्धिके दाता हैं। हम उन्हीं भगवान् एकदन्तकी शरण लेते हैं।

त्वदाज्ञया भान्ति ग्रहाश्च सर्वे प्रकाशरूपाणि विभान्ति खे वै।
भ्रमन्ति नित्यं स्वविहारकार्यास्तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १४॥

भगवन्! आपकी ही आज्ञासे आकाशमें समस्त ग्रह तथा प्रकाशरूप तारे विभासित हो रहे हैं। वे आपके आदेशसे ही नित्य अपने विहार-कार्यका सम्पादन करते हुए भ्रमण करते हैं। उन्हीं आप भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

त्वदाज्ञया सृष्टिकरो विधाता त्वदाज्ञया पालक एकविष्णुः।
त्वदाज्ञया संहरको हरोऽपि तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १५॥

प्रभो! आपकी आज्ञासे विधाता सृष्टि-रचना करते हैं, आपकी आज्ञासे अद्वितीय विष्णु सृष्टिका पालन करते हैं और महादेवजी भी आपकी आज्ञासे ही सबका संहार करते हैं। हम उन्हीं आप भगवान् एकदन्तकी शरण लेते हैं।

यदाज्ञया भूमिजलेऽत्र संस्थे यदाज्ञयापः प्रवहन्ति नद्यः।
स्वतीर्थसंस्थश्च कृतः समुद्रस्तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १६॥

जिनकी आज्ञासे यहाँ भूमि और जल स्थित हैं, जिनके आदेशसे जलस्वरूपा नदियाँ बहती हैं तथा जिनकी आज्ञासे ही समुद्र अपने तीर्थोंकी सीमामें विराजमान रहता है, उन भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

यदाज्ञया देवगणा दिविस्था ददन्ति वै कर्मफलानि नित्यम्।
यदाज्ञया शैलगणाः स्थिरा वै तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १७॥

जिनकी आज्ञासे प्रेरित हो स्वर्गवासी देवता सदा कर्मफल प्रदान करते हैं तथा जिनके आदेशसे ही पर्वतोंके समूह सुस्थिर रहते हैं, उन भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

यदाज्ञया शेषधराधरो वै यदाज्ञया मोहप्रदश्च कामः।
यदाज्ञया कालधरोऽर्यमा च तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १८॥

जिनकी आज्ञासे शेषनाग इस पृथ्वीको धारण करते हैं; जिनकी प्रेरणासे कामदेव सबको मोहमें डालता है तथा जिनकी आज्ञासे सूर्यदेव कालचक्र धारण करते हैं, उन भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

यदाज्ञया वाति विभाति वायुर्यदाज्ञयाग्निर्जठरादिसंस्थः।
यदाज्ञयेदं सचराचरं च तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १९॥

जिनकी आज्ञासे वायु प्रवहमान होती है तथा जिनके आदेशसे जठरादि स्थानोंमें स्थित अग्निदेव उद्दीप्त रहते हैं तथा जिनकी प्रेरणासे ही चराचर प्राणियोंसहित यह सम्पूर्ण जगत् संचालित होता है, उन भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

यदन्तरे संस्थितमेकदन्तस्तदाज्ञया सर्वमिदं विभाति।
अनन्तरूपं हृदि बोधकं यस्तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ २०॥

सबके अन्तःकरणमें भगवान् एकदन्त विराज रहे हैं; उन्हींकी आज्ञासे यह सम्पूर्ण जगत् विभासित होता है। जिनका रूप अनन्त है, जो सबके हृदयमें रहकर बोध उत्पन्न करते हैं, उन भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं।

सुयोगिनो योगबलेन साध्यं प्रकुर्वते कः स्तवनेन स्तौति।
अतः प्रणामेन सुसिद्धिदोऽस्तु तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ २१॥

जिन्हें उत्तम योगीजन योगबलसे साध्य (उपलब्ध) करते हैं, उनकी स्तोत्रोंद्वारा स्तुति कौन कर सकता है! अतः वे प्रणाममात्रसे हमारे लिये उत्तम सिद्धिदाता हों। हम उन भगवान् एकदन्तकी शरण लेते हैं।

गृत्समद उवाच

एवं स्तुत्वा गणेशानं देवाः समुनयः प्रभुम्।
तूष्णीं भावं प्रपद्यैव ननृतुर्हर्षसंयुताः॥ २२॥
स तानुवाच प्रीतात्मा देवर्षीणां स्तवेन वै।
एकदन्तो महाभागो देवर्षीन् भक्तवत्सलः॥ २३॥

गृत्समद बोले—इस प्रकार ऋषि-मुनियोंसहित देवता भगवान् गणेशकी स्तुति करके मौन हो हर्षोल्लासके साथ नृत्य करने लगे। देवर्षियोंद्वारा किये गये स्तवनसे प्रसन्नचित्त हो भक्तवत्सल महाभाग एकदन्तने उनसे कहा—

एकदन्त उवाच

स्तोत्रेणाहं प्रसन्नोऽस्मि सुराः सर्षिगणाः किल।
वरदोऽहं वृणुत वो दास्यामि मनसीप्सितम्॥ २४॥

एकदन्त बोले—ऋषि और देवताओ! मैं तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ; वर देनेको उद्यत हूँ। अतः माँगो, मैं तुम्हें मनोवांछित वस्तु दूँगा।

भवत्कृतं मदीयं यत् स्तोत्रं प्रीतिप्रदं च तत्।
भविष्यति न संदेहः सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ २५॥

तुमलोगोंके द्वारा जो मेरा स्तवन किया गया है, वह प्रीति प्रदान करनेवाला है। इसमें संदेह नहीं कि वह तुम्हारे लिये सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होगा।

यं यमिच्छति तं तं वै दास्यामि स्तोत्रपाठतः।
पुत्रपौत्रादिकं सर्वं कलत्रं धनधान्यकम्॥ २६॥
गजाश्वादिकमत्यन्तं राज्यभोगादिकं ध्रुवम्।
भुक्तिं मुक्तिं च योगं वै लभते शान्तिदायकम्॥ २७॥

इस स्तोत्रके पाठसे मनुष्य जिस-जिस वस्तुको पानेकी इच्छा करता है, वह सब मैं उसे दूँगा। पुत्र-पौत्र आदि, कलत्र, धन-धान्य, हाथी-घोड़े आदि तथा राज्यभोग आदि सब वस्तुएँ उसे निश्चय ही अतिशय मात्रामें प्राप्त होंगी। स्तोत्र-पाठ करनेवाला मनुष्य भोग-मोक्ष तथा शान्तिदायक योग भी प्राप्त कर लेगा।

मारणोच्चाटनादीनि राजबन्धादिकं च यत्।
पठतां शृण्वतां नृणां भवेच्च बन्धहीनता॥ २८॥

मारण, उच्चाटन और मोहन आदि प्रयोग उसके ऊपर सफल न होंगे। राजाके द्वारा बन्धन आदिकी प्राप्तिका कष्ट भी दूर हो जायगा। इसका पाठ और श्रवण करनेवाले मनुष्य बन्धनहीन हो जायँगे।

एकविंशतिवारं यः श्लोकानेवैकविंशतीन्।
पठेच्च हृदि मां स्मृत्वा दिनानि त्वेकविंशतिम्॥ २९॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु वै भवेत्।
असाध्यं साधयेन्मर्त्यः सर्वत्र विजयी भवेत्॥ ३०॥

जो अपने मनमें मेरा चिन्तन करते हुए इन इक्कीस श्लोकोंका इक्कीस दिनोंतक प्रतिदिन इक्कीस बार पाठ करेगा, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा। वह मनुष्य असाध्य कार्यका भी साधन कर लेगा और सर्वत्र विजयी होगा।

नित्यं यः पठति स्तोत्रं ब्रह्मभूतः स वै नरः।
तस्य दर्शनतः सर्वे देवाः पूता भवन्ति च॥ ३१॥

जो प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह मनुष्य ब्रह्मभूत होता है। उसके दर्शनसे समस्त देवता पवित्र हो जाते हैं।

॥ इति श्रीमुद्गलपुराणे एकदन्तशरणागतिस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

॥ इस प्रकार श्रीमुद्गलपुराणमें 'एकदन्तशरणागतिस्तोत्र' पूरा हुआ॥

श्रीगणेशका प्रातःस्मरण

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम्।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्डमाखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम्॥
प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमानमिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम्।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय॥
प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोकदावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम्।
अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाहमुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम्। प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत् प्रयतः पुमान्॥

जो इन्द्र आदि देवेश्वरोंके समूहसे वन्दनीय हैं, अनाथोंके बन्धु हैं; जिनके युगल कपोल सिन्दूरराशिसे अनुरंजित हैं; जो उद्दण्ड (प्रबल) विघ्नोंका खण्डन करनेके लिये प्रचण्ड दण्डस्वरूप हैं, उन श्रीगणेशजीका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ। चतुर्मुख ब्रह्मा जिनकी नित्य वन्दना करते हैं; जो अपने सेवकको उसकी इच्छाके अनुकूल सम्पूर्ण वरदान देनेवाले हैं, तुन्दिल हैं; सर्प ही जिनका यज्ञोपवीत है, उन क्रीडाकुशल उमा-महेश्वर-नन्दन (श्रीगणेशजी)-को मैं कल्याण-प्राप्तिके लिये प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ। जो अपने जनको अभय प्रदान करनेवाले हैं, भक्तोंके शोकरूपी वनके लिये दावानल (वनाग्नि) हैं; गणोंके नायक हैं; जिनका मुख श्रेष्ठ हाथीके समान है और जो अज्ञानरूप वनको नष्ट करनेके लिये अग्नि हैं, उन उत्साह बढ़ानेवाले शिवसुत (श्रीगणेशजी)-का मैं प्रातःकाल भजन (चिन्तन) करता हूँ। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर संयतचित्तसे इन तीनों पवित्र श्लोकोंका नित्य पाठ करता है, उसको यह स्तोत्र सर्वदा साम्राज्य (नित्य भगवद्धाम)-के समान सुख देता है।

महाराष्ट्रीय संतोंद्वारा श्रीगणेशका यशोगान

संत तुकाराम

धरोनिया फरश करी। भक्तजनांचीं विघ्नें वारी॥
ऐसा गजानन महाराजा। त्याचे चरणीं लाहो माझा॥
शेंदुर शमी बहु प्रिय त्याला। तुरा दुर्वांचा शोभला॥
उंदीर असे जयाचें वाहन। माथा जडित मुगुट पूर्ण॥
नाग यज्ञोपवित रुळे। शुभ्र वस्त्रें शोभित साजिरें॥
भावमोदक हाराभरी। तुका भावें पूजा करी॥

''जो हाथमें परशु लेकर भक्तजनोंके संकट दूर करते हैं, ऐसे गजानन महाराजके श्रीचरणोंमें मेरा प्रणाम हो। सिन्दूर और शमीपत्र उन्हें विशेष प्रिय हैं और उनके मस्तकपर दूर्वापुंज शोभा देता है। उनका वाहन मूषक है। उनके मस्तकपर रत्नखचित पूर्ण मुकुट है। नागके यज्ञोपवीत और शुभ्र वस्त्रसे वे सुशोभित हैं। भावरूप मोदकोंसे 'तुका' उनकी अनन्यभावसे पूजा करता है।''

~~०~~

संत नामदेव

लंबोदरा तुझा शोभे शुंडादंड। करीतसे खंड दुश्चिन्हांचा॥
चतुर्थ आयुधें शोभताती हातीं। भक्ताला रक्षिती निरंतर॥
भव्य रूप तुझें उंदीरवाहना। नमन चरणा करीतसे॥
तुझें नाम घेतां दोष जळताती। कळिकाळ कापती तुझ्या नामें॥
चौदा विद्या तुझ्या कृपेनें येतील। मुके बोलतील वेदघोष॥

'हे लम्बोदर! दुश्चिह्नोंका खण्डन करनेवाला यह तेरा शुण्ड-दण्ड शोभायमान है। भक्तोंकी निरन्तर रक्षा करनेवाले ये चार शस्त्र (चार) हाथोंमें शोभा देते हैं। हे मूषकवाहन! तेरा स्वरूप भव्य है; मैं तुझे प्रणाम करता हूँ। तेरे नामसे दोष जलते हैं और कालरूप कलि काँपने लगता है। तेरी कृपासे चौदह विद्याएँ अवगत होंगी और मूक भी वेदमन्त्रोंका उच्चारण करेगा।'

संत मोरया गोसावी

पाहतां त्रिभुवनीं हो दुजा न देखों नयनीं। एका मोरयावांचूनी हो मोक्षदाता॥
अहो, येई तूं मोरया हो त्रयलोक वीसावया। जडजीव तारावया हो तूंचि (हाची) एक॥
अहो आकळु नकळू बा आहेसी सत्यलोकीं। नवल अवतार मृत्युलोकीं त्वां धरीयेला॥
अहो मूषकवाहन हो देव देखिले गहन। महाविघ्नविध्वंसन हो गणराज (मायबाप)॥
अहो फरशु, अंकुश कटी बा घेउनियां झडकरी। आपुलें ब्रीद साच करी हो गणराज (महाराज)॥
अहो मोरया गोसावी हो मोरया गोसावी देव योगिया गहन।
त्यांचे त्यांचे, हृदयीं संपूर्ण हो नांदतसे॥

'इस त्रैलोक्यमें देख रहा हूँ कि आँखोंके सामने बिना मोरया—श्रीगणेशके मोक्ष देनेवाला दूसरा कोई दिखायी नहीं देता। हे मोरया! तू आ जा, इस त्रैलोक्यको विश्राम देनेके लिये और जड जीवोंका उद्धार करनेके लिये तू आ जा। तू सत्यलोकमें रहनेवाला है। तेरे स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता है। ऐसे तूने मृत्युलोकमें नवल अवतार ले लिया है। हे मूषकवाहन! मैंने बहुत बड़े देव देखे हैं, किंतु महाविघ्नोंका विध्वंस करनेवाला गणराज तू ही है। हे गणराज महाराज! परशु, अङ्कुश लेकर तू अपना काम पूरा कर। मोरया गोसावी कहता है—यह मोरया देव योगियोंके लिये भी असाध्य है। जो (उसके) भक्त हैं, उनके हृदयसिंहासनपर वह विराजमान है।

~~०~~

'कीजिये सुमिरन गनेशजी'

(भक्तकवि 'नजीर')

(१)

अव्वल तो दिल में कीजिये पूजन गनेशजी,
अस्तुत भी फिर बखानिये धन-धन गनेशजी,
भगतों को अपने देते हैं दर्शन गनेशजी,
वरदान बख़्शते हैं जो देवन गनेशजी।

हर आन ध्यान कीजिये सुमिरन गनेशजी,
देवेंगे रिद्धी-सिद्धी अन-धन गनेशजी॥

(२)

माथे पे अरधचंद की शोभा मैं क्या कहूँ,
उपमा नहीं बने है मैं चुपका ही हो रहूँ,
इस छबि को देख-देख के आनन्द-सुख लहूँ,
लैं[1] लो निहार दिल में सदा अपने वह चहूँ। हर आन ध्यान०

(३)

इक दंत को जो देखा, क्या खूब है बहार,
इन पे हजार चंद की शोभा को डारूँ वार,
उनके गुनानुवाद का है कुछ नहीं शुमार,
हर वक्त दिल में आता है अपने यही विचार। हर आन ध्यान०

(४)

गज-मुख को देख होता है सुख उर में आन आन,
दिल शोद[2]-शाद रहता है मैं क्या करूँ बखान,
इल्मो[3] हुनर में एक हैं और बुद्धि के निधान,
सब काम छोड़ प्यारे और मन में यही आन। हर आन ध्यान०

(५)

क्या छोटे-छोटे हाथ हैं चारों भरे-भरे,
चारों में चार हैं ये पदारथ खरे-खरे,
देते हैं अपने दासों को जो हैं बड़े-बड़े,
अलबत्ता अपनी मेहर[4] वह तुझ पर करें-करें। हर आन ध्यान०

(६)

इक दस्त में तो हैगी, सुमिरन बहार दार,
औ दूसरे में फरसी, क्या उसकी अजब धार,
तीजे में कंज, चौथे कर में लिये हैं अहार[5],
मत सोच तू दिल में ए यार बार-बार। हर आन ध्यान०

---

१. रात-दिन, २. प्रसन्न, ३. विद्या, ४. कृपा, ५. गणेश-प्रिय लड्डू।

(७)
अच्छे विशाल नैन हैं और तोंद है बड़ी,
हाथों को जोड़ सरसुती है सामने खड़ी,
होवे असान पल में मुश्किल जो है बड़ी,
फल पावने की उनसे हैगी यही कड़ी। हर आन ध्यान०

(८)
मूसा है सवारी का अजब खूब बे-नज़ीर[1],
क्या खूब कान पंजे और दुम है दिल पज़ीर[2],
खाते हैं मोतीचूर के, चंचल बड़ा शरीर,
दुख-दर्द को हरे हैं, दिल को बँधावें धीर। हर आन ध्यान०

(९)
घी में मिला के कोई चढ़ाता है आ सिंदूर,
सब पाप उसके डालते कर दम के बीच चूर,
फूलों विरंच शीश पे दीपक को रख कपूर,
जो मन में होवे इच्छा, फिर क्या है उससे दूर। हर आन ध्यान०

(१०)
जुन्नार है गले में इक नाग जो काला,
फूलों के हार डहडहे और मोती की माला,
वह हैं इक अजब शान से शिव-गौरी के लाला,
सुर-नर-मुनि कहते उन्हें दीन दयाला। हर आन ध्यान०

(११)
सनकादि-सूरज-चंद खड़े आरती करें,
औ शेषनाग गंध की ले धूप को धरें
नारद बजावें बीन इंदर चँवर ले ढरें,
चारों वदन से अस्तुति बिरम्हाजी उच्चरें। हर आन ध्यान०

(१२)
जंगम अतीत जोगी यती ध्यान लगावें,
सुर-नर-मुनीस-सिद्ध सदा सिद्धि को पावें,
औ संत सुजन चरन की रज शीश चढ़ावें,
वेदो-पुरान-ग्रन्थ जो गुन गाय सुनावें। हर आन ध्यान०

(१३)
जो जो शरन में आया है कीना उसे सनाथ,
भौ-सिंध से उतारा है दम में पकड़ के हाथ,
ये दिल में ठान अपने और छोड़ सब का साथ,
तू भी 'नज़ीर' चरनोंमें अपना झुका दे माथ।
हर आन ध्यान कीजिये सुमिरन गनेशजी,
देवेंगे रिद्धी-सिद्धी अन-धन गनेशजी॥

(डॉ० श्रीगुरमुखरायजी टंडन एवं श्रीश्रीकृष्णलालजी लावनियाके सौजन्यसे)

~~ ○ ~~

१. अनुपम, २. मोहित करनेवाली।

परमेश गणपति

(रचयिता—साहित्याचार्य पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

मनुज-दनुज दिति-अदिति-तनुज आदि
प्राणी चर-अचर अशेष गणपति हैं,
व्यापक विशाल ब्रह्म-अण्डमें विराट वपु-
धारी महाकाल महादेश गणपति हैं।
त्राता, इष्टदाता हरि, सृष्टिके विधाता विधि,
गाता वेद, हारक महेश गणपति हैं,
शेषके, सुरेशके, दिनेशके भी वन्दनीय
नित्य परब्रह्म परमेश गणपति हैं॥

* * *

एकदन्त, द्विपद, त्रिनेत्र चारभुज आप,
पुत्र पञ्चाननके, षडाननके भाई हैं,
क्रीडा सप्त-सागरोंमें अष्ट-सिद्धियोंके साथ
नव-निधियोंने महा महिमा बढ़ायी हैं।
दस-दिकपाल नत-भाल चरणोंमें सदा
रुद्र ग्यारहोंकी ही प्रतीति प्रीति पायी है,
द्वादश दिनेश-द्युति, पूजित त्रयोदशीमें,
चौदहो भुवनमें सुयश-राशि छायी है॥

* * *

तारण-तरण गणनाथ जगतीके नीके,
दारण दुखोंके, दर-दारिद-दरण है,
सुखके क्षरण, वर वीरता-वरण और
मदके बहाने मोद-अमृत-झरण हैं।
यजन-विवाह आदि जगके उछाह-मध्य
सबसे प्रथम परिपूजित-चरण हैं,
भक्तोंके भरण, अग-जगके शरणदाता,
मंगलकरण हैं, अमंगल-हरण हैं॥

* * *

विपद-विमोचन विलोचन हैं तीन, भाल-
देशमें लसित लेख भसित-त्रिपुण्डका,
तेज-पुञ्ज छाया, कोटि रविके समान दिव्य
काया मानवीय और आनन वितुण्डका।
अन्तराय-ईंधनोंको दग्ध करनेके लिये—
काम करता जो प्रज्वलित अग्निकुण्डका,
विघ्न-असुरोंके करे रुण्ड-मुण्ड खण्ड वह
परम प्रचण्ड शुण्ड-दण्ड वक्रतुण्डका॥

* * *

१. यज्ञोपवीत, २. ताजे महकते हुए।

कोमल हृदय, दयाधाम, अभिराम देव!
सबके सुहृद, सब घटमें प्रकट हैं,
कालके भी काल, कुल-घालक असुरके हैं,
प्रणतजनोंके प्रतिपालक, सुभट हैं।
टेर दुखियोंकी सुन देर न लगाते कहीं,
आते दौड़कर, नहीं दूर हैं, निकट हैं,
घर-घर ग्राम-ग्राम आठो याम प्राप्त आप,
काम करुणाका, नाम केवल विकट है॥

~~०~~

वरदाता श्रीगणेश

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीशृंगेरीक्षेत्रस्थ शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी अभिनवविद्यातीर्थ महाराज)

प्रत्येक मनुष्यकी कोई-न-कोई कामना होती है। जिनको क्लेश है, वे क्लेशका नाश चाहते हैं, दूसरे ऐश्वर्य और भोग चाहते हैं। अपनी कामना पूर्ण करनेके लिये लोग सभी प्रकारके प्रयत्न करते हैं, किंतु क्या कोई अपनी कामनाएँ दैवके सहारे बिना पूरी कर सकता है? कामनाओंका कोई अन्त ही नहीं है और ये हमें छोड़ती भी नहीं हैं। हमारे सारे लौकिक उपाय व्यर्थ हो गये और हमें तृप्ति नहीं मिली। कामनाओंका शमन करनेके लिये और शान्ति पानेके लिये एक ही उपाय है—भगवान्‌की उपासना।

भगवान्‌की उपासना अनादिकालसे चलती आ रही है। इससे जन-जन अपनी आत्माको शान्ति प्रदान करता आ रहा है। उसकी आशाएँ भी बिना प्रयासके ही पूर्ण होती रहती हैं। हम भगवान्‌की उपासना कैसे करें, इसके लिये वेद और तन्त्रशास्त्र उपासनाके बहुत-से मार्ग बतलाते आ रहे हैं। ये उपासनाएँ मन्त्रोंके माध्यमसे चलती हैं। प्रत्येक मन्त्रके अलग-अलग देवता होते हैं। भगवान् तो एक ही हैं, फिर भी भक्तोंकी रक्षाके लिये वे नाना अवतार ग्रहण करते हैं। उन अवतारोंमें विशिष्ट शक्ति और क्रियाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। विशिष्ट शक्तियुक्त देवताओंकी उपासनासे हमारे अंदर विशिष्ट शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं और कार्योंमें सिद्धि भी मिलती है।

श्रीगणेशजी भी भगवान्‌के ही एक विशिष्ट स्वरूप हैं। वे पार्वती-शिवके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। इनकी उपासना कई प्रकारकी है। इनके रूप भी अनेक हैं। रूपके अनुसार नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। जैसे—महागणपति, चिन्तामणि-गणपति, हरिद्रागणपति इत्यादि। गणेशजीके बहुत-से मन्त्र हैं। तन्त्र-ग्रन्थोंमें मन्त्रोंके पुरश्चरण-अनुष्ठान आदिकी विधि विस्तारसे प्रतिपादित है। विधिके अनुसार उनके अनुष्ठान करनेसे हम लौकिक और पारलौकिक फल प्राप्त कर सकते हैं। उनकी कृपासे मोक्षतककी भी प्राप्ति होती है।

विघ्ननिवारणके लिये गणेशजी सुप्रसिद्ध हैं। न केवल विघ्नविनाश ही, वरं प्रत्येक कामना भी इनकी उपासनासे पूर्ण होती है। भारतका सनातनमतावलम्बी कोई भी व्यक्ति हो, किसी न-किसी रूपमें इनका पूजन करता ही है। भारतके सभी घरोंमें समष्टि और व्यष्टिरूपमें भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको इनका पूजन हुआ करता है। प्रत्येक मन्दिरमें गणेशजीको हम देख सकते हैं। वह चाहे शिव-मन्दिर हो चाहे विष्णु-मन्दिर या कोई अन्य मन्दिर, गणेशजी सबको अभीष्ट हैं। देवोंकी पूजा या किसी अन्य मंगल-कार्यको करते समय सर्वप्रथम इनकी पूजा आवश्यक होती है। श्रीगणेश-पूजनके बिना किसी कार्यका आरम्भ ही नहीं हो सकता। शास्त्रोंमें सर्वप्रथम इनका पूजन विहित है। सारे शांकरमतानुयायी लोग पंचायतन-पूजन करते हैं। उस पंचायतनमें शिव, नारायण, सूर्य, देवी और गणेशजी हैं। गणेशभक्त इन देवोंमें गणेशजीको प्रधानता देकर उनकी पूजा करते हैं। व्यासजीने महाभारत लिखते समय अन्य किसीको इस कार्यके लिये समर्थ न पाकर इन्हींसे उसे लिखनेके लिये प्रार्थना की थी। इन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और व्यासजी जैसे-जैसे कहते गये, वैसे-वैसे ही गणेशजी लिखते गये।

विनायकजीके विषयमें पुराणोंमें बहुत-सी रोचक कथाएँ वर्णित हैं और कुछ अन्य परम्परासे भी सुनी जाती हैं। गणेशजीके मन्त्र बहुत-से हैं। उन्हें गुरुमुखसे जानकर दीक्षापूर्वक ग्रहण करनेसे ही उनका फल मिलता है। इनमेंसे कुछ मन्त्र तो ऐसे भी हैं, जिनका उपदेश लिये बिना भी इनका पाठ और जप कर सकते हैं। जो लोग उपदेश न पा सकें वे 'गणपति-सहस्र-नामावली', 'अष्टोत्तरशत-नामावली' या 'द्वादश-नामावली' अथवा गणेशके स्तोत्र-पाठादि कर सकते हैं। उनकी द्वादशनामावली इस प्रकार है—

१—सुमुखाय नमः, २—एकदन्ताय नमः, ३—कपिलाय नमः, ४—गजकर्णकाय नमः, ५—लम्बोदराय नमः, ६—विकटाय नमः, ७—विघ्ननाशाय नमः, ८—विनायकाय नमः, ९—धूम्रकेतवे नमः, १०—गणाध्यक्षाय नमः, ११—भालचन्द्राय नमः, १२—गजाननाय नमः।

इन नामोंसे दूर्वा चढ़ानेसे श्रीगणेशजीकी कृपा प्राप्तकर आप अपनी सभी कामनाएँ सफल बना सकते हैं—

नमस्तस्मै गणेशाय ब्रह्मविद्याप्रदायिने।
यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे॥

~~o~~

श्रीगणेशजी

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाक्षेत्रस्थ शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी अभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ महाराज)

'आदौ पूज्यो विनायकः'—इस उक्तिके अनुसार समस्त शुभ कार्योंके प्रारम्भमें गणेशजीकी अग्रपूजा विशाल हिंदूजातिमें सुप्रसिद्ध और प्रचलित है। श्रीगणेशजी सर्वस्वरूप, परब्रह्मस्वरूप हैं। 'गणपति-अथर्वशीर्ष' में **'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रः'** इत्यादिके द्वारा उन्हें **'सर्वरूप'** कहा गया है। श्रीगणेशपुराण, मुद्गलपुराण आदि गणेश-सम्बन्धी कई पुराणोंमें तथा अन्य तत्सम्बन्धी साहित्योंमें भी गणेशजीका परब्रह्मस्वरूप ही मुख्यरूपसे वर्णित है। मुद्गलपुराणमें श्रीगणेशजीको ओंकारस्वरूप बताया गया है—**'ॐ इति शब्दोऽभूत् स वै गजाकारः।'** ऋग्वेदसंहितामें भी **'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनाम्०'** (२। २३। १) इत्यादि वचनोंसे इनका ही वर्णन किया गया है।

श्रीगणेशजी सर्वविघ्नोंके हर्ता तथा सिद्धि-बुद्धिके प्रदाता हैं। गणेशोपासना एवं गणेशमूर्तिकी पूजा न केवल भारतमें ही, अपितु चीन, जापान, बाली, नेपाल, ब्रह्मदेश तथा अफगानिस्तानके अतिरिक्त अन्य कई दूर-दूर देशोंमें भी किसी-न-किसी रूपमें प्रचलित है और वहाँ इसके प्रमाणभूत विशिष्ट प्रकारकी मूर्तियाँ और मन्दिर आज भी विद्यमान हैं।

श्रीगणेशजी समस्त जगत्को कल्याण प्रदान करें।

~~o~~

श्रीगणपति-पूजनकी प्राचीनता एवं वैदिकता

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीजगन्नाथपुरीक्षेत्रस्थ गोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजनदेवतीर्थ महाराज)

अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक, परात्पर, पूर्णतम, परब्रह्म, परमात्मा ही 'गणनाथ' एवं 'विनायक' कहे गये हैं। सृष्टिके उत्पादनमें आसुरी शक्तियोंद्वारा जो विघ्न-बाधाएँ उपस्थित की जाती हैं, उनका निवारण करनेके लिये सृष्टिके प्रारम्भसे ही भगवान् गणपतिके रूपमें प्रकट हो ब्रह्माजीके कार्यमें सहायक होते आये हैं। ऋग्वेद-यजुर्वेद आदिके **'गणानां त्वा०'** इत्यादि मन्त्रोंमें भगवान् गणपतिका सुस्पष्ट उल्लेख मिलता है। धर्मप्राण भारतीय जनता अनादिकालसे ही वैदिक एवं पौराणिक मन्त्रोंद्वारा भगवान् गणपतिकी पूजा करती चली आ रही है।

कुछ लोगोंका कथन है कि वेदमें आये हुए मन्त्रोंका प्रकरणानुसार अर्थ देखनेपर यह सिद्ध नहीं होता कि वे मन्त्र गणेशपरक ही हैं। किंतु उनका यह कथन किसी प्रकार भी संगत नहीं दीखता; क्योंकि मन्त्रोंका विनियोग श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या—इन छः प्रमाणोंके अनुसार होता है। इनमें भी श्रुति सबसे प्रबल है; परवर्ती सभी प्रमाण क्रमशः दुर्बल माने जाते हैं। **'श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये**

पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्।' (जै० सू० ३। ३।१४)—इस सूत्रके द्वारा वेदमन्त्रोंके विनियोगकी व्यवस्था बतानेवाले महर्षि जैमिनिने यह स्पष्ट निर्णय दिया है कि श्रुतिसे होनेवाले विनियोगकी अपेक्षा लिंगसे होनेवाला विनियोग दुर्बल है। वेदके अर्थको जानकर किये हुए विनियोगको ही लिंगसे होनेवाला विनियोग कहते हैं। अर्थज्ञानकी अपेक्षा न रखकर सीधे श्रुतिवचनद्वारा बताया गया विनियोग ही श्रुतिके द्वारा किया गया 'विनियोग' कहलाता है।*

यह विनियोग अर्थको जानकर किये जानेवाले विनियोगकी अपेक्षा बलवान् होता है; क्योंकि वेदमन्त्रके अर्थको जानकर जबतक हम उसका विनियोग करने जायँगे, उससे पहले ही श्रुति-वचन सीधा उसका विनियोग बतला देगा। इस न्यायसे '**गणानां त्वा०**' इत्यादि मन्त्रोंके अर्थको जानकर विनियोग करनेमें विलम्ब होगा और वचनके द्वारा उससे पहले ही उनका सीधा श्रीगणेश-पूजामें विनियोग हो जायगा। इन मन्त्रोंका गणेश-पूजामें सीधा विनियोग बतानेवाले '**गणानां त्वेति मन्त्रेण गणानाथं प्रपूजयेत्।**'—ऐसे वचन शास्त्रोंमें मिलते हैं। इसलिये इन मन्त्रोंका अनादिकालसे श्रीगणेशपूजामें चला आनेवाला विनियोग ध्रुव सत्य है। कहा जा सकता है कि 'ऐसे वचन स्मृतियों और पुराणोंमें मिलते हैं, वेदोंमें नहीं।' पर ऐसा कहना दुस्साहसमात्र है; क्योंकि चारों वेदोंकी ११३१ शाखाओंमेंसे इस समय केवल ११शाखाएँ ही उपलब्ध हैं। आचार्य श्रीजैमिनिने यह भी अपना निर्णय दिया है कि 'स्मृतियों और पुराणोंमें मिलनेवाले वचनोंका यदि प्रत्यक्ष विरोध न मिलता हो तो यह अनुमान करना चाहिये कि इन्हीं अर्थोंवाले वेद-मन्त्र अवश्य रहे हैं, जो अब उन शाखाओंके लुप्त हो जानेके कारण मिलते नहीं हैं। यदि स्मृतियों और पुराणोंके वचनोंका प्रत्यक्ष वेद-मन्त्रोंसे विरोध होता हो तो स्मृति और पुराणोंके वचन त्याग देने चाहिये। किंतु विरोध न होनेपर उन स्मृति-वचनोंके मूलभूत वचन, अनुपलब्ध वेदभागमें अवश्य होंगे, ऐसा अनुमान कर उन स्मृति-पुराणोंके वचनोंको प्रमाण मानकर उनके अनुसार ही वेद-मन्त्रोंका विनियोग करना चाहिये। जैसा कि मीमांसाका वचन है—

'विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्।'

(मीमांसासू० १। ३। ३)

आचार्य श्रीजैमिनिके इस सूत्रके अनुसार सनातनधर्मी हिन्दू जनता अनादिकालसे भगवान् श्रीगणपतिका उपर्युक्त वेद-मन्त्रोंसे पूजन करती चली आयी है और भगवान् श्रीगणपतिकी कृपासे उसके सभी कार्य आजतक निर्विघ्न सानन्द सफल होते चले आये हैं। परमपूज्यपाद भगवान् आद्य शंकराचार्य महाराजने अपने ग्रन्थोंमें यह स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि 'यदि अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीगणेशजी प्रसन्न हो जायँ तो पशु-पक्षियोंतकके भी सब कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जाते हैं और यदि अप्रसन्न हों तो साक्षात् विश्वके स्रष्टा भी उस कार्यके करनेमें सर्वथा असफल हो जाते हैं।' भगवान् श्रीगणेशजी साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। अतः आस्तिक हिंदू जनताको बड़ी श्रद्धा तथा दृढ़ भक्तिके साथ भगवान् श्रीगणपति—गणेशकी सदैव पूजा, प्रार्थना-ध्यान आदि करना-कराना चाहिये। इहलौकिक और पारलौकिक सभी कार्योंकी निर्विघ्न और सानन्द सम्पन्नताका एकमात्र उपाय भगवान् गणेशजीकी प्रसन्नता ही है।

~~~o~~~

श्रीगणेशसे तुलसीदासजीकी याचना

गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक। कृपा-सिंधु, सुंदर, सब-लायक॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता। बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता॥
माँगत 'तुलसिदास' कर जोरे। बसहिं राम-सिय मानस मोरे॥

(विनय-पत्रिका-१)

~~~o~~~

* 'मीमांसानुक्रमणिका' में कहा गया है—'बलीयसी श्रुतिर्लिङ्गात्—लिंगसे श्रुति विशेष बलवती है।' 'श्रुति'का तात्पर्य प्रत्यक्ष श्रुतिसे है। 'लिंग' कहते हैं—अर्थ-प्रकाशनरूप सामर्थ्यको। इसके अनुसार 'गणानां त्वा गणपतिम्०'—इस श्रुतिमें प्रत्यक्ष श्रूयमाण गणपति-शब्द प्रबल होनेसे गणेशपरक सिद्ध होता है।

शक्ति और शिवतत्त्वसे गणेशतत्त्वका आविर्भाव

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीबदरीक्षेत्रस्थ ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी शान्तानन्दसरस्वती महाराज)

भगवान् शिव जगन्नियन्ता जगदीश्वर हैं। 'ईश्वर' और 'महेश्वर'—शब्द 'शिव' शब्दके पर्याय हैं। श्रुति भी यही कहती है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। २)

'जो अपनी स्वरूपभूता विविध शासन-शक्तियोंद्वारा इन सब लोकोंपर शासन करता है, वह रुद्र (परमात्मा) एक ही है; इसलिये ज्ञानीजनोंने दूसरेका आश्रय नहीं लिया। वह परमात्मा समस्त जीवोंके भीतर स्थित है। सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करके उनकी रक्षा करनेवाला परमेश्वर प्रलयकालमें इन सबको समेट लेता है।'

अग्निको 'शिव' और सोमको 'शक्ति' कहा जाता है। 'सोम'—शब्द उमासे ही बना है—'**उमया सहितः सोमः**'—यह तत्त्व 'बृहज्जाबालोपनिषद्' के दूसरे ब्राह्मणमें स्पष्ट कहा गया है—

'**अग्नीषोमात्मकं विश्वमित्यग्निरित्याचक्षते। रौद्री घोरा या तैजसी तनूः। सोमः शक्त्यमृतमयः शक्तिकरी तनूः।**'

अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजोविद्याकला स्वयम्।
स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसी॥ १॥
द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानिलात्मिका॥ २॥
वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः।
तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्॥ ३॥
अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
अत एव हविः क्लृप्तमग्नीषोमात्मकं जगत्॥ ४॥
ऊर्ध्वशक्तिमयं सोम अधःशक्तिमयोऽनलः।
ताभ्यां सम्पुटितं तस्माच्छश्वद्विश्वमिदं जगत्॥ ५॥
अग्नेरूर्ध्वं भवत्येषा यावत्सौम्यं परामृतम्।
यावदग्न्यात्मकं सौम्यममृतं विसृजत्यधः॥ ६॥
अत एव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा।
यावदादहनश्चोर्ध्वमधस्तात् पावनं भवेत्॥ ७॥
आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः।
तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः॥ ८॥
शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किञ्चन॥ ९॥

भाव यह है कि 'इस सम्पूर्ण जगत्के आत्मा अग्नि एवं सोम हैं अथवा इसे 'अग्निरूप' भी कहते हैं। घोर तेज (अग्नि) रुद्रका शरीर है, अमृतमय शक्ति देनेवाला सोम शक्तिरूप है। अमृतरूप सोम सबकी प्रतिष्ठा है, विद्या और कला आदिमें वह तेज व्याप्त है। स्थूल या सूक्ष्म सब भूतोंमें रस (सोम) और तेज (अग्नि) सर्वत्र व्याप्त है। तेजके दो प्रकार हैं—सूर्य और अग्नि। सोमके भी दो रूप हैं—रस (अप्) और अनिल (वायु)। तेजके विद्युदादि अनेक भेद हैं। तेज और रससे ही यह चराचर जगत् बना है। अग्निसे ही अमृत (सोम) उत्पन्न होता है और सोमसे अग्नि बढ़ती है। अतएव अग्नि और सोमके परस्पर हविर्यज्ञसे सब जगत् उत्पन्न है। अग्नि ऊर्ध्वशक्तिमय होकर अर्थात् ऊपरको जाकर सोमरूप हो जाती है और सोम अधःशक्तिमय होकर अग्नि बन जाता है। इन दोनोंके सम्पुटमें निरन्तर यह जगत् रहता है। जबतक सोमरूपमें परिणत न हो, तबतक अग्नि ऊपर ही जाती रहती है और सोम-अमृत जबतक अग्निरूप न बने, तबतक नीचे ही गिरता रहता है। इसलिये कालाग्निरूप रुद्र नीचे है और शक्ति इनके ऊपर विराजमान है। दूसरी स्थितिमें फिर (सोमकी आहुति हो जानेपर) अग्नि ऊपर और पावन सोम नीचे हो जाता है। ऊपर जाती हुई अग्नि अपनी आधारशक्ति सोमसे ही धृत है और नीचे आता हुआ सोम शिवकी ही शक्ति कहलाता है अर्थात् बिना शिवके आधारके वह भी नहीं रह सकता। दोनों एक-दूसरेके आधारपर हैं। शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय है।'

ये सदाशिव अपनी शक्तिसे युक्त होकर सृष्टि रचते हैं। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (४। १०) में लिखा है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

'प्रकृतिको माया जाने और महेश्वरको मायापति समझे। उन्हींके अंगभूत कारण-कार्य-समुदायसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।'

जैसे प्रकृति और पुरुषके संयोगसे ही सृष्टि होती

है, वैसे ही भगवान् शिव तथा भगवती उमासे श्रीगणेशजीका आविर्भाव हुआ। गणेशके जन्मकी कथा यों तो अन्यत्र भी मिलती है, परंतु विस्तारके साथ यह शिवपुराण, स्कन्दपुराण तथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें उपलब्ध है। 'गणेशपुराण' में तो पूरा उन्हींका आख्यान है। वे ही एकमात्र जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता कहे गये हैं। सारा जगत् उन्हींसे उत्पन्न होकर प्रलयकालमें उन्हींमें तिरोहित हो जाता है।

शिवपुराणकी रुद्रसंहिताके कुमारिकाखण्डमें यह कथा है कि ''पार्वती कभी स्नानार्थ जा रही थीं। उन्होंने अपने शरीरके मैलसे एक पुतला निर्मितकर गृहरक्षाके लिये द्वारपालके रूपमें स्थित किया। ये ही द्वारपाल गणेशजी थे। गृहमें प्रवेशके लिये आनेवाले शंकरजीको उन्होंने रोका। शंकरजीने रुष्ट होकर युद्धमें उनका मस्तक काट दिया। फिर गजका सिर जुड़नेके कारण उनका नाम 'गजानन' पड़ा।''

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके गणपतिखण्डमें वर्णन है कि 'विवाहके बहुत दिनों बादतक संतानाभावके कारण पार्वतीजीने श्रीकृष्णके व्रतसे गणेशजीको उत्पन्न किया। शनिकी दृष्टि पड़नेसे उनका सिर कटकर गिर गया। पुनः विष्णुने उनके हाथीका सिर जोड़ दिया।'

शिवपुराणके अनुसार ''एक समय शंकरजीसे वर प्राप्त करके असुर अजेय हो गये। तब देवोंकी प्रार्थनापर श्रीशंकरजीका तेज पार्वतीके गर्भाशयमें जाकर समयानुसार बालकरूपमें उत्पन्न हुआ और उनका नाम 'विघ्नेश्वर' पड़ा।''

श्रीगणेशका वास्तविक अर्थ क्या है? इसपर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है—

'गण' का अर्थ है—वर्ग, समूह, समुदाय। 'ईश' का अर्थ है—स्वामी। शिवगणों एवं गणदेवोंके स्वामी होनेसे उन्हें 'गणेश' कहते हैं। आठ वसु, ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य 'गणदेवता' कहे गये हैं।

'गण' शब्द व्याकरणके अन्तर्गत भी आता है। अनेक शब्द एक गणमें आते हैं। व्याकरणमें गणपाठका अपना एक अलग ही अस्तित्व है। वैसे ही भ्वादि, अदादि तथा जुहोत्यादि प्रभृतिगण धातु-समूह है।

गण-शब्द रुद्रके अनुचरके लिये भी आता है। जैसा कि रामायणमें कहा गया है—

धनाध्यक्षसमो देवः प्राप्तो हि वृषभध्वजः।
उमासहायो देवेशो गणैश्च बहुभिर्युतः॥

संख्याविशेषवाली सेनाका भी बोधक गण-शब्द है—गज २७, रथ २७, अश्व ८१, पदाति १३५, अर्थात् २७०का समुदाय। इसके स्वामी श्रीगणेशजी हैं।

'महानिर्वाणतन्त्र' में कहा गया है—

'गणपस्तु महेशानि गणदीक्षाप्रवर्त्तकः।'

ज्यौतिषशास्त्रमें अश्विनी आदि जन्म-नक्षत्रोंके अनुसार देव, मानव और राक्षस—ये तीन गण हैं। इन सब प्रकारके गणोंके ईश श्रीगणेशजी हैं।

छन्दःशास्त्रमें भी मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण और तगण—ये ८ गण होते हैं। इनके अधिष्ठातृ-देवता होनेके कारण भी इन्हें गणेशकी संज्ञा दी गयी है।

गणनामक दैत्यपर अधिकार पानेके कारण भी ये 'गणेश' कहे जाते हैं।

अक्षरोंको 'गण' कहा जाता है। उनके 'ईश' होनेके कारण इन्हें 'गणेश' कहा जाता है। इसीलिये ये 'विद्या-बुद्धिके प्रदाता' कहे जाते हैं।

एलिस गेट्टीने भी अपनी 'गणेश' नामक पुस्तकमें आनन्दकुमारस्वामीके उपर्युक्त कथनको उद्धृत किया है।

गणेश-शब्दका विद्वानोंने निम्नलिखित प्रकारसे भी अर्थ किया है—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥[1]

गणेशतत्त्व क्या है, इसका आध्यात्मिक रहस्य क्या है? इसपर भी ध्यान देना अपेक्षित है।

श्रीगोस्वामी तुलसीदासने अपनी रामायणमें श्रीपार्वतीजीको 'श्रद्धा' और शंकरजीको 'विश्वास' का रूप माना है। किसी भी कार्यकी सिद्धिके लिये श्रद्धा-विश्वास, दोनोंका ही होना आवश्यक है। जबतक श्रद्धा न होगी, तबतक विश्वास नहीं हो सकता तथा विश्वासके अभावमें श्रद्धा भी नहीं ठहर पाती। वैसे ही पार्वती और शिवसे श्रीगणेशजी हुए। अतः गणेश सिद्धि और अभीष्टपूर्तिके प्रतीक हैं।

किसी भी कार्यको प्रारम्भ करनेके पूर्व विघ्ननिवारणार्थ एवं कार्यसिद्ध्यर्थ गणेशजीकी आराधना आवश्यक है। यही बात योगशास्त्रमें कही गयी है।

---

१. 'ग' अक्षर ज्ञानका और 'ण' अक्षर निर्वाणका वाचक है। ज्ञान और निर्वाणके ईश परब्रह्म गणेशको मैं प्रणाम करता हूँ।

योगशास्त्रके आचार्योंका कहना है कि मेरुदण्डके मध्यमें जो सुषुम्ना नाड़ी है, वह ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करके मस्तिष्कके नाड़ीगुच्छसे मिल जाती है। साधारण दशामें प्राण सम्पूर्ण शरीरमें बिखरा रहता है, उसके साथ चित्त भी चंचल रहता है। योगी क्रिया-विशेषसे प्राणको सुषुम्नामें खींचकर ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ाता है, त्यों-त्यों उसका चित्त शान्त होता है। योगीके ज्ञान और शक्तिमें भी वृद्धि होती है। सुषुम्नामें नीचेसे ऊपरतक नाड़ीकन्द या नाड़ियोंके गुच्छे होते हैं। इन्हें क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र कहते हैं। इस मूलाधारको 'गणेश-स्थान' भी कहा जाता है। कबीर आदिने जहाँ चक्रोंका वर्णन किया है, वहाँ प्रथम स्थानको गणेश-स्थान ही कहा है।

'बालापद्धति' में इन छः चक्रोंके देवताओंके नाम दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

गणेश्वरो विधिर्विष्णुः शिवो जीवो गुरुस्तथा॥[१]
षडेते हंसतामेत्य मूलाधारादिषु स्थिताः॥

कल्याण—'योगांक' में यह लिखा है कि हठयोगमें शरीरके भीतर जो अनेक चक्रोंकी कल्पना की गयी है, उसमें मूलाधार (गुदा) चक्रके देवता श्रीगणेश हैं।'

विल्किसने लिखा है—''हिंदू-धर्ममें गणेश बुद्धिमत्ताके देवता हैं। उनका सिर 'हाथीका सिर' कहा जाता है।''

गणपति-पूजनके द्वारा परमेश्वरका ही पूजन होता है। जो साधक दत्तचित्त होकर उपासनामें तत्पर होता है, उसकी बुद्धि एवं चित्तवृत्ति शुद्ध होती है। इसके साथ-ही-साथ देवताओंका अपना विघ्नरूप सिद्धि-रूपमें परिणत हो जाता है। श्रुति भी कहती है—'**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**—वह परतत्त्व एक है तथा धीमान् लोगोंके द्वारा अनेक नामोंसे पुकारा जाता है।' स्वशुद्धावस्थामें वह अखण्ड, चिद्घन, एकरस और नेति-नेतीतिवाच्य ब्रह्म है। माया-शबल होनेपर वही 'परमात्मा' या 'ईश्वर' कहलाता है। उसीको कोई साधक ब्रह्मा, कोई विष्णु, कोई शिव और कोई ईशानी कहता है। गणपतिके उपासक उसे ही 'महागणाधिपति' कहते हैं और गणपति-तत्त्वको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं।

श्रीगणेशजीके पास प्रायः पाश और अंकुश रहते हैं। पाश मोहका और तमोगुणका चिह्न माना जाता है और अंकुश प्रवृत्ति तथा रजोगुणका चिह्न। 'मोद' का अर्थ आनन्द प्रदान करनेवाला है। वरमुद्रा सत्त्वगुणका प्रतीक है। अर्थात् उनका उपासक रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण—इन तीनोंसे ऊपर उठकर एक विशेष आनन्दका अनुभव करने लगता है।

चम्पतरायजीके अनुसार चूहा विवेचक, विभाजक, भेदकारक, विस्तारक और विश्लेषक बुद्धि है। गणेशजीका सिर कटना अहंकारका नाश होना है। हाथीका सिर लगना संयोजक, समन्वयकारक और संश्लेषक बुद्धिका उदय होना है। ज्ञान और तन्मूलक व्यवहारके लिये सामान्य और विशेष—दोनोंका परिचय आवश्यक है। विभाजक और समाहारक, दोनों प्रकारकी बुद्धिके होते हुए भी प्रधानता समन्वयात्मक बुद्धिकी ही होती है। इसीलिये गणेशजीका वाहन मूषक है। इस संश्लेषक बुद्धिके कारण ही वे 'बुद्धिसागर' कहे जाते हैं। गणेशजीकी 'एकदन्तता' उनकी अद्वैतप्रियताका सूचक है। 'लम्बोदर' का तात्पर्य यह है कि 'अनेक ब्रह्माण्ड उनके उदरमें हैं।'

'गणेशपुराण'के उपासनाखण्डान्तर्गत 'गणेशाष्टक'में कहा भी है—

यतश्चाविरासीज्जगत् सर्वमेतत्
तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता।
तथेन्द्रादयो देवसङ्घा मनुष्याः
सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥ २॥

'जिनसे इस समस्त जगत्का प्रादुर्भाव हुआ है, जिनसे कमलासन ब्रह्मा, विश्वव्यापी, विश्वरक्षक विष्णु, इन्द्र आदि देवसमुदाय और मनुष्य प्रकट हुए हैं, उन गणेशका हम सदा ही नमन एवं भजन करते हैं।'

इसी प्रकार 'एकदन्तस्तोत्र' में भी कहा गया है—

सदात्मरूपं सकलादिभूत-
ममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं
तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १॥

''जो सदात्मस्वरूप, सबके आदिकारण, मायारहित तथा '**सोऽहमस्मि**' (वह परमात्मा मैं हूँ)—इस अचिन्त्य बोधसे सम्पन्न हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, उन एक—अद्वितीय एकदन्तधारी भगवान् गणेशकी हम शरण लेते हैं।''

~~~०~~~

१. गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीव और गुरु—ये हंस भावको प्राप्त होकर क्रमशः मूलाधार आदि चक्रोंमें स्थित हैं।
~~~

अनुग्रहमूर्ति श्रीगणेश

(अनन्तश्रीविभूषित तमिळनाडुक्षेत्रस्थ श्रीकांचीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य
वरिष्ठस्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रजी महाराज)

विघ्नेश्वरकी प्रत्येक बातमें ही कोई-न-कोई बड़ा तत्त्व निहित है। उनके शरीरकी मुटाईके सदृश अन्य किसी देवताके शरीरकी मुटाई नहीं दीखती। हाथीका-सा मस्तक और लम्बा-स्थूल शरीर—यह गणेशजीकी शुभ आकृति है। उनका 'स्थूलकाय' नाम भी प्रख्यात है। बच्चे हृष्ट-पुष्ट रहें—इस भावनाके प्रतीक हैं भगवान् गणपति। वे तो विशालकाय हैं, किंतु उनका वाहन मूषक अत्यन्त लघुकाय है। अन्य देवताओंके वाहन बने हैं, पशु-पक्षी; जैसे—सिंह, अश्व, गरुड़, मयूर आदि। भगवान्ने किसीको भी वाहन बना रखा हो, उस वाहनसे भगवान्को नहीं, उनके सम्पर्कसे उस वाहनको ही महत्त्व प्राप्त होता है। महामहिम भगवान् लघु-से-लघुको भी अनुगृहीत करते हैं, यही भाव भगवान् गणपतिके मूषकको अपना वाहन बनानेसे प्रकट होता है। हाथीको अपना दाँत बहुत प्यारा होता है; वह उसे शुभ्र बनाये रखता है; परंतु हाथीके मस्तकवाले भगवान् गणपतिने क्या किया है? अपने एक दाँतको तोड़कर, उसके अग्रभागको तीक्ष्ण बनाकर उसके द्वारा उन्होंने महाभारत-लेखनका कार्य किया। विद्योपार्जनके लिये, धर्म और न्यायके लिये प्रिय-से-प्रिय वस्तुका त्याग करना चाहिये—यही तत्त्व या रहस्य इससे प्रकट होता है। भगवान्को लेखनी-जैसे साधनकी आवश्यकता नहीं, वे चाहें तो किसी भी वस्तुको साधन बनाकर उससे लिख सकते हैं।

श्रीगणपति प्रणव-स्वरूप हैं। सूँड़के साथ उनके मस्तकको और हाथके मोदक आदिको एक साथ देखें तो प्रणवका रूप मिलेगा। इस प्रणवका भ्रूमध्यमें ध्यान करते हुए तमिळ-प्रदेशीय भक्तोंने औवेनामक 'विनायक आहवाळ' की रचना की थी, जिसमें योगशास्त्र तथा योगपद्धतिका वर्णन है।

श्रीगणेश उमा-महेश्वरके पुत्र हैं। उनको 'भगवान्' कहनेकी अपेक्षा 'शिव-पुत्र' कहनेमें ही अधिक आनन्द आता है। किसी भी भगवद्विग्रहकी आराधना क्यों न करें, उसमें प्रथमतः हमें विघ्नेश्वर गणेशकी पूजा करनी ही होगी, तभी वह काम बिना विघ्नके सम्पन्न हो सकेगा। हमारे प्रदेशकी प्रत्येक गलीके कोनेमें विघ्नेश्वरके मन्दिर दीखते हैं। उन्हींकी प्रधान देवताके रूपमें आराधना करनेका नाम 'गाणपत्यत्वम्' है।

अपने लिये चक्रकी प्राप्तिके निमित्त महाविष्णुने विघ्नेश्वरके आगे 'दोर्भिकर्ण' करके आदर प्रदर्शित किया था। 'दोर्भिकर्ण' का अर्थ होता है—हाथोंसे कान पकड़ना।

विघ्नेश्वरके अनुग्रहसे जगत्के सारे कार्य निर्विघ्न सिद्ध होते हैं। हम भी उनके अनुग्रहके पात्र बनें।

~~o~~

'जोहत गजानन कौ आनन सदा रहैं!'

इंद्र रहैं ध्यावत मनावत मुनिंद्र रहैं,
गावत कबिंद्र गुन दिन-छनदा रहैं।
कहै 'रतनाकर' त्यौं सिद्धि चौंर ढारति औ,
आरति उतारति समृद्धि-प्रमदा रहैं॥
दै दै मुख मोदक बिनोद सौं लड़ावत ही,
मोद-मढ़ी कमला उमा औ बरदा रहैं।
चारु चतुरानन, पँचानन, षडानन हूँ,
जोहत गजानन कौ आनन सदा रहैं॥

—कविवर रत्नाकर

~~o~~

गणेश-पूजनकी महत्ता

[अनन्तश्रीविभूषित तमिळनाडुक्षेत्रस्थ श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठारूढ़ जगद्गुरु शंकराचार्य कनिष्ठस्वामी जयेन्द्रसरस्वती (पुदु पेरियवाल)-जी महाराज]

अनादिकालसे ही भारत सदैव आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न देश रहा है। अन्य देशोंसे भारतके वैशिष्ट्यका यही कारण है। आध्यात्मिक शक्ति-सम्पत्तिके लिये प्राचीन ऋषियोंने अनेक साधन आविष्कृत किये हैं। उनमेंसे निर्दिष्ट पर्वकालोंमें निर्दिष्ट देवताका पूजन और आराधन एक है। यह पूजा और आराधना व्यष्टि और समष्टिके भेदसे दो प्रकारकी होती है। हमारे पूर्वजोंका यह विचार नहीं था कि एक व्यक्ति ही पूर्वोक्त आध्यात्मिक शक्तिसे सम्पन्न हो; अपितु वे उस शक्तिका संचार समष्टिमें भी चाहते थे। बिना शक्तिके चाहे ऋषि हों या देव, कोई भी अपने मनोरथोंको पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं होते। आचार्य शंकरने कहा है कि '**शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्**'। कार्यकी सामान्य सिद्धिके लिये अन्य कारणोंके साथ 'प्रतिबन्धकसंसर्गाभाव' को भी शास्त्रकारोंने एक कारण माना है। यह प्रतिबन्धक अदृष्टरूप है अर्थात् यह मानवके दृष्टिगोचर नहीं होता। जो वस्तु दृष्टिपथमें नहीं आती, कार्य-सिद्धिके न होनेसे उसका अनुमान होता है। मानव अन्य सभी कारणोंके रहते हुए भी कार्यके सम्पन्न न होनेसे प्रतिबन्धक या विघ्नका अनुमान करता है। वह विघ्न या प्रतिबन्धक तबतक नहीं हट सकता, जबतक प्रबल अदृष्टशक्तिका अवलम्बन नहीं लिया जाय। विघ्न-बाधाओंके दूर करनेके लिये ही विघ्नेश्वरकी शरण ली जाती है। अतएव छोटे-मोटे—सभी कार्योंके आरम्भमें '**सुमुखश्चैकदन्तश्च**' आदि द्वादश नामोंका स्मरण करके कार्यारम्भ करते हैं। यों तो नामस्मरणका माहात्म्य छिपा नहीं है, फिर भी भागवत आदि ग्रन्थोंमें नामके स्मरणका विशेष माहात्म्य प्रतिपादित है। इन द्वादश नामोंके कीर्तनकी फलश्रुति इस प्रकार है—

द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

केवल नाम-स्मरण या संकीर्तनमात्रसे संतुष्ट न रहकर हमारे पूर्वजोंने श्रीगणेशके एक पूजाक्रमका भी प्रवर्तन किया है। इस क्रमके प्रवर्तनमें वैदिकमन्त्र, पौराणिक विधि एवं तन्त्रके कुछ अंशोंका भी अवलम्बन लिया गया है। इसीसे श्रौत, स्मार्त, पौराणिक या तान्त्रिक, जो भी कर्म हों, उनके प्रारम्भमें गणेशजीकी ही आराधना होती है और इस आराधनामें परस्पर कुछ वैलक्षण्य भी देखा जाता है। यह तो अन्य कर्मोंके आरम्भ करनेकी बात है; किंतु जब भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीका पर्व आता है, तब उसके प्रारम्भमें भी विघ्नहरणार्थ विघ्नेश-पूजा की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक अंग-पूजन है और एक प्रधान-पूजन। श्रीगणेशजीका अंगके रूपमें जो पूजन है, वह विघ्नहरणके निमित्त है और प्रधान पूजन सभी मनोरथोंकी सिद्धिके निमित्त है। एक ही देवताका कभी अंग और कभी प्रधानताके रूपसे पूजित होना अनुचित नहीं है। पारमार्थिक दृष्टिसे देवताओंमें उच्च-नीच भाव नहीं है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टिमें यह अपरिहार्य है।

भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजी-जैसी महान् आत्मा, जिन्होंने आसेतु-हिमाचल भारतमें भेदभावके बिना अद्वैत-सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा की, वे ही भगवत्पाद 'षण्मतप्रतिष्ठापनाचार्य' भी कहे जाते हैं। षण्मत हैं—गाणपत्य-सौर-शैव-वैष्णव-शाक्त और कौमार। इन मतोंमें कोई किसी मतका भी हो, उसे अन्य मतोंका भी आदर करना पड़ता है। इससे अद्वैतभावकी कोई हानि नहीं होती।

देश और प्रान्तके भेदसे पूजनका भेद उपलब्ध होनेपर भी भारतभरमें भाद्र-शुक्ल-चतुर्थी एवं माघ-कृष्ण-चतुर्थीके दिन श्रीगणेशोत्सव विशेषरूपसे प्रचलित है। श्रीविद्याक्रममें गणेश-पूजनको 'महागणपति-सपर्या' कहते हैं।

'महागणपति'-शब्द यहाँ एक विशेष अभिप्रायसे लिया जाता है। महागणपति मनुमें २८ अक्षर होते हैं। संख्याशास्त्रके अनुसार 'महागणपति'-शब्द भी २८ संख्याका अवबोधक है। कई देवतावाचक शब्द इस

प्रकार बने हुए हैं कि शब्दसे बोधित संख्यासे तत्तद्देवताके मनुके अक्षरोंकी संख्या मिल जाती है। यह गम्भीर विषय है, जो गुरु-परम्परासे ही गम्य है।

आज हम चमत्कारोंको देखकर नमस्कार करते हैं; किंतु नमस्कार करनेसे चमत्कार उत्पन्न होता है, यह बात हम भूल गये हैं। चमत्कार ही आध्यात्मिक शक्ति है। यह देवताओंके नमस्कार और पूजनसे ही सिद्ध होता है। अच्छे फलकी प्राप्तिके लिये अच्छे कर्मोंका अनुष्ठान न्यायसंगत है। यह कर्मभूमि है। बिना अच्छे कर्मके किये फलमात्रकी कामना उचित नहीं। विशेषत: देवता-प्रसादके लिये यथोचित कर्म करना पड़ता है। संसारमें रहते हुए संसार आवश्यक है। देशका गौरव अच्छे कर्म और अच्छे आचरण करनेवालोंपर अवलम्बित है। बड़ी-बड़ी इमारतों और अस्त्र-शस्त्रकी अभिवृद्धिसे देशका गौरव नहीं मापा जा सकता। सदाचार-सम्पत्ति, सत्कर्मानुष्ठान, सभीमें सुहृद्भाव या भातृभाव आदिसे ही देशका गौरव है। गणेश चतुर्थी जैसे महापर्वपर यदि हम सामूहिकरूपसे उत्सव मनायेंगे और अपनी भक्ति-श्रद्धांजलिको भगवान्‌के अर्पण करेंगे तो देशका आजका दुर्भिक्ष और उसकी अशान्ति सुनिश्चितरूपसे दूर हो जायगी। हम सिद्धिविनायक महागणपतिसे प्रार्थना करते हैं कि वे प्राणिमात्रको सुखी बनायें और उपस्थित अशान्तिको दूर करें तथा मंगलमूर्ति भगवान् श्रीगणेश प्रसन्न होकर सभीका कल्याण करें।

~~o~~

श्रीगणेश-पूजनसे जीवका कल्याण

(ब्रह्मलीन परमपूज्य जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान् श्रीगणेश हम सनातनधर्मी हिंदुओंके लिये परम सम्माननीय देवता हैं। वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। भगवान् श्रीगणेशको प्रसन्न किये बिना कल्याण सम्भव नहीं। भले ही आपके इष्टदेव भगवान् श्रीविष्णु अथवा भगवान् श्रीशंकर अथवा पराम्बा श्रीदुर्गा हैं, इन सभी देवी-देवताओंकी उपासनाकी निर्विघ्न सम्पन्नताके लिये विघ्न-विनाशक श्रीगणेशका स्मरण आवश्यक है। भगवान् श्रीगणेशकी यह बड़ी अद्भुत विशेषता है कि उनका स्मरण करते ही सब विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं और सब कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो जाते हैं। लोक-परलोकमें सर्वत्र सफलता पानेका एकमात्र उपाय है कि कार्य प्रारम्भ करनेसे पहले भगवान् श्रीगणेशका स्मरण-पूजन अवश्य करें। यदि सुख-शान्ति चाहते हो तो भगवान् श्रीगणेशकी शरण लो; तभी कल्याण होगा। (प्रेषक—श्रीरामशरणदासजी)

~~o~~

श्रीगणेशसे प्रार्थना

(श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीश्रीधरस्वामिकृत)

आनन्दरूप करुणाकर विश्वबन्धो सन्तापचन्द्र भववारिधिभद्रसेतो।
हे विघ्नमृत्युदलनामृतसौख्यसिन्धो श्रीमन् विनायक तवाङ्घ्रियुगं नताः स्मः॥
यस्मिन्न जीवजगदादिकमोहजालं यस्मिन्न जन्ममरणादिभयं समग्रम्।
यस्मिन् सुखैकघनभूम्नि न दुःखमीषत् तद् ब्रह्म मङ्गलपदं तव संश्रयामः॥

आनन्द-स्वरूप श्रीमन् विनायक! आप करुणाकी निधि एवं सम्पूर्ण जगत्‌के बन्धु (अकारण हितैषी) हैं, शोक-संतापका शमन करनेके लिये परमाह्लादक चन्द्रमा हैं, भवसागरसे पार होनेके लिये कल्याणकारी सेतु हैं तथा विघ्नरूपी मृत्युका नाश करनेके लिये अमृतमय सौख्यके सागर हैं; हम आपके युगल-चरणोंमें प्रणाम करते हैं।

जिसमें जीव-जगत् इत्यादि मोहजालका पूर्णत: अभाव है; जहाँ जन्म-मरण आदिका सारा भय सर्वथा है ही नहीं; जिस अद्वितीय आनन्दघन भूमामें किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं है, उस ब्रह्मस्वरूप आपके मंगलमय चरणकी हम शरण लेते हैं।

~~o~~

गणपति-तत्त्व

(अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

सर्वजगन्नियन्ता पूर्ण परमतत्त्व ही 'गणपति-तत्त्व' है; क्योंकि '**गणानां पतिः गणपतिः**।' 'गण'-शब्द-समूहका वाचक होता है—'**गणशब्दः समूहस्य वाचकः परिकीर्तितः**।' समूहोंका पालन करनेवाले परमात्माको 'गणपति' कहते हैं। देवादिकोंके पतिको भी 'गणपति' कहते हैं। अथवा '**महत्तत्त्वगणानां पतिः गणपतिः**।' अथवा '**निर्गुणसगुणब्रह्मगणानां पतिः गणपतिः**'। अथवा ''सर्वविध गणोंको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला जो परमात्मा है, वही 'गणपति' है।'' अभिप्राय यह कि '**आकाशस्तल्लिङ्गात्**' (ब्रह्मसूत्र १। १। २२)—इस न्यायसे जिसमें ब्रह्मतत्त्वके गुण जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय-लीलत्व, जगन्नियन्तृत्व, सर्वपालकत्वादि पाये जायँ, वही 'ब्रह्म' होता है। जैसे आकाशका जगदुत्पत्तिस्थिति-कारणत्व—'**इमानि भूतानि आकाशादेव जायन्ते**' (नृसिंहपूर्वतापिनी ३। ३) इस श्रुतिसे जाना जाता है; इसलिये वह भी आकाशपदवाच्य परमात्मा माना जाता है, वैसे ही '**ॐ नमस्ते गणपतये त्वमेव केवलं कर्तासि, त्वमेव केवलं धर्तासि, त्वमेव केवलं हर्तासि, त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि**' इत्यादि 'गणपत्यथर्वशीर्ष' (१) वचनद्वारा 'गणपति'-शब्दसे भी ब्रह्म ही निर्दिष्ट होता है।

अतीन्द्रिय, सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुतत्त्वका निर्णय केवल शास्त्रके ही आधारपर किया जा सकता है। जैसे शब्दकी अवगति श्रोतसे ही होती है, वैसे ही पूर्ण परमतत्त्वकी अवगति भी शास्त्रसे ही होती है। इसलिये '**तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**' (बृहदारण्यकोपनिषद् ३। ९। २६), '**शास्त्रयोनित्वात्**' (ब्रह्मसूत्र १। १। ३) इत्यादि वेदमन्त्र, ब्रह्मसूत्र एवं अनेकविध युक्तियोंसे भी यही सिद्ध होता है कि सर्वजगत्कारण ब्रह्म शास्त्रैकसमधिगम्य ही है। यदि शास्त्रातिरिक्त अन्य प्रमाणोंसे सूक्ष्मतम अतीन्द्रिय-तत्त्वकी अवगति हो जाय तो शास्त्रोंके अनुवादकमात्र रह जानेसे उनका नैरर्थक्य प्रसंग भी दुर्वार हो जायगा। इसलिये गणपति-तत्त्वकी अवगतिमें मुख्यतया शास्त्र ही प्रमाण हैं। शास्त्रानुसार यही जाना जाता है कि ''सर्वदृश्यजगत्का पति ही 'गणपति' है'' क्योंकि '**गण्यन्ते बुद्ध्यन्ते ते गणाः**'—इस व्युत्पत्तिसे सर्वदृश्यमात्र ही 'गण' है और इसका जो अधिष्ठान है, वही 'गणपति' है। कल्पितकी स्थिति एवं प्रवृत्ति अधिष्ठानसे ही होती है; अतः कल्पितका पति अधिष्ठान ही युक्त है। यद्यपि इसपर कहा जा सकता है कि 'तब तो भिन्न-भिन्न पुराणोंमें शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति आदि सभी ब्रह्मरूपसे ही विवक्षित हैं। जब कि ब्रह्मतत्त्व एक ही है तो उसके नाना रूप भिन्न-भिन्न पुराणोंमें कैसे पाये जाते हैं?' इसका उत्तर यही है कि 'एक ही परमतत्त्व भिन्न-भिन्न उपासकोंकी भिन्न-भिन्न अभिलषित सिद्धिके लिये अपनी अचिन्त्य लीला-शक्तिसे भिन्न-भिन्न गुणगणसम्पन्न होकर नाम-रूपवान् होकर अभिव्यक्त होता है। जैसे भामनीत्व, सर्वकामत्व, सर्वरसत्व, सत्संकल्पत्वादिगुणविशिष्ट ब्रह्मतत्त्वकी उपासना करनेसे उपासकोंको उपास्य-विशेषण गुण ही फलरूपमें प्राप्त होते हैं, ठीक वैसे ही प्राधान्येन विघ्नविनाशकत्वादि गुणविशिष्ट वही परमतत्त्व गणपतिरूपमें आविर्भूत होता है।'

यदि कहा जाय कि 'फिर इसी तरहसे बाह्याभिमत भिन्न-भिन्न देव भी ब्रह्मतत्त्व ही होंगे और फिर इतना ही क्यों, जब कि सारा प्रपंच ही ब्रह्मतत्त्व है, तब गणपति ही क्यों विशेषरूपसे ब्रह्म कहे जायँ ?' इसका उत्तर यही है कि 'यद्यपि अधिष्ठानरूपसे बाह्याभिमत देव तथा तत्तद्वस्तु सकल ब्रह्मरूप कहे जा सकते हैं, तथापि तत्तद्गुणगणविशिष्टरूपसे ब्रह्मतत्त्व तो केवल शास्त्रसे ही जाना जा सकता है, अर्थात् शास्त्र ही जिन-जिन नाम-रूप-गुणयुक्त तत्त्वोंको ब्रह्म बतलाते हैं, वे ही ब्रह्म हो सकते हैं; क्योंकि यह कहा जा चुका है कि अतीन्द्रिय वस्तुका ज्ञान करानेमें एकमात्र शास्त्र ही प्रमाण हो सकता है।' शास्त्र मुख्यरूपसे वेद और वेदानुसारी स्मृतीतिहासपुराणादि ही है, यह बात आगे पूर्णरूपसे विवेचित की जायगी। शास्त्र गणपतिको 'पूर्ण ब्रह्म' बतलाते हैं। पूर्वोक्त '**गणपत्यथर्वश्रुति**' (१) में गणपतिको '**त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि**'—ऐसा कहा गया है। उसका अभिप्राय यह है कि गणपतिके स्वरूपमें नर तथा गज—इन दोनोंका ही सामंजस्य पाया जाता है। यह

मानो प्रत्यक्ष ही परस्पर-विरुद्ध-से प्रतीयमान 'तत्-पदार्थ' तथा 'त्वं-पदार्थ'के अभेदको सूचित करता है; क्योंकि 'तत्-पदार्थ' सर्वजगत्कारण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् 'परमात्मा' होता है एवं 'त्वं-पदार्थ' अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् 'जीव' होता है। उन दोनोंका ऐक्य यद्यपि आपातत: विरुद्ध है, तथापि लक्षणासे विरुद्धांशद्वयका त्याग कर एकता सुसम्पन्न होती है। इसी प्रकार लोकमें यद्यपि नर और गजका ऐक्य असम्मत है, तथापि लक्षणासे विरुद्ध-धर्माश्रय भगवान्‌में वह सामञ्जस्य है। अथवा जैसे तत्पद-लक्ष्यार्थ सर्वोपाधिनिष्कृष्ट '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**।' (तैत्ति० उप० २।१।१) एवं लक्षणालक्षित ब्रह्म है, वैसे ही 'त्वं-पदार्थ' जगन्मय सोपाधिक ब्रह्म है। इन दोनोंका अखण्डैकरस, 'असि-पदार्थ'में सामंजस्य है; इसी तरह नर और गज-स्वरूपका सामंजस्य गणपति-स्वरूपमें है। 'त्वं-पदार्थ' नर-स्वरूप है तथा 'तत्-पदार्थ' गज-स्वरूप एवं अखण्डैकरस गणपतिरूप 'असि-पदार्थ'में इन दोनोंका सामंजस्य है।

शास्त्रमें नर-पदसे प्रणवात्मक सोपाधिक ब्रह्म कहा गया है—'**नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः**।' 'गज'-शब्दकी व्याख्या शास्त्रोंमें इस प्रकार की गयी है—''**समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्ति इति 'गः' यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बतया प्रणवात्मकं जगज्जायते इति 'जः'**—समाधिसे योगीलोग जिस परमतत्त्वको प्राप्त करते हैं, वह 'ग' है और जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है,वैसे ही कार्य-कारणस्वरूप प्रणवात्मक प्रपञ्च जिससे उत्पन्न होता है, उसे 'ज' कहते हैं।'' '**जन्माद्यस्य यतः**।' (ब्रह्मसू० १।१।२), '**यस्मादोंकारसम्भूतिर्यतो वेदो यतो जगत्**।'* इत्यादि वचन भी उसके पोषक हैं। सोपाधिक 'त्वं'-पदार्थात्मक नर गणेशका पादादिकण्ठपर्यन्त देह है। यह सोपाधिक होनेसे निरुपाधिकापेक्षया निकृष्ट है, अतएव अधोभूतांग है। निरुपाधि सर्वोत्कृष्ट 'तत्'-पदार्थमय गणेशजीका कण्ठादिमस्तकपर्यन्त गज-स्वरूप है; क्योंकि वह निरुपाधिक होनेसे सर्वोत्कृष्ट है। सम्पूर्ण पादादि-मस्तकपर्यन्त गणेशजीका देह 'असि-पदार्थ' अखण्डैकरस है।

यह गणेश एकदन्त है। 'एक'-शब्द 'माया'का बोधक है और 'दन्त' शब्द 'मायिक' का बोधक है। मुद्गलपुराणमें कहा गया है—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते॥

अर्थात् गणेशजीमें माया और मायिकका योग होनेसे वे 'एकदन्त' कहलाते हैं। गणेशजी वक्रतुण्ड भी हैं—'**वक्रम् आत्मरूपं मुखं यस्य**।' 'वक्र' टेढ़ेको कहते हैं, आत्मस्वरूप टेढ़ा है; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् तो मनोवचनोंका गोचर है, किंतु आत्मतत्त्व उनका—मन-वाणीका अविषय है—'**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**।' (तैत्ति० उप० २।४) इत्यादि वचन इसके प्रमाण हैं और भी—

कण्ठाधो माययायुक्तं मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं येन विघ्नेशस्तेनायं वक्रतुण्डकः॥

गणेशजी 'चतुर्भुज'भी हैं; क्योंकि वे देवता, नर, असुर और नाग—इन चारोंके स्थापन करनेवाले हैं एवं चतुर्वर्ग-चतुर्वेदादिके भी स्थापक हैं। वे भक्तानुग्रहार्थ अपने चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, वर-मुद्रा और अभय-मुद्रा धारण करते हैं। भक्तोंके मोहरूपी शत्रुको फँसानेके लिये 'पाश' तथा सर्वजगन्नियन्तृरूप ब्रह्म 'अंकुश' है। दुष्टोंका नाश करनेवाला ब्रह्म 'दन्त' और सर्वकामनाओंको पूर्ण करनेवाला ब्रह्म 'वर' है। तथा च—

स्वर्गेषु देवताश्चायं पृथ्व्यां नरांस्तथाऽतले।
असुरान्नागमुख्यांश्च स्थापयिष्यति बालकः॥
तत्त्वानि चालयन् विप्रास्तस्मान्नाम्ना चतुर्भुजः।
चतुर्णां विविधानां च स्थापकोऽयं प्रकीर्तितः॥

भगवान् गणपतिका वाहन 'मूषक' सर्वान्तर्यामी, सर्वप्राणियोंके हृदयरूप बिलमें रहनेवाला, सर्वजन्तुओंके भोगोंको भोगनेवाला ही है। वह चोर भी है; क्योंकि जन्तुओंके अज्ञात सर्वस्वको हरनेवाला है। उसको कोई जानता नहीं; क्योंकि मायासे गूढ़रूप अन्तर्यामी ही समस्त भोगोंको भोगता है। इसीलिये वह '**भोक्तारं सर्वतपसाम्**' कहा गया है। '**मुष स्तेये**'—इस धातुसे मूषक-शब्द निष्पन्न होता है। मूषक जैसे प्राणियोंकी सर्वभोग्य वस्तुओंको चुराकर भी पुण्य-पापोंसे विवर्जित

* 'जिससे इस जगत्‌के जन्म आदि होते हैं।' 'जिससे ओंकारका प्रादुर्भाव होता है' तथा 'जिससे वेद एवं जगत्‌का प्राकट्य हुआ है।'

ही रहता है, वैसे ही मायागूढ़ सर्वान्तर्यामी भी सब भोगोंको भोगता हुआ पुण्य-पापोंसे विवर्जित है। वह सर्वान्तर्यामी गणपतिकी सेवाके लिये मूषक रूप धारणकर उनका वाहन बना है—

मूषकं वाहनं चास्य पश्यन्ति वाहनं परम्।
तेन मूषकवाहोऽयं वेदेषु कथितोऽभवत्॥
मुष् स्तेये तथा धातुर्ज्ञातव्यः स्तेयब्रह्मधृक।
नामरूपात्मकं सर्वं तत्रासद् ब्रह्म वर्तते॥
भोगेषु भोगभोक्ता च ब्रह्माकारेण वर्तते।
अहङ्कारयुतास्तं वै न जानन्ति विमोहिताः॥
ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः।
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः॥

एवमेव भगवान् श्रीगणेश 'लम्बोदर' हैं; क्योंकि उनके उदरमें ही समस्त प्रपंच प्रतिष्ठित हैं और वे स्वयं किसीके उदरमें नहीं हैं तथा च—

'तस्योदरात् समुत्पन्नं नाना विश्वं न संशयः।'

इसी प्रकार भगवान् गणेश 'शूर्पकर्ण' हैं; क्योंकि वे योगीन्द्र-मुखसे वर्ण्यमान तथा उत्तम जिज्ञासुओंसे श्रूयमाण तथा हृदयंगत होकर, शूर्पके समान मायामय पाप-पुण्यरूप रजको दूर करके शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति सम्पादित करवा देते हैं—

रजोयुक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च।
शूर्पं सर्वनराणां वै योग्यं भोजनकाम्यया॥
तथा मायाविकारेण युतं ब्रह्म न लभ्यते।
त्यक्तोपासनकं तस्य शूर्पकर्णस्य सुन्दरि॥
शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः॥

इसी प्रकार भगवान् गणेश 'ज्येष्ठराज' हैं। सर्वज्येष्ठों (बड़ों)-के अधिपति या सर्वज्येष्ठ जो ब्रह्मा आदि हैं, उनके बीचमें वे विराजमान हैं। वे ही गणेशजी शिव-पार्वतीके तपसे प्रसन्न होकर पार्वती-पुत्ररूपमें भी प्रादुर्भूत होते हैं।

श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र जैसे दशरथ एवं वसुदेवके पुत्ररूपसे प्रादुर्भूत होकर भी उनसे अपकृष्ट नहीं हैं, वैसे ही भगवान् श्रीगणेश शिव-पार्वतीसे उत्पन्न होकर भी उनसे अपकृष्ट नहीं हैं; अतएव उनकी शिव-विवाहमें विद्यमानता और पूज्यता होना भी कोई आश्चर्य नहीं है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में कहा गया है कि 'पार्वतीके तपसे गोलोकनिवासी पूर्ण परब्रह्म श्रीकृष्ण परमात्मा ही गणपतिरूपसे प्रादुर्भूत हुए।' अतः गणपति, श्रीकृष्ण, शिव आदि सब एक ही तत्त्व हैं। इसी गणपति-तत्त्वको सूचित करनेवाला 'ऋग्वेद' का यह मन्त्र है—

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
(२। २३। १)

इससे मिलता-जुलता ही गणपतिका एक स्तावक मन्त्र 'यजुर्वेद' में भी है—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे०' (यजु० २३। १९)

—इत्यादि। ऋग्वेदके मन्त्रका सर्वथा गणपति-स्तुतिमें ही तात्पर्य है। यजुर्वेदगत मन्त्रका विनियोग यद्यपि अश्व-स्तवनमें है, तथापि सूक्ष्मदृष्ट्या केवल अश्वमें मन्त्रोक्त गुण अनुपपन्न होनेसे अश्वमुखेन गणपतिकी ही स्तुति इस मन्त्रसे परिलक्षित होती है। मन्त्रार्थ इस तरह है—

'हे वसो! वसति सर्वेषु भूतेषु व्यापकत्वादिति, तत्सम्बुद्धौ। गणानां महदादीनां ब्रह्मादीनाम्, अन्येषां वा समूहानाम्। गणरूपेण साक्षिरूपेण, ज्ञेयाधिष्ठानरूपेण वा। 'गण' संख्याने इत्यस्माद् गण्यते बुद्ध्यते, योगिभिः साक्षात्क्रियते यः स गणस्तद् रूपेण वा पालकम्, एतादृशं त्वां आवाहयामहे। तथा प्रियाणां वल्लभानां प्रियपतिम्, प्रियस्य पालकम्। तच्छेषतयैव सर्वस्य प्रेमास्पदत्वात्। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवतीति श्रुतेः।' निधीनां सुखनिधीनां सुखनिधेः पालकं त्वां हवामहे आवाहयामहे। मदन्तःकरणे प्रादुर्भूय स्वस्वरूपानन्दसमर्पणेन ममापि पतिर्भूयाः। पुनः हे देव! अहं ते गर्भधम्, अजायां प्रकृतौ चैतन्यप्रति बिम्बात्मकं गर्भं दधातीति गर्भधं बिम्बात्मकं चैतन्यम्, (तथा च—मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहमिति भगवत्स्मरणात्) आ-आकृष्य योगबलेन, अजानि स्वहृदि स्थाप्यानि, त्वं च मम हृदि अजासि-क्षिपसि स्वस्वरूपं स्थापयसि।'

अधिकारी उपासक गणपतिकी इस प्रकार प्रार्थना करता है—'हे सर्वान्तर्यामिन्! देवादिसमूहको अधिष्ठान तथा साक्षीरूपसे, प्रियोंको प्रियरूपसे, लौकिक प्रेमास्पदोंको परम प्रेमास्पदस्वरूपसे, लौकिक सुख-राशियोंको अलौकिक परमानन्दसे पालन करनेवाले अर्थात् अपने अंशसे

सम्पादन करनेवाले आपका मैं पतिरूपसे आवाहन करता हूँ। आप भी स्वरूपानन्द-समर्पणद्वारा मेरा पालन करें। जगदुत्पादनार्थ प्रकृतिरूप योनिमें स्वकीय चैतन्यप्रतिबिम्बात्मकरूप गर्भको धारण करनेवाले बिम्बचैतन्यरूपको मैं अपने हृदयमें विशुद्धान्तःकरणसे धारण करूँ, एतदनुकूल अनुग्रह करें।'

इस तरह मन्त्र-प्रतिपाद्य गणपतितत्त्व सर्वविघ्नोंका विनाशक है। अतएव 'गणपत्यथर्वशीर्ष'के दसवें मन्त्रमें '**विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः**' ऐसा आया है। सायणाचार्यने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है—'**समयकालात्मकभयहारिणे अमृतात्मकप्रदत्वात्**' अर्थात् गणेशजी कालात्मक भयको हरण करनेवाले हैं; क्योंकि वे अमृतात्मकपदप्रद हैं।

इस प्रसंगपर 'स्कन्द' तथा 'मौद्गलपुराण'में विनायक-माहात्म्य-विषयक एक गाथा प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है—'एक बार राजा अभिनन्दनने इन्द्रभागशून्य एक यज्ञ आरम्भ किया। यह सब सुनकर इन्द्र अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने कालको बुलाकर यज्ञ-भंग करनेकी आज्ञा दी। कालपुरुष यज्ञको भंग करनेके लिये विघ्नासुरके रूपमें प्रादुर्भूत हुआ। जन्म-मृत्युमय जगत् कालके अधीन है। काल तीनों लोकोंको भ्रमण कराता है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष कालको जीतकर अमृतमय हो जाता है। ब्रह्मज्ञानका साधन वैदिक-स्मार्त सत्कर्म है—'**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।**' (श्रीमद्भगवद्गीता १८।४६)—'सत्कर्मसे विशुद्धान्तःकरण पुरुषको भगवत्तत्त्व-साक्षात्कार होता है' और उससे ही कालका पराजय होता है, यह जानकर काल उस सत्कर्मके नाशके लिये विघ्नरूप होकर प्रादुर्भूत हुआ। सत्कर्महीन जगत् सदा ही कालके अधीन रहता है। इसीलिये कालस्वरूप विघ्नासुर राजा अभिनन्दनको मारकर जहाँ-तहाँ दृश्यादृश्यरूपसे सत्कर्मका खण्डन करने लगा। इससे वसिष्ठादि मुनि भ्रान्त होकर ब्रह्माकी शरणमें गये और उनके निर्देशपर उन लोगोंने भगवान् गणपतिकी स्तुति की; क्योंकि गणपतिको छोड़कर किसी भी देवतामें कालनाशकी सामर्थ्य न थी। गणेशजी असाधारण विघ्नविनाशकत्व-गुणसे सम्पन्न हैं, यह बात श्रुति, स्मृति, शिष्टाचार एवं शिष्ट साधुवाक्यों एवं श्रुतार्थापत्तिसे भी अवगत है। विघ्नासुर भी श्रीगणेशजीसे पराजित होकर उनकी ही शरणमें गया और उनका आज्ञावशवर्ती हुआ। अतः गणेशजीका नाम 'विघ्नराज' हुआ। उसी समयसे गणेश-पूजन-स्मरणरहित जो भी सत्कर्म किया जाता है, उसमें विघ्नका प्रादुर्भाव होने लगता है। तबसे विघ्न भगवान् श्रीगणेशजीके ही आश्रित रहने लगा। विघ्न भी कालरूप होनेसे भगवत्स्वरूप है।''**विशेषेण जगत्सामर्थ्यं हन्तीति विघ्नः**—ब्रह्मादिकोंमें भी जगत्सर्जनादि-सामर्थ्यको हनन करनेवालेको 'विघ्न' कहते हैं'', अर्थात् ब्रह्मादि समस्त कार्य-ब्रह्म विघ्न-पराभूत होनेके कारण स्वेच्छाचारी नहीं हो सकते; किंतु गणेशके अनुग्रहसे ही विघ्नरहित होकर कार्यकरणक्षम होते हैं। 'विघ्न'और 'विनायक'—ये दोनों ही भगवान् होनेके कारण स्तुत्य हैं। अतएव '**भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम्**' ऐसा पुण्याहवाचनमें कहनेकी, प्रार्थना करनेकी परिपाटी है। 'विघ्न' गणेशके अतिरिक्त और किसीके वशमें नहीं हैं, जैसा कि 'योगवासिष्ठ' में शाप देनेके लिये उद्यत भृगुके प्रति विघ्नरूप कालके कथनका उल्लेख प्राप्त है—

मा तपः क्षपयाबुद्धे कल्पकालमहानलैः।
यो न दग्धोऽस्मि मे तस्य किं त्वं शापेन धक्ष्यसि॥
संसारावलयो ग्रस्ता निगीर्णा रुद्रकोटयः।

(स्थिति प्र० १०। २६-२७)

इत्यादि। गणेश-स्मरणहीन सभी सत्कर्मोंमें कालरूप विघ्नका प्रादुर्भाव होना अनिवार्य है। अतः विघ्नोंके निवारणके लिये गणेश-स्मरण सभी सत्कर्मोंमें आवश्यक है।

यदि यह कहा जाय कि 'ओंकार ही सर्वमंगलमय है, वेदोक्त समस्त कर्म-उपासनाओंके आदिमें ओंकारका ही स्मरण किया जाता है, इसलिये गणेश-स्मरण निरर्थक है' तो यह ठीक नहीं; क्योंकि ओंकार भी सगुण-स्वरूप ही है। 'मौद्गलपुराण' में भी कहा है—'**गणेशस्यादिपूजनं चतुर्विधं चतुर्मूर्तिधारकत्वात्।**' ब्रह्माके चारों मुखोंसे अष्टलक्ष श्लोकात्मक पुराणोंका प्रादुर्भाव हुआ। उसके पश्चात् द्वापरान्तमें व्यासदेवने कलियुगीय मन्दमति प्राणियोंके बोधार्थ अष्टादश पुराणोपपुराणोंका निर्माण किया। उनमेंसे पहला 'ब्राह्मपुराण' है। उसमें निर्गुण एवं बुद्धितत्त्वसे परे श्रीगणेश-तत्त्वका वर्णन है। इसी प्रकार इनमें अन्तिम 'ब्रह्माण्डपुराण' है। उसमें

सगुण गणेशका माहात्म्य प्रतिपादित है; क्योंकि वह विशेषरूपसे प्रणवात्मक प्रपंचका प्रतिपादन करनेवाला है। इसी प्रकार उपपुराणोंमें भी पहला 'गणेशपुराण' है, जो सगुण-निर्गुण गणेशकी एकताका प्रतिपादन करनेवाला है और गजवदनादि मूर्तिधर गणेशका भी प्रतिपादन करता है। यहाँपर जो यह कहा जाता है कि उपपुराण अपकृष्ट हैं, यह ठीक नहीं; क्योंकि जैसे उपेन्द्र इन्द्रसे अपकृष्ट नहीं, वैसे ही पुराणापेक्षया उपपुराण भी अपकृष्ट नहीं हैं। उपपुराणोंमें 'मौद्‌गल' अन्तिम उपपुराण है। इसमें योगमय गणेशका माहात्म्य प्रतिपादित है। इस तरह वेद, पुराण, उपपुराण आदिकोंके आदि, मध्य और अन्तमें भी सर्वत्र श्रीगणेश-तत्त्वका ही प्रतिपादन हुआ है। इतना ही क्यों, ब्रह्मा, विष्णु आदि भी गणेशांश होनेसे ही शास्त्र-प्रतिपाद्य हैं। कोई व्यक्ति बुद्धिस्थ चिदात्मकरूप गणेशका स्मरण करके सत्कर्म करते हैं, कोई प्रणवस्मरणपूर्वक सत्कर्म करते हैं, कोई गजवदन, अद्वयमूर्ति गणेशका स्मरण करते हैं एवं कोई योगमय गणपतिका स्मरण करते हैं। इस तरह सभी शुभ कार्योंके आरम्भमें येन-केनापि रूपेण गणेश-स्मरण देखा जाता है।

कोई कहते हैं कि प्राण-प्रयाण समय एवं पितृ-यज्ञादिमें गणेश-स्मरण प्रसिद्ध नहीं है; किंतु यह कथन भी ठीक नहीं है; क्योंकि गण-स्थित गणेश-पद प्रत्यक्ष ही पितृ-मुक्तिप्रदिष्ट है। वेदोक्त पितृयज्ञारम्भमें गणेश-पूजनका निषेध नहीं है। अतः वहाँ भी गणेश-पूजन होता है और होना युक्त है, इसीलिये श्रुति गणाधिपतिको ज्येष्ठराज-पदसे सम्बोधित करती है।

'गणेशपुराण' के १। ४५। १०-११ में त्रिपुर-वधके समय शिवजीने कहा है—

शैवैस्त्वदीयैरथ वैष्णवैश्च शाक्तैश्च सौरैरथ सर्वकार्ये।
शुभाशुभे लौकिकवैदिके च त्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्॥

'गणेश-गीता' (६। १६)-में मरणकालमें भी गणेश-स्मरण कहा गया है—

यः स्मृत्वा त्यजति प्राणमन्ते मां श्रद्धयान्वितः।
स यात्यपुनरावृत्तिं प्रसादान्मम भूभुज॥

'गणेशोत्तरतापनी' (३)-में भी कहा है—'**ॐ गणेशो वै ब्रह्म तद् विद्यात्। यदिदं किं च सर्वं भूतं भव्यं जायमानं च तत् सर्वमित्याचक्षते।**'

इस तरह यह सिद्ध हुआ कि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही निर्गुण एवं विघ्नविनाशकत्वादिगुणगणविशिष्ट गजवदनादि-अवयव-मूर्तिधर रूपमें श्रीगणेश हैं।

क्या गणेशजी अनार्य देवता हैं?

आजकल कुछ ग्रन्थचुम्बक पण्डितम्मन्य पाश्चात्योंके शिष्य बनकर बाह्य कुसंस्कारदूषितान्तःकरण सुधारक श्रीगणेश-तत्त्वपर ऊटपटाँग विचार करनेका साहस करने लगे हैं। ये भला अपने उन पाश्चात्य गुरुओंके विपरीत कितना विचार कर सकते हैं? उनका कहना है कि 'पहले गणेशजी आर्योंके देवता नहीं थे; किंतु एतद्देशीय अनार्योंको पराजित करनेपर उनके सान्त्वनार्थ गणेशको आर्योंने अपने देवताओंमें मिला लिया है।' इस ढंगके विद्वान् कुछ पुराण, कुछ वेदमन्त्र, कुछ चौपाइयोंका संग्रह कर अपनी अनभिज्ञताका परिचय देते हुए ऐसे गणपतिस्वरूपका वर्णन करते हैं कि उससे शास्त्रीय गणपतिस्वरूप ही समाच्छन्न हो जाता है। यद्यपि थोड़ा-सा भी तत्त्वज्ञान रखनेवाले पुरुषके लिये ऐसे असम्बद्धालाप उपेक्ष्य ही हैं, तथापि गतानुगतिक कतिपय मूर्खोंको तो उनसे व्यामोह होना स्वाभाविक है। अतः यहाँ इसपर भी थोड़ा-सा विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। पहली बात यह है कि यदि कोई इन महानुभावोंसे पूछे कि 'गणेश-नामका कोई तत्त्व है, यह आपको कैसे ज्ञात हुआ? पुराणादि शास्त्रोंके अध्ययनद्वारा या यत्र-तत्र गणपतिकी मूर्तियोंको देखकर?' यदि कहा जाय कि 'शास्त्रोंके अध्ययनादिद्वारा' तो फिर गणेशको अनार्योंके देव कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि शास्त्रोंमें तो वे ब्रह्मादिके पूज्य बतलाये गये हैं। रही बात मूर्तियोंको देखकर जाननेकी तो फिर प्रश्न होगा कि 'ये मूर्तियाँ किस आधारपर बनीं। वे तो शास्त्रप्रोक्त ध्यानानुकूल ही बनी हैं। यदि इसे उचित न मानें तो गणपतिको देवता या पूज्य समझना केवल मूर्खताकी ही बात होगी; क्योंकि केवल अजायबघर-जैसी चीजोंमें रखी काष्ठमृत्पाषाणादिको भी कोई अभिज्ञ-जन पूज्य कैसे समझेगा?' यदि कहा जाय कि 'अदृश्य शक्ति-विशेषका उस मूर्तिमें आवाहन कर उसका पूजन किया गया है, तो भी वह विशिष्ट देवशक्ति किस प्रमाणसे पहचानी या आहूत की गयी है?' इसके उत्तरमें यदि यह कहा जाय कि "यह बात

शास्त्रोंसे ही जानी गयी' तो फिर शास्त्रोंने तो गणेश तत्त्वको अनादि ईश्वर ही कहा है। फिर वे अनार्योंके देवता कैसे हुए?'

एक दूसरी विलक्षण बात यह है कि शास्त्रोंके ही आधारपर गणेशको अनार्याभिमत देव कहना और आर्योंका कहीं बाहरसे यहाँ आना मानना, भारतवर्षमें प्राथमिक अनार्योंका निवास और अनार्योंके देवता गणेशका आर्योंद्वारा ग्रहण आदि मानना—ये सब बे-सिर-पैरकी बातें भला अनार्य-शिष्योंके अतिरिक्त और किनको सूझ सकती हैं? भला कोई भी सहृदय पुरुष वेद-पुराणादि शास्त्रोंको मानता हुआ भी क्या गणेशका अनार्य-देवत्व स्वीकार कर सकता है? वस्तुतः यह सब दूषित संस्कारों एवं आचारशून्य मनमाने शास्त्रोंको बिना सोचे-समझे ही पढ़ने एवं ऊटपटाँग अनुसंधान करनेका कुफल है। इसीलिये ज्ञानलवदुर्विदग्धोंको अनभिज्ञोंसे भी अधिक शोचनीय कहा गया है—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति॥

सच्छास्त्रके अध्ययनका भी यही नियम है कि आचार्य-परम्परासे शास्त्रीय गूढ़ रहस्योंको समझना चाहिये और परस्पर-विरोधी प्रतीत होनेवाले वाक्योंको शंका जिज्ञासादि-समन्वयद्वारा करना या ठीक-ठीक अन्य पुराण-शास्त्रों आदिद्वारा समझना चाहिये। ऐसा न होनेसे ही श्रीगणपतिकी भिन्न-भिन्न लीलाएँ प्राणियोंको मोहित करती हैं। जैसे—उनका नित्यत्व, पार्वती-पुत्रत्व, शनिके दृष्टिपातसे शिरश्छेद और गजवदनका पुनः संधान आदि।

ये सब बातें केवल गणपतिके ही विषयमें नहीं, अपितु श्रीरामचन्द्र आदिकोंके विषयमें भी हैं। जैसे—अजत्व और जायमानत्व, नित्यमुक्तत्व और सीता-विरहमें रोदनादि। इसीलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है कि *'राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥'* (मानस २। १२६। ३$\frac{1}{2}$) वस्तुतः जिन्होंने भगवान्‌की अघटनघटनापटीयसी मायाका महत्त्व नहीं समझा, उन्हें अचिन्त्यमहामहिम वैभवशाली भगवान्‌की निर्गुण तथा सगुण लीलाओंका ज्ञान कैसे हो? **'अजायमानो बहुधा विजायते।'** (यजुर्वेद ३१। १९) **'मत्स्थानि सर्वभूतानि'** (गीता ९। ४), **'न च मत्स्थानि भूतानि'** (गीता ९। ५) इत्यादिका अभिप्राय कैसे विदित हो? सगुण लीला तो निर्गुणकी अपेक्षा भी भावुकोंकी दृष्टिमें दुरवग्राह्य है—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

(मानस ७। ७३ख)

इसीलिये गोस्वामीजीने कहा है कि अनादि देवता समझकर गणेशादिके रूप-भेद, शिवपूज्यता आदि अंशोंमें संशय न करें—

'कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥'

(मानस १। १००)

फिर जब बड़े-से-बड़े तार्किकोंका तर्क भौतिक भावोंमें ही कुण्ठित हो जाता है, तब व्याप्ति या हेतु तथा हेत्वाभासके ज्ञानसे शून्य आधुनिक विद्वानोंके देवता या ईश्वरके विषयमें तर्क करनेका क्या अर्थ है? वे महानुभाव यदि तर्कके स्वरूपका भी ठीक-ठीक निरूपण कर सकें तो उन्हें यह पता लग सकेगा कि धर्म तथा देवतापर यह तर्क भी कुछ काम कर सकता है या नहीं। भला यदि इनसे कोई पूछे कि 'यह आपने कैसे अनुमान किया कि गणेश अनार्योंके देवता हैं और आदि भारतवासी अनार्य ही हैं? क्या कोई अव्यभिचरित हेतु इसका आपके पास है?' तो लोग सिवा अटकलपच्चू पाश्चात्त्यस्वार्थकल्पित, मिथ्या मनगढ़ंत इतिहासके क्या आधार बतला सकते हैं। यह इतिहास तो उनकी यहाँ सदा बने रहनेकी राजनीतिक चालमात्र थी, जो चल न पायी। उसे कोई प्रमाण मान ले और प्राचीन-आध्यात्मिक गम्भीर भावपूर्ण हमारे सच्चे इतिहासको न माने, इससे बढ़कर अंधेरखाता या उन्मार्ग क्या होगा?

अस्तु, आस्तिकोंको पूर्वोक्त प्रमाणोंसे निर्धारित गणपति-तत्त्वका श्रद्धासहित ज्ञानार्जन कर समस्त कर्मोंके प्रारम्भमें उनका आराधन अवश्य करना चाहिये। पारलौकिक तत्त्व-निर्धारणमें एकमात्र शास्त्र ही आदरणीय हैं। इसीलिये श्रीभगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(१६। २४)

श्रीगणेश, शिव, राम, कृष्ण आदि रूपोंमें एक ही परमात्मा उपास्य है

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

निराकार ब्रह्म भक्तोंके प्रेमवश उनके उद्धारार्थ साकाररूपसे प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। उनके साकार रूपोंका वर्णन मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है; क्योंकि वे अनन्त हैं। भक्त जिस रूपसे उन्हें देखना चाहता है, वे उसी रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसे दर्शन देते हैं। भगवान्‌का साकार रूप धारण करना भगवान्‌के अधीन नहीं, प्रेमी भक्तोंके अधीन है। अर्जुनने पहले विश्वरूप-दर्शनकी इच्छा प्रकट की, फिर चतुर्भुजकी और तदनन्तर द्विभुजकी। भक्तभावन भगवान् कृष्णने अर्जुनको उसके इच्छानुसार थोड़ी ही देरमें तीनों रूपोंसे दर्शन दे दिये और उसे निराकारका भाव भी भलीभाँति समझा दिया। इसी प्रकार जो भक्त परमात्माके जिस स्वरूपकी उपासना करता है, उसको उसी रूपके दर्शन हो सकते हैं।

अतएव उपासनाके स्वरूपमें परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं। भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, नृसिंह, देवी, गणेश आदि किसी भी रूपकी उपासना की जाय, सब उसीकी होती है। भजनमें कुछ भी बदलनेकी जरूरत नहीं है। बदलनेकी जरूरत यदि है, तो परमात्मामें अल्पत्व बुद्धिकी। भक्तको चाहिये, वह अपने इष्टदेवकी उपासना करता हुआ सदा समझता रहे कि मैं जिस परमात्माकी उपासना करता हूँ, वे ही परमेश्वर निराकार रूपसे चराचरमें व्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, सब कुछ उन्हींकी दृष्टिमें हो रहा है। वे सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वसमर्थ, सर्वसाक्षी, सत्-चित्-आनन्दघन मेरे इष्टदेव परमात्मा ही अपनी लीलासे भक्तोंके उद्धारके लिये उनके इच्छानुसार भिन्न-भिन्न स्वरूप धारणकर अनेक लीलाएँ करते हैं।

श्रीविष्णुपुराणमें श्रीविष्णुको ही सर्वोपरि बतलाया गया है और कहा गया है कि 'संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय श्रीविष्णुसे ही होते हैं; वे ही साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं; वे ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी और सर्वश्रेष्ठ हैं; उनसे बढ़कर और कोई नहीं है।' इसी प्रकार शिवपुराणमें श्रीशिवको, देवीभागवतमें श्रीदेवीको, गणेशपुराणमें श्रीगणेशको तथा सौरपुराणमें श्रीसूर्यको ही सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, पूर्णब्रह्म परमात्मा कहा गया है। इसी प्रकार अन्य सब पुराणोंमें भी वर्णन आता है। इससे एक-दूसरेमें परस्पर विरोध, एक-दूसरेकी अपेक्षा परस्पर श्रेष्ठता तथा उसकी महिमाकी अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। इसका भाव यह है कि जैसे सती-शिरोमणि पार्वतीके लिये केवल एक श्रीशिव ही सर्वोपरि हैं, उनसे बढ़कर और कोई नहीं और भगवती लक्ष्मीके लिये केवल एक श्रीविष्णु ही सबसे बढ़कर हैं, इसी तरह सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्माको लक्ष्यमें रखकर सभी उपासकोंको परमात्माकी शीघ्र प्राप्ति हो जाय, इस दृष्टिसे महर्षि वेदव्यासजीने एक-एक देवताको प्रधानता देकर तत्तत्पुराणोंकी रचना की है। प्रत्येक पुराणके अधिष्ठाता देवताके नाम-रूप परमात्माके ही नाम-रूप हैं—यह भलीभाँति समझ लेनेपर उपर्युक्त शंका रह नहीं सकती। किसी भी देवताका उपासक क्यों न हो, उस उपासकको पूर्णब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप सर्वोपरि फल मिलना चाहिये—यह पुराण-रचयिताका उद्देश्य बहुत ही उत्तम और तात्त्विक है। प्रत्येक पुराणमें उसमें प्रतिपाद्य स्वरूपको सर्वोपरि बतलानेका प्रयोजन दूसरेकी निन्दासे नहीं है, किंतु उसकी प्रशंसामें है और उसकी प्रशंसा उस उपासकको उस पुराण और देवतामें श्रद्धापूर्वक एकनिष्ठ भक्ति करानेके उद्देश्यसे ही है और यह उचित भी है। इस प्रकार होनेसे ही साधकका अनुष्ठान सांगोपांग पूर्ण होकर उसे पूर्णब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो सकती है।

जितने भी पुराण-उपपुराण हैं, उनके अधिष्ठाता देवताका नाम और रूप (आकृति) भिन्न होते हुए भी उनका लक्ष्य एक पूर्णब्रह्म परमात्माकी ओर रखा गया है; क्योंकि गुण, प्रभाव, लक्षण, महिमा और स्तुति-प्रार्थनाका वर्णन करते हुए प्रत्येक देवताको ब्रह्मका रूप दिया गया है। इसीलिये एक-दूसरे देवताकी स्तुति परस्पर प्राय: मिलती-जुलती आती है, जो पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही घटती है। पुराणोंमें जो

पुराणोंके अधिष्ठातृ-देवताकी प्रशंसा एवं स्तुति की गयी है, वह अतिशयोक्ति नहीं है; क्योंकि परमात्माकी महिमा अतिशय, अपार और अपरिमित होनेसे उस अधिष्ठातृ-देवताको परमात्माका रूप देनेपर जितनी भी उसकी महिमा बतलायी जाय, वह अल्प ही है। वाणीके द्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह परिमित ही है। अतएव वास्तवमें वाणीद्वारा परमात्माकी महिमाका कोई किसी प्रकार भी वर्णन नहीं कर सकता।

आशय यह है कि जो भक्त जिस देवताकी उपासना करता है, उस उपासकको अपने उपास्यदेवको सर्वोपरि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा मानकर उपासना करनी चाहिये। इस प्रकारकी दृष्टि रखकर उपासना करनेसे ही सर्वोपरि सच्चिदानन्दघन पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है; क्योंकि सभी नाम और रूप परमात्माके ही होनेसे वह उपासना परमात्माकी ही उपासना है। अत: परमात्माको लक्ष्य करके किसी भी नाम और रूपकी उपासना की जाय, उसका फल एक पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी ही प्राप्ति होता है। इसलिये मनुष्यको अपने इष्टदेवको पूर्ण ब्रह्म परमात्मा समझकर उसके नामका जप और स्वरूपका ध्यान नित्य-निरन्तर करना चाहिये।

~~ ० ~~

परममंगलस्वरूप श्रीगणेश

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

आदिपूज्यं गणाध्यक्षमुमापुत्रं विनायकम्।
मङ्गलं परमं रूपं श्रीगणेशं नमाम्यहम्॥

तैंतीस कोटि देवताओंमें श्रीगणेशका जो महत्त्व दृष्टिगत होता है, वह सभीसे विलक्षण है। किसी भी देवकी आराधनाके आरम्भमें, किसी भी सत्कर्मानुष्ठानमें, किसी भी उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट एवं साधारण-से-साधारण लौकिक कार्यमें भी भगवान् गणपतिका स्मरण, उनका विधिवत् अर्चन एवं वन्दन किया जाता है। यह परमश्रेष्ठत्व भवभयहरण, मङ्गलकरण, सुभगचरण श्रीविनायकको ही प्राप्त है। श्रीगणेशकी असीम महिमा एवं उनके परम दिव्य मंगलस्वरूपका मधुर वर्णन श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्र-सूत्रादि ग्रन्थोंमें विस्तृतरूपसे प्रतिपादित है। इनके मंगलमय पावनविग्रहके दर्शन तथा स्मरणमात्रसे ही त्रिविध पाप-ताप एवं विविध उग्रतम अन्तरायोंका ध्वंस सहजमें ही हो जाता है। श्रेष्ठ किंवा सामान्य अनुष्ठेय कार्यके प्रारम्भ, मध्य और अन्तमें श्रीगणपतिभगवान्‌का स्मरण न हो तो समारम्भ किये हुए कार्यकी सम्पन्नता कठिन हो जाती है। लोकमें भी शास्त्रसिद्धान्तानुसार एवं प्रत्यक्ष नानाविध चमत्कृतिपूर्ण उदाहरणोंसे सुस्पष्ट है कि श्रीगणेशके स्मरण-पूजनके बिना अनेक विघ्न-बाधाओंका आना स्वाभाविक है। अत: इन महामंगलमूर्तिका ध्यान-आराधन परम अपेक्षित है।

श्रीगणेश जिस प्रकार ऋद्धि-सिद्धि-बुद्धिके दाता हैं, उसी प्रकार ये अपने अद्भुत रूप-सौन्दर्यपूर्ण विग्रहके दर्शनोंसे अनन्त सुख-समृद्धिके भी प्रदाता हैं। बुद्धि-वैभवके तो ये सर्वतोमुख भण्डार हैं, तभी तो भगवान् वेदव्यासप्रणीत महाभारत-जैसे विशाल ग्रन्थके लेखनका कार्य इन्होंने ही पूर्ण किया। 'भगवन्नाम'-अंकित कर और उसकी परिक्रमा करके सम्पूर्ण देवताओंसे धरित्री-परिक्रमामें भी प्राथमिकता प्राप्त करनेकी पौराणिक गाथा इनकी अनन्त-मतिसिन्धुता एवं हरिनामामृत-महिमाभिज्ञताका संदर्शन कराती है। इसके अतिरिक्त ये गणपति अपनी संक्षिप्त अर्चनासे ही अतिशय संतुष्ट हो भक्तको ऋद्धि-सिद्धिसे परिपूर्ण कर देते हैं। इनकी अर्चना कदापि निष्फल नहीं जाती। ऐसे सुभग, सरल, वरद देवका अर्चन-स्मरण-चिन्तन सभीके लिये परम कल्याणप्रद है। अतीव प्रसन्नताकी बात है कि इस वर्ष (१९७४) 'कल्याण'का विशेषांक 'श्रीगणेश-अंक' प्रकाशित हो रहा है। अत: श्रीगणेश-सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओंका सम्यक्-समाधान इस एक ही महान् ग्रन्थसे उपलब्ध हो सकेगा। सभी भावुक पाठक इस परमोपादेय ग्रन्थका अनुशीलन कर अतिशय लाभान्वित हों।

~~ ० ~~

मंगलविधायक श्रीगणेश

(पूज्यपाद योगिराज अनन्त श्रीदेवरहवाबाबा)

प्रत्येक हिंदू-घरमें जो भी कार्य हम सर्वप्रथम आरम्भ करते हैं, वह गणेशजीका नाम लेकर ही करते हैं। इसलिये कि उसमें कोई विघ्न न आये और कार्य सफल हो जाय। चाहे हम गणेशजीकी विधिवत् पूजासे अपना कार्य आरम्भ करें, चाहे पूजा न करके भी, गणेशजीका नाम-स्मरण ही कल्याणकारी है। व्यवसायी लोग अपने व्यवसायके आरम्भमें और माता-पिता अपने बालकोंके विद्यारम्भमें गणेशजीका पूजन अवश्य करते हैं। व्यावसायिक बही-खातोंके या पुस्तकोंके प्रथम पृष्ठपर '**श्रीगणेशाय नमः**' यह मांगलिक वाक्य सर्वप्रथम अवश्य लिखा जाता है।

पार्वती-शिव-तनय सर्वाग्रपूज्य गणेशजीकी इस गरिमा-का हेतु रामचरितमानसमें संत तुलसीदासजी बताते हैं—

'**महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥**'

(मानस १। १८। २)

इसके विषयमें कथानक इस प्रकार है। एक बार देवताओंमें इस बातकी होड़ लगी कि जो कोई देवता पृथ्वीकी परिक्रमा सर्वप्रथम कर लेगा, वही आदिपूज्य होगा। सभी देवता उस दौड़में सम्मिलित हुए। उसमें श्रीगणेश भी थे; किंतु उनको कोई अभिमान नहीं था; वे जानते थे कि मेरे वाहन श्रीमूषकजी हैं, जिनकी चाल बहुत धीमी है; भला, इनके द्वारा पृथ्वीकी परिक्रमा कैसे हो सकेगी? लेकिन गणेशजी 'राम-नाम'के प्रभावको जानते थे। 'राम-नाम'के द्वारा कौन-सी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती?

उन्होंने तुरंत यह कार्य किया कि पृथ्वीपर ही राम-नाम लिख दिया। 'राम'से सारा विश्व ही ओत-प्रोत है और उसी राम-नाम लिखी हुई पृथ्वीकी उन्होंने अपने मूषकसहित परिक्रमा कर दी। इस प्रकार उनके द्वारा पूरी पृथ्वीकी परिक्रमा सम्पन्न हो गयी। इस रीतिसे देवताओंकी परिक्रमाकी होड़में वे सर्वप्रथम आ गये। बुद्धिसे कौन-सा काम कठिन है? राम-नामका प्रभाव और साथ-साथ उसमें बुद्धिका समावेश—इन दोनोंके द्वारा श्रीगणेशजी सर्वप्रथम पूज्य एवं वन्द्य हो गये।

राम-नाम स्वयं एक महामन्त्र है, जिसके जपनेसे कोई भी ऐसी सिद्धि नहीं है, जो प्राप्त नहीं हो सकती? संत तुलसीदास राम-नामकी महत्ताको जानने और समझनेवाले थे। अपनी रचना रामायणमें जहाँ उन्होंने राम-नामकी महत्ताका वर्णन किया है, वहाँ स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है कि 'राम-नाम-जपका ही यह प्रभाव था, जिसके द्वारा श्रीगणेशजी समस्त देवता-समूहमें सर्वप्रथम पूजनीय हो गये।'

यही गणेशजीकी महिमा है, जिसके कारण हम सर्वप्रथम अपने सभी मंगल-कार्योंमें '**श्रीगणेशाय नमः**' बोलते और लिखते हैं तथा हमारे सभी मंगल-कार्योंमें प्रारम्भ करनेका पर्यायवाची शब्द '**श्रीगणेशाय नमः**' बन गया है। (प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी, एडवोकेट)

~~~o~~~

श्रीगणेशका विरद!

बालक मृनालनि ज्यौं तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यौं अकाल दीह दुख कों।
बिपति हरति हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यौं पताल पेलि पठवै कलुख कों॥
दूरि कै कलंक-अंक भव-सीस-ससि सम,
राखत है 'केसौदास' दास के बपुख कों।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै,
दसमुख मुख जोवैं गज-मुख-मुख कों॥

—महाकवि केशवदास

~~~o~~~

ओंकारस्वरूप श्रीगणपति

(महात्मा श्रीसीताराम ओंकारनाथजी महाराज)

'ॐ' यह अक्षर वर्णजगत् तथा **'भूः, भुवः, स्वः'**—त्रिभुवनमें जो कुछ है, सब है। इसकी सुस्पष्ट व्याख्या यही है कि अतीत, वर्तमान और भविष्यत् सब कुछ **'ॐ'** है। इसके अतिरिक्त त्रिकालातीत जो कुछ है, वह भी ओंकार है। ओंकारके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। स्थावर-जंगम सब कुछ ओंकार है। यह ओंकार ही परमार्थका सार अद्वैत ब्रह्म है—

'परमार्थसारभूतं हि यदद्वैतमशेषतः।'

यह ओंकार और गणपति एक ही तत्त्व हैं, यह हम 'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्' में देख सकते हैं।

श्रीगणेशाय नमः

अथ गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ १॥

'हे देवगण! (यज्ञमें व्रती होकर) हम कानोंसे भद्र (मंगलमय) शब्द सुनें। यज्ञमें व्रती होकर हम आँखोंसे भद्र(मंगलमय) रूपका दर्शन करें। सुस्थिर अंगों तथा शरीरोंद्वारा तुम्हारा स्तवन करते हुए हम देववृन्दके लिये जो हितकर आयु हो, उसका उपभोग करें।'

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो‌ऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

'बढ़े हुए सुयशवाले जो इन्द्र हैं, वे हमारे लिये मंगलमय हों। सर्वज्ञ पूषा (सूर्य) हमारे लिये मंगलमय हों। तार्क्ष्य, अजेय (अप्रतिहत-शक्ति) गरुड़ हमारे लिये मंगलमय हों। बृहस्पति हमारे लिये मंगलमय हों। हमारे त्रिविध तापोंकी शान्ति हो।'

अथ गणेशाथर्वशीर्षं व्याख्यास्यामः—

'अब हम गणेशाथर्वशीर्षकी व्याख्या करेंगे।'

ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्॥ १॥

'आप गणपतिको नमस्कार है। तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो। तुम्हीं केवल कर्ता, तुम्हीं केवल धारणकर्ता और तुम्हीं केवल संहारकर्ता हो। तुम्हीं केवल यह समस्त विश्वरूप ब्रह्म हो और तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो।'

ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि॥ २॥

'यथार्थ कहता हूँ। सत्य कहता हूँ।'

अव त्वं माम्। अव वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारम्। अव धातारम्। अवानूचानमव शिष्यम्। अव पश्चात्तात्। अव पुरस्तात्। अवोत्तरात्तात्। अव दक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्। अवाधरात्तात्। सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात्॥ ३॥

'तुम मेरी रक्षा करो। वक्ताकी रक्षा करो। श्रोताकी रक्षा करो। दाताकी रक्षा करो। धाताकी रक्षा करो। षडंगवेदविद् आचार्यकी रक्षा करो। शिष्यकी रक्षा करो। पीछेसे रक्षा करो। आगेसे रक्षा करो। उत्तर (वाम) भागकी रक्षा करो। दक्षिण भागकी रक्षा करो। ऊपरसे रक्षा करो। नीचेकी ओरसे रक्षा करो। सर्वतोभावसे मेरी रक्षा करो। सब दिशाओंसे मेरी रक्षा करो।'

त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि॥ ४॥

'तुम वाङ्मय हो, तुम चिन्मय हो। तुम आनन्दमय हो, तुम ब्रह्ममय हो। तुम सच्चिदानन्द अद्वितीय परमात्मा हो। तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। तुम ज्ञानमय हो, विज्ञानमय हो।'

सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः। त्वं चत्वारि वाक्पदानि॥ ५॥

'यह सारा जगत् तुमसे उत्पन्न होता है। यह सारा जगत् तुमसे सुरक्षित रहता है। यह सारा जगत् तुममें लीन होगा। यह अखिल विश्व तुममें ही प्रतीत होता है। तुम्हीं भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश हो। तुम्हीं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चतुर्विध वाक् हो।'

त्वं गुणत्रयातीतः। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रस्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥ ६॥

'तुम सत्त्व-रज-तम—इन तीनों गुणोंसे परे हो। तुम स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों देहोंसे परे हो। तुम भूत-भविष्यत्-वर्तमान—इन तीनों कालोंसे परे हो। तुम नित्य मूलाधार-चक्रमें स्थित हो। तुम प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति—इन तीनों शक्तियोंसे संयुक्त हो। योगिजन नित्य तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम ब्रह्मा हो, तुम विष्णु हो, तुम रुद्र हो, तुम इन्द्र हो, तुम अग्नि हो, तुम वायु हो, तुम सूर्य हो, तुम चन्द्रमा हो, तुम (सगुण) ब्रह्म हो, तुम (निर्गुण) त्रिपाद भूः, भुवः, स्वः एवं प्रणव हो।'

गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरोऽर्द्धेन्दुलसितं तारेण रुद्धम् एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः संधानम्। संहिता संधिः सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः, निचृद् गायत्रीछन्दः, गणपतिर्देवता। ॐ गं गणपतये नमः॥ ७॥

''गण-शब्दके आदि अक्षर गकारका पहले उच्चारण करके अनन्तर आदिवर्ण अकारका उच्चारण करे। उसके बाद अनुस्वार रहे। इस प्रकार अर्धचन्द्रसे शोभित जो '**गं**' है, वह ओंकारके द्वारा रुद्ध हो अर्थात् उसके पहले और पीछे भी ओंकार हो। यही तुम्हारे मन्त्रका स्वरूप (**ॐ गं ॐ**) है। '**गकार**' पूर्वरूप है, '**अकार**' मध्यमरूप है, '**अनुस्वार**' अन्त्यरूप है। '**बिन्दु**' उत्तररूप है, '**नाद**' संधान है, '**संहिता**' संधि है। ऐसी यह गणेशविद्या है। इस विद्याके गणक ऋषि हैं, निचृद्-गायत्री छन्द है और गणपति देवता हैं। मन्त्र है—'**गं**' (**ॐ गं गणपतये नमः**)।''

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥ ८॥

'एकदन्तको हम जानते हैं, वक्रतुण्डका हम ध्यान करते हैं। दन्ती हमको उस ज्ञान और ध्यानमें प्रेरित करें।'

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥ ९॥

'गणपति-देव एकदन्त और चतुर्बाहु हैं। वे अपने चार हाथोंमें पाश, अंकुश, दन्त और वरमुद्रा धारण करते हैं। उनके ध्वजमें मूषकका चिह्न है। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्ण तथा रक्तवस्त्रधारी हैं। रक्तचन्दनके द्वारा उनके अंग अनुलिप्त हैं। वे रक्तवर्णके पुष्पोंद्वारा सुपूजित हैं। भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, ज्योतिर्मय, जगत्के कारण, अच्युत तथा प्रकृति और पुरुषसे परे विद्यमान वे पुरुषोत्तम सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हुए। इनका जो इस प्रकार नित्य ध्यान करता है, वह योगी योगियोंमें श्रेष्ठ है।'

नमो व्रातपतये, नमो गणपतये, नमः प्रमथपतये, नमस्ते अस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥ १०॥

'व्रातपतिको नमस्कार, गणपतिको नमस्कार। प्रमथपतिको नमस्कार, लम्बोदर और एकदन्तको नमस्कार हो। विघ्ननाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार हो।'

एतदथर्वशीर्षं योऽधीते। स ब्रह्मभूयाय कल्पते। स सर्वतः सुखमेधते। स सर्वविघ्नैर्न बाध्यते। स सर्वमहापापात्प्रमुच्यते। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति। सर्वत्राधीयानोऽपविघ्नो भवति धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति। इदमथर्वशीर्षम् अशिष्याय न देयम्। यदि मोहाद् दास्यति, स पापीयान् भवति। सहस्रावर्तनाद् यं यं काममधीते तं तमनेन साधयेत्॥ ११॥

'इस अथर्वशीर्षका जो पाठ करता है, वह ब्रह्मीभूत होता है। वह सर्वतोभावेन सुखी होता है, वह किसी प्रकारके विघ्नोंसे बाधित नहीं होता। वह समस्त महापातकोंसे मुक्त हो जाता है। सायंकाल इसका अध्ययन करनेवाला दिनमें किये हुए पापोंका नाश करता है, प्रातःकालमें अध्ययन करनेवाला रात्रिकृत पापोंका नाश करता है। सायं और प्रातःकाल पाठ करनेवाला निष्पाप हो जाता है। सर्वत्र अध्ययन

करनेवाला विघ्नशून्य हो जाता है और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त करता है। यह अथर्वशीर्ष उसको नहीं देना चाहिये, जो शिष्य न हो। जो मोहवश अशिष्यको भी इसका उपदेश देगा,वह महापापी होगा। इसकी एक हजार आवृत्ति करनेसे उपासक जो-जो कामना चाहेगा, इसके द्वारा उसे सिद्ध कर लेगा।'

अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाग्मी भवति। चतुर्थ्यामनश्नन् जपति स विद्यावान् भवति। इत्यथर्ववाक्यम्। ब्रह्माद्यावरणं विद्यान्न बिभेति कदाचनेति॥ १२॥

'जो इस मन्त्रके द्वारा श्रीगणपतिका अभिषेक करता है, वह वाग्मी हो जाता है। जो चतुर्थी तिथिमें उपवास करके जप करता है, वह विद्यावान् (अध्यात्मविद्याविशिष्ट) हो जाता है। यह अथर्ववाक्य है। जो ब्रह्मादि आवरणको जानता है, वह कभी भयभीत नहीं होता।'

यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजैर्यजति स यशोवान् भवति, स मेधावान् भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति। यः साज्यसमिद्भिर्यजति स सर्वं लभते स सर्वं लभते। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति। सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति। महाविघ्नात्प्रमुच्यते। महादोषात् प्रमुच्यते। महाप्रत्यवायात् प्रमुच्यते। स सर्वविद्भवति। स सर्वविद्भवति। य एवं वेद। इत्युपनिषद्॥ १३॥

इति गणपत्यथर्वशीर्षं सम्पूर्णम्।

'जो दूर्वांकुरोंद्वारा यजन करता है, वह कुबेरके समान हो जाता है। जो लाजाके द्वारा होम करता है, वह यशस्वी होता है, मेधावान् होता है। जो सहस्र मोदकोंके द्वारा यजन करता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है। जो घृताक्त समिधाके द्वारा होम करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है, सब कुछ प्राप्त करता है। जो आठ ब्राह्मणोंको इस उपनिषद्‌का सम्यक् ग्रहण करा देता है, वह सूर्यके समान तेज:सम्पन्न होता है। सूर्यग्रहणके समय महानदीमें अथवा प्रतिमाके निकट इस उपनिषद्‌का जप करके साधक सिद्धमन्त्र हो जाता है। सारे महाविघ्नोंसे मुक्त हो जाता है। महान् दोषोंसे मुक्त हो जाता है। महापातकसे मुक्त हो जाता है। वह सर्वविद् हो जाता है। वह सर्वविद् हो जाता है। जो इस प्रकार जानता है। इत्युपनिषद्।'

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

'हे परमात्मन्! आप हम दोनों—शिष्य और आचार्यकी साथ-साथ रक्षा करें। हे परमात्मन्! आप हम दोनों—शिष्य और आचार्यको अपना अभेदानन्द-भोग प्राप्त करावें। हे परमात्मन्! आप हम दोनोंको निदिध्यासन, ध्यान और समाधिकी सामर्थ्य प्रदान करें। हमारी अधीत विद्या तेजस्विनी हो, हम दोनों—आचार्य और शिष्यके बीच कभी विद्वेष न हो। त्रिविध दु:ख शान्त हों।'

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ्सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। हरिः ॐ॥

इस प्रकार "गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्" पूर्ण हुआ।

~~~○~~~

श्रीब्रह्माका पार्वतीजीसे उलाहना

सुंड सौं लुकाइ औ दबाइ दंत दीरघ सौं, दुरित दुरूह दुख दारिद बिदारे देत।
कहै 'रतनाकर' बिपत्ति फटकारै फूँकि, कुमति कुचार पै उछारि छार डारे देत।।
करनी बिलोकि चतुरानन गजानन की, अंब सौं बिलखि यौं उराहनौ पुकारे देत।
तुमही बतावौ कहाँ बिघन बिचारे जाहिं, तीनौं लोक माहिं ओक उनकौं उजारे देत।।

कविवर 'रत्नाकर'

~~~○~~~

ॐकारस्वरूप श्रीगणेश

ॐकारमाद्यं प्रवदन्ति संतो वाचः श्रुतीनामपि यं गृणन्ति।
गजाननं देवगणानताङ्घ्रिं भजेऽहमर्धेन्दुकृतावतंसम्॥

'संत-महात्मा जिन्हें आदि ॐकार बताते हैं; श्रुतियोंकी वाणियाँ भी जिनका स्तवन करती हैं; समस्त देव-समुदाय जिनके चरणारविन्दोंमें प्रणत होता है तथा अर्धचन्द्र जिनके भालदेशका आभूषण है, उन भगवान् गजाननका मैं भजन करता हूँ।'

गणेशतत्त्वका महत्त्व

(स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रत्येक मानव मानव होनेके नाते जन्मजात साधक है। साधक सभीके लिये उपयोगी होता है। कारण कि सत्संग ही साधकका स्वधर्म है। स्वधर्मनिष्ठ होनेसे ही साधक धर्मात्मा, जीवन्मुक्त तथा भक्त हो सकता है। इस दृष्टिसे सत्संग ही अग्रगण्य देव गणेशकी पूजा है। सत्यको स्वीकार करना 'सत्संग' है। बुराईरहित होकर साधक धर्मात्मा होता है और अकिंचन, अचाह, अप्रयत्नपूर्वक साधक जीवन्मुक्त होता है तथा आत्मीयतासे जाग्रत् अखण्ड-स्मृति एवं अगाधप्रियतासे भक्त होता है। यह सत्संग अर्थात् गणेश-तत्त्वका महत्त्व है।

सच्चर्चा, सच्चिन्तन और सत्कार्यके द्वारा सत्संगकी माँग जाग्रत् होती है। सत्संग मानवका स्वधर्म है। चर्चा, चिन्तन तथा कार्यके लिये पराश्रय और परिश्रम अपेक्षित है, किंतु सत्संगके लिये पराश्रय तथा परिश्रमकी अपेक्षा नहीं है। अतः सत्संग स्वाधीनतापूर्वक साध्य है। निज ज्ञानके प्रकाशमें यह स्पष्ट विदित होता है कि शरीर और संसारसे मानवकी जातीय भिन्नता है। जिससे जातीय भिन्नता है, उससे नित्य-योग तथा आत्मीयता सम्भव नहीं है। इस दृष्टिसे केवल जो अनुत्पन्न हुआ अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय, अनादि, अनन्त तत्त्व है, उससे मानवकी जातीय एकता है और वही मानवका अपना है। अपनेमें अपनेकी अखण्ड स्मृति तथा अगाधप्रियता स्वतः होती है। स्मृतिके जाग्रत् होते ही इन्द्रियाँ अविषय, मन निर्विकल्प तथा बुद्धि सम हो जाती है और फिर स्मृति, योग, बोध तथा प्रेमसे अभिन्न कर देती है। इस दृष्टिसे सत्संग ही एकमात्र सिद्धिदायक है। जो सिद्धिदायक है, वही गणेश-तत्त्व है।

गणेश-तत्त्वको अपनाये बिना अन्य किसी भी प्रकारसे साध्यतत्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। कारण कि सत्संगसे ही असत्का त्याग और इस दृष्टिसे साध्यकी माँग ही साध्यकी प्राप्तिमें हेतु है। साध्य उसे नहीं कहते, जो सदैव, सर्वत्र, सभीमें न हो और साधक भी उसे नहीं कहते, जिसमें साध्यकी माँग न हो। इस सत्यको स्वीकार करनेपर साधक स्वतः साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है, जो साधकका जीवन तथा साध्यकी महिमा है। साध्यके अस्तित्व, महत्त्व तथा अपनत्वको स्वीकार करना 'सत्संग' है। साधकके लिये साध्यसे भिन्न किसी अन्य वस्तुका अस्तित्व ही नहीं है। इस वास्तविकताको अपना लेनेपर साधक अकिंचन, अचाह तथा अप्रयत्नपूर्वक साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है, यह आस्थावान् साधकोंका अनुभव है। माँग और कामका पुंज ही केवल सीमित अहम्-भाव है। स्वभावजनित माँगके सबल होनेपर प्रमादसे उत्पन्न हुए कामका नाश हो जाता है और फिर माँग स्वतः पूरी हो जाती है, जिसके होते ही सीमित अहम्-भावका अन्त हो जाता है और फिर केवल साधन-तत्त्व और साध्यका नित्य-विहार ही शेष रहता है।

जिस प्रकार साध्य अखण्ड, असीम तथा अनन्त है, उसी प्रकार साधन-तत्त्व भी असीम तथा अनन्त है। साधककी अभिन्नता साधन-तत्त्वसे होती है। साधन-तत्त्वसे ही साध्यको नितनव-रस मिलता है, जो क्षति, पूर्ति और निवृत्तिसे रहित होनेसे असीम है। साधकमें ही असीम साधन-तत्त्व और अनन्त साध्य-तत्त्व विद्यमान हैं। परंतु यह रहस्य एकमात्र सत्संगसे ही स्पष्ट होता है। इस दृष्टिसे गणेश-तत्त्वके द्वारा ही साधक प्रेम और प्रेमास्पदसे अभिन्न होता है। इसी रहस्यको बतानेके लिये गौरी-शंकर, सीता-राम और राधा-कृष्णके विहारकी चर्चा है। गणेश-तत्त्वको गौरी और शिवका आत्मज कहा है। पूर्ण-तत्त्वसे ही साधन-तत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। साधन-तत्त्व और साध्यमें असत्के त्यागसे ही अकर्तव्य, असाधन और आसक्तिका नाश होता है और फिर स्वतः साधकमें साधन-तत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। साधन-तत्त्व साधकको साध्यसे अभिन्न कर देता है। यह जीवनका सत्य है। अकर्तव्यका अन्त होते ही कर्तव्यपरायणता स्वतः आती है। कर्तव्यपरायणतासे विद्यमान रागकी निवृत्ति होती है तथा सुन्दर समाजका निर्माण होता है। इतना ही नहीं, कर्तव्यनिष्ठ साधकके जीवनमें अधिकार-लालसाकी गन्ध भी नहीं रहती। कारण कि वह कर्तव्यपालनमें ही

अपना अधिकार मानता है। अधिकार-लोलुपताका अन्त होते ही साधक क्रोधरहित हो जाता है। राग और क्रोधके न रहनेपर स्वतः योग तथा स्मृति जाग्रत् होती है। योग-बोधसे स्मृति प्रेमसे अभिन्न कर देती है। समस्त साधनोंकी परिणति प्रेम-तत्त्वमें होती है। प्रेम-तत्त्व प्रेमास्पदका स्वभाव और प्रेमीका जीवन है और प्रेम-तत्त्वकी प्राप्तिमें ही जीवनकी पूर्णता है। यही साधकके विकासकी चरम सीमा है।

साधकके पुरुषार्थका आरम्भ और अन्त सत्संगमें ही निहित है। सत्संग शरीरधर्म नहीं है, अपितु आत्मधर्म है। स्वधर्मको अपनानेमें सभी साधक सर्वदा स्वतन्त्र हैं। स्वधर्मनिष्ठ हुए बिना सर्वतोमुखी विकास सम्भव नहीं है। स्वधर्मनिष्ठ होनेमें किसी प्रकारकी पराधीनता तथा असमर्थता नहीं है। 'स्व'को बोध स्वतःप्राप्त है कि समस्त दृश्य एक ही इकाई है और जिसकी माँग है, वह भी अद्वितीय ही है और जिसमें माँग है, वह 'मैं'-तत्त्व भी एक ही है। अब विचार किया जाय कि माँगका अनुभव 'स्व'को यह स्वतः होता है और जब माँग सबल तथा स्थायी हो जाती है, तब कामका स्वतः नाश हो जाता है। कामका नाश होते ही माँग अपने-आप पूरी हो जाती है। यह जीवनका सत्य है, स्वरूपसे अभिन्नता है। उस अभिन्नताका स्पष्टीकरण सत्संगसे ही अर्थात् गणेश-तत्त्वसे ही होता है, जो कि जीवनका सत्य है।

गणेश-तत्त्व अनुत्पन्न हुआ अलौकिक तत्त्व है। जिस प्रकार साधकको शरीर और संसारकी उत्पत्ति, परिवर्तन और अदर्शनका बोध है, उसी प्रकार उसे न तो अपनी उत्पत्तिका बोध है और न परिवर्तन तथा अदर्शनका। इस दृष्टिसे 'स्व'-तत्त्व ही गणेश-तत्त्व है। 'स्व'में ही 'है'की माँग होती है। माँग ही 'है'की प्राप्तिमें हेतु है। 'स्व' 'है'में और 'है' 'स्व'में ओत-प्रोत है। जब 'स्व' 'है'के अस्तित्वको स्वीकार करता है, तब उसकी साधक-संज्ञा होती है। साधकका स्वधर्म 'है'के महत्त्व और अपनत्वको स्वीकार करना है। साधक जिसके महत्त्वको स्वीकार करता है, उसीमें उसका नित्य वास रहता है और जिसके महत्त्वको स्वीकार करता है, उसीमें अगाधप्रियता होती है। जो सदैव, सर्वत्र, सभीका अपना है, उसीको अपना मानना और अपनेमें ही स्वीकार करना साधकका स्वधर्म है, अर्थात् 'सत्संग' है। इस प्रकार प्रत्येक साधक अग्रगण्य देव गणेशकी पूजा कर बड़ी सुगमतापूर्वक प्रेम तथा प्रेमास्पदसे अभिन्न बन जाता है।

~~o~~

वेदमें गणपति

(वेददर्शनाचार्य स्वामी श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज, उदासीन)

'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥'

(तैत्तिरीयारण्यक, प्रपाठक १०; नारायणोपनिषद्, अ० ५)

गणपति, दन्ती और वक्रतुण्ड श्रीगणेशजीके ही नामान्तर हैं। 'दन्तिन्' शब्दसे उनका गजानन होना सूचित होता है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणेशखण्डमें उनकी निस्सीम महिमा वर्णित है। महर्षि व्यासको जब उतनेसे ही संतोष नहीं हुआ, तब उन्होंने एक स्वतन्त्र 'गणेशपुराण'की भी रचना की। 'शिव', 'स्कन्द' आदि पुराणोंमें भी यत्र-तत्र प्रसंगवश गणेशजीका महत्त्व उपलब्ध है, किंतु हम यहाँ केवल वेदमन्त्रोंके आधारपर ही उनकी दिव्यताका दिग्दर्शन करायेंगे।

इतिहास-पुराण-निर्माता महर्षि व्यासजी श्रीगणेशके विशेष कृतज्ञ एवं आभारी हैं; क्योंकि जब उन्होंने लक्षश्लोकात्मक 'महाभारत' नामकी शतसाहस्री-संहिताका निर्माण किया, तब उन्हें चिन्ता हुई कि इस महान् ग्रन्थका प्रचार बिना लिखे शक्य नहीं; कुशल लेखक कोई मिल नहीं रहा है। स्मरण करते ही ब्रह्मदेव उपस्थित हुए। सर्वान्तर्यामी ब्रह्माने व्यासका भाव जान लिया था। उन्होंने व्यासको आदेश दिया कि 'इस कार्यके लिये आप विघ्नेश्वर गणेशजीका स्मरण करें; वे ही इस कार्यके लिये उपयुक्त होंगे।' व्यासजीके ध्यान करते ही गणपति आये और उनका मनोरथ पूरा किया। अतः पुराणोंमें गणपतिका गुणगान नैसर्गिक ही

है। इनके असंख्य आख्यान एवं प्रमाण श्रद्धालु पाठकोंसे अविदित नहीं है।

वेदोंका अभ्यास न होनेके कारण ही आजकलके अर्वाचीन सज्जन यह कहनेमें संकोच नहीं करते कि जिन गणपतिका विद्वान् प्रत्येक ग्रन्थके आरम्भमें मंगलमय स्मरण करते हैं, आर्योंके विवाह-यागादि प्रत्येक कार्यके आरम्भमें जिनका प्रथम पूजन होता है, उनका वेदोंमें नामतक नहीं है। यहाँ उनके भ्रम-निवारणके लिये कतिपय वेदमन्त्र नीचे दिये जाते हैं—

गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋग्वेद २।२३।१)

हे ब्रह्मणस्पते—ब्रह्मणः परिवृढस्य कर्मणः पते, पालक; गणानाम्—देवसंघानां विद्याधरादिभेदेनानन्तानां सम्बन्धिनम्; गणपतिम्—गजाननं शिवतनयम्; कवीनाम्—क्रान्तदर्शिनाम्; कविम्—क्रान्तदर्शिनम्; उपमश्रवस्तमम्—उपमीयते अनया इति उपमा, सर्वेषामन्नानामुपमानं श्रवः अन्नं यस्य सः उपमश्रवाः, उपपूर्वात् माधातोः करणेऽङ्घ्यापोरिति ह्रस्वः, अतिशयेन स उपमश्रवाः उपमश्रवस्तमः, तं स्वान्नोपमितसर्वान्नतमम्; ज्येष्ठराजम्—ज्येष्ठानां प्रशस्यतमानां देवानां राजानं भूपतिं सर्वदेवोत्तमम्; ब्रह्मणाम्—मन्त्राणां स्वामिनम्; त्वा—त्वाम्; हवामहे—वयं स्तोतारः अस्मिन् कर्मणि आह्वयामः; नः—अस्माकं स्तुतिम् शृण्वन्—आकर्णयन्; ऊतिभिः—रक्षणैः, सादनम्—सदनं यज्ञशालां हृदयं वा; सीद—आसीद, आगत्य उपविशेत्यर्थः।

'हे कर्मोंके पालक! आप विद्याधरादि देवगणोंके पति, त्रिकालदर्शी, अमितान्नवान्, सकलदेवोत्तम, मन्त्रोंके स्वामी हैं। हम सब स्तोता आपका आह्वान करते हैं। आप हमारी स्तुति सुनकर रक्षण-शक्तिसहित हमारी यज्ञशालामें अथवा हृदयमें पधारकर विराजमान होइये।'

'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः॥'

(शुक्लयजु० १६।२५)

गणेभ्यः—देवानुचरा भूतविशेषा गणास्तेभ्यः; गणपतिभ्यः—विश्वनाथमहाकालेश्वरादिवत् पीठभेदेन भिन्नेभ्यो गजवदनेभ्यः; वः—युष्मभ्यम् 'च'—समुच्चये, नमो नमः; इति द्विरुक्तिरादरार्थाः; व्रातः—सङ्घः; व्रातपतयः—यूथपतयस्तेभ्यः; गृत्साः—मेधाविनः; गृत्सपतयः—मेधाविपतयश्च तेभ्यः; विलक्षणं रूपं येषां ते विरूपाः—दिगम्बरपरमहंसजटिलास्तुरीयाश्रमिणस्तेभ्यः; विश्वम्—सर्वं रूपं येषां ते विश्वरूपाः, ब्रह्माद्वैतदर्शनेन सर्वेष्वात्मभावमापन्ना ज्ञानिनः तेभ्यः। शिष्टं समानम्।

'देवानुचर गण-विशेषोंको, विश्वनाथ महाकालेश्वर आदिकी तरह पीठभेदसे विभिन्न गणपतियोंको, संघोंको, संघपतियोंको, बुद्धिशालियोंको बुद्धिशालियोंके परिपालन करनेवाले उनके स्वामियोंको, दिगम्बर-परमहंस-जटिलादि चतुर्थाश्रमियोंको तथा सकलात्मदर्शियोंको नमस्कार हो।'

'गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिँ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥'

(शुक्लयजु० २३।१९)

'गणानाम्—स्वस्वकार्यविशेषेषु नियुक्तानां शिवानुचराणां सम्बन्धिनम्, स्वामिपुत्रत्वाद् आदरणीयम्; अपि वा गणानाम्— गणदेवानां विश्वेषां देवानाम् मरुताम् एकोनपञ्चाशत्संख्यानाम्, अष्टानां वसूनाम्, एकादशानां रुद्राणाम्, द्वादशानामादित्यानां मान्यम्, नूतनकार्यारम्भे पूजनीयं विघ्नहर्तृत्वात्; गणपतिम्—गणपतिसंज्ञं शिवतनयं गणेशम्; त्वा—त्वाम्; हवामहे—आह्वयामः। प्रियाणाम्—अभीष्टानां सम्बन्धिनं तेषां दातारम्; प्रियपतिम्—प्रियाणां प्रेमास्पदधनसुतधान्यादीनां पतिं पालकम्, न केवलं तेषां दातारम् दत्तानां रक्षकञ्चेति भावः; त्वा—त्वाम्; हवामहे आह्वयामः। निधीनाम्—सुखनिधीनां दयानिधीनां वा मध्ये निधिपतिम्—निधीनां पूर्वोक्तानां पतिं मुख्यम्। निरतिशयसुखनिधिं दयालुशिरोमणिञ्चेति तात्पर्यम्। नवानां निधीनां शास्त्रप्रसिद्धानां स्वामिनमिति वा। किं बहुना वसो—वसति यस्मिन् विश्वम्, वासयति विश्वम्, सर्वत्र वसतीति वा वसुः, तत्सम्बोधने वसो! विश्वाधार! विश्वासनहेतो! विश्वव्यापक! वा त्वम्; मम—त्वत्पादपद्मप्रपन्नस्य त्वदाराधकस्य त्राता भवेति शेषः। अहम्—उपासकः; गर्भधः—गर्भे स्वोदरमध्ये विश्वं दधातीति गर्भधः, स्वोदरवर्तिचतुर्दशभुवनः, तम् जगत्स्वामिनम्, अतएव लम्बोदरम्; अजानि—गच्छेयम्, प्राप्नुयाम्, लभेय। गर्भधम्—गर्भे हृदयमध्ये ध्यानेन स्थापयतीति गर्भधस्त्वदुपासकस्तम्, हृदि दिवानिशं तव

ध्यातारं माम्; आ अजासि—आगच्छ। मम मनस्याविर्भूतो भव। सततं तिष्ठेति भावः।'

'अपने-अपने कर्तव्य-विशेषमें नियुक्त शिवानुचरोंके स्वामिपुत्र होनेसे सत्करणीय अथवा विश्वेदेव अर्थात् उनचास मरुद्गण, आठ वसु, बारह आदित्य तथा ग्यारह रुद्र—इन गणदेवोंमें विघ्नविघातक होनेसे नूतन कार्यारम्भमें पूजनीय शिवपुत्र गणेशका हम साधक आह्वान करते हैं। अभीष्ट पुत्र, धन-धान्यादिके प्रदाता—दाता ही नहीं, अपितु उन अभीष्ट पुत्रादिकोंके रक्षक आपका हम आह्वान करते हैं। सुखनिधि एवं दयानिधि देवोंके मध्यमें निरतिशयानन्दस्वामी एवं दयालु-शिरोमणि, अथवा शास्त्रप्रख्यात नव-निधियोंके पालक आपका हम आह्वान करते हैं। अधिक क्या कहें; जगदाधार, जगत्के निवास-कारण सर्वव्यापक देव! आप मेरे रक्षक हों। मैं उदरके मध्यमें चतुर्दश भुवनोंके धारक, अतएव लम्बोदर आपको प्राप्त करूँ। आप भी अपने हृदयमें अहर्निश ध्यानद्वारा आपको स्थापित करनेवाले, दूसरे शब्दोंमें आपके सतत ध्याता मुझ उपासकके पास आवें अर्थात् मेरे हृदयमें आविर्भूत होवें एवं सतत स्थिर रहें। आपका सतत संनिधान ही मुझे अभीष्ट है।'

श्रीगणपतिदेवका ध्यातव्य स्वरूप

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कर्मसु॥

अर्थात्—श्रीगणेशजीकी आकृति छोटी है। उनका शरीर स्थूल है, मुख गजेन्द्रका है, उदर विशाल और सुन्दर है। उनके गण्डस्थलोंपरसे मदधारा स्रवित हो रही है और भ्रमरगण चारों ओरसे उनपर एकत्रित हो रहे हैं। वे अपने दाँतसे शत्रुओंका विदारण कर उनके खूनका शरीरमें अवलेपन कर सिन्दूरके अवलेपनकी-सी शोभाको धारण किये हुए हैं। अष्टसिद्धियाँ और नवनिधियाँ साक्षात् विग्रह धारणकर उनकी सेवामें उपस्थित हैं। देवगण श्रीपार्वतीजीके पुत्र इन्हीं श्रीगणेशजीकी अहर्निश सेवा करते हुए उनकी कृपादृष्टिकी याचना किया करते हैं।

शास्त्रोंमें कहा गया है कि गणेशजी परमात्माके बुद्धिरूप हैं। इसलिये भावुक उपासक गणेशजीके सगुण स्वरूपमें संयम करता हुआ उनकी समष्टि बुद्धिवृत्तिमें चित्तको लीन कर लेता है और सब प्रकारके दिव्य ऐश्वर्योंको प्राप्तकर मुक्त हो जाता है।

रहस्य—गीतामें दो प्रकारकी बुद्धियोंका वर्णन आता है। जो बुद्धि संसारके द्वैतभावको नष्ट कर अद्वैतभावरूप सच्चिदानन्द परब्रह्ममें अवस्थान करा दे, वही 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' अर्थात् सुबुद्धि कही जाती है और जो बुद्धि परमात्माको विषय न करती हुई अद्वैतमय परमतत्त्वमें समस्त संसार-प्रपंचका विस्तार करे, वह 'अव्यवसायात्मिका बुद्धि' अर्थात् कुबुद्धि कही जाती है। व्यवसायात्मिका बुद्धिमें प्रपंच क्षीण होकर अद्वैतभावमें लीन हो जाता है, इसी भावको गणेशजीके खर्वशरीरसे सूचित किया गया है। व्यवसायात्मिका बुद्धिके उदय होते ही योगीमें सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ आ उपस्थित होती हैं। परमात्मा तो सदा ही सुबुद्धिवाले हैं, इसलिये उनमें नित्य ही ऐश्वर्य विद्यमान रहा करता है; इस भावको प्रकट करनेके लिये गणेशजीके पास हर समय ऋद्धि-सिद्धि उपस्थित रहती हैं। व्यवसायात्मिका बुद्धि सारग्राहिणी और शक्तिशालिनी होती है। इस भावको गणपतिजीके स्थूल-विग्रहसे सूचित किया गया है।

प्रकृतिके कार्यभूत परमात्माके राज्यरूप जगत्का नियन्त्रण करनेके लिये परमात्माके विभूतिरूप देवगण जगत्के भिन्न-भिन्न विभागोंमें नियुक्त हैं। संसारका कोई भी भाव देव-अधिकारसे रिक्त नहीं, सब पदार्थोंकी नियामक चेतना-सत्ता उनमें देवरूपसे विद्यमान है—इस सम्बन्धको प्रकट करनेके लिये मनुष्येतर प्राणीको उनका वाहन बनाया गया है या किसी प्राणीके अंगको उनके शरीरमें दिखलाया गया है। मनुष्येतर प्राणियोंमें हाथी सबसे अधिक बुद्धिमान् और गम्भीर स्वभावका है। अप्रकटरूपसे बुद्धिसत्त्व सबमें विद्यमान है। इस समष्टि-बुद्धिके अधिष्ठाता देव गणेशजी हैं—इस भावको सूचित करनेके लिये ही श्रीगणपतिजी गजवदन हैं। '**व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।**' (गीता २। ४१)— भगवान्की इस उक्तिके अनुसार सुबुद्धि एक है और वह सदा अद्वैतभावकी ओर ही प्रवाहित होती रहती है। गणेशजी इसी बुद्धिके अधिष्ठाता देव हैं, इस भावको सूचित करनेके लिये वे 'एकरदन' हैं। अव्यवसायात्मिका बुद्धि विस्तारवाली होती हुई भी गम्भीरतासे विहीन होती है, परंतु सुबुद्धिमें ऐसा नहीं;

वह गाम्भीर्य-भावयुक्त है—इस भावको सूचित करनेके लिये गणेशजी 'लम्बोदर' हैं। व्यवसायात्मिका बुद्धिद्वारा ही ज्ञानामृतका क्षरण होता है। उसका पान करनेके लिये ही मुमुक्षुओंको भ्रमरोंके रूपसे सूचित किया गया है। सुबुद्धिमें ही अद्वैतभावकी निष्ठा होती है। यह अद्वैत-भाव ही उसका अप्रतिहत गतिवाला अस्त्र है। सुबुद्धिमें अद्वैतभावके उदय होते ही प्रकृतिके प्रपंच-विस्तारक रजोगुण और तमोगुण मृतप्राय हो जाते हैं। इन दोनों गुणोंके कार्यभूत लोभ-मोह-मद-मात्सर्य-अहंकारादि विनष्ट हो जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि सुबुद्धि इन सबकी घातिका है। इस भावको सूचित करनेके लिये गणेशजीने दन्त-प्रहारसे अपने विरोधियोंका वध करके उनके खूनको अपने वदनपर लगा रखा है। राजस और तामस धर्मोंके विनष्ट हो जानेपर जिस प्रकार अद्वैतनिष्ठ महापुरुषकी शोभा बढ़ जाया करती है और उसमें ब्रह्मवर्चस् प्रकाशित होकर प्रातःकालके सूर्यके समान उसका शरीर कान्तिमान् हो जाया करता है, उसी प्रकार गणेशजीका शरीर खूनके लगनेसे भयानक न प्रतीत होकर अतिसुन्दर प्रतीत होता है। हिमवान्-कुमारी श्रीपार्वतीजी ही आद्या प्रकृति हैं। उसी प्रकृतिके सात्त्विक अंशसे व्यवसायात्मिका बुद्धिकी उत्पत्ति होती है, इसी भावको सूचित करनेके लिये शास्त्रोंमें गणेशजीका जन्म श्रीपार्वतीजीसे हुआ बताया गया है। अव्यवसायात्मिका—कुतर्क-बुद्धिको ही गणेशजीके वाहन मूषकरूपसे दर्शाया गया है। सुबुद्धि ही कुतर्क-बुद्धिको दबानेमें समर्थ है। जिस प्रकार चूहा वस्तुके गुणोंका ध्यान न रखकर उसे काटकर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार कुतर्क बुद्धि भी भावके सारासारको न देखती हुई उसे खण्डित कर व्यर्थ बना देती है। इसीलिये सुबुद्धिरूप गणेशजीका वाहन कुतर्करूप चूहा बनाया गया है। जिस महापुरुषमें सुबुद्धि जितनी विशाल होती है, उसकी अपेक्षासे उसमें कुतर्क-बुद्धि भी उतनी ही स्वल्प होती है, इस भावको सूचित करनेके लिये गणेशजी उतने ही विशालकाय और उनका वाहन चूहा उतना ही छोटा है। यही गणपतिके स्वरूपका संक्षेपमें रहस्य है।

अर्वाचीन सज्जनोंकी वेदमें गणपति-नामके अनुल्लेखकी भ्रान्ति उपर्युक्त वेद-मन्त्रोंके प्रमाणसे दूर की गयी। साथ ही गणपतिके ध्येयस्वरूप और उसके गूढ़ रहस्यका परिचय पाठकोंको दिया गया।

अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम्।
अनेकदं तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे॥

~~~○~~~

श्रीगणेश—परम देवता

(श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

स्मार्त पंचदेवोपासक होते हैं। ये पाँच देव—१-श्रीविष्णु, २-श्रीशिव, ३-श्रीशक्ति, ४-श्रीसूर्य और ५-श्रीगणपति हैं। इनमें जो स्मार्त वैष्णव हैं, वे विष्णुको ही मुख्य अंगी और शेष चारोंको उनके अंग मानकर पूजन करते हैं। इसी प्रकार स्मार्त शैव शिवको, शाक्त शक्तिको, सौर सूर्यको और गाणपत्य गणेशजीको मुख्य मानते हैं। पूजा वे पाँचोंकी करते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो नाम-रूपकी विभिन्नता होनेपर भी तत्त्वतः ये पाँचों एक ही हैं; क्योंकि मुख्य तत्त्व तो एक अद्वैत है, किंतु उपासकोंकी भावनाके अनुसार लोग उसी एकको ही विविध नाम-रूपोंसे पूजते, मानते और स्मरण करते हैं—'**रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेकः।**'

'गणेश'-शब्दका अर्थ है—'जो समस्त जीव-जातिके 'ईश'—स्वामी हों—'**गणानां जीवजातानां यः ईशः—स्वामी स गणेशः।**' इन भगवान् गणपतिका सृष्टिके आदिमें प्रादुर्भाव हुआ। कुछ लोगोंका कहना है कि 'ये अनार्योंके देवता हैं। आर्योंने अनार्योंको अपनेमें मिलानेके लिये इन्हें पंचदेवोंमें स्वीकार कर लिया।' ऐसी विचारधारा उन विदेशियोंकी है, जो आर्योंको भारतके बाहरसे आया मानते हैं, जो कि असभ्यावस्थामें कुछ ही सहस्र वर्ष पूर्व विदेशोंसे आकर भारतमें बसे और शनैः-शनैः सभ्य होते गये। ये भ्रान्त विचार हैं। हमारे वेद-शास्त्रोंके अनुसार तो सृष्टिका आरम्भ ही पुष्करसे हुआ। आर्य सदासे यहींके निवासी हैं। वे आरम्भमें असभ्य नहीं, पूर्ण सभ्य थे। वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य और
~~~

क्रतु—ये सब पूर्ण पुरुष परम सभ्य थे। राम,कृष्ण,परशुराम आदि अवतार यहीं अवतरित हुए। न जाने कितने सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग बीत गये, हमारे यहाँ आर्य-अनार्यका कोई प्रश्न ही नहीं रहा। दो तरहके मनुष्य होते थे—नगर-निवासी और वनवासी। दोनों स्वतन्त्र तथा एक-दूसरेके पूरक होते थे। गणपति अनादिकालसे आर्योंके परम पूजनीय देव रहे हैं। समस्त मंगलकार्योंमें सबसे प्रथम गणेशजीकी पूजा होती है। शिवजीका जब पार्वतीजीके साथ विवाह हुआ तो सर्वप्रथम गणेश-पूजन तब भी हुआ।

कुछ लोग शंका करते हैं—'गणेशजी तो शिवजीके पुत्र हैं; उनके विवाहमें तो वे पैदा भी नहीं हुए थे; फिर उनका पूजन कैसे हुआ?'

वास्तवमें गणेशजी किसीके पुत्र नहीं। वे अज, अनादि एवं अनन्त हैं। ये जो शिवजीके पुत्र गणेश हुए, वे तो उन गणपतिके अवतार हैं। जैसे विष्णु अनादि हैं; राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, हयग्रीव—ये सब उनके अवतार हैं। मनु, प्रजापति, रघु, अज—ये सभी रामकी उपासना करते थे। दशरथ-नन्दन राम उन अनादि रामके अवतार हैं। इसी प्रकार शिव-तनय गणपति उन गणेशके अवतार हैं। इस सम्बन्धकी पुराणोंमें अनेकों कथाएँ हैं।

'ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें बताया गया है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर पार्वतीजीके समीप गये और उनकी स्तुति करके कहने लगे—' हे देवि! गणेशरूप जो श्रीकृष्ण हैं, वे कल्प-कल्पमें तुम्हारे पुत्र होते हैं। अब वे शिशु होकर शीघ्र ही तुम्हारी गोदमें आयेंगे।' ऐसा कहकर विप्ररूपधारी श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। तब एक अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार, सर्वांगमनोहर शिशु माँ पार्वतीजीकी शय्यापर प्रादुर्भूत हो गया। बालक इतना सुन्दर और सुगठित शरीरका था कि उसे देखनेके लिये समस्त ऋषि-मुनि, ब्रह्मा-विष्णु आदि देवतागण आने लगे। एक दिन उस सुन्दर शिशुको देखने शनिदेव भी आये। शनिदेवकी पत्नीने किसी बातसे रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया था कि 'तुम जिसकी ओर देखोगे, उसका सिर धड़से पृथक् हो जायगा।' अतः वे आकर चुपचाप पार्वतीजीके समीप बैठ गये। पार्वतीने बार-बार कहा—'शनि! तुम मेरे पुत्रको देखते क्यों नहीं' देखो, कितना सुन्दर सुललित शिशु है।' शनिने बहुत कहा—'माँ! मेरी घरवालीने मुझे शाप दे दिया है, जिसके कारण मेरी दृष्टि अनिष्ट कारक हो सकती है।' किंतु माँने उनकी बात मानी नहीं; देखनेको कहती ही रहीं। शनिकी भी इच्छा, उस शिशुको देखनेकी हुई। ज्यों ही उन्होंने गणेशकी ओर देखा, त्यों ही उनका सिर धड़से पृथक् हो गया। इससे सर्वत्र हाहाकार मच गया। तब भगवान् विष्णु पुष्पभद्रा-नदीके अरण्यसे एक गजशिशुका मस्तक काटकर लाये और गणेशजीके मस्तकपर जमा दिया। तभीसे गणेशजी 'गजानन' हो गये।

स्कन्दपुराणमें लिखा है—'माँ पार्वतीने अपने उबटनकी बत्तियोंसे एक शिशु बनाकर उसे जीवित करके पुत्र मान लिया और कहा— 'मैं स्नान कर रही हूँ, तुम किसीको भीतर मत आने देना।' इसी बीच शिवजी आ गये। इन्होंने शिवजीको रोका। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। शिवजीने इनका मस्तक काट लिया। इसे सुनकर पार्वतीजी 'पुत्र-पुत्र' कहकर बहुत रुदन करने लगीं। उसी बीच गजासुर शिवजीसे लड़ने आया। शिवजीने उसका मस्तक काटकर इनके धड़पर जमा दिया। इससे ये 'गजानन' हुए।

इसी प्रकारकी पुराणोंमें अनेक कथाएँ हैं। कल्पभेदसे ये सभी सत्य हैं। गणेश परम देवता हैं। इनके गणेश, गणपति, विनायक, सुमुख, एकदन्त, गणाधिप, हेरम्ब, लम्बोदर, विकट, धूम्रकेतु, गजानन, विघ्नेश, परशुपाणि, गजास्य, शूर्पकर्ण तथा मूषकध्वज आदि अनेक नाम हैं।

(छप्पय)

सूप-सरिस बड़ कान भक्त अनुकम्पा-कारक।
अच्युत, जगके हेतु, सृष्टिके आदि प्रवर्तक॥
प्रकृति पुरुष तैं परे ध्यान गनपति को करिहैं।
नसैं सकल तिनि बिघ्न अवसि भव-सागर तरिहैं॥
पाठ-हवन-पूजन करें, पाप रहित होवैं भगत।
सब बिघ्ननि तैं छूटिकैं, लेहिं जनम नहिं पुनि जगत॥*

~~०~~

* पूज्य महाराजजीने अपने लेखमें श्रीगणपति-उपनिषद्का सार बड़े ही सुन्दर ढंगसे दिया था, पर उक्त उपनिषद्का सार अन्य महात्माओंके लेखोंमें विस्तारसे आ जानेके कारण उसे यहाँ नहीं दिया गया है—इस विवशताके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं। —सम्पादक

श्रीगणेश तत्त्वतः राम, कृष्ण, शिव आदिसे अभिन्न हैं

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप कैसा है, इस बातको तो वे ही जानते हैं, परंतु इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भगवान् अनेक रूपों और नामोंसे प्रसिद्ध होनेपर भी यथार्थमें एक ही हैं; भगवान् या सत्य कदापि दो नहीं हो सकते। भगवान्‌के अनन्त रूप, अनन्त नाम और अनन्त लीलाएँ हैं। वे भिन्न-भिन्न स्थलों और अवसरोंपर भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंमें अपनेको प्रकाशित करते हैं। भक्त अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌के भिन्न-भिन्न स्वरूपोंकी उपासना करते हैं और अपने इष्टरूपमें ही उनके दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ होते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि एक भक्तका उपास्य स्वरूप दूसरे भक्तके उपास्य स्वरूपसे पृथक् होनेके कारण दोनों स्वरूपोंकी मूल एकतामें कोई भेद है। वे ही ब्रह्म हैं, वे ही राम हैं, वे ही कृष्ण हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु हैं, वे ही सच्चिदानन्द हैं, वे ही माँ जगज्जननी हैं, वे ही सूर्य हैं और वे ही गणेश हैं।

जो भक्त इस तत्त्वको जानता है, वह अपने इष्ट रूपकी उपासनामें अनन्यभावसे संलग्न रहता हुआ भी अन्यान्य सभी भगवत्-स्वरूपोंको अपने ही इष्टदेवके रूप मानता है; इसलिये वह किसीका भी विरोध नहीं करता। वह अनन्य श्रीकृष्णोपासक होकर भी मानता है कि 'मेरे ही मुरलीधर श्यामसुन्दर भगवान् कहीं श्रीरामस्वरूपमें, कहीं शिवस्वरूपमें, कहीं गणेशस्वरूपमें, कहीं माँ कालीके स्वरूपमें और कहीं निर्लेप निराकार ब्रह्मरूपमें उपासित होते हैं; मेरे ही श्यामसुन्दर अव्यक्तरूपसे समस्त विश्व-ब्रह्माण्डमें नित्य एकरस व्याप्त हैं; वे ही मेरे नन्दनन्दन त्रिकालातीत, भूमा, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं; वे ही मेरे पुरुषोत्तम आत्मरूपसे समस्त जीव-शरीरोंमें स्थित रहकर उनका जीवत्व सिद्ध कर रहे हैं; वे ही समय-समयपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होकर संत-भक्तोंको सुख देते और धर्मकी संस्थापना करते हैं और वे ही जगत्‌के पृथक्-पृथक् उपासकसमुदायोंके द्वारा पृथक्-पृथक् रूप-गुण-भावसम्पन्न होकर उनकी पूजा ग्रहण करते हैं। प्रत्येक परमाणुमें उन्हींका नित्य निवास है।' इसी प्रकार अनन्य श्रीरामोपासक, अनन्य श्रीशिवोपासक और श्रीगणेशोपासकोंको भी—सबको अपने ही प्रभुका स्वरूप, विस्तार और ऐश्वर्य समझना चाहिये। जो मनुष्य दूसरेके उपास्य इष्टदेवको अपने प्रभुसे भिन्न मानता है, वह प्रकारान्तरसे अपने ही भगवान्‌को छोटा बनाकर उनका अपमान करता है। वह असीमको ससीम, अनन्तको स्वल्प, व्यापकको एकदेशी और विश्वपूज्यको क्षुद्रसम्प्रदाय पूज्य बनाता है। केवल हिंदुओंके ही नहीं, समस्त विश्वकी विभिन्न जातियोंके पूज्य परमात्मदेव यथार्थमें एक ही सत्य तत्त्व हैं। ये सारे भेद तो देश, काल, पात्र, रुचि, परिस्थिति आदिके भेदसे हैं, जो भगवत्कृपासे भगवान्‌की प्राप्ति होनेके बाद आप ही मिट जाते हैं; अतएव अपने इष्टस्वरूपका अनन्य उपासक रहते हुए ही वस्तुगत भेदको भुलाकर सबमें, सर्वत्र सब समय परमात्माके दर्शन करने चाहिये। यह समस्त चराचर विश्व उन्हीं भगवान्‌का शरीर है, उन्हींका स्वरूप है—यह मानकर कर्तव्य-बोधसे जीवमात्रकी सेवा करके भगवान्‌को प्रसन्न करना चाहिये। सम्प्रदायभेदके कारण एक-दूसरेके उपास्यदेवकी निन्दा करना अपराध है।

अतएव सारे भेदमूलक विरोधी द्वेषभावोंको त्यागकर अपनी-अपनी भावना और मान्यताके अनुसार भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। उपासना करते-करते जब भगवान्‌की कृपाका अनुभव होगा, तब उनके यथार्थ स्वरूपका अनुभव आप ही हो जायगा। भगवान्‌का वह रूप कल्पनातीत है। मनुष्यकी बुद्धि वहाँतक पहुँच ही नहीं पाती। निराकार या साकार भगवान्‌के जिन-जिन स्वरूपोंका वाणीसे वर्णन या मनसे मनन किया जाता है, वे सब शाखाचन्द्र-न्यायसे भगवान्‌का लक्ष्य करानेवाले हैं; यथार्थ नहीं। भगवान्‌का स्वरूप तो सर्वथा अनिर्वचनीय है। इन स्वरूपोंकी वास्तविक निष्काम उपासनासे एक दिन अवश्य ही भगवत्कृपासे यथार्थ स्वरूपकी उपलब्धि कर भक्त-जीवन धन्य और कृतार्थ हो जायगा। फिर भेदकी सारी गाँठें अपने-आप ही पटापट टूट जायँगी। परंतु इस लक्ष्यके साधकको पहलेसे ही सावधान रहना चाहिये। कहीं विश्वव्यापी भगवान्‌को अल्प बनाकर हम उनकी तामसी पूजा

करनेवाले न बन जायँ; कहीं असीमको सीमाबद्ध कर हम उनका तिरस्कार न कर बैठें। भगवान् महान्-से-महान् और अणु-से-अणु हैं; त्रिकालमें नित्य स्थित और त्रिकालातीत हैं; तीनों लोकोंमें व्याप्त और तीनोंसे परे हैं। सब कुछ उनमें हैं और वे सबमें हैं। बस, वे-ही-वे हैं; उनकी महिमा उन्हींको ज्ञात है; उनका ज्ञान उन्हींको है, उनका स्वरूप-भेद उन्हींमें है।

हमारा कर्तव्य तो विनम्रभावसे सदा-सर्वदा उनके चरणोंमें पड़े रहकर उनके कृपा-कटाक्षकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे निहारते रहना ही है। जब वे कृपा करके अपना स्वरूप प्रकट करेंगे, तभी हम उन्हें जान सकेंगे। इसके सिवा उन्हें जाननेका हमारे लिये और कोई भी सहज उपाय नहीं है। परंतु इसके लिये हमें कुछ तैयारी करनी होगी; मनका मैल दूर करना होगा; सारे जगत्में उनका दीदार देखना होगा; सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें उनकी छायाका प्रत्यक्ष करना पड़ेगा। जगत्में कौन ऐसा है, जिसका किसी प्रकारसे भी उन्हें स्वीकार किये बिना छुटकारा हो सके। भिन्न-भिन्न दिशाओंसे आनेवाली नाना नदियाँ एक ही समुद्रकी ओर दौड़ती हैं। इसी तरह सभीको सुखस्वरूप भगवान्‌की ओर दौड़ना पड़ता है। नास्तिकको भी किसी-न-किसी प्रकारसे उनकी सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है? इसलिये सबमें उन्हें देखनेकी कोशिश करनी चाहिये।

* * * *

गणेशजीके हाथीके सिर और मूषककी सवारीपर लोग शंका करते हैं। इसका कारण यह है कि वे यही समझते हैं कि यहाँके मनुष्य-जैसा उनका धड़ होगा, यहाँके हाथी-जैसा उनका मस्तक होगा और यहाँके छोटे-से चूहे-जैसी उनकी सवारी होगी। वे अपने कल्पित अनुमानको सत्य मानकर ही यह शंका उठाते हैं। पर यदि किसीको यह बात ठीक-ठीक जाननी हो तो उसे भक्ति-भावसे श्रीगणेशकी आराधना करनी चाहिये। वे ही अपने धड़, मस्तक और सवारीका यथार्थ रहस्य बतायेंगे। उस समय कोई शंका नहीं रह जायगी। आपको सोचना चाहिये कि जब गणेशजी साक्षात् महेश्वरके पुत्र हैं, तब उनका शरीर कैसा होगा। भगवान् शंकरको 'कृत्तिवास' कहा गया है। वे हाथीका चमड़ा लंगोटकी तरह धारण करते हैं। इससे हाथीकी अपेक्षा उनके शरीरका बड़ा होना स्वतः सिद्ध है। इसी प्रकार श्रीगणेशका शरीर भी होगा। उनके मस्तकपर हाथीके बच्चेका ही मस्तक जोड़ा गया था। जब गणेशजीने सोच-समझकर चूहेको अपना वाहन बनाया है, तब वह चूहा भी वैसा होगा, जो उनका भार वहन कर सके।

भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़ है। गरुड़ एक पक्षीका नाम है। क्या जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले भगवान् विष्णुका वाहन एक पक्षी हो सकता है? किंतु नहीं, गरुड़ साधारण पक्षी नहीं हैं। वे ऐरावत-जैसे बड़े-बड़े गजराजोंको अपने पंजेमें दबाकर हजारों योजन उड़नेकी शक्ति रखते हैं। हनुमान्‌जी वानर ही कहे जाते हैं, जिनके एक मुक्केकी मारसे त्रिभुवनविजयी रावणको भी मूर्च्छा आ गयी थी। क्या आजकलके साधारण वानरोंसे उनकी तुलना की जायगी?

श्रीगणेशका आधिदैविक रूप जैसा विशाल है, उसके अनुरूप ही उनका धड़, मस्तक और वाहन आदि सभी वस्तुएँ हैं।

आध्यात्मिक भावमें वे सबके आत्मा हैं, अन्तर्यामी हैं और सर्वत्र व्यापक हैं। इन्द्रियोंके स्वामी होनेसे वे 'गणेश' हैं। मूषकका अर्थ है—चोरी करनेवाला। मनुष्यके भीतर जो चोरी आदि पापकी वृत्तियाँ हैं, उनका प्रतीक है—मूषक। गणेशजी उस मूषकपर चढ़ते हैं, अर्थात् उसपर चरण-प्रहार करके उसे दबाये रहते हैं। गणेशजीके चिन्तन और स्मरणसे भीतरके दुर्गुण दब जाते हैं। गणेशका अर्थ सभी प्रकारके गणोंका स्वामी भी होता है। किसी भी संघके सभापति या राजा भी गणेशके स्वरूप हैं। वहाँ भी मूषकवाहनका अर्थ दुष्टों एवं दुर्वृत्तियोंका दमन ही है। गजमुख होना भी रहस्यसे शून्य नहीं है। 'गज' का अर्थ होता है—आठ। जो आठों दिशाओंकी ओर मुख रखे, वह 'गजमुख' है। यह गुण प्रत्येक स्वामी या राजामें होना अभीष्ट है। गणेशजी विभु एवं सर्वज्ञ होनेसे आठों पहरकी और आठों दिशाओंकी खबर रखते हैं, इसलिये वे 'गजमुख' हैं। जो उन्हींकी भाँति 'गजमुख' और 'मूषकवाहन' होगा, वह सिद्धि-बुद्धियोंका स्वामी बन सकता है। यह प्रसिद्धि है कि ऋद्धि और सिद्धि—दोनों गणेशजीकी सेवामें खड़ी होकर उन्हें चँवर डुलाती रहती हैं।

~~~○~~~
~~~

पञ्चदेवोपासनामें श्रीगणेशका स्थान

(महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी भजनानन्दजी सरस्वती महाराज)

शास्त्रीय प्रमाणोंसे पंचदेवोंकी उपासना सम्पूर्ण कर्मोंमें प्रख्यात है। 'शब्दकल्पद्रुम' कोशमें लिखा है—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

पंचदेवोंकी उपासनाका रहस्य पंचभूतोंके साथ सम्बन्धित है। पंचभूतोंमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश प्रख्यात हैं और इन्हींके आधिपत्यके कारणसे आदित्य, गणनाथ (गणेश), देवी, रुद्र और केशव—ये पंचदेव भी पूजनीय प्रख्यात हैं। एक-एक तत्त्वका एक-एक देवता स्वामी है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

क्रम निम्न प्रकार है—

महाभूत	अधिपति
१-क्षिति (पृथ्वी)	शिव
२-अप् (जल)	गणेश
३-तेज (अग्नि)	शक्ति (महेश्वरी)
४-मरुत् (वायु)	सूर्य (अग्नि)
५-व्योम (आकाश)	विष्णु

यह विषय गम्भीरतासे मननीय तथा गवेषणीय है। इस विषयमें अल्प ही संकेत दिये जा सकते हैं। भगवान् श्रीशिवके पृथ्वीतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी पार्थिव-पूजाका विधान है। भगवान् विष्णुके आकाशतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी शब्दोंद्वारा स्तुतिका विधान है। भगवती देवीके अग्नितत्त्वका अधिपति होनेके कारण उनका अग्निकुण्डमें हवनादिके द्वारा पूजाका विधान है। श्रीगणेशजीके जलतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी सर्वप्रथम पूजाका विधान है। मनुका कथन है—**'अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु बीजमवासृजत्।'** (मनुस्मृति १।८) इस प्रमाणसे सृष्टिके आदिमें एकमात्र वर्तमान जलका अधिपति गणेश हैं। अतः जितने भी अनुष्ठान किये जायँ, उनके आरम्भमें गणेश-पूजन अत्यन्त आवश्यक है। सूर्यके वायुतत्त्वके अधिपति होनेके कारण प्राणकी रक्षाके लिये **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (यजुर्वेद ७।४२) इस प्रमाणसे नमस्कारादिद्वारा पूजनका विधान है।

'मन्त्रयोगसंहिता' में कहा गया है—

मानवानां प्रकृतयः पञ्चधा परिकीर्तिताः।
यतो निरूप्यते सर्गः पञ्चभूतात्मकैर्बुधैः॥
भिन्ना यद्यपि भूतानां प्रकृतिः प्रकृतेर्वशात्।
तथापि पञ्चतत्त्वानामनुसारेण तत्त्ववित्॥
प्रत्येकतत्त्वप्राचुर्यं विमृश्य विधिपूर्वकम्।
उपासनाधिकारस्य पञ्चभेदमवर्णयत्॥

तात्पर्य यह है कि समस्त जगत् पञ्चभूतात्मक है। इसलिये तत्सम्बन्धी पंचदेवोंकी उपासना अनिवार्य है। प्रत्येक पूजामें पंचदेवोपासनाका विधान है—**'गणेशादिपञ्चदेवताभ्यो नमः'** (नारदपुराण ३।६५)। उनमें भी सर्वप्रथम गणेशकी पूजा अनिवार्य है। इन गणेशकी पूजाके लिये अनेक प्रमाण हैं—

'गणानां त्वा' इत्यादि (शुक्लयजुर्वेदसंहिता २३।१९)

'गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्' (६) में इनको सर्वदेवमय माना गया है और इनकी पूजासे सब देवताओंकी पूजा होती है, ऐसा लिखा है—

'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥'

इसी प्रकार 'गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्' में लिखा है कि 'जो गणेशकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण दोषोंसे, सम्पूर्ण विघ्नोंसे, सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और वही सर्वविद् है—

महाविघ्नात् प्रमुच्यते। महापापात् प्रमुच्यते। सर्वदोषात् प्रमुच्यते। स सर्वविद् भवति।' (११)

इसी उपनिषद्के मन्त्र ४ में भी इनकी पूजा और जपका विधान है—

'गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः, अर्धेन्दुलसितम्, तारेण रुद्धम्। एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः संधानम्, संहिता संधिः। सैषा गणेशविद्या। ॐ गं (गणपतये नमः)।'

श्रीगणेशकी अनेक उपनिषदोंमें भिन्न-भिन्न गायत्रियाँ भी प्राप्त होती हैं—

१-**एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥** (गणपत्युपनिषद्)

२-**तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥** (नारायणोपनिषद् १०। १)

३-**तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥** (मैत्रायणीसंहिता २। ९। ६)

पञ्चदेवोपासना वेदविहित है। इस विषयमें अनेक वैदिक प्रमाण उपलब्ध हैं। पञ्चदेवोपासनामें गणेशका स्थान सर्वप्रथम है; क्योंकि वे प्रथम उत्पन्न होनेवाले (जल)-तत्त्वके अधिपति हैं; इसलिये सर्वप्रथमतत्त्वके अधिपतिकी पूजा सर्वप्रथम होनी ही चाहिये।

गणेशगीता १। २१ में लिखा है कि 'शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और मुझ गणेशमें अभेदबुद्धि रखनेवाला ही योगी होता है'—

शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप।
याऽभेदबुद्धिर्योगः स सम्यग्योगो मतो मम॥

इसलिये सभी देवताओंमें गणेशकी पूजाका सर्वप्रथम स्थान युक्तिसंगत है।

~~o~~

श्रीगणेशदर्शनकी दृष्टि

(साधुवेषमें एक पथिक)

तत्त्ववेत्ता तो आत्माको ही एकमात्र सर्वाधार परम देवता समझते हैं और उसी एक महादेवकी उपासनामें तत्पर रहते हैं। आजका भौतिक विज्ञानी अणुशक्तिसे परिचित है, पर आधिदैविक और आध्यात्मिक विज्ञानसे अपरिचित रहनेके कारण वह अन्तर्जगत्‌के दिव्य अणुओं तथा अध्यात्मलोकके आत्माणुके विषयमें आकर्षित नहीं दीखता। जिस प्रकार पार्थिव अणुकी शक्तिकी खोज ध्यानयोगद्वारा सम्भव हो सकी है, उसी प्रकार सूक्ष्म-जगत्‌की शक्तियोंकी खोज बहुत पहले ही हो चुकी है। 'गणेश' शब्दका अर्थ है—गणोंका स्वामी। हमारे शरीरमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण हैं। इनके पीछे जो शक्तियाँ हैं, उन्हींको चौदह देवता कहते हैं। इन देवताओंके मूल प्रेरक हैं—श्रीगणेशजी।

प्रायः मनुष्य अपनी देहके बाहरी कोषसे ही आंशिक रूपमें परिचित होते हैं। उनमेंसे अधिकांश लोग अन्तरंग शक्तियोंसे अनभिज्ञ रहते हैं। शरीरके भीतर गुदास्थानमें गणेशचक्र है, यह 'मूलाधारचक्र' कहलाता है। ध्यानयोगके द्वारा योगियोंको इसका दर्शन होता है। उसके दल, वर्ण, तत्त्व, बीज, वाहन और चक्रके देवता तथा उनके गुण और शक्ति आदिका अनुभव होता है। जो साधक इस मूलाधार—गणेशचक्रको ध्यानसे देखता रहता है, उसको विद्या तथा आरोग्यकी प्राप्ति होती है। मूलाधार-गणेशचक्रसे शक्ति और ज्ञानकी गतिका विलक्षण दर्शन मिलता है। यही कारण है कि सबसे पहले गणेशजीकी वन्दना और स्मरणको सिद्धिप्रद माना गया है। श्रीगणेशजीकी मूर्ति तो बालक भी देख लेते हैं, पर उनके दिव्य रूपको ध्यानयोगद्वारा कोई साधक ही समझ पाता है। गणेशजीको तत्त्वतः जाननेमें कोई सिद्ध ही समर्थ होता है।

~~o~~

श्रीकार्तिकेयका विनोद

जयति कुमार-अभियोग-गिरा गौरी-प्रति स-गण गिरीश जिसे सुन मुसकाते हैं।
'देखो अंब, हेरंब ये मानसके तीरपर तुंदिल शरीर एक ऊधम मचाते हैं॥
गोद-भरे मोदक धरे हैं सविनोद उन्हें सूँड़से उठाके मुझे देनेको दिखाते हैं।
देते नहीं, कंदुक-सा ऊपर उछालते हैं, ऊपर ही झेलकर, खेलकर खाते हैं॥

—श्रीमैथिलीशरण गुप्त

~~o~~

सिद्धिदाता गणेश

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज)

प्राचीन देवताओंमें सिद्धिदाता गणपतिका स्थान बहुत ही उच्च है। महागणपति, सिद्धिगणपति, हरिद्रागणपति आदि भेदसे उनके अनेक प्रकार हैं। गणपतिकी उपासना प्राचीन आर्यजगत्की पंचदेवोपासनामें एक मुख्य उपासना है। कल्पनाके आधारपर अनेक लोग अनेक प्रकारसे गणेशकी व्याख्या किया करते हैं। इसके मूलमें गणपतिके प्रति देशव्यापी श्रद्धाकी अधिकता देखनेमें आती है। वर्तमान युगमें कोई-कोई रूपकके रूपमें गणपतिकी व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार वे सिद्धिदायक दिव्य शक्तिके एक रूपकके सिवा और कोई कुछ भी नहीं हैं। गणपति-तत्त्वकी शास्त्रीय आलोचना करनेपर ज्ञात होता है कि एक प्रकारसे गणपति ॐकारके ही प्रतीक हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे देवतत्त्वका विश्लेषण करना वर्तमान युगमें शिक्षाका एक अंग है। अध्यापक मैकडानल्ड (Macdonald) आदि बहुतेरे गवेषकोंने इस विषयमें यथाशक्ति अपनी विद्या बुद्धिका उपयोग किया है। गणपतिके सम्बन्धमें बहुत-सी ऐतिहासिक और अनैतिहासिक कहानियाँ निबद्ध हैं। उन सबकी भलीभाँति आलोचना करनेसे ज्ञात होता है कि वैचित्र्यके साथ-साथ उन सबमें एक प्रकारका साम्य है। वस्तुतः सत्यका रूप विभिन्न दिशाओंमें विभिन्न प्रकारसे प्रकाशित होता है। गणपतिका वह हस्ति-शुण्ड प्राचीन युगके चिन्तकका निदर्शन है। वर्तमान युगके मनीषीगण ओंकारको अधिकांशमें गणपतिका एक प्रतीक मानते हैं। यह मांगल्य-वाचक है, विचित्र एवं विशिष्ट शक्तिका निदर्शन है। मैं आशा करता हूँ कि यह गणपति-विषयक अनुसंधान सम्पूर्णरूपमें प्रकाशित होनेपर गणपतिके सम्बन्धमें प्राचीन आर्योंकी चिन्तन-धारा कुछ अंशमें अभिव्यक्त हो सकेगी।

गणपतिकी आराधनाके अनेक प्रकारभेद हैं। विभिन्न प्रकारके प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये उनकी विभिन्न प्रकारकी उपासनाका प्रवर्तन हुआ है। परंतु मूलभाव सर्वत्र एक ही है। गणपतिके हस्ति-शुण्ड क्यों है, इसके पौराणिक तथा ऐतिहासिक अनेक कारण हैं। भाव-जगत्में भी इसका एक तात्पर्य है। यह एक ओर जैसे प्राणि विशेषका अंगविशेष दीख पड़ता है, उसी प्रकार दूसरी दृष्टिसे इसकी तात्त्विक गवेषणाके लिये भी बहुत गुंजाइश है। गणेश-उपासनाके भी अनेक प्रकारभेद थे। हरिद्रागणपतिकी बात बहुत सुननेमें आती है, किंतु मूलमें वहाँ हस्तिशुण्ड भी नहीं है। उसमें किसी देवताका नाम है, इसमें संदेह नहीं। हमारे प्राचीन आर्य लोगोंने पंचदेवोपासनाका जो क्रम निबद्ध किया था, उसी क्रममें गणपतिकी उपासनाका एक स्थान है। यह उपासना भारतीय लोगोंकी विशिष्टता है। अतएव भारतीय सभ्यताकी अति प्राचीन अवस्थाके साथ इसका योग रहा है। गणपति सिद्धिदाताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। सारी उपासनाका अन्त सिद्धिका सूचक होता है। ओंकार-उपासना जैसे माङ्गलिक है, वैसे ही गणपतिकी उपासना भी माङ्गलिक मानी जाती रही है। सब उपासनाओंकी दो दिशाएँ हैं—एक आदिम और दूसरी अन्तिम। इस दृष्टिसे सब प्रकारकी उपासनाके मूलमें एक ही तत्त्व रहता है और उसके अन्तमें उसी तत्त्वका पूर्ण विकास होता है। पंचदेवतामें प्रत्येकके साथ प्रत्येक आर्य-संतानका परिचय है और उसकी चरम स्थितिके सम्बन्धमें भी सर्वत्र एक ही रहस्य रहता है।

इस सम्बन्धमें विभिन्न लेखकोंसे प्राप्त विभिन्न दृष्टिकोणोंसे रचित निबन्धावली प्राप्त होनेपर निबन्धावलीके अन्तमें चरम रहस्यके रूपमें गणपति-तत्त्वकी आलोचना सम्भव हो सकेगी। गणेशके सम्बन्धमें अनेक बातें अनेक पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे विभिन्न स्थानोंमें वर्णित हुई हैं। उन सब बातोंका तत्त्व निर्णय करके ग्रन्थावलीके सम्पादक महोदय इस गणपति-तत्त्वके रहस्यकी व्याख्या करेंगे। उस व्याख्याको देखनेके लिये हम सब उत्कण्ठित हैं। उसमें गणपति-सम्बन्धी समस्त विचारधाराओंका संक्षिप्तरूपमें प्रकाशन होगा। अनेक साधनाओंके अनेक रहस्य प्रकाशित होंगे। उस शुभ दिनके लिये प्रार्थना करते हुए मैं अब अपनी लेखनीको विश्राम दे रहा हूँ। इन लेखोंमें वैदिक युगके गणपति, पौराणिक गणपति और तान्त्रिक गणपति-तत्त्वके साथ सामञ्जस्य प्रकाशित होगा, ऐसी आशा है।

~~○~~

श्रीगणेश सर्वत्र प्रथमपूज्य क्यों?

(महामहोपाध्याय श्रीबालशास्त्री हरदास)

अपने सनातन वैदिक हिंदू-धर्मके उपास्य देवताओंमें श्रीगणेशदेवका महत्त्व अनन्य-साधारण है। किसी भी धार्मिक और माङ्गलिक कार्यके प्रारम्भमें उनकी पूजा किये बिना उस कार्यका आरम्भ नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, किसी भी देवताके पूजन और उत्सव-महोत्सवका प्रारम्भ करते ही महागणपतिका स्मरण और उनका पूजन करना ही पड़ता है। इतना महत्त्व अन्य किसी देवताका नहीं है। इस देवताके इतने महत्त्वका कारण क्या है, यह प्रश्न सहज ही किसीके भी मनमें उत्पन्न हो सकता है। यह देवता शब्दब्रह्म अर्थात् ओंकारका प्रतीक है, यही इसकी महत्ताका मुख्य कारण है।

ओंकारका महत्त्व

अपने तत्त्वज्ञानके प्रमाणसे ओंकार ही सृष्टिका आदिकारण है। यह अव्यक्त परब्रह्मका सबसे प्रथम व्यक्त स्वरूप है। उपनिषदोंके अनुसार ब्रह्मसे सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशका विशुद्ध स्वरूप अथवा तन्मात्रा शब्द होनेके कारण यह शब्द 'ओंकार' है। इस कारण ब्रह्म अथवा परमेश्वरमें तथा ओंकारमें परस्पर वाच्य-वाचक-भाव-सम्बन्ध है। यह आजकी भाषाके अनुसार तत्तत् पदार्थके वाचक शब्दोंका उनके अर्थोंसे होनेवाले सम्बन्धके समान केवल सांकेतिक अथवा मनुष्यकृत नहीं, अपितु स्वयम्भू सम्बन्ध है। इस ओंकार और परमेश्वरके सम्बन्धको दृष्टिगत रखकर भगवान् पतञ्जलिने ईश्वरकी उपासना करते समय 'वह किस नामके उच्चारणसे करनी चाहिये अथवा उस समय किस शब्दका जप करना चाहिये'—इसका स्पष्टीकरण आगेके तीन सूत्रोंमें किया है। ये सूत्र हैं—

'ईश्वरप्रणिधानाद्वा।' **'तस्य वाचकः प्रणवः।'**

(योगसूत्र १। २३, २७)

तथा—

'तज्जपस्तदर्थभावनम्।' (योगसूत्र १। २८)

ओंकार और ईश्वरका स्वयम्भू-सम्बन्ध

यह ओंकार नादमय है और ईश्वर चैतन्यशक्तिस्वरूप है। भगवान् पतञ्जलिने उनके जिस परस्पर वाच्य-वाचक-सम्बन्धका वर्णन किया है, उसका ठीक-ठीक अर्थ समझ लेना आवश्यक है। शब्दोंके अर्थ तीन प्रकारके हैं—वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ। इन तीन प्रकारके अर्थोंसे होनेवाले वाच्य-वाचक, लक्ष्य-लक्षक और व्यङ्ग्य-व्यञ्जक सम्बन्धोंसे सभी लोग परिचित हैं। परंतु इनसे अलग भी इस प्रकारके शब्दका अर्थसे सम्बन्ध है। वह स्वयम्भू अथवा नैसर्गिक सम्बन्ध है। लौकिक वाणीके शब्दोंका अर्थोंसे इस प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता। केवल मन्त्रमय वाणीका ही अर्थोंके साथ इस प्रकारका सम्बन्ध होता है। इसी कारण लौकिक भाषापर आधारित व्याकरण, मीमांसा, साहित्य इत्यादि शास्त्रोंमें उपर्युक्त तीन प्रकारके सम्बन्धोंका वर्णन उपलब्ध होता है। कारण, यह स्वयम्भू-सम्बन्ध उन शास्त्रोंका विषय नहीं है। वेदान्त, मन्त्रशास्त्रों और योगशास्त्रोंमें इस स्वयम्भू-सम्बन्धका निर्देश स्थान-स्थानपर उपलब्ध होता है। यह स्वयम्भू-सम्बन्ध अर्थात् उत्पादक-उत्पाद्य भावका सम्बन्ध है।

उपनिषदोंमें कहा गया है कि 'इस व्यक्त सृष्टिका घटक द्रव्य आकाश है। अव्यक्तका प्रथम व्यक्तीकरण आकाशके रूपमें हुआ।' **'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'** (तैत्तिरीयोपनिषद् २। १। १) यह उपनिषद्की वाणी है। परंतु आकाशका विशुद्ध स्वरूप क्या है? इस विशुद्ध स्वरूपको 'तन्मात्रा' कहते हैं। हिंदू-तत्त्वज्ञानके अनुसार आकाशकी तन्मात्रा शब्द अथवा नाद है। आकाशसे ही समस्त व्यक्त सृष्टिका आविर्भाव हुआ। इसका अर्थ यही है कि नादसे ही सम्पूर्ण सृष्टिका निर्माण हुआ है। उपनिषदोंमें संक्षेपसे वर्णित सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रमका श्रीमद्भागवतमें अत्यधिक सूक्ष्म रीतिसे ब्यौरेवार वर्णन किया गया है। उसमें कहा गया है कि 'परमेश्वरसे नाद अथवा शब्द, उससे आकाश, आकाशसे स्पर्श, उससे वायु, वायुसे रूप, उससे तेज, तेजसे रस, उससे जल, जलसे गन्ध और उससे पृथ्वी—इस क्रमसे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई।'

इस प्रत्येक व्यक्तीकरणकी प्रक्रियामें सृष्टिका आदि घटक द्रव्य अर्थात् शब्द अथवा नाद अनुस्यूत है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह नाद ही विश्वका आदि घटक द्रव्य है। यह विश्वरूप नाद अपनी श्रवणेन्द्रियको योगकी प्रक्रियासे शुद्ध करके सुननेका प्रयास करनेपर ओंकार-जैसा सुनायी देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि

'ओंकार ही सृष्टिका आदि घटक द्रव्य है। नाद या शब्द इस प्रकारका आदि घटक द्रव्य होनेसे उसका या विश्वका उत्पाद्य-उत्पादक-भाव-सम्बन्ध सिद्ध होता है। विश्व-पदार्थोंके पृथक्-पृथक् मूल घटक द्रव्य शब्द होनेके कारण उनके उच्चारणकी ठीक-ठीक प्रक्रिया ज्ञात होनेपर उक्त उच्चारणके अनुरूप पदार्थ दिखायी देने लगेगा। उन समस्त शब्दोंको ध्वनि-लहरीका पुञ्ज भी कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि ओंकार ही विश्वका मूल कारण है और विश्वके अन्तर्गत जो-जो, जितने पदार्थ हैं, वे वस्तुतः ध्वनि-लहरीकी सृष्टि हैं। इसी ध्वनि-लहरीकी संज्ञा 'वेद' है। 'वेद' अनन्त होनेसे '**अनन्ता वै वेदाः**' यह निर्देश उपलब्ध होता है। मनुस्मृति (१। २१)के '**वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे**।'* इस वचनद्वारा सृष्टिका यह निर्माण-क्रम शास्त्रानुसार ही वर्णित है; और यह सामर्थ्य देखकर जो उसका उपयोग नहीं कर सकता, उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है। इस बातका प्रत्यक्ष उल्लेख ऋग्वेदमें '**किमृचा करिष्यति**' (१। १६४। ३९)—इस मन्त्रद्वारा किया गया है। आजकलके बढ़े हुए विज्ञान अथवा आधुनिक प्रयोगशालाओंमें भी शब्द अथवा नाद-लहरीकी उत्पादन-क्षमता अब सिद्ध हो चुकी है। उत्पादक ध्वनि-लहरी और उससे उत्पन्न होनेवाले पदार्थका सम्बन्ध न तो वाच्यार्थ है, न लक्ष्यार्थ है और न वह व्यङ्ग्यार्थ ही है; अपितु स्वर्ण और उसके अलंकारमें जैसा स्वयम्भू एवं नैसर्गिक सम्बन्ध है, वैसा ही स्वयम्भू-सम्बन्ध है। इसी अभिप्रायसे श्रीतुकाराम महाराजने ओंकारको 'कल्पोंका बीज' (विश्व-सृष्टिका मूल कारण) कहा है। ओंकार और ईश्वरके इस सम्बन्धको दृष्टिमें रखकर ही भगवान् पतञ्जलिने उसे 'ईश्वरका वाचक' कहा है। ओंकारके इस स्वरूपको ध्यानमें रखकर उसे ईश्वरके समान ही उपास्य बतलाया गया है—

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः॥

(श्रीमद्भा० १। ३। ५)

'यह नाना अवतारोंका निधान (आकर) और अविनाशी बीज है, जिसके अंशांशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादिकी सृष्टि होती है।'

ओंकार और गणेश एक ही हैं

'श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष' में कहा गया है कि 'ओंकारका ही व्यक्त स्वरूप गणपति देवता हैं।' सब प्रकारके मंगलकार्यों और देवता-प्रतिष्ठापनके आरम्भमें श्रीगणपतिकी पूजा करनेका कारण यही है। जिस प्रकार प्रत्येक मन्त्रके आरम्भमें ओंकारका उच्चारण आवश्यक है, उसी प्रकार प्रत्येक शुभावसरपर गणपतिकी पूजा अनिवार्य है। यह परम्परा शास्त्रीय है और इसे किसी गणेशभक्तने प्रारम्भ नहीं किया है। वैदिक धर्मान्तर्गत समस्त उपासना-सम्प्रदायोंने एक स्वरसे इस प्राचीन परम्पराको स्वीकार कर इसका अनुसरण किया है।

~~~o~~~

'मन ! गननायक बिनायक मनाइये।'

अभय बरद यह एकरद द्विरद है, द्विरद-बदन को बिरद बड़ो गाइये।
बि-नायक नायक बिनायक के पाय बिना अहै न उपाय अनपाय पद पाइये॥
कबि 'लाल' याके भाल-मद-नद बिहद में बिपद बिदारि कै निरापद अन्हाइये।
सब बिधि नवनिधि सिधि-पति बन्दन कै, आनन्दमगन मन! गनपति ध्याइये॥
बिपति बिदारिबेको गनपति गाइये और बिघन-बिनासक गनेस गोहराइये।
रिधि-सिधि-नवनिधि-मंगल-सदन गजबदन मदन-मद-मरदन ध्याइये॥
हिमगिरि नन्दिनी के नन्दन के पद पर चन्दन चढ़ाइ कै परम पद पाइये।
बिधि के बिधायक, अभय बरदायक, रे मन! गननायक बिनायक मनाइये॥

—श्रीरामलाल

~~~o~~~

* परमेश्वरने सृष्टिके आदिकालमें वेदके शब्दोंसे ही विश्वका निर्माण किया।

विविध गणेश

(अनन्तश्री जगद्गुरु रामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रंगाचार्यजी महाराज)

'गणपति'-स्वरूपकी जिज्ञासामें प्रवृत्त पूर्वाचार्योंने वेदोंमें प्रतिपादित पदार्थ-विद्या एवं योगजधर्मसे उत्पन्न आर्षचक्षुद्वारा—तन्त्र, पुराण एवं श्रौतसूत्र आदि आर्षग्रन्थोंमें यह निर्णय किया है कि विश्वका आधार-प्राण (शक्ति) 'गणपति' है। प्रतिष्ठा-प्राण, आलम्बन-प्राण, स्थिति-प्राण, नियमन-प्राण आदि इसके नामान्तर हैं। 'पाञ्चरात्र-तन्त्र' में इसका नाम 'आधारशिला' है। परमात्मा ही 'गणपति' रूपसे परिणत होते हैं, यह निर्णय तत्त्व-चिन्तकोंने किया है।

गणेशोपासना—ईश्वरोपासना

'अंगोपासना अंगीकी उपासना है'—यह निर्णय वेदान्तमीमांसामें किया गया है। 'तैत्तिरीय उपनिषद्' (१। ५। १)-में उपलब्ध '**अङ्गान्यन्या देवताः**' के आधारसे 'गणपति' अंगी परमात्माके अंग हैं। इस प्रकार अंगरूप इस गणपतिकी उपासना भी अंगीरूप परमात्माकी उपासना हो जाती है।

इन आधाररूप 'गणपति' को आधार बनाकर ही कूर्म-प्राण, शेष-प्राण, गन्ध-प्राण, रस-प्राण (क्षीराब्धि), रूप-प्राण, स्पर्श-प्राण एवं शब्द-प्राण आदि अनेक आधेय प्राण स्थित, विकसित एवं स्थिर रहते हैं; अतः यह प्राण (आधेय) अनेक प्राणगणोंका पति (आधार) होनेसे वेदोंमें 'गणपति'-शब्दसे अभिहित है। किं बहुना, इसकी स्थिरतामें विश्व स्थिर एवं इसके विक्षोभमें वह विक्षुब्ध हो जाता है।

अधिदैवत (ब्रह्माण्ड)-में इस प्राणका पृथ्वीमें अतितरां विकास है, अतः 'तन्त्रशास्त्र' में पृथिवीको 'गणपति' मान लिया गया है। दूसरे शब्दोंमें 'पृथिवी गणेशका स्थूलतम रूप है।' अर्थात् पार्थिव आग्नेय-प्राण (देवता) ही विश्वका आधार है।

योगमें विहित 'भक्तियोग' में 'भूतशुद्धि' के लिये मूलाधार, मणिपूर, स्वाधिष्ठान, अनाहत एवं सहस्रार-दल-कमलमें क्रमशः गणपति, दुर्गा (शक्ति), सूर्य एवं विष्णुका चिन्तन विहित है। यही आर्योंकी समष्टि उपासनारूप 'पञ्चदेवोपासना' है। इन पंचदेवोंका क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इन पाँच भूतोंके साथ अभेद-सम्बन्ध माना गया है; अतः 'गणेश' पृथिवी हैं, यह सिद्धान्त वेद (पदार्थविद्या)-के अनुकूल है। पृथिवीसे अभिन्न होनेके कारण ही 'गणपति'का 'गं' यह बीज माना गया है। वेदकी परिभाषामें 'गं' यह पृथिवीका असाधारण गुण गन्ध है।

योगमार्गमें निर्दिष्ट इस भक्तियोगका मूलाधारमें स्थित 'गणपति' प्रारम्भ हैं और सहस्रारमें विद्यमान 'विष्णु' पर्यवसान हैं। एक ही उपासना (भक्ति) अवस्था-भेदसे 'भक्ति' एवं 'प्रपत्ति'—इन दो नामोंसे वेदमें अभिहित होती है। 'गणपति' से लेकर 'शिव'तक वह 'भक्ति' है एवं वही विष्णुमें प्रविष्ट होकर 'प्रपत्ति' है। इस प्रपंचका तात्पर्य यही है कि वेदोंमें भक्ति एवं प्रपत्तिमें स्वरूपतः भेद न मानकर केवल अवस्थाकृत भेद माना गया है। 'उपासना' की साधनावस्था 'भक्ति' एवं फलावस्था 'प्रपत्ति' है। किं बहुना, तरुण-ज्ञान- वैराग्यसहकृता भक्ति ही 'प्रपत्ति' है और वृद्ध-ज्ञान-वैराग्यसहकृता भक्ति 'भक्ति' है।

आधार-प्राणरूप इस 'गणेश' का अध्यात्म-संस्थामें विकास 'मूलाधार' में होता है; अतः मूलाधारचक्र 'गणपति' है। इसका नामान्तर 'मूलग्रन्थि' भी है। मूलग्रन्थिरूप यह 'गणपति' सुमेरुके मूलमें स्थित है; अतः यह भी मेरुपर्वामें स्थित देवगणोंका पति (आधार) होनेसे 'गणपति' है।

वेदोंमें आधारका दूसरा पर्याय 'ब्रह्म' शब्द भी है, अतः 'मूलग्रन्थि' का नामान्तर 'ब्रह्मग्रन्थि भी है। 'ऋक्-प्रातिशाख्य' में उपलब्ध '**बिभर्ति इति ब्रह्म**'—इस निर्वचनसे 'ब्रह्म'-शब्दका अर्थ 'आधार' भी है। इस निर्वचनसे उपलब्ध 'ब्रह्म' शब्दका अर्थ सविशेष है; अतः ब्रह्मसूत्र-भाष्यकारोंका 'ब्रह्म' को निर्विशेष मानना वेदप्रतिपादित पदार्थ-विद्याके विरुद्ध है।

प्रत्येक पदार्थमें प्रतिष्ठा, आगति एवं गति—ये तीन भाव प्रतिष्ठित हैं। इनमें प्रतिष्ठा-भाव 'ब्रह्मा' है, आगतिभाव 'विष्णु' है और गतिभाव 'महेश्वर' है। 'प्रतिष्ठा'-भाव 'गणपति' से अभिन्न है, यह कहा गया है। ये तीनों भाव सदा सहचर हैं। एक ही प्राण (शक्ति)-के ये तीन

भाव हैं, अतः शास्त्रोंमें '**एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः**'। कहा गया है।

पदार्थोंमें गणेशका आवास

योगशास्त्रका विज्ञान है कि इस 'प्रतिष्ठा' प्राणरूप 'गणपति' का आवास पदार्थोंके देहमध्य (केन्द्र)-में रहता है। यह 'देहमध्य' भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न स्थलोंमें रहता है। केवल प्राणियोंके विषयमें 'देहमध्य' का विवेचन भगवान् याज्ञवल्क्यने इस प्रकार किया है—

गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वमधो मेढ्राच्च द्व्यङ्गुलात्।
देहमध्यं तयोर्मध्ये मनुष्याणामितीरितम्॥
चतुष्पदां तु हृदयं तिरश्चां तुन्दमध्यमम्।
द्विजानां तु वरारोहे तुन्दमध्यमितीरितम्॥

अर्थात् मनुष्य—प्राणियोंमें 'देहमध्य' गुदासे दो अंगुल ऊपर एवं शिश्न (लिंग)-से दो अंगुल नीचे है। इसमें 'गणपति' का आवास है। ब्रह्मा, शेष एवं कूर्मका भी यही आवास है। पशुओंमें हृदय देहमध्य है। उनके हृदयमें गणपतिका आवास है। पक्षियोंका देहमध्य तुन्द (उदर)-का मध्यभाग है। अतः उसमें गणेशका आवास है, अर्थात् पक्षियोंके उदर-मध्यमें गणपतिका आवास है। वृक्षोंके मूलमें गणेशका निवास है। भूमिके भी केन्द्रमें गणेश, शेष, कूर्म आदि प्राण निवास करते हैं। ये सब पृथिवीको धारण करते हैं, अतः '**शेषेण धर्तुं धराम्**' यह कवियोंने कहा है।

विविध गणेश

विश्वकी आधार-शक्ति (प्राण) 'गणपति' है, यह कहा गया है। अब विविध गणपतियोंमें यह 'महागणपति' है यह बात कही जायगी। यह 'आधार-शक्ति' वस्तु-भेदसे असंख्य एवं विविध है। उससे अभिन्न होनेके कारण गणपति भी असंख्य एवं विविध हैं। उनके नाम, रूप (आकृति), वर्ण (रंग), वस्त्र, आयुध, वाहन एवं कार्य आदि भी असंख्य एवं विविध हैं। उन सबका सम्पूर्णरूपसे वर्णन अशक्य है तो भी तत्त्ववेत्ताओंने उनमेंसे कतिपय विविध गणपतियों, उनके नामों, आकृतियों, वर्णों, वस्त्रों, आयुधों एवं वाहनोंका निर्देश 'श्रीतत्त्वनिधि' एवं 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र' आदि ग्रन्थोंमें किया है, उनके आधारसे कतिपय गणपतियोंके वैविध्यका वर्णन यहाँ दिया जाता है।

पर्याय नहीं

अमरकोश (१।३८)-में '**अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदर-गजाननाः**' शब्द आदि 'गणेश' के पर्यायवाचक हैं। अर्थात् ये शब्द एकार्थक हैं, किंतु वेदमें देवतावाचक जितने भी शब्द हैं, वे परस्पर भिन्नार्थक हैं। अतः नाम-भेदसे गणपति भी विविध हैं। एक शब्दका दूसरा पर्याय होता है, यह सिद्धान्त वैदिक पदार्थविद्यामें सर्वथा त्याज्य है। कोशोंमें एक ही देवताके जो अनेक पर्याय मिलते हैं, वे केवल शब्दमात्रके परिचायक हैं। ब्रह्माके नामोंमें एक ही ब्रह्माके परमेष्ठी, हिरण्यगर्भ, पद्मभू आदि अनेक नाम निर्दिष्ट हैं; स्वामी कार्तिकेयके कार्तिकेय, कुमार, स्कन्द आदि नाम हैं तथा इन्द्रके वासव, मरुत्वान्, मघवा आदि पर्याय हैं; किंतु ये सब विभिन्नार्थक हैं।

सूर्यके ऊपर चतुर्थ अपोलोक है, जो पुराणोंमें '**क्षीर-सागर**' के नामसे प्रसिद्ध है। उसमें रहनेवाला ब्रह्मा '**परमेष्ठी**' है, सूर्यलोकका ब्रह्मा '**हिरण्यगर्भ**' है और पृथिवीलोकका ब्रह्मा '**पद्मभूः**' है। किंतु ब्रह्मा सब है; अतः इनको पर्याय मान लिया गया है।

स्वामी कार्तिकेयके नाम भी इसी प्रकार विभिन्नार्थक हैं। कृत्तिका-नक्षत्रोंमें जो अग्नितारा है, वह '**कार्तिकेय**' है; पार्थिव उषामें जो अग्नि उत्पन्न होता है, वह '**कुमार**' है; संवत्सराग्नि एवं अध्यात्ममें अहंकाराग्नि दोनों '**षण्मुख**' हैं। एकके ऋतुरूप षण्मुख हैं तो दूसरेके इन्द्रियरूप षण्मुख हैं। इसी प्रकार एक ही गणपतिके एकदन्त, लम्बोदर, गजानन, गणपति, विघ्नराज, विनायक आदि अनेक पर्याय परिपठित हैं। परंतु ये सब विभिन्नार्थक हैं। इनमें पार्थिव पूषा-प्राण 'एकदन्त' है, पार्थिव ईश-प्राण 'गजानन' है, आन्तरिक्ष्य-प्राण 'लम्बोदर' है, मरुत्-प्राण 'गणपति' है और आकाश-प्राण 'विनायक' है।

विविध गणपतियोंके नाम

'श्रीतत्त्वनिधि'-ग्रन्थमें कर्णाटकके महाराजा मुम्मडि कृष्णराज ओटयरने ३२ गणपतियोंके नाम-रूपोंका निर्देश इस प्रकार किया है।

१. बालगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
२. तरुणगणपति—रक्तवर्ण, अष्टहस्त।

३. भक्तगणपति—श्वेतवर्ण, चतुर्हस्त।
४. वीरगणपति—रक्तवर्ण, दशभुज।
५. शक्तिगणपति—सिन्दूरवर्ण, चतुर्भुज।
६. द्विजगणपति—शुभ्रवर्ण, चतुर्भुज।
७. सिद्धगणपति—पिंगलवर्ण, चतुर्भुज।
८. उच्छिष्टगणपति—नीलवर्ण, चतुर्भुज।
९. विघ्नगणपति—स्वर्णवर्ण, दशभुज।
१०. क्षिप्रगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
११. हेरम्बगणपति—गौरवर्ण, अष्टहस्त, पंचमातंगमुख; सिंहवाहन।
१२. लक्ष्मीगणपति—गौरवर्ण, दशभुज।
१३. महागणपति—रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, दशभुज।
१४. विजयगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
१५. नृत्तगणपति—पीतवर्ण, चतुर्हस्त।
१६. ऊर्ध्वगणपति—कनकवर्ण, षड्भुज।
१७. एकाक्षरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
१८. वरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
१९. त्र्यक्षरगणपति—स्वर्णवर्ण, चतुर्बाहु।
२०. क्षिप्रप्रसादगणपति—रक्तचन्दनांकित, षड्भुज।
२१. हरिद्रागणपति—हरिद्रावर्ण, चतुर्भुज।
२२. एकदन्तगणपति—श्यामवर्ण, चतुर्भुज।
२३. सृष्टिगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
२४. उद्दण्डगणपति—रक्तवर्ण, द्वादशभुज।
२५. ऋणमोचनगणपति—शुक्लवर्ण, चतुर्भुज।
२६. ढुण्ढिगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
२७. द्विमुखगणपति—हरिद्वर्ण, चतुर्भुज।
२८. त्रिमुखगणपति—रक्तवर्ण, षड्भुज।
२९. सिंहगणपति—श्वेतवर्ण, अष्टभुज।
३०. योगगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
३१. दुर्गागणपति—कनकवर्ण, अष्टहस्त।
३२. संकष्टहरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।

इस प्रकार यहाँ विविध अनन्त गणपतियोंमेंसे कतिपय गणपतियोंके केवल नाममात्रका उल्लेख किया गया है। उनकी आकृतियों, वस्त्रों, आयुधों एवं वाहनोंका भेद तन्त्रोंसे जानना आवश्यक है। यहाँ केवल 'सिंहगणपति' का ध्यान लिखा जाता है। इसके भी उल्लेखका विशेष कारण यह है कि विश्वमें गणपतिकी केवल 'गजाननता' ही प्रसिद्ध है। परंतु वे 'सिंहानन' भी हैं; यह उनके इस ध्यानसे अवगत होता है—

वीणां कल्पलतामरिं च वरदं दक्षे विधत्ते करै-
र्वामे तामरसं च रत्नकलशं सन्मञ्जरीं चाभयम्।
शुण्डादण्डलसन्मृगेन्द्रवदनः शङ्खेन्दुगौरः शुभो
दीव्यद्रत्ननिभांशुको गणपतिः पायादपायात् स नः॥

'जो दायें हाथोंमें वीणा, कल्पलता, चक्र तथा वरद (मुद्रा) धारण करते हैं और बायें हाथोंमें कमल, रत्नकलश, सुन्दर धान्य-मंजरी तथा अभय लिये रहते हैं; जिनका सिंहसदृश मुख शुण्डादण्डसे सुशोभित है; जो शंख और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण हैं तथा जिनका वस्त्र दिव्य रत्नोंके समान दीप्तिमान् है, वे शुभस्वरूप (मंगलमय) गणपति हमको अपाय (विनाश)-से बचावें।'

फल-भेदसे ध्यान-भेद

शास्त्रोंमें फल-भेदसे ध्यान-भेद विहित हैं। विभिन्न फलोंकी प्राप्तिके लिये 'गणेश' के भिन्न-भिन्न ध्यानोंका वर्णन इस प्रकार है—

पीतं स्मरेत् स्तम्भनकार्य एनं-
वश्याय मन्त्री ह्यरुणं स्मरेत् तम्।
कृष्णं स्मरेन्मारणकर्मणीश-
मुच्चाटने धूम्रनिभं स्मरेत् तम्॥
बन्धूकपुष्पादिनिभं च कृष्टौ-
स्मरेद् बलार्थं किल पुष्टिकार्ये।
स्मरेद् धनार्थी हरिवर्णमेतं-
मुक्तौ च शुक्लं मनुवित् स्मरेत् तम्।
एवं प्रकारेण गणं त्रिकालं-
ध्यायञ्जपन् सिद्धियुतो भवेत् सः॥

'मन्त्र-साधक स्तम्भन-कार्यमें गणेशजीके पीत कान्तिवाले स्वरूपका ध्यान करे, वशीकरणके लिये उनके अरुण कान्तिमय स्वरूपका चिन्तन करे। मारणकर्ममें गणेशजीकी कृष्ण-कान्तिका ध्यान करे तथा उच्चाटन-कर्ममें उनके धूम्रवर्णवाले स्वरूपका स्मरण करे। आकर्षण-कर्ममें बन्धूक पुष्प (दुपहरियाके फूल) आदिके समान लालवर्णवाले गणेशका ध्यान करे; बलके लिये तथा पुष्टिकार्यमें भी वैसे ही ध्यानका विधान है। धनार्थी पुरुष इनके हरितवर्ण तथा मोक्षकामी मन्त्रवेत्ता शुक्लवर्णवाले स्वरूपका चिन्तन करे। इस प्रकार तीनों समय गणपतिका ध्यान और जप करनेवाला साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है।'

अग्रपूज्यता एवं सर्वपूज्यता

विश्वमें किसी भी कार्यारम्भमें गणेशजीकी अग्रपूज्यता एवं सर्वपूज्यताका शास्त्र एवं इतिहासमें उल्लेख है। इसका कारण यह है कि प्रकृतिमें किसी भी कार्यकी सिद्धि बिना आलम्बन (आधार)-के अशक्य है। अतः कार्यमात्रमें आलम्बनरूप गणेशकी अर्चना सबके लिये अनिवार्य है। इस रहस्यका प्रतिपादन सरस काव्य-शैलीमें किसी कविने इस श्लोकमें भली प्रकारसे किया है। इसमें अनेक ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख भी है—

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद् बलिं बध्नता
स्त्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः॥*

~~~○~~~

श्रीगिरिनन्दिनीनन्दनसे प्रार्थना

देव विनायक! ध्यान धरे मन, कान सुनें गुणगान तुम्हारे,
ले रसना रस नामका सादर, लोचन रूप ललाम निहारें।
नासिका-मध्य सुवास सुअंगकी प्राप्त प्रसाद हो साँझ-सकारे,
सेवनमें गणनाथके हाथ हों, पाथ पदाब्जके माथ हमारे॥

रंग चढ़े विषयोंका कभी नहीं, हो मनकी सदा वृत्ति असंगा,
संगति साधुकी पंगतिकी मिले, हो उसमें अनुरक्ति अभंगा।
देख सदा सबमें प्रभु आपको, पापका चित्तसे दूर हो दंगा,
संसृति होवे विरक्ति-प्रदायिनी, मानसमें बहे भक्तिकी गंगा॥

मोदक प्रेमका अर्पित है, जनका मन मोदसे मण्डित कीजिये,
लूट-खसोट मचा रहे अन्तरके खल शत्रुको खण्डित कीजिये।
शुण्ड प्रचण्ड उठाइये, विघ्नसमूह उदंडको दण्डित कीजिये,
मोह-वितान मिटा कर ज्ञान दे, ज्ञाननिधे! पटु पण्डित कीजिये॥

अन्त 'नरान्तक' का किया एक, अनेक नरान्तक हैं अब जाये,
धेनु, धरा, सुर, संतके ऊपर, भूपर संकट कोटिक आये।
लो अवतार प्रभो! अविलम्ब, तुम्हीं सबके अवलम्ब सुहाये,
मंगलमूर्ति! अमंगल दूर करो, जगमें मुद-मंगल छाये॥

भारत आरत, दीन-दुखी, अवतार-थली अपनीको बचाइये,
धर्मकी नीतिका आदर हो यहाँ, नैतिकता गिरतीको उठाइये।
आस्तिकता चमके रवि-सोम-सी, नास्तिकता तम-तोम मिटाइये,
आइये हे गिरिनन्दिनीनन्दन! दर्शन दे, भवभीति भगाइये॥

'राम'

~~~○~~~

* त्रिपुरपर विजय प्राप्त करनेके लिये भगवान् शंकरने, छलसे बलिको बाँधनेके लिये भगवान् विष्णुने, चौदहों भुवनोंकी रचनाके लिये ब्रह्माजीने, पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण करनेके लिये भगवान् शेषने, महिषासुरके वधके लिये भगवती पार्वती (दुर्गा)-ने, सिद्धि प्राप्त करनेके लिये सिद्धेश्वरोंने तथा विश्वविजय करनेके लिये कामदेवने जिनका ध्यान (स्मरण) किया, वे भगवान् गजानन हमारी रक्षा करें।

श्रीगणेशतत्त्व

(राष्ट्रगुरु श्री १००८ पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराज, श्रीपीताम्बरापीठ, दतिया)

भगवान् गजाननकी मान्यता भारतवर्षमें बहुत प्राचीन समयसे चली आ रही है। स्मार्त-उपासना (विष्णु, सूर्य, शक्ति, शिव और गणेश)-में भी गणेशकी गणना की जाती है। वेदमें भी '**गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे**' (यजु० २३। १९) इत्यादि मन्त्रमें गणपतिका अर्थ ग्रहण किया गया है। यद्यपि वेदभाष्यकार उवट-महीधरने इस मन्त्रका अर्थ प्रकरणानुसार कुछ और किया है, तथापि यास्कमुनिके कथनानुसार तपसे वेदमन्त्रोंके अनेक अर्थोंका साक्षात्कार किया जा सकता है; ऐसा सिद्धान्त होनेसे गणपतिपरक अर्थकी सम्भावनामें कोई संदेह नहीं किया जा सकता। अवैदिक जैन एवं बौद्ध-धर्ममें भी गणेशकी मान्यता स्वीकार की गयी है। कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि गणेशकी पूजा अनार्योंसे आर्योंमें आयी है। यह कथन सर्वथा अप्रामाणिक है। नेपाल, तिब्बत, कम्बोडिया, चीन, जापान, मंगोलिया आदि देशोंमें भी गणेशकी प्रतिमाएँ मिली हैं, जिससे इस उपासनाकी व्यापकता सिद्ध होती है और यह गणेशका विज्ञान या उपासना-क्रम भी भारतवर्षसे ही इन देशोंमें गया है; जैसा कि मनुमहाराजने कहा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

(मनुस्मृति २। २०)

'इस देशमें पैदा हुए अग्रजन्मा ब्राह्मणोंसे संसारके सभी लोग अपने-अपने चरित्र (एवं सभ्यता)-को सीखें।' इसलिये इस गणेश-विज्ञानको अनार्योंसे आर्योंके सीखनेका कोई प्रमाण नहीं है।

गणेश-विज्ञान

महाकवि कालिदासने 'चिद्गनचन्द्रिका' में गणेशजीके आविर्भावके सम्बन्धमें निम्नलिखित श्लोक कहा है—

क्षीरोदं पौर्णमासीशशधर इव यः प्रस्फुरन्निस्तरङ्गं
चिद्व्योम स्फारनादं रुचिरविलसद्बिन्दुवक्रोर्मिमालम्।
आद्यस्पन्दस्वरूपः प्रथयति सकृदोंकारशुण्डः क्रियादृग्
दन्त्यास्योऽयं हठाद् वः शमयतु दुरितं शक्तिजन्मा गणेशः॥

(१। १)

'जैसे पूर्णिमाका चन्द्रमा शान्त तरंगवाले क्षीरसागरको ऐसा क्षुब्ध कर देता है कि उसमें गर्जनके साथ गगन-चुम्बिनी ऊर्मिमालाएँ उठने लगती हैं, उसी प्रकार जो पूर्णतः प्रकाशमान हो एक बार निस्तरंग चिदाकाशमें प्रणवके नादतत्त्वको फैलाकर बिन्दुतत्त्वकी वक्रलहरोंको उद्वेलित कर देता है; जो शब्द-ब्रह्मका आदि स्पन्दनरूप है; ओंकार जिसका शुण्डदण्ड है तथा जो सम्पूर्ण क्रियाओंका द्रष्टा (साक्षी) है, वह शक्तिनन्दन गजमुख गणेश हठात् आप सबके पाप-तापोंका शमन करे।'

इस श्लोकमें शब्द-ब्रह्मरूप 'ॐ' का आविर्भाव बताया गया है और इसी (ॐ)-से श्रीगणेशजीकी मूर्तिकी रचना की गयी है, जो इस प्रकार है—प्रथम भाग—उदर, मध्य शुण्डाकार—दण्ड, ऊपर अर्द्धचन्द्र—दन्त, अनुस्वार—मोदक।

और एक 'ॐ' का स्वरूप वैश्य, व्यापारी लोग अपनी बहियोंमें बनाते हैं। 卐 इसे 'स्वस्तिक' कहते हैं। ये ही गणेशजीके चारों हाथ हैं। यह चतुर्भुज ओंकार है।

'**ओमभ्यादाने**'—इस पाणिनिकी अष्टाध्यायीके ८। २। ८७ वें सूत्रके द्वारा मन्त्रके आरम्भमें प्रयुक्त 'ओम्' को प्लुत स्वरमें उच्चारणीय बताया गया है, जिसकी आकृति '३' यह है। इस प्लुत स्वरको ही गणेशजीका मूषकवाहन बताया गया है। इन्हीं बातोंको लेकर गणेशजीकी प्रतिमाकी भावना की गयी है; जो भिन्न-भिन्न रूपोंमें देखी जाती है, जिसका योगीलोग मूलाधार चक्रमें ध्यान करते हैं; जिससे समस्त योग-विघ्नोंका नाश होता है, जिसका पुराणोंमें भी अनेक प्रकारसे वर्णन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी अन्तिम गतिके समय इसके स्मरणका माहात्म्य बतलाया गया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८। १३)

"जो पुरुष 'ॐ'—ऐसे इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीरका त्याग करता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है।"

यही ओंकार-ब्रह्म नाद-तत्त्वके अंदर वर्णोंका भी अभिव्यञ्जक है, जिसे तन्त्रशास्त्रमें 'मातृकाएँ' कहते हैं। ये मातृकाएँ ५२ हैं।

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम्॥

इन ५२ मातृकाओंको 'लघुषोढान्यास' के अन्तर्गत शक्तिसहित गणेशजी बताया गया है—

ऐं ह्रीं श्रीं अं श्रीयुक्ताय विघ्नेशाय नमः, शिरसि।
ऐं ह्रीं श्रीं आं ह्रींयुक्ताय विघ्नराजाय नमः, मुखवृत्ते।
ऐं ह्रीं श्रीं इं तुष्टियुक्ताय विनायकाय नमः, दक्षनेत्रे।
ऐं ह्रीं श्रीं ईं शान्तियुक्ताय शिवोत्तमाय नमः, वामनेत्रे।
ऐं ह्रीं श्रीं उं पुष्टियुक्ताय विघ्नहृते नमः, दक्षकर्णे।
ऐं ह्रीं श्रीं ऊं सरस्वतीयुक्ताय विघ्नकर्त्रे नमः, वामकर्णे।
ऐं ह्रीं श्रीं ऋं रतियुक्ताय विघ्नराजे नमः, दक्षनासापुटे।
ऐं ह्रीं श्रीं ॠं मेधायुक्ताय गणनायकाय नमः, वामनासापुटे।
ऐं ह्रीं श्रीं ऌं कान्तियुक्ताय एकदन्ताय नमः, दक्षगण्डे।
ऐं ह्री श्रीं ॡं कामिनीयुक्ताय द्विदन्ताय नमः, वामगण्डे।
ऐं ह्रीं श्रीं एं मोहिनीयुक्ताय गजवक्त्राय नमः, ऊर्ध्वोष्ठे।
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं जटायुक्ताय निरञ्जनाय नमः, अधरोष्ठे।
ऐं ह्रीं श्रीं ओं तीव्रायुक्ताय कपर्दभृते नमः, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ।
ऐं ह्रीं श्रीं औं ज्वालिनीयुक्ताय दीर्घमुखाय नमः, अधोदन्तपङ्क्तौ।
ऐं ह्रीं श्रीं अं नन्दायुक्ताय शङ्कुकर्णाय नमः, जिह्वाग्रे।
ऐं ह्रीं श्रीं अः सुरसायुक्ताय वृषध्वजाय नमः, कण्ठे।
ऐं ह्रीं श्रीं कं कामरूपिणीयुक्ताय गणनाथाय नमः, दक्षबाहुमूले।
ऐं ह्रीं श्रीं खं सुभ्रूयुक्ताय गजेन्द्राय नमः, दक्षकूर्परे।
ऐं ह्रीं श्रीं गं जयिनीयुक्ताय शूर्पकर्णाय नमः, दक्षमणिबन्धे।
ऐं ह्रीं श्रीं घं सत्यायुक्ताय त्रिलोचनाय नमः, दक्षकराङ्गुलिमूले।
ऐं ह्रीं श्रीं ङं विघ्नेशीयुक्ताय लम्बोदराय नमः, दक्षकराङ्गुल्यग्रे।
ऐं ह्रीं श्रीं चं सुरूपायुक्ताय महानादाय नमः, वामबाहुमूले।
ऐं ह्रीं श्रीं छं कामदायुक्ताय चतुर्मूर्तये नमः, वामकूर्परे।
ऐं ह्रीं श्रीं जं मदविह्वलायुक्ताय सदाशिवाय नमः, वाममणिबन्धे।
ऐं ह्रीं श्रीं झं विकटायुक्ताय आमोदाय नमः, वामकराङ्गुलिमूले।
ऐं ह्रीं श्रीं ञं पूर्णायुक्ताय दुर्मुखाय नमः, वामकराङ्गुल्यग्रे।
ऐं ह्रीं श्रीं टं भूतिदायुक्ताय सुमुखाय नमः, दक्षोरुमूले।
ऐं ह्रीं श्रीं ठं भूमियुक्ताय प्रमोदाय नमः, दक्षजानुनि।
ऐं ह्रीं श्रीं डं शक्तियुक्ताय एकपादाय नमः, दक्षगुल्फे।
ऐं ह्रीं श्रीं ढं रमायुक्ताय द्विजिह्वाय नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले।
ऐं ह्रीं श्रीं णं मानुषीयुक्ताय शूराय नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
ऐं ह्रीं श्रीं तं मकरध्वजायुक्ताय वीराय नमः, वामोरुमूले।
ऐं ह्रीं श्रीं थं वीरिणीयुक्ताय षण्मुखाय नमः, वामजानुनि।
ऐं ह्रीं श्रीं दं भृकुटीयुक्ताय वरदाय नमः, वामगुल्फे।
ऐं ह्रीं श्रीं धं लज्जायुक्ताय वामदेवाय नमः, पादाङ्गुलिमूले।

ऐं ह्रीं श्रीं नं दीर्घघोणायुक्ताय वक्रतुण्डाय नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रे।

ऐं ह्रीं श्रीं पं धनुर्धरायुक्ताय द्विरण्डकाय (द्वितुण्डाय) नमः, दक्षपार्श्वे।

ऐं ह्रीं श्रीं फं यामिनीयुक्ताय सेनान्यै नमः, वामपार्श्वे।
ऐं ह्रीं श्रीं बं रात्रियुक्ताय ग्रामण्ये नमः, पृष्ठे।
ऐं ह्रीं श्रीं भं चन्द्रिकायुक्ताय मत्ताय नमः, नाभौ।
ऐं ह्रीं श्रीं मं शशिप्रभायुक्ताय विमत्ताय नमः, जठरे।
ऐं ह्रीं श्रीं यं लोलायुक्ताय मत्तवाहनाय नमः, हृदये।
ऐं ह्रीं श्रीं रं चपलायुक्ताय जटिने नमः, दक्षस्कन्धे।
ऐं ह्रीं श्रीं लं ऋद्धियुक्ताय मुण्डिने नमः, गलपृष्ठे।
ऐं ह्रीं श्रीं वं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः, वामस्कन्धे।

ऐं ह्रीं श्रीं शं सुभगायुक्ताय वरेण्याय नमः, हृदयादि-दक्षकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः, हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं सं दुर्गायुक्ताय भक्ष्यप्रियाय नमः, हृदयादि-दक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः, हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं ळं कालकुब्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः, हृदयादिगुह्यान्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः, हृदयादिमूर्धान्तम्।

इस प्रकार शब्द-ब्रह्म श्रीगणेशस्वरूप ओंकारका मातृकाओंके साथ विस्तार किया गया है। इन्हींके योगसे तन्त्रग्रन्थोंमें अनेक स्तोत्र-मन्त्रोंका आविर्भाव किया गया है, जिससे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इसका विशेष माहात्म्य गणेशपुराण, शिवपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि पुराणोंमें बताया गया है। 'गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्' भी गणपति-तत्त्वको बताता है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद्-ग्रन्थोंमें भी इस तत्त्वका विचार किया गया है।

'ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः' (यजुर्वेद १६। २५)।

भगवान् श्रीगणेशकी विलक्षण महिमा

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतके सदुपदेश] (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

भगवान् श्रीगणेश साधारण देवता नहीं हैं। वे साक्षात् अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक जगन्नियन्ता परात्पर ब्रह्म ही हैं। श्रीगणेशजी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंके भी परमाराध्य हैं। हम भारतीय सनातनधर्मी हिंदुओंके तो वे प्राणाधार ही हैं। जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त हमारा उनसे अखण्ड सम्बन्ध बना रहता है। प्रत्येक कार्य करनेके प्रारम्भमें श्रीगणेशजीका स्मरण करना अत्यावश्यक कर्तव्य माना गया है। पत्र या बहीखाता या ग्रन्थ लिखते समय सबसे पहले '**श्रीगणेशाय नमः**' लिखकर तब आगे कुछ और लिखना होता है। किसी भी देवी-देवताकी पूजा करते समय अथवा यज्ञ करते समय सबसे पहले यदि श्रीगणेश-पूजन नहीं किया गया तो नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ आ जाती हैं। दान-पुण्य करिये तो पहले भगवान् गणेशजीको मनाना न भूलिये। विवाह-शादी करने, मकान बनवाने, नयी दूकान खोलनेमें सबसे पहले उन्हींकी पूजा होती है। भारतके प्राचीन राजमहल, किले, विशाल देवमन्दिर, अट्टालिका आदिके मुख्यद्वारपर उन्हींकी मूर्ति अवश्य विराजमान मिलेगी। दीपावलीके दिन तो सभी हिंदू श्रीगणेशजी और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करते हैं। प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक कार्यके पहले श्रीगणेश-पूजन एक अनिवार्य कृत्य है।

परमात्माके विवाहमें भी श्रीगणेशका पूजन

भगवान् श्रीराघवेन्द्रका जब विवाह हुआ तो उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे श्रीगणेशजीकी बड़े प्रेमसे पूजा की। आशुतोष शंकरजी और पराम्बा पार्वतीने अपने विवाहके समय सबसे पहले उन्हींकी पूजा की। परब्रह्म परमात्मा श्रीगणेश सभीके पूज्य हैं। उनका स्मरण-पूजन करनेसे समस्त विघ्न-बाधाएँ तत्क्षण दूर हो जाती हैं। वे बड़े ही दयालु और करुणासिन्धु हैं।

यदि उन्होंने भगवान् श्रीविघ्न-विनाशक गणेशकी शरण नहीं ली तो एक-न-एक दिन उनका अधःपतन होनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगी। जिन योगियों, सिद्धों, वेदान्तियों और ब्रह्मज्ञानियोंने अपने साधनके अभिमानवश विघ्नविनाशक भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा की और अपने ज्ञान, योग एवं सिद्धि आदिके बलपर ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, उनको अपने जीवनमें भीषण विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। भगवान् श्रीगणेशकी कृपा ही सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे बचाकर हमारा लोक-परलोक बना सकती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। इसीलिये कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीसीतारामकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीगणेशकी वन्दना करना परमावश्यक माना था। उन्होंने विनयपत्रिकाके प्रथम पदमें उनकी स्तुति करते हुए कहा है—

'गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥'

और अन्तमें उनसे यह वर माँगा—

'माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे॥'

भगवान् श्रीगणेशकी हिंदूजातिपर अद्भुत कृपा

भगवान् श्रीगणेशने हिंदूजातिके ऊपर असीम कृपा की है और उसका बड़ा उपकार किया है, इसीलिये वह उनकी ऋणी है और उन्हें कभी भुला नहीं सकती।

समस्त विश्व-साहित्यमें 'महाभारत' कोई साधारण पुस्तक नहीं, अपितु साक्षात् पंचम वेद है। यह अनन्त विद्याओंका भण्डार है। उसपर आज समस्त विश्व मुग्ध हो रहा है। नास्तिक रूस भी महाभारतका रूसी भाषामें अनुवाद करा रहा है। ज्ञानके भण्डार एवं विद्याओंकी खान पंचम वेद महाभारतको यदि भगवान् श्रीगणेश न लिखते तो यह अद्भुत महान् रत्न हिंदूजातिको कैसे प्राप्त हो पाता? श्रीवेदव्यासजी बोलते गये और श्रीगणेशजी इसे लिखते गये। तभी उनकी कृपासे यह महान् ग्रन्थरत्न हिंदुओंको प्राप्त हुआ है।

भगवान् श्रीगणेश कैसे प्रसन्न हों?

भगवान् श्रीगणेशजीको प्रसन्न करनेका साधन बड़ा ही सरल और सुगम है। उसे प्रत्येक गरीब-अमीर व्यक्ति कर सकता है। उसमें न विशेष खर्चकी, न विशेष दान-पुण्यकी, न विशेष योग्यताकी और न विशेष समयकी ही आवश्यकता है।

पीली मिट्टीकी डली ले लो। उसपर लाल

कलावा (मोली) लपेट दो। भगवान् श्रीगणेश साकार रूपमें उपस्थित हो गये। रोलीका छींटा लगा दो और चावलके दाने डाल दो। पूजनकी यही सरल विधि है। गुड़की डली या चार बताशा चढ़ा दो, यह भोग लग गया और—

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

यह छोटा-सा श्लोक बोल दो, मन्त्र हो गया। बस, इतनेमात्रसे ही वे तुमसे प्रसन्न हो गये। कैसे दयालु हैं वे? कुछ भी न बने तो दूब ही चढ़ा दो और अपने सारे कार्य सिद्ध कर लो। खर्च कुछ भी नहीं और काम सबसे ज्यादा; यही तो उनकी विलक्षण महिमा है।

भारतके घोर अध:पतनका कारण भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा

भारतके घोर अध:पतनका एकमात्र कारण भगवान् श्रीविघ्नविनाशक गणेशजीकी घोर उपेक्षा है। पहले धर्मप्राण भारतके प्रत्येक विद्यालयमें बालकोंसे सर्वप्रथम तख्तीपर 'श्रीगणेशाय नम:' लिखवाकर और भगवान् श्रीगणेशका पूजन करवाकर अध्यापक पढ़ाना प्रारम्भ करता था। प्रतिवर्ष सारे विद्यालयोंमें भाद्रपद श्रीगणेश-चतुर्थी (डंडा चौथ)-को उनका बड़ी धूम-धामके साथ पूजन कराया जाता था, जो बस, देखते ही बनता था। समस्त भारत श्रीगणेश-भक्तिके रंगमें रँग जाता था और बच्चा-बच्चा उनके प्रेममें विभोर हो जाता था। आज उसी धर्मप्राण भारतके सभी विद्यालयोंमें भगवान् श्रीगणेशका पूजन करना तो दूर रहा, उनका नाम भी नहीं लिया जाता। जबतक विद्यार्थी भगवान् श्रीगणेश और माता श्रीसरस्वतीका स्मरण-पूजन करते रहे, तबतक बालकोंकी बुद्धि शुद्ध और निर्मल रही। पर जबसे विद्यार्थियोंसे भगवान् श्रीगणेशका पूजन करना छुड़ाया गया, पूजनादिको पाखण्डवाद बताया गया, तबसे इन पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, जिसका घोर भयंकर दुष्परिणाम अनैतिकता, अनुशासनहीनता आदिके रूपमें प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा है। जो पतन यवन-शासनकालमें अथवा अंग्रेज-शासनकालमें नहीं हुआ, वह हो गया। बालकोंको अक्षर-ज्ञान कराते समय आजकल 'ग' माने 'गणेश' न पढ़ाकर, 'गदहा' पढ़ाया जाता है।

श्रीगणेश-भक्तोंका परम कर्तव्य

भगवान् श्रीगणेशके भक्तोंको निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

१-भगवान् श्रीगणेशका नित्यप्रति पूजन करो और प्रात:काल उठकर सर्वप्रथम उनके चित्रका दर्शन करो।

२-किसी कार्यके आरम्भके पूर्व श्रीगणेशका स्मरण करना कदापि न भूलो।

३-अपना घर, मकान, महल बनाते समय द्वारपर आलेमें भगवान् श्रीगणेशजीकी सुन्दर प्रतिमा लगाना न भूलो, जिससे तुम्हें हर समय दर्शन-स्मरण करनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहे।

४-समाजके लिये हानिकारक तामसिक वस्तुओं (जैसे—बीड़ी या मदिरा)-को बेचनेके लिये उनपर अथवा जूते-चप्पलपर गणेशजीका मार्का मत लगाओ।

५-भगवान् श्रीगणेशको प्रसन्न करनेके लिये स्वयं भी सात्त्विक बनो। तामसिक पदार्थोंका सेवन मत करो।

६-पीली मिट्टीकी गणेशप्रतिमा बनाकर उनका पूजन करनेके पश्चात् उन्हें ठीकसे किसी पवित्र स्थानपर रख दो और बादमें श्रीगंगा-यमुना आदि पवित्र नदियोंमें ले जाकर प्रवाहित कर दो। वह पैरोंमें न आने पाये, इस बातका पूरा-पूरा ध्यान रखो।

७-पूज्य ब्राह्मणोंके द्वारा श्रीगणेशपुराणकी कथाका श्रवण करो। गणेशमन्दिरमें जाकर श्रीगणेशका दर्शन-पूजन करो। उनके मन्त्रका जप करो और उनके नामका संकीर्तन करो। वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलो और पापोंसे बचो। इसीसे तुमपर भगवान् श्रीगणेशजी प्रसन्न होंगे और तुम्हारी सब विघ्न-बाधाओंको दूरकर तुम्हारा परम कल्याण करेंगे।

जनगणके गणपति

(लेखक—आचार्य प्रभुपाद श्रीमत् प्राणकिशोर गोस्वामी)

भारतीय विज्ञान-दर्शनमें अखण्डतत्त्व-दर्शन सर्वत्र समादृत हुआ है। श्रीहर्षकृत 'खण्डन-खण्ड-खाद्यम्' नामक दर्शनशास्त्रके ग्रन्थमें भी विचित्र चमत्कृति है और सौन्दर्य-उपलब्धिकी विराट् परिकल्पना है। गणपति गणेशका प्राचीन ऋषियोंने दो प्रकारसे दर्शन किया है—गुरु-शिष्य-मिलन-क्षेत्रमें एवं उपनिषद्में कथित प्रत्यक्ष तत्त्व-स्वरूपमें। उपर्युक्त 'खण्डन-खण्ड-खाद्यम्' दर्शन-ग्रन्थमें उनको ही कर्ता, धर्ता और हर्ता बतलाया गया है। सर्वमय गणपति नित्य 'परमात्मा' नामसे पुकारे गये हैं। उपनिषद्का कथन है कि हे गणपति! तुम आनन्दमय ब्रह्म, अद्वितीय, सच्चिदानन्द, विज्ञानात्मा हो। पंचतत्त्वात्मक जगत्के उद्भवस्थान हो। ध्वनितत्त्वकी परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीमें तुम्हारा ही विस्तार है। तुम त्रिगुण, त्रिकाल तथा स्थूल-सूक्ष्म और कारण—इन त्रिविध देह-सम्बन्धोंसे अतीत, मूलाधार हो। ज्ञान, क्रिया और बल—इन तीनों शक्तियोंके परम आश्रय हो। योगी तुम्हारा ध्यान इस प्रकार करते हैं—

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥*

निवृत्तिदास ज्ञानदेव कहते हैं—'हे प्रणवस्वरूप परब्रह्म गणपति! तुम्हें नमस्कार। तुम आद्य और निखिल वेद-प्रतिपाद्य हो। हे परमात्मस्वरूप! तुम स्वसंवेद्य हो। तुम्हारी जय हो। तुम सारे ज्ञानके प्रकाशक गणेशस्वरूप हो। बुद्धिके प्रकाशमें तुम एकेश्वर हो। हे पूर्णांग वेदस्वरूप! तुम्हारी मूर्ति अपूर्व सौन्दर्य-मण्डित है। तुम्हारी अंग-कान्ति निर्दोष है। इस रूपको लेकर तुम विराजमान हो रहे हो। मनुस्मृति आदि शास्त्र सब तुम्हारे अवयव हैं।'

महाराष्ट्रके भक्तप्रवर एकनाथस्वामी ज्ञानेश्वरका अनुसरण करते हुए कह रहे हैं—'श्रीएकदन्तको नमस्कार। एक दन्तके कारण ही तुम अद्वितीय हो। अनन्तरूपमें प्रकाशित होकर भी विभु हो; तुम्हारे अद्वैतभावकी हानि नहीं होती। विश्व-चराचरमें निवास करते हुए भी तुम लम्बोदर हो, सब जीवोंके आश्रय हो, सबके संग्राहक हो। तुम्हारे दर्शनसे दुःखमय संसार सुखमय हो उठता है।'

भक्तकवि तुलसीदास कहते हैं—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

(मानस १। १ सो०)

विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, गजानन, परशुपाणि, आखुग, शूर्पकर्ण आदि नामसे गणपति पुराणों, तन्त्रों और अन्यान्य शास्त्रोंमें अभिहित होते हैं। अद्भुत है उनकी मूर्ति। ये हयग्रीव एवं नरसिंहके साथ तुलनीय हैं। नरदेहमें गज-शुण्ड केवल आजके भारतीय प्राचीन शास्त्रोंमें ही नहीं, बल्कि प्राचीन युगमें अन्य देशोंकी इतिकथामें भी इस प्रकारके अवयव-संस्थानकी बात आती है। मानव-प्रकृतिके साथ पशु-जगत्के सम्मिश्रणमें इस जातीय भावनाका उद्भव होता है। यही बात ऋष्यशृंग आदि मुनियोंके अवयव-संस्थानके सम्बन्धमें भी विचारणीय है।

गणेश, महागणेश, हेरम्ब और हरिद्रागणेश—ये तन्त्रशास्त्रमें नाना प्रकारके ध्यान और पूजाके विषय बने हैं। विविध कामनाओंकी सिद्धिके लिये पृथक्-पृथक् मन्त्रोंके प्रयोगकी व्यवस्था है।

गणेशका ध्यान—

ये सिन्दूरके समान रक्तवर्ण, त्रिनयन, स्थूल उदर

* इस श्लोकका अर्थ पृष्ठ ४६ पर देखें।

तथा चतुर्भुज हैं। चारों हाथोंमें क्रमशः दन्त, पाश, अंकुश और वरमुद्रा है। इनके ललाटमें चन्द्रकला है तथा इनके मदवारिसे इनका गण्डस्थल अभिषिक्त है। इनके सर्वांगमें सर्पभूषण है तथा ये परिधानमें रक्तवस्त्र पहने हैं।

महागणेशके ध्यानमें एक विशेषता है। वे स्वांकस्थिता पद्महस्ता निजप्रियाके द्वारा आलिंगित हैं। उनके हाथमें दाडिमफल, गदा, धनुष, त्रिशूल, चक्र, पद्म, पाश, उत्पल, व्रीहिगुच्छ, अपना भग्नदन्त और रत्नकलश है। तान्त्रिकाचार्य अन्य रूपमें भी उनका ध्यान बतलाते हैं। महागणेश मुक्ताके समान गौरवर्ण हैं। उनकी क्रोडमें उनकी पत्नी विराजित हैं। किसी प्रतिमामें ये गौरवर्ण हैं और कहीं उनका स्वरूप श्यामांग रहता है। तन्त्रमें गणेशजी गौरवर्ण, धूम्रवर्ण और रक्तवर्ण—त्रिविध वर्णित हुए हैं। मूषक-वाहनके रूपमें ही श्रीगणेशकी प्रसिद्धि है। तन्त्रोक्त हेरम्ब साधनामें गजमुख गणेश सिंहवाहन हैं—

मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै-
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभम्।
दृप्तं दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कं शिरोऽक्षात्मिकां
मालां मुद्गरमङ्कुशं त्रिशिखकं दोर्भिर्दधानं भजे॥

'हेरम्ब त्रिनयन हैं। मुक्ता, स्वर्ण, नील, कुन्दकुसुम और कुंकुमकी शोभासे युक्त पाँच मुखवाले हैं। ये सूर्यके समान दीप्तिमान् हैं। ये अपने दस हाथोंमें क्रमशः दान, अभय, मोदक, दन्त, प्रस्तरखण्डनकारी यन्त्र टंक, शिर, अक्षमाला, मुद्गर, अंकुश और त्रिशूल धारण किये हुए हैं।'

एक दूसरे ध्यानमें देखा जाता है कि हेरम्बके हाथमें पाश, अंकुश, कल्पलता और गजदन्त हैं। उनके शुण्डके ऊपर दाडिमफल है।

हरिद्रागणेश हरिद्रावर्ण, हरिद्रावस्त्र और हरिद्रा-भूषण हैं।

भारतके समाज-देवताके अनेक गण या दल हैं। मरुद्गण, रुद्रगण, दिक्पालगण, भैरवगण आदि अनेक गणोंमें भी गणपति विनायकका प्राधान्य स्वीकृत हुआ है। वैदिक यज्ञादिके स्थापनार्थ—'**गणानां त्वा गणपति ँ्हवामहे**' (यजुर्वेद २३। १८) मन्त्रमें उनका ही आवाहन है। वे निधिपति हैं। धन-सम्पत् उनके ही अनुग्रहसे प्राप्य हैं। व्यवसाय-क्षेत्रमें उनकी प्रधानता है—सिद्धिदाता स्वरूपमें। ज्ञानीके लिये वे ज्ञानदाता हैं।

इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—"श्रीकृष्ण वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण करके एक बार शैलसुता पार्वतीके समीप गये और बोले—'देवि! तुम योगमाया हो। तुम्हारी कृपासे विष्णु-भक्तिकी प्राप्ति होती है। तुम्हें पूजा-व्रत आदिकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्ण कल्प-कल्पमें तुम्हारे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होते हैं।' इस प्रकारकी कुछ बातें कहकर वे वहीं अन्तर्हित हो गये। पार्वतीको वे श्रीकृष्ण ही एक पुत्ररत्नके रूपमें प्राप्त हुए। उसका रूप अपूर्व था, गुण अव्यक्त था। देवीने उस अभिनव बालकका अत्यन्त हर्षपूर्वक पालन-पोषण किया। वही बालक कामद सिद्धिदाता गणेश हैं; देवगणवन्दित तथा अग्रपूजाके अधिकारी हैं। उनमें असाधारण मातृभक्ति है।" (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

वेदानुगत शास्त्रोंके द्वारा प्रतिपाद्य समस्त भारतीय धर्म-संस्कृतिके मूलमें है—पंचदेवोपासना। विष्णु, सूर्य, शिव, शक्ति और गणेश—ये पंचदेव हैं। यहाँ एकके अतिरिक्त शेष चार देवताओंकी उपेक्षा नहीं है। सूर्य-मण्डलमें ही सब प्रकारसे अभिलषित परमाभीष्ट विष्णुभगवान्‌की उपासना होती है। अन्य देव-देवियोंके गायत्री-मन्त्रकी आराधना सूर्य मण्डलवर्ती भावनासे होती है। शिव और विष्णुमें भेदबुद्धिको शास्त्र निषिद्ध बतलाता है। शक्तिके बिना शिव या विष्णुकी उपासना निष्फल है। वैष्णवोंकी घोषणा है कि 'विष्णुपूजामें गणेशकी पूजा न करनेसे सेवापराध होता है। नव्य सम्प्रदायवादी कुछ लोग प्राचीन गुरुवर्गके द्वारा प्रदर्शित मार्गकी अवहेलना करके अपने सम्प्रदायकी प्रधानता स्थापित करते हैं तथा सुप्रसिद्ध स्वयंसिद्ध वेदानुमोदित पथसे भ्रष्ट होकर स्वेच्छाचारी हो रहे हैं। कुछ लोग गुरुप्रदर्शित पथमें कण्टकरूप होकर आर्यधर्मके पथमें बाधक बनते हैं। श्रीगणेशजी ऐसे लोगोंको शुभ-बुद्धि प्रदान करें।

श्रीशंकराचार्यकी परम्परामें भगवान् श्रीगणेश

(लेखक—श्री एस० लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री)

अनादिकालीन सनातन-धर्मकी व्यवस्थामें भगवान् गणेशकी उपासनाका एक प्रमुख स्थान है। इस पवित्र धर्ममें जो नास्तिकताके कीटाणु प्रविष्ट हो गये थे, उन्हें भगवान् शंकराचार्यने अपने पवित्र एवं शास्त्रीय दृष्टिकोणद्वारा दूरकर बड़ी सावधानीसे इसकी पवित्रताको अक्षुण्णरूपसे प्रतिष्ठित रखा। 'शंकरमत' के नामसे कोई चर्चा करना अत्यन्त भ्रमपूर्ण है। उन महान् आचार्यने कभी भी किसी नये दर्शन या धर्मकी स्थापनाका दावा नहीं किया। उनका काम था—वैदिक दर्शन और वैदिक धर्मका सही-सही ऐसा प्रचार और विस्तार, जिसका प्राचीन परम्परासे कहीं विरोध न हो और वैदिक धर्ममें घुसे हुए नास्तिकताके पोषक मतोंका, जिनमेंसे अधिकांश बाहरसे आये, उन्मूलन हो जाय। शंकराचार्य वेदोंकी प्राचीन परम्पराके संरक्षक, पोषक और अभिभावक अवश्य हैं, परंतु किसी नये धर्मके संस्थापक नहीं। इस लघु लेखका लक्ष्य है—भगवान् शंकराचार्यकी परम्पराके अनुयायी जनोंके जीवनमें श्रीगणेशोपासनाके स्थान और महत्त्वका निर्धारण। यहाँ जो कुछ मूल्यांकन किया जायगा, उसका आधार है—स्वयं आचार्य शंकरकी रचनाएँ, उनकी जीवनियाँ और उनकी परम्पराके अनुयायियोंके वचन।

पाठकोंको यह जानकर बड़ी निराशा होगी कि 'श्रीगणेश-पंचरत्न' और 'गणेश-भुजंगप्रयातस्तोत्र' को छोड़कर, जो कि आचार्यप्रवरके भक्तिमय उद्‌गारोंके एक अंगमात्र हैं, अपने प्रस्थानत्रय अथवा प्रकरण-ग्रन्थोंमें कहीं भी उन्होंने गणेशका उल्लेख नहीं किया। यदि कहीं किसी देवताका नाम आया भी है तो सदा विष्णुका ही नाम आया है; जैसे कि गीता और विष्णुसहस्रनाम आदिके भाष्योंमें। जहाँ गणेशका उल्लेख हुआ है, उनकी ऐसी अन्य रचनाएँ देवी या शिवके स्तोत्र हैं। 'प्रपंचसार' तन्त्रमें भी गणेशका नाम मिलता है। उनकी रचनाओंमें विशिष्ट देवताओंका अनुल्लेख कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। परमतत्त्वकी व्याख्या करनेवाले दर्शनमें विशिष्ट देवी-देवताओंका वर्णन कैसे आ सकता है? फिर भी इस परमतत्त्वके दर्शनके द्वारा ही ईश्वरकी सत्ताका प्रतिपादन हुआ है। जहाँ सब प्रपंच विलीन हो जाते हैं, उस पारमार्थिक धरातलपर जो केवल एक ही शेष बचता है, जो सबका आधारभूत है, उस परम ब्रह्मका प्रपंचात्मक भाषामें कोई निरूपण नहीं हो सकता। देश-काल और कारणकी परिधिमें वही निर्गुण परमसत्ता जब ईश्वरका रूप धारण करती है, तब उसमें अचिन्त्य सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता आ जाती है। जब उसका ऐश्वर्य क्रियाशील होता है, तब वह विश्वका सृजन, पालन, संहार और उसपर अनुग्रह-निग्रह करनेवाला बन जाता है। निर्गुण परब्रह्मके साथ-ही-साथ सगुण ईश्वरके रूपमें विराजित होनेमें कोई विरोध भी नहीं है। विद्युत्-शक्तिका हम न कोई स्वरूप बता सकते हैं और न उसको जान ही सकते हैं। उसके वास्तविक स्वरूपके विषयमें हम कुछ जाननेमें एकदम असमर्थ हैं। लेकिन भौतिकी (Physics)-के द्वारा उसकी क्रियाओंसे उसका जो रूप प्रकट होता है, उसको हम अवश्य जान लेते हैं। वेदान्तका निर्गुण ब्रह्म इसी विद्युत्-शक्तिके समान है और सगुण ब्रह्म विद्युत्‌के क्रियात्मक रूपोंके समान। निर्गुण ब्रह्मका बोध ज्ञानके द्वारा हो सकता है, परंतु सगुण ब्रह्म या ईश्वरको पानेके लिये हमको भक्तिकी शरण लेनी होगी, जिसके और भी कई नाम हैं, जैसे—चिन्तन, मनन, ध्यान-उपासना, आराधना आदि। पर शंकराचार्यके दर्शनमें वेदान्तके निर्गुण ब्रह्मके रूपमें मिलनेवाले परम ज्ञान या परमानन्दकी प्राप्तिके लिये इष्टदेवकी भक्ति या उपासनाकी अनिवार्यताका प्रतिपादन उचित ही है। परम ज्ञानकी उपलब्धि केवल भगवत्कृपासे सम्भव है। इसलिये शांकरदर्शनमें भक्तिको अद्वैत-ज्ञानका एकमात्र आधार बताया गया है।

भगवान् शंकराचार्यद्वारा सुधार किये जाने तथा नवजीवन प्रदान किये जानेके उपरान्त अद्वैत-सम्प्रदायके अनुगामियोंद्वारा धर्मके जिस रूपका आचरण किया गया, उसमें गणेशका क्या स्थान है, इसका अध्ययन करनेके पूर्व इस बातकी जानकारी अत्यधिक लाभकारिणी होगी कि ईश्वर और उसकी उपासनाके विषयमें

शंकराचार्यका दृष्टिकोण क्या है? वैदिक देव-समाजमें हमें नाना देवताओंके दर्शन होते हैं—जैसे, इन्द्र, वरुण, सविता, पूषा, उपेन्द्र, अग्नि, मित्र, अश्विनीकुमार और अन्य देवतागण। देखनेमें देवताओंका एक भँवर-जाल-सा लगता है। देवताओंका एक ऐसा जाल है, जिसके विषयमें ईसाई मिशनरी, मुसलमानी धर्मगुरु और झूठ-मूठका युक्तिवाद बघारनेवाले लोग यह कहते हैं कि 'इसने तो हिंदुओंके जीवनको ही बर्बाद कर दिया है।' किंतु यहूदी, ईसाई और मुसलमान लोग जिस एकेश्वरवादके ऊपर बड़ा गर्व करते हैं, उसकी कल्पना और उसका विवेचन वेदों और उपनिषदोंमें बहुत पहलेसे ही उपलब्ध है। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें कहा गया है—'सत्ता एक ही है। विद्वान् लोग उसका नाना रूपोंमें वर्णन करते हैं—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'

(ऋक्० १। १६४। ४६)

'महानारायण-उपनिषद्' के अनुवाक (३। १)-में कहा गया है—'वही ब्रह्मा है, शिव है, हरि है, इन्द्र है, अक्षर है और है परम सत्ता—**स ब्रह्मा स शिवः स हरिः स इन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।**' 'मैत्रायणी-उपनिषद्' इस सिद्धान्तका उल्लेख करती है कि 'सारे देवता निराकार ब्रह्मके ही विविध रूप हैं—**ब्रह्मणो वावैता अग्र्यास्तनवः परस्यामृतस्याशरीरस्य। ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्।**' (मै० ४। ६) 'वैराग्यशतक' में भर्तृहरिका यह प्रसिद्ध वचन विदित ही है कि 'ईश्वर एक ही है, चाहे उसे केशव कहो, चाहे शिव—**एको देवः केशवो वा शिवो वा।** एकेश्वरवादके इस महान् सत्यकी परछाईं केवल शंकराचार्यके लेखों और विचारोंमें ही नहीं दिखायी देती, वरं शांकर-सम्प्रदायके सभी अनुयायियोंमें उसका दर्शन होता है। परवर्तीकालके एक अद्वैतवादी गौड़ ब्रह्मानन्द सरस्वतीने बड़े भावविभोर स्वरमें कहा था—'कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् शिवका ध्यान करना चाहिये; दूसरे लोग कहते हैं कि शक्ति, गणेश या आदित्यकी अर्चना करनी चाहिये; परंतु हे नारायण! यह तुम्हीं तो हो, जो इन सब विभिन्न रूपोंमें प्रकट हो गये हो। अतएव तुम्हीं मेरे एकमात्र शरण्य हो'—

ध्येयं वदन्ति शिवमेव हि केचिदन्ये
शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै।
रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेव
तस्मात् त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे॥

(श्रीहरिशरणाष्टकम् १)

यह सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि, जो देवताओंकी विभिन्नरूपताके बीच एक सर्वव्यापी एकताका दर्शन कराती है तथा ऐसे दृष्टिकोणसे उत्पन्न होनेवाली सार्वभौमिकता और सहिष्णुता एक और श्लोकमें बड़े प्रखररूपसे व्यक्त हुई है। यह श्लोक अद्वैत-सम्प्रदायके अनुयायियोंमें बहुत प्रचलित है और इसका भाव है—'जिसकी शैव शिवके रूपमें, वेदान्ती ब्रह्मके रूपमें, बौद्ध बुद्धके रूपमें, प्रमाणपटु नैयायिक स्रष्टाके रूपमें, जैन मतावलम्बी अर्हत्के रूपमें और मीमांसकगण कर्मके रूपमें उपासना करते हैं, वे ही त्रिलोकीनाथ श्रीहरि आपकी कामनाओंको फलीभूत करें'—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

(हनुमन्नाटक १। ३)

यह सचमुच उल्लासका विषय है कि ऐसी भावनाओंसे ओत-प्रोत शंकरमतानुयायी कट्टरपने, हठधर्मिता और अपने मतके प्रति दुराग्रहसे सर्वथा मुक्त हैं। वे अपने इष्ट-देवतासे भिन्न ईश्वररूपोंकी अवहेलना अथवा निन्दा नहीं करते। वास्तवमें तो शांकर-सम्प्रदायको इतना ही अभीष्ट है कि आप चाहे जिस किसी देवविग्रहकी भी विशेषरूपसे पूजा करते हों, दैनिक पूजा-पद्धतिमें अन्य सब विग्रहोंको भी आपसे उतना ही आदर मिलना चाहिये और ऐसी ही पूजाका नाम है—पंचायतन-पूजा। एक गम्भीर दृष्टिवाले अद्वैतोंके विचारमें सभी मन्त्र, चाहे वह प्रणव हो, चाहे महागणपति-मन्त्र, चाहे पंचाक्षरी, षडक्षरी, अष्टाक्षरी, द्वादशाक्षरी, पंचदशाक्षरी, षोडशाक्षरी अथवा वेदमाता गायत्री हो, सभीका लक्ष्य एक ही 'ईश्वर' है। सभी यन्त्र— चाहे वह गणपतिका, सुब्रह्मण्यका, नारायणका अथवा ललितादेवीका (श्रीयन्त्र) हो, सबमें इसी एक रहस्यमय सत्ताका अधिनिवेश है। आचार्य शंकरकी महती प्रतिभा इस बातसे विशद रूपमें प्रकट होती है कि वैदिक बहुदेवतावादका मन्थन करके उन्होंने ऐसे धर्मको जन्म दिया, जो किसी भी पंथ-

विशेषके प्रति दुराग्रहसे तथा उसके परिणामस्वरूप विद्वेषसे सर्वथा मुक्त है और पंचायतनकी (तथा जहाँ कुमारको भी शामिल कर लिया गया है, वहाँ षडायतन या छः देवताओंकी) ऐसी पूजा-प्रणालीका उपदेश दिया, जिसमें अपने इष्टदेवताकी उपासनाके लिये विशेष स्थान है और अन्य देवताओंके प्रति भी यथेष्ट आदर है। शंकरने उपासनाके लिये जिन देवताओंको चुना था, वे हैं—आदित्य, अम्बिका, विष्णु, गणपति और महेश्वर (तथा स्कन्द)—

आदित्यमम्बिकां विष्णुं गणनाथं महेश्वरम्।
पञ्चयज्ञपरो नित्यं गृहस्थः पञ्च पूजयेत्॥

शांकरपरम्पराके एक परवर्ती मूर्धन्य विद्वान् स्वामी विद्यारण्यने शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, विनायक और स्कन्दकी पूजाको भक्तिकी प्राप्तिके लिये छः दर्शन माने हैं—

शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा।
स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि॥

इस षडायतन अथवा पंचायतन-पूजामें एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यहाँ उपासकको देवताके रूपमें अपने स्वरूपका और अपने स्वरूपमें आराध्य देवताका ध्यान करनेका आदेश दिया गया है—

'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि।' (वराहोपनिषद् २। ३४)

'बृहदारण्यक-उपनिषद्' में स्पष्ट शब्दोंमें उस उपासक या साधकको भारवाही पशुके समान बताया गया है, जो अपने उपास्य देवताको अपनेसे भिन्न मानकर पूजा-उपासना करता है—

'अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्।' (बृहदारण्यक १। ४। १०)

शांकर सम्प्रदायमें प्रचलित धार्मिक आचारोंकी पूर्वपीठिकाके रूपमें पर्यवेक्षण करनेके उपरान्त अब हम इस बातपर विचार करेंगे कि शंकरके देवतावादमें गणेशका कौन-सा स्थान है?

अपने 'शंकर-विजय' में आनन्दगिरिने शंकराचार्यके उन उपदेशोंका साररूपमें उल्लेख किया है, जिनको आचार्यने पथभ्रष्ट गाणपत्योंके निमित्त कहा था। शंकरके अनुसार 'प्रत्येक उपासकके शरीरके भीतर चार दलोंवाले मूलाधारमें, छः दलोंवाले स्वाधिष्ठानमें, दशदलीय मणिपूरकमें, द्वादशदलीय अनाहतमें, षोडशदलीय विशुद्धिचक्रमें, द्विदलयुक्त आज्ञाचक्रमें तथा सहस्रदल-समन्वित सहस्रारमें गणपति, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जीवात्मा, गुरु और परमात्माका निवास बताया गया है। इस प्रकार मूलाधारमें स्थित होनेके कारण इस सम्पूर्ण रहस्यमय षट्चक्र-संस्थानके आधार 'गणपति' ही हैं'—

'किं च मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहत-विशुद्ध्याज्ञासहस्रारेषु चतुर्दलषड्दलदशदलद्वादश-दलषोडशदलद्विदलसहस्रदलेषु स्थिता गणपति-ब्रह्मविष्णुरुद्रजीवात्मगुरुपरमात्मानः सन्ति देहधारिणः। अतो गणपतेर्मूलाधारगतस्य सर्वाधारत्वं वर्तते।'

(आनन्दगिरि, शंकराचार्य, मद्रास-विश्वविद्यालय, फिलासफी सिरीज, पृष्ठ —८४)

किंतु शंकराचार्य इससे भी ऊँचे सत्यका उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि 'परमात्मा सर्वव्यापी होनेपर भी आज्ञाचक्रमें निवास करके अपनेसे नीचेके चक्रोंमें स्थित जीवात्मा, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और गणपतिकी क्रियाओंको नियन्त्रित एवं प्रेरित करता है। साथ ही वह साक्षी, निर्गुण, सच्चिदानन्दमय, सर्वातीत एवं सर्वोत्कृष्ट (परात्पर परमोच्च प्रकृतिसे संयुक्त) रहता है, इस प्रकार उसका वेदोंमें सम्यक् प्रतिपादन हुआ है'—

'परमात्मा सर्वगतोऽप्याज्ञाचक्रवासी भूत्वा स्वाधः-स्थजीवरुद्रविष्णुब्रह्मगणपतीन् तत्तद्वियोगेषु प्रेरयित्वा स्वयं साक्षी निर्गुणः सच्चिदानन्दमयः सर्वातीतः सर्वोत्कृष्ट इति सम्यग्वेदेषु प्रतिपादितः।' (वही)

इस बातका विरोध कभी नहीं किया जा सकता कि गणपति और परब्रह्म वस्तुतः एक ही हैं; क्योंकि जितने भी नाम हैं, उनसे ब्रह्मका ही निर्देश होता है। 'जब ब्रह्म सभी शब्दोंका वाच्यार्थ है, तब गणपति शब्दने ही क्या अपराध किया है कि वह ब्रह्मवाचक न हो। (यदि अंशकी कल्पना की जाय तो) अंश कभी अंशीसे भिन्न नहीं होता—**'सर्वशब्दवाच्यस्य ब्रह्मणो गणपतिशब्देन किमपराद्धम्?.... अंशांशिनोरभेदात्।'** (वही ८६)

इसके अतिरिक्त ऐसा कहा जाता है कि शंकरने पथभ्रष्ट गाणपत्योंको ऐसा समझाया कि 'गणपति वही हैं, जो शिव हैं और शिव तथा परब्रह्ममें, जिसका प्रतीक

प्रणव है, कोई अन्तर नहीं है।'—'**ओंकारातीतस्य परमशिवस्य गणपतिरूपत्वेन तदंशास्सर्वा देवता इति युक्तमुक्तम्।**' (वही ८८)

और अन्य सभी देवतागण एकमात्र गणपतिके ही विभिन्न रूप हैं। इस प्रकार शंकराचार्य इस परम सत्यकी स्थापना करते हैं कि 'गणेश, विष्णु, शिव, अम्बिका, आदित्य और कुमार केवल उसी परब्रह्मके भिन्न-भिन्न रूप हैं। उनमें किसी अन्तर्विरोधकी तनिक-सी छाया भी नहीं है।'

गणेशके इस प्रकारके असाम्प्रदायिक एवं परमात्ममूलक निरूपणके बाद इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि शंकराचार्यने गणेशके विषयमें पुराणोंमें जो विस्तार किया गया है और तन्त्रोंमें उनके लिये जिन पूजा-पद्धतियोंका विकास हुआ है, इन सबका उस सीमातक निराकरण नहीं किया है, जहाँतक वे पूजा-पद्धतियाँ वैदिक परम्पराके विपरीत नहीं गयी हैं। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि समस्त वर्णमाला और वर्ण-विन्यासका उद्भव प्रणवसे ही हुआ है। और चूँकि गणेश और प्रणवमें अभेद है, इसलिये 'गणेशसहस्रनाम' में उनको 'अकारादिक्षकारान्त महासरस्वतीमय' कहा गया है। शाक्तमतके अनुसार शक्तिसे वर्णोंकी उत्पत्तिकी मान्यताके समान ही यह सिद्धान्त भी है। वर्णमालाका प्रत्येक अक्षर गणपतिके किसी एक रूपका द्योतक है। इस प्रकार उनके कुल इकावन रूपोंका वर्णन किया गया है। परंतु मुद्गलपुराणमें केवल बत्तीस गणेश-मूर्तियोंका उल्लेख है और साधारणरूपसे 'षोडश-गणपति' नामसे विदित केवल सोलह रूपोंकी ही उपासना होती है। इन सोलहमें भी भक्तोंकी अधिक संख्या केवल बाल, तरुण, भक्त, उच्छिष्ट, लक्ष्मी, हेरम्ब और महागणपतिको ही अधिक समादर देती है। विशेष करके महागणपतिमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा इन तीनोंकी शक्तियाँ—सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वतीका समाहार माना गया है। इस मूर्तिकी बारह भुजाओंमें अपनी पत्नियोंसहित त्रिदेवोंके आयुधोंको देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती है। यद्यपि श्रीगणेश निर्गुण ब्रह्म ही हैं, तथापि विभिन्न गणेश-मूर्तियोंकी बहुसंख्यक भुजाओंमें जो नाना प्रकारके आयुध और उपकरण देखनेको मिलते हैं, वे सब उस निर्गुण परब्रह्ममें आरोपित नाना गुणोंके प्रतीक हैं। विशेषतः उच्छिष्टगणपतिके हाथोंमें वे ही आयुध हैं, जो कि परदेवताके हाथोंमें हैं। जैसे-पाश, अंकुश, इक्षु, कोदण्ड और कुसुमशर (**सुमनबाणेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशवरायुधः।** —उच्छिष्ट-गणपतिसहस्रनाम ८०)।

इस उक्तिके द्वारा गणपति और शक्तिकी एकता प्रकट होती है। गणेशका शिवरूप रुद्र-मन्त्रमें देखनेको मिलता है—'**गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः।**' यह शिव-शक्ति-स्वरूप 'ललितासहस्रनाम' में भी देखा जा सकता है—'**कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरा।**' विष्णु और गणेशकी एकता 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के इस श्लोकमें मिलती है—'**श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मजः।**' (गणपतिखण्ड १२। ८२) इसी प्रकार ग्रहपति-नाम आदित्यके साथ उनकी एकताका द्योतक है—(**गणेशाष्टोत्तरम्**)।

इस प्रकार पुराणोंसे यह सिद्ध होता है कि श्रीगणेश आदित्य, अम्बिका, विष्णु और महेशके ही रूप हैं और सब-के-सब वस्तुतः एक निराकार ब्रह्मके ही नानारूप हैं। शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंद्वारा अनन्यनिष्ठाके साथ अपनायी हुई इस विचारधाराका पोषण 'गणेशोत्तरतापिनीयोपनिषद्' भी करती है—

'**स विष्णुः स शिवः स ब्रह्मा सेन्द्रः सेन्दुः स सूर्यः स वायुः सोऽग्निः स ब्रह्म ॐ ब्रह्म गणेशः।**' (२। १)

'प्रपञ्चसार' तन्त्रके सोलहवें पटलमें गणपति-आवरणके वर्णनमें बताया गया है कि 'बिल्ववृक्षके नीचे लक्ष्मी और नारायण उनके सम्मुख स्थित हैं, वटवृक्षके नीचे पार्वती और परमेश्वर दाहिनी ओर, पीपलके नीचे रति एवं कामदेव उनके पीछे; और प्रियंगुके नीचे भूमि और वराह उनकी बायीं ओर विराजित हैं'—

अग्रेऽथ बिल्वमभितश्च रमारमेशौ
तद्दक्षिणे वटजुषौ गिरिजावृषाङ्कौ।
पृष्ठेऽथ पिप्पलजुषौ रतिपुष्पबाणौ
सव्ये प्रियङ्गुमभितश्च महीवराहौ॥

(१६। १२)

मध्यमें गणपति विराजमान हैं और उनके दसमेंसे आठ हाथोंमें सभी देवी और देवताओंके आयुध हैं। शेष दो हाथोंमेंसे एकमें अनारका फल है, दूसरेमें टूटा हुआ गजदन्त। उनकी गोदमें उनकी पत्नी 'वल्लभा'

बैठी हुई हैं। उनके मोदक अथवा रत्नकलश अथवा अनारके फलद्वारा उनके आनन्दरूपकी अभिव्यंजना होती है। 'तैत्तिरीय-उपनिषद्' के इस सूक्तका यह रूप समर्थन करता है—

'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' (२।७)

संक्षेपतः श्रीगणेश आवरणके बिन्दु-स्थानपर हैं। अब यह सर्वविज्ञात तथ्य है कि किसी यन्त्रका बिन्दु-स्थान परात्पर परब्रह्मका वाचक है।

श्रीगणेश (तथा किसी अन्य देवता)-के प्रति शंकराचार्यकी दृष्टि सगुणात्मक और निर्गुणात्मक दोनों ही है। अपने भक्तिपूरित उद्‌गारोंमें आचार्यप्रवर गणपतिके गज और मानव रूपका वर्णन करनेमें अत्यन्त काव्यात्मक ढंगसे कहते हैं—

समस्तलोकशङ्करं निरस्तदैत्यकुञ्जरं
दरेतरोदरं वरं वरेभवक्त्रमक्षरम्।
कृपाकरं क्षमाकरं मुदाकरं यशस्करं
मनस्करं नमस्कृतां नमस्करोमि भास्वरम्॥
(गणेशपंचरत्न-३)

'जो समस्त लोकोंके कल्याणकारी और गजासुरका नाश करनेवाले हैं; जिनका उदर लंबा और मुख श्रेष्ठ गजके समान है; जो कृपा-निधान, क्षमा-दान करनेवाले, आनन्दकी निधि, यशके विस्तारक तथा मनके प्रेरक हैं; उन नमस्कार करनेवालोंके लिये सूर्यरूप श्रीगणेशको मैं नमस्कार करता हूँ।'

किंतु दूसरे ही क्षण शंकर निर्गुण ब्रह्मके ऊँचे शिखरपर जा पहुँचते हैं और गणेशकी अभ्यर्थना करते हुए वे कहते हैं—

यमेकाक्षरं निर्मलं निर्विकल्पं गुणातीतमानन्दमाकारशून्यम्।
परं पारमोंकारमाम्नायगर्भं वदन्ति प्रगल्भं पुराणं तमीडे॥
(गणेशभुजङ्गम्-७)

'जिन्हें ज्ञानीजन एकाक्षर (प्रणवरूप), निर्मल, निर्विकल्प, गुणातीत, आनन्दस्वरूप, निराकार, परमपार एवं वेदगर्भ ओंकार कहते हैं, उन प्रगल्भ पुराणस्वरूप गणेशका मैं स्तवन करता हूँ।'

गणेशतत्त्वका परम सार यही है कि गणेश ही ओंकारके व्यक्त रूप हैं। दूसरे शब्दोंमें वे ही परब्रह्म हैं; आदिस्वर तथा नाद हैं, जिससे विश्वके सारे नाम-रूपोंका सृजन हुआ है। उनका वक्रतुण्ड-आकार ओंकारको प्रदर्शित करता है। ऊपर जितनी बातें कही गयी हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंकी दृष्टिमें श्रीगणेश निर्गुण ब्रह्मके ही रूप हैं। शंकराचार्यजीने जिन मठोंकी स्थापना की है, उनमें गणेशकी पूजाका विधान है। इसका प्रमाण हमें 'उच्छिष्टगणपतिसहस्रनाम' के कुछ मन्त्रोंमें स्पष्टरूपसे मिलता है। जैसे—

कामकोटिपीठवासः शङ्करार्चितपादुकः।
ऋष्यशृङ्गपुरस्थः स सुरेशार्चितवैभवः॥
द्वारकापीठसंवासः पद्मपादार्चिताङ्घ्रिकः।
जगन्नाथपुरस्थस्तु तोटकाचार्यसेवितः॥
ज्योतिर्मठालयस्थः स हस्तामलकपूजितः॥
(७७६—७८०)

'जो कामकोटिपीठके अधिवासी हैं और उस रूपमें साक्षात् आचार्य शंकरने जिनके चरणोंकी पादुकाका पूजन किया है; जो ऋष्यशृंगपुर (शृंगेरी-मठ)-में निवास करते हैं और वहाँ श्रीसुरेश्वराचार्यने जिनके वैभवकी अर्चना की है; जो द्वारकापीठमें निवास करनेवाले हैं और श्रीपद्मपादाचार्यने जिनके चरणारविन्दोंकी पूजा की है; जो जगन्नाथपुरीमें रहकर तोटकाचार्यसे सेवित हुए हैं तथा जो ज्योतिर्मठके अधिवासी होकर हस्तामलकाचार्यसे पूजित हुए हैं।'

इस प्रकार शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंके लिये तथा आचार्यप्रवरके द्वारा स्थापित किये हुए विभिन्न पीठाधीशोंके लिये भी श्रीगणेशकी बाह्य-पूजा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करनेका एक आवश्यक अंग है। श्रीविद्याके कट्टर उपासक और 'ललितासहस्रनाम' की व्याख्याके लेखक श्रीभास्कररायने, जो अद्वैतमतानुयायी थे, अपने 'गणेशसहस्रनाम' की व्याख्याकी भूमिकामें लिखा है—'परमेश्वरके द्वारा नाना गुणोंसे युक्त नाना रूपोंका धारण किया जाना उनकी कृपाके ही कारण होता है। जो रूप वे धारण करते हैं, वे वे ही रूप होते हैं, जिनके प्रति उनके भक्तोंकी रुचि होती है'—

'बहिरङ्गानुष्ठानशीलानामेव त्वन्तरङ्गानुष्ठानेऽधिकारः सगुणं तु रूपमुपासकानुग्रहार्थं कल्पितमेव इत्युपासकरुचिवैचित्र्येण नानाविधम्।'

'जो स्वभावतः बहिरंग-अनुष्ठानमें संलग्न रहनेवाले

हैं, उनका ही अन्तरंग-अनुष्ठानमें अधिकार है। सगुणरूप तो उपासकोंपर अनुग्रह करनेके लिये कल्पित ही है; अतः उपासकोंकी विभिन्न रुचिके कारण वह अनेक प्रकारका है।'

अन्तमें यह बात बड़ी दृढ़ताके साथ कही जा सकती है, कि जहाँतक शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंसे सम्बन्ध है, वहाँतक उनकी दृष्टिमें गणेश और अन्य किसी देवतामें कोई भेद नहीं है साथ ही वहाँपर असाम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और तान्त्रिकताकी आड़में होनेवाले अनाचारोंके लिये कोई स्थान नहीं है। गणपति एक ही साथ सगुण ईश्वर भी हैं और निर्गुण ब्रह्म भी। श्रीगणपतिके प्रति शांकर-सम्प्रदायका अभिमत मत क्या है, यह श्रीराघवचैतन्यकृत 'महागणपति-स्तोत्र' के निम्नलिखित श्लोकसे बहुत अच्छी तरह व्यक्त होता है, जिसमें साम्प्रदायिकतासे रहित ईश्वरवादके उच्च स्तरकी आभा झलक रही है—

इत्थं विष्णुशिवादितत्त्वतनवे श्रीवक्रतुण्डाय हुं-
काराक्षिप्तसमस्तदैत्यपृतनाव्राताय दीप्तत्विषे।
आनन्दैकरसावबोधलहरीविध्वस्तसर्वोर्मये
सर्वत्र प्रथमानमुग्धमहसे तस्मै परस्मै नमः॥

(राघवचैतन्यकृत महागणपतिस्तोत्रम्-४)

'इस प्रकार विष्णु-शिव आदि तत्त्व जिनका शरीर है; जिन्होंने अपने हुंकारमात्रसे समस्त दैत्यसेनाके समूहको मार भगाया है; जिनकी दीप्ति अत्यन्त उद्दीप्त है; जिन्होंने आनन्दैकरसमयी ज्ञान-लहरीसे समस्त ऊर्मियोंको विध्वस्त कर डाला है तथा जिनका मुग्ध मनोहर तेज सर्वत्र व्याप्त है, उन परमात्मा वक्रतुण्डको नमस्कार है।'

~~~o~~~

वैदिक देवता ज्येष्ठराज गणेश

(लेखक —श्रीनीरजाकान्त चौधुरी देवशर्मा, एम्०ए०, एल्० एल्० बी०, पी-एच्० डी०)

'तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(कृष्णयजुर्वेद, मैत्रायणी-संहिता २।९।१)

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गखण्डं
चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम्।
लसद्दन्तकाण्डं विपद्भङ्गचण्डं
शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्रतुण्डम्॥

(शंकराचार्यकृत शिवभुजङ्गप्रयतास्तोत्रम्)

'जिनके गण्डस्थलसे निरन्तर मदवारि स्रवित हो रहा है और उस मदगन्धसे भ्रमरोंके मिलित होनेपर जिनका सुन्दर शुण्ड बराबर चलायमान रहता है, जगत्के परित्राणके कार्यमें जो सुदक्ष हैं, जिनका एकदन्त सुशोभित हो रहा है, जो जगत्की विपत्तिका नाश करनेमें प्रचण्ड हैं तथा जो शिवजीके परम प्रेमास्पद हैं, उन वक्रतुण्ड गणेशजीको मैं भजता हूँ।'

गणेशजी विघ्नोंका नाश करनेवाले सिद्धिदाता तथा सर्वाग्रपूज्य हैं। इसी कारण इस स्तोत्रके आदिमें उनकी वन्दना की गयी है। चाहे सम्प्रदाय कोई भी क्यों न हो, प्रत्येक हिंदूको जिस-किसी देवताकी उपासना अथवा जिस-किसी कार्यके प्रारम्भमें श्रीगणपतिकी पूजा करनी ही पड़ती है।

पाश्चात्त्य मत—गणेश वैदिक देवता नहीं हैं

किंतु पाश्चात्त्य विचारक हमलोगोंको शिक्षा देते हैं कि 'गणेश एक अनार्य देवता हैं। वेदोंमें उनका कोई स्थान न था। गुप्तयुगके पूर्वतक हिंदूधर्ममें ये अज्ञात थे।' कोई-कोई एतद्देशीय विद्वान् भी उनका ही अनुकरण करते हुए कहते हैं कि 'दक्षिण भारतके देशोंमें उनकी पूजा पहले-पहल दशम शताब्दीमें आरम्भ हुई थी।' हमारी मान्यता है कि पार्वती-परमेश्वरके ज्येष्ठ पुत्र गणपतिका स्थान वेदमें सुप्रतिष्ठित है।

सुप्रसिद्ध भारत-पुरातत्त्वविद् जर्मन् विद्वान् मैक्स मूलर (Max muller)-को बहुत-से लोग 'वेदोंका उद्धारकर्ता' कहते हैं। परंतु उन्होंने प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व एक व्याख्यानमें कोटि-कोटि हिंदुओंके अर्धनरपक्षी-वाहन, सर्पशायी चतुर्हस्त 'विष्णु', त्रिनेत्र, नग्न, नृमुण्डमालाधारी, विकटाकार, वृषारूढ़ 'शिव', मयूरवाहन, षण्मुख 'कार्तिकेय', हस्तिमुख, चतुर्बाहु, मूषकवाहन, सिद्धिके देवता 'गणेश' तथा लोलजिह्वा, नृमुण्डमालिनी, मुक्तकेशी, रक्ताक्तमेखला 'काली' आदिकी मूर्तियोंकी उपासनाको लेकर भी भीषण व्यंग्य किया था।
~~~

उन्होंने अन्यत्र लिखा है कि 'वेदोंमें यूरोपीय दृष्टिसे देखनेपर अनुमोदनके योग्य कोई वस्तु नहीं है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि उनमें शिव और कालीकी नृशंसता, कृष्णकी लम्पटता और विष्णुके मायावतार आदिका कुछ भी पता नहीं मिलता।'

उनके मतसे 'हिंदुओंकी यह मूर्तिपूजा ग्रीक और रोमन लोगोंके जुपिटर, अपोलो, मिनर्वा आदिकी पूजाकी अपेक्षा भी असभ्य और नीचे स्तरकी थी। सभ्यताके आलोकका तथा स्वाधीन चिन्तनका प्रसार होनेपर ये सब विलुप्त हो जायँगे।' किंतु इस मतकी निस्सारता आगेकी पंक्तियोंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जायगी।

गणपति वैदिक देवता हैं

वास्तवमें इस समय सुविशाल वैदिक-साहित्यका कंकाल-मात्र अवशिष्ट है। तथापि जो कुछ भी है, उससे ज्ञात होता है कि गणेश अति प्राचीन वैदिक देवता हैं, अर्वाचीन नहीं।

(१) ऋग्वेद शाकलसंहिता—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः
शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋग्वेद २। २३। १)

'हे अपने गणोंमें गणपति (देव), क्रान्तदर्शियोंमें (कवियोंमें) श्रेष्ठ कवि, शिवा-शिवके प्रिय ज्येष्ठ पुत्र, अतिशय भोग और सुख आदिके दाता, हम आपका इस कर्ममें आवाहन करते हैं। हमारी स्तुतियोंको सुनते हुए पालनकर्ताके रूपमें आप इस सदनमें आसीन हों।'

यह मन्त्र गणपति-दैवत है, इसमें संदेह नहीं हो सकता। इसके द्रष्टा बृहस्पति हैं और देवता ब्रह्मणस्पति। यह 'तैत्तिरीयसंहिता (२। ३। ४। ३)-में भी आम्नात हुआ है।

'श्रीमहागणपतिसहस्रनामस्तोत्र' में गणेशके **'ज्येष्ठराज' 'ब्रह्मणस्पति', 'कविः कवीनाम्'** आदि सारे नाम प्राप्त होते हैं—

विश्वकर्ता विश्वमुखो विश्वरूपो निधिर्घृणिः।
कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः॥
ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिप्रियपतिप्रियः।
हिरण्मयपुरान्तःस्थः सूर्यमण्डलमध्यगः॥

(१४-१५)

'गणानां त्वा गणपति०' (१। २३। १)यह ऋक्-मन्त्र तथा इसके अनुरूप और भी कतिपय मन्त्र सर्वत्र चिरकालसे गणेशकी उपासनामें विनियुक्त होते आ रहे हैं। वंगदेशमें ऋग्वेदीय ब्राह्मण वृषोत्सर्गश्राद्धमें गणेशपूजनके समय इस मन्त्रका पाठ करते हैं। बालम्भट्टने 'याज्ञवल्क्य-स्मृति'की 'मिताक्षरा' टीकाके लक्ष्मीभाष्यमें इसका गणेशपूजनपर कहकर ही उल्लेख किया है।

महाकवि भास कालिदास और कौटिल्यके भी पूर्ववर्ती हैं। उन्होंने भी आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष (ई० पू० ४५०) पूर्व अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'के नान्दी श्लोकमें 'वत्सराज'-शब्दका द्व्यर्थक शब्दके रूपमें ही प्रयोग किया है। देवपक्षमें उसका अर्थ 'कार्तिकेय' है तथा दूसरा लौकिक अर्थ है—वत्सदेशका राजा उदयन।

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्रीने इस श्लोककी अपनी व्याख्यामें निम्नलिखित वेदमन्त्रको उद्धृत करके अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है—'**वत्सराजः बालश्चासौ राजा च वत्सराजः। ×× गणपतिर्हि अस्य ज्येष्ठो ज्येष्ठराज इति वेदे व्यपदिष्टः। यतः कनिष्ठ औचित्याद् वत्सराज इति व्यपदिश्यते।**'

अतएव 'ज्येष्ठराज' या 'वत्सराज'—ये दो पद परस्परके परिपूरक हैं। इनका अर्थ यथाक्रम दो देवभ्राता—गणपति और कार्तिकेय हैं। वेदमें ज्येष्ठराज-नामका उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। यह प्रथमतः गणेशको कनिष्ठ कार्तिकेयके ज्येष्ठ भ्राताके रूपमें निर्दिष्ट करता है। केवल इतना ही नहीं, इसमें उनके माता-पिता शिवा-शिवका उल्लेख भी सुस्पष्ट है; क्योंकि 'ज्येष्ठराज'-के अर्थमें गणेश उनके ज्येष्ठ पुत्र भी हैं।

अतः 'शाकल' और 'तैत्तिरीय'-संहितामें 'ज्येष्ठराज' नाम गणेशके लिये आम्नात होनेसे सिद्ध होता है कि इतिहास-पुराणादिमें जगत्के माता-पिताकी जो पौराणिक गाथा है तथा उनके विविध लीलाप्रसंग विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, वे अर्वाचीन या अनार्योंकी देन नहीं, वेदोंमें इनका मूल सुनिबद्ध है।

'ज्येष्ठराज' इस नामसे सिद्ध होता है कि गणेश ही नहीं, कार्तिकेय, शिव और पार्वती भी वैदिक देवता हैं। इससे पाश्चात्त्य ईसाई 'भारतबन्धुओं' के दुरभिसंधिमूलक मतवाद विध्वस्त हो जाते हैं।

ध्यान देनेकी बात है कि तथाकथित वेद-विदग्ध

मैक्समूलरने घोषणा की है कि 'अथर्ववेदमें तीन आँखोंवाले नंगे दानव (Three-eyed naked monster) शिव, उसकी महाशक्ति नृशंस काली और उनके दो कुमार—हस्तिमुख गणेश और षण्मुख कार्तिकेयका अस्तित्व नहीं है।' इस प्रकार उसने शिव-परिवारपर विशेषरूपसे आक्रमण किया है; किंतु,

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्।
महो वाजिनं सनिभ्यः।

(शौनकसं० २०। ४४। ३)

—इस मन्त्रमें भी गणपति 'ज्येष्ठराज'-रूपमें स्तुत हुए हैं। इस मन्त्रपर सायणभाष्य नहीं मिलता।

यह ऋक्-मन्त्र 'शाकलसंहिता' में न होनेपर भी अन्य किसी संहितासे लिया गया है।

(२) **शुक्लयजुः-माध्यन्दिन-संहिता।**

(क) **गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳहवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिꣳहवामहे। वसो मम॥'** (२३। १९)

यह मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है। इसमें गणेशके 'गणपति, प्रिय-प्रियपति, निधि-निधिपति' आदि नाम पाये जाते हैं। वंगदेशके यजुर्वेदी ब्राह्मण वृषोत्सर्ग-श्राद्धमें इस मन्त्रद्वारा गणेशका आवाहन करके उनकी पूजा करते हैं। यह मन्त्र अश्वमेधयज्ञमें भी विनियुक्त होता है।

(ख) **नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः।** (१६। २५)

(ग) **'गणश्रिये स्वाहा, गणपतये स्वाहा।'**

(२२। ३०)

(३) **कृष्णयजुर्वेद—तैत्तिरीयसंहिता।**

(क) **'गणानां त्वा०'**—इत्यादि (२। ३। १४। ३) मन्त्र ऊपर दिया गया है।

(ख) **'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।'**

(४) **कृष्णयजुर्वेद—मैत्रायणीय संहिता।**

'तत्कराटाय विद्महे' (२। ९। १)—इत्यादि मन्त्र ऊपर दिया जा चुका है। कृष्णयजुर्वेदमें ये दो गणेशके गायत्री-मन्त्र हैं। उनका हस्तितुण्ड, गजवदन, वक्रतुण्ड और बृहद्-दन्त ऋषियोंने प्रत्यक्ष किया था। मैक्स मूलरका गणेशके हस्ति-मुण्डको लेकर प्रलाप करना व्यर्थ और निरर्थक है। पाश्चात्त्य मतसे वेदमें हस्तीका उल्लेख नहीं है; किंतु यह कथन भी मिथ्या है। गणेशके गजवदनका विशद वर्णन वेदमें है। मिस्रदेशके बहुतेरे देवताओंका मुख पशुके समान था। उनके साथ वैदिक-देवता गणेशका कोई सम्पर्क नहीं है और न हो सकता है।

(५) **अथर्ववेद—शौनकी-संहिता।**

'एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥'

—यह मन्त्र अथर्ववेदीय 'गणपत्युपनिषद् (८)-में भी उपलब्ध होता है। पुराणोंमें विष्णुके अवतार भगवान् परशुरामके साथ युद्धमें गणेशका एकदन्त भग्न होनेकी कथाका मूल इस मन्त्रमें पाया जाता है।

ब्राह्मण

(६) **सामवेद (सामविधान ब्राह्मण)**

विनायकसंहितामें उल्लेख है—**'एतान् प्रयुञ्जन् विनायकान् प्रीणाति।'** यह स्पष्ट गणेशपूजाकी विधि है।

आरण्यक

(७) **कृष्णयजुः—'तैत्तिरीय-आरण्यक'।**

'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥' इति

भावार्थ—'गणपतिदेवकी गायत्रीमें उनके हस्तिशुण्ड और दन्तका ध्यान करना होता है।'

उपनिषद्

(८) **अथर्ववेद—'गणेशपूर्वतापिनीय उपनिषद्'।**

(क) **गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनामतिमेधविग्रहम्। ज्येष्ठराजं वृषभं केतुमेकं स नः शृण्वन्नूतिभिः सीद शश्वत्॥**

(१। ५)

भावार्थ—'गणपति गण-समूहके नाथ सुरेन्द्र हैं। वे क्रान्तदर्शियोंमें प्रधान हैं, अतिशय मेधावी हैं। इसी कारण वे मानो अतिमेधाके विग्रहस्वरूप हैं। वे उमा-महेश्वरके ज्येष्ठ पुत्र, तेजस्वी, एक और अद्वितीय केतु हैं। वे हमारी स्तुति अनवरत श्रवण करते हुए यज्ञशालामें अधिष्ठित होकर रहें।

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि इस अथर्व-

मन्त्रमें भी 'ज्येष्ठराज' नाम व्यवहृत हुआ है।

(ख) ....वक्रतुण्डस्वरूपिणम्।

पार्श्वाधःस्थितकामधेनुं शिवोमातनयं विभुम्।
रुक्माम्बरनिभाकाशं रक्तवर्णं चतुर्भुजम्॥
(२। २)

भावार्थ—'गणेशजी चतुर्भुज हैं; उनका वर्ण लोहित है। वे गजवदन हैं। उनका शुण्ड वक्र है। वे भक्तोंके लिये कामधेनुस्वरूप परमेश्वर हैं। वे महादेव और उमाके पुत्र हैं।'

(९) अथर्ववेद—'गणेशोत्तरतापिनीय उपनिषद्'।

गणानां त्वा गणपतिम्। सप्रियाणां त्वा प्रियपतिम्। सनिधीनां त्वा निधिपतिम्। तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥ (२)

भावार्थ—'मैं गणसमूहोंके पति गणपति, प्रियगणोंके प्रियपति, निधिसमूहोंके निधिपति उन परम पुरुषको जानता हूँ। उनके वक्र (हस्ति) शुण्डका ध्यान करता हूँ। वे बृहद् दन्तधारी देव हमारी बुद्धिको सत्पथमें प्रेरित करें।'

ये दो उपनिषद् **'अथर्वशिरः'** के अन्तर्गत हैं। महाभारतमें लिखा है तथा आचार्य शंकरने भी इनसे प्रमाण उद्धृत किये हैं। अतएव यहाँ इन्हें अर्वाचीन या क्षेपक कहकर तर्क करनेका अवसर नहीं प्राप्त हो सकता।

(१०) अथर्ववेद—'बृहज्जाबाल-उपनिषद्'।

''शिवश्चन्द्रश्च रुद्रार्कौ विघ्नेशो विष्णुरेव च।
श्रीश्चैव हृदयेशश्च तथा नाभौ प्रजापतिः॥
(४। २२ क)

—इस मन्त्रमें अन्यान्य महान् देव-देवियोंके साथ विघ्नहन्ता गणेशकी भी स्तुति है। 'मुक्तिकोपनिषद्' की सूचीमें इस उपनिषद्का भी उल्लेख है। अतः इसे अप्रामाणिक कहना ठीक नहीं है।

(११) अथर्ववेद-'गणपति-उपनिषद्'।

(क) एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥' (८)

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥ (९)

भावार्थ—'हम एकदन्त गणेशको जानते हैं, गजवदनका ध्यान करते हैं। वे महादन्त देव हमारी बुद्धिको सत्पथमें प्रेरित करें।' 'गणेश एकदन्त एवं चतुर्भुज हैं; हाथोंमें पाश, अंकुश, अभय और वरद मुद्राके द्वारा शोभायमान हैं। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर और मूषकध्वज हैं। उनके कर्ण शूर्प (सूप)-के समान हैं। उनके परिधेय वस्त्र लोहितवर्णके हैं। रक्त चन्दनादि गन्धके द्वारा उनका देह अनुलिप्त है और रक्तवर्णके पुष्पोंद्वारा वे पूजित होते हैं।'

(ख) 'नमो व्रातपतये। नमो गणपतये। नमः प्रमथपतये। नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमो नमः'॥ (१०)

'मैं गणनाथको प्रणाम करता हूँ। गणपतिको प्रणाम करता हूँ। प्रमथपतिको प्रणाम करता हूँ। लम्बोदर, एकदन्त, विघ्नविनाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको बारंबार प्रणाम करता हूँ।'

(ग) यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति। ....सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति। (१३)

'नव-दूर्वादलके द्वारा गणेशकी पूजा करनेसे भक्त कुबेरके समान हो जाता है। जो एक सहस्र मोदकोंका भोग लगाता है, उसको मनोवांछित फल प्राप्त होता है। ....सूर्यग्रहणके समय महानदीमें अथवा देवप्रतिमाकी संनिधिमें गणेशके इष्ट मन्त्रका जप करनेसे मन्त्रसिद्धि होती है।'

यह 'गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्' है तथा 'मुक्तिकोपनिषद्' में भी इसका उल्लेख है। अतएव इस उपनिषद्को अप्रमाणित कहनेका कोई हेतु नहीं है।

वेदांग

शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष और व्याकरण—ये छः वेदांग हैं। ये वेदोंके साथ अंगांगी-भावसे सम्बद्ध हैं। वेदांगमें पारंगत हुए बिना श्रुतिके गूढ़ रहस्य और प्रकृत अर्थको हृदयंगम करना सम्भव नहीं। उपर्युक्त उदाहरणोंसे यह निस्संदेह सिद्ध हो गया कि 'ज्येष्ठराज'-गणेश स्मरणातीतकालसे वैदिक धर्ममें एक प्रधान देवताके रूपमें पूजित होते आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह भी

प्रमाणित हो गया कि हर-गौरी तथा उनके दो पुत्र, गणेश और कार्तिकेयकी लीला-कथा वैदिक-साहित्यमें भी सुप्रसिद्ध है; केवल पौराणिक गल्प नहीं। यहाँतक कि परशुरामके साथ युद्धके फलस्वरूप एकदन्तके रूपमें गणेशका ध्यान भी वेद-संहितामें उपलब्ध होता है।

यहाँ केवल दो वेदांगों, व्याकरण और कल्पसे गणेशकी उपासनाका कुछ उल्लेख किया जाता है।

(१) व्याकरण

पाणिनिमुनिका 'अष्टाध्यायी' वर्तमान कालका प्राचीनतम व्याकरण है। इतना ही नहीं, यह पृथ्वीकी सारी भाषाओंके व्याकरणमें श्रेष्ठत्वका दावा रखता है। भविष्यमें भी इसका यह गौरव अक्षुण्ण रहेगा, इसमें संदेहका कोई कारण नहीं है।

'अष्टाध्यायी' के '**जीविकार्थे चापण्ये।**' (५।३।९९) तथा '**इवे प्रतिकृतौ।**' (५। ३। ९६) आदि सूत्रोंमें मूर्तिपूजाका प्रमाण मिलता है। 'पाणिनीय-शिक्षा' भी उपर्युक्त 'अष्टाध्यायी' का ही समकालीन ग्रन्थ है। बहुतोंके मतसे यह वेदके ब्राह्मणभागका समकालीन है; क्योंकि वेदमन्त्र और ब्राह्मणके समान शिक्षामें भी उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित आदिके समान संकेत-चिह्न दिये गये हैं।

इन दो सूत्रोंके भाष्यमें पतञ्जलिने मूर्तिपूजाका तथा कैयट (द्वितीय-तृतीय शताब्दि ई० पूर्व)-ने शिव, स्कन्द, विशाख और गणपति-मूर्तियोंका उल्लेख किया है। उनके भाष्य निस्संदेह गुरु-शिष्यपरम्पराद्वारा जो ज्ञानका स्रोत प्रवाहित होता आ रहा है, उसके ही प्रकाशक हैं। अतएव स्वीकार करना पड़ता है कि उनसे बहुत पहले, यहाँतक कि पाणिनिसे बहुत पूर्वसे ही इन सब देवताओंकी मूर्तिपूजा वैदिक आराधनामें प्रचलित थी।

(२) कल्प

(क) मानवगृह्यसूत्र।

'**अथातो विनायकान् व्याख्यास्यामः।**' (२। १४) सूत्रमें गणेशोपासनाका वर्णन मिलता है।

(ख) बौद्धायन गृह्यपरिशिष्ट सूत्र—

'**अथातो विनायककल्पान् व्याख्यास्यामः।**' (३।१०)

देव-देवियोंके समान गणेशकी उपासना-विधि भी इसमें वर्णित हुई है।

(ग) बौधायन-धर्म-सूत्र—

इसमें विनायक और स्कन्द, षण्मुख, जयन्त, महासेन तथा षष्ठी आदि देव-देवियोंकी उपासनाकी विधियाँ हैं।

इन तीन 'कल्पसूत्रों' में गणेशकी उपासनाका उल्लेख है। ये पाणिनिकी अपेक्षा भी अत्यन्त प्राचीन हैं। वैदिक युगके समाजकी विधि-व्यवस्थाके विषयमें व्याकरण और कल्पसूत्रका जो साम्य प्राप्त होता है, उससे दृढ़रूपमें प्रमाणित हो जाता है कि हिंदूधर्ममें गणेशजीकी पूजा अति प्राचीनकालसे ही प्रचलित है।

अतः 'गाणपत्य-सम्प्रदाय दसवीं शतीमें प्रादुर्भूत हुआ', 'गणेशका आदिस्थान दक्षिणभारतमें था' तथा 'गणेशकी उपासना आदि अति निम्नस्तर—की है।' ये आधुनिक मत व्यर्थके बकवासमात्र हैं, इनका कोई समुचित आधार नहीं।

शंकराचार्य और गौडपादाचार्य गणेशको मानते थे। गम्भीर अनुसंधानके द्वारा कई विद्वानोंने श्रीशंकराचार्यका समय ६८८—७२० ई० स्थिर किया है। उनके परम गुरु 'माण्डूक्यकारिका' के प्रणेता श्रीगौडपादाचार्य अद्वैतवादके संस्थापक थे। उनका समय छठी शताब्दी (ईसवी) होना असंगत नहीं है। ये दोनों ही गणपतिके भक्त थे।

शंकराचार्यने अपने 'प्रपंचसारतन्त्र' नामक विशाल ग्रन्थके अष्टादश परिच्छेदमें गणपतिकी ध्यानमूर्तिका अंकन किया है। तदनुसार गणेशके एकदन्त और दस हाथ हैं। उनकी पत्नी और नौ शक्तियोंके साथ उनकी पूजा करनी चाहिये। श्री और विष्णु, दुर्गा और शिव, रति और मदन तथा मही और वराह उनके पार्श्ववर्तीरूपमें ध्यान करना चाहिये।

श्रीगौडपादाचार्यने सप्तशतीके भाष्य 'चिदानन्द-केलि-विलास' ग्रन्थके मंगलाचरणमें पहले ही '**श्रीगणेशाय नमः**' के द्वारा प्रारम्भ किया है। उसके आगे यह श्लोक है—

गुरुं गणपतिं दुर्गां वाणीं महिषमर्दिनीम्।
ध्यात्वा सप्तशतीदेव्या व्याकुर्वे विदुषां मुदे॥

पञ्चोपासना

सनातन-धर्ममें जो देवकार्य होते हैं, वे जगत्के मूल उपादान पंचमहाभूतके अधिष्ठाता पंचदेवताकी उपासनापर आधारित हैं। गणपति जलतत्त्वके अधिदेवता

हैं, सगुण ब्रह्मस्वरूप हैं। अतएव वे एक मुख्य देवता हैं।

पंचमहाभूतोंके अधिदेवता यथाक्रम इस प्रकार हैं—

(१) **क्षिति**—ईश (शिव)।

(२) **अप्**—गणेश।

(३) **तेजः**—महेश्वरी (दुर्गा)।

(४) **मरुत्**—सूर्य।

(५) **व्योम**—विष्णु।

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

ये पंचदेवता प्रत्येक साकार ब्रह्मके एक-एक रूप हैं—

'उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत्॥'

जगत्के प्रत्येक पदार्थ और जीव इन पंचमहाभूतोंके द्वारा रचित हैं। एक-एक व्यक्तिमें एक-एक तत्त्वकी अधिकता है; तदनुसार ही उनके तत्त्वके देवताका इष्ट होना स्वाभाविक है। सद्गुरु ऋतम्भरा-प्रज्ञा, स्वरोदय-शास्त्र एवं ज्योतिष आदिकी सहायतासे समझ लेते हैं कि किस शिष्यमें किस तत्त्वकी प्रधानता है और तदनुसार उस तत्त्वके अधिष्ठातृ देवताका मन्त्र उसको प्रदान करते हैं।

अतएव पंचतत्त्वके अनुसार पंचदेवताकी उपासना केवल गम्भीर रहस्यमय दर्शन या योगका ही विषय नहीं है, बल्कि इसकी वैज्ञानिक भित्ति भी सुदृढ़ है। श्रीगौडपादाचार्य तथा श्रीशंकराचार्यने 'पंचीकरण' प्रभृतिकी खूब आलोचना की है। विस्तारके भयसे यहाँ इसका उल्लेखमात्र करके हम विरत होते हैं।

सनातनधर्मके किसी भी दैव या पितृकर्म करनेके पूर्व यजमानको पहले पंचदेवताकी पूजा करनी पड़ती है; वह चाहे शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर या गाणपत्य-सम्प्रदायका ही क्यों न हो।

इस प्रकार देखनेपर हिंदूधर्ममें कभी किसी प्रकारका सम्प्रदाय-विरोध नहीं दीखता। उधर पाश्चात्त्य देशोंमें ईसाई लोगोंके रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंटमें जो कलह पैदा हुआ, उसके फलस्वरूप नृशंस हत्याकाण्ड, धर्मके लिये प्राणदण्ड, इन्क्विजीशन (Inquisition)—जलाकर मार डालना आदि घटनाएँ खूब घटित हुईं। फ्रांसमें प्रोटेस्टेंट लोगोंके ऊपर राजा चतुर्दश लुईने चरम सीमातक अत्याचार किया। उसके पूर्व सेंट वार्थोलोम्यू (St. Bartholomew)-के दिवसतक अत्याचार फैला रहा। इंग्लैंडमें पादरी लोगोंको—जैसे आर्क विशप क्रांनमार(Cronmar)-को १५५६ ई० में जलाकर मार डाला गया। प्रोटेस्टेंट लोगोंकी हत्या १५५९ ई० तक हुई।

आयरलैंडमें कैथलिक लोगोंके साथ प्रोटेस्टेंट लोगोंका संघर्ष आज भी चल रहा है। गत महायुद्धमें हिटलरने अमानुषिक रीतिसे लगभग ७५ लाख यहूदियोंका वध किया था।

मुसलिम आक्रमणकारियों और शासकवृन्दने भारतमें हिंदुओंके ऊपर जो बर्बरतापूर्ण अत्याचार किये, उसकी तुलना कहीं नहीं है। पाकिस्तानमें हिंदुओंका उत्पीड़न भयानक रीतिसे हुआ और हो रहा है। शिया-सुन्नीके विरोधकी बातको सभी जानते हैं।

तथापि हिंदुओंमें साम्प्रदायिक विरोध तो क्या, परमत असहिष्णुता भी नहीं देखी जाती; बौद्धोंको तलवारके द्वारा नहीं, युक्तिके द्वारा ही पराजित किया गया। जैनियोंके ऊपर यदि हिंदू राजाओंने अत्याचार किये होते तो वे यहाँ टिके न रह सकते। फलतः वर्णाश्रम-समाजमें आपाततः सम्प्रदाय-भेद देखे जानेपर भी वस्तुतः धर्मानुष्ठानमें सबकी एकता है। केवल प्रत्येकके तत्त्वानुसार इष्टका निश्चय होता है। पति और पत्नी, दोनोंके इष्ट-मन्त्रोंमें भी भेद हो सकता है।

आज भी कुम्भमेला हिंदुओंकी असाम्प्रदायिकताका एक समुज्ज्वल दृष्टान्त है। इतना विशाल धर्मसंघटन विश्वमें और कहीं नहीं है।

पंचदेवताकी लिंगपूजा

भगवान् श्रीशंकराचार्यने पाँचों देवताओंकी लिंगपूजाकी जो व्यवस्था कर दी है, दक्षिण भारतके ब्राह्मणलोग उसके अनुसार प्रतिदिन एक साथ ही पंचलिंगकी पूजा करते हैं। काशीमें भी पंचलिंग पाये जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व उनका मूल्य लगभग २५ रुपया था। वे ये हैं—(१) शिवका वाणलिंग, (२) विष्णुकी शालग्राम शिला, (३) सूर्यका स्फटिक-बिम्ब, (४) शक्तिका धातुयन्त्र और (५) गणपतिका चतुष्कोण रक्तवर्ण प्रस्तरविशेष।

जिसका जो देवता इष्ट होता है, उसी देवताके लिंगको केन्द्रस्थानमें रखकर तथा अन्य चार लिंगोंको चारों ओर रखकर आवरण-देवताके रूपमें पूजा करनी

पड़ती है। लिंग-पूजाके अश्लील होनेकी आधुनिक धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है।

गणेश-पूजा प्रथम

सारांश यह है कि सनातनधर्ममें गणपतिकी उपासना एक दृष्टिसे देखनेपर सर्वापेक्षा प्रयोजनीय है; क्योंकि प्रारम्भमें उनकी पूजा बिना किये किसी कार्यमें अग्रसर होना असम्भव है। इस दृष्टिसे हममें प्रत्येक ही गाणपत्य-सम्प्रदायके अनुयायी हैं। प्रत्येक हिंदूके घर, दूकान एवं कार्यालयमें गणेशका चित्र या प्रतिमूर्ति रखी जाती है।

पुरातात्त्विक प्रमाण

विधर्मियोंके अत्याचारसे भारतके अधिकांश प्राचीन मन्दिर और देवता ध्वस्त हो गये हैं; किंतु आज गणेश-मन्दिर या मूर्ति कम देखनेमें आती है, अतएव अपेक्षाकृत आधुनिक युगमें मूर्तिपूजा प्रारम्भ हुई है, यह समझना भूल है।

(१) सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ रायबहादुर दयाराम साहनीने जयपुर राज्यमें साँभर झीलके तटवर्ती एक टीलेके निम्नस्तरमें खुदाईके फलस्वरूप द्विभुज गणेश, अग्नि और शिवकी पकी मिट्टीकी मूर्ति खोज निकाली है। उसके साथ ग्रीक राजा आन्टिमाकस निकोफर (Antimachos Nicophor) १३०ई० पूर्वकी मुद्रा भी उपलब्ध हुई है। अतएव यह मूर्ति अति प्राचीन है तथा ई०पूर्व द्वितीय शताब्दीसे परेकी नहीं है।

(२) वंगदेशमें चौबीस परगना जिलेमें चन्द्रकेतुगढ़में गणेश और शक्तिकी पकी मिट्टीकी मूर्ति (४ इंच आकारकी) पायी गयी है। विशेषज्ञोंके मतसे वह ई०-पूर्व द्वितीय शताब्दीकी है।

गणेशजीकी जो प्राचीन पत्थरकी मूर्तियाँ देखनेमें आती हैं, उनमें अति सुन्दर शिल्पकला-विशिष्ट प्रतिमाओंकी कमी नहीं है। भुवनेश्वरमें, लिंगराज-मन्दिरके पार्श्वमें एक अति उत्कृष्ट गणेशकी मूर्ति है। जान पड़ता है कि वह मक्खनद्वारा तैयार की गयी है।

वंगदेशमें शरद् और वसन्त-ऋतुमें दशभुजा महिष-मर्दिनीके साथ उनके पुत्रके रूपमें गणेश और कार्तिकेय तथा कन्याकी भावनासे लक्ष्मी-सरस्वतीकी एक साथ मृन्मयी विराट् प्रतिमाकी तीन दिनोंतक पूजा होती है।

उज्जैन, पिपलोदा और इंदौरमें भी विशाल मृन्मयी गणेशमूर्तियाँ हैं।

श्रीगणेशके आज भी दर्शन होते हैं

विघ्नविनाशक गणपति शंकरजीके समान आशुतोष, सदानन्द और करुणामय हैं। वे थोड़ेमें ही संतुष्ट हो जाते हैं, भक्तोंको उनके अब भी दर्शन होते हैं—

१-लेखकके परम मित्र रायबहादुर मनोमोहन कक्कड़ काश्मीरके गवर्नर थे। वे निष्ठावान् काश्मीरी ब्राह्मण थे। इंदौरमें रहते थे। उनको गणेशकी विशाल मूर्तिका दर्शन हुआ था। भगवान्‌ने मृदुहास्य करते हुए उन्हें दर्शन दिया था।

२-लेखकके निकट-आत्मीय एक सात वर्षके बालकने जगन्नाथजीके मन्दिर, पुरीके प्रांगणमें देवसभामें गणेश और कार्तिकेयके मल्लयुद्धका एक अलौकिक दृश्य देखा था। गणेशने शुण्डके द्वारा कार्तिकेयको फेंक दिया था। यह देखकर वह हँस पड़ा था। यह सन् १९३४ ई०की घटना है।

३-लेखकके सुपरिचित एक ब्राह्मणने खागड़ा (मुर्शिदाबाद)-में गंगास्नानके समय जलके भीतर देखनेपर थोड़ी दूरपर गणेशकी मूर्ति देखी थी। आश्चर्यकी बात है कि गणेश एक मत्स्यके ऊपर बैठे थे। वह कुछ-कुछ चन्दा मछलीसे मिलती थी। मत्स्यवाहन गणेशकी प्रतिमाकी कोई कल्पना भी नहीं करता। जान पड़ता है कि जल-तत्त्वके अधिपतिने इसी रूपमें उन्हें दर्शन दिया था। यह १९३४ ई० नवम्बर मासकी घटना है।

गणपति वैदिक देवता हैं, इस विषयमें शंकराचार्यको कुछ भी संदेह न था—

यमेकाक्षरं निर्मलं निर्विकल्पं गुणातीतमानन्दमाकारशून्यम्।
परं पारमोंकारमाम्नायगर्भं वदन्ति प्रगल्भं पुराणं तमीडे॥

(शंकराचार्यकृत श्रीगणेशभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम् ७)

'जिसका एकाक्षर, विमल, विकल्परहित, त्रिगुणातीत, परमपार, आनन्दमय, निराकार और प्रणवस्वरूप, वेदगर्भ और पुराणपुरुष कहकर मुनिजन श्रद्धापूर्वक कीर्तन करते हैं, मैं उन ईशान-नन्दन गणपतिका स्तवन करता हूँ।'

~~~0~~~
~~~

उत्तम आदर्शोंके संस्थापक श्रीगणेश

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी पुरोहित, साहित्याचार्य, कविकलानिधि, वाचस्पति)

भारतवर्ष सदासे ही महान् आदर्शोंके निधानरूपमें रहता चला आया है। इसमें राम, कृष्ण, शंकर, बुद्ध आदि ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिनके उदार चरित्रोंने न केवल भारतको ही, अपितु सारी ही वसुन्धराको अपने सुसौरभसे सतत सौरभित रखा है। श्रीगणेश भी एक वैसे ही महान् भारतीय आदर्श हैं। किंतु उनमें एक विशेषता यह भी है कि वे अपने चरित्रोंसे ही नहीं, अपने अंग-उपांग, वसन-भूषण, मुद्रा-आयुध, परिकर-परिचर आदिकोंके द्वारा भी ऐसी प्रशस्त पद्धतिका संकेत करते हैं, जिसका आश्रयण करनेपर मानव-समाजके सभी समीहित हित संनिहित हो सकते हैं। अस्तु,

भगवान् गणेशने माताकी आज्ञाके अनुसार द्वारपालकताका कार्य भी कठोर तत्परताके साथ किया। पिताके कुपित हो जानेपर भी उन्हें माताकी आज्ञाके विरुद्ध स्नानागारमें प्रविष्ट न होने दिया। उन्होंने शरीरपातपर्यन्त अपने लिये प्राप्त कर्तव्यका पालन किया। इस अनुकरणीय चरित्रके द्वारा श्रीगणेशने **'मातृदेवो भव', 'पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते'** इत्यादि श्रुति-स्मृति-वचनोंका यथावत् पालन करके एक उत्तम आदर्श उपस्थित किया। उन्होंने अपने अंगोपांगादिके द्वारा जिन लोकहितकारी मंगलमय आदर्शोंकी ओर संकेत किया है, उन्हींको यहाँ विबुधजनमनोविनोदार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

गुणग्रामार्चितो नेता क्रियते स्वो जनैरिति।
गणेशत्वेन शंसन्तं गुणाब्धिं तं मुहुर्नुमः॥

'गुणगणोंसे अलंकृत मनुष्यको ही लोग अपना नेता बनाते हैं, इसे गणनायकपनसे सूचित करते हुए सद्‌गुणगणोंके समुद्र भगवान् गणपतिकी मैं बारम्बार स्तुति करता हूँ।'

यः स्वल्पमप्यञ्चति सद्‌गुणोदयं मूर्ध्नोचितं तस्य समर्हणं सताम्।
इत्यालपन् बालकलाधरं दधत् स्याद् भूतये भालकलाधरो मम॥

'जो थोड़े-से भी सद्‌गुणोंका उदय प्राप्त कर रहा हो, उसका सज्जनोंको अपने मस्तकके द्वारा समादर करना चाहिये; उसे उच्चतम स्थान देना चाहिये, इसी भावको प्रकट करते हुए बालकलाधरको भालदेशमें स्थान देकर 'भालकलाधर' या 'भालचन्द्र' कहलानेवाले भगवान् गणपति हमारे लिये ऐश्वर्यप्रद हों।'

नेत्रद्वन्द्वं साधुने जीवनाय नाऽलं तस्माज्ज्ञाननेत्रं ध्रियेत।
इत्यक्ष्णा संसूचयन् भालगेन नागास्यो नः पातु धीवारिराशिः॥

'अच्छे जीवनके लिये स्थूल पदार्थोंको देखनेवाले केवल दो नेत्र ही पर्याप्त नहीं हैं। तीसरा ज्ञानरूपी नेत्र भी मनुष्यको धारण करना चाहिये—इस भावको ललाटगत तृतीय नेत्रके द्वारा सूचित करते हुए ज्ञान-वारिधि भगवान् गजानन हमारी रक्षा करें।'

नेता विशालविमलप्रमुदाशयः सन्
स्यात् सर्वदैव सुमुखः स्वजने प्रवृत्तः।
इत्युद्‌गिरन् प्रमुदितास्यतयाऽन्तराय-
ध्वान्तापहास्तु शरणं मम कोऽपि भास्वान्॥

'नेताको मनुष्योंके साथ व्यवहार करते समय मुँह फुलाये नहीं रखना चाहिये, अपितु सदा ही विशाल, विमल और प्रमुदित हृदयवाला होकर प्रसन्नवदन ही रहना चाहिये—इस अभिप्रायको अपनी प्रसन्नमुखताद्वारा प्रकट करते हुए विघ्नरूप अन्धकारको मिटानेके लिये अनिर्वचनीय सूर्यरूप (भगवान् गणपति) मेरे शरणदाता हों।'

हसितविभूषितवदनो जनोऽस्तु सकलोऽपि मोदसम्पत्त्यै।
इति रददर्शितहृदयः स एकदन्तोऽस्तु मे शरणम्॥

'पारस्परिक प्रमोद-सम्पत्तिके संवर्धनके लिये सभीको अपना मुख हास्यच्छटासे विभूषित ही रखना चाहिये—इस आशयको एकदन्तत्वसे प्रकट करनेवाले भगवान् गणपति मेरे शरणदाता हों।'

लोकाराधनकर्म दिग्गजमहामूर्धैव कर्तुं प्रभु-
र्घ्रातुं सर्वगभीरमानसमलं स्याद् दीर्घघोणः पुमान्।
भङ्ग्याऽऽस्यस्य तथा दधातु मतिमान् नीचेषु चोपेक्षण-
मित्याख्यान् करिवक्त्रवक्रिमरुचाव्यान्नो गणेशो निजान्॥

'दिग्गजके समान महामस्तक (बड़े माथावाला) पुरुष ही लोगोंको संतुष्ट रखनेका कार्य कर सकता है—यह बात गणेशजी अपने गज-तुल्य मस्तकसे सूचित करते हैं। सबके गम्भीर अन्तस्तलको सूँघने (जानने)-में दीर्घ नासिका (विशाल बुद्धि)-वाला मनुष्य ही समर्थ हो सकता है—यह भाव वे अपनी लम्बी सूँड़द्वारा प्रकट करते हैं तथा वक्रतुण्डता (मुखकी वक्रता)-से यह अभिप्राय

व्यक्त करते हैं कि जैसे हाथी कुत्तोंके भूँकनेपर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुषको नीच या दुष्टजनोंकी कुचेष्टाओंकी उपेक्षा कर देनी चाहिये। ऐसे भगवान् गणेश निज भक्तगणोंकी रक्षा करें।'

नेता समस्य शृणुयादपि कष्टवार्तां
रक्षन् सदा सहृदयो विपुलश्रवस्त्वम्।
इत्युद्गिरन् स शरणं गजकर्णकत्व-
स्वीकारवर्यविधिनास्तु गजाननो नः॥

'लोकनायकको सदैव सहृदय रहते हुए अपने कानोंको विशाल बनाये रखना चाहिये, जिससे वह लोगोंकी दुःख-गाथाओंको सुन सके—इस बातको हाथीके-से विशाल श्रवणोंको स्वीकार करनेकी श्रेष्ठ विधिसे सूचित करते हुए भगवान् गणपति हमारे लिये शरणप्रद हों।'

लोकः समोऽपि हृदि विप्रियमन्यदत्तं
तूष्णीं दधत् प्रकटयेत् स्वमहाशयत्वम्।
इत्यादिशन्नुदधिशोभ्युदरादरेण
लम्बोदरः स भगवानवलम्बनं स्यात्॥

'सज्जन पुरुष दूसरोंके द्वारा किये गये अपकारोंको चुपचाप मनमें रखे और इस प्रकार अपनी महाशयता प्रकट करे—इस भावको अपने उदधिके समान विशाल उदरके प्रति आदर रखकर सूचित करनेवाले भगवान् लम्बोदर हमारे अवलम्ब हों।'

रागमयं स्वावरणं रक्ष्यं सर्वैः स्वकीयहितकामैः।
इति रक्ताम्बरं धृत्वा ख्यान् गणपो नः कृपानिधिः पायात्॥

'अपना हित चाहनेवाले सभी लोगोंको अपना वातावरण अनुरागमय बनाये रखना चाहिये, इस भावको रक्तवर्णवाले वस्त्रके धारणसे सूचित करते हुए कृपासिन्धु भगवान् गणपति हमारी रक्षा करते रहें।'

स्वकमिह धवलीकरोतु सर्वः
सुकृतभरैरवदातकान्तिवित्तैः।
इति सितवसनत्विषां प्रसारै-
र्द्विपवदनोऽवतु वेदयन् निजान् नः॥

'सुकृत-समूहकी उज्ज्वल प्रभाके वैभवसे सब लोग अपनेको स्वच्छ ही बनाये रखें—इस अभिप्रायको धवलवर्णवाले वस्त्रकी कान्तिके प्रसारसे प्रकट करते हुए भगवान् गजानन हम-जैसे निजजनोंकी रक्षा करते रहें।'

आरूढो जननायकस्य पदवीं लोकस्य सर्वापदां
नाशायाविरतं हिताय च भवेत् सक्तो मनीषी जनः।
इत्याख्यानभयं वरं च करयोर्लान्त्या सतोर्मुद्रया
दीनानुग्रहकातरः स भगवान् विघ्नेश्वरः पातु नः॥

'मतिमान् मनुष्यको चाहिये कि लोकनायकके पदको प्राप्त होनेपर वह लोककी आपत्तियोंको दूर करने और हितोंके साधनमें ही लगा रहे (भोग-विलासोंमें न फँस जाय)। अपने प्रशस्त हस्तोंकी अभय और वरद मुद्राओंसे यही भाव प्रकट करते हुए दीनजनोंके अनुग्रहके लिये कातर रहनेवाले भगवान् विघ्नेश्वर हमारी रक्षा करें।'

नेता नियन्त्रयितुमेव सदाखिलानां
बद्धादरो भवतु सेतुभिदां खलानाम्।
इत्यन्तरायसमुदायहरो भवेन्नः
संसूचयन् स मुदितोऽङ्कुशधारणेन॥

'लोकनायकको चाहिये—मर्यादाओंको तोड़नेवाले दुर्जनोंके नियन्त्रणके लिये सदैव तत्पर रहे—इस अभिप्रायको अंकुश धारण करनेके द्वारा सूचित करते हुए विघ्न-वृन्दको मिटानेवाले वे भगवान् गणपति हमपर प्रसन्न हों।'

प्रेमाह्वं प्रथितगुणं प्रतत्य पाशं
मोदन्तां वशमखिलं समे नयन्तः।
इत्याख्यान् करगतपाशरश्मिनासौ
विघ्नेशो जयतु समस्तकामपूरः॥

जिसमें गुण (सौहार्दादिरूप सूत्र) प्रसिद्ध हैं, ऐसे प्रेम नामक पाशको फैलाकर सब लोग सबको अपने वशमें करते हुए आनन्दसे उल्लसित बने रहें—इस भावको अपने हस्तगत पाशरज्जुसे सूचित करते हुए सबके सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले भगवान् विघ्नेश्वरकी सदा जय हो।'

जन इह सकलः प्रसादकः स्यात्
स जनतयाऽऽद्रियते विषादको न।
इति पिशुनयतीव मोदकानां
ग्रहविधिना बत कोऽपि नः शरण्यः॥

'सभीके द्वारा मोदक (मोदजनक) पुरुषका ही आदर किया जाता है, खेद उत्पन्न करनेवालेका नहीं। अतः सभीको प्रसादक (लोकप्रिय) बनना चाहिये—इस भावको हमारे शरणदाता भगवान् गणपति मानो

मोदकग्रहणके द्वारा प्रकट कर रहे हैं।'

या नार्यः स्वीयभर्तॄन् सततमनुरता सेवया तोषयन्ति
पातिव्रत्यप्रसादादिह हि दधति ता ऋद्धितां सिद्धितां च।
दारेषु स्वेषु रक्तः सुसुखमनुभवन् स्याच्च ना हृष्टपुष्ट
इत्यन्योन्यस्निहा नः पिपुरतु गणपस्तत्प्रिये चोद्गिरन्तः॥

'जो नारियाँ पतिको सानुराग सेवाओंसे संतुष्ट रखती हैं, वे पातिव्रत्यके प्रभावसे स्वयं ऋद्धि-सिद्धिस्वरूपा बन जाती हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त है, वह लौकिक सुखोंका अच्छा उपभोग करता है और परम प्रसन्न एवं हृष्ट-पुष्ट बना रहता है—इस अभिप्रायको आनन्दमय भगवान् गणपति और मंगलमयी उनकी ऋद्धि-सिद्धि नामवाली प्रियतमाएँ अपने पारस्परिक प्रेमसे प्रकट करते हुए सदा हमारा पालन-पोषण करती रहें।'

कदाचिन्नो तुच्छेष्वपि परिवृढ यायुररुचिं
परं स्वीकुर्युस्तान् निजजनतया स्नेहसहितम्।
इति व्याख्यानाखुं वहनमुररीकृत्य विहृतै-
र्गणानामीशः स्वानवतु सततं विघ्नविसरात्॥

'स्वामीको कभी भी तुच्छजनोंके विषयमें अरुचि नहीं प्रकट करनी चाहिये, अपितु उन्हें स्नेहसहित स्वजनके रूपमें स्वीकार करना चाहिये, इसीमें उनकी महिमा है—इसी भावको व्यक्त करते हुए मूषकको वाहनके रूपमें स्वीकार करके विचरनेवाले भगवान् गणपति अपने भक्तजनोंको सदा विघ्नवृन्दोंसे बचाते रहें।'

मातरि तथोपमातरि सूनुत्वेनैव वर्ततां सकलः।
इति गणपोऽवतु शंसन् गङ्गागौर्योः सुतत्वसाम्येन॥

'भगवान् गणपति द्वैमातुर हैं, अर्थात् एक माता गौरी और दूसरी माता, उपमाता होते हुए भी माताके रूपमें सम्मानित गंगा, उन दोनोंहीमें पुत्ररूपसे गणपति समानरूपसे व्यवहार करते हैं; इसी तरह सभीको माता तथा उपमाता दोनोंके प्रति समानरूपसे आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिये—इस भावको अपने आचरणसे सूचित करते हुए भगवान् गणपति हमारी रक्षा करते रहें।'

नेता स्यादिह यः पुमान् स मतिमान् लोकस्य कल्याणकृत्
खेदच्छेदशुभाभिवर्धनविधेर्विघ्नान् विनिघ्नन् सदा।
वर्तेतेति स लोकनायकनयं विघ्नौघविध्वंसनैः
शंसन् नः सुषमाविभूषिततनुः पायाद् गणाधीश्वरः॥

'जो पुरुष नेता बने वह निरन्तर लोककल्याणकारी कार्योंमें लगा रहे। लोगोंके खेदका निवारण तथा शुभका संवर्धन करता रहे; साथ ही इन कार्योंमें आनेवाले विघ्नोंका भी उच्छेद करता रहे। अपने द्वारा किये जानेवाले विघ्न-विध्वंस-सम्बन्धी कार्योंसे यही सूचित करते हुए परम शोभासे सुशोभमान भगवान् गणाधीश्वर हमारी रक्षा करें।'

श्रीगणेश-मीमांसा

(लेखक —श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्य,तर्कशिरोमणि)

यहाँ निगम, आगम एवं योगज प्रत्यक्षके आधारपर 'श्रीगणेश-तत्त्व' की मीमांसा की जा रही है। इसमें 'गणेश-तत्त्व' का '**इदमिदम्, इदमित्थम्, इदमियत्**' रूपसे प्रत्यक्षकल्प निर्णय किया गया है। 'गणेश'—यह समस्त पद है। यह '**गणानाम् ईशः गणेशः**'—इस प्रकार षष्ठी तत्पुरुष समासके विधानसे निष्पन्न हुआ है। 'कोश'-ग्रन्थोंमें 'गण'-शब्द समूह-विशेषका वाचक माना गया है। 'गणेश'-पद-घटक 'गण'-शब्द वेदों एवं पुराण आदि आर्ष-ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध सप्तविध मरुद्गणोंका वाचक है, अतः उन मरुद्गणोंका ईश होनेके कारण 'गणेश' '**नि षु सीद गणपते गणेषु**' (ऋग्वेद १०। ११२। ९) आदि वेद-ऋचाओंमें 'गणपति'-शब्दसे अभिहित हुआ है।

शिव-शक्ति-पुत्रता

निगम-आगममें 'गणेश'को शिव-शक्तिका पुत्र माना गया है। वेदोंमें आग्नेय प्राण 'शिव' एवं सौम्य प्राण 'शक्ति' शब्दसे अभिहित हैं। इन दोनोंके समन्वय (संयोग)-से उत्पन्न सात प्रकारके यौगिक प्राण ही सप्तविध 'मरुद्गण' हैं। इस विज्ञानका विश्लेषण '**मरुतो रुद्रपुत्रासः**'—इस ऋचामें किया गया है। ये सात प्रकारके मरुद्गण भौतिक 'वायु' के जनक हैं, जिसका स्पर्श हमको प्रत्यक्षरूपसे होता है। मरुद्गणोंसे उत्पन्न होनेके कारण यह भौतिक वायु 'मारुत' कहलाता

है। वेदोंमें इसका एक नामान्तर 'वात' भी है। इस प्रकार वायुके जनक (पिता) मरुद्गण हैं। मरुद्गणोंके पिता 'रुद्र' एवं माता 'पार्वती' हैं। 'गणपति' भी मरुद्गणोंमें अन्यतम मरुत् हैं, अत: ये शिव-शक्तिजन्य होनेसे उनके पुत्र हैं—'**वन्दे शैलसुतासुतम्**'।

गणेश एवं हनुमान्

पुराणोंमें विज्ञान है कि 'अदिति' (सूर्य-संयुक्ता पृथ्वी)-के गर्भमें इन सात मरुद्गणोंकी प्रतिष्ठा हुई। वासव—इन्द्रका भी वहाँ निवास हुआ। वह इनमेंसे प्रत्येकके सात-सात विभाग कर देता है, अत: ये सात मरुद्गण उनचास संख्या (रूपों)-में परिणत हो जाते हैं। इनमें पृथ्वीमें स्थित घनभावापन्न सर्वादि मरुत्प्राण 'गणपति' हैं। विरलभावापन्न सूर्यमें स्थित सर्वान्त मरुत्प्राण 'महावीर' (हनुमान्)हैं। इस प्रकार गणेश एवं हनुमान्—ये दोनों मरुद्गणोंके अन्तर्गत होनेसे '**मरुतो रुद्रपुत्रास:**' के आधारपर रुद्र-पुत्र हैं। यही कारण है कि 'वैखानसागम'में हनुमान्को आकाशसे अभिन्न माना गया है।

विघ्नहर्ता एवं कर्ता

उनचास मरुद्गणोंमेंसे पृथ्वीमें स्थित 'मूल-मरुत्-प्राण' गणेश हैं। इस मूल प्राणके धृति-बल, प्रतिष्ठा-बल एवं आधार-प्राण आदि अनेक पर्याय हैं। इस प्रतिष्ठाप्राणकी स्थितिमें विश्वकी स्थिति एवं प्रच्यवनमें विश्वका विनाश है। ये दोनों भाव क्रमश: उनके विघ्नहर्तृत्व एवं विघ्नकर्तृत्वरूप दो पहलू हैं। विघ्नकर्तृत्वभावसे वे '**विघ्नराजो गणाधिप:**' हैं तथा विघ्नहर्तृत्वभावसे '**सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नम:॥**' हैं।

सर्वाग्रपूजा

ब्रह्माण्डमें उत्पन्न होनेवाले अणु-बृहत्—सभी कार्यों एवं घटनाओंको अपनी सिद्धि एवं स्थितिके लिये आधाररूपसे धृति-बलरूप गणेशका अवलम्बन(अर्चन) अनिवार्यरूपसे लेना पड़ता है, इस विश्वव्याप्त नियमके आधारपर ही आर्योंने कार्यमात्रके आरम्भमें 'गणेश' की अग्रपूजाको अनिवार्य माना है। आर्य इस प्राकृत नियमका पालन परम्परासे जागरूक होकर करते आये हैं, इसमें इतिहाससमर्थित यह कवि-सूक्ति प्रमाण है—

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद्बलिं बध्नता
स्त्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः॥*

अध्यात्ममें ये 'गणपति' बस्तिगुहामें प्रतिष्ठित हैं। ये 'अपान' रूप हैं। पार्थिव-प्राण भी अधिदैवतमें अपानरूप है। मूलमें स्थित 'मरुत्प्राण' गणेश हैं—ऐसा कहा गया है। इस मूल प्राणरूप गणपतिके रहनेके कारण ही 'बस्तिगुहा' को 'मूलग्रन्थि' कहते हैं। महाराष्ट्रमें आज भी वृक्षकी मूल जड़को 'गणेशमूल' कहते हैं।

इन्द्रसे अभेद

वेद एवं पुराण आदिमें यह प्रसिद्ध है कि मरुद्गण इन्द्रके भ्राता एवं उनके सैनिक हैं। ज्योतिर्मय इन्द्र अपने सैनिक मरुद्गणोंको आगे करके ही तमोमय असुरोंपर विजय पाते हैं। मघवा इन्द्र क्षत्र होनेसे मरुद्गणोंके राजा हैं, ईश हैं। मरुद्गण उनकी दैवी प्रजा हैं। मरुद्गणोंके पति (ईश) होनेसे इन्द्र भी 'गणपति'-शब्दसे वेदोंमें अभिहित हुए हैं। गणदेवताओंको गणी देवताकी महिमारूप होनेके कारण उससे अभिन्न माना गया है। अत: पृथ्वीमें स्थित प्रथम मरुद्रूप 'गणपति'भी इन्द्रसे अभिन्न होनेके कारण '**नि षु सीद गणपते गणेषु**' आदि वेद-ऋचाओंमें 'गणपति'-शब्दसे अभिहित होते हैं।

देवासुर-संग्राम

ज्योतिर्मय इन्द्र मरुद्गणोंको आगे करके देवासुर-संग्राममें तमोमय असुरोंपर आक्रमण करते हैं—यह कहा गया है। इस देवासुर-संग्रामका वेदके मन्त्रों एवं ब्राह्मणभागोंमें बहुधा वर्णन है। यह अधिदैवत, अध्यात्म एवं अधिभूत भेदसे तीन प्रकारका है। हम यहाँ अधिभूत 'देवासुर'-संग्रामका प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं—

वारुण-आप्य प्राणमय तमोमय आसुरभावके प्रवेशसे

* त्रिपुरपर विजय प्राप्त करनेके लिये भगवान् शंकरने, छलसे बलिको बाँधनेके लिये भगवान् विष्णुने, चौदहों भुवनोंकी रचनाके लिये ब्रह्माजीने, पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण करनेके लिये भगवान् शेषने, महिषासुरके वधके लिये भगवती पार्वती (दुर्गा)-ने, सिद्धि प्राप्त करनेके लिये सिद्धेश्वरोंने तथा विश्वविजय करनेके लिये कामदेवने जिनका ध्यान (स्मरण) किया, वे भगवान् गजानन हमारी रक्षा करें।

कोई भी वस्तु सड़ने लगती है। किसी भी वस्तुका सड़ना आसुर आक्रमणका फल है। जब उसमें वायव्य-सेनारूप मरुत्प्राणोंका आगमन होता है, तब उसका वह दुर्गन्धरूप आसुरभाव नष्ट हो जाता है। मरुद्गणोंके साथ इन्द्र भी वहाँ उपस्थित रहते हैं। यह अधिभूतमें 'देवासुर'-संग्रामका स्वरूप है। प्रकाश-अन्धकारका अधिदैवतमें एवं शारीरिक शम-दम आदि देवों और अहंकार-लोभ आदि असुरोंका अध्यात्ममें 'देवासुर'-संग्राम है। इन सब संग्रामोंमें मरुद्गण इन्द्रके सहायक होते हैं।

वाहन मूषक

निगम-आगममें यह प्रसिद्ध है कि गणपतिका वाहन 'मूषक' है। पार्थिव घनप्राण 'गणपति'-नामसे कहा गया है। इसका वाहन निबिडघन यह पृथ्वी-पिण्ड ही है। वेदमें इस अत्यन्त घनप्राणका नाम 'मूषक' है। इस प्राणसे 'मूषक' प्राणीका निर्माण होता है। अतः यह प्राणी उस प्राणका निदान (संकेत) माना गया है। अर्थात् गणपतिके वाहन मूषकको भूपिण्ड मानना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें 'गणेश' की प्रतिष्ठा भूपिण्ड है। यह गणपति प्राण उक्थरूपसे भूपिण्ड (मूषक)-पर स्थित होकर त्रैलोक्यमें व्याप्त है। 'निरुक्त' में भगवान् यास्कका विज्ञान है कि स्वयं देवता ही अपने वाहन, आयुध एवं आभूषण आदि रूपोंमें परिणत होते हैं, अतः यह भूपिण्डरूप मूषक 'गणेश' से अभिन्न माना गया है। प्रतिष्ठा-बलरूप गणेशका पीतमृत्तिका एवं पूगीफल (सुपारी)-में अतितरां विकास है, अतः ये दोनों गणपतिकी भाव-प्रतिमा मानी गयी हैं।

ध्यान एवं निदान-भाव

आगम-पुराण आदिमें 'नैदान' भावोंसे कल्पित गणपतिके अनेक ध्यानोंका उल्लेख है। उनमेंसे तीन ध्यानोंका उल्लेख यहाँ किया जाता है—

१. खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥[1]

२. सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्योतमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥[2]

उद्यद्दिनेश्वररुचिं निजहस्तपद्मैः
पाशाङ्कुशाभयवरान् दधतं गजास्यम्।
रक्ताम्बरं सकलदुःखहरं गणेशं
ध्यायेत् प्रसन्नमखिलाभरणाभिरामम्॥[3]

निदान-भावोंके रहस्य

तन्त्रोंका विज्ञान है कि जिस प्राणदेवताका भाव-प्रतिमा अथवा नैदान-प्रतिमामें आवाहन अभीष्ट होता है, उस देवताके कल्पित नैदानस्वरूपको प्रथमतः अपने अन्तर्जगत्‌में खचित करना पड़ता है; अतः आवाहनसे प्रथम ध्यानका विधान है। तदनन्तर '**गणपतिमावाहयामि**' इत्यादि रूपसे भाव-प्रतिमा अथवा नैदान-प्रतिमारूप मध्यस्थ भूतमें उस ध्यानात्माके स्वरूपका आवाहन किया जाता है। मध्यस्थ भूतमें भी 'गणपति' हैं; किंतु आवाहित 'गणपति' से भूतस्थ गणपति उद्बुद्ध होते हैं, यह आवाहनका रहस्य है।

---

१. मैं सिद्धिप्रदाता, अभीष्टदायी, पार्वतीनन्दन भगवान् गणेशकी वन्दना करता हूँ, जो नाटे, स्थूलकाय, गजवदन एवं लम्बोदर होनेपर भी अप्रतिम कमनीय हैं, जिनकी कनपटियोंसे चूते हुए मदकी मधुर गन्धसे आकृष्ट भौंरोंके कारण वे कनपटियाँ चंचल प्रतीत होती हैं तथा अपने दाँतकी चोटसे विदीर्ण हुए शत्रुओंका रुधिर जिनके मुखपर सिन्दूरकी शोभा धारण करता है।

२. जिनकी अंगकान्ति सिन्दूरके समान है, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका उदर विशाल है, जो अपने अनेक हाथोंमें क्रमशः दन्त, पाश, अंकुश, वर-मुद्रा और बिजौरा नीबू धारण किये अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, जिनका मस्तक द्वितीयाके चन्द्रसे उद्भासित रहता है, गजवदन होनेके कारण जिनकी कनपटियाँ मदके प्रवाहसे भीगी रहती हैं, जो अपने शरीरपर वासुकिनागको अलंकाररूपमें धारण किये रहते हैं और जो लाल ही वस्त्र और लाल ही अंगराग धारण करते हैं, उन भगवान् गणेशका भजन करो।

३. उदयकालीन सूर्यके समान रक्तवर्ण जिनकी अंगकान्ति है, जो अपने कर-कमलोंमें क्रमशः पाश, अंकुश, अभय-मुद्रा एवं वरमुद्रा धारण किये रहते हैं, जो गजवदन, रक्ताम्बरधारी, समस्त दुःखोंका हरण करनेवाले, नित्य प्रसन्न तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे भूषित रहते हैं, उन भगवान् गणनायकका ध्यान करे।

रहस्य

'निदान'-शास्त्रद्वारा कल्पित 'गणपति' के इन तीन ध्यानोंमें प्रयुक्त निदान-भावोंके रहस्य इस प्रकार हैं—

१. **खर्वम्**—'गणेश' के शरीरकी खर्वता (वामनत्व) खगोल एवं खगोलस्थ बृहत्तम सूर्य आदि पिण्डोंके सामने यह पार्थिव-पिण्ड अत्यन्त लघु (छोटा) है, इस रहस्यका निदान (संकेत) करती है।

२. **स्थूलतनुम्**—यहाँ पार्थिव 'गणपति' प्राण पुष्टिभावका प्रवर्तक है, यह भावका संकेत है। **'पुष्टिर्वै पूषा'**—इस वैदिक विज्ञानके आधारपर 'पूषा' प्राण पुष्टिभावका प्रवर्तक माना गया है; परंतु पार्थिव 'गणपति' प्राण पार्थिव 'पूषा'-प्राणका अनुगामी है, इस कारण यह भी पुष्टिभावका प्रवर्तक है।

३. **गजेन्द्रवदनम्**—यह पार्थिव 'इरा'-रस मादक है, इस भावका द्योतक है। हस्ती पशुमें इस रसका अतितरां विकास है, अतः वह 'गज'-शब्दसे अभिहित हुआ है। '**गजति मदेन मत्तो भवति इति गजः**'—यह 'गज' शब्दका निर्वचन है। पार्थिव '**गणपतिः**-तत्त्व भी इस इरा-रससे मत्त है, अतः उनको भी 'गजानन' मान लिया गया है। दूसरे शब्दोंमें 'गणपति' का गजानन-भाव पार्थिव इरा-रसकी मादकताका निदान है।

४. **लम्बोदरम्**—यह उरु अन्तरिक्षमें अनुगत मरुद्भावका निदान है। अर्थात् यह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष ही 'गणपति' का लम्बा उदर है।

५. **दन्ताघातः**—यह घन-प्राणका निदान है। अर्थात् पार्थिव घन-प्राण 'गणपति' है। देवता ही आयुधरूपमें परिणत होते हैं— यह पहले कहा जा चुका है।

६. **सिन्दूरशोभाकरम्**—यह सिन्दूरवर्णका द्योतक है। 'गणपति' के सिन्दूरवर्ण, रक्तकान्ति, रक्तवस्त्र, रक्त अंगराग आदि आग्नेय पार्थिव-प्राणके सूचक हैं। अर्थात् गणपति पार्थिव आग्नेय प्राणरूप हैं।

७. **नागेन्द्राबद्धभूषम्**—यह आन्तरिक्ष्य नाक्षत्रिक सर्पप्राणोंका सूचक है। अर्थात् गणेशके भूषण नाग नाक्षत्रिक दिव्य सर्पप्राण हैं। इनके उदरका भूषण सर्प खगोलका विषुवद् वृत्त है।

८. **त्रिनेत्रम्**—यह अग्नि सोम-आदित्यरूप तीन भूत ज्योतियोंका निदान है। अर्थात् ये तीन ज्योतियाँ गणेशके तीन नेत्र हैं।

९. **हस्तपद्मैः**—यह खगोलीय चतुःस्वस्तिकोंका निदान है। अर्थात् खगोलीय चार स्वस्तिक ही गणेशके चार हस्तपद्म हैं।

१०. **दन्तं पाशाङ्कुशेष्टानि**—ये 'गणपति' के हाथोंमें विद्यमान अनेक शक्तियोंके सूचक हैं। इनमें दन्त घनप्राण, पाश नियन्त्रण-शक्ति, अंकुश आकर्षण तथा वरमुद्रा अभीष्ट कामपूरिका शक्तिके क्रमशः निदान हैं। शुण्डादण्डमें स्थित बीजपूर फल पार्थिव परमाणुओंका निदान है।

११. **बालेन्दुद्योतमौलिम्**—यह ज्ञानैश्वर्यका निदान है। अर्थात् 'गणपति' ज्ञानघन हैं, सर्वज्ञ हैं। 'गणपति'-की एकदन्तता पार्थिव पूषा-प्राणके साथ अभेदकी सूचिका है। जिसमें पूषा-प्राणका प्राबल्य होता है, वह दन्तरहित होता है। '**अदन्तकः पूषा**'—यह वेद-विज्ञान है।

~~०~~

देव-देव! भक्तनके मानसमें आइये!

मंत्रमय गनेस बिघन-हरन सदा गाइये।
प्रथम जाहि गाय-गाय सकल सिधि पाइये॥
मंत्रको सरूप सोई गजमुख ठहराइये।
मंत्र-भाग चारि भुजा भालचंद्र ध्याइये॥
अंकुश-सी दूब ज्ञान रूप सो बढ़ाइये।
मदहर सिंदूर शीश, मोदक-फल भाइये॥
भक्तमाल एकदंत केवल सुखदाइये।
देव-देव! भक्तन के मानसमें आइये॥

(श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी 'वैराग्य-प्रदीप' १—४)

~~०~~

श्रीगणेश-तत्त्व

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

गणपतिके स्वरूपमें नर तथा गज—इन दोनोंका ही सामंजस्य पाया जाता है। यह मानो प्रत्यक्ष ही परस्परविरोधी प्रतीत होनेवाले '**तत्**'-पदार्थ तथा '**त्वम्**'-पदार्थके विशिष्ट प्रभेदको सूचित करता है; क्योंकि '**तत्**'-पदार्थ सर्वजगत्-कारण, सर्वशक्तिमान् परमात्मा होता है, '**त्वम्**'-पदार्थ अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् जीव होता है। इन दोनोंका सर्वांशमें ऐक्य स्थूलदृष्टिसे यद्यपि तर्क-विरुद्ध है, तथापि लक्षणासे सृष्टिकर्तृत्वादिविरुद्ध ईशद्वयका त्याग करके चैतन्यांशमें एकता सुसम्पन्न होती है, तद्वत् लोकमें यद्यपि नर और गजका ऐक्य असमंजस है, तथापि सकलविरुद्धधर्माश्रय भगवान्‌में यह समंजस है; क्योंकि चित् और अचित्—दोनों ही ब्रह्मके शास्त्रसिद्ध विशेषण हैं।

पञ्चदेवोपासना

यह विश्व-प्रपंच पंचमहाभूतोंका विपरिणाम है। पंचमहाभूत सत्त्व, रज और तम प्रकृतिके इन तीन गुणोंसे समुद्भूत हैं। **आकाशतत्त्व**—विशुद्ध सत्त्वगुणप्रधान है, **वायुतत्त्व**—सत्त्व और रजके विमिश्रणका विपरिणाम है, **अग्नितत्त्व**—विशुद्ध रजोगुणप्रधान है, **जलतत्त्व**—रजोगुण और तमोगुणके विमिश्रणका विपरिणाम है तथा **पृथ्वीतत्त्व**—विशुद्ध तमोगुणप्रधान है। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पाँच विभिन्न तत्त्वोंका प्रादुर्भाव हुआ है, जिनमें आकाश, अग्नि और पृथ्वी—ये तीन तत्त्व क्रमशः सत्त्व, रज और तमोगुणके विशुद्ध विपरिणाम हैं तथा वायु और जलतत्त्व क्रमशः सत्त्व-रज तथा रज-तमके विमिश्रणके विपरिणाम हैं। उक्त पंचतत्त्वोंसे समुद्भूत ही समस्त जीवोंके शरीर हैं। जिस शरीरमें जिस तत्त्वका आधिक्य होता है, तदनुसार ही उस जीवका तादृश जन्मजात स्वभाव होता है। वेद कहते हैं—

'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।'

(ऋग्वेद १०।७१।७)

अर्थात् यद्यपि सभी शरीरधारी आँख, नाक, कान आदि अंगोंमें समानता रखते हैं, परंतु मानसिक संवेगोंमें वे एक-दूसरेसे सर्वथा विभिन्न ही होते हैं।

कहना न होगा कि यह स्वभाववैषम्य तत्तत्-शरीरवर्ती अमुक-अमुक तत्त्वके न्यूनाधिक्यके तारतम्यके कारण ही होता है। मनुष्योंमें भी कोई स्वभावतः सौम्य और दूसरे महाक्रोधी देखे जा सकते हैं। इस प्रकार सिद्ध है कि मनुष्यवर्ग पंचविध प्रकृतिसम्पन्न हैं।

यद्यपि समस्त जीवोंके उपास्य एकमात्र श्रीमन्नारायण भगवान् ही हैं, परंतु पंचविध प्रकृतिवाले जीव स्व-स्व प्रकृतिके अनुरूप ही उपासनामें प्रवृत्त होते हैं। श्रीभगवान्‌ने स्वयं भगवद्गीतामें घोषणा की है—

'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥'

(३।३३)

अर्थात् समस्त जीव अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार ही कार्यमें प्रवृत्त होते हैं—इसमें निग्रह सफल नहीं हो पाता।

लोकमें भी '**स्वभावो दुरतिक्रमः**'—यह आभाणक सुप्रसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें एक ही कृपालु भगवान् जीवोंके उद्धारके लिये उपासकोंकी भावनाके अनुसार अपने विभिन्न रूपोंकी कल्पना करते हैं। रामपूर्वतापनीय-उपनिषद् ७ में आया है—

'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।'

अर्थात् उपासना करनेवाले भक्तोंको अभीष्ट-सिद्धि प्रदान करनेके लिये ब्रह्मके बहुविध रूपोंकी कल्पना होती है।

तदनुसार आगम-शास्त्रोंमें एक ही श्रीमन्नारायण पंच-तत्त्वोंके अधिष्ठातारूपमें पंचविध वर्णित हुए हैं। यथा—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अर्थात् आकाशतत्त्वके अधिष्ठाता विष्णु,

अग्नितत्त्वकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा, वायुतत्त्वके अधिष्ठाता सूर्य, पृथ्वीतत्त्वके शिव और जलतत्त्वके अधिष्ठाता गणेश हैं।

सुयोग्य वैद्य जैसे रोगीकी प्रकृतिका मनन करके तदनुसार ही उसकी शारीरिक व्याधिकी निवृत्तिके लिये औषध और पथ्यकी निर्धारणा करता है, इसी प्रकार सुयोग्य गुरु भी साधककी प्रकृतिका परीक्षण करके उसकी मानसिक आधि (काम-क्रोध आदि)-के उपशमनके लिये उपासनारूप औषध और संयमरूप पथ्यका निर्देश करता है। वस्तुतः मानसिक आधियोंकी प्राकृतिक चिकित्साका अपर नाम ही 'उपासना' है। अतः जलतत्त्व-प्रधान प्रकृतिवाले साधकोंके लिये इष्टदेवके रूपमें गणेशरूप श्रीमन्नारायणकी उपासना शास्त्रसिद्ध है। इसी प्रकार तत्तत् तत्त्व-प्रधान प्रकृति-विशिष्ट साधकोंके लिये तत्तत् देवतारूप श्रीमन्नारायणकी उपासना उपादेय है। यही पंचदेवोपासनाका अन्तरंग रहस्य है।

स्वरूप-विवेचन

श्रीगणेश 'गज-वदन' हैं, सो '**समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्ति इति 'गः'। यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बवत्तया प्रणवात्मकं जगज्जायते इति 'जः'**'। अर्थात् समाधिसे योगी जिस तत्त्वको प्राप्त करते हैं, वह '**ग**' है और जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है, वैसे ही कार्य-कारणस्वरूप प्रणवात्मक प्रपंच जिससे उत्पन्न होता है, उसे '**ज**' कहते हैं। '**जन्माद्यस्य यतः।**' '**यस्मादोंकार-सम्भूतिर्यतो वेदो यतो जगत्।**' इत्यादि वचन भी इसके पोषक हैं। सोपाधिक '**त्वम्**'-पदार्थात्मक गणेशका पादादि कण्ठपर्यन्त नरदेह है। यह सोपाधिक होनेसे निरुपाधिककी अपेक्षा निकृष्ट है—अधोभूतांग है। निरुपाधि सर्वोत्कृष्ट '**तत्**'-पदार्थमय श्रीगणेशजीका कण्ठादि मस्तकपर्यन्त गजस्वरूप है; क्योंकि वह निरुपाधिक होनेसे उत्कृष्ट है। सम्पूर्ण पादादि मस्तकपर्यन्त गणेशका देह '**असि**'-पदार्थ अखण्डैकरस है।

गणेशजी '**एकदन्त**' हैं। '**एक**' शब्द '**माया**' का बोधक है और '**दन्त**' शब्द '**मायिक**' का बोधक है। यथा—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।

× × ×

दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते॥

(मौद्गलपुराण)

गणेशजी माया और मायिकका योग होनेसे '**एकदन्त**' हैं। वे '**वक्रतुण्ड**' भी हैं—'**वक्रमात्मस्वरूपं मुखं यस्य**'। 'वक्र' टेढ़ेको कहते हैं। आत्मस्वरूप टेढ़ा है; क्योंकि सर्वजगत् मनोवचनका गोचर है, किंतु आत्मतत्त्व उसका (मन-वाणीका) अविषय है, जैसा कि कहा है—'**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।**' इसलिये कहा गया है—

कण्ठाधो मायया युक्तं मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं येन विघ्नेशस्तेनायं वक्रतुण्डकः॥

'**चतुर्भुज**'—अर्थात् चारों वेद, चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके संस्थापक और रक्षक हैं—

'**चतुर्णां विविधानां च स्थापकोऽयं चतुर्भुजः।**'

'**मूषकवाहन**'—'**आखुस्ते पशुः।**' (यजुर्वेद ३। ५७) जैसे (**मुष् स्तेये** धातुसे निष्पन्न) मूषक प्राणियोंके सब भोग्यपदार्थोंको चुराकर भी पुण्य-पाप-वर्जित होता है, वैसे ही मायागूढ़ सर्वान्तर्यामी भी सर्वभोग्योंको भोगता हुआ भी पुण्य-पाप-वर्जित है—

ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत् तत्र संस्थितः।
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः॥

'**लम्बोदर**'—यह समस्त विश्व-प्रपंच उनके उदरमें प्रतिष्ठित है—

'**तस्योदरात्समुत्पन्नं नाना विश्वं न संशयः।**'

गणेश गजमुख, लम्बकर्ण, एकदन्त और लम्बोदर क्यों हैं तथा उनका वाहन मूषक क्यों है?—इन सब बातोंका विज्ञानपूर्ण सप्रमाण और सयौक्तिक विस्तृत वर्णन इस लघु लेखमें सम्भव नहीं। एतदर्थ प्रस्तुत 'गणेशांक' के अन्यान्य सभी निबन्धोंका भी ध्यानसे पठन-मनन आवश्यक होगा।

'नमामि त्वां गणाधिप!'

गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद । उमानन्दप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात्॥
हरानन्दकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो । विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यैकसूदन॥
सर्वप्रीतिप्रद श्रीद सर्वयज्ञैकरक्षक । सर्वाभीष्टप्रद प्रीत्या नमामि त्वां गणाधिप॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६१। २६—२८)

श्रीगणेशजी! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति करनेवाले, उमाके लिये आनन्ददायक तथा परम बुद्धिमान् हैं, आप भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। विघ्नराज! आप भगवान् शंकरको आनन्दित करनेवाले, अपना ध्यान करनेवालोंको ज्ञान और विज्ञानके प्रदाता तथा सम्पूर्ण दैत्योंके एकमात्र संहारक हैं, आपको नमस्कार है। गणपते! आप सबको प्रसन्नता और लक्ष्मी देनेवाले सम्पूर्ण यज्ञोंके एकमात्र रक्षक तथा सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं, मैं प्रेमपूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ।

~~०~~

श्रीगणेश-चिन्तन

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यानिधि, विद्यावाचस्पति)

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलोपमर्दगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरीशमर्दनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो
विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः॥

'जो विघ्नरूपी महान्धकारका निवारण करनेके लिये एकमात्र सूर्य हैं, विघ्नरूपी महावनके लिये दावानलस्वरूप हैं, विघ्नरूपी सर्पकुलका उपमर्दन करनेके लिये गरुड़ हैं, विघ्नरूपी गजेन्द्रके लिये सिंह हैं, विघ्नरूपी गगनचुम्बी पर्वतोंको चूर-चूर कर देनेके लिये वज्र हैं, विघ्न-महासागरको (सुखा देनेके लिये) वडवानल हैं और विघ्नरूपी घने बादल-समूहको तितर-बितर कर देनेके लिये प्रचण्ड तूफान-सदृश हैं, वे विघ्नेश्वर गणेश हमलोगोंकी रक्षा करें।'

सनातन हिन्दूधर्मके आचारानुसार सब कार्योंके आरम्भमें श्रीगणेशके लिये नमन तथा स्तवन किया जाता है, अतः कार्यारम्भको भी मुहावरेकी भाषामें 'श्रीगणेश' शब्दसे कहा जाता है। ऋग्वेद-संहितामें श्रीगणपतिकी स्तुति करते हुए कहा गया है—

'**न ऋते त्वत् क्रियते किंचन**' (१०। ११२। ९)

'हे गणपते! तुम्हारे बिना कोई भी कर्म नहीं किया जाता।'

कृष्णयजुर्वेद, मैत्रायणी संहितामें गणेशको 'हस्तिमुख' और तैत्तिरीयारण्यकके मन्त्रमें उन्हें 'वक्रतुण्ड' कहा गया है। इस प्रकार गणेश 'वैदिक देवता' सिद्ध होते हैं।

'**कलौ चण्डीविनायकौ**' के अनुसार कलियुगमें गणेशजीके अधिक प्रचारकी बात देख-सुनकर कोई यह न सोचे कि पूर्वके युगोंमें गणेशजीके पूजन या उनके अस्तित्वका अभाव था। यथार्थता यह है कि पूर्वकालमें भी सबसे पूर्व विधिपूर्वक गणेशपूजन करके तदनन्तर ग्रन्थादिका प्रणयन किया जाता था। फिर कहीं-कहीं शिष्य-शिक्षार्थ ग्रन्थके प्रारम्भमें भी गणेशजीके वन्दनापूर्वक मंगलाचरण-लेखनकी प्रक्रिया आरम्भ हुई।

यह ध्यान देनेकी बात है कि अथर्ववेदकी नौ संहिताओंमेंसे छः संहिताओंका विनियोग पाँच सूत्र-ग्रन्थोंमें किया गया है। वे हैं—

नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः।
तुर्य आङ्गिरसः कल्पः शान्तिकल्पस्तु पञ्चमः॥

(वायुपुराण ६१। ५४)

इनमें—१.'नक्षत्रकल्प' में नक्षत्रोंकी पूजा तथा शान्तियाँ बतायी गयी हैं। २.'वैतानसूत्र' में दार्श, पौर्णमास, अग्न्याधान आदिका विधान है। ३.'संहिताविधि' का इस समय वास्तविक नाम कौशिक-सूत्र है। इसमें शत्रूच्चाटन, भूत, प्रेत, पिशाच, बालग्रह आदिके निवारण करनेवाले धर्म तथा दुःस्वप्न-निवारण, पापनक्षत्रोत्पत्ति-

शान्ति, अपशकुन-शान्ति, अभिचार (जादू-टोना)-निवारण आदि वर्णित हैं। ४. 'आंगिरसकल्प' में अभिचारकर्मोंका स्वतन्त्रतासे निरूपण तथा उनका उपशमन भी बताया गया है। ५.'शान्तिकल्प' में विनायक (गणेश)-पूजा, ग्रहपूजा और ग्रहयज्ञादिका निरूपण किया गया है। ये सारी बातें अथर्ववेद (शौनक-संहिता) की श्रीसायणाचार्यकृत भाष्य-भूमिकामें देखी जा सकती हैं।

प्रारम्भिक प्राचीन सूत्रग्रन्थोंमें जो गणेश, नवग्रह आदिकी पूजा नहीं दीखती, उसका कारण यह है कि प्रत्येक कर्मारम्भमें शान्तिकर्मकी आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक गृह्यसूत्र तथा प्रत्येक संस्कारमें शान्तिकर्मका प्रतिपादन करनेसे गौरव या बहुत विस्तार हो सकता है, इसलिये परिभाषारूपमें एक ही शान्तिविधि नियत कर दी जाती है। अन्य ग्रन्थोंमें उसी गणेशादि-पूजनको आभ्युदयिक, स्वास्तिक, स्वस्तिवाचन आदि नामोंसे सांकेतित कर दिया जाता है। 'कात्यायनीशान्ति' आदि उक्त सूत्रके आधारपर ही बनाये गये हैं। गृह्यसूत्रोंके प्रारम्भमें कुशकण्डिकाका कृत्य तथा सर्वयज्ञशेष एक बार ही उपदिष्ट कर दिया जाता है। फिर **'एष एव विधिः, यत्र क्वचिद् होमः'** (पारस्करगृह्यसूत्र १।१।२७) इस सूत्रके कथनानुसार वह विधि सभी स्थानोंपर निरूपित नहीं की जाती। इस प्रकार 'शान्तिकल्प' में गणेश-ग्रह-पूजा आदिका उल्लेख हो जानेसे प्रत्येक सूत्रादिमें उसका पृथक् उल्लेख अनावश्यक समझा गया।

गणेशजी—अनादिदेवता

अब गणेशपूजा आदिके सम्बन्धमें हम प्राचीन ग्रन्थोंके प्रमाण उपस्थित करते हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, गणपतिकल्पमें कहा गया है—

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्॥
(२९३)

यहाँपर विनायक (गणेश)-पूजा करनेसे गणेश-पूजन स्मार्त भी सिद्ध हुआ। यह याज्ञवल्क्यस्मृति शतपथ-ब्राह्मणके प्रवक्ता महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यद्वारा प्रोक्त है, अतः जहाँ यह प्राचीन है, वहीं परम प्रामाणिक भी।

न्यायदर्शन (४।१।६२) सूत्रके वात्स्यायनभाष्यमें कहा गया है—

'दृष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुपपत्तिः। य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खलु इतिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।'

'वेद-इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्रके द्रष्टा एवं प्रवक्ता समान हैं।' इससे शतपथ-ब्राह्मणके तथा धर्मशास्त्र—याज्ञवल्क्यस्मृतिके द्रष्टा-प्रवक्ता याज्ञवल्क्य समान होनेसे दोनोंकी प्रमाणता स्पष्ट हुई। ब्राह्मण तथा स्मृतिके वक्ता समान होनेपर भी भाषा-भेदका कारण यह है कि शतपथ-ब्राह्मण श्रीयाज्ञवल्क्यको सूर्यसे प्राप्त हुआ था, अतः वह अपौरुषेय रचना है (देखिये, इसपर महाभारत, शान्तिपर्व ३१८।६)। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' उनकी पौरुषेय रचना है, अतः भाषा-भेद स्वाभाविक है। इसलिये संस्कृत भाषामें भाषाशैलीसे प्राचीनता एवं अर्वाचीनताका निश्चय करना आधुनिकोंकी कल्पना निराधार है।

इसे केवल हम ही नहीं कहते, बल्कि आर्यसमाजके अनुसंधाता श्रीभगवद्दत्तजी बी० ए० भी मानते हैं। वे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक वाङ्मयका इतिहास' (द्वितीय भाग)-के पृष्ठ १६०पर लिखते हैं—'वे ही ऋषि ब्राह्मणोंका प्रवचन करते थे और वे ही धर्मशास्त्रों आदिका भी।'

'भारतवर्षका बृहद् इतिहास' (भाग १, पृष्ठ ७२)-में वे ही लिखते हैं—''पं० ईश्वरदत्तजी (दयानन्दोपदेश विद्यालय, लाहौरके भूतपूर्व दर्शनाध्यापक)-ने 'ब्राह्मणग्रन्थोंके द्रष्टा और इतिहास-पुराण तथा धर्मशास्त्रके रचयिता ऋषियोंका अभेद' नामक एक बृहद् ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थमें उन्होंने सिद्ध किया है कि ''शतपथब्राह्मणकी भाषा वैदिक प्रवचनशैलीकी भाषा होने तथा **'ह, वै'** आदिकी बहुलतापर भी याज्ञवल्क्यस्मृतिकी भाषासे पर्याप्त सादृश्य दीखता है। याज्ञवल्क्यस्मृतिके अनेक पाठ पाणिनीय व्याकरणके प्रभावसे उत्तरोत्तर बदले गये हैं। पहले वे पाठ पुरातन-लोकभाषामें थे।'' (पृ० ७३)

उक्त ग्रन्थके ५४वें पृष्ठमें तो श्रीभगवद्दत्तजीने सर्वथा स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं—'याज्ञवल्क्यस्मृति वाजसनेय-ब्राह्मण (शतपथ)-के प्रवक्ता श्रीयाज्ञवल्क्यने बनायी थी—इस विषयका विशद विवेचन पं० ईश्वरदत्तजीके ग्रन्थमें देखिये। याज्ञवल्क्यस्मृतिके १०० से अधिक प्रयोग पाणिनिसे पूर्वके हैं।

श्रीभगवद्दत्तजी बी० ए० की यह बात समूल भी

है। शतपथके अन्तमें कहा है—'**आदित्यानि इमानि शुक्लानि यजूँषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते।**' (१४।९।४।३३) यहाँपर श्रीयाज्ञवल्क्यने सूर्यके द्वारा अपनेको शतपथब्राह्मणकी प्राप्ति कही है। इसका स्पष्टीकरण 'महाभारत'के शान्तिपर्व (३१८।१, १९)-में है। इससे स्पष्ट है कि श्रीयाज्ञवल्क्य मिथिलामें राजा जनकके आश्रयमें रहा करते थे। यही 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में भी कहा है—

'**मिथिलास्थः स योगीन्द्रः (याज्ञवल्क्यः) क्षणं ध्यात्वाब्रवीन्मुनीन्।**' (१।२)

उसी स्मृतिमें श्रीयाज्ञवल्क्यने अपने 'बृहदारण्यक' के लिये जो कि शतपथब्राह्मणका अन्तिम (१४वाँ काण्ड)है, कहा है—'**ज्ञेयं चारण्यकमहं (याज्ञवल्क्यः) यदादित्याद् (सूर्याद्)अवाप्तवान्।**' (प्रायश्चित्ताध्याय ३।११०) यहाँ श्रीयाज्ञवल्क्यने अपनी स्मृतिमें अपने द्वारा प्रवचन किये हुए 'बृहदारण्यक' (शतपथके १४वें काण्ड)की सूर्यद्वारा प्राप्ति कही है। इससे स्पष्ट है कि शतपथब्राह्मणके तथा याज्ञवल्क्य-स्मृतिके प्रवक्ता श्रीयाज्ञवल्क्य भिन्न-भिन्न नहीं, किंतु एक ही व्यक्ति हैं। जब ऐसी बात है, तब याज्ञवल्क्य-स्मृतिमें प्रोक्त गणेश-पूजनादि प्राचीन तथा प्रामाणिक सिद्ध हुए। याज्ञवल्क्य-स्मृति, आचाराध्याय (२७१)-में—

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा॥

—विनायक (गणेश)-को विघ्नकारक कहा गया है। तब यदि उन गणेशकी पूजा न की जाय तो कर्मोंके विघ्न कैसे हटें?

अब 'बृहत्पराशरस्मृति' भी देख लीजिये—उसमें (११।६—८ पद्योंमें) विविध विघ्न दिखलाये गये हैं। फिर उनके शान्त्यर्थ '**तस्मात् तदुपशान्त्यर्थं समभ्यर्च्य गणेश्वरम्।**' (११।९) '**एतेन सम्पूज्य गणाधिदेवं विघ्नोपशान्त्यै**' (११।३१) यह गणेशपूजा दिखलायी है। पराशरजीने '**गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमादृतः।**' (४।१७७), '**गणानां त्वा०**'—मन्त्रसे गणेशजीकी पूजा बतायी है। याज्ञवल्क्यस्मृतिकी मिताक्षरा टीका (२८६)-में '**तत्पुरुषाय विद्महे०।**' —यह गणेशजीका मन्त्र लिखा गया है।

'भविष्यपुराण' में भी '**गजेन्द्रवदनं देवं**'''**मूषकस्थं महाकायं—गणानां त्वेति मन्त्रेण**' (मध्यमपर्व २०। १४१-१४२) में गजानन एवं मूषकस्थित देवकी '**गणानां त्वा०**'—इस मन्त्रसे पूजा कही गयी है।

'बोधायनगृह्यशेषसूत्र' के विनायककल्पमें—
'**अभ्युदयार्थः सिद्धिकामः**'''**भगवतो विनायकस्य बलिं हरेत्।**' (३।१०।१)

'**विघ्न! विघ्नेश्वरागच्छ विघ्नेत्येव नमस्कृत। अविघ्नाय भवान् सम्यक्।**' (३।१०।२)

यहाँपर भी विघ्नराजकी पूजा कही गयी है।

इसीलिये यजुर्वेद, माध्यन्दिन-संहितामें '**नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च०**' (१६।२५) मन्त्रमें गणपतिको नमस्कार भी किया गया है। यहाँ गणपतिके लिये बहुवचनका प्रयोग सम्मानार्थ दिया गया है। यद्यपि यजुर्वेद-संहिताके उक्त सूक्तके रुद्रदेवता हैं, तथापि '**आत्मा वै पुत्रनामासि**' (पारस्करगृ० १।१६।१४)के अनुसार पिता-पुत्रका अभेद-सम्बन्ध प्रसिद्ध होनेसे रुद्रका गणपतिरूपसे वर्णन आया है। यही बात एक गाणपत्यने स्वामी शंकराचार्यको कही थी—

अंशांशिनोरभेदस्तु वेदे सम्यक् प्रकीर्तितः।
गणेभ्यो गणपेभ्यश्च नम इत्यादिना यते॥
रुद्रश्च गणपात्यैव न त्वन्यो मुनिपुङ्गव।

(आनन्दाश्रम, पूनाके शंकरदिग्विजयके पृष्ठ ५२७ की टीकामें उद्धृत ३८४-८५वें श्लोक)

इसलिये महाभारतमें '**महादेवप्रसादाच्च गाणपत्यं च विन्दति॥**' (वनपर्व) महादेवकी कृपासे गणपतित्वकी प्राप्ति भी कही गयी है। इसलिये वेदमें भी '**रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि।**' (यजुः, माध्यन्दिन-संहिता ११। १५) रुद्रका गणपतित्व बताया गया है। आर्यसमाजी प्रेस वैदिक यन्त्रालयसे प्रकाशित यजुर्वेदकी प्रतिमें भी उक्त मन्त्रका देवता भी 'गणपति' लिखा गया है। इस प्रकार गणपति जब वैदिक देवता, रुद्रके अन्य रूप अथवा अंशावतार या पुत्र सिद्ध हुए, तब गणपतिको 'अवैदिक देव' कहना एक अक्षम्य अपराध है।

इसीलिये यजुर्वेद, माध्यन्दिन-संहितामें '**गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे**' (२३।१९)—इस वैदिक मन्त्रमें अश्वमेधके अश्वकी स्तुतिके लिये भी उसे गणपतिदेवरूपसे आहूत किया गया है। इसलिये

'गणेशपुराण' के उपासना- खण्ड में भी 'गणेशसहस्रनामों' में **'ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिः प्रियपतिः प्रियः।'** (४७। १५) ये ही गणेशके नाम आये हैं। इसी प्रकार दोनोंकी अभिन्नता सिद्ध हुई।

आनन्दगिरिके 'शंकरविजय' के अनुसार एक गाणपत्यने आचार्य शंकरके सामने गणपतिका यही मन्त्र रखा था। आचार्यने इसका खण्डन न करके अनुमोदन ही किया। इसीलिये इस गणपतिको वेदमें कहीं नैवण्टुकरीति (अन्य देवताके मन्त्रमें अन्य देवताका वर्णन)-से अश्वमेधके अश्वके रूपमें भी वर्णित किया गया है तो कहीं रुद्रके, कहीं इन्द्रके तो कहीं ब्रह्मणस्पतिके तथा बृहस्पतिके रूपमें।

गणपति ही ब्रह्मणस्पति

अब हम वेदद्वारा गणपतिका ब्रह्मणस्पति तथा इन्द्रके रूपमें वर्णन दिखलाते हैं—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्॥
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋक्सं० २। २३। १)

ब्रह्मणस्पतिके ये ही नाम 'गणेशपुराण' के सहस्रनामोंमें गजानन-गणेशके भी आये हैं—**'कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः। ज्येष्ठराजो निधिपतिः'** (४६। १४)। अतः दोनोंका ऐक्य भी सिद्ध हो गया।

कहा जाता है कि उक्त मन्त्र **'ब्रह्मणस्पति'** का है। ब्रह्मणस्पतिसे **'ब्रह्मणां पतिः'** बृहस्पतिका बोध होता है, गणेशका नहीं। इसके उत्तरमें यह जानना चाहिये कि देवताओंके बहुत-से नाम एवं रूप हुआ करते हैं—यह प्रसिद्ध है। इसलिये 'गणेशपुराण' में गणेशसहस्रनामोंमें **'ब्रह्मणस्पति'**—यह नाम तथा उक्त मन्त्रके अन्य नाम भी आये हैं।

गणपतिका स्वस्तिकरूप

गणपति 'स्वस्तिक'-रूपमें भी प्रसिद्ध हैं। उसी वामावर्त स्वस्तिकमें चारों ओर गणपतिका बीजमन्त्र 'गं' विराजमान है—यह ध्यानसे देख लीजिये। दक्षिणावर्त स्वस्तिकमें वही बीजमन्त्र **'गं'** उसके दूसरी ओर विराजमान है। यही बीज मन्त्र **'गं'** उक्त ब्रह्मणस्पतिके मन्त्रके आदिम तथा अन्तिम अक्षरसे निष्पन्न है—यह बात 'त्रिपुरातापिनी-उपनिषद्' में स्पष्ट कही गयी है।

आकाशमें 'ख-स्वस्तिक' प्रसिद्ध है। **'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥'** सामवेदसंहिताके इस अन्तिम मन्त्रमें उल्लिखित इन्द्र, पूषा, तार्क्ष्य एवं बृहस्पति—ये चार देवता आकाशमें तारोंके रूपमें इस प्रकार विराजमान हैं कि उन चारोंके ऊपरसे नीचेको तथा दाहिने पार्श्वसे बायेंको रेखा कर दी जाय तो 'स्वस्तिक' बन जाता है। उक्त मन्त्रमें चार बार **'स्वस्ति'**-शब्द आनेसे 'स्वस्तिक' बना है। श्रीपाणिनिने भी (६। ३। ११५सूत्रमें) स्वस्तिकको स्मरण किया है।

अतः वेदमें जहाँ इन्द्रका कोई मन्त्र हो या पूषा या तार्क्ष्य (गरुड़)या बृहस्पतिका मन्त्र हो, उससे 'स्वस्तिक'(गणेश)-का बोध हो जाता है। उक्त मन्त्रमें पहले गणपतिका इन्द्ररूपसे स्तवन है और सबसे पीछे बृहस्पतिरूपसे। इसका भाव यह हुआ कि वेदमें इन्द्र भी गणपतिरूपसे स्तुत होते हैं तथा बृहस्पति भी। तब इससे वेदमें 'गणपति' की स्थिति सिद्ध हुई; क्योंकि निरुक्तकार कहते हैं—

'एकस्य आत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'

(७। ४। ९)

'एक देवतात्माके दूसरे देवता अंग-प्रत्यंग होते हैं।'

श्रीसायणाचार्यने भी ब्रह्मणस्पति-मन्त्रके अपने भाष्यमें **'देवादिगणानां सम्बन्धी गणपतिः'**—यह अर्थ भी किया है। तब ब्रह्मणस्पतिका देवपतित्व या गणपतित्व भी सिद्ध हुआ। 'गणेशगीता' में भी गणेशको 'ब्रह्मणस्पति' कहा गया है, इसलिये गणपतिको देवदेव महादेवका आत्मा (पुत्र) माना गया है। इसी कारण 'वाल्मीकि-रामायण' के एक स्थलमें महादेवको भी 'गणेश' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त 'गणेश' बुद्धिके अधिष्ठाता भी प्रसिद्ध हैं। इसलिये ब्रह्मणस्पतिवाले मन्त्रमें गणपतिको 'कवि' भी कहा गया है। 'कवि'का अर्थ 'क्रान्तदर्शी' तथा 'बुद्धिमान्' है। महाभारतके लिखनेके अवसरमें गणपतिका कवित्व प्रसिद्ध है ही। अथवा 'ब्रह्मणस्पति'में 'ब्रह्म' वेदका नाम है **'स्तुता मया वरदा वेदमाता'** इस अथर्व-वेदसंहिता (१९। ७१। १)-के मन्त्रमें 'वेदमाता'से गायत्री ही अभिप्रेत है। यह गायत्री **'धियो यो नः प्रचोदयात्।'** (यजुर्वेद ३। ३५) बुद्धिरूपा है। गायत्री

चारों वेदोंकी सारस्वरूपा है। इस विषयमें मनुस्मृति (२।७६-७७) देखिये। तब बुद्धिका अधिष्ठाता गणपति भी वेदका स्वामी होनेसे 'ब्रह्मणस्पति' है। इसलिये इसे 'बृहस्पति' भी कहा जाता है। '**बृहतीनां वेदवाचां पतिः बृहस्पतिः**'। '**कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु**' (पा० ६।३।४२ पर व्याकरण-महाभाष्य) से यहाँ पुंवद्भाव हो जाता है। तब 'बृहस्पति'-रूपसे वर्णन भी 'गणेश'का ठीक ही हुआ।

इसलिये 'गणेशपुराण'में भी 'गणेश'को '**ब्रह्म ब्रह्मार्चितपदो ब्रह्मचारी बृहस्पतिः॥**' (४६। १०५) 'बृहस्पति'-शब्दसे भी कहा गया है।

कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः।
ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिः प्रियपतिः प्रियः॥
(४६। १४-१५)

—यहाँ गणेशको ब्रह्मणस्पति तथा ज्येष्ठराज भी कहा है। तब यह ब्रह्मणस्पतिवाला '**गणानां त्वा०**' मन्त्र भी गणेशजीका ही सिद्ध हुआ।

इस वेद-मन्त्रका इतिहास 'गणेशपुराण' में इस प्रकार आया है—

कदाचित् सुमुहूर्ते तु पिता वाचक्नविः सुतम्।
गणानां त्वेति ऋङ्मन्त्रं महान्तमुपदिष्टवान्।
उवाच च महामन्त्रो वैदिकोऽखिलसिद्धिदः॥
आगमोक्तेषु मन्त्रेषु सर्वेषु श्रेष्ठ एव च।
ध्यात्वा गजाननं देवं जपैनं स्थिरमानसः॥
परां सिद्धिं समाप्यैव ख्यातिं लोके गमिष्यसि।
ततो गृत्समदो विप्रो मन्त्रं प्राप्य पितुर्मुखात्॥
अनुष्ठानरतो भूत्वा जपध्यानपदोऽभवत्।
(उपासना० ३६। १८—२२)

"किसी शुभ मुहूर्तमें पिता वाचक्नविने अपने पुत्र (गृत्समद)-को '**गणानां त्वा०**' इत्यादि ऋग्वेदके मन्त्रका उपदेश दिया और यह बताया कि 'उपर्युक्त वैदिक महामन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला और तन्त्रोक्त सम्पूर्ण मन्त्रोंमें भी श्रेष्ठ है। भगवान् गणपतिका ध्यान करके तू स्थिरचित्त हो इस मन्त्रका जप कर। इसके द्वारा तू मोक्षरूपा परमा सिद्धिको सुलभतासे प्राप्तकर संसारमें विख्यात भी हो जायगा।' तदनन्तर विप्र गृत्समद पिताके मुखसे उपर्युक्त मन्त्रको प्राप्तकर अनुष्ठानमें लग गये और जप एवं ध्यान करने लगे।"

यहाँपर '**गणानां त्वा०**'—यह ऋग्वेदका मन्त्र गृत्समदको गजानन गणेशकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये कहा गया है। इसी मन्त्रका ऋषि भी वैदिकयन्त्रालय, अजमेरसे मुद्रित ऋक्-संहितामें 'गृत्समद' दिया गया है। यही ऋङ्मन्त्र यजुर्वेद, तै० सं० (२।३।१४।३)-में तथा यजुर्वेद, काठकसंशिप (१०।४०)-में भी आया है। इससे 'वेद-पुराणकी एकवाक्यता' भी सिद्ध हो गयी।

वेदोंमें गणपतिका इन्द्ररूप

अब गणपतिका वेदमें 'इन्द्र'-रूपसे वर्णन भी 'कल्याण-पाठक' देखें—

नि षु सीद गणपते गणेषु
त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे
महामर्क मघवञ्चित्रमर्च॥
(ऋक्सं० १०।११२।९)

इस वेदके प्रमाणसे तथा गृह्यसूत्र, स्मृति, पुराणादिकी साक्षीसे गणपतिपूजा अनादि सिद्ध हुई। '**विप्रतम**'-शब्दसे गणपति '**ब्राह्मणयोनिज विद्वान्**' सिद्ध हुए। गणपतिकी विद्वत्ता 'महाभारत' के लेखनमें (आदिपर्व १।७७—८३में) देखी जा सकती है। इस प्रसंगमें गणेशके हेरम्ब, गणेशान, गणनायक, विघ्नेश एवं गणेश—ये नाम आये हैं, जो गजानन गणेशके हैं। श्रीव्यासजीने महाभारतमें ८८००कूट (बहुत कठिन) श्लोक रखे। गणेशजी लिखते-लिखते ही उनका अर्थ जान लेते थे।

उक्त मन्त्रमें इन्द्र गणपतिदेवरूपमें स्तुत हुए हैं—'**गणपते! मघवन्**'। इसलिये 'गणपत्युपनिषद्' में श्रीगणेशको '**त्वमिन्द्रः**' (१) भी कहा गया है। इसीलिये शतपथ-ब्राह्मणमें कहा गया है—'**इन्द्रः सर्वा देवताः**' (३।४।२।२) इसी प्रकार '**इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः**' (६।३।३।२१)-में इन्द्र और अग्निकी सब देवताओंके रूपसे स्तुति की जा सकती है—यह कहा गया है। इसलिये '**त्वमग्ने!......द्विमाता**' (ऋक्सं० १।३१।२)-में अग्निको '**द्वैमातुर**' (गणपति) कहा गया है। '**आ तू न इन्द्र......महाहस्ती......**' (ऋक्सं० ८।८१।१) में इसे '**महाहस्ती**' गणरूप कहा गया है। 'सामविधान-ब्राह्मण' में भी '**आ तू न०**' (साम० पू० २।३।३), '**सुहस्त्या०**' (साम० पू० ६।३।७) में **इति प्रथमषष्ठे च 'एषा**

वैनायकी नाम संहिता' इसको विनायक (गणेश)-का मन्त्र कहा गया है। इसलिये 'हस्ती' से 'हस्तिमुख' का बोध हुआ। इसीलिये कृष्णयजुर्वेदकी मैत्रायणी-संहितामें भी गणेशजीके लिये '**तत् कराटाय''''''हस्तिमुखाय धीमहि**' (२।९।१।६)में हस्तिमुख—गजाननको—'**करं शुण्डादण्डं आटयति**' सूँडको घुमानेवाला—'कराट' कहा गया है।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि गणपति-नामके किसी देवविशेषका वेदमें उल्लेख नहीं है—(वैदिकप्रेस, अजमेरकी छपी) यजुर्वेदकी माध्यन्दिन-संहिता (२३। १९)में गणपतिको ही इस मन्त्रका देवता लिखा गया है। ११। १५ मन्त्रके देवता-रूपमें भी 'गणपति'का ही उल्लेख किया गया है। 'गणेशाथर्वशीर्ष''''उपनिषद्' में '**एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्**' में भी गणेशजीका वर्णन किया गया है। उपनिषदोंका ब्राह्मण-भागमें अन्तर्भाव होनेसे उन्हें 'वेद' माना जाता है—'**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**'। 'मुक्तिकोपनिषद्'के '**एकैकस्या हि शाखाया एकैकोपनिषन्मता**' (१।१४) में वेदकी सभी शाखाओंकी एक-एक उपनिषद् मानी गयी है।

'यजुर्विधान' में '**गणानां त्वा०**' मन्त्रको श्रीकात्यायन मुनिने '**वक्रतुण्डस्य एतानि०**' के अन्तर्गत गजानन-देवताको माना है। वेदमें गणपतिका उल्लेखमात्र ही नहीं है, अपितु उन्हें हवि देनेकी बात भी कही गयी है—'**गणश्रिये स्वाहा, गणपतये स्वाहा**' (यजु० २२। ३०)। यजुर्वेदकी काण्वसंहिता (२४। ४२)-में भी '**गणपतये स्वाहा**' है। यजुर्वेद, मैत्रायणीसंहिता (३। १२। १३)-में भी ऐसा ही मन्त्र है।

यजुर्वेदकी १०१ संहिताएँ हैं। इनमें कृष्णयजुर्वेदकी ८६ तथा शुक्लयजुर्वेदकी १५ संहिताएँ होती हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे कृष्णयजुर्वेद शुक्लयजुर्वेदकी अपेक्षा बड़ा, प्राचीन और सुव्यवस्थित भी है।

इसी प्रकार कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यकमें भी गजानन गणेशका वर्णन मिलता है—'**तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।**' (१०।१) इसीलिये सर्ववेदभाष्यकार श्रीसायणाचार्य भी अपने भाष्योंके आरम्भमें गजानन गणेशका ही मंगलाचरण करते हैं। यदि इसमें अवैदिकता होती तो वे यह नहीं करते।

त्रिपुरातापिनी-उपनिषद्की तृतीयकण्डिकामें '**गणानां त्वा''''सीद सादनम्**' मन्त्रके आदि-अन्तसे '**गं गणपतये नमः''''''**' गणेशको नमस्कार कराया गया है। वहीं चतुर्थकण्डिकामें '**गणानां त्वारति त्रैष्टुभेन पूर्वेणाध्वना मनुनैकार्णेन गणाधिपमभ्यर्च्य गणेशत्वं प्राप्नोति**'—यह फल कहा गया है। ['**गणानां त्वा**' —इस त्रिष्टुभ् छन्दके मन्त्रसे भगवान् गजाननकी पूजा करके पूजक गणेशके पद (सायुज्य)-को प्राप्त करता है।]

'खिल'-मन्त्र भी 'वैदिक' ही हैं, प्रक्षिप्त नहीं। इसीलिये मनुस्मृति (३।२३२)-में '**खिलानि च**' के द्वारा पितृकर्ममें खिलोंके पाठका भी विधान है। यजुर्वेदकी माध्यन्दिन-संहितामें २६वें अध्यायके बीचमें जो '**यथेमां वाचं०**' यह प्रसिद्ध मन्त्र है, वह 'खिल' माना जाता है। बृहत्पराशरस्मृति'में '**आ तू न इन्द्रः**'—इस मन्त्रको '**गणेश्वर**'-परक बताया गया है, यह हम पहले बतला चुके हैं।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः॥

(अथर्व० १९।९।१०)

—इस मन्त्रके पूर्वार्धमें ग्रहोंसे प्रार्थना है और उत्तरार्धमें 'धूमकेतु'-शब्दसे '**धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षः**' गणेशकी प्रार्थना तथा चतुर्थ पादमें रुद्रदेवताओंसे प्रार्थना की गयी है।

'**गणानां त्वा०**' इस यजुर्वेदके मन्त्रके द्वारा अश्वमेध यज्ञमें अश्वकी भी गणपतिरूपसे स्तुति की गयी है। उसके भाष्यकार श्रीमहीधर भी '**प्रणम्य लक्ष्मीं च हरिं गणेशम्**' के रूपमें गणेशको भी वैदिक देवता मानकर उन्हें नमस्कार करते हैं।

यजुर्वेदकी माध्यन्दिन-संहितामें '**आखुस्ते पशुः०**' (३।५७) कहकर चूहेको गणपतिका वाहन माना गया है। यद्यपि इस मन्त्रका देवता रुद्र है, तथापि रुद्रसूक्तमें ही '**नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च०**' (१६।२५) के द्वारा रुद्रका गणपतिके रूपमें वर्णन किया गया है। '**रुद्रस्य गाणपत्यम्**' (यजु० ११। १५) में रुद्रका 'गणपतित्व' कहा गया है। यह '**पुत्र आत्मा मनुष्यस्य**' (महाभारत ३। ३१३।७२) के अनुसार है। इसमें वैदिकता है। वैदिक यज्ञकी क्रियामें चूहेके बिलकी मिट्टी लायी जाती है (देखिये, शतपथ० २।१।७); अतएव उसके अध्यक्ष गणपतिकी भी यज्ञमें पूजा होती है। '**गणानां त्वा**'

(यजु० २३। १९) मन्त्रसे अश्वमेध यज्ञमें यज्ञिय अश्वमें गणपतिका आवाहन किया जाता है। प्राकृतिक गणपति प्राणके च्युत होनेपर उसका प्रथम प्लेगरूप आघात चूहेपर होता है। उस प्लेगके उपशमनके लिये गणपति-याग ही शास्त्रोक्त उपाय है। जबतक गणपति चूहेपर चढ़े रहते हैं, तबतक प्लेग दबी रहती है।

गणेशका 'विघ्नेश्वर' नाम देखकर 'ये गणेश विघ्नविनाशक कैसे हो सकते हैं? अच्छे कार्योंमें विघ्न डालनेवाले होनेसे वे उपदेव वा अनार्यदेव हुए'—यह कइयोंका कहना भी अज्ञानातिशयके कारण है। 'मृगेन्द्र सिंह' मृगोंका स्वामी होता हुआ मृगोंका विनाशक भी होता है। 'जगदीश्वर' जहाँ जगत्‌का स्वामी है, वहाँ 'जगत्संहारक' भी है। एक ही देवको जब कर्ता, भर्ता और हर्ता भी माना जाता है, तब 'विघ्नेश्वर'-की 'विघ्नविनाशकता' के विषयमें शङ्काका अवकाश ही कहाँ? ईश्वरमें अनुग्रहके समान 'निग्रह' की भी शक्ति हुआ करती है। 'महेश्वर' क्या 'संहारक' नहीं?

गणपतिको उपनिषद्‌में 'सर्वेश्वर' भी माना जाता है। जो 'सर्वेश्वर' है, वह विघ्नेश्वर भी है। विघ्नेश्वरके व्यापार—विघ्नोंकी भी हमें आवश्यकता पड़ती ही है। जिस व्यक्तिको लगातार दस्त आ रहे हों, उसमें यदि विघ्नेश्वर प्रतिबन्ध-स्वरूप विघ्न न डालें तो वह व्यक्ति समाप्त हो जाय।

एक बार किसी राजाकी एक उँगली कट गयी। इसे देखकर मन्त्रीने कहा—'जो विघ्नेश्वर करता है, ठीक ही करता है।' राजाने इससे क्रुद्ध होकर मन्त्रीको निकाल दिया। मन्त्रीने उस विघ्नको भी अच्छा समझा। एक बार राजा सेनासे अलग हो गया। जंगलमें उसे अकेला पाकर कापालिक लोगोंने देवीके आगे बलि देनेके लिये उसे पकड़ लिया। बलि देनेके समय उसे विकलांग देखकर उन लोगोंने उसकी बलि नहीं दी, बल्कि वह छोड़ दिया गया। तब राजाको मन्त्रीकी बात ठीक ज्ञात हुई। उसने मन्त्रीको फिरसे बुला लिया। राजाने मन्त्रीसे कहा—'तुम्हारा मेरे द्वारा निकाला जाना तो तुम्हारे हकमें ठीक नहीं था; परंतु तुम उसे शुभ ही मानते हो, यह कैसे?' इसपर मन्त्रीने कहा कि 'आप तो अंग-भंग होनेके कारण बलिदानसे बच गये; किंतु मैं यदि आपके साथ होता तो पूर्णांग होनेसे मेरी अवश्य बलि दे दी जाती। अतः आपद्वारा मेरा निकाला जाना मेरे लिये विघ्नस्वरूप होनेपर भी शुभ ही हुआ। इसलिये विघ्नेश्वरके विघ्नोंसे भी लाभ ही होता है।'

यदि विघ्नेश्वरके विघ्न न हों तो पुरुष अशुभ व्यवहारोंसे निवृत्त कैसे हो? उन पाप-कार्योंमें विघ्न ही तो पुरुषकी उनसे रक्षा करते हैं। प्रतिबन्धस्वरूप विघ्न होनेसे ही हमें सुख तथा दुःख भी क्रमशः मिलते हैं। अप्रतिबन्धवश निरन्तर सुख मिले तो हम अभिमत्त होकर अपना पतन कर डालें और निरन्तर दुःख मिले तो हम निराश होकर मर जायँ। संसाररूपी गाड़ीको ही लीजिये। वह एक व्यवस्थासे चले, उसमें प्रतिबन्धस्वरूप विघ्न न हों तो गाड़ी किसी स्टेशनपर रुके ही नहीं। फिर यात्री उसपर कैसे चढ़ें या उतरें? बिना लाइन-क्लियरके वह कहीं जा टकराये तो बड़ी हानि हो जाय। मोटर-साइकल लगातार दौड़ती चली जाय, उसमें यदि ब्रेक न हो तो वह कहीं रुके ही नहीं; उसके आगे नदी आ जाय तो वह उसमें जा डूबे।

राजा बलिके बढ़े हुए वैभवमें वामनावतारका छलपूर्वक विघ्न डालना वैष्णववृत्ति थी, आर्यवृत्ति थी, अनार्यवृत्ति नहीं। वामन अनार्यदेव नहीं थे। हमलोग भी कई ऐसे कार्य शीघ्रतावश करने लग जाते हैं, जो हमारी प्राणहानि भी कर सकते हैं! यदि विघ्नेश्वर वहाँ न हों और उसमें विघ्न न डालें तो हम मर ही जायँ। यदि विघ्नेश्वर पापकर्मोंमें विघ्न न डालें तो पापकर्म कैसे रुकें? हमारा मरण भी एक बड़ा विघ्न है, पर वह भी हमारा नया संस्करण करके हमारे लिये नवजीवनदाता बनता है।

अतः जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी अधिष्ठात्री देव-त्रिमूर्तिकी भाँति विघ्न-व्यापारके देवकी भी आवश्यकता रहती है। अद्वैतमें एक तत्त्व होनेपर भी व्यवहारमें सब नाम-रूप विभिन्न होते हैं। विघ्न होनेसे कई लाभ भी हो जाते हैं। कई बार शीघ्रता करनेसे कार्य सांगोपांग नहीं बनता; उसमें विघ्न पड़नेपर देरी हो जानेसे वह सुसम्पन्न हो जाता है। अतः विघ्नेश्वर गणेश 'अपदेव' कभी नहीं बन सकते।

विघ्नेश्वर गणेश विद्या एवं बुद्धिके ही अधिष्ठाता नहीं, अपितु ऋद्धि-सिद्धि एवं निधिके भी दाता होनेसे 'निधिपति' एवं प्रिय आख्यानोंके अधिष्ठाता होनेसे

'प्रियपति' भी हैं। अच्छे कार्योंमें आनेवाले विघ्नोंके भी विघातक एवं अभीप्सितार्थ-सिद्धिदायक होनेसे वे सुरासुर-पूजित भी हुए। तभी तो उनके लिये कहा जाता है—

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥

जो कहीं 'गणपति' को 'चोर-गणपति' कहा जाता है, वहाँ यह भाव समझना चाहिये कि वे सम्पूर्ण विघ्नोंके चोर हैं। उनको 'उच्छिष्टगणपति' भी कहा जाता है, वहाँ यही भाव है कि वे '**सर्वान्तेऽवशिष्टः**—सबके अन्तमें शेष रहनेवाले' हैं। अथर्ववेदसंहिताके 'उच्छिष्टसूक्त' (११। ७)-का भी यही तात्पर्य है। इस प्रकार गणपति ब्रह्म होनेसे—जैसा कि 'गणपति-उपनिषद्'में कहा गया है, वे 'उच्छिष्ट' भी सिद्ध हुए। गणपतिको 'पिचण्डिल'या 'लम्बोदर' भी कहा जाता है। जब गणपतिको 'ब्रह्म' कहा जाता है, तब 'लम्बोदर'का यह भाव हुआ—'**जगन्ति यस्यां सविकासमासत**'। अर्थात् सारा जगत् उनके पेटमें समाया हुआ है। अतः उनका पेट बहुत बड़ा है। यही भाव इस शब्दमें ओत-प्रोत है।

'गजमुख'से डर जाना भी ठीक नहीं। कदाचित् यह डर इसलिये हो कि 'वे गजमुखसे सार्थक भाषा बोल कैसे सकते हैं? सिर कटनेपर गजमुखका संधान कैसे हुआ? उनकी मृत्यु क्यों न हो गयी?'—ये संदेह भी 'श्रद्धा'से समाहित हो जाते हैं। ब्राह्मणभागात्मक वेदको उठा लीजिये। शतपथब्राह्मण (१४। १। १। १९—२४)-में वर्णन है कि अथर्वाके पुत्र दध्यङ्का सिर काटकर अश्विनीकुमारने उसपर घोड़ेका सिर जोड़ दिया। उस अश्व-सिरसे यज्ञपूर्तिकी विद्या अश्विनीकुमारने सीखी। सिर कटनेसे दध्यङ् मरे भी नहीं, घोड़ेके सिरका संधान भी हो गया। उससे बोलचाल तथा विद्या-प्राप्ति भी सम्भव हो गयी। कहीं यह बात ब्राह्मणभागकी होनेसे किसीको खटक न जाय, अतः उन्हें वेदसंहिता भी देख लेनी चाहिये—

'**आथर्वणाय अश्विनौ दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।**'
(ऋक्सं० १। ११७। २२)

'**युवं दधीचो मन आविवासथोऽथा शिरःप्रति वामश्व्यं (अश्विनौ) वदत्॥**'
(ऋक्सं० १। ११९। ९)

इसमें प्रत्यक्षका अनुग्रह भी देख लीजिये—

एक कुत्तेका सिर दूसरे कुत्तेकी गर्दनपर जोड़ दिया गया

मास्को २४ सितम्बर। 'मास्को ईवनिंग' के अनुसार रूसी वैज्ञानिक कल एक कुत्तेका सिर एक अन्य किस्मके कुत्तेकी गर्दनपर लगानेमें सफल हो गये। पत्रमें लिखा है—'दो सिरोंवाला कुत्ता सकुशल है और उसके दोनों सिर खाते-पीते हैं।' ('वीर अर्जुन', दिल्ली, २५सितंबर १९५८)

फलतः उक्त वैदिक कथाकी भाँति तथा प्रत्यक्ष वैज्ञानिक रूसी घटनाकी भाँति गजमुखका संधान तथा उससे भाषणशक्ति भी सम्भव है। यह शंका तो व्यर्थ है कि 'हाथीका सिर बहुत बड़ा होता है, फिर वह छोटे पुरुषकी ग्रीवापर कैसे जुड़ सका?' इसका उत्तर यह है कि गणपतिको मनुष्यशरीर समझना भूल है। गणपति मनुष्य नहीं, किंतु देव हैं। देवताओंके शरीर मनुष्य-जितने नहीं, किंतु बहुत बड़े होते हैं। चाहे आप चित्रोंमें गणेशको ह्रस्व आकारवाला ही देखते हों, पर वहाँ वास्तविकता नहीं होती। पृथ्वीकी अपेक्षा १३लाखगुना बड़ा सूर्यदेवता भी चित्रमें कितना छोटा होता है। हाथीको भी वहाँ दिव्य ही समझना चाहिये, इस लोकका प्राणी नहीं। तब '**गजेन्द्रवदनं देवम्**' (भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, द्वितीय भाग २०। १४०) '**मूषकस्थं महाकायम्**' (वही, २०। १४२) इत्यादि वचनोंमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं रह जाती। तब क्या अश्वके सिरवाले वैदिक ऋषि दध्यङ्को भी अनार्य ऋषि मान लिया जायगा? मनुष्य और सिंहकी संकीर्ण आकृतिवाले नृसिंहावतारको तथा मत्स्य, कूर्म, वराह और हयग्रीवकी आकृतिवाले विष्णुको भी क्या 'अनार्यदेव' मान लिया जायगा? ऋक्संहिता ८। ८५। ७ के अनुसार रासभवाहनवाले अश्विनीकुमारोंको तथा कृष्ण रंगवाले श्रीकृष्ण तथा श्रीजगन्नाथमूर्तिको भी क्या अनार्यदेव मान लिया जायगा? वस्तुतः गणनायकका गजवाहन होना स्वाभाविक ही है।

३३ देवताओंमें श्रीगणेशके न आनेसे भी गणेशजी अवैदिक नहीं माने जा सकते; अन्यथा उनमें सरस्वती, ब्रह्मणस्पति आदि देवताओंके भी न आनेसे वे भी अवैदिक देव हो जायँगे। पर यह किसीको भी इष्ट नहीं है। गणेशजीका जब सर्वत्र देश-विदेशोंमें प्रचार है,

तब स्पष्ट है कि भूमण्डलभरमें फैले हुए आर्योंके मान्य वेदादिशास्त्रोंकी यह देन है। 'गजानन' शब्द भी चारों वेदोंके अन्तिम अक्षरोंको संकेतित करता है—'ऋग्' से 'ग', यजुः से 'जा', सामन्से 'न' और अथर्वन्से 'न'। तब वेदसे प्रकट हुआ यह गजानन देव अवैदिक एवं अनार्य कैसे हो सकता है?

'विघ्नराज क्षमस्व'—यों गणपतिपूजाके अन्तमें कहना **'आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥'** की भाँति आवाहनके अनन्तर विसर्जनके उद्देश्यसे है, गणेशकी अनावश्यकताका द्योतक नहीं।

गणेशकी एक मूर्ति 'ॐ' भी है। उसमें आरम्भिक भाग गजका शुण्डादण्ड है, ऊपरका अनुनासिक 'भालचन्द्र' है एवं दाहिनेमें गोलाकार मोदक (लड्डू) है। किन्हींके मतानुसार ॐ में प्लुतचिह्न मूषक है। इस प्रकार ॐ—यह गजानन गणेशकी प्रणवाकार मूर्ति है। इसे 'गणेशतापिनी-उपनिषद्' में भी संकेतित किया गया है—**'ततश्च ॐ इति ध्वनिरभूत्। स वै गजाकारः'**। **'ॐकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।'**

(गणेशपुराण)

~~~○~~~

श्रीगणपति-रहस्य

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य)

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥
अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम्।
हृदि प्रकाशस्य धुरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥*

(एकदन्तस्तोत्र ३-४)

आर्योंके प्रत्येक मंगल-कार्यके आरम्भमें भगवान् गणपतिकी पूजा होती है। यह पूजा थोड़ी मात्रामें हो या बड़ी मात्रामें, होती है अवश्य। आवाहनसे लेकर विसर्जनपर्यन्त पूजा विविध विधानोंके अनुसार यथाशास्त्र विशेष प्रकारसे की जाती है; परंतु सामग्रियोंके अभावमें केवल **'श्रीगणेशाय नमः'**, **'श्रीगणपतये नमः'** कहकर ही हम कभी-कभी मंगलमूर्ति सिन्धुरवदनका स्मरण कर लिया करते हैं। यह पूजा भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तके धर्माभिमानी हिन्दू सद्गृहस्थोंके घरमें की जाती है, चाहे वह किसी भी दूसरे सम्प्रदायका उपासक क्यों न हो। गणेशपूजाका इतना लोकप्रचार—सार्वत्रिक परिचय होनेपर भी हम गणपतिके यथार्थ स्वरूपसे अनेक अंशोंमें अपरिचित-से ही हैं। यही कारण है कि उन्हें शिवपुत्र जानते हुए शिव-गौरीके विवाहारम्भमें उनके पूजनकी कथा सुनकर हममेंसे बहुत लोग इन दोनों बातोंमें पारस्परिक विरोध मान बैठते हैं अथवा इस कथाको पौराणिक कल्पना कहनेमें आनाकानी नहीं करते। अतः गणपतिके वास्तविक स्वरूपका जानना हमारा परम कर्तव्य है। हमारे गणेशोपासना-सम्बन्धी संस्कृत-ग्रन्थोंमें इस रहस्यका उद्घाटन बड़ी मार्मिकताके साथ किया गया है। 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंके सामने इस तत्त्वका थोड़ा-सा विवेचन प्रस्तुत करनेका उद्योग किया जा रहा है।

गणपति-तत्त्व-निरूपण करनेके पहले गणेशके वैदिकत्वके विषयमें सामान्य चर्चामात्र कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि ऐतिहासिक दृष्टिसे विकास-सिद्धान्तके अनुसार प्रायः सभी पौराणिक देवताओंका मूल रूप वेदोंमें मिलता है। धीरे-धीरे ये विकासको प्राप्त होकर कुछ नवीन रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। गणेशजी भी वैदिक देवता हैं, परंतु इनका नाम वेदोंमें 'गणेश' न होकर गणपति या

* जो सत्पुरुषोंके आत्मरूप (अथवा सदा आत्मरूप), सबके आदि, मायाविवर्जित, 'वही (परमात्मा) मैं हूँ'—इस प्रकार जिनके अंदर अचिन्त्य ज्ञान है, जिनका न आदि है न मध्य और न अन्त ही है, उन द्वितीयरहित भगवान् एकदन्तकी हम शरण ग्रहण करते हैं। हम उन एकदन्त भगवान् गणेशकी शरणमें जाते हैं, जिनका स्वरूप अनन्त एवं चिद्रूप है, जो सबके आदिभूत हैं, जो हृदयमें प्रकाशको धारण किये रहते हैं, अपनी बुद्धिमें विराजमान रहते हैं और भेद-अभेद आदिसे रहित हैं।
~~~

'ब्रह्मणस्पति' है। जो वेदमें 'ब्रह्मणस्पति'के नामसे अनेक सूत्रोंमें अभिहित किये गये हैं, उन्हीं देवताका नाम पुराणोंमें 'गणेश' मिलता है। ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलका यह सुप्रसिद्ध मन्त्र गणपतिकी ही स्तुतिमें है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋग्वेद २। २३। १)

इसमें आप 'ब्रह्मणस्पति' कहे गये हैं। 'ब्रह्मन्' शब्दका अर्थ वाक्, वाणी है—अतः 'ब्रह्मणस्पति'का अर्थ वाक्पति, वाचस्पति अथवा वाणीका स्वामी हुआ। बृहदारण्यक-उपनिषद्में (१। ३। २०-२१) 'ब्रह्मणस्पति'-का यही अर्थ प्रदर्शित किया गया है—

एष एव उ एव बृहस्पतिर्वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः। एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः॥

'ज्येष्ठराज' शब्द भी, जिसका पीछे गणपतिके लिये प्रयोग मिलता है, इसी मन्त्रमें प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ है—सबसे ज्येष्ठ—सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले, देवताओंके राजा—शासनकर्ता। इन्द्र तो केवल देवोंके अधिपतिमात्र हैं, परंतु इन्द्रके भी प्रेरक होनेसे आपका नाम 'ज्येष्ठराज' है। इस मन्त्रमें गृत्समद ऋषि देवगणोंके अधिपति, क्रान्तदर्शी—अतीत-अनागतके भी द्रष्टा, कवियोंके कवि, अनुपमेय कीर्तिसम्पन्न, 'ज्येष्ठराज' ब्रह्मणस्पतिका आवाहन करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे आवाहनमन्त्रको सुनकर आप अपनी रक्षा-शक्तिके साथ हमारे गृहमें आकर निवास कीजिये। यह पूरा-का-पूरा सूक्त ब्रह्मणस्पति—गणपतिकी प्रशंसामें है। अन्य सूक्तोंमें भी आपकी स्तुति मिलती है, अतः गणेशजीके ब्रह्मणस्पतिके रूपमें वैदिक देवता होनेमें तनिक भी संदेह नहीं है। और भी एक बात है। गणेशके जिस विशिष्ट रूपका वर्णन पुराणोंमें उपलब्ध होता है, उसका भी आभास वैदिक ऋचाओंमें मिलता है। निम्नलिखित मन्त्रोंमें गणपतिको 'महाहस्ती', 'एकदन्त', 'वक्रतुण्ड' तथा 'दन्ती' कहा गया है—

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्रामं संगृमाय। महाहस्ती दक्षिणेन॥

(ऋग्वेद ८। ८१। १)

एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(कृ० य०, मैत्रायणीसंहिता २। ९। १। ६)

गणपतिके वैदिकस्वरूपके जिज्ञासुजन नीलकण्ठ-विरचित 'गणपतितत्त्वरत्नम्' के अध्ययन करनेका कष्ट उठायें। इस प्रकार गणपतिके वैदिक रूपका थोड़ा-सा आभास देकर हम अपने मुख्य विषयकी ओर आते हैं।

'गणपति' शब्दका अर्थ है—गणोंका पति। इसी अर्थमें इन्हें 'गणेश' भी कहते हैं। यहाँ 'गण' शब्दका अर्थ जानना आवश्यक है। '**गण समूहे**'—समूहवाचक '**गण्**' धातुसे '**गण**' शब्द बना है। अतः इसका सामान्यार्थ समूह—समुदाय होता है; परंतु यहाँपर इसका अर्थ देवताओंका गण, महत्तत्त्व-अहंकारादि तत्त्वोंका समुदाय तथा सगुण-निर्गुण ब्रह्म है; अतः 'गणपति'-शब्दसे यह सूचित होता है कि आप समस्त देवतावृन्दके रक्षक हैं; महत्तत्त्व आदि जितने सृष्टितत्त्व हैं, उनके भी आप स्वामी हैं, अर्थात् इस जगत्की उत्पत्ति आपसे ही हुई है। सगुण-निर्गुणके पति होनेसे गणपति ही इस जगत्में सबसे श्रेष्ठ तथा माननीय देवाधिदेव हैं। 'गण'-की दूसरी व्याख्यासे आपका जगत्कर्तृत्व और भी अधिक रूपसे स्पष्ट प्रतीत होता है। मनोवाणीमय सकल दृश्यादृश्य विश्वका वाचक 'ग' अक्षर है तथा '**ण**' अक्षरके द्वारा जितना मनोवाणीसमन्वित तथा तद्विरहित जगत् है—सबका ज्ञान होता है। उसके पति या ईश होनेके कारण हमारे आराध्य गणेश सर्वतो महान् देव हैं। 'गण'-शब्दकी यह व्याख्या मौद्गलपुराणमें इस प्रकार निरूपित है—

मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम्।
गकारात्मकमेवं तत् तत्र ब्रह्म गकारकः॥
मनोवाणीविहीनं च संयोगायोगसंस्थितम्।
णकारात्मकरूपं तत् णकारस्तत्र संस्थितः॥

अब गणपतिके रूपपर तनिक दृष्टि डालिये। उनका मुख हाथीका-सा बतलाया जाता है। इसीसे आपको गजानन, गजास्य, सिन्धुरानन आदि नामोंसे अभिहित किया जाता है। चित्र-विचित्र रूपके लिये

पुराणोंमें समुचित कथानक भी वर्णित हैं, परंतु इस रूपके द्वारा जिस अव्यक्त भावनाको व्यक्त रूप दिया गया है, वह नितान्त मनोरम है। गणपतिके अन्तर्निहित गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वको जिस ढंगसे इस रूपके द्वारा सर्वजनसंवेद्य बनानेकी चेष्टा की गयी है, वह वास्तवमें अत्यन्त सुन्दर है। गणपतिके बाह्य रूपको समझना क्या है, उनके आभ्यन्तर गुहास्थित सत्य रूपकी पहचान करना है। उनका रहस्य जाननेके लिये यह बड़ी भारी मूल्यवान् कुंजी है।

गणेशजीके सारे अंग एक प्रकारके नहीं हैं। मुख तो है गजका, परंतु कण्ठके नीचेका भाग है मनुष्यका। इनके देहमें नर तथा गजका अनुपम सम्मिलन है। 'गज' किसे कहते हैं? 'गज' कहते हैं, साक्षात् ब्रह्मको। समाधिके द्वारा योगिराज जिसके पास जाते हैं—जिसे प्राप्त करते हैं वह हुआ **'ग'** (**समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्तीति गः**) तथा जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है, वह हुआ **'ज'** (**यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बतया प्रणवात्मकं जगज्जायते इति जः**)। विश्वकारण होनेसे वह ब्रह्म (गज)कहलाता है। गणेशका ऊपरी भाग गजका-सा है अर्थात् निरुपाधि ब्रह्मरूप है। ऊपरका भाग श्रेष्ठ अंश होता है—मस्तक देहका राजा है, अतः गणपतिका यह अंश भी श्रेष्ठ है; क्योंकि यह निरुपाधि-उपाधिरहित मायानवच्छिन्न ब्रह्मका द्योतक है। नरसे अभिप्राय मनुष्य, जीव अथवा सोपाधि ब्रह्मका है। अधोभाग ऊर्ध्वभागकी अपेक्षा निकृष्ट होता है। अतः सोपाधि अर्थात् मायावच्छिन्न चैतन्य—जीवका रूप होनेसे अधोभाग निकृष्ट है। अथवा **'तत्त्वमसि'** महावाक्यकी दृष्टिसे हम कहेंगे कि गणेशजीका मस्तक **'तत्'**-पदार्थका संकेत करता है तथा अधोभाग **'त्वम्'**-पदार्थका **'तत्'** पद मायानवच्छिन्न शुद्ध चैतन्य निरुपाधि ब्रह्मका वाचक है, अतः गजाननके उत्तमांगद्वारा उसका द्योतन नितान्त उचित है।

'त्वम्'-पद उपाधि-विशिष्ट ब्रह्म अर्थात् जीवका द्योतक है, अतः गजाननके नराकार अधोभागद्वारा उसको अभिव्यक्त कराना समुचित ही है। इन दोनों पदार्थोंका **'असि'**-पद-प्रतिपाद्य समन्वय गणपतिमें प्रत्यक्षरूपसे दिखायी पड़ता है। जिस **'तत्त्वमसि'** महावाक्यके अर्थका परिशीलन सतत समाधिनिष्ठ ज्ञानीजन अनेक उपायोंसे किया करते हैं, उसीकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हमारे-जैसे साधारण, उदरम्भरि पामरजनके लिये है श्रीगजाननजी महाराजकी मंगलमूर्ति। श्रीगणेशाथर्वशीर्षकी आदिम श्रुति—**'त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि'** के 'प्रत्यक्ष'-पदका सकल विद्वज्जन-मनोरम अभिप्राय यही है, जो ऊपर अभिव्यक्त किया गया है। इस सिद्धान्तकी पुष्टि गणेशपुराणके सुप्रसिद्ध 'गणपतिसहस्रनाम' के द्वारा होती है। वहाँ गणेशजीके सहस्रनामोंमें एक नाम है—**'तत्त्वं पदनिरूपितः।'** यथा—

तत्त्वानां परमं तत्त्वं तत्त्वं पदनिरूपितः।
तारकान्तरसंस्थानस्तारकस्तारकान्तकः ॥

(उपासना० ४६। ९६)

इस अभिधानके द्वारा गणपति-स्वरूपका जो जीव-ब्रह्मैक्यप्रतिपादनपरक श्रुतिसम्मत तात्पर्य निरूपण किया गया है, उसकी सुचारुरूपसे प्रतिपत्ति होती है।

गणपतिकी मनोज्ञ मूर्तिकी आध्यात्मिकतापर जितना विचार किया जाता है, उतनी ही उनके साक्षात् परब्रह्म होनेकी वास्तविकता प्रकट होने लगती है। गणेशजी 'एकदन्त' कहे जाते हैं। उनका दाहिना ही दाँत विद्यमान है। पुराणोंमें उनके बायें दाँतके भंग होनेकी कथा मिलती है। अतः उन्हें **'भग्नवामरदः'** कहा गया है। इस नामके यथार्थ ज्ञानसे उनके सत्य रूपका हमें पता चलता है। 'एक'-शब्द यहाँ मायाका बोधक है तथा 'दन्त'-शब्द सत्ताधारक मायाचालक ब्रह्मका द्योतक है; अतः इस नामसे प्रकट है कि गणपति सृष्टिके लिये मायाकी प्रेरणा करनेवाले, जगदाधार—समस्त सत्ताके आधारभूत परब्रह्मके ही अभिव्यक्त रूप हैं। मौद्गलपुराणसे इसकी पुष्टि होती है—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
भ्रान्तिदं मोहदं पूर्णं नानाखेलात्मकं किल॥
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते।
बिम्बेन मोहयुक्तश्च स्वयं स्वानन्दगो भवेत्॥
माया भ्रान्तिमती प्रोक्ता सत्ताचालक उच्यते।
तयोर्योगे गणेशोऽयमेकदन्तः प्रकीर्तितः॥

गणेशका एक दूसरा नाम 'वक्रतुण्ड' है इससे भी ऊपरके सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। यह मनोवाणीमय जगत् सर्वजनसाधारण है। सबके लिये वह समानभावसे अनुभवगम्य है, परंतु आत्मा इस जगत्से—सतत

गमनशील वस्तुसे—सर्वथा भिन्न है, पृथक् है—टेढ़ा है। अतएव यहाँ 'वक्र'-शब्दसे मनोवाणीहीन, अविनश्वर—अपरिवर्तनशील, चैतन्यात्मक आत्माका बोध होता है। वही आत्मा गणेशजीका मुख है—मस्तक है। '**तत्त्वमसि**' के साक्षात् स्वरूपधारी गजाननके कण्ठके नीचेका भाग जगत् है और ऊपरका अंश आत्मा है। अतः उन्हें '**वक्रतुण्ड**' कहना नितान्त उपयुक्त है—

कण्ठाधो मायया युक्तो मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं तत्र विप्रेश तेनायं वक्रतुण्डकः॥

भगवान् गणेशके चार भुजाएँ हैं। इन भुजाओंके द्वारा आप भिन्न-भिन्न लोकोंके जीवोंकी रक्षा अभयदान देकर किया करते हैं। एक भुजा स्वर्गके देवताओंकी रक्षा करती है तो दूसरी इस पृथ्वीतलके मानवोंकी, तीसरी असुरोंकी तथा चौथी नागोंकी। इन भुजाओंमें आपने भक्तोंके कल्याणके लिये चार चीजें धारण कर रखी हैं—पाश, अंकुश, रद और वर। पाश मोहनाशक है। उसे आपने अपने भक्तोंका मोह हटानेके लिये ले रखा है। अंकुशका काम नियन्त्रण करना है, अतः वह उस व्यापारके लिये उपयुक्त है। दन्त दुष्टनाशक है, अतः वह सब शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। वर भक्तोंके अभीष्टपूरक ब्रह्मका रूप है, अतः गणेशजीने सकल मानवोंके कल्याणसाधन तथा विघ्नविनाशनके लिये अपने चारों हाथोंमें इन विभिन्न वस्तुओंको धारण कर रखा है। आदिमें जगत्के स्रष्टा तथा अन्तकालमें सब विश्वको अपने उदरमें वास कराने—प्रतिष्ठित करानेवाले जगन्नियन्ता गणेशका 'लम्बोदर' होना उपयुक्त ही है।

गणेशजी 'शूर्पकर्ण' हैं—उनके कान सूपकी तरह हैं। इस नामसे भी हमें आपके उच्च परमात्मस्वरूपका परिचय होता है। जबतक धान भूसेके साथ मिला रहता है, तबतक वह बेकाम होता है, मैला बना रहता है; सूपसे उसे फटकनेपर उसके असली रूपका पता चलता है। धान भूसेसे अलग होकर चमकने लगता है—शुद्ध रूपको पा लेता है। इसी प्रकार ब्रह्म जीवरूपमें मायाके साथ मिलकर मलावरणसे इतना आच्छन्न हो गया है कि उसका असली प्रकाशमय रूप बिलकुल आवृत हो जाता है। ऐसी अवस्थामें सद्गुरुके मुखसे निकला हुआ 'गणेश'-नाम कर्णकुहरके द्वारा मनुष्योंके हृद्गत होकर सूपकी तरह पाप-पुण्यको अलग कर देता है तथा भगवान् शूर्पकर्णकी उपासना मायाको बिलकुल हटाकर चैतन्यात्मक ब्रह्मकी प्राप्ति कराती है। अतः आपके 'शूर्पकर्ण' नामकी सार्थकता स्पष्टरूपसे प्रतिपादित होती है—

शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः॥

गणेशजी मूषकवाहन—मूषकध्वज हैं। मूषक किस तत्त्वको द्योतित करता है, इस विषयमें मतभेद है। मूषकका काम वस्तुको कुतर डालना है। जो वस्तु इसके सामने रखी जाती है, उसके अंग-प्रत्यंगका वह विश्लेषण कर देता है। इस कार्यसे वह मीमांसा करनेके उपयुक्त वस्तुस्वरूप—विश्लेषणकारिणी बुद्धि (निश्चयात्मिका बुद्धि)-का प्रतिनिधि प्रतीत होता है। गणेशजी बुद्धिके देवता हैं। अतः जिस तार्किक बुद्धिके द्वारा वस्तुतत्त्वका परिचय प्राप्त किया जाता है तथा उसके सार एवं असार अंशका पृथक्करण किया जाता है, उसका—गजाननका वाहन बनना अत्यन्त औचित्यपूर्ण है। दूसरी दिशासे विचार करनेपर 'मूषक' ईश्वर-तत्त्वका द्योतक भासमान होता है। ईश्वर अन्तर्यामी हैं, सब प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं, सब प्राणियोंके द्वारा प्रस्तुत किये गये भोगोंका वे भोग करते हैं। किंतु अहंकारके कारण मोहयुक्त प्राणी इसे नहीं जानता; वह तो अपनेको ही भोक्ता समझता है। परंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। प्राणियोंका प्रेरक—अन्तर्यामी, हृत्पद्ममें निवास करनेवाला ईश्वर ही वास्तवमें सब भोगोंका भोक्ता है। इस अवस्थामें मूषककी कार्यपद्धति उसपर खूब घटती है। मूषक भी घरके भीतर पैठकर चीजें चुराया करता है, परंतु घरके मालिकको इसकी तनिक भी खबर नहीं होती। इसलिये मूषकके रूपमें ईश्वरकी ओर संकेत है। पुराणोंमें गणेशकी सेवा करनेके लिये ईश्वरके मूषकरूप बन जानेकी कथा भी मिलती है। उस परब्रह्मके लिये ईश्वरके सेवार्थ वाहनरूप स्वीकार करनेकी कथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी उपयुक्त है—

ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः।
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।
मायया गूढरूपः स भोगान् भुङ्क्ते हि चोरवत्॥

अतः गणपतिजी चिन्मय हैं, आनन्दमय हैं, ब्रह्ममय हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं। उन्हींसे इस जगत्की

उत्पत्ति होती है, उन्हींके कारण इसकी स्थिति है और अन्तमें उन्हींमें इस विश्वका लय हो जाता है। ऐसे परमात्माका सकल कार्यके आरम्भमें स्मरण तथा पूजन करना उपयुक्त ही है। एक बात और भी है। गणेशकी मूर्ति साक्षात् 'ॐ'-सी प्रतीत होती है। मूर्तिपर दृष्टिपात करनेसे ही इसकी प्रतीति नहीं होती, प्रत्युत शास्त्रोंमें भी गणेशजी ओंकारात्मक माने गये हैं। लिखा है कि शिव-पार्वती दोनों चित्रलिखित प्रणव (ॐ)-पर ध्यानसे अपनी दृष्टि लगाकर देख रहे थे। अकस्मात् ओंकारकी भित्तिको तोड़कर साक्षात् गजानन प्रकट हो गये। इसे देख शिव-पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस पौराणिक कथाकी सूचना—

प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं
वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं
सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम्॥

(ऋक्० १०। ११२। ८)

—मन्त्रमें बतलायी जाती है (इस मन्त्रके अर्थके लिये देखिये 'गणपतितत्त्वरत्नम्' का १३वाँ पृष्ठ)। अतः ओंकाररूप होनेके हेतु गणेशजीकी सब देवताओंसे प्रथम पूजा तथा सत्कार पाना ठीक ही है; क्योंकि प्रणव सब श्रुतियोंके आदिमें आविर्भूत माना जाता है—**'प्रणवश्छन्दसामिव।'**

गणेश शिवके ज्येष्ठ पुत्र बतलाये गये हैं। इनके शिवपुत्र होनेके विषयमें एक पौराणिक कथा भी है। कहते हैं कि गणेशने सब देवताओंकी सृष्टि की। शिव, ब्रह्मा आदि भी उन्हींसे उत्पन्न हुए। इन्होंने तपस्या करना शुरू किया। योगिराज शंकरने अपनी समाधि लगायी। उसमें ब्रह्मानुभूति होनेपर आपने अपने हृदयमें गणेशजीका साक्षात् दर्शन किया। दर्शनके अनन्तर उन्होंने गणेशजीकी स्तुति एवं प्रार्थना की कि 'आप हमारे पुत्र होइये, जिससे आपका पिता होनेके कारण मैं इस मायामोहमय संसारसे पार हो जाऊँ'—

ध्याने मनसि मे जातः पुत्रत्वं पालय प्रभो।
मम पुत्र इति ख्यातो लोकेऽस्मिन् भगवान् भव॥

शंकरजीकी प्रार्थना सुनकर गणेशने उनका पुत्र होना स्वीकार किया। उसी दिनसे आप इस नामसे प्रसिद्ध हुए। (इस कथाका गणेशाथर्वशीर्षके भाष्य, पृ० २५में विनायक-संहिताके प्रमाणके साथ उल्लेख किया गया है।) अतः भक्तानुकम्पाके वशीभूत होकर उस परमात्माने शिवके घर अवतार धारण किया। ऐसी दशामें शिव-पार्वतीके विवाहोत्सवके आरम्भमें मंगलकामनाके लिये सच्चिदानन्दस्वरूप गजाननका पूजन किसी प्रकार भी कल्पित या विरुद्ध नहीं माना जा सकता। अतः इस मायाजालके कटनेके लिये, इस विस्तीर्ण भवसागरके पार जानेके लिये, इस हत्पटपर घनीभूत होकर जमे हुए तमः-पटलके फटनेके लिये उसी मायापति परब्रह्म श्रीमंगलमूर्ति विघ्नराज एकदन्त गजाननकी शरणमें जाते हुए हम भी **'स्वान्तःप्रबोधाय'** लिखे गये इस अल्पकाय लेखको समाप्त करते हैं।

~~~०~~~

श्रीगणपतिभगवान्‌का स्वरूप और उनकी आराधना

(लेखक —राष्ट्रपति-पुरस्कृत डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, वेदान्ताचार्य,पुराणाचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

एक ईश्वरका अनेकशः निरूपण

विश्वके उद्गम एवं विकासके परम कारण, परब्रह्म परमात्माका निर्देश वैदिक कालसे ही विभिन्न रूपोंमें होता रहा है। दीर्घतमा औतथ्यने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था—

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' (ऋग्वेद १। १६४। ४६)

अर्थात् सत्तत्त्व तो वस्तुतः एक ही है, किंतु विद्वान्‌लोग उसका निरूपण अनेक नामोंसे करते हैं। गणपति अथवा गणेश उन्हीं परमात्माका एक अन्यतम नाम है।

गुणी, गुणेश और गणेश

परमात्मा ज्ञान और आनन्द आदि अपने दिव्य, स्वगत गुणोंके कारण 'गुणी' हैं और प्रकृतिके सत्त्व, रज और तमके अधीश्वर होनेके कारण वे गुण+ईश=गुणेश भी हैं। 'गुणी' और 'गुणेश ' विशेषणोंका युगपत् प्रयोग श्वेताश्वतरोपनिषद्के इस मन्त्रमें मननीय है—
~~~

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥
(६। १६)

गाणपत्य-सम्प्रदायके अनुसार 'गण' का अर्थ है— सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका संघात। उसका पति अथवा शासक होनेके कारण परमात्मा 'गणपति' या गणेश कहलाते हैं।

व्याख्या-भेद

'गुणी' और 'गुणेश' की उपर्युक्त व्याख्यासे भिन्न एक और व्याख्या इस प्रकार है—परमात्मा स्वगत गुणोंके कारण नहीं, अपितु प्राकृत गुणत्रयके साहचर्यके कारण 'गुणी' और उसपर आधिपत्यके कारण ही 'गुणेश' कहलाते हैं।

मत-द्वैविध्यकी प्राचीनता

परमात्माके निर्गुण और सगुण भावके इस प्रकारके व्याख्यानमें यह मत-द्वैविध्य बहुत प्राचीन है। एक मतके अनुसार परमात्मा परमार्थतः पूर्णरूपेण निर्गुण हैं और व्यवहारतः प्राकृत गुणोंके सम्पर्कसे वे सगुण हो जाते हैं।

दूसरे मतके अनुसार परमात्मा प्राकृतगुणरहित होनेके कारण निर्गुण हैं और ज्ञानानन्दादि स्वकीय गुणोंके सहित होनेके कारण सगुण हैं।

प्रथम मतवाले सगुण परमात्माके श्रीविग्रहको शुद्ध-सत्त्व (मायाका विलास) मानते हैं; किंतु द्वितीय मतवाले उसे सच्चिदानन्दघन मानते हैं।

अतः गणपतिभगवान्‌का श्रीविग्रह भक्त-रुचि-वैविध्यके अनुसार माया-विलास भी है और चिद्घन भी।

श्रीविष्णु (कृष्ण)-का गणेश-रूप

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार सत्त्वाधिपति विष्णु (कृष्ण) ही पार्वती-माताके 'पुण्यक'-नामक पुत्रप्रद व्रतके अनुष्ठानके फलस्वरूप उनके यहाँ एक अत्यन्त मनोरम बालकके रूपमें प्रकट हुए थे, जिनका नाम 'गणेश' रखा गया।

श्रीगणपति-जयन्ती

एक मान्यताके अनुसार गणेशजीका सर्वप्रथम आविर्भाव माता पार्वतीके यहाँ माघ-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको हुआ था—

सर्वदेवमयः साक्षात् सर्वमङ्गलदायकः।
माघकृष्णचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिपः॥
(शिवधर्म)

गणेशजी अपने आराधकोंके समस्त संकटोंको, कष्टोंको नष्ट कर देते हैं, अतः उनके प्रादुर्भावकी तिथि 'संकष्ट (हर) चतुर्थी' कहलाती है।

चतुर्थी तिथिको गणेशजीके प्रकट होनेके कारण उनके भक्त प्रतिमास इस तिथिके आनेपर उनका विशेष आराधन करते हैं और प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थीको 'गणेश चतुर्थी' और शुक्लपक्षकी चतुर्थीको 'वैनायकी चतुर्थी' कहते हैं।

स्कन्दपुराणोक्त श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवादके अनुसार भाद्रपद-मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीकी विशेष महिमा है। उस दिनकी आराधनासे गणपतिभगवान् अपने आराधकोंके समस्त कार्य-कलापोंमें सिद्धि प्रदान करते हैं, अतः उनका नाम 'सिद्धिविनायक' प्रसिद्ध हो गया है—

सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि।
तेन ख्यातिं गतो लोके नाम्ना सिद्धिविनायकः॥

उनकी कृपासे विद्यार्थीको विद्याकी, धनार्थीको धनकी, विजयार्थीको विजयकी और पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है।

जलतत्त्वप्रधान व्यक्ति और गणपति

संसारके सभी जीव पांचभौतिक शरीरोंसे सम्बद्ध हैं। किसीमें पृथ्वीतत्त्व प्रधान होता है, किसीमें जलतत्त्व, किसीमें तेजस्तत्त्व, किसीमें वायुतत्त्व और किसीमें आकाशतत्त्व। इन पाँचों प्रकारके जीवोंकी साधनामें समीचीनताके सम्पादनार्थ गुरुजन परमात्माकी पंचधा उपासना बताते हैं। पृथ्वीतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवान् शंकरकी, जलतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवान् गणपतिकी, तेजस्तत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवती दुर्गाकी, वायुतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवान् सूर्यकी और आकाशतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवान् विष्णुकी उपासना रुचिकर होती है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥
(कापिलतन्त्र)

गणेशजीके साथ रूपान्तरोपासना

सभी कार्योंमें सिद्धि-प्राप्तिके लिये श्रीगणपतिके साथ श्रीसूर्य, श्रीदुर्गा, श्रीशिव और श्रीविष्णुकी पूजाका विधान है—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

केवल एक देवताकी मूर्तिकी पूजाका निषेध है। अतएव जो व्यक्ति अपनी कामनाओंकी सफलता चाहता हो, उसे अनेक देवताओंकी पूजा करनी चाहिये—

एका मूर्त्तिर्न पूज्यैव गृहिणा स्वेष्टमिच्छता।
अनेकमूर्त्तिसम्पन्नः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥

पूजा-क्रममें गणपति द्वितीय

यदि पंचायतन देवताओंमें प्रत्येकके प्रति समान रूपसे भक्ति हो तो साधकको सर्वप्रथम श्रीसूर्यकी, तत्पश्चात् क्रमसे श्रीगणपति, श्रीदुर्गा, श्रीशंकर और श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये—

रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तथैव च।
अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमे तु महद् भयम्॥

गणपतिके प्रतिमात्रयका निषेध

घरमें कभी-कभी एक देवताकी अनेक मूर्तियोंका संग्रह हो जाता है; अतएव आराधकको उनकी संख्याका औचित्य ध्यानमें रखना आवश्यक है। घरमें दो शिव-लिंगों, दो शंखों, दो सूर्य-प्रतिमाओं, दो शालग्रामों, दो गोमती-चक्रों, तीन गणपति-प्रतिमाओं एवं तीन देवी-प्रतिमाओंकी स्थापना नहीं करनी चाहिये—

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं गणेशत्रितयं तथा।
शङ्खद्वयं तथा सूर्यौ नार्च्यौ शक्तित्रयं तथा॥
द्वे चक्रे द्वारकायाश्च शालग्रामशिलाद्वयम्।
तेषां तु पूजनेनैव ह्युद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही॥

प्रतिष्ठा-समय-विचार

गणपतिभगवान्की प्रतिष्ठाके लिये चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, माघ अथवा फाल्गुन मासका शुक्लपक्ष शुभ है—

चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा सिते॥

(प्रतिष्ठा-मयूख)

भौमवारके अतिरिक्त अन्य वार ग्राह्य हैं तथा तिथियोंमें चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी वर्जित हैं—

'रिक्तान्यतिथिषु स्यात्सा वारे भौमान्यके तथा।'

प्रतिष्ठाके लिये प्रशस्त नक्षत्र हैं—अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती।

प्रतिमाका परिमाण

यद्यपि मन्दिरोंमें गणपति-मूर्तियाँ सभी आकारोंकी—छोटी और बड़ी—स्थापित की जाती हैं, वे पुरुषाकार भी होती हैं और कहीं-कहीं और भी अधिक परिमाणकी देखी गयी हैं; तथापि मत्स्यपुराणके अनुसार घरोंमें यजमानके अंगुष्ठपर्वसे लेकर वितस्तिपर्यन्त अर्थात् बारह अंगुल परिमाणतकके आकारवाली मूर्तिकी स्थापना प्रशस्त है—

अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिं यावदेव तु।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः॥

पश्चिमाभिमुखी प्रतिमा

गणपति आदि देवताओंका मन्दिर घरके ईशानकोणमें होना चाहिये और उनकी स्थापना इस प्रकार करनी चाहिये कि उनके मुख पश्चिमकी ओर रहें—

(अ) **ऐशान्यां देवमन्दिरम्॥**

(आ) **देवानां हि मुखं कार्यं पश्चिमायां सदा बुधैः॥**

(नारदपुराण)

यदि साधकके इष्ट-देवता श्रीगणपतिभगवान् हैं तो उनकी स्थापना मध्यमें करके ईशानकोणमें श्रीविष्णुकी, अग्निकोणमें श्रीशंकरकी, निर्ऋतिकोणमें श्रीसूर्यकी और वायुकोणमें श्रीदुर्गाकी स्थापना करनी चाहिये—

हेरम्बं तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्।
आग्नेय्यां पञ्चवक्त्रं तु नैर्ऋत्यां द्युमणिं यजेत्।
वायव्यामम्बिकां चैव यजेन्नित्यमतन्द्रितः॥

(ज्ञानमाला)

उपासनाके कतिपय ज्ञातव्य तत्त्व

गणपतिभगवान्की आराधना, अन्य देवताओंकी आराधनाके समान, यथाशक्ति पंचोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार अथवा राजोपचारसे करनी चाहिये। यहाँ उपासनोपयोगी कतिपय ज्ञातव्य बातें लिखी जा रही हैं।

'गणेशाथर्वशीर्ष' नामक गणपत्युपनिषद्में गणपतिभगवान्का ध्यान इस प्रकार बताया है—

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें प्रकटित, जगत्‌के परम कारण, स्वरूपमें सदा प्रतिष्ठित, पुम्प्रकृतिमय विश्वसे अतीत, भक्तवत्सल गणेशजीके चार भुजाएँ हैं; (वे गजवदन हैं, अतएव) उनके दोनों कान शूर्पाकार हैं; उनके केवल एक दाँत है; वे लम्बोदर हैं; उनका वर्ण लाल है; उन्हें लाल रंगके वस्त्र, चन्दन और पुष्प रुचिकर हैं; वे अपने दो हाथोंमें पाश और अंकुश लिये हुए हैं, तीसरेमें वरद-मुद्रा है और चौथेमें अभय-मुद्रा (के साथ मोदक) है; उनकी ध्वजापर उनके प्रिय वाहन मूषकराजका चिह्न अंकित है। इस प्रकार गणेशजीका नित्य ध्यान करनेवाला व्यक्ति ही सर्वोत्तम योगी है।

आवाहन-मन्त्र

गणेशजीके आवाहनके लिये निम्नाङ्कित वैदिक मन्त्र बहुत लोकप्रिय हैं—

(अ) गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋग्वेद २। २३। १)
(तैत्तिरीयसंहिता २। ३। १४। ३)

(आ) गणानां त्वा गणपतिः हवामहे
प्रियाणां त्वा प्रियपतिः हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपतिः हवामहे वसो मम
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥

(शुक्लयजुर्वेद २३। १९)

आसन-मन्त्र

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥

(ऋग्वेद १०। ११२। ९)

अर्थात् हे गणपते! आप यहाँ आनन्दपूर्वक विराजिये। सभी लोग आपको विद्या-विशारदोंमें सर्वोत्तम बताते हैं एवं आपकी आराधनाके बिना कोई भी कार्य प्रारम्भ नहीं किया जाता। (यजमानके प्रति आचार्यका वचन) हे धनी पुरुष! महान् और पूजनीय गणपतिभगवान्‌की चित्र-विचित्र अर्थात् विभिन्न द्रव्योंके द्वारा पूजा करो।

अभिषेक

ताम्रपात्रमें रखे हुए पवित्र जलसे गणपतिभगवान्‌का महाभिषेक करते समय 'गणेशाथर्वशीर्ष' की इक्कीस आवृत्ति करनेका विधान है।

दूर्वा

पाटल (लाल)-वर्णवाली और सुरभित कुसुमावलीके साथ-साथ दूर्वांकुर भी गणेशजीको अर्पण किये जाते हैं, किंतु उनकी पूजामें तुलसीदलका प्रयोग नहीं किया जाता—

'न तुलस्या गणाधिपम्।' (ज्ञानमाला)

नीराजन-मन्त्र

विघ्नारण्यहुताशं विहितानयनाशम्।
विपदवनीधरकुलिशं विधृताङ्कुशपाशम्॥
विजयार्कज्वलिताशं विदलितभवपाशम्।
विनताः स्मो वयमनिशं विद्याविभवेशम्॥

अर्थात् हम सभी आराधक नित्य-निरन्तर उन गणेशजीके सम्मुख विनयावनत हैं, जो समस्त विघ्नरूपी वनोंका दहन करनेके लिये प्रबल अनल हैं, जो अनीति और अन्यायका तत्काल विनाश कर देते हैं, जो विपत्तिके पर्वतोंको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये वज्रोपम हैं, जिनके एक कर-कमलमें अंकुश और दूसरेमें पाश विराजमान है, जिन्होंने विघ्न-विजयरूपी सूर्यके प्रकाशसे दसों दिशाएँ प्रकाशित कर दी हैं, जो अपने उपासकोंके भवबन्धनको शिथिल कर देते हैं और जो समस्त विद्याओंके वैभवके अधीश्वर हैं।

प्रणाम-मन्त्र

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥

अर्थात् हे गणपते! आप विघ्नोंके शासक हैं,

अतएव आराधकोंको उनके द्वारा उत्पीडित नहीं होने देते। आप अपने उपासकोंको उनके अभीष्ट वर देकर कृतार्थ कर देते हैं। सारे देवता आपको प्रिय हैं और आप सब देवताओंको प्रिय हैं। आप लम्बोदर हैं, चतुष्षष्टि कलाओंके निधान हैं और जगत्का मंगल करनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं। आप गजवदन हैं और श्रुत्युक्त यज्ञोंको अपने आभूषणोंके समान स्वीकार कर लेते हैं। आप पार्वतीनन्दन हैं। हम आपके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम करते हैं।

गणेश-गायत्री

(१) **एक दन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।** (गणपत्युपनिषद्)

(२) **तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।** (नारायणोपनिषद्)

अर्थात् हम एकदन्त परमपुरुष गणपतिभगवान्‌को जानते हैं, मानते हैं और उन वक्रतुण्डभगवान्‌का हम ध्यान करते हैं। वे हमारे विचारोंको सत्कार्यके लिये प्रेरित करें।

परिक्रमा

'बह्वृच-परिशिष्ट' के अनुसार गणेशजीकी एक परिक्रमा करनी चाहिये—

'एकां विनायके कुर्यात्'

किंतु ग्रन्थान्तरके—

'तिस्रः कार्या विनायके॥'

—इस वचनके अनुसार तीन परिक्रमाओंका विकल्प भी आदरणीय है।

गणेशजीके पार्श्वक

गणपतिभगवान्‌को निवेदित किया हुआ नैवेद्य सर्वप्रथम उनके पार्श्वकों (सेवकों)-को देना चाहिये। पार्श्वकोंके नाम हैं—गणेश, गालव, गार्ग्य, मंगल और सुधाकर—ये पाँच; एवं मतान्तरसे गणप, गालव, मुद्गल और सुधाकर—ये चार गणेशजीके सेवक हैं।

गणेशजीके बारह नाम

१. सुमुख—सुन्दर मुखवाले।

२. एकदन्त—एक दाँतवाले।

३. कपिल—जिनके श्रीविग्रहसे नीले और पीले वर्णकी आभाका प्रसार होता रहता है।

४. गजकर्णक—हाथीके कानवाले।

५. लम्बोदर—लंबे उदरवाले।

६. विकट—सर्वश्रेष्ठ (**विकटं श्रेष्ठेऽपि निर्दिष्टम्, हलायुध कोश**)।

७. विघ्ननाश—विघ्नोंका नाश करनेवाले।

८. विनायक—विशिष्ट नायक। उन्नत मार्गपर ले जानेवाले।

९. धूम्रकेतु—धुएँके-से वर्णकी ध्वजावाले।

१०. गणाध्यक्ष—गणोंके स्वामी।

११. भालचन्द्र—मस्तकपर चन्द्रकला धारण करनेवाले।

१२. गजानन—हाथीके मुखवाले।

इन बारह नामोंका पाठ अथवा श्रवण करनेसे विद्यारम्भ, विवाह, गृह-नगरमें प्रवेश, गृह-नगरसे निर्गम, संग्राम तथा किसी भी संकटके समय कोई विघ्न नहीं होता—

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

भागवतमें गणपति-पूजन-विधान

सभी वैष्णवोंके परममान्य प्रमाणग्रन्थ श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके सत्ताईसवें अध्यायमें श्रीभगवान् नन्दनन्दनने उद्धवजीको क्रियायोगका उपदेश दिया है। वहाँ स्पष्ट आदेश है कि 'मेरे पूजनके समय दुर्गादेवी, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन, गुरुदेव एवं अन्यान्य देवताओंकी भी पूजा साधक भक्तको करनी चाहिये'—

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान्।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षणादिभिः॥

(११। २७। २९)

सच्चिदानन्दरूप श्रीगणेशकी निर्गुण-सगुणोपासना

(लेखक —पं० श्रीदामोदर प्रह्लाद पाठक, शास्त्री, पूर्वोत्तरमीमांसक, व्युत्पत्तिचूड़ामणि, शिक्षाशास्त्री, काव्यतीर्थ, राष्ट्रभाषाकोविद)

समूचे संसारमें भारतीय संस्कृतिकी महत्ता अन्यान्य संस्कृतियोंकी अपेक्षा सविशेष एवं अद्वितीय मानी जाती है। संस्कृति-पदोद्भव अर्थोंकी और अंगोपांगोंकी परिपूर्ति करनेके कारण हमारी भारतीय संस्कृति सार्थ और यथार्थ है। भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृति है। भारतीय संस्कृतिके मूल आधार वेद हैं। वेद ज्ञानरूप हैं, ज्ञानमय हैं, अज्ञानको दूर करनेवाले हैं। वे स्वयं ज्ञानमय होनेके कारण उनमें अज्ञानका अस्तित्व ही कहाँ? वेद तो ज्ञानस्वरूप हैं ही, इसमें संदेह नहीं, किंतु ज्ञानका तात्त्विक विवेचन वेदोंके शीर्षस्वरूप उपनिषदोंमें भी आया है। वही तत्त्वज्ञान इस विश्वका मूल कारण बताता है। सभी उपनिषदोंमें आये हुए वाक्योंमें—**'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। एकमेवाद्वितीयम्।'** (छान्दोग्य० ६। २। १) **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।'** (छान्दोग्य० ३। १४। १) ये वचन विशेष हैं।

'सत्' ही सबसे पहले था। वह एकमेवाद्वितीय परब्रह्म है, सच्चिदानन्दस्वरूप है। वही सत् है, असत् नहीं। जो सत् है, वही चित् है, जो चित् है, वही आनन्दरूप है और जो आनन्दरूप है, वही सत् है। सत्का अर्थ है—सार्वकालिक, चित्का अर्थ है—चैतन्यरूप और आनन्दका अर्थ है—सदा सुखमय। सद्रूप, चिद्रूप और आनन्दरूप सत् इस विश्वका मूल कारण है। उसीमें स्फुरित हुआ **'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय।**—मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ।' ऐसा स्फुरित होते ही वह एक सत् ही गणेश परब्रह्मरूपमें अभिव्यक्त हो गया—

'गणेशो वै सदजायत तद् वै परं ब्रह्म।'

(गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ४। १)

'सोऽपश्यदात्मनाऽऽत्मानं गजरूपधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजं यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यतो वाऽऽयन्ति यत्रैव यन्ति च। तदेतदक्षरं परं ब्रह्म। एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुरापो ज्योतिः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। पुरुष एवेदं विश्वं तपो ब्रह्म परामृतमिति।'

(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद् १। २)

'उसी सत्ने अपनेको श्वेतवर्ण, गजमुख, चतुर्भुजरूपमें देखा; जिससे पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है, जिससे सबकी स्थिति होती है और जिसमें सभी लयको प्राप्त होते हैं, यही अक्षर परब्रह्म है। इसीसे प्राण, मन एवं इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है, इसीसे आकाश, वायु,जल,तेज और विश्वधारिणी पृथ्वी—सभी उत्पन्न होते हैं। यही पुरुष है, यही परब्रह्म है, यही गणेश सच्चिदानन्दरूप है।'

'ॐ तद् गणेशः। ॐ सद् गणेशः। ॐ परं गणेशः। ॐ ब्रह्म गणेशः।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् २। १)

'वही तत्-गणेश है, वही सत्-गणेश है, वही पर-गणेश है, वही ब्रह्म-गणेश है।'

'तच्चित्स्वरूपं निर्विकारं अद्वैतं च।'

(गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ४)

'वही चिद्रूप, निर्विकार और अद्वितीय है। वही सद्रूप गणेश आनन्दरूप है।'

'आनन्दो भवति स नित्यो भवति स शुद्धो भवति स मुक्तो भवति स स्वप्रकाशो भवति स ईश्वरो भवति स मुख्यो भवति स वैश्वानरो भवति स तैजसो भवति स प्राज्ञो भवति स साक्षी भवति स एव भवति स सर्वो भवति स सर्वो भवतीति।'

(गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ५)

'वही सद्रूप गणेश आनन्दरूप है, नित्य है, शुद्ध है, मुक्त है, स्वयंप्रकाश, ईश्वर और प्रमुख है। वही वैश्वानर और तैजस तथा प्राज्ञ है। वही सर्वसाक्षी है, वह वही है, वह सब है, वह सब कुछ है।

'त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि।'— (गणपत्यथर्वशीर्ष ४)

'श्रीगणेश सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म हैं।' **'न रूपं न नाम न गुणम्।' 'स ब्रह्म गणेशः'।**

'स निर्गुणः स निरहंकारः स निर्विकल्पः स निरीहः स निराकार आनन्दरूपस्तेजोरूपमनिर्वाच्यमप्रमेयः पुरातनो गणेशः निगद्यते।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् २)

'उसका न कोई रूप है, न नाम है और न गुण है। वही गणेश ब्रह्म है। वह निर्गुण, निरहंकार, निर्विकल्प , निरीह, निराकार, आनन्दरूप, तेजोरूप, अनिर्वचनीय और अप्रमेय कालातीत गणेश है।'

उसी प्रकार एकाक्षर ओंकाररूप ब्रह्म भी वही है—

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानम्। सर्वं भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। एतच्चान्यच्च त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव। सर्वं ह्येतद्‌गणेशोऽयमात्मा ब्रह्मेति।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् १)

'ॐ यह एकाक्षररूप ब्रह्म ही है। उसकी व्याख्या है। भूत, भविष्य, वर्तमान—सभी ओंकाररूप ही है। यह त्रिकालस्वरूप और त्रिकालातीत सब ओंकार ही है। वही ओंकाररूप ब्रह्म यह गणेश ही है। ओंकार ब्रह्मस्वरूप है ही, वह ओंकार स्वयं मांगलिक होकर उपासकोंका रक्षण करता है।'

'ओंकारश्चाथ शब्दश्च एतौ ………माङ्गलिकावुभौ।'

ओंकारकी प्रक्रिया इसी प्रकारकी है—

'अवत्यस्मादुपासकम्। अवति ब्रह्म चेति विगृह्य अव रक्षणादौ। अवतेष्टिलोपश्च इत मन् प्रत्ययः। तस्य प्रत्ययस्यैव लोपः, न प्रकृतेः। अन्यथा मडित्येव विदध्यात्। ज्वरत्वरेत्यादिना वकारस्योपधायाश्च ऊठौ। द्वयोरूठोः सवर्णदीर्घत्वे सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति गुणः। कृन्मेजन्तः इत्यव्ययमोम्॥'

अतः व्याकरणकी प्रक्रियासे यह सिद्ध हुआ कि यह ओंकार उपासकोंके लिये मंगलवाचक, रक्षार्थक और उपासनाके लिये उपक्रमकारक है।

निर्गुण निराकार परब्रह्म गणेशकी यह केवल एकाक्षर नाम-स्वरूप उपासना है। यहाँ गणेश पदसे पार्वती-शिवसम्भूत गणपतिकी उपासना नहीं है। पार्वती-शिव-नन्दन गजानन परमात्मा भगवान् गणेशके अवतार हैं। भगवान् गणेश परब्रह्म परमात्मा हैं। वे निर्गुण, निराकार तथा सारे विश्वमें व्याप्त हैं—

जगद्रूपो गकारश्च णकारो ब्रह्मवाचकः।
तयोर्योगे गणेशाय नाम तुभ्यं नमो नमः॥

(मुद्गलपुराण, भक्तमनोरथसिद्धिप्रद गणेशस्तोत्र ४)

''गणेश' शब्दमें आया हुआ 'गकार' जगद्रूप है और 'णकार' ब्रह्मवाचक है। ऐसे सर्वव्यापक परब्रह्म श्रीगणेशको प्रणाम है।'' निर्गुण उपासना करनेवालोंको मोक्षकी प्राप्तिकी आवश्यकता होती है। उसकी परिपूर्ति साक्षात् गणेश हैं। निर्गुणोपासनामें ज्ञान साधन है तथा मोक्ष साध्य है। इस साधनरूप ज्ञान और साध्यरूप मोक्ष—दोनोंके स्वामी श्रीगणेशजी हैं—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥

(ब्रह्मवैवर्त; विष्णूपदिष्ट गणेशनामाष्टकस्तोत्र ३)

स्वयं निर्गुण-निराकार होकर भी परमात्मा श्रीगणेशने अपनेको त्रिधा व्यक्त किया और इस सृष्टिको उत्पन्न करके उसकी व्यवस्था भी बनायी; किंतु उस व्यवस्थाके संचालनके लिये उन्होंने स्वयं प्रकट होकर एक मन्त्रराज दिया। उस मन्त्रराजके चार पाद और छः विभाग हैं। वे चार पाद चार वेदोंके हैं—

'रायस्पोषस्य दाता'—यह प्रथम पाद ऋग्वेदका है।

'निधिदातान्नदो मतः'—यह द्वितीय पाद यजुर्वेदका है।

'रक्षोहणो वो वलगहनो'—यह तृतीय पाद सामवेदका है।

'वक्रतुण्डाय हुम्'—यह चतुर्थ पाद अथर्ववेदका है।

यह मन्त्रराज चतुष्पाद होकर षट्पद भी है। इस मन्त्रराजके प्रत्येक पादका फल भी भिन्न-भिन्न है। प्रथमपद **'रायस्पोषस्य दाता'** इस मन्त्रसे उपासना करके अपना जीवन बितानेवाला यथेच्छ पृथ्वीका स्वामी होगा। दूसरे पद **'निधिदाता'** इस मन्त्रसे उपासना करनेवाला यक्ष-गन्धर्वाप्सरोगणसेवित अन्तरिक्षको जानकर दिक्पति, धनपति होगा। तीसरे पद **'अन्नदो'** इस मन्त्रसे उपासना करनेवाला वसु-रुद्रादित्यादि सर्वदेवोंसे सेवित स्वर्गलोकको जानकर देवाधिपति और स्वर्गपति होगा। चतुर्थ पद **'रक्षोहणः'** इस मन्त्रसे उपासना करनेवाला श्रुतियोंसे प्रतिपादित ब्रह्मलोकको जानकर उपासनाके फलस्वरूप देवाधिपत्य और ब्रह्माधिपत्यको प्राप्त होगा। पंचम पद **'वलगहन'** इस मन्त्रसे उपासना करनेवाला वासुदेवादि चतुर्व्यूहसेवित विष्णुलोकको जानकर सर्वदेवाधिपत्य और विष्णुलोकाधिपत्य प्राप्त करेगा और अन्तमें **'वक्रतुण्डाय हुम्'** इस पदसे उपासना करके उपासक ब्रह्मस्वरूप निरंजन परमव्योमपदको जानकर अमृतत्वस्वरूपताको प्राप्त होगा। उसे सत्यलोकाधिपत्यकी प्राप्ति होगी।

यह उपासना स्वयं परमात्मा गणेशद्वारा कथित है। अपनी-अपनी क्षमताके अनुसार उन मन्त्रोंके आश्रयसे यथाविधि उपासना करनेसे उपासकोंको लक्ष्यकी प्राप्ति

होती है। यह निर्गुणोपासना है। जिनसे निर्गुण उपासनाएँ नहीं हो पातीं, वे सगुणोपासना करते हैं। सगुणोपासक गणेशकी उपासना सगुण-विधिसे करते हैं। सगुणोपासकोंको भी उसी फलकी उपलब्धि होती है, जिसे निर्गुणोपासक प्राप्त करते हैं। केवल विधिमें अन्तर है।

परमात्मा श्रीगणेश इस सृष्टिकी रचना करके अनेकों रूपोंमें व्यक्त हो गये। आदिपुरुष, अक्षर, अनन्त, अव्यय और परम पुरुष यह भगवान् गणेशका शुद्ध स्वरूप है। उनके अन्तरमें क्षोभ होनेसे प्रकृति तथा महत्तत्त्व (बुद्धि)-की उत्पत्ति हुई। तदुपरान्त अहंकार आदि पंचतन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं। पंचतन्मात्राओंसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत प्रकट हुए। फिर पृथ्वीसे ओषधियाँ, ओषधियोंसे अन्न, अन्नसे शुक्र, शुक्रसे पुरुष और फिर पुरुषके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् परिव्याप्त हो गया। यह भगवान् गणेशका ही विराट्स्वरूप है।

इस सृष्टिको देखकर राजस ब्रह्मा, सात्त्विक विष्णु और तामस शंकर परस्पर कहने लगे—'मैं ही सबका ईश हूँ' और सत्यका अनुसंधान करनेके लिये वे ऊपर गये। वहाँ कुछ भी न देखकर स्वयं ध्यानमग्न हुए। तब उनके समाहित चित्तमें भगवान् गणेशके विराट्स्वरूपका दर्शन हुआ। उसे देखकर उन्हें ज्ञात हुआ कि इस सृष्टिके सर्वोपरि परमात्मा गणेश हैं और यह सृष्टि परमात्मा गणेशका व्यक्त स्वरूप है। वे तीनों भी परमात्मा गणेशसे शक्ति पाकर जगत्के सृजन, संरक्षण और संहरणका कार्य करते हैं। इसमें आश्चर्यकी और संदेह करनेकी आवश्यकता भी नहीं है। भगवान् गणेश परमात्मा हैं, परमतत्त्व हैं। केवल अवतार नहीं, अवतारी हैं। उसके अवतार शंकरपुत्र गजानन, गुणेश, मयूरेश आदि अनेक हैं। वे सब अवतारी परमात्मा गणेशके अवतार हैं।

कई सज्जनोंको ऐसा संदेह होता है कि भगवान् श्रीगणेश शंकरके पुत्र होकर भी भगवान् शंकरको कैसे आज्ञा प्रदान करते हैं या शक्ति-सामर्थ्य देते हैं या कैसे पार्वती-शंकरद्वारा पूजित होते हैं? वास्तविकताकी जानकारीके अभावमें ही इस प्रकारके संदेहका स्फुरण होता है। मूल सिद्धान्तको समझ लेना चाहिये कि इस सृष्टिका सृजन, संरक्षण और संहरण करनेवाला मूलाधार जो परमतत्त्व है, जो सच्चिदानन्दस्वरूप है, जो सृष्टिरचनाके पूर्व भी स्थित और सर्वव्यापी था, वही अखण्ड परमतत्त्व गणेश, शक्ति, विष्णु, शंकर और सूर्य—इन पंचदेवोंके रूपमें प्रकट हुआ है। वही परमतत्त्व गणेश निर्गुण, निराकार, सच्चिदानन्दरूप, अखण्ड, एकरस, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त होनेके कारण पुत्र-पिता-सम्बन्धसे अतीत हैं। वे तो केवल परमात्मस्वरूप हैं। परमात्मा गणेश जब प्रसन्न होकर श्रीपार्वती-शंकरके यहाँ जन्म लेकर पुत्रके रूपमें प्रकट हुए, तब वे ***'संकर-सुवन भवानी-नंदन'*** भी कहलाये। गजानन एकदन्त शंकरजीके पुत्र हैं। कृतयुगमें विनायक, त्रेतामें मयूरेश आदि परमात्मा गणेशके अवतार हैं।

परमात्मा गणेश सगुणरूपोंमें प्रकट हुए हैं और अनेक नाम-रूपोंमें दुष्ट-दैत्योंका संहार करनेके लिये, ज्ञान प्रदान करनेके लिये, लीलाओंका आदर्श प्रतिष्ठापित करनेके लिये, इस प्रकार अनेक महान् कार्योंका सम्पादन करनेके लिये सगुण-साकार रूपोंमें प्रकट हुए हैं। उनके मूल स्वरूपको जानकर उनके सगुण स्वरूपकी उपासना करनी चाहिये। विशेष निष्ठापूर्वक उपासना करनेवाले उपासक भी गण्यमान्य और पूजनीय बन गये हैं, जिनमेंसे मुद्गल, गृत्समद, वरेण्य आदि गाणपत्य श्रेष्ठ हैं।

भगवान् गणेशकी सगुणोपासना अनेक प्रकारकी होती है। उपास्य गणेश-मूर्तिके प्रकार अलग-अलग होते हैं एवं अर्चनाका विधि-विधान भी अलग-अलग होता है। अनेक प्रकार और अनेक विधानोंसे गणेशोपासना की जाती है। द्विभुजसे अठारह हाथोंवाली मूर्तियाँ भी होती हैं। एकमुखसे दसमुखवाली मूर्तियोंका भी पूजन होता है। सिंह-मयूर-वाहनोंका उपयोजन मूषकवाहनके साथ कई उपासक करते हैं। विशेष वस्तु प्रदान करनेसे भी गणेशके कई नाम प्रसिद्ध हुए हैं। उनमें हरिद्रागणेश, दूर्वागणेश, शमीगणेश, गोमयगणेश आदि नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। काम्यकर्ममें किये जानेवाले उपास्य देवताओंके नाम उसी उपासनाके अनुसार प्रसिद्ध हुए हैं। जैसे—संतानगणेश, विद्यागणेश आदि। गणेशजीके अनेक व्रत हैं। उनमेंसे वरदचतुर्थीव्रत, इक्कीसदिवसीय गणपतिव्रत, गणेश-पार्थिवपूजनव्रत, गणेशचतुर्थीव्रत, तिलाचतुर्थीव्रत, संकष्टहरचतुर्थीव्रत, वैनायकी चतुर्थीव्रत आदि व्रतोंके

नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त विशिष्ट स्थान तथा पंथके भी व्रताचार अलग-अलग होते हैं। विशेष करके महाराष्ट्रके मोरगाँव-क्षेत्रमें और चिंचवड़-क्षेत्रमें गाणपत्योंकी उपासनाएँ और व्रताचार विशिष्ट एवं विभिन्न रहे हैं। कुछ उपासक 'गणपत्यथर्वशीर्ष' का पठन करते हैं तो कोई 'ब्रह्मणस्पतिस्तोत्र'का, कोई 'योगगीता'का, तो कोई 'गणेशगीता'का पठन-चिन्तन-मनन करते हैं।

कर्ममार्गका अनुसरण करनेवाले 'गणेशयाग' करते हैं। गणेशभद्र, गणपतिभद्र आदिका निर्माण शास्त्रीय विधिसे करके और उनपर गणेशयन्त्रोंको स्थापितकर विधानपूर्वक हविष्यान्नका हवन करते हैं। जिसकी जो इच्छा होती है, तदनुसार मोदक, दूर्वा, लाजा, तिल आदि हविष्यान्नका उपयोजन उपासक करते हैं। कई उपासक वाक्‌सिद्धि, कामनापूर्ति, विद्याप्राप्ति, यशोलाभ, पाप-नाश आदिके लिये जपानुष्ठान करते हैं तथा एकाक्षरसे लेकर अनेक अक्षरोंवाले सिद्ध-मन्त्रोंका जप करते हैं। उनमें जप, हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन आदिका विधान होता है। कई उपासक तान्त्रिक-पद्धतिसे पूजा-उपासना करते हैं। सत्य-विनायक, सिद्धि-विनायक आदि अनेक प्रकारकी तान्त्रिक उपासनाओंका विधान है। कई जगहोंपर 'द्वार-यात्रा' चलती है। कई उपासक मन्त्र-कल्प करते हैं। 'गणेशगायत्री', 'गणेश-अष्टोत्तरशतनाम', 'गणेशसहस्रनाम'से अपनी मनः-कामना सफल करनेवाले भी कई उपासक हैं।

इस प्रकार अनेकानेक उपासनाओंका सारे भारतमें यथाशक्ति, यथाविधि, यथासमय विस्तार हुआ है। इन सगुण उपासनाओंका ज्ञान देनेवाले अनेक ग्रन्थ संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओंमें आज भी उपलब्ध हैं। केवल भारतमें ही नहीं, समूचे संसारमें गणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। कई जगहोंपर अपने-अपने ढंगकी उपासनाएँ भी प्रचलित हैं।

~~o~~

श्रीगणेश-तत्त्व

(लेखक —आचार्य डॉ० श्रीसुवालालजी उपाध्याय 'शुकरत्न' एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्याचार्य, शिक्षाशास्त्री, तीर्थद्वय-रत्नद्वय)

परम सत्ताको जान लेना ही इस जीवनका चरम शिखर है। **'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।'** (ऋ० १। १६४। ३९)—अर्थात् जो उस परमात्माको नहीं जानता, वह ऋचासे क्या करेगा। वैदिक ऋषियोंकी खोज और शिक्षाका सर्वोच्च सार है—एक परम तत्त्वका रहस्य, **'एकं सत्'** (ऋ० १। १६४। ४६) या **'तदेकम्'** (ऋ० १०। १२९। २), जो उपनिषद्‌का महावाक्य बन गया। सब देव, प्रकाश और सत्यकी शक्तियाँ एक (देव)-के ही नाम और शक्तियाँ हैं। प्रत्येक देव स्वयं सब देवता हैं और उन्हें अपनेमें रखे हुए हैं। वह परम सत्य एक है—**'तत् सत्यम्'** (ऋ० ३। ३९। ५; ४। ५४। ४ तथा ८। ४५। २७ इत्यादि)।

एक ही परमात्मा निखिल कल्याणगुणगणार्णव, अगणित शक्तियोंका केन्द्र और अनन्त लीलाओंका अथाह सागर है। 'अनाम' होते हुए भी उसके अनन्त नाम और 'अरूप' होते हुए भी उसके असंख्य रूप हैं। उपासककी भावना, कामना, लक्ष्य और सिद्धि आदिके भेदसे वह एक ही अनेक रूपोंमें पूजित होता है—

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुञ्चत्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥
(ऋ० ५। ६२। १)

निम्नांकित प्रसिद्ध मन्त्रमें इसी सिद्धान्तकी स्पष्ट सूचना मिलती है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋ० १। १६४। ४६)

'गणपत्यथर्वशीर्ष' में परमतत्त्व और ब्रह्मके रूपमें श्रीगणेशकी यह स्तुति उनकी पर देवतासे अभिन्नता सूचित करती है—

'ॐ नमस्ते गणपते त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।' (१)

तन्त्रराजके आरम्भमें विनायकके रूपमें गणेश-

स्तुति इस प्रकार की गयी है—

अनाद्यन्तोऽपराधीनः स्वाधीनभुवनत्रयः।
जयत्यविरतो व्याप्तविश्वः कालो विनायकः॥

इसमें विनायक (गणेश)-को आदि-अन्तरहित, स्वाधीन, नित्य कालस्वरूप माना है। वे व्याप्तविश्व हैं अर्थात् दिशाओंके बन्धनोंसे अनवच्छिन्न हैं। उनका त्रिभुवनके साथ तादात्म्य है। दूसरे शब्दोंमें यहाँ विनायकका परमात्मारूपमें वर्णन किया गया है।

यद्यपि वेदोंमें इन्द्र, अग्नि, वरुण, विष्णु, रुद्र आदिकी तरह श्रीगणेशका जो रूप पुराणोंमें है, उस रूपसे अलग सूक्त प्राप्त नहीं होते, किंतु कुछ मन्त्रोंमें स्पष्टरूपसे उनके पौराणिक स्वरूपके बीज मिलते हैं। श्रीगणेशजीका एक प्रसिद्ध नाम 'गणपति' है। वेदोंमें यह नाम अनेक स्थानोंपर प्राप्त होता है—

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्क मघवञ्चित्रमर्च॥

(ऋ० १०। ११२। ९)

'हे गणपते! आप स्तुति करनेवाले हमलोगोंके मध्यमें भली प्रकार स्थित होइये। आपको क्रान्तदर्शी कवियोंमें अतिशय बुद्धिमान्—सर्वज्ञ कहा जाता है। आपके बिना कोई भी शुभाशुभ कार्य आरम्भ नहीं किया जाता। (इसलिये) हे भगवन्! (मघवन्), ऋद्धि-सिद्धिके अधिष्ठाता देव! हमारी इस पूजनीय प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये।'

शुक्लयजुर्वेदके १६वें अध्यायके २५वें मन्त्रमें भी 'गणपति'-शब्द आता है। '**ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः**'—गणोंको और आप गणपतियोंको प्रणाम है। गणपति-पूजनमें प्रयुक्त शुक्लयजुर्वेदके २३वें अध्यायका १९वाँ मन्त्र सर्वविदित है—

'**गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे। वसो मम आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।**'

यद्यपि यह मन्त्र अश्वमेध-यज्ञके प्रसंगमें आता है और मन्त्रका विनियोग अश्व-स्तवनमें है, तथापि केवल अश्वमें मन्त्रोक्त गुण अनुपपन्न होनेसे अश्वमुखेन गणपति-तत्त्वकी ही स्तुति इस मन्त्रसे होती है। मीमांसा-शास्त्रके अनुसार एक ही मन्त्र प्रस्थान-भेदसे कई देवताओंके लिये प्रयुक्त हो सकता है। इसी आधारपर यह मन्त्र गणेशके लिये प्रयुक्त हुआ है। तैत्तिरीय-आरण्यकके १०वें प्रपाठकके प्रथम अनुवाकमें यह मन्त्र आया है, जो गणेश-गायत्रीके नामसे प्रसिद्ध है—

'**तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्**'।

—इसमें यह प्रार्थना की गयी है कि 'दन्ती हमको प्रेरित करें।' दन्तीका अर्थ हुआ—दाँतवाला। उनका विशेषण है—वक्रतुण्ड, टेढ़ी सूँड़वाला। दन्तीमें दाँतोंकी संख्याका निर्देश नहीं है; परन्तु यह स्पष्ट है कि ऐसा नाम उसीको दिया जा सकता था, जिसके दाँतोंमें कोई विशेषता रही हो। ऐसी दशामें स्वभावतः गणेशजीके एकदन्त, एकरद-जैसे नामोंकी ओर ध्यान जाता है और यह स्पष्ट होता है कि 'दन्ती' गणेशजीका ही नाम है। 'वक्रतुण्ड' नाम इसी निष्कर्षकी पुष्टि करता है। तैत्तिरीय-आरण्यक कृष्ण-यजुर्वेदके अन्तर्गत है।

'गण'-शब्द समूहका वाचक है। समूहोंका पालन करनेवाले परमात्माको 'गणपति' कहते हैं। '**गण्यन्ते बुद्ध्यन्ते ते गणाः**'—इस व्युत्पत्तिसे सम्पूर्ण दृश्यमात्र 'गण' है और उसका जो अधिष्ठान है, वही 'गणपति' है। गणेशभगवान् लम्बोदर हैं; क्योंकि उनके ही उदरमें समस्त प्रपंच प्रतिष्ठित हैं और वे किसीके उदरमें नहीं हैं। उनका वाहन मूषक है। मूषककी तरह ही सर्वान्तर्यामी सर्वप्राणियोंके हृदयरूप बिलमें रहनेवाले एवं जन्तुओंके भोगोंको भोगनेवाले ही श्रीगणपति हैं। चूहा विवेचक, विभाजक, भेदकारक, विस्तारक, विश्लेषक एवं बुद्धिका सूचक है। हाथीका सिर लगना संयोजक, समाहारक, समन्वयकारक, संश्लेषक बुद्धिका उदय होना है। ज्ञान और तन्मूलक व्यवहारके लिये विभाजक और समाहारकारक—दोनों प्रकारकी बुद्धि चाहिये, परंतु प्रधानता समन्वय बुद्धिकी ही है; इसीलिये गजवदनजी चूहेपर सवारी करते हैं। इस संश्लेषक बुद्धिके कारण ही गणेशजी 'बुद्धिसागर' माने जाते हैं। चूहा लौकिक बुद्धिवाले मोहावृत जीवका भी प्रतीक है—'**आखुस्ते पशुः**।' (यजु० ३। ५७) चूहेकी चपलता और भोगलोलुपता प्रसिद्ध ही है। वह रातमें निकलता है और रातको मोह—अज्ञानकी उपमा दी जाती है। यह भी अज्ञानी जीवसे चूहेको समता दिलानेवाली बात है।

श्रीगणेश विद्यात्मक ईशतत्त्वके प्रतीक हैं। गणेशजीकी एकदन्तता उनकी अद्वैतप्रियताकी सूचक है। उनको मोदक प्रिय होना ही चाहिये। मोदकका अर्थ है—आनन्द देनेवाला। मोदक ब्रह्मानन्दका नाम है। इनके उपासकोंको सभी प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ सुलभ हैं।

'गणेश' नामका अर्थ इस प्रकार है—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥

अर्थात् 'ग' ज्ञानार्थवाचक और 'ण' निर्वाणवाचक है। इस प्रकार ज्ञान-निर्वाणवाचक गणके ईश परब्रह्म हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूँ।

गणेश-पुराणके उपासना-खण्डमें दिये हुए 'गणेशाष्टक' (२)-का यह श्लोक भी ध्यान देनेयोग्य है—

यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेत-
त्तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता।
तथेन्द्रादयो देवसङ्घा मनुष्याः
सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

'हम सदा उन गणेशको प्रणाम करते और उनका भजन करते हैं, जिनमेंसे यह सारा जगत्, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि देव-संघ तथा मनुष्य आविर्भूत हुए हैं।'

इसी प्रकार 'एकदन्तस्तोत्र' (२-३)-में कहा गया है—

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥
विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम्।
सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥

'जो सदा आत्मस्वरूप हैं, सबके आदिभूत हैं, मायासे परे हैं। '**सोऽहमस्मि**'—वह परमात्मा मैं हूँ—इस अचिन्त्य बोधसे सम्पन्न हैं तथा जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, उन एकमात्र भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं। जो विश्वके आदिकारण हैं, योगियोंके हृदयमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकाशमान एक—अद्वितीय तत्त्व हैं। निरालम्ब समाधिके द्वारा ही जिनका सदा साक्षात्कार सम्भव है, उन भगवान् एकदन्त (गणेश)-की हम शरण लेते हैं।'

अतः श्रीगणेश परतत्त्वके ही एक रूप हैं। गाणपत्य उपासक परमात्माको 'महागणाधिपति'के नामसे पुकारते हैं और गणपतितत्त्वको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं। अपनी शुद्ध अवस्थामें अखण्ड, चिद्घन, एकरस, नेति-नेतिवाच्य ब्रह्म ही उपासकोंकी भावनाके अनुसार विभिन्न रूपोंमें प्रतीत होता है। बहुत प्राचीनकालसे गणपति-उपासकोंका पृथक् सम्प्रदाय चला आ रहा है—'गाणपत्य-सम्प्रदाय'। 'शंकर-दिग्विजय' को देखनेसे पता चलता है कि शंकराचार्यका इस सम्प्रदायके अनुयायियोंसे शास्त्रार्थ भी हुआ था। उक्त सम्प्रदायके अनुसार भी गणेश इस चराचर-जगत्के निमित्त और उपादान कारण हैं। उनकी उपासना ही भोग और मोक्षका साधन है। अपनी समन्वयदृष्टिके कारण सर्वसामान्य सनातनधर्मी (हिन्दू) भी पंचदेवोपासक होता है। पंचदेवोपासनामें विष्णु, शिव, शक्ति और सूर्यके साथ गणेशोपासनाका विधान है।

श्रीगणेशजीकी पूजा सारे भारतवर्षमें होती है। महाराष्ट्रमें विशेष समारोहके साथ गणेश-पूजन होता है। ऐहिक और आमुष्मिक—सभी प्रकारके काम्यकर्मोंमें गणेश-पूजा अनिवार्य है। श्रौतविधिसे सम्पन्न होनेवाले बहुत-से कृत्योंमें भी गणपति-पूजन किया जाता है। मंगलकार्योंमें दीवालोंपर उनके चित्र बनाये जाते हैं। श्रीगणेशजीकी पूजासे विघ्नोंकी शान्ति और सिद्धिकी प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, सभी कार्योंमें श्रीगणेश प्रथम पूज्य हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि योग-शास्त्रीय साधनामें प्रसिद्ध षट्चक्रोंके भेदन-क्रममें भी प्रथम चक्रमें गणेशजीका स्थान माना गया है। मूलाधार-चक्रको 'गणेश-स्थान' भी कहते हैं। योगमें भी सिद्धि तभी होती है, जब पहले प्रथम चक्रमें श्रीगणेशका साक्षात्कार हो। गणेश प्रथम चक्रमें स्थित हैं—

गणेश्वरो विधिर्विष्णुः शिवो जीवो गुरुस्तथा।
षडेते हंसतामेत्य मूलाधारादिषु स्थिताः॥

(वालापद्धतिः)

संत गरीबदासने भी एक पदमें यह चर्चा की है—

मूलचक्र गनेसबासा रक्तबरन जहँ जानिये।
लिंग जाप कुलीन तज सब शब्द हमरा मानिये॥

तन्त्राचार्योंका भी आदेश है कि सभी मंगलकार्योंके आरम्भमें गणेशका पूजन किया जाना चाहिये। 'महानिर्वाण-तन्त्र'के दशमोल्लासमें गुरुदीक्षाके अवसरपर गणपति-

पूजनका विधान बताया गया है। 'शारदातिलक'के त्रयोदश पटलमें भी बड़े विस्तारसे गणपति-पूजाका विधान है। महागणपति, संतानगणपति, स्वर्णगणपति और नवनीत-गणपतिके साथ हरिद्रागणपति, उच्छिष्ट-गणपति, लक्ष्मी-गणपति और पिंगल-गणपति आदि अनेक रूप-भेदोंकी भी चर्चा है। 'प्राणतोषिणी'-तन्त्रमें गणपतिके पचास नाम और इन पचासों गणपतियोंकी शक्तियोंके नाम भी दिये हुए हैं।

गणपतिकी इस प्रथम पूज्यता और व्यापकताके कारण 'श्रीगणेश'-शब्दकी 'शक्ति' ही आरम्भार्थमें रूढ़ हो गयी है। जैसे—इस कार्यका 'श्रीगणेश' हुआ है, आदि। गणेशपूजनकी प्रथा इस देशमें ही नहीं, प्रत्युत संसारके प्रायः अधिकांश देशोंमें पायी जाती है। चीन, जापान, नेपाल, तिब्बत, बर्मा, स्याम, कंबोडिया, जावा, बोर्नियो, अमेरिका आदि देशोंमें विभिन्न रूपोंमें श्रीगणेशकी पूजा होती है। अनेक स्थानोंपर खुदाईमें श्रीगणेशकी विभिन्न प्रकारकी मूर्तियाँ मिली हैं। प्राचीन कालमें संसारके अधिकांश भागपर भारतीय संस्कृतिका प्रभाव था, अतः जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृतिका प्रभाव फैलता गया, वहाँ-वहाँ श्रीगणेश पहुँचते गये। बौद्ध और जैन-धर्ममें भी विविध रूपोंमें श्रीगणेशकी पूजा मिलती है।

पृथ्वीभरमें किसी दूसरे उपास्यके व्यक्तित्वसे गणेशजीकी तुलना नहीं की जा सकती। गणेशजीकी पूजा अत्यन्त व्यापक है। एक ओर वैदिक मतावलम्बी (हिन्दू) उनको यवद्वीप, बोर्नियो और बालि आदि द्वीपोंकी ओर ले गये तो दूसरी ओर वे अपने बौद्ध अनुयायियोंके साथ तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन और जापान पहुँचे। सर्वदेवाग्रगण्यका स्थान पाकर, विदेशोंमें पहुँचकर वैरोचन और अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्वोंसे तादात्म्य प्राप्त करके योगके अनिर्वचनीय रहस्योंका प्रतीक बनना गणेशजीका ही काम है। उनके अप्रतिम व्यक्तित्वके सामने किसका सिर नहीं झुकेगा।

अन्तमें जगदधीश्वर सर्वदेवाग्रगण्य श्रीगणेशको हम विघ्नेश्वरके रूपमें प्रणाम करते हैं—

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधेर्वाडवः
विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु वः॥

~~~०~~~

श्रीगणेश

(लेखक—श्रीरायकृष्णदासजी)

गणेशकी वन्दना प्रायः सभी हिंदू प्रत्येक शुभ कार्यके आरम्भमें करते हैं। यहाँतक कि किसी कार्यारम्भके लिये 'श्रीगणेश करना' एक मुहावरा बन गया है। गणेशकी यह प्रथम वन्दना इसलिये की जाती है कि कार्य निर्विघ्न पूरा हो जाय। गणेशपूजा केवल भारतमें ही सीमित नहीं, बृहत्तर भारत अर्थात् नेपाल, चीनी-तुर्किस्तान, जावा, बाली, बोर्नियो, तिब्बत, बर्मा, स्याम, चीन, इंडो-चाइना तथा जापानतकमें गणेशकी उपासना फैली हुई थी, एवं है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार जन्मके कुछ देर बाद शनैश्चरकी दृष्टि पड़नेसे उनका सिर कट गया था। इसपर विष्णुने एक हाथीका सिर काटकर उनके धड़पर संयोजित कर दिया, इसी कारण उनका नाम 'गजानन' पड़ा। इसी पुराणके अनुसार एक बार परशुरामजी शिव-पार्वतीके दर्शनके लिये कैलास गये। उस समय वे निद्रित थे और गणेशजी पहरा दे रहे थे; अतएव उन्होंने परशुरामजीको रोका। इसपर कलह हुआ और अन्ततः परशुरामजीने अपने परशुसे उनका एक दाँत काट डाला। इसी कारण वे 'एकदन्त' हैं। माघकाव्यके अनुसार उनका यह दाँत रावणने उखाड़ लिया था। गणेशजन्मकी लोकमें एक यह कथा भी प्रचलित है कि एक बार पार्वती स्नान करने गयीं। वहाँ उनका मन ऊबने लगा और समय काटनेके लिये उन्होंने मिट्टीका (या उन्हें जो उबटन किया गया था, उसकी लीझीका) एक गजमुख बालक बना डाला और पीछेसे उस पिण्डमें जान डाल दी, जो गणेश हुए।

गणेश-सम्बन्धी कथाओंमें एक मुख्य कथा यह भी है कि उन्होंने महाभारतका लेखन-कार्य किया था।
~~~

भगवान् वेदव्यास जब महाभारतकी रचनाका विचार कर चुके तो उन्हें उसे लिखवानेकी चिन्ता हुई। इसपर उन्हें ब्रह्माजीने गणेशजीसे यह कार्य लेनेका परामर्श दिया। गणेशजीने इस शर्तपर लिखना अंगीकार किया कि यदि व्यास कहीं रुकेंगे तो मैं लिखनेका कार्य बंद कर दूँगा। व्यासजीने इसे समझ-समझकर लिखनेके अनुरोधके साथ स्वीकार किया। जब उन्हें रुकना होता था तो वे कूट श्लोकोंकी रचना करके बोल देते थे। इनके अर्थ समझनेके लिये गणेशको रुकना पड़ता था। इस बीच व्यास अनेक श्लोकोंकी रचना कर डालते थे।

गणेशजी विद्या-बुद्धिविधायक हैं। इस रूपमें भी उनकी बहुत वन्दना की गयी है। वैदिक बृहस्पति भी बुद्धिके देवता हैं। गणेशजीके आयुधोंमें परशु प्रधान है तथा उनका नाम 'गणपति' है।

महायान बौद्ध-सम्प्रदायमें और तन्त्रोंमें भी गणेश-पूजनके विविध प्रकार और क्रिया-कलाप मिलते हैं और हठयोगमें शरीरके भीतर जो अनेक चक्रोंकी कल्पना की गयी है, उसमें मूलाधार (गुदा)-चक्रके देवता गणेश हैं।

बौद्धोंमें श्वेत हस्ती बहुत पवित्र और पूजनीय माना जाता है। उनके यहाँ कथा है कि बुद्ध-माता मायादेवीको स्वप्न हुआ था कि एक श्वेत गज स्वर्गसे उतरकर उनके मुखमें घुसा। पीछे बुद्ध गर्भस्थ हुए। फलतः सफेद हाथी बुद्धका सूचक माना गया है। इसीसे कई स्थानोंकी अशोककी धर्म-लिपियोंमें श्वेत हस्तीकी मूर्तिको स्थान दिया गया है। अशोकके कालसीवाले प्रज्ञापनमें, लेखोंके ऊपर इस हाथीकी एक मूर्ति खुदी है, जिसके नीचे 'गजतमो' (सर्वश्रेष्ठ गज) लिखा है। इसी प्रकार धौलीके प्रज्ञापनमें सबसे पहले हाथीकी एक आधी मूर्ति उभारकर बनी है। इसी धर्मलिपिमें छठे प्रज्ञापनके अन्तमें सेतो (श्वेतः) शब्द भी लिखा है। गिरनारवाली धर्म-लिपिमें तेरहवें प्रज्ञापनके नीचे, **'श्वेतो हस्ती सर्वलोकसुखाहरो नाम'** अर्थात् सब लोकोंको सुख ला देनेवाला श्वेत हस्ती, ये शब्द खुदे हैं। इसके सिवा उनकी धर्म-लिपियोंके चौथे प्रज्ञापनमें यह भी दिया है कि जनताको धार्मिक भावसे हाथियोंका दर्शन कराया जाता था। गणेशकी गजाकृतिकी चर्चा हम बौद्ध-धर्मकी उक्त हस्तिपूजामें पाते हैं। यह बात इस तौरपर और दृढ़ होती है कि बुद्धके नाम भी 'विनायक' और 'गणश्रेष्ठ' हैं।

अबतक गणेशकी जो सबसे प्राचीन मूर्ति मिली है, वह भूमरा (नागोद राज्य, मध्यभारत)-की है। यह मूर्ति द्विभुज है। जावाके हिन्दू-मन्दिरोंमें भी गणेशकी सुन्दर प्रतिमाएँ मिली हैं। गणेशकी प्रतिमाओंमें एकदन्त हाथीका मुँह, लम्बा उदर, टेढ़ी (विकट) और नाटी (खर्व) देह और नाग-यज्ञोपवीत सार्वभौमरूपसे मिलते हैं। इसी प्रकार उनके आयुधोंमें अंकुश प्रायः सभी प्रतिमाओंमें पाया जाता है। उनका प्रिय आहार मोदक है। गणेशका ध्यान चार भुजासे लेकर आठ या इससे अधिक भुजाओंतक मिलता है। इन ध्यानोंमें या तो गणेश बैठे हुए होते हैं या खड़े या नृत्य करते हुए। शिवके समान उनके इस लाड़ले पूत गणेशके सांध्य-नृत्यका वर्णन प्रायः मिलता है। यों तो उनका वाहन मूषक है, किन्तु तन्त्रोंमें उनके और वाहन भी मिलते हैं। गणेशकी मूर्ति व्यापक रूपसे एकमुख ही मिलती है। भारतवर्षमें ग्यारहवीं-बारहवीं शतीकी उनकी एक पंचमुख-मूर्ति मुंशीगंज, ढाकामें मिली है। दूसरी काशीमें ढुण्ढिराज गणेशके पास है। किन्तु नेपालमें पंचमुख गणेशकी उपासना 'हेरम्ब' नामसे प्रचलित है। गणेशकी अनेक मूर्तियाँ तथा तान्त्रिक ध्यान शक्तिसहित मिलते हैं। कहीं-कहीं गणेशकी मूर्ति अकेले भी मिली है। इसमें सारा आकार गणेशका, किंतु वक्षःस्थल स्त्रीका होता है। कहीं-कहीं पार्वतीकी गोदमें गणेश शिशुरूपमें भी मिलते हैं। राजपूत-शैलीके चित्रकार प्रायः सदैव गणेशको उनकी शक्ति, सिद्धि और बुद्धिके सहित बनाते हैं, जो उनके अगल-बगलमें अंकित की जाती हैं।

नागरीप्रचारिणी-सभाके संग्रहालय, भारत-कला-भवनमें नृत्य करते हुए गणेशकी एक मध्यकालीन (प्रायः १०वीं, १२वीं शतीकी) मूर्ति है। यह चुनारके पत्थरकी है और अंशतः कोरकर बनायी गयी है। यह २४$\frac{१}{४}$ इंच ऊँची, १४$\frac{१}{२}$ इंच चौड़ी तथा ४$\frac{१}{२}$ इंच मोटी है। इसमें गणेशका रूप भावपूर्ण है, नाचनेकी प्रसन्नता उनके मुँहसे झलक रही है और उनकी सारी आकृति मुद-मंगल-दाता है। उनका त्रिभंग और तालपर पड़ते

हुए उनके चरण सुन्दरतासे दिखाये गये हैं। यह मूर्ति अष्टभुज है और इसमें दक्षिणावर्त-क्रमसे हाथोंमें (१) व्रीहिका अग्रभाग (धानकी बाल), (२) परशु, (३) जपमाला, (४-५) नागपाश, ऊपरके दो हाथोंमें, (६) अपना टूटा हुआ दाँत, (७) मोदकका देना तथा (८) व्रीहिका अग्रभाग है। ध्यानोंमें गणेशका वर्ण सिन्दूर-चर्चित होनेके कारण सिन्दूरिया ही मिलता है, किंतु उनके अन्य वर्णवाले ध्यान भी पाये जाते हैं।

~~०~~

श्रीभगवान् गणपति—एक दार्शनिक विश्लेषण

(लेखक—साहित्यमहोपाध्याय प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज', एम्० ए०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, सांख्य-योग-दर्शनाचार्य, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न)

वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा महाभारतमें भी, जिसे 'पंचम वेद' कहते हैं, श्रीगणपतिका व्यास-समासरूपसे वर्णन आया है। यजुर्वेदमें इस देवताको गणपति, प्रियपति एवं निधिपतिके रूपमें आहूत किया गया है। ये प्रथम पूज्य हैं, गणेश हैं, विघ्नेश हैं, साथ ही विद्या-वारिधि और बुद्धि-विधाता भी हैं।

पार्वतीनन्दन हेरम्ब और स्कन्द—दोनों ही क्रमशः गणपति एवं सेनापति हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके गणपति-खण्डमें इन्हें साक्षात् श्रीकृष्णका ही स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। तदनुसार इन्हें अयोनिज कहा गया है। इनके कई नाम हैं। एक नाम है—विनायक। विनायकका अर्थ है (वि=विशिष्ट तथा नायक=नेता)—विशिष्ट नेता। इनका जन्म योनिसे हुआ हो, ऐसा किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थमें नहीं मिलता।

गणपति, प्रियपति तथा निधिपति कहनेमें वेदका तात्पर्य बड़ा ही गूढ़ प्रतीत होता है। इनका स्वरूप अतिशय विलक्षण है। '**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**'—न्यायके अनुसार हमारे वेदोंने स्पष्ट कर दिया है कि मूल तत्त्व एक ही है। एक ही अग्नि निराकाररूपसे अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त है; उसमें तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं। वही अग्नि जब प्रज्वलित होती है, तब उसकी आधारभूत वस्तुओंका जैसा आकार होता है, आग भी उसी आकारमें दीखती है। जलती हुई खिड़की, जलते किंवाड़ तथा जलती रस्सीमें वही आग तत्तद्-वस्तुका आकार धारण कर लेती है—निराकारसे साकार हो जाती है। कहावत है—'रस्सी जल गयी, ऐंठन न गयी', उसी प्रकार समस्त जीवधारियोंका अन्तर्यामी परमेश्वर एक है। उसमें किसी प्रकारका कोई भेद नहीं, तथापि प्राणियोंके अनुरूप ही उसकी महिमा प्रकट होती है। वास्तवमें उस परमात्माकी महत्ता इतनी ही (अर्थात् सीमित) नहीं है, वह इससे भी बहुत अधिक और विलक्षण है।

जो सर्वशक्तिमान् पूर्णब्रह्म अग्निके भीतर है, जो जलमें है, जो सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट है, जो औषधियोंमें है, वनस्पतियोंमें है, जो सर्वत्र परिपूर्ण है, जिसका नानाविध वर्णन हुआ है, श्रुति उसे नमस्कार कर रही है'।

'**गणपत्युपनिषद्**' में लिखा है—

आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥

'जो इस सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हैं—प्रकट हुए हैं, जो प्रकृति-पुरुषसे परे हैं, इस प्रकारसे गणपतिका ध्यान करनेवाला योगी तो योगियोंमें श्रेष्ठ है।'

'गण' क्या है—

सत्, चित् और आनन्द—तीन गणोंके पति (रक्षक) होनेसे, उनसे विभूषित रहनेके कारण उस तत्त्वको 'गणपति' कहते हैं। इस प्रकार वह सत्ता, ज्ञान, और सुखका पाता (रक्षक) है। जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति-जैसी अवस्थाओंसे परे (समाधिस्वरूप)होनेसे वह 'गणपति' है। वह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति (प्रगाढ़ निद्रा)—तीनों अवस्थाओंका वेत्ता और द्रष्टा होनेसे 'गणपति' है। परा, पश्यन्ती और मध्यमा—तीनों जिसे दृष्टिगोचर होती रहती हैं, वह तुर्यावस्थामें स्थित ब्रह्म ही 'गणपति देव' है। त्रिभुवन—पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग—इन तीनों गणोंका पति होनेके कारण वह 'गणपति' अथवा 'गणेश' है। ज्योतिषशास्त्रानुसार देवगण, मानवगण तथा राक्षसगण—तीनोंका स्वामी होनेके कारण वह गणपति आराध्य है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋग्वेद १। १६४। ४६)

अर्थात् सत् (सत्ता)एक ही है। उसीको मेधावीजन इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम एवं मातरिश्वा (पवन) कहते हैं। अनेकतामें एकता ही हमारे शास्त्र-पुराणोंका चरम लक्ष्य है। भागवतकारने कहा है—'**ब्रह्माद्वयं शिष्यते**' (१०। १४। १८) एक ब्रह्म ही उपक्रम है और वही पर्यवसान है।

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपनी अमर रचनाओंमें गणपतिको 'जगबंदन' अर्थात् 'जगद्वन्द्य' कहा है। उन्होंने इन देवको 'विद्या-वारिधि' एवं 'बुद्धि-विधाता' कहकर अभिहित किया है। बालकाण्ड (मानस)-के मंगलाचरणमें उन्होंने लिखा है—

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

तदनुसार ये विनायक हैं, वर्णों, (स्वर-व्यंजनसे अभिव्यक्त) अर्थसमूह, रससमूहके कर्ता एवं मंगलकर्ता हैं। वाणीसे यहाँ परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी—चारों नाद ही अभिप्रेत हैं। छन्दःशास्त्रमें तो गण आठ हैं—भगण, जगण, सगण, यगण, रगण, तगण, मगण और नगण। इनके आठ विनायक हैं—'**अष्टौ विनायकाः**'। और ये गणपति हैं। '**रसानाम्**' से काव्यशास्त्रके नौ रस स्पष्ट हैं। ये नौ रसोंके, रसानुकूल अर्थोंके अभिधा, लक्षणा, व्यंजना (त्रिशक्तियों)-के रचयिता एवं मंगलकर्ता हैं, पति (रक्षक) हैं।

आचार्य यास्कने 'निरुक्त'के तृतीय दैवतकाण्डके ७वें अध्यायमें इसे स्पष्ट कर दिया है—'**महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते**। (१)—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली विविध शक्तिसम्पन्न होनेसे एक ही परमात्मा विभिन्न गुणोंके कारण अनेक प्रकारसे स्तुत अर्थात् प्रशंसित हैं।' गुण-गण (सत्त्व, रजस् एवं तमस्)-का एकमात्र अधिपति होनेके कारण वह परमात्मा ही 'गणपति' या 'गणाधिपति' कहलाता है। कठश्रुति (२। १५)-का '**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति**' कथन भी तो तभी उपपन्न होगा, जब चारों वेद उसी एक पद (ॐ-ओंकारस्वरूप)-का आमनन अर्थात् बार-बार अभ्यास (उपदेश—कथन) करते हों।

वेदोंमें प्रायः समष्टिका ही निर्देश मिलता है। सर्वत्र बहुवचनका उल्लेख मिलता है। वैदिक धर्ममें व्यक्तिसे समष्टिको प्रधानता दी गयी है। वैदिक संहिताओंमें असंख्य देव माने गये हैं। कर्म और गुणके अनुसार जैसे 'विष्णुसहस्रनाम' में एक ही तत्त्व (श्रीविष्णु) हजार नामोंसे अभिहित हैं, उसी प्रकार शिवसहस्रनाम, दुर्गाशतनाम-सहस्रनाम आदि ग्रन्थोंमें गुण-कर्मानुसार एकके ही हजार या हजारों नाम हैं।

शतकोटिरामायणान्तर्गत 'आनन्दरामायण' के विलास-काण्डमें वर्णन है—

शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
तमेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥
एकः स पञ्चधा जातः क्रियया नामभिः किल।
देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः॥
(८। ९-१०)

'इस संसारमें शैव (शिवोपासक), सौर (सूर्योपासक), गाणेश (गणेशोपासक), वैष्णव तथा शक्तिपूजक अर्थात् पंचदेवोपासक उस ब्रह्मको उसी प्रकार प्राप्त कर लेते हैं, जैसे वर्षाका जल सागरमें समा जाता है। वह ब्रह्म एक है और वही नाम और कर्मके प्रभावसे पाँच रूपोंमें पंचदेवताके रूपमें विभक्त होता है। उदाहरणके लिये, देवदत्त एक मनुष्य है; वह किसीका पुत्र, किसीका भाई, किसीका बाप और किसीका चाचा कहलाता है, लेकिन तत्त्वतः वह एक है।'

देवता क्या हैं? कितने हैं?

ऋग्वेदमें एक ब्रह्मके बहुधाभावकी कल्पना एक दार्शनिक विषय है। '**एको देवः**' लिखकर यह बतलाया गया है कि यह एक ब्रह्मविषयक सिद्धान्त है। दिव् (**द्योतते दीव्यति वा**) धातुसे व्युतपन्न 'देव' शब्द तीन अर्थोंमें व्यवहृत हुआ है। देवता एक तद्धितीय शब्द है। '**देवानां समूहो देवता**'—ऐसी व्याख्या भी मिलती है। आचार्य यास्कने अपने निरुक्तके दैवतकाण्डमें लिखा है—'**देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा**'—(३। ७। ४। १५) अर्थात् सारे भोग्य पदार्थ देनेवाले, प्रकाशित होनेवाले और समस्त लोकोंका ज्ञान करानेवालेको 'देवता' कहते हैं। और '**दिवु**' धातु (**दीव्यति**) क्रीडार्थक है। '**दिवि दीव्यन्ति**'—जो स्वर्गादि प्रकाशमान् लोकोंमें क्रीड़ा करते हैं, वे देवता हैं। वेदोंमें गुण-कर्मानुसार

अनेक नामोंसे अनेक देवताओंकी स्तुति की गयी है— '**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः**' से श्रुतिका अभिप्राय है कि वह ब्रह्म या परमात्मा अथवा परा शक्ति एक ही है। '**तस्मात् सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते**' अर्थात् अनेक नामोंसे—तत्तत्कर्मानुसार विभिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर भी देव (ईश्वरीय शक्ति—महाशक्ति) एक ही है। एक ही मूल सत्ता है। सारे देवता उसीके विकास हैं। नियन्ता एक है। यास्कने '**ना राष्ट्रमिव**' लिखकर भलीभाँति स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्तिगतरूपसे भिन्न होते हुए भी जैसे असंख्य नर-नारी राष्ट्ररूपसे एक ही हैं, उसी प्रकार अनेक रूपोंमें प्रकट होनेपर भी, अनेक नामधारी होनेपर भी सभी देवोंमें परमात्मतत्त्व एक ही है।

वेद वस्तुतः एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है। उसमें अचेतन (चेतनाशून्य) पदार्थों, जैसे—जल, वायु, विद्युत्, पर्वत-पादप आदिकी भी स्तुतियाँ की गयी हैं। वेदोंमें ओषधियाँ वैद्योंसे बातें करती हैं। जल और वायु, चमस और स्रुवा—सब-के-सब चलते-फिरते हैं, वरप्रदान करते हैं, धनादि अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं। वहाँ तो चेतनवादकी प्रधानता है। साथ ही ऋग्वेदमें यह भी कहा गया है कि तपस्वियोंको छोड़कर ये देवता औरोंके मित्र नहीं होते। देवताओंके गुप्तचर अहर्निश विचरण करते रहते हैं—उनकी आँखें कभी बंद नहीं होतीं।

मीमांसाकार महर्षि जैमिनि देवत्वशक्तिको मन्त्रमें ही स्वीकार करते हैं। कहा भी गया है—'**मन्त्राधीनाश्च देवताः**' अर्थात् ये देवता मन्त्राधीन हैं। जिन मन्त्रोंमें जिन देवताओंका वर्णन और स्तवन है, उन मन्त्रोंमें उन देवताओंकी शक्ति सदासे निहित है। निरुक्तकार स्पष्ट कर देते हैं कि—'**एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।**' अर्थात् एक ही परमात्माके ये सारे देवगण विभिन्न अंश हैं, प्रत्यंग हैं। सभी देवताओंकी महती शक्ति अथवा परा शक्ति एक ही है।

दैवतवादका प्रधान ग्रन्थ 'बृहद्देवता' है। तदनुसार प्रयत्न करके प्रत्येक देवताका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अभिप्राय है कि '**देवो भूत्वा देवं यजेत्**'। 'बृहद्देवता'के अनुसार तो शव (मुर्दे)-की भी आँखें रहती हैं, पर वह इसलिये नहीं देख पाता कि उसका चेतनाधिष्ठान नहीं है। नेत्र तो जड हैं। जबतक उसका चेतनाधिष्ठाता देवता रहता है, तबतक वह अच्छी तरह देख पाता है। नद-नदी, अग्नि-जल तथा गगन-पवन—सभीके चेतनाधिष्ठाता हैं। जड पदार्थोंमें स्वयं कर्तृत्वशक्ति या भोक्तृत्वशक्ति नहीं है। इनमेंसे प्रत्येकका अपना चेतनाधिष्ठाता है। ये ही अनेक देवता हैं। गणपति, अग्नि, इन्द्र, वरुण, वायु, पूषा, अर्यमा, सरस्वती, आदित्यगण, रुद्रगण, विष्णु, मरुत्, सोम, अदिति, त्वष्टा, भग, बृहस्पति, यम, सूर्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमारादि सभी प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं। इनके मूलमें एक परा शक्ति अथवा महाशक्ति है। और वही परा देवता नाना रूपोंको धारण करती है। गणेशजी अनादि देवता हैं। नहीं तो शिव-पार्वतीके विवाहमें विघ्नराज, साथ ही मंगलके विधाता गणपतिकी अग्रपूजा क्यों और कैसे होती?—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(मानस १।१००)

ओंकारस्वरूप भगवान् गणपतिका स्वरूप

संत ज्ञानेश्वरके मतानुसार भगवान् गणाध्यक्ष साक्षात् ओंकारके स्वरूप हैं। यदि आप ध्यानसे उनका विग्रह देखें तो पता चलेगा कि वस्तुतः उनका बहिरंग रूप ओंकारका प्रतीक है। दक्षिण भारतके किसी भी गणपतिदेवकी आकृति शत-प्रतिशत ओंकारके चित्रसे मिलती-जुलती है। दार्शनिक दृष्टिसे भगवान् गणाधिपति बड़े ही विलक्षण देवता हैं।

ज्ञानेश्वर लिखते हैं—'(१) हे ओंकार! हे वेदोंसे ही वर्णनीय आदिरूप! आपको नमस्कार है। आप ही सकल अर्थ और बुद्धिको प्रकाशित करनेवाले गणेश हैं। (२) ये जो अखिल वेद हैं, वे ही आपकी सुन्दर मूर्ति हैं और वेदके अक्षर आपका निर्दोष शरीर है। (३) स्मृतियाँ आपके अवयव हैं। अर्थकी सुन्दरता आपके लावण्यकी द्युति है। (४) अठारहों पुराण आपके मणिभूषण हैं, प्रमेय रत्न हैं तथा पदरचना उनका कुन्दन है। (५) उत्तम पद-लालित्य आपका रँगा शरीर है, जिसमें साहित्य-शास्त्रका ही उज्ज्वल ताना-बाना है। (६) काव्य और नाटक, जिनको देखते ही सानन्द आश्चर्य होता है, रुनझुन करनेवाली आपकी

कटिकी क्षुद्रघंटियाँ हैं और काव्य-नाटकोंका अर्थ उनकी—घंटियोंकी ध्वनि है। (७) अनेक प्रकारके तत्त्वार्थ और उनकी कुशलता, अच्छी तरह देखनेपर उन तत्त्वार्थोंके उत्तम पद काव्यादि घंटियोंके बीच चमकनेवाले रत्न हैं। (८) व्यास आदि ऋषियोंकी बुद्धि मेखला-सी सुहाती है और उसका तेज उस मेखलाके पल्लवका अग्रभाग-सा चमकता है। (९) देखिये, जो 'षड्दर्शन' कहलाते हैं, वे ही आपकी छः भुजाएँ हैं और जो भिन्न-भिन्न मत हैं, वे ही आपके शस्त्र हैं। (१०) तर्कशास्त्र परशु (फरसा) है, न्यायशास्त्र अंकुश है और वेदान्त सुरस मोदक है। (११) एक हाथमें जो आप-ही-आप टूटा हुआ दाँत है, वह वार्तिककारके व्याख्यानसे खण्डित किये हुए बौद्धमतका संकेत है। (१२) जो वरदायक कर-कमल है, वह सहज ही सत्यकार्यवाद (सांख्योक्त सिद्धान्त)-का सूचक है और धर्मकी प्रतिष्ठा आपका अभय कर है। (१३) अत्यन्त निर्मल विवेक ही आपकी लम्बी सूँड़ है। (१४) उत्तम संवाद आपके सम एवं शुभ्रवर्ण दन्त हैं। हे विघ्नराज! ज्ञानदृष्टि आपके सूक्ष्म नेत्र हैं। (१५) दोनों (पूर्व और उत्तर) मीमांसाएँ दोनों कानोंके स्थानमें दिखायी पड़ती हैं। (ये ही गजकर्ण हैं।) (१६) तत्त्वार्थ प्रकाशमान् प्रवाल है, ज्ञानामृत ही मद है और ज्ञानवान् मुनि उसकी सेवा करनेवाले भ्रमर जान पड़ते हैं। द्वैत और अद्वैत दो निकुम्भ हैं और दोनोंका जिस स्थलपर एकीकरण (मिलन)होता है, वही आपका मस्तक है। (१७) वेद और उपनिषद्, जो उत्तम ज्ञानामृतसे युक्त हैं, वे आपके गजमस्तकपर रखे मुकुटमें पुष्पोंके समान शोभा दे रहे हैं। (१८) 'अकार' आपके दोनों चरण हैं, 'उकार' विशाल उदर है और 'मकार' मस्तकका महामण्डल है। (१९) ये तीनों (अ उ म्) जहाँ समाविष्ट होते हैं, वही आदिबीज ओंकार है। गजवदन गणेश ही प्रणवाकृति (ॐ) है।'

~~o~~

श्रीगणेश-गुणगान

वारण-वदन, विघ्न-वारण, अरुणवर्ण,
सुषमा-सदन, लोक-शोकके हरण हो।
शरण-विहीन दीन-हीनोंके शरण सच्चे,
तरुण तरणि-तेज-पुंजके धरण हो॥
आभा भरे अम्बर-विभूषण-विभा-समान,
भावुक उरोंमें भव्य भावोंके भरण हो।
मोदक-अशन, 'मित्र' मोदके प्रदाता सदा,
गणाधीश! तुम महामंगल-करण हो॥
मंजुल मुकुट शीश, सेंदुर-तिलक भाल,
कुण्डल-कलित कर्ण, गले मणिमाला है।
चारों चारु करोंमें सरोज आदि राज रहे,
दया-दृष्टि सृष्टिकी बुझाती दुःख-ज्वाला है॥
परम पवित्र पाद-पंकज-पराग 'मित्र',
हटा मोह-तम देता ज्ञानका उजाला है।
गुण-गणसागर उजागर तुम्हारी भक्ति,
प्रेम पूरे भक्तोंको पिलाती प्रेम-प्याला है॥
मानस-प्रणेताने प्रथम बन्दनाको कर,
सफल-प्रयास हो विशिष्ट पद पाया है।
महाकवियोंमें महामान उनको है मिला,
चन्द्र-सा धवल यश विश्व-बीच छाया है॥
मानस-निमज्जन-निरत नर हुए 'मित्र'
'मोतियों'को उसके सभीने अपनाया है।
'रामनाम-मणि'का प्रकाश घर-घर हुआ,
श्रेय 'तुलसी'को यह तुमने दिलाया है॥
सचमुच यदि हो प्रधान करुणा-निधान,
हटा विश्वभरका समस्त पाप-भार दो।
धेनु-द्विज-देवोंकी पुनीत पूजा होने लगे,
धर्मका धरामें कर प्रचुर प्रचार दो॥
दास 'मित्र' को भी आत्म-तत्त्वका कराके ज्ञान,
इसका किसी प्रकार जीवन सुधार दो।
अविलम्ब अवलम्ब दे के जगदम्ब-पुत्र,
भव-पारावार-पार इसको उतार दो॥

—श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' नव्य-व्याकरणाचार्य

~~o~~

श्रीगणपतिका स्वरूप एवं उसका रहस्य

(लेखक—पं० श्रीगोविन्ददास 'संत' धर्मशास्त्री, पुराणतीर्थ)

प्रत्येक मांगलिक कार्यमें श्रीगणपतिका प्रथम पूजन होता है। पूजनकी थालीमें मंगलस्वरूप श्रीगणपतिका स्वस्तिक चिह्न बनाकर उसके ओर-छोर अर्थात् अगल-बगलमें दो-दो खड़ी रेखाएँ बना देते हैं। स्वस्तिक-चिह्न श्रीगणपतिका स्वरूप है और दो-दो रेखाएँ श्रीगणपतिकी भार्यास्वरूपा सिद्धि-बुद्धि एवं पुत्रस्वरूप लाभ और क्षेम हैं। श्रीगणपतिका बीजमन्त्र है—अनुस्वारयुक्त 'ग', अर्थात् 'गं' इसी 'गं' बीजमन्त्रकी चार संख्याको मिलाकर एक कर देनेसे स्वस्तिक-चिह्न बन जाता है। इस चिह्नमें चार बीजमन्त्रोंका संयुक्त होना श्रीगणपतिकी जन्मतिथि चतुर्थीका द्योतक है। चतुर्थी तिथिमें जन्म लेनेका तात्पर्य यह है कि श्रीगणपति बुद्धिप्रदाता हैं; अतः जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—इन चार अवस्थाओंमें चौथी अवस्था ही ज्ञानावस्था है। इस कारण बुद्धि (ज्ञान)-प्रदान करनेवाले श्रीगणपतिका जन्म चतुर्थी तिथिमें होना युक्तिसंगत ही है। श्रीगणपतिका पूजन सिद्धि, बुद्धि, लाभ और क्षेम प्रदान करता है, यही भाव इस चिह्नके आसपास दो-दो खड़ी रेखाओंका है।

इस प्रकार मंगलमूर्ति श्रीगणेशस्वरूपका प्रत्येक अंग किसी-न-किसी विशेषता (रहस्य)-को लिये हुए है। उनका बौना (ठिंगना)रूप इस बातका द्योतक है कि जो व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्रमें श्रीगणपतिका पूजन कर कार्य प्रारम्भ करता है, उसे श्रीगणपतिके इस ठिंगने कदसे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि समाजसेवी पुरुष सरलता, नम्रता आदि सद्गुणोंके साथ अपने-आपको छोटा (लघु)मानता हुआ चले, जिससे उसके अंदर अभिमानके अंकुर उत्पन्न न हों। ऐसा व्यक्ति ही अपने कार्यमें निर्विघ्नतापूर्वक सफलता प्राप्त कर सकता है।

श्रीगणपति 'गजेन्द्रवदन' हैं। भगवान् शंकरने कुपित होकर इनका मस्तक काट दिया और फिर प्रसन्न होनेपर हाथीका मस्तक जोड़ दिया, ऐसा ऐतिहासिक वर्णन है। हाथीका मस्तक लगानेका तात्पर्य यही है कि श्रीगणपति बुद्धिप्रद हैं। मस्तक ही बुद्धि (विचारशक्ति)-का प्रधान केन्द्र है। हाथीमें बुद्धि, धैर्य एवं गाम्भीर्यका प्राधान्य है। वह अन्य पशुओंकी भाँति खाद्य-पदार्थको देख पूँछ हिलाकर अथवा खूँटा उखाड़कर नहीं टूट पड़ता; किंतु धीरता एवं गम्भीरताके साथ उसे ग्रहण करता है। उसके कान बड़े होते हैं। इसी प्रकार साधकको भी चाहिये कि वह सुन सबकी ले, पर उसके ऊपर धीरता एवं गम्भीरताके साथ विचार करे। ऐसे व्यक्ति ही कार्यक्षेत्रमें आगे बढ़कर सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीगणपति 'लम्बोदर' हैं। उनकी आराधनासे हमें यह शिक्षा मिलती है कि मानवका पेट मोटा होना चाहिये अर्थात् वह सबकी भली-बुरी सुनकर अपने पेटमें रख ले; इधर-उधर प्रकाशित न करे। समय आनेपर ही यदि आवश्यक हो तो उसका उपयोग करे।

श्रीगणपतिका 'एकदन्त' एकता (संगठन)-का उपदेश दे रहा है। लोकमें ऐसी कहावत भी प्रसिद्ध है कि अमुक व्यक्तियोंमें बड़ी एकता है—'एक दाँतसे रोटी खाते हैं।' इस प्रकार श्रीगणपतिकी आराधना हमें एकताकी शिक्षा दे रही है। यही अभिप्राय उनको मोदक (लड्डू)-के भोग लगानेका है। अलग-अलग बिखरी हुई बूँदीके समुदायको एकत्र करके मोदकके रूपमें भोग लगाया जाता है। व्यक्तियोंका सुसंगठित समाज जितना कार्य कर सकता है, उतना एक व्यक्तिसे नहीं हो पाता। श्रीगणपतिका मुख-मोदक हमें यही शिक्षा देता है।

श्रीगणपतिको सिन्दूर धारण करानेका यह अभिप्राय है कि सिन्दूर सौभाग्यसूचक एवं मांगलिक द्रव्य है। अतः मंगलमूर्ति श्रीगणेशको मांगलिक द्रव्य समर्पित करना युक्तिसंगत ही है। दूर्वांकुर चढ़ानेका तात्पर्य यह है—गजको दूर्वा प्रिय है। दूसरे, दूर्वामें नम्रता एवं सरलता भी है। श्रीगुरु नानक साहब कहते हैं—

नानक नन्हें बनि रहो, जैसी नन्ही दूब।
सबै घास जरि जायगी, दूब खूब-की-खूब॥

श्रीगणपतिकी आराधना करनेवाले भक्तजनोंके कुलकी दूर्वाकी भाँति अभिवृद्धि होकर उन्हें स्थायी सुख-सौभाग्यकी सम्प्राप्ति होती है।

श्रीगणपतिके चूहेकी सवारी क्यों? इसका तात्पर्य यह है कि मूषकका स्वभाव है—वस्तुको काट देनेका। वह यह नहीं देखता कि वस्तु नयी है या पुरानी—बिना कारण ही उन्हें काट डालता है। इसी प्रकार कुतर्की जन भी यह नहीं सोचते कि प्रसंग कितना सुन्दर और हितकर है। वे स्वभाववश चूहेकी भाँति उसे काट डालनेकी चेष्टा करेंगे। प्रबल बुद्धिका साम्राज्य आते ही कुतर्क दब जाता है। श्रीगणपति बुद्धिप्रद हैं; अतः उन्होंने कुतर्करूपी मूषकको वाहनरूपसे अपने नीचे दबा रखा है। इस प्रकार हमें श्रीगणपतिके प्रत्येक श्रीअंगसे सुन्दर शिक्षा मिलती है।

~~~०~~~

भारतीय संस्कृतिमें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम्० ए०, पी-एच्० डी० (द्वय), डी० लिट्०, काव्यतीर्थ, पुराणाचार्य)

प्राचीन भारतीय वाङ्मयमें पार्वतीनन्दनके आठ नामोंका निर्देश है—१-गणेश, २-एकदन्त, ३-हेरम्ब, ४-विघ्ननायक, ५-लम्बोदर, ६-शूर्पकर्ण, ७-गजवक्त्र और ८-गुहाग्रज—

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ३।४४।८५)

ऐसे तो श्रीगणेशके आठसे बढ़ते-बढ़ते सहस्रनामतक निर्दिष्ट हैं, पर स्थान-समयाभावके कारण सहस्रनामोंतक न जाकर यहाँ केवल उपर्युक्त आठ नामोंका ही अनुसंधानात्मक विवेचन करना अभिप्रेत है। चुरादिगणीय '**गण संख्याने**' धातुसे '**अच्**' प्रत्यय करनेसे '**गण**' शब्द निष्पन्न होता है और तब यह '**गण**'-शब्द शिवके प्रमथ-प्रभृति ३६ कोटिमित गणोंका बोधक सिद्ध होता है। इसी प्रकार अदादिगणीय '**ईश् ऐश्वर्ये**' धातुमें '**क**' प्रत्ययके योगसे '**ईश**'-शब्द व्युत्पन्न होता है और '**गण**' तथा '**ईश**'—ये दोनों शब्द परस्पर संहित होकर '**गणेश**'-शब्दकी सिद्धि करते हैं। शब्दशास्त्रानुसार '**गणेश**' का व्युत्पन्नार्थ हुआ गणोंका नेता अथवा शिवका सेनाध्यक्ष। पौराणिक प्रतिपादनानुसार '**गणेश**'-शब्दगत प्रथम अक्षर '**ग**' ज्ञानार्थवाचक है और द्वितीय अक्षर '**ण**' निर्वाणवाचक है तथा अन्तिम '**ईश**' शब्द है—स्वामिवाचक। इस प्रकार सम्पूर्ण गणेशका शब्दार्थ है—ज्ञान तथा निर्वाणका स्वामी ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर या परमतत्त्व आदि[1]।

'**एकदन्त**'-शब्दमें 'एक'-शब्द प्रधानार्थक है तथा 'दन्त'-शब्द बलवाचक है। अतः बहुव्रीहि-समाससम्पन्न 'एकदन्त'-शब्दका अर्थ होता है—सर्वोत्कृष्ट बलशाली[2]।

'**हेरम्ब**'-शब्दका प्रथम अक्षर 'हे' दैन्य या अभाववाचक तथा 'रम्ब'-शब्द पालनार्थक है। अतः षष्ठीतत्पुरुषान्त 'हेरम्ब' का शब्दार्थ हुआ—दीन या भक्तजनोंका सर्वथा पालनकर्ता[3]।

विघ्ननायकका पूर्वार्ध 'विघ्न'-शब्द विपत्ति वा अमङ्गल-वाचक है और उत्तरार्ध 'नायक'-शब्द—खण्डनार्थक या अपहरणार्थक है। अतएव सम्पूर्ण '**विघ्ननायक**'-शब्दका अभिधेयार्थ है—अशेष विपत्ति या विघ्न-बाधाओंका संहारक[4]।

'**लम्बोदर**'-शब्द बहुव्रीहि-समासके द्वारा सिद्ध हुआ है। इसका विग्रह होता है—'**लम्बम् उदरं यस्य सः लम्बोदरः**।' अर्थात् लंबा है उदर—पेट जिसका, वह। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके द्वारा दिये गये नैवेद्यों तथा पिताके द्वारा समर्पित विविध प्रकारके मिष्ठान्नोंके खानेसे गणेशका उदर लंबा हो गया है। अतः गणेश 'लम्बोदर'-शब्दसे अभिहित हैं[5]।

---

१. ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥ (ब्रह्मवैवर्त्तपु० ३।४४।८७)

२. एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः। बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥

३. दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः। दीनानां पालकं तं च हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥

४. विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः। विपत्खण्डनकर्तारं नमामि विघ्ननायकम्॥ (ब्रह्मवैवर्त्तपु० ३।४४।८८—९०)

५. विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा। पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम्॥
~~~

'शूर्पकर्ण'-शब्दमें भी बहुव्रीहि-समास है और उसका अर्थ होता है—सूपके समान बड़े-बड़े कर्ण हैं जिनके, वे गणेश। अर्थात् जिस प्रकार सूपसे अन्नोंमेंसे दूषित तत्त्वोंको फटककर उन्हें परिष्कृत कर दिया जाता है, उसी प्रकार श्रीगणेश अपने शूर्पकर्णोंसे भक्तजनोंके विघ्नोंका निवारण कर विविध ऐश्वर्य तथा ज्ञान प्रदान करते हैं[१]।

'गजवक्त्र'-शब्दार्थके प्रतिपादनमें कहा गया है कि जिनके मस्तकपर मुनिके द्वारा प्रदत्त विष्णुका प्रसादरूप पुष्प विराजमान है तथा जो गजेन्द्रके मुखसे युक्त हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ[२]।

'गुहाग्रज'-शब्दमें षष्ठीतत्पुरुष-समासके योगसे इसका तात्पर्य है कि जो गुह—स्वामि कार्त्तिकेयसे पूर्व जन्म ग्रहणकर शिवके भवनमें आविर्भूत हुए तथा समस्त देवगणोंमें अग्रपूज्य हैं, उन गुहाग्रजदेवकी मैं वन्दना करता हूँ[३]। गुहाग्रज-शब्दमें **'गुहः अग्रजो यस्य सः'** इस प्रकार बहुब्रीहि-समास करनेपर श्रीगणेश स्वामिकार्त्तिकेयके अनुज भी सिद्ध होते हैं।

अमरकोश (१। १। ४०-४१)-में उपर्युक्त आठ नामोंके अतिरिक्त 'विनायक' और 'द्वैमातुर'—इन दो विशिष्ट नामोंका विवरण उपलब्ध होता है।

गजानन और द्वैमातुर—ये दो विशिष्ट नाम रहस्यात्मक हैं। इनके रहस्योद्घाटनमें एक पौराणिक उपाख्यानको उल्लिखित करना उपयोगी प्रतीत होता है। एक बार देवराज इन्द्र 'पुष्पभद्रा' नदीके तटपर आये। राजश्रीसे समन्वित, मदोन्मत्त कामातुरके रूपमें वे इधर-उधर देख रहे थे। उस नदीके तीरपर एक अति मनोरम पुष्पोद्यान था और वहाँ थी पूर्ण एकान्त निर्जनता। उस समय महेन्द्रने चन्द्रलोकसे आती हुई परम सुन्दरी अप्सरा रम्भाको देखा। रम्भाकी स्वीकृति पाकर देवेन्द्र उसके साथ क्रीड़ा करने लगे। स्थलक्रीड़ाके अनन्तर दोनोंने जलक्रीड़ा की। इसी मध्य वहाँ अकस्मात् महर्षि दुर्वासा आ धमके। वे वैकुण्ठसे शिवलोकको जा रहे थे। महेन्द्रने उन्हें सादर प्रणाम किया और महर्षिसे आशीर्वचन पाये। मुनीन्द्र दुर्वासाने नारायणसे प्राप्त एक पारिजात-पुष्प महेन्द्रको देकर कहा—'यह पुष्प सम्पूर्ण विघ्नोंका हरणकर्ता है। जो इसे सादर अपने मस्तकपर धारण करता है, वह सर्वथा तेजस्वी, बुद्धिमान्, विक्रमी, बलशाली, समस्त देवोंसे अधिक श्रीसम्पन्न तथा हरि-तुल्य पराक्रमी होता है और जो पामर अहंकारवश इस हरिप्रसादरूप पुष्पको सादर सिरपर धारण नहीं कर अपमानित करता है, वह अशेष श्री-सम्पत्तिसे भ्रष्ट होकर स्वजनोंसे च्युत हो जाता है[४]।' यह कहकर महर्षि दुर्वासा शिवलोकको चलते बने। इन्द्रने अहंकारवश उस पुष्पको अपने सिरपर न धारण कर रम्भाके समक्ष ऐरावत हाथीके मस्तकपर रख दिया। इससे तुरंत शक्र श्रीभ्रष्ट हो गये। इन्द्रको श्रीभ्रष्ट देखकर रम्भा उन्हें छोड़कर स्वर्ग चली गयी। गजराज इन्द्रको नीचे गिराकर अनन्त महारण्यमें चला गया और हथिनीके साथ विहार करने लगा। उस वनमें उसके बहुत-से बच्चे हुए। इसी समय श्रीहरिने उस हाथीका मस्तक काटकर बालक गणेशकी शनैश्चरकी कुदृष्टिसे कटी गर्दनमें लगा दिया।

---

१. शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ । सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ३ । ४४ । ९१-९२)

२. विष्णुप्रसादपुष्पं च यन्मूर्ध्नि मुनिदत्तकम् । तद् गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम्॥

३. गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये । वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम्॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ३ । ४४ । ९३-९४)

४. सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम् । मूर्ध्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः॥
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत् । तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदापि तम्॥
ज्ञानेन तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च । सर्वदेवाधिकः श्रीमान् हरितुल्यपराक्रमः॥
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहंकारेण पामरः । नैवेद्यं च हरेरेव स भ्रष्टश्रीः स्वजातिभिः॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ३ । २० । ५४—५७)

सम्भवतः इसी कारण श्रीगणेश 'द्वैमातुर' कहे गये **'द्वयोर्मात्रोरपत्यं पुमान् द्वैमातुरः।'** अर्थात् उनकी एक माता जननी पार्वती और दूसरी माता वह हथिनी हुई, जिसके पुत्रका मस्तक गणेशमें योजित किया गया था। उसी समयसे वे 'गजानन'की संज्ञासे भी घोषित हुए।

एकदन्तता-रहस्यके प्रतिपादनमें भी इसी प्रकार एक पौराणिक उपाख्यान उद्धरणीय प्रतीत होता है। इस पृथ्वीको इक्कीस बार भूपशून्य कर और महावीर कार्तवीर्य तथा बलवान् सुचन्द्रको मार चुकनेके पश्चात् परशुराम अपने गुरु शंकर, माता पार्वती, भ्राता गणेश तथा कार्तिकेयके दर्शनको कैलासपर्वतपर पहुँचे।

वहाँपर परशुरामने अपने परमगुरु भगवान् शिवको प्रणाम करनेके लिये भीतर जानेकी इच्छा प्रकट की। इसपर द्वारपर स्थित गणेशने उन्हें रोककर कहा—'अभी भगवान् शंकर निद्रित हैं। उनके जग जानेपर उनसे आज्ञा लेकर मैं भी आपके साथ ही चलूँगा—कुछ समयतक आप प्रतीक्षा करें।' गणेशके रोकनेपर भी परशुराम रुकना नहीं चाहते थे। अब दोनोंमें वाग्युद्ध होने लगा। वाग्युद्धके बढ़ते-बढ़ते दोनों क्रोधाविष्ट हो गये। अब परशुराम गणेशपर अपने फरसेसे आक्रमण करनेको पूर्णरूपसे प्रस्तुत हो गये; परंतु कार्तिकेयके मध्यमें पड़ जानेसे कुछ क्षणिक शान्ति आयी। क्षणोपरान्त पुनः परशुरामने गणेशको धक्का दिया और वे गिर पड़े। पुनः उठकर गणेशने परशुरामको फटकारा। इसपर परशुरामने कुठार उठा लिया। तब गणेश अपनी सूँड़में परशुरामको लपेटकर घुमाने लगे और घुमाते-ही-घुमाते गणेशने उन्हें तीनों लोकोंका दर्शन कराकर गोलोकवासी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराये। अब परशुरामने अपने अभीष्टदेव श्रीकृष्ण, अपने गुरु शम्भुके द्वारा प्रदत्त परम दुर्लभ कवच और स्तोत्रका स्मरण किया। तदनन्तर परशुरामने अपने उस अमोघ कुठारको, जिसकी प्रभा ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सूर्य-प्रभासे सौगुनी थी और जो तेजमें शिव-तुल्य था, गणेशपर चला ही दिया। पिताके उस अमोघ अस्त्रको आते देखकर स्वयं गणपतिने उसे अपने वाम दन्तसे पकड़ लिया—उस अस्त्रको व्यर्थ नहीं होने दिया। तब महादेवके बलसे वह कुठार वेगपूर्वक गिरकर मूलसहित गणेशके दाँतको काटकर पुनः परशुरामके हाथमें लौट आया[1]। तबसे गणेश 'एकदन्त'के नामसे अभिहित होने लगे।

इस पौराणिक उपाख्यानसे गणेशका 'एकदन्तत्व' सिद्ध और चरितार्थ होता है।

गणेशकी अग्रपूज्यता

गणेशदेवकी सर्वप्रथम पूजा केवल पंचदेवयजनमें ही नहीं, प्रत्युत अखिल—३३कोटिमित देवोंके अर्चनमें भी होती है; क्योंकि 'पुण्यक' नामक व्रताचरणके प्रभावसे स्वयं साक्षात् गोलोकनाथ—विष्णु आदि देवोंके भी देव भगवान् श्रीकृष्ण ही पार्वतीके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए थे। अतः श्रीकृष्ण और गणेश—दोनों अभिन्न अर्थात् एक ही तत्त्व हैं। पौराणिक प्रतिपादनानुसार वामन, नरसिंह, रामादिके अवतार केवल अंशावतार हैं, परंतु श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण षोडश कलाओंसे परिपूर्ण साक्षात् भगवान्—परब्रह्म, परमात्मा वा परमतत्त्व ही हैं[2]। पुनः पार्वतीने व्रताचरणकालीन स्तुतिक्रममें श्रीकृष्णसे उनके समान ही अलौकिक सुन्दर पुत्रकी कामना की थी[3]। भगवान् श्रीकृष्ण बालकरूप धारणकर महलके भीतर स्थित पार्वतीकी शय्यापर जा शिवके वीर्यमें मिश्रित होकर पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे, अतः श्रीकृष्ण और गणेश दोनों अभिन्न तत्त्व हैं। एक स्थलपर विष्णुने कहा है कि मेरे वरदानसे गणेशकी पूजा सर्वप्रथम होगी। सम्पूर्ण देवोंकी पूजाके समय सबसे पहले गणेशकी पूजा करके ही मनुष्य निर्विघ्नतापूर्वक पूजाके फलको पा लेता है, अन्यथा उसकी पूजा व्यर्थ

---

१. सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम्। अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुरुम्॥
चिक्षेप पर्शुमव्यर्थं शिवतुल्यं च तेजसा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने॥
पितुरव्यर्थमस्त्रं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम्। जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह॥
निपत्य पर्शुर्वेगेन छित्त्वा दन्तं समूलकम्। जगाम रामहस्तं च महादेवबलेन च॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ४३। ३१—३४)

२. 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (भागवत १। ३। २८)

३. 'व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम्।' (ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ७। १२५$\frac{1}{2}$)

हो जाती है[१]। विष्णुने जब गणेशके धड़पर गजका मस्तक योजित कर उस बालकको जीवित कर दिया, तब विष्णुने शुभ समय आनेपर देवों तथा मुनियोंके साथ सर्वश्रेष्ठ उपहारोंसे उस बालकका पूजन किया और उससे कहा—'सर्वश्रेष्ठ! मैंने सर्वप्रथम तुम्हारी पूजा की है, अतः तुम सर्वश्रेष्ठ होओ[२]।

इन विवृतियोंसे ध्वनित होता है कि गणेश आदिकालसे निखिल देवाग्रपूज्य हैं।

ऋग्वेदके ब्रह्मणस्पतिको गणपति[३] की उपाधि दी गयी है, जिससे ज्ञानदेवता बृहस्पतिका समकक्ष बननेमें गणपतिको पश्चात्कालीन धारणाओंमें सहायता मिली। रुद्रके वर्णनमें रुद्रके अनेक गण कहे गये हैं, उन गणोंके पतिका नाम गणपति है और गणपतिका ही द्वितीय नाम विनायक या गणेश है।

मानवगृह्यसूत्र (२।१४)-में शालकटंकर, कूष्माण्ड, राजपुत्र, उस्मित और देवयजन नामक चार विनायकोंका उल्लेख है। वे विविध विघ्नकर्ताओंके रूपमें विवृत किये गये हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृतिमें[४] वर्णन आया है कि रुद्र और ब्रह्मदेवने विनायकको गणोंका नायक बनाकर मध्वयज्ञोंमें विघ्न करनेको नियत किया। वहाँ एक ही विनायकका उल्लेख है, पर उनके छः नाम कथित हुए हैं—(१) मित, (२) सम्मित, (३) शाल, (४) कटंकट, (५) कूष्माण्ड और (६) राजपुत्र। विनायककी माताका नाम वहाँ अम्बिका है। विनायक स्वभावतः हानिकारक होनेपर भी उपासनासे हितकर माने गये हैं। याज्ञवल्क्य-स्मृतिका रचनाकाल षष्ठ शताब्दी स्वीकृत किया गया है। कुछ शिलाचित्रोंमें विनायकका मस्तक हाथीके सिरके समान मिलता है और 'मालतीमाधव' नाटककी आरम्भिक वन्दनामें भवभूतिने विनायकके ऐसे ही सिरका वर्णन किया है।

गुप्तकालीन लेखोंमें गणपतिकी चर्चा नहीं मिलती, पर एलोराके चित्रोंमें काल-कालीके संगमें गणपतिका चित्र मिलता है, जो आठवीं शताब्दीका माना जाता है। जोधपुरसे २२मील उत्तर-पश्चिम पटियाला नामक स्थानके एक शिलालेखसे गणपति-पूजा-प्रचारका प्रमाण उपलब्ध होता है। वह लेख ८६२ई०का स्वीकृत किया गया है। इस प्रकार ईसाके पश्चात् षष्ठी शतीसे नवमी शतीतक गणपति-पूजा-प्रचारके प्रमाण मिलते हैं। आनन्दगिरिने 'शंकरविजय'में गाणपत्योंके छः सम्प्रदायोंका उल्लेख किया है। उच्छिष्ट-गणपतिकी उपासना वाममार्गियोंकी प्रथाके समान है। उच्छिष्ट-गाणपत्य न जाति-भेद मानते हैं, न विवाह-बन्धन, न भोजन-प्रतिबन्ध और न सुरापान-दोष। वे ललाटपर लाल तिलक लगाते हैं। साधारणतः हिन्दुओंकी सभी पूजाओंमें पहले गणपतिकी पूजा होती है। महाराष्ट्रमें भाद्रपद मासकी चतुर्थीको गणपतिकी पार्थिव मूर्तिकी पूजा बड़े समारोहसे की जाती है। पूनाके निकट चिंचवडमें गणपति-पूजनकी विशेष व्यवस्था है। गणपतिको

---

१. रेतःपतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया। विधाय विप्ररूपं तु आजगाम रतेर्गृहम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ८। १९)

पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माकं जगतां विभुः। सर्वाग्रे पूजनं तस्य भविता मद्वरेण वै॥
पूजासु सर्वदेवानामग्रे सम्पूज्य तं जनः। पूजाफलमवाप्नोति निर्विघ्नेन वृथाऽन्यथा॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ६। ९७-९८)

२. अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह। पूजयामास तं बालमुपहारैरनुत्तमैः॥
सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम। सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। १३। १-२)

३. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
(२।२३।१)

४. विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः। गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा॥
मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ। कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः॥
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम्।
(प्रकरण ११। २७१। २८५ और २९०)

इतना सम्मान उनके रुद्रगणोंके स्वामी होनेके कारण विघ्नविनाशार्थ तथा सार्वत्रिक कल्याणार्थ ही अर्पित किया जाता है[१]।

शुक्लयजुर्वेद-संहितामें गणपतिका उल्लेख मिलता है। यथा—

'गणानां त्वा गणपतिः हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिः हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिः हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।' (यजुर्वेद २३। १९)

उपर्युक्त यजुर्वेदीय मन्त्र अश्वमेध यज्ञके प्रकरणमें आया है। इसके भाष्यमें उवट लिखते हैं—

'पत्न्यः त्रिः परियन्त्यश्वम्। गणानां त्वा स्त्रीगणानां मध्ये त्वां युगपत् गणपतिं हवामहे आह्वयामः। एवमेव प्रियाणां मनुष्याणां मध्ये त्वामेव प्रियपतिं प्रियं भर्तारं हवामहे। एवमेव निधीनां सुखनिधीनां मध्ये त्वामेव निधिपतिं हवामहे। कथं कृत्वा हे वसो अश्व, मम त्वं पतिर्भूयाः इति। महिषी अश्वमुपसंविशति। आहमजानि। आकृष्य अहम् अजानि 'अज गतिक्षेपणयोः'। क्षिपामि। गर्भधं गर्भस्य धारयितृ रेतः। आत्वमजासि गर्भधम्। आकृष्य च त्वं हे अश्व, अजासि क्षिपसि गर्भधं रेतः।'

उपर्युक्त भाष्यका अर्थ तो स्पष्ट ही है। अतः इसका अनुवाद अनावश्यक-सा लगता है। इस प्रसंगमें यह कथन प्रयोजनीय प्रतीत होता है कि धर्माधर्माचरण या पुण्यापुण्याचरण देश, काल और परिस्थितिके अनुसार व्यापृत होता है। सम्भव है, एक देशका धर्म तदितर देशके लिये अधर्म या अहितकर सिद्ध हो जाय; एक कालका अनुष्ठित सुकर्म कालान्तरमें कुकर्मका रूप धारण कर ले; एक परिस्थितिका असत्य भाषण दूसरी परिस्थितिमें धर्ममें परिगणित हो जाय; तथा च एक ही ओषधि किसी व्यक्तिके लिये हितकर है तो वही दूसरेके लिये घातक। इसी प्रकार उपर्युक्त मन्त्र वैदिक युगमें मेध्य अश्वके लिये प्रार्थनारूप था तो आज वही मन्त्र गणेशदेवके आवाहनमें प्रयुक्त होने लगा है।

महाभारतमें भी एक स्थलपर श्रीगणेशका नामोल्लेख मिलता है। भगवान् सत्यवतीसुत व्यास जब अपने मनः-कल्पित महाभारत-साहित्यको लिपिबद्ध करनेके लिये उद्यत हुए, तब उन्हें एक लेखककी अपेक्षा हुई—ऐसा लेखक अपेक्षित हुआ, जो व्यासके द्वारा बोले गये श्लोकोंको अतित्वरित गतिसे लिखता जाय। इस चिन्तनमें संलग्न व्यासजीकी स्मृतिमें पार्वतीनन्दन गणेश आ गये। स्मृतमात्र गणेश व्यासके समीप साक्षात् ही आ विराजमान हुए। व्यासजीने उनके समक्ष महाभारत-लेखन-सम्बन्धी अपना मन्तव्य निवेदित किया। गणेशने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा—'आप भी ऐसी अविराम गतिसे मुझे लेखनीय श्लोक देते जायँ कि एक क्षणके लिये भी मेरी लेखनी न रुके। जहाँ मेरी लेखनी रुकी, उसी क्षण मैं लिखना बंद कर दूँगा।' इसपर व्यासजीने तुरंत सोचकर कहा—'पार्वतीनन्दन! आपको भी मेरे साहित्यको समझते हुए लिखना है।' इसपर गणेश सहमत हो गये। व्यासदेव अविराम बोलते गये और गणेशजी भी समझते हुए अविराम लिखते गये। सम्पूर्ण महाभारत साहित्यको उन्होंने लिपिबद्ध कर दिया[२]।

महाभारतमें गणदेवताके रूपमें 'विनायक'की भी विवृति उपलब्ध होती है। विनायकके नामका शुद्ध भावसे कीर्तन करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है[३]।

गम्भीर एवं अभावुकतामय विचार करनेपर श्रीगणेशका दर्शन सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपोंमें व्यक्त होता है। सगुणात्मक शक्ति भी उनमें अलौकिक-सी प्रतीत होती है। गणेशजीने परशुरामको अपनी अत्यन्त लम्बी सूँड़में लपेटकर अपने योगप्रभावसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन करा दिया था। गणेशने उन्हें सप्तद्वीप, सप्तसागर, सप्तपर्वत, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, ध्रुवलोक, गौरीलोक आदि कल्पनातीत स्थानोंका दर्शन कराकर गम्भीर समुद्रमें फेंक दिया। जब वे तैरने लगे, तब फिर पकड़कर उन्हें उठा लिया और घुमाते हुए वैकुण्ठ दिखलाकर फिर गोलोकमें साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराये[४]। पुनः निर्गुणात्मक तत्त्वकी दृष्टिसे तो वे ब्रह्माभिन्नरूप साक्षात् श्रीकृष्ण ही थे; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ही तो अपने सम्पूर्ण अंशों अथवा कलाओंके साथ पार्वतीके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे[५]।

~~~o~~~

१. 'भारतीय ईश्वरवाद' द्र०—पृ० ४३५—४३७।
२. महाभारत, आदिपर्व १। ७५—७९।
३. महाभारत, अनुशासनपर्व १५०। २५—२९।
४. ब्रह्मवैवर्तपु० ३, अध्याय ४३।
५. ब्रह्मवैवर्तपु० ३, अध्याय ८।
~~~

श्रीगणेशकी भगवत्ता एवं महत्ता

(लेखक—डॉ० श्रीभवानीशंकरजी पंचारिया, एम्०ए०, पी-एच्० डी०)

अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम्।
तन्नरं वपुषि कुञ्जरं मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः॥

जो शान्त और पावन हैं, जिनका वैभव अचिन्त्य है, जो शरीरसे तो नर और मुखसे गजाकार हैं, उन किन्हीं अनिर्वचनीय तेज:पुंजका हम विघ्नरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये चिन्तन करते हैं।'

आजका वैज्ञानिक मानव अन्तरिक्ष जगत् और भौतिक जगत्के अनेकों रहस्योंका भेदन करते हुए अपनी नयी-नयी स्थापनाएँ कर रहा है। नवीन प्रयोगों और भौतिकताकी दिग्विजयने उसे निरा पदार्थवादी बना दिया है। अब वह अपनेको सृष्टिका नियन्ता सिद्ध करते हुए ईश्वरकी सत्ताको भी चुनौती देनेके लिये तत्पर है। धर्म उसके लिये अन्धविश्वास, श्रद्धा बुद्धिहीनता और विश्वास मूढ़ताका प्रतीक है। जडपदार्थ-वादी फायरवाख कहा करता था—'मनुष्योंको भगवान्ने नहीं बनाया, अपितु भगवान्को मनुष्योंने बनाया है।' इसके विपरीत भारतीय महर्षियों-योगियोंने समाधि-अवस्थामें अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा परमात्माके जिन-जिन दिव्य गुण-गणोंका अनुभव किया, विभिन्न शास्त्रोंने उन-उन गुणोंवाले नामोंका अनुसंधान किया है। वस्तुतः ईश्वर अद्वितीय है, अर्थात् परब्रह्म परमात्मा एक ही है, किंतु कोई उसे अव्यक्त मानता है और कोई व्यक्त। सृष्टिका सत्ताधीश तत्त्व एक ही है। उसे ही **'ब्रह्म'**, **'ईश्वर'**, **'परमात्मा'** आदि अनेक नामोंसे जाना जाता है। यथा—

'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते'

(श्रीमद्भागवत १। २। ११)

अर्थात्—'वह एक ही तत्त्व तत्तत्कारणोंके तारतम्यसे ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि नामोंसे व्यपदिष्ट होता है।'

श्रीगणेश-तत्त्व क्या है—यह जिज्ञासा प्रायः सभी गणेशोपासकोंके हृदयोंको उद्वेलित किया करती है। महर्षि व्यासजीने 'श्रीमहागणपतिसहस्रनामस्तोत्र'में 'गणेश'के पर्यायवाची नामोंमें उन्हें **प्रथमः** १८९, **प्रथमेश्वरः** १९०, **तत्त्वानां परमं तत्त्वम्** ५०२, **परमात्मा** ५४१, **ब्रह्म** ५५९, **भगवान्** ५७३, **ब्रह्मा** ७४२, **विष्णुः** ७४३, **शिवः** ७४४, **रुद्रः** ७४५, **ईशः** ७४६, **शक्तिः** ७४७ आदि विशेषणोंसे व्यक्त किया है। अतः नामैक्यसे यह प्रतिपादित होता है कि श्रीगणेश और परमात्मा या परमतत्त्वमें अभिन्नता है।

'गणेशाथर्वशीर्ष' (१)-में उन्हें प्रत्यक्ष परमात्मा निरूपित करते हुए कहा गया है—

'त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।'

उपरिलिखित वचनोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि जो 'केवल' शब्द प्रयुक्त किया गया है, वह उसी 'परब्रह्म-गणेश' का सूचक है—जो सृष्टिके आदिमें रहा है, जिससे यह नाम-रूपात्मक सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसके भीतर वह स्थित है तथा महाप्रलयके समय पुनः जिसके भीतर वह विलीन हो जाता है। इसी कारणसे श्रीगणेशको अनादि-देवताके रूपमें समादृत किया गया है। वे ही योगाधीश्वर, निधिपति, ज्ञान और बुद्धिके प्रदाता भी हैं। उन्हें ही वक्रतुण्ड, एकदन्त, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, विघ्नेश्वर, गणपति, गजानन, विनायक, सिद्धिदाता कहा गया है। उन्हें वेद भी 'ऐसा नहीं है—**नेति नेति**' कहकर अव्यक्त निरूपित करता है, किंतु जो जगत्के लीलाविलासहेतु अवतरित होकर व्यक्त बनकर सज्जनोंपर अनुग्रह और दुष्टोंका निग्रह करते हैं। अतएव श्रीगणेश ही ब्रह्म हैं। वे 'निर्गुण-सगुण', 'व्यक्ताव्यक्त' भी हैं।

गणेशपुराणके उपासनाखण्ड, अध्याय ४० के अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि श्रीगणेश ही आदिदेव, परब्रह्म, जगत्के पालक, नियन्ता और प्रेरक तत्त्व हैं। श्रीव्यासजीने श्रीगणेश-महत्त्व-सूचक एक कथामें इस बातका उल्लेख किया है कि पूर्वकालमें त्रिपुरासुरने वरदानके प्रभावसे समस्त मृत्युलोक, ब्रह्म और वैकुण्ठलोकको अपने वशवर्ती कर अपनी अखण्ड-सत्ताकी स्थापना कर ली। समस्त देवता त्रिपुरासुरके अत्याचारोंसे संतप्त होकर नारदजीसे पूछते हैं—

'यह असुर हमारे मारनेपर भी नहीं मर रहा है।

इसने हम सबको अधिकारहीन कर दिया है। कृपया बताइये, अब हम किसकी शरणमें जायँ?'

नारदजीने देवताओंसे प्रत्युत्तरमें कहा—'पूर्वकालमें त्रिपुरासुर आदिदेव श्रीगणेशको प्रसन्न कर आपलोगोंसे निर्भय होनेका वरदान प्राप्त कर चुका है। किंतु श्रीगणेशने बुद्धिमत्तासे उसकी मृत्युका केवल एक उपाय रख छोड़ा है। अतः आपलोग कठोर तप करते हुए अपनी मंगल कामना-हेतु उन्हें प्रसन्न कर उनसे त्रिपुरासुर-वधका रहस्य जाननेका प्रयास करें।'

कहा जाता है कि देवताओं और ऋषियोंने नारदजीके बताये अनुसार एक सहस्र दिव्यवर्षतक श्रीगणेशका ध्यान एवं स्तुति की। देवताओंने प्रार्थनामें श्रीगणेशका 'परमात्मा' के रूपमें स्मरण किया था, यह अधोलिखित श्लोकोंसे ध्वनित होता है

नमो नमस्ते परमार्थरूप नमो नमस्तेऽखिलकारणाय।
नमो नमस्तेऽखिलकारकाय सर्वेन्द्रियाणामधिवासिनेऽपि॥
नमो नमो भूतभयाय तेऽस्तु नमो नमो भूतकृते सुरेश।
नमो नमः सर्वधियां प्रबोध नमो नमो विश्वलयोद्भवाय॥
नमो नमो विश्वभृतेऽखिलेश नमो नमः कारणकारणाय।
नमो नमो वेदविदामदृश्य नमो नमः सर्ववरप्रदाय॥

(श्रीगणेशपुराण, उपासना ४०। ४२—४४)

'हे सत्यस्वरूप! आपको बार-बार नमस्कार है। आप ही सब चराचर सृष्टिके कारण हैं, अतः आपको सादर प्रणाम। आप सृष्टिके नियन्ता एवं सब इन्द्रियोंके अधिष्ठाता हैं, आपको हम नमन करते हैं। हे सुरेश्वर! भूतमय और भूतोंको उत्पन्न करनेवाले आपको हम पुनः प्रणाम करते हैं। आप बुद्धिकी वृत्तियोंके ज्ञाता, सृष्टि-रचयिता, उसकी स्थिति और लयरूप हैं। आपको हमारा प्रणाम। हे सर्वेश्वर, विश्वपालक, सब कारणोंके परम कारण! हम आपको सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। आप वेदवेत्ताओंके लिये भी अदृश्य हैं, हम बार-बार सबको वर देनेवाले आपको सादर नमस्कार करते हैं।'

उपर्युक्त गणेशपुराणमें देवताओंकी वन्दना इस बातकी द्योतक है कि श्रीगणेश ही देववन्दित, सर्वपूज्य, जगत्के परम कारण एवं उसकी स्थिति, उत्पत्ति और लयके एकमात्र हेतु हैं। कहा जाता है कि उन्हींके अनुग्रहसे देवताओंके समस्त संताप दूर हो सके। आज भी हम देखते हैं कि सनातन परम्परासे हिंदूशास्त्रोंमें कार्यारम्भके पूर्व मंगलमूर्ति विघ्नेशकी वन्दना मनोरथकी पूर्ति करती है। हमारे इस कथनकी पुष्टि निम्न शब्दोंसे भी होती है—

सर्वमङ्गलकार्येषु भवान् पूज्यो जनैः सदा।
मङ्गलं तु सदा तेषां त्वत्पादे च धृतात्मनाम्॥

(सत्योपाख्यान पू०, अ० २३)

अतः सनातन परम्परानुसार भी समस्त मंगलादि कार्योंके लिये श्रीगणेशजी सदा पूजनीय माने गये हैं। जो कार्यारम्भपर उनके चरणोंका ध्यान करता है, उसके समस्त कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते देखे जाते हैं। महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजीने तो गणेशजीके स्मरणमात्रसे ही समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिका संकेत किया है। उनके कथनानुसार श्रीगणेश एकमात्र ऐसे देवता हैं, जो केवल स्मरणमात्रसे ही प्रसन्न हो जाया करते हैं। इसका यह कारण है कि श्रीगणेश ऋद्धि-सिद्धि और बुद्धिके दाता हैं। 'ॐ' स्वरूप उनकी मुखाकृति मंगलमयी और सिद्धिदात्री है।

श्रीगणेश ही सगुण और निर्गुण ब्रह्म

स्वरूपतः ब्रह्मको निर्गुण माना जाता है, जो कि उसका यथार्थ स्वरूप है; किंतु कहा जाता है कि वही मायाकी उपाधिसे सगुण-सा प्रतीत होने लगता है। अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि निर्गुण कभी सगुण नहीं हो सकता और न सगुणको ही निर्गुण कहा जा सकता है। फिर हम श्रीगणेशको ही निर्गुण और सगुण दोनों ही कैसे मान लें?

शास्त्रकारों और संतोंका इस सम्बन्धमें कथन है कि माया भी ब्रह्मकी ही शक्ति है। पुनश्च शक्ति और शक्तिमान् उसी तरह अभिन्न हैं, जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति अभिन्न होती है। अतएव मायासे परे होनेपर वह निर्गुण कहलाता है। वह नित्य-निर्गुण होते हुए भी नित्य-सगुण हुआ करता है। निर्गुण-सगुणका एक अर्थ यह भी लगाया जाता है कि चूँकि हम अपने चर्मचक्षुओंसे उसके तेजस्वी स्वरूपको नहीं देख पाते, अतः उसे निराकार या निर्गुणके नामसे पुकारते हैं; किंतु उन्हींके जिस तेजस्वी स्वरूपको हम देख सकते हैं, उसे ही साकार या सगुणकी उपाधि प्रदान करते हैं। गणेशमें दोनों तत्त्व एक साथ विद्यमान होनेसे वे एक साथ निर्गुण-सगुण हैं।

'गणपत्यथर्वशीर्ष' में कहा गया है—"आप ही प्रत्यक्ष तत्त्व 'परमात्मा' हैं—**त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि।**" (१)

'गण'-शब्दमें 'ग' का तात्पर्य दृश्यादृश्य जगत्में रहनेवाला 'ब्रह्म' है तथा 'ण' का आशय है—मन-वाणीसे रहित और संयोग एवं अयोगमें रहनेवाला। इस तरह 'गकार' और 'णकार' रूपसे गणेशको निर्गुण-सगुण कहा जाता है।

इसी तरह '**त्वं**' शब्द नरात्मक है और '**तत्**' शब्द गजात्मक तथा दोनोंके ही अभेदमें '**असि**' क्रियापद है। निर्गुण और सगुणके मध्य प्रणव है। अतएव जिसे 'गकार' और 'णकार' से समन्वित कहा गया है, वही प्रत्यक्ष परमात्मा है।

श्रुतिवाक्यमें 'गकार' और 'णकार' का यथार्थ रहस्य प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः समस्त जगत् क्या है? इसका प्रत्युत्तर हमें आगे लिखी हुई पंक्तियोंमें मिलता है—

मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम्।
गकारात्मकमेवं तत्तत्र ब्रह्म गवाचकः॥
मनोवाणीविहीनं च संयोगायोगसंस्थितम्।
णकारात्मकरूपं तण्णकारस्तत्र संस्थितः॥
विविधानि णकाराणि प्रसूतानि महामते।
ब्रह्माणि तानि कथ्यन्ते तत्त्वरूपाणि योगिभिः॥
निरोधात्मकरूपाणि कथितानि समन्ततः।
गकारस्य णकारस्य नाम्नि गणपतेः स्थितौ॥
तदा जानीहि भो योगिन् ब्रह्माकारौ श्रुतेर्मुखात्।
तयोः स्वामी गणेशश्च योगरूपेण संस्थितः॥
तं भजस्व विधानेन शान्तिमार्गेण पुत्रक॥

कहनेका आशय यह है कि गकारात्मक ब्रह्म धारण करनेयोग्य है—तथा वह मन और वाणीमय है तथा दृश्यादृश्य, व्यक्ताव्यक्त, निर्गुण-सगुण स्वरूपवाला है। 'गण' शब्दमें णकारात्मक 'ण' मन और वाणीसे परे है अर्थात् निर्गुणस्वरूप है। जो संयोग और अयोगमें स्थित है अर्थात् मुक्ति और बन्धनका प्रतीक है। 'गकार' सगुण-प्रतिपादक है और 'णकार' निर्गुणवाचक। सगुणरूपी गकारके साथ निर्गुणका बोध हो, इसलिये 'णकार' का योग 'गकार' के साथ किया गया, जिससे 'गण'-शब्दकी निष्पत्ति हुई और उससे निर्गुण-सगुणात्मक 'ब्रह्म' गणेशका बोध हुआ। इस गकार और णकारसे ही अनेक ब्रह्मा और सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है—ऐसा योगीलोगोंका कथन है।

'गणेश' शब्दकी स्थितिमें 'गकार' और 'णकार' दोनों स्थित हैं, जो ब्रह्माकार हैं अर्थात् ओंकारस्वरूप हैं, यह श्रुति-प्रतिपादित बात है। 'ग' और 'ण' अक्षरके देवता गणेश हैं। 'गण'-शब्दमें गणपति योगरूपसे स्थित हैं। अतः गणेशकी उपासना शान्तिपूर्वक उभय—निर्गुण और सगुण रूपोंमें की जा सकती है।

श्रुतिवाक्योंमें कहा गया है कि इस सृष्टिमें सर्वत्र ब्रह्म विद्यमान है:—

'**ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।**'
(मुण्डक-उप० २। २। ११)

अस्तु, इस सिद्धान्तानुसार 'गणेश' भी 'निर्गुण-सगुण'-रूपसे सर्वत्र विद्यमान हैं।

'गणेशोत्तरतापिनीयोपनिषद्' में कहा गया है:—

'**अप्राप्यमप्राप्यं च अज्ञेयं चाज्ञेयं च। विकल्पासहिष्णु तच्छक्तिकं गजवक्त्रं गजाकारं जगदेवावरुन्धे।**' (३)

अर्थात्—'जो मनोगतिशून्य है, अर्थात् जिसे मनसे न जाना जा सके, जो अज्ञेय है, अर्थात् जिसे वाणीके द्वारा भी व्यक्त न किया जा सके तथा जो निर्गुण होनेसे विकल्पशून्य है, वह निरुपाधिक मायासे युक्त है। उनका गजाकार स्थूल और गजवक्त्र महान् शक्तिका द्योतक है, जिसने जगत्को धारण कर रखा है।

श्रीव्यासजीने ब्रह्मसूत्रके अंदर जिसे जगत्की स्थिति, लय और उत्पत्तिका कारण माना है, वह 'ईश्वर' या 'ब्रह्म' है। गणेशजीको भी जगत्का परम कारण कहा गया है। 'गणेशपुराण' में कहा गया है—'जिससे ओंकार उत्पन्न होता है—वह गणेश है और इसीसे वेद और जगत् भी आविर्भूत हुए हैं। 'गणपत्यथर्वशीर्ष' में श्रीगणेशको ही केवल कर्ता माना गया है। यथा—

'**त्वमेव केवलं कर्तासि**' (१)

'त्वं'-पदार्थ व्यवहारकी सत्ताको धारण करनेवाला है और 'केवल'-शब्दसे अव्यक्तसे लगाकर स्थूल देहतक समस्त जगत्के निर्माता गणेश कहे जाते हैं।

वेद, शास्त्र और पुराणादिका मत है कि सारा विश्व निर्गुण-निराकार अर्थात् सत् चित्-आनन्द—इन तीनोंसे ही व्याप्त है। उस परमात्माकी सत्तासे ही सब

कुछ होता है। श्रीगणेशको भी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और ब्रह्म निरूपित किया गया है—

'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥' (गणपत्यथर्वशीर्ष ६)

वस्तुतः श्रीगणेश हमारे अनूठे और अद्वितीय देवता हैं। उनकी आकृतिको देखकर बड़ा ही विस्मय होता है। वे ऊपरसे गजाकृति और शेष नराकृतिसे व्यक्त किये जाते हैं। यथा:—

ओंकारसंनिभमिभाननमिन्दुभालं
मुक्ताग्रबिन्दुममलद्युतिमेकदन्तम्।
लम्बोदरं कलचतुर्भुजमादिदेवं
ध्यायेन्महागणपतिं मतिसिद्धिकान्तम्॥

अर्थात्—ओंकार-सदृश, हाथीके-से मुखवाले, जिनके ललाटपर चन्द्रमा और बिन्दुतुल्य मुक्ता विराजमान है, जो बड़े तेजस्वी और एक दाँतवाले हैं, जिनका उदर लम्बायमान है, जिनकी चार सुन्दर भुजाएँ हैं, उन बुद्धि और सिद्धिके स्वामी आदिदेव गणेशजीका हम ध्यान करते हैं।

गणेश विद्या-बुद्धि और समस्त सिद्धिके दाता कहे जाते हैं, अतः उपासकोंको उनसे गणेशविद्याका ही वरदान माँगना चाहिये। गणेश-उपासकोंको प्रायः तीक्ष्ण बुद्धि तो मिल ही जाती है, किंतु तीक्ष्ण बुद्धिसे ही उस समयतक कोई लाभ नहीं हो पाता, जबतक कि चित्तकी शुद्धि प्राप्त न हो जाय। आज हम सर्वत्र देखते हैं कि शक्ति प्राप्तकर निर्बलोंको पीड़ित किया जाता है, धन प्राप्तकर मनुष्यत्वको विस्मृत कर दिया जाता है और विद्या प्राप्तकर विवादमात्र ही किया जाता है। अतः उपासनामें किसी पदार्थकी कामना न करते हुए चित्तकी शुद्धिकी ही याचना श्रेयस्कर मानी गयी है। इस सम्बन्धमें श्रीशंकराचार्यका मत अनुकरणीय है—

'चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।'

अर्थात्—'कर्म करनेका उद्देश्य चित्तकी शुद्धि है न कि वस्तुकी प्राप्ति।'

चित्तकी पाँच वृत्तियाँ मानी गयी हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जहाँ-जहाँ चित्त जाता है, उसमें वह तदाकार हो जाया करता है। जो अपनी चित्तवृत्तियोंका निरोध करते हुए ध्येयके साथ तदाकार हो जाया करता है, उसे अखण्ड और अनुपम आनन्दका अनुभव होने लगता है। ऐसी स्थिति 'योगिस्थिति' कही जाती है। ऐसे योगियोंमें श्रीगणेशका ध्यान करनेवाला श्रेष्ठ योगी होता है। श्रीगणेश अपने भक्तको विद्या और अविद्या—इन दोनोंसे दूर करके निज स्वरूपका बोध कराते हैं। अतः गणेश-विद्याका हमारे लिये परम उपयोग होता है। उसकी प्राप्ति ही कल्याणकारी और मंगलदात्री कही गयी है।

गणेशजीका 'गणपत्यथर्वशीर्ष' में श्रेष्ठ मन्त्र निरूपित किया गया है—**'ॐ गं गणपतये नमः।'** (७)

इस मन्त्रमें 'गकार' आया है, उसके बाद वर्णादि 'अकार' है और उससे परे सानुनासिक अनुस्वार है। साथमें प्रणव है। इस मन्त्रमें **'गं'** बीज है और **'ओङ्कार'** शक्ति। इसके सम्बन्धमें एकाक्षर 'गणपतिकवच' में मन्त्रोद्धारमें कहा गया है:—

'गं बीजं शक्तिरोङ्कारः सर्वकामार्थसिद्धये।'

अतः **'ॐ गं गणपतये नमः'**—इस मन्त्रमें गकार पूर्वरूप, मध्यम अकार और अन्त्यरूप अनुस्वार है। बिन्दु उत्तररूप है। इन भिन्न अक्षरोंके एकीकरणको साधन 'गं' नाद कहते हैं और उनके मिलनको 'संहिता' कहा गया है। यह गणेशविद्याकी प्राप्तिका सरल मन्त्र है।

अथर्वशीर्षके मध्यके मन्त्रोंमें गणेश-गायत्री भी दी हुई है, जो सुप्रसिद्ध है—

'एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।' (८)

अर्थात् 'हम एकदन्तको जानते हैं और वक्रतुण्डका ध्यान करते हैं—वह गणेश हमारी बुद्धिको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करे।'

'एक'-शब्द यहाँ 'माया'-वाचक है और 'दन्त'-शब्द 'माया'-चालक अर्थात् सत्तात्मक है। मुद्गलपुराणमें इसका महत्त्व यों प्रतिपादित किया गया है—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
भ्रान्तिदं मोहदं पूर्णं नानाखेलात्मकं किल॥
दन्तः सत्ताधरस्तत्र माया चालक उच्यते।
बिम्बेन मोहयुक्तश्च स्वयं स्वानन्दगो भवेत्॥
माया भ्रान्तिमयी प्रोक्ता सत्ता चालक उच्यते।
तयोर्योगे गणेशोऽयमेकदन्तः प्रकीर्तितः॥

''एक'-शब्द मायावाचक है और 'दन्त'-शब्द सत्तात्मक। 'गणेश' बोधक ब्रह्मके लिये प्रयुक्त है, जिससे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। उसीकी मायासे नाना प्रकारकी भ्रान्ति एवं मोह आदि उत्पन्न होते हैं। 'दन्त'-शब्द वहाँ सत्ताका आधार है। उसे मायाका संचालक कहा जाता है। माया भ्रान्तिमयी है और सत्तात्मक ब्रह्म उसका चालक है। ब्रह्मको भी मायायुक्त कहा गया है, इसीसे सत्ताधीश और मायापति दोनोंका अधिष्ठाता गणेशजीको कहा जाता है।''

गणेशजीके ध्यानके लिये 'गणपत्यथर्वशीर्ष' (९)-में अधोलिखित मन्त्र आया है, जो उनके यथार्थ स्वरूपका निरूपण करता है—

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

अर्थात्—'श्रीगणेश एकदन्त, चतुर्भुज, हाथोंमें पाश, अंकुश अभय एवं वरदानमुद्रा धारण किये, मूषक-चिह्नकी ध्वजा लिये, रक्तवर्ण, लम्बोदर, विघ्नविनाशी, शूर्पकर्णवाले, जिनके शरीरमें लाल चन्दन लगा है और जिन्हें लाल सुन्दर पुष्प अर्पित किये जाते हैं, ऐसे हैं। वे अपने भक्तोंपर अनुग्रहकर्ता हैं, वे ही जगत्के आदिकारण हैं; जो सृष्टिके आदिमें प्रकट हुए प्रकृति और पुरुष, इन दोनोंसे परे हैं। जो योगी इस प्रकार उनका ध्यान करता है, वह परम योगी बन जाता है।'

आज विश्व अशान्त और संतप्त है। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रोंको निगल जाना चाहते हैं। एक ही देशके नागरिक अपने ही अन्य नागरिक बन्धुओंके द्वारा प्रताड़ित हैं। दूरकी बात जाने दीजिये, एक ही परिवारमें भाई-भाई, माता-पिता, पति-पत्नीतक आपसी व्यवहारोंसे संतुष्ट नहीं हैं। इसका मूल कारण क्या है—यदि हमें इस स्थितिसे त्राण पाना है तो कार्यारम्भके पूर्व विघ्नेश्वर और विघ्न-विनाशक आदिदेव श्रीगणेशका स्मरण करना श्रेयस्कर होगा। वे हमारे चित्तके गहन अन्धकारको अपनी मंगलमूर्तिमयी ज्योतिसे प्रकाशित करेंगे। वे अनाम, अरूप, अस्पर्श, अशब्द अर्थात् निर्गुण होते हुए भी नाम-रूप-शब्द-स्पर्श आदि व्यक्तरूपमें भी हैं। अतः उनकी उभयरूपमें उपासना की जा सकती है। उनकी सच्ची निष्काम उपासना उपासकको भौतिक वैभव, बौद्धिक ऐश्वर्य और आत्मिक बल प्रदान कर लौकिक और पारलौकिक अभ्युदयका मार्ग प्रशस्त करेगी।

हम अन्तमें उस वरदमूर्ति श्रीगणेशके चरण-कमलोंमें नमन करके सद्बुद्धिकी उनसे याचना करते हुए चित्त-शुद्धिकी प्रार्थना करते हैं—

'**नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥**' (गणपत्यथर्वशीर्ष १०)

'गनपति-पगन मो मानस रम्यौ करै'

मूषक-सवारी नित मोदक-असन-रुचि,
दासन सदा जो ग्यान-बुद्धि सरस्यौ करै।
दारिद बिदारै सुख-संपति भवन पूरि,
अनिमादि-सिद्धि नव-निधिहू भर्‌यौ करै॥
बिघन-बिपिन-वह्नि, दायक बिमल ग्यान,
हृदय-पटल सोई तुंदिभ बस्यौ करै।
ध्येय तासु सुखद बिबुध-कुल-बंदनीय,
गनपति-पगन मो मानस रम्यौ करै॥

—श्रीयशवन्तसिंहजी चौहान

गणपति और श्रीमहागणपति

(लेखक—वीतराग श्री १००८ नारायणाश्रमस्वामीजी)

भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥

"श्रीगणपति प्रकृति और पुरुषसे परे विराजमान ब्रह्म हैं। वे कभी अपनी महिमासे च्युत न होनेके कारण 'अच्युत' कहे गये हैं। सम्पूर्ण जगत्के कारणतत्त्व वे ही हैं। भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे गणपतिदेव सृष्टिके आदिकालमें स्वतः प्रादुर्भूत हुए थे। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।"

उपनिषद्में गणपतिको साक्षात् ब्रह्म (सर्वव्यापक) बतलाया है—'**त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।**' (गणपत्यथर्वशीर्ष १)। जिस तरह ब्रह्म वाच्य-वाचक भेदसे 'ज्ञेय और उपास्य' दो प्रकारका है, उसी तरह श्रीगणेश भी उपासनाकी दृष्टिसे निर्गुण एवं सगुण दो प्रकारके हैं।

पहला श्रीगणपतिका वाच्यस्वरूप अचिन्त्य-अप्रमेय ब्रह्म है, जिसकी केवल योगी षट्चक्रोंमें नादब्रह्मके स्वरूपमें उपासना (ध्यान) करते हैं। प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें रीढ़की हड्डीके मूलमें, गुदासे दो अंगुल ऊपर मूलाधारचक्र है। यह चक्र चार दलोंवाला है। इसमें सम्पूर्ण जीवनकी शक्ति अव्यक्त रूपमें रहती है। चक्रके मध्यमें चतुष्कोण आधारपीठ है। इसपर श्रीगणेश विराजमान हैं। जैसे—

'त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्।' (गणपत्यथर्वशीर्ष ६)

मूलाधारचक्रके ऊपर त्रिगुणमयी पराशक्ति 'कुण्डलिनी' है। कुलदेवता श्रीगणपतिके चिन्मय स्वरूपका ध्यान करनेमात्रसे ही कुण्डलिनी प्रबुद्ध होकर क्रमशः स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञाचक्रमें प्रविष्ट हो जाती है। तत्तच्चक्रकी लोकोत्तर सिद्धि प्रदान करती हुई सहस्रारचक्रमें परम-शिवके साथ जा मिलती है। षट्चक्रोंमें व्याप्त चिन्मयी नादशक्ति ही 'महागणपति' हैं। गाणपत्य-योगमें चिदानन्द-लहरीके स्वरूपमें महागणपतिका ध्यान षट्चक्रोंमें किया जाता है।

सर्वप्रथम अनादि (अचिन्त्य-अप्रमेय), अनन्तस्वरूप श्रीमहागणपतिके चिन्मय स्वरूपमेंसे गाणपत्यधर्मका आविर्भाव हुआ। श्रीगणपतिने अपनी उपाधि गाणपत्यसे विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता एवं शंकर, कार्तिकेय, नन्दीश्वर आदि रुद्रगणोंको विभूषित किया।

श्रीगणपतिका दूसरा वाचक (ओंकार)-स्वरूप, सगुण-साकार एवं श्रीसमृद्धिका प्रदायक है, जिसके ध्यानमात्रसे ही मनुष्य सम्पूर्ण विद्याका निधिपति बन सकता है—

रक्तो रक्ताङ्गरागांशुककुसुमयुतस्तुन्दिलश्चन्द्रमौलि-
र्नेत्रैर्युक्तस्त्रिभिर्वामनकरचरणो बीजपूरान्तनासः।
हस्ताग्राक्लृप्तपाशाङ्कुशरदवरदो नागवक्त्रोऽहिभूषो
देवः पद्मासनो वो भवतु नतसुरो भूतये विघ्नराजः॥

(प्रपञ्चसार १६।४९)

अनादिकालसे लेकर आजतकके देवता, ऋषि, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य एवं पाशुपत-मतानुयायी भक्तजन, जिनकी पूजा-सपर्या सदा करते आये हैं, 'वे विघ्ननाशक श्रीगणपति शरीरसे रक्तवर्णके हैं। उन्होंने लाल रंगके ही अंगराग, वस्त्र और पुष्पहार धारण कर रखे हैं। वे लम्बोदर हैं; उनके मस्तकपर चन्द्राकार मुकुट है; उनके तीन नेत्र हैं और हाथ-पैर छोटे-छोटे हैं; उन्होंने शुण्डाग्रभागमें बीजपूर (बिजौरा नीबू) ले रखा है; उनके हस्ताग्रभागमें पाश, अंकुश, दन्त तथा वरद (मुद्रा) सुशोभित हैं; उनका मुख गजके समान है और सर्पमय आभूषण धारण किये हैं। वे कमलके आसनपर विराजमान हैं और समस्त देवता उनके चरणोंमें नतमस्तक हैं; ऐसे विघ्नराजदेव आपलोगोंके लिये कल्याणकारी हों'।

पंचायतन-पूजामें सर्वप्रथम गणपतिकी पूजा-सपर्या की जाती है। वैष्णव, सौर, शाक्त तथा पाशुपत-धर्मानुयायी प्रथम गणपतिकी पूजा करके ही अपने इष्टदेवकी पूजा करते हैं।

अग्रपूजाका रहस्य

ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत श्रीललितोपाख्यानमें महागणपतिके प्रादुर्भावकी कथा प्रसिद्ध है। भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ललिताके साथ भण्डासुर दैत्यका घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था। भगवती बाला अम्बिका एवं दण्डनाथा नामकी दो शक्तियोंद्वारा भण्डासुरके तीन सौ पुत्रोंका निधन हो चुका था। श्रीभगवतीकी इस महान् विजयपर भण्डासुरका मन्त्री विशुक्र क्षुब्ध होकर एक बड़ी भारी शिलापर जयविघ्न-यन्त्र लिखकर उसकी पूजा करके रात्रिके समय श्रीललितादेवीकी सेनानगरी (शिविर)-के एक कोनेमें रख आया।

उस यन्त्रके प्रभावसे युद्धोद्यत सेनामें आलस्य, कृपणता, दीनता, निद्रा, तन्द्रा (शिथिलता), प्रमीलिका, क्लीबता, निरहंकारा या विस्मृति—ये आठ दोष उत्पन्न हुए। विघ्न-यन्त्रके प्रभावसे श्रीललितादेवीकी सेना उत्साहहीन एवं अचेत होकर शस्त्रोंका परित्याग कर अपने-अपने शिविरमें प्रवेश कर गयी। तब अवसर पाकर विशुक्र तुरंत ही शक्तिसेनापर आक्रमणकर दिव्य शस्त्र-अस्त्रोंका प्रहार करने लगा।

उस समय श्रीललितादेवीकी सेनानायिका दण्डनाथा तथा मन्त्रिणी सचीकेशी दोनों सचेत हो अपने कार्यमें जागरूक थीं। विशुक्रको युद्धके लिये तत्पर देखकर दोनों महाराज्ञी श्रीललिताके महासांनिध्यमें पहुँचकर सेना-शिविरका समाचार सुनाने लगीं। वह वृत्तान्त सुनकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ललिता स्मितपूर्वक श्रीमहाकामेश्वरके मुखमण्डलकी ओर निहारने लगीं—

तस्याः स्मितप्रभापुञ्जे कुञ्जराकृतिमान् मुखे।
कटक्रोडगलद्दानः कश्चिद्देवो व्यजृम्भत॥
जपापटलपाटल्यपाटच्चरवपुर्द्युतिः।
बीजपूरं गदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम्॥
अब्जपाशोत्पलं व्रीहिमञ्जरीर्वरदाङ्कुशान्।
रत्नकुम्भं च दशभिः स्वकैर्हस्तैः समुद्वहन्॥
तुन्दिलश्चन्द्रचूडालो मदबृंहितनिःस्वनः।
सिद्धिलक्ष्म्या समाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम्॥

(ब्रह्माण्डपु०, ललितो०, अ० २७०। ६८—७१)

'श्रीत्रिपुरसुन्दरी ललिताके मन्दहास्यसे उद्भूत प्रभा-पुञ्जमेंसे कोई अनिर्वचनीय तेजस्वी देवता प्रकट हुआ, जिसका मुख हाथीके समान था। उसके गण्डस्थलसे मदकी धारा झर रही थी। उसकी अंगकान्ति जपा-कुसुम-समूहकी लालीको चुराये लेती थी। उसने अपने दस हाथों और शुण्डमें क्रमशः बीजपूर (बिजौरा), गदा, ईखका धनुष, सुन्दर शूल, शंख, पाश, उत्पल, धानकी बाल, वरदमुद्रा, अंकुश तथा रत्नमय कलश धारण किये थे। वह लम्बोदर था और उसके मस्तकपर चन्द्राकार चूडामणि शोभा पाती थी। उसके मुखसे मदमत्तकी-सी गर्जन-ध्वनि निकल रही थी। वह सिद्धि-लक्ष्मीसे आलिंगित था। उस गजानन देवताने प्रकट होते ही महेश्वरी ललिताके चरणोंमें प्रणाम किया।'

त्रिपुरसुन्दरी ललितासे आशीर्वाद लेकर वे गजानन वह्निप्राकारके भीतर सेना-शिविरमें पहुँचे। प्राकारके चारों ओर घूमते हुए श्रीमहागणपतिने एक कोनेपर स्थित विघ्न-यन्त्रको देखा। तुरंत ही उन्होंने अपने घोर दन्ताघातसे उसे चूर्णकर आकाशमें उड़ा दिया। विघ्नयन्त्रके नष्ट होते ही शक्ति-सेना सचेत हो युद्धके लिये उद्यत हो गयी।

श्रीमहागणपति अपने मदवारिसे दैत्यसेनाको मूर्च्छित करते हुए आमोद, प्रमोद, दुर्मुख, सुमुख, अरिघ्न (विघ्नहर्ता) और विघ्नकर्त्ता—इन षड् विघ्नविनायकों तथा तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, सम्भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजवती, सत्या और विघ्ननाशिनी—इन नौ शक्तियोंके साथ विशुक्रकी सेनामें पहुँचे। वहाँ उन्होंने सात अक्षौहिणी सेनाके साथ गजासुर नामक विपुल पराक्रमी दैत्यका संहार किया।

गजासुरको मारकर श्रीगणपति अपनी माँ ललिताम्बाके महासांनिध्यमें उपस्थित हुए। इसपर प्रसन्न होकर महाराज्ञी श्रीदेवी ललिताने श्रीगणपतिको सब देवोंकी पूजामें सबसे प्रथम पूजे जानेका वर प्रदान किया। जैसा कि—

विततार महाराज्ञी प्रीयमाणा गणेशितुः।
सर्वदैवतपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम्॥

(ब्रह्माण्डपु०, ललितो० २७। १०४)

'जबसे महाराज्ञी श्रीललिताका यह वर प्राप्त हुआ, तबसे महागणपति विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी देवता, असुर, मुनि, मनुष्य एवं महर्षियोंमें प्रथम पूजित हुए।' इसलिये पञ्चायतन-पूजामें सर्वप्रथम पूजा श्रीगणपतिकी ही होती है, उसके अनन्तर ही सर्वदेव-पूजाकी विधि है।

गणपतिकी उपासना

यजुर्वेदमें '**गणानां त्वा गणपतिः**'—इस वाक्यसे ब्रह्मा-विष्णु आदि गणोंके अधिपति श्रीगणनायक ही परमात्मा कहे गये हैं और वैदिक यज्ञक्रियासे इनकी उपासना करना सर्वोत्तम माना गया है। भगवान् आद्यशंकराचार्य तन्त्रमार्गसे ही गणपतिकी उपासना करनेपर शीघ्र सिद्धि उपलब्ध होती है, ऐसा कहते हैं। जैसा कि प्रपञ्चसारमें—

आवाह्य विघ्नेश्वरमर्चयित्वा
प्रागुक्तया तन्त्रविधानक्लृप्तया।
निवेदयित्वा सह भक्ष्यलेह्यैः
प्राज्यैश्च साज्यैरपि भोज्यजातैः॥

(१६। ३६)

—मन्त्रागमकी सपर्या गुरुगम्य मानी गयी है। जो साधक गुरु-परम्परासे गणपति-सपर्याकी विद्या उपलब्ध करते हैं, उन्हें ही उपासनामें प्रवेश करनेका अधिकार होता है। तन्त्रशास्त्रकी उपासनामें देश-काल एवं उपकरणोंकी अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। भगवान् परशुरामके मतानुसार तन्त्रागम-पूजामें सर्वप्रथम महागणपतिका ध्यान करना चाहिये। जैसा कि कहा गया है—

'**देवं सिद्धलक्ष्मीसमाश्लिष्टपार्श्वम्, अर्धेन्दुशेखरमारक्तवर्णं मातुलुङ्गगदापुण्ड्रेक्षुकार्मुकशूलसुदर्शनशङ्खपाशोत्पलधान्यमञ्जरीनिजदन्ताञ्चलरत्नकलशपरिष्कृतपाण्येकादशकं प्रभिन्नकटमानन्दपूर्णमशेषविघ्नध्वंसनिघ्नं विघ्नेश्वरं ध्यात्वा।**'

(परशुरामकल्पसूत्र, खं० २। ४)

'भगवान् महागणपतिका वाम पार्श्व सिद्धलक्ष्मीसे आलिंगित है। वे मणिमय रत्नसिंहासनपर विराजमान हैं। उनका शरीर करोड़ों सूर्योंके समान चमकीला रक्तवर्णवाला है। मस्तकपर अर्धेन्दु (चन्द्रमौलि) है। ग्यारह भुजाओंमें मातुलुंग, गदा, इक्षु-कार्मुक, सुदर्शन, शूल, शंख, पाश, कमल, धान्यमंजरी, अपना ही भग्नदन्त तथा रत्नकलश हैं। इस प्रकार परमानन्दपूर्ण गण्डस्थलसे मदकी धारा बहानेवाले सर्वविघ्नविध्वंसक महागणपतिका ध्यान करना चाहिये।'

तत्पश्चात् सिद्धपीठ (त्रिकोण-षट्कोण-वृत-चतुरस्रादि)-में गन्धाक्षत-पुष्प-पूजित शुद्ध जलपूर्ण कलशीसे अर्घ्य-स्थापना करनी चाहिये। उसी अर्घ्यामृत-जलसे अर्घ्यपात्र आदिका संस्कार करके महागणपतिकी पूजा-सपर्या पंचावरणसे करनी चाहिये। जैसा कि—**मूलेन पञ्चावरणपूजां कुर्यात्॥** ऐसा कहा गया है। (परशुरामकल्पसूत्र, खं० २। ७)

पूजा-सपर्याके उपचारमें पाद्य-अर्घ्य-आचमन-स्नान-वस्त्र-भूषण-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-नीराजन आदिका उपयोग होता है। जैसा कि—'**देवं गणनाथं दशधोपतर्प्य, षोडशोपचारैरुपचर्य, गणपतिबुद्ध्या एकं बटुकम्, सिद्धलक्ष्मीबुद्ध्या एकां शक्तिं चाहूय, गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य निर्विघ्नमन्त्रसिद्धिर्भूयादित्यनुग्रहं कारयित्वा नमस्कृत्य यथाशक्ति जपेत्।**' (परशुरामकल्पसूत्र, खं० २। ९)

उपर्युक्त विशेषार्घ्यामृत-वारिसे सविधि उपचार-पूजा-सपर्या करके सर्वविघ्ननिवारणार्थ महागणपतिकी स्तुति करनी चाहिये। तत्पश्चात् महागणपतिमन्त्रका जप करनेपर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। यद्यपि तुरंत सिद्धि प्राप्त करनेके लिये उच्छिष्टगणपति, वरदगणेश, हरिद्रागणेश आदिकी उपासना अत्यन्त उत्तम समझी जाती है, तथापि ये सब सिद्धियाँ क्षणिक मानी गयी हैं। उपर्युक्त महागणपतिकी पूजा-सपर्यासे साधकको शाश्वती सिद्धि-समृद्धि उपलब्ध होती है और भोग-अपवर्ग दोनों प्राप्त होते हैं।

गणपतिका वैदिक स्तवन

(लेखक—श्रीदेवीरत्नजी अवस्थी 'करील')

आजका वैज्ञानिक अध्ययन इस मतको निरन्तर अग्रसारित करता रहता है कि मनुष्यके ज्ञानका विकास उसी प्रकार धीरे-धीरे हुआ, जिस प्रकार हमारे घरोंमें हमारे बच्चोंका ज्ञान धीरे-धीरे विकसित होता है। पर हमारे इस युगका वैज्ञानिक अध्ययन जैसे-जैसे प्रगति करता जायगा, वैसे-ही-वैसे वह उस वैदिक सिद्धान्तके निकट पहुँचता जायगा, जिसमें कहा गया है—'वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे ही पूर्ण प्रकट होता है तथा पूर्णसे पूर्णको निकाल लेनेपर पूर्ण ही शेष रह जाता है।'

ॐपूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(बृहदारण्यकोपनिषद् ५।१।१)

तर्कसंगत प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि अन्नके खाद्योजका जन्म अन्नके साथ ही हुआ है। गेहूँमें जो खाद्योज आज विद्यमान है, वह उसके जन्मके आदिकालमें भी था और भविष्यमें भी तबतक बना रहेगा, जबतक गेहूँका अस्तित्व है। सिंहने धीरे-धीरे हिंसा नहीं सीखी; वह जितना हिंसक आज है, उतना हिंसक अपनी सृष्टिके आदिमें भी था; अन्ततक वह आजकी ही भाँति हिंसक बना रहेगा। गायने धीरे-धीरे शाकाहार नहीं सीखा। वह आजकी ही भाँति अपनी सृष्टिके आदिकालमें भी शाकाहारिणी थी और अन्ततक वह शाकाहारिणी ही बनी रहेगी।

वनस्पति-जगत् और पशु-जगत्‌की प्रवृत्तियोंके सारे प्रमाण इस बातके पुष्ट आधार हैं कि मनुष्य मानवीय सृष्टिके आदिकालमें जिन दैवी और आसुरी सम्पदाओंको लेकर उत्पन्न हुआ था, वे आदिसे अन्ततक एक-सी होकर उसके साथ ही रहेंगी। पाश्चात्त्य विद्वानोंके बहुमतकी यह मान्यता कि आदि मानव बर्बर जीवके रूपमें उत्पन्न हुआ; और बहुत बड़ी कालावधिके उपरान्त उसने बोलना सीखा, तभी सत्य प्रमाणित हो सकता है, जब यह सिद्ध कर दिया जाय कि मृगने अपनी उत्पत्तिके बहुत दिनों बाद दौड़ना सीखा और कोयलकी कूकमें बहुत दिनों बाद माधुर्यका प्रवेश हुआ। पर ऐसा सिद्ध नहीं किया जा सकता।

पूर्णसे पूर्ण ही प्रकट होता है; इसलिये सम्पूर्ण जीव-जगत्, जिसमें मनुष्यका स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, अपनी सृष्टिके कालमें पूर्णत्वसे युक्त होकर और दो शक्तियोंसे सम्पन्न होकर उत्पन्न हुआ—एक दैवी सम्पत्ति और दूसरी आसुरी सम्पत्ति। मानव-जीवनमें उसकी दैवी और आसुरी सम्पत्तियोंके बीच निरन्तर संग्राम होता रहता है और इस संग्राममें उसके अन्तस्तलमें व्याप्त ईश्वरीय सत्ताका अग्निस्वरूप निरन्तर आसुरी सम्पदाके प्रतिनिधि वृत्तका संहार करता रहता है। वेदकी घोषणा है कि 'यह अग्नि सत्यके सद्वीर्यका ईश्वर है; यह संसारके महान् सौभाग्यका ईश्वर है; यह विश्वकी संतान-सत्ता और पशु-सत्ताका ईश्वर है; यह अग्नि उन सभीका ईश्वर है, जो वृत्तका संहार किया करते हैं।'

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम्॥

(ऋग्वेद ३।१६।१)

वैदिक ऋषि पूर्णब्रह्मकी पूर्ण संतान थे। अपनी पूर्णताके कारण ही वे सारे ज्ञानके आदिद्रष्टा थे। उन्होंने अपने मानस-चक्षुओंसे जिस ज्ञानका दर्शन किया था, उस ज्ञानके वे लेखक और प्रकाशक नहीं बने, उन्होंने अपनेको केवल उस ज्ञानका द्रष्टा माना। इस अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बातसे भी उन ऋषियोंकी पूर्णता सिद्ध होती है। वैदिक ऋषियोंने अपने जाग्रत् विवेकके द्वारा संसारकी दैवी सम्पत्तिके संवर्धनके हेतु एवं आसुरी सम्पत्तिके उन्मूलनके निमित्त जगत्‌के स्रष्टाकी अनेक नामोंसे उपासना की है। वेदवाणीके ऋषियोंकी इस देवोपासनाके विवेचनात्मक अध्ययनकी आवश्यकता कभी समाप्त होनेकी नहीं। वेदोंका सतत और जाग्रत् अध्ययन ही संसारको प्रगतिके मार्गपर ले जायगा। जो विद्वान् वैदिक शब्दोंकी सूची बनाकर, अन्य प्राचीन भाषाओंके साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन करनेमें परिश्रम करते हैं, उनके परिश्रमकी प्रशंसा करते हुए भी यह कहा जायगा कि उनके उस प्रयाससे वैदिक विज्ञानका बोध लोगोंको नहीं हो सकता। वेदका कथन

है कि 'जो देवाधिवासक ईश्वरको नहीं जान पाया, ऋचाओंके विश्लेषणसे उसको कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं होगा।'

'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।'

(ऋग्वेद १।१६४।३९)

परमात्माके सत्य-चिन्तनके माध्यमसे मनुष्य असत्यसे सत्यकी ओर बढ़े, यही वैदिक ज्ञानयोग है; मनुष्य अन्धकारसे प्रकाशकी ओर बढ़े, यही वैदिक कर्मयोग है एवं मनुष्य मृत्युसे जीवनकी ओर बढ़े, यही वैदिक भक्तियोग है।

परमात्मा अनन्त है; उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। वेदोंकी देवोपासना अनन्त शक्तिवाले परमात्माकी ही उपासना है। वेद प्रबल स्वरमें इन सारे देवोंको एक और अकेली परमात्मशक्तिमें केन्द्रित करते हुए कहता है कि ज्ञानवान् विप्र एक ही सत्यको विभिन्न नामोंसे कहते हैं—

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'

(ऋग्वेद १।१६४।४६)

ऊपर कहा जा चुका है कि दैवी सम्पत्तिके गुण और आसुरी सम्पत्तिके दोषको लेकर ही आदि-मानवका प्रादुर्भाव हुआ था। इसको अधिक सरल करनेके लिये यह कहा जा सकता है कि आदिमानव, जो ज्ञान और मोहको लेकर ही उत्पन्न हुआ था, वह अन्ततक मनुष्योंके साथ ही रहेगा। ज्ञान प्रकाशकी बुद्धिमत्ता है और मोह अज्ञानके अन्धकारकी मूढ़ता। ध्यान दीजिये कि जो मनुष्य ज्ञानके आलोकके कारण चन्द्रलोकपर चढ़नेकी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करता है, वही मनुष्य आणविक आयुधोंका प्रक्षेपण करता हुआ लाखोंके विनाशकी मूढ़ता भी दिखलाता है। विद्युत्से दीप्तिमान् हमारे घर और नगर एवं हमारे अत्यधिक वैभवके साधन हमें इस मूढ़तासे, इस आसुरी सम्पदाके पाशसे मुक्त कर सकेंगे, ऐसा सोचना स्वयं एक मूढ़ता है।

हमारी यह आसुरी सम्पदा, हमारी यह मूढ़ता, हमारी दैवी सम्पदाकी बुद्धिमत्ताको पराजित न कर पाये—यही हमारे जीवनका लक्ष्य है। जीवनके इस परम लक्ष्यको पहचानकर ही हमारे वैदिक ऋषि मन्त्रद्रष्टा बने थे। उन्होंने परमात्माके ज्ञानमय स्वरूपका दर्शन अपने मानस-चक्षुओंद्वारा किया था और इस पूर्णदर्शनके उपरान्त ही उन्होंने गणाधिराज गणपतिको ज्ञानका स्वामी घोषित करते हुए उस परमेश्वरके गणपतिस्वरूपका आवाहन कर कहा था—'देवत्वकी कामना करनेवाले लोग तुमसे प्रार्थना करते हैं; अतः ज्ञानके स्वामिन्! उठो'—

'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।'

(ऋग्वेद १।४०।१)

जो वेद गणेशजीको 'गणपति' कहते हैं, वे ही उन्हें 'ब्रह्मणस्पति' और 'बृहस्पति' भी कहते हैं। देवताओंके गुरुरूपमें गणेशजीके बृहस्पतित्वका बड़ा सरल परिचय हमें पुराणोंके माध्यमसे मिलता है। पर यह बात बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि गणेशजी ही देवगुरु बृहस्पति हैं और उन्हींको वेद 'ब्रह्मणस्पति' भी कहते हैं।

वैदिक विज्ञानके अनुसार सारे देवता एक ही परमपिता परमात्माकी भिन्न-भिन्न शक्तियोंके प्रतीक हैं। उन सबको एक ही समझनेकी बात भारतके प्राचीन साहित्यमें बारंबार दुहरायी गयी है। मनुष्यकी दैवी सम्पदा उसे श्रेयोमार्गपर बढ़ाती है; पर ठीक इसके विपरीत उसकी आसुरी सम्पदा उसे प्रेयोमार्गकी ओर प्रेरित करती रहती है। इस संघर्षके कारण मनुष्यके सामने सदैव यह भय उपस्थित रहता है कि वह श्रेयोमार्गको त्यागकर प्रेयोमार्गपर ही न दौड़ने लग जाय। वेदके मन्त्रद्रष्टा ऋषि मानवकी इस महती बाधाको भलीभाँति पहचानते थे और इसीलिये मानवमात्रका सच्चा प्रतिनिधित्व करते हुए उन्होंने वेदके अपौरुषेय ज्ञानके द्रष्टा होकर लोककल्याणके निमित्त परमात्माकी विभिन्न शक्तियोंको लोकमें इसलिये उतारा कि वे मानवमात्रको श्रेयोमार्गपर चलनेकी प्रेरणा दें—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋग्वेद २।२३।१)

वेदमें शब्दको 'ब्रह्म' कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि वेदका प्रत्येक शब्द हमें परब्रह्म परमात्माके ज्ञानकी दिशाकी ओर बढ़ाता है। अतः

वेदके ब्रह्ममय शब्दोंका चिन्तन और मनन मननशील मनुष्यको यावज्जीवन करते ही रहना चाहिये।

उपर्युक्त वेदमन्त्रका अन्वय नीचे दिया जा रहा है। इस अन्वयसे मूलमन्त्रके तात्पर्यको समझनेमें सहायता मिल सकती है। संस्कृतके सामान्य ज्ञानकी सहायतासे इसको समझनेका प्रयत्न करना सुखकर होगा। मन्त्रद्रष्टा महर्षि शौनक इस मन्त्रके माध्यमसे जो प्रार्थना गणेशजीसे करते हैं, उसका तात्पर्य इस अन्वयसे अधिक स्पष्ट होगा—

'ब्रह्मणस्पते! गणानां गणपतिं कवीनां कविम् उपमश्रवस्तमं ज्येष्ठराजं त्वा हवामहे नः शृण्वन् ऊतिभिः सादनम् आ सीद।

जिन गणेशजीका आवाहन महर्षि भृगुपुत्र शौनकने इस मन्त्रमें किया है, उन्हें पहले 'ब्रह्मणस्पते' कहकर सारे ज्ञान-विज्ञानसे युक्त बतलाया गया है। ज्ञान-विज्ञानसे युक्त गणेशजी जब लोकमें पधारेंगे तो मनुष्योंमें ज्ञान-विज्ञानका प्रसार करेंगे; पर इस ज्ञान-विज्ञानके ग्रहण करनेकी क्षमता तो मनुष्य ही अपनेमें उत्पन्न करेगा। इस मन्त्रका मानवमात्रके लिये संदेश है कि ब्रह्मणस्पति गणेशजीका योग्य सेवक बननेके लिये स्वयं ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न बने।

इसके उपरान्त गणेशजीको **'गणानां गणपतिम्'** कहकर स्मरण किया गया है। हमें गणपतिभगवान्‌का ज्ञानालोक तभी प्राप्त होगा, जब हम अपने (रुद्र) गणोंको सँभालें। ये गण ग्यारह हैं; हमें इन गणोंको सँभालना है। इनको सँभाले बिना किसी मनुष्यको 'ब्रह्मणस्पति' कहलानेवाले गणेशजीका ज्ञानालोक नहीं प्राप्त हो सकता। दसों इन्द्रियों और उनके ऊपरका सत्ताधारी मन, इस प्रकार ग्यारह गणोंका नियन्त्रक मनुष्य भी है। जब मनुष्य वेदके माध्यमसे गणपतिभगवान्‌को अपने घरमें बुलाकर बैठानेका प्रयत्न करता है, तब उसके घरको इस योग्य भी तो होना चाहिये कि भगवान् उसमें विराज सकें। कहनेका तात्पर्य यह है कि गणपतिके आवाहकको गणपतिके समान ही सदाचारसम्पन्न होना चाहिये।

तीसरे विशेषणमें गणेशभगवान्‌को **'कवीनां कविम्'** कहा गया है। भगवान् केवल कवि नहीं हैं, वे कवियोंके कवि हैं। जब भगवान् कवियोंके कवि हैं तो मनुष्यको अकवियोंका अकवि नहीं बनना है; कवियोंका कवि बनना है। कवि उसे ही नहीं कहते, जो कवि-सम्मेलनोंमें अपनी कविताद्वारा लोगोंको प्रसन्न करता है। कवि कहते हैं, ज्ञानके प्रत्येक छोरतक पहुँचनेवाले विद्वान्‌को। कविके आचरणके लिये बड़ी सरल भाषामें कहा जाता है—*'जहाँ न जाये रवि, वहाँ जाये कवि'।* मनुष्य ज्ञान-विज्ञानका द्रष्टा बननेका प्रयत्न करे और उसी प्रकारका आचरण करके गणेशजीको अपने हृदयधाममें बुलानेकी क्षमता अपनेमें उत्पन्न करे, यही इस विशेषणका तात्पर्य है। जबतक मनुष्य अपनी दैवी सम्पदाके बलसे अपनी आसुरी सम्पदाओंपर विजय नहीं प्राप्त करता, तबतक उसे उन भगवान् गणपतिको अपने घरपर बुलानेका कोई अधिकार नहीं है। यदि मानव बिना अधिकारी बने उनको बुलायेगा तो केवल उसके कोरे मन्त्रपाठसे वे उसके हृदयधाममें आकर नहीं विराजेंगे; क्योंकि वेदने पहले ही बता रखा है—

'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति'

(ऋग्वेद १। १६४। ३९)

इसके उपरान्त वेद गणेशजीको **'उपमश्रवस्तमम्'** कहता है। इसका अर्थ हुआ—यशकी उपमामें सबसे अधिक यशस्वी। और सरलतासे समझिये—नामियोंमें नामी। जैसे हमारा देवता नामियोंमें नामी है, वैसे ही हम भी नामियोंमें नामी बननेका प्रयत्न करें। एक होता है विख्यात; सभी ओर उसकी बड़ाई होती है और दूसरा होता है कुख्यात; सभी ओर उसकी निन्दा होती है। गणेशभक्त मानव अपने सदाचारके लिये विख्यात हो, दुराचारके लिये कुख्यात न हो, यही इस विशेषणका तात्पर्य है।

अब **'ज्येष्ठराजम्'** पर विचार कीजिये। क्यों गणेशजीको केवल **'ज्येष्ठम्'** कहकर नहीं बुलाया गया। इसलिये कि वे केवल सबसे जेठे ही नहीं हैं, प्रत्युत जितनी भी ज्येष्ठता विश्वमें व्याप्त है, उस ज्येष्ठताको वे अपना तेज प्रदान करते हैं। जिस 'राजा'-शब्दसे हम बहुत अधिक परिचित हैं, उसका अर्थ होता है—तेजस्वी। यदि बिजलीके प्रकाशमें हम अपनी आँखें न खोलें तो उस प्रकाशका कोई लाभ हमें नहीं हो

सकता। इसी प्रकार यदि हम दिनमें अपनी आँखोंपर कपड़ा बाँध लें तो सड़कपर चलनेके लिये हमें दूसरेका सहारा लेना पड़ेगा। गणेशजी केवल ज्येष्ठभर नहीं हैं, वे ज्येष्ठोंमें भी तेजस्वी हैं और सारे ज्येष्ठ लोग उन्हींके तेजसे तेजस्वी बनते हैं। अतः उनके तेजका प्रकाश पानेके लिये मनुष्यको अपनी आँखोंकी पट्टी खोलनी चाहिये और भगवान्‌के तेजके आशीर्वादसे परमसुख प्राप्त करना चाहिये—यही इस 'ज्येष्ठराज' विशेषणका तात्पर्य है।

वेद लोकमें जिन गणेशजीका आह्वान करता है, वे केवल ज्ञानी ही नहीं हैं, ज्ञानभंडारके पति हैं। पतिका अर्थ होता है—रक्षक। जो देवता ब्रह्मणस्पति है, वह अपना ज्ञान अधिकारी व्यक्तिको ही देगा। यह अधिकारी वही हो सकता है, जिसने आसुरी सम्पदाओंके वृत्रोंका उन्मूलन कर दिया हो। जिसने अपने आचरणको ठीक वैसा बना लिया हो, जैसा गणपतिभगवान् चाहते हैं। तभी उसकी पुकारपर भगवान् गणपति उसके हृदयधाममें आकर बैठ सकते हैं। अधिकारी होनेकी मर्यादा इस लोकमें भी प्रचलित है। हमारे संसारमें एक भी ऐसा विश्वविद्यालय नहीं है, जो दसवीं श्रेणीके उत्तीर्ण विद्यार्थीको पंद्रहवीं श्रेणीमें प्रवेश दे दे। पंद्रहवीं श्रेणीमें प्रवेश पानेके लिये आवश्यक है कि विद्यार्थी चौदहवीं श्रेणीमें उत्तीर्ण हो चुका हो। ठीक उसी प्रकार गणपतिभगवान्‌का ज्ञानालोक प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम स्वयं उनके द्वारा प्रसारित ज्ञानके प्रकाशको अपने आचरणमें उतार चुके हों।

वेदोंमें गणेशजीकी स्तुतियोंके अनेक मन्त्र हैं, जिनमेंसे केवल एकको चर्चा इस लेखमें की गयी है। आशा है, इस चर्चासे विज्ञ पाठकोंका न केवल मनोरंजन होगा, प्रत्युत इसके द्वारा उनके हृदयमें उस वेदभक्तिका भी उदय होगा, जिसकी शक्तिसे मानव उस परमपिता परमात्माका अनुग्रह प्राप्त कर सकता है।

~~~o~~~

वेदोंमें गणपति

(लेखक—डॉ० श्रीशिवशङ्करजी अवस्थी)

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः[१]॥

(ऋग्वेद २। २३। १९; २। २४,१६; यजुर्वेद ३४। ५८)

शतपथब्राह्मणके भाष्यकार हरिस्वामीके गुरु स्कन्दस्वामी, जो संवत् ६८७में विद्यमान थे, अपने ऋग्वेदभाष्यके प्रारम्भमें लिखते हैं—

विघ्नेश विधिमार्तण्डचन्द्रेन्द्रोपेन्द्रवन्दित।
नमो गणपते तुभ्यं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते[२]॥

इससे स्पष्ट है कि वैदिक देवता ब्रह्मणस्पति ही विघ्नेश गणपति हैं। लौकिक साहित्यमें गणेशके दो मुख्य गुण वर्णित हैं—एक विद्या[३], बुद्धि एवं धनका प्रदान और दूसरा विघ्न या दुष्टोंका दमन। वेदमें

१. हे मन्त्रोंके अधिपति! तुम इस जगत्‌के नियामक हो; मेरे इस सूक्तको जानो और मेरी संतानको प्रसन्नता प्रदान करो; आप-जैसे देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका सर्वथा भला होता है। हमलोग इस जीवन-यज्ञमें सुन्दर पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर आपकी स्तुति करें।

२. ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र तथा विष्णुके द्वारा वन्दित हे विघ्नेश गणपति! मन्त्रोंके स्वामी ब्रह्मणस्पति! तुम्हें नमस्कार है।

३. (क) विद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता—तुलसीदास

(ख) शुण्डाग्राकलितेन हेमकलशेनावर्जितेन क्षरन्नानारत्नचयेन साधकजनान् सम्भावयन् कोटिशः॥
—श्रीराघवचैतन्य—महागणपतिस्तोत्र ८

(ग) विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाट्।

(घ) यतो बुद्धिरज्ञाननाशो मुमुक्षोर्यतः सम्पदो भक्तसंतोषिकाः स्युः।
यतो विघ्ननाशो यतः कार्यसिद्धिः सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
—गणेशपुराण, उपासनाखण्ड, गणेशाष्टक ५
~~~

ब्रह्मणस्पतिके सम्बन्धमें ऐसे ही उल्लेख मिलते हैं। यथा—

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदमस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥

(ऋग्वेद २। २३। ५)

'हे ब्रह्मणस्पति! आप जिस जनकी रक्षा करते हैं, उसे कोई दुःख और तज्जनक पाप पीड़ित नहीं कर सकता; शत्रु कहीं भी उसकी हिंसा नहीं कर सकते, मनमें कुछ और तथा क्रियामें कुछ अन्य करनेवाले वंचक भी उसे बाधा नहीं दे पाते। अपने जनोंकी हिंसक समस्त सेनाओंको आप नष्ट कर देते हैं।'

तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रनश्नन् ड्ळहाऽव्रदन्त वीळिता।
उद् गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः॥

(ऋग्वेद २। २४। ३)

'देवोंमें श्रेष्ठ देव ब्रह्मणस्पतिके ये कर्म हैं—दृढ़ पर्वतादिकोंको ये अपने बलसे विशीर्ण कर देते हैं, कठोरको कोमल बना देते हैं, प्रकाश या ज्ञान प्रदान करते हैं, अपनी वाग्रूपिणी शक्तिसे आच्छादक असुरोंको ध्वस्त करते हैं, अज्ञान या अन्धकारको दूर करते हैं एवं स्वर्गात्मक सुख प्रदान करते हैं।'

ब्रह्मणस्पति[१], बृहस्पति और वाचस्पति—वेदमें ये एक ही गणपतिके भिन्न नाम मिलते हैं। भास्कररायने 'गणपतिसहस्रनामके 'खद्योत' नामक भाष्यमें लिखा है कि 'शिव, विष्णु, देवी-विषयक उपनिषदोंके सदृश गणपति-सम्बन्धी उपनिषदें भी देखी जाती हैं। तीनों वेदोंमें '**गणानां त्वा गणपतिं**'—यह मन्त्र पढ़ा गया है, अतः कर्मकाण्डमें भी गणपतिकी स्वीकृति स्पष्ट है'—

'**शिवविष्णुदेवीविषयकाणामिव गणपतिविषयाणामुपनिषदामपि जागरूकत्वाच्च। कर्मकाण्डेऽपि अभ्यातानामत्र कदर्थनमपेक्ष्य स्पष्टतरस्य 'गणानां त्वा' इति मन्त्रस्य वेदत्रयेऽपि पठ्यमानस्य शरणीकर्तुं युक्तत्वाच्चेति दिक्।**

(निर्णयसागरसंस्करण)

ऋग्वेद २। २३। १में गणपति-सम्बन्धी अधोलिखित मन्त्र आता है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥[२]

—'ब्रह्म अर्थात् अन्न अथवा उत्तम कर्मोंके रक्षक, देवादि[३] गणोंके गणपति, क्रान्तदर्शियोंमें श्रेष्ठ

---

१. 'बृहस्पते ब्रह्मणस्पते'—तै० ब्रा० ३। ११। ४। २, 'एष (प्राणः) उ एव ब्रह्मणस्पतिः। वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिः तस्मादु ह ब्रह्मणस्पतिः'—शतपथब्राह्मण १४। ४। १। २३,'एष वै ब्रह्मणस्पतिर्य एव (सूर्यः) तपति'—शतपथब्राह्मण १४। १। २। १५। 'बृहस्पतिरेव ब्रह्मणस्पतिः'—उवट।

According to Maxmuller, बृहः and ब्रह्मणः are derived from the same root बृह् to speak; So बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति and वाचस्पति mean the same god. 'Lord of Prayer'—Griffith. Root बृह् (शब्दे) मनिन्; तस्य पतिः षठ्याः पति० (Pān. VIII-iii. 53) इति विसर्गस्य सः। or from the root. बृह् वृद्धौ—द्र० टि०, सामवेद, आग्नेयपर्व २। ५६—विभूतिभूषण भट्टाचार्य।

२. (क) 'गणेशसहस्रनाम' १४-१५ में भी लिखा है—

कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः॥ ज्येष्ठराजो निधिपतिः निधिप्रियपतिप्रियः॥
खद्योतभाष्य-कार्यत्वात्काव्यकर्तृत्वात्कविरेष तथा कविम्—। कवीनामुपमश्रुत्या कवीनामृषभोऽप्ययम्॥ ५५॥
ब्रह्मण्यो ब्राह्मणे वेदे साधुस्तपसि धातरि। वाग्वै ब्रह्म पतिस्तस्या इत्येष ब्रह्मणस्पतिः॥ ५६॥
ज्येष्ठराज इति ख्यातो ज्येष्ठाख्ये साम्नि राजनात्। एष नाम्ना निधिपतिर्निधीनां परिपालनात्॥ ५७॥
'निधीनां त्वा निधिपतिं हवामह' इति श्रुतेः। निधिप्रिया ये पतयो राजराजादयो नृपाः॥ ५८॥
तैरप्युपास्य इत्येष निधिप्रियपतिप्रियः॥

(ख) गणेशपु० उ० १। ५ में भी आता है—

'गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनाम्।'

३. 'आदि' शब्दसे 'अक्षरगणके रक्षक'—यह अर्थ भी लेना चाहिये। एलिस गेटी (Alice Getty) नामक विदेशी महिलाने अपनी 'गणेश'-नामक पुस्तकके पहले अध्यायमें लिखा है—

'Prabodh Chandra Bagchi suggests that Gaṇeśa was associated with writing because of

कवि, ज्येष्ठराज, मन्त्रोंके स्वामी मैं आपका आह्वान करता हूँ। हमारी स्तुतियोंको सुनते हुए रक्षार्थ हमारे यज्ञमें आप उपस्थित हों।'

लोकमें गणेशको देवीके तेजसे उत्पन्न—**गौरीतेजोभूः**—(गणेशपुराण, गणेशसहस्रनाम ४६। २४) और 'आदिदेव' कहा जाता है। ऋग्वेदकी उक्ति है—

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि॥
(४। ५०। ४)

'बृहती वाक् अथवा संसारके स्वामी बृहस्पति, परम[1] व्योमरूप महाशक्तिके महान् तेजसे सर्वप्रथम उत्पन्न होकर सात[2] छन्दरूप मुखवाले और सात किरणों[3] अथवा सात वर्ण-वर्गवाले गणपति विविध रूप धारण करके नादके द्वारा अन्धकार अथवा अज्ञानको दूर करते हैं।'

गणेशको 'एकदन्त' कहा जाता है। ऋग्वेदमें एक मन्त्र आता है—

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि॥
(१०। १५५। २)

'वह अलक्ष्मी इस लोकसे तथा उस लोकसे भी विनष्ट हो जाय, जो समस्त भ्रूणों या ओषधियोंके अंकुरोंको नष्ट कर देती है। हे तीक्ष्णदन्त ब्रह्मणस्पति! आप उस दान-विरोधिनी अलक्ष्मी या दुर्भिक्षाधिदेवताको दूर करते हुए जायँ।'

'शृंग'का अर्थ दाँत भी होता है। सायणाचार्यने 'तीक्ष्ण-तेजस्क' ऐसा अर्थ किया है।

लोकमें गणेश और सरस्वतीकी एक साथ वन्दना भी देखी जाती है। वेदोंमें भी ऐसा उल्लेख मिलता है—

'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता'॥ (ऋग्वेद १। ४०। ३; सामवेद, आग्नेयपर्व २। ५६। यजुर्वेद ३३। ८९)

'हमारे यज्ञमें ब्रह्मणस्पति देव आवें, वाग्देवता सरस्वती भी पधारें।'

ब्रह्मणस्पति ऋग्वेदमें महत्त्वपूर्ण देवताके रूपमें वर्णित हैं। ग्यारह सूक्तोंमें इनकी स्तुति मिलती है। पुराणोंमें आकर इनका रूप और विशद हुआ है। प्रत्येक लेखनकार्य या अन्य शुभकर्ममें वे अग्रणी रहते हैं। बालकोंके अक्षरारम्भमें वे स्मृत होते हैं। जो लोग सोचते हैं कि गणेशजीका लेखन-कार्यसे सम्बन्ध 'सिद्धि'-शब्दके गड़बड़-झालेके कारण हुआ है, वे भ्रान्त हैं। उनका यह कहना कि 'सिद्धि'-शब्द प्राचीनकालसे ही वर्णमालाका बोधक रहा है और गणेशको 'सिद्धिदाता'

---

a confusion in regard to the word 'Siddhi'. From very ancient times, the Hindu alphabet was called 'Siddham' and the enumeration of the alphabet began with the word 'Siddhi'. As one of the epithets of Gaṇeśa is 'सिद्धिदाता—giver of Success', he believes it to be probable that his association with the word gave rise to the legends depicting him as a scribe.'

१. शैवी चित्-शक्ति ही 'परमव्योम' के नामसे प्रसिद्ध है—

मन्त्राश्छन्दांसि यज्ञाः क्रतव इति परव्योम्न एवास्य जन्म, स्रष्टृत्वं केवलं च प्रथयति तदधिष्ठातुरेणाङ्कमौलेः॥
(आनन्दलहरी १२)

'श्वेताश्वतर-उपनिषद्' का 'छन्दांसि यज्ञाः क्रतवः।' (४। ९)

यह मन्त्र, 'परमव्योमसे ही इस जगत्का जन्म होता है और उस परमव्योम या चिदाकाशके अधिष्ठाता शशांकमौलि भगवान् शंकर ही एकमात्र इसके स्रष्टा हैं'—यह स्पष्ट करता है।

'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' इति तत्पूर्वमन्त्रप्रकृतां परमव्योमशब्दितां शैवीं शक्तिं परामृश्य पञ्चम्यास्तस्याः समस्तजगदुपादानत्वप्रतिपादनात्'—(आनन्दलहरीचन्द्रिका)

२. सप्तास्यः (क) सर्पणशीलमुख—क्या इससे शुण्डादण्डरूप अर्थ नहीं लिया जा सकता? (ख) सात स्वररूप मुख।

३. सप्तरश्मिः—अ, क, च, ट, त, प, य—यही सात रश्मियाँ या वर्ण हैं, जिनसे अज्ञान दूर होता है—

अकारादिक्षपर्यन्ता कलास्ताः शब्दकारणम्। मातरः शक्तयो देव्यो रश्मयश्च कलाः स्मृताः॥
(भट्टभास्कर)

कहा जाता है, अतः उक्त शब्द ही गणेशको लेखकके रूपमें वर्णन करनेवाले उपाख्यानका जन्मदाता है—असंगत है। पतंजलिने[1] 'सिद्ध'-शब्दको मंगलार्थक और नित्यार्थक माना है। 'कातन्त्र-व्याकरण'का पहला सूत्र है—'**सिद्धो वर्णसमाम्नायः**।' इसका अर्थ है—'वर्णमाला नित्य है।' '**ॐ नमः सिद्धम्**' इसका भी प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है। इसमें पठित तीनों शब्द मङ्गलार्थक एवं परमात्मवाचक हैं। 'तैत्तिरीयसंहिता'के सुप्रसिद्ध भाष्यकार कौशिक भट्टभास्करने रुद्रभाष्यमें लिखा है—

'**ॐ, स्वाहा, स्वधा, वषट्, नमः इति पञ्च ब्रह्मणो नामानि**।' '**मङ्गलार्थम्**'—सिद्ध-शब्द मंगलार्थक है। महाभाष्यके इस प्रतीकको लेकर भर्तृहरि लिखते हैं—

''**निरपकृष्टाभिमतार्थसिद्धिर्मङ्गलम्। तदर्थं च यदुपादीयते तदपि तदर्थत्वान्मङ्गलमित्याख्यायते**।—बिना किसी त्रुटिके अभिप्रेत अर्थकी सिद्धिको 'मंगल' कहते हैं और मंगलार्थ जिस शब्दका ग्रहण किया जाता है, वह भी तदर्थ होनेके कारण 'मंगल' कहलाता है।'' इस प्रकार सिद्ध-शब्दका अर्थ मंगलमूर्ति या गणपति तो हो सकता है, वर्णमालाका बोधक नहीं। वैदिक बृहस्पति[2] ही लौकिक गणेश हैं, इसमें संदेह नहीं। वेदमें गणपति और इन्द्रकी एकताके भी वचन मिलते हैं। यथा—

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्चम्॥

(ऋग्वेद १०। ११२। ९)

'हे गणपति! मनुष्यगणोंमें आप जागरूक होकर उपस्थित हों। विज्ञोंका कहना है कि तुम लेखकगणों अथवा कल्पकोंकी प्रज्ञा या लेखन-सामर्थ्य हो। अरे! तुम्हारे बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता। अतः हे मघवन्! आप महान् श्रेष्ठ और विविध कर्म (जनोंके हृदयमें उपस्थित होकर) करें।'

वस्तुतः गणपतिका अर्थ है—'अक्षरगणके[3] पालक।' यही ब्रह्मणस्पतिका भी अर्थ है। यास्क 'निरुक्त'में लिखते हैं—'**ब्रह्मणस्पतिः—ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा**।' दुर्गाचार्यने इसपर लिखा है—'ब्रह्म'का अर्थ अन्न और ऋगादि वेद हैं। वर्षाके द्वारा ओषधियोंका निष्पादन करते हुए यह दोनोंका रक्षक बन जाता है।' 'ब्रह्म'को वेद कहते हैं। वेद त्रिधा विभक्त हैं—ओंकारात्मक, वर्णमालात्मक और संहितात्मक। भर्तृहरि कहते हैं—'**प्रणवो हि वेद', स हि सर्वशब्दार्थप्रकृतिः**। प्रणव ही वेद है, वही समग्र शब्दों और अर्थोंका मूल है।' पतञ्जलिकी उक्ति है—'**सोऽयमक्षरसमाम्नायो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः**। '**महाभाष्य**'— वर्णमाला ब्रह्मराशि है।'

'**ब्रह्म**'का अर्थ स्तुति या मन्त्र भी होता है। गणपति मन्त्रोंके उद्भावक हैं। इन्हें अग्निका ही एकरूप माना जाता है। मनुस्मृतिके टीकाकार मेधातिथि भी इसी मतको मानते हैं। वेदमें ओंकार और लोकमें स्वस्तिकका या श्रीगणेशका लेखन-स्मरण प्रसिद्ध है। 'गणेशपुराण'का कथन है—

ओङ्काररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।
यं सदा मुनयो देवाः स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि॥

---

१. 'नित्य-पर्यायवाची 'सिद्धं' शब्द'। 'मङ्गलार्थम्' माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं सिद्धशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते।' (पस्पशाह्निक)

२. भण्डारकरको भी इस सम्बन्धमें भ्रम हुआ। हाँ, गोपीनाथ रावने अवश्य बृहस्पति और गणेशकी एकताका प्रतिपादन अपने 'एलिमेंट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी' नामक ग्रन्थके Vol. I, Part, I, में किया है—

'Bhandarkar is of the opinion that this reputation for wisdom was born of a confusion between Ganeśa and the Vedic god of wisdom, Bṛhaspati, while Rao identifies him with the celestial Guru Bṛhaspati himself. It is interesting to note here that Bṛhaspati, an important god in the Rig Veda is described as carrying the axe or 'golden hatchet', an attribute particularly ascribed to Ganeśa, and that he also was referred to as Gaṇapati' 'गणेश' [Alice Getty].

3. Coomarswamy attributes his reputation as 'Patron of Letters' to the double meaning of the word, Gaṇa, which, besides being the name of the followers of Śiva, is also the 'technical designation of early lists or collections of related works—['गणेश' in 'Bulletin of the Boston Museum of Fine arts' Vol XXVI, April 1928—('गणेश' Alice Getty)]

ओङ्काररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः।
यथा सर्वेषु कर्मसु पूज्यतेऽसौ विनायकः॥

शुक्लयजुर्वेद, अध्याय २३। १९में गणपतिसे सम्बद्ध अधोलिखित बहुचर्चित मन्त्र आता है—

'गणानां त्वा गणपतिः हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिः हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिः हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।'

इसका वास्तविक अर्थ निम्नांकित है—यजमान और यजमान-पत्नी प्रातः ब्रह्मणस्पति या सूर्यकी[1] स्तुति करते हुए कहते हैं—

'हे मेरे जीवनरक्षक सर्वव्यापी ईश्वर (**मम वसो**) मनुष्यादि गणोंमें गणपति हम आपका आह्वान करते हैं। प्रियोंमें प्रियपति हम आपका आह्वान करते हैं। निधियोंमें निधिपति हम आपका आह्वान करते हैं। तुम समस्त स्थावर जंगमात्मक प्रजारूप गर्भ '**प्रजा वै पशवो गर्भः**' (श० ब्रा० १३। २। ८)-का पोषण करनेवाले हो (**त्वं गर्भधम् आ अजासि**)। मैं भी प्रजारूप गर्भका पोषक—पालक हो जाऊँ (**अहं गर्भधम् आ अजानि**)।'

शुक्लयजुःसंहितामें भी वाचस्पति, बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति-सम्बन्धी अनेक कण्डिकाएँ मिलती हैं। तीनोंकी एकता भी भाष्यकारोंने प्रतिपादित की है। बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति समस्त देवोंमें श्रेष्ठ, उनके पुरोहित अर्थात् अग्रगण्य हैं—

'त्रयो देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳ शाः सुराधसः। बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु मा॥'

(२०। ११)

'त्रिगुण एकादश अर्थात् तैंतीस सुसम्पन्न देव, जिनमें बृहस्पति अग्रगण्य हैं, सविता या परमात्माकी आज्ञामें वर्तमान होकर अन्य देवोंके साथ हमारी रक्षा करें।'

'रक्षा णो ब्रह्मणस्पते।' (यजुर्वेद ३। ३०)

'हे ब्रह्मणस्पति! हमारी रक्षा करो।'

अथर्ववेदमें एक स्थानपर जातवेदस् ब्रह्मणस्पतिसे प्रार्थना की गयी है कि 'बच्चेके दो दाँत, जो पिता-माताको व्याघ्रके समान मारनेके लिये उद्यत हैं, आप उन्हें कल्याणकारक बना दें।'

यौ व्याघ्रावववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः॥

(अथर्ववेद ६। १४०। १)

अन्यत्र विविध प्रकारके राक्षसोंके नाशकी भी प्रार्थना की गयी है—

'येषां पश्चात्प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरोमुखा। खलजाः शकभूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः। तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय॥'

(अथर्व० ८। ६। १५)

बृहस्पति या गणपतिको वेदोंमें 'देवपुरोहित' कहा गया है। पुरोहित अग्निस्वरूप ही होता है। इसमें पाँच विघ्नकारक शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। एक वाणीमें, एक पैरोंमें, एक त्वचामें, एक हृदयमें तथा एक उपस्थेन्द्रियमें। कुपित अग्निरूप पुरोहित राजाका निग्रह करता है और शान्त होनेपर अनुग्रह। सूनृतावाक्के द्वारा यजमान पुरोहितकी वाणीमें स्थित विघ्नको शान्त करता है, पादोदकसे पैरोंके विघ्नको। अलंकारोंसे त्वचामें विद्यमान, तर्पणसे हृदयमें स्थित और अनारुद्ध सुन्दर गृह प्रदान करके उपस्थके विघ्नको शान्त करता है। इस प्रकार शान्त हुआ अग्निरूप पुरोहित जैसे समुद्र-भूमिको सुरक्षित रखता है, वैसे राजाका कल्याण करता है।

'अग्निर्वा एष वैश्वानरः पञ्चमेनिर्यत् पुरोहितः, तस्य वाच्येवैका मेनिर्भवति पादयोरेका त्वच्येका हृदय एकोपस्थ एका ……।' (ऐतरेयब्राह्मण, ८ पंचिका, अध्या० ५। २४—२७)

'बृहस्पतिर्ह वै देवानां पुरोहितः।'—बृहस्पति या अग्निस्वरूप गणपति देवोंके पुरोहित हैं।' वे अशान्ततनु होकर कोई विघ्न न करें, अतः पंचोपचार पूजनद्वारा हम उन्हें शान्ततनु बनावें—

'स एनं शान्ततनुरभिहुतोऽभिप्रीतः स्वर्गलोक-मभिवहति क्षत्रं च बलं च राष्ट्रं च विशं च।'

(ऐतरेयब्राह्मण)

~~~०~~~

---

१. नेपालमें गणेशकी एक मूर्ति पायी जाती है, जिसका नाम 'सूर्य-गणपति' है।
~~~

श्रीगणेशकी उत्पत्ति, स्वरूप एवं सम्प्रदाय

(लेखक—डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, एम्० ए०[हिंदी, संस्कृत, दर्शन], बी० एड्०, व्याकरणाचार्य, पी-एच्०डी०)

गणेशजीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेकों मत उपलब्ध होते हैं। संक्षेपमें यहाँ उन सभीका दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

(१) वैखानसागममें गणेशोत्पत्तिकी दार्शनिक व्याख्या की गयी है। इसके अनुसार 'अहंकार-तत्त्व'से आकाशकी उत्पत्ति होती है और यह आकाश-तत्त्व ही 'गणेश' है। आकाश सर्वाधार है, अत: गणेशजी भी सर्वाधार हैं। आकाश या उसकी शब्द-तन्मात्रा ही 'गणेश' हैं। आकाश-तत्त्वसे ही सभी तत्त्व समुत्पन्न होते हैं और अन्तत: सभी उसीमें विलीन हो जाते हैं, अत: आकाशमें रूप-तन्मात्रा एवं अग्नि-तत्त्व, रस-तन्मात्रा एवं जल-तत्त्व, स्पर्श-तन्मात्रा एवं वायु-तत्त्व, गन्ध-तन्मात्रा एवं पृथ्वी-तत्त्व—विश्वके समस्त मूलभूत उपादान निहित रहते हैं। इसीलिये आकाश सर्वाधार है। आकाश-तत्त्व गणेश-तत्त्व है, अत: गणेश-तत्त्वमें विश्वोपादानके सभी तत्त्व एवं उनकी समस्त सूक्ष्म तन्मात्राएँ भी सूक्ष्मरूपमें अवस्थित हैं। गणेश ही अनन्त ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठाता देवता हैं।

उपनिषदोंमें '**त्वं ब्रह्म**' (आकाश ब्रह्म है) कहकर आकाशकी ब्रह्मरूपता सिद्ध की गयी है; अत: आकाशस्वरूप होनेसे गणेशजी भी निष्कल, निरंजन, निर्गुण, निराकार, अनवद्य, अद्वैत, अज, अखण्ड एवं अभेद परब्रह्म हैं।

वैखानसागममें ही दूसरे स्थलपर आकाशको 'गणाधिपति' कहा गया है और यह भी उपर्युक्त तथ्योंकी सम्पुष्टि करता है।

सांख्यशास्त्रके अनुसार पुरुष एवं प्रकृति (शिव एवं पार्वती) (**मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।** श्वेताश्वतर ४।१०)-के संयोगसे ही 'महत्तत्त्व'की उत्पत्ति होती है और 'अहंकार-तत्त्व'से आकाशादिक तत्त्वोंकी।

(२) तान्त्रिक विद्वानोंकी दृष्टिमें मूलाधारमें अवस्थित शक्ति (कुल-कुण्डलिनीके अतिरिक्त)-का नाम 'गणेश' है। वे मूलाधार-शक्तिको ही गणेश-तत्त्व भी मानते हैं।

(३) मत्स्यपुराणमें एक उपाख्यान है कि पार्वतीजीने अपने शरीरके अंगलेपसे एक क्रीडनक निर्मित किया। इसके सिरकी आकृति गजके सदृश थी। उन्होंने उसे लाकर गंगाजलसे जैसे ही उसका अभिषेक किया, वैसे ही वह प्राणवान् हो गया। उसे पार्वती एवं गंगा—दोनोंने अपना पुत्र माना। यही पुत्र 'गणेश'के नामसे विख्यात हुआ।

(४) लिङ्गपुराणके अनुसार देवोंने भगवान् शिवसे अनुरोध किया कि 'आप किसी एक ऐसी शक्तिका प्रादुर्भाव करें, जो कि सभी प्रकारके विघ्नोंका निवारण किया करे।' देवोंकी इस प्रार्थनाके अनुसार भगवान् शिवने स्वयं ही 'गणेश'के रूपमें जन्म ग्रहण किया।

इस पुराणमें गणेशजीका भगवान् शिवके साथ तादात्म्य दिखाते हुए उनकी समस्त उपाधियों, विशेषताओं, अभिधानों एवं विशिष्ट सामान्य लक्षणोंका प्रयोग भी गणेशजीके लिये किया गया है। इसके साथ-ही-साथ शिव तथा गणेश—दोनोंमें अभिन्नता सिद्ध करनेके लिये भगवान् शिवमें गणेशजीकी भी विशेषताओं एवं लक्षणोंको आरोपित किया गया है। 'वायुपुराण'में भगवान् शिवको '**गजेन्द्रकर्ण**', '**लम्बोदर**', '**दंष्ट्रिन्**' (वा० पु० २४। १४७। ३०। १८३) आदि कहकर इसी तथ्यकी पुष्टि की गयी है। 'ब्रह्मपुराण'में भी गणेशजीकी उपाधियोंका भगवान् शिवके लिये उपयोग करके दोनोंमें पूर्ण अभिन्नताका प्रतिपादन किया गया है।

(५) 'तैत्तिरीयब्राह्मण'में गणेशजीके वाहनको भगवान् शिवका भी वाहन कहकर तथा 'सौरपुराण'में गणेशजीको साक्षात् शिव ही कहकर यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की गयी है कि श्रीगणेशजी एवं भगवान् शिव दोनों एक ही हैं।

(६) 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'के मतानुसार गणेशजीका श्रीविष्णुके साथ तादात्म्य है। भगवान् विष्णु शिवजीसे कहते हैं कि 'पार्वतीजीसे एक पुत्र होगा, जो समस्त विघ्नोंका नाश करेगा।' इतना कहकर भगवान् विष्णु एक बालकका रूप धारण करके शिवके आश्रममें गये। वे पार्वतीजीकी शय्यापर बालकरूपमें लेट गये। पार्वतीजीने उन्हें अपना पुत्र माना। यही पुत्र 'गणेशजी'के नामसे लोकविश्रुत हुआ।

(७) 'शिवपुराण'के अनुसार पार्वतीजीने अपने शरीरके अनुलेपसे एक मानवाकृति निर्मित की और उसे आज्ञापित किया कि 'मैं स्नान करने जा रही हूँ। जबतक मैं नहीं कहूँ, तबतक तुम घरके अंदर किसीको मत आने देना। तुम गृहद्वारपर पहरा दो।'

यही गृहद्वार-रक्षक शक्ति 'गणेश'के नामसे अभिहित हुई और इन्हींके साथ भगवान् शिवका संग्राम हुआ।

(८) गणेश-सम्प्रदाय एवं गणेशपुराणमें भगवान् गणपतिको 'महाविष्णु' एवं 'सदाशिव' कहा गया है और उन्हें साक्षात् परात्पर ब्रह्म माना गया है। वे ही प्रपंचकी सृष्टि और स्थिति-संहारके आदिकारण हैं। उन्हींसे ब्रह्मा-विष्णु-महेशका प्रादुर्भाव हुआ है।

गणेशजीके स्वरूपका रहस्य

गणेशजीके पिता—गणेशके पिता हैं—'शिव'। '**शिव**' का अर्थ है—कल्याण। पिता कल्याण है और पुत्र विघ्नान्तक और कल्याणका उपस्थापक। इसका रहस्य यह है कि शिवतत्त्वकी प्राप्तिके अनन्तर साधकके साधन-मार्गकी समस्त विघ्न-बाधाएँ स्वतः ही नष्ट हो जायँगी और विघ्न-बाधाओंके नष्ट होते ही साधकको अनन्त ऋद्धियाँ एवं सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी। शिवत्व प्राप्त होनेपर मायिक बन्धनरूपी विघ्नोंके महाध्वंसरूप गणेशका प्रादुर्भाव होगा।

शिव—{ गणेश=विघ्नोंकी अपसारणा
(ऋद्धि-सिद्धि) मंगलकी प्राप्ति।

दूसरा रहस्य यह है कि शिवतत्त्वको प्राप्त किये बिना (१) मायिक एवं प्रापंचिक बन्धनरूपी विघ्नोंसे मुक्ति, (२) मंगल-प्राप्ति एवं (३) साधनामें सिद्धि-प्राप्ति—ये असम्भाव्य हैं; क्योंकि पिताके बिना पुत्रका जन्म असम्भव है।

गणेशजीकी माता—पार्वतीजी गणेशजीकी माता हैं। पार्वती—पर्ववती। पर्व=१-ज्ञान, २-इच्छा, ३-क्रिया=त्रिपर्व। ज्ञान-इच्छा-क्रियारूप पर्वत्रयका रहस्य यह है कि पर्वत्रयमें सामरस्यकी प्रतिमूर्ति पार्वतीजी हैं। इन पार्वतीजीकी भाँति साधकोंके भी ज्ञान, इच्छा एवं क्रियारूप पर्वत्रयमें सामरस्यकी स्थिति आनेपर (आध्यात्मिक जगत्‌के सभी मायिक बन्धनरूपी समस्त विघ्न-बाधाओंके ध्वंसरूप) गणेशका जन्म होगा। अर्थात् पर्वत्रयमें सामरस्य आनेपर समस्त विघ्न बाधाएँ विनष्ट हो जायँगी। (पार्वतीजीद्वारा गणेशजीके जन्मका आध्यात्मिक रहस्य यही है।)

गणेशके भ्राता—षडानन गणेशजीके भ्राता हैं, शिवके पुत्र हैं। स्कन्द भौतिक तत्त्वसे (रेतस्‌से) उत्पन्न हुए हैं; किंतु गणेश शक्तिके मानस-संकल्पसे (अभौतिक तत्त्वसे) प्रकट हुए हैं। इसी कारण अग्रज होनेपर भी 'स्कन्द' गणेशजीसे पराजित हो गये। इसमें भी रहस्य है। भौतिकवाद कितना भी अग्रज क्यों न हो; किंतु अध्यात्मवादरूपी अनुजसे जीत नहीं सकता। स्कन्द देवताओंकी सेनाके सेनापति (भौतिक शक्ति=शारीरिक शक्ति=क्षत्रियबलके स्वामी) हैं; किंतु गणेश आध्यात्मिक शक्ति, अध्यात्मबल, बुद्धिबलके स्वामी हैं। वे बुद्धिके देवता हैं, देवोंके अध्यक्ष हैं। दोनोंमें संघर्ष कराकर एवं गणेशकी स्कन्दपर विजय दिखलाकर पुराणकारने यह रहस्यार्थ प्रतिपादित किया है कि परात्पर ब्रह्म शिवके दो पुत्र हैं—(१) स्थूल एवं (२) सूक्ष्म। एकमें जडताका प्राधान्य है तो दूसरेमें चेतनताका। एकमें शारीरिक बलकी विशिष्टता है तो दूसरेमें आत्मबलकी। एक विश्वकी विजय (भू-परिक्रमाका उपाख्यान देखिये) अपने शारीरिक पुरुषार्थसे करनेमें निष्ठा रखता है तो दूसरा श्रद्धा-भक्तिसे। एक शरीरप्रधान है तो दूसरा आत्मप्रधान। ये दोनों एक ही पिताकी दो संतानें हैं, किंतु इनमें दूसरी संतान ही सदा विजयिनी होगी। ठीक ही कहा गया है—

'धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्॥'

(वा० रा० १।५६।२३)

षडानन—अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ और एक मन। भौतिक जगत् षडाननतक ही सीमित है और उसकी अन्तिम शक्ति—सेना एवं सेनापति (शारीरिक शक्ति=भौतिक शक्ति)-में प्रतिष्ठित है। देवता भोगी होते हैं, तपस्वी नहीं, अतः 'षडानन'से परे नहीं जा सकते। 'षडानन' (५+१) देवोंके सुरक्षा-प्रहरी हैं। देवताओंमें षडानन (५+१)-से परे जा सकनेकी क्षमता नहीं, किंतु गणेश षडाननसे परे हैं। वे देवोंके सेनापति (भौतिक शक्तिके संरक्षक-प्रहरी) नहीं हैं, प्रत्युत उनके अग्रगण्य हैं।

गणेशकी पत्नियाँ—गणेशजीकी पत्नियोंके नाम हैं—(१) ऋद्धि-सिद्धि एवं (२) बुद्धि। इसका रहस्य

यह है कि साधना-क्षेत्रमें शिवत्वकी प्राप्तिके अनन्तर विघ्नोंके नाशक (गणेश) बननेकी क्षमता आ जाती है और तब सभी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ साधकके लिये स्वपत्नीवत् स्ववशवर्तिनी हो जाती हैं। गणेशजीकी पत्नियाँ विश्वरूपकी कन्याएँ हैं। इसका रहस्यार्थ निम्न है—गणेश विश्वकी समस्त नाम-रूपोत्पन्न मायात्मिका मोहिका शक्तियोंके स्वामी हैं। अर्थात् साधक जबतक नाम-रूपात्मक जगत् एवं उसकी मायात्मिका शक्तियोंपर अधिकार नहीं कर लेता, तबतक वह 'ऋद्धि-सिद्धि-बुद्धि'का स्वामी तथा 'क्षेम' और 'लाभ'का पिता (स्वामी) नहीं बन सकता।

गणेशके पुत्र—गणेशके पुत्रोंके नाम हैं—'क्षेम' एवं 'लाभ'। इसका रहस्य यह है कि साधना-क्षेत्रमें सनातन क्षेम एवं सनातन लाभ प्राप्त करनेके लिये गणेश अर्थात् शिवपुत्र (शिवत्व-प्राप्त) बनना ही पड़ेगा; अन्यथा 'क्षेम' एवं 'लाभ'की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

गणेशकी पराजय—

शिव-गणेश संग्राममें गणेशजीकी पराजयका रहस्यार्थ यह है कि अकेली 'शक्ति' या उसका एक-एक तेजोंश शिवसे पृथक् रहकर पूर्ण विजयी नहीं हो सकता। शक्ति शिवसे रहित होनेपर निराधार हो जाती है। शिवपुत्रकी मृत्यु एवं शिवका पश्चात्ताप यह द्योतित करता है कि शिव भी शक्तिसे रहित होकर जो कार्य करेंगे, वह अपूर्ण एवं अनर्थकारी होगा। (अर्थात् शक्तिसे रहित शिव भी अपूर्ण हैं।) मत्स्येन्द्रनाथने ठीक ही कहा है—

'न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः[1]।'
'शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः[2]॥'
'शिवोऽपि शक्तिरहितः कर्तुं शक्तो न किञ्चनः[3]॥'

गाणपत्य सम्प्रदाय—

हिंदुओंके अनेक सम्प्रदाय हैं। उसीमें एक गाणपत्य सम्प्रदाय भी है। गाणपत्य सम्प्रदायके छः भेद हैं—(१) महागणपति-सम्प्रदाय, (२) हरिद्रागणपति-सम्प्रदाय, (३) उच्छिष्टगणपति-सम्प्रदाय, (४) नवनीतगणपति-सम्प्रदाय, (५) स्वर्णगणपति-सम्प्रदाय एवं (६) संतान-गणपति-सम्प्रदाय।

इस सम्प्रदायका प्रधान ग्रन्थ 'गणेशपुराण' है। गणेशजीसे सम्बद्ध अनेकों उपनिषदें भी प्राप्त होती हैं और पुराणोंमें भी उनका माहात्म्य प्रतिपादित है।

'कपिल-तन्त्र'में कहा गया है कि 'विष्णु, महेश्वरी, सूर्य एवं शिव क्रमशः आकाश, अग्नि, वायु एवं पृथ्वीके स्वामी हैं, किन्तु गणेशजी तो साक्षात् जीवनके स्वामी हैं'—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अतएव सभी देवोंके पूर्व गणेशजीकी पूजा की जाती है।

~~~o~~~

भगवान् ब्रह्मणस्पति

(लेखक—श्रीरामलाल)

वेद विश्वका आदि वाङ्मय है। वेदोंमें गणपतिका 'ब्रह्मणस्पति' रूपमें निरूपण उपलब्ध होता है। समस्त मंगलोंके परम निधान श्रीगणपति ब्रह्मणस्पति रूपमें सर्वज्ञाननिधि हैं, सर्वश्रेष्ठ देव हैं, समस्त वाङ्मयके अधिष्ठाता कवि हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आदि तथा ऐतरेय ब्राह्मण और गणपत्युपनिषद् आदिमें ब्रह्मणस्पति गणेशका विशद तत्त्वाङ्कन मिलता है। श्रीब्रह्मणस्पतिके वैदिक तत्त्वाङ्कनका निदर्शन पुराणोंमें भी किया गया है। मुद्गलपुराणके अष्टम खण्डके धूम्रवर्ण-चरित्रके प्रसंगमें भगवान् शिवने सर्वपूज्य, मांगल्येश, विघ्नेश्वर, सिद्धिबुद्धि-पति ब्रह्मणस्पतिकी वन्दना की है—

सिद्धिबुद्धिपतिं वन्दे ब्रह्मणस्पतिसंज्ञितम्।
माङ्गल्येशं सर्वपूज्यं विघ्नानां नायकं परम्॥

* * *

१. मत्स्येन्द्रनाथ—कौलज्ञान-निर्णय। २. देवीभागवतपुराण। ३. सिद्धसिद्धान्तसंग्रह।
~~~

मातापिता यं जगतां परेषां
तस्यापि माता जनकादिकं न।
श्रेष्ठं वदन्ते निगमाः परेशं
तं ज्येष्ठराजं प्रणमामि नित्यम्॥

(मुद्गलपुराण, खण्ड ८२। ४९। १७, ३०)

'ये गणेशजी जगत्में अन्य सभी लोगोंके माता-पिता हैं, किंतु इनका कोई माता-पिता नहीं है। वेद इन परमेश्वरको सबसे श्रेष्ठ कहते हैं। मैं इन ज्येष्ठराज गणेशको नित्य प्रणाम करता हूँ।'

श्रीगणेशजी परब्रह्म परमात्मा हैं। श्रीविष्णुने पार्वतीजीके प्रति भगवान् गणेशकी ज्ञाननिर्वाणरूपता एवं परब्रह्मरूपताका वर्णन करते हुए उनकी वन्दना की है—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥

(ब्रह्मवैवर्त, गणपति० ४४। ८७)

गणेश-आगममें सात करोड़ मन्त्र कहे जाते हैं। इसका रहस्य भगवान् शिव और कुछ-कुछ ब्रह्माजीको विदित है। श्रीब्रह्माजीकी व्यासजीके प्रति स्वीकृति है—

'सप्तकोटिमहामन्त्रा गणेशस्यागमे स्थिताः।'

(गणेशपुराण, उपासना० ११। ३)

यद्यपि वेदोंमें भगवान् ब्रह्मणस्पतिके मन्त्र आदि वर्णित हैं तथा उनके स्वरूपका अभिव्यंजन प्राप्त होता है, तथापि वेदज्ञ भी उनका तत्त्व नहीं समझ पाते। देवताओंने उनकी स्तुतिमें अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

नमो नमो विश्वभृतेऽखिलेश
नमो नमः कारणकारणाय।।
नमो नमो वेदविदामदृश्य
नमो नमः सर्ववरप्रदाय।।

(गणेशपुराण, उपासना० ४०। ४४)

'अखिलेश्वर! आप विश्वका भरण-पोषण करनेवाले हैं; आपको बारंबार नमस्कार है; आप कारणोंके भी कारण हैं; आपको अनेक बार नमस्कार है। वेदवेत्ताओंकी भी दृष्टि आपतक नहीं पहुँच पाती है; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सबको वर देनेवाले गणेश! आपको बारंबार नमस्कार है।'

वेदज्ञ उनके तत्त्वका दर्शन नहीं कर पाते हैं; उनका तात्त्विक साक्षात्कार उन्हींकी कृपापर निर्भर है। महात्मा श्रीविनायककी महिमा बड़ी भारी है; वे महान् पुरुषोंमें भी सबसे बड़े महात्मा हैं—इसका स्पष्टीकरण भगवती पार्वतीके प्रति कहे गये भगवान् श्रीकृष्णके वचनसे हो जाता है।

शृणु देवि महाभागे वेदोक्तं वचनं मम।
यच्छ्रुत्वा हर्षिता नूनं भविष्यसि न संशयः॥
विनायकस्ते तनयो महात्मा महतां महान्॥

(ब्रह्माण्डपुराण, मध्य० तृतीय उपोद्घात ४२। ३०)

'गणपत्युपनिषद्' में अपने परब्रह्मस्वरूपकी व्यापकतापर स्वयं गणेशजीने प्रकाश डाला है कि 'जिनका नमन कर मुनिलोग निर्विघ्नतासे उस पदको प्राप्त होते हैं और जो 'गणेशोपनिषद्'से जाना जाता है, मैं वही सर्वव्यापी ब्रह्म हूँ'—

यं नत्वा मुनयः सर्वे निर्विघ्नं यान्ति तत्पदम्।
गणेशोपनिषद्वेद्यं तद् ब्रह्मैवास्मि सर्वगम्॥

(गणपत्युपनिषद्)

श्रुतिप्रतिपाद्य भगवान् गणपति-ब्रह्मणस्पति आदि-अन्तसे रहित, स्वाधीन और नित्य कालस्वरूप हैं। वे दिग्बन्धनसे अनवच्छन्न सर्वव्यापक सम्पूर्ण परमात्मा हैं। भगवान् गणपति प्रत्यक्ष तत्त्व हैं, कर्ता, धर्ता और हर्ता हैं। सब रूपोंमें विद्यमान ब्रह्म हैं, आत्मा हैं। उनका औपनिषद स्तवन इस प्रकार है—

'ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्त्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष उप० १)

श्रीगणेशजी अव्यय हैं, अविनाशी और अगम हैं, वे निर्गुण निराकार हैं, मन और वाणीसे परे सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म हैं, अपने स्वजनों—उपासकोंपर कृपा करनेके लिये वे साकार हो जाते हैं। ब्रह्मा-शिव आदि भी उन्हें तत्त्वतः नहीं जानते हैं और न शेष ही उनकी महिमाका पूर्णरूपसे वर्णन कर पाते हैं—

यस्य स्वरूपं न विदुर्ब्रह्मेशानादयः सुराः।
सहस्रवदनो यस्य महिमानं न च क्षमः॥
यावद्विशेषविदपि प्रवक्तुं राजसत्तम॥

(गणेशपुराण, उपासनाखण्ड ९। ३१-३२)

श्रीगणेशके उपासक भी उनको 'निर्गुण' ही कहते

हैं। उनका स्वरूप-वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं कहा जा सकता है—

गणेशस्य स्वरूपं न वक्तुं केनापि शक्यते।
तथाप्युपासनासक्तैर्निर्गुणं तन्निरूप्यते॥

(गणेशपुराण, उपासना० १। १३)

भगवान् गणपति परमानन्द हैं, वे ही परम गति हैं। वेद-शास्त्रार्थदर्शी उन्हें 'परब्रह्म' कहते हैं। ब्रह्माके वचन हैं—

यमाहुः परमानन्दं यमाहुः परमां गतिम्।
यमाहुः परमं ब्रह्म वेदशास्त्रार्थदर्शिनः॥

(गणेशपुराण, उपासना० १०। २७)

भगवान् गणनायक ब्रह्मणस्पति, सत्, असत्, व्यक्त और अव्यक्त—सब कुछ हैं। वे अजन्मा और निर्विकल्प हैं, लौकिक आनन्दसे परे अद्वैत एवं परमानन्दपूर्ण हैं; निराकार, सर्वश्रेष्ठ, निर्गुण और इच्छारहित परब्रह्मस्वरूप हैं—

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं
निरानन्दमद्वैतमानन्दपूर्णम् ।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं
परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥

(गणेशपु०, उपा० १३। ३)

भगवान् वामनने श्रीगणेशजीकी महिमाका वर्णन करते समय उनके तात्त्विक स्वरूपका अभिव्यंजन करते हुए उन्हें 'वेदवन्दित' कहा है। श्रीवामनके मन्त्रजपके प्रभावसे भगवान् ब्रह्मणस्पति श्रीगणेशजीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया था। श्रीवामनने उनकी स्तुति की—

अव्यक्तं व्यक्तहेतुं निगमनुततनुं सर्वदेवाधिदेवं
ब्रह्माण्डानामधीशं जगदुदयकरं सर्ववेदान्तवेद्यम्।
मायातीतं स्ववेद्यं स्थितिविलयकरं सर्वविद्यानिधानं
सर्वेशं सर्वरूपं सकलभयहरं कामदं कान्तरूपम्॥

(श्रीगणेशपुराण, क्रीडा० ३१। १४)

'जो अव्यक्तस्वरूप तथा व्यक्त जगत्के हेतु हैं; जिनका श्रीविग्रह वेदवन्दित है; जो सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेव हैं; जो अखिल ब्रह्माण्डोंके नायक, जगत्के स्रष्टा, सर्ववेदान्तवेद्य, मायातीत, स्वसंवेद्य, सृष्टि, स्थिति और संहारके कर्ता हैं; जो समस्त विद्याओंकी निधि, सर्वेश्वर, सर्वरूप, सर्वभयहारी, मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले तथा कमनीयरूपधारी हैं; उन श्रीगणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

श्रीब्रह्मणस्पति समस्त स्तुतियोंके आश्रय हैं। वेदमें उनका निरूपण-तत्त्वांकन विद्यमान रहनेपर भी वे वेदोंकी पहुँचके बाहर हैं—वेदातीत हैं—

'पदं स्तुतीनामपदं श्रुतीनाम्'

(शारदातिलक १३। १४२)

भगवान् ब्रह्मणस्पति गणेशजी प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, वे ज्ञान-विज्ञानमय हैं। स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें उनकी स्तुति है—'हे परमकारण! आप कारणोंके भी कारण हैं, वेदके विद्वानोंद्वारा सदा एकमात्र आप ही जाननेयोग्य हैं। आप ही वेदवाणीमें अनुसंधान करनेयोग्य, अनिर्वचनीय तत्त्व हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके दिव्य स्वरूपका एक अंश है तथा आप वाणीके अविषय हैं'—

त्वं कारणं परमकारणकारणानां
वेद्योऽसि वेदविदुषां सततं त्वमेकः।
त्वं मार्गणीयमसि किञ्चन मूलवाचां
वाचामगोचर चराचर दिव्यमूर्ते॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ५७। ३०)

श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें ब्रह्मतेजके इच्छुक उपासकोंके लिये ब्रह्मणस्पतिकी उपासना युक्तिसंगत बतायी है। ब्रह्मणस्पति वेदपति बृहस्पति हैं—गणपति हैं—

'ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम्।'

(श्रीमद्भागवत २। ३। २)

परब्रह्म श्रीगणेशजी ब्रह्मणस्पतिरूपमें ऋक्-यजुः-साम—तीनों वेदोंके सार हैं—

'त्रयीवेदसारं परब्रह्मपारम्।'

(गणेशपुराण, उपासना० १३। ९)

ब्रह्माजीका गणेशके प्रति कथन है कि ''आपका नाम वेदोंका मूलभूत ओंकाररूप है और आप गणोंके स्वामी हैं, इसलिये आपका नाम 'गणेश' होगा।''

त्वन्नाम बीजं प्रथमं....
ओङ्काररूपं श्रुतिमूलभूतम्।
यतो गणानां त्वमसीह ईशो
गणेश इत्येव तवास्तु नाम॥

(गणेशपुराण, उपा० ४५। ८)

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदमें ब्रह्मणस्पतिके सम्बन्धमें

जो उल्लेख मिलता है, उससे उनके गणपतिरूपका तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिःसीद सादनम्॥

(ऋग्वेद २। २३। १)

उपर्युक्त मन्त्रके देवता ब्रह्मणस्पति हैं। ये ब्रह्मणस्पति वेदज्ञानके पालक परब्रह्म परमेश्वर हैं, गणोंमें प्रमुख हैं, उनके स्वामी हैं, कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, परम यशस्वी तथा कीर्तनीय हैं; ये प्रत्येक स्थानमें विद्यमान हैं। महामति सायणने उपर्युक्त मन्त्रके भाष्यमें ब्रह्मणस्पति देवताका रूप इस प्रकार व्यक्त किया है—

'हे ब्रह्मणस्पते ब्रह्मणोऽन्नस्य परिवृढस्य कर्मणो वा पते पालयितः गणानां देवादिगणानां सम्बन्धिनं गणपतिं स्वीयानां पतिं कवीनां क्रान्तदर्शिनां कविम् उपमश्रवस्तमम् उपमीयतेऽनयेत्युपमा सर्वेषामन्नानामुपमानं श्रवोऽन्नं यस्य स तथोक्तः अतिशयेनोपमश्रवाः उपमश्रवस्तमः....... ज्येष्ठराजं ज्येष्ठाः प्रशस्यतमाः तेषां मध्ये राजन्तं ब्रह्मणां मन्त्राणां स्वामिनं त्वा त्वां हवामहे अस्मिन् कर्मण्याह्वयामः किञ्च नोऽस्माकं स्तुतीः आशृण्वन् त्वम् ऊतिभिः पालनैर्हेतुभूतैः सादनं सीदन्त्यस्मिन्निति सदनं यज्ञगृहमासीदोपविश।'

अभिप्राय यह है कि 'हे ब्रह्मणस्पति! आप देवोंमें गणपति और कवियों—क्रान्तदर्शी विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आपका अन्न सर्वश्रेष्ठ और उपमानभूत है। आप ज्येष्ठराज प्रशंसनीय लोगोंमें राजमान और मन्त्रोंके स्वामी हैं। हम आपको बुलाते हैं। आप हमारी स्तुति सुनकर आश्रय प्रदान करनेके लिये यज्ञगृहमें आसन ग्रहण कीजिये।'

'ऐतरेयब्राह्मण' में इसी अभिप्रायका मन्त्र उपलब्ध होता है—

'गणानां त्वा गणपतिं हवामह इति ब्राह्मणस्पत्यं ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनं तद्भिषज्यति।'

(४। ४। २१)

भगवान् ब्रह्मणस्पति ही इस मन्त्रके प्रकाशमें गणपति हैं, बृहस्पति हैं।

ब्रह्मणस्पति सुगोपा—उत्तम संरक्षक हैं, जिसकी वे रक्षा करते हैं, वह किसीके भी द्वारा उत्पीड़ित और संतापित नहीं हो सकता—

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥

(ऋग्वेद २। २३। ५)

'हे सुरक्षक ब्रह्मणस्पति! जिसकी आप रक्षा करते हैं, उसे कोई दुःख-कष्ट नहीं दे सकता, पाप उसे पीड़ित नहीं कर सकते, शत्रु उसे मार नहीं सकते, वंचक उसे सता नहीं सकते, हे देव! उसके लिये आप समस्त हिंसकोंको दूर भगा देते हैं।'

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके अठारहवें सूक्तके देवता ब्रह्मणस्पति हैं। इस सूक्तका दूसरा मन्त्र भगवान् गणपतिके सिद्धिदाता और पुष्टिप्रदान करनेवाले गुणका द्योतन करता है। इसमें श्रीगणेशका मांगलिक रूप स्पष्ट हो जाता है—

यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः स नः सिषक्त यस्तुरः॥

(ऋग्वेद १। १८। २)

उपर्युक्त मन्त्रका भाष्य सायणाचार्यद्वारा प्रस्तुत है—

'यो ब्रह्मणस्पतिः रेवान् धनवान् यश्चामीवहा रोगाणां हन्ता वसुवित् धनस्य लब्धा पुष्टिवर्धनः पुष्टेर्वर्धयिता यश्च तुरः त्वरोपेतः शीघ्रफलदः स ब्रह्मणस्पतिर्नोऽस्मान् सिषक्तु सेवतां परिगृह्यानुगृह्णात्वित्यर्थः।'

अभिप्राय यह है कि जो सम्पत्तिशाली, रोगापसारक, धनदाता, पुष्टिवर्धक और शीघ्र फलदाता हैं, वे ही ब्रह्मणस्पति हमलोगोंपर अनुग्रह करें।

शुक्लयजुर्वेदका निम्न उद्धृत मन्त्र भगवान् गणेशकी पूजामें विद्वानों तथा शास्त्रज्ञोंद्वारा प्रयुक्त होता है—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥'

(२३। १९)

उपर्युक्त मन्त्रद्वारा आवाहित तथा पूजित गणेशभगवान् ब्रह्मणस्पति गणपति प्रियपतिस्वामी अथवा सर्वनियन्ता परमेश्वर और निधिपतिरूपमें स्वीकृत हैं। किसी-किसी भाष्यकारके मतसे उपर्युक्त मन्त्रका यह अर्थ विदित होता है कि 'हे परमदेव गणेशजी! आपको हम समस्त गणोंका पति स्वीकार करते हैं, आपको प्रिय पदार्थों-प्राणियोंका पालक और समस्त सुखनिधियोंका

निधिपति स्वीकार करते हैं। आप सृष्टिको उत्पन्न करनेवाले हैं, हम जीवात्मा हिरण्यगर्भको धारण करनेवाले— संसारको अपने-आपमें धारण करनेवाली प्रकृतिके भी स्वामी आपको प्राप्त हों।'

'सामवेद'के एक मन्त्रमें भगवान् ब्रह्मणस्पतिका उल्लेख उपलब्ध होता है, जिसमें उपासकद्वारा उनकी प्राप्तिकी प्रार्थना की गयी है—

'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।'
(५६)

मन्त्रका आशय है कि ब्रह्माण्डके पालक ईश्वर ब्रह्मणस्पति और वाग्देवता-भगवती वाणी हमें प्राप्त हों। यही मन्त्र ऋग्वेद १।४०।३ में भी मिलता है।

भगवान् ब्रह्मणस्पतिकी स्तुति ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, वेद तथा वेदज्ञोंके वशकी बात नहीं है। साक्षात् श्रीविष्णुके वचन हैं—'ईश! मैं सनातन ब्रह्मज्योति:स्वरूप आपका स्तवन करना चाहता हूँ, पर आपके अनुरूप निरूपण करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। .... शेष अपने सहस्रों मुखोंसे भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। आपके स्तवनमें न पञ्चमुख महेश्वर समर्थ हैं, न चतुर्मुख ब्रह्मा; न सरस्वतीकी शक्ति है और न मैं ही समर्थ हूँ। आपका स्तवन करनेमें चारों वेद भी समर्थ नहीं हैं, फिर उन वेदवादियोंकी क्या गणना है?'

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम्॥
त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च।
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः॥
सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ।
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः॥
(ब्रह्मवैवर्त्त० गणपति० १३।४१, ४९-५०)

आद्यदेव वेदप्रतिपाद्य ब्रह्मणस्पति भगवान् गणपतिका ज्ञान केवल स्वानुभवसे होता है तो हो जाता है। बड़े-बड़े स्वानुभवी संत-महात्माओं, ऋषि-मुनियों और आत्मवादियोंने स्वानुभवमें उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया है। वे ओंकारस्वरूप परमात्मा हैं। महात्मा ज्ञानेश्वरने श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका 'ज्ञानेश्वरी'में श्रीगणेशजीके मांगलिक स्वरूपको स्मरण करते हुए उनकी स्तुति की है—

'ॐ नमो श्रीआद्या। वेद प्रतिपाद्या। जय जय स्वसंवेद्या आत्मरूपा। देवा तूंचि गणेशु। सकलमति प्रकाशु।' (१।१-२)

आशय यह है कि 'हे ओंकारस्वरूप परमात्मा! वेद ही आपका प्रतिपादन कर सकते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप ऐसे आत्मस्वरूप हैं, जिनका ज्ञान केवल स्वानुभवसे ही हो सकता है। मैं आपका जय-जयकार करता हूँ।'

भगवान् ब्रह्मणस्पति श्रीगणपति—सिद्धि-बुद्धिके स्वामी वेदप्रतिपाद्य श्रीगणेश अचिन्त्य, अनन्त और अव्यक्त होकर भी अपने उपासकोंपर कृपा करनेके लिये उनके ध्यान, चिन्तन एवं उपासनामें साकार हो जाते हैं।

~~~०~~~

भगवान् श्रीकृष्ण ही गणेशरूपमें

(लेखक—श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृतितीर्थ)

इस संसारमें परब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी वस्तुका अस्तित्व नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं कहा है—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(७।७)

अर्थात्—'मेरे सिवा जगत्में किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। सूतमें गुँथी हुई मालाके मणियोंकी तरह सभी वस्तुएँ मुझमें गुँथी हुई हैं।' तात्पर्य यह है कि जैसे सूत मणियोंसे ढक जानेके कारण दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी तरह मायासे ढके रहनेके कारण मैं किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता।

'मनुष्य अपनी श्रद्धाके अनुसार मेरे जिस-जिस स्वरूपकी उपासना करता है, उसी-उसी स्वरूपमें उसकी श्रद्धाको मैं बढ़ा देता हूँ और वह अपनी श्रद्धाके अनुसार मेरे द्वारा विहित फलको प्राप्त करता है।' यथा—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
~~~

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्॥

(गीता ७। २१-२२)

'विष्णुसहस्रनाम'में भीष्मपितामहने भी कहा है—

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥

अर्थात् 'मैं समस्त प्राणियोंके आदिभूत, इस पृथ्वीके आधारभूत, अनेक रूपोंको धारण करनेवाले तथा सर्वसमर्थ भगवान् विष्णुको नमस्कार करता हूँ।' इसलिये यह समझना चाहिये कि सब देवताओंके रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। इससे यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण ही श्रीगणेशके रूपमें हैं।

इनके आविर्भावके विषयमें ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके गणपतिखण्डमें विस्तृत कथा मिलती है। जैसे भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्मस्वरूप होनेसे अनादि और अनन्त हैं, वैसे ही अनादि शक्ति जगन्माता दुर्गा हैं; क्योंकि ये भी प्रकृतिस्वरूपा हैं। पर्वतराज हिमालयकी पुत्रीरूपसे प्रकट होनेके कारण इनका नाम 'पार्वती' हुआ। अतः महर्षि नारदकी प्रेरणासे पर्वतराज हिमालयने अपनी पुत्री पार्वतीका दाम्पत्य-सम्बन्ध परब्रह्मके अंशस्वरूप भगवान् शंकरके साथ स्थापित किया।

भगवान् विष्णुकी शक्ति महालक्ष्मी, ब्रह्माकी शक्ति सरस्वती और शिवकी शक्ति पार्वती—ये तीनों शक्तियाँ प्रकृतिस्वरूपा हैं; इसलिये इनकी संतानोंका जन्म (गर्भसे प्राकृतिक रूपमें) नहीं होता; बल्कि इनका आविर्भाव होता है।

पार्वतीके साथ शंकरका विवाह होनेके पश्चात् बहुत दिन बीत जानेपर भी जब कोई संतति नहीं हुई, तब स्त्री-स्वभावके कारण पार्वतीके मनमें बहुत दुःख हुआ। इन्होंने अपने दुःखका कारण भगवान् शंकरसे कहा—

त्रैलोक्यकान्तं कान्तं त्वां लब्ध्वापि न च मे सुतः।
या स्त्री पुत्रविहीना च जीवनं तन्निरर्थकम्॥
जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्।
सद्वंशजातः पुत्रश्च परत्रेह सुखप्रदः॥
सुपुत्रः स्वामिनोंऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः।
कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापाय केवलम्॥

(ब्रह्मवैवर्त्त० गणपतिखण्ड २। २४—२६)

'आप-जैसे त्रिलोक सुन्दर पतिके प्राप्त होनेपर भी मुझे पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। जिस स्त्रीको पुत्र नहीं होता, उसका जीवन निरर्थक हो जाता है। तपस्या और दानजनित पुण्य जन्मान्तरमें सुख देनेवाले होते हैं। अच्छे वंशमें उत्पन्न हुआ पुत्र इस लोक और परलोकमें भी सुख-शान्ति देनेवाला होता है। सच्चरित्र पुत्र पतिका अंशस्वरूप होता है, इसलिये वह पतिके समान ही सुख देता है। यदि दुश्चरित्र पुत्र होता है तो वह कुलांगार केवल मानसिक दुःख ही देता है।'

पार्वतीने अपने दुःखका कारण बतलाया और उदास मनसे वे शिवजीके सामने मौन होकर बैठ गयीं। करुणावरुणालय शंकरने पार्वतीको उदास देखकर कहा—

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति॥
उपायतः कार्यसिद्धिर्भवत्येव जगत्त्रये।
हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने॥
व्रतं च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि।

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ३। १,३)

'हे पर्वतराज हिमवान्‌की पुत्री! मेरे वचनको ध्यान देकर सुनो, तुम्हारा कल्याण होगा। मैं तुमको उपाय बतलाता हूँ; क्योंकि तीनों लोकोंमें उपायसे ही कार्यमें सफलता प्राप्त होती है।......वरानने! भगवान् श्रीहरिकी आराधना करके पुण्यक नामक श्रेष्ठ व्रतका एक वर्षतक पालन करो।' इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे भगवान् गोपांगनेश्वर श्रीकृष्ण ही तुमको पुत्ररूपमें प्राप्त होंगे। यद्यपि वे सब प्राणियोंके अधीश्वर हैं, फिर भी वे इस व्रतके अनुष्ठानसे तुमपर प्रसन्न हो तुम्हारे पुत्र बनकर तुम्हारे पास आयेंगे।' यथा—

व्रतस्यास्य प्रभावेण स्वयं गोपाङ्गनेश्वरः।
ईश्वरः सर्वभूतानां तव पुत्रो भविष्यति॥

(ब्रह्मवैवर्त्त० गणपति० ५। २७)

शिवजीके इस वचनको सुनकर सतीशिरोमणि भगवती पार्वतीने शास्त्रोक्तविधिके साथ श्रीकृष्णभगवान्‌की पूजा की और 'पुण्यक' व्रत करना आरम्भ किया। व्रत निर्विघ्न समाप्त हो गया। समाप्तिके दिन उत्सव मनाया गया। पुरोहितको बुलाकर हवन कराया गया। लाखों ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया गया। भगवान् शंकरने सभी देवगण तथा सूर्यादि ग्रहोंको दूत भेजकर बुलाया।

सबके उपस्थित होनेपर देवीने बहुत उत्साहके साथ ब्राह्मणों, देवताओं और सूर्यादि ग्रहों एवं प्रमथगणोंको भोजन कराया। देवताओंके साथ सर्वेश्वर नारायण, ब्रह्मा एवं महेश्वरने भी आनन्दके साथ भोजन किया।

भगवती शिव-सहधर्मिणी पार्वतीने ब्राह्मणोंको प्रचुरमात्रामें दक्षिणा दी। वे ब्राह्मण भी अत्यन्त संतुष्ट हो गये और उन लोगोंने प्रसन्न-मनसे पार्वतीको मनोरथपूर्ण होनेका आशीर्वाद दिया। अन्तमें जब पुरोहितको यज्ञान्त-दक्षिणा देनेका समय आया, तब पुरोहित सनत्कुमारजीने पार्वतीसे कहा—'हे देवि शंकरप्रिये! आपने सभी ब्राह्मणोंको मुँहमाँगी दक्षिणा दी है; अत: मुझे आप मेरी अभीष्ट दक्षिणा दीजिये।' देवी पार्वतीने पूछा—'आपकी अभीष्ट दक्षिणा क्या है?' सनत्कुमारजीने कहा—'हे देवि! मेरी अभीष्ट दक्षिणा भगवान् शंकर हैं। कृपया उन्हींको मेरी दक्षिणामें मुझे दीजिये। अन्य विनाशी पदार्थोंको लेकर मैं करूँगा क्या? पुरोहितको अभीष्ट दक्षिणा देनेसे आपका मनोरथ शीघ्र पूर्ण होगा।'

भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाके प्रभावसे श्रीशंकरकी अर्द्धांगिनी पार्वतीकी बुद्धि भी मोहित हो गयी। अत: पुरोहितके वचनको सुनते ही वे विलाप करने लगीं एवं रोते-रोते मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

देवसभामें विष्णु, ब्रह्मा और शंकरजी अभी बैठे ही थे कि ऋषियोंने जाकर पार्वतीके मूर्च्छित होनेका समाचार कहा। शंकरजी उस समय सभी देवताओंके स्वागतमें व्यस्त थे, इसलिये ऋषियोंकी बातपर उनका ध्यान नहीं गया। पश्चात् विष्णुभगवान् और ब्रह्माने इस समाचारको सुना और उन दोनोंने शिवजीको प्रेरित करके पार्वतीके पास भेजा।

शंकरजीने जाकर जगदम्बा पार्वतीको मूर्च्छित अवस्थामें देखा और हृदयसे लगाकर अपने अमृतमय करतल स्पर्शसे उन्हें सचेत किया। फिर शंकरजीने सुना कि पुरोहित सनत्कुमारने यज्ञान्त-दक्षिणाके रूपमें भगवान् शंकरको ही माँगा है, इसीलिये इनको मूर्च्छा आ गयी है। इस बातको सुनकर सर्वान्तर्यामी भगवान् शंकरने अपनी प्रियतमा पत्नी पार्वतीसे कहा—'प्रिये! तुम तो त्यागरूपा हो; सनत्कुमारजीको उनकी अभीष्ट दक्षिणा अवश्य दे दो।' पार्वतीकी मूर्च्छाका समाचार सुनकर अपनी शक्तियोंके साथ भगवान् नारायण और ब्रह्मा भी शंकरजीके पास ही आ गये। श्रीमन्नारायणने जब दक्षिणामें शिवजीके माँगनेकी बात सुनी, तब उन्होंने कहा—'देवि! तुम तो उदारहृदया हो, तुम्हारे लिये अदेय क्या है, पुरोहितने तुमसे जो दक्षिणा माँगी है, तुम उसे उन्हें दे दो, तुम्हारा कल्याण ही होगा।' भगवान् नारायणके कहनेसे पार्वतीजीने अपने प्रिय पति भगवान् महेश्वरको उन्हें दक्षिणामें दे दिया।

पुरोहित सनत्कुमारजी महादेवजीको लेकर चलनेके लिये उद्यत हुए। तब पार्वतीके दु:खको देखकर नारायणने कहा—

विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः।
द्विजाय दत्त्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ७। ८०)

श्रीमन्नारायणके वचनको सुनकर देवी पार्वतीके मनमें कुछ साहस हुआ और उन्होंने कातरस्वरसे अपने पुरोहित सनत्कुमारजीसे कहा—

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम्।
गवां लक्षं प्रयच्छामि देहि मत्स्वामिनं द्विज॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ७। ८५)

'एक गौका मूल्य मेरे स्वामीके समान है। मैं आपको एक लाख गौएँ देती हूँ। एक ही गौका मूल्य, भगवान् विष्णु और शिवके समान है। फिर आपको एक लाख गौ लेकर मेरे पतिको देनेमें क्या हानि है? कृपया मेरे पतिको लौटाकर आप एक लाख गायोंको ग्रहण कीजिये।'

परन्तु पुरोहित सनत्कुमारने पार्वतीके इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'देवि! आपने मुझे अमूल्य रत्न दक्षिणामें दिया है, फिर मैं उसके बदले एक लाख गौ कैसे ले सकता हूँ? इन गायोंको लेकर तो मैं और भी झंझटमें फँस जाऊँगा।' तब भगवती माहेश्वरीको बड़ा दु:ख हुआ और वे कहने लगीं—मैंने कैसी मूर्खता की कि पुत्रके लिये मैंने एक वर्षतक 'पुण्यक' व्रत किया, उसके नियम-पालन करनेमें बहुत कष्ट भोगा; किंतु फल क्या मिला? पुत्र तो मिला ही

नहीं, पतिको भी मैं खो बैठी। अब पतिके बिना पुत्र कैसे प्राप्त होगा?'

इसी बीचमें सभी देवताओंने तथा पार्वतीने आकाशसे उतरते हुए एक तेज:पुंजको देखा। उसमें इतनी चमक थी कि सबकी आँखें बंद हो गयीं। किंतु पार्वतीजीने उस तेज:पुंजके मध्यमें अत्यन्त सुन्दर पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्णको विद्यमान देखा। उनके दर्शनसे भगवती पार्वतीका हृदय प्रेमसे भर गया और उन्होंने स्तुति करना आरम्भ किया—

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी।
के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ७। १०९)

'हे कल्याणनिधे श्रीकृष्ण! आप तो मुझको जानते हैं; परन्तु मैं आपको जाननेमें समर्थ नहीं हूँ। केवल मैं ही नहीं, बल्कि वेदको जाननेवाले, अथवा स्वयं वेद भी, अथवा वेदके निर्माता भी आपको जाननेमें समर्थ नहीं हैं।' इस तरह स्तुति करके पार्वतीजीने कहा—

स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता।
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम्॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ७।१२५-१२६)

'प्रभो! इसलिये मैं आपकी स्तुति करती हूँ। मैं पुत्राभावके दुःखसे दुःखित हूँ। इस व्रतसे मैं आपके ही समान पुत्र चाहती हूँ।' उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णने सर्वसाधारणके लिये अत्यन्त दुर्लभ मनोहर रूपमें उन्हें दर्शन दिया और अभीष्ट सिद्धिका वरदान देकर वे अन्तर्हित हो गये।

इधर शंकर और भगवती पार्वती—दोनों अपने आश्रममें आकर विश्राम करने लगे। भगवान् चन्द्रदेव जब अस्तोन्मुख हो रहे थे, उसी समय किसीने शंकरजीका द्वार खटखटाया और पुकारा—'जगत्पितः महादेव! जगन्मातः देवि पार्वति! आपलोग उठिये। मैंने सात रात्रिके उपवासका व्रत किया था, इसलिये मैं बहुत भूखा हूँ। आप-जैसे माता-पिताके रहते हुए भी मैं भूखसे व्याकुल हो रहा हूँ। कृपया शीघ्र आइये और मुझे भोजन देकर मेरी रक्षा कीजिये।'

उसके दीन वचनको सुनकर दोनों ही द्वारपर आये और उन दोनोंने अत्यन्त वृद्ध, क्षीणकाय, फटे-मैले वस्त्र पहने हुए एक ब्राह्मणको देखा। देवी पार्वतीने पूछा—'आप क्या भोजन करना चाहते हैं?'

ब्राह्मणने कहा—'सुना है, आपने बहुत अच्छे-अच्छे पदार्थ महोत्सवमें ब्राह्मणोंको खिलाये हैं; मुझे आप दूध, रबड़ी, तिलके लड्डू, मेवा, मिष्ठान्न, हविष्य, पूड़ी-पूआ आदि और इस ऋतुमें होनेवाले फल प्रचुरमात्रामें खिलाइये, जिससे यह पीठमें सटा हुआ मेरा पेट बाहर निकल आये और मैं लम्बोदर हो जाऊँ।' इन वचनोंको कहते-ही-कहते वे ब्राह्मण अन्तर्हित हो गये। उसी समय आकाशवाणी हुई कि 'हे पार्वति! जिसको तुम खोज रही हो, वह तुम्हारे घरमें आ गया है—

गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मजः॥
त्वत्क्रोडमागतः क्षिप्रमित्युक्त्वान्तरधीयत।
कृत्वान्तर्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः॥
जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम्।
तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः स बभूव ह॥
ददर्श गेहशिखरं प्रसूतो बालको यथा॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ८।८२—८४)

"उस ब्राह्मणरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णने अन्तर्धानावस्थामें कहा—'गणेशरूपमें श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्पमें आपके पुत्र बनकर आते हैं। आप शीघ्र भीतर जाकर देखिये।' भगवान् श्रीकृष्ण इतना कहकर बालकका रूप धारणकर आश्रमके भीतर बिछी हुई शय्यापर लेट गये। लेटते ही उस शय्यापर पड़े हुए शिवजीके तेजमें लिप्त हो गये और उत्पन्न हुए बालकके समान उस घरके शिखरकी ओर देखने लगे।"

फिर पार्वतीने उस अत्यन्त सुन्दर बालकको शय्यापर हाथ-पैर पटक-पटककर खेलते हुए देखा और प्रेमसे अपनी गोदमें उठा लिया तथा दूधसे भरे हुए अपने स्तनोंको पिलाया। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके इन प्रमाणोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीगणेशके रूपमें श्रीकृष्ण ही

आविर्भूत हुए हैं।

भगवान् शंकरने इनके बल-पराक्रम और बुद्धिमत्ताको देखकर इन्हें अपने प्रमथादिगणोंका आधिपत्य दे दिया और इनका नाम उन्होंने 'गणेश' रखा।

गणेशजीकी पूजा करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है—

गणेशपूजने विघ्नं निर्मूलं जगतां भवेत्।
निर्व्याधिः सूर्यपूजायां शुचिः श्रीविष्णुपूजने॥

(ब्रह्मवैवर्त० गणपति० ६। १००)

'किसी कार्यके आरम्भमें भगवान् गणेशजीकी पूजा करनेसे संसारके विघ्न जड़-मूलसे नष्ट हो जाते हैं, सूर्यकी पूजासे शरीरके रोग दूर हो जाते हैं तथा भगवान् विष्णुकी पूजासे बाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता आती है।'

किसी कार्यमें प्रथम गणेशकी पूजा न करनेसे कार्य सिद्धिमें विघ्न अवश्य होता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि समुद्रमन्थनमें गणेशजीकी पूजा पहले नहीं हुई थी, इससे जब दैत्य और देवगण मन्दराचलको ला रहे थे, तब उसके भारसे वे लोग दबकर हताहत हो गये थे; तब विष्णुने अपने अमृतमय करतल स्पर्शसे उनको पुनरुज्जीवित किया था। पश्चात्, जब वह पर्वत समुद्रमें डाल दिया गया, तब उसमें डूब गया। इससे दैत्य और देवता दोनों हताश हो गये और दोनोंने समझा कि सब किया कराया चौपट हो गया। इस बातको देखकर भगवान् विष्णुने समझ लिया कि विघ्नराज गणेशजीकी पूजा न करनेसे अप्रसन्न होकर उन्होंने ही विघ्न उपस्थित किया है—

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसंधिः।
कृत्वा वपुः कच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार॥

(८। ७। ८)

'उस समय भगवान्ने देखा कि यह तो विघ्नराजकी करतूत है, इसलिये उन्होंने उसके निवारणका उपाय सोचकर अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारण किया और समुद्रके जलमें प्रवेश करके मन्दराचलको ऊपर उठा दिया।' भगवान्की शक्ति अनन्त है। वे सत्यसंकल्प हैं। उनके लिये यह कौन-सी बड़ी बात थी।

जैसे भगवान् श्रीकृष्णके नामोच्चारणमात्रसे सभी संकट दूर हो जाते हैं, वैसे ही श्रीगणेशके नामोच्चारणसे सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

~~~०~~~

श्रीगणेश और 'जेनस'

(लेखक—वा० श्रीविष्णुदयालजी, मॉरिशस)

वेद-मन्त्रका उच्चारण करनेके पूर्व 'ॐ' का उच्चारण किया जाना अपेक्षित है। इसी भाँति धार्मिक ग्रन्थों और कृत्योंके आरम्भमें श्रीगणेशजीका नाम स्मरण करनेकी प्रथा है। 'गणेशपुराण' का कथन सही है कि 'गणेशजी ओंकारस्वरूप हैं।' जब मुहावरेदार भाषाका प्रयोग किया जाता है और किसी कार्यका 'श्रीगणेश' करनेकी चर्चा होती है, तब यही समझा जाता है कि उस कार्यका आरम्भ होनेवाला है।

पश्चिममें 'रोमनों' के देवता 'जेनस' का नाम 'गणेश' नामके समकक्ष है। विश्वकोशोंमें बताया गया है कि जब कभी इटालवी या रोमन लोग पूजा करते थे, इसी जेनस-देवताविशेषका नाम सर्वप्रथम लिया करते थे। हमारी कथा यूरोपमें पहुँची और वहाँ भी श्रीगणेश सर्वप्रथम रहे। आजकल वर्षके प्रथम मासको अंग्रेजीमें 'जनवरी' जेनसकी स्मृतिमें कहा जाता है। अठारहवीं शतीके संस्कृतज्ञ विलियम जोन्सने लिखा है कि 'जितनी विशेषताएँ श्रीगणेशमें पायी जाती हैं, वे सब जेनसमें भी दिखायी देती हैं।'

~~~०~~~

गणेशमूर्तिमें निर्गुण ब्रह्मोपासना

(लेखक—श्रीरेवानन्दजी गौड़, एम्० ए०, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ)

दोर्द्योतद्दन्तखण्डः सकलसुरगणाडम्बरेषु प्रचण्डः
सिन्दूराकीर्णगण्डः प्रकटितविलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः।
गण्डस्थानान्तघण्टः स्मरहरतनयः कुण्डलीभूतशुण्डः
विघ्नानां कालदण्डः प्रभवतु भवतां भूतये वक्रतुण्डः*॥

सृष्टिके आरम्भसे ही मानव-आत्मा परमात्माके रहस्यका अन्वेषी रहा है। इसी रहस्यको सुलझानेमें विश्वकी समस्त संस्कृतियाँ और धार्मिक वाङ्मय अपनी सार्थकता समझते हैं। भारतीय संस्कृति अनेकरूपा है, तथापि उसके मूलमें एकरूपता है। अपनी संस्कृतिमें जहाँ आचारनिष्ठा, साधना, पंथ-सम्प्रदाय अनन्त हैं, वहाँ देवी-देवताओंके स्वरूप भी अनन्त हैं। प्रायः सभी विशिष्ट मानव अपनी-अपनी रुचिके अनुसार किसी एक अभीष्ट देवके उपासक हैं। जिसका जहाँ विश्वास है, आस्था है, श्रद्धा है, वही उसका सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय फिरकापरस्ती या दकियानूसीका विषय नहीं है; अपितु "**शिष्टानुशिष्ट उपदिष्टो मन्त्रः सम्प्रदायः।**'—शिष्ट आचार्यके समीप संयमपूर्ण विधिवत् प्राप्त मन्त्रका नाम 'सम्प्रदाय' है।" वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, निर्गुण, सगुण—सभी सम्प्रदायान्तर्गत माने जाते हैं। 'गाणपत्य' वह सम्प्रदाय है, जिसमें गणपति (गणेश) देवताकी पूजा-अर्चना तथा स्तुति-उपासना की जाती है।

भारतमें गणेशजीकी पूजाका विधान सर्वप्रथम है। ये भगवदवतार नहीं हैं, अपितु स्वयं भगवान् हैं और निर्गुण ब्रह्मके सगुण स्वरूप हैं। ये ब्रह्मा-विष्णु-महेश-प्रभृति सभी देवोंद्वारा पूजित हैं। इनमें भगवान्के षड्गुण—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, वैराग्य एवं ज्ञान चरम सीमामें विद्यमान हैं। ये स्वयं परब्रह्म हैं। जैसा कि श्रुति कहती है—'**एकमेवाद्वितीयम्**'। गणेशजीका सार्वभौम, सुप्रसिद्ध ध्यान-स्तवन इस प्रकार है—

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥
लम्बोदरं परमसुन्दरमेकदन्तं पीताम्बरं त्रिनयनं परमं पवित्रम्।
उद्यद्दिवाकरनिभोज्ज्वलकान्तिकान्तं विघ्नेश्वरं सकलविघ्नहरं नमामि॥

'भूत-गण आदि जिनकी सेवामें संलग्न रहते हैं, जो कैथ और जामुनके फलोंका बड़े सुन्दर ढंगसे चर्वण करते हैं तथा शोकका विनाश कर देनेवाले हैं, उन गिरिजानन्दन गजमुख गणेशको मैं मस्तक नवाता हूँ, विघ्नेश्वरके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूँ। जो लम्बोदर होते हुए भी परमसुन्दर हैं, जिनके एक ही दाँत है, जो पीताम्बरधारी, तीन नेत्रवाले एवं परम पवित्र हैं और जिनकी कमनीय कान्ति उदयकालके सूर्यकी भाँति अरुणोज्ज्वल दिखायी देती है, उन सर्वविघ्नहारी विघ्नेश्वर गणेशको मैं नमस्कार करता हूँ।'

श्रीगणेशजीका श्रीविग्रह बड़ा ही दिव्य तथा विलक्षण है। गणेश-पूजा स्थूलात्मक है। वह बुद्धिगम्य तथा अनुभवसिद्ध भी है; परन्तु गणेश-पूजन जहाँ प्रतीकात्मक है, वहाँ निर्गुण-ब्रह्म-उपासनाकी प्रधानता है। पीली मिट्टीकी एक डली, जिसपर लाल-पीला-श्वेत कलावा आवृत हो, साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है। न उसमें कोई लिंग है न चिह्न, न अंग है, न प्रत्यंग। अण्डाकार मृत्तिकामें समस्त ब्रह्माण्ड है और इस ब्रह्माण्डमें अलक्षितरूपेण विद्यमान ब्रह्म परिलक्षित होता है। मिट्टीकी गोलाकार डली अखिल ब्रह्माण्डका प्रतीक है और यह सूत्र ब्रह्मका प्रतीक है। वस्तुतः यह दृश्यमान समस्त जगत् भगवान् ईशसे व्याप्त है। जगतीके कण-कणमें वह रमा हुआ है। श्रुति कहती है—

'ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्॥'
(ईशावास्योपनिषद्)

सृष्टिसे पूर्व केवल—

---

* जिनके हाथमें टूटे हुए अपने ही दाँतका एक खण्ड दीप्तिमान् दिखायी देता है, जो समस्त देवसमुदायमें सबसे प्रचण्ड शक्तिशाली हैं, जिनका गण्डस्थल (कपोल) सिन्दूरसे व्याप्त है, जिनके भालदेशमें मनोहर अर्धचन्द्र प्रकटरूपसे चमक रहा है, जिनके गण्डस्थलके अन्तमें—ग्रीवाभागमें घण्टा बँधा है, जो मदनदहन शिवके सुपुत्र हैं, जिन्होंने अपने शुण्डदण्डको कुण्डलाकार मोड़ लिया है, जो विघ्नसमूहका विध्वंस करनेके लिये कालदण्डस्वरूप हैं, वे वक्रतुण्ड भगवान् गणेश आपलोगोंका कल्याण करें।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(ऋग्वेद १०। १२१। १)

वेद-मन्त्रानुसार चराचरके अधिपति, आकाश-पृथिवीके स्रष्टा, धर्ता एक ही अद्वैत 'ब्रह्म' है। उसके लिये 'गण' शब्दका प्रयोग सम्भव नहीं। अतः जब इस अद्वैतमें द्वित्व-त्रित्वकी भावना '**एकोऽहं बहु स्याम्**' जाग्रत् हो गयी, तब सृष्टिमें अनेकरूपता आयी और व्यष्टि-समष्टि बनने लगी। समूह-समाजका निर्माण हुआ। अनेक समाजोंके समन्वितरूप गणपर-गण पनपने लगे। इन सब गणोंको समन्वित तथा अनुशासित रखनेके लिये एक गणाधिपति गणाध्यक्षकी आवश्यकता अनिवार्य हो गयी। वही शक्ति गणाधिपति 'गणेश' पदपर विराजमान हो सकती है, जिसमें विशिष्ट गुणोंका समन्वय हो और जो छिन्न-भिन्न विभ्रष्ट गणोंमें समन्वय करा सके, जो व्यष्टिके स्वार्थसे समष्टिके स्वार्थको महत्त्व देता हो। जो सर्वतन्त्र गणतन्त्रकी भावनासे ओत-प्रोत हो, जो सभी शक्तियोंको सूत्ररूपमें आत्मसात् कर सके, वही गणेश, गणपति, गणाध्यक्ष, गणनायक बन सकता है। गणपतिमें प्रियपति तथा निधिपतिका भाव-साम्य होना भी अनिवार्य है। अर्थात् '**गणानां पतिः, प्रियाणां पतिः, निधीनां पतिः**' ब्रह्मस्वरूप 'गणेश' सदा-सर्वदा पूज्य हैं। गणपति-पूजनका सर्वप्रसिद्ध यजुर्वेदका मन्त्र भी यही भाव पुष्ट करता है कि गणेशमूर्ति निर्गुण-ब्रह्म-उपासनाका प्रतीक है—

'**ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे। निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥**'

(२३। १९)

'सर्वेश! तुम मेरे वसु (परम धन) हो; तुम ही समस्त अभीष्ट शक्तियोंके दाता हो; सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धि-ऐश्वर्यादि गुणोंके अधिपति हो; सभी आपत्तियोंको, विघ्न-बाधाओंको नष्ट करनेकी शक्ति तुममें है; अतः तुम प्रिय ही नहीं, प्रियपति हो; हम सब गण आपका आवाहन-पूजन करते हैं।' इस मन्त्रमें '**हवामहे**' बहुवचनकी क्रिया है, जो गणात्मकभावका प्रतीक है। इसमें सभी गण अपने गणनायकका आवाहन करते हैं। मैं जन्म-मरणके चक्रमें हूँ और तुम (**मा त्वमजासि गर्भधम्**) जन्मरहित हो, अर्थात् अजन्मा, अजर, अमर, अनादि, अनन्त, व्यापक परब्रह्म तुम ही हो। तुम सबके बीजरूप हो, तुम सभी रहस्योंके ज्ञाता हो, तुम्हारा मंगलकरण विघ्नहरण स्वरूप सर्वोपरि है। तुम्हें बारम्बार शतशः नमस्कार है'—

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो
नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः।
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो
नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः॥

(यजुर्वेद १६। २५)

गणेशजीको '**भूतगणादिसेवितम्**' कहा गया है। इसकी व्याख्यामें शिव-गण—भूत-प्रेत, पिशाच, बेताल, कूष्माण्ड, भैरव आदि ही गण शब्दसे ग्राह्य नहीं हैं, बल्कि व्यापक दृष्टिकोणसे अध्यात्मगण (मन-बुद्धि-चित्त-अहंकारादि), अधिदैवतगण (सूर्य-चन्द्र-अग्नि-वरुण-वाय्वादि) और अधिभूतगण (पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाशादि) भी ग्राह्य हैं। गणेशरूपमें उपास्य देवतामें सत्त्वगुणकी ही प्रधानता है। सत्त्व-गुणोदय होनेपर कर्तृत्व-अभिमान सर्वथा लुप्त हो जाता है। ऐसी दशामें विघ्न-बाधाओंका नाश ही नहीं होता, बल्कि उनका अत्यन्ताभाव भी हो जाता है। जब हृदयमें सत्त्वभावका उद्रेक होता है, तब अन्तर्यामी देवाधिदेव ही सब कुछ कर्ता-धर्ता है, वह ही मन-बुद्धिमें बैठकर संकल्प-विकल्प एवं निश्चयात्मक क्रिया-कलाप चला रहा है। 'वही कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियमें गतिदाता है। हमारा अपना कर्तृत्व तो आटेमें नमकके बराबर भी नहीं है'। भाव जागता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥

(गीता ३। २७-२८)

''वस्तुतः सम्पूर्ण कर्म प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं; परंतु अहंकारी विमूढात्मा 'मैं ही हूँ' ऐसा मान लेता है। इसके विपरीत विद्वान् पुरुष 'मैं कुछ नहीं करता' ऐसा मानकर आसक्त नहीं होता।'' ऐसे

सत्त्वगुणी वातावरणमें सुख, शान्ति, संतोष, प्रेम, सहानुभूति, अष्टसिद्धि (अणिमादि), नवनिधि सदा विराजमान रहती हैं और सभी अनभीष्ट विघ्न-बाधाएँ दूर भाग जाती हैं।

जहाँ कर्तृत्व-अभिमान है, जहाँ रजोगुण है, वहाँ राग-द्वेष, मद-मात्सर्य आदि दुःखदायी सामग्री हृदयको आक्रान्त रखती है। दुःख-शोकादि-शमनके लिये सत्त्वगुणप्रधान 'गणपति' पूजन आरम्भमें किया जाता है।

'रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत॥'

(गीता १४। १०)

वस्तुतः गणेश-पूजन एक साकार, परिमित, परिच्छिन्न शक्तिका प्रतीक न होकर निर्गुण परब्रह्म-उपासनाका प्रतीक है। वे अपने उपासक भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, अमन्दानन्द-संदोह हैं। मानव-जीवनमें उनकी उपासना सर्वोपरि है—

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम्।
अमन्दानन्दसंदोहबन्धुरं सिन्धुराननम्॥

~~~०~~~

अग्रपूज्य श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीप्रभाकरजी त्रिवेदी, एम्० ए०, डी० लिट्०)

हिन्दू-धर्मकी कुछ ऐसी विलक्षणता है कि जहाँ उसका ज्ञानकाण्ड **'एकमेवाद्वितीयम्'** संसारमें एक ही सत्ता ब्रह्म-ईश्वरकी है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—**'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।'** (श्वेताश्वतरोपनिषद् ५। १०)—एक ही देवता सभी जीवोंमें छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापी तथा सभी जीवोंका अन्तरात्मा है।' आदि अद्वैतवादी सिद्धान्तोंका उद्घोष करता है, वहीं उसका कर्मकाण्ड अनेक देवताओंके अस्तित्व, उनकी पूजा एवं अर्चनाकी अवश्यकर्तव्यताके विश्वासपर आधारित है।

यदि अनेक देवी-देवताओंके अस्तित्वपर विश्वास होगा तथा उनकी पूजा-अर्चा भी करणीय होगी तो स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उनमें सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाय। एक बार देवताओंमें स्वतः इस बातपर विवाद उत्पन्न हुआ कि हम सब लोगोंमें अग्रपूजाका अधिकारी कौन है? जब पारस्परिक वार्तालापसे इस प्रश्नका निर्णय न हो सका, तब सर्वसम्मतिसे सभी देवता भगवान् शंकरके पास गये तथा उनसे प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप ही इस बातका निर्णय कर दीजिये कि हमलोगोंमें अग्रपूजाका अधिकारी अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कौन है?' भगवान् शंकरने यदि यादृच्छिक रूपसे इस प्रश्नका सीधा उत्तर दे दिया होता तो सम्भव है कि किसी-किसीको अपनी योग्यता एवं शक्तिका अधिक मूल्यांकन करनेके कारण उनपर पक्षपातका दोष प्रतीत होता। ऐसे लोग भगवान् शंकरके निर्णयसे संतुष्ट न होते। अतः उन्होंने एक ऐसा उपाय निकाला, जिससे देवताओंको स्वतः इस बातका बोध हो जाय कि उनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है? उन्होंने कहा—'आप सब लोग अपने-अपने वाहनोंपर यहाँसे एक साथ दौड़िये तथा पूरे विश्वकी परिक्रमा करके मेरे पास लौट आइये। जो मेरे पास सबसे पहले पहुँचेगा, वही अग्रपूजाका अधिकारी समझा जायगा।' बस क्या था, भगवान् शंकरके ऐसा कहते ही इन्द्र अपने ऐरावतपर, कार्तिकेय अपने मयूरपर तथा अन्य सभी देवता अपने-अपने वाहनोंपर विश्वकी परिक्रमा करने दौड़ पड़े।

श्रीगणेशजीका वाहन चूहा माना गया है। उन्होंने सोचा—''ऐसे वाहनके बलपर इस प्रतियोगितामें प्रवेश करना तथा उसमें सफलता प्राप्त करना तो असम्भव है, किंतु भगवान् शंकर परमात्मा हैं। वे विश्वात्मा हैं। सारा संसार उन्हींका शरीर है। **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्) अर्थात् यह सब कुछ ब्रह्म ही है, **'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'** (यजुर्वेद ३१। २) अर्थात् उस ब्रह्म या परमात्माके एक ही चरणमें यह सारा संसार है। **'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति'**—(गीता ७। ७) अर्थात् मेरे (भगवान्‌के) अतिरिक्त संसारमें और कुछ नहीं है, इत्यादि; अतः भगवान् शंकरकी परिक्रमा कर लेनेसे ही विश्वकी परिक्रमा हो जायगी''—ऐसा सोचकर उन्होंने अपने
~~~

मूषकवाहनसे ही भगवान् शंकरकी परिक्रमा कर ली तथा निश्चिन्त होकर बैठे। बहुत देर बाद धीरे-धीरे अन्य देवताओंका भी प्रत्यावर्तन प्रारम्भ हुआ। किंतु तबतक इधर खेल समाप्त हो चुका था। भगवान् शंकरके निर्णयके अनुसार विजयश्री गणेशजीके हाथ लगी। तबसे वे अग्रपूजाके अधिकारी मान लिये गये।

इस उपाख्यानसे यह भी निर्विवाद सिद्ध होता है कि अन्ततः विजय बुद्धिमान्‌की ही होती है, केवल शक्तिशाली एवं साधन-सम्पन्नकी नहीं। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासने गणेशजीके स्तवनमें विनय-पत्रिकामें उन्हें **'मोदक-प्रिय मुद मंगल-दाता। बिद्या-बारिधि बुद्धि-बिधाता॥'** कहा है। उपर्युक्त उपाख्यानसे गणेशजीकी बुद्धिमत्ता एवं विद्वत्ता तो सिद्ध हो ही जाती है, विद्वान् एवं बुद्धिमान् व्यक्ति ही सफल होता है तथा सफलता प्रसन्नता (मुद) एवं मंगलमयताका कारण होती है। मोदक इन दोनों (प्रसन्नता एवं मंगलमयता)-का प्रतीक है।

हिन्दू-धर्मकी यह एक प्राचीन आस्था है कि जैसा इस शरीरमें है, वैसा ही समस्त विश्वमें है—**'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'** अर्थात् जिन तत्त्वोंके समावेशसे इस शरीर एवं उसमें रहनेवाली आध्यात्मिक सत्ताओंका निर्माण हुआ है, उन्हीं तत्त्वोंसे इस समस्त विश्वका भी निर्माण हुआ है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि समस्त विश्वकी जो तार्किक बनावट है, वही बनावट इस शरीरकी भी है।

हिंदू-धर्मकी उपर्युक्त आस्थाका एक परिणाम यह होता है कि अनेक पौराणिक उपाख्यानों, भौतिक घटनाओं आदिकी व्याख्या सामान्य दृष्टिसे भी सम्भव है तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी। उदाहरणार्थ, पुराणोंके अनुसार त्रिवेणी-संगमपर स्नान करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। सामान्यतः इस संगमका अर्थ 'प्रयागमें स्थित गंगा, यमुना एवं सरस्वतीके संगमसे ही है।' किंतु कुछ योगसिद्ध महात्माओंका यह कथन है कि जिस संगमपर स्नान करनेसे, अर्थात् उसमें लाक्षणिक अर्थमें अवगाहन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता, वह आज्ञाचक्रपर स्थित इडा, पिंगला एवं सुषुम्णाका संगम है। मैं यह नहीं कहता कि उपर्युक्त दोनों व्याख्याओंमेंसे कोई एक सत्यसे निकट तथा दूसरी उससे दूर है। मेरे कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि कुछ पौराणिक एवं भौतिक कथनोंकी सामान्य एवं आध्यात्मिक दोनों ही व्याख्याएँ सम्भव हैं—

इस प्रकार श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाके रहस्यके सम्बन्धमें भी उपर्युक्त पौराणिक आख्यानके अतिरिक्त निम्नलिखित दो आध्यात्मिक व्याख्याएँ सम्भव हैं—

(१) 'गणेश' शब्दका अर्थ होता है—'समुदाय अथवा समुदायोंका स्वामी—**'गणस्य ईशो गणानामीशो वा।'** प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि गणेशजी किस समुदायके स्वामी हैं? पौराणिक व्याख्याके अनुसार वे भगवान् शंकरके भृत्योंके स्वामी माने गये हैं। प्रथम-आध्यात्मिक व्याख्याके अनुसार मैं गणेशजीको राग-द्वेषादिरहित शुद्ध मनका प्रतीक मानता हूँ। यह मत प्रायः सभी भारतीय दर्शनोंके अनुसार पाँच ज्ञानेन्द्रिय एवं पाँच कर्मेन्द्रिय—इन दस इन्द्रियोंके समुदायका स्वामी माना जाता है। अतः इस व्याख्याके अनुसार गणेशका अर्थ हुआ—दस इन्द्रियोंके समुदायका स्वामी। ऐसे गणेशजीकी अग्रपूजा अर्थात् उपासनाका महत्त्व वेदोंमें भी स्वीकार किया गया है **'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'** (यजुर्वेद, अ० ३४), **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'** (ब्रह्मबिन्दु उप० २)।

पूर्व उपासनाद्वारा मनके शुद्ध एवं समाहित हुए बिना शुद्ध-बुद्धिस्वरूपा पार्वती देवी (अर्थात् ब्रह्मविद्या)-का आविर्भाव नहीं हो सकता (केनोप० ३। १२) इससे जगज्जननी माता पार्वतीको ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी स्वीकार करनेका स्वारस्य स्पष्ट हो जाता है, यदि हम नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप आत्मा-ब्रह्म एवं शंकरमें कोई भेद न मानें। उपनिषदों एवं गीता आदिमें भी इनमें कोई तात्त्विक भेद स्वीकार नहीं किया गया है।

माता पार्वतीको ब्रह्मविद्याका प्रतीक केनोपनिषद्‌के यक्षोपाख्यानकी व्याख्यामें स्वामी शंकराचार्यने भी माना है।

इस प्रकार भगवान् शंकररूपी ब्रह्मका ज्ञान प्राप्तकर जीवनका चरम लक्ष्य—मोक्ष प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी उमा, पार्वती (केनोपनिषद्‌की भाषामें 'हैमवती')-का आविर्भाव आवश्यक है तथा उसके लिये शिवसंकल्प, राग-द्वेषादिरहित शुद्ध मनःस्वरूपी गणेशजीकी अग्रपूजा अर्थात् उपासनाकी आवश्यकता पड़ती है।

(२) दूसरी आध्यात्मिक व्याख्या योगपरक है। तन्त्रशास्त्रकी मान्यताके अनुसार मेरुदण्डके भीतर सुषुम्णानामकी एक अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी है, जो गुदा एवं उपस्थके बीच कुछ ऊपरसे होती हुई ब्रह्मरन्ध्रतक चली गयी है। इस नाड़ीके बायें-दायेंसे होती हुई इडा एवं पिंगला नामकी दो नाड़ियाँ एक-दूसरेसे विपरीत दिशामें चलती हुई कुछ स्थानोंपर एक-दूसरेका अतिक्रमण करती हैं। इन स्थानोंको 'चक्र' कहते हैं। ये चक्र नीचेसे ऊपरतक सात हैं, जिनके नाम हैं-(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूर, (४) अनाहत, (५) विशुद्ध, (६) आज्ञा एवं (७) सहस्रार। इन चक्रोंपर ध्यान करते-करते योगियोंको विलक्षण रंग-रूपके विकसित कमल दीख पड़ते हैं। इन कमलोंके दलोंकी संख्या तथा उनका रंग आदि भिन्न-भिन्न होते हैं तथा प्रत्येक दलपर किसी-न-किसी बीजाक्षरका तथा उस चक्रपर उसके अधिष्ठातृ देवताका जीवन्त दर्शन होता है। उदाहरणार्थ, मूलाधारचक्रका रंग पीला, दलोंकी संख्या चार तथा उसके अधिष्ठातृ देवता स्वयं गणेशजी हैं।

जिस तरह श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें द्वारपर स्थित श्रीहनुमान्-विग्रहके दर्शन-वन्दनके उपरान्त ही श्रीराम विग्रहका दर्शन-वन्दन करना चाहिये, अन्यथा श्रीहनुमान्‌जीके अतिक्रमण अपमानके दोषका भागी बनना पड़ेगा; उसी तरह पहले मूलाधार चक्रपर श्रीगणेशजीका दर्शन-नमस्कार आदि करनेके उपरान्त ही आगे बढ़नेका अधिकार प्राप्त होगा। क्रमशः आगे बढ़ते हुए आपको विभिन्न चक्रोंपर विभिन्न देवताओंके दर्शन होंगे। इस व्याख्याके अनुसार सर्वप्रथम श्रीगणेशजीका दर्शन एवं नमस्कार आदिके रूपमें अग्रपूजा अनिवार्य हो जाती है।

~~~०~~~

श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाका रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीराम माधव चिंगले एम्० ए०)

'शुभाशुभे वैदिकलौकिके वा त्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्।'

पुण्यभू भारतवर्षमें अनादिकालसे अनेक देवी-देवताओंकी उपासना चली आ रही है। एकत्वमें अनेकत्व और अनेकत्वमें एकत्व-दर्शन यह भारतीय संस्कृतिकी विशेषता रही है। **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'**—यह ऋग्वेद-वचन (१।१६४।४६) इस विषयमें प्रमाण है। एक ही परात्पर परब्रह्म अनन्त नाम-रूपात्मक सृष्टिकी रचनामें अनेकानेक रूप धारण कर लेते हैं। इनमेंसे अनेक रूप सृष्टिकी नियामक शक्तियोंके रूपमें प्रकट होते हैं। इन्हींको 'देवता' कहा जाता है। यद्यपि इनका निरुपाधिक तात्त्विक स्वरूप एक ही है, तथापि त्रिगुणात्मक उपाधिभेदसे इनके सृष्टिकालीन व्यावहारिक रूप और अधिकार भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए हमें प्रस्तुत स्थलमें श्रीगणेशजीका स्वरूप, उनका विशिष्ट अधिकार और उनकी अग्रपूजाका रहस्य समझना है।

श्रीगणेशजी अन्य देवताओंकी अपेक्षा अपनी ऐसी अनोखी विशेषता रखते हैं, जो अन्य देवी-देवताओंमें नहीं पायी जाती। ध्यान रहे, हमारा उद्देश्य अन्य देवताओंका महत्त्व कम बतलानेका न होकर केवल श्रीगणेशजीकी उक्त विशेषताका रहस्य प्रकट करनेका है। श्रीगणेशजीकी यह विशेषता है—उनकी अग्रपूजाका अधिकार। सभी लौकिक तथा धार्मिक कार्योंका प्रारम्भ श्रीगणेशजीके स्मरण तथा पूजनपूर्वक होता है। विशेषता तो यह है कि देव-दानव, मनुष्य, गन्धर्व तथा शैव-वैष्णव आदि सभीसे उन्हें यह सम्मान प्राप्त है। प्राचीन परम्पराके अनुसार बालककी शिक्षाका प्रारम्भ '**श्रीगणेशाय नमः**'—इन श्रीगणेश-वन्दनात्मक पदोंसे होता है। इसी प्रकार पत्र-लेखादिका प्रारम्भ 'श्री' पूर्वक होता है। 'श्री' विहीन पत्र अमंगलका द्योतक समझा जाता है। यह 'श्री' '**श्रीगणेशाय नमः**' का ही संक्षिप्त रूप है। ये सब बातें प्रायः परम्पराका अनुसरण करके की जाती हैं, किंतु जो बात आन्तरिक शास्त्रीय रहस्य समझकर की जाती है, वह अधिक फलदायिनी होती है और उसीमें सच्ची एवं स्थायी श्रद्धा उत्पन्न होती है। इसी आशयसे छान्दोग्य-श्रुति (१।१।१०) कहती है—**'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति।'** यही रहस्य हमें यहाँ विशद रूपसे बताना है।
~~~

श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाके मूलमें गहरा शास्त्रीय रहस्य है। इसका अनुभव हम अपने दैनन्दिन जीवनमें कर सकते हैं। किसी भी कार्यसिद्धिके लिये समुचित कारण-सामग्री जुटानी पड़ती है। किंतु कई बार अनुभवमें यह आता है कि लौकिक प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा होनेपर भी ऐन मौकेपर कोई-न-कोई विघ्न-बाधा उपस्थित हो जाती है और बना-बनाया काम बिगड़ जाता है; सारे प्रयत्नोंपर पानी फिरकर सब गुड़ गोबर हो जाता है। इस विघ्न-बाधाको शास्त्रीय परिभाषामें 'प्रतिबन्धक' कहा गया है। कार्य-सिद्धिके हेतु कारण-सामग्रीमें किसी भी प्रकारके प्रतिबन्धकका न होना—प्रतिबन्धकाभाव होना एक महत्त्वका घटक माना गया है। इसी आशयसे न्यायशास्त्र कहता है—

'सामान्यतः वा कार्यत्वावच्छिन्नं प्रति प्रतिबन्धक-संसर्गाभावत्वावच्छिन्नस्य कारणत्वमिति नियमः।'

इस प्रकारका प्रतिबन्धकाभाव होनेपर हम कहते हैं कि 'अमुक कार्य निर्विघ्नरूपसे पूर्ण हो गया।' इसके साथ एक और बात भी है। किसी कार्यमें प्रतिबन्धक उत्पन्न न होकर उसका निर्विघ्नरूपसे जैसे-तैसे पूरा होना एक बात है, किन्तु उज्ज्वल यश और पूर्ण सफलताके साथ उस कामका पूरा होना दूसरी बात है। पहली बात दोषाभावरूप है तो दूसरी गुणाधानरूप। किसी भी कार्यके करते समय मनुष्य यह दोहरी अभिलाषा रखता है कि उसका अंगीकृत कार्य निर्विघ्नरूपसे सम्पन्न हो; साथ ही वह भलीभाँति सफल होकर यशःप्रदायक भी हो। मनुष्यकी यह इच्छा स्वाभाविक है। अतएव वह इसकी पूर्तिमें कोई कसर नहीं उठा रखता। किंतु मानवके ये प्रयत्न अनेक कारणोंसे ज्ञात-अज्ञात, लौकिक-अलौकिक, दृष्ट-अदृष्ट अनेक प्रकारकी मर्यादाओंसे ग्रस्त होते हैं। कार्यारम्भसे पूर्व इनका आकलन मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात होती है। इसके अतीन्द्रिय एवं अलौकिक ज्ञानका विषय होनेके कारण मानवीय मन और वचन यहाँ कुण्ठित हो जाते हैं। अतएव अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये वह शास्त्रैकशरण होकर दैवी सहारा ढूँढ़ता है। प्रातिभ आर्षज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण हमारे त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियोंने जनसाधारणके कल्याणार्थ स्मृतियों, पुराणों तथा शास्त्रोंमें इन बातोंका रहस्य प्रकट किया है। इनमें दैवत-काण्ड एक महत्त्वका विषय है। सृष्टिके सन्दर्भमें परब्रह्म परमात्माकी अनेक शक्तियाँ अनेक रूपोंमें कार्यकारी होती हैं। यथा—सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लय—ये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशद्वारा होते हैं। इन देवताओंमें श्रीगणेशजी भी एक हैं। सृष्टिकी सुचारु व्यवस्थाके लिये विघ्नोंका विभाग आपके हिस्सेमें आया है। आप विघ्नाधिपति, विघ्नेश तथा विघ्ननायक हैं। विघ्न करना, उन्हें हरण करना तथा मंगल करना—ये सब काम आपके जिम्मे हैं। परपीड़क, पापपरायण एवं आसुरी सम्पत्तिसे युक्त अभक्तोंके कार्योंमें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित करके आप उनके कुत्सित मनोरथ विफल कर देते हैं। परहितरत, सत्प्रवृत्त एवं पुण्यात्मा भक्तोंके कार्य आप निर्विघ्न पूर्ण कर देते हैं और ऋद्धि-सिद्धिके भी दाता होनेके कारण आप उनका सब तरहसे मंगल करते हैं। इनके कारण आप '**सर्वविघ्नैकहरण**', '**सर्वकामफलप्रद**', '**अनन्तानन्तसुखद**' और '**सुमङ्गलमङ्गल**' कहे गये हैं। 'श्रीगणेशसहस्रनाम' में आपके स्वरूपवाचक इन नामोंका उल्लेख है। आपका नाम विघ्न-सागरके शोषणके लिये अगस्त्यके समान है—

'यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे।'

आपके चरण-कमलोंके स्मरणमात्रसे विघ्नसमुदाय इस प्रकार नष्ट होते हैं, जिस प्रकार सूर्यके सामने घनान्धकार—

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम्।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम्॥

समस्त मंगलोंके निधान, प्रत्यक्ष मंगलमूर्ति होनेके कारण आपमें स्वभक्तोंका मंगल करनेकी भी महान् शक्ति विद्यमान है—

यन्मङ्गलं सर्वजनेषु देव सयक्षविद्याधरपन्नगेषु।
तस्येश्वरो मङ्गलमूर्तितां त्वं गतो यतो मङ्गलकृत् स्वभक्ते॥

कोई आश्चर्य नहीं कि आपके इस विशिष्ट महत्त्वपूर्ण अधिकारके कारण आपने देवासुर मानवोंद्वारा अग्रपूजाका सम्मान प्राप्त किया हो—

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥

यद्यपि सभी देवता अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, तथापि विशिष्ट कार्यके लिये उन्हें विशिष्ट अधिकार और शक्तिसे सम्पन्न देवताओंका स्मरण और पूजन

करना पड़ता है। इस कारण इन्हें कोई न्यूनत्व नहीं प्राप्त होता; क्योंकि यह बात सृष्टिकी सुचारु व्यवस्थाके लिये आवश्यक है। उदाहरणार्थ, किसी भी देशके राजा, अध्यक्ष या प्रधान मन्त्रीका शासनमें सर्वोपरि महत्त्व होता है, तथापि वह स्वयं सीधे खजानेमेंसे चाहे जब और चाहे जितना द्रव्य नहीं ले सकता। उसे नियमानुसार अर्थमन्त्री तथा कोषाध्यक्षके द्वारा ही यह काम कराना पड़ता है। देशकी रक्षाके लिये उसे सेनापतिसे ही परामर्श करना पड़ता है। यही कारण है कि श्रीराम-कृष्ण आदि अवतारकोटिके महापुरुष भी संध्या-वन्दनादि नित्यकर्म करते हुए पाये जाते हैं। भगवत्पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य-जैसे अवतारकोटिके महापुरुषको भी हम एक निर्धन भक्तकी आर्थिक सहायताके लिये **'कनकधारास्तोत्र'** द्वारा श्रीलक्ष्मीजीकी स्तुति करते हुए पाते हैं। इसी न्यायसे असुर, देव एवं मानव—सभी प्रारम्भिक कार्यकी निर्विघ्न तथा सुमंगलयुक्त समाप्तिके लिये विघ्नहर्ता, मंगलकर्ता श्रीगणेशजीका विधिवत् स्मरण-पूजन करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

भारतीय देवताकाण्डकी उक्त विशेषता एक आपाततः विनोदपूर्ण उदाहरणसे देखी जा सकती है। भगवान् श्रीशंकरजीका श्रीपार्वतीजीके साथ मंगल-विवाहका प्रसंग है। इस मंगल-कार्यका प्रारम्भ भी गणेशजीके पूजनसे होता है। इसका अर्थ होता है कि पिताके विवाहमें पुत्रका पूजन! यहाँ सम्भाव्य दो दोष हैं—एक तो कालक्रमका विपर्यय और दूसरा मर्यादाभंगरूप अनौचित्य। श्रीगोस्वामीतुलसीदासजीने अपने रामचरित-मानसमें इन शंकाओंको उत्थापित करके उनका सूत्ररूपसे समाधान भी किया है। इससे पता चलता है कि आप भारतीय संस्कृतिके कितने मर्मज्ञ थे। विशेषता यह कि एक ही दोहेमें यह सब करके आपने कमाल कर दिया है और अपनी अपार बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की है। वह दोहा इस प्रकार है—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(मानस १। १। १००)

'मुनियोंकी आज्ञासे श्रीशिवजी और पार्वतीजीने श्रीगणेशजीका विधिवत् पूजन किया। देवताओंको अनादि समझकर कोई इस बातको सुनकर मनमें किसी प्रकारकी शंका न करे (कि श्रीगणेशजी तो श्रीशिवजी-पार्वतीजीकी संतान हैं, तब विवाहसे पूर्व वे कहाँसे आ गये?)।'

परब्रह्म परमात्मा अनादि हैं। उनकी सृष्टि भी उतनी ही अनादि है। इस सृष्टिके नियामक देवता भी उतने ही अनादि हैं। प्रत्येक कल्पमें वे हैं ही। पुनश्च, सत्कार्यवादके सिद्धान्तानुसार उत्पत्तिका अर्थ आविर्भावमात्र है। श्रीगणेशजी अनादि होनेके कारण पहलेसे विद्यमान हैं ही, भक्तकार्यके लिये वे समय-समयपर अव्यक्त रूपमेंसे व्यक्तरूप धारण करते हैं। इसे ही उनका **'अवतार'** कहा जाता है। श्रीशिवजी तथा पार्वतीजीके यहाँ जन्म लेकर उन्होंने इसी प्रकारका एक अवतार धारण किया था? इस विवेचनसे कालक्रम-विपर्ययरूप दोषकी सम्भाव्य शंकाका निराकरण हो जाता है। दूसरी सम्भाव्य शंकाका समाधान यह है कि श्रीशिवजी-पार्वतीजीद्वारा श्रीगणेशजीके पूजनसे मर्यादा-भंगरूप अनौचित्य न होकर मर्यादापालनरूप औचित्यका निर्वाह ही होता है। विघ्नोंका आधिपत्य तथा मंगलकर्तृत्व यह सृष्टिके सन्दर्भमें श्रीगणेशजीका विशेष अधिकार है; अतएव उन्हींकी अग्रपूजाका विधान है। इसलिये इसके अनुसार कार्य करनेमें ही मर्यादाका निर्वाहरूप औचित्य है। ध्यान रहे, यह **'गणपति-पूजनका अनुशासन'** श्रीनारदजी तथा सप्तर्षियों-जैसे वेद-वेदान्तज्ञ, धर्म-शास्त्रविशारदोंने दिया था। साथ ही इसका पालन करनेवाले देवाधिदेव श्रीमहादेव और जगज्जननी श्रीपार्वतीजी थीं।

श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाका कारण उनके उपर्युक्त विशिष्ट अधिकारमें है। इस विशिष्ट अधिकारका भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। वह यह कि श्रीगणेशजी परम मंगल ओंकार परब्रह्म हैं। ओंकारका उच्चारण मंगलप्रद है—

ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥

(नारदपु०, पूर्व० ५१। १०)

ओंकार सृष्टिका आदिबीज और अव्यक्त परब्रह्मका प्रथम व्यक्त स्वरूप है। ओंकार और परब्रह्मका वाच्य-वाचक सम्बन्ध है। भगवान् पतंजलि कहते हैं, **'तस्य वाचकः प्रणवः।'** ओंकार—यह परब्रह्मका वाचक तथा स्तावक भी है। **'नु'** धातुका अर्थ स्तुति करना है। इसमें

'प्र' उपसर्ग जोड़कर '**प्रणव**' बना है। इसका अर्थ प्रकर्षपूर्वक की गयी स्तुति या उत्तम स्तोत्र है। यह प्रणव ही परब्रह्मकी सर्वोत्तम स्तुति है। उपनिषदोंमें ॐकारको उद्गीथ भी कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद्में लिखा है कि देवताओंने ओंकारका आश्रय लेकर ही मृत्युपर विजय प्राप्त की। माण्डूक्योपनिषद् (१)-में बतलाया गया है कि 'चराचर सृष्टिका रहस्य ओंकारमें ही समाया हुआ है'—

'**हरिः ओम्। ओमित्येतदक्षरमिदः सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।**'

इसी आशयका निम्न श्लोक है—

ओङ्कारप्रभवा देवा ओङ्कारप्रभवाः स्वराः।
ओङ्कारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

श्रीगणेशजीके श्रीविग्रहका एक भाग—गजमुख-एकाक्षर परब्रह्मरूप ओंकारका ही प्रतीक है। केवल इस बाह्यरूपको देखकर कुछ विद्वान् भी भ्रममें पड़ गये और श्रीगणेशजीको अनार्योंके देव मान बैठे। वैदिक सनातनधर्ममें रूढ़ प्रतीकोपासनाका रहस्य यथार्थरूपसे समझनेसे इस भ्रान्त धारणाका निरास हो जाता है। 'गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद्' (४) में यह रहस्य सम्यक्तया प्रकट किया गया है—

'**ततश्चोमिति ध्वनिरभूत्। स वै गजाकारोऽनिर्वचनीया सैव माया जगद्बीजमित्याह। सैव प्रकृतिरिति गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबलमिति च।**'

इसी प्रकार गणेशपुराणमें भी हम श्रीगजाननके ओंकारस्वरूपका वर्णन पाते हैं। 'श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष'में भी श्रीगणेशजीको ओंकारका व्यक्त स्वरूप कहा गया है। श्रीगणेशभक्त चतुर्थीका व्रत करते हैं। यह व्रत श्रीगणेशजीके विशुद्ध तुर्यरूपकी ओर संकेत करता है। श्रीगणेशजीके पवित्र श्रीविग्रहके अंग-प्रत्यंग, उनका मूषक वाहन, उनकी उपासनाके विभिन्न उपकरणादि प्रतीकरूप हैं। उनमें गहरा तात्त्विक अर्थ भरा हुआ है।

खेदकी बात तो यह है कि पाश्चात्त्य देशोंके विधर्मी लोग इस प्रतीकोपासनाके रहस्यको यथार्थरूपमें समझते हैं; किंतु स्वयं हमारे देशवासी इस विषयमें अनेक भ्रान्त धारणाएँ बना लेते हैं। एलिस गेटीने श्रीगणेशजीपर एक पुस्तक लिखी है। प्रस्तुत संदर्भमें उसका निम्न अवतरण द्रष्टव्य है—

"That we are incapable of judging the conception of an eastern mind, seems proved when a writer looks upon the representation of the Elephant-faced god with amusement rather than with comprehension."-(Parmentier quoted by Alice Getty in 'Gaṇeśa', p.87)

इसका अर्थ यह है कि 'प्राच्य बुद्धिकी कल्पनाको समझनेमें हम असमर्थ हैं। इसका प्रमाण यह है कि श्रीगजाननदेवके बाह्य स्वरूपका हम सम्यक् आकलन न करके उसे मनोविनोदका विषय बना लेते हैं।'

श्रीगणेशजी ओंकारस्वरूप परब्रह्म होनेके साथ ही बुद्धिके अधिष्ठाता देव भी हैं। स्वयं असाधारण युक्ति-बुद्धिसे सम्पन्न होनेके कारण वे अपने भक्तोंको सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। मानवकी बुद्धि अनादि अज्ञानके कारण रज-तम आदि दोषोंसे मलिन होती है। भगवदुपासनासे उसके ये दोष दूर होकर उसे सद्विचारोंकी प्रेरणा मिलती है। भगवान्से विमुख पापपरायण लोगोंकी बुद्धि उन्हें विनाशकी ओर ले जाती है—'**बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।**' (गीता २। ६३) श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—'**राम बिमुख सपनेहुँ सुख नाहीं॥**' बुद्धिगत दोषोंके कारण मनुष्यकी स्वाभाविक शक्तियाँ भी कुण्ठित हो जाती हैं। भगवदुपासनासे ये दोष दूर होनेपर वे ज्ञानसम्पन्न तथा वीर्ययुक्त हो जाती हैं—

शक्तयः कुण्ठिताः सर्वाः स्मरणेन त्वया प्रभो।
ज्ञानयुक्ताः स्ववीर्याश्च कृता विघ्नेश ते नमः॥

'**बुद्ध्यधीनं जगत्सर्वम्**' अर्थात् सारा जगत् बुद्धिके अधीन है, इसी आशयसे '**न्यायशास्त्र**' कहता है—

'**सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्।**'

'हमारे सारे भले-बुरे व्यवहार हमारी बुद्धि यानी ज्ञानके ही अधीन होते हैं।' हमारी सारी इच्छाएँ, भावनाएँ, क्रियाएँ और मूल्य ज्ञानाधीन ही होते हैं। जैसा जिसका ज्ञान, वैसा ही उसका व्यवहार होता है और इस ज्ञानके बदलते ही मनुष्यके सम्पूर्ण व्यवहार बदल जाते हैं। इसके साथ ही स्वयं मनुष्य भी आमूलाग्र बदल जाता है। नारदजीके यथार्थ ज्ञानोपदेशसे सदोषज्ञानयुक्त कुख्यात महाभयंकर लुटेरेका हृदय परिवर्तन होकर

उसका जगद्वन्द्य महर्षि वाल्मीकिमें रूपान्तर हो गया—
'उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥'
(मानस २। १९४। ४)

ज्ञान या बुद्धि एक महान् शक्ति है—
'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।'

इसी अर्थका अंग्रेजी वचन है—'Knowledge is Power.' ग्रीसदेशीय दार्शनिक सुकरात कहा करता था कि 'ज्ञान ही सद्गुण है—'Knowledge is virtue' समस्त दुर्गुण अज्ञानमें ही पनपते हैं। अज्ञान ही मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु है—**'एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुरज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन्।'** इन्हीं सारी बातोंको ध्यानमें रखते हुए हमारे परमर्षियोंने श्रीभगवान्‌से अज्ञान दूर करनेके लिये, बुद्धि शुद्ध करनेके लिये तथा उसे शुभ प्रेरणा देनेके लिये अनेक मन्त्रों तथा प्रार्थनाओंका विधान किया है। इसीलिये कार्यारम्भसे पूर्व सद्‌बुद्धिदाता श्रीगणेशजीके स्मरण तथा पूजनका विधान महत्त्वपूर्ण है। हमारे शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है कि 'देवता पशुपालककी भाँति मनुष्योंके पीछे डंडा लेकर नहीं घूमते; वे मनुष्यके कर्मानुसार उसे विशिष्ट बुद्धिसे युक्त कर देते हैं। इसलिये उन्हें वैषम्य नैर्घृण्यके दोष नहीं लग पाते।'

ध्यान रहे, मानवी बुद्धि अनेक प्रकारकी मर्यादाओंसे ग्रस्त है। मनुष्यका ज्ञान इतना सीमित होता है कि उसे एक साधारण-सी दीवारकी ओटमें क्या है अथवा अगले क्षण क्या होगा, इसका पता नहीं होता। किन्तु उसका अहंकार इतना प्रबल होता है कि वह अपने-आपको जरासे ज्ञानके बलपर सर्वज्ञ समझने लगता है और बड़ी-बड़ी डींगें हाँकने लगता है। यह अहंकार मनुष्यका प्रबल शत्रु है, जिसे ऋत-सत्यरूप नियति चूर्ण किये बिना नहीं रहती। इसके वैदिक तथा लौकिक अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं। केनोपनिषद्‌में इस विषयमें एक सुन्दर कथा है। परात्पर परब्रह्मकी शक्ति पाकर देवताओंने दानवोंपर विजय प्राप्त की। इस विजयसे वे फूल उठे और परब्रह्मकी कृपाको भूलकर अहंकारसे ग्रस्त होकर अपनी ही शक्तिको इस विजयका कारण समझने लगे। इस अहंकारमें देवताओंके विनाशका बीज देखकर परब्रह्मने उनके इस अहंकारको दूर करनेका निश्चय किया। उन्होंने देवताओंके सामने प्रकट होकर उनके सामर्थ्यकी परीक्षा ली और उन्हें दिखला दिया कि वे अपना पूर्ण बल आजमानेपर भी एक जरासे तिनकेको न तो जला सकते हैं और न टस-से-मस कर सकते हैं। इतिहास-पुराणादिमें भी इस प्रकारके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।

मानवीय इतिहासमें इस अहंकारके चूर्ण होनेका सुप्रसिद्ध उदाहरण अंग्रेजोंद्वारा निर्मित टिटैनिक (Titanic) नामक जहाजका है। अपने समयका यह सबसे बड़ा जहाज था और सब प्रकारकी सुविधाओंसे तथा आमोद-प्रमोदके साधनोंसे युक्त था। इसके निर्माताओंका दावा था कि बड़े-से-बड़ा तूफान भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता; किन्तु हा हन्त! इसकी पहली यात्रामें ही १५ अप्रैल, सन् १९१२ की कालरात्रिमें, जब कि उसके बड़े-बड़े शाही मुसाफिर आमोद-प्रमोद आदिमें मग्न थे, वह एक प्रचण्ड हिमशिलासे टकराया और लगभग डेढ़ हजार गण्यमान्य मुसाफिरोंके साथ देखते-ही-देखते डूब गया और अपने साथ ही ले डूबा इसके निर्माताओंका अहंकार!!

इससे अधिक ताजी घटना है, अमेरिकाके अन्तरिक्ष-यानकी। कुछ ही वर्ष पूर्व जब वह संकटमें पड़ गया, तब उसकी सुरक्षाके लिये दुनियाभरमें प्रार्थना की गयी। इसके फलस्वरूप वह पृथ्वीपर सुरक्षितरूपसे वापस आ गया। इसी प्रकारके अज्ञात संकटके उपस्थित होनेपर जडवादके समर्थक निरीश्वरवादी रूसके अन्तरिक्षवीर काल-कवलित हुए। ये दोनों घटनाएँ प्रस्तुत सन्दर्भमें आँखें खोलनेवाली हैं।

इन्हीं सारी बातोंका विचार करके हमारे त्रिकालज्ञ परमर्षियोंने संकट और दुःखोंके प्रागभावपरिपालनके लिये और सब प्रकारकी मंगल-सिद्धिके लिये विघ्नहर्ता, मंगलकर्ता, बुद्धिदाता, बुद्धि-सिद्धि-पति श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाका विधान किया है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी इसी आशयसे कहते हैं—

गाइये गनपति जगबंदन।
संकर-सुवन भवानी-नन्दन॥ १॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक।
कृपा-सिंधु, सुंदर, सब लायक॥ २॥
मोदकप्रिय, मुद मंगलदाता
बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता॥ ३॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे
बसहिं राम-सिय मानस मोरे॥ ४॥

(विनय-पत्रिका १)

श्रीगणेशके रूपकी विशेषता तथा उपासनाके कुछ विशेषांश

(लेखक—श्रीयुत चल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु, बी० ए०, बी० एड्०)

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलं स्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे॥
ओंकारमाद्यं प्रवदन्ति संतो वाचः श्रुतीनामपि यं गृणन्ति।
गजाननं देवगणानताङ्घ्रिं भजेऽहमर्द्धेन्दुकृतावतंसम्॥

'जो ज्ञान तथा आनन्दके स्वरूप हैं, विनिर्मल स्फटिकतुल्य जिनकी आकृति है, जो समस्त विद्याओंके परमाधार हैं, उन श्रीहयग्रीवजीकी मैं उपासना करता हूँ। जिनको संतलोग आद्य ओंकार कहते हैं, वेदकी ऋचाएँ भी जिनकी स्तुति करती हैं, जिनके सिरपर अर्धचन्द्र शोभा पाता है तथा सभी देवतागण जिनके चरणोंपर नतमस्तक होते हैं, उन गजमुख श्रीगणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

श्रीगणेशजीकी आराधना अनादिकालसे भारतमें प्रचलित है। कुछ आधुनिक लोग पाश्चात्य मतोंसे प्रभावित होकर इस भ्रान्तिमें पड़ते हैं कि गणेशजीकी उपासना वैदिक नहीं है, अपितु इसका स्वरूप अर्वाचीन कालमें प्रचलित हुआ। लेकिन वेद तथा आरण्यकोंमें गणपति-मन्त्र तथा गणपति-गायत्रीकी उपलब्धि होती है, जिनके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि गणपति-उपासना वेदविहित है।

'गणेश' या 'गणपति'-नामकी विवेचना

१—मनद्वारा ग्राह्य तथा वाक्‌द्वारा वर्णनीय सम्पूर्ण भौतिक जगत्‌को तो 'ग'कारसे उत्पन्न हुआ जाने तथा मन और वाक्‌से अतीत ब्रह्मविद्यास्वरूप परमात्माको 'ण'कार समझे। 'अध्यात्मविद्या परमात्माका स्वरूप है— **'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'** (गीता १०। ३२)। परमात्माके चिन्तन तथा वर्णनमें मन तथा वाणी समर्थ नहीं हैं—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'

(तैत्तिरीय० २। ४)

'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा॥'

(मुण्डकोपनिषद् ३। ८)

इस भौतिक जगत् तथा अध्यात्मविद्याके स्वामी 'गणेश' कहलाते हैं—

मनोवाणीमयं सर्वं गकाराक्षरसम्भवम्।
मनोवाणीविहीनं च णकारं विद्धि मानद।
तयोः स्वामी गणेशोऽयं योगरूपः प्रकीर्तितः॥
सम्प्रज्ञातसमाधिस्थो गकारः कथ्यते बुधैः।
असम्प्रज्ञातरूपं वै णकारं विद्धि......॥
तयोः स्वामी गणेशोऽयं शान्तियोगमयस्सदा॥

'ग'कार सम्प्रज्ञात-समाधिके तथा 'ण'कार असम्प्रज्ञात-समाधिके स्वरूप हैं। इन दोनोंके स्वामी 'गणेश' कहलाते हैं।

गकारः कण्ठोर्ध्वं गजमुखसमो मर्त्यसदृशो
णकारः कण्ठाधो जठरसदृशाकार इति च॥
अधोभागः कट्यां चरण इति हीशोऽस्य च तनुः।

(गणेशमहिम्नःस्तोत्र ९)

'ग'कार कण्ठके ऊर्ध्वभाग गजमुखका तथा 'ण'कार कण्ठसे उदरतकके भागका तथा 'ईश' कटि तथा चरणका संकेत देते हैं।

गजानन होनेका रहस्य—

यस्माज्जातमिदं यत्र ह्यन्ते गच्छति महामते।
तद्वेदे गजशब्दाख्यं शिरस्तत्र गजाननः॥

(मुद्‌गलपुराण)

'गकार'से गमन (लय) और 'जकार'से जन्य (उत्पत्ति)-की ओर संकेत किया गया है। ये ही दोनों अक्षर वेदमें 'गज' नामसे प्रसिद्ध हैं। इसीके कारण गणेशजी 'गजानन' कहे गये हैं।' गणेशजीका गजवदन सम्पूर्ण जगत्‌के सृजन, पालन तथा लयकी सूचना देता है—

'सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष० ५)

एकदन्तका रहस्य—

एकशब्दात्मिका माया देहरूपा विलासिनी।
दन्तस्सत्तात्मकः प्रोक्तः.........................॥
मायाया धारकोऽयं वै सत्तामात्रेण संस्थितः।

''एक'-शब्द बाह्यशरीररूपी मायाका तथा 'दन्त'-शब्द सत्तारूप परमात्माका संकेत करते हैं। 'एकदन्त'-शब्द मायाका आलम्बन किये हुए सगुणरूपी गणेशका बोधक होता है।''

चतुर्भुजका संकेत—

गणपति जलतत्त्वके अधिपति हैं। जलके चार गुण होते हैं—शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस। सृष्टि चार प्रकारकी होती है—स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा जरायुज। जीवकोटिके पुरुषार्थ चार होते हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—

चतुर्विधं जगत्सर्वं ब्रह्म तत्र तदात्मकम्।
हस्ताश्चत्वार एवं ते..................................॥
स्वर्गेषु देवताश्चायं पृथ्व्यां नरांस्तथातले।
असुरान्नागमुख्यांश्च स्थापयिष्यति बालकः॥
...................................तस्मान्नाम्ना चतुर्भुजः॥

जगच्चालक गणेशने देवता, मानव, नाग तथा असुर—इन चारोंको स्वर्ग, पृथ्वी तथा पातालमें स्थापित किया, इसका संकेत 'चतुर्भुज' देते हैं।

गीताके अनुसार भगवान्के भक्त चार प्रकारके होते हैं। '**आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च॥**' (७।१६) भगवत्प्राप्तिके भी चार तरहके साधन 'परमगुह्यरूप'में गीतामें प्रतिपादित हैं—

'**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**'
(गीता १८। ६५)

'मनसे भगवच्चिन्तन करते हुए मनको भगवन्मय बनाना, भगवान्में भक्ति रखना, भगवान्की अर्चा करना, भगवान्को नमस्कार करना।' ऐसा करनेसे क्या फल होता है?

'**मामेवैष्यसि सत्यं...............॥**'

'वह मुझे ही प्राप्त होता है।'

उक्त चार प्रकारके साधनोंका भी संकेत चार भुजाओंसे मिलता है। इस तरह विनायकके चार हाथ चतुर्विध सृष्टि, चतुर्विध पुरुषार्थ, चतुर्विध भक्त तथा चतुर्विध परम उपासनाका संकेत करते हैं।

गणेशजीके आयुध—

साधारणतया गणेशजीके चार आयुध होते हैं—पाश, अंकुश, वरदहस्त तथा अभयहस्त। कहा जाता है कि पाश रागका तथा अंकुश क्रोधका संकेत है। अथवा यह भी समझ सकते हैं कि श्रीगणेश पाशके द्वारा भक्तोंके पापसमूहों तथा सम्पूर्ण प्रारब्धका आकर्षण करके अंकुशसे उनका नाश कर देते हैं। उनका वरदहस्त भक्तोंकी कामनापूर्तिका तथा अभयहस्त सम्पूर्ण भयोंसे रक्षाका सूचक है।

वक्रतुण्ड—

समस्त प्राणियोंको भ्रान्तिमें डालनेवाली भगवान्की माया वक्र अर्थात् दुस्तर है। उस मायाका अपने तुण्डसे हनन करनेके कारण श्रीगणेशजी 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं—

माया भ्रान्तिकरी जन्तोर्वक्रा संकथिता मुने।
तुण्डेन तां निहन्तीह तेनायं वक्रतुण्डकः॥

गीतामें भी कहा गया है कि 'भगवान्की माया दुस्तर है। इसलिये जो भगवान्की शरण ग्रहण करते हैं, वे ही उस मायाको पार कर पाते हैं'—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(७। १४)

भगवान् ही समस्त भूतोंको मायाके द्वारा भ्रमण कराते हैं—

'**भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥**'
(गीता १८। ६१)

इस दुस्तर मायासे छुटकारा पानेकी इच्छावाले शरणापन्न भक्तोंको मायासे छुटकारा देकर परमपद देनेसे ही वे भगवान् 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं। इस प्रकार देखें तो वक्रतुण्डको श्रीकृष्णरूप समझनेमें कोई बाधा नहीं है।

गणेशजीका स्वरूप 'वक्र' अर्थात् दुर्ज्ञेय है। विघ्न वक्र—सुखप्राप्तिनिरोधद्वारा कष्टके कारण होते हैं। इन वक्ररूप विघ्नोंका अधिपति होनेके कारण वे भगवान् वक्रतुण्ड 'विघ्नेश' कहलाते हैं—

कण्ठाधो मायया युक्तं मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं येन विघ्नेशस्तेनायं वक्रतुण्डकः॥

भगवत्स्वरूपकी दुर्ज्ञेयताकी सूचना गीतामें भी देख सकते हैं—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति...................॥
(७। २५)

'**अवजानन्ति मां मूढा...................॥**'
(९। ११)

जो भगवान्का भजन नहीं करता, उसे निराश

होना, अपने कर्मोंका वांछित फल न पाना आदि विघ्न प्राप्त होते हैं। वे ही 'विघ्न' पदसे सूचित हैं।

'मोघाशा मोघकर्माणो..................॥'

(गीता ९। १२)

इन वक्ररूप विघ्नोंका निवारण करके भक्तोंको भोग-मोक्ष प्रदान करनेके कारण ये 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं, जिसकी सूचना गीतामें भी '**अनन्याश्चिन्तयन्तो...... योगक्षेमं वहाम्यहम्**' (९।२२) आदि वाक्योंद्वारा मिलती है।

शूर्पकर्ण—

शूर्प जैसे चावलको घास-फूस आदिसे शुद्ध करके भोजन करनेयोग्य बनाता है, उसी प्रकार भगवान् गणेशजी भी अपने उपासकोंके अज्ञानरूप धूलिको उड़ाकर ज्ञान-दान करते हैं। '**अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्**' (गीता ५।१५)। मायासे आवृत परब्रह्म साधकको नहीं मिलता। इसलिये मायाको हटाकर ब्रह्म-साक्षात्कार करानेका संकेत 'शूर्पकर्ण' देते हैं—

रजोयुक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च।
शूर्पं सर्वनराणां वै योग्यं भोजनकाम्यया॥
तथा मायाविकारेण युतं ब्रह्म न लभ्यते।
त्यक्तोपासनकं तस्य शूर्पकर्णस्य सुन्दरि॥
शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः॥

नाग-यज्ञोपवीत तथा सिरपर चन्द्रमा—

नाग-यज्ञोपवीत कुण्डलिनीका संकेत है तथा सिरपर चन्द्रमा सहस्रारके ऊपर स्थित अमृतवर्षक चन्द्रमाका प्रतीक है।

मूषकवाहन—

भक्तोंके हृदयोंमें चोरकी तरह छिपे रहकर सभी मनुष्योंको चलानेका संकेत मूषकसे प्राप्त होता है—

द्वन्द्वं चरसि भक्तानां तेषां हृदि समास्थितः।
चोरवत्तेन तेऽभूद्वै..................॥
मूष स्तेये तथा धातुः..................।
ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः॥
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।

ईश्वरके समस्त भूतोंके हृदयोंमें छिपे रहनेकी बात प्रसिद्ध है, जो गीतोक्त भी है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(१८।६१)

इससे भी सिद्ध होता है कि गणेशजी श्रीकृष्णसे अभिन्न हैं।

श्रीगणेशजीके अवतार—

श्रीगणेशजीके अवतार असंख्य होनेपर भी उनमें आठ बहुत प्रसिद्ध हैं। स्थानाभावके कारण उनका केवल उल्लेखमात्र किया जाता है—

(१) **वक्रतुण्ड**—जो सिंहवाहन तथा मत्सरासुरके हन्ता हैं।

(२) **एकदन्त**—जो मूषकवाहन तथा मदासुरके हन्ता हैं।

(३) **महोदर**—जो मूषकवाहन, ज्ञानदाता तथा मोहासुरके नाशक हैं।

(४) **गजानन**—जो मूषकवाहन, सांख्योंको सिद्धि देनेवाले एवं लोभासुरके हन्ता हैं

(५) **लम्बोदर**—जो मूषकवाहन तथा क्रोधासुरके हन्ता हैं।

(६) **विकट**—जो मयूरवाहन तथा कामासुरके हन्ता हैं।

(७) **विघ्नराज**—जो शेषवाहन और मयासुरके प्रहर्ता हैं।

(८) **धूम्रवर्ण**—जो मूषकवाहन और अहंतासुरके हन्ता हैं।

इन अवतारों तथा इनके द्वारा मारे गये असुरोंके बारेमें विवेचन करके देखें तो मत्सर, मद, मोह, लोभ, क्रोध, काम, ममता तथा अहंतारूप अन्तश्शत्रुओंका ही संकेत करते हैं। साधकके अरिष्टका नाश करके परमपद प्राप्ति करनेका संकेत उनकी अवतार-लीलाओंसे ज्ञात होता है।

युगभेदसे गणेशके विभिन्न रूपोंका ध्यान—

कृतयुगमें—सिंहारूढ, दशबाहु, तेजोरूप तथा कश्यपके सुत श्रीगणेशजीका ध्यान करना चाहिये।

त्रेतायुगमें—मयूरवाहन, षड्भुज, शशिवर्ण तथा शिवपुत्र श्रीगणेशजीका ध्यान करे।

द्वापरमें—मूषकारूढ़, चतुर्भुज, रक्तवर्ण तथा वरेण्यसुतके रूपमें श्रीगणेशजीका ध्यान करे।

कलियुगमें—धूम्रवर्ण, द्विबाहु तथा सर्वभावज्ञके रूपमें श्रीगणपतिका ध्यान करके उनकी उपासना विहित है। यही बात गणेशपुराणके निम्नलिखित ध्यानमें सूचित है—

ध्यायेत् सिंहगतं विनायकममुं दिग्बाहुमाद्ये युगे
त्रेतायां तु मयूरवाहनममुं षड् बाहुकं सिद्धिदम्।
द्वापरे तु गजाननं युगभुजं रक्ताङ्गरागं विभुं
तुर्ये तु द्विभुजं सिताङ्गरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा॥

बारह महीनोंमें गणेशजीकी उपासना—

चैत्र मासमें 'वासुदेव'-रूपी गणेशजीकी उपासना करके सुवर्ण दक्षिणा देनी चाहिये। वैशाख मासमें 'संकर्षण'-रूपी गणेशजीकी उपासना करके शंख-दान देना चाहिये। ज्येष्ठ मासमें 'प्रद्युम्न'-रूपी गणेशजीकी पूजा करके फल-मूल-दान देना चाहिये। ज्येष्ठ मासमें गणेशजीकी अर्चा 'सतीव्रत'के नामपर की जाती है, जिससे साधक गणेशमाता पार्वतीजीका लोक प्राप्त कर लेता है। आषाढ़ मासमें 'अनिरुद्ध'-रूपी गणेशजीकी अर्चा करके संन्यासियोंको तूँबीपात्रका दान करना चाहिये। आषाढ़ मासमें गणपतिकी अर्चा करके देवदुर्लभ फल पाता है। श्रावण मासमें 'बहुला गणेशजी' की पूजाका विधान है। भाद्रपद मासमें 'सिद्धि-विनायक' की पूजाका विधान है। आश्विनमें 'कपर्दीश' गणेशजीकी पूजा पुरुषसूक्तोंसे करनी चाहिये। कार्तिक मासमें 'करकचतुर्थी' व्रत करनेका विधान है। मार्गशीर्ष मासमें चार संवत्सरपर्यन्त पालनीय व्रतकी विधि है। पौष मासमें 'विघ्ननायक' गणेशकी और माघ मासमें 'संकष्टव्रत' लेकर उनकी पूजा करनेका विधान है। फाल्गुन मासमें 'ढुण्ढिराज'व्रत करनेका विधान है। मंगलवारपर चतुर्थी आये तो उसे 'अंगारक-चतुर्थी' कहते हैं, जो विशेष फलदायक होती है। रविवारके दिन चतुर्थी आये तो विशेष फलप्राप्तिका हेतु होती है।

इक्कीस पत्रोंसे पूजा—

श्रीगणेशजीको समर्पण किये जानेवाले सभी इक्कीस पत्र भी आयुर्वेदकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वके हैं। उनमें एक-एक ओषधि आरोग्यवर्धक, रोगनिवारक सिद्ध हुई है। विशेषकर दूर्वा तो पुष्टिदायक, सद्योव्रणहर, सवर्णकारक, सर्वदोषहर कहलाती है, जो विशेषरूपसे गणपतिकी पूजामें प्रयुक्त होती है। अभी समाचारपत्रोंमें आया है कि 'दूर्वामें प्रोटीन बहुत अधिक है। एक हेक्टेयरमें उपजनेवाले धानके अतिरिक्त, घासमें कम-से-कम पाँच गुना प्रोटीन आदि अधिक होते हैं।' मद्रासके समीप घाससे बिस्कुट, रोटी बनानेवाला कर्मागार भी काम करता है। अन्य पत्रोंका वैज्ञानिक विवेचन स्थानाभावके कारण नहीं किया जा रहा है।

जन्तुमुखवाले कुछ प्रधान देवता—

पहले सर्वांगपूर्ण पुरुषरूपसे प्रकट होकर, कारण-विशेषसे सिर कट जानेपर अन्य किसी जन्तुका सिर लगाये जानेसे प्रसिद्ध हुए देवताओंमें भगवान् हयग्रीव तथा गणपति प्रधान हैं। दक्षप्रजापतिको भी मेषका सिर लगाया गया था, तो भी उनकी आराधना प्रचलित नहीं दीखती। विष्णुके नरसिंह, वराह अवतार तो जन्तु-सिरके साथ ही प्रकट हुए थे। इनमें विद्या, ऐश्वर्य तथा मोक्ष प्राप्तिके लिये गणपति तथा हयग्रीवकी आराधना विशेषरूपमें प्रचलित है।

अन्य देवताओंमें गणेशजीका अंश—

श्रीगणेशजीके अंश एकादशमुख हनुमान् तथा अष्टमुख गंडयेरुण्ड ज्वालानारसिंहमें दिखायी देते हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि गणेशजीकी पूजासे परोक्षरूपमें भगवान् नारसिंहजीकी तथा हनुमान्‌जीकी भी अर्चा हो जाती है।

विष्णूपासनके अंगके रूपमें गणेशोपासना—

गणेशजीकी अर्चा विष्णुजीके द्वितीयावरणके द्वारपालके रूपमें (वैखानस-सम्प्रदायके अनुसार) की जाती है। वहाँ उनका ध्यान निम्न प्रकारसे किया जाता है, जो सर्वसाधारणमें प्रचलित नहीं है—

'द्वितीयावरणद्वारदक्षिणे चोत्तराभिमुखः, प्रवालाभः, एकदन्तः, कण्ठादूर्ध्वं गजाकारो वामनः, कुशध्वजो वेणुकङ्कतवाहनश्शङ्खधरश्चतुर्भुजः, कदलीफलहस्त आर्द्रापतिश्श्रविष्ठाजो वक्रतुण्डः।'

(मरीचि-विमानार्चनकल्प, पटल-२०)

श्रीविष्णुके आलयोंमें उत्सवके प्रारम्भमें किये

जानेवाले 'अंकुरारोपण'में भी गणेशजीकी पूजा होती है।

गणेशजीकी पूजा विभिन्न प्रतीकोंमें—

साधारणतया गणेशजीकी पूजा हरिद्राकी (गोली) मूर्तिपर की जाती है। हरिद्रामें मंगलाकर्षिणी शक्ति है तथा वह लक्ष्मीका प्रतीक भी है। नारदपुराणमें तो गणेशजीकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनानेका आदेश देकर, उसके अभावमें हरिद्रासे उसे बना लेनेकी छूट दी गयी है। गोमयमें लक्ष्मीका स्थान होनेके कारण लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये गणेशजीकी उपासना गोमयमूर्तिपर की जाती है।

गणेशजीकी विशेष कृपा शीघ्र पानेके लिये श्वेत अर्ककी जड़को पुष्य-नक्षत्रयुक्त रविवारके दिन मन्त्रोच्चारणपूर्वक उखाड़कर उस जड़से अँगूठेके बराबरकी गणेशजीकी मूर्ति बनाकर पंचामृतसे उसका अभिषेक करके पूजामें रख ले, जो बहुतोंद्वारा अनुभूत है तथा इसका संकेत अग्निपुराणके ३०१वें अध्यायमें भी मिलता है। अगर पुष्ययुक्त रविवार अलभ्य हो तो केवल पुष्य-नक्षत्रके दिन भी उक्त श्वेत आककी जड़को उखाड़कर पूजाके लिये उसका उपयोग कर सकते हैं।

श्रीगणेशजीकी लकड़ीकी मूर्ति बनाकर घरके बहिर्द्वारके ऊर्ध्वभागमें उसकी स्थापना करनेपर गृह मंगलयुक्त हो जाता है—'**प्रभावात्तन्मूर्त्या भवति सदनं मङ्गलकरम्।**' अब गणेशजीकी विभिन्न गायत्रियोंके स्मरणके साथ लेख समाप्त किया जाता है।

विभिन्न गणेशगायत्री—

(१) **लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि।**
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(अग्निपुराण ७१ अध्याय)

(२) **महोत्कटाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।**
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(अग्निपुराण, १७९ अध्याय)

(३) **एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।**
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(गणपत्यथर्वशीर्ष)

(४) **तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि।**
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(मैत्रायणीय संहिता)

(५) **तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।**
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(तैत्तिरीयारण्यक-नारायणोपनिषद्)

~~○~~

वन्दना

पिता पंच आनन हैं, अग्रज षडानन हैं,
स्वयं गज-आनन हैं, संकट निवारते।
गिरिजा के नन्दन हैं, पूज्य जग-वन्दन हैं,
भक्त-उर चन्दन हैं, ऋद्धि-सिद्धि वारते॥
मंगल-विधायक हैं, बुद्धि के प्रदायक हैं,
महागण-नायक हैं, विघ्न-व्यूह टारते।
मोद को बढ़ाते, भक्त मोदक चढ़ाते
शुण्ड-दण्ड से उठाते, मुख-मण्डल में धारते॥

—श्रीगोपीनाथजी उपाध्याय

~~○~~

'कलौ चण्डीविनायकौ'

(लेखक—पं० श्रीपट्टाभिराम शास्त्री, मीमांसाचार्य)

चिरकालसे पवित्र हमारा भारतदेश आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न रहा है, क्योंकि हमारे पूर्वजोंने ऐसे अनेक पर्वोंको प्रवर्तित किया है, जिनमें सेतुसे लेकर हिमाचलपर्यन्त एक ही रीतिसे उत्सव मनाये जाते हैं। इतिकर्तव्यतामें भेद हो सकता है, किंतु प्रधानमें कोई भेद नहीं है। उन पर्वोंमें भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रान्तके भेदसे कोई इसको 'विनायक-चतुर्थी' कहते हैं तथा कोई 'गणेश-चतुर्थी'।

विनायक-रहस्य

कलिमें **'चण्डी'** और **'विनायक'** शीघ्र फलप्रद देवता माने गये हैं। सभी कार्योंके आरम्भमें विनायककी पूजा अवश्य होती है। इसको 'गणेशपूजन' कहते हैं। विनायक शब्दके—विशिष्ट नायक, विगत है नायक-नियन्ता जिसका, अथवा विशेषरूपसे ले जानेवाला अर्थ होते हैं। वैदिक मतमें सभी कार्योंके आरम्भमें जिस देवताका पूजन होता है, वह 'विनायक' है। विनायककी पूजा प्रान्त-भेदसे सुपारी, पत्थर, मिट्टी, हल्दीकी बुकनी, गोमय, दूर्वा आदिमें आवाहनादिके द्वारा होती है। इससे पता लगता है कि इन सभी पार्थिव वस्तुओंमें यह देवता व्याप्त है। इस देवताके अनेक नाम हैं; उनमें 'विनायक'-शब्द एक विलक्षण अर्थका प्रत्यायक है। विनायक-चतुर्थीका व्रत या उत्सव सिंहस्थ सूर्य, भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी और हस्त-नक्षत्रके योगमें होता है। यह योग यदि बुधवारमें पड़ जाय तो इसका विशेष महत्त्व माना जाता है। इस तत्त्वको 'विनायक' शब्द अवगत कराता है। क ट प आदि संख्या-शास्त्रके अनुसार वि ४, ना० य १, क १—इन संख्याओंका योग ६ होता है। यह 'वक्रतुण्ड षडक्षरी' मूल तन्त्रका परिचायक है। **'अङ्कानां वामतो गतिः'** इस शास्त्रीय नियमसे ११०४ संख्या प्राप्त होती है। यह संख्या सिंहस्थ सूर्य, भाद्रपद मास, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी तिथि और हस्त-नक्षत्रका परिचय कराती है। चान्द्रमानके अनुसार भाद्रपद छठा मास है। इन संख्याओंका योग ६ है। संख्या ४ और १ के योगसे ५ संख्या निकलती है। यह सिंहस्थ सूर्यका द्योतक है। सिंह पाँचवीं राशि है। बची हुई १ संख्या शुक्ल पक्षका परिचायक है; क्योंकि शुक्ल पहला और कृष्ण दूसरा पक्ष है। प्रथम दो संख्या ११ है। यह ग्यारहवें नक्षत्र हस्तका परिचायक है। विंशोत्तरी दशाका गणना कृत्तिका-नक्षत्रसे किया जाता है। वेदोंमें भी इसका प्रमाण मिलता है। कृत्तिकासे ग्यारहवाँ नक्षत्र हस्त है। ४ संख्या चतुर्थी तिथि और बुधवारका द्योतक है। शून्य अंक शिवतत्त्वका द्योतक है। इसी कारणसे हमारे पूर्वज शिवशक्त्यभिन्न गणपतिको कार्यारम्भमें पूजते आये हैं। विनायक-शब्द इतने अर्थोंका बोधक है।

शिवः खमनिलश्शक्ती रविरग्निर्जलं हरिः।
महो गणेशः सम्प्रोक्तः विश्वमेतद्वयं नुमः॥

विनायक भूतत्त्व

इस उक्तिसे विनायक भूतत्त्वरूपी मालूम पड़ता है। **'महोमूलाधारे'** इस प्रमाणसे मूलाधार भूतत्त्व है। अर्थात् मूलाधारमें भूतत्त्वरूपी गणेश विराजमान है। और गणपतिके **'ग्लौं'** बीजका विचार करनेसे यह अवगत होता है कि—**'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी'**—इस सृष्टि-क्रमके अनुसार 'गकार' खबीज और 'लकार' भूबीज—इनके योगसे पंचभूतात्मक गणेश हैं। इस भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीके पूजनके लिये हमारे पूर्वज मिट्टीसे ही गणपति-बिम्ब बनाकर पूजा करते थे। आज भी वह आचार भारतमें प्रचलित है। शोणभद्र-शिला या अन्य चाँदी-सोनेसे बने हुए बिम्बको पूजामें नहीं रखते हैं, मिट्टीका ही ग्रहण करते हैं। इससे भी अवगत होता है कि गणपति भूतत्त्व है।

दूर्वा, शमीपत्र और मोदक क्यों?

इस पूजामें दूर्वा, शमीके पत्ते और मोदक मुख्यतः ग्रहण किये जाते हैं; क्योंकि ये गणेशजीके प्रिय माने जाते हैं। पूजाके अवसरपर दूर्वा-युग्म अर्थात् दो दूर्वा तथा होमके अवसरपर तीन दूर्वाओंके ग्रहणका विधान तन्त्रशास्त्रमें मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि क ट प आदि संख्या-शास्त्रसे दू ८, र्वा ४, **'अङ्कानां वामतो गतिः'** न्यायसे ४८ संख्या उपलब्ध होती है। इसी प्रकार 'जीव' (जी ८, व ४) से ४८ संख्या

निकलती है। इस संख्या-साम्यसे 'दूर्वा'का अर्थ जीव होता है। जीव सुख और दुःखको भोगनेके लिये जन्म लेता है। इस सुख और दुःखरूप द्वन्द्वको दूर्वा-युग्मसे समर्पण किया जाता है। जिस प्रकार जीव जन्म-जन्मान्तरोंमें अर्जित पुण्य और पापोंके फलस्वरूप बार-बार जन्म लेता है, उसी प्रकार दूर्वा अपनी अनेक जड़ोंसे जन्म लेती है। अतः जीव और दूर्वाका न केवल संख्यासे ही साम्य है, किन्तु क्रियासे भी समानता है। भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीके पूजनमें इक्कीस दूर्वा-युग्मोंसे पूजन विहित है। यह २१ दुःख-ध्वंसका द्योतक है। शास्त्रकारोंका मत है कि '**एकविंशतिदुःखध्वंसद्वारा मोक्षः**' यह द्वैत-सिद्धान्तका परिचय कराता है। इस पूजनमें 'युग्म' से सुख और दुःखके ध्वंसके द्वारा आनन्दात्मक मोक्षका संकेत मिलता है। होमके अवसरपर तीन दूर्वाओंका ग्रहण इस तात्पर्यका अवगमक है—आणव, कार्मण और मायिकरूपी तीन मलोंको भस्मीभूत करना। गीतामें '**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन**' (४। ३७) कहा है। '**ज्ञानाग्निः**' इस पदसे क-ट-प आदि शास्त्रके द्वारा शून्य० संख्या निकलती है-ज्ञा-०ना-०गि-०। भस्म सत्त्वगुणका परिचायक है। जीवका जन्म-जन्मार्जित सभी मल भस्मीभूत होनेपर सत्त्वगुणसम्पन्न होकर वह मोक्षको प्राप्त करता है। यही तीन दूर्वाओंसे होम करनेका तात्पर्य है।

शमीवृक्षको 'वह्निवृक्ष' भी कहते हैं। वह्निपत्र गणपतिके लिये प्रिय वस्तु है। क-ट-प आदि शास्त्रसे व संख्या ४ ह्नि:०। शिक्षा-ग्रन्थोंमें 'ह्नि' अक्षरको ह्नि, ह्य के रूपमें उच्चारणके लिये व्यवस्था मिलती है। अतः 'ह्नि:' का० शून्य अंक है। यह शिवका द्योतक है। '**चत्वारि वाक्परिमितापदानि**'—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीकी ४ संख्याका परिचायक है। शिक्षा-ग्रन्थोंमें शब्दके मूलाधारसे निकलकर मूर्धा, कण्ठ और ताल्वादिकोंसे सम्बद्ध होकर मुखसे निकलनेका प्रकार लिखा है। पहले कहा जा चुका है कि भूतत्त्वरूपी गणेशका मूलाधार स्थान है। इस प्रकार जानकर वह्निपत्रसे विनायकको पूजनेसे जीव ब्रह्मभावको प्राप्त कर सकता है।

अब 'मोदक' क्या वस्तु है, जो गणेशको परमप्रिय है। मोद—आनन्द ही मोदक है। '**आनन्दो मोदः प्रमोदः**' श्रुति है। इसका परिचायक है—'मोदक'। मोदकका निर्माण दो-तीन प्रकारसे होता है। कई लोग बेसनको भूँजकर चीनीका चासनी बनाकर लड्डू बनाते हैं। इसको 'मोदक' कहते हैं। यह मूँगके आटेसे भी बनाया जाता है। कतिपय लोग गरी या नारियलके चूर्णको गुड़-पाककर, गेहूँ, जौ या चावलसे आटेको सानकर कवच बनाकर, उसमें सिद्ध गुड़पाकको थोड़ा रखकर घीमें तल लेते हैं। या वाष्पसे पकाते हैं। आटेके कवचमें जिस गुड़पाकको रखते हैं, उसका '**पूर्णम्**' नाम है। '**पूर्णम्**' से ५१ संख्या निकलती है। यह संख्या अकारादि ५१ अक्षरोंकी परिचायिका है। यही तन्त्रशास्त्रमें 'मातृका' कहलाती है। '**न क्षरतीति अक्षरम्**'—नाशरहित परिपूर्ण सच्चिदानन्द ब्रह्मशक्तिका यह द्योतक है। पूर्ण ब्रह्मतत्त्व मायासे आच्छादित होनेसे वह दीखता नहीं, यह हमें 'मोदक' सिखलाता है। गुड़पाक आनन्दप्रद है। उसको आटेका कवच छिपाता है। वह आस्वादसे ही गम्य है, इसी प्रकार ब्रह्मतत्त्व स्वानुभवैकगम्य है। विनायकभगवान्‌के हाथमें इस मोदकको रखते हैं तो वे स्वाधीनमाय, स्वाधीनप्रपंच आदि शब्दोंमें व्यवहृत होते हैं। यही दूर्वा-वह्नि-मोदकका तात्पर्य है।

सांस्कृतिक तत्त्व

इस पंचभूतात्मक प्रपंचको जब पंचभूतोंके रूपमें देखते हैं, तब ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान नहीं है और जब हम पंचभूतोंको ब्रह्मके रूपसे देखते हैं तो पंचभूत नहीं हैं। दृष्टिका ही यह भेद है, वस्तु एक है, वह परिपूर्ण है। यही तत्त्व 'विनायक' है। यही हमारी संस्कृति है।

श्रीविद्याके उपासक सर्वप्रथम 'गणेश'की पूजा करते हैं। लेकिन इस पूजाका वे गणेश-पूजा या विनायक-पूजाके नामसे व्यवहार नहीं करते। किंतु 'महागणपति-सपर्या' शब्दसे व्यवहार करते हैं। इस प्रकारके व्यवहारमें एक महान् तात्पर्य है। '**अष्टाविंशतिवर्णविशिष्टो महाहेरम्बस्य मनुः**'—यह गौड़पादका सूत्र है। यह मनु (मन्त्र) दो प्रकारका है—एक सम्बोधनान्त '**गणपते**' पदसे और दूसरा चतुर्थ्यन्त '**गणपतये**'—घटित है। श्रीविद्याके उपासक सम्बोधनान्त मन्त्रका जप करते हैं। जो मोक्षेच्छु हैं, वे चतुर्थ्यन्त मन्त्रको जपते हैं—

सम्बुद्ध्यन्तमहामन्त्रो शाक्तमार्गप्रबोधकः।
चतुर्थ्यन्तमहामन्त्रो मोक्षमात्रैकहेतुकः॥

—ऐसा प्रमाण मिलता है। क-ट-प आदि रीतिसे महागणपति शब्दोंमें म-५, हा-८, ग-३, ण-५, प-१, ति-६—इन संख्याओंके योगसे २८ संख्या लब्ध होती है। यह महाषोडशीका परिचायक है। इसी प्रकार ग-३, ण-५, प-१ ति-६—इनके योगसे १५ संख्या निकलती है। यह पंचदशाक्षरीका द्योतक है। अतएव श्रीविद्याके साथ महागणपतिका दृढ़तर सम्बन्ध व्यक्त होता है। जो श्रीविद्याके उपासक नहीं हैं, उनके लिये विनायक-पूजन भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीमें विहित है। आचारमें श्रीविद्याके उपासक भी भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी-व्रतको करनेवाले मिलते हैं।

इस प्रकारके रहस्यको ध्यानमें रखते हुए हमारे चिरन्तन महात्मा पूजन आदिसे आध्यात्मिक शक्तिका उपार्जन करते थे। हमारी हिन्दू जनताका न केवल यह प्रतीक है, किन्तु एकताके लिये महान् साधन है। हम सभी इस दृष्टिसे भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीमें विनायकके पूजनसे एकताको प्राप्तकर भारतवर्षके उन्नयनमें भागीदार बनें।

~~~०~~~

गणेशरूपकी मान्त्रिक व्याख्या

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री)

गणेशका नाम लेते ही एक मूर्ति उभरती है—स्थूलकाय, तेजोदीप्त, वक्रतुण्ड महाप्राण देवताकी। ये ही हैं गणाधिप, सिद्धि-बुद्धिके स्वामी विघ्नविनायक। सम्पूर्ण शरीर मानवका, किन्तु मस्तक हाथीका। आजके हृदय-प्रतिरोपणतक पहुँचे शल्य-विज्ञानके लिये यह रूप असम्भवकी सीमातक अकल्पनीय, अतएव अविश्वसनीय है; किन्तु नृसिंह, हयग्रीव, दत्तात्रेय और सहस्रबाहुके देशमें न यह असम्भव है, न अविश्वसनीय। वास्तवमें अविश्वसनीय देशकाल-सापेक्ष है। इसके लिये कोई गारन्टी नहीं दी जा सकती कि आजका अविश्वसनीय कलका यथार्थ नहीं होगा? भाव-जगत्में इस तरहकी अविश्वसनीय घटनाएँ एक सामान्य बात हैं, पश्यन्तीके क्षेत्रमें और इच्छाशक्तिकी वास्तविक अधिकारसीमामें यह सब सम्भव है। स्थूल जगत्में यह चमत्कार है।

गणेशके जन्मके सम्बन्धमें एक कथा प्रचलित है कि पराम्बा पार्वतीने अपनी रक्षाके लिये एक पुतलेमें प्राणप्रतिष्ठा कर दी और उसे प्रहरी बनाकर स्थापित कर दिया। थोड़ी देरमें भगवान् शंकर आये; पार्वतीके पास गर्भगृहमें जाने लगे तो प्रहरीने मना कर दिया। शिव और शिवाके संयोगमें बाधक कौन हो सकता है? शंकरने रुद्ररूप धारण किया और प्रहरीका नाश कर दिया। उमाने शंकरको आया देख अपनी सृष्टि-कल्पित पुत्रके लिये जानना चाहा तो ज्ञात हुआ कि उसका शव पड़ा हुआ है। जगज्जननी रुष्ट हो गयीं। शंकर ठहरे आशुतोष। वे भावोंसे प्रसन्न होनेवाले हैं, अभिव्यक्तिसे नहीं। भक्त उन्हें गाली देकर प्रसन्न कर सकता है, रुष्ट होकर प्रसन्न कर सकता है, हठ करके उनका प्रसाद प्राप्त कर सकता है; फिर पराम्बा तो उनकी अभिन्न सहचरी ठहरीं। उनके रोषके आगे वे विनत हैं। उन्होंने झटसे हाथीका मस्तक उस शवपर लगा दिया।

यह है गणपतिके सम्बन्धमें प्रचलित कथा। यह कथा एक रूपक है अथवा पौराणिक सत्य—यह विवेच्य विषय नहीं है। इस निबन्धका प्रतिपाद्य है। इस कथाका भारतीय वैज्ञानिक दृष्टिसे रहस्य-विश्लेषण। प्रस्तुत है—गणपति-जन्मका तान्त्रिक एवं मान्त्रिक दृष्टिसे प्रमाणसम्मत विवरण।

सबसे पहला प्रश्न इस कथाके प्रारम्भमें उठता है कि 'पराम्बा पार्वती अपनी शक्तिसे स्वरक्षित हैं, उनको अपनी रक्षाकी आवश्यकता किसलिये हुई? दिगम्बर शंकरकी अर्धांगिनी और हिमाच्छादित कैलासमें रहनेवाली पार्वती आखिर किससे रक्षा चाहती थीं? रक्षाके लिये उन्होंने एक कल्पित व्यक्तिमें प्राणप्रतिष्ठा कर दी तो शंकरको उसे नष्ट करनेकी आवश्यकता क्यों हुई? नष्ट भी कर दिया था तो उस शरीरपर हाथीका मस्तक किस कारण लगाया? ये प्रश्न निरर्थक नहीं हैं, न इन प्रश्नोंकी इसलिये उपेक्षा की जा सकती है कि आस्थामें
~~~

तर्कको स्थान नहीं दिया जाता। विश्वका प्रत्येक कार्य कारणसे अनुस्यूत है, इसलिये कारणके प्रति जिज्ञासा होना अस्वाभाविक नहीं है। यह जिज्ञासा उन सारे रहस्योंका उद्‌घाटन करती है, जो कारणके कार्यरूपमें परिणत हो जानेतक उत्पन्न हुए हैं।

वस्तुतः पराम्बा जगद्धात्री हैं, शक्तिस्वरूपा हैं; उन्हें आत्मरक्षाकी आवश्यकता नहीं है। यथार्थ बात यह है कि भगवान् शंकर संसारकी रक्षाके लिये सदा तत्पर हैं, शक्तिके साथ एकाकार हैं; वे लोक-रक्षणके लिये स्वहितको कभी सोचते ही नहीं। सागर-मन्थनके समय तीव्र कालकूटको पीकर उन्होंने संसारको विपत्तिसे मुक्त किया; भागीरथीको अपने सिरपर धारणकर उन्होंने भारतवर्षको शस्य-सम्पन्न बनाया और डमरूके निनादसे उन्होंने ब्रह्मको ध्वनिरूप प्रदान किया। (संस्कृत व्याकरणकी प्रत्याहार प्रक्रिया समग्र शब्दशास्त्रकी एक प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक व्यवस्था है।) मन्त्रशास्त्रके वे जनक हैं। शब्दका उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन किया है। मन्त्रशास्त्रकी मर्यादाके अनुसार भगवान् आशुतोषने सारा गुह्य ज्ञान पार्वतीको दिया है।

इतने विशाल एवं गुह्य ज्ञानका रहस्य जाननेवाली पार्वती मानवीय कुतूहलसे प्रेरित होकर एक व्यक्तिकी कल्पना करती हैं (जो आगे चलकर गणेशके रूपमें प्रतिष्ठित होगा)। यह व्यक्ति स्थूल दृष्टिसे मानवका ही रूप है, किंतु तान्त्रिक दृष्टिसे यह शब्दस्वरूप है, जो रक्षा करनेका प्रतीक है। पार्वती अपनी शक्तिसे उस मन्त्रमें प्राण-प्रतिष्ठा कर देती हैं—स्मरण रहे, साधनाके सभी मन्त्रोंमें मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने अपनी तपस्याके द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा की है; इसलिये वे शक्तिसम्पन्न हैं, उनसे विविध कार्य सफल होते हैं। इसी बीच भगवान् शंकर आते हैं और उस मन्त्रकी परीक्षा करते हैं। मन्त्र उनके सामने असमर्थ रहता है। विवश होकर शंकर उसे नष्ट—निष्प्राण कर देते हैं।

यह शिवका स्वभाव है—दोषको और जराको वे सहन नहीं कर पाते। यह संसार ही जब जीर्ण होने लगता है; तब वे प्रलयंकर हो उठते हैं। प्रलयमें भी नृत्य करना शंकर-जैसे उदात्त कलाकारकी ही महिमा है। वे नृत्य विनष्टिके लिये नहीं, सृजनके लिये करते हैं और जर्जर एवं विकृत विश्वके विनाशके साथ अभिनव विश्वके निर्माणकी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसी उपलक्ष्यमें शंकर नृत्य करते हैं। ताण्डवका यही रहस्य है, अन्यथा महारुद्र सदाशिव नहीं कहलाते।

पार्वतीविरचित मन्त्रकी अक्षमता उनको रुची नहीं और उन्होंने उसे निष्प्राण कर दिया; पर इस विनाशके साथ सृजन जुड़ा हुआ था; इसलिये आदिगुरु शंकरने उसका पुनर्निर्माण किया। धड़ पार्वतीनिर्मित रहा और सिर शंकर-निर्दिष्ट। सिर हाथीका ही क्यों लगाया गया, यह विचारणीय विषय है। गणेशके मस्तकके लिये हाथीका सिर मन्त्रके स्वरूपका रहस्य बतलाता है। हाथीके गण्डस्थल और सूँडसे जो प्रतीक बनता है, वह किसी दूसरे प्राणीके सिरमें नहीं आ सकता।

हाथीके गण्डस्थलसे लेकर टेढ़ी सूँडका प्रतीक वे स्थान हैं, जहाँसे प्रणव-मन्त्र ध्वनित होता है। योगशास्त्र एवं अक्षरोंके स्फोटके मूल स्थानके सम्बन्धमें ऋषियोंके वचनोंके अनुसार स्वर विशुद्धिचक्रमें उत्पन्न होता है और मकार मूलाधिष्ठानमें। आशय यह कि शंकरने पार्वतीके मन्त्रको अमोघ एवं निर्दोष बनानेके लिये उसमें प्रणव-मन्त्र और जोड़ दिया। आज ओम्के स्थानपर ॐका प्रयोग उसी गजमस्तकका सरल एवं स्पष्ट प्रतीक है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'मैं मन्त्रोंमें प्रणव-मन्त्र हूँ।'

प्रणव-मन्त्रका अपना स्वरूप-स्वभाव है। वह आत्मरक्षित है। उसमें तीव्र प्रतिरोधक शक्ति है। इसी प्रतिरोधक शक्तिके कारण विघ्न दूर ही रहते हैं। गणेश भी प्रणवके आत्मरक्षणगुणसे एकाकार हैं। देवासुर-संग्राममें कार्तिकेय देवताओंके सेनापति थे। उनमें संहारक और आक्रामक शक्ति थी। गणेश संहारक नहीं हैं; पर आत्मरक्षणमें उनके समान समर्थ कोई दूसरा नहीं है। वे विनाशक नहीं हैं, किंतु उनकी रक्षात्मकता इतनी प्रबल है कि जो उसे क्षुण्ण करने जाता है, वही समाप्त हो जाता है; इसलिये भगवान् गणेश विघ्नविनायक हैं।

तन्त्रोंके वामाचारमें प्रणव-मन्त्रको वह महत्त्व नहीं दिया जाता; क्योंकि उनमें सीधे शिवाकी अर्चना की जाती है; किंतु वैष्णवी उपासनामें गणेशकी पूजा अनिवार्य है। आज भी यदि कोई प्रणव-मन्त्रका जप करता है तो उसपर अनिष्ट नहीं आ सकते; वह

स्वरक्षित है, प्रणवके कारण सुरक्षित है, उसका कल्याण होगा ही। गणेशकी अर्चनाका भी यही फल है।

शंकरने प्रणव-मन्त्रकी महत्ता गणेशके प्रतीकसे उपस्थित की। आज भी प्रणव-मन्त्र सभी मन्त्रोंके प्रारम्भमें लगा दिया जाता है। यह उसी तथ्यकी ओर इंगित करता है, जिसके अनुसार गणपति सभी अनुष्ठानोंमें प्रथम पूजनीय बनते हैं। गणपतिकी पूजाका प्रचार सारे भारतमें है। मिट्टीसे लेकर पीतल, ताँबा, चाँदी, सोने आदि सभी वस्तुओंसे गणेशकी मूर्ति बनायी जाती है; वे सर्वव्याप्त हैं। अन्य कुछ भी नहीं तो मिट्टीकी डलीके मोली लपेटकर ही गणेशकी मूर्ति कल्पित कर ली जाती है।

गणेशका प्रिय भोज्य है—मोदक। मोदककी गोल आकृति महाशून्यका प्रतीक है। यह समस्त वस्तुजात, जो दृष्टिकी सीमामें है अथवा उससे परे है, शून्यसे उत्पन्न होता है और शून्यमें ही लीन हो जाता है। शून्यकी यह विशालता पूर्णत्व है, जो प्रत्येक स्थितिमें पूर्ण है और यह पूर्णता प्रणव-मन्त्रका गुण है। 'गणेश' प्रणवके प्रतीक हैं अथवा प्रणवरूप हैं, बात एक ही है। परमार्थतः देवता मन्त्रके स्वरूप हैं, अन्यथा शक्तिका कोई आकार-रूप नहीं होता। चतुर्मुख, अष्टभुज, त्रिनेत्र आदि रूप एक मानवीय कल्पना है, जिससे व्यक्तिकी सामान्य बुद्धि सहजभावसे ग्रहण कर लेती है; अन्यथा यह विचित्रता तत्तन्मन्त्रका स्वरूप है, जिसे हम देवताके रूपमें मानते हैं, पूजते हैं।

~~०~~

भगवान् श्रीगणेशके प्रमुख द्वादश नाम और उनका रहस्य

(लेखक—डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी०)

भारतीय आर्य हिन्दू परम्परामें पंचदेव और उनमें भी भगवान् श्रीगणेशका जो अप्रतिम महत्त्व है, वह किसीसे छिपा नहीं है। हिन्दू-समाज, विशेषतः सनातन-धर्मानुयायी समाजका कोई भी कार्य भगवान् श्रीगणेशके अग्रपूजनके बिना न आरम्भ होता है और न इसके बिना उसकी सफलताकी पूर्णताकी आशा ही की जाती है। प्रत्येक कृत्यको मंगलमय एवं परिपूर्ण बनानेके उद्देश्यसे आरम्भमें ही श्रीगणेशके द्वादश नामोंका संकीर्तन इस रूपमें किया जाता है—

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

इन श्लोकोंका भाव यह है कि जो व्यक्ति विद्यारम्भके अवसरपर, विवाहके समय, नगरमें अथवा नवनिर्मित भवन (गृहादि)-में प्रवेश करते समय, यात्रादिमें कहीं बाहर जाते समय, संग्रामके अवसरपर अथवा किसी भी प्रकारकी विपत्तिके समय यदि श्रीगणेशके बारह नामोंका स्मरण करता है तो उसके उद्देश्य अथवा मार्गमें किसी प्रकारका विघ्न नहीं आता। श्रीगणेशके ये बारह नाम निम्नलिखित हैं—१-सुमुख, २-एकदन्त, ३-कपिल, ४-गजकर्ण, ५-लम्बोदर, ६-विकट, ७-विघ्ननाशन, ८-विनायक, ९-धूम्रकेतु, १०-गणाध्यक्ष, ११-भालचन्द्र और १२-गजानन।

सामान्य दृष्टिसे इन नामोंके अर्थ हैं—सुन्दर मुखवाले, एक दाँतवाले, कपिलवर्णके, हाथीके-से कानवाले, लंबे पेटवाले, भयंकर, विघ्ननाशन, विशिष्ट-नायकोचित-गुणसम्पन्न, धूम्रकेतु (धुएँके रंगकी पताकावाले), गणोंके अध्यक्ष, मस्तकमें चन्द्रको धारण करनेवाले और हाथीके समान मुखवाले। परंतु संस्कृत-साहित्यानुरागीजन इस तथ्यसे सुपरिचित हैं कि संस्कृत-शब्दनिर्माता कथमपि अर्थगाम्भीर्यविरहित नहीं रहे हैं। उन्होंने अपूर्व सूझ-बूझका परिचय देते हुए गागरमें सागरकी भाँति एक-एक शब्दके पीछे एक-एक इतिहासको इस कुशलताके साथ अन्तर्हित किया है कि जब व्यक्ति एकाग्रभावसे इनका अनुसंधान करता है, तब गह्वरस्थ रत्नोंकी भाँति भावरत्न सामने आ-आकर उसे विगलितवेद्यान्तरकी अनिर्वचनीय भाव-भूमिमें पहुँचाकर इस प्रकार विभोर कर देते हैं कि वह व्यक्ति फिर उसी स्थितिकी ही सतत कामना करने लगता है।

श्रीगणेशके द्वादश नामोंमें भी एक अपूर्व ऐतिहासिक तथ्योंकी शृंखला अभिनिविष्ट है।

श्रीगणेशके द्वादश नामोंमें प्रथम नाम है—'सुमुख'। व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे इसका अर्थ है—सुन्दर मुखवाला अथवा अच्छा या शोभन है मुख जिसका। अब इस नामकी सार्थकता जाननेसे पूर्व हमें यह जान लेना चाहिये कि 'सुन्दर कहते किसे हैं?' आजकलकी परिभाषाके अनुसार गोरी चमड़ीवालेको 'सुन्दर' कहते हैं। भगवान् शिवके लिये, जो श्रीगणेशके जनक हैं, '**कर्पूरगौरम्**' विशेषण मिलता है और माता पार्वतीका भी एक नाम 'गौरी' है और ये दोनों ही गौरवर्णके थे। यह इसलिये भी सुनिश्चित है कि जहाँ पार्वती नगाधिराजतनया होनेके कारण इस सहज विशेषतासे युक्त हैं, वहीं भगवान् शिव भी कैलासवासी होनेके कारण गौरवर्णके ही हैं। यह विशेषता सभी पर्वतीय क्षेत्रवासियोंकी स्वाभाविक है और आज भी प्राय: यथापूर्व अक्षुण्ण है। परंतु श्रीगणेशका वर्ण 'कपिल' कहा गया है। अत: स्वाभाविकरूपमें यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जब वस्तुस्थिति लोकमान्यताके अनुरूप नहीं है, तब 'सुमुख' जैसा विशेषण श्रीगणेशको क्यों दिया गया?' इसके उत्तरमें हम महाकवि माघका यह कथन प्रस्तुत कर सकते हैं—

'**क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:।**'

(शिशुपालवध ४। १७)

इसके अतिरिक्त—'**भिन्नरुचिर्हि लोक:**' (रघुवंश ६। ३०)-के अनुसार भी मनुष्य अपने भावनानुसार अपने पूज्यको 'सुन्दर' कह सकता है। परंतु श्रीगणेशके 'सुमुख' विशेषण या नामकी विशेषता शास्त्रीय दृष्टिसे इस प्रकार प्रतिपादित की गयी है—'भगवान् शिवके शस्त्रप्रहारसे श्रीगणेशकी देहका तेज सूर्यके खण्डके समान बनकर निकला और गोल होकर मेंढकके समान उछलकर चन्द्रमण्डलमें जा मिला'—

तद्देहस्थमहो दिनेशशकलाकारं भवन्निर्ययौ
वृत्तीभूय गतं शशाङ्कवलये प्रोत्प्लुत्य मण्डूकवत्॥

(गणपतिसम्भव ४। ८४)

शास्त्रोंमें अभिरुचि रखनेवाले विद्वान् इस तथ्यसे सुपरिचित ही हैं कि चन्द्रको सौन्दर्यका आगार माना गया है और इसी कथनकी पुष्टिके लिये वेदोंने '**चन्द्रमा मनसो जात:**' (यजुर्वेद ३१। १२) आदि वाक्य कहकर विश्वात्माकी शुचिता, मनोहारिताका अन्तर्भाव उसमें दिखाया है। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमण्डलमें विलीन उनका तेज जब उन्हें पुनर्जीवित करनेके अवसरपर लौटा, तब वह अपने साथ चन्द्रकी सम्पूर्ण विशेषताएँ भी लेता आया और श्रीगणेशको 'सुमुख' नाम दिलानेमें सफल रहा। इसके साथ ही, क्योंकि श्रीगणेशका पूजन सर्वप्रथम किया जाता है, अत: कदापि कथमपि कुरूपका परिगणक नामोच्चारण उचित नहीं हो सकता। अत: उनके मुखकी सम्पूर्ण शोभाका एकत्र आकलन कर, उन्हें मूर्तिमान् मंगलके प्रतीक-रूपमें स्वीकार कर 'सुमुख' नामसे सम्बोधित किया गया है।

यहाँ कोई प्रश्न पूछ सकता है कि "हाथीकी सूँड़, छोटी-छोटी आँखें, लंबे-लंबे सूप-जैसे कान आदिसे युक्त मुखको क्या 'सुमुख' कहा जा सकता है?" उत्तरमें निवेदन है कि जिनकी दृष्टिमें चर्मके रंग-रूपका ही सर्वोपरि महत्त्व है, उनकी दृष्टिमें तो सत्य ही ऐसी रूप-रेखावाला कुरूप ही कहलायेगा; परंतु जो चर्मसे गुणोंको अधिक महत्त्व देते हैं, वे उसे सुरूप ही नहीं, श्रेष्ठ भी कहेंगे। छोटी आँखें गम्भीरताकी एवं दीर्घ नासिका बुद्धिमत्ताकी सूचक होती हैं और दीर्घकर्ण बहुज्ञताको प्रकट करनेवाले होते हैं। आधुनिक आकृति-ज्ञानके विद्वान् (Profile Readers) भी इस कथनको सर्वांशमें तथ्यपूर्ण स्वीकार करते हैं; अत: सत्य ही श्रीगणेशका 'सुमुख'-नाम अन्वर्थक है; विशेषत: इसलिये कि वे अपनी सूँड़द्वारा ब्रह्मा-विष्णु-महेशके समन्वित-रूप अ, उ, म् अर्थात् ॐ को बना-बनाकर अपने माता-पिताका मनोरंजन किया करते थे और जो भी अंक-विशेष भगवान्के श्रवण-स्मरण आदि परिचर्यालीन हो, वह 'सु' उपसर्गका उचित अधिकारी है ही; अत: श्रीगणेशका सुमुख नाम अन्वर्थक है—

योऽलेखीदिव शुण्डकुण्डलविधेरोमक्षरं त्र्यक्षरं
व्याकृत्या गुणवृद्धिसंज्ञकतया विख्यातवर्णावलीम्।
नाधारो न च लेखनी न च मसी व्योम्न्येव शुण्डभ्रमो
नर्त्यौन्नत्यसुशिल्पकल्पनपरस्तातस्य मातु: पुर:॥

(गणपतिसं० ५। ५३)

इसके अतिरिक्त 'गण' शासनोत्कर्ष नामक नवें सर्गमें श्रीगणेशकी छोटी आँखोंकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है—

सर्वत्रैव सरोजपत्रनयना नेत्रप्रशंसां गताः
श्रीविष्णुश्च सरस्वती च कमला ब्रह्मा शिवो वा शिवा।
देवोऽयं लघुचक्षुषोरपि धरः स्वे शासने निह्नतो
नाक्ष्णोरस्ति महत्त्वमक्षिमहसां यादृङ् महत्त्वं मतम्॥
सूक्ष्मैरक्षिभिरेव वीक्षणचणो राजा प्रशस्यो मतो
मन्ये तेन सदैव सूक्ष्मनयने एष द्विपास्योऽधरत्।
लक्ष्यं भेत्तुमिमे जगन्मृगयवोऽक्ष्णां कोणमामील्य यत्
सिध्यन्तीति गणेशसूक्ष्मनयने शिष्टो निजं शासनम्॥

(गणपतिसं० ९। २७-२८)

'अर्थात्—सर्वत्र कमलके समान नयनोंकी प्रशंसा होती है, जैसे—विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्मा, शिव एवं गौरी आदि; किंतु यह गणेश छोटी-छोटी आँख धारण करता हुआ भी अपने गणशासनमें छिपा हुआ है। जितना महत्त्व आँखोंके प्रकाशका होता है उतना आँखोंका नहीं। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवाला ही राजा प्रशंसनीय होता है। अतएव उसी विशेषताको धारण करनेके लिये गणेशने छोटी आँखें स्वीकार की हैं; क्योंकि विश्वके सभी शिकारी निशानेके समय आँखोंके कोणोंको सिकोड़कर ही सफल होते हैं, अतः गणेश अपने सूक्ष्म नयनोंसे यही सिखाते हैं।'

नेत्रोंके साथ-साथ लंबे कानोंके सम्बन्धमें यह उल्लेख मिलता है—

संशृणवीत समं परं न विदधीतोच्चैर्विवेकं विने-
त्येतच्छिक्षणवाञ्छयेव गणपः कर्णौ विशालावधात्।
धर्तुं शक्नुत एव यौ बहुविधालङ्कारलोहाङ्कुशौ
तौ दुर्वर्णकलोकवर्णनिचयं किं नो धरेतां चिरम्॥

(गणपतिसं० ९ । २९)

अर्थात्—'मनुष्यको चाहिये कि वह सुन तो ले सब कुछ, परंतु कोई भी कार्य ऊँचे लोगोंके साथ बिना विचार किये करे नहीं, यह सिखानेकी इच्छासे ही गणपतिने बड़े-बड़े कान धारण किये हैं। जो (गणेशके कान) अनेक प्रकारके अलंकार एवं लोहेके अंकुश अपनेमें लटका सकते हैं, क्या वे चुगलखोरोंके कुछ अक्षरोंको चिरकालतक नहीं लटका सकते।'

इस प्रकार सूक्ष्मनेत्र, दीर्घकर्ण होते हुए भी तद्गत विशेषताओंको परिलक्षित कर श्रीगणेशको 'सुमुख' नाम दिया गया है।

श्रीगणेशका दूसरा नाम है—'एकदन्त'। इसके पीछे परशुरामके संघर्षकी घटना है। भगवती पार्वती एक बार जब स्नान कर रही थीं और गणेश द्वारपर रहकर किसीको भी भीतर जानेसे रोक रहे थे, तभी सहसा परशुराम वहाँ आये और भीतर जानेके लिये हठ करने लगे। बात बढ़ चली और दोनोंमें ठन गयी। यद्यपि गणेशकी छोटी अवस्थाके कारण परशुराम पहले प्रहार करना नहीं चाहते थे; परंतु गणेशके तीव्र वाक्-प्रहारोंसे चिढ़कर उन्हें प्रथम प्रहार करना पड़ा और उसके फलस्वरूप गणेशका एक दाँत टूट गया। इस प्रसंगका वर्णन इस रूपमें प्राप्त होता है—

तीक्ष्णाग्रं वृषसूर्यरश्मिसदृशं बाहौ च पर्शुं जहौ
तद्भ्रष्टः स पपात दन्तमुसले विद्युत्प्रचण्डस्वनः।
पेतुः सूक्ष्मतमाः स्फुलिङ्गततयस्तीर्णा उदीर्णास्ततः
क्रोधे लक्ष्यसमीक्षणेन नयने तिष्ठासतो दार्ढ्यतः॥
दन्तान्तोऽपि कृतान्तवत् प्रचलितस्तान्ती चिकीर्षुर्भृगुं
दिष्ट्या कीकसखण्डमण्डनकरोऽधावद् गणः शाम्भवः।
योऽन्यास्थीनि चिनोति गृद्ध्रवदहो कापालमालाकरः
सोऽयं किं निजनाथपुत्ररदनं यान्तं सहेत क्वचित्॥
हा! हा! हेति जगाद देवनिबहो यो व्योमगोऽभूत्तदा
हेरम्बस्य हतो रदोऽपि समदैस्तैः संस्तुतः स्पर्धया।
भूमिः कम्पनमापिता भयमिता दध्रुर्दरं कन्दरा-
श्चिङ्घारं व्यदधुर्गजाः शिखिगणा गावो महिष्यो हयाः॥

(गणपतिसं० ६। ५८—६०)

अर्थात् परशुरामने तीव्रधारवाले अपने कुठारसे उनकी भुजापर प्रहार किया; किंतु वह फिसलकर गणेशके दाँतपर जा गिरा और उससे प्रचण्ड शब्द निकला। वह टूटा हुआ दाँत भी यमराजके समान परशुरामको नष्ट करनेके लिये चला; परंतु उनके सौभाग्यसे अस्थियोंसे अपना शृंगार करनेके लिये कपालकी माला बनानेवाले शिवके गणोंने उसे रोक लिया; क्योंकि वे अपने स्वामीके पुत्रके दाँतको अन्यत्र जाते हुए कैसे देख सकते थे। श्रीगणेशके दन्तपातनको देखकर देवगण हाहाकार करने लगे और फिर गणेशकी प्रसन्नताके लिये उस भग्नदन्तकी भी उन्होंने होड़ लगाकर स्तुति की। उस समय उस दन्तकी वक्रगति देखकर पृथ्वी डरकर काँप उठी, विभिन्न पशु चिंघाड़ने लगे और सर्वत्र भय व्याप्त हो गया।

यह तो हुई ऐतिहासिक बात; इसके तात्त्विक

पक्षको लीजिये। दो वस्तुएँ सदैव द्वैतकी परिचायक होती हैं। जबतक गणेशके मुखमें दो दाँत थे, वे अद्वैत-विधायक न थे। अतः जब और जैसे ही गणपतिका एक दाँत टूटा, वे अद्वैतके प्रतीक बन गये। इस कथनका समर्थन इस रूपमें प्राप्त होता है—

प्राग् द्वैतभ्रम एव भाति नितरामद्वैतमेवान्ततः।
एतद् बोधयते रदो गणपतेरेकत्वमेवाश्रयन्॥

(गणपतिसं० १। ५३)

अर्थात् पहले निरन्तर द्वैत-भ्रम ही भासित होता रहता है, फिर अन्तमें 'अद्वैत' हो जाता है। गणेशका दाँत भी एक होकर यही ज्ञान कराता है। इसके साथ ही एकदन्त इस बातका भी द्योतक है कि जीवनमें सफल वही होता है, जिसका लक्ष्य एक हो। श्रीगणेश अपने एकदन्तरूपी लक्ष्यके कारण ही जीवनमें न केवल सफल रहे, अपितु अग्रपूजाके अधिकारी भी बने, अतः उस एकदन्तको कल्पवृक्षकी समता देते हुए कहा गया है—

संयोज्येव सकेतकं परिहसन् दन्तान्तरं दर्शयं-
श्चक्रे कृत्रिमदन्तधारणविधेरुद्घाटनाख्योत्सवम्।
मन्ये सान्त्वयतेऽदतः स्म जरतो बालांश्च वा नीरदा-
नेकेनैव रदेन सर्ववरदः पायाद् गणेशः श्रियम्॥

(गणपतिसं० ६। ८५)

अर्थात् जो केवड़ेके फूलको हँसते हुए मुखमें जोड़कर दूसरा दाँत-सा दिखाते हुए कृत्रिम दन्तधारणका उद्घाटन-सा करता हो, या मानो वृद्ध एवं बालकोंको सान्त्वना-सी देता हो, वही गणेशका एकदन्त अपने भक्तोंकी श्री-सम्पत्तिकी रक्षा करता रहे।

मौद्गलके अनुसार 'एक' शब्द 'माया'का बोधक है और 'दन्त' शब्द 'मायिक'का। श्रीगणेशमें माया और मायिकका योग होनेसे वे 'एकदन्त' कहलाते हैं—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वसमुद्भवम्।
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते॥

इस प्रकार श्रीगणेशका अद्वैत-विधायक द्वितीय नाम 'एकदन्त' भी सार्थक और एकलक्ष्यार्थप्रेरक है।

श्रीगणेशका तृतीय नाम है—'कपिल'। यह विशेषण-शब्द है, जिसका हिंदीमें अर्थ है—भूरा, तामड़ा, मटमैला। अंग्रेजीमें इसे 'ब्राउन Brown' कहते हैं। यदि इस शब्दको आकारान्त बना दिया जाय तो इसका रूप बनेगा—'कपिला', अर्थ होगा—गौ। अतः भाव स्पष्ट हो जाता है कि जैसे गौ धूसरवर्णकी होती हुई भी दूध, घी, दही आदि पोषक पदार्थ एवं गोमय-गोमूत्र आदि रोगनिवारक पदार्थ प्रदानकर मानवका हित-साधन करती है, उसी प्रकार कपिलवर्णके श्रीगणेश भी बुद्धिरूपी दधि, ज्ञानरूपी घृत, समुज्ज्वल भावरूपी दुग्धद्वारा मानवको पुष्ट बनाते हैं, अथवा उसके बौद्धिक पक्षको पुष्ट बनानेवाले पदार्थ प्रदान करते हैं तथा अमंगलनाश, विघ्नहरण आदि दिव्य पदार्थ प्रदानकर उसके त्रिविध तापोंका शमन करते हैं। अतः यह तृतीय नाम भी सार्थक है।

श्रीगणेशका चतुर्थ नाम है—'गजकर्ण', अर्थात् हाथीके समान कानवाला। विज्ञ पाठक जानते हैं कि श्रीगणेशको भारतीय आर्यपरम्परानुयायी बुद्धिका अधिष्ठातृ-देवता मानते हैं और इसीलिये अपने आराध्यको उन्होंने लंबे कानोंवाला प्रतिपादित किया है कि जिससे उनका बहुश्रुतत्व अथवा उनकी एतद्विषयक अभिरुचिका यथावत् परिज्ञान करा सकें। इससे पूर्व भी हम अन्यत्र इसी लेखमें लिख आये हैं कि 'मनुष्यको चाहिये कि सुन तो ले सब कुछ, परंतु कोई भी कार्य ऊँचे लोगोंके साथ बिना विचार किये करे नहीं', यह सिखानेकी इच्छासे ही गणपतिने हाथीके समान लंबे कान धारण किये हैं। इसके अतिरिक्त एक यह भी रहस्य श्रीगणेशके लंबे कानोंमें छिपा है कि क्षुद्र कानोंवाला व्यक्ति सदैव व्यर्थकी बातोंको सुनकर अपना ही अहित करने लगता है। अतः हाथी-जैसे लंबे कानोंद्वारा श्रीगणेश हमें यह शिक्षा देते हैं कि व्यक्तिको अपने कान ओछे न रखकर इतने विस्तृत बना लेने चाहिये कि उनमें सहस्रों निन्दकोंकी सभी भली-बुरी बातें इस प्रकार समा जायँ कि वे फिर कभी जिह्वाग्रपर आनेका प्रयासतक न कर सकें। पुराणोंमें श्रीगणेशके गजकर्णत्व अथवा शूर्पकर्णत्वका कारण बताते हुए कहा है—'श्रीगणेश योगीन्द्र-मुखसे वर्ण्यमान तथा श्रेष्ठ जिज्ञासुओंसे श्रूयमाण विषयको हृद्गतकर सूर्यके समान पाप-पुण्यरूप रजको दूर करके ब्रह्मप्राप्ति सम्पादित कर देते हैं, अतः उन्हें इसी नामसे व्यवहृत किया जाता है।

रजोयुक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च।
शूर्पं सर्वनराणां वै योग्यं भोजनकाम्यया॥
तथा मायाविकारेण युतं ब्रह्म न लभ्यते।
त्यक्तोपासनकं तस्य शूर्पकर्णस्य सुन्दरि॥

शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत् तेन यथा स्मृतः॥

इस दृष्टिसे श्रीगणेशका यह चतुर्थ नाम भी सार्थक सिद्ध हो जाता है।

श्रीगणेशका पाँचवाँ नाम है—'लम्बोदर'। इसका अर्थ है—लंबे अर्थात् विशाल पेटवाला। गणेश-गायत्रीमें श्रीगणेशका स्मरण इस प्रकार किया गया है—

'लम्बोदराय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥'

इस नामका उद्देश्य सांसारिक जनोंको शिक्षा देना एवं उन्हें निर्विघ्न जीवन-यापनमें सक्षम बनाना है। इस संसारमें द्विविध पुरुष पाये जाते हैं—एक वे, जो प्रत्येक प्रकारकी भली-बुरी बात सुनकर उसे उदरस्थ कर लेते हैं तथा दूसरे वे, जो किसी भी बातको पचा नहीं पाते, उगल देते हैं और अपनी इस क्रिया अथवा चेष्टाद्वारा सम्पूर्ण वातावरणको विषाक्त बना देते हैं। अतः उक्त नाम तादृश शिक्षाविधायक होनेके कारण न केवल अन्वर्थक, अपितु अनुकरणीय भी है।

'गणपतिसम्भव'के अनुसार 'भगवान् शंकरद्वारा गम्भीरतापूर्वक बजाये हुए डमरूकी ध्वनिसे श्रीगणेशने सम्पूर्ण वेदोंको ग्रहण किया, माता पार्वतीके चरणद्वयमें झंकृत होनेवाले नूपुरोंसे संगीत सीखा, प्रतिदिन ताण्डव नृत्य देखने और उसके अभ्यासके बलसे नृत्य सीखा और इस प्रकार विभिन्न ज्ञानोंको आत्मसात् (उदरस्थ) करनेके कारण उनका उदर लम्बायमान हो विविध विद्याओंके कोषरूपमें परिणत हुआ'—

आम्नायं डमरुध्वनेर्भगवता दन्ध्वन्यमानादधनं
संगीतं जननीपदाम्बुजरणत्कारेरतान्नूपुरात्।
नृत्यं ताण्डवदर्शनात् प्रतिदिनं स्वाभ्यासबुद्धेर्बलात्
सर्वज्ञाननिधानमेवमभवन् मन्ये ततस्तुन्दिलः॥

(५।५५)

इसके अनन्तर श्रीगणेशका छठा नाम सामने आता है। और वह है—'विकट'। 'विकट'का अर्थ होता है—भयंकर। श्रीगणेशका धड़ (कण्ठसे पैरतकका भाग) है—नरका और ऊर्ध्वांग अर्थात् मुख है—हाथीका। अतः ऐसा विकट प्राणी विकट होगा ही—यह निर्विवाद है। श्रीगणेशके नामके रूपमें इसका भाव यह है कि श्रीगणेश अपने नामको सार्थक बनाते हुए सभी प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये विघ्नोंके मार्गमें 'विकट' बनकर उपस्थित रहते हैं; क्योंकि वे जानते हैं—'**शठे शाठ्यं समाचरेत्**' अर्थात् बुरे और दुष्ट व्यक्तियोंको सौम्यतासे नहीं, अपितु तद्वत् बनकर ही दबाया जा सकता है। अतः यह नाम भी सार्थक ही है। स्वयं श्रीगणेश हमारे कथनके प्रतिपादनमें भगवान् परशुरामसे युद्धके अवसरपर कहते हैं—

द्रक्ष्यत्यद्य भवद्गुरुर्मम पिता साम्बो निजैरम्बकैः
पुत्रस्यापि नवं महश्चिरतनं शैष्यं च तेजश्चयम्।
आसं चापि यदा नरो न रणतो भीतोऽभवं किं पुन-
र्धृत्वा द्व्याकृतिमद्य संगरमयं यायां त्वदेकाकृतेः॥

(गणपतिसं० ६।५०)

अर्थात् आज तुम्हारे गुरु और मेरे जनक मेरी माताके साथ अपनी आँखोंके सामने पुत्रके नये तेज और शिष्यके पुराने तेजःपुंजको देखेंगे। जब मैं केवल नर था, तब भी कभी युद्धसे नहीं डरा, तब भला, अब दो प्रकारकी आकृति धारण करके एक आकारवाले तुमसे कैसे डरूँगा?

इस स्थितिमें यह स्पष्ट हो जाता है कि गणेशका 'विकट' नाम सांसारिक जनोंके लिये इस दृष्टिसे प्रेरणा-स्रोत है कि वे भी यथावसर रूप धारणकर अभीष्ट सिद्ध करें।

श्रीगणेशका सप्तम नाम है—विघ्ननाश। भगवान् श्रीगणेश सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक हैं। 'गणपत्यथर्वशीर्ष' के नवम मन्त्रमें श्रीगणेशके लिये लिखा है—'**विघ्ननाशिने शिवसुताय वरदमूर्तये नमः।**' इसका भाव है—'हम विघ्नोंको नष्ट करनेवाले, शिवके पुत्र, वरप्रदायी मूर्तिरूपमें प्रकटित श्रीगणेशको नमस्कार करते हैं।' सुप्रसिद्ध भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने '**विघ्ननाशिने**'का भाष्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है—'**विघ्ननाशिने कालात्मकभयहारिणे, अमृतात्मकपदप्रदत्वात्**' अर्थात् श्रीगणेश कालात्मक भयको हरण करनेवाले हैं; क्योंकि वे अमृतात्मक पदके प्रदाता हैं। 'स्कन्दपुराण'के अनुसार इन्द्रने निज-भागशून्य यज्ञके विध्वंसके लिये जब कालका आह्वान किया, तब वह विघ्नासुरके रूपमें प्रकटित हो, अभिनन्दन राजाको मार सत्कर्मोंका लोप करने लगा। तब महर्षियोंने ब्रह्माजीकी प्रेरणासे श्रीगणेशकी स्तुति कर उनके द्वारा विघ्नासुरका उपद्रव दूर करवाया।

उसी समयसे गणेश-पूजन-स्मरणादिविरहित कार्यमें विघ्नका प्रादुर्भाव अवश्य होता है—यह मान्यता स्वीकार कर कार्यारम्भमें श्रीगणेश-पूजन अनिवार्य प्रतिपादित किया गया है। विघ्न भी सामान्य नहीं है। यह कालस्वरूप होनेसे भगवत्-स्वरूप, अतएव अतीव महिमान्वित है। इसके स्वरूपका निदर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है—'**विशेषेण जगत्सामर्थ्यं हन्तीति विघ्नः**—ब्रह्मादिककी भी जगत्सर्जनादि सामर्थ्यका हरण करनेवाले तत्त्व, किंवा सत्त्वको 'विघ्न' कहते हैं।' इसपर यदि किसीका शासन चलता है तो श्रीगणेशका ही; अतः गणेशका 'विघ्नेश' नाम न केवल सार्थक, अपितु उनकी लोकोत्तर महिमाका भी ख्यापक है।

गणेशकी इस नामावलीका अष्टम नाम है—'विनायक'। इसका अर्थ है—विशिष्ट नायक या विशिष्ट स्वामी। कतिपय विद्वानोंने 'वि' उपसर्गको विघ्नका लघुस्वरूप स्वीकारकर 'विनायक' का अर्थ विघ्नोंका नायक भी स्वीकार किया है। यह अर्थ पूर्णतः श्रीगणेशपर चरितार्थ होता है; क्योंकि ब्रह्मादि देवता अपने-अपने कार्यमें विघ्न-पराभूत होनेके कारण स्वेच्छाचारी नहीं हो सकते, परंतु गणेशके अनुग्रहसे ही विघ्नरहित होकर कार्य-सम्पादनमें समर्थ होते हैं और यही कारण है कि पुण्याहवाचनके अवसरपर '**भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम्**' कहकर विघ्न और उसके पराभवकर्त्ता श्रीगणेश दोनोंका स्मरण किया जाता है। इससे वि-विघ्न, नायक-स्वामी—विनायक शब्दकी सार्थकता सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार यदि इस शब्द (विनायक)- का अर्थ 'विशिष्ट नायक' लिया जाय तो भी वह अन्वर्थक ही सिद्ध होता है; क्योंकि श्रुतिमें श्रीगणेशको 'ज्येष्ठराज'-शब्दद्वारा सम्बोधित कर उनके महत्त्वका प्रतिपादन किया गया है। 'गणेशतापिनी' में पूर्ण ब्रह्म परमात्माको ही निर्गुण एवं विघ्नविनाशकत्वादि-गुणगण-विशिष्ट गजवदनादि-अवयवधर गणेशरूपमें प्रतिपादित किया गया है—

'ॐ' गणेशो वै ब्रह्म तद्विद्यात्, यदिदं किं च, सर्वं भूतं भव्यं सर्वमित्याचक्षते।'

इसके अतिरिक्त गणेशकी एक अन्य विशेषता भी उन्हें विशिष्ट नायकत्व ही नहीं, श्रीमन्नारायणकी समानता प्रदान कर इस विशेषण या नामको अन्वर्थक बनाती है। वह विशेषता है—मुक्तिप्रदायिनी क्षमता। सभी विद्वान् जानते हैं कि मोक्षप्रदानका एकमात्र अधिकार सत्त्वमूर्ति भगवान् नारायणने अपने अधीन रखा है। श्रीमद्भागवत (५ । ६ । १८)-में उनके इस वैशिष्ट्यका निदर्शन इस प्रकार हुआ है—'**मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्**' अर्थात् भगवान् नारायण मुक्ति तो कदाचित् दे भी देते हैं, परंतु भक्तियोग सहज ही किसीको नहीं देते। इसके विपरीत 'गणेश-गीता' श्रीगणेशको भी मोक्षप्रद प्रतिपादित करते हुए कहती है—

यः स्मृत्वा त्यजति प्राणमन्ते मां श्रद्धयान्वितः।
स यात्यपुनरावृत्तिं प्रसादान्मम भूभुज॥

शिवपुराण, ज्ञानसंहिताके अनुसार श्रीगणेशके विनायक नामकरणका कारण भगवान् शंकरने इस प्रकार बताया है—"हे पार्वती! यह कुमार मुझ नायकके बिना ही उत्पन्न होकर पुत्र बना है, अतः इसका अन्वर्थक नाम 'वि-नायक' (नायकविरहित) ही संसारमें विख्यात होगा"—

नायकेन विना देवि मया भूयोऽपि पुत्रकः।

* * *

यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः॥
(शिवपु० ३३। ७२-७३)

इस प्रकार सभी दृष्टियोंसे गणेशका 'विनायक' नाम भी उनकी विशेषताओंका परिचायक एवं अन्वर्थक है।

अब लीजिये नवम नामको; वह है—'धूम्रकेतु'। धूम्रकेतुका सामान्य अर्थ है—अग्नि और शब्दार्थ है—धूएँके ध्वजवाला। श्रीगणेशके संदर्भमें—इसके दो भाव प्रकट होते हैं—१-संकल्प-विकल्पात्मक धूम-धूसर अस्पष्ट कल्पनाओंको साकार बनानेवाले तथा उन्हें मूर्तरूप दे ध्वजवत् नभोमण्डलमें फहरानेवाले होनेके कारण गणेशका 'धूम्रकेतु' नाम अन्वर्थक है। २-इसी प्रकार अग्निके समान मानवकी आध्यात्मिक अथवा आधिभौतिक प्रगतिके मार्गमें आनेवाले विघ्नोंको भस्मसात् कर मानवको चरमोत्कर्षकी दिशामें उन्मुख बनानेकी क्षमतासे परिपूर्ण होनेके कारण भी गणेशका 'धूम्रकेतु' नाम सार्थक ही प्रतीत होता है।

'गणाध्यक्ष' श्रीगणेशका दशम नाम है। इसके दो अर्थ हैं—१. संख्यामें परिगणित हो सकनेयोग्य सभी पदार्थोंके स्वामी तथा २. प्रमथादि गणोंके स्वामी। विचार करनेपर उक्त दोनों ही नाम अन्वर्थक जान पड़ते हैं। विश्वके परिगणनीय जितने भी पदार्थ हैं—श्रीगणेश उन सबके स्वामी हैं। जैसा कि निम्न श्लोकसे स्पष्ट

है कि 'श्रीगणेश देवता, नर, असुर और नाग—इन चारोंके संस्थापक एवं चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तथा चतुर्वेदादिके भी स्थापक हैं'—

स्वर्गेषु देवताश्चायं पृथ्व्यां नरांस्तथाऽतले।
आसुरान्नागमुख्यांश्च स्थापयिष्यति बालकः॥
तत्त्वानि चालयन् विप्रास्तस्मान्नाम्ना चतुर्भुजः।
चतुर्णां विविधानां च स्थापकोऽयं प्रकीर्तितः॥

गणोंके स्वामी तो श्रीगणेश हैं ही। इस पदपर वे स्वयं भगवान् शंकरद्वारा प्रतिष्ठित किये गये या गणोंद्वारा, इस सम्बन्धमें दोनों ही प्रकारके विवरण प्राप्त होते हैं। 'गणपति सम्भव' के अनुसार जब भगवान् शंकरने गजका मस्तक जोड़कर श्रीगणेशको पुनर्जीवित कर दिया, तब सभी शिवगण समवेत होकर नाचते हुए अपने ऊपर उनको वरीयता देने लगे तथा 'गणपति' कहकर सम्बोधन करते हुए उनका जय-जयकार मनाने लगे—

नृत्यन्तश्च गणाः समेत्य सकलाः स्वेष्वाधिपत्यं ददुः
स्पर्शं स्पर्शमहो सुशुण्डमिति ते स्वात्मानमामोदयन्।
वक्रैः स्वैः सरलैस्तयोर्ध्वनयनैर्वक्त्रैर्हसन्तो मुहुः
प्रोचुः श्रीगणराजदिव्यविजयं दीर्घैः स्वरैर्वाप्लुतैः॥

(गणपतिसं० ५ । ६१)

भारतके मूर्धन्य सनातनधर्मी विद्वानोंने सर्वजगन्नियन्ता पूर्ण परमतत्त्वको ही 'गणपति-तत्त्व' के रूपमें स्वीकार और प्रतिपादित किया है। उनका यह दृष्टिकोण पूर्णतः शास्त्रसम्मत है। संस्कृतमें 'गण'-शब्द समूहका वाचक माना गया है—'**गणशब्दः समूहस्य वाचकः परिकीर्तितः।**' अतः गणपतिका अर्थ है—'समूहोंको पालन करनेवाला परमात्मा।' '**गणानां पतिः गणपतिः**'। देवादिकोंके पतिको भी 'गणपति' कहते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई रूपोंमें गणपतिका निर्वचन प्राप्त होता है। यथा—'**महत्तत्त्वादितत्त्वगणानां पतिः गणपतिः**', '**निर्गुण-सगुणब्रह्मगणानां पतिः गणपतिः**' एवं सर्वविध गणोंको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला परमात्मा ही 'गणपति' है। अभिप्राय यह है कि '**आकाशस्तल्लिङ्गात्**' (ब्रह्मसूत्र १।१।२२)—इस न्यायसे जिसमें ब्रह्मतत्त्वके जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय-लीलत्व, जगन्नियन्तृत्व, सर्वपालकत्वादि गुण पाये जायँ वही 'ब्रह्म' होता है जैसे आकाशका जगदुत्पत्ति-स्थिति-कारणत्व—'**सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते।**' (छान्दोग्य उप० १।९।१)—इस श्रुतिसे जाना जाता है एवं इसीके आधारपर वह भी आकाशपदवाच्य परमात्मा माना जाता है। इस दृष्टिसे निष्कर्षरूपमें कहा जा सकता है—क्योंकि गणपति-तत्त्वकी अवगतिमें शास्त्र ही प्रमाण हैं, अतः उनके अनुसार तथा 'गण'-शब्दकी व्युत्पत्ति—'**गण्यन्ते बुध्यन्ते ते गणाः**' के अनुसार 'गणपति'-शब्दका अर्थ यही लेना चाहिये। गण-शब्दसे व्यवहृत सर्वदृश्यमात्रका अधिष्ठान ही 'गणपति' है; क्योंकि शास्त्र श्रीगणेशको पूर्ण ब्रह्म प्रतिपादित करते ही हैं, अतः गणोंके अधिपति तथा गण-शब्दसे व्यवहृत सर्वदृश्यमात्रके अधिष्ठानभूत होनेके कारण श्रीगणेशका यह नाम भी अन्वर्थक ही है।

श्रीगणेशका ग्यारहवाँ नाम है—'भालचन्द्र'। इसका भाव है—जिसके मस्तक (भाल)-पर चन्द्र हो। भगवान् शंकरके मस्तकमें विराजमान चन्द्रमाका ही यह संक्षिप्त संस्करण है। चन्द्रकी उत्पत्ति विराट्के मनसे मानी जाती है और उस चन्द्र-तत्त्वसे सब प्राणियोंके मन अनुप्राणित माने जाते हैं। अतः श्रीगणेशके संदर्भमें इसका भाव यही है कि 'वे भालपर चन्द्रको धारणकर उसकी शीतल-निर्मल कान्तिसे विश्वके सभी प्राणियोंको आप्यायित किया करते हैं।' इसके साथ ही 'भालचन्द्र' से यह भी विदित होता है कि 'व्यक्तिका मस्तक जितना शान्त होगा' उतनी ही कुशलताके साथ वह अपना दायित्व निभा सकेगा। श्रीगणेश गणपति अर्थात् प्रत्येक गणनीय वस्तुके पति हैं, अतः अपने भालपर सुधाकर अथवा हिमांशुको धारणकर उन्होंने अपने मस्तिष्कको सुशान्त बनाये रखनेके प्रयासमें सफलता पाकर, तत्परक नाम धारण कर सफलताकामियोंके लिये एक समुज्ज्वल मार्ग प्रशस्त किया है और बताया है कि यदि वे अपने मस्तकमें चन्द्रकी-सी शीतलता लेकर कार्यरत होंगे तो सफलता निश्चय ही उनके पग चूमेगी।'

कुछ विद्वानोंने यह भी उत्प्रेक्षा की है कि भगवान् शंकरने भी अपने मस्तकपर चन्द्रको धारण किया है और गणेशने भी; इसी कारण वे 'शशिशेखर' कहलाते हैं और ये भालचन्द्र। इस चन्द्रधारणका उद्देश्य जहाँ शिवके पक्षमें इतना ही है कि उनके ललाटकी ऊष्मा, जो त्रिलोकीको भस्मसात् करनेमें सक्षम है, उन्हें पीड़ित न करे, इसी हेतुसे भगवान् शिवने अपने सिरपर गंगा

और चन्द्र दोनोंको धारण कर रखा है; वहीं गणेशके पक्षमें इसका भाव है कि शिवपरिवारके वाहनोंके सहज वैरके सम्भावित परिणामको दृष्टिगत रख गणेशने अपने मस्तकमें चन्द्रको धारण किया है। किं वा स्वयंको चन्द्र-जैसे भालसे मण्डित कर तद्गत विशेषताओंसे अपने परिवारको विद्वेषकी ज्वालाओंसे बचानेमें सफलता प्राप्त की है।

देवमोदकोपहार-प्रसंगमें भालचन्द्रको लेकर कविने अच्छा मनोरंजन किया है। जब गणेश और कार्तिकेय परस्पर मोदकोंसे प्रहार कर रहे थे, तब इधर गणेश और उधर शिवके गलेके सर्प फूत्कार करने लगे, जिससे उनके शरीरपर रमायी हुई भस्म उड़ने लगी और देखते-ही-देखते अन्धकारपूर्ण रात्रिका साम्राज्य चतुर्दिग्में व्याप्त हो गया। इन दोनोंके फूत्कारोंसे भालस्थ अग्नि होलीकी आग-सी प्रदीप्त हो उठी। उसकी ऊष्मासे चन्द्र पिघलकर ऊपरसे अमृत टपकाने लगा, जिससे शिवके आसनपर बिछा हुआ शेरका चर्म जीवित हो दहाड़ने लगा और यह सुनते ही नन्दीश्वर डरकर भाग खड़े हुए, जिससे पार्वतीको अनायास हँसी आ गयी—

फूत्कारानकरोदयं शिवगलस्थोऽहिर्द्वयोः फूत्कृतै-
र्भस्मोद्धूलनतो बभूव तमसो विस्तारिणी यामिनी।
किं चाग्निः शिवभालजोऽपि पवनाभ्यामुद्दिदीपे ह्यसौ
रात्रावग्निरतिप्रकाशततिदो होलीहविर्भुग् यथा॥
तस्यौष्ण्येन च चन्द्रमा द्रवमितोऽमुञ्चत् सुधामूर्ध्वतः
पञ्चास्यस्य शुभासने सृतिमधात् पञ्चास्यचर्मापि तत्।
प्राणन्नेकपदे जगर्ज वृषभो भीतस्ततः प्राद्रवद्
विव्रीडापि जहास चापि गिरिजा दृष्ट्वाभिनीतिं नवाम्॥

(गणपतिसं० ८। ५५। ५६)

इसके साथ ही भालचन्द्रसे यह भी प्रतीत होता है कि चन्द्रमा है ब्राह्मणोंका राजा—'**सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा**'। और ब्राह्मण कहते हैं ब्रह्मको जाननेवालेको—'**ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः**' और ब्रह्मवेत्ता सर्वोत्कृष्ट पदका अधिकारी होता ही है। अतः ब्राह्मणोंके राजाको अपने भालमें स्थापित कर भगवान् गणेशने सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञानको अपने मस्तकमें संचित-संस्थापित किया है और उसीके कारण वे अग्रपूजाके अधिकारी बने हैं; अतः यह नाम भी अन्वर्थक है, इसमें संदेह नहीं।

इस द्वादश नामावलीका अन्तिम नाम है—'गजानन' अर्थात् हाथीके मुखवाला। गणेशके कण्ठसे ऊपरका भाग हाथीका है, इस तथ्यसे सभी सुपरिचित हैं। नराकृति अर्धांगके साथ हाथीके मस्तकका मेल एक जीवित आश्चर्य ही कहा जा सकता है; परंतु जब गजाननके सभी अवयवोंपर दृष्टिपात कर हम एक निष्कर्षपर पहुँचते हैं, तब आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। मुखभागमें निम्न अवयव विशेषतः परिगणित होते हैं—जिह्वा, दन्त, नासिका, कान और आँख। जिह्वा सब विघ्नोंकी जड़ है। यह बहिर्मुखी होनेके कारण परदोषगणनमें विशेष रुचि लेती है; परंतु यदि मन जिह्वाके नुकीले भागको दूसरोंकी ओरसे हटाकर अपनी ओर कर ले, अर्थात् अपने दोषोंका परिगणन करने लगे तो अनेकानेक झंझटोंसे मुक्त हो जाय। प्रकृतिने अन्य सभी प्राणियोंके विपरीत हाथीकी जिह्वाको दन्तमूलकी ओरसे कण्ठकी ओर लपलपाती हुई लगाया है; अतः यह निर्विघ्नता विधायक विशेषता गणेशमें विद्यमान रहकर उन्हें विघ्न-विनाशकका अन्वर्थक आश्रय बनाती है।

दन्तके सम्बन्धमें यह कहावत प्रसिद्ध ही है कि 'हाथीके दाँत खानेके और तथा दिखानेके और होते हैं'। गणेशके दाँत भी इस बातके परिचायक हैं कि बुद्धिमान् व्यक्तिको ऊपरी दिखावा आन्तरिक भावोंसे सर्वथा भिन्न रखना चाहिये; विशेषतः उस स्थितिमें, जब कि उसका सामना किसी सबलसे हो। परंतु यह नीति केवल महाभारतके शब्दोंमें '**मायाचारो मायया बाधितव्यः**' के अनुसार एक सीमातक ही आचरणीय है, सर्वथा एवं सर्वदा अनुकरणीय नहीं। इसीलिये हाथीका मुख होते हुए भी दिखावेका दाँत केवल एक ही गणेशके साथ सम्पृक्त कर उन्हें 'एकदन्त' पदसे व्यवहृत किया जाता है।

'नाक' प्रतिष्ठाकी द्योतक है। लंबी नाक, नाक कट जाना, नाक बचाना आदि वाक्य प्रतिष्ठाके रक्षणादिसे ही सम्बद्ध हैं। इसी नाककी प्रतिष्ठाके लिये ही व्यक्ति अनेकानेक उपाय करता है और उन कार्योंसे बचता है, जिससे उसकी नाक कट जाय। इस प्रकार गणेशकी दीर्घ नासिका मानवको नाककी सुदीर्घ प्रतिष्ठाकी रक्षाका संदेश देकर उसे प्रतिष्ठित कार्यव्यापारकी ओर अग्रसर बनाती हुई स्वयं अपनी महत्ताका स्थापन कर देती है।

लंबे चौड़े कान सार संभार ग्रहणक्षमता एवं निन्दा पाचनकी क्षमताके परिचायक हैं।

हाथीके नेत्र प्रकृतिने कुछ इस प्रकार बनाये हैं कि उसे छोटी वस्तु भी बड़ी दिखायी देती है। श्रीगणेशकी

आँखें हाथीकी होनेके कारण हमें बताती हैं कि मानवका दृष्टिकोण उदार होना चाहिये। उसे अपने गुणोंकी अपेक्षा अन्यके गुणोंको अधिक विकसितरूपमें देखना चाहिये, तभी वह एक आदर्शकी स्थापनामें सफल हो सकेगा। इसके साथ ही गणेशके लघु नेत्र यह भी संदेश देते हैं कि वे आँखें छोटी होती हुई भी विशाल और श्रेष्ठ हैं, जो लघु प्राणीको भी बृहद् या महान्‌के रूपमें देखती, आत्मसात् करती और समादृत करती हैं।

इस प्रकार अनेकानेक विशेषताओंसे परिपूर्ण होनेके कारण श्रीगणेशको 'गजानन' शब्दसे अभिहित किया गया है, जो सर्वांशमें सार्थक है। परंतु यह होते हुए भी गणेशके कण्ठसे पादतकके शरीरको नराकृति प्रतिपादित किया गया है और यह इसलिये कि प्रकृतिमें केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो स्पष्टवक्ता, उदारमना, विभिन्न कार्य-सम्पादक एवं भुक्ति-मुक्ति-साधक कहा जा सकता है। अतः श्रीगणेशके मानवशरीरद्वारा भी तत्तद् विशेषताओंका दिग्दर्शन करानेके लिये उनका आकण्ठ-शरीर नरका प्रतिपादित किया गया है।

इसके साथ ही श्रीगणेशका शरीर परस्पर-विरोधीसे प्रतीयमान तत्-पदार्थ तथा त्वं-पदार्थके अभेदका परिचायक है। 'त्वं'—पदार्थ नरस्वरूप है तथा 'तत्-पदार्थ' गजस्वरूप है एवं अखण्डैकरस गणपतिरूप 'असि' पदार्थमें इन दोनोंका सामंजस्य है। शास्त्रोंमें 'गज'-शब्दका अर्थ अतीव चामत्कारिक दिया गया है—"**समाधिना योगिनो गच्छन्ति यत्र इति 'गः', यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बवत्तया प्रणवात्मकं जगज्जायत इति 'जः'**"। अर्थात्—समाधिसे योगीजन जिस परम तत्त्वको प्राप्त करते हैं, वह 'ग' है तथा जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है, वैसे ही कार्य-कारणस्वरूप प्रणवात्मक प्रपञ्च जिससे उत्पन्न होता है, उसे 'ज' कहते हैं। '**जन्माद्यस्य यतः**' आदि वचनोंसे उक्त कथनकी पुष्टि हो ही जाती है। सोपाधिक 'त्वं'-पदार्थात्मक गणेशका पादादि-कण्ठपर्यन्त नरदेह है। यह सोपाधिक होनेसे निकृष्ट, अतएव अधोभूतांग है। निरुपाधि सर्वोत्कृष्ट 'तत्' पदार्थमय गणेशजीका कण्ठादि मस्तकपर्यन्त गजस्वरूप है और वह निरुपाधिक होनेसे उत्कृष्ट है। अतः गजाननका भाव भी स्पष्ट हो जाता है।

'गणपतिसम्भव'में गज-मनुज-योजनका उद्देश्य भगवान् शंकरने इस प्रकार बताया है—'हे उमे! हाथी और मनुष्यकी आयु १२० वर्षकी अर्थात् समान निश्चित की गयी है, उसीको समझानेके लिये तुम्हारे पुत्रके शरीरने नर एवं गजका मिश्रित रूप धारण किया है। अतः मानवको यत्नपूर्वक वह आयु प्राप्त करनी चाहिये। लोकमें हाथीकी पूजा करनेवाला पुरुष मान्य और धन्य होता है और जिसे हाथी स्वयं अपनी सूँड़से सिरपर चढ़ाये, उसकी धन्यता तो असंदिग्ध है ही। मानव और गजके पारस्परिक सम्बन्धको प्रकट करनेके लिये ही हमारे पुत्रने यह नर-गजात्मक रूप धारण किया है। जैसे इसके शुण्डके हिंडोलेमें लक्ष्मी झूलती हैं, वैसे ही नरकी दोनों भुजाओंमें भी झूलें। जैसे श्वेतवसना सरस्वती हाथीके दाँतोंमें द्विगुणरूपसे अपनी छटा दिखाती हैं, वैसे ही नरके दन्ताग्रपर भी प्रकट करें। जैसे हाथी खूब खाता है और बँधे हुए पुरीषपिण्ड देता है, वैसे ही मानव भी उक्त दोनों क्रियाएँ करता हुआ स्वस्थ रहे। इसी भावको साकार बनानेके लिये उभयात्मक रूप धारण कर यह हमारे पुत्रके रूपमें आया है'—

आयुर्हस्तिमनुष्ययोः समतमं विंशोत्तरं यच्छतं
तद् विख्यापयितुं तवात्मजवपुर्मर्त्येभरूपं दधे।
तस्मान्मानवमात्रकेण यतनैरास्वादनीयं च तद्
विघ्नांस्तत्र भवान् निहन्तु मनसा शीघ्रावधेयं ततः॥
लोके यो गजराजपूजनकरो मान्यः स धन्यो नरो
यं स्वे मूर्धनि धारयेत् स करतो धन्यस्तदन्यश्च कः?
अन्योन्यं कृतबन्धनौ नरगजौ व्यङ्क्ते जगत्यामिदं
मत्त्वत्स्नेहसुदेहलेहनरसो मर्त्येभरूपः सुतः॥
लक्ष्मीः खेलतु शुण्डयोरिव सदा मर्त्यस्य बाह्वोर्द्वयो-
र्दन्ताग्रे वसताच्च सा द्विगुणिता शुक्ला च वागीश्वरी।
कुर्याद् भोजनमप्युरु प्रजहतात् पौरीषपिण्डं च त-
न्मर्त्येभद्वयरूपतः प्रकटकस्त्वन्मद्द्वयाऽऽज्ञासुतः॥

(गणपतिसं० ५।५०—५२)

इस प्रकार अमितौजा भगवान् गणेशके द्वादश प्रमुख नामोंकी यथामति-यथागति व्याख्या करनेके उपरान्त हम विघ्नहरणके चरणकमलोंमें सादर सांजलि प्रणाम, इन शब्दोंके साथ समर्पित करते हैं—

सिन्दूरपूरपरिशोभितपूर्णशुण्डं
श्रीकुण्डतुल्ययुगकुण्डलमण्डिगण्डम्।
तुण्डेन विघ्नभयकाननभङ्गचण्डं
वन्दे महेशगिरिजामहिमांशुपिण्डम्॥

गणेशोपासनाकी प्राचीनता

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

हिंदुओंका उपासना-विज्ञान इतिहासके विकास, समाजकी माँग तथा परिस्थितिकी आवश्यकताके अनुसार अपना बाह्यरूप बदलता रहा है। पर इसका मूलतत्त्व अधिक समन्वयात्मक, परिष्कृत एवं परिवर्धित रूपमें देव-प्रतिमाकी उपासनाके रूपमें सुरक्षित है। देवोपासनामें व्यक्ति और समाजकी रुचि, संस्कार, क्षेत्र-विशेषकी परम्परा और समयकी आवश्यकताके अनुसार परब्रह्मके किसी एक साकार देवरूपको किसी क्षेत्र-विशेषमें प्रधानता मिली है तो कभी किसी दूसरे साकार देवरूपको दूसरे क्षेत्र-विशेषमें। वर्तमान समयमें बंगालमें शक्तिपूजाकी प्रधानता है तो उत्तर भारतमें श्रीराम एवं श्रीकृष्ण विशेषरूपसे उपास्य हैं। मूलरूपमें ये सभी देवी-देवता एक अखण्ड ब्रह्म-चेतनाके प्रतीक हैं तथा इन रूपोंद्वारा वस्तुतः एक परब्रह्मकी ही उपासना की जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीगणपतिकी उपासना वैदिक वर्गकी किसी शाखामें अवश्य प्रचलित रही होगी। वैदिकशाखाग्रन्थोंके लुप्त होनेके साथ गणपति-उपासनाविषयक साहित्य भी लुप्त हो गया होगा। इस लोप होनेके कारणके पीछे अथर्ववेदविषयक आथर्वणशाखा-ग्रन्थोंका लोप भी कारण रहा होगा। लोकमें शान्तिपौष्टिक-कर्मोंकी सिद्धि आथर्वण-विद्यासे सम्बन्धित मानी जाती थी। 'श्रीगणपत्युपनिषद्' एवं 'अथर्वशीर्ष-उपनिषद्' से ज्ञात होता है कि गणपति-विद्याका सम्बन्ध अथर्ववेदीय शाखासे था। कालान्तरमें अथर्ववेदका सम्बन्ध वाममार्गी तन्त्रविद्यासे जुड़ गया। यह तन्त्रविद्या लोकमें निषिद्ध आचारका सेवन करनेके कारण जब निन्दित हुई एवं लुप्त हो गयी, तब अथर्ववेदीय विद्याओं तथा शास्त्रोंका भी लोप हो गया। यहाँतक कि पौराणिक कालमें रचित गणपति-साहित्य भी अब उपलब्ध नहीं होता। नारदपुराणमें दी हुई सूचीके अनुसार वामनपुराणके उत्तरार्धमें सहस्रश्लोकी गाणेश्वरी-संहिताके होनेका उल्लेख है। पर आजकल वामनपुराणका यह उत्तरार्ध उपलब्ध नहीं है। गाणपत्योंकी ग्रन्थोंको गोपनीय रखनेकी प्रवृत्ति भी इसमें हेतु हो सकती है।

कतिपय विद्वान् यह मानते हैं कि सूत्र-ग्रन्थोंमें उपलब्ध गृहधर्म एवं लोकधर्मकी परम्परा संहिताकालसे भी पुरानी है। आरण्यक-ग्रन्थों एवं सूत्र-ग्रन्थोंमें श्रीविनायक गणपति-सम्बन्धी उल्लेख ऐसा संकेत देते हैं कि श्रीगणेशकी उपासना वैदिकयुग एवं पूर्व-वैदिकयुगमें भी लगभग वर्तमानरूपमें ही प्रचलित थी। तैत्तिरीयारण्यक (१०। १)- में महादेव, दुर्गा, गणपति, कार्तिकेय और नन्दीका पृथक्-पृथक् गायत्री-मन्त्र मिलता है, जिससे इनमेंसे प्रत्येकका स्वतन्त्र देवताके रूपमें लोकमें उपास्य होनेका प्रमाण प्राप्त होता है। तैत्तिरीयारण्यकमें एवं नारायणोपनिषद्में श्रीगणपतिके गायत्री-मन्त्रका रूप यों है—

'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥'

इस मन्त्रमें 'वक्रतुण्ड' नाम उनके गजानन, गजकर्ण होनेका तथा 'दन्ती', नाम उनके 'एकदन्त' होनेका स्पष्ट संकेत करता है। मैत्रायणीय संहिता (२। ९। ६)-में उपलब्ध गणेश-गायत्रीका रूप भिन्न है—

'तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥'

इन 'वक्रतुण्ड' और 'हस्तिमुख', 'कराट' और 'दन्ती' नामोंसे यह भी संकेत मिलता है कि गणपतिकी प्रतिमा गजाननरूपमें उस समय भी बनायी जाती रही तथा उसकी पूजा की जाती रही। दो प्रकारकी गणपति-गायत्री भी यह संकेत करती है कि संहिताकालमें ही गणपतिके भिन्न-भिन्न रूपोंकी उपासना प्रचलित रही एवं गणपति-उपासकोंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय भी रहे।

श्रीवरदमूर्तये नमः

(लेखक—श्री के० वा० भातखण्डे, बी० ए०, बी०टी०)

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे ॥'

(ऋग्वेद २। २३। १)

नमस्तस्मै गणेशाय ब्रह्मविद्याप्रदायिने।
यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे॥

(गणेशपुराण, उपासना० १। १)

'जो ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले हैं तथा जिनका नाम विघ्नसागरको सुखानेके लिये अगस्त्यके समान है, उन श्रीगणेशजीको नमस्कार है।'

अखिल श्रीगणेश-साहित्यमें तथा श्रीगणेशोपासनामें प्रसिद्ध सूक्त '**श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष**' सर्वप्रधान माना जाता है। '**त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्।**' (१) '**भक्तानुकम्पिनं देवम्।**' (९) कहकर श्रीगणेशजीका मधुर वर्णन करनेवाले इस अथर्वशीर्षके अन्तमें श्रीगणेशके आठ शुभ नामोंका उल्लेख है। वे इस प्रकार हैं—'**नमो व्रातपतये, नमो गणपतये, नमः प्रमथपतये, नमस्ते अस्तु लम्बोदराय, एकदन्ताय, विघ्ननाशिने, शिवसुताय, वरदमूर्तये नमः।**' (१०) इस नाममालामें '**वरदमूर्तये नमः**'—यह अन्तिम नाम सब नामोंमें मधुरतम है। हम वैदिक धर्मावलम्बियोंमें कार्यका आरम्भ करते समय श्रीगणेश-चिन्तन करनेका पवित्र विधान है। श्रीगणराजसे '**निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥**'—इस प्रकार प्रार्थना न करनेसे कार्य विघ्नरहित नहीं हो पाता। '**विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा**' आदि विविध कार्योंमें गणराजका स्मरण-चिन्तन हमको निर्विघ्नता प्रदान करता है। विघ्नेश्वर श्रीगणेशजी भक्तोंके और सज्जनोंके मार्गमें होनेवाले सब विघ्नोंको दूर करते हैं और उनको विद्या, धन, सुख एवं भक्ति आदिका वरदान देते हैं। सारे विघ्नोंको दूर करने तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ होनेके कारण ही श्रीगणेशजी 'विघ्नेश्वर' और 'वरदमूर्ति' कहलाते हैं। इसीलिये वे अग्रपूजनीय भी हुए। श्रीगणेशराजको अग्रपूजाका अधिकार तथा वरदातृत्वका महान् गुण कैसे प्राप्त हुआ—इस विषयमें पुराणोंमें अनेकों रम्य कथाएँ वर्णित हैं। सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणाकी होड़में सारे देवताओंको श्रीगणेशजी अपने बुद्धि-कौशलसे ही परास्त कर सके। इसी प्रसंगमें श्रीगणेशजीके मातृ-पितृ-भक्ति, भगवन्नाम-निष्ठा, शक्ति-शिव-तत्त्व-ज्ञातृत्व आदि दिव्य गुणोंका भी परिचय मिलता है।

मातृ-पितृ-भक्ति और भगवन्नामोंसे सुरभित वैष्णवत्व आदि महान् गुण ही श्रीगणराजके अमोघ वरदातृत्वका रहस्य है। श्रीगणराजके इस अमोघ वरदायित्वका लाभ बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों और देवताओंको उन्मुक्त रूपसे प्राप्त हुआ है। श्रीवेदव्यासजीने जब पुराणोंकी रचना आरम्भ की; उस समय गणेश-स्मरण न करनेके कारण उनको सब कुछ विस्मरण हो गया। श्रीब्रह्माजीके कथनानुसार जब गणेशोपासना करनेसे वरदाता श्रीगणेशजी प्रसन्न हुए, तब श्रीवेदव्यासजीको उपपुराणसहित अठारहों पुराणोंकी रचनाका श्रेय मिला। मधु-कैटभ राक्षसोंको मारनेके लिये महाविष्णुने श्रीगणेशमन्त्रका स्मरण किया और श्रीगणेशके वरदायित्वका अनुभव किया। श्रीगणेशजीके वरसे सृष्टिरचनाके महान् कार्यको श्रीब्रह्माजी कर सके। त्रिपुरासुरका वध करनेके लिये श्रीनारदजीके उपदेशानुसार श्रीशंकरजीने गणेशकी आराधना की, तब श्रीगणेशजीने प्रसन्न होकर श्रीशंकरजीको 'गणेशसहस्रनाम' प्रदान किया और त्रिपुरासुर-संहारमें यशःप्राप्तिका वर दिया। ऐसा है वरदमूर्ति श्रीगणेशजीका अमोघ और उदार वरदायित्व।

हमारा जीवन विघ्न-बाधारहित हो तथा हमें चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति सुगम हो—इसके लिये हमें विधिवत् गणेश-उपासना करनी चाहिये। पाश, अंकुश, रद, वरदसे युक्त चतुर्भुज मूर्तिका ध्यान, दूर्वाङ्कुर, मोदक, शमीपत्र, रक्तपुष्प आदिसे पूजन, ब्रह्मणस्पतिसूक्त या अथर्वशीर्षमन्त्रोंसे अभिषेक, विनायक, गणपति, गजानन—इन महानामोंका चिन्तन या कीर्तन आदि विविध प्रकारोंसे भक्तगण गणेशोपासना किया करते हैं। भावपूर्वक गणेशनाम-कीर्तन करना सबसे सुलभतम साधन है।

श्रीवरदमूर्ति गणेशजी विपुल विद्या, अतुल धन, सुदीर्घ आयु आदि अनेक वरदान तो सभी भक्तोंको देते हैं, किंतु हरिभक्तिका वरदान वे केवल अन्तरंग भक्तोंको ही देते हैं। श्रीगणेशजी बड़े हरिनामपरायण हैं।

रामनामरससे युक्त हरिभक्तिका रसायन श्रीगणपतिके पास सहज ही सुलभ है, जो रामनामानुरागी माता-पिता श्रीगौरी-शिवकी संनिधिसे प्रतिक्षण वर्धित होता रहता है। ऐसे महावैष्णव श्रीगणपतिको हरिकीर्तनकी बड़ी लगन है। '**नामामृतगोडी वैष्णवा लाधली**'— श्रीज्ञानदेवके ये वचन ही गणेशजीमें यथार्थ घटित होते हैं। श्रीनिम्बराज नामके एक बड़े हरिभक्त थे। एक रात जब वे पूर्णरूपसे निद्राधीन थे, तब स्वप्नमें श्रीगणेशजीने इन्हें एक ऐसा मधुर बीड़ा खिलाया कि उस बीड़ेसे श्रीनिम्बराजको हरिकीर्तनकी महान् स्फूर्ति प्राप्त हुई। श्रीगणेशजीके इस वर-प्रसादसे श्रीनिम्बराज हरिकीर्तनके प्रेममें सदा मग्न रहने लगे, जिससे उनका जीवन सफल हो गया। इस हरिकीर्तन-प्रेमका वरदान हम सबको गणेशजी अवश्य दें, यही उन वरदमूर्तिसे प्रार्थना है।

~~~o~~~

गणेश देवता

(लेखक—पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी)

आर्य-संस्कृतिमें देवताकी भावनाका आविर्भाव कब और कैसे हुआ, इसका ऐतिहासिक उद्भव खोज निकालना बहुत ही कठिन है। वैदिक युग देव-प्रधान युग था। उसमें देवता परम आदर्श और परमाराध्य थे। देवत्वकी प्राप्ति जीवनका चरम ध्येय था। गुरुकुलसे लौटते हुए स्नातकको यह शिक्षा दी जाती थी—

'**मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।**'

(तैत्तिरीय-उपनिषद् १। ११। २)

'माता, पिता, आचार्य और अतिथिको देवता मानकर उनकी सेवा करो।'

सारांश यह है कि आर्य-जीवनमें देवताका प्राधान्य है। देवताका आर्य-जीवनके साथ अविनाभाव-सम्बन्ध है। जहाँ देवभावका अभाव है, वहाँ असुरभाव उपस्थित हो जाता है। असुरभावसे त्राण पानेके लिये देवताकी शरण लेनेके अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। अतएव देवाराधनके द्वारा देवत्वकी वृद्धि करके असुरभावका विनाश करना जीवनका परम कर्तव्य है। मानव-जीवनका चरम लक्ष्य देवत्वकी प्राप्ति है और असुरभाव उसमें प्रधान और प्रबल विघ्न है। गणेशजी विघ्नेश्वर हैं। उनकी कृपादृष्टि होनेसे विघ्नोंका पर्वत अपने-आप विगलित होकर क्षणमात्रमें विनष्ट हो जाता है, असुरसमूह उनके नाममात्रसे विद्रावित होते हैं। इसी कारण सब प्रकारके मंगल-कार्योंमें, सब प्रकारकी देवपूजाओंमें गणेशजीकी प्रथम पूजा होती है—

आलम्बे जगदालम्बं हेरम्बचरणाम्बुजम्।
शुष्यन्ति यद्रजःस्पर्शात् सद्यः प्रत्यूहवार्धयः॥

'जगत्को आश्रय देनेवाले श्रीगणेशजीके चरण-कमलका मैं आश्रय लेता हूँ, जिसकी रजके स्पर्शसे विघ्नोंके समुद्र तत्काल सूख जाते हैं।'

प्रतिमा बनाकर आवाहनादि षोडशोपचारसे पूजा करना अथवा गोबरके गणेश या मृत्तिकाके गणेशकी रचना करके गणेश-पूजा करना सर्वसाधरणमें पाया जाता है। यह पूजा केवल निर्विघ्न कार्यसिद्धिके उद्देश्यसे की जाती है। मंगल-उत्सव आदि आनन्दप्रद समारोहोंके अवसरपर गणेशजीका स्मरण किया जाता है। गणेशजी पार्वतीनन्दन हैं, विश्वजननी महामायाके वरद पुत्र हैं, आनन्दमूर्ति हैं, मोदकप्रिय हैं, मुद-मंगल-दाता हैं। विद्या और कलाके अधिदेवताके रूपमें सरस्वतीके साथ गणेशजीका भी नाम लिया जाता है। कहते हैं कि शिवजी जब ताण्डव-नृत्य करने लगते हैं तो आनन्दमें मग्न होकर गणेशजी अपने कण्ठसे मेघकी तरह मृदंग-ध्वनि करते हैं—

नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ठः पुष्करायते।
मदाभोगघनध्वानो नीलकण्ठस्य ताण्डवे॥

(दश रूपक १। १)

देवताका दूसरा रूप है—आधिदैविक। पुराणोंमें जो देवताओंका स्वरूप वर्णित है, जो देवासुर-संग्रामके वर्णन आते हैं, वे उनकी आधिदैविक लीलाओंको अभिव्यक्त करते हैं। वैदिक मन्त्रोंके भी जो अग्नि आदि देवता हैं, वे मन्त्रमय हैं।

निरुक्तकार यास्क कहते हैं—

'**यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।**'

'जिस कामनासे ऋषि उस कामनाको पूर्ण करनेवाले
~~~

जिस देवताकी स्तुति करता है, उस देवताका वह मन्त्र होता है।' यह मन्त्रमय देवताका लक्षण है। वेद-मन्त्रोंमें जो देवता उपलक्षित होते हैं, वे क्या हैं?—इस प्रश्नका उत्तर यास्क नहीं देते और न उनके निरुक्तके दैवत-काण्डमें वैदिक देवताओंकी सूचीमें गणेशका नाम है। इससे कुछ लोग भ्रममें पड़ते हैं कि गणेशजी वैदिक देवता नहीं हैं और बादमें उनकी सृष्टि की गयी है। छान्दोग्य-उपनिषद् (७।१।२)-में नारदजी सनत्कुमारसे कहते हैं—

'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'—इत्यादि।

इस उद्धरणमें नारदजीने इतिहास और पुराणको वेदोंमें 'वेद' कहा है। अर्थात् पौराणिक धर्म पाँचवाँ, पौराणिक देवता वेदोंसे भी पूर्व विद्यमान हैं। इतिहास और पुराणके बिना वेदका एकमात्र प्रामाण्य अव्यवहृत है। इसी कारण प्रसिद्ध है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महाभारत १।१।२६७$\frac{1}{2}$)

इतिहास और पुराणके प्रकाशमें वेदोंका व्याख्यान करनेपर गणेशजी अनादिकालीन देवता सिद्ध होते हैं। पुराणोंके तत्त्व अति प्राचीन हैं।

अस्तु, आकाशमें—द्युलोक (प्रकाशमय लोक)-में देवताओंके पृथक्-पृथक् लोक हैं। ज्योतिर्विज्ञानकी दृष्टिसे पृथक्-पृथक् तारामण्डलके अधिपति पृथक्-पृथक् नक्षत्ररूपी देवता हैं। उन नक्षत्रोंमें करिवदन-नक्षत्रकी स्थिति सप्तर्षिमण्डलकी कक्षासे बाहर है। द्युलोकमें देवताओंकी स्थिति होनेपर भी जैसे मन क्षणमात्रमें अनन्त कोटि दूर पहुँच सकता है, वैसे ही देवता भी स्मरण करते ही पास उपस्थित हो जाते हैं। अर्थात् उनकी स्मृति ही उनकी उपस्थिति है। ऊपर जो कहा गया है कि 'देवता मन्त्ररूप हैं', उसका यही अभिप्राय है। नाम और नामीका इसी कारण अभेदभाव माना जाता है। सिद्धान्ततः नाम और मन्त्र—दोनों ही देवतास्वरूप हैं। मन्दिरोंमें प्राणप्रतिष्ठा की गयी देवमूर्ति दिव्यलोकके देवताकी प्रतिमा है। उस प्रतिमा और देवतामें अभेदभाव होता है। परंतु उपासक तभी लाभान्वित हो सकता है, जब देवभावसे प्रतिमाके सम्मुख उपस्थित हो। कहा है **'देवो भूत्वा देवं यजेत।'** ऐसा न करनेसे प्रत्यवाय लगता है, लेनेके देने पड़ जाते हैं। इसी कारण संतोंने सर्वसाधारणके लिये नाम-जपकी साधना प्रचलित की है। गणेशजीके इन द्वादश नामोंका पाठ करनेसे विघ्नोंका भय दूर हो जाता है और सर्वसिद्धि प्राप्त होती है—

प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम्।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम्॥
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च।
सप्तमं विघ्नराजं च धूम्रवर्णं तथाष्टमम्॥
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम्।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम्॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते॥

'वक्रतुण्डसे लेकर गजाननतकके बारह नामोंका जो तीनों संध्याओंके समय पाठ करते हैं, उन्हें विघ्नका भय नहीं होता और सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।'

देवताके आधिदैविक रूपसे सम्बन्ध जोड़नेपर साधनाका द्वार खुल जाता है। उस साधनाका पर्यवसान देवताके आध्यात्मिकरूपके परिज्ञानसे होता है। आधिदैविक जगत्में भावानुसार पृथक्-पृथक् देवता हैं; किंतु आध्यात्मिक भावमें नानात्व नहीं, एकत्व है। एक ही नानारूपमें भासमान होता है। अध्यात्म-जगत्में अद्वैतनिष्ठा विराजती है। यह अद्वैतनिष्ठा जितनी बढ़ती जाती है, उतनी ही द्वैतकी माया क्षीण होती जाती है और साधकको जीवनकी कृतार्थताका रसास्वादन होने लगता है। आध्यात्मिक स्वरूपमें गणेशजी अज हैं, अनादि और अनन्त हैं, निर्गुण हैं, निर्विशेष हैं, निराकार हैं, परब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही एक होकर सर्वरूप हो रहे हैं। वे त्रिनेत्र और चतुर्भुजके स्थानमें असंख्य नेत्र, असंख्य मुख, असंख्य भुज और असंख्य पाद हैं। इस प्रकार वे असंख्य रूप हैं और इस असंख्य रूपके परे अमृतस्वरूपमें भी स्थित हैं। वे सर्व हैं, शर्व हैं, शिव हैं, विष्णु हैं, शक्ति हैं। गणेशजीका परम भक्त स्तुति करता है—

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं
निरानन्दमद्वैतमानन्दपूर्णम्।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं
परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥

(गणेशपुराण, उपासना० १३।३)

भगवान् गणेश

(लेखक—श्रीमोरेश्वर नरहर धुलेकर)

हिन्दू-धर्मका कोई भी धार्मिक कार्य हो, उसका प्रारम्भ श्रीगणेश-नमनसे ही होता है। यज्ञोपवीत-संस्कार, विवाह-संस्कार आदि कोई भी संस्कार हो, '**श्रीगणेशाय नमः**'— इसीसे संस्कारका पूजन प्रारम्भ होता है। हिन्दू-धर्ममें तैंतीस कोटि देवता हैं, किंतु प्रत्येक देवताकी पूजामें अग्रस्थान श्रीगणेशदेवताका ही है। श्रीगणेश तो देवताओंको भी वरदान देनेवाले देवता हैं। महर्षि व्यासने अपने कई पुराणोंमें श्रीगणेशका वर्णन किया है।

प्रत्येक मन्त्रका प्रारम्भ 'ॐ'से होता है और स्वयं श्रीगणेश ॐकारस्वरूप हैं। स्पष्ट विवेचनद्वारा स्पष्ट किया जा सकता है कि 'ॐ'की एवं श्रीगणेशजीकी आकृतिमें बहुत कुछ साम्य है। वस्तुतः श्रीगणेश प्रणवरूप हैं। 'ॐ'की महिमा पुराणमें कही गयी है—

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥

(नारदपुराण, पूर्वभाग ५१। १०)

''जगदुत्पत्तिके पहले ब्रह्मदेवके कण्ठका भेदन करके '**ॐकार**' तथा '**अथ**' शब्द बाहर निकले; अतः ये अत्यन्त मंगलप्रद हैं।'' प्रत्येक ग्रन्थमें '**अथ अमुक ग्रन्थारम्भः**' लिखनेका कारण भी यही है। वटबीज-न्यायसे ॐकारसे केवल ब्रह्मा ही नहीं, साक्षात् श्रीविष्णु तथा महेश और चारों वेद भी प्रकट हुए हैं। श्रीगणेशजीके प्रणवरूप होनेके कारण प्रणवको वन्दन करनेका अर्थ है—श्रीगणपतिका ही वन्दन करना।

महाराष्ट्रके संत श्रीएकनाथजी श्रीगणेशकी प्रार्थना यों करते हैं—'प्रभो! हे प्रणवरूप गजानन! आप एक होते हुए भी अनेक रूपोंसे इस जगत्में व्याप्त हैं; अतः आपका एकात्मकरूप स्पष्ट नहीं होता। जैसे स्वर्णके विविध नाम-रूप-धारी अनेक अलंकार बननेसे वह विविध रूपोंमें शोभा देता है, फिर भी स्वर्णरूपसे वह एक ही है, उसमें कोई अन्तर नहीं, इसी प्रकार आप ही अखिल विश्वके आधारभूत हैं। हे हेरम्ब! आपके विशाल उदरमें सारा ब्रह्माण्ड भरा हुआ है, इसीलिये आपको 'लम्बोदर' कहते हैं। आप साक्षात् ओंकार-स्वरूप हैं।'

त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्॥ (गणपत्यथर्वशीर्ष ६)

यं सदा मुनयो देवाः स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि।
यं पूजयन्ति सततं ब्रह्मेशानेन्द्रविष्णवः॥

(गणेशस्तव)

'बड़े-बड़े नारदादि ऋषि, इन्द्रादि देव अपने हृदयमें जिनका ध्यान करते हैं, इसीलिये जो सकल देवताओंके देवता और ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशके भी पूज्य हैं।'

यदाज्ञया सृष्टिकरो विधाता
यदाज्ञया पालक एव विष्णुः।
यदाज्ञया संहरको हरोऽपि
ओंकाररूपी स गणेश ईरितः॥

(गणेशस्तव)

'जिनकी आज्ञासे ब्रह्मा सृष्टि-रचना करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और महादेव संहार करते हैं, इन तीनों देवताओंकी उत्पत्ति श्रीगणेशस्वरूप प्रणवके अ, उ, म्—इन तीन अक्षरोंसे हुई है।'

अकारो वासुदेवः स्यादुकारो विधिरुच्यते।
मकारस्तु महादेवः प्रणवाय नमोऽस्तु ते॥

(श्रीगणेशस्तव)

''अ' सत्त्वगुणप्रधान विष्णु, 'उ' रजोगुणप्रधान ब्रह्मा और 'म' तमोगुणप्रधान महादेव—ये तीनों देवता जिससे प्रकट हुए हैं, वह प्रणव सभी देवताओं तथा वेदोंसे भी सनातन है। उस प्रणवरूप आप (गणेश)-को नमस्कार है।''

वेदमें इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वायु एवं वरुण आदि देवोंकी स्तुति की गयी है; परंतु यह स्तुति उन देवताओंकी नहीं, किंतु प्रकारान्तरसे श्रीगणेशजीकी ही है। 'गणपत्यथर्वशीर्ष' में आया है—

'**त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमाः।**' (६)

'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा—सभी आप श्रीगणेश ही हैं।'

'**सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः।**'

(गणपत्यथर्वशीर्ष उप० ५)

'हे भगवान् श्रीगणेश! यह सारा जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है। आपसे ही इस सारे जगत्का अस्तित्व है। इस सारे जगत्का लय भी आपमें ही होगा। आप सत्यस्वरूप हैं; आपमें प्रतिष्ठित होनेके कारण यह असत्य जगत् सत्य-सा प्रतीत होता है। आप ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश हैं।' जगत्की उत्पत्तिके पूर्व आप ही थे, जगत्के स्थितिकालमें आप ही हैं और जगत्के प्रलयके बाद आप ही शेष रहेंगे। इसलिये जगत्से अतीत सनातन सत्य केवल आप ही हैं। ऐसे संसारातीत प्रणवस्वरूप परमतत्त्व श्रीगणेशजी भक्त-हितार्थ युग-युगमें अवतरित होते रहते हैं। चारों युगोंके श्रीगणेशजीके नाम, आकार, वर्ण-वाहन आदि भिन्न-भिन्न हैं। श्रीगणेशजीकी स्तुतिका और एक श्लोक है—

गणेशो वः पायात् प्रणमत गणेशं जगदिदं
गणेशेन त्रातं नम इह गणेशाय महते।
गणेशान्नास्त्यन्यत् त्रिजगति गणेशस्य महिमा
गणेशे मच्चित्तं निवसतु गणेश त्वमव माम्॥

'गणेशजी तुमलोगोंकी रक्षा करें। तुमलोग गणेशजीको नमस्कार करो। गणेशजीने ही इस जगत्की रक्षा की है; उन महिमाशाली गणेशजीको नमस्कार है। गणेशजीसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। त्रिलोकीमें गणेशजीकी महिमा व्याप्त है। गणेशजीमें मेरा चित्त सदा निवास करे। गणेश! आप मेरी रक्षा कीजिये।' (कारककी सभी विभक्तियोंका उदाहरण इस एक ही श्लोकमें प्रदर्शित किया गया है।)

इस श्लोकको सुनकर करवीर-संकेश्वरपीठके ब्रह्मलीन सिद्ध श्री १०८ स्वामी शिरोलकर शंकराचार्यजी महाराज बड़े गद्गद और पुलकित हो जाया करते थे तथा उनकी आँखोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगता था। भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थी श्रीगणेशजीका पावन जन्मदिवस है। उस दिन घर-घरमें श्रीगणेशजीकी पार्थिव-पूजा होती है। भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थीसे भाद्रपद-शुक्ला चतुर्दशीतक श्रीगणेश-जन्मोत्सव मनाया जाता है। स्वनामधन्य श्रीलोकमान्य तिलकजीने राष्ट्रको जाग्रत् करनेके लिये सामुदायिकरूपसे इस धार्मिक उत्सवका मनाना प्रारम्भ किया और उनको अपने उद्देश्यमें सफलता भी मिली। सर्वातीत सर्वसमर्थ भगवान् श्रीगणेशजीका अर्चन-वन्दन व्यक्ति और समाज—सभीको सुख-समृद्धि प्रदान करता है।

~~०~~

गणेशजीका सार्वभौम ऐश्वर्य

(लेखक—श्रीभालचन्द्रजी देशपाण्डेय, बी० ए०, बी० एड्०)

भारतीय संस्कृतिमें श्रीगणेशजीका स्थान सर्वोपरि है। किसी भी कार्यके आरम्भमें सर्वप्रथम श्रीगणेशजीका पूजन करना चाहिये। इतना ही क्यों, किसी भी देवताकी पूजाके प्रारम्भमें गणेशजीकी अग्रपूजा करना आवश्यक माना जाता है। जो कोई इसका पालन नहीं करता, उसके कार्यमें निश्चित विघ्न पड़ता है। श्रीशिवजी गणेशजीकी पूजा किये बिना ही त्रिपुरासुरको मारने गये; किंतु उन्हें स्वयं ही पराजित होना पड़ा। जब-जब शिव-विष्णु-सूर्यादि देवताओंने गणेशजीकी अग्रपूजा नहीं की, तब-तब उन्हें अपने कार्यमें विफल होना पड़ा। गणेशजीकी शरण लेनेके पश्चात् ही उन्हें सिद्धि तथा कीर्तिकी प्राप्ति हुई। इस बारेमें प्रमाणभूत क्षेत्र आज भी विद्यमान है।

पूना जिलेमें स्थित 'राजनगाँव'-क्षेत्रमें श्रीशंकरजीने त्रिपुरासुर-वधके लिये गणेशाराधना की। 'थेऊर'-क्षेत्रमें श्रीब्रह्माजीने सृष्टि-कार्यमें सिद्धि-प्राप्तिके लिये श्रीगणेशजीकी उपासना की। महाविष्णुने मधुकैटभ-वधके लिये 'सिद्धिटेक'-क्षेत्रमें श्रीगणेशजीकी अर्चना की। यमराजने 'नामल' (मराठवाड़ा)-क्षेत्रमें श्रीगणेशजीको प्रसन्न किया। शिवपुत्र श्रीस्कन्दने 'बेरूल' क्षेत्रमें आकर गणेशजीके लिये तपश्चर्या की, तब कहीं वे तारकासुरको मार सके। आदिशक्ति देवीने 'विन्ध्याचल' क्षेत्रमें आकर गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये तपश्चर्या की, तब कहीं वे महिषासुरको नष्ट कर सकीं। ऐसे तप और ऐसी तपःस्थलियोंके अनेक उदाहरण हैं, जो भगवान् श्रीगणेशकी गरिमाको प्रकाशित एवं प्रतिष्ठापित करते हैं।

~~०~~

सद्गुणसदन श्रीगजवदन

(लेखक—श्रीव्योमकेश भट्टाचार्य)

सर्वविघ्नविनाशाय सर्वकल्याणहेतवे।
पार्वतीप्रियपुत्राय गणेशाय नमो नमः॥

'सारे विघ्नोंके विनाशके लिये, समस्त कल्याणके हेतु-भूत, पार्वतीजीके प्रिय पुत्र गणेशजीको अनेक नमस्कार।'

सर्व-जनगणके देवता गणेश गणपति हैं। पुराणोक्त कथामें पाया जाता है कि भगवती पार्वतीने अपने अंगके अनुलेपसे एक चतुर्भुज मूर्ति बनाकर अपने पति देवाधिदेव महादेवसे प्रार्थना की कि 'उसमें प्राण-संचार कर उसे अपने पुत्ररूपमें प्रसिद्ध करके जगत्पूज्य बना दें।' भगवान् शंकरने वेदोक्त जीवसूक्त और सृष्टिसूक्तद्वारा उस कृत्रिम पुत्रमें प्राण-संचार करके कहा—'हे देवि! यह पुत्र जगत्में यशस्वी और जनगणका अधिपति होकर 'गणेश' नामसे विख्यात होगा।'

उस शिशु-पुत्रके आविर्भावसे कैलासमें महोत्सव मनाया जाने लगा। सुर-मुनि-गण शिशुका दर्शन करके आशीर्वाद देनेके लिये एकत्र हुए। केवल सूर्यतनय शनिदेवके सम्पर्कसे उसमें व्यतिक्रम हो गया। शनिकी पत्नीने उनको शाप दे रखा था कि 'जिसके ऊपर उनकी दृष्टि पड़ेगी, उसका शिरश्छेद तत्काल हो जायगा।' विशेष अनुरोधपर शनि जब शिशुके समीप आये तो जगज्जननी पार्वतीजी बोलीं—'किसकी सामर्थ्य है जो मेरी संतानका अनिष्ट साधन कर सके?' विधिका विधान कौन जानता है? शिशुके ऊपर शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिशुका सिर कटकर विष्णुके तेजमें विलीन हो गया। जननी पार्वती शोकातुर हो उठीं। लज्जासे शनिने मुख नीचा कर लिया। कैलासमें तहलका मच गया। गोलोकसे विष्णुने आकर उत्तराभिमुख सोये एक गजका मस्तक काटकर शिशुके कंधेपर जोड़ दिया और उसमें प्राण-संचार कर दिया। तभीसे वह शिशु 'गजानन' नामसे विख्यात हुआ। स्कन्दपुराण, नागरखण्डके अनुसार पार्वतीने गजाननरूपमें ही पुत्रकी सृष्टि की थी। बाल्यकालमें एक दिन गणेशने एक बिल्लीको क्षत-विक्षत करके माताके समीप आकर देखा कि माताका शरीर क्षत-विक्षत और रक्तरंजित है। माता बोली—'हे वत्स! जगत्के सब प्राणियोंमें मेरा वास है। सब स्त्रियाँ मेरा अंश हैं। इस बिल्लीके ऊपर हुआ आघात मेरे ऊपर पड़ा है'—

'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।'

समस्त नारीमूर्तिको अपनी जननीके अंशस्वरूप मानकर गणेशजी सदाके लिये मातृभक्त हो गये।

एक दिन पार्वतीने अपने पुत्र कार्तिकेय और गणेशको बुलाकर कहा—'हे वत्स! दोनोंमें जो पहले त्रिभुवनकी परिक्रमा करके मेरे पास आयेगा, उसे यह कण्ठहार उपहारमें दूँगी।' मयूरवाहन कार्तिकेय द्रुतगतिसे त्रिभुवनकी परिक्रमाके लिये बाहर निकले। स्थूलशरीर, लम्बोदर, मूषक-वाहन श्रीगणेशजी बड़ी कठिनाईमें पड़े। गणेशजी त्रिभुवनकी परिक्रमाके लिये बाहर न जाकर धीरे-धीरे माताकी परिक्रमा करके बोले—'माँ! त्रिभुवन तुम्हारा ही विकसित रूप है, तुम्हारी परिक्रमा करनेसे त्रिभुवनकी परिक्रमा हो जाती है।' माताने पुत्रके वचनसे संतुष्ट होकर उनको कण्ठहार पहना दिया। इस प्रकारकी मातृभक्तिका दृष्टान्त जगत्में बहुत कम देखनेमें आता है।

देवासुर-संग्राममें गणेशने दानवोंका संहार करके देवताओंकी रक्षा की थी। देवराज इन्द्रने प्रसन्न होकर गणेशजीसे कहा था—"आप सब देवताओंके पूज्य हैं। कार्यके आरम्भमें आपकी पूजा करनेसे सारे कार्य सिद्ध होंगे। आप 'विघ्नविनाशन' नामसे प्रसिद्ध होंगे।"

शिवके शिष्य परशुराम इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके श्रीगुरुके चरणारविन्दके दर्शनार्थ कैलासमें पहुँचे। वहाँ हर-पार्वती निद्रामें पड़े थे और द्वारपर गजानन पहरा दे रहे थे। उन्होंने परशुरामको भीतर प्रवेश करनेसे रोका तो उन्होंने गुरुके द्वारा प्राप्त परशु-अस्त्रसे गणेशके एकदन्तको चूर्ण-चूर्ण कर दिया। तबसे गणेश एकदन्त नामसे विख्यात हुए।

ऊर्ध्वरेता गणेशजी एक समय गंगाजीके तटपर ध्यानमग्न बैठे थे। एक देवी कामातुरा होकर वहाँ पहुँची। तप्त-कांचनके समान गणेशके रूपको देखकर वह मोहित हो उठी। उनके ध्यानको भंग करनेमें असमर्थ होकर उस रमणीने गंगाजलसे सिंचन करके शिवनन्दनके ध्यानको भंग कर दिया। कठोर तपस्वी

जितेन्द्रिय गणेशजी चकित होकर बोले—'देवि! तुमने यह क्या किया? तुम दूसरेकी कामना करो; मैं ऊर्ध्वरेता हूँ। विश्वकी सारी स्त्रियाँ मेरी जननी हैं।

ऐसे सद्गुणसदन गजवदन, जो एकदन्त हैं, चैतन्यस्वरूप हैं, जगत्के आदिकारण हैं, परब्रह्म हैं, वे सतत वन्दनीय और भजनीय हैं—

अनेकमेकं गजमेकदन्तं चैतन्यरूपं जगदादिबीजम्।
ब्रह्मेति यं ब्रह्मविदो वदन्ति तं शम्भुसूनुं सततं भजामि॥

'गणपति जग-वंदन!'

युग रीते, पर राह न रीती।
चलनेवाले चला किये, मंजिलतक पहुँचे।
वहाँ उन्हें मंजिल आगे फिर
उतनी ही लंबी-सी दीखी।
इसीलिये गण-पति गणेशने,
लीक छोड़, मान्यता नयी गढ़,
परोक्षको प्रतिनिधित्व देकर
सब अदृश्यका, मनस्तुष्टिका,
सृजन-सृष्टिको सर्वोपरि रख,
निकट केन्द्रको चरम लक्ष्य कह,
एकनिष्ठ, दृढ़ आस्थाके बल
सारी दुनिया ही समेट ली
कुछ कदमोंमें,
उत्पादककी परिक्रमा कर।
और—बेचारे स्वामिकार्तिक!
लीक-लीक चल, जग-चक्कर भर
जब वे लौटे विजय-दर्प-सँग,
जीती बाजी हार चुके थे।
नयी मान्यता जीत चुकी थी
नेति-पराक्रमपर इतिके बल,
पाकर शिव-कल्याणी-स्वीकृति,
उत्पादककी परिक्रमा कर।

—श्रीबालकृष्ण बलदुवा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

स्तवन

विघ्नहरं प्रकृतेः परतत्त्वं
मोदकधारिणमीश्वरपुत्रम्।
भक्तभयाऽपहमीशमनीशं
श्रीगणनाथमहं प्रणतोऽस्मि॥

जो विघ्न-हरण करनेवाले, प्रकृतिसे परे परमतत्त्वरूप, शिवके पुत्र तथा हाथमें मोदक (लड्डू) लिये रहनेवाले हैं; जो भक्तजनोंके भयका नाश करनेवाले एवं सबके ईश्वर हैं; जिनका कोई दूसरा ईश्वर नहीं है; उन श्रीगणनाथको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

अतिप्रवीणैः कमलान्यपास्य
श्रितं मदाऽऽढ्यं भ्रमरैर्यदास्यम्।
व्रजाम्यहं तस्य सदैव दास्यं
हृत्तस्य भक्त्या विमलं ममाऽस्तु॥

भ्रमरावली बड़ी चतुर है। उसने कमलोंको त्यागकर जिनकी मदपूर्ण गण्डस्थलीका आश्रय ले लिया है, मैं ऐसे भगवान् गणपतिका दास्य स्वीकार कर रहा हूँ। उनकी भक्तिसे मेरा हृदय निर्मल हो जाय।

कपर्दसर्पाद् भयमादधानं
प्रचण्डदर्पाल्लघुसत्त्ववन्तम्।
भैषीर्वृथा मा परिरक्षकोऽहं
जल्पञ्जयेद् वाहनमेकदन्तः॥

(भगवान् शंकरकी) जटामें लिपटे हुए प्रचण्ड दर्पवाले सर्पसे डरते हुए अपने स्वल्पकाय वाहन मूषकसे गणेशजी यह कह देते हैं कि 'जब मैं तेरा रक्षक हूँ, तब तू व्यर्थ मत डरा कर।'—ऐसा कहनेवाले भगवान् एकदन्त गणपतिकी सदा विजय हो।

—श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज

श्रीगणेशजीके परिधान, आभूषण, आयुध, परिवार, पार्षद और वाहन आदि

(लेखक—श्रीरामलाल)

श्रीगणेशजी आद्य पूज्य देव हैं। उनका स्वरूप नितान्त अव्यक्त, अचिन्त्य और अपार है। उनका रूप परम आराध्य, असामान्य और ध्येय है। वे देवपूज्य, निरुपम और मंगलात्मा हैं। उनकी सूँड़ सिद्धिप्रदा है। उनका मुख छोटे हाथीके शिशुके मुखके समान बड़ा ही लावण्यमय है। वे सर्वदा प्रणम्य हैं—

नमो नमः सुरवरपूजिताङ्घ्रये
नमो नमो निरुपममङ्गलात्मने।
नमो नमो विपुलकरैकसिद्धये
नमो नमः करिकलभाननाय ते॥

(गणेशपुराण, उपा० ४६। २२०)

स्वरूपतः श्रीगणेशजीमें ही समस्त जगत्‌की प्रतीति होती है। समस्त जगत् उन्हींसे उत्पन्न होता है, उन्हींमें स्थित है और उन्हींमें लीन होता है। वे सत्त्व-रज-तम—तीनों गुणोंसे परे ब्रह्म परमात्मा हैं, निर्गुण हैं। वे स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंसे परे निराकार हैं। उनके स्वरूपकी विज्ञप्ति है—

'त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।''''सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति।''''त्वं गुणत्रयातीतः।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद् ४—६)

स्वरूपसे उनका रूप अभिव्यक्त होता है। रूप-अभिव्यक्तिके सम्बन्धमें पुराणोंमें अनेकों कथाएँ उपलब्ध होती हैं, पर वे सब-की-सब समानरूपसे उनके 'गजमुख' रूपका ही प्रतिपादन करती हैं। श्रीगणेशजीका सम्पूर्ण शरीर मनुष्याकार है, पर मुख हाथीकी मुखाकृतिका है—यही उनके रूपकी असाधारण विचित्रता है। श्रीगणेशपुराणमें उल्लेख है कि 'एक बार दैवयोगसे प्रलय हो गया। हवाके प्रचण्ड वेगसे पहाड़ टूट-टूटकर गिरने लगे। संसारके नष्ट हो जानेपर गणेशजी, जो सूक्ष्मरूपमें स्थित थे, प्रकट हो गये। ब्रह्मा, विष्णु और महेशने उनकी स्तुति की। उन्होंने करुणाके वशीभूत होकर उन त्रिदेवोंके सम्मुख अपना रूप प्रकट किया'—

ततोऽतिकरुणाविष्टो लोकाध्यक्षोऽखिलार्थवित्॥
दर्शयामास तान् रूपं मनोनयननन्दनम्।
पादाङ्गुलीनखश्रीभिर्जितरक्ताब्जकेसरम् ॥
रक्ताम्बरप्रभावात्तु जितसंध्यार्कमण्डलम्।
कटिसूत्रप्रभाजालैर्जितहेमाद्रिशेखरम् ॥
खड्गखेटधनुःशक्तिशोभिचारुचतुर्भुजम् ।
सुनासं पूर्णिमाचन्द्रजितकान्तिमुखाम्बुजम्॥
अहर्निशं प्रभायुक्तं पद्मचारुसुलोचनम्।
अनेकसूर्यशोभाजिन्मुकुटभ्राजिमस्तकम् ॥
नानातारांङ्कितव्योमकान्तिजिदुत्तरीयकम् ....।
वराहदंष्ट्राशोभाजिदेकदन्तविराजितम् ॥
ऐरावतादिदिक्पालभयकारिसुपुष्करम् ।

(गणेशपुराण, उपा० १२। ३२—३८)

'श्रीगणेशजीका रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेशके मन और नेत्रोंको आनन्दित करनेवाला था। उनके चरणोंकी अंगुलियोंके नखोंमें ऐसा अरुणिम प्रकाश था कि उसके आगे लाल कमलका केसर नितान्त महत्त्वहीन जान पड़ता था। उनके शरीरपर लाल रंगका वस्त्र ऐसा सुशोभित हो रहा था कि उसकी उपमामें संध्याकालीन रक्तवर्णका सूर्यमण्डल प्रभावहीन था। उनके कटिसूत्रकी प्रभाने सुमेरुगिरिके शिखरकी सुषमा जीत ली थी। उनके चारों सुन्दर हाथोंमें खड्ग, खेट, धनुष और शक्ति सुशोभित हो रहे थे; उनकी नासिका सुन्दर थी; उनके मुख-कमलकी प्रभाने पूर्णिमाके चन्द्रमाकी कान्तिको निरर्थक कर दिया था। उनके मनोहर नेत्रकमल रात-दिन विकसित रहते थे। उनका मस्तक अनेकों सूर्योंकी प्रभाको व्यर्थ कर देनेवाले चमकीले मुकुटसे उद्दीप्त हो रहा था। उनके उत्तरीयकी उपमामें असंख्य ताराओंसे शोभित आकाशकी सुषमा नहींके बराबर थी। उनके एक दाँतके सामने वराहभगवान्‌की दाढ़की कोई गणना ही नहीं थी। उनकी सूँड़ ऐरावत आदि दिग्गजोंके मनमें भय पैदा करनेवाली थी।'

श्रीगणेशका उपर्युक्त पौराणिक रूप 'गणपत्यथर्वशीर्ष'-द्वारा भी प्रतिपादित है—'वे एकदन्त हैं, चतुर्भुज हैं। उनके

चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, अभय और वरदमुद्रा है। वे मूषक-चिह्नकी ध्वजावाले हैं। उनका वर्ण रक्त है। वे लम्बोदर, रक्तवस्त्रधारी और सूप-जैसे बड़े-बड़े कानोंवाले हैं। उनके शरीरपर लाल चन्दनका लेप है। वे लाल-लाल पुष्पोंद्वारा पूजित हैं, भक्तोंपर कृपा करते हैं, जगत्‌के कारण और अच्युत हैं। वे सृष्टिके पहलेसे आविर्भूत हैं तथा प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। उनका ध्यान करनेवाला योगी सब योगियोंमें श्रेष्ठ होता है—'

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

(गणपत्यथर्वशीर्ष-उप० ९)

यह निर्विवाद और स्पष्ट है कि 'गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्' ने उनके स्वरूप और रूप—दोनोंका प्रतिपादन किया है। इस औपनिषद रूपकी समन्वयात्मक अभिव्यक्तिका 'वराहपुराण' में बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। देवता कैलासपर्वतपर शंकरजीके पास गये और उन्होंने शिवजीसे निवेदन किया कि 'असत् कार्य करनेवालोंके लिये आप विघ्न उपस्थित करनेमें समर्थ हैं।' शंकरजी भगवती उमाकी ओर देखने लगे। उन्होंने आकाशमें एक स्वरूप देखा और वे हँस पड़े। भगवती उमा उस रूपको अपलक देखती रहीं। नेत्रोंको मोहित करनेवाले सुन्दर गणेशको देखकर रुद्रने शाप दे दिया—'कुमार! तुम्हारा मुख हाथीके मुखके समान होगा, उदर लम्बा होगा और तुम सर्पका यज्ञोपवीत धारण करोगे।'

ततः शशाप तं देवो गणेशं परमेश्वरः।
कुमार गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरस्तथा।
भविष्यसि तथा सर्पैरुपवीतगतिर्ध्रुवम्॥

(वराहपुराण २३। १८)

श्रीगणेशजीके रूप-सौन्दर्यका महत्त्वांकन असाधारण बुद्धिसम्पन्न प्राणीके ही वशकी बात है। राजा वरेण्यने उनके रूपका दर्शन किया था। वे कहते हैं—

अनाद्यनन्तं लोकादिमनन्तभुजशीर्षकम्।
प्रदीप्तानलसंकाशमप्रमेयं पुरातनम्॥
किरीटकुण्डलधरं दुर्निरीक्ष्यं मुदावहम्।
एतादृशं निरीक्षे त्वां विशालवक्षसं प्रभुम्॥

(गणेशगीता ८। ११-१२)

'हे देव! आप अनादि, अनन्त लोकोंके आदिकारण, अनन्त भुजाओं और सिरोंसे युक्त, जलती हुई अग्निके समान प्रकाशयुक्त, अप्रमेय और पुरातन पुरुष हैं। आपने किरीट और कुण्डल धारण कर रखे हैं। आपका रूप-दर्शन सहज-सुलभ नहीं है। आप आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, आपका वक्षःस्थल विशाल है; ऐसे स्वरूपवाले आप स्वामीको मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।'

प्रमुख पुराणोंके रचयिता महर्षि व्यासजीने चार श्लोकोंमें भगवान् गणेशके रूप-सौन्दर्यका अमित मनोमोहक चित्रण प्रस्तुत किया है। यह उनके पौराणिक रूपका भव्य वर्णन है। महर्षि व्यासकी उक्ति है कि 'मैं विशालकाय, तपाये हुए स्वर्ण-सरीखे प्रकाशवाले, लम्बोदर, बड़ी-बड़ी आँखोंवाले श्रीएकदन्त गणनायककी वन्दना करता हूँ। जिन्होंने मौंजीमेखला, कृष्ण-मृगचर्म तथा नाग-यज्ञोपवीत धारण कर रखे हैं, जिनके मौलिदेशमें बालचन्द्र सुशोभित हो रहा है, मैं उन गणनायककी वन्दना करता हूँ।''''जिन्होंने अपने शरीरको विविध रत्नोंसे अलंकृत किया है, अद्भुत माला धारण की है, जो स्वेच्छासे अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त होते हैं, उन गणनायककी मैं वन्दना करता हूँ। जिनका मुख हाथीके मुखके समान है, जो सर्वदेवोंमें श्रेष्ठ हैं, सुन्दर कानोंसे विभूषित हैं, उन पाश और अंकुश धारण करनेवाले श्रीगणपतिदेवकी मैं वन्दना करता हूँ।'

एकदन्तं महाकायं तप्तकाञ्चनसंनिभम्।
लम्बोदरं विशालाक्षं वन्देऽहं गणनायकम्॥
मुञ्जकृष्णाजिनधरं नागयज्ञोपवीतिनम्।
बालेन्दुकलिकामौलिं वन्देऽहं गणनायकम्॥
चित्ररत्नविचित्राङ्गं चित्रमालाविभूषणम्।
कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥
गजवक्त्रं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। २-३, ६-७)

श्रीगणेशके श्रीविग्रहका ध्यान परम मांगलिक और विघ्नहर है। उनका ध्यान करते ही, उनके सम्मुख होते ही समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं। महाकवि केशवदासने उनके मांगलिक रूपका वर्णन यों किया है—

गजमुख सनमुख होत ही विघन बिमुख ह्वै जात।
ज्यों पग परत पयाग-मग पाप-पहार बिलात॥

(कविप्रिया १। १)

श्रीगणेशजीके रूपका ध्यान करते ही उनके अंग-प्रत्यंग, परिधान, अंगराग, अलंकार और आभूषण आदि विचारके स्तरपर चित्रित हो उठते हैं।

अंग-प्रत्यंग, वस्त्र, अंगराग, अलंकार-आभूषण

श्रीगणेशजीके अनेक विग्रह उपलब्ध होते हैं। वे बालगणपति, तरुणगणपति, भक्तिविघ्नेश्वर, लक्ष्मीगणपति, महागणपति, उच्छिष्टगणपति, हेरम्बगणपति, प्रसन्नगणपति, ध्वजगणपति, हरिद्रागणपति, एकदन्त, केवलगणपति आदि अनेकों रूपोंमें अभिव्यक्त निरूपित किये गये हैं। कहीं वे चतुर्भुज हैं तो कहीं द्विभुज, षोडशभुज, अष्टभुज एवं षड्भुज रूपमें चित्रित हैं। उनके शरीरका वर्ण कहीं अरुणोदयकालीन सूर्यके रंगका बताया गया है तो कहीं वे शारदीय चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णवाले अंकित हैं। कहीं वे स्वर्णपिंगल हैं तो कहीं श्वेत और रक्तवर्णवाले चित्रित किये गये हैं। हेरम्बगणपति सिंहपर स्थित एवं पाँच मुखवाले अंकित किये गये हैं।

'सिंहोपरि स्थितं देवं पञ्चवक्त्रं गजाननम्।'

(शिल्परत्न २० वाँ अध्याय)

श्रीतत्त्वनिधि, मन्त्रमहोदधि, मन्त्ररत्नाकर, रूपमण्डन, शिल्परत्न, मन्त्रमहार्णव, अंशुमदभेदागम, उत्तरकामिकागम, सुप्रभेदागम आदि अनेक ग्रन्थोंमें श्रीगणेशजीके विभिन्न रूपोंके ध्यानका वर्णन प्राप्त होता है। 'वे प्रकृतिस्वरूप हैं, महत्तत्त्वरूप हैं, पृथ्वी और जलके रूपमें अभिव्यक्त हैं, दिगीशादिरूपमें प्रकट हैं; असत् और सत्—दोनों ही उनके स्वरूप हैं; वे जगत्‌के कारण हैं, सदा विश्वरूप-सर्वत्र व्यापक गणेशजीको हम सब नमस्कार करते हैं।' यथा—

प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धरावारिरूपं दिगीशादिरूपम्।
असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुभूतं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः॥

(गणेशपुराण, उपा० १३। १२)

सृष्टिकर्ता ब्रह्माने श्रीगणेशके सर्वांगका बड़ा मनोरम ध्यान किया है—'मोतियों और रत्नोंसे उनका मुकुट जटित है, सम्पूर्ण शरीर लाल चन्दनसे चर्चित है, उनके मस्तकपर सिन्दूर शोभित है, गलेमें मोतियोंकी माला है; वक्षःस्थलपर सर्प-यज्ञोपवीत है, बाहुओंमें बहुमूल्य रत्नजटित बाजूबंद है; उनकी अंगुलियोंमें मरकतमणिजटित अँगूठी है; उनके लम्बेसे उदरकी नाभि चारों ओरसे सर्पोंद्वारा वेष्टित है, रत्नजटित करधनी है, स्वर्णसूत्र-लसित लाल वस्त्र हैं, भालपर चन्द्रमा हैं, दाँत सुन्दर हैं और उनके हाथ शोभामय हैं।'

(द्रष्टव्य—गणेशपुराण, उपा० १४। २१—२५)

भगवान् गणेशके रूपका पार नहीं पाया जा सकता। 'गणेशमहिम्नःस्तोत्र' के रचयिता महामति पुष्पदन्तकी भाषामें केवल इतना ही कहकर संतोष करना पड़ता है कि वे अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त हैं—

'तथा नानारूपो विविधवदनः श्रीगणपतिः।'

(गणेशमहिम्नःस्तोत्र ५)

श्रीगणेशजी एकदन्त एवं महाकाय—विशाल शरीरवाले हैं। उनका रूप तप्तकांचनकी प्रभाके समान प्रकाशित है—

'एकदन्तं महाकायं तप्तकाञ्चनसंनिभम्।'

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। २)

उनके शरीरपर नवकुंकुमका अंगराग शोभित है—

'कृताङ्गरागं नवकुङ्कुमेन……।'

(शारदातिलक १३। १३५)

'शिवपुराण' में उन्हें विशालकाय, सर्वाभरणभूषित और रक्तवर्णका चित्रित किया गया है—

'रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम्।'

(कैलाससंहिता ७। १६)

उनका वस्त्र रक्तवर्णका बताया गया है तथा कंचुक पीला कहा गया है। वे किरीट-मुकुटसे जाज्वल्यमान हैं।

रक्तवस्त्रधरं वाथ श्यामाभं कनकप्रभम्।
पीतकञ्चुकसंछन्नं किरीटमुकुटोज्ज्वलम्॥

(उत्तरकामिकागम, पञ्चचत्वारिंशत्तम पटल)

उनका वस्त्र पीले रंगका और रेशमी है—

'पीतकौशेयवसनो हाटकाङ्गदभूषणः।'

(गणेशपुराण, उपा० २०। ३२)

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के गणपति-खण्डमें वर्णन उपलब्ध होता है कि 'गणेशजीको वह्निशुद्ध वस्त्र अग्निसे मिला था'—

'वह्निशुद्धं च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः।'

(१३। ९)

श्रीगणेशजीके अंगपर शोभित उत्तरीय अनेक तारागणोंसे युक्त व्योमकी शोभासे भी श्रेष्ठ कहा गया है—

'नानाताराङ्कितव्योमकान्तिजिदुत्तरीयकम्।'

(गणेशपुराण, उपा० १२। ३७)

श्रीगणेशजी मुंज और काले मृगका चर्म भी धारण करते हैं—

'मुञ्जकृष्णाजिनधरम्' (पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। ३)

श्रीगणेशजीके समस्त अंग-प्रत्यंग तथा अलंकार-आभूषण आदि उन्हींके स्वरूप होनेके नाते अपने-आपमें सम्पूर्ण हैं, उन्हींके अभिव्यक्त पूर्ण विग्रह हैं। उन्हें अलंकार-आभूषणोंकी प्राप्ति सूर्य, चन्द्र, वायु, लक्ष्मी, सावित्री और भारती आदिसे हुई है, ऐसा विवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके गणपतिखण्डके तेरहवें अध्यायके ८वेंसे ११वेंतकके श्लोकोंमें मिलता है। उनके आभूषण स्वर्णनिर्मित चित्रित किये गये हैं। वे हेमभूषणों तथा सुनहरे रंगके वस्त्रोंसे अलंकृत होकर उदयकालके सूर्यके समान दीप्तिमान् दीख पड़ते हैं।

'..................हेमभूषाम्बराढ्यं
गणेशं समुद्यद्दिनेशाभमीडे।'

(मन्त्रमहोदधि)

श्रीगणेशजीके समस्त अंग-प्रत्यंग सर्वाभरण-भूषित हैं—

'चिंतामणिमयजटित हेमभूषण गण बज्जत।'

(महाकवि गुमानमिश्रकृत नैषध-काव्य-भाषा १। १)

उनके चरणकमलकी महिमाका वर्णन उन्हींकी कृपासे सम्भव है। उनकी चरणधूलि, जो इन्द्रके मस्तकके मन्दार-पुष्पके मकरन्दकणोंके सम्मिश्रणसे अरुण वर्णकी हो गयी है, समस्त विघ्नोंका नाश कर देती है। यथा—

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नान् हरन्ते हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥

(बंगला 'स्तवकवचमाला')

श्रीगणेशजीके चरणोंकी महिमाको व्यक्त करते हुए प्रार्थना की गयी है कि 'हे देव! आपके दोनों चरणोंमें मन लगाकर मनुष्य विघ्न और पीड़ासे उसी तरह संतप्त नहीं होता, जिस तरह प्रकाशित सूर्य-बिम्बमें स्थित प्राणी कभी अन्धकार-बाधासे ग्रस्त नहीं होता।'

त्वदीये मनः स्थापयेदङ्घ्रियुग्मे
जनो विघ्नसंघान्न पीडां लभेत।
लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽयं
जनो ध्वान्तबाधां कथं वा लभेत॥

(गणेशपु०, उपा० १३। १३)

श्रीगणेशजीने चरणोंमें शोभित मंजीरको पद्मालया लक्ष्मीसे प्राप्त किया—

'मञ्जीरं चापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने।'

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० १३। १०)

उनके चरण बजते नूपुरोंसे सदा शोभित रहते हैं—

'किङ्किणीगणरणितस्तव चरणः।'

(गणेशपु०, उपा० ४६। २२३)

उनके चरणोंमें ध्वजा, अंकुश, ऊर्ध्वरेखा, कमल आदि चिह्नित रहते हैं। भगवती पार्वतीको उपर्युक्त चिह्नोंसे युक्त श्रीगणेशजीके चरणकमलका दर्शन प्राप्त हुआ था—

'ध्वजाङ्कुशोर्ध्वरेखाब्जचिह्नितं पादपङ्कजम्।'

(गणेशपु०, क्रीडा० ८१। ३४)

श्रीगणेशजीके चरण और उनमें शोभित तथा बजते नूपुरोंका वर्णन करना बड़ा ही कठिन है; क्योंकि वे अनन्त हैं, असंख्य हैं। साक्षात् शिवजीका उनके सम्बन्धमें कथन है—

'योऽनन्तशीर्षानन्तश्रीरनन्तचरणः स्वराट्।'

(गणेशपु०, क्रीडा० ७९। २७)

श्रीगणेशजीके चरण और उनमें अलंकृत आभूषणोंका वर्णन उनकी कृपासे ही सम्भव है। ऋषि-मुनि और संत-महात्मा तथा रससिद्ध कवीश्वर ही चरण और उनमें शोभित आभूषणोंकी तत्त्वानुभूति कर पाते हैं। ज्ञानेश्वर महाराजने श्रीमद्भगवद्गीताकी स्वरचित टीका 'ज्ञानेश्वरी'के पहले अध्यायमें श्रीगणेशजीके रूपके मांगलिक ध्यानमें सम्पूर्ण साहित्यको उनकी मनोहर मूर्ति स्वीकार किया है। महाराजकी उक्ति है—

'हे शब्दब्रह्म अशेष। ते चि मूर्ति सुवेष॥'

(ज्ञानेश्वरी १। ३)

महाराजने शब्दब्रह्म—साहित्यस्वरूप श्रीगणेशके ओंकाररूपका विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उनके दोनों चरणोंको 'अकार' बताया है, उनका विशाल उदर 'उकार' है तथा उनके मस्तकका 'महामण्डल' 'मकार' है। अकार, उकार और मकारके योगसे ॐकार सिद्ध होता है, जिसमें समस्त साहित्य-संसार समाविष्ट है—

अकार चरण युगुल । उकार उदर विशाल॥
मकार महामण्डल । मस्तकाकारें ॥
हे तिन्ही एक वटले । ते थें शब्दब्रह्म कवललें॥
(ज्ञानेश्वरी १। १९-२०)

संत समर्थ रामदासजीने 'दासबोध'—ग्रन्थमें श्रीगणेशजीके सगुणरूपका चिन्तन करते हुए उनके चरण और उनमें शोभित नूपुरों और घुँघुरुओंका बड़ा भव्य चित्रण किया है—

रुणझुणी बाजती नेपुरें । वांकी बोभाटती गजरें॥
घागरियासहित मनोहरें । पाउलें दोनी॥
(दासबोध १। २। २३)

आशय यह है कि 'श्रीगणेशके चरणोंमें नूपुर रुनझुन बज रहे हैं और पैंजनीकी झनकार हो रही है। घुँघुरुओंसे दोनों चरण सुशोभित हैं।'

श्रीगणेशजीका कटिदेश बड़ा रमणीय है। कमरमें पीताम्बर शोभित है। 'दासबोध'में उनके कटिदेश, उदर, नाभि-कमल तथा आभरणकी मनोरम झाँकी मिलती है। तोंदपर साँपका पट्टा पड़ा है, वह थलथलाती है। साँपका फन फड़कता है और वह फुफकारता है, फन हिलाता है, जीभ लपलपाता है, नाभि-कमलपर कुण्डलित है तथा एकटक देखता है। अनेक प्रकारके फूलोंकी माला गलेसे उस नागतक लटकती है तथा हृदय-कमलपर रत्नजटित पदक है—

चतुर्भुज लम्बोदर । कांसे कासिला पीताम्बर॥
फड़के दोंदिचा फणीवर । धुधुकार टाकी॥
डोलवी मस्तक जिव्हा लाली । घालूनि बैसला वेंटाली॥
उभारोनि नाभिकमलीं । टकमकां पाहे॥
नाना याति कुशममाला । व्यालपरियंत रुलती गलां॥
रत्नजडित हृदय कमला । वरी पदक शोभे॥
(दासबोध १। २। १७—१९)

श्रीज्ञानेश्वरने साहित्यमूर्ति गणेशजीके रूप-वर्णनमें कहा है कि 'व्यास आदि कवियोंका प्रतिभारूपी गुण ही जरीदार पटका अथवा कमरबंद है और इस पटकेपर घुँघुरुओंकी झालर झलकती है'—

तेथ व्यासादिकांचि या मती । तेचि मेखला मिरवती॥
चोखालपणें झलकती । पल्लव सडका॥
(ज्ञानेश्वरी १। ९)

श्रीगणेशजीके बड़े उदरकी नाभिके चारों ओर सर्प आवृत हैं तथा विचित्र रत्नजटित कटिसूत्रसे उनकी शोभा समलंकृत है—

महाहिवेष्टितबृहन्नाभिशोभि महोदरम्॥
विचित्ररत्नखचितकटिसूत्रविराजितम् ।
(गणेशपुराण, उपा० १४। २३-२४)

श्रीगणेशजीका कटिसूत्र स्वर्णनिर्मित है—
'**कटिसूत्रं काञ्चनीयम्।**' (गणेशपु०, उपा० २०। ३३)

गणेशपुराणके क्रीडाखण्डमें वर्णन मिलता है कि देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गणेशजीने उनको दर्शन दिया था। उनके उदरमें व्याल आवृत था—
'**व्यालबद्धोदरं विभुम्।**' (गणेशपु०, क्रीडा० ७८। ३१)

श्रीगणेशजीद्वारा अहिवेष्टन तथा उनके लम्बोदर होनेके अनेक प्रसंग पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं। 'ब्रह्मपुराण'में वर्णन मिलता है कि शिवजीने गणेशका नाम 'लम्बोदर' रख दिया था। यद्यपि गणेशजी पूर्ण तृप्त थे, तथापि अधिक देरतक माताके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगें। उनकी बुद्धिमें बालस्वभावके कारण भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने विनोदमें कहा—"विघ्नराज! तुम बहुत दूध पीते हो। इसलिये 'लम्बोदर' हो जाओ।" ऐसा कहकर उन्होंने श्रीगणेशजीका नाम 'लम्बोदर' रख दिया।

पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराज लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः॥
(ब्रह्मपुराण ११४। ११)

महर्षि व्यासने लम्बोदर एवं विशालाक्षरूपमें श्रीगणेशजीकी स्तुति की है—
'**लम्बोदरं विशालाक्षं वन्देऽहं गणनायकम्।**'
(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। २)

श्रीगणेशजीका वक्षःस्थल स्थूल—विशाल है। पार्वतीजीके पूजनसे प्रसन्न होकर गणेशजी प्रकट हो गये। पार्वतीने उनके स्थूल वक्षका दर्शन किया—
.....'**स्थूलवक्षसमीश्वरम्।**' (गणेशपुराण, उत्तर० ८१। ३३)

उनके वक्षःस्थलपर नागयज्ञोपवीत शोभित रहता है—
'**सर्पयज्ञोपवीतिनम्।**' (गणेशपुराण, उपा० १४। २२)

श्रीगणेशजीके शुक्ल यज्ञोपवीतका वर्णन 'उत्तरकामिकागम' में उपलब्ध होता है—
'**शुक्लयज्ञोपवीतं च सर्वाभरणभूषितम्।**'
(पञ्चचत्वारिंशत्तम पटल)

उनके कण्ठमें रत्न और मणिजटित मालाएँ तथा पुष्पोंकी मालाएँ शोभित हैं। उन्हें कण्ठभूषण सावित्रीसे मिला तथा हारकी प्राप्ति भारतीसे हुई—

'कण्ठभूषां च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम्।'

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० १३। ११)

ब्रह्माने मोतियोंकी मालासे विलसित श्रीगणेशके कण्ठका ध्यान किया था—

'मुक्तादामलसत्कण्ठम्।'

(गणेशपुराण, उपा० १४। २२)

समर्थ रामदासजीने गणेशजीके गलेमें शोभित पुष्पमालाका वर्णन किया है—

'नाना याति कुशममाला .... रुलती गलां।'

(दासबोध १। २। १९)

श्रीगणेशजी अपने कण्ठमें माणिक्यमाला धारण करते हैं। इसको उन्होंने चन्द्रमासे प्राप्त किया था—

'माणिक्यमालां चन्द्रश्च' (ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० १३। ८)

वे मुण्डोंकी माला भी धारण करते हैं। ऐसा वर्णन मिलता है कि श्रीनारदकी सम्मतिसे त्रिपुरासुरको हरानेके लिये शिवजीने दण्डकवनमें घोर तप किया था। उनके मुखसे एक श्रेष्ठ पुरुष निकलकर प्रकट हो गया। शिवजीने देखा कि उसके पाँच मुख हैं, दस हाथ हैं, ललाटमें चन्द्रमा है, वह चन्द्रमाके समान प्रभासे युक्त है, उसने मुण्डोंकी माला पहन रखी है, उसके सर्पोंके गहने हैं एवं वह मुकुट तथा बाजूबंदसे भूषित है। वे पंचमुखविनायक थे—

ततस्तस्य मुखाम्भोजान्निर्गतस्तु पुमान् परः॥
पञ्चवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दुः शशिप्रभः।
मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः॥

(गणेशपु०, उपा० ४४। २५-२६)

श्रीव्यासजीने **'चित्रमालाविभूषणम्'** कहकर उनकी वन्दना की है। आशय यह है कि वे अनेक प्रकारकी मालाएँ पहनते हैं—

चित्ररत्नविचित्राङ्गं चित्रमालाविभूषणम्।
कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। ६)

महाकवि चन्दबरदाईने अपने 'पृथ्वीराजरासो' में श्रीगणेशस्तवनके प्रसंगमें उनको गुंजाहार धारण करनेवालेके रूपमें चित्रित किया है—

सीस जा मद गंध राग रुचियं, अलि भूव आच्छादिता।
गुंजाहार गुनंजयाय गुन जा, रुंझा पया भासिता॥
अग्रे जा श्रुति कुंडलं करि कर! थुंद्दीर उद्दारयं।
सोऽयं पातु गणेस-सेस सफलं प्रिथराज काव्यं कृते॥

(१। १४)

'भ्रमरोंने जिनके मद-गन्धयुक्त भालस्थल और भृकुटीको अनुराग और रुचिसे आच्छादित किया है, जिनके गलेमें गुंजाहार शोभित है, जो अपने गुणोंसे गुणियोंको वशमें कर लेते हैं, जिनके पैरोंमें रुंझा एक प्रकारका आभूषण शोभित है, कानोंमें कुण्डल हैं, हाथीकी सूँड़के समान जिनकी उन्नत सूँड़ है, ऐसे प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाले श्रीगणेश पृथ्वीराज-काव्यकी रचनामें मेरे सहायक बनें।'

गणेशजीके अनन्त चरण हैं, अनन्त सिर हैं तो अनन्त कर भी हैं, उनके ये कर—हाथ उपयुक्त आभरणों, अलंकारों और आयुधों तथा मुद्राओंसे विभूषित हैं—

'पाशाङ्कुशेष्टदशनान् दधानं करपङ्कजैः॥'

(शिवपुराण, कैलाससंहिता ७। १६)

उनके हस्तके सम्बन्धमें ध्यान करनेके लिये अनेक प्रकारके विवरण 'श्रीतत्त्वनिधि' आदि ग्रन्थोंमें उपलब्ध होते हैं। श्रीतरुणगणपतिके ध्यानमें उल्लेख है—

पाशाङ्कुशापूपकपित्थजम्बू-
स्वदन्तशालीक्षुमपि स्वहस्तैः।
धत्ते सदा यस्तरुणारुणाभः
पायात् स युष्मांस्तरुणो गणेशः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

हेरम्ब-गणपतिके ध्यानमें अभय और वरद मुद्रायुक्त हस्तका वर्णन मिलता है—

अभयवरदहस्तः पाशदन्ताक्षमाला-
सृणिपरशु दधानो मुद्गरं मोदकं च।
फलमधिगतसिंहः पञ्चमातङ्गवक्त्रो
गणपतिरतिगौरः पातु हेरम्बनामा॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

समर्थ रामदासजीने चतुर्भुज गणेशके हाथकी शोभाका वर्णन किया है—

शोभे फरश आणी कमल। अंकुश तीक्ष्ण तेजाल।
येके करीं मोदक गोल। तयावरी अति प्रीति॥

(दासबोध १। २। २०)

आशय यह है कि 'हे देव! आपके हाथोंमें परशु और कमल शोभित हैं, तीक्ष्ण अंकुश चमक रहा है। एक हाथमें गोल मोदक है, जिसपर आपकी बहुत प्रीति है।'

श्रीगणेशजीके हाथोंमें रत्नजटित अँगूठियोंकी शोभा बड़ी मनोहर है। श्रीगणेशजीको अंगुलीयककी प्राप्ति वायु-देवतासे हुई थी—

'वायू रत्नाङ्गुलीयकम्॥' (ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० १३।९)

गणेशपुराणमें भी उनकी रत्नसंयुत मुद्रिकाका उल्लेख मिलता है—

'मुद्रिकां रत्नसंयुताम् ।' (उपा० २०। ३३)

गणेशपुराणमें ही उनकी मरकतमणिजटित अँगूठीका वर्णन है—

'स्फुरन्मरकतभ्राजदङ्गुलीयकशोभितम्।'

(उपा० १४। २३)

श्रीगणेशजीके हाथकी कलाईमें सुन्दर वलय-कंकण हैं। ये कंकण क्षीरसागरसे उत्पन्न दिव्यरत्नोंसे निर्मित हैं। साक्षात् भगवती लक्ष्मीसे ये उन्हें प्राप्त हुए थे।

क्षीरोदोद्भवसद्रत्नरचितं वलयं वरम्।

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० १३। १०)

भगवती लक्ष्मीने उन्हें केयूर—भुजबंद दिये थे—

'.......... केयूरं ददौ पद्मालया मुने।'

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० १३। १०)

उनके बाहुभूषण बहुमूल्य रत्नोंसे जटित हैं—ऐसा गणेशपुराणमें वर्णन मिलता है। ब्रह्माजीद्वारा उनके रूपका ध्यान किया गया है—

'अनर्घ्यरत्नघटितबाहुभूषणभूषितम्॥'

(उपा० १४। ३२)

गणेशपुराणमें ही उनके सोनेके अंगद—बाजूबंदका भी वर्णन मिलता है—

'हाटकाङ्गदभूषणः ॥' (उपा० २०। ३२)

श्रीगणेशजीके मुखमण्डल और उसमें शोभित विभिन्न आभरणोंका सांगोपांग वर्णन समर्थ रामदासद्वारा 'दासबोध' में गणेश-स्तुतिके प्रसंगमें प्रस्तुत किया गया है। संत समर्थका कथन है कि 'उनका भव्यरूप और भीममूर्ति महा प्रचण्ड है। विस्तीर्ण और उन्नत मस्तक सिन्दूरसे चर्चित है। उनके गण्डस्थलसे अनेक प्रकारकी सुगन्धियाँ निकलती हैं और भ्रमर उसपर गुंजार करते हैं। सूँड़ सरल और मुड़ी है। उनके अभिनव कपोल शोभित हैं। अधर लम्बा है, उसमेंसे क्षण-क्षणमें तीक्ष्ण मद टपकता है। वे चौदहों विद्याओंके स्वामी अपनी छोटी-छोटी आँखें हिला रहे हैं और उनके कोमल तथा लचीले कान फड़फड़ा रहे हैं। उनका रत्नजटित मुकुट झलमला रहा है और उसपर अनेक प्रकारके रंग चमक रहे हैं। उनके कुण्डलोंमें जड़े नीलम चमक रहे हैं। दृढ़ और शुभ्र दाँतमें सोनेके कड़े शोभित हैं और उनके नीचे छोटे-छोटे स्वर्णपत्र चमकते हैं—

भव्य रूप वितंड। भीममूर्ति माहा प्रचंड।
विस्तीर्ण मस्तकीं उदंड। सिंधूर चर्चिला॥
नाना सुगंध परिमलें। थबथबां गलती गंडस्थलें।
तेथें आलीं षट्पदकुलें। झंकार-शब्दें ॥
मुंर्डीव शुंडादंड सरलें। शोभे अभिनव आवालें।
लंबित अधर तीक्ष्ण गले। क्षणक्षण मंदसत्वी॥
चौदा विद्यां चा गोसावी। हरस्व लोचन ते हिलावी।
लवलवित फड़कावीं। फडै फडै कर्णथापा॥
रत्नखचित मुगुटीं झलील। नाना सुरंग फांकती कील।
कुंडले तलपती नील। वरी जड़ले झमकती॥
दंत शुभ्र सद्दट। रत्नखचित हेमकट्ट।
तया तलवटीं पत्रं नीट। तलपती लघुलघू॥

(१। २। १०—१५)

शब्दब्रह्म—साहित्यमूर्ति गणेशजीके उपर्युक्त मुखमण्डलकी शोभाका वर्णन आलंकारिक भाषामें संत ज्ञानेश्वरने अपनी ज्ञानेश्वरीमें प्रस्तुत की है। महाराजका कथन है कि 'हे देव! महासुखके परमानन्दकी प्राप्ति करानेवाला निर्मल सुविचार ही आपका सरल शुण्ड-दण्ड है। मतभेदोंका परिहार करानेवाला संवाद ही आपका अखण्डित और शुभ्रवर्णवाला दाँत है। उन्मेष अथवा ज्ञानतेजके स्फुरण आपके चमकते सूक्ष्म नेत्र हैं। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा ही दोनों कान हैं और इन्हीं दोनों कानोंपर मुनिरूपी भ्रमर गण्डस्थलसे बहनेवाले बोधरूपी मद-रसका पान करते हैं। तत्त्वार्थरूपी प्रवाल-से चमकनेवाले द्वैत और अद्वैत दोनों गण्डस्थल हैं। ये दोनों बहुत ही संनिकट होनेके कारण मिलकर प्रायः एक-से हो गये हैं। ज्ञानरूपी मकरन्दसे ओतप्रोत दसों प्रमुख उपनिषदें ही

मधुर सुगन्धवाले फूलोंके मुकुटके समान मस्तकपर शोभित हैं'—

देखा विवेकवंतु सुविमलु तोचि शुंडादंडु सरलु॥
जेथ परमानन्दु केवलु ब्रह्मसुखाचा॥
तरी संवादु तोचि दशनु जो समता शुभ्रवर्णु॥
देवो उन्मेष सूक्ष्मेक्षणु विघ्नराजु॥
मजअवगमलिया दोनी मीमांसा श्रवणस्थानीं॥
बोधमदामृत मुनी अलीसेविती॥
प्रमेय प्रवाल सुप्रभ द्वैताद्वैत तेचि निकुंभ॥
सरिसे एकवटत इभ मस्तकावरी॥
उपरिं दशोपनिषदें जियें उदारें ज्ञान मकरन्दें॥
तियें कुसुमें मुगटीं सुगंधें शोभती भलीं॥

(१। १४—१८)

मतंगानन श्रीगणेशजीकी सूँड़ और उनके दाँतकी महिमा अकथनीय है। महाकवि गुमानमिश्रने अपने नैषधकाव्य (भाषा)-में भगवान् मतंगाननका स्तवन किया है—

गान सरस अलि करत परस मद मोद रंग रचि।
उघटत ताल रसाल करन चल चाल चोप सचि॥
चिंतामणिमय जटित हेम भूषण गण बज्जत।
चलत लोलगति मृदुल अंग नव तुंड बसज्जत॥
लखि प्रणति समय मुख तात को बिहँसि मातु लिय लाय उर।
जय जय मतंग-आनन अमल जय जय जय तिहुं लोक गुर॥

(१। १)

श्रीगणेशजीकी सूँड़ ऐरावत आदि दिक्पालोंके मनमें भी भय पैदा कर देती है—

'ऐरावतादिदिक्पालभयकारिसुपुष्करम्।'

(गणेशपु०, उपा० १२। ३८)

श्रीगणेशजी अपनी सूँड़से विनोद करके ब्रह्मा आदिके मनमें आनन्दका सृजन करते हैं। श्रीब्रह्माजीको स्वप्नमें प्रलयका दर्शन हुआ। उन्होंने जलमें वटवृक्ष देखा। उसके पत्तेपर बालगणेश दीख पड़े; उन्होंने अपनी सूँड़से ब्रह्माजीपर जल फेंका; वे गणेशजीके इस विनोदसे चिन्तित तथा आनन्दित होकर जोर-जोरसे हँस उठे। ब्रह्माकी उक्ति है—

एकदन्तं नरवपुर्गजास्यं तेजसा ज्वलत्।
दृष्ट्वैवं तर्कयामास बालकं कथमत्र वै॥
पुष्करेण च बालोऽसौ जलं मन्मस्तकेऽक्षिपत्।
ततोऽहमाजहासोच्चैश्चिन्तानन्दसमन्वितः॥

(गणेशपुराण, उपा० १५। ६-७)

श्रीगणेशजीकी सूँड़ कमल-मालासे अलंकृत कही गयी है। इन्द्रके तपसे प्रसन्न होकर निखिलदेवमूर्ति सिन्दूर-शोभित गणेशजीने उनके समक्ष अपना रूप प्रकट किया। उनका शुण्ड-दण्ड बहुत मोटा और लम्बा था। उनके नेत्र कमलके समान थे। भालदेश कमलकी मालासे सुशोभित था—

यः पुष्कराक्षः पृथुपुष्करोऽपि
बृहत्करः पुष्करशालिमालः।
आविर्बभूवाखिलदेवमूर्तिः
सिन्दूरशाली पुरतो मघोनः॥

(गणेशपु०, उपा० ३४। ५)

अक्षरगणपतिके रूपके ध्यानमें उनकी सूँड़ मोदकसे युक्त निरूपित की गयी है—

'पुष्करैर्मोदकं चैव धारयन्तमनुस्मरेत्।'

(श्रीतत्त्वनिधि)

महाकवि रत्नाकरने श्रीगणेशजीकी सूँड़का कार्य निरूपित करते हुए कहा है कि 'उनकी सूँड़के संचालनसे दुःख-दारिद्र्य विनष्ट हो जाते हैं, पाप और दुर्भाग्य डरकर मार्गसे अलग हट जाते हैं। अपने भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये गणेश अपनी माँकी गोदसे मचलकर उतर पड़ते हैं'—

केते दुख दारिद बिलात सुंड-चालन मैं,
कसमस हालन मैं केते पिचले परैं।
कहै रतनाकर दुरित दुरभाग भागि,
मग तैं बिलग बेगि त्रासनि चले परैं॥
देखि गननाथ जू अनाथनि कौं जोरे हाथ,
थपकत माथहूँ न नैंकु निचले परैं।
मोदक लै मोद देन काज जब भक्तनि कौं
गोद तैं उमा के मचलाइ बिचले परैं॥

(गणेशाष्टक ७)

श्रीगणेशजीको 'वक्रतुण्ड' कहा जाता है। 'वक्र' मायारूप स्वीकृत है और 'तुण्ड' ब्रह्मवाचक। उनके 'वक्रतुण्ड' कहे जानेके कारणका उल्लेख 'मुद्गलपुराण' में हुआ है—

मायासुखं मोहयुतं तस्माद् वक्रमिति स्मृतम्।
तुण्डं ब्रह्म तयोर्योगे वक्रतुण्डोऽयमुच्यते॥

कण्ठाधो मायया युक्तो मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं तस्य विप्रेश तेनायं वक्रतुण्डकः॥

"मायामय सुख मोहयुक्त है; अतः वह 'वक्र' कहा जाता है, 'तुण्ड' शब्द ब्रह्मका बोधक है। उन दोनोंका योग होनेसे ये गणेश 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं। उनके कण्ठके नीचेका भाग मायायुक्त—'वक्र' है और तुण्ड (मस्तक) ब्रह्मवाचक है; इस कारण ये 'वक्रतुण्ड' हैं।"

भगवान् गजाननकी सूँड़ दाहिने तथा बायें—दोनों ओर मुड़ी हुई निरूपित की जाती है। विशेषतः यह बायें ओर ही मुड़ी रहती है। श्रीगोपीनाथ रावने अपनी पुस्तक 'एलीमेंट्स् आफ हिंदू आइकोनोग्राफी' के प्रथम खण्डमें स्वीकार किया है कि श्रीगणेशजीकी सूँड़ जब दक्षिण ओर मुड़ी रहती है, तब उन्हें तमिल भाषामें 'वलम्बुरि' कहा जाता है और बायीं ओर मुड़ी रहनेपर वे 'इडम्बुरि विनायक' कहे जाते हैं। 'वलम्' को दक्षिण और 'इडम्' को बायाँ कहा जाता है।

श्रीगणेशजी 'एकदन्त' कहे जाते हैं। उनका मुख एक ही दाँतसे अलंकृत है। एकदन्त-गणपति प्रकृति-पुरुषकी एकताके प्रतीक अथवा द्योतक हैं। उनके एकदन्त होनेका तात्त्विक निरूपण मुद्गलपुराणमें उपलब्ध होता है। 'एक' मायाका प्रतीक है और 'दन्त' मायाचालक सत्ताका सूचक है।

महाकवि रत्नाकरने अपने एक कवित्तमें श्रीगणपतिके एकदन्तकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि 'एक दाँत सारे पापोंका नाश करता है, दूसरे दाँतकी सत्ताकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती'—

एकै दंत सकल दुरंतनिकौ अंत करै,
दंत दूसरे की तंत तनक रही नहीं॥

(गणेशाष्टक ५)

महाकवि केशवदासने श्रीशिवजीके पुत्र गणेशजीके दाँतकी कीर्तिका वर्णन किया है और उसके विघ्नविनाशक रूपपर प्रकाश डाला है—

सत्त्व सत्त्व गुन को कि सत्य ही की सत्या सुभ,
सिद्धि की प्रसिद्धि की सुबुद्धि-बृद्धि मानियै।
ज्ञान ही की गरिमा कि महिमा बिबेक की कि
दरसन ही को दरसन उर आनियै॥
पुन्य को प्रकास बेद-बिद्याको बिलास किधौं,
जसको निवास 'केसोदास' जग जानियै।
मदन-कदन-सुत-बदन-रदन किधौं,
बिघन-बिनासनकी बिधि पहिचानियै॥

(कविप्रिया १।३)

श्रीगणेशजीके एकदन्त होनेकी अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। उनमेंसे दो कथाएँ दी जाती हैं। एक कथामें यह बताया गया है कि गणेशजीसे गजासुर दैत्यका युद्ध हुआ; इसमें उनका दाहिना दाँत टूट गया। उन्होंने उससे गजासुरपर प्रहार किया और वह मूषक बनकर भागने लगा। गणेशजीने उसको पकड़कर अपना वाहन बना लिया। दूसरी प्रमुख कथा परशुरामजीसे सम्बन्धित है। ब्रह्मवैवर्त्त और ब्रह्माण्डपुराणमें इसका वर्णन मिलता है। श्रीविष्णुने भगवान् शंकरसे कहा कि "परशुरामजीके फरसेसे जब इनका (श्रीगणेशजीका) एक दाँत टूट जायगा, तब ये अवश्य ही 'एकदन्त' नामवाले होंगे।"

पर्शुना पर्शुरामस्य यदैकदन्तखण्डनम्।
भविष्यति निश्चयेन चैकदन्ताभिधः शिशुः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ६।९६)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके गणपति-खण्डमें वर्णन है कि परशुरामने शिवजीके परशुसे कार्तवीर्यका वध किया और उन्हें प्रणाम करनेके लिये वे कैलास गये। उस समय शंकरजी पार्वतीके साथ अन्तःपुरमें थे, अतः गणेशजीने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया। परशुरामजीने उनपर फरसा उठा लिया। गणेशजीने परशुरामके शिवजीद्वारा प्रदत्त अस्त्रको अमोघ करनेके लिये अपने बायें दाँतसे पकड़ लिया। तब महादेवजीके बलसे वह फरसा गणेशजीके दाँतको समूल काटकर परशुरामजीके हाथमें लौट आया। वह दाँत रक्तसे सनकर शब्द करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। ऐसा लगता था, मानो गेरुसे युक्त स्फटिक-पर्वत गिर पड़ा हो—

पितुरव्यर्थमस्त्रं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम्।
जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह॥
पपात भूमौ दन्तश्च सरक्तः शब्दमुच्चरन्।
यथा गैरिकयुक्तश्च महास्फटिकपर्वतः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ४३।३३, ३६)

उपर्युक्त कथा ब्रह्माण्डपुराणके मध्यभागके तृतीय उपोद्घातके बयालीसवें अध्यायमें भी वर्णित है। गणेशजी 'एकदन्त'—संज्ञासे विभूषित हो गये। विष्णुने पार्वतीसे कहा कि "आपके पुत्रका 'एकदन्त' नाम वेदोंमें विख्यात है, सभी देवता उन्हें नमस्कार करते हैं।"

पुत्राभिधानं वेदेषु पश्य वत्से वरानने।
एकदन्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ४४। ८३)

श्रीशंकराचार्यने अत्यन्त रमणीय दन्तकी शोभासे युक्त श्रीएकदन्तका चिन्तन किया है—

नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मज-
मचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम् ।
हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि संततम्॥

(श्रीगणेशपञ्चरत्न—५)

आचार्यका स्तवन है कि 'जिनकी दन्तकान्ति अत्यन्त रमणीय है, जिनका रूप अचिन्त्य है, जिनका अन्त नहीं है, जो योगियोंके हृदयमें सदा अधिष्ठित हैं, मैं उन मृत्युंजयनन्दन, विघ्नेश्वर, एकदन्तका चिन्तन करता हूँ।'

श्रीगणेशजीके गण्डस्थल-कनपटीकी अद्भुत शोभा है। उसपर विलसित मद-गन्धसे लुब्ध मधुपोंका दल रमणशील है। एक श्लोकमें उनके गण्डस्थलके सौन्दर्यका इस प्रकार वर्णन है—

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥

(बँगला स्तवकवचमाला)

श्रीगणेशजीकी नाक बड़ी शोभामयी है। उसका वर्णन यों मिलता है—

'सुनासं शुभ्रवदनं स्थूलवक्षसमीश्वरम्।'

(गणेशपुराण, क्रीडा० ८१। ३३)

वे तीन नेत्रोंसे विभूषित कहे गये हैं। इसका भी उपर्युक्त संदर्भगत श्लोकमें ही वर्णन है—

'षड्भुजं चन्द्रसुभगं लोचनत्रयभूषितम्।'

(गणेशपुराण, क्रीडा० ८१। ३३)

ऐसे तो गणेशजी अनन्त श्रुति और नेत्रोंसे सम्पन्न हैं, पर वर्णन तीन नेत्र और दो ही कानोंका उपलब्ध होता है—

'अनन्तश्रुतिनेत्रश्च' (गणेशपुराण, क्रीडा० ७९। २८)

श्रीव्यासजीने उन्हें 'चारुकर्णविभूषित' कहा है। उन्होंने श्रीगणेशजीकी वन्दना की है—

गजवक्त्रं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। ७)

'उनके कर्ण-कुण्डलोंसे तेज झरता रहता है। ऐसा लगता है, मानो वे दो सूर्यबिम्ब हों'—

'कुण्डले प्रावहच्छुत्योः सूर्यबिम्बे इवापरे॥'

(गणेशपुराण, उपा० २१। ३३)

मणिकुण्डलोंकी प्राप्ति गणेशजीको सूर्यसे हुई थी—

'सूर्यश्च मणिकुण्डले।' (ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणपति० १३। ८)

श्रीगणेशजीका मस्तक सिन्दूरसे अरुण तथा मुकुटसे विभूषित रहता है—

मुकुटेन विराजन्तं मुक्तारत्नयुजा शुभम्।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं सिन्दूरारुणमस्तकम्॥

(गणेशपुराण, उपा० १४। २१)

उनके मस्तकपर कस्तूरीका भव्य तिलक शोभित रहता है। देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गणेशजीके प्रकट होनेके प्रसंगमें इसकी पुष्टि होती है—

'क्षुद्रघण्टाक्वणत्पादं कस्तूरीतिलकोज्ज्वलम्।'

(गणेशपुराण, क्रीडा० ७८। ३१)

श्रीगणेशजी अपने विराट् रूपमें अनन्तशीर्षयुक्त हैं—

यो देवः सर्वभूतेषु गूढश्चरति विश्वकृत्।
योऽनन्तशीर्षानन्तश्रीरनन्तचरणः स्वराट्॥

(गणेशपुराण, क्रीडा० ७९। २७)

श्रीगणेशजीके मस्तकका अलंकार चन्द्रमा है, जिसका वर्णन यों उपलब्ध होता है—

'भालचन्द्रं लसद्दन्तं शोभाराजत्करं परम्।'

(गणेशपुराण, उपा० १४। २५)

श्रीव्यासजीने बालचन्द्रमासे शोभित मस्तकवाले श्रीगणेशकी वन्दना की है—

'बालेन्दुकलिकामौलिं वन्देऽहं गणनायकम्।'

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। ३)

रहीम खानखानाने शिशु-शशिसे अलंकृत मस्तकवाले ऋद्धि और सिद्धिके विधायक, निर्मल-बुद्धिके प्रकाशक तथा विघ्नोंके नाशक श्रीगणेशजीकी वन्दना की है—

बन्दहुँ बिघन-बिनासन ऋधि-सिधि ईस।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन सिसु-ससि-सीस॥

(रहीमरत्नावली)

श्रीगणेशजीके मस्तकका आभूषण रत्नजटित मुकुट

है। उसका वर्णन यों मिलता है—

'रत्नकाञ्चनमुक्तावन्मुकुटभ्राजिमस्तकः।'

(गणेशपुराण, उपा० २०। ३२)

उन्हें किरीटकी प्राप्ति कुबेरसे हुई थी। जैसा कि उल्लेख है—

'कुबेरश्च किरीटकम्।' (ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३। ८)

श्रीगणेशजीके आभरणोंका वर्णन पूर्णरूपसे करना बहुत ही कठिन है। यहाँ जितना वर्णन सम्भव हो सका है, उतनेहीमें संतोष करना पड़ता है।

आयुध आदि

श्रीगणेशजी विघ्नोंके नाशक हैं। उनके असंख्य आयुध हैं, जिनका उपयोग निस्संदेह विघ्नोंको नष्ट करनेके लिये निरन्तर होता रहता है। प्रधान रूपसे आयुध दस कहे गये हैं। वे वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म और चक्र हैं। शक्ति और गदाकी गणना स्त्रीलिंगमें है। चक्र और पद्म नपुंसकलिंगमें परिगणित हैं तथा शेष छः आयुध पुँल्लिंगमें गणित हैं—

दशायुधप्रतिष्ठां तु वक्ष्ये लक्षणपूर्वकम्।
वज्रं शक्तिं च दण्डं च खड्गं पाशं तथाङ्कुशम्॥
गदा त्रिशूलं पद्मं च चक्रं चेति दशायुधम्।

* * *

जाये शक्तिगदे ज्ञेये चक्रपद्मे नपुंसके।
शेषाः पुमांसो विज्ञेयास्त्वष्टतालविनिर्मिताः॥

(उत्तरकामिकागम, अष्टषष्टितम पटल)

त्रिपुरासुरको पराजित करनेके लिये नारदके उपदेशसे तपद्वारा शिवजीने गणेशजीको प्रसन्न कर लिया। वे उनके सामने प्रकट हो गये। वे पंचमुख विनायक थे। वे दस भुजाओं और आयुधोंसे युक्त थे—

पञ्चवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दुः शशिप्रभः।
मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः॥
अग्न्यर्कशशिनो भाभिस्तिरस्कुर्वन्दशायुधः॥

(गणेशपुराण, उपा० ४४। २६-२७)

समर्थ रामदासने उनके हाथोंमें भूषित परशु, कमल और अंकुशकी शोभाका वर्णन किया है—

'शोभे फरश आणि कमल। अंकुश तीक्ष्ण तेजाल।'

(दासबोध २। २। २०)

श्रीगणेशजीके हाथ उपर्युक्त दस आयुधोंसे विभूषित होनेके साथ-ही-साथ ध्वजा, बाण, धनुष, कमण्डलु, इक्षुदण्ड, दन्त, मुद्गर आदिसे भी युक्त हैं तथा वे श्रीगणपति अनेक श्रीविग्रहोंमें वर्णित हैं। श्रीगणेशजीके प्रायः सभी श्रीविग्रहोंके हाथमें अंकुश रहता है। श्रीव्यासजीने अंकुशधारी गणेशकी वन्दना की है—

'पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥'

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। ७)

श्रीगणेशजी अंकुश अपने पिछले दाहिने हाथमें धारण करते हैं। 'श्रीतत्त्वनिधि' में श्रीसंकष्टहरणगणपतिके ध्यानमें कहा है—**'दक्षेऽङ्कुशवरदानं वामे पाशं च पायसं पात्रम्।'** एलीमेन्ट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी' के प्रथम खण्डमें उल्लेख है कि कालडीमें श्रीशारदादेवीके मन्दिरमें स्थापित श्रीगणेश-विग्रहके पिछले दाहिने हाथमें अंकुश शोभित है। यह उन्मत्त उच्छिष्टगणपतिका विग्रह है। अंकुशकी गणना पुँल्लिंग आयुधोंमें है। श्रीगणेशका तान्त्रिक ध्यान है—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम्॥
बालेन्दुद्योतिमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्।

(शारदातिलक १३। ३-४)

उपर्युक्त श्लोकके भाष्यमें राघवभट्टने ऊर्ध्वस्थ वाम करमें अंकुश और दक्षिण करमें पाशकी स्थिति निरूपित की है—

'ऊर्ध्वस्थवामदक्षयोरङ्कुशपाशौ।'

इसी तरह शारदातिलकके तेरहवें पटलके ७०वें श्लोकके भाष्यमें राघवभट्टने उपर्युक्त कथनकी पुष्टि की है। पुष्कर गणेशके ध्यानमें उन्होंने चित्रण किया है—**'ध्याने तु दक्षे पाशः वामे अङ्कुशः……।'** गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्में श्रीगणेशजीद्वारा पाश और अंकुश धारण करनेका उल्लेख है—

'पाशमङ्कुशधारिणम्।'

श्रीगणेशके शब्दब्रह्म—साहित्यरूपका वर्णन करते हुए संत ज्ञानेश्वरने न्यायशास्त्रको उनका अंकुश स्वीकार किया है—

'नीतिभेदु अंकुशु।' (ज्ञानेश्वरी १। ११)

श्रीगणेशजीके हाथमें शोभित दूसरा प्रधान आयुध पाश है। उपर्युक्त कालडीस्थित शारदादेवीके मन्दिरमें विद्यमान गणेश-विग्रहके पिछले बायें हाथमें पाशका निरूपण किया गया है। रूपमण्डनमें मूषकारूढ़ हेरम्ब-

गणेशके बायें हाथमें पाशका वर्णन मिलता है—

'वामे कपालं बाणाक्षपाशं कौमोदकीं तथा।'

पाशको सात फणोंसे युक्त नरसर्पाकार एवं पुच्छयुक्त बताया गया है—

'पाशस्सप्तफणस्सर्पपुरुषः पुच्छसंयुतः।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

पद्म धारण करनेवाले श्रीगणेशका ध्यान है—

'हस्तैः स्वीयैर्दधतमरविन्दाङ्कुशौ रत्नकुम्भम्।'

(शारदातिलक १३। ७९)

श्रीगणेशजी परशु-आयुधसे भी विभूषित कहे गये हैं। सर्वकामद गजाननका ध्यान है—

दन्तं च परशुं पद्मे मोदकांश्च गजाननः।
गणेशो मूषकारूढो बिभ्राणः सर्वकामदः॥

श्रीज्ञानेश्वर महाराजने शब्दब्रह्म गणेशके ध्यानमें तर्क-शास्त्रको 'परशु' माना है—

'तरी तर्कु तोचि फरशु।' (ज्ञानेश्वरी १। ११)

श्रीगणेशजीका हाथ वेतालसे शोभित रहता है। वीर विघ्नेशके १६ हाथोंमेंसे एकमें वेताल है—

वेतालशक्तिशरकार्मुकखेटखड्ग-
खट्वाङ्गमुद्गरगदाङ्कुशनागपाशान्।

(क्रियाक्रमद्योति)

'गदा' दस आयुधोंमेंसे एक है। गदाकी गणना स्त्रीलिंग आयुधोंमें है। इसका वर्ण 'पीत' कहा गया है—

'गदा पीतप्रभा कन्या सुपीनजघनस्थला।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'एलिमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें उल्लेख है कि वराहपुराणमें गदाको अधर्मका नाश करनेवाली कहा गया है।

महागणपतिका गदायुक्त ध्यान है—

बीजापूरगदेक्षुकार्मुकलसच्चक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे।

(श्रीतत्त्वनिधि)

श्रीगणेशजीके हाथको शूल तथा त्रिशूलसे भूषित निरूपित किया जाता है। त्रिशूल शब्द नपुंसक लिंग होनेपर भी उसकी गणना पुरुष आयुधोंमें है। इसका शरीर श्याम रंगका होता है—

'त्रिशूलं पुरुषो दिव्यस्सुभ्रूश्श्यामकलेवरः।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'एलिमेंट्स् ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें लक्ष्मीगणपतिकी प्रस्तर-प्रतिमाका उल्लेख है। यह विग्रह तेनकाशीके विश्वनाथस्वामी-मन्दिरमें स्थापित है। इस मन्दिरका निर्माण १४४६ ई० में पाण्ड्य-शासक आरिकेसरि पराक्रम पाण्ड्यदेवने कराया था। मूर्तिके दस हाथोंमेंसे कुछ हाथोंमें चक्र, शंख, शूल आदिका वर्णन मिलता है। 'कारिकागम'के मतसे त्रिशूल प्रकृतिके तीनों गुण—सत्त्व, रज और तमका वाचक है, ऐसा उपर्युक्त सन्दर्भ-ग्रन्थमें उल्लेख है। विनायककी प्रतिमाके निर्माण-प्रसंगमें शूलका वर्णन मिलता है—

विनायकस्तु कर्तव्यो गजवक्त्रश्चतुर्भुजः।
शूलकं चाक्षमालां च तस्य दक्षिणहस्तयोः॥

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३। ७१। १३)

लिंगपुराणमें वर्णन मिलता है कि भगवती अम्बिकासे त्रिशूल और पाश धारण करनेवाले, हाथीके मुखके समान मुखवाले मंगलमूर्ति गजाननका जन्म हुआ—

इभाननाश्रितं वरं त्रिशूलपाशधारिणम्।
समस्तलोकसम्भवं गजाननं तदाम्बिका॥

(पूर्वार्ध १०५। ९)

श्रीगणेशजीका हाथ कुन्तसे विभूषित है। वीरविघ्नेशके हाथमें कुन्त विलसित है, ऐसा उनका ध्यान उपलब्ध होता है—

'शूलं च कुन्तपरशुध्वजमुद्वहन्तं
वीरं गणेशमरुणं सततं स्मरामि॥'

(क्रियाक्रमद्योति)

उपर्युक्त श्लोकमें श्रीगणेशके ध्वजाविभूषित हाथका स्पष्ट वर्णन है। ध्वज पीतवर्णका पुरुष है, महाबलवान् और व्यावृत मुखवाला है। **'व्यावृतास्य'** का आशय है—खुले मुखवाला।

'ध्वजस्तु पुरुषः पीतो व्यावृतास्यो महाबलः।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

श्रीगणेशजीकी ध्वजा मूषक-चिह्नवाली है। गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्में उनकी ध्वजाका वर्णन है—

'अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥'

श्रीगणेशजीके हाथमें शोभित बाण पुरुष आयुध है, इसका शरीर लाल वर्णका है तथा यह दिव्य नेत्रोंवाला है—

'शरस्स्यात् पुरुषो दिव्यो रक्ताङ्गो दिव्यलोचनः।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'एलिमेंट्स् ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी' के प्रथम खण्डमें उल्लेख है कि वैखानस-आगममें बाणको नपुंसक आयुध कहा गया है। इसका रंग श्याम है, परिधान श्वेत है तथा इसके तीन नेत्र हैं। समुद्र-गर्जनके समान इसकी आवाज है। इसका वाहन वायु है। पंख इसका ध्वज है। यह अपने सिरपर बाण धारण करता है। माघ-मासके शतभिषा नक्षत्रमें इसकी उत्पत्ति बतायी जाती है। इसका बीजाक्षर 'स' है।' ऊर्ध्वगणपतिके ध्यानमें बाणका उल्लेख है—

कह्लारशालिकमलेक्षुकचापवाण-
दन्तप्रोहकगदी कनकोज्ज्वलाङ्गः।
आलिङ्गनोद्यतकरो हरिताङ्गयष्ट्या
देव्या करोतु शुभमूर्ध्वगणाधिपो मे॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'धनुष' स्त्रीलिंगमें गणित है। इसका आकार स्त्रीका है। इसके सिरपर प्रत्यंचा-खिंचा धनुष है। इसका वर्ण लाल कमलके समान होता है—

'धनुस्स्त्री पद्मरक्ताभा मूर्ध्नि पूरितचापभृत्'।

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

विघ्नेश्वर गणपतिका हाथ चापविभूषित है—

शङ्खेक्षुचापकुसुमेषुकुठारपाश-
चक्रस्वदन्तसृणिमञ्जरिकाशराद्यैः।
पाणिश्रितैः परिसमीहितभूषणश्री-
र्विघ्नेश्वरो विजयते तपनीयगौरः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

गणेशजीके हाथमें अक्षमाला शोभित रहती है। हेरम्ब-गणपतिके वर्णनके प्रसंगमें अक्षमालाका उल्लेख है—

अभयवरदहस्तः पाशदन्ताक्षमाला-
सृणिपरशुदधानो मुद्गरं मोदकं च।
फलमधिगतसिंहः पञ्चमातङ्गवक्त्रो
गणपतिरतिगौरः पातु हेरम्बनामा॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

शक्ति स्त्री-आयुध है—

'जाये शक्तिगदे विद्यात्'

(पूर्वकारणागम, चतुर्दश पटल)

शक्तिका वर्ण लाल होता है और वृक उसका वाहन है—

'शक्तिस्तु योषिदाकारा लोहिताङ्गी वृकाश्रिता।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

वीरगणपतिके ध्यानमें शक्ति-धारण करनेका उल्लेख है—

वेतालशक्तिशरकार्मुकचक्रखड्ग-
खट्वाङ्गमुद्गरगदाङ्कुशनागपाशान्।
शूलं च कुन्तपरशुध्वजमुद्वहन्तं
वीरं गणेशमरुणं सततं स्मरामि॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

गणेशजीके चारों हाथोंमें खड्ग, खेट, धनुष और शक्ति होनेका उल्लेख गणेशपुराणमें उपलब्ध होता है—

'खड्गखेटधनुः शक्तिशोभिचारुचतुर्भुजम्।'

(उपा० १२। ३५)

'वज्र' पुरुष आयुध है। 'एलिमेंट्स् आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें उल्लेख है कि विघ्नेश्वर-प्रतिष्ठाविधिमें शक्तिगणपतिका जो ध्यान वर्णित है, उसके अनुसार उनका रंग अस्तकालीन सूर्यके समान होता है तथा उनके हाथ पाश और वज्रसे विभूषित होते हैं। वज्र दस आयुधोंमेंसे एक है। पुराणोंमें गणेशजीको दस आयुधोंसे विभूषित कहा गया है। सिंहारूढ़ विनायक-मूर्तिका वर्णन है—

'सिंहारूढा दशभुजा दशायुधविराजिता।'

(गणेशपुराण, क्रीडा० ६८। १९)

गणेशजीके हाथमें कमण्डलु शोभित रहता है। ध्वजगणपतिके ध्यानमें कमण्डलुका उल्लेख है। ध्वजगणपतिके हाथमें पुस्तक भी शोभित है—

यः पुस्तकाक्षगुणदण्डकमण्डलुश्री-
निर्वर्त्यमानकरभूषणमिन्दुवर्णम्।
तं घोरमाननचतुर्भुजशोभमानं
त्वां संस्मरेद् ध्वजगणाधिपते स धन्यः॥

(क्रियाक्रमद्योति)

उपर्युक्त श्लोकमें ही वर्णन है कि श्रीगणेशजीका हाथ दण्डसे विभूषित है। दण्ड पुरुष आयुध है। यह पुरुषके आकारका है, इसका कृष्ण—काला वर्ण है तथा इसके नेत्र लाल हैं—

'दण्डोऽपि पुरुषः कृष्णो घोरो लोहितलोचनः।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

श्रीगणेशजीके हाथमें चक्र शोभित रहता है। चक्र नपुंसक आयुध है। 'उत्तरकामिकागम'के अष्टषष्टितम पटलमें चक्रको नपुंसक आयुध ही कहा गया है—

'जाये शक्तिगदे ज्ञेये चक्रपद्मे नपुंसके।'

'एलीमेंट्स् हिन्दू ऑफ आइकोनोग्राफी' के प्रथम खण्डमें चक्रको पुरुष आयुध स्वीकार किया गया है। उसके नेत्र गोल होते हैं तथा वह अनेक आभूषणोंसे अलंकृत होता है। उसके हाथमें चामर रहता है। तेनकाशीके विश्वनाथस्वामी-मन्दिरमें स्थापित लक्ष्मी-गणपतिके हाथमें चक्र स्थित है। विघ्नेश्वर गणपतिके हाथमें चक्र रहता है—

'शङ्खेक्षुचापकुसुमेषुकुठारपाश-
चक्रस्वदन्तसृणिमञ्जरिकाशराद्यैः।'

(श्रीतत्त्वनिधि)

'शंख' पुरुष आयुध है। यह दिव्य पुरुषाकार है तथा शुक्लवर्णका है। इसके नेत्र देखनेमें सुन्दर हैं—

'शङ्खोऽपि पुरुषो दिव्यश्शुक्लाङ्गश्शुभलोचनः।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

भुवनेशगणपतिके हाथमें शंख विभूषित रहता है। इसे अविद्याका नाशक कहा गया है। 'एलिमेंट्स् ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी' में उल्लेख है कि वराहपुराणमें शंखका अविद्यानाशकके रूपमें वर्णन है।

खड्ग पुरुष आयुध है। इसका शरीर श्याम-वर्णका है तथा इसके नेत्र क्रोधयुक्त हैं—

'खड्गश्च पुरुषः श्यामशरीरः क्रुद्धलोचनः।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'खड्ग अज्ञानका नाश करता है। उपर्युक्त सन्दर्भगत वराहपुराणमें ऐसी स्वीकृति है। वीरविघ्नेश्वरको खड्गयुक्त निरूपित किया गया है—

'वेतालशक्तिशरकार्मुकखेटखड्ग-
खट्वाङ्गमुद्गरगदाङ्कुशनागपाशान्।'

(क्रियाक्रमद्योति)

उपर्युक्त श्लोकमें गणेशजीके हाथोंको खेट, खट्वांग और मुद्गर आदिसे विभूषित कहा गया है।

हेरम्बगणपतिका ध्यान है—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं च अभयं मोदकं तथा।
टङ्कं शराक्षमाले च मुद्गरं चाङ्कुशं तथा।
त्रिशूलं चेति हस्तेषु दधानं कुन्दवत् सितम्॥

(देवतामूर्तिप्रकरण ८। २७)

श्रीगणेशजीका हाथ दन्तविभूषित है। दाँत उनके आगेके दाहिने हाथमें शोभित है। कालडीके शारदादेवी-मन्दिरमें स्थापित गणेश-विग्रहके दाहिने हाथमें दाँत भूषित है। 'रूपमण्डन' में वर्णन है—

वरं तथाङ्कुशं दन्तं दक्षिणे च परश्वधम्।
वामे कपालं बाणाक्षपाशान् कौमोदकीं तथा॥
धारयन्तं करैरेभिः पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।
हेरम्बं मूषकारूढं कुर्यात् सर्वार्थकामदम्॥

अक्षरगणपतिके ध्यानमें वर्णन है कि दाँत उनके दाहिने हाथमें शोभित है—

गजेन्द्रवदनं साक्षाच्चलत्कर्णसुचामरम्।
हेमवर्णं चतुर्बाहुं पाशाङ्कुशधरं वरम्॥
स्वदन्तं दक्षिणे हस्ते सव्ये त्वाम्रफलं तथा।
पुष्करैर्मोदकं चैव धारयन्तमनुस्मरेत्॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

दाहिने हाथमें दाँत होनेकी पुष्टि 'अंशुमद्भेदागम' में भी उपलब्ध होती है। उसमें उल्लेख है—

'स्वदन्तं दक्षिणे हस्ते वामहस्ते कपित्थकम्।'

बालगणपतिके हाथ केला, आम, कटहल, इक्षु, कपित्थ (कैथ)-से विभूषित हैं। 'क्रियाक्रमद्योति' में बालगणपतिका ध्यान है—

करस्थकदलीचूतपनसेक्षुकपित्थकम्।
बालसूर्यप्रभाकारं वन्दे बालगणाधिपम्॥

श्रीगणेशजीके हाथ कल्पलता, नारियल, पायसपात्र, वीणा, कह्लारपुष्प, धानकी बाल आदिसे शोभित हैं। इस कथनकी पुष्टि श्रीतत्त्वनिधिमें वर्णित उनके विभिन्न रूपोंके ध्यानसे हो जाती है।

श्रीगणेशजीको 'मोदकप्रिय' कहा जाता है। वे अपने एक हाथमें मोदकपूर्ण पात्र रखते हैं। 'मन्त्रमहार्णव' में उन्मत्त उच्छिष्टगणपतिका वर्णन है—

चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रं पाशाङ्कुशौ मोदकपात्रदन्तौ।
करैर्दधानं सरसीरुहस्थमुन्मत्तमुच्छिष्टगणेशमीडे॥

'मन्त्रमहार्णव' में एक ध्यानमें श्रीगणेशकी सूँड़के अग्र भागपर मोदक भूषित है—

विषाणाङ्कुशावक्षसूत्रं च पाशं दधानं करैर्मोदकं पुष्करेण।
स्वपत्न्या युतं हेमभूषाम्बराढ्यं गणेशं समुद्यद्दिनेशाभमीडे॥

मोदकको महाबुद्धिका प्रतीक बताया गया है। 'एलिमेंट्स् ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी' में उल्लेख है कि त्रिवेन्द्रम्में स्थापित केवल गणपतिमूर्तिके हाथोंमें अंकुश, पाश, मोदक और दाँत शोभित हैं। मोदक आगेके बायें हाथमें सुशोभित है। मोदकधारी गणेशका चित्रण है—

..रूपमादधे।

चतुर्भुजं महाकायं मुकुटाटोपमस्तकम्।
परशुं कमलं मालां मोदकानावहत् करैः॥

(गणेशपु०, उपा० २१। ३२)

हिमाचलने भगवती पार्वतीको श्रीगणेशका ध्यान करनेकी जो विधि बतायी है, उसमें उन्होंने मोदकका उल्लेख किया है—

एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्॥
पाशाङ्कुशधरं देवं मोदकान् बिभ्रतं करैः।

(गणेशपु०, उपा० ४९। २१-२२)

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें उल्लेख है कि मोदकका निर्माण अमृतसे हुआ है। पार्वतीने कुमार और गणेशको जन्म दिया। दोनों सभी देवोंके हितकारी हैं। देवताओंने बड़ी श्रद्धासे अमृतनिर्मित एक दिव्य मोदक पार्वतीको दिया।

—'दोनों पुत्रोंने पार्वतीजीसे मोदक माँगा। भगवतीने कहा कि 'इस मोदकके सूँघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त हो जाता है। इसको सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञानका तत्त्वज्ञ और सर्वज्ञ हो जाता है'—

तौ दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे श्रद्धया परयान्विताः।
सुधयोत्पादितं दिव्यं तस्यै प्रादुस्तु मोदकम्॥

* * *

अस्यैवाघ्राणमात्रेण अमरत्वं लभेद् ध्रुवम्॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः।
निपुणः सर्वतन्त्रेषु लेखकश्चित्रकृत् सुधीः॥
ज्ञानविज्ञानतत्त्वज्ञः सर्वज्ञो नात्र संशयः।

(६५। ६, ९—११)

जगदम्बाने कहा कि 'तुम दोनोंमेंसे जो धर्माचरणमें श्रेष्ठता प्राप्त करके पहले आयेगा, उसीको यह मोदक दूँगी।' स्कन्द तो तीर्थयात्राके लिये मयूरपर चल पड़े और गणेशजीने माता-पिताकी केवल परिक्रमा कर ली। माताने दोनोंको समझाया कि 'माता-पिताके पूजनके समान दूसरा कोई भी अनुष्ठान नहीं है। मैं देवनिर्मित मोदक गणेशको ही प्रदान करती हूँ।'

'अतो ददामि हेरम्बे मोदकं देवनिर्मितम्'

(पद्म०, सृष्टि० ६५। १९)

उपर्युक्त पौराणिक आख्यानसे गणेशजीकी मोदक-प्रियताकी पुष्टि होती है। देवताओंने लड्डुओंसे विघ्नराज गणेशकी पूजा की थी—

'लड्डुकैश्च ततो देवैर्विघ्ननाथस्समर्चितः॥'

(स्कन्दपु०, अवन्ती० ३६। १)

गणपत्युपनिषद्में उल्लेख है कि जो सहस्र लड्डुओंके द्वारा गणेशजीका यजन करता है, वह वांछित फल पाता है—

'यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति।'

श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने शब्दब्रह्म गणेशके रूप-वर्णनमें उनके हाथमें शोभित मोदकको परम मधुर अद्वैत वेदान्तका रूपक बताया है—

'वेदान्तु तो महारसु। मोदकु मिरवे।'

(ज्ञानेश्वरी १। ११)

संत समर्थ रामदासने 'दासबोध'में उनके मोदक-प्रेमके सम्बन्धमें कहा है कि—'आपके एक हाथमें गोल मोदक है, जिसपर आपकी बड़ी प्रीति है'—

'ये के करीं मोदक गोल। तयावरी अति प्रीति॥'

(१। २। २०)

मोदकविलसित हाथवाले गणेशकी वन्दनामें शंकराचार्यका निवेदन है—

मुदा करात्तमोदकं सदा विमुक्तिसाधकं
कलाधरावतंसकं विलासिलोकरक्षकम्।
अनायकैकनायकं विनाशितेभदैत्यकं
नताशुभाशुनाशकं नमामि तं विनायकम्॥

(श्रीगणेशपञ्चरत्न १)

'जो सानन्द अपने हाथमें मोदक ग्रहण कर अवस्थित हैं, जो सदा मुक्ति प्रदान करनेके लिये प्रस्तुत हैं, चन्द्रमा जिनके सिरका भूषण है, जो भावुक भक्तोंके रक्षक हैं, जिनका कोई स्वामी नहीं है, जो सबके एकमात्र प्रभु हैं, जो गजासुरके विनाशक हैं, जो प्रणतजनोंके अशुभको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं, मैं उन विनायकको नमस्कार करता हूँ।'

परिवार तथा पार्षद

श्रीगणेशजी ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेवोंके उपास्य तथा परम आराध्य हैं। गणेशजीकी पूजासे समस्त विघ्न नष्ट होते हैं—

'गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते।'

(पद्म०, सृष्टि० ५१। ६६)

श्रीगणेशजीके साथ-ही-साथ उन्हींकी प्रसन्नता

और पूजाके लिये उनके परिवार—पत्नी और पुत्रोंका चिन्तन निस्संदेह परम मंगलास्पद है। इससे सर्वसिद्धियोंका फल मिलता है, अज्ञान और भ्रान्तिका नाश होता है तथा समस्त मंगल अपने-आप उपस्थित हो जाते हैं। सर्वपूज्य मंगलनिधि सिद्धि-बुद्धिके पति श्रीगणेशजीकी शिवजीद्वारा संस्तुति है—

सिद्धिबुद्धिपतिं वन्दे ब्रह्मणस्पतिसंज्ञितम्।
माङ्गल्येशं सर्वपूज्यं विघ्नानां नायकं परम्॥

(मुद्‌गलपुराण, अष्टम खण्ड, गणेशहृदयस्तोत्र १७)

गणेशजी सिद्धि और बुद्धिके द्वारा सेवित उनके पति हैं। साथ-ही-साथ वे अपने उपासकोंको सिद्धि और बुद्धि भी प्रदान करते रहते हैं। जो उनकी उपासना करते हैं, वे अपने कार्यमें सिद्धि—पूर्णता प्राप्त करते हैं, साथ ही बुद्धि—ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न होते हैं।' श्रीगणेशजीद्वारा सिद्धि-बुद्धि प्रदान करनेका आशय यह है—

भक्तानां वरदं सिद्धिबुद्धिभ्यां सेवितं सदा।
सिद्धिबुद्धिप्रदं नृणां धर्मार्थकाममोक्षदम्॥
ब्रह्मरुद्रहरीन्द्राद्यैः संस्तुतं परमर्षिभिः॥

(गणेशपु० उपा० ४९। २३)

गृत्समद मुनिके तपसे प्रसन्न होकर श्रीगणेशजीने उन्हें दर्शन देकर प्रसन्न किया। उस समय वे सिंहारूढ थे और अपनी दोनों पत्नियों—सिद्धि-बुद्धिसे युक्त थे।

सिद्धिबुद्धियुतः श्रीमान् कोटिसूर्याधिकद्युतिः।
अनिर्वाच्यस्वरूपोऽपि लीलयाऽऽसीत् पुरो मुनेः॥

(गणेशपु०, उपा० ३७। १३)

सिद्धि और बुद्धिके साथ योगनाथ श्रीगणेश सदा-सर्वदा आनन्द-क्रीड़ामें तत्पर रहते हैं। 'बुद्धि विश्वात्मिका है, ब्रह्ममयी है, सिद्धि उसको विमोहित करनेवाली है। उन दोनोंके साथ मंगलमय गणेशकी मंगलमयी लीला चलती रहती है। सिद्धि-बुद्धिके स्वामीको नमस्कार है'—

विश्वात्मिका ब्रह्ममयी हि बुद्धि-
स्तस्या विमोहप्रदिका च सिद्धिः।
ताभ्यां सदा खेलति योगनाथ-
स्तं सिद्धिबुद्धीशमथो नमामि॥

(मुद्‌गलपुराण, अष्टम खण्ड, गणेशहृदयस्तोत्र ३६)

सिद्धि-बुद्धिके अतिरिक्त पुष्टिको भी उनकी पत्नी कहा गया है। श्रीगणेशजीके वाम भागमें सिद्धि और दक्षिण भागमें बुद्धिकी संस्थिति बतायी जाती है।

शिवपुराणकी रुद्रसंहिताके कुमारखण्डमें श्रीगणेशजीके सिद्धि-बुद्धिके साथ विवाहका प्रसंग वर्णित है। एक समय प्रेममें मग्न भवानी और शंकरने विचार किया कि हमारे दोनों पुत्र गणेश और स्कन्द विवाहके योग्य हो गये हैं। उन्होंने दोनोंको बुलाकर कहा कि 'तुम दोनोंमें जो पहले पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटेगा, उसका ही विवाह पहले होगा। कुमार स्कन्द मन्दराचलसे पृथ्वीकी परिक्रमा करने चल पड़े और बुद्धिमान् गणेशजीने भगवान् शंकर और भगवती अम्बिकाको आसनपर बिठाकर उनकी सात बार परिक्रमा की। उन्होंने यह वेदप्रतिपादित वचन कहा—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कुमार० १९। ३९)

आशय यह है कि 'जो माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसको पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल मिलता है।' इस तरह श्रीगणेशजीने अपने विवाहित होनेकी योग्यता प्रमाणित की। प्रजापति विश्वरूपको जब इसका पता चला तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके सिद्धि और बुद्धि नामकी दो कन्याएँ थीं, जो दिव्य रूपसे सम्पन्न तथा सर्वांगशोभना थीं—

विश्वरूपप्रजेशस्य दिव्यरूपे सुते उभे।
सिद्धिबुद्धिरिति ख्याते शुभे सर्वाङ्गशोभने॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कुमार० २०। २)

सिद्धि-बुद्धि—दोनोंसे गणेशजीका विवाह सम्पन्न हो गया। गणेशकी पत्नी सिद्धिसे क्षेम और बुद्धिसे लाभ नामके शोभासम्पन्न दो पुत्र हुए—

सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु क्षेमनामा सुतोऽभवत्।
बुद्धेर्लाभाभिधः पुत्र आसीत् परमशोभनः॥

(शिवपुराण, रुद्रसं०, कुमार० २०। ८)

गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें उल्लेख है कि 'ब्रह्माजीने गणेशका पूजन किया। श्रीगणेशजीकी कृपासे उनकी पूजाकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणाके समय दो कन्याएँ आयीं। उनके नेत्र सुन्दर थे, मुख प्रसन्न था; वे रत्नजटित आभूषणोंसे शोभित थीं, दिव्य गन्धसे युक्त थीं; उनके वस्त्र दिव्य थे। वे मालाएँ पहने थीं। ब्रह्माजीने उन दोनोंको दक्षिणामें भेंट करनेकी इच्छा

की। गणेशजीकी कर्पूरसे आरती की; उनको पुष्पांजलि समर्पित की; उनकी सहस्रनामोंसे स्तुति की तथा प्रदक्षिणा की। ब्रह्माद्वारा पूजित गणेश सिद्धि-बुद्धिको स्वीकार कर अन्तर्धान हो गये—

पूजार्थं देवदेवस्य गणेशस्य प्रसादतः।
दक्षिणावसरे द्वे तु कन्यके समुपस्थिते॥
चारुप्रसन्ननयनवदनैः सुविराजिते।
अनेकरत्नखचितनानालङ्कारशोभिते॥
दिव्यगन्धयुते दिव्यवस्त्रमालाविभूषिते।
ते तस्मै दक्षिणार्थं स कल्पयामास पद्मभूः॥
रम्भागर्भेण नीराज्यं दिव्यपुष्पाञ्जलिं ददौ।
सहस्रनामभिः स्तुत्वा प्रदक्षिणमथाकरोत्॥
नमस्य प्रार्थयामास दीनानां शंकरो भव।
एवं सम्पूजितस्तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥
ततः प्रसन्नो भगवान् विघ्नहर्ता गजाननः।
सिद्धिबुद्धी गृहीत्वा ते अन्तर्धानमगाद्विभुः॥

(गणेशपु०, उपा० १५। ३४—३९)

नारदपुराणमें गणेशजीका ध्यान है। उसमें उन्हें एकपत्नी (सिद्धि)-द्वारा आश्लिष्ट निरूपित किया गया है। श्रीगणेशजीने अपनी चारों भुजाओंमें पाश, अंकुश, अभय और वर-मुद्राएँ धारण कर रखी हैं। उनकी पत्नी हाथमें कमल धारण कर उनसे सटकर बैठी हैं, उनका शरीर रक्तवर्णका है, उनके तीन नेत्र हैं—

पाशाङ्कुशाभयवरान् दधानं कञ्जहस्तया।
पत्न्याश्लिष्टं रक्ततनुं त्रिनेत्रं गणपं भजेत्॥

(नारदपु०, पूर्व०, तृ० ६६। १३९)

गोस्वामी तुलसीदासजीने विवाहके बाद श्रीसीताजीके जनकपुरसे अयोध्या-गमनके अवसरपर सिद्धिगणेशका स्मरण चित्रित किया है—

प्रेमबिबस परिवारु सब जानि सुलगन नरेस।
कुँअरि चढ़ाई पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस॥

(रामचरितमा०, बाल० ३३८)

श्रीगणेशजीके परिवारके स्मरण-चिन्तनसे सिद्धि-बुद्धि, क्षेम और लाभकी सहज प्राप्ति होती है।

रूपमण्डनमें 'गणेशायतन'—गणेश-मन्दिरके प्रसङ्गमें श्रीगणेशजीके पार्षद अथवा प्रतीहारोंका विवरण उपलब्ध होता है। वे द्वारकी रक्षा करते हैं, द्वारपालका कार्य करते हैं। उनकी संख्या आठ है। एक-एक द्वारपर दो-दो प्रतीहार रहते हैं। उनके यथाक्रम नाम हैं—अविघ्न और विघ्नराज, सुवक्त्र और बलवान्, गजकर्ण और गोकर्ण तथा सुसौम्य और शुभदायक।

उल्लेख है कि श्रीगणेशजीके मन्दिरमें उनके विग्रहके बायें गजकर्ण, दायें सिद्धि, उत्तरमें गौरी, पूर्वमें बुद्धि, दक्षिण-पूर्वमें बालचन्द्रमा, दक्षिणमें सरस्वती, पश्चिममें कुबेर और पीछे धूम्रकके विग्रहोंकी स्थापना होनी चाहिये—

वामाङ्गे गजकर्णं तु सिद्धिं दध्याच्च दक्षिणे।
पृष्ठकर्णे तथा द्वौ च धूम्रको बालचन्द्रमाः॥
उत्तरे तु सदा गौरी याम्ये चैव सरस्वती।
पश्चिमे यक्षराजश्च बुद्धिः पूर्वे व्यवस्थिता॥

(रूपमण्डन ५। १९-२०)

श्रीगणेशके आठों द्वारपाल वामनाकार हैं। वे सौम्य स्वभावके और कठोर मुखवाले होते हैं। आठोंके दो-दो हाथ तो तर्जनी-मुद्रा और दण्डसे विभूषित रहते हैं तथा पूर्वद्वारपर स्थित अविघ्न और विघ्नराजके दो हाथोंमें परशु और पद्म रहते हैं, दक्षिण-द्वारपर स्थित सुवक्त्र और बलवान्‌के दो हाथोंमें खड्ग और खेटक रहते हैं, पश्चिम-द्वारपर स्थित गजकर्ण और गोकर्णके दो हाथोंमें धनुष-बाण होते हैं और उत्तरद्वारपर स्थित सुसौम्य और शुभदायकके दो हाथ पद्म तथा अंकुशसे भूषित रहते हैं—

सर्वे च वामनाकारास्सौम्याश्च परुषाननाः।
तर्जनीपरशुः पद्ममविघ्नो दण्डहस्तकः॥
तर्जनीदण्डापसव्ये स भवेद् विघ्नराजकः।
तर्जनीखड्गखेटं तु दण्डहस्तस्सुवक्त्रकः॥
तर्जनीदण्डापसव्ये दक्षिणे बलवान् भवेत्।
तर्जनीवाणचापं च दण्डं च गजकर्णकः॥
तर्जनीदण्डापसव्ये गोकर्णः पश्चिमे स्मृतः।
तर्जनीपद्माङ्कुशं च दण्डहस्तः सुसौम्यकः॥
तर्जनीदण्डापसव्ये स चैव शुभदायकः।
पूर्वद्वारादिके सर्वे प्राच्यादिष्वष्ट संस्थिताः॥

(रूपमण्डन ५। २१—२५)

वक्रतुण्ड श्रीगणेशकी महिमाका पार पाना कठिन है। महाकवि पुरुषोत्तमका उद्गार है—

अतिसुदृढमगातां हर्षमङ्कैकभावा-
दधिकतममुमेशौ यं तथात्मैक्ययोगात्।
तदधिकमिव यातौ यं सुतं वीक्षमाणौ
सफलयतु स देवो वः क्रतुं वक्रतुण्डः॥

(विष्णुभक्तिकल्पलता १। १)

'भवानी-शंकर दोनों देहैक्यभावसे अत्यन्त प्रगाढ़

हर्षका अनुभव करते हैं। उस एकात्मभावसे कहीं अधिक हर्ष वे अपने दोनों पुत्रोंको देखकर पाते हैं। माता-पिताको हर्षित करनेवाले वक्रतुण्ड देव हमारे संकल्पको सफल करें।' जिनके माता पिता भवानी-शंकर हैं, पत्नी सिद्धि-बुद्धि हैं और पुत्र क्षेम-लाभ हैं, उन भाग्यशाली आद्यपूज्य श्रीगणेशके पारिवारिक सुखका रसास्वादन बड़े ही सौभाग्यका पुण्यविषय है।

वाहन आदि

हमारे शास्त्र और पुराणोंमें सिंह, मयूर और मूषकको श्रीगणेशजीका वाहन कहा गया है। गणेशपुराणके क्रीडाखण्डमें उल्लेख है कि ''कृतयुगमें गणेशजीका वाहन सिंह है; वे दस भुजावाले, तेजःस्वरूप और विशालकाय तथा सबको वर देनेवाले हैं, उनका नाम 'विनायक' है। त्रेतामें उनका वाहन मयूर है; वे छः भुजावाले हैं, उनका वर्ण श्वेत है, वे तीनों लोकोंमें विख्यात 'मयूरेश्वर' नामवाले हैं; द्वापरमें उनका वर्ण लाल है, वे आखु—मूषकवाहन हैं, उनके चार भुजाएँ हैं, वे देवता और मनुष्योंके द्वारा पूजित हैं, उनका नाम 'गजानन' है। एवं कलियुगमें उनका धूम्रवर्ण है, वे घोड़ेपर आरूढ़ रहते हैं, उनके दो हाथ हैं, उनका नाम 'धूम्रकेतु' है, वे म्लेच्छवाहिनीका विनाश करते हैं।'

सिंहारूढो दशभुजः कृते नाम्ना विनायकः।
तेजोरूपी महाकायः सर्वेषां वरदो वशी॥
त्रेतायुगे बर्हिरूढः षड्भुजोऽप्यर्जुनच्छविः।
मयूरेश्वरनाम्ना च विख्यातो भुवनत्रये॥
द्वापरे रक्तवर्णोऽसावाखुरूढश्चतुर्भुजः।
गजानन इति ख्यातः पूजितः सुरमानवैः॥
कलौ तु धूम्रवर्णोऽसावश्वारूढो द्विहस्तवान्।
धूम्रकेतुरिति ख्यातो म्लेच्छानीकविनाशकृत्॥

(१। १८—२१)

सिंहपर स्थित पंचवक्त्र गजाननका वर्णन है—

सिंहोपरि स्थितं देवं पञ्चवक्त्रं गजाननम्।
दशबाहुं त्रिनेत्रं च जाम्बूनदसमप्रभम्॥
प्रसादाभयदातारं पात्रं पूरितमोदकम्।
स्वदन्तं सव्यहस्तेन बिभ्रतं चापि सुव्रते॥

(शिल्परत्न २५अ०)

'सिंहपर विराजमान गजाननदेव पंचमुख, दसबाहु, त्रिनेत्र, जाम्बूनद सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा प्रसाद और अभयके दाता हैं, बायें हाथमें लड्डुओंसे भरा पात्र लेकर दाहिने हाथसे उनका आस्वादन कर रहे हैं।'

श्रीगणेशजीने सिंहारूढ़ हो गृत्समद मुनिके तपसे प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया। वे सहस्र सूर्योंके प्रकाश-सरीखे तेजसे संसारको प्रकाशित कर रहे थे; उनके कर्णोंसे फट-फटकी आवाज हो रही थी; उनके भालदेशमें चन्द्रमा शोभित था, गलेमें कमलकी माला थी; उनके दस भुजाएँ थीं, सर्पका यज्ञोपवीत था; वे सिद्धि-बुद्धिसे युक्त थे। उनका स्वरूप अनिर्वाच्य है—

सिंहारूढो दशभुजो व्यालयज्ञोपवीतवान्।
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचारुचन्दनचर्चितः॥
सिद्धिबुद्धियुतः श्रीमान् कोटिसूर्याधिकद्युतिः।
अनिर्वाच्यस्वरूपोऽपि लीलयाऽऽसीत् पुरो मुनेः॥

(गणेशपुराण, उपा० ३७। १२-१३)

देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न हो श्रीगणेशने सिंहारूढ़ होकर उन्हें अपने दर्शनसे कृतार्थ किया था—

'ततस्ते ददृशुर्देवं सिंहारूढं विनायकम्।'

(गणेशपुराण, क्रीडा ७८। २९)

वर्णन मिलता है कि वामनने कश्यपके आदेशसे षडक्षर-मन्त्रका जप करके गणेशजीको प्रसन्न किया। तब वे प्रकट हो गये। उस समय वे मयूरवाहन थे—

..............................आविरासीत् सिद्धिबुद्धियुक्॥
मयूरवाहनो देवः शुण्डादण्डविराजितः।

(गणेशपुराण, क्रीडा० ३१। ९-१०)

श्रीगणेशजीका सर्वप्रसिद्ध वाहन 'मूषक' है। 'गणेशसहस्रनामस्तोत्र' के ६६वें श्लोकमें उन्हें **'आखुवाहनः—आखुवाहन'** कहा गया है।

'रूपमण्डन' में उन्हें मूषकारूढ़-विशेषणसे भूषित किया गया है—

दन्तं च परशुं पद्मं मोदकांश्च गजाननः।
गणेशो मूषकारूढो बिभ्राणस्सर्वकामदः॥

आखुवाहनके रूपमें श्रीगणेशजीके अनेक ध्यान उपलब्ध होते हैं। एक ध्यानमें निरूपण है कि 'हाथोंमें पाशांकुश धारण करनेवाले, आम्रफल खानेवाले, मूषकपर सवार रक्तवर्णके श्रीगणेशजी हमारे समस्त विघ्नोंको नष्ट कर दें'—

पाशाङ्कुशस्वदन्ताम्रफलवानाखुवाहनः।
विघ्नं निहन्तु नः सर्वं रक्तवर्णो विनायकः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

उन्होंने वाहनरूपमें मूषककी प्राप्ति भगवती वसुंधरासे की थी। उल्लेख है—

'वसुंधरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम्।'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३। १२)

उनके मूषकको वाहनरूपमें प्राप्त करनेका एक विवरण बाबू सम्पूर्णानन्दने अपनी पुस्तक 'गणेश'में यों दिया है—'गणेशका गजमुखासुर दैत्यसे युद्ध हुआ था। उसमें उनका एक दाँत टूट गया था। उन्होंने टूटे दाँतसे उसपर ऐसा प्रहार किया कि वह घबराकर चूहा बनकर भागा; पर गणेशजीने उसे पकड़ लिया। उसी समयसे वह दैत्य उनका वाहन बन गया।'

श्रीव्यासजीने मूषकारूढ गणेशकी वन्दना की है—

मूषकोत्तममारुह्य देवासुरमहाहवे।
योद्धुकामं महाबाहुं वन्देऽहं गणनायकम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। ४)

श्रीगणेशजीका स्वरूप मानवीय बुद्धिद्वारा अग्राह्य है। उनका रूप उनकी कृपासे ही ग्राह्य अथवा ज्ञेय है। सिंहासनपर सिद्धि-बुद्धिसे युक्त तथा समस्त अलंकारों और आयुधोंसे भूषित गजेन्द्रवदन सिन्दूराभ गणपतिका सौन्दर्य वर्णनातीत होते हुए भी पुण्यवानोंके द्वारा आस्वाद्य है। वे गणाधीश्वर हैं, गणराजेश्वर हैं। उनकी पूजामें साक्षात् जगज्जननी अम्बिका परमेश्वरी उन्हें स्वर्णसिंहासन प्रदान करती हैं। हिमवान्‌द्वारा पार्वतीजीको गणेशमूर्तिके पूजन-विधानमें भगवतीद्वारा उन्हें सम्बोधित करनेके प्रसंगमें निरूपण है—

स्वर्णसिंहासनं दिव्यं नानारत्नसमन्वितम्।
समर्पितं मया देव तत्र त्वं समुपाविश॥

(गणेशपु०, उपा० ४९। २५)

सौन्दर्यमण्डित तथा अनन्तानन्दसुखसमन्वित श्रीगणेशके सिंहासनकी महिमाका चिन्तन अत्यन्त मंगलप्रद और सिद्धि प्रदायक है। सिंहासनकी प्राप्ति उन्हें शक्रसे हुई थी—

'रत्नसिंहासनं शक्रः'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३। ८)

महामति पुष्पदन्तने 'गणेशमहिम्नःस्तोत्र' के १७वें श्लोकमें सिंहासनस्थ गणपतिका सौन्दर्य वर्णन किया है। बड़ा ही ललित ध्यान है—

अनर्घ्यालङ्कारैररुणवसनैर्भूषिततनुः
करीन्द्रास्यः सिंहासनमुपगतो भाति बुधराट्।
स्मितास्यात्तन्मध्येऽप्युदितरविबिम्बोपमरुचिः
स्थिता सिद्धिर्वामे मतिरितरगा चामरकरा॥

श्रीगणेशजीके दिव्य रत्नसिंहासनका समलंकरण दिव्य रत्नछत्रसे सम्पन्न होता है। उन्हें रत्नछत्रकी प्राप्ति वरुण-देवतासे हुई थी। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें उल्लेख है—

'रत्नच्छत्रं च वरुणः' (गणपति० १३। ९)

श्रीगणेशजीकी वेष-भूषा, अलंकार, पार्षद तथा आयुध और वाहन आदि—सब-के-सब दिव्य हैं। इनके चिन्तनमात्रसे मनुष्यका हृदय स्वानन्दलोकके अधिपति श्रीगणेशजीकी सहज भक्तिका अधिकारी होकर समस्त सिद्धियोंसे सम्पन्न हो जाता है।

~~०~~

मूषक-वाहन

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

ब्रह्मके तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म एवं पर। स्थूल रूप प्रपंचात्मक विश्वके रूपमें अभिव्यक्त वैराजरूप है, जिसके स्थूल प्रतीक हैं—अग्नि, विद्युत्, सूर्य एवं चन्द्र। सूक्ष्म रूप हिरण्यगर्भरूप है, जो सूत्रात्मा या अव्यक्तरूपसे सम्पूर्ण विश्वका धारण, संचालन एवं नियन्त्रण करता है। यह स्थूल जगत्‌के आधाररूपमें स्थित सूक्ष्म जगत्‌का अधीश्वर है। पिण्डदेहगत सूक्ष्म शरीरमें हृदयचक्र, भ्रूमध्य एवं ब्रह्मरन्ध्रमें नादब्रह्म अथवा ज्योतिब्रह्मके रूपमें इसका साक्षात्कार होता है। ब्रह्मका पर रूप सबका साक्षी, अविकारी, अच्युत, सच्चिदानन्दात्मक परतत्त्व है। नानाविध देवता इस ब्रह्मके ही अंग-प्रत्यंगरूप विशिष्ट शक्तियाँ हैं, जो स्वतन्त्र देवरूपकी भाँति प्रतीत होते हुए विश्व-प्रशासनके एक-एक विशिष्ट क्षेत्रका अधिपतित्व करते हैं। इन देवोंके भी दो रूप हैं—अमूर्त और मूर्त। पंचभूतात्मक जगत्‌में ये अमूर्तरूपसे निवास करते हैं एवं अपने-अपने सूक्ष्म देवलोकमें अपने मूर्तरूपमें स्थित होते हैं। दिव्य मूर्तरूपमें देवोंके अपने-अपने वाहन, रथ, आयुध आदि

देवोंका अपना-अपना तेज या शक्ति ही होती है—यह बात निरुक्तमें स्पष्टरूपसे बता दी गयी है। प्रत्येक देवताके वाहन-आयुधादि देवताका तेजरूप ही होता है, उससे भिन्न नहीं; अतएव देवपूजामें देवताके वाहन-आयुधादिकी देवरूपमें ही पूजा होती है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्के अनुसार श्रीगणपति परब्रह्मकी ज्ञानमयी एवं वाङ्मयी शक्तिका प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः उन्हें प्रत्यक्ष वाङ्मयरूप चिन्मय ब्रह्म कहा गया है। सूक्ष्म शरीरमें मूलाधारचक्र परावाक्का केन्द्र है। ज्ञानकी अभिव्यक्ति वाणीद्वारा ही होती है, अतः उन्हें वाणीका नियन्ता देवता होनेके कारण मूलाधारमें स्थित माना गया है। वाक् या नाद आकाशका गुण है, अतः गणेश आकाशतत्त्वके अधिपति भी हैं। यों सूक्ष्मरूपमें गणपति भूमितत्त्व एवं आकाशतत्त्व—दो तत्त्वोंके स्वामी हैं। भूमितत्त्वके स्वामी होनेके कारण वे भौतिक जीवनसे सम्बन्धित सभी सिद्धियोंके दाता एवं विघ्नहर हैं तथा आकाशतत्त्वके स्वामी होनेके कारण बुद्धि एवं वाणीके अधिष्ठाता होनेसे अविद्यारूप महाविघ्नका नाश करके ब्रह्मज्ञानरूपी महासिद्धि देकर मोक्ष प्रदान करते हैं। इसीलिये वे ज्ञानियों एवं योगियोंके उपास्य हैं तथा गुरुके भी गुरु हैं। वराहपुराण इस तथ्यकी पुष्टि करता है कि गणेश पृथ्वीतत्त्व एवं आकाशतत्त्व—दोनोंके अधिपति हैं;* अतएव सभी देवोंमें उनकी महिमा अधिक है। पृथ्वीतत्त्वसे सम्बन्धित रूप ही उनका स्थूल रूप है, जो विघ्नकर, विघ्नहर एवं मंगलदायक है।

निदानतः शास्त्रकी परिभाषाके अनुसार देवताका वाहन उसका अपना तेज ही होता है। देवताको उसके तेजके अतिरिक्त अन्य कौन उसे धारण एवं वहन कर सकता है। पर यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि एक ही देवतत्त्व सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंके तारतम्यसे, परस्पर न्यून-सम-अधिकतम मात्रारूपमें मिश्रणसे तथा इनका पंचतत्त्वोंके साथ संयोग होनेके कारण नाना रूप धारण कर लेता है। सत्त्वगुणके रूपमें स्थित ज्ञान और प्रकाश ही तमोगुणके क्षेत्रमें आकर नानाविध अविद्या और अन्धकारका रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार भौतिक जीवनके निम्न धरातलमें देवताका वाहन उन अज्ञान और अन्धकारकी शक्तियोंका भी प्रतीक बन जाता है, जिसका नियन्त्रण वह देवता करता है।

परमात्मा सभी प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे निवास करता हुआ उनके पिण्ड-विश्वका धारण, पोषण, संचालन एवं विनाश कर रहा है। प्रत्येक प्राणी (चाहे वह मूषक-समान अति लघुकाय हो या हस्ति-सदृश अति विशालकाय)-का देह ही देववाहन है। यह सूक्ष्म रहस्य भी नाना पशु-पक्षियोंकी देववाहनके रूपमें कल्पना करके बताया गया है। श्रीगणपति विशालकाय हैं एवं उनका वाहन मूषक अति लघुकाय है। सरसरी तौरपर देखनेसे यह बात असम्भव एवं हास्यास्पद प्रतीत होती है, पर थोड़ा बुद्धिपूर्वक विचार करें तो यह संकेत मिलता है कि आत्मतत्त्व न तो भारी है और न हलका। वह अणुसे भी अणु है एवं महान्से भी महान् है। उसका सभी शरीरोंमें वास है। जल या अग्निकी भाँति चिन्मय आत्मा जिस शरीरको आश्रयरूपमें ग्रहण करता है, वह तद्रूप ही हो जाता है। इससे आत्माकी सर्वव्यापकता, सूक्ष्मरूपता एवं चिन्मयतामें अन्तर नहीं आता। मूषकपर स्थित गणपतिका रूप आत्मस्वरूपके इस तथ्यकी ओर भी मनन करनेके लिये संकेत करता है।

श्रीगणपतिके वाहनरूपमें स्थित मूषक 'बृहदारण्यक-उपनिषद्'में वर्णित अन्तर्यामी ब्रह्मका प्रतीक है। मूषक घरके भीतर घुसकर चीजोंको मूसा करता है, पर घरके लोग न उसे जानते हैं और न उसे बिलमें होनेके कारण देख पाते हैं; अन्तर्यामी ब्रह्म भी सृष्टिके सभी पदार्थोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित है, वही सबके हृदयमें निवास कर सबको गति दे रहा है तथा वही वस्तुतः सृष्टिके भोगोंका भोक्ता है। वह सभीके शरीरमें स्थित रहते हुए अपनी मायासे गूढ़ होकर मूषकवत् चोरकी भाँति चुपचाप भोगोंको भोगा करता है, परंतु मोह, अविद्या एवं अज्ञानसे युक्त प्राणी उसे नहीं जानते—

ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः।
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।
मायया गूढरूपः सन् भोगान् भुङ्क्ते हि चोरवत्॥
(मुद्गलपुराण)

लोग भोक्ता होनेका अभिमान त्यागकर मूषकवत् हृदय-बिलमें स्थित सर्वान्तर्यामी ब्रह्मको जानें और

* पृथिव्यादिगुणस्त्वेष गजवक्त्रो भविष्यति। (वराहपु० १७ । ६२)
ततो गणपतिर्वाक्यमाकाशाख्योऽब्रवीत्तदा। (वराहपु० १७ । ३४)

उसकी उपासना करें—यह मूषक-वाहनका प्रथम तात्पर्य है।

उपासक '**शुनि चैव श्वपाके च**'—इस गीतावाक्यके अनुसार मूषक आदि सभी जन्तुओंमें समभावसे व्याप्त ब्रह्मका अनुभव करें—यह भी संकेतित है।

बुद्धि और विद्याके अधिष्ठाता गणेशका वाहन मूषक सारासारविवेचनी, तत्त्वनिरूपिणी विवेकमयी बुद्धि, प्रतिभा एवं मेधाका प्रतीक है। मूषकका काम किसी भी वस्तुको खण्ड-खण्डरूपमें कुतर डालना है, अर्थात् उसके अंग-प्रत्यंगका विश्लेषण कर देना है, अतः यह वस्तुस्वरूपका विश्लेषण करनेवाली मीमांसाकारिणी बुद्धिका प्रतीक है। ऐसी मीमांसिका बुद्धिके होनेपर ही ज्ञान-क्षेत्रमें प्रगति, सत्-असत्का ज्ञान, प्रतिभा एवं मेधाका विकास तथा सत्य एवं नित्य ज्ञानकी प्राप्ति होती है। जो लोग विद्याप्राप्तिके हेतु गणपतिकी उपासना करते हैं, उन्हें अपनी बुद्धिको पवित्र एवं शुभ विचारोंसे युक्त अर्थात् विवेकयुक्त करके विविध विद्याओंके अध्ययन, मनन और निदिध्यासनद्वारा विकसित करना चाहिये।

बुद्धि और मेधाकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यपालन अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्यकी सिद्धिसे ही वीर्यलाभ होता है अर्थात् शरीर, प्राण, मन एवं बुद्धिकी शक्तियोंका अपूर्व विकास होता है। बिना वीर्यलाभके शक्तिलाभ नहीं हो सकता और शक्तिलाभके बिना विघ्न-बाधाओंको दूरकर जीवन-संग्राममें विजयप्राप्ति एवं सिद्धि नहीं हो सकती। श्रीगणेश स्वयं ब्रह्मचारी हैं। मूलाधार-चक्र कामशक्तिका केन्द्र भी है, जहाँ गणपतिका वास है। यह भी संकेत करता है कि शक्ति एवं सिद्धि पानेके लिये कामशक्तिरूपी मूषकको वाहन बनाना होगा, उसपर पूर्ण नियन्त्रण करना होगा।

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें उल्लेख है कि एक ऋषि मूषक-बाधासे पीड़ित हैं, चूहे उनके जननेन्द्रियको कुतर रहे हैं और वे उनसे त्राण पानेके लिये देवोंसे प्रार्थना करते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि मूषक काम-भावना, कामावेग और कामातिचारका भी प्रतीक है। काम देववृत्ति नहीं है, यह निम्न प्राण-लोककी, पाशविक स्तरकी आसुरी वृत्ति है। काम-कलुषित चित्तमें देवताका वास नहीं होता। देव-सांनिध्य पानेके लिये तथा अध्यात्मजीवनमें प्रवेश करनेके लिये काम-विमुख हो काम-भावनापर पूर्ण नियन्त्रण तथा पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन प्रथम शर्त है। साधकका आचार-विचार देवताके अनुकूल ही होता है। अतः श्रीगणपतिके उपासकके लिये मूषकवत् अवचेतनामें स्थित सभी छिपी हुई कामवृत्तियोंपर नियन्त्रण पाना अत्यन्त आवश्यक है।

मूषक बिलमें छिपकर रहनेवाला अन्धकारका प्राणी है। इस रूपमें वह उन सभी अन्धकारमें रहनेवाली अज्ञानमयी शक्तियोंका प्रतीक है, जो ज्ञान और प्रकाशसे डरती हैं तथा अँधेरेमें छिपकर हानि पहुँचाती हैं। जो गणपति बनना चाहता है, उसे इन सब अन्धकारमें छिपकर रहनेवाली व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानवताकी घातक शक्तियोंका नियन्त्रण एवं जीवनके सभी क्षेत्रको ज्ञानके प्रकाशसे पूर्ण करना होगा। साधकको निरन्तर सावधान एवं जागरूक रहकर देखना होगा कि उसके शरीर, प्राण, मन और बुद्धिके क्षेत्रमें कहीं कोई कोना ऐसा तो नहीं है, जहाँ अन्धकारकी इन शक्तियोंका गुप्त वास है तथा जो असावधानीके क्षणोंमें उसपर आक्रमण कर उसकी अध्यात्म-साधनाकी बहुमूल्य सम्पत्तिको कुतर-कुतरकर नष्ट कर रही हैं। मूषकवाहन निरन्तर जागरूक रहने एवं सर्वत्र सर्वदा ज्ञानप्रकाशपूर्ण रहनेका संदेश देता है।

भौतिक जीवन अन्नकी बहुलता एवं सम्पन्नतापर अवलम्बित है। अध्यात्म-साधनाका प्रारम्भ अन्नमय कोषकी उपासनासे प्रारम्भ होता है। अतएव तैत्तिरीय-उपनिषद् ३। ९ का ब्रह्मसाधकके लिये आदेश है—'**अन्नं बहु कुर्वीत**। पर्याप्त अन्न उपजाओ और अन्नका संग्रह कर अतिथि आदिका पोषण करो।' पृथ्वीको धान्यसे सम्पन्न करना अन्न-ब्रह्मकी उपासना है। धान्योत्पत्ति एवं कृषिका सबसे बड़ा शत्रु मूषक है। पृथ्वीतत्त्वके अधिपति एवं जीवोंकी मंगल-सिद्धिके देवता श्रीगणेशका मूषक-वाहनत्व यह संकेत देता है कि जीवनमें प्रचुर पौष्टिक धान्यकी उपलब्धिके लिये मूषक-जैसे कृषि-विनाशक जन्तुओंका पूर्ण नियन्त्रण आवश्यक है।

इस प्रकार श्रीगणपतिका वाहन मूषक भौतिक जीवनसे लेकर अध्यात्म-जीवनतकके लिये नाना अभिप्रायोंके सार्थक एवं गम्भीर संकेत देता है। देवोपासकोंको इन संकेत-रहस्योंको समझकर उनके अनुसार आचरण करना चाहिये।

~~~ ० ~~~
~~~

'परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम'

ऋषिरुवाच

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं निरानन्दमानन्दमद्वैतपूर्णम्।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥

गुणातीतमानं चिदानन्दरूपं चिदाभासकं सर्वगं ज्ञानगम्यम्।
मुनिध्येयमाकाशरूपं परेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥

जगत्कारणं कारणज्ञानरूपं सुरादिं सुखादिं युगादिं गणेशम्।
जगद्व्यापिनं विश्ववन्द्यं सुरेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥

रजोयोगतो ब्रह्मरूपं श्रुतिज्ञं सदा कार्यसक्तं हृदाऽचिन्त्यरूपम्।
जगत्कारणं सर्वविद्यानिदानं परब्रह्मरूपं गणेशं नताः स्मः॥

सदा सत्त्वयोगं मुदा क्रीडमानं सुरारीन् हरन्तं जगत्पालयन्तम्।
अनेकावतारं निजज्ञानहारं सदा विश्वरूपं गणेशं नमामः॥

तमोयोगिनं रुद्ररूपं त्रिनेत्रं जगद्धारकं तारकं ज्ञानहेतुम्।
अनेकागमैः स्वं जनं बोधयन्तं सदा सर्वरूपं गणेशं नमामः॥

तमःस्तोमहारं जनाज्ञानहारं त्रयीवेदसारं परब्रह्मसारम्।
मुनिज्ञानकारं विदूरेविकारं सदा ब्रह्मरूपं गणेशं नमामः॥

निजैरोषधीस्तर्पयन्तं कराद्यैः सुरौघान् कलाभिः सुधास्राविणीभिः।
दिनेशांशुसंतापहारं द्विजेशं शशाङ्कस्वरूपं गणेशं नमामः॥

प्रकाशस्वरूपं नभोवायुरूपं विकारादिहेतुं कलाभारभूतम्।
अनेकक्रियानेकशक्तिस्वरूपं सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः॥

प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धराचारिरूपं दिगीशादिरूपम्।
असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुरूपं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः॥

त्वदीये मनः स्थापयेदङ्घ्रियुग्मे जनो विघ्नसंघातपीडां लभेत।
लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽयं जनो ध्वान्तपीडां कथं वा लभेत॥

वयं भ्रामिताः सर्वथाज्ञानयोगादलब्धास्तवाङ्घ्रिं बहून् वर्षपूगान्।
इदानीमवाप्तास्तवैव प्रसादात्प्रपन्नान् सदा पाहि विश्वम्भराद्य॥

इदं यः पठेत्प्रातरुत्थाय धीमान् त्रिसंध्यं सदा भक्तियुक्तो विशुद्धः।
सुपुत्रान् श्रियं सर्वकामाँल्लभेत परब्रह्मरूपो भवेदन्तकाले॥

एवं स्तुतो गणेशस्तु संतुष्टोऽभून्महामुने।
कृपया परयोपेतोऽभिधातुमुपचक्रमे॥

इति ऋषिकृतः श्रीगणपतिस्तवः सम्पूर्णः।

ऋषि बोले—जो अजन्मा, विकल्परहित, निराकार, अद्वितीय, लौकिक आनन्दसे शून्य, आत्मानन्दस्वरूप, अद्वैतभावसे पूर्ण, सर्वोत्कृष्ट, निर्गुण, निर्विशेष, निरीह एवं परब्रह्मस्वरूप हैं, उन गणेशका हम भजन करें। जिनका मान (स्वरूप-निरूपण) तीनों गुणोंसे अतीत है, जो चिदानन्दस्वरूप, चिदाभासक, सर्वव्यापी, ज्ञानगम्य, मुनियोंके ध्येय, आकाशस्वरूप एवं परमेश्वर हैं, उन परब्रह्मरूप गणेशका हम भजन करें। जो जगत्‌के कारण हैं, कारणज्ञान जिनका स्वरूप है, जो देवताओं, सुखों और युगोंके आदिकारण हैं, जो प्रमथगणोंके स्वामी, विश्वव्यापी, जगद्वन्द्य तथा देवेश्वर हैं, उन परब्रह्मरूप गणेशका हम भजन करें। जो रजोगुणके योगसे ब्रह्माका रूप धारण करते हैं, वेदोंके ज्ञाता हैं और सदा सृष्टिकार्यमें संलग्न रहते हैं, जिनका पारमार्थिक रूप मनसे अचिन्त्य है, जो जगत्‌की उत्पत्तिके हेतु तथा सम्पूर्ण विद्याओंके आदिकारण हैं, उन परब्रह्मरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो सदा सत्त्वगुणसे युक्त विष्णुरूप हैं, आनन्दसे खेलते रहते हैं, असुरोंका नाश करते और जगत्‌की रक्षामें संलग्न रहते हैं, जिनके अनेक अवतार हैं तथा आत्मज्ञान ही जिनका कण्ठहार है, उन विश्वरूप गणेशको हम सदा नमस्कार करते हैं। जो तमोगुणके सम्पर्कसे रुद्ररूप धारण करते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो जगत्‌के हर्ता, तारक और ज्ञानके हेतु हैं तथा जो अनेक आगमोक्त वचनोंद्वारा अपने भक्तजनोंको सदा तत्त्वज्ञानोपदेश देते रहते हैं, उन सर्वरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो अज्ञानान्धकारराशिके नाशक, भक्तजनोंके अज्ञानके निवारक, तीनों वेदोंके सारस्वरूप, परब्रह्मसार, मुनियोंको ज्ञान देनेवाले तथा मनोविकारोंसे सदा दूर रहनेवाले हैं, उन ब्रह्मरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो अपनी किरण आदिसे ओषधियोंको तृप्त एवं पुष्ट करते हैं, अमृतवर्षिणी कलाओंद्वारा देवसमुदायको तृप्त किया करते हैं, सूर्य-किरणोंसे उत्पन्न संतापको हर लेते हैं और द्विजोंके राजा हैं, उन चन्द्रस्वरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो प्रकाशस्वरूप, आकाश एवं वायुरूप, विकार आदिके हेतु और कलाओंके भारको वहन करनेवाले हैं, अनेक क्रियाओंकी अनेकानेक शक्तियाँ जिनकी स्वरूपभूता हैं, उन शक्तिरूप गणेशको हम सदा नमस्कार करते हैं। प्रधान, महत्तत्त्व, भूतलचारी प्राणी तथा दिक्पाल आदि जिनके स्वरूप हैं, जो सदसत्स्वरूप एवं जगत्‌के कारणरूप हैं, उन विश्वरूप गणेशको हम सदा नमस्कार करते हैं। गणनाथ! जो आपके युगलचरणोंमें मन लगाये, वह मनुष्य भी यदि विघ्नसमूहजनित पीड़ा प्राप्त करे तो आश्चर्य है! शोभाशाली, विशाल सूर्यमण्डलके प्रकाशमें खड़ा हुआ मानव अन्धकारजनित क्लेश कैसे प्राप्त कर सकता है! विश्वम्भर! हम अज्ञानयोगसे बहुत वर्षोंतक आपके चरणारविन्दोंको न प्राप्त कर सकनेके कारण सर्वथा भटकते रहे हैं। अब आपकी ही कृपासे आपके चरणोंकी शरणमें आ गये हैं। अतः हे आदिदेव! आप सदा हमारी रक्षा करें।

जो बुद्धिमान् मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर भक्तियुक्त विशुद्धभावसे सदा तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करे, वह उत्तम पुत्र, लक्ष्मी तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर ले और अन्तकालमें परब्रह्मरूप हो जाय।

महामुने! इस प्रकार ऋषियोंके स्तुति करनेपर भगवान् गणेश बहुत संतुष्ट हुए और बड़ी कृपा करके कुछ कहना आरम्भ किया।

इस प्रकार ऋषिकृत गणपतिस्तव सम्पूर्ण हुआ।

जय गणपति !

जय गणपति, गणनायक जय हे! जन-मन-मङ्गल, त्राता।
एक-रदन, गज-वदन, विनायक, कृपासिन्धु सुखदाता॥
जय लम्बोदर, मूषक-वाहन, विघ्न-विनाशन-कर्ता।
जय जग-वन्दन, शंकर-नन्दन, कलुष-ताप-तम-हर्ता॥
बुद्धिराशि, शुभ ज्ञान-प्रकाशक, मोदक-प्रियवर वर दो।
भारत-माताके अञ्चलमें सुखद सम्पदा भर दो॥

—श्रीवासुदेवजी गोस्वामी

श्रीगणेश-लीला

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

[भगवान्‌के लीला-अवतारोंके चरित विभिन्न पुराणों-शास्त्रोंमें विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। भगवान् लीलाविहारी सर्वसमर्थ हैं एवं कल्पभेदसे उनके अनन्त अवतार हुए हैं; अतएव उनके चरित भी अनन्त हैं। 'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता'**से संतशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने इसी भावको स्पष्ट किया है। वस्तुतः भगवान्‌के सभी चरित यथार्थ हैं एवं भक्तोंके प्राण हैं। प्रस्तुत प्रसंगका अध्ययन करते समय इस तथ्यको निरन्तर स्मृतिमें रखना चाहिये; तभी भगवान् श्रीगणेशकी लीलाओंके आस्वादनका वास्तविक आनन्द एवं फल प्राप्त हो सकेगा**—सम्पादक]

प्रस्तावना

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मस्वरूपाय चारवे। सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः[1]॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्ड १३। ३२)

सिद्धि-सदन[2] श्रीगणेश सर्वात्मा शिव और धर्ममध्यनिवासिनी पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्र तथा परम तेजस्वी, परम पराक्रमी षडाननके अग्रज हैं। कहीं-कहीं ये स्वयं उनके अनुज माने जाते हैं। ये खर्व (छोटे कदवाले), अरुणवर्ण, एकदन्त, गजमुख, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, अरुण-वस्त्र, त्रिपुण्ड्रतिलक, मूषकवाहन, पार्वती-पुत्र, विद्या-वारिधि एवं मंगलकी मूर्ति हैं। भगवान् गणपति बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। वे साक्षात् प्रणवरूप हैं। जिन्हें भौतिक सिद्धि चाहिये, वे इस युगमें गणेशजीको शीघ्र प्रसन्न कर पाते हैं[3]। पार्वतीनन्दन अत्यल्प श्रमसे ही मुदित और द्रवित हो जाते हैं। इन मंगलवपुके नाम-स्मरण, ध्यान, जप, आराधना एवं प्रार्थनासे मेधाशक्ति तीव्र होती है। समस्त कामनाओंकी पूर्ति और विघ्नोंका निवारण हो जाता है। त्रयतापका शमन एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष करतलगत हो जाते हैं। मोदक-प्रिय गजमुखकी प्रसन्नतासे निरन्तर आनन्द-मंगलकी वृद्धि होती ही रहती है।

वेदविहित समस्त कर्मोंमें प्रथमपूज्य अम्बिकानन्दन गणेश नित्यदेवता हैं, किंतु भिन्न-भिन्न कालों एवं अवसरोंपर जगत्‌के मंगलके लिये इनका मंगलमय लीला-प्राकट्य होता है। इनकी लीला और इनके कर्म अद्‌भुत और अलौकिक होते हैं। करुणामूर्ति गणेश सदा ही अधर्म, अनीति, अनाचार एवं पाप-तापका सर्वनाश कर साधु-परित्राण एवं सद्धर्मकी स्थापना कर उसका संवर्द्धन करते हैं।

बुद्धि-विधाता गणपतिका प्राकट्य, उनका मंगलमय विग्रह एवं उनकी लीला—सभी अद्‌भुत एवं अलौकिक हैं। सभी आनन्दमयी एवं मंगलप्रदायिनी हैं। भक्तप्राणधन वृषभध्वजके पुत्र गजमुखकी विभिन्न

---

१. इस मन्त्रका परिचय और माहात्म्य इस प्रकार है—

द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः॥
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः। मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते॥
विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च। महावाग्मी महासिद्धः सर्वसिद्धिसमन्वितः॥
वाक्पतिर्जगतां याति तस्य साक्षात् सुनिश्चितम्। महाकवीन्द्रो गुणवान् विदुषां च गुरोर्गुरुः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३। ३४—३७)

'श्रीगणेशजीके इस मन्त्रमें बत्तीस अक्षर हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंका दाता, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका फल देनेवाला और सर्वसिद्धिप्रद है। इसके पाँच लाख जपसे ही साधकको मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। भारतवर्षमें जिसे मन्त्रसिद्धि हो जाती है, वह विष्णु-तुल्य हो जाता है। उसके नाम-स्मरणसे सारे विघ्न भाग जाते हैं। निश्चय ही वह महान् वक्ता, महासिद्ध, सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न, श्रेष्ठ कवियोंमें भी श्रेष्ठ, गुणवान्, विद्वानोंके गुरुका गुरु तथा जगत्‌के लिये साक्षात् वाक्पति हो जाता है।'

२. सिद्धियोंके विवरणके लिये श्रीमद्भागवतके ११वें स्कन्धके १५वें अध्यायमें श्लोक ३से ८तक देखने चाहिये।

३. 'कलौ चण्डीविनायकौ।'

अवसरोंकी विभिन्न लीला-कथाएँ अनुपम, आदर्श एवं मनोहर हैं। उन कथाओंमें शंका उचित नहीं*। श्वेतकल्पमें तो शिवजीने गणेशजीका मस्तक काट लिया था। यह कल्याणकारिणी मनोहर कथा सुनाते हुए लोकपितामह ब्रह्माने महामुनि नारदसे कहा—

संदेहो नात्र कर्तव्यः शंकरः सूतिकृन्मुने । स हि सर्वाधिपः शम्भुर्निर्गुणः सगुणोऽपि हि॥
तल्लीलयाखिलं विश्वं सृज्यते पाल्यते तथा । विनाश्यते [illegible] ॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १३। ७-८)

'मुने! इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान् शम्भु कल्याणकारी, सृष्टिकर्ता और सबके स्वामी हैं। वे ही सगुण और निर्गुण भी हैं। उन्हींकी लीलासे सारे विश्वकी सृष्टि, रक्षा और विनाश होता है।'

भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथा आरम्भ करनेके पूर्व उनके भ्राता कुमार कार्तिकेयके चरितका संक्षेपमें परिचय दे देना उपयुक्त होगा।

कुमार कार्तिकेय

प्रातःस्मरणीया भगवती सती अपने प्राणाधार पति देवदेव महादेवजीका अपमान नहीं सह सकीं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने अपने पिता दक्षके यज्ञमें ही योगाग्निके द्वारा अपना शरीर भस्म कर दिया। फिर वे हिमगिरिपत्नी मेनाकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं। उन्होंने अपने जीवनसर्वस्व कर्पूर-गौर शिवकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त कठोर तप किया। फलतः समयपर जगद्वन्द्य शिवके साथ उनका मंगल-परिणय हुआ। विवाहोपरान्त भगवान् शंकर वन्दनीया पार्वतीके साथ कैलासपर्वतपर लौट आये।

हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीके प्रति त्रैलोक्यवन्दित आशुतोष शिवके हृदयमें अत्यधिक प्रीति थी। वे रमणीय उद्यानों और एकान्त वनोंमें शिवाके साथ विहार करने लगे। भगवती पार्वती अपने प्राणाराध्य पतिके साथ अत्यन्त प्रसन्न थीं।

एक बारकी बात है, शिवप्रिया माता पार्वती एक सरोवरके तटपर गयीं। सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ था। उसमें स्वर्णवर्णके कमल खिले थे। भगवती उमाने पहले तो जल-विहार किया, फिर उसके रमणीय तटपर उन्होंने स्वच्छ एवं सुमिष्ट जल पीनेकी इच्छा की। उसी समय उन्होंने देखा कि पद्मपत्रमें जल लेकर छः कृत्तिकाएँ अपने घर जानेवाली ही हैं।

'देवियो! पद्मपत्रमें रखा हुआ जल मैं भी पीना चाहती हूँ।' गिरिजाने कृत्तिकाओंसे अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

'भुवनपावनी देवि! हम तुम्हें एक शर्तपर यह जल दे सकती हैं।' कृत्तिकाओंने स्नेहसिक्त स्वरमें माता पार्वतीसे निवेदन किया—'तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र हममें भी मातृभाव रखे और हमारा भी पुत्र माना जाय। वह त्रैलोक्यविख्यात पुत्र हमारा रक्षक हो।'

'अच्छा, ऐसा ही हो।' शिवाने तत्क्षण वचन दे दिया।

कृत्तिकाएँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने कमल-पत्रमें रखा हुआ स्वच्छ सलिल थोड़ा उमाको भी दिया। भगवती पार्वतीने कृत्तिकाओंके साथ उक्त मधुर जलका पान किया।

त्रिनेत्रकी प्राणवल्लभा पार्वतीके जल पीते ही तुरंत उनकी दाहिनी कोखसे एक रोग-शोक-निवारक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। तिमिरारिके तुल्य उसके शरीरसे प्रभापुंजका प्रसार हो रहा था। वह अग्नितुल्य तेजस्वी बालक स्वर्णके समान गौरवर्णका था। उसके मनोहर कर-कमलोंमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अंकुश सुशोभित थे।

वह बालक कुत्सित दैत्योंके संहारके लिये प्रकट हुआ था, इस कारण 'कुमार' उसकी संज्ञा हुई। वह कृत्तिका-प्रदत्त जलसे शाखाओंसहित प्रकट हुआ था; वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं;

* मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि । कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥
(रामचरितमानस १। १००)

इन्हीं कारणोंसे वह विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे प्रख्यात हुआ।

स गर्भो दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान् पावकप्रभः।
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः॥
ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम्।
जातस्नेहाच्च सौहार्दात् पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः॥
अभवत् कार्त्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे।
स्कन्नत्वात् स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद् गुहोऽभवत्॥

(महा०, अनु० ८६। १२—१४)

'वह कान्तिमान् शिशु अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। उसके शरीरकी आकृति दिव्य थी। वह देखनेमें बहुत ही प्रिय जान पड़ता था। वह दिव्य सरकण्डेके वनमें जन्म ग्रहण करके दिनों-दिन बढ़ने लगा। कृत्तिकाओंने देखा कि वह बालक अपनी कान्तिसे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है, इससे उनके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और वे सौहार्दवश अपने स्तनोंका दूध पिलाकर उसका पोषण करने लगीं। इसीसे चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीमें वह कार्तिकेयके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्कन्दन (स्खलन)-के कारण वह 'स्कन्द' कहलाया और गुहामें वास करनेसे 'गुह'-नामसे विख्यात हुआ।'

लोकपितामह ब्रह्मा, क्षीरोदधिशायी विष्णु, शचीपति इन्द्र और भगवान् भुवनभास्कर आदि समस्त देवताओंने चन्दन, माला, सुन्दर धूप, खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और अंगराग आदिके द्वारा कुमार षड्वदनका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया। भगवान् श्रीविष्णुने उन्हें सब प्रकारके आयुध प्रदान किये। धनाधिपति कुबेर, अग्नि और वायुने उन्हें क्रमशः दस लाख यक्षोंकी सेना, तेज और वाहन अर्पित किये। सुरसमुदायने कुमार कार्त्तिकेयको अनन्त पदार्थ समर्पित किये। तदनन्तर देवताओंने घुटने टेककर स्कन्दकी स्तुति-प्रार्थना की*।

'देवताओ! आपलोग शान्त होकर बताइये कि मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ?' देवताओंकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर कुमारने उनसे कहा—'यदि आपके मनमें चिरकालसे कोई असाध्य कार्य भी करनेकी इच्छा हो तो कहिये।'

'कुमार! तारक नामक प्रख्यात असुरराज सुरसमुदायका सर्वनाश कर रहा है।' देवताओंने अत्यन्त मधुर वाणीमें निवेदन किया—'वह अत्यन्त बलवान्, अजेय, क्रूर, दुराचारी एवं क्रोधी भी है। हमलोग उस असुरसे भयभीत और त्रस्त हैं। अतएव आप उक्त दुर्दमनीय तारकासुरका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है।'

'तथास्तु!' दुःखी देवताओंके वचन सुनते ही षडाननने कह दिया और भू-कण्टक तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चल पड़े।

कार्तिकेयका आश्रय प्राप्त हो जानेपर सुरेन्द्रने अपना एक दूत भयानक आकृतिवाले अजेय तारक असुरके पास भेजा।

'असुरराज! देवराज इन्द्रने संदेश दिया है।' दूतने तारकासुरके पास जाकर कहा—'वे देवगण तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भी प्रयत्न करना चाहो, कर लो।'

'निश्चय ही सुरेन्द्रको कोई आश्रय प्राप्त हो गया है।' दूतके चले जानेपर असुरराजने विचार किया—'अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे।'

'ऐसा कौन वीर पुरुष है, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।' तारकासुर पुनः विचार कर ही रहा था कि उसे वन्दियोंके द्वारा बालक विशाखका स्तवन सुनायी पड़ा।

'तुम्हारा वध बालकके द्वारा होगा।' दैत्यराज तारकको पितामहका वर स्मरण हो आया। वह भयभीत हो गया, तथापि उसने शस्त्र धारण किया और अपनी दुर्दमनीय सेनाके साथ कुमारके सम्मुख डट गया।

'बालक! तू युद्ध क्यों चाहता है?' तारकासुरने अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न सुकोमल कुमारको देखकर कहा—'जा, कन्दुक खेल। तू निरा बच्चा है। युद्ध बलात् तेरे सिरपर लाद दिया गया है। यह तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। अभी तुझे समझ नहीं है। जा, घर चला जा।'

'तारक! यहाँ शास्त्रार्थ नहीं करना है।' कुमारने स्पष्ट शब्दोंमें तारकासुरसे कहा—'भयंकर संग्राममें

* कुमार कार्त्तिकेयके प्राकट्यकी पावन कथा महाभारत, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त्त आदि पुराणोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। कल्पभेदसे सभी कथाएँ सत्य हैं। यह अत्यन्त संक्षिप्त कथा पद्मपुराणके आधारपर लिखी गयी है।

शस्त्रोंके द्वारा ही अर्थकी सिद्धि होती है। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। विषधरका नन्हा बच्चा भी मार डालनेमें समर्थ होता है; बालसूर्यकी ओर भी दृष्टिपात करना कठिन होता है; अत्यन्त छोटे मन्त्रमें भी अद्भुत शक्ति होती है; इसी प्रकार मैं भी दुर्जय हूँ। तुम मुझे पराजित नहीं कर सकोगे।'

कार्तिकेयका कथन पूर्ण भी नहीं हो पाया था कि धर्मविध्वंसी असुरने उनके ऊपर वज्रतुल्य मुद्गरका प्रहार किया; किंतु कुमारने उसे अपने अमोघ तेजवाले चक्रसे बीचमें ही नष्ट कर दिया। असुरने अपने जिन-जिन भयंकर अस्त्रोंका प्रहार किया, वे सभी कुमारके द्वारा नष्ट हो गये। फिर पार्वतीकुमारने दैत्यपर अपनी भयानक गदा फेंकी। उसकी चोटसे पर्वताकार दैत्य तिलमिला उठा।

'निश्चय ही यह बालक असाधारण एवं दुर्जय शूरवीर है।' गदाघातसे व्याकुल तारकने मन-ही-मन सोचा—'अब निस्संदेह मेरी मृत्यु समीप आ गयी है।'

मृत्यु-भयसे भीत अजेय तारक काँप उठा। उसके ललाटपर स्वेद-कण झलकने लगे। उसकी यह दशा देखकर कालनेमि आदि दैत्यपतियोंने अत्यन्त वेगसे कुमारपर आक्रमण कर दिया; किंतु अमित तेजस्वी एवं परम पराक्रमी कार्तिकेय तनिक भी विचलित नहीं हुए। दैत्योंके भयानक प्रहार और विभीषिकाएँ उन्हें स्पर्शतक नहीं कर सकीं। उन्होंने दैत्यपतियोंके समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको विदीर्ण कर दिया, किंतु दैत्य उनके भयानक प्रहारका निवारण करनेमें सर्वथा असमर्थ थे। कार्तिकेयके अस्त्रोंकी निरन्तर वर्षासे दैत्य-सेना क्षत-विक्षत हो गयी; धरतीपर जैसे रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी और सर्वत्र दैत्य-वीरोंके रुण्ड-मुण्ड दीखने लगे। बड़ा भयानक दृश्य था।

रुद्रपुत्र कार्तिकेयके अस्त्रोंकी अनवरत वर्षासे दैत्य-दल विचलित ही नहीं, व्याकुल हो गया। अधीर होकर कालनेमि आदि भयानक देवशत्रु युद्ध छोड़कर पलायित हुए।

दैत्य-वाहिनी चतुर्दिक् भागी जा रही थी और किन्नरगण परम पराक्रमी कुमारके विजय-गीत गाने लगे। यह देखकर महाशूर तारक क्रोधसे उन्मत्त हो गया। उसने स्वर्ण-कान्तिसे सुशोभित अद्भुत गदासे कुमारपर भीषण प्रहार किया और इतने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा की कि कार्तिकेय-वाहन मयूर रक्तसे लथपथ हो भाग खड़ा हुआ।

'दुष्ट दैत्य, खड़ा रह' कुमारने अत्यन्त कुपित होकर तारकसे कहा। 'अब मैं तेरी जीवन-लीला समाप्त कर रहा हूँ। तू कुछ देर और अपने नेत्रोंसे इस संसारको देख ले।'

कुमारने क्रुद्ध होकर महान् तारकासुरपर अपनी शक्तिका प्रहार किया। शक्तिमूर्ति पार्वतीपुत्र कार्तिकेयकी वह अमोघ शक्ति केयूरकी खनखनाहटके साथ चली और सुर-शत्रु तारकके वज्र-तुल्य वक्षमें बड़े वेगसे प्रविष्ट हो गयी। तारकका हृदय विदीर्ण हो गया। उस अमित बलशाली अजेय दैत्यका विशाल निर्जीव शरीर धरतीपर गिर पड़ा।

तारक-वधसे धरतीका पातक कट गया। सभी सुखी हुए। देवगण विपत्तिनिवारक परमोपकारी महेश्वर-पुत्र कार्तिकेयका स्तवन करने लगे। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे आनन्द-मग्न होकर हँसते हुए उछलने-कूदने तथा नृत्य करने लगे। उन्होंने अमित तेजस्वी कुमारकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन्हें अनेक वर प्रदान किये।

इस प्रकार हर्षित और पुलकित देवगण सर्वथा निश्चिन्त होकर अपने-अपने लोकोंके लिये प्रस्थित हुए।*

---

* यः पठेत् स्कन्दसम्बद्धां कथामेतां महामतिः। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत् कीर्तिमान्नरः॥
बह्वायुः सुभगः श्रीमान् कीर्तिमाञ्छुभदर्शनः। भूतेभ्यो निर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः॥
(पद्मपु०, सृष्टिखं० ४६। २१७-२१८)

देवताओंने कहा—'जो परम बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिकेयजीसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको पढ़ेगा, सुनेगा अथवा सुनायेगा, वह यशस्वी होगा। उसकी आयु बढ़ेगी; वह सौभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, कान्तिमान्, सुन्दर, समस्त प्राणियोंसे निर्भय तथा सब दुःखोंसे मुक्त होगा।'

विभिन्न पुराणोंमें श्रीगणेशकी प्राकट्य-कथा एवं लीलाएँ

(क) पद्मपुराणमें

हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीका पाणिग्रहण करनेके बाद भगवान् शंकर रमणीय उद्यानों और एकान्त वनोंमें उनके साथ विहार करने लगे। परमानन्द-प्रदायिनी भवानीके प्रति शुद्धात्मा शिवके हृदयमें अत्यधिक अनुराग था। एक बारकी बात है—शंकरेच्छानुवर्तिनी पार्वतीने सुगन्धित तैल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनायी, जिसका मुँह हाथीके समान था। क्रीड़ा करते हुए उन्होंने उस गजमुख पुरुषाकृतिको पुण्यसलिला गंगाजीके जलमें डाल दिया। त्रैलोक्यतारिणी गंगाजी त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीको अपनी सहेली मानती थीं। उनके पुण्यमय जलमें पड़ते ही वह पुरुषाकृति विशालकाय हो गयी। शंकरार्धशरीरिणी माता पार्वतीने उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा। फिर सुरसरिने भी उसे 'पुत्र' कहकर सम्बोधित किया। देवसमुदायने उसे 'गांगेय' कहकर सम्मान प्रदान किया। इस प्रकार गजवदन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। कमलोद्भव ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया।

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें वर्णित श्रीगणेश-प्राकट्यकी मधुर, मनोहर एवं मंगलमयी कथाका यह सार है।

(ख) लिंगपुराणमें

लिंगपुराणके पूर्वार्द्धमें सर्वपूज्य गणेशजीके प्राकट्यकी कथा इस प्रकार है—

एक बारकी बात है। देवताओंने परस्पर विचार किया कि 'प्रायः सभी असुर सृष्टिस्थित्यन्तकारी वृषभध्वज एवं चतुर्मुखकी आराधना कर उनसे इच्छित वर प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण युद्धमें हम उनसे सदा पराजित होते रहते हैं। दैत्योंके कारण हमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इस कारण हमलोग अपनी विजय एवं दैत्योंके कार्यमें विघ्न उपस्थित करने तथा सर्वसिद्धि-प्राप्तिके लिये आशुतोष शिवसे प्रार्थना करें।'

सुरसमुदाय पार्वतीवल्लभ शिवके समीप पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगा। वृषभध्वज प्रसन्न हुए और उन्होंने देवताओंसे कहा—'अभीष्ट वर माँगो।'

'करुणामूर्ति प्रभो!' देवताओंकी ओरसे बृहस्पतिने निवेदन किया—'देव-शत्रु दानवोंकी उपासनासे संतुष्ट होकर आप उन्हें वर-प्रदान कर देते हैं और वे समर्थ होकर हमें अत्यन्त कष्ट पहुँचाते हैं। उन सुरद्रोही दनुजोंके कर्ममें विघ्न उपस्थित हुआ करे, हमारी यही कामना है।'

'तथास्तु!' परम संतुष्ट वरद आशुतोषने सुरसमुदायको आश्वस्त किया।

कुछ ही समय बाद सर्वलोकमहेश्वर शिवकी सती पत्नी पार्वतीके सम्मुख परब्रह्मस्वरूप स्कन्दाग्रजका प्राकट्य हुआ। उक्त परम तेजस्वी बालकका मुख हाथीका था। उसके एक हाथमें त्रिशूल तथा दूसरे हाथमें पाश था।

सर्वविघ्नेश मोदक-प्रियके धरतीपर अवतरित होते ही देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक सुमन-वृष्टि करते हुए गजाननके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। गजमुख अपने कृपाविग्रह माता-पिताके सम्मुख आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे।

त्रैलोक्यतारिणी दयामयी हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीने अपने समस्त मंगलालय पुत्रको अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र वस्त्राभरण पहनाये। देवाधिदेव महादेवने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणप्रिय पुत्रका जातकर्मादि संस्कार करवाया। तदुपरान्त उन्होंने अपने पुत्रको प्रेमपूर्वक गोदमें उठाकर वक्षसे सटा लिया। फिर सर्वदुरितापहारी कल्याणमूर्ति शिवने अपने पुत्रसे कहा—

तवावतारो दैत्यानां विनाशाय ममात्मज।
देवानामुपकारार्थं द्विजानां ब्रह्मवादिनाम्॥
यज्ञश्च दक्षिणाहीनः कृतो येन महीतले।
तस्य धर्मस्य विघ्नं च कुरु स्वर्गपथे स्थितः॥
अध्यापनं चाध्ययनं व्याख्यानं कर्म एव च।
योऽन्यायतः करोत्यस्मिंस्तस्य प्राणान् सदा हर॥
वर्णाच्च्युतानां नारीणां नराणां नरपुंगव।
स्वधर्मरहितानां च प्राणानपहर प्रभो॥
याः स्त्रियस्त्वां सदाकालं पुरुषाश्च विनायक।
यजन्ति तासां तेषां च त्वत्साम्यं दातुमर्हसि॥
त्वं भक्तान् सर्वयत्नेन रक्ष बाल गणेश्वर।
यौवनस्थांश्च वृद्धांश्च इहामुत्र च पूजितः॥

जगत्त्रयेऽत्र सर्वत्र त्वं हि विघ्नगणेश्वरः।
सम्पूज्यो वन्दनीयश्च भविष्यसि न संशयः॥
मां च नारायणं वापि ब्रह्माणमपि पुत्रक।
यजन्ति यज्ञैर्वा विप्रैरग्रे पूज्यो भविष्यसि॥
त्वामनभ्यर्च्य कल्याणं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम्।
कुरुते तस्य कल्याणमकल्याणं भविष्यति॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव गजानन।
सम्पूज्यः सर्वसिद्ध्यर्थं भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः॥
त्वां गन्धपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्य जगत्त्रये।
देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्यं नास्ति कुत्रचित्॥
अभ्यर्चयन्ति ये लोका मानवास्तु विनायकम्।
ते चार्चनीयाः शक्राद्यैर्भविष्यन्ति न संशयः॥
अजं हरिं च मां वापि शक्रमन्यान् सुरानपि।
विघ्नैर्बाधयसि त्वां चेन्नार्चयन्ति फलार्थिनः॥

(लिंगपु० १०५। १५—२७)

'मेरे पुत्र गणेश! यह तुम्हारा अवतार दैत्योंका नाश करने तथा देवता, ब्राह्मण एवं ब्रह्मवादियोंका उपकार करनेके लिये हुआ है। देखो, यदि पृथ्वीपर कोई दक्षिणाहीन यज्ञ करे, तो तुम स्वर्गके मार्गमें स्थित हो उसके धर्मकार्यमें विघ्न उत्पन्न करो; अर्थात् ऐसे यज्ञकर्ताको स्वर्ग मत जाने दो। जो इस जगत्में अनुचित ढंगसे अन्यायपूर्वक अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान और दूसरा कार्य करता हो, उसके प्राणोंका तुम सदा ही हरण करते रहो। नरपुंगव प्रभो! वर्णधर्मसे च्युत स्त्री-पुरुषों तथा स्वधर्मरहित व्यक्तियोंके भी प्राणोंका तुम अपहरण करो। विनायक! जो स्त्री-पुरुष ठीक समयपर सदा तुम्हारी पूजा करते हों, उनको तुम अपनी समता प्रदान करो। हे बाल गणेश्वर! तुम पूजित होकर अपने युवा एवं बूढ़े भक्तोंकी भी सब प्रकारसे इस लोकमें तथा परलोकमें भी रक्षा करना। तुम विघ्नगणोंके स्वामी होनेके कारण तीनों लोकोंमें तथा सर्वत्र ही पूज्य एवं वन्दनीय होओगे, इसमें संदेह नहीं। जो लोग मेरी, भगवान् विष्णुकी अथवा ब्रह्माजीकी भी यज्ञोंद्वारा अथवा ब्राह्मणोंके माध्यमसे पूजा करते हैं, उन सबके द्वारा तुम पहले पूजित होओगे। जो तुम्हारी पूजा किये बिना श्रौत, स्मार्त या लौकिक कल्याणकारक कर्मोंका अनुष्ठान करेगा, उसका मंगल भी अमङ्गलमें परिणत हो जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंद्वारा भी तुम सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्ष्य-भोज्य आदि शुभ पदार्थोंसे पूजित होओगे। तीनों लोकोंमें जो चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके द्वारा तुम्हारी पूजा किये बिना ही कुछ पानेकी चेष्टा करेंगे, वे देवता हों अथवा और कोई, उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जो लोग या मनुष्य तुझ विनायककी पूजा करेंगे, वे निश्चय ही इन्द्रादि देवताओंद्वारा भी पूजित होंगे। जो लोग फलकी कामनासे ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य देवताओंकी भी पूजा करेंगे, किंतु तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे उन्हें तुम विघ्नोंद्वारा बाधा पहुँचाओगे।'

सर्वात्मा प्रभु शिवका आशीर्वाद प्राप्तकर भगवान् गणपतिने विघ्नगणोंको उत्पन्न किया और उन गणोंके साथ उन्होंने भगवान् शंकरके मंगलमय चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। फिर वे त्रैलोक्यपति पशुपतिके सम्मुख खड़े हो गये। तबसे लोकमें श्रीगणपतिकी अग्रपूजा होती है। इसके बाद श्रीगणेशजीने दैत्योंके धर्मकार्यमें विघ्न* पहुँचाना आरम्भ कर दिया।

(ग) ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें

शिवकी शिवाको सोदाहरण पुण्यक-व्रत करनेकी प्रेरणा

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार शिव-प्राणवल्लभा पार्वतीके मंगलमय अंकमें श्रीकृष्णरूपी परमतत्त्व ही व्यक्त हुआ था, वह पाप-संतापहारिणी एवं निखिलानन्दवर्द्धिनी कथा भगवान् श्रीनारायणने देवर्षि नारदको इस प्रकार सुनायी थी—

वैराग्यज्ञाननिरता शैलपुत्री पार्वतीके साथ सर्वसाक्षी वृषभध्वजके मंगल-परिणयके अनन्तर चराचरात्मा शिव उन्हें साथ लेकर निर्जन वनमें चले गये। वहाँ दीर्घकालतक

---

* समस्त जगत्की दैनन्दिन युग-कल्प आदि गणनासे व्यष्टि किंवा समष्टिकी सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक जगद्व्यापारको 'कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा वा कर्तुम्' विघ्नोंकी भी कहीं-कहीं आवश्यकता है। अच्छी भी कोई बात रुक-रुककर चलती रहे या किसी एक विशिष्ट व्यवस्थासे चले, किंवा रूपान्तरसे चले, इसके लिये प्रतिबन्धकोंकी योजना रहती है।—'श्रीगणेश-मीमांसा'

देवाधिदेव महादेवका विहार चलता रहा। एक दिन धर्मज्ञा पार्वतीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया—'प्रभो! मैं एक श्रेष्ठ पुत्र चाहती हूँ।'

'प्रिये! मैं तुम्हें सम्पूर्ण व्रतोंमें एक श्रेष्ठ व्रत बताता हूँ, जो सम्पूर्ण अभीष्टसिद्धिका बीजरूप, परम मंगलदायक तथा हर्ष प्रदान करनेवाला है।' सर्वभूतपति भगवान् त्रिपुरारिने त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीसे मुदित मनसे कहा—''उस परम शुभद व्रतका नाम 'पुण्यक' है। तुम श्रीहरिका स्मरण कर यह व्रत प्रारम्भ करो। इसके अनुष्ठानकी पूर्ति एक वर्षमें होती है।''

'धर्मात्मा मनुकी सती पत्नी पुत्रके बिना दुःखी थीं।' कालनाशन नीलकण्ठने आगे कहा। 'वे ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके समीप पहुँचीं।'

'प्रभो! आप सृष्टिकर्ता और जगत्के कारणोंके भी कारण हैं।' सती शतरूपाने सर्वलोकपितामहसे विनयपूर्वक कहा—''पुत्रके बिना गार्हस्थ्य-जीवन सर्वथा नीरस और व्यर्थ होता है। पुत्रके बिना स्त्री-पुरुषका जन्म, ऐश्वर्य और धन सब निष्फल ही होता है। तप एवं दानका पुण्य जन्मान्तरमें सुखदायक सिद्ध होता है, परंतु पुत्र पिताको (इसी जन्ममें) सुख, मोक्ष और हर्ष प्रदान करता है। पुत्र 'पुत्' नामक नरकसे रक्षा करनेका हेतु होता है। अतएव वन्ध्याको किस प्रकार पुत्रकी प्राप्ति होती है, आप कृपापूर्वक बतानेका कष्ट कीजिये।''

'प्रभो! मैं पुत्रके बिना दुःखी हूँ। आप मुझे पुत्र-प्राप्तिका उपाय बताइये।' फिर दुःखी मनसे शतरूपाने विधातासे कहा—'अन्यथा मैं पतिके साथ वनमें चली जाऊँगी। आप पृथ्वी, धन, कीर्ति और राज्य आदि ग्रहण कीजिये; क्योंकि पुत्रके बिना हमारे लिये इनकी क्या उपयोगिता है?'

दुःखके आवेगसे परम सती शतरूपा फूट-फूटकर रोने लगीं।

'वत्से! मैं तुम्हें एक व्रत बताता हूँ, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, समस्त सत्कीर्तिप्रदायक तथा परम शुभद है। उसका अनुष्ठान करनेसे तुम निश्चय ही विष्णुके समान पराक्रमी श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करोगी।' रुदन करती हुई देवी शतरूपाको आश्वस्त करते हुए दयामय विधाताने कहा—'माघ मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिके पवित्र कालमें समस्त भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णकी श्रद्धा और विधिपूर्वक आराधना कर इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। यह व्रत सर्वाभीष्ट सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला और सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करनेवाला है। व्रतकालमें वेदोक्त द्रव्योंका दान करते हुए एक वर्षतक यह व्रत करना चाहिये।'

'लोकपितामहकी प्रेरणासे सती शतरूपाने इस परम शुभद पुण्यक-व्रतका सविधि अनुष्ठान किया। इस व्रतके प्रभावसे उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो सुन्दर एवं यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। महाभागा देवहूतिने भी इस पुण्यप्रद पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान किया था, जिसके प्रभावसे उन्हें सिद्धोंमें सर्वश्रेष्ठ एवं श्रीहरिके अंश भगवान् कपिल पुत्ररूपमें प्राप्त हुए। परम सती अरुन्धतीने इस व्रतके प्रभावसे शक्तिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। देवमाता अदितिने भी इस पुण्यमय व्रतका पालन किया, जिसके फलस्वरूप उनके मंगलमय अंकमें भगवान् वामन प्रकट हुए। इसी व्रतके प्रभावसे इन्द्राणीने जयन्तको, राजा उत्तानपादकी पत्नीने अनन्य भगवद्भक्त ध्रुवको, धनपति कुबेरकी प्राणप्रियाने नलकूबरको, सूर्यपत्नीने मनुको तथा अत्रिप्रियाने चन्द्रमाको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। इसी महिमामय व्रतके प्रभावसे अंगिरा-पत्नीने देवताओंके आचार्य-पदपर प्रतिष्ठित बृहस्पति-जैसा अन्यतम सात्त्विक बुद्धि-विशारद पुत्र प्राप्त कर लिया था। भाग्यवती भृगुपत्नीने इसी व्रतका पालन किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें भगवान् नारायणके अंश परम तेजस्वी दैत्यगुरु शुक्र-जैसे महान् पुत्रकी उपलब्धि हुई। यह परम पुण्यमय व्रत राजेन्द्रपत्नियों और देवियोंके लिये सुखसाध्य एवं आनन्दप्रद है। साध्वी स्त्रियोंके लिये तो यह व्रत प्राणाधिक प्रिय है।'

पुण्यक-व्रतकी संक्षिप्त विधि

सर्वधर्ममयी पार्वती अपने प्राणवल्लभ जगद्गुरु कर्पूरगौरके वचन अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रही थीं और कृपासिन्धु वृषवाहन कहते जा रहे थे—'माघ-मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन इस व्रतका आरम्भ किया जाता है। उत्तम व्रतीको व्रतारम्भके पहले दिन उपवास करना चाहिये और दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्तमें शय्या त्यागकर शौचादिसे निवृत्त हो वह निर्मल जलमें स्नान करे। फिर आचमनादिके अनन्तर सर्वव्यापी श्रीहरिको

अर्घ्य प्रदान कर शीघ्र ही घर लौट आये। घरपर नित्यकर्म पूर्ण कर लेनेके बाद सुयोग्य पुरोहितका वरण कर स्वस्तिवाचनपूर्वक कलश-स्थापन करे। फिर संकल्पके द्वारा यह महान् व्रतानुष्ठान आरम्भ करे।'

फिर सौन्दर्य, नेत्रदीप्ति, विविध अंगोंके सौन्दर्य, पति-सौभाग्य आदिके लिये विभिन्न वस्तुओंके संख्यासहित समर्पण करनेका उपदेश करते हुए दयामय शिवने कहा—'देवि! पुत्र-प्राप्तिके लिये कूष्माण्ड, नारियल, जम्बीर तथा श्रीफल—इन फलोंको श्रीहरिकी सेवामें समर्पित करना चाहिये। व्रतकालमें नाना प्रकारके संगीत और वाद्यसे परम प्रभुको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना उचित है। हरिभक्तिकी विशेष उपलब्धिके लिये सुगन्धित पुष्पोंकी (बिना टूटी हुई) एक लक्ष माला भक्तिपूर्वक प्रभुको चढ़ानी चाहिये। उनकी तुष्टिके लिये विविध प्रकारके मधुर एवं स्वादिष्ठ व्यंजनोंका भोग लगाना आवश्यक है। तुलसीदलमिश्रित अनेक प्रकारके सद्‌गन्धपूरित पुष्प समर्पित करनेसे श्रीहरिकी अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। जन्म-जन्मान्तरमें धन-धान्यकी वृद्धिके लिये व्रतकालमें व्रतीको प्रतिदिन एक सहस्र ब्राह्मणोंको तृप्तिकर भोजन कराना चाहिये।'

शिवने आगे बताया—'सुव्रते! प्रतिदिन पूजाके समय सुगन्धित सुमनोंसे भरी सौ अंजलियाँ समर्पितकर निखिलपावन प्रभुके चरणोंमें सौ बार प्रणाम करना उचित है। व्रतकालमें छः महीनेतक हविष्यान्न,[1] पाँच मासतक फलाहार और एक पक्षतक हविका आहार करे तथा एक पक्षतक केवल जलपर रहना चाहिये। रात्रिमें कुशासनपर नित्य जागरण करना श्रेष्ठ है। व्रतीके लिये अष्टविध मैथुनका[2] सर्वथा त्याग नितान्त आवश्यक है।'

'इस विधिसे व्रत सम्पन्न होनेपर व्रतोद्यापन करना उचित है। उस समय मनोहर वस्त्रोंसे आच्छादित उत्तम उपहारोंसे सज्जित तीन सौ साठ डलियाँ, भोजनके पदार्थ और यज्ञोपवीतका दान करना चाहिये। एक हजार तीन सौ साठ ब्राह्मणोंको भोजन तथा एक हजार तीन सौ साठ घृताहुतियाँ देनी चाहिये। व्रत समाप्त होनेपर दक्षिणामें एक हजार तीन सौ साठ स्वर्णमुद्राएँ देनेका विधान है। इसके अतिरिक्त व्रत-समाप्तिके दिन दूसरी दक्षिणा देनी चाहिये।'

'इस व्रतके फलस्वरूप श्रीहरिके चरणोंमें सुदृढ़ भक्ति हो जाती है और भुवनविख्यात पुत्र, सौन्दर्य, पति-सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं अपरिमित धनकी प्राप्ति होती है। यह महान् व्रत प्रत्येक जन्ममें वांछित सिद्धियोंका बीज है।'

इस प्रकार पुण्यक-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य सुनानेके अनन्तर परम करुणामय चन्द्रशेखरने अपनी परम सती सहधर्मिणी पार्वतीसे आगे कहा—'प्रिये! इस व्रतके लिये मैं पुष्प और फल लानेके लिये सौ शुद्ध ब्राह्मणोंको, सामग्री एकत्र करनेके लिये सौ भृत्योंको एवं अत्यधिक दास-दासियोंको नियुक्त कर देता हूँ। साथ ही समस्त व्रत-विधियोंके ज्ञाता, वेद-वेदांगके पारंगत विद्वान्, सर्वश्रेष्ठ हरिभक्त, सर्वज्ञ एवं परम ज्ञानी सनत्कुमारको पुरोहितके पदपर नियत करता हूँ। तुम इस व्रतका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पालन करो। तुम्हें निश्चय ही परम दुर्लभ पुत्र-रत्नकी उपलब्धि होगी।'

पाप-संतापहारिणी भगवती पार्वती अपने सर्वलोक-महेश्वर पतिके अमृतमय वचनोंसे आनन्द-विभोर हो गयीं और तपके विधाता भगवान् चन्द्रमौलि पार्वतीको सदुपदेश देकर चले गये।

पार्वतीद्वारा पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान

हिमगिरिनन्दिनी उमाने अपने पतिके आज्ञानुसार प्रसन्नतापूर्वक महान् पुण्यक-व्रतके अनुष्ठानका सुदृढ़ निश्चय कर पुष्प और फल आदि व्रतोपयोगी उपकरणोंको एकत्र करनेके लिये ब्राह्मणों तथा भृत्योंको प्रेरित किया। सभी वस्तुओंके एकत्र हो जानेपर वेदविद्याप्रकाशिनी भगवती पार्वतीने शुभ-मुहूर्तमें व्रतारम्भ किया।

उसी समय परम तेजस्वी ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार वहाँ पहुँच गये। सपत्नीक ब्रह्मा भी वहाँ आये। भगवान् महेश्वर भी उपस्थित हुए। विविध रत्नाभरणोंसे सुशोभित,

१. अगहनी धान, मूँग, तिल, जौ, मटर, तिन्नी, साठी, दूध, दही, घी, शक्कर, घृतपक्व पक्वान्न, लवंग, जीरा, पीपल, सेंधा नमक, समुद्री नमक, बथुआ, मूली, आम, इमली, कटहल, नारंगी, केला, हर्रे और आँवला आदि हविष्यान्नके अन्तर्गत आते हैं।

२. स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रियानिष्पत्ति—ये अष्टविध मैथुन हैं।

वनमालाधारी, चतुर्भुज, नवनीरदवपु, क्षीराब्धिशायी विष्णु भी अपनी प्रियतमा लक्ष्मी एवं अपने पार्षदोंसहित अत्यधिक सामग्रियाँ लेकर रत्नजटित विमानपर आरूढ़ हो वहाँ पधारे। इसके पश्चात् सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, धर्मपुत्र नर-नारायण एवं सभी प्रख्यात ऋषिगण अपने शिष्योंसहित पराम्बाके व्रतानुष्ठानके अवसरपर उपस्थित हुए। शम्भुवामा उमाके उस व्रतके अवसरपर दिक्पाल, देवता, यक्ष, किन्नर और गणोंसहित समस्त गिरिसमुदाय भी एकत्र हुआ। पर्वतराज हिमालय भी अपनी पुत्रीके व्रतमें रत्नाभरणोंसे अलंकृत हो, पत्नी, पुत्रगण और अनुयायियोंसहित नाना प्रकारके द्रव्योंसे संयुक्त बहुत बड़ी सामग्री और व्रतोपयोगी मणि-माणिक्य-रत्न लेकर हर्षातिरेकसे सम्मिलित हुए। उनके साथ धरतीमें दुर्लभ वस्तुएँ थीं। एक लक्ष गज-रत्न, तीन लक्ष अश्व-रत्न, दस लक्ष गो-रत्न, एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, चार लक्ष मुक्ता, एक सहस्र कौस्तुभमणि और अत्यन्त स्वादिष्ठ एवं सुमिष्ठ पदार्थोंके एक लक्ष भार भी थे।

श्रद्धामूर्ति हिमगिरितनयाके उक्त पावनतम महान् व्रतमें ब्राह्मण, मनु, नाग एवं विद्याधरोंके समुदाय तथा संन्यासी, भिक्षुक एवं वन्दीगण भी पहुँचे।

उस समय कैलासपर्वतकी अपूर्व शोभा थी। राजमार्गपर चन्दनका छिड़काव हुआ था। पद्मरागमणि-निर्मित शिव-मन्दिरमें आम्रपल्लवोंकी बंदनवारें बँधी थीं। कदली-स्तम्भोंका सौन्दर्य अद्‌भुत था। वह दूर्वा, धान्य, खील, फल और पुष्पोंसे अनोखे ढंगसे सजा था। वहाँका अलौकिक दृश्य देखकर उपस्थित देव, ऋषि, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व एवं मनुष्य आदि सभी लोग आश्चर्यचकित हो मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। सर्वत्र हर्ष व्याप्त था। सर्वत्र सात्त्विक आनन्द जैसे नृत्य कर रहा था। परम करुणामयी सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी जगदम्बा जो पावनतम व्रतमें दीक्षित होने जा रही थीं।

भगवान् शशांकशेखरने समस्त अभ्यागतोंका सादर अभिनन्दन करते हुए उनके अनुरूप स्वच्छ, सुन्दर एवं सुखद निवास तथा भोजन आदिकी व्यवस्था की। उस सुप्रबन्धका क्या कहना, जहाँ त्रैलोक्यपति शिव एवं सर्वदारिद्र्यदमनी जगज्जननीका निवास हो।

करुणामूर्ति जगदीश्वरीके उक्त व्रतानुष्ठानके अवसरपर शचीपति इन्द्र दानाध्यक्ष, धनपति कुबेर कोषाध्यक्ष और स्वयं भगवान् सूर्य आदेश प्रदान करनेवाले थे। वरुण परोसनेका कार्य कर रहे थे।

संसार-सागरसे पार उतारनेवाली सती-शिरोमणि शिव-प्रियाके व्रतानुष्ठानके अवसरपर दूध, दही, घी, तेल, मधु, गुड़ और चीनी आदिकी लक्षाधिक सरिताएँ प्रवाहित होने लगी थीं। इसी प्रकार गेहूँ, चावल, जौ और चिउरे आदिके पर्वत-तुल्य असंख्य ढेर लग गये थे। उक्त दिव्य कैलास-पर्वतपर स्वर्ण, रजत, मूँगा और मणियोंकी राशि पर्वतके समान दीख रही थी।

निखिलसृष्टिनियामिका गिरिजाके श्रेष्ठतम व्रतोत्सवपर सिन्धुतनया लक्ष्मीने विविध प्रकारके सुन्दर, सुमिष्ट एवं सुस्वादु व्यंजन तैयार किये थे। उस समय एक लाख ब्राह्मण परोसनेका काम कर रहे थे। देवताओं और ऋषियोंके साथ स्वयं नारायणने वहाँ भोजन किया।

भोजनोपरान्त जब भगवान् नारायण रत्नसिंहासनपर विराजित हुए, तब चतुर ब्राह्मणोंने सुगन्धित ताम्बूल अर्पित किया। परमप्रभु नारायण देवता और ऋषियोंसे घिरे थे। तेजस्वी पार्षद उनपर श्वेत चँवर डुला रहे थे। ऋषि तथा सिद्ध प्रभुका स्तवन कर रहे थे। गन्धर्वगण श्रुतिमधुर गीत गा रहे थे।

'भक्तवांछाकल्पतरु प्रभो! मेरी एक प्रार्थना सुनिये।' पितामहकी प्रेरणासे अहिभूषणने बद्धांजलि हो अत्यन्त विनयपूर्वक प्रभुकी स्तुति करते हुए निवेदन किया—'शैलजा उत्तम व्रतके द्वारा श्रेष्ठतम पुत्र एवं पति-सौभाग्यकी कामना करती हैं। आप सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी हैं। आप परिणाममें मंगलदायिनी आज्ञा प्रदान करें।'

पशुपतिने पुनः क्षीरसागरशायी प्रभुकी स्तुति की और फिर विधाताके मुखकी ओर देखकर मौन हो गये।

'उमानाथ! आपकी सहधर्मिणी संतान-प्राप्तिके लिये जिस पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान करना चाहती हैं, वह व्रतोंका सारतत्त्व, दुराराध्य, सम्पूर्ण अभीष्ट फलको देनेवाला, सुखदायक एवं मोक्षप्रद है।' स्वर्गापवर्गदाता सर्वभूतपति शिवके वचन सुनकर श्रीहरि ठठाकर हँस पड़े। फिर उन्होंने महादेवजीसे कहा—'साध्वी शिवा पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान करें। इस व्रताचरणसे सहस्रों राजसूय-यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है।'

'त्रिनेत्र!' श्रीनारायणने आगे कहा—"इस व्रतमें सहस्रों राजसूय-यज्ञोंके समान धनका व्यय होता है, अतः यह व्रत सभी साध्वी महिलाओंद्वारा साध्य नहीं है। इस पुण्यमय पुण्यक-व्रतके प्रभावसे स्वयं परब्रह्म गोलोकनाथ श्रीकृष्ण पार्वतीके अंकमें क्रीड़ा करेंगे। उनका नाम 'गणेश' होगा; उनके स्मरणसे ही विघ्नोंका नाश हो जाया करेगा।"

श्रीनारायणके वचन सुनकर त्रैलोक्यपावन त्रिलोचन हर्षसे गद्‌गद हो गये। उन्होंने वह मांगलिक वार्तालाप अपनी प्राणप्रिया पार्वतीको सुनाया तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। मुदितमन पार्वती व्रतारम्भके लिये प्रस्तुत हुई, उसी समय भगवान् शंकरकी प्रेरणासे विविध प्रकारके देववाद्य बज उठे।

सत्यस्वरूपा उमाने स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करनेके अनन्तर चावलपर सविधि रत्नकलश स्थापित किया। फिर रत्नसिंहासनोंपर समासीन श्रेष्ठ मुनियों एवं रत्नसिंहासनासीन पुरोहितकी विधिपूर्वक पूजा की। इसके साथ ही त्रैलोक्यतारिणी गिरिजाने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी अर्चना की।

इस प्रकार भगवती शैलजाने स्वस्तिवाचनपूर्वक व्रतारम्भ किया। तदनन्तर उन्होंने मंगल-कलशपर श्रीकृष्णका आवाहन कर उनका भक्तिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजन किया। व्रतके विधानानुसार देवी उमाने त्रैलोक्यदुर्लभ पदार्थोंको अत्यन्त प्रीतिपूर्वक समर्पित किया। फिर उन्होंने तिल और घीकी तीन लाख आहुतियोंसे हवन कराया और देवताओं, अतिथियों एवं ब्राह्मणोंको बहुमूल्य व्यंजनोंके भोजनसे तृप्त किया। इस प्रकार परम सरला साध्वी शिवप्रिया पुण्यक-व्रतके पालनीय प्रत्येक नियमोंका वर्षपर्यन्त श्रद्धा एवं विश्वासके साथ सोल्लास पालन करती रहीं।

अस्वाभाविक दक्षिणा

'सुव्रते! मुझे दक्षिणा चाहिये।' व्रत-समाप्तिपर पुरोहितने देवी पार्वतीसे कहा।

'मैं मुँहमाँगी दक्षिणा दूँगी।' परम तपस्विनी अम्बिकाने पुरोहितसे कहा—'आप कौन-सा दुर्लभ पदार्थ चाहते हैं?'

'देवि! इस व्रतमें दक्षिणास्वरूप मुझे अपने पतिको दे दो।' पुरोहितने अस्वाभाविक दक्षिणाकी याचना की।

सर्वथा अकल्पित, अनभ्र वज्रपात-जैसी निष्ठुर वाणी सुनकर देवी उमा व्याकुल होकर विलाप करती हुई वहीं मूर्च्छित हो गयीं।

निखिलसृष्टिनियामिका मोहनाशिनी भगवती पराम्बाको मूर्च्छित देखकर लोकपितामह, विष्णु एवं मुनियोंको हँसी आ गयी। तब उन्होंने उमापति महादेवको पार्वतीको समझानेके लिये भेजा।

'धर्मिष्ठे! उठो; निश्चय ही तुम्हारा मंगल होगा।' पार्वतीको होशमें लानेके लिये उन्हें समझाते हुए आशुतोषने अनेक धर्ममय वचन कहे। उनकी चेतना लौट आनेपर देवदेव महादेवने कहा—'देवकार्य, पितृकार्य अथवा नित्य-नैमित्तिक जो भी कर्म दक्षिणासे रहित होता है, वह सब निष्फल हो जाता है और उस कर्मसे दाता निश्चय ही कालसूत्र नामक नरकमें गिरता है। उसके बाद वह दीन होकर शत्रुओंसे पीड़ित होता है। ब्राह्मणको संकल्प की हुई दक्षिणा उसी समय न देनेसे वह बढ़कर कई गुनी हो जाती है।'

क्षीरोदधिशायी विष्णु और कमलासनने भी पार्वतीसे धर्म-रक्षाके लिये अनुरोध किया। स्वयं धर्मने कहा—'साध्वि! पुरोहितकी अभीष्ट दक्षिणा देकर मेरी रक्षा करो। महासाध्वि! मेरे सुरक्षित रहनेपर प्रत्येक रीतिसे मंगल होगा।' देवताओंने भी यही बात कही। मुनियोंने भी हवन पूरा करके दक्षिणा देनेकी प्रेरणा देते हुए कहा—'धर्मज्ञे! हमलोगोंके यहाँ रहते तुम्हारा अकल्याण सम्भव नहीं।'

'शिवे! या तो तुम मुझे दक्षिणामें अपने सर्वेश्वर पतिको प्रदान करो या अपने दीर्घकालीन कठोर तपका फल भी त्याग दो।' ब्रह्माके पुत्र तेजस्वी सनत्कुमारने देवी पार्वतीसे सुस्पष्ट कहा—'साध्वि! इस प्रकार इस महान् कर्मकी दक्षिणा न मिलनेपर मैं इस दुर्लभ कठोर व्रतका फल ही नहीं, यजमानके (तुम्हारे) समस्त कर्मोंका फल भी प्राप्त कर लूँगा।'

'देवाधिपो! पतिसे वंचित हो जानेवाले कर्मसे क्या लाभ?' सत्यस्वरूपा परम सती पार्वतीने अत्यन्त व्याकुल हो देवताओंसे कहा—'दक्षिणा देने, धर्म और पुत्रकी प्राप्तिसे मेरा क्या हित होगा? पृथ्वीदेवीकी

उपेक्षा कर वृक्षकी पूजासे क्या प्राप्त हो सकेगा? यदि बहुमूल्य प्राण ही विसर्जित हो जायँ तो शरीरकी रक्षा किसलिये होगी?'

अत्यधिक दुःखसे शिवप्रियाने आगे कहा—'देवेश्वरो! साध्वी स्त्रियोंके लिये पति सौ पुत्रोंके समान होता है। ऐसी स्थितिमें यदि व्रतमें अपने पतिकी ही दक्षिणा दे दी जाय तो पुत्रसे क्या लाभ होगा? पुत्र पतिका ही वंश होता है, किंतु उसका एकमात्र मूल तो पति ही होता है। मूलधनके नष्ट होनेपर तो समस्त व्यापार ही विनष्ट हो जायगा।'

उसी समय अन्तरिक्षमें देवताओं और ऋषियोंने एक बहुमूल्य रत्ननिर्मित रथ देखा। वह घननील पार्षदोंसे घिरा था। सभी पार्षद वनमालाधारी और रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। उस रथसे चतुर्भुज वैकुण्ठवासी श्रीनारायण उतरकर देवताओंके सम्मुख उपस्थित हुए। उन परम तेजस्वी, भक्त प्राणधन, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीनारायणको ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने एक श्रेष्ठ रत्नसिंहासनपर बैठाकर उनके पाप-तापहारी अभयद चरणकमलोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति की।

'देवताओ!' वहाँका सारा वृत्तान्त जानकर भक्त-भयहारी श्रीनारायणने अपने स्वरूप-तत्त्वकी विस्तृत व्याख्या करते हुए देवगणों और मुनियोंसे कहा—'शिवप्रिया पार्वतीका यह व्रत लोकशिक्षाके लिये है, अपने लिये कदापि नहीं; क्योंकि ये तो स्वयं समस्त व्रतों एवं तपस्याओंका फलप्रदान करनेवाली हैं, इनकी मायासे चराचर जगत् मोहित है।'

फिर परमप्रभु श्रीनारायणने त्रैलोक्यवन्दिता उमासे कहा—'शिवे! तुम अपने पति महादेवको दक्षिणामें देकर अपना व्रत पूर्ण कर लो। फिर समुचित मूल्य देकर अपने जीवनधनको वापस ले लेना। गौओंकी भाँति शिव भी विष्णुके शरीर हैं; अतः तुम ब्राह्मणको गोमूल्य प्रदान कर अपने पतिको लौटा लेना।'

इतना कहकर महामहिम त्रैलोक्यपावन श्रीनारायण वहीं अन्तर्धान हो गये। सृष्टिनायक श्रीनारायणके मुखारविन्दसे ये मंगलमय वचन सुनकर समस्त सुर-मुनिसमुदाय हर्षोत्फुल्ल हो गया। कलिकल्मषहन्त्री शिवा भी प्रसन्नमनसे अपने प्राणसर्वस्वको दक्षिणामें देनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

भगवती पार्वतीने हवनकी पूर्णाहुति की और अपने जीवननाथ शिवको दक्षिणा-रूपमें दे दिया।

'स्वस्ति!' कहते हुए सनत्कुमारने दक्षिणा ग्रहण कर ली। उस समय भयवश परम कोमलांगी पार्वतीके कण्ठोष्ठ-तालु सूख गये।

'विप्रवर! गौका मूल्य मेरे पतिके बराबर है।' अम्बिकाने दुःखी हृदयसे ब्राह्मणसे अत्यन्त मधुर एवं विनीत वाणीमें निवेदन किया—'मैं आपको अत्यन्त सुन्दर एक लाख गायें प्रदान करूँगी; इसके बदले आप मेरे जीवन-सर्वस्वको लौटा दें। अभी तो मैं आत्मासे रहित किसी भी कर्ममें सर्वथा असमर्थ हूँ; प्राणनाथके मिल जानेपर मैं पुनः ब्राह्मणोंको विपुल दक्षिणाएँ प्रदान करूँगी।'

'देवि! मैं ब्राह्मण हूँ।' सनत्कुमारने सतीशिरोमणि पार्वतीसे कहा—'मुझे एक लाख गौओंका क्या करना है? और इस दुर्लभ रत्नके सम्मुख गौओंसे क्या लाभ होगा? मैं इन दिगम्बरको अपने साथ लेकर इन्हें आगे रखकर त्रिलोकीमें भ्रमण करूँगा। उस समय बालक-बालिकाएँ इन्हें देखकर प्रसन्नतापूर्वक ताली बजा-बजाकर अट्टहास करेंगी।'

इतना कहकर सनत्कुमारने उमानाथको अपने समीप बैठा लिया।

पार्वतीकी व्याकुलता और विश्वविमोहनके दर्शन

'आह!' सुकोमलहृदया गिरिजा जलहीन मीनकी भाँति छटपटाने लगीं। मन-ही-मन वे सोचने लगीं—'कैसा दुर्भाग्य है कि मुझे न तो अभीष्ट देवका दर्शन प्राप्त हुआ और न व्रतका फल ही प्राप्त हो सका।' अधीर होकर परमसती हिमगिरितनया शरीर-त्यागके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

उसी समय पार्वतीसहित देवता और ऋषियोंने शून्यमें कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशसे भी परमोत्कृष्ट तेजसमूह देखा। उस प्रभा-पुंजसे समस्त दिशाएँ एवं विस्तृत कैलास देदीप्यमान हो गया था। उसकी मण्डलाकृति असीम एवं अनन्त थी। प्रभुके उस महान् तेजःपुंजको देखकर देवगण उनकी स्तुति करने लगे—

'अनिर्वचनीय महाविराट् प्रभो! आपका यथार्थ स्तवन सम्भव नहीं।' उन महामहिमामय परमप्रभुकी विभिन्न प्रकारसे स्तुति करते हुए विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, धर्म, देव-समुदाय, मुनिगण, सरस्वती, सावित्री, लक्ष्मी और हिमगिरिने कहा—'आप अकथनीय, स्वेच्छामय और ज्ञानसे परे हैं, फिर वेदोंके कारणस्वरूप आपकी स्तुति कैसे की जाय? आप मन और वाणीके अगोचर हैं। हमलोग तो आपके कलांश हैं।'

देवता और ऋषिगण चुप हो गये। उस समय कैलास-गिरिनिवासिनी पार्वतीका तेजोमय शरीर प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाकी तरह प्रकाशित हो रहा था। तेजकी मूर्ति-सी प्रतीत होनेवाली उमाके सुन्दरतम पावन अंगपर परमोज्ज्वल वस्त्र सुशोभित था और सिरपर जटाका भार उनके कठोर तपकी सूचना दे रहा था।

'सर्वसमर्थ, सर्वान्तर्यामी एवं अणु-परमाणुमें व्याप्त महिमामय श्रीकृष्ण! आप तो मुझे जानते हैं, किंतु मैं आपको जाननेमें समर्थ नहीं हूँ।' जगन्माता पार्वतीने भगवान् शिवकी प्रेरणासे व्रतके आराध्यदेव परमात्माके स्वरूपका गुणगान करते हुए कहा—'परमात्मन्! मैं पुत्र-दुःखसे दुःखी होकर आपकी स्तुति कर रही हूँ और इस समय आपके सदृश पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ; परंतु अंगोंसहित वेदके विधानानुसार इस व्रतमें अपने पतिकी दक्षिणा दी जाती है, यह अत्यन्त दारुण कार्य है। दयामय! यह सब समझकर आप मुझपर दया कीजिये।'

भगवती पार्वती श्रीकृष्णके ध्यानमें तल्लीन थीं, उस समय उस असीम एवं महान् तेजराशिके मध्य उन्होंने अद्भुत रूप-लावण्य-सम्पन्न विश्वविमोहन श्रीकृष्ण-स्वरूपका दर्शन किया। वह हीरकजटित बहुमूल्य रत्ननिर्मित आसनपर आसीन एवं मणियोंकी मालासे सुशोभित था। नवनीरदवपुपर अद्भुत पीताम्बरकी अवर्णनीय शोभा थी। रत्नाभरणोंसे अलंकृत उस अनुपम विग्रहके करकमलोंमें पीयूषवर्षिणी मुरली विद्यमान थी। उनके ललाटपर चन्दनकी खौर और मस्तकपर मनको मोहित करनेवाला सुन्दर मयूरपिच्छ था। उस अनुपम सौन्दर्यकी तुलना कहीं सम्भव नहीं थी।

ऐसे भुवनमोहन अनूप रूपको देखकर भगवती पार्वती उसीके सदृश पुत्रकी कामना करने लगीं और उसी क्षण उन्हें वह वर प्राप्त भी हो गया। इतना ही नहीं, उस समय शिवाने जो-जो कामनाएँ कीं, वे सब पूरी हुईं। देवताओंके भी अभीष्टकी पूर्ति हुई। तदनन्तर वह तेज वहीं तिरोहित हो गया।

तब सुरसमुदायने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारको समझाया और उन्होंने दिगम्बर शिवको उनकी प्राणेश्वरी शिवाको लौटा दिया।

फिर तो भगवती पार्वतीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। जगज्जननीने ब्राह्मणोंको बहुमूल्य रत्न प्रदान किये। वन्दियों एवं भिक्षुओंको स्वर्णराशि देकर ब्राह्मणों, देवताओं एवं पर्वतीयोंको परम सुस्वादु व्यंजनोंका भोजन कराया।

महिमामयी भवानीने अलौकिक उपहारोंसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अपने प्राणनाथ देवदेव महादेवकी पूजा की। देववाद्य बजने लगे। अनेक मांगलिक कार्योंके साथ-साथ श्रीहरिसे सम्बन्धित गाये गये मांगलिक गीतोंसे वह शुभस्थान ध्वनित हो उठा। सर्वत्र आनन्द और उल्लासका साम्राज्य व्याप्त हो गया।

इस प्रकार सनातनी उमाका पवित्रतम पुण्यक-व्रत सम्पन्न हुआ। पराम्बाने विपुल रत्नराशिका दान कर सबको भोजन कराया। तदनन्तर उन्होंने अपने जीवनधन धर्माध्यक्ष शिवके साथ स्वयं भी भोजन किया। फिर सबको कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल देकर उन्होंने भगवान् शिवके साथ स्वयं भी उसे ग्रहण किया। इसके अनन्तर जगदम्बा प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिके साथ एकान्तमें चली गयीं।

परब्रह्मका प्राकट्य

'महादेव! मैं क्षुधा और तृषाधिक्यसे व्याकुल अत्यन्त दीन और दुर्बल ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे बड़ी दूरसे चलकर आपकी शरणमें आया हूँ।' उसी समय एक दीन-हीन एवं कुत्सित ब्राह्मण सर्वसम्पत्समन्विता पार्वतीके द्वारपर आया। उसके वस्त्र मैले-कुचैले और सिरके बाल रूखे थे। उस कृशकाय कुत्सितमूर्ति ब्राह्मणके दाँत स्वच्छ थे और उसके ललाटपर उज्ज्वल तिलक लगा हुआ था। उसने डंडेके सहारे खड़े होकर क्षुधा-निवारणार्थ भोजनकी याचना करते हुए कहा—'शिव! आप क्या कर रहे हैं? जगन्माता

पार्वती शीघ्र आओ। माताके रहते पुत्र भूखा कैसे रह सकता है?'

भगवान् शंकर और पार्वती द्वारपर आये। अत्यधिक दुर्बल ब्राह्मण किसी प्रकार उनके चरणोंमें प्रणाम कर स्तुति करने लगा। उसके मधुरातिमधुर वचन सुनकर आशुतोष प्रसन्न हो गये।

'विप्रवर! आप कहाँसे पधारे हैं?' भगवान् शंकरने अशक्त वृद्ध ब्राह्मणसे पूछा—'कृपया बताइये आपका शुभ नाम क्या है?'

'वेदज्ञ ब्राह्मण! आपका आगमन कहाँसे हुआ है?'

धर्ममयी पार्वतीने भी बड़े प्रेमसे कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने अतिथिके रूपमें मेरे द्वारपर पधारनेका कष्ट स्वीकार किया। अभीष्ट अतिथिकी सेवाकी अमित महिमा है।'

'वेदविद्याप्रकाशिनी माता! आप वेदोक्त विधिसे मेरी पूजा कीजिये।' वृद्ध ब्राह्मणने काँपते हुए कहा—'उपवासव्रती, रोगग्रस्त एवं क्षुधार्त व्यक्ति स्वेच्छानुसार भोजन करना चाहता है। मैं तृषा-क्षुधासे आकुल हूँ।'

'द्विजसत्तम! आप क्या भोजन करना चाहते हैं?'

साक्षात् अन्नपूर्णाने कहा—'आपका त्रैलोक्यदुर्लभ अभीष्ट पदार्थ मैं आपकी सेवामें उपस्थित कर दूँगी। आप मुझे आज्ञा देकर कृतार्थ कीजिये।'

'माता! मैं आप पुत्रहीनाका अनाथ पुत्र हूँ।' ब्राह्मणने रुक-रुककर धीरे-धीरे कहा—'मैंने सुना है, आपने महान् पुण्यक-व्रत सम्पन्न किया है। उसके लिये दुर्लभ सामग्रियाँ एकत्र हुई होंगी। उन अद्भुत पक्वान्नों एवं मिष्टान्नोंसे आप मेरी पूजा कीजिये। इसके अनन्तर सुवासित निर्मल तथा स्वादिष्ट जल और सुवासित श्रेष्ठ ताम्बूल प्रदान कीजिये। ये दुर्लभ पदार्थ इतना खिलाइये, जिससे मेरी तोंद सुन्दर हो जाय, मैं लम्बोदर हो जाऊँ।'

'आपके आशुतोष पति सृष्टिकर्ता एवं सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाले हैं और आप सम्पूर्ण सत्कीर्तियोंको प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीस्वरूपा हैं। अतः आप मुझे रमणीय रत्नसिंहासन, बहुमूल्य रत्नाभरण, अग्निशुद्ध सुन्दर वस्त्र, अत्यन्त दुर्लभ श्रीहरिका मन्त्र, श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति, मृत्युंजय नामक ज्ञान, सुखदायिनी दानशक्ति और सर्वसिद्धि दीजिये।'

'सती माता! पुत्रके लिये आपको क्या अदेय है?' वृद्ध ब्राह्मण धीरे-धीरे कहते जा रहे थे—'मैं तप एवं उत्तम धर्मका पालन करते हुए समस्त कर्मोंका पालन करूँगा; किंतु जन्म-जरा-व्याधि और मृत्युके हेतुभूत कर्मोंका स्पर्श भी नहीं करूँगा।'

इस प्रकार संसारकी असारता एवं भगवद्भक्तिका माहात्म्य-गान करते हुए ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, तेजस्वी कृशकाय ब्राह्मणने अन्तमें कहा—'समस्त कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली माता! आप नित्यस्वरूपा सनातनी देवी होकर भी लोकशिक्षाके लिये पूजा और तपश्चरण करती हैं। प्रत्येक कल्पमें गोलोकवासी श्रीकृष्ण गणेशके रूपमें आपके अंकमें प्रकट होकर क्रीड़ा करते हैं।'

इतना कहते-कहते अशक्त वृद्ध ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। वे परमेश्वर इस प्रकार अन्तर्हित होकर परम साध्वी, परम मंगलमयी एवं परम धन्या माता पार्वतीकी शय्यापर नवजात शिशुके रूपमें लेटकर छतकी ओर देखने लगे—

शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः।
सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्द्धकः॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः।
मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके।
ओष्ठाधारपुटं बिभ्रत् पक्वबिम्बविनिन्दकम्॥
कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्।
नासाग्रं रुचिरं बिभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम्॥
त्रैलोक्येषु निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्।
शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० ८। ८५—८९)

'उस बालकके शरीरकी आभा शुद्ध चम्पकके समान थी। उसका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति उद्दीप्त था। सबलोग सुखपूर्वक उसकी ओर देख सकते थे। वह नेत्रोंकी ज्योतिको बढ़ानेवाला था। उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर कामदेवको विमोहित करनेवाला था। उसका अनुपम मुख शारदीय पूर्णिमाके चन्द्रका उपहास कर रहा था। उसके सुन्दर नेत्र मनोहर कमलको तिरस्कृत करनेवाले थे। ओष्ठ और अधरपुट ऐसे लाल थे कि उसे देखकर पका हुआ बिम्बफल भी लज्जित हो जाता था। कपाल और कपोल परम मनोहर थे। रुचिर नासिका गरुड़की चोंचको भी तिरस्कृत

करनेवाली थी। उसके सभी अंग उत्तम थे। त्रिलोकीमें कहीं उसकी उपमा नहीं थी। इस प्रकार वह रमणीय शय्यापर सोया हुआ शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था।'

किंतु अत्यन्त कृशकाय वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी अतिथिके अकस्मात् अन्तर्हित हो जानेपर परमादर्श गृहिणी पार्वती व्याकुल हो गयीं। उन्होंने अपने प्राणपति शिवजीको उन्हें ढूँढ़नेके लिये कहा और स्वयं दुःखी होकर कहने लगीं—'तृषा-क्षुधासे आकुल ब्रह्मन्! आप कहाँ चले गये? भूखसे पीड़ित अतिथिके द्वारसे चले जानेपर गृहस्थका जीवन व्यर्थ चला जाता है।'

'जगज्जननी! शान्त हो जाओ।' अतिथिदेवके अचानक अन्तर्हित हो जानेपर छटपटाती हुई अम्बिकाने आकाशवाणी सुनी—'और मन्दिरमें जाकर अपने पुत्रको देखो। पुण्यक-व्रतके फलस्वरूप परिपूर्णतम परात्पर श्रीकृष्ण ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।'

यत्तेजो योगिनः शश्वद् ध्यायन्ते सततं मुदा॥
ध्यायन्ते वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम्॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति।
पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम्।
पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपःकल्पतरोः फलम्।
सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० ९। ९—१३)

'योगीलोग जिस अविनाशी तेजका प्रसन्न मनसे निरन्तर ध्यान करते हैं, वैष्णवगण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता जिसके ध्यानमें लीन रहते हैं, प्रत्येक कल्पमें जिस पूजनीयकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जिसके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा जो पुण्यराशिस्वरूप है, मन्दिरमें विराजमान अपने उस पुत्रकी ओर तो दृष्टि डालो। प्रत्येक कल्पमें तुम जिस सनातन ज्योतिरूपका ध्यान करती हो, वही तुम्हारा पुत्र है। यह मुक्तिदाता तथा भक्तोंके अनुग्रहका मूर्तरूप है। जरा उसकी ओर तो निहारो। जो तुम्हारी कामनापूर्तिका बीज, तपरूपी कल्पवृक्षका फल और सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंको तिरस्कृत करनेवाला है, अपने उस लावण्यमूर्ति पुत्रको तो देखो।'

आकाशवाणीने आगे अम्बिकाका भ्रम निवारण करते हुए कहा—'वे क्षुधार्त्त अतिथि वृद्ध ब्राह्मण नहीं थे, उस वेषमें तुम्हारे सम्मुख साक्षात् जनार्दन ही उपस्थित हुए थे।'

'तुम प्रसन्नचित्त हो अपने देवाग्रगण्य सुन्दरतम पुत्रको देखो'—आकाशवाणीके द्वारा इस प्रकारकी प्रेरणा प्राप्त होते ही माता पार्वती शीघ्रतासे अपने महलमें पहुँचीं। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत, परम सुन्दर, पद्मपत्राक्ष शिशुको अपनी शय्यापर लेटे देखा। वह त्रैलोक्यसुन्दर तेजस्वी शिशु छतकी ओर निहार रहा था। उसके दिव्य अंगोंसे दिव्य तेज फैल रहा था। वह इधर-उधर अपने हाथ-पैर फेंक रहा था। परमपावनी माताका स्तनपान करनेके लिये वह क्रन्दन कर रहा था।

'प्राणनाथ! आप घर चलकर मन्दिरके भीतर तो देखिये।' हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रवत्सला भगवती उमाने दौड़कर त्रिलोकैश्वर्यदायक भक्तवांछाकल्पतरु शिवसे कहा—'सद्यः फलदायिनी आपकी ध्यानमूर्ति ही पुत्रके रूपमें प्रकट हुई है।'

भुजंगभूषण भी हर्षमग्न हो गये। वे तुरंत उठकर अपनी प्राणप्रियाके घर गये। वहाँ उन्होंने शय्यापर तप्त-स्वर्ण-तुल्य कान्तिमान् अपने पुत्रको देखा। घोरदैत्यघ्न शिव प्रसन्न और चकित होकर सोच रहे थे—'अरे! मैं जिस परम तेजस्विनी और परम मंगलमयी मूर्तिका ध्यान करता रहता हूँ, वह तो प्रत्यक्ष मेरे पुत्रके रूपमें मेरे सम्मुख मुस्कराती हुई क्रीडा कर रही है।'

सर्वानन्दप्रदायिनी पार्वतीके आनन्दकी सीमा न थी। उन्होंने पुत्रको अंकमें ले लिया और हर्षके आवेगमें उसका चुम्बन करने लगीं। आनन्दमग्ना नित्यरूपा पार्वतीने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—

सम्प्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्।
यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम्॥
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा।
मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० ९। २७-२८)

'बेटा! जैसे दरिद्रका मन सहसा उत्तम धन पाकर संतुष्ट हो जाता है, उसी तरह तुझ सनातन अमूल्य रत्नकी प्राप्तिसे मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। जैसे चिरकालसे प्रवासी हुए प्रियतमके घर लौटनेपर स्त्रीका

मन पूर्णतया हर्षमग्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी हो रही है।'

इस प्रकार कहती हुई माता पार्वतीने शिशुको अत्यन्त प्रेमसे गोदमें ले लिया और उसे परमदुर्लभ, परमपावन अमृतमय दुग्ध-पान करानेके लिये अपना स्तनाग्र उसके मुँहमें दे दिया।

इसके अनन्तर चराचर प्राणियोंके आश्रय भगवान् शंकरने भी अत्यन्त प्रसन्नतासे अपने पुत्रको गोदमें उठा लिया।

प्राकट्योत्सवपर

पुत्रोत्पत्तिकी प्रसन्नतामें स्वर्गापवर्गदाता पार्वतीनाथकी प्रेरणासे विविध प्रकारके मनोहर वाद्य बजने लगे। पुत्रकी मंगल-कामनासे परमपिता शिवने ब्राह्मणों, वन्दियों एवं भिक्षुकोंको नाना प्रकारके अपरिमित रत्नादि और बहुमूल्य सम्पत्तिका दान किया।

हिमगिरिने अपने दौहित्रके जन्मोत्सवपर अत्यन्त हर्षोत्साहसे ब्राह्मणोंको एक लाख रत्न, एक हजार श्रेष्ठ हाथी, तीन लाख घोड़े, दस लाख गायें, पाँच लाख स्वर्ण मुद्राएँ, मुक्ता-हीरे-रत्नादि मणियाँ, वस्त्र, आभूषण और क्षीराब्धिसे उत्पन्न सभी प्रकारके अनमोल रत्नोंका दान दिया।

क्षीरोदधिशायी विष्णुने कौस्तुभमणिका दान दिया। हर्षातिरेकमें उन्होंने श्रेष्ठतम मुनियोंको बुलवाकर उनकी पूजा की। उनसे समस्त मांगलिक कार्य करवाये, पार्वतीके पुत्ररूपमें प्रकट उस नव-शिशुको आशीर्वाद दिलवाया, वेदों और पुराणोंका पाठ करवाया एवं देवदुर्लभ मनोहर नृत्य तथा मन्त्रमुग्धकर मधुर संगीतका आयोजन किया।

अनुग्रहस्वरूप शिवपुत्रके प्राकट्योत्सवपर ब्रह्माने सृष्टिमें परम दुर्लभ वस्तुएँ ब्राह्मणोंको दीं। परम महिमामयी शिवप्रियाके परम मंगलकर पुत्रजन्मके अवसरपर देवसमुदाय आनन्दोदधिमें निमग्न हो गया था। धर्म, सूर्य, शचीपति इन्द्र, सुरगण, मुनिगण, गन्धर्व, पर्वत तथा देवियोंने अत्यन्त प्रसन्नतासे विविध प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुओंका दान किया। हर्षातिरेकसे क्षीरसागरके दिये गये एक सहस्र माणिक्य, एक सौ कौस्तुभमणियाँ, हीरक, श्रेष्ठ मणियाँ, गो-रत्न, गज-रत्न, श्वेतवर्णके अन्यान्य अमूल्य रत्न, स्वर्णमुद्राओं एवं वस्त्राभरणोंके मूल्यका अनुमान करना सम्भव नहीं।

इसी प्रकार भगवती सरस्वती, सावित्री और धनपति कुबेरने ब्राह्मणोंको परम दुर्लभ एवं अद्भुत वस्तुओंका दान किया।

प्राणिमात्रके सच्चे शुभैषी एवं देवताओंके परम शुभचिन्तक जगद्धाता शिवके घरमें शिशुके प्रकट होनेपर सभी देवता आनन्दोन्मत्त हो गये थे। उस शुभकालमें बालकके मंगलके लिये जो जहाँ था, वहीं ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व समर्पित करने लगा। सबने दान दिये और सभी देवताओंने उस बालकको दुर्लभतम आशीः प्रदान की।

'बालक! तुम दीर्घायु, ज्ञानमें शिवके सदृश, पराक्रममें मेरे तुल्य और सम्पूर्ण सिद्धियोंके ईश्वर होओ।' विष्णुने आशीर्वाद दिया।

'तुम यथाशीघ्र यशस्वी, सर्वपूज्य एवं अग्रपूज्य होओ।' ब्रह्माने आशीर्वचन कहा।

इसी प्रकार धर्म, महादेव, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, हिमालय, मेनका, वसुंधरा और पार्वतीने उस नवोदित अद्भुत, अलौकिक, पद्मपत्राक्ष शिशुके धार्मिक, सर्वत्र दयालु, हरिभक्त, श्रीहरिके समान दुर्लभ, बुद्धिमान्, विद्वान्, पुण्यवान्, शान्त, जितेन्द्रिय, स्थिर लक्ष्मीवान् एवं शान्त होनेकी मंगल कामना की। उसे मनोहर रूपवाली पत्नी, परमोत्कृष्ट कवित्व-शक्ति, धारणा-शक्ति, स्मरण-शक्ति, विवेचन-शक्ति, वेदज्ञान, सागर-तुल्य गम्भीरता, कामदेव-तुल्य सौन्दर्य प्राप्त होनेका वर दिया। उसके धर्ममें धर्म-तुल्य, क्षमाशील, शरणदाता, शुभाश्रय, विघ्नरहित, विघ्ननाशक, शिवके समान महान् योगी, सिद्ध, सिद्धियोंके दाता, शुभकारक, मृत्युंजय, ऐश्वर्यशाली होने एवं अत्यन्त निपुणता प्राप्त करनेके लिये अपने अन्तर्हृदयकी शुभ कामना व्यक्त की।

इसके अनन्तर वहाँ पधारे सभी ऋषियों, मुनियों और सिद्धोंने नवजात शिशुको अनेक प्रकारके मंगलमय आशीर्वचन दिये। ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर अपने हृदयका सम्पूर्ण आशीर्वाद एवं वन्दियोंने समस्त मंगलकामनाएँ प्रकट कीं।*

अनन्तानन्तसुखद नवोदित शिशुको शुभाशीः प्रदान

* ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इस मंगलाशीर्वचन-विषयक अध्यायको 'सुमंगलाध्याय' कहा गया है और इसका माहात्म्य इस प्रकार बताया गया है—

कर श्रीहरि देवर्षियोंके साथ श्रेष्ठ रत्न-सिंहासनपर आसीन हुए। उनके दायें आशुतोष शिव, बायें लोकस्रष्टा ब्रह्मा और सम्मुख श्रेष्ठ धर्मात्मा धर्म आसनासीन हुए। धर्मके समीप सूर्य, देवेन्द्र, चन्द्रमा, देवसमुदाय, मुनिगण एवं गिरिसमुदाय सुन्दर एवं सुखद आसनपर बैठे।

पार्वती-नन्दनका छिन्न मस्तक

उसी समय गौरीनन्दनके दर्शनार्थ प्रज्वलित अग्निशिखातुल्य दीप्तिमान्, पीताम्बरधारी, श्यामल सूर्यपुत्र शनैश्चर वहाँ पधारे। विनम्र शनिदेवके नेत्र कुछ बंद थे और वे मन-ही-मन परमप्रभुका ध्यान एवं उनके नामका जप कर रहे थे। वहाँ उन्होंने श्रीहरि, विधाता एवं शूलपाणि तथा उपस्थित समस्त देवताओं एवं मुनियोंके चरणोंमें प्रणाम किया। और फिर उनकी आज्ञासे क्षिप्रक्षेमकर शंकरनन्दनको देखनेके लिये भीतर पहुँचे।

सूर्यपुत्र शनैश्चरने अलौकिक भवनमें उस समय प्रवेश किया, जब वस्त्रालंकारभूषिता मंगलमयी जननी पार्वती नवागत शुभानन शिशुको गोदमें लेकर रत्नसिंहासनपर बैठकर सुवासित ताम्बूल चबाती हुई प्रसन्नतासे मुसकरा रही थीं। पाँच सखियाँ उनके समीप खड़ी होकर श्वेत चँवर डुला रही थीं। महायोगी शनैश्चरने त्रैलोक्यदुर्लभ जननी पार्वतीके पाद-पद्मोंमें मस्तक झुकाये श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। जगदम्बाने उन्हें आशिष् देकर उनसे कुशल-समाचार पूछा।

'ग्रहेश्वर! आपके नेत्र कुछ मुँदे हैं और आपने सिर झुका रखा है', सम्पूर्ण बाधाओं एवं कलाओंके अधिपतिकी जननी पार्वतीने पीताम्बरधारी शनैश्चरसे पूछा—'आप मेरी ओर और मेरे पुत्रकी ओर देख नहीं रहे हैं। इसका क्या हेतु है?'

'माता! सम्पूर्ण प्राणी अपने कर्मका ही फल भोगते हैं।' शनैश्चरदेवने सिर झुकाये कहा—'वे अपने शुभाशुभ कर्मोंसे ही सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। मेरी कथा गोपनीय है और माताके सम्मुख कहनेयोग्य नहीं है; तथापि आपकी आज्ञासे मैं उसे प्रकट कर दे रहा हूँ।'

'शंकरवल्लभे!' शनैश्चरदेवने आगे कहा—'बाल्यकालसे ही मेरे मनमें श्रीकृष्ण-पद-पद्मानुरक्ति थी। मैं प्रायः उन्हींके अत्यन्त सुखद ध्यानमें तल्लीन रहता था। सर्वथा विरक्त एवं तप-निरत था, किंतु मेरे पिताने चित्ररथकी पुत्रीसे मेरा परिणय करा दिया। मेरी पत्नी साध्वी, तेजस्विनी एवं तपस्विनी थी।

'एक दिनकी बात है; मेरी सहधर्मिणी ऋतुस्नानके अनन्तर उस समय मेरे समीप आयी, जब मैं भगवच्चरणोंके ध्यानमें तल्लीन सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य था।

''तुम जिसकी ओर दृष्टिपात करोगे, वही नष्ट हो जायगा।'' ऋतुकालके विफल होनेपर उसने दुःखी मनसे मुझे शाप दे दिया।

'यद्यपि ध्यानसे विरत होनेपर मैंने उसे संतुष्ट किया, किंतु वह पश्चात्ताप करनेपर भी शाप लौटानेमें समर्थ नहीं थी। इसी कारण मैं जीवहिंसाके भयसे अपने नेत्रोंसे किसीकी ओर नहीं देखता और सहज ही सदा सिर झुकाये रहता हूँ।'

इमं सुमङ्गलाध्यायं यः शृणोति सुसंयतः। सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्। कृपणो लभते सत्त्वं शश्वत् सम्पत्प्रदायि च॥
भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम्। आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगा लभेत्॥
भ्रष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषितं च प्रियं लभेत्। शोकाविष्टः सदानन्दं लभते नात्र संशयः॥

* * *

अयं च मङ्गलाध्यायो यस्य गेहे च तिष्ठति। सदा मङ्गलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः॥
यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः। सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० १०। ३४—३७, ३९-४०)

'जो मनुष्य अत्यन्त समाहित होकर इस सुमंगलाध्यायको सुनता है, वह सम्पूर्ण मंगलोंसे युक्त होकर मंगलोंका आवास-स्थान हो जाता है। इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्र, निर्धनको धन, कृपणको निरन्तर धन-प्रदान करनेकी शक्ति, भार्यार्थीको भार्या, प्रजाकामीको प्रजा और रोगीको आरोग्य प्राप्त होता है। दुर्भगा स्त्रीको सौभाग्य, भूला हुआ पुत्र, नष्ट हुआ धन और प्रवासी पति मिल जाता है तथा शोकग्रस्तोंको सदा आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है।......यह मंगलाध्याय जिसके घरमें विद्यमान रहता है, वह सदा मंगलयुक्त रहता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यात्राकालमें अथवा पुण्यपर्वपर जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे इसका श्रवण करता है, वह श्रीगणेशकी कृपासे अपने सभी मनोरथोंको पा जाता है।'

शनैश्चरदेवकी बात सुनकर नर्तकियों और किंनरियोंके समुदायके साथ अनन्तानन्तसुखदायिनी जगदम्बा हँसने लगीं।

'सम्पूर्ण विश्व ईश्वरेच्छाके अधीन है।' सर्वकाम-फलप्रदायिनी जगदीश्वरीने ऐसा कहते हुए शनैश्चरदेवसे कहा—'तुम मेरी तथा मेरे शिशुकी ओर देखो।'

'मैं पार्वतीनन्दनकी ओर देखूँ या नहीं?' शनैश्चरदेव मन-ही-मन सोचने लगे। 'यदि मैं इस दुर्लभ बालककी ओर देखूँगा तो निश्चय ही इसका अनिष्ट हो जायगा; किंतु सर्वेश्वरी जननीकी आज्ञा कैसे टाली जाय?'

इस प्रकार सोचते हुए धर्मात्मा शनैश्चरदेवने धर्मको साक्षी देकर गिरिजाकी ओर तो नहीं, किंतु उनके पाप-संताप-हरण पुत्रकी ओर देखनेका निश्चय किया।

पहलेसे ही खिन्न शनैश्चरके कण्ठोष्ठतालु शुष्क हो गये थे। फिर भी उन्होंने वामनेत्रके कोनेसे पार्वतीनन्दनकी ओर दृष्टिपात किया। शनैश्चरदेवकी शापग्रस्त दृष्टि पड़ते ही भगवान् शिव एवं भगवती उमाके प्राणप्रिय पुत्रका मस्तक धड़से पृथक् होकर गोलोकमें जाकर अपने अभीष्ट परात्पर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। अत्यन्त दुःखी शनैश्चरने अपनी आँख फेर ली और सिर झुकाकर खड़े हो गये।

अपने अंकमें दुर्लभतम कम्बुकण्ठ शिशुका रक्तसे लथपथ शरीर देखकर माता पार्वती चीत्कार कर उठीं। वे बालकका धड़ वक्षसे सटाये रोती-कलपती और विलाप करती उन्मत्तकी तरह इधर-उधर घूमती हुई मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ीं। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, शिव तथा समस्त कैलासवासी अवसन्न हो गये। वे सभी निष्प्राण-से प्रतीत होने लगे।

पार्वती-पुत्र गजमुख हुए

मस्तकहीन रक्तस्नात पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात कर श्रीहरिने सबको मूर्च्छित देखा तो तुरंत गरुड़पर विराजमान हो तीव्रगतिसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने पुष्पभद्रा नदीके तटपर एकान्त वनमें अपनी हथिनी और बच्चोंके साथ एक गजेन्द्रको सोते हुए देखा। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था। सर्वमंगलकर श्रीहरिने तुरंत अपने सहस्रारसे उसका मस्तक उतारकर गरुड़पर रख लिया।

गजके कटे अंगके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। अपने स्वामीकी निर्जीव देह देखकर वह चीत्कार करने लगी। उसके बच्चे भी अपनी माताके रुदनसे जगकर व्याकुलतासे क्रन्दन करने लगे। हथिनीने गरुड़ासनपर विराजमान सम्पूर्ण निषेक (कर्मफलयोग)-का खण्डन करनेमें समर्थ शंख-चक्र-गदा-पद्मधर नवजलधरवपु श्रीहरिकी अचिन्त्य सौन्दर्यमयी मूर्तिको देखा तो वह परमप्रभुका स्तवन करने लगी।

हथिनीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वसमर्थ प्रभुने दूसरे गजका मस्तक उतार उसके शरीरसे जोड़ दिया और फिर अपने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया।

'भाग्यवान् गज! तू सकुटुम्ब कल्पपर्यन्त जीवित रह।' अपने मंगलमय चरणोंसे उसके सर्वांगका स्पर्श करते हुए परमप्रभुने उसके परम मंगलके लिये वरदान प्रदान किया। तदनन्तर गरुड़ वायुवेगसे उड़कर तुरंत कैलासपर पहुँच गये।

श्रीहरिने पार्वती-पुत्रको उठाकर अपने वक्षसे सटा लिया और गज-मुखको सुन्दर बनाकर शिवनन्दनके धड़से जोड़ दिया।

'हुं!' परम प्रभुके इस उच्चारणसे ही वह बालक जीवित हो गया। फिर तो उन्होंने मोहनिवारिणी अम्बिकाको सचेत कर उनका पुत्र उनके अंकमें रख दिया।

'बुद्धिस्वरूपा शिवे! तुम अच्छी प्रकार जानती हो कि ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् अपने-अपने कर्मानुसार फल पाता है।' श्रीहरिने शोकग्रस्त उमाको समझाते हुए कहा। 'प्राणियोंके स्वकर्मार्जित भोग सैकड़ों कल्पोंतक प्रत्येक योनिमें भोगने पड़ते हैं। सुख-दुःख, भय-शोक, आनन्द—ये कर्मके ही फल हैं। इसमें सुख और हर्ष उत्तम कर्मके और अन्य पापकर्मके परिणाम हैं।* स्वयं परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण कर्मके फलदाता, सृजन, पालन एवं संहार करनेवाले हैं। तुम्हारे गजकर्ण पुत्र उन्हीं परमात्मामें स्थित हैं।'

श्रीहरिकी वाणी सुनकर वात्सल्यमयी जननी पार्वती संतुष्ट हो गयीं और उन परम प्रभुके अरुणोत्पल-

---

* सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम्। सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १२। २७)

चरणोंमें प्रणाम कर अपने शिशुको गोदमें उठा उसे स्तनपान कराने लगीं। फिर उन्होंने अपने प्राणवल्लभ शिवकी प्रेरणासे हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति-प्रार्थना की।

परम तपस्विनी उमाके स्तवनसे प्रसन्न होकर लक्ष्मीपति विष्णुने अपना कौस्तुभ उस लम्बोष्ठ बालकके गलेमें डालते हुए उसे तथा जगदीश्वरी पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

लम्बकर्ण पार्वती-पुत्रके जीवित हो जानेपर हर्षातिरेकसे लोकस्रष्टाने उसे अपना किरीट और धर्मने रत्नाभूषण प्रदान किया। इसके अनन्तर देवियों, उपस्थित सभी देवताओं, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों और एकत्र समस्त स्त्रियोंने प्रसन्न मनसे बहुमूल्य रत्नादि उस शम्भुकुमारको प्रदान किये।

अपने सुमंगलमंगल बालकके जीवित होनेकी प्रसन्नतामें सर्वलोकमहेश्वर शिव एवं निखिलसृष्टि-संचालिका पार्वतीने असंख्य रत्नोंका दान किया। हिमगिरिने वन्दियोंको सौ गज तथा एक सहस्र अश्व प्रदान किये। देवताओंने सभी ब्राह्मणोंको दान दिया और स्त्रियोंने भी अपने दानोंसे वन्दियोंको संतुष्ट कर दिया।

क्षीरोदधिशायी लक्ष्मीपतिने समस्त मांगलिक कार्योंके साथ वेदों और पुराणोंका पाठ करवाया तथा समस्त ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक दुर्लभ सुमिष्ट पक्वान्नोंके भोजनसे पूर्ण तृप्त कर दिया।

'तुम अंगरहित हो जाओ।' उक्त सभाके बीच लज्जावश शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर माता पार्वतीने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया।

गजमुखको प्रथमपूज्यताका आशीर्वाद

कुछ समय व्यतीत हुआ। क्षीराब्धिशायी लक्ष्मीपति विष्णु शुभ मुहूर्तमें देवताओं और मुनियोंके साथ भगवान् शंकरके सदनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रेष्ठतम उपहारोंसे पद्मप्रसन्ननयन गजाननकी पूजा की और आशीः प्रदान की—

सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम।
सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३। २)

'सुरश्रेष्ठ! मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है, अतः वत्स! तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र होओ।'

प्रसन्न-कमलनयन विष्णुने रुद्रप्रिय बालकके कण्ठमें वनमाला पहनायी और मोक्षदायक ब्रह्मज्ञान तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान कर उसे अपने समान बना दिया। फिर षोडशोपचारकी सामग्रियाँ देकर देवताओं और मुनियोंके साथ उसका नामकरण किया—

विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः।
लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३। ५)

'विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक—ये उस बालकके नाम रखे गये।'

फिर दयामय श्रीहरिने पुनः मुनियोंको बुलवाकर हेरम्बको आशीर्वाद दिलवाया। इसके अनन्तर सभी देव-देवियों एवं मुनियों आदिने मुक्तिदाता शिवपुत्रको विविध प्रकारके उपहार प्रदान किये और बार-बार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया।

फिर सर्वव्यापिनी जननीने अपने अघनाशन पुत्रको रत्नसिंहासनपर बैठाकर समस्त तीर्थोंके जलपूरित सौ कलशोंसे स्नान कराया। उस समय मुनिगण वेदके मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे। इसके अनन्तर उन्होंने अपने दुःख-भंजनकारक पुत्रको अग्निशुद्ध दो वस्त्र दिये। फिर जननीने पुण्यतोया गोदावरीके जलसे पाद्य, पापनाशिनी गंगाजीके जलसे अर्घ्य एवं दूर्वा, अक्षत, पुष्प और चन्दनमिश्रित पवित्र तीर्थ पुष्करके जलसे आचमन कराया। फिर माता पार्वतीने गणेशको रत्नपात्रमें रखा हुआ मधुपर्क एवं शर्करायुक्त द्रव प्रदान किये।

इसके अनन्तर स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारद्वारा निर्मित स्नानोपयोगी विष्णु-तैल, बहुमूल्य रत्नाभरण, विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्प, पारिजातकी पुष्पमालाएँ, अनेक प्रकारके सुगन्धित चन्दन तथा दिव्य सुगन्धमय धूप-दीप प्रदान किये। फिर पशुपाशविमोचन गणाधिराजको उनका प्रिय लड्डू तथा उनको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके व्यंजन अर्पित किये। उन पुष्कल व्यंजनोंका पर्वत-तुल्य ढेर लग गया। तदनन्तर ढेर-के-ढेर अनार, बेलके फल, भाँति-भाँतिके खजूर, कैथ, जामुन, कटहल, आम, केला और नारियलके फल दिये। फिर आचमन और सुवासित ताम्बूल समर्पित करके जननीने सुन्दर पानके बीड़े और वायनपूरित सैकड़ों स्वर्णपात्र लड्डुकप्रिय गणेशको अर्पित किये।

इसके अनन्तर मेनका, हिमालय, हिमालयके पुत्र, वहाँ उपस्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मस्वरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० १३। ३२)

—इस मन्त्रसे प्रणताज्ञानमोचन गिरिजापुत्रकी पूजा की और उन्हें भाँति-भाँतिकी दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान कर वे आनन्दमें निमग्न हो गये।

श्रीविष्णुद्वारा गणेश-स्तुति

फिर क्षीरोदधिशायी विष्णु शिवप्रिया पार्वतीके अजरामर, चराचरपति, भुवनपति, इच्छाशक्तिधर, सर्वात्मा, सर्वदेवतात्मा पुत्रका सविधि पूजन कर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करने लगे—

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम् ॥
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम्।
सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम्॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम्।
वायुतुल्यातिनिर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम्॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे।
कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम्॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम्।
सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम्॥
ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मिकम्।
धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम्॥
बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरं च तदाश्रयम्।
स्त्रीपुंनपुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रियम्॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्णवम्।
स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं चापि स्वेच्छया॥
स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः परम्।
त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च॥
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः।
सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ॥
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० १३। ४१—५०½)

'ईश! मैं सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप आपका स्तवन करना चाहता हूँ; परंतु आपके अनुरूप निरूपण करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ; क्योंकि आप इच्छारहित, सम्पूर्ण देवोंमें श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियोंके गुरु, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, ज्ञानराशिस्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायुके समान अत्यन्त निर्लेप, क्षतरहित, सबके साक्षी, संसार-सागरसे पार होनेके लिये परम दुर्लभ मायारूपी नौकाके कर्णधारस्वरूप, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, श्रेष्ठ, वरणीय, वरदाता, वरदानियोंके भी ईश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिदाता, सिद्धिके साधन, ध्यानातीत, ध्येय, ध्यानद्वारा असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मके ज्ञाता, धर्म और अधर्मका फल प्रदान करनेवाले, संसार-वृक्षके बीज, अंकुर और उसके आश्रय, स्त्री, पुरुष और नपुंसकके स्वरूपमें विराजमान तथा उनकी इन्द्रियोंसे परे, सबके आदि, अग्रपूज्य, सर्वपूज्य, गुणके सागर, स्वेच्छासे निर्गुण ब्रह्म तथा स्वेच्छासे ही सगुण ब्रह्मका रूप धारण करनेवाले, स्वयं प्रकृतिरूप और प्रकृतिसे परे प्राकृतरूप हैं। शेष अपने सहस्रों मुखोंसे भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। आपके स्तवनमें न पंचमुख महेश्वर समर्थ हैं न चतुर्मुख ब्रह्मा ही; न सरस्वतीकी शक्ति है न मैं ही आपका स्तवन कर सकता हूँ। और जब चारों वेदोंकी ही शक्ति नहीं है, तो फिर उन वेदवादियोंकी तो क्या गणना।' उपर्युक्त स्तुतिकी ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें बड़ी महिमा बतायी गयी है।*

'करुणामय प्रभो! मायाशक्तिने मुझे शाप दे दिया है।' सुरसमुदायमें विघ्ननिघ्न रुद्रपुत्रकी पूजा हो जानेपर

---

* इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत्। सायं प्रातश्च मध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः॥
तद्विघ्ननिघ्नं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने। वर्द्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा॥

× × ×

स्थिरा भवेद् गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्धिनी। सर्वैश्वर्यमिह प्राप्य ह्यन्ते विष्णुपदं लभेत्॥
फलं चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भवेद् ध्रुवम्। महतां सर्वदानानां श्रीगणेशप्रसादतः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० १३। ५२-५३, ५७-५८)

'जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल इस विष्णुकृत गणेशस्तोत्रका सतत पाठ

शनैश्चरने अत्यन्त विनीत वाणीमें लक्ष्मीपति विष्णुसे निवेदन किया। 'अतएव आप कृपापूर्वक सम्पूर्ण विघ्नोंके शमन और दुःखकी पूर्ण निवृत्तिके लिये गणेश-कवचका वर्णन करनेका अनुग्रह कीजिये; मैं उसे धारण करना चाहता हूँ।'

गणेश-कवच और उसकी महिमा

'रविनन्दन! इस कवचकी बड़ी महिमा है।' शनैश्चरदेवके विनयपूर्ण वचन सुनकर सजल जलधरवपु श्रीविष्णुने कहा—'दस लाख जप करनेसे कवच सिद्ध हो जाता है। कवच सिद्ध कर लेनेपर मनुष्य मृत्युपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है। यह सिद्ध-कवच धारण करनेपर मनुष्य वाग्मी, चिरजीवी, सर्वत्र विजयी और पूज्य हो जाता है। इस मालामन्त्र तथा कवचके प्रभावसे मनुष्यके सारे पातकोपपातक ध्वस्त हो जाते हैं। इस कवचके शब्द-श्रवणमात्रसे ही भूत-प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, वेताल आदि बालग्रह, ग्रह तथा क्षेत्रपाल आदि दूर भाग जाते हैं। कवचधारी पुरुषको आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) और भयप्रद शोक स्पर्श नहीं कर पाते।'

इस प्रकार सर्वविघ्नैकहरण गणेश-कवचका माहात्म्य-गान करके लक्ष्मीपति विष्णुने सूर्यपुत्र शनैश्चरको कवचका उपदेश देते हुए कहा—

संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवो लम्बोदरः स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः॥
सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने।
ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटो मे सदावतु।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति वै सततं पातु लोचनम्।
तालुकं पातु विघ्नेशः सततं धरणीतले॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति परं सततं पातु नासिकाम्।
ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम।
दन्तांश्च तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः॥
ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदावतु।
ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदावतु॥
ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदावतु।
ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदावतु॥
ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं च गम्।
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत्॥
प्राच्यां लम्बोदरः पातु चाग्नेय्यां विघ्ननायकः।
दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः॥
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः।
कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च॥
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः।
अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः॥
स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः।
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्।
संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले।
वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज॥
मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि।
परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसंकटतारणम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छंकरात्मजम्।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० १३। ७९—९६)

''शनिश्चर! इस 'संसारमोहन' नामक कवचके प्रजापति ऋषि हैं, बृहती छन्द है और स्वयं लम्बोदर गणेश देवता हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें इसका विनियोग कहा गया है। मुने! यह सम्पूर्ण कवचोंका सारभूत है। '**ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा**' यह मेरे मस्तककी रक्षा करे। बत्तीस अक्षरोंवाला मन्त्र सदा मेरे ललाटको बचावे। '**ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गम्**' यह निरन्तर मेरे नेत्रोंकी रक्षा करे। विघ्नेश भूतलपर सदा मेरे

करता है, विघ्नेश्वर उसके समस्त विघ्नोंका विनाश कर देते हैं, सदा उसके सब कल्याणोंकी वृद्धि होती है और वह स्वयं कल्याणजनक हो जाता है। .....उसके घरमें पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाली लक्ष्मी स्थिररूपसे वास करती हैं और वह इस लोकमें सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका भागी होकर अन्तमें विष्णुपदको प्राप्त हो जाता है। तीर्थों, यज्ञों और सम्पूर्ण महादानोंसे जो फल मिलता है, वह उसे श्रीगणेशकी कृपासे प्राप्त हो जाता है—यह ध्रुव सत्य है।'

तालुकी रक्षा करें। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं**' यह निरन्तर मेरी नासिकाकी रक्षा करे तथा '**ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा**'—यह मेरे ओठको सुरक्षित रखे। षोडशाक्षर-मन्त्र मेरे दाँत, तालु और जीभको बचावे। '**ॐ लं श्रीं लम्बोदराय स्वाहा**' सदा गण्डस्थलकी रक्षा करे। '**ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा**' सदा कानोंकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं गं गजाननाय स्वाहा**' सदा कंधोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं विनायकाय स्वाहा**' सदा पृष्ठभागकी रक्षा करे। '**ॐ क्लीं ह्रीं**' कंकालकी और '**गं**' वक्ष:स्थलकी रक्षा करें। विघ्ननिहन्ता हाथ, पैर तथा सर्वांगको सुरक्षित रखें। पूर्वदिशामें लम्बोदर और अग्निकोणमें विघ्ननायक रक्षा करें। दक्षिणमें विघ्नेश और नैर्ऋत्यकोणमें गजानन रक्षा करें। पश्चिममें पार्वतीपुत्र, वायव्यकोणमें शंकरात्मज, उत्तरमें परिपूर्णतम श्रीकृष्णका अंश, ईशानकोणमें एकदन्त और ऊर्ध्वभागमें हेरम्ब रक्षा करें। अधोभागमें सर्वपूज्य गणाधिप सब ओरसे मेरी रक्षा करें। शयन और जागरणकालमें योगियोंके गुरु मेरा पालन करें।

"वत्स! इस प्रकार जो सम्पूर्ण मन्त्रसमूहोंका विग्रहस्वरूप है, उस परम अद्‌भुत संसारमोहन नामक कवचका तुमसे वर्णन कर दिया। सूर्यनन्दन! इसका उपदेश प्राचीन कालमें गोलोकके वृन्दावनमें रासमण्डलके अन्तर्गत श्रीकृष्णने मुझ विनीतको दिया था; वही मैंने तुम्हें प्रदान किया है। तुम इसे जिस-किसीको मत दे डालना। यह परम श्रेष्ठ, सर्वपूज्य और सम्पूर्ण संकटोंसे उबारनेवाला है। जो मनुष्य विधिपूर्वक गुरुकी अभ्यर्चना करके इस कवचको गलेमें अथवा दक्षिण भुजापर धारण करता है, वह निस्संदेह विष्णु ही है। ग्रहेन्द्र! हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस कवचकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकते। जो मनुष्य इस कवचको जाने बिना शंकर-सुवन गणेशकी भक्ति करता है, उसके लिये सौ लाख जपनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।"

कुमार कार्तिकेयका आगमन

इस ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार दुर्निमित्तहत् गणेशके प्राकट्यके अनन्तर अविनाशी शिव-पार्वतीको उनके प्राणप्रिय पुत्र कार्तिकेयकी उत्पत्तिका संवाद प्राप्त हुआ था। वहाँ कार्तिकेय गणेशके अनुज बताये गये हैं और गणेशका एक नाम 'गुहाग्रज' आया है। वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—पूर्णकाम शिवके शय्यासे उठनेपर उनका अमोघ शुक्र भूतलपर गिर पड़ा था, किंतु पृथ्वी देवी उसका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं थीं। इस कारण उन्होंने उसे अग्निमें डाल दिया। अग्नि भी उस अमोघ शुक्रको धारण करनेमें असमर्थ थे, अतएव उन्होंने उसे स्वर्णरेखा नदीके तटपर सरकंडोंके वनमें फेंक दिया। वह शुक्र तुरंत ही अत्यन्त सुन्दर बालकके रूपमें परिणत हो गया।

उसी समय कृत्तिकाओंका समुदाय बदरिकाश्रमसे आ रहा था। उन्होंने उस अलौकिक बालकका रुदन सुना तो कौतूहलवश उसके समीप चली गयीं। कृत्तिकाओंने उस देवोपम सुन्दर शिशुको उठाकर अपने अंकमें ले लिया और प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चली गयीं। उन्होंने उस सूर्याधिक तेजस्वी बालकको अपने स्तनोंका दूध पिलाकर उसका पालन किया और उसका नाम 'कार्तिकेय' रखा।

वे कृत्तिकाएँ अपने पोष्यपुत्र कार्तिकेयको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती थीं। वे उस तेजस्वी बालकको त्रैलोक्यदुर्लभ वस्तुएँ खिलातीं और उसे क्षणभरके लिये भी अपनी दृष्टिसे दूर नहीं जाने देती थीं।

जब माता पार्वतीने श्रीहरिके द्वारा यह समाचार सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने पुत्रका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर हर्षातिरेकसे ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न, अपरिमित धन एवं विविध प्रकारके बहुमूल्य वस्त्रोंका दान दिया। विष्णु आदि समस्त देवताओं एवं लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री आदि देवियोंने भी हर्षातिरेकसे ब्राह्मणोंको धन दिया।

फिर माता पार्वतीसहित विष्णु, देवगण एवं मुनियोंकी प्रेरणासे समदर्शी भूतनाथने अपने पुत्रको ले आनेके लिये नन्दिकेश्वरके साथ अपने सहस्रों गणोंको भेजा। नन्दिकेश्वरकी प्रार्थनासे जब कार्तिकेय अपने माता-पिताके समीप चलनेके लिये प्रस्तुत हुए तो कृत्तिकाएँ विकल-विह्वल हो गयीं। शिव-पुत्र कार्तिकेयने सम्पूर्ण सिद्धियोंकी ज्ञाता, परमैश्वर्यसम्पन्ना एवं त्रैलोक्यपूज्या कृत्तिकाओंको अत्यन्त प्रीतिपूर्वक समझाया और उनके चरणोंमें प्रणाम कर, उन्हें साथ ले रत्ननिर्मित अलौकिक रथमें बैठ गये। उस समय सर्वत्र शुभ शकुन होने लगे।

कुमार कार्तिकेय अपनी माताओं एवं पार्षदोंसहित कैलास पहुँचे। वे अपने माता-पिताके निवासका अद्‌भुत, अलौकिक एवं अप्रतिम सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो ही रहे थे कि महिमामयी देवियोंके साथ माता पार्वती वहाँ पहुँच गयीं। देवता, मुनि, पर्वत, गन्धर्व तथा किंनर आदि भी आनन्दातिरेकसे कुमारका सादर अभिनन्दन करने वहाँ जा पहुँचे। सर्वसाक्षी लोकपावन भगवान् शिव भी नाना प्रकारके बाजों, रुद्रगणों, पार्षदों, भैरवों तथा क्षेत्रपालोंसहित वहाँ पधारे।

परमपावन कार्तिकेयने अपनी ब्रह्मस्वरूपा जननी पार्वतीको देखा तो हर्ष-गद्‌गद होकर रथसे उतर पड़े और उन्होंने उनके निखिलसृष्टिपावन चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। भगवती पार्वतीने स्नेहाधिक्यसे अपने परमसुन्दर पुत्रको गोदमें उठा लिया और उसका चुम्बन लेने लगीं। फिर तो भानुकोटिशतप्रभ नीलकण्ठ, देवगण, पर्वत, पर्वतोंकी पत्नियों, पार्वती, देवियों तथा मुनियोंने कुमारको अपने अन्तर्हृदयका शुभाशीर्वाद प्रदान किया। इसके अनन्तर कुमार शिव-सदन पहुँचे।

वहाँ उन्होंने सुरसमुदाय एवं मुनियोंके मध्य रत्नसिंहासनासीन रत्नालंकारविभूषित श्रीहरिका दर्शन किया तो उनके सर्वांगमें रोमांच हो आया। उन्होंने श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे श्रीहरिके पाप-तापसंहारक, भक्तप्राणधन, परमपावन पादपद्मोंमें प्रणाम किया। इसके अनन्तर उन्होंने चतुर्मुख, धर्म, देवताओं एवं तपस्वी मुनियोंके चरणोंमें बारी-बारीसे प्रणाम किया और सबने उन्हें मंगलमय आशीर्वाद प्रदान किया। फिर कुमारने प्रत्येक देवता और मुनिसे उनका कुशल-समाचार पूछा और फिर वे एक रत्नसिंहासनपर बैठ गये। अपने अनुपम योग्यतम पुत्रको देखकर कलिकल्मषहन्त्री पार्वती एवं अनुग्रहस्वरूप महादेवने ब्राह्मणोंको हृदय खोलकर दान दिया।

फिर एक दिन क्षीरोदधिशायी विष्णुने शुभ मुहूर्तमें कुमारको रत्नसिंहासनपर बैठाकर उनका मंगलमय अभिषेक करवाया। उस समय अद्‌भुत वाद्य बज रहे थे। फिर हर्षित मनसे विष्णु, ब्रह्मा, धर्म एवं शिव आदि देवताओं एवं परमानन्दमें निमग्न माता पार्वती तथा सभी देवियोंने उन्हें दुर्लभ उपहार प्रदान किये। कुमारका वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक मंगलाभिषेक कर सभी देवता, मुनिगण और गन्धर्वादि प्रसन्न मन हो अपने-अपने घरके लिये प्रस्थित हुए। भगवान् शंकरने गिरिराज हिमालयका बड़ा सत्कार किया। वे भी अपने गणोंसहित प्रसन्न मनसे अपने भवन पधारे। इस प्रकार पुलकित-तन-मन-प्राण सभी आगन्तुक प्रेमपूर्वक बिदा हुए।

सर्वात्मा शिव एवं त्रैलोक्यवन्दनीया पार्वतीके दोनों परम सुन्दर अद्‌भुत बालक प्रतिदिन अलौकिक, मधुर एवं मनोहर बाल-लीलाएँ करते, जिन्हें देखकर शिव-पार्वती मन-ही-मन हँसते और मुदित होते रहते थे।

परशुरामका कैलास-दर्शन

एक दिनकी बात है, जब जमदग्निनन्दन परशुरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया, तब वे अपने गुरु भूतनाथके चरणोंमें प्रणाम करने और गुरुपत्नी अम्बा शिवा तथा उनके नारायणतुल्य दोनों गुरुपुत्र कार्तिकेय और गणनायकको देखनेकी लालसासे कैलास पहुँचे।

वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्‌भुत कैलासपुरीका दर्शन किया। उक्त परम रमणीय पुरीकी सुविस्तृत सड़कें सोनेकी बनी थीं और उनपर शुद्ध स्फटिकतुल्य मणियाँ जड़ी थीं। उक्त पुरीमें चतुर्दिक् सिन्दूरी रंगकी मणियोंकी वेदियाँ निर्मित थीं।

वह राशि-की-राशि मुक्ताओंसे संयुक्त और मणियोंके मण्डपोंसे परिपूर्ण थी।

सर्वभूतपति नीलकण्ठके नगरमें रत्नों और कांचनोंसे परिपूर्ण यक्षेन्द्रगणोंसे परिवेष्टित एक अरब दिव्य भवन थे, जिनके किवाड़, खम्भे और सीढ़ियाँ मणियोंसे निर्मित थीं। उस शिवपुरीके दिव्य कलश सोनेके बने थे। वहाँ रजतके श्वेत चवँर थे, जो रत्नाभूषणोंसे विभूषित थे। वहाँ स्वर्गंगाके तटपर उगे हुए पारिजात-वृक्षोंकी भरमार थी। वहाँकी सड़कोंपर अनुपम सुन्दर बालक स्वच्छन्द क्रीड़ा करते एवं परस्पर हँस-हँसकर वार्तालाप कर रहे थे।

उस परम रमणीय नगरमें सिद्धेन्द्रोंकी लाखों अट्टालिकाएँ थीं, जो मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित थीं। वहाँ निर्मल जलपूरित सहस्रों सरोवर, सुगन्धित पुष्पोंके सहस्रों पुष्पोद्यान एवं सुन्दरतम अविनाशी वटवृक्ष थे, जिनपर विभिन्न प्रकारके मनोहर पक्षी कलरव करते थे। सुगन्धित शीतल मन्द पवन बह रहा था।

अपने गुरुदेवकी उस दिव्य पुरीके दर्शन कर रेणुकानन्दन आनन्द-विभोर हो गये। फिर उन्होंने जगद्धाता शिवका पंद्रह योजन ऊँचा और चार योजन विस्तृत अत्यन्त सुन्दर आश्रम देखा। उसका निर्माण विश्वकर्माने बहुमूल्य सुनहली मणियोंके द्वारा किया था। आश्रम हीरक-जटित था। उसके चतुर्दिक् अत्यन्त सुहावना, सुडौल परकोटा बना था। कालनाशन शिवका आश्रम मणिनिर्मित वेदियों एवं मणिस्तम्भोंसे सुशोभित था। द्वारका किवाड़ रत्न-जटित चित्रोंसे बरबस मनको हर लेता था।

भृगुनन्दनने प्रधान द्वारके दाहिने भागमें वृषेन्द्रको देखा और जब उनकी दृष्टि द्वारके वामभागकी ओर गयी तो वहाँ उन्होंने सिंह तथा नन्दीश्वर, महाकाल, भयंकर पिंगलाक्ष, बाण, महाबली विरूपाक्ष, विकटाक्ष, भास्कराक्ष, रक्ताक्ष, विकटोदर, संहारभैरव, भयंकर कालभैरव, रुरुभैरव, ईशकी-सी आभावाले महाभैरव, कृष्णांगभैरव, दृढ़पराक्रमी क्रोधभैरव, कपालभैरव, रुद्रभैरव तथा सिद्धेन्द्रों, रुद्रगणों, विद्याधरों, गुह्यकों, भूतों, प्रेतों, पिशाचों, कूष्माण्डों, ब्रह्मराक्षसों, वेतालों, दानवों, जटाधारी योगेन्द्रों, यक्षों, किम्पुरुषों और किंनरोंको देखा। परशुराम सबसे मिले और उन्होंने सबसे बात की। इसके अनन्तर वे नन्दिकेश्वरसे आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक आश्रमके भीतर प्रविष्ट हुए।

कुछ ही आगे जानेपर महातपस्वी परशुरामने बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित सैकड़ों मन्दिर देखे। उनपर अमूल्य रत्नकलशोंकी अद्भुत छटा थी। उनमें हीरक-जटित रत्ननिर्मित किवाड़ थे, जिनमें मुक्ता एवं निर्मल शीशे लगे थे। उन मन्दिरोंमें गोरोचना नामक मणियोंके सहस्रों स्तम्भोंकी अद्भुत शोभा थी। उनकी सीढ़ियाँ भी आभामयी मणियोंसे ही बनी थीं। रेणुकानन्दनने वहाँका भीतरी द्वार देखा, जो नाना प्रकारकी चित्रकारीसे चित्रित तथा हीरे-मोतियोंकी गुँथी हुई मालाओंसे अत्यन्त शोभायमान था।

परशुरामका गजाननसे युद्ध

महर्षि जमदग्निके परम पराक्रमी पुत्र परशुरामने उक्त द्वारके बायें अपने गुरुपुत्र कार्तिकेयको देखा और दाहिनी ओर पार्वतीनन्दन गणेश तथा शिव-सदृश पराक्रमशील विशालकाय वीरभद्रका अवलोकन किया। वे वहाँ रत्नाभरणभूषित बहुमूल्य रत्नोंसे बने सिंहासनोंपर आसीन थे।

'भाई! क्षणभर रुको।' परम पराक्रमी एवं महामनस्वी कुठारपाणि परशुराम सबसे मिलते और प्रेमपूर्ण बात करते प्रसन्नचित्त आगे बढ़े ही थे कि अक्षमालाधर गणेशने उन्हें देखकर कहा—'शूलपाणि इस समय शयन कर रहे हैं। मैं उन परमप्रभुकी आज्ञा प्राप्तकर तत्काल तुम्हें साथ ले चलूँगा। बस, इतनी देर रुक जाओ।'

'बन्धुवर! मैं परमानुग्रहमूर्ति, भक्तवत्सल, समदर्शी अपने गुरुके दर्शन करना चाहता हूँ।' वीरवर परशुरामने मुद्गरायुध गणेशके सम्मुख खड़े-खड़े उत्तर दिया—'मैं उन जगदीश्वर एवं त्रयतापहारिणी पराम्बा पार्वतीके अभयद चरणकमलोंमें प्रणाम कर अभी लौट आऊँगा।'

'इस समय भूतेश्वर शिव एवं माता पार्वती अन्तःपुरमें हैं।' अमोघसिद्ध गणेशने उन्हें अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा—'अतएव अभी आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये।'

'परम गुरुदेव शिव एवं पुत्रवत्सला माता पार्वतीके चरणकमलोंके दर्शनका मेरा सहज अधिकार है।'—भृगुनन्दन अपने आग्रहपर दृढ़ थे, किंतु गिरिजापुत्र गणेश उन्हें अत्यन्त विनयपूर्वक समझाते गये।

'मैं तो परमपिता शिव एवं दयामयी माँके दर्शनार्थ जाऊँगा ही।' बलपूर्वक रेणुकानन्दन आगे बढ़ना ही चाहते थे कि विघ्नराजने उन्हें रोक दिया।

इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेवाले भृगुनन्दन कुपित हो गये और उनका गणाधिराजसे विवाद ही नहीं हाथापाई होने लगी। कुमार कार्तिकेयने उन्हें समझानेका प्रयत्न किया; किंतु क्रुद्ध क्षत्रियद्रोही परशुरामने परम विनयी बुद्धिविशारद ईशानपुत्रको धक्का दे दिया, जिससे वे गिर गये।

शिवपुत्र गणेशने उठकर परशुरामकी उद्दण्डताके लिये उनकी भर्त्सना की तो क्रुद्ध परशुरामने अपना तीक्ष्ण परशु उठा लिया। तब अजरामर गौरीतेज गणेशने अपनी सूँड़ बढ़ाकर परशुरामको उसमें लपेट लिया और उन्हें घुमाने लगे। योगाधिप गणेशकी महान् सूँड़में लिपटे परशुराम सर्वथा असहाय और निरुपाय थे। धरणीधर गणेशके योगबलसे परशुराम स्तम्भित हो गये थे।

अनन्त शक्तिशाली गणेशने जमदग्निनन्दन परम वीर परशुरामको सप्तद्वीप, सप्तपर्वत, सप्तसागर, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, ध्रुवलोक, गौरीलोक और शम्भुलोक दिखाते हुए गम्भीर समुद्रमें फेंक दिया।

परशुराम तैरने लगे तो निरामय गणनाथने उन्हें पुनः अपनी सूँड़में उठा लिया और घुमाते हुए वैकुण्ठधाम दिखाकर गोलोकधामका दर्शन करा दिया। वहाँ परशुरामने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए वंशीविभूषित नव-नीरद श्रीकृष्णके साथ रासरासेश्वरी श्रीराधाका दर्शन किया तो वे बार-बार उनके मंगलमय चरण-कमलोंमें प्रणाम करने लगे।

पापजनित यातना कर्मभोगसे ही समाप्त होती है, किंतु ओषधिपति गणेशने परशुरामको सम्पूर्ण पापोंका पूर्णतया नाश करनेवाले श्रीकृष्णका दर्शन कराकर उनका भ्रूणहत्याजनित पाप थोड़ेमें ही नष्ट कर दिया।

गजमुख एकदन्त हुए

कुछ ही देर बाद परशुराम सचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय उनका प्रतिवादिमुखस्तम्भक गणेशजीद्वारा किया हुआ स्तम्भन भी दूर हो गया। तब उन्होंने अपने अभीष्ट देवता श्रीकृष्णके जगद्गुरु शिवद्वारा प्रदत्त परम दुर्लभ स्तोत्र एवं कवचका स्मरण किया और सम्पूर्ण शक्तिसे ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्णतम अपने परशुसे प्रणतार्तिनिवारक गौरीनन्दनपर प्रहार कर दिया। गणाधिराजने अपने परमपूज्य पिताके अमोघ अस्त्रका सम्मान करनेके लिये उसे अपने बायें दाँतसे पकड़ लिया। शिवशक्तिके प्रभावसे वह तेजस्वी परशु गणेशके बायें दाँतको समूल काटकर पुनः रेणुकापुत्र परशुरामके हाथमें लौट आया।

सिद्धि-बुद्धि-प्रदायक गणेशका दाँत टूटते समय भयानक शब्द हुआ और सत्यसंकल्प गिरिजानन्दनके रक्तका फव्वारा छूट पड़ा। मुँहसे निकलकर रक्तसे सना दाँत भूतलपर गिर पड़ा। उस समय धरित्री काँप उठी। यह दृश्य देखकर वीरभद्र, कार्तिकेय, क्षेत्रपाल आदि पार्षद तथा शून्यमें देवगण अत्यन्त भयाक्रान्त हो हाय-हाय करने लगे। कैलासवासी डरसे मूर्च्छित हो गये। निद्रापति शुद्धात्मा शिवकी निद्रा भंग हो गयी।

'बेटा! यह क्या हुआ?' दौड़ी हुई परमाद्या भगवती पार्वती आयीं तो उन्होंने अपने प्राणप्रिय पुत्र गणेशके टूटे दाँत तथा रक्तमें डूबे हुए मुँहको देखा और देखा कि उनके हृदयखण्ड गणेश क्रोधशून्य, परमशान्त, लज्जासे सिर झुकाये खड़े हैं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने स्कन्दसे पूछा—'क्या बात है? यह कैसे हुआ?'

स्कन्दके द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महामोहशमनी सती पार्वती अत्यन्त क्रुद्ध हुईं और अपने प्राणाधिक प्रिय सुकुमार पुत्र गणेशको अंकमें लेकर क्रन्दन करने लगीं।

'समदर्शी प्रभो!' दुःख और शोकसे अभिभूत देवी पार्वतीने डरते-डरते अपने पति दयासिन्धु शूलपाणिसे कहा—'मेरे पुत्र गणेश और आपके शिष्य परशुराममें किसका दोष है, आप ही निर्णय करें। उत्तम कुलमें पैदा हुई स्त्री अपने निन्दित, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी और जड पतिको भी सदा विष्णुके समान समझती है। समस्त तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ अग्नि अथवा सूर्य पतिव्रताके तेजकी सोलहवीं कलाकी समानता भी नहीं कर सकते। महादान, पुण्यप्रद व्रतोपवास और तप—ये पतिसेवाके सोलहवें अंशकी समता करनेयोग्य नहीं हैं।* आपके तुल्य मेरे लिये कहीं कोई नहीं है। पर आप कृपापूर्वक इसका निर्णय करें।'

'महाभाग राम! तुम महर्षि जमदग्नि और लक्ष्मीके अंशसे उत्तम कुलोत्पन्न सती-साध्वी देवी रेणुकाके पुत्र, राजा रेणुकके दौहित्र तथा अत्यन्त साधु शूर-वीर राजा विष्णुयशाके भानजे हो।' अपने पूर्णकाम पति आशुतोषसे मनोव्यथा निवेदन कर सर्वरोगप्रशमनी भगवती पार्वतीने अपने सम्मुख परशुरामको शम्भुके परमोद्धारक चरण-कमलोंकी निर्भयतापूर्वक सेवा करते हुए देखकर कहा—'और योगियोंके गुरु देवाधिदेव महादेवके शिष्य हो। तुम शुद्ध मनवाले हो; तुम्हारी अशुद्धताका कारण

---

* कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम्। कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम्॥
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां वरः। पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च। तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपतिखं० ४४। १३—१५)

मेरी समझमें नहीं आ रहा है। तुमने करुणामय गुरुसे अमोघ परशु प्राप्त कर पहले तो उसकी क्षत्रिय-जातिपर परीक्षा की और अब गुरुपुत्रपर परीक्षा की है। श्रुति गुरुदक्षिणा देनेका निर्देश करती है और तुमने अत्यन्त निर्दयतापूर्वक गुरुपुत्रका समूल एक दाँत ही नष्ट कर दिया। अब इसका सिर भी काट डालो। चराचरात्मा शिवका अमोघ परशु प्राप्त कर तो क्षुद्र शृगाल भी वनराजको मार सकता है।'

फिर अत्यन्त दुःखसे व्याकुल पुत्रवत्सला पार्वतीने गणेशकी महिमाका बखान करते हुए परशुरामसे कहा—

त्वद्विधं लक्षकोटिं च हन्तुं शक्तो गणेश्वरः।
जितेन्द्रियाणां प्रवरो नहि हन्ति च मक्षिकाम्॥
तेजसा कृष्णतुल्योऽयं कृष्णांशश्च गणेश्वरः।
देवाश्चान्ये कृष्णकलाः पूजास्य पुरतस्ततः॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपतिखं० ४४। २६-२७)

'जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ गणेश तुम्हारे-जैसे लाखों-करोड़ों जन्तुओंको मार डालनेकी शक्ति रखता है; परंतु वह मक्खीपर भी हाथ नहीं उठाता। श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हुआ वह गणेश तेजमें श्रीकृष्णके ही समान है। अन्य देवता श्रीकृष्णकी कलाएँ हैं। इसीसे इसकी अग्रपूजा होती है।'

इतना कहकर क्रोधाभिभूत गिरिराजकिशोरी परशुरामको मारनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं। भयवश रेणुक-दौहित्र परशुरामने मन-ही-मन करुणासागर गुरुको प्रणाम कर अपने इष्टदेव गोलोकनाथ श्रीकृष्णका स्मरण किया।

तत्क्षण उमाने अपने सम्मुख भानुकोटिशतप्रभ एक बौने ब्राह्मण-बालकको देखा। उसके दाँत स्वच्छ थे। उसके वस्त्र, यज्ञोपवीत, दण्ड, छत्र और ललाटपर तिलक भी उज्ज्वल थे। उसके कण्ठमें तुलसीकी माला सुशोभित थी। उसके मस्तकपर परमोज्ज्वल रत्नमुकुट एवं कानोंमें रत्नोंके कुण्डल झलमला रहे थे। वह रत्नाभरणोंसे अलंकृत परम मनोहर बालक मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। उस परम तेजस्वी ब्राह्मण-बालकके बायें हाथमें स्थिरमुद्रा और दाहिने हाथमें अभयमुद्राके दर्शन हो रहे थे। उस ब्राह्मण-बालकमें अपनी ओर आकृष्ट करनेकी अद्भुत क्षमता थी; इस कारण कैलासवासी बालक और बालिकाओंका समूह हँसता-खेलता उसके साथ लग गया था और युवक तथा वृद्ध स्त्री-पुरुष भी बड़ी ललकसे उसकी ओर देख रहे थे।

उस परमतेजस्वी ब्राह्मण-बालकको देखकर आतुरतासे भृत्योंसहित भगवान् शंकरने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उसके बाद माता पार्वतीने भी उसे साष्टांग प्रणाम किया। परमतेजस्वी ब्राह्मण-बालकने भृत्यों, शिव एवं पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

यह दृश्य देखकर कैलासवासी बालक-बालिकाएँ भीत एवं चकित हो गयीं। फिर भगवान् शंकरने षोडशोपचारसे उनका पूजन एवं स्तवन किया। वे वामनभगवान् रत्नसिंहासनपर विराजमान थे। उनका उत्कृष्ट तेज सर्वत्र फैल रहा था।

'आज मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने कृपापूर्वक मेरे यहाँ पधारकर मुझे सेवाका अवसर प्रदान किया है।' भगवान् शंकरने मधुर शब्दोंमें कहा—'अतिथि-सत्कार करनेवालेके द्वारा स्वतः समस्त देवताओंकी पूजा सम्पन्न हो जाती है; क्योंकि अतिथिके संतुष्ट होनेसे स्वयं श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं।'

'आपलोगोंकी वर्तमान परिस्थिति जानकर मैं श्वेतद्वीपसे आ रहा हूँ।' आशुतोष शिवकी मधुरवाणीसे प्रसन्न होकर ब्राह्मण-बालकरूपी स्वयं श्रीहरिने गम्भीर स्वरमें कहा—'मेरे भक्तोंका कभी अमंगल नहीं होता। मेरा सहस्रार उनके रक्षार्थ प्रतिक्षण प्रस्तुत रहता है; किंतु गुरुके रुष्ट होनेपर मैं विवश हो जाता हूँ। गुरुकी अवहेलना बलवती होती है। विद्या और मन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे सौगुना श्रेष्ठ है। गुरुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है और '**न पार्वतीपरा साध्वी न गणेशात्परो वशी।**' (गणपतिखं० ४४। ७५) पार्वतीसे बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं है तथा गणेशसे उत्तम कोई जितेन्द्रिय नहीं है। भृगुनन्दनने गुरु-पत्नी एवं गुरुपुत्रकी अवहेलना कर दी है, उसीका मार्जन करनेके लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।'

'हिमगिरिनन्दिनि!' श्रीहरिने भगवान् शंकरके बाद भगवती पार्वतीसे कहा—'तुम जगज्जननी हो। तुम्हारे लिये गणेश, कार्तिकेय और परशुराम भी पुत्र-तुल्य हैं। इन परशुरामके स्नेहके प्रति शिव और तुम्हारे मनमें भेद नहीं है। अतएव जो उचित समझो, करो। दैव बड़ा

प्रबल होता है। बालकोंका यह विवाद तो दैव-दोषसे ही घटित हुआ है। तुम्हारे इस प्रिय पुत्रका 'एकदन्त'-नाम वेदोंमें प्रसिद्ध है। सामवेदमें तुम्हारे पुत्रके आठ नाम बताये गये हैं—

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० ४४। ८५)

'गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजवक्त्र और गुहाग्रज।' शम्भुवामा पार्वतीको समझाते हुए करुणावरुणालय श्रीहरिने एकदन्तका 'नामाष्टकस्तोत्र' और उसका अर्थ इस प्रकार बतलाया—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः।
बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥
दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः।
दीनानां परिपालकं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः।
विपत्खण्डनकारकं नमामि विघ्ननायकम्॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा।
पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम्॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ।
सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्॥
विष्णुप्रसादपुष्पं च यन्मूर्ध्नि मुनिदत्तकम्।
तद्गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम्॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये।
वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम्॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम्।
पुत्रस्य पश्य वेदे च तदा कोपं यथा कुरु॥
एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतं शुभम्।
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी॥
ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद् यथोरगाः।
गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम्॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी विपुलां स्त्रियम्।
महाजडः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद् ध्रुवम्॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० ४४। ८७—९८)

'ग' ज्ञानार्थवाचक और 'ण' निर्वाणवाचक है। इन दोनों (ग+ण)-के जो ईश हैं, उन परब्रह्म 'गणेश'को मैं प्रणाम करता हूँ। 'एक'शब्द प्रधानार्थक है और 'दन्त' बलवाचक है; अतः जिनका बल सबसे बढ़कर है, उन 'एकदन्त'को मैं नमस्कार करता हूँ। 'हे' दीनार्थवाचक और 'रम्ब' पालकका वाचक है; अतः दीनोंका पालन करनेवाले 'हेरम्ब'को मैं शीश नवाता हूँ। 'विघ्न' विपत्तिवाचक और 'नायक' खण्डनार्थक है; इस प्रकार जो विपत्तिके विनाशक हैं, उन 'विघ्ननायक'को मैं अभिवादन करता हूँ। पूर्वकालमें विष्णुद्वारा दिये गये नैवेद्यों तथा पिताद्वारा समर्पित अनेकों प्रकारके मिष्टान्नोंके खानेसे जिनका उदर लम्बा हो गया है, उन 'लम्बोदर'की मैं वन्दना करता हूँ। जिनके कर्ण शूर्पाकार, विघ्न-निवारणके हेतु, सम्पदाके दाता और ज्ञानरूप हैं, उन 'शूर्पकर्ण'को मैं सिर झुकाता हूँ। जिनके मस्तकपर मुनिद्वारा दिया गया विष्णुका प्रसादरूप पुष्प वर्तमान है और जो गजेन्द्रके मुखसे युक्त हैं, उन 'गजवक्त्र'को मैं नमस्कार करता हूँ। जो गुह (स्कन्द)-से पहले जन्म लेकर शिवभवनमें आविर्भूत हुए हैं तथा समस्त देवगणोंमें जिनकी अग्रपूजा होती है, उन 'गुहाग्रज' की मैं वन्दना करता हूँ।

'दुर्गे! अपने पुत्रके नामोंसे संयुक्त इस उत्तम 'नामाष्टकस्तोत्र' को पहले वेदमें देख लो, तब ऐसा क्रोध करो। इस 'नामाष्टकस्तोत्र'का जो नाना अर्थोंसे संयुक्त एवं शुभकारक है, जो नित्य तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह सुखी और सर्वत्र विजयी होता है। उसके पाससे विघ्न उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुड़के निकटसे साँप। गणेश्वरकी कृपासे वह निश्चय ही महान् ज्ञानी हो जाता है। पुत्रार्थीको पुत्र और भार्याकी कामनावालेको उत्तम स्त्री मिल जाती है तथा महामूर्ख निश्चय ही विद्वान् और श्रेष्ठ कवि हो जाता है।'

'राम! तुमने क्रोधवश शिवा-पुत्र गणेशका दाँत तोड़कर अनुचित किया है।' फिर श्रीहरिने जमदग्निनन्दन परशुरामसे कहा—'इस कारण तुम निश्चय ही अपराधी हो। ये सर्वशक्तिस्वरूपा पार्वती प्रकृतिसे परे और निर्गुण हैं। श्रीकृष्ण भी इन्हींकी शक्तिसे शक्तिशाली हुए हैं। ये समस्त देवताओंकी जननी हैं। तुम इनकी स्तुति कर इन्हें संतुष्ट करो।'

इतना कहकर श्रीहरि वैकुण्ठके लिये प्रस्थित हुए और परशुरामने स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किये। फिर

वे हाथ जोड़ गुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम कर सिर झुकाये जगज्जननी गौरीका स्तवन करने लगे। भक्तवर परशुरामके सम्पूर्ण अंग पुलकित थे और उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहे थे। इस प्रकार करुण प्रार्थना करते हुए अन्तमें परशुरामने कहा—

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे।
शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपतिखं० ४५। ५७)

'जगज्जननी! रक्षा करो, रक्षा करो, मेरे अपराधको क्षमा कर दो। भला, कहीं बच्चेके अपराध करनेसे माता कुपित होती है?'

स्तुति करनेके बाद परशुरामने माता पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे।

'वत्स! तुम अमर हो जाओ!' परशुरामकी करुण प्रार्थनासे करुणामयी भक्तवत्सला जननी पार्वतीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने प्रीतिपूर्वक परशुरामको अभय-दान देते हुए कहा—'बेटा! अब शान्त हो जाओ। आशुतोषके अनुग्रहसे तुम्हारी सर्वत्र विजय हो। सर्वान्तरात्मा श्रीहरि तुमपर सदा प्रसन्न रहें। गुरुदेव शिवमें तुम्हारी भक्ति सुदृढ़ रहे।'

इस प्रकार सर्वशक्तिसमन्विता दयामयी पार्वतीने परशुरामको आशीर्वाद दिया और फिर वे अपने अन्तःपुरमें चली गयीं।

उस समय वहाँ श्रीभगवान्‌के मंगलमय नामका उच्चघोष होने लगा। परशुरामके हर्षकी सीमा न रही।

फिर रेणुकानन्दनने एकदन्त गणेशका स्तवन किया और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं तुलसीरहित नैवेद्य आदिसे लम्बोदरकी प्रीतिपूर्वक पूजा की। परशुरामने भक्तिभावसे भाई गणेशको संतुष्ट कर जगन्माता पार्वती एवं कृपासिन्धु त्रिलोचनके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक तपश्चरणके लिये प्रस्थान किया।

गणेशका तुलसीको शाप

ब्रह्मकल्पकी बात है। नवयौवनसम्पन्ना परम लावण्यवती तुलसीदेवी भगवान् नारायणका स्मरण करती हुई तीर्थोंमें भ्रमण कर रही थीं। इस प्रकार वे पतितपावनी श्रीगंगाजीके पावनतम तटपर पहुँचीं।

'अत्यन्त अद्भुत और अलौकिक रूप है आपका?' वहाँ तुलसीदेवीने अत्यन्त सुन्दर और शुद्ध पीताम्बर धारण किये नवयौवनसम्पन्न परमसुन्दर कृष्णपादाब्जका ध्यान करते हुए निधिपति गणेशको देखा। उनके सम्पूर्ण शरीरमें चन्दनकी खौर लगी थी और वे रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। सर्वथा निष्काम एवं जितेन्द्रिय पार्वतीनन्दनको देखकर तुलसीदेवीका मन उनकी ओर बरबस आकृष्ट हो गया। विनोदके स्वरमें उन्होंने योगाधिप खण्डेन्दुशेखरसे कहा—'गजवक्त्र! शूर्पकर्ण! एकदन्त! घटोदर! सारे आश्चर्य आपके ही शुभ विग्रहमें एकत्र हो गये हैं। किस तपस्याका फल है यह?'

'वत्से! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? यहाँ किस हेतुसे आयी हो?' उमानन्दन एकदन्तने शान्त स्वरमें कहा—'माता! तपश्चरणमें विघ्न डालना उचित नहीं। यह सर्वथा अकल्याणका हेतु होता है। मंगलमय प्रभु तुम्हारा मंगल करें।'

'मैं धर्मात्मजकी नवयुवती पुत्री हूँ।' तुलसीदेवीने उपहास छोड़कर मधुरवाणीमें परम जितेन्द्रिय शम्भुकुमारसे निवेदन किया—'मैं मनोनुकूल पतिकी प्राप्तिके लिये तपस्यामें संलग्न हूँ। आप मुझे पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लीजिये।'

'माता! विवाह बड़ा दुःखदायी होता है।' घबराते हुए लम्बोदरने उत्तर दिया—'उससे सुख सम्भव नहीं। विवाह तत्त्वज्ञानका उच्छेदक और संशयोंका उद्गम-स्थान है। तुम मेरी ओरसे अपना मन हटाकर किसी अन्य पुरुषको पतिके रूपमें वरण कर लो। मुझे क्षमा करो।'

'तुम्हारा विवाह अवश्य होगा!' कुपित होकर तुलसीदेवीने लम्बोदरको शाप दे दिया।

'देवि! तुम्हें भी असुर पति प्राप्त होगा।' एकदन्त गणेशने भी तुरंत तुलसीको शाप दिया—'उसके अनन्तर महापुरुषोंके शापसे तुम वृक्ष हो जाओगी।'

पार्वतीनन्दनके अमोघ शापके भयसे तुलसीदेवी सर्वाग्रपूज्य हेरम्बका स्तवन करने लगीं।

'देवी! तुम पुष्पोंकी सारभूता एवं कलांशसे नारायण-प्रिया बनोगी!' भक्तसुलभ मूषक-वाहनने तुलसीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उनसे कहा—'यों तो सभी देवता तुमसे संतुष्ट होंगे, किंतु श्रीहरिके लिये तुम

विशेष प्रिय होओगी। तुम्हारे द्वारा श्रीहरिकी अर्चना कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करेंगे; किंतु मेरे लिये तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी। इतना कहकर भालचन्द्र गणनाथ तपश्चरणार्थ बदरीनाथके संनिकट चले गये।*

(घ) शिवपुराणसे

श्वेतकल्पकी गणेशोत्पत्तिकी कथा

श्वेतकल्पमें गणेशोत्पत्तिकी मंगलमयी कथा इससे सर्वथा भिन्न है। उस कल्पमें स्वयं भगवान् शंकरने ही अपने पुत्र गणेशजीका मस्तक काट दिया था। वह पापनाशिनी कथा 'शिवपुराण'में इस प्रकार वर्णित है—

भगवती पार्वती अपने प्राणपति भगवान् शंकरके साथ आनन्दोल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। उनकी अत्यन्त रूपवती, गुणवती एवं मधुरहासिनी जया और विजया—ये दो सखियाँ थीं।

'सखी! सभी गण रुद्रके ही हैं।' एक दिन उन दोनों सखियोंने भगवती उमाके समीप आकर कहा—'नन्दी, भृंगी आदि जो हमारे हैं, वे भी भगवान् शंकरकी ही आज्ञामें तत्पर रहते हैं। असंख्य प्रमथगणोंमें भी हमारा कोई नहीं है। वे शिवकी अनन्यताके कारण ही द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि आप कृपापूर्वक हमलोगोंके लिये भी एक गणकी रचना कर दीजिये।'

माता पार्वती उन सहचरियोंकी बात ध्यानपूर्वक सुनकर विचार करने लगीं।

एक दिनकी बात है। भगवती उमा स्नानागारमें थीं। लीलावपु भगवान् कामारि अपनी प्राणप्रियाके द्वारपर पहुँचे।

'माता स्नान कर रही हैं।' नन्दीने महेश्वरसे निवेदन किया।

किंतु भगवान् भूतभावनने नन्दीके निवेदनकी उपेक्षा कर दी। वे सीधे स्नानागारमें पहुँचे।

परम प्रभु शिवको देखकर स्नान करती हुई माता पार्वती लज्जित होकर खड़ी हो गयीं। वे चकित थीं।

'जया-विजया ठीक ही कह रही थीं।' शिवप्रियाने मन-ही-मन विचार किया—'द्वारपर यदि मेरा कोई गण होता तो मेरे प्राणनाथ सहसा स्नानागारमें कैसे आ जाते? निश्चय ही इन गणोंपर मेरा पूर्ण अधिकार नहीं है। मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल एवं मेरी आज्ञाका सतत पालन करनेमें कभी विचलित न हो।'

इस प्रकार सोचकर त्रिभुवनेश्वरी उमाने अपने मंगलमय पावनतम शरीरके मैलसे एक चेतन पुरुषका निर्माण किया—

विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसम्भवम्।
पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसंयुतम्॥
सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयवसुन्दरम्।
विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपराक्रमम्॥
वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधानि हि।
नानालंकरणं चैव बह्वाशिषमनुत्तमाम्॥
मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यः कश्चिदिहास्ति मे।

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १३। २०—२३)

वह शुभ लक्षणोंसे संयुक्त था। उसके सभी अंग दोषरहित एवं सुन्दर थे। उसका वह शरीर विशाल, परम शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-से उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है।'

परम सुन्दर, परम बुद्धिमान् और परम पराक्रमी उस पुरुषने आदिशक्ति माता पार्वतीके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'माता! आपका प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है। आप क्या चाहती हैं, आज्ञा प्रदान करें। मैं आपका बताया प्रत्येक कार्य अवश्य करूँगा।'

'तुम मेरे पुत्र हो, सर्वथा मेरे हो।' महाशक्ति देवी पार्वतीने कहा—'तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। चाहे कोई हो, कहींसे भी आया हो, मेरी आज्ञाके बिना मेरे अन्तःपुरमें प्रवेश न कर सके, इसका ध्यान रखना।'

* कालान्तरमें तुलसीदेवी वृन्दाके नामसे दानवराज शंखचूड़की पत्नी हुईं। शंखचूड़ भगवान् शंकरके त्रिशूलसे मारा गया और उसके बाद नारायण-प्रिया तुलसी कलांशसे वृक्षभावको प्राप्त हो गयीं। यह कथा पुराणोंमें विस्तारसे आयी है।

गणेशका शिवगणोंसे अद्भुत युद्ध

शिवप्रियाने अपने पुत्र गणेशके हाथमें एक सुदृढ़ छड़ी दे दी। फिर उन्होंने अपने यष्टिधारी पुत्रका सौन्दर्य देखा तो आनन्दमग्न हो गयीं। उन्होंने अपने परम प्रिय एवं सर्वांगसुन्दर पुत्रको अंकमें लेकर उसके मुखका चुम्बन किया। इसके अनन्तर दयामयी माता पार्वतीने अपने प्राणप्रिय दण्डधारी गणराजको द्वारपर नियुक्त कर दिया और स्वयं अपनी सखियोंके साथ स्नान करने चली गयीं।

'देव! आप कहाँ जाना चाहते हैं?' कुछ ही देरमें स्वयं कर्पूरगौर शशांकशेखर वहाँ पहुँचे। वे शिवाके प्राणप्रिय पुत्रसे सर्वथा अपरिचित थे। चन्द्रमौलि अन्तःपुरमें प्रविष्ट होना ही चाहते थे कि उन्हें रोकते हुए दण्डधारी गणराजने उनसे कहा—'आप माताकी आज्ञाके बिना भीतर नहीं जा सकते। जननी स्नान कर रही हैं। इस समय आप यहाँसे चले जाइये।'

'मूर्ख! तू किसे रोक रहा है?' दण्डधारी गणराजके द्वारा अनपेक्षित व्यवधान देखकर करुणामय त्रिनयनने कहा—'तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ? मैं प्रत्यक्ष शिव ही यहाँ आया हूँ।'

'आप चाहे जो कोई हों, किंतु मेरी माताकी आज्ञाके बिना इस समय भीतर नहीं जा सकते।' मातृभक्त वीर बालक गणेशने अपनी सुदृढ़ यष्टि आगे कर दी।

'अरे! तू बड़ा मूर्ख है।' आश्चर्यचकित होकर पार्वतीवल्लभने गणेशसे कहा—'मैं उसका पति हूँ। तू मेरे ही घरमें मुझे क्यों नहीं जाने देता?'

भक्तवत्सल कर्पूरगौर शिवने पुनः आगे जानेका उपक्रम किया ही था कि जगदम्बापुत्रने पुनः अपनी यष्टि आगे कर उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

'यह कौन है और मेरा मार्गावरोध क्यों कर रहा है?' लीलानायक सर्वान्तर्यामी, विनोदी शिवने अपने गणोंको आज्ञा दी और स्वयं वहाँसे कुछ दूर हटकर द्वारके समीप ही खड़े हो गये।

'तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? और तुम्हें क्या अभीष्ट है?' महेश्वरके गणोंने पार्वतीनन्दनके समीप जाकर उससे कहा—'यदि तुम अपनी प्राण रक्षा चाहते हो तो यहाँसे शीघ्र ही अन्यत्र चले जाओ।'

'तुमलोग कौन हो और कहाँसे आये हो?' अत्यन्त धीर-वीर गिरिजानन्दनने निर्भय होकर शिवगणोंसे कहा—'देखनेमें तो बड़े सुन्दर हो, किंतु अकारण मुझे क्यों छेड़ रहे हो? यहाँ खड़े क्यों हो? चले क्यों नहीं जाते?'

'हम मुख्य शिवगण और द्वारपाल हैं।' शिवगण आदिदेव गणेशकी बात सुनकर हँसने लगे और उन्होंने सरोष बुद्धिविधाता गणेशसे कहा—'हम सर्वान्तर्यामी एवं सर्वसमर्थ श्रीपार्वतीवल्लभके आदेशसे तुम्हें यहाँसे हटाने आये हैं। तुम्हें भी गण समझकर हमलोगोंने कुछ नहीं कहा है। अब कुशल इसीमें है कि तुम यहाँसे स्वतः हट जाओ; अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु-मुखमें चले जाओगे।'

'मैं माता पार्वतीका पुत्र हूँ। माताने मुझे किसीको भी भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा नहीं दी है।' महाशक्तिके शक्तिमान् पुत्र गणेशने शिवगणोंसे कहा—'यदि तुम्हें अपने स्वामी शिवकी आज्ञाका पालन करना आवश्यक है तो यहीं खड़े रहो; पर द्वारके भीतर नहीं जा सकते। तुम्हारा दुराग्रह सफल नहीं होगा। मैं तो माताकी आज्ञाका पालन करूँगा ही।'

'प्रभो! वह बालक माता पार्वतीका पुत्र है और अपने स्थानसे विचलित नहीं हो रहा है।' शिवगणोंने महेश्वरके समीप जाकर उनकी स्तुति करते हुए अत्यन्त विनीत स्वरमें निवेदन किया—'वह शक्तिसम्पन्न तेजस्वी बालक द्वारसे किसी प्रकार नहीं हटता और युद्धके लिये प्रस्तुत है।'

'एक बालकके सम्मुख तुमलोग सर्वथा अवश हो गये।' लीलाविहारी कर्पूरगौर श्रीपार्वतीवल्लभने सरोष मुद्रामें अपने गणोंसे कहा—'कुछ नहीं कर सके? वह निरा बालक और एकाकी है। यदि तुम्हें युद्ध भी करना हो तो अवश्य करो। शत्रुकी भाँति बकनेवाले बालकको द्वारसे शीघ्र भगा दो।'

शिवगणोंने महेश्वरके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने-अपने शस्त्र ले पार्वतीनन्दनकी ओर चले। शिवगणोंकी सशस्त्र वाहिनीको अपनी ओर आती देख परमपराक्रमी षडानन-अनुज दण्डपाणिने अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक उनसे कहा—

आयान्तु गणपाः सर्वे शिवाज्ञापरिपालकाः।
अहमेकश्च बालश्च शिवाज्ञापरिपालकः॥

मंगल ध्यान

तात संभु, जननी उमा, षडमुख बंधु सुजान।
सहित उदित मन में मुदित कीजै गनपति-ध्यान॥

तथापि पश्यतां देवी पार्वती सूनुजं बलम्।
शिवश्च स्वगणानां तु बलं पश्येत्तु वै पुनः॥
बलवद् बालयुद्धं च भवानीशिवपक्षयोः।
भवद्भिश्च कृतं युद्धं पूर्वं युद्धविशारदैः॥
मया पूर्वं कृतं नैव बालोऽस्मि क्रियतेऽधुना।
तथापि भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। ३—६)

'शिवकी आज्ञा पालन करनेवाले गणो! आओ। मैं अकेला बालक ही शिवाकी आज्ञाका पालन करनेवाला हूँ, तथापि देवी पार्वती अपने पुत्रका और त्रिपुरारि अपने गणोंका बल देखें। अब भवानी और शिवका पक्ष लेकर बलवानोंका बालकसे युद्ध होगा। आपने तो पहले भी युद्ध किया है, अतएव आप युद्धकुशल हैं और मैंने पहले कभी युद्ध नहीं किया है, अभी बच्चा ही हूँ; (फिर भी युद्ध करूँगा।) तथापि गिरिजा और शिवके विवादमें पराजित होनेपर तुम्हें ही लज्जित होना पड़ेगा (बालक होनेके कारण मेरे लिये लज्जाका कोई प्रश्न ही नहीं है)।'

सर्वेश्वरीतनयने आगे कहा—'विजय और पराजय हमारी-तुम्हारी नहीं होगी। यह तो माता अम्बिका और पशुपतिकी होगी। तुमलोग अपने स्वामीकी ओर देखकर अपने शस्त्रोंका प्रयोग करो, मैं अपनी माताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये युद्धके लिये प्रस्तुत हूँ।'

बालक गणपतिके तीक्ष्ण वाक्-शरोंसे क्रुद्ध होकर नन्दी, भृंगी आदि गणोंने उनपर आक्रमण कर दिया। तब कुपित होकर गणेशजीने भी उनपर कठोर प्रहार करना प्रारम्भ किया। गणेशजीके भीषण प्रत्याक्रमणसे शिवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे शक्तिपुत्रके असह्य प्रहारसे प्राण बचाकर यत्र-तत्र भाग खड़े हुए।

कल्पान्तकरणे कालो दृश्यते च भयंकरः।
यथा तथैव दृष्टः स सर्वेषां प्रलयंकरः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। २०)

'जैसे कल्पके अन्तमें भयंकर काल दिखायी देता है, उसी प्रकार गणेशजी उस समय सबको प्रलयंकर दिखायी देने लगे।'

'प्रभो! इस समय आप कैसी लीला कर रहे हैं।' देवर्षि नारदके द्वारा यह संवाद पाकर ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओंने चराचरात्मा भगवान् शिवके समीप पहुँचकर उनकी स्तुति करते हुए कहा—'हमें आज्ञा प्रदान कीजिये; हम क्या करें?'

'ब्रह्मन्! मेरे द्वारपर एक अजेय दण्डपाणि बालक बैठा हुआ है।' अपने गणोंको भागते देख और सुर-समुदायकी प्रार्थना सुन सर्वेश्वर शिवने मन-ही-मन हँसते हुए उनसे कहा—'वह मुझे घरमें प्रवेश नहीं करने दे रहा है। उस पराक्रमी बालकके तीव्रतम प्रहारसे मेरे सभी पार्षद और गण व्याकुल होकर भाग रहे हैं। उस एक बालकने मेरे सभी सेवकोंको पराजित कर दिया; आप नीतिपूर्वक उचित कार्य कीजिये।'

ऋषियोंसहित भगवान् कमलासन शौर्यमूर्ति गणेशके समीप पहुँचे ही थे कि परमपराक्रमी रुद्राणीनन्दनने अपना परिघ उठा लिया।

'मैं शान्त ब्राह्मण युद्धके लिये नहीं आया हूँ।' प्राणरक्षाके लिये उलटे पैर भागते हुए विधाताने कहा—'मुझपर तो आपको अनुग्रह ही करना चाहिये।'

उस समय जगन्माता पार्वतीके अप्रतिम शूर पुत्रके कठोर प्रहारसे कितने ही शिवगणोंका अंग-भंग हो गया। कुछ गण वहीं धराशायी हो गये। उनके शरीरसे रुधिर बह रहा था।

'मायाप्रपंचशमनीके प्रबल पराक्रमी पुत्रके सम्मुख हम नहीं टिक सकते।' कुछ गणोंने तुरंत भगवान् भूतभावनके चरणोंमें प्रणाम कर विनयपूर्वक निवेदन किया। 'उस बालकका प्रलयाग्नितुल्य क्रोध हमें दग्ध-सा किये देता है।'

'मेरे द्वारपर एक वीरपुंगव शिशुने भयानक उत्पात मचा रखा है।' अपने गणोंके मुखसे उनके संहार एवं पराजयका संवाद प्राप्त कर लीला-विशारद सर्वदेवमय महादेव क्रुद्ध हुए। उन्होंने इन्द्रादि देवताओं, षडानन आदि श्रेष्ठ गणों एवं भूत-प्रेत-पिशाचोंको बुलाकर उनसे कहा—'उसे पराजित करो। मेरे ही द्वारपर बालकका यह उपद्रव मुझे असह्य हो रहा है।'

सुरेन्द्रादि देव, वीरवर तारकारि कार्तिकेय आदि गण एवं समस्त प्रेत-पिशाचोंने अपने-अपने आयुध उठाये और निर्विकार कामारिके आदेशानुसार योगक्षेमकर्त्री माहेश्वरीके किशोर कुमार गणेशको चारों ओरसे घेर लिया।

चतुर्दिक् अप्रतिम सशस्त्र देवता, गण एवं भूत-

प्रेत। उनके मध्य सर्वथा एकाकी दण्डपाणि पार्वतीपुत्र गणेश। सबने एक साथ बुद्धिविशारद गणेशपर भयानक आक्रमण कर दिया, किंतु महाशक्तिके पुत्र कुमार गणेश अप्रतिम शौर्य-वीर्यसम्पन्न एवं प्रबलपराक्रमी थे। उन्होंने शत्रुपक्षके तीक्ष्णतम प्रहारको शिरीष सुमनके तुल्य समझा और स्वयं वे शिवप्रेषित वाहिनीका वीरतापूर्वक संहार करने लगे। देवसमुदाय, शिवगण एवं भूत-प्रेतादि भयभीत और आश्चर्यचकित विस्फारित नेत्रोंसे उनकी ओर देख रहे थे। कुमार गणेश घूमकर जिधर प्रहार करते, वीरोंका समुदाय भू-लुण्ठित हो जाता। उनके शरीरसे रुधिर-धारा बहने लगती और उनमें हाहाकार मच जाता। शत्रु प्राण लेकर भागते।

शचीपति एवं अजेय तारक असुरका संहार करनेवाले षडाननके भी आयुध निष्फल हो गये। शक्तिपुत्रकी शक्तिके सम्मुख सबकी शक्ति व्यर्थ हो गयी थी। त्रैलोक्यमें हाहाकार मच गया। समस्त देवगण आश्चर्यचकित थे।

सर्वशक्तिप्रदायिनी ज्ञानरूपिणी शिवाको यह वृत्तान्त विदित हुआ तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुईं। एकाकी प्राणप्रिय कुमारपर असंख्य शस्त्र प्रहार किये जायँ, यह वात्सल्यमयी जननी कैसे सह सकती थीं। अपने एकाकी पुत्रकी सहायताके लिये उन्होंने तत्क्षण दो महान् शक्तियोंकी रचना की।

एक शक्ति कज्जलगिरि-तुल्य थी। उसने अपना भयानक मुख-विवर खोल दिया। दूसरी विद्युत्-तुल्य थी। उसके अनेक हाथ थे। देवसमुदाय एवं शिवगण कुपित होकर अपने जिन-जिन आयुधोंसे प्रहार करते, पहली शक्ति उन्हें अपने मुखमें ले लेती और उनपर भीषण अस्त्र-वर्षा करती। दूसरी भयंकर महादेवी प्रतिपक्षके शूरोंको भयानक यन्त्रणा देने लगी। इन देवियोंके आयुध भी सटीक प्रहार करनेवाले, अद्भुत, अलौकिक एवं अमोघ थे।

उस महासमरमें माहेश्वरीरचित दोनों देवियोंने अद्भुत लीला की। शिवपक्षके शूरोंके अस्त्र-शस्त्र तो कहीं दीखते नहीं थे, किंतु परिघ बार-बार दीख जाता था। इस प्रकार केवल एक पार्वतीकुमार शिवकी विशाल वाहिनीको रौंदने लगे।

एको बालोऽखिलं सैन्यं लोडयामास दुस्तरम्।
यथा गिरिवरेणैव लोडितः सागरः पुरा॥
एकेन निहताः सर्वे शक्राद्या निर्जरास्तथा।
शंकरस्य गणाश्चैव व्याकुला अभवंस्तदा॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। ५०-५१)

'जैसे मन्दरगिरिने सागरका मन्थन किया था, उसी प्रकार एक बालकने दुस्तर सैन्यसमुदायका मन्थन कर डाला। एकने ही इन्द्रादिक समस्त देवताओंको क्षत-विक्षत कर दिया; तब शिवजीके गण भी व्याकुल हो गये।'

शर्वाणीसुत गणेशके प्रहारसे अधीर होकर देव-गण आदि परस्पर कहने लगे—

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं न ज्ञायन्ते दिशो दश।
परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। ५३)

'क्या करें? कहाँ जायँ? दिशाएँ दीखती नहीं, यह बालक दायें-बायें दोनों ओर परिघ घुमाता है।'

उस समय नारद आदि ऋषि तथा श्रेष्ठ अप्सराएँ हाथमें पुष्प और चन्दन लेकर उक्त भयानक महासमरको देख रही थीं। युद्धके दर्शनार्थियोंसे आकाश आच्छादित हो गया था। चकित होकर सभी परस्पर कहते—'ऐसा भीषण संग्राम तो हमने कभी नहीं देखा।' सर्वेश्वरीकुमार गणेशके असह्य प्रहारसे सभी देवता और शिवगण अपनी जीवनरक्षाके लिये भाग गये। वहाँ केवल महावीर कार्तिकेय ही अडिग रहकर युद्ध कर रहे थे; किंतु उनके प्रत्येक प्रहार विफल होते जा रहे थे। पार्वतीकी शक्तियोंने सबके आयुध नष्ट कर दिये।

'प्रभो! यह कौन-सा श्रेष्ठ गण है?' युद्धसे भागे हुए देवता और गणोंने नीलकण्ठके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम कर निवेदन किया। 'हमने अनेक युद्ध देखे हैं, पर ऐसा समर न कभी सुना न देखा है। इस दुर्धर्ष उग्र बालकपर विजय प्राप्त करना कठिन प्रतीत होता है। आप कृपापूर्वक कोई यत्न कीजिये।'

शिवके त्रिशूलसे दण्डपाणि गणेशका मस्तक कटा

इस संवादसे परम क्रोधी रुद्र अत्यधिक कुपित हुए। वे अपने गणोंके साथ मायासंहाररूपिणी उमाके अन्यतम वीर पुत्र गणेशके सम्मुख पहुँचे। यह देख सम्पूर्ण देवसेना क्षीराब्धिशायी विष्णुके साथ हर्षोल्लासपूर्वक शिवके समीप पहुँच गयी।

रुद्रदेवको बालक गणेशके साथ युद्धके लिये उद्यत देखकर देवताओंने उनके त्रैलोक्यपावन चरणोंका स्पर्श किया और फिर सोत्साह रणांगणमें कूद पड़े। महादिव्य आयुधधारी महाशक्तिशाली श्रीहरि भी गणेशसे युद्ध करने लगे।

महाशक्तिपुत्र गणेशने देवताओंपर भीषण दण्ड-प्रहार किया। उनके दण्ड-प्रहारसे श्रीहरि भी घबरा गये। भगवान् त्रिलोचन भी दीर्घकालतक भीषण संग्राममें अपने सैन्यदलका निर्मम दलन होते देखकर चकित हो गये। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'**छलेनैव च हन्तव्यो नान्यथा हन्यते पुनः**। (शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १६। ८)—इसे छलसे ही मारा जा सकता है, अन्य किसी रीतिसे इसे मारना सम्भव नहीं।'

इस निश्चयके साथ ही त्रिनेत्र विशाल वाहिनीके मध्य खड़े हो गये। सर्वाधार श्रीहरि भी वहाँ आ गये। शिवके गण हर्षोल्लासपूर्वक नृत्य करने लगे। उस समय धर्मपरायणा पार्वतीके पुत्रने अपने दण्डसे श्रीविष्णुकी पूजा की।

'विभो! मैं इसे मोहित करता हूँ।' श्रीहरिने धीरेसे वृषभध्वजसे कहा—'उस समय आप इसे मार डालें। यह बालक छलके बिना नहीं मारा जा सकता।'

भगवान् शिवने अनुमति दे दी। त्रैलोक्यपति श्रीविष्णुके विचारसे अवगत होते ही धर्ममयी पार्वतीकी दोनों शक्तियोंने गणेशको अपना बल दे दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। श्रीहरिने आशुतोष शिवका स्मरण किया और गणेशको ठगनेका प्रयत्न करने लगे।

भगवान् शिवने कुपित होकर अपना तीक्ष्णतम त्रिशूल उठाया। शिवापुत्र गणेशने शिवको अपने लिये त्रिशूल उठाते देख सर्वशक्तिप्रदायिनी माताके चरणोंका स्मरण कर शिवके हाथमें शक्ति मारी। गणेशके भयानक प्रहारसे शिवका त्रिशूल उनके हाथसे छूट गया।

रुद्र अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपना पिनाक नामक धनुष उठाया। वीरवर गणेशने परिघ-प्रहारसे उसे भी धरतीपर गिरा दिया। उनके पाँचों हाथ भी घायल हो गये। तब उन्होंने दूसरे पाँच हाथोंमें शूल लिये।

महाशक्तिका शक्तिमान् पुत्र अपने परिघके प्रहारसे देवसैन्यको व्यथित और विचलित कर रहा था। यह देखकर त्रिपुरारिने मन-ही-मन कहा—'अरे! जब इस युद्धमें मेरी यह दशा है; तब मेरे गणोंको कितना कष्ट हुआ होगा?'

अद्भुत पराक्रमशील पार्वतीपुत्रके परिघ-प्रहारसे देवता और गण खड़े नहीं रह सके। वे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जिधर मार्ग दीखा, उधर ही भागने लगे—

विष्णुस्तं च गणं दृष्ट्वा धन्योऽयमिति चाब्रवीत्।
महाबलो महावीरो महाशूरो रणप्रियः॥
बहवो देवताश्चैव मया दृष्टास्तथा पुनः।
दानवा बहवो दैत्या यक्षगन्धर्वराक्षसाः॥
नैतेन गणनाथेन समतां यान्ति केऽपि च।
त्रैलोक्येऽप्यखिले तेजोरूपशौर्यगुणादिभिः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १६। २५—२७)

"गणेशको देखकर आश्चर्यचकित श्रीविष्णुने कहा—'ये धन्य हैं। शौर्य-वीर्य-सम्पन्न, महाबली, महाशूर तथा युद्धप्रिय हैं। हमने बहुत-से देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस देखे हैं; पर इन गणेश्वरकी तो कोई भी समता नहीं कर सकता। ये त्रैलोक्यमें तेज, रूप, शौर्य और गुणोंसे युक्त हैं।"

उसी समय गणपतिने परिघसे विष्णुपर प्रहार किया; किंतु श्रीहरिने अपने तीक्ष्णतम चक्रसे परिघके दो टुकड़े कर दिये। गजमुखने उस खण्डित परिघको ही उठाकर विष्णुपर फेंका; किंतु विष्णुवाहन गरुड़ने उसे विफल कर दिया।

इस प्रकार शक्तिपुत्र गणपति और श्रीहरिमें युद्ध हो रहा था। गणपतिने अपनी जननीका स्मरण कर अनुपम यष्टिसे विष्णुपर आक्रमण किया। उक्त घातक आक्रमणसे विष्णु धरतीपर गिर पड़े, किंतु फिर उठकर वे पार्वतीनन्दनसे युद्ध करने लगे।

पार्वतीपुत्र गणेशको विष्णुसे युद्धमें संलग्न देख भगवान् शिवने उत्तर दिशासे अपना तीक्ष्णतम शूल उनपर फेंका और फिर बालक गणेशका मस्तक कटकर दूर जा गिरा।

देवताओं और गणोंने संतोषकी साँस ही नहीं ली, हर्षोल्लासपूर्वक वे मृदंग और नगाड़े भी बजाने लगे।

शिवाकी व्यथा और उनका कोप

'मेरे पुत्रका शिरश्छेद कर देवसमुदाय और शिवगण विजय-महोत्सव मना रहे हैं'—यह विदित

होते ही शंकरार्धशरीरिणी रुद्राणी विकल—विह्वल हो गयीं।

'मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?' छटपटाती हुई जननी कह रही थीं—'देवताओं और गणोंने मिलकर मेरे नन्हें बच्चेको मार डाला। यह दुःख मुझसे सहा नहीं जा रहा है। मैं भी सबको मृत्यु-मुखमें झोंक दूँगी। प्रलय मचा दूँगी।'

योगेश्वर-प्राणनाथा उमाने कुपित होकर सहस्रों तेजस्विनी शक्तियोंकी रचना की। वे सभी शक्तियाँ परमशक्तिसम्पन्न एवं सर्वसमर्थ थीं। उन्होंने जगदम्बाके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'माता! हमें क्या आज्ञा है?'

'शक्तियो! मेरी आज्ञासे तुमलोग किसी प्रकारका विचार किये बिना प्रलय मचाओ।' अत्यन्त शोकाकुल जगज्जननीने क्रुद्ध होकर शक्तियोंको आज्ञा प्रदान की—'तुमलोग देव, ऋषि, यक्ष, राक्षस तथा स्वजन-परिजन—जिनको जहाँ पाओ, वहीं भक्षण करो।'

फिर क्या था? कराली, कुब्जका (कूबड़ी), खंजा (लँगड़ी), लम्बशीर्षा आदि अनेक रूपोंकी महाभयानक देवियाँ कुपित होकर देवता आदि जिन्हें जहाँ पातीं, वहीं उन्हें पकड़कर अपने भयानक मुँहमें डाल लेतीं। उन शक्तियोंका वह जाज्वल्यमान तेज सभी दिशाओंको दग्ध-सा कर रहा था। सर्वत्र हाहाकार मच गया। इन्द्रादि देवगण तथा ऋषियोंके मनमें असमयमें ही संहारका विश्वास होने लगा। सभी अपने जीवनसे निराश होने लगे।

'यदि भगवती गिरिजा संतुष्ट हों, तभी यह आपदा टल सकती है।' सबने मन्त्रणा की। सुख-शान्तिका अन्य कोई पथ नहीं दीखता।'

पर स्वजन-परजन, देव-दानव, गण-दिक्पाल, यक्ष-किंनर, ऋषि-मुनि और ब्रह्मा-विष्णु तथा स्वयं महेश भी उन क्रोधमूर्ति रुद्राणीके तेजसे सहमकर वहाँसे दूर हट गये।

'क्रुद्धा नित्यसिद्धा पार्वतीके समीप कौन जाय?' देवताओंकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। 'पुत्रका वधकर माताके सम्मुख जानेका साहस कौन करे?'

उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पहुँचे। विपत्तिग्रस्त देवताओंने उन्हें अपनी व्यथा-कथा सुनायी और कहा—'परमेश्वरी गिरिजाकी प्रसन्नताके बिना हमारा कल्याण सम्भव नहीं।'

माता पार्वतीकी स्तुति

नारदजीके साथ समस्त देवता और ऋषिगण धर्मसारा माता पार्वतीके समीप पहुँचकर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे—'जगदम्बे! आपको नमस्कार है। शिवपत्नि! आपको प्रणाम है। चण्डिके! आपको हमारा अभिवादन प्राप्त हो। कल्याणि! आपको बारंबार प्रणाम है। अम्बे! आप ही आदिशक्ति हैं, आप ही सदा सारी सृष्टिकी निर्माणकर्त्री, पालिकाशक्ति और संहार करनेवाली हैं। देवेशि! आपके कोपसे सारी त्रिलोकी विकल हो रही है, अतः अब प्रसन्न हो जाइये और क्रोधको शान्त कीजिये। देवि! हमलोग आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।'

उनके स्तवनसे भी जननीका क्रोध शान्त नहीं हुआ। पराम्बाने उनकी ओर अत्यन्त क्रुद्ध दृष्टिसे देखा, किंतु वे मौन थीं। तब ऋषिगण भक्तार्तिनाशिनी गिरिजा माताके चरणोंमें प्रणाम कर पुनः स्तुति करने लगे—

क्षम्यतां क्षम्यतां देवि संहारो जायतेऽधुना।
तव स्वामी स्थितश्चात्र पश्य पश्य तमम्बिके॥
वयं के च इमे देवा विष्णुब्रह्मादयस्तथा।
प्रजाश्च भवदीयाश्च कृताञ्जलिपुटाः स्थिताः॥
क्षन्तव्यश्चापराधो वै सर्वेषां परमेश्वरि।
सर्वे हि विकलाश्चाद्य शान्तिं तेषां शिवे कुरु॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७। ३७—३९)

'देवि! अभी संहार होना चाहता है, अतः क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये। अम्बिके! आपके स्वामी शिव भी तो यहीं स्थित हैं, तनिक उनकी ओर तो दृष्टिपात कीजिये। हमलोग, ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा सारी प्रजा—सब आपके ही हैं और व्याकुल होकर अंजलि बाँधे आपके सामने खड़े हैं। परमेश्वरि! इन सबका अपराध क्षमा कीजिये। शिवे! अब इन्हें शान्ति प्रदान कीजिये।'

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए ऋषिगण हाथ जोड़कर जगदीश्वरीके सम्मुख खड़े हो गये। ऋषियोंकी स्तुति एवं उनका दैन्य देखकर दयामयी सर्वलोकेश्वरी जननीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने ऋषियोंसे कहा—

मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं न हि।
यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति॥
सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि।
तदा शान्तिर्भवेल्लोके नान्यथा सुखमाप्स्यथ॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७। ४२-४३)

''ऋषियो! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह आपलोगोंके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा। जब आपलोग उसे 'सर्वाध्यक्ष'का पद प्रदान कर देंगे, तभी लोकमें शान्ति हो सकती है, अन्यथा आपलोगोंको सुख नहीं प्राप्त हो सकता।''

दण्डपाणि गजमुख हुए

'ठीक है, जिस प्रकार त्रैलोक्य सुखी हो, वही करना चाहिये।' ऋषियोंने निखिलसृष्टिनियामिका जननीका कथन इन्द्रादि देवताओंको सुनाया। वे सभी उदास और दुःखी मनसे अहिभूषणके समीप पहुँचे। उन्होंने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक त्रैलोक्यपति शिवके चरणोंमें प्रणाम कर माताकी बात कही। तब सर्वान्तर्यामी कर्पूरगौरने देवताओंसे कहा—'अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये।'

महेश्वरकी आज्ञासे उन देवताओंने तत्काल सर्वपाप-विमोचनी पार्वतीके शिशु गणेशका कबन्ध (मस्तकरहित शरीर) धो-पोंछकर विधिपूर्वक उसकी पूजा की और फिर उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े।

वहाँ मार्गमें सर्वप्रथम एक गज मिला, जिसके एक ही दाँत था। देवताओंने उसका सिर लाकर गणेशके शरीरपर जोड़ दिया।

'हमने अपना काम पूरा कर लिया।' देवताओंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेवोंके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'अब शेष करणीय आपलोग करें।'

महामहेश्वरकी आज्ञा-पूर्ति हो गयी—इस संवादसे देवता और पार्षद सभी आनन्दित हुए। फिर ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देवताओंने निर्विकार नीलकण्ठके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहने लगे—'प्रभो! आपके जिस तेजसे हम सब प्रकट हुए हैं, आपका वही तेज वेदमन्त्रोंके योगसे इस शिशुमें प्रवेश करे।'

इस प्रकार समस्त देवताओंने वेद-मन्त्रोंसे उस जलको अभिमन्त्रित किया। फिर सर्वात्मा शिवका स्मरण कर उक्त जल उस बालकपर छिड़क दिया। उस अभिमन्त्रित जलका स्पर्श होते ही सर्वदेवमय शिवकी इच्छासे उस बालककी चेतना लौट आयी। वह जीवित हो गया और इस प्रकार उठ बैठा, जैसे निद्रा त्यागकर उठा हो—

सुभगः सुन्दरतरो गजवक्त्रः सुरक्तकः।
प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृतिः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७। ५७)

'वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका मुख हाथीका-सा था। उसके शरीरका रंग लाल था, चेहरेपर अत्यन्त प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी कमनीय आकृतिसे सुन्दर प्रभा फैल रही थी।'

उस परमतेजस्वी एवं सुन्दर पार्वती-पुत्रको जीवित देखकर उपस्थित सुरसमुदाय एवं शिवगण आनन्द-विभोर हो गये। सबका दुःख दूर हो गया। सबने यह सुखद संवाद हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीको सुनाया। जननी दौड़ी आयीं और अपने योग्यतम शिशुको जीवित देखा तो जैसे सब कुछ भूल गयीं। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

सर्वमांगल्यप्रदायिनी शिवाके अश्रुतपूर्व एवं अभूतपूर्व वीर मातृभक्त पुत्रके जीवित हो जानेपर वहाँ अद्भुत आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। समस्त देवताओं और गणाध्यक्षोंने गजाननका अभिषेक किया।

आनन्दोत्सव और गजमुखको वर-प्रदान

जननीने तो हर्षविह्वल होकर अपने प्राणप्रिय पुत्रको दोनों हाथोंसे उठाकर अपनी गोदमें लेकर छातीसे सटा लिया। पुत्रके पुनर्जीवित हो जानेसे उनका प्रज्वलित हृदय शीतल हो रहा था। हर्षातिरेकसे जगदीश्वरीके नेत्र मुँद-से गये थे। कुछ देर बाद योगमार्गप्रदर्शिनी माता पार्वतीने प्रसन्न होकर अपने प्राणाधिक पुत्र गजमुखको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये।

सिद्धियोंने उनकी विधिपूर्वक पूजा की तथा क्लेशनाशिनी करुणामूर्ति जगदम्बाने अपने सर्वदुःखहारी कर-कमलोंसे उनके अंगोंका स्पर्श किया। अत्यधिक स्नेहके कारण जननी अपने पुत्र गजाननका मुख बारंबार चूमने लगीं।

'बेटा! इस समय तुम्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा।' फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवज्ञानस्वरूपिणी शिवप्रियाने अपने अद्वितीय पुत्रको वर प्रदान करते हुए कहा—'किंतु अब तू कृतकृत्य हो गया है। तू धन्य है। अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा।'

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।
सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८।८)

संसारतारिणी दयामयी जननीने अपने आत्मज गजवक्त्रको अमोघ वर प्रदान करते हुए आगे कहा—

आनने तव सिन्दूरं दृश्यते साम्प्रतं यदि।
तस्मात्त्वं पूजनीयोऽसि सिन्दूरेण सदा नरैः॥
पुष्पैर्वा चन्दनैर्वापि गन्धेनैव शुभेन च।
नैवेद्येन सुरम्येण नीराजेन विधानतः॥
ताम्बूलैरथ दानैश्च तथा प्रक्रमणैरपि।
नमस्कारविधानेन पूजां यस्ते विधास्यति॥
तस्य वै सकला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः।
विघ्नान्यनेकरूपाणि क्षयं यास्यन्त्यसंशयम्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८।९—१२)

'इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा है, इसलिये मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार करके विधिपूर्वक तेरी पूजा करेगा, उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी और उसके सभी प्रकारके विघ्न नष्ट हो जायँगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।'

इसके अनन्तर भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी सर्वेश्वरीने अनेक प्रकारकी वस्तुएँ देकर फिर उनका सत्कार किया। तब सर्वथा निश्चिन्त होकर इन्द्रादि देवगण पार्वतीके प्रिय पुत्र गजमुखको लेकर आशुतोष शिवके पास पहुँचे और उन्हें परमपिता शिवकी गोदमें बैठा दिया। तब सर्वपावन भगवान् वृषभध्वजने भी उनके मस्तकपर अपना वरद कर-कमल रखते हुए कहा—'**पुत्रोऽयमिति मे परः**—यह मेरा दूसरा पुत्र है।'

अरुणवर्ण गणेशने भी उठकर अपने पिता नीलकण्ठके अभयद पद-पंकजमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने अपनी मोक्षप्रदायिनी माता पार्वतीसहित ब्रह्मा, विष्णु तथा नारदादि समस्त ऋषियोंके चरणोंमें प्रणाम कर कहा—

'**क्षन्तव्यश्चापराधो मे मानश्चैवेदृशो नृणाम्।**'

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८।१९)

'यों अभिमान करना मनुष्योंका स्वभाव ही है, अतः आपलोग मेरा अपराध क्षमा करें।' तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव—त्रिदेवोंने प्रसन्न होकर शिवा-पुत्र गणेशको एक साथ वर प्रदान किया—

त्रयो वयं सुरवरा यथा पूज्या जगत्त्रये।
तथायं गणनाथश्च सकलैः प्रतिपूज्यताम्॥
एतत्पूजां पुरा कृत्वा पश्चात्पूज्या वयं नरैः।
वयं च पूजिताः सर्वे नायं च पूजितो यदा॥
अस्मिन्नपूजिते देवाः परपूजा कृता यदि।
तदा तत्फलहानिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८।२१, २३—२४)

'अमरवरो! जैसे त्रैलोक्यमें हम तीनों देवोंकी पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये। ······मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पूजा कर लें; तत्पश्चात् हमलोगोंका पूजन करें। ऐसा करनेसे हमलोगोंकी पूजा सम्पन्न हो जायगी। देवगणो! यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवोंका पूजन किया गया तो उस पूजनका फल नष्ट हो जायगा—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

इतना ही नहीं, अमित महिमाशालिनी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी सुरोंने वहीं उनके पुत्र शूर्पकर्णको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया। उसी समय लोकपावन वृषवाहनने अत्यन्त प्रसन्न होकर सर्वामराध्यक्ष गणेशको सतत सुख-प्रदायक अनेकों वर प्रदान किये—

हे गिरीन्द्रसुतापुत्र संतुष्टोऽहं न संशयः।
मयि तुष्टे जगत्तुष्टं विरुद्धः कोऽपि नो भवेत्॥
बालरूपोऽपि यस्मात्त्वं महाविक्रमकारकः।
शक्तिपुत्रः सुतेजस्वी तस्माद्भव सदा सुखी॥
त्वन्नाम विघ्नहन्तृत्वे श्रेष्ठं चैव भवत्विति।
मम सर्वगणाध्यक्षः सम्पूज्यस्त्वं भवाधुना॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८।२९—३१)

'गिरिजानन्दन! निस्संदेह मैं तुमसे अत्यधिक

प्रसन्न हूँ। मेरे प्रसन्न हो जानेपर अब तू सारे जगत्को ही प्रसन्न हुआ समझ। अब कोई भी तेरा विरोध नहीं कर सकता। तू शक्तिका पुत्र है, अतः अत्यन्त तेजस्वी है। बालक होनेपर भी तूने महान् पराक्रम प्रकट किया है; इसलिये तू सदा सुखी रहेगा। विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है; अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।'

'गणनाथ!' अत्यधिक हर्षोत्फुल्ल होनेके कारण भवाब्धिपोत धूर्जटिने आगे कहा—'तू भाद्रपद-मासके कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी तिथिको शुभ चन्द्रोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। गिरिजाके सुन्दर चित्तसे रात्रिके प्रथम प्रहरमें तेरा रूप प्रकट हुआ है। इसलिये उसी तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये*।'

फिर सर्वसिद्धिप्रद उत्तम चतुर्थी-व्रतकी विधि बताते हुए करुणामय सर्वभूतपति कर्पूरगौरने कहा—

सर्वैर्वर्णैः प्रकर्तव्या स्त्रीभिश्चैव विशेषतः।
उदयाभिमुखश्चैव राजभिश्च विशेषतः॥
यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम्।
अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ५९-६०)

'सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तुम्हारी सेवा करनी चाहिये।'

'तथास्तु!' स्वर्गापवर्गदाता उमानाथके प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान करनेपर सम्पूर्ण देवताओं, ऋषियों और गणोंने उसका अनुमोदन करते हुए अनेक विधि विधानोंसे गणाध्यक्षकी पूजा की। शिवगणोंने विशेषरूपसे वक्रतुण्डकी अर्चना एवं वन्दना की। अपने प्राणप्रिय पुत्र गजमुखकी श्रेष्ठ प्रतिष्ठा देखकर योगेश्वरेश्वरी भवानी अत्यन्त मुदित हुईं।

देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं। अप्सराएँ सोल्लास नृत्य करने लगीं। गन्धर्वगण गीत गाने लगे और अन्तरिक्षसे स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि होने लगी। सर्वत्र विविध प्रकारके सुखद मंगल होने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि शिवज्ञानस्वरूपिणी गिरिजाके विद्या-बुद्धि-वारिधि, परम सुन्दर, मंगल-मोद-निधान शिशु विघ्नेश्वरके उत्पन्न होनेपर स्वयं आनन्द और मंगल असंख्य रूपोंमें मूर्त होकर चतुर्दिक् हर्षोल्लासपूर्ण नृत्य-गान आदिके द्वारा प्राकट्योत्सव मनाते हुए थक नहीं रहे हैं। वे विश्राम नहीं कर रहे हैं। विश्राम करें भी कैसे? तापत्रयनिवारिणी जगज्जननीके यहाँ अद्भुत लीलावपुधारी परम तत्त्व पुत्रके रूपमें प्रकट जो हुआ था।

सबका दुःख निवारण हुआ। सर्वत्र सुख-शान्तिकी स्थापना हुई। त्रैलोक्यपावन शिवा-शिव भी आनन्दित हुए। देवगण सर्वात्मा चन्द्रशेखरके साथ सर्वपूज्य शूर्पकर्ण गणेश और अतुल महिमामयी शिवाकी बारंबार स्तुति-प्रार्थना करके अपने-अपने स्थानको चले गये। ऋषिगण भी शिवा-शिव और गणेशका स्तवन और उनके चरणोंमें प्रणाम कर प्रस्थित हुए।

सर्वदेवमय कर्पूरगौर और योगमार्गप्रदर्शिनी अम्बिकाको परस्पर पूर्ववत् सुखद कार्य करते देखकर लोकपितामह ब्रह्मा और क्षीराब्धिशायी विष्णु शिवा-शिवके समीप पहुँचे और उनका आदेश प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्नतासे अपने-अपने धाम पधारे।†

---

* चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर। असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः। आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ३५-३६)

† इदं सुमङ्गलाख्यानं यः शृणोति सुसंयतः। सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः॥

* * *

सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ७५, ७९)

'जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस परम मांगलिक आख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण मंगलोंका भागी होकर मंगल-भवन हो जाता है। ·····वह श्रीगणेशजीकी कृपासे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है।'

बाल-लीला

उमा-महेश्वरके अलौकिक पुत्रद्वय स्कन्द और गणेश अद्भुत बाल-लीला करते थे। उन्हें देखकर माता-पिता अत्यन्त सुखी होते और उनका अतिशय स्नेहसे पालन करते थे। गणेशकी परम मनोहारिणी बाल-लीलाओंका ग्रन्थोंमें बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। एक स्थानपर उल्लेख है—

क्रोडं तातस्य गच्छन् विशदबिसधिया शावकं शीतभानो-
राकर्षन् भालवैश्वानरनिशितशिखारोचिषा तप्यमानः।
गङ्गाम्भः पातुमिच्छन् भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो
मात्रा सम्बोध्य नीतो दुरितमपनयेद् बालवेषो गणेशः॥

'बालक गणेशजी अपने पिता शंकरजीके मस्तकपर सुशोभित बालचन्द्रकलाको कमलनाल समझकर उसे खींच लानेके लिये उनकी गोदमें चढ़कर ऊपर लपके; लेकिन तृतीय नेत्रसे निकली लपटोंकी आँच लगी, तब जटाजूटमें बहनेवाली गंगाका जल पीनेको बढ़े तो सर्प फुफकार उठा। इस फुफकारसे घबराये हुए गणेशको माता पार्वती बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गयीं। ऐसे बालगणेश हमारे सब पाप-तापका निवारण करें।'

स्कन्द और गणेशमें भी बड़ी प्रीति थी। वे सदा मिल-जुलकर साथ-साथ बाल-क्रीड़ा किया करते थे और एक-दूसरेके बिना रह नहीं सकते थे। वे दोनों शिशु अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक माता-पिताकी सेवा भी करते थे। इस कारण उन बालकोंपर माता-पिताका स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था।

विवाहकी स्पर्धा

धीरे-धीरे दोनों बालक विवाहयोग्य हुए। माता-पिता उनकी वय देखकर विवाह-सम्बन्धी परामर्श भी करने लगे। स्कन्द और गणेश—दोनों शिव और शिवाको समानरूपसे प्राणप्रिय थे। वे सोच रहे थे, इन बालकोंका मंगल-परिणय किस प्रकार करें?

'पहले मेरा विवाह होगा।' माता-पिताके विचार समझकर एकदन्तने उन लोगोंसे निवेदन किया।

'नहीं, पहले मैं विवाह करूँगा।' स्कन्दने शिवा-शिवसे कहा।

बालकोंकी इन बातोंको सुनकर जगदाधार महादेव और संसारस्वामिनी गिरिजा चकित हुईं। फिर एक दिन शिव और शिवाने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर कहा—

'बालको! हमें तुम दोनों प्राणप्रिय हो। हमने तुम्हारे विवाहके लिये एक शर्त रखी है। तुम दोनोंमें जो कोई सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा कर पहले लौट आयेगा, उसीका विवाह पहले होगा।'

माता-पिताके वचन सुनकर मयूरवाहन कार्तिकेय सम्पूर्ण धरित्रीकी यथाशीघ्र परिक्रमा करनेके लिये तत्क्षण मन्दरगिरिसे द्रुतगतिसे चल पड़े।

'मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?' परम बुद्धिमान्, मूषक-वाहन, लम्बोदर वहीं खड़े-खड़े सोचने लगे—'मैं तो एक योजन भी नहीं चल सकता, फिर इस विशालतम पृथ्वीकी परिक्रमा कर पहले कैसे लौट पाऊँगा?'

फिर सचिन्त मनसे विचार करनेके अनन्तर विशालतुण्डने अपना कर्तव्य निश्चित किया। सर्पयज्ञोपवीतधारी गणेशजीने स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किये।

'परमपूज्य पिता एवं माताजी! मैंने आपलोगोंके लिये दो सुन्दर और पवित्र आसन बिछा दिये हैं।' सर्वविघ्नेशने चन्द्रार्धभूषण शिव एवं करुणामयी माता पार्वतीसे मधुर वाणीमें प्रार्थना की—'आपलोग कृपापूर्वक उसपर बैठकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें।'

आशुतोष एवं सद्यःफलदायिनी जननी उक्त आसनपर विराजमान हुईं। मूषकवाहन गणेशने उन लोगोंकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की और उनके मंगलालय चरणकमलोंमें बार-बार दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर वे अपने सर्वाधार एवं सर्वसमर्थ माता-पिताकी भक्ति-विभोरभावसे परिक्रमा करने लगे। खण्डरद गणेश बार-बार शिव और शिवाके चरण-युगलमें प्रणाम करते और उनकी परिक्रमा करते जाते। इस प्रकार उन्होंने सर्वेश्वर महादेव एवं सर्वज्ञा माता पार्वतीकी सात प्रदक्षिणाएँ पूरी कीं और हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया। फिर कहा—'अब आपलोग कृपापूर्वक मेरा मंगल-परिणय शीघ्र कर दीजिये।'

'गजानन!' महाबुद्धिमान् गणेशकी प्रार्थना सुनकर धर्माध्यक्ष वामदेवने उत्तर दिया—'तेरा भाई स्कन्द सरिताओं, समुद्रों, पर्वतों एवं काननोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा करने गया है। तू भी जा और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके कार्तिकेयसे पहले लौट आ, तब तेरा विवाह पहले हो जायगा।'

'पवित्रतम धर्ममूर्ति माताजी और पिताजी!' नियम-परायण लम्बोदरने कुपित होकर कहा—'मैंने सम्पूर्ण भूमण्डलकी एक नहीं, सात प्रदक्षिणाएँ कर ली हैं।'

'अरे!' लीलाधारी शिवा-शिवने लौकिक रीतिसे आश्चर्य व्यक्त करते हुए अपने परम बुद्धिमान् पुत्र गणेशसे कहा—'तूने सप्तद्वीपवती विशाल वसुंधराकी परिक्रमा कब पूरी कर ली?'

'धर्माध्यक्ष पिता एवं परम पावनी माता! मैंने आपलोगोंकी सात परिक्रमा पूरी करके निश्चय ही गिरि-काननोंसहित सप्तद्वीपमयी सम्पूर्ण वसुंधराकी परिक्रमा कर ली है।' परम बुद्धिमान् एवं ज्ञानमूर्ति महोदरने निवेदन किया—'धर्मके संग्रहभूत वेदों और शास्त्रोंके ये वचन सत्य हैं या असत्य?—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १९। ३९—४२)

'जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिताको घरपर छोड़कर तीर्थयात्राके लिये जाता है; वह माता-पिताकी हत्यासे मिलनेवाले पापका भागी होता है; क्योंकि पुत्रके लिये माता-पिताके चरण-सरोज ही महान् तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमें ही सुलभ है। पुत्रके लिये (माता-पिता) और स्त्रीके लिये (पति) सुन्दर तीर्थ घरमें ही वर्तमान हैं।'

बुद्धिराशि विघ्ननायकने आगे कहा—'वेद-शास्त्रोंके द्वारा निरन्तर उद्घोषित वचन असत्य सिद्ध होनेपर आपलोगोंका वेदवर्णित स्वरूप भी मिथ्या समझा जायगा; अतएव आप या तो वेद-वचन असत्य कीजिये, अन्यथा शीघ्र ही मेरा विवाह कर दीजिये। आपलोग धर्म-विग्रह हैं; अतः सर्वोत्तम निर्णय कीजिये।'

यथार्थभाषी एवं प्रतिभाशाली विलक्षण पार्वतीनन्दनके वचन सुनकर शिवा-शिव अत्यन्त चकित हुए। फिर उन्होंने भालचन्द्र गणेशकी प्रशंसा करते हुए कहा—

पुत्र ते विमला बुद्धिः समुत्पन्ना महात्मनः।
त्वयोक्तं यद्वचश्चैव तत्तथैव न चान्यथा॥
समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते।
तस्य दुःखं विनश्येत सूर्ये दृष्टे यथा तमः॥
वेदशास्त्रपुराणेषु बालकस्य यथोदितम्।
त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम्॥
सम्यक्कृतं त्वया यच्च तत्केनापि भवेदिह।
आवाभ्यां मानितं तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १९। ५०-५१, ५३-५४)

'बेटा! तू महान् आत्मबलसे सम्पन्न है, इसीसे तुझमें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है। तुमने जो बात कही है, वह बिलकुल सत्य है, अन्यथा नहीं। दुःखका अवसर आनेपर जिसकी बुद्धि विशिष्ट हो जाती है, उसका दुःख उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय होनेसे अन्धकार। ""वेद-शास्त्र और पुराणोंमें बालकके लिये धर्मपालनकी जैसी बात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली। तूने जो बात की है, वह दूसरा कौन कर सकता है? हमने तेरी बात मान ली; अब इसके विपरीत नहीं करेंगे।'

इस प्रकारके वचन कहकर शिवा-शिवने बुद्धिसिन्धु गजवक्त्रको सान्त्वना दी और फिर वे गणेश-विवाहके लिये विचार करने लगे।

गजवक्त्रका परिणय

यह संवाद प्रजापति विश्वरूपको विदित हुआ तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उनके दिव्य रूप-यौवन-सम्पन्ना, परम लावण्यवती, सुशीला और सद्गुणवती 'सिद्धि' और 'बुद्धि' नामक दो कन्याएँ थीं। वे सर्वलोकपति शिवके भवन पहुँचे और उन्होंने शिवा और शिवसे अपनी पुत्रियोंका सर्वपूज्य गणेशके साथ विवाह करनेका अनुरोध किया। भगवान् शंकर और जगद्धात्री माता पार्वतीने उनका प्रस्ताव हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया।

फिर शुभ मुहूर्तमें विश्वकर्माने कर्पूरगौर शिव और परम सती पार्वतीकी इच्छाके अनुसार सविधि विवाह सम्पन्न कराया। उस समय समस्त देवसमुदाय

एकत्र हुआ। देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। सर्वत्र हर्ष व्याप्त था। देववाद्य बज रहे थे। नृत्य हो रहा था। मंगल-गीत गाये जा रहे थे। भगवान् शंकर और माता पार्वती—दोनों अपने परम प्रिय बुद्धिराशि शुभगुण-सदन पुत्र गणेशका विवाह करके परम प्रसन्न हुए।[१]

अपने मंगल-परिणयसे सर्वानन्दप्रदाता गजमुख भी बड़े आनन्दित हुए। अत्यन्त सुशीला एवं मधुरभाषिणी पत्नियोंके साथ उनका जीवन बड़ा सुखद था। समयपर गणेशपत्नी सिद्धिकी कोखसे 'क्षेम' और बुद्धिके उदरसे 'लाभ' नामक अतिशय सुन्दर दिव्य बालकोंने जन्म लिया। इस प्रकार सर्वकारणकारण गणाध्यक्ष सानन्द निवास करने लगे।

खिन्न कार्तिकेय

उधर सम्पूर्ण धरित्रीकी परिक्रमा करके गजानन-भ्राता कार्तिकेय लौटे तो देवर्षि नारदके द्वारा गजवदनके विवाहका समाचार पाकर अत्यन्त खिन्न हुए। उन्होंने दुःखी मनसे अपने परम पूज्य पिताके चरणोंमें प्रणाम कर शिवसदन त्याग देनेका निश्चय कर लिया। शिवा और शिवने उन्हें बहुत समझाया, किंतु वे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए; क्रौंच-पर्वतपर चले गये।

तद्दिनं हि समारभ्य कार्तिकेयस्य तस्य वै।
शिवपुत्रस्य देवर्षे कुमारत्वं प्रतिष्ठितम्॥
तन्नाम शुभदं लोके प्रसिद्धं भुवनत्रये।
सर्वपापहरं पुण्यं ब्रह्मचर्यप्रदं परम्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० २०। २७-२८)

'उसी दिनसे शिवपुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारत्व (कुँआरपना) प्रतिष्ठित हुआ।[२] उनका 'कुमार'-नाम त्रैलोक्यमें विख्यात हो गया। वह नाम शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है।'

प्रत्येक कार्तिक-पूर्णिमाके पावन पर्वपर देवता, ऋषि, तीर्थ और मुनीश्वर स्वामिकार्तिकेयके दर्शनार्थ क्रौंच-पर्वतपर जाया करते हैं। कार्तिक-पूर्णिमाके दिन कृत्तिकानक्षत्रका योग होनेपर कुमार कार्तिकेयका दर्शन करनेसे मनुष्यके सारे पातक धुल जाते हैं और उसकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है।

अपने प्राणप्रिय, सुन्दरतम, मयूरवाहन पुत्र कार्तिकेयके बिना पुत्रवत्सला माता पार्वती अत्यन्त दुःखी रहने लगीं। एक दिन अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने अपने प्राणसर्वस्व शिवसे दीन वाणीमें कहा—'स्वामिन्! जहाँ कार्तिकेय गया है, वहीं मुझे भी ले चलिये।'

भगवान् शिव अपनी प्राणाधिका पत्नी पार्वतीको संतुष्ट करनेके लिये अपने अंशसे पार्वतीके साथ क्रौंच-पर्वतपर पहुँचे और वहाँ सर्व-सुखद मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिंगके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। सत्पुरुषोंकी गति और भक्तवांछाकल्पतरु परमप्रभु शिव आज भी अपनी प्राणप्रियाके साथ वहाँ विद्यमान हैं।

उधर कुमार कार्तिकेयने अपने माता-पिताके आनेका समाचार सुना तो वहाँसे चल देनेका विचार किया; किंतु वे तीन योजन दूर ही गये थे कि देवताओं और ऋषियोंने उनसे रुक जानेकी प्रार्थना की। इस कारण दयामय कुमार आगे न जाकर वहीं रुक गये।

अपने प्राणप्रिय पुत्र कार्तिकेयके स्नेहसे विह्वल शिवा-शिव प्रत्येक पर्वपर उन्हें देखने जाते हैं। अमावस्याके दिन करुणामूर्ति कर्पूरगौर और पूर्णिमाके दिन पवित्रतम प्रेममूर्ति माता पार्वती वहाँ पधारती हैं।[३]

---

१. ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार भगवान् शंकरने सुर-समुदायकी संनिधिमें 'पुष्टि' नामक परम गुणवती अनिन्द्यसुन्दरी कन्याके साथ गणेशका विवाह किया था।

२. ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है कि प्रजापतिने अपनी रत्नाभरणभूषिता परम सुन्दरी एवं शीलवती कन्या 'देवसेना' (जिसे विद्वान् शिशुओंकी रक्षा करनेवाली 'महाषष्ठी' कहते हैं)-को वैवाहिक विधिके अनुसार वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक कार्तिकेयको समर्पित किया था।

३. एतच्छ्रुत्वा नरो धीमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते। शोभनाँल्लभते कामानीप्सितान् सकलान् सदा॥
यः पठेत् पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा। सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० २०। ३९-४०)

'इसे सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसकी सभी शुभ कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ता अथवा पढ़ाता है एवं सुनता अथवा सुनाता है, निस्संदेह उसके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।'

सर्वपूज्य बुद्धिसिन्धु गणेशके परम ज्ञान एवं बुद्धिकी परिचायिका इसी प्रकारकी कथा पद्मपुराणमें इस प्रकार आती है—

महिमामय मोदक-प्राप्ति

एक बारकी बात है। अत्यन्त सुन्दर, अद्भुत, अलौकिक एवं तेजस्वी गजानन और षडाननके दर्शन करके देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। माता पार्वतीके चरणोंमें उनकी अगाध श्रद्धा हुई। उन्होंने सुधासिंचित एक दिव्य मोदक माता पार्वतीके हाथमें दिया। उक्त दिव्य मोदकको माताके हाथमें देखकर दोनों बालक उसे माँगने लगे।

'पहले इस मोदक (लड्डू)-का गुण सुनो।' माताने दोनों पुत्रोंसे कहा—'इस मोदककी गन्धसे ही अमरत्वकी प्राप्ति होती है। निस्संदेह इसे सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान-विशारद और सर्वज्ञ हो जाता है।'

माता पार्वतीने आगे कहा—'मेरे साथ तुम्हारे पिताकी भी सहमति है कि तुम दोनोंमेंसे जो धर्माचरणके द्वारा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर देगा, वही इस मोदकका अधिकारी होगा।'

माताकी आज्ञा प्राप्त होते ही चतुर कार्तिकेय अपने तीव्रगामी वाहन मयूरपर आरूढ़ हो त्रैलोक्यके तीर्थोंकी यात्राके लिये चल पड़े और मुहूर्तभरमें ही उन्होंने समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। इधर मूषकवाहन लम्बोदरने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गये।

'मोदक मुझे दीजिये।' कुछ ही देर बाद स्कन्दने पिताके सम्मुख उपस्थित होकर निवेदन किया।

'समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन—ये सभी साधन माता-पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकते।' माता पार्वतीने दोनों पुत्रोंकी ओर देखकर कहा—'अतएव यह गजानन सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसे भी बढ़कर है। इस कारण यह देवनिर्मित अमृतमय मोदक मैं गणेशको ही देती हूँ। माता-पिताकी भक्तिके कारण यह यज्ञादिमें सर्वत्र अग्रपूज्य होगा।'

'इस गणेशकी अग्रपूजासे ही समस्त देवगण प्रसन्न हों।' पिता कर्पूरगौर शिवने भी कह दिया।

माता पार्वतीने सर्वगुणदायक पवित्र मोदक गणेशजीको ही दिया और अत्यन्त प्रसन्नतासे उन्होंने समस्त देवताओंके सम्मुख ही उन्हें गणोंके अध्यक्ष पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

कुशाग्रबुद्धि

दूसरे स्थलपर इसी प्रकारकी एक कथा और मिलती है, जिससे गुणगण-निलय गणेशकी पितृभक्ति एवं असीम कुशाग्रबुद्धिताका परिचय प्राप्त होता है। वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

एक बारकी बात है। चन्द्रार्धभूषण भगवान् शंकरने एक यज्ञ करनेका निश्चय किया। उक्त पावन यज्ञमें उन्हें समस्त देवताओंको निमन्त्रण देना आवश्यक था। उन्होंने यह भार अपने पुत्र कार्तिकेयको दिया; किंतु निश्चित अवधिके भीतर प्रत्येक देवताके समीप जाकर उन्हें आमन्त्रण दे देना सम्भव नहीं था। तब पार्वतीश्वरने यह भार महाकाय गजाननको दिया। वे अपने वाहन क्षुद्र मूषकपर सर्वत्र कैसे पहुँचते? पर उन्होंने उपाय ढूँढ़ निकाला, वे विद्या-बुद्धि-वारिधि जो ठहरे।

'मेरे परम पिता महादेवके पावनतम अंगमें समस्त देवता निवास करते हैं।'—यह सोचकर उन्होंने सर्वदेवमय पशुपतिकी तीन बार प्रदक्षिणा की और वहीं प्रत्येक देवताको यज्ञमें पधारनेका निमन्त्रण दे दिया। फलतः समस्त देवताओंको सर्वलोकमहेश्वर शिवके यज्ञकी सूचना प्राप्त हो गयी और सभी देवता यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये ठीक समयपर पहुँच गये।

सर्वहितकारी

एक बारकी बात है। मनुकुलोत्पन्न राजर्षिश्रेष्ठ राजा रिपुंजयने अविमुक्त-क्षेत्रमें कठोर तप प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। उस वीर एवं क्षत्रियधर्मके मूर्तिमान् विग्रह रिपुंजयनरेशके तपश्चरणसे संतुष्ट हो प्रजापति ब्रह्माने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'बुद्धिमान् नरेश! तुम वनों, पर्वतों एवं समुद्रोंसहित सम्पूर्ण वसुंधराका पालन करो। तुम्हारे धर्मनिष्ठ राज्यसे प्रसन्न होकर

देवगण सदा तुम्हें स्वर्गीय रत्न और पुष्प प्रदान करते रहेंगे। मैं तुम्हें दिव्य सामर्थ्य प्रदान करूँगा।'

लोकस्रष्टाने अत्यन्त स्नेहपूर्वक तपस्वी रिपुंजयसे आगे कहा—'नागराज वासुकि अपनी अनुपम लावण्यवती नागकन्या अनंगमोहिनी तुम्हें अर्पित करेंगे। तुम उसे सहधर्मिणीके रूपमें स्वीकार कर लेना और उसके साथ धर्मपूर्वक धराका शासन करना। '**दिवो दास्यन्ति**'— इस व्युत्पत्तिके अनुसार तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा।''

'पितामह! इस विशाल धरणीपर अनेक नरेश हैं।' अत्यन्त विनयपूर्वक रिपुंजयनरेशने विधातासे निवेदन किया—'फिर प्रजा-पालनका आदेश मुझे ही क्यों दिया जा रहा है?'

'तुम धर्माचरणसम्पन्न आदर्श वीर पुरुष हो।' पितामहने उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया—'तुम्हारा राज्य धर्मपर आधृत होगा; इस कारण तुमपर संतुष्ट होकर देवराज इन्द्र सुवृष्टि करेंगे; सुवृष्टि होगी तो प्रजा धन-धान्यसे सम्पन्न रहेगी एवं धर्मप्राण प्रजासे देवता, पितर एवं सम्पूर्ण प्राणी सुखी रहेंगे। किसी अन्य धर्मविहीन नरेशके द्वारा अनावृष्टि आदिके कारण सर्वत्र दुःख-दारिद्र्यका साम्राज्य फैल जायगा।'

'महामान्य पितामह! त्रैलोक्यकी रक्षा करनेमें आप स्वयं समर्थ हैं।' रिपुंजयनरेशने विधाताकी स्तुति करते हुए कहा—'किंतु आप कृपापूर्वक मुझे यश प्रदान कर रहे हैं; अतएव आपका आदेश मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। पर यदि आप मेरा एक निवेदन स्वीकार कर लें तो सोत्साह आपके आज्ञा-पालनमें मुझे सुविधा रहेगी।'

'राजन्! तुम्हें जो कहना हो, अवश्य कहो।' पद्मोद्भवने तुरंत कहा—'मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति करना चाहता हूँ।'

'परमपूज्य पितामह! यदि मैं धरतीका शासन-सूत्र ग्रहण करूँ तो सुरसमुदाय स्वर्गमें ही निवास करें; पृथ्वीपर न आयें।' राजा रिपुंजयने अपने मनकी बात स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी—'इस प्रकार मैं धरणीका निष्कण्टक राज्य कर सकूँगा।'

'तथास्तु!' सृष्टिकर्ताने तत्क्षण वचन दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

'मनुष्योंके स्वस्थ और सुखी रहनेके लिये आवश्यक है कि देवगण इस पृथ्वीको छोड़कर अमरावती पधारें और वहीं रहें। वे कृपापूर्वक इस धरतीपर न आयें।' राजा दिवोदासके आदेशसे दुन्दुभि बजा बजाकर चतुर्दिक् घोषणा कर दी गयी। 'नागगण भी यहाँ पधारनेका कष्ट न करें। मेरे शासनकालमें सुरसमुदाय स्वर्गमें और मनुष्य धरातलपर सानन्द निर्वाह करें।'

भगवान् शंकर मन्दरगिरिके तपसे संतुष्ट थे। इस कारण सृष्टिकर्ताके वचनोंकी रक्षाके लिये वे गिरिराज मन्दरपर चले गये। सम्पूर्ण देवता भी करुणामूर्ति उमापतिके साथ वहीं गये। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने भूमण्डलके समस्त वैष्णव-तीर्थोंका त्याग कर दिया और वे भी अपने प्राणप्रिय महादेवजीके पास मन्दरगिरिपर जा पहुँचे।

पृथ्वीसे देवताओंके चले जानेपर परम पराक्रमी राजा दिवोदासने यहाँ निर्द्वन्द्व राज्य किया। उन्होंने काशीपुरीको अपनी राजधानी बनाया और धर्मपूर्वक शासन करने लगे। उनके शासनकालमें प्रजा धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे पूर्ण हो गयी। प्रत्येक दिशामें देश उन्नतिशील था। उनके राज्यमें अपराधका कहीं नाम भी नहीं था। असुर भी मनुष्यके वेषमें राजा दिवोदासकी सेवामें उपस्थित होते एवं उनकी आज्ञाके पालनमें सतत तत्पर रहते थे। धर्मपरायण नरेश दिवोदासके राज्यमें सभी नगर एवं ग्राम ईति-*भीतिसे रहित थे। सर्वत्र धर्मकी प्रधानता थी, अधर्मका कहीं नाम भी नहीं था। इस प्रकार राजा दिवोदासको शासन करते अस्सी सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

देवताओंका छिद्रान्वेषण

राजा दिवोदासकी इस व्यवस्थासे कि देवता लोग भूमि छोड़ अपने-अपने स्थानमें जाकर रहें; काशीका बिछोह हो जानेके कारण भगवान् शंकर तथा अन्य देवगण दुःखी थे और राजाका छिद्र इसलिये ढूँढ़ रहे थे कि इनका शासन समाप्त कर दिया जाय। उक्त धर्मप्राण नरेशका छिद्र ढूँढ़नेके लिये देवताओंने बड़ा प्रयत्न किया; किंतु वे सफल न हो सके। इन्द्रादि देवताओंने तपस्वी नरेश दिवोदासका शासन विफल

* ईतियाँ ये हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहों, टिड्डियों और पक्षियोंद्वारा फसलका खाया जाना, अन्य नरपालका आक्रमण, संक्रामक रोग, कलह और प्रवास।

करनेके लिये अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं; किंतु नरेशके तपोबलके सम्मुख वे सफलमनोरथ न हो सके। इसके अनन्तर भगवान् शंकरने मन्दरगिरिसे चौंसठ योगिनियोंको राजाके छिद्रान्वेषणके लिये भेजा। वे योगिनियाँ काशीमें बारह मासतक रहकर निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी पुण्यात्मा राजामें कोई छिद्र (दोष) नहीं पा सकीं। राजापर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे वहीं रह गयीं।

'सप्ताश्ववाहन! तुम यथाशीघ्र मंगलमयी काशीपुरीमें जाओ, जहाँ धर्मात्मा राजा दिवोदास विद्यमान है।' भगवान् वृषभध्वजने श्रीसूर्यदेवको बुलाकर कहा—'राजाके धर्म-विरोधसे जिस प्रकार वह क्षेत्र उजाड़ हो जाय, वैसा करो। किंतु उस राजाका अनादर न करना; क्योंकि वह परम धर्मात्मा एवं तपस्वी है।'

आशुतोष शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके सूर्यदेव परमपावनी काशीपुरीमें गये। वहाँ बाहर-भीतर विचरते हुए उन्होंने राजामें तनिक भी धर्मका व्यतिक्रम नहीं देखा। भगवान् सूर्यने कभी, कहीं, किसी मनुष्यमें भी कोई छिद्र नहीं देखा। इस प्रकार तिमिरारि लोकचक्षु सूर्यदेव बारह रूपोंमें व्यक्त होकर महिमामयी काशीपुरीमें स्थित हो गये। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गंगादित्य और यमादित्य।

'कमलोद्भव! मैंने काशीका समाचार जाननेके लिये पहले योगिनियोंको और फिर सूर्यदेवको भेजा; पर वे अभीतक नहीं लौटे।' काशीको अत्यन्त प्रिय समझनेवाले भगवान् कर्पूरगौरने ब्रह्माजीसे कहा—'अतः अब आप जाइये। आपका मंगल हो।'

भगवान् पार्वतीवल्लभके आदेशानुसार लोकपितामह वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें काशी पहुँचे तो उस मनोहर पुरीका दर्शन कर उनका हृदय हर्षोल्लाससे भर गया। वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी ब्रह्मा राजा दिवोदासके समीप पहुँचे। राजाने उनके चरणोंमें प्रणाम कर प्रत्येक रीतिसे उनकी पूजा की और उनके शुभागमनका कारण पूछा।

'राजन्! इस समय मैं यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ।' ब्रह्माने राजा दिवोदासके धर्मपूर्ण शासन एवं काशीकी महिमाका गान करते हुए कहा—'और इस कार्यमें तुम्हें सहायक बनाना चाहता हूँ।'

'यज्ञेच्छु श्रेष्ठ ब्राह्मण! मैं आपका दास हूँ।' धर्ममूर्ति दिवोदासने विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप मेरे कोषागारसे समस्त यज्ञ-सामग्रियोंको ले जायँ और एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करें।'

धर्मपरायण राजा दिवोदासके श्रद्धा-भक्तिपूर्ण विनीत उत्तरसे लोकस्रष्टा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने दिवोदासकी सहायतासे यज्ञ-सामग्रियोंका संग्रह करके दस अश्वमेध नामक महायज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया और तभीसे वाराणसीमें मंगलदायक 'रुद्रसरोवर' नामक तीर्थ दशाश्वमेधके नामसे प्रख्यात हुआ। तदनन्तर पुण्यसलिला गंगाके पधारनेपर वह तीर्थ और अधिक पुण्यजनक हो गया। ब्रह्माजी वहाँ दशाश्वमेधेश्वरलिंगकी स्थापना कर स्थित हो गये। चतुर्मुख ब्रह्मा धर्मानुरागी राजा दिवोदासमें कोई छिद्र नहीं पा सके; फिर वे भगवान् शंकरके समीप जाकर क्या कहते। उन्होंने उक्त क्षेत्रका प्रभाव समझकर वहीं ब्रह्मेश्वरलिंगकी स्थापना की और भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए परम-पावनी काशीपुरीमें ही रह गये।

मंगलमूर्ति ज्योतिषी बने

इसके अनन्तर आशुतोषकी आज्ञा प्राप्तकर मंगलमूर्ति गणेशजी मन्दरगिरिसे काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए। श्रीगणेशजीने काशीमें प्रविष्ट होते समय वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण कर लिया। वे वृद्ध ज्योतिषीके रूपमें अविमुक्त-क्षेत्रके निवासियोंके घरोंमें जा-जाकर उन्हें प्रसन्न करते। वृद्ध ज्योतिषीके वेषमें श्रीगणेशजीकी वाणी अत्यन्त मधुर थी। उनके प्रत्येक वचन सत्य सिद्ध होते थे। इस प्रकार कुछ ही समयमें उनकी सर्वत्र ख्याति फैल गयी। ख्यातिप्राप्त वृद्ध ज्योतिषी राजाके अन्तःपुरमें बुलाये गये। सर्वान्तर्यामी वयोवृद्ध ज्योतिषीने सर्वथा सत्य घटनाओंका उल्लेख किया। उसने रानियोंके प्रत्येक प्रश्नका प्रत्यक्ष द्रष्टाकी तरह उत्तर दिया। इस प्रकार वे सभी स्त्रियोंके विश्वास-भाजन ही नहीं, श्रद्धाके केन्द्र भी हो गये।

'राजन्! एक अद्भुत विद्वान् एवं वेदोंकी मूर्तिमान् निधि वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषी पधारे हैं।' एक दिन राजा दिवोदासकी पत्नी लीलावतीने अपने पतिसे निवेदन किया—'वे सद्‌गुणसम्पन्न, अत्यन्त बुद्धिमान् ब्राह्मण

सुवक्ता हैं। आप भी उनका दर्शन कीजिये।'

दूसरे दिन धर्मात्मा नरेश दिवोदासने उक्त परम गुणज्ञ वृद्ध ज्योतिषीको अत्यन्त आदरपूर्वक बुलवाया। राजाने वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी पार्वतीनन्दनका यथावत् सत्कार किया।

'मेरी दृष्टिमें आप तत्त्वज्ञानसम्पन्न श्रेष्ठ द्विज हैं।' एकान्तमें राजा दिवोदासने अत्यन्त विनयपूर्वक वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषीसे निवेदन किया—'इस समय मेरा मन जागतिक पदार्थों एवं सभी कर्मोंसे विरक्त हो रहा है। अतएव आप भलीभाँति विचारकर मेरे शुभ भविष्यका वर्णन कीजिये।'

'धर्ममूर्ति नरेश! आजके अठारहवें दिन उत्तर दिशासे एक तेजस्वी ब्राह्मण पधारेंगे।' वृद्ध ज्योतिषीने राजासे कहा—'यदि तुम श्रद्धापूर्वक उनसे प्रार्थना करोगे तो वे निश्चय ही तुम्हें उपदेश देंगे। तुम यदि उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करोगे तो निश्चय ही तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।'

राजा दिवोदासने अत्यन्त प्रसन्न होकर ज्योतिषीजीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की। ज्योतिषी महाराज धर्मात्मा नरेशकी अनुमति लेकर अपने आश्रमपर पहुँचे। इस प्रकार बुद्धिराशि, शुभगुणसदन गणेशजीने सम्पूर्ण काशीनगरीको अपने वशमें कर लिया। दिवोदासके राज्य-पद-ग्रहणके पूर्व काशीमें गणेशजीके जो-जो स्थान थे, उन-उन स्थानोंको गणेशजीने अनेक रूप धारण करके पुनः सुशोभित किया।

धर्मात्मा नरेश दिवोदाससे दूर रहकर भी गणेशजीने उनके चित्तको राज्यकी ओरसे विरक्त कर दिया। फिर अठारहवें दिन क्षीरोदधिशायी श्रीविष्णुने परम तेजस्वी ब्राह्मणके वेषमें पधारकर दिवोदासको सदुपदेश दिया। श्रीविष्णुके आदेशसे राजा दिवोदासने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दिवोदासेश्वरलिंगकी स्थापना कर उसकी सविधि पूजा की। राजा दिवोदासने शूलपाणि विश्वनाथके अनुग्रहसे सशरीर शिवधामकी परम शुभ यात्रा की।

शिवा-शिवका पुनः काशी-आगमन

इसके अनन्तर भगवान् शंकर अपनी धर्मपत्नी पार्वतीके साथ काशी पधारे। उस समय भगवान् शिवने गणेशजीकी बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने हर्षातिरेकसे कहा—

यदहं प्राप्तवानस्मि पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
मयाप्यतीव दुष्प्राप्यां स प्रसादोऽस्य वै शिशोः॥
यद्दुष्प्रसाध्यं हि पितुरपि त्रिजगतीतले।
तत्सूनुना सुसाध्यं स्यादत्र दृष्टान्तता मयि॥
पुत्रवानहमेवास्मि यच्च मे चिरचिन्तितम्।
स्वपौरुषेण कृतवानभिलाषं करस्थितम्॥

(स्कन्द० काशी० ५७। १२, १३, १५)

'यह वाराणसीपुरी मेरे लिये भी दुष्प्राप्य है। इसको जो मैंने प्राप्त किया है, वह इस बच्चेका प्रसाद है। त्रिलोकमें जो काम पिताके लिये भी दुःसाध्य होता है, उसे पुत्र सिद्ध कर देता है, इसका दृष्टान्त मुझपर ही घटित हो रहा है। मैं ही पुत्रवान् हूँ; क्योंकि जो मेरी चिरचिन्तित अभिलाषा थी, उसको इसने अपने पौरुषसे करस्थित बना दिया।'

(ङ)—महाभारतमें

महाभारत-लेखन

'इस महान् पुण्यमय ग्रन्थका अध्ययन शिष्योंको किस प्रकार कराऊँ?' पंचम वेद महाभारतकी रचना कर पराशरनन्दन ब्रह्मर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन विचार करने लगे—इस ग्रन्थरत्नका प्रचार कैसे हो?'

सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यासका विचार जानकर उनकी प्रसन्नता एवं लोककल्याणकी दृष्टिसे स्वयं चतुरानन उनके आश्रमपर उपस्थित हुए।

सहसा वेदगर्भ ब्रह्माके दर्शन कर महर्षि व्यास अत्यन्त चकित हो गये। उन्होंने अंजलि बाँध प्रीतिपूर्वक विधाताके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें बैठनेके लिये पवित्र आसन दिया। वे लोकस्रष्टाकी ओर हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गये। महर्षि व्यास मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।

स्रष्टाकी आज्ञासे निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी उनके सम्मुख दूसरे आसनपर बैठ गये। फिर अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होंने निवेदन किया—

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्॥
ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया॥

* * *

यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्।
परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते॥

(महा०, आदि० १। ६१-६२, ७०)

'भगवन्! मैंने यह सम्पूर्ण लोकोंसे अत्यन्त पूजित एक महाकाव्यकी रचना की है। ब्रह्मन्! मैंने इस महाकाव्यमें सम्पूर्ण वेदोंका गुह्यतम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रोंका सार-सार संकलित करके रख दिया है। केवल वेदोंका ही नहीं, उनके अंग एवं उपनिषदोंका भी इसमें विस्तारसे निरूपण किया है। ....और भी जितने लोकोपयोगी पदार्थ हो सकते हैं, उन सबका इसमें प्रतिपादन किया गया है; परंतु मुझे इस बातकी चिन्ता है कि पृथ्वीपर इस ग्रन्थको लिख सके, ऐसा कोई नहीं है।'

लोकपितामहने महर्षि व्यासविरचित महाकाव्यकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मुनिवर! अपने इस काव्यको लिखवानेके लिये तुम गणेशजीका स्मरण करो।'

'काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।'

(महा०, आदि० १। ७४)

लोकस्रष्टा ब्रह्म-सदनके लिये प्रस्थित हुए। तदनन्तर सत्यवतीनन्दन व्यासने सिद्धि-सदन एकदन्त गणेशजीका स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तवांछाकल्पतरु श्रीगणेशजी महाराज व्यासजीके सम्मुख उपस्थित हो गये। महर्षि व्यासने अत्यन्त आदर और प्रेमपूर्वक उनका अभिनन्दन किया। फिर पार्वतीनन्दन श्रीगणेशजीके बैठनेपर उन्होंने उनसे अत्यन्त आदरपूर्वक निवेदन किया—

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च॥

(महा०, आदि० १। ७७)

'गणनायक! आप मेरे द्वारा निर्मित इस महाभारत-ग्रन्थके लेखक बन जाइये; मैं इसे बोलकर लिखाता जाऊँगा। मैंने मन-ही-मन इसकी रचना कर ली है।'

महर्षि व्यासकी बात सुनकर बुद्धिराशि श्रीगणेशजीने उत्तर दिया—'व्यासजी! यदि लिखते समय क्षणभरके लिये भी मेरी लेखनी न रुके तो मैं इस ग्रन्थका लेखक बन सकता हूँ।'

..................................यदि मे लेखनी क्षणम्।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम्॥

(महा०, आदि० १। ७८)

'आप किसी भी प्रसंगको बिना समझे एक अक्षर भी मत लिखियेगा।' व्यासजीने कहा—

'ॐ'—कहकर बुद्धिराशि, शुभगुण-सदन अरुणवर्ण श्रीगणेशजीने इसे लिखना स्वीकार कर लिया और उनके अनुग्रहसे महाभारत-जैसा लोकपावन ग्रन्थ-रत्न जगत्को प्राप्त हुआ।

(च)—गणेशपुराणमें

ब्रह्माद्वारा गणेश-पूजा

गणेशपुराणके उपासना-खण्डमें आता है कि एक बार चतुर्मुख ब्रह्माके मनमें सृष्टिकर्तापनका अभिमान हो गया। इससे उनके सम्मुख इतनी आपदाएँ उपस्थित हुईं कि वे किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये। अन्ततः उन्होंने एकदन्तधारी गणेशकी आराधना की। विधाताके तपसे संतुष्ट होकर दौर्भाग्यनाशन महामना गणेश उनके सम्मुख उपस्थित हुए। चतुराननने सृष्टिके आदिप्रवर्तक, परम तेजस्वी, सिन्दूरारुण गजकर्णकी भक्तिपूर्ण स्तुति की। सुराग्रजने प्रसन्न होकर उन्हें इच्छित वर प्रदान किया। मूषकारोही गणेशके उस वरके प्रभावसे पद्मयोनिने पुनः सृष्टि-रचना प्रारम्भ की।

विष्णुकी गणेशोपासना

वेदगर्भ ब्रह्मा जब जगत्की सृष्टिमें तल्लीन थे, तब क्षीरोदधिशायी विष्णुके कानोंसे मधु और कैटभ नामक दो शूर-वीर असुर उत्पन्न हुए। उन प्रबल पराक्रमी असुरोंके उपद्रवोंसे ऋषि-मुनि एवं देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये। विधाताने व्याकुल होकर योगमायासे प्रार्थना की। योगमायाकी प्रेरणासे लक्ष्मीपति विष्णुकी निद्रा भंग हुई।

मधु-कैटभके उपद्रवको शान्त करनेके लिये अद्भुत किरीट-कुण्डल एवं शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, नवघनश्यामवपु विष्णुने शंखध्वनि की। पांचजन्यकी भयानक ध्वनिसे त्रैलोक्य काँप उठा। वीरवर मधु और

कैटभ एक साथ ही मायापति विष्णुपर टूट पड़े। पाँच सहस्र वर्षोंतक सुरत्राता विष्णु उन दोनों असुरोंसे युद्ध करते रहे, पर उन्हें पराजित न कर सके।

तब श्रीविष्णुने संगीतज्ञ गन्धर्वका अत्यन्त सुन्दर रूप धारण कर लिया और दूसरे वनमें जाकर वीणाकी मधुर तान छेड़ दी तथा लोकोत्तर श्रुतिमधुर गीत गाने लगे। भगवान् लक्ष्मीपतिका वह गीत सुनकर मृग, पशु-पक्षी, देव-गन्धर्व और राक्षस—सभी मुग्ध हो गये। क्षीराब्धिशायीका वह भुवनमोहन आलाप कैलासमें बार-बार सुनायी देने लगा। उस संगीतसे मुदित होकर भगवान् चन्द्रशेखरने उक्त गायकको बुला लानेके लिये भेजा।

निकुम्भ और पुष्पदन्त उक्त स्वर-लहरीके सहारे गन्धर्ववेषधारी विष्णुके समीप पहुँचे और उन्होंने उनसे सदाशिवके समीप चलनेका अनुरोध किया। श्रीविष्णु प्रसन्नतापूर्वक कैलासके लिये प्रस्थित हुए। कैलासमें पहुँचकर गन्धर्वने प्रणतार्तिविनाशन कर्पूरगौरके चरणकमलोंमें साष्टांग प्रणाम किया। भगवान् पार्वतीकान्तने अधोक्षजको अपने कर-कमलोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर उन्हें सुन्दर आसनपर बैठाकर उनकी पूजा की। शेषशायीने अत्यन्त मुदित होकर देवाधिदेव महादेवसे कहा—'आज धर्म-काम-अर्थ-मोक्ष प्रदान करनेवाले परम प्रभुका दर्शन कर मैं धन्य हो गया।'

फिर जनसुखदायक विष्णुने जब वीणाके तारोंका स्पर्श किया तो उसकी मधुर ध्वनिसे वृषभध्वज, माता पार्वती, गजमुख, स्वामिकार्तिक और सभी देवता मुग्ध हो गये। आनन्दघन विष्णुके गीत सुनकर पार्वतीवल्लभ आत्मविभोर हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी नवघनसुन्दर श्रीहरिको अपने हृदयसे लगा लिया। परमसंतुष्ट महादेवने कहा—'आपने मुझे प्रसन्न कर लिया है। आप क्या चाहते हैं?'

'आप मधु-कैटभके वधका उपाय बताइये।' मधु-कैटभ असुरद्वयकी उत्पत्ति, उनके उपद्रव एवं उनके साथ अपने युद्धका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताते हुए विष्णुने शिवसे निवेदन किया—'मैं उन्हें पराजित नहीं कर पा रहा हूँ।'

'आपने मधु-कैटभसे युद्ध करनेके पूर्व विनायककी पूजा नहीं की, इसी कारण शक्तिहीन रहे और क्लेश सहना पड़ा।' पार्वतीपतिने श्रीहरिसे कहा—'आप गणेशकी अर्चना कर उन पराक्रमी असुरोंसे युद्ध करने जाइये। वे असुरोंको अपनी मायासे मोहित कर आपके वशमें कर देंगे। फिर मेरे प्रसादसे आप निश्चय ही उन दुष्टोंका संहार करेंगे।'[१]

श्रीहरिके पूछनेपर आशुतोषने उन्हें गणेशका सर्वसिद्धिप्रद महामन्त्र प्रदान किया। तब श्रीविष्णुने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवेश शिवके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रख्यात सिद्धक्षेत्रमें पहुँचे।

वहाँ क्षीरोदधिशायीने स्नानादिसे निवृत्त होकर मंगलमूर्ति पाशांकुशधारी श्रीगणेशका ध्यान कर नाना प्रकारके मनोमय द्रव्योंद्वारा षोडशोपचारसे उनका पूजन किया। फिर संयतेन्द्रिय होकर उन्नतानन आदिदेवका ध्यान करते हुए वे उनके महामन्त्रका जप करने लगे।

इस प्रकार लोकपालक विष्णुके सौ वर्षोंतक कठोर आराधना करनेपर करिकलभानन प्रसन्न हो गये। फिर कोटि सूर्याग्नितुल्य परम तेजस्वी इच्छाशक्तिधर गणेशने श्रीविष्णुके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे तपसे संतुष्ट हूँ। तुम जो कुछ चाहते हो, माँग लो। मैं सब कुछ दूँगा। यदि तुमने पहले ही मेरी पूजा की होती तो निश्चय ही तुम्हारी विजय हो गयी होती।'[२]

'मधु-कैटभसे युद्ध करते-करते थककर मैं आपकी शरण आया हूँ।' श्रीहरिने सर्वसंहारकर्ता गणेशकी स्तुति कर निज-कर्णमलोद्भूत मधु-कैटभकी दुष्टता एवं अपने युद्धका हाल बताकर उनसे प्रार्थना की—'अब

---

१. गणेशं पूजयित्वैव व्रज युद्धाय मारिष। स च तौ मायया मोह्य वशतां प्रापयिष्यति॥
मत्प्रसादेन दुष्टौ तौ वधिष्यसि न संशयः।
(गणेशपु० १। १७। ३७½)

२. याचस्व त्वं वरान् मत्तो यांस्त्वं कामयसे हरे॥ ददामि तानहं सर्वांस्तपसानेन तोषितः।
पूर्वमेवार्चितः स्यां चेद्विजयस्ते ध्रुवं भवेत्॥
(गणेशपु० १। १८। ९-१०)

जिस प्रकार उनका वध हो, वही कीजिये। मैं मधु-कैटभका वध कर यश प्राप्त करना चाहता हूँ। इसके साथ ही आप मुझे अपनी दुर्लभ भक्ति भी प्रदान करें।'

'तुमने जो कुछ कहा है, वह सब कुछ तुम्हें निश्चय ही प्राप्त होगा।' कर्माकर्मफलप्रद आदिदेवने श्रीविष्णुसे कहा—'तुम यश, बल एवं महान् कीर्ति प्राप्त करोगे और कोई विघ्न नहीं होगा।'

यद्यत्ते प्रार्थितो विष्णो तत्तत्ते भविता ध्रुवम्॥
यशो बलं परा कीर्तिरविघ्नश्च भविष्यति।

(गणेशपु० १। १८। १८-१९)

इतना कहकर सिन्दूरप्रिय अन्तर्धान हो गये।

श्रीहरिने मधु-कैटभसे युद्ध किया और वे दोनों असुर मारे गये। फिर श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर सिद्धक्षेत्रमें विनायकका अद्भुत मन्दिर बनवाया और वहाँ सिद्धिविनायककी प्रतिमा स्थापित की। उस क्षेत्रमें सर्वप्रथम श्रीहरिने सिद्धि प्राप्त की, इस कारण उस पवित्र स्थलका नाम 'सिद्धक्षेत्र' प्रख्यात हुआ।

इसी प्रकार कामारि शिवने भी सर्वद्रष्टा गणेशकी उपासना की थी। यह कथा अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

गृत्समदकी गणेशोपासना

वाचक्नवि मुनिकी पत्नी मुकुन्दाने कुपित होकर अपने पुत्र गृत्समदको शाप दे दिया—'तुझे भयानक पुत्र होगा। वह अत्यन्त शक्तिसम्पन्न भयंकर दैत्य होगा। उसके आचरणसे त्रैलोक्य काँप उठेगा।'

खिन्नमन गृत्समद अत्यन्त रमणीय पुष्पकवनमें पहुँचे। वहाँ वीतराग वयोवृद्ध ऋषि रहते थे और जल-फल वहाँ सुविधानुसार प्राप्त थे। ऋषियोंकी आज्ञा प्राप्त कर गृत्समद वहीं रहने लगे।

गृत्समदने ज्ञान-गुन-अयन, औदार्यनिधि विनायकको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठोर तपस्या प्रारम्भ की। स्नानादिके उपरान्त वे पैरके अँगूठेके बलपर खड़े होकर दीनवत्सल गणनाथका ध्यान करने लगे। अत्यन्त संयतेन्द्रिय गृत्समदने प्रमथेश्वर गणेशका जप करते हुए केवल वायुके आधारपर एक सहस्र दिव्य वर्षतक घोर तपश्चरण किया। तदनन्तर उन्होंने एक जीर्ण पत्ता खाकर पंद्रह हजार वर्षतक कठोर तपस्या की ।

जैसे गाय अपने बछड़ेका रँभाना सुनकर दौड़ती चली आती है, उसी प्रकार गृत्समदके अत्यन्त कठोर तपसे संतुष्ट होकर अनुग्रहमूर्ति गणेशजी अत्यन्त शीघ्रतासे उनके समीप पहुँचे। उस समय उनका तेज सहस्रों सूर्योंके समान था, जिससे वे सम्पूर्ण विश्वको उद्भासित कर रहे थे। तालपत्रके समान उनके कान हिल रहे थे। वे विशाल गजराजकी-सी लीला कर रहे थे और आकर्षक क्रीड़ामें सानन्द आसक्त थे। उनके मस्तकपर चन्द्रमा शोभायमान था, गलेमें विशाल कमलमाला सुशोभित थी। उनके एक हाथमें सनाल कमल था और वे सिंहपर आरूढ़ थे। उनके दस भुजाएँ थीं। वे सर्पका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। उनके विग्रहपर केसर, अगर, कस्तूरी और शुभ्र चन्दनका लेप था। उन जगत्कारण प्रभुकी दोनों पत्नियाँ सिद्धि और बुद्धि उनके साथ थीं। उनका स्वरूप अनिर्देश्य था और वे लीलासे ही मुनि (गृत्समद)-के सम्मुख प्रकट हो गये। बुद्धिसिन्धु गणनाथने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—'तुम्हारे कठोर तपसे मैं प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो; मैं उसे पूर्ण करूँगा।'

'सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभो! आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति दीजिये और यथार्थ ज्ञान प्रदान कीजिये।' गृत्समदने भयापह गजदन्तके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम कर करबद्ध याचना की—''सर्वकल्याणकारी मंगलमय प्रभो! यह 'पुष्पकवन' गणेशपुरके नामसे प्रख्यात हो और आप यहाँ रहकर भक्तोंकी वांछा पूर्ण करते रहें।''

'तुम मेरे नैष्ठिक भक्त होओगे और तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।' भक्तवत्सल वरदमूर्तिने वर प्रदान करते हुए कहा—'तुम्हें त्रैलोक्यविख्यात अत्यन्त शक्तिशाली पुत्रकी प्राप्ति होगी। उसे केवल कालकाल शिव ही पराजित कर सकेंगे। कृतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुगमें इस क्षेत्रके नाम क्रमशः पुष्पक, मणिपुर, मानक और भद्रक होंगे। यहाँ स्नान-दानसे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।'

यों कहकर सर्पयज्ञोपवीतधारी गजानन अन्तर्धान हो गये।

गृत्समदमुनिने अत्यन्त हर्षित होकर वहाँ एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण करवाया और उसमें अपने आराध्य प्रमथेश्वर गजमुखकी प्रतिमा स्थापित की। उसका नाम 'वरद' प्रसिद्ध हुआ।

ब्राह्मणों एवं ऋषियोंसे सम्मानित गृत्समदमुनि अपने आराध्यके ही ध्यान, पूजन एवं भजन-स्मरणमें अपना समय व्यतीत करने लगे। एक दिनकी बात है, उनके सम्मुख एक अत्यन्त तेजस्वी वस्त्रालंकारभूषित बालक प्रकट हुआ।

त्रिपुरकी गणेशोपासना

आश्चर्यचकित मुनिके प्रश्न करनेपर उस बालकने कहा—'मैं आपका पुत्र हूँ। आपकी छींकसे मेरी उत्पत्ति हुई है। आप कृपापूर्वक मेरा कुछ दिन पालन करें। मैं अपने पौरुषसे इन्द्रादि देवताओंसहित त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त करूँगा।'

उस तेजस्वी बालककी वाणीसे भयभीत मुनिने उसे अपने इष्टदेवकी उपासना करनेकी प्रेरणा दी। देवत्राता गणेशका मन्त्र भी उन्होंने उसे बता दिया।

पिताकी प्रेरणासे वह बालक एकान्त शान्त वनमें चला गया और वहाँ वह एक अँगूठेपर खड़े होकर अज, अनादि और अनन्त विनायकका ध्यान करते हुए उनके मन्त्रका जप करने लगा। इस प्रकार उसे निराहार रहकर कठोर तप करते हुए पंद्रह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

भक्तवत्सल गजमुख प्रसन्न हुए। दयाधाम एकदन्तने तपस्वी बालकके सम्मुख प्रकट होकर भयानक शब्द किया।

मुनिपुत्रने देखा—सम्मुख नाना प्रकारके वस्त्राभरणोंसे अलंकृत, चतुर्भुज महाकाय इष्टदेव खड़े हैं। उनके कर-कमलोंमें परशु, कमलमाला एवं मोदक सुशोभित हैं—

चतुर्भुजं महाकायं नानाभूषाविभूषितम्॥
परशुं कमलं मालां मोदकान् बिभ्रतं करैः।

(गणेशपु० १। ३८। २५-२६)

'प्रभो! आपके अपरिमित तेजसे मैं भयभीत हो रहा हूँ। आप कृपापूर्वक प्रसन्न होकर मेरी कामना-पूर्ति कीजिये।' चरणोंमें प्रणाम कर मुनिपुत्रने डरते हुए सर्वव्यापी, सर्वात्मा, समस्त जीव-जगत्के स्वामी गजाननसे प्रार्थना की।

'मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।' सिन्दूरांगने अपना तेज समेटकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

'मैं बालक हूँ। स्तुति करना नहीं जानता।' गृत्समदके पुत्रने इच्छाशक्तिधर गणपतिसे वरकी याचना की—''आप प्रसन्न होकर त्रैलोक्यको आकृष्ट करनेकी विशिष्ट शक्ति मुझे प्रदान कीजिये। देव, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, राक्षस और सर्पादिकोंको मैं अपने वशमें कर लूँ। इन्द्रादि लोकपाल सदा मेरी सेवा करें और मेरी इच्छित सभी वस्तुएँ मुझे प्राप्त होती रहें। इस जीवनमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग कर मैं मृत्युके समय मोक्ष प्राप्त कर लूँ। मेरी यह तपोभूमि पवित्र 'गणेशपुर'के नामसे प्रसिद्ध हो।''

'तुम सतत निर्भय एवं त्रैलोक्यविजयी होओगे।' रक्ताम्बरधर गजदन्तने वर प्रदान करते हुए कहा—''लौह, रजत एवं स्वर्णके तीन नगर मैं तुम्हें देता हूँ। भगवान् शूलपाणिके अतिरिक्त अन्य कोई इन्हें नष्ट नहीं कर सकेगा। तुम्हारा नाम 'त्रिपुर' होगा। जब भूतभावन महादेव अपने एक ही शरसे इन तीनों पुरोंको ध्वस्त करेंगे, तब तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। मेरी कृपासे तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।''

ऐसा कहकर मूषकारोही अन्तर्धान हो गये। त्रिपुरासुरकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसने वहाँ मूषकध्वजका अत्यन्त भव्य मन्दिर बनवाया और फिर आदिदेव गणेशकी प्रतिमा स्थापित कर उसकी श्रद्धा और विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजा की। उसने गद्गद कण्ठसे धन-धान्यपति सिद्धि-सदनकी स्तुति कर उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति लोटकर बार-बार प्रणाम किया। फिर उसने गजमुखसे क्षमा-याचना कर ब्राह्मणोंको दान दिया। तदनन्तर वह त्रैलोक्य-विजयके लिये निकल पड़ा।

वरप्राप्त महान् त्रिपुरके सम्मुख पृथ्वी, स्वर्ग और पातालके देव, दनुज और नाग आदि शूर-वीर नहीं टिक सके। सभी पराजित हुए। अमरावतीपर त्रिपुरका अधिकार हो गया। देवसमुदाय प्राण-भयसे यत्र-तत्र पलायित हुआ। गृत्समदके पुत्र त्रिपुरके भयसे चतुर्मुख नाभिकमलमें प्रविष्ट हो गये। लक्ष्मीपति क्षीराब्धिके लिये प्रस्थित हुए। अत्यन्त शक्तिशाली त्रिपुरने अपने पुत्र चण्डको वैकुण्ठका और प्रचण्डको ब्रह्मलोकका अधिकार प्रदान किया।

इसके अनन्तर अत्यन्त उद्धत त्रिपुर युद्धकी

कामनासे कैलास पहुँचा। उसने कैलासको झकझोर दिया। वरदमूर्ति गणेशके वरसे त्रिपुरकी शक्तिका अनुमान करके पार्वतीवल्लभने उसके सम्मुख जाकर कहा—'मैं संतुष्ट हूँ, वर माँगो।'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कैलास मुझे देकर स्वयं मन्दरगिरिपर चले जायँ।' यही उसने निस्संकोच माँगा।

मदमत्त असुरसे बचनेके लिये देवाधिदेव महादेवने कैलास छोड़ दिया और मन्दरगिरिके लिये प्रस्थित हुए।

अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरने परम विरक्त तपस्वी ऋषि-मुनियोंको बंदी बनाकर उनके शान्ति-निकेतन आश्रमोंको ध्वस्त कर डाला। इतना ही नहीं, उसके भयसे यज्ञादि कर्म एवं श्रुतियोंका उद्‌घोष शान्त हो गया। त्रैलोक्यमें सर्वत्र असुरताका साम्राज्य व्याप्त था।

देवताओंद्वारा गणेशाराधन

स्वर्गसे निर्वासित गिरि-कन्दराओंमें छिपे देवगण चिन्तित एवं दुःखी थे। 'असुर कैसे पराजित हों?'—यही सोचा करते; किंतु वे सर्वथा असहाय एवं निरुपाय थे। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

एक दिन उनके समीप ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद पहुँचे। उन्होंने सुरोंको बताया—'त्रिपुरकी अजेयताका मुख्य हेतु सर्वसमर्थ विनायकका वर है। आपलोग भी उन आदिदेव सिन्दूरपूरपरिपूरितांग गजमुखको संतुष्ट कर लें, तब उस असुरका वध हो सकेगा।'

देवर्षिने देवताओंको सर्वव्यापी गणेशका मन्त्र बताया और वे अपनी वीणापर हरि-गुण-गान करते हुए प्रस्थित हुए।

देवसमुदाय आदिदेव गणेशकी तुष्टिके लिये उनकी आराधनामें प्रवृत्त हुआ। सुरोंकी निष्ठा देखकर करुणामय गजानन उनके सम्मुख उपस्थित हुए। देवताओंने हर्षातिरेकसे करि-कलभाननके चरणकमलोंमें प्रणाम किया और फिर वे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे—

नमो नमस्ते परमार्थरूप नमो नमस्तेऽखिलकारणाय।
नमो नमस्तेऽखिलकारकाय सर्वेन्द्रियाणामधिवासिनेऽपि॥
नमो नमो भूतमयाय तेऽस्तु नमो नमो भूतकृते सुरेश।
नमो नमः सर्वधियां प्रबोध नमो नमो विश्वलयोद्भवाय॥
नमो नमो विश्वभृतेऽखिलेश नमो नमः कारणकारणाय।
नमो नमो वेदविदामदृश्य नमो नमः सर्ववरप्रदाय॥
नमो नमो वागविचारभूत नमो नमो विघ्ननिवारणाय।
नमो नमोऽभक्तमनोरथघ्ने नमो नमो भक्तमनोरथज्ञ॥
नमो नमो भक्तमनोरथेश नमो नमो विश्वविधानदक्ष।
नमो नमो दैत्यविनाशहेतो नमो नमः संकटनाशकाय॥
नमो नमः कारुणिकोत्तमाय नमो नमो ज्ञानमयाय तेऽस्तु।
नमो नमोऽज्ञानविनाशनाय नमो नमो भक्तविभूतिदाय॥
नमो नमोऽभक्तविभूतिहन्त्रे नमो नमो भक्तविमोचनाय।
नमो नमोऽभक्तविबन्धनाय नमो नमस्ते प्रविभक्तमूर्ते॥
नमो नमस्तत्त्वविबोधकाय नमो नमस्तत्त्वविदुत्तमाय।
नमो नमस्तेऽखिलकर्मसाक्षिणे नमो नमस्ते गुणनायकाय॥

(गणेशपु० १। ४०। ४२—४९)

'हे परमार्थस्वरूप! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप सबके कारण हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप सबके कर्ता हैं; आपको नमस्कार है। आप सब इन्द्रियोंमें निवास करते हैं; आपको नमस्कार है। आप समस्त प्राणिमय हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सुरेश! आप भूत-सृष्टिके कर्ता (और संहारक) हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप समस्त बुद्धियोंके प्रबोधरूप हैं, संसारकी उत्पत्ति और लय करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे अखिलेश! आप विश्वके पालक हैं, कारणोंके भी कारण हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप वेदज्ञोंके लिये भी अदृश्य हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप सबको वर देनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप वाणीके विचारसे परे हैं—वाणीसे आपके स्वरूपका कथन नहीं किया जा सकता; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप विघ्नोंका निवारण करते हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप अभक्तके मनोरथको नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप भक्तोंके मनोरथोंको जाननेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप भक्तोंके मनोरथोंके स्वामी हैं (उनके मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं); आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप विश्वकी सृष्टि करनेमें कुशल हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप दैत्योंके विनाशके कारण हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप संकटोंको नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप करुणा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं;

आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आपका स्वरूप ज्ञानमय है; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप अज्ञानको नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप भक्तोंको ऐश्वर्य प्रदान करते हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप अभक्तोंका ऐश्वर्य नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप भक्तोंको मुक्ति देनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप अभक्तोंको बन्धनमें डालनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप पृथक्-पृथक् मूर्तिमें व्याप्त हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप तत्त्वबोध करानेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप तत्त्वज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप समस्त कर्मोंके साक्षी हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप गुणोंके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है।'

'देवताओ! मैं तुम्हारी तपस्या एवं स्तुतिसे प्रसन्न हूँ।' करुणामय वरदाता गजकर्णने सुरसमुदायको आनन्द प्रदान करते हुए कहा—'तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी करूँगा।'

'सर्वेश्वर!' देवताओंने अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए निवेदन किया—'अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरके भयसे हम गिरि-गुहामें रहनेके लिये विवश हैं। अमरावतीका उपभोग दुर्दान्त दानव कर रहा है। आप उद्दण्ड त्रिपुरका वध करके हमारी विपत्ति दूर करें।'

'मैं निश्चय ही क्रूरकर्मा त्रिपुरसे आपलोगोंकी रक्षा करूँगा।' द्विरदाननने सुरोंको आश्वस्त करते हुए कहा—''आपलोगोंके द्वारा किया हुआ यह 'संकटनाशनस्तोत्र' सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला होगा।''*

यह कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये। वे बुद्धिराशि प्रभु ब्राह्मणके वेषमें त्रिपुरासुरके समीप पहुँचे और परिचय देते हुए बोले—

'कलाधर मेरा नाम है।' त्रिपुरासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी पूजा की। उसके पूछनेपर सर्वथा निःस्पृह ब्राह्मणवेषधारी गणनाथने उसके वैभवकी प्रशंसा करते हुए कहा—'भगवान् शिवद्वारा पूजित सर्वकामप्रद अद्वितीय गणेश-प्रतिमा कैलासमें है; मैं उक्त त्रैलोक्यदुर्लभ मूर्तिकी कामनासे तुम्हारे पास आया हूँ।'

'मैं निश्चय ही वह मूर्ति आपको दूँगा।' त्रिपुरने ब्राह्मणको गणेश-प्रतिमा प्रदान करनेके लिये वचन देनेके साथ उन्हें वस्त्राभूषण, बहुमूल्य रत्न, मृगचर्म, सुरभि तथा अश्व, गज और रथ आदि भी प्रदान किये।

त्रिपुरदूत मन्दरगिरि पहुँचे। वहाँ उन्होंने पार्वतीवल्लभसे उक्त गणेश-मूर्ति देनेके लिये कहा। शिवजी कुपित हो गये। उनके संरक्षणमें देवताओंका दैत्योंसे भयानक संग्राम छिड़ा। दैत्योंका बड़ा विनाश हुआ, किंतु उनकी अपरिसीम सैन्यशक्तिसे देवगण व्याकुल होकर भागने लगे।

शिवकी गणेशोपासना

देवताओंको युद्धक्षेत्रसे पलायन करते देखकर त्रिपुरासुर जगज्जननी पार्वतीको एकाकी जान कैलासकी ओर दौड़ा। इस संवादसे जननी काँप उठीं, पर हिमगिरिने उन्हें एक अत्यन्त सुरक्षित दुर्गम गिरिगह्वरमें पहुँचा दिया।

हिमगिरिनन्दिनीकी अनुपस्थितिमें त्रिपुरने कैलासमें ढूँढ़कर 'चिन्तामणि' की शुभमूर्ति प्राप्त कर ली। उक्त सर्ववांछाकल्पतरु, दुर्लभ, सुन्दरतम गणेश-प्रतिमाको लेकर त्रिपुर स्वधामके लिये प्रस्थित हुआ। वन्दीजन उसका स्तवन कर रहे थे, किंतु मार्गमें विनायककी वह मंगलमयी मूर्ति त्रिपुरके हाथसे छूटकर अदृश्य हो गयी। यह अपशकुन देखकर त्रिपुरासुर खिन्न-चित्त हो लौटा।

सदाशिव चिन्तित थे। उद्धत असुर अत्यन्त पराक्रमशील था और धरतीपर अनीति, अनाचार एवं कुकर्मोंका ताण्डव हो रहा था। धर्मसंस्थापक मुंजकेश विरूपाक्ष उद्विग्न-से हो रहे थे। उसी समय देवर्षि नारद उनके समीप पहुँचे। पार्वतीकान्तने उन्हें आदरपूर्वक आसन देकर उनकी पूजा की।

'दैत्योंके पराक्रमसे त्रैलोक्यमें अधर्म फैल

---

* भवत्कृतमिदं स्तोत्रमतिप्रीतिकरं मम। संकष्टनाशनमिति विख्यातं च भविष्यति॥
पठतां शृण्वतां चैव सर्वकामप्रदं नृणाम्। त्रिसंध्यं यः पठेदेतत् संकष्टं नाप्नुयात् क्वचित्॥
(गणेशपु० १। ४०। ५५-५६)

गया है।' दुःखी मनसे शूलपाणिने नारदजीको बताया—'युद्धमें देवता टिक नहीं सके; वे प्राण लेकर भाग खड़े हुए। महाबली असुरने मेरे अस्त्रोंको भी विफल कर दिया।'

'सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी महेश्वर!' साश्चर्य देवर्षिने महादेवसे कहा—'आप सर्वसमर्थ एवं सृष्टिस्थित्यन्तकारी होकर भी अद्भुत लीला कर रहे हैं।'

कुछ क्षण ध्यान करके उन्होंने भुजगेन्द्रहारको बताया—'वह्निनेत्र! युद्धके लिये प्रस्थित होते समय आपने विघ्नेश्वरकी पूजा नहीं की, इसी कारण आपकी पराजय हुई। आप अपने पुत्र गणेशकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न कर लीजिये; फिर आपकी विजय सुनिश्चित है।'

'ब्रह्मन्! आपका कथन यथार्थ है।' कम्बुकुन्देन्दु-कर्पूरगौरने देवर्षिसे कहा—'उन्होंने पहले ही मुझे विघ्ननिवारक मन्त्र दिये हैं, किंतु युद्धमें मुझे उनके जपकी विस्मृति हो गयी।'

देवर्षि चले गये। शोक-शूल-निर्मूलन वृषभध्वजने दण्डकवनमें जाकर पद्मासन लगाया और वे विनायकको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगे।

सौ वर्ष बीते। तपश्चरणनिरत व्याघ्रचर्माम्बरधर शिवके मुखसे एक परम तेजस्वी श्रेष्ठ पुरुष निकले। उनके पाँच मुख और दस हाथ थे, ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित था, उनकी शरीर-कान्ति चन्द्रमाको मात कर रही थी, कण्ठमें मुण्डमाला थी, सर्पोंके आभूषण थे एवं मुकुट और बाजूबंदकी निराली छटा थी। वे अपनी प्रभासे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाको तिरस्कृत कर रहे थे। उन्होंने अपनी दसों भुजाओंमें दस आयुध धारण कर रखे थे।*

'क्या मेरे ही दो रूप हो गये?' नीलकण्ठ शिव आश्चर्यचकित हो सोचने लगे—'या यह त्रिपुरासुरकी माया तो नहीं है? मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ या मैं जिन आदिदेव विनायकका अहर्निश ध्यान करता हूँ, उन्होंने ही कृपापूर्वक मुझे दर्शन दिया है?'

'आप अपने मनमें जिनका विचार करते हैं, मैं वही विघ्नविनाशक हूँ।' सर्वकर्ता सुमुखने आशुतोषसे कहा—'मेरे यथार्थ स्वरूपको देवता, ऋषि और विधाता भी नहीं जानते। वेद और उपनिषद् भी नहीं जानते, फिर षट्शास्त्रोंके ज्ञाता तो कैसे जान सकते हैं? मैं अनन्त लोकोंका स्रष्टा, पालक एवं संहारक हूँ। मैं चराचर जगत् एवं ब्रह्मा तथा तीनों गुणोंका स्वामी हूँ। आपके तपसे संतुष्ट होकर मैं यहाँ वर प्रदान करने आया हूँ। महादेव! आप इच्छानुसार वर माँग लीजिये।'

अन्तर्यस्तर्कितो देवः सोऽहं विघ्नहरो विभुः।
न मे स्वरूपं जानन्ति देवर्षिचतुराननाः॥
न वेदाः सोपनिषदः कुतः षट्शास्त्रवेदिनः।
अशेषभुवनस्याहं कर्ता पातापहारकः॥
ब्रह्मादिस्थावरचरत्रिगुणानामहं प्रभुः।
तपसानेन तुष्टोऽहं वरं दातुमिहागतः॥
वरान् वृणु महादेव यावतो मत्त इच्छसि॥

(गणेशपु० १। ४४। ३२—३५)

वरद विनायकके वचन सुन महेश्वर अपना स्वरूप भूलकर हर्ष-गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे—

दशापि नेत्राणि ममाद्य धन्यान्यथो भुजाः पूजनतस्तवाद्य।
तवानतेः पञ्च शिरांसि धन्यान्यथ स्तुतेः पञ्चमुखानि देव॥
पृथ्वी जलं वायुरथो दिशश्च तेजश्च कालः कलनात्मकोऽपि।
नभो रसो रूपमथापि गन्धः स्पर्शश्च शब्दो मन इन्द्रियाणि॥
गन्धर्वयक्षाः पितरो मनुष्या देवर्षयो देवगणाश्च सर्वे॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रा वसवोऽथ साध्यास्त्वत्तः प्रसूताः सचराचराश्च॥
सृजस्यदो विश्वमनन्यबुद्धे रजोगुणात् पासि समस्तमेतत्।
तमोगुणात् संहरसे गुणेश नित्यो निरीहोऽखिलकर्मसाक्षी॥

(गणेशपु० १। ४५। ३—६)

'हे देव! आज आपकी पूजा करनेसे मेरे दसों नेत्र और दसों भुजाएँ धन्य हैं। आपको प्रणाम करनेसे मेरे पाँचों सिर और आपका स्तवन करनेसे मेरे पाँचों मुख भी धन्य हो गये। पृथ्वी, जल, वायु, दिशाएँ, तेज, कलनात्मक काल, आकाश, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श, शब्द, मन, इन्द्रियाँ, गन्धर्व, यक्ष, पितर, मनुष्य, देवर्षि, देवगण, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वसु, साध्य तथा आपसे

* ततस्तस्य मुखाम्भोजान्निर्गतस्तु पुमान् परः॥ पञ्चवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दुः शशिप्रभः।
मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः॥ अग्न्यर्कशशिनो भाभिस्तिरस्कुर्वन् दशायुधः।
(गणेशपु० १। ४४। २५—२७)

उत्पन्न सभी चराचर धन्य हैं। आप रजोगुणसे सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना और सत्त्वगुणसे पालन करते हैं, तथा हे गुणेश्वर! आप तमोगुणके द्वारा उनका संहार करते हैं। आप नित्य, निरपेक्ष एवं समस्त कर्मोंके साक्षी हैं।'

'आपके स्मरण करते ही मैं आपके समीप आ जाऊँगा और आपका कार्य पूरा हो जायगा।' देवाधिदेव महादेवके स्तवनसे संतुष्ट होकर गुणाधीशने उनसे कहा—'आप मेरे बीज-मन्त्र (गं)-का उच्चारण करके पुरत्रयपर एक शर छोड़ेंगे तो वह ध्वस्त हो जायगा।'[१]

इसके अनन्तर शिवपर प्रसन्न हुए गम्भीरलोचन गजमुखने उन्हें अपने सहस्रनामका[२] उपदेश दिया और बोले—'तीनों संध्याओंमें इसके पाठसे मनुष्यकी कामनाएँ पूरी होंगी। युद्धके पूर्व आप इसका पाठ कर लें तो असुरोंका शीघ्र नाश हो जायगा।'

द्विरदाननके वरसे प्रसन्न होकर काम-मद-मोचन शिवने विधिपूर्वक उनकी पूजा की[३] और वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें उनकी प्रतिष्ठा की। फिर देवता, मुनि और सिद्धोंको तृप्तकर ब्राह्मणोंको दान दिया। इसके अनन्तर तामरसलोचन वृषभध्वजने पुनः गुरुमन्त्रफलप्रद गणेशकी प्रीतिपूर्वक पूजा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया। देवगण गंगाधरप्रिय गजमुखका स्तवन कर रहे थे। उसी समय पशुपतिने कहा—''इन गणेशजीका यह स्थान सम्पूर्ण लोकोंमें 'मणिपुर'के नामसे विख्यात हो।''

गम्भीरगुणसम्पन्न गणेश अन्तर्धान हो गये। ज्ञानद गणेशके दर्शनसे प्रसन्न देवता, मुनि, सिद्ध एवं ब्राह्मण भी अपने-अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रस्थित हुए। स्वर्गापवर्गदाता गंगाधर भी प्रसन्नतापूर्वक उठे। त्रिपुरासुर मारा गया। त्रैलोक्य तृप्त हुआ। सबने सुख-संतोषकी साँस ली। सर्वत्र हर्षकी लहर दौड़ गयी।

शिवपुराणमें कथा आती है कि असुरोंसे पूर्ण त्रिपुरको भस्म करनेके लिये कामारि शम्भुने शर-संधान किया। धनुषको दृढ़तासे धारण किये रणकर्कश शिव लक्ष्यपर दृष्टि गड़ाये एक लाख वर्षतक अडिग खड़े रहे, किंतु त्रिपुरपर[४] लक्ष्य स्थिर नहीं हुआ। उस समय देवत्राता शिवने आकाशवाणी सुनी—

भो भो न यावद्भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः।
पुराणि जगदीशेश साम्प्रतं न हनिष्यति॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, यु० खं० १०। ६)

'हे जगदीश! हे भगवन्! जबतक आप विनायककी पूजा नहीं करेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंको नष्ट नहीं कर सकेंगे।'

तब अन्धकासुरसंहारी त्रिलोचनने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीकी पूजा की, भगवान् पशुपतिकी हर्षपूरित पूजासे विनायक संतुष्ट हुए, तब लोकनाथ हरने महात्मा तारकपुत्रोंके तीनों पुरोंको देखा।[५] तब उन्होंने अभिजित् मुहूर्तमें अपने अद्भुत धनुषकी प्रत्यंचाको खींचा। उससे अत्यन्त भयानक शब्द हुआ। देवदेव शिवने असुरोंको अपना नाम सुनाते हुए कोटिसूर्यसमप्रभ उग्र शर छोड़ दिया।[६] उक्त परम

---

१. यदा यदा मे स्मरणं विदध्यास्तदान्तिकं तेऽहमियामुमेश॥ मन्नामबीजेन निमन्त्र्यैकं बाणं तु तेनैव पुरत्रयं तत्।
निपातयास्मन्व्यहता महेश कृत्वा सदैत्वं खलु सकलात्त्वम्॥ (गणेशपु० १। ४५। १५-१६)

२. गणेशपुराण उपासना-खण्डमें द्रष्टव्य।

३. कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(रामचरितमानस १। १००)

४. शिवपुराणके अनुसार तारकासुरके तुल्यबल तीन महान् पुत्र थे—तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष। इन तीनोंने कठोर तपसे विधाताको संतुष्ट करके अपने-अपने लिये क्रमशः सुवर्ण, रजत एवं वज्रतुल्य लौह पुरोंको प्राप्त किया था। वे तीनों पुर एक सहस्र वर्षोंके बाद मध्याह्नमें अभिजित् मुहूर्तमें एक स्थानपर स्थित होते थे।

५. एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गजवक्त्रमपूजयत्। भद्रकालीं समाहूय ततोऽन्धकनिषूदनः॥
तस्मिन् सम्पूजिते हर्षात् परितुष्टे पुरस्सरे। विनायके ततो व्योम्नि ददर्श भगवान् हरः॥
पुराणि त्रीणि दैत्यानां तारकाणां महात्मनाम्। (शिवपु०, रुद्रसं०, यु० खं० १०। ७—९)

६. अभिलाख्यमुहूर्ते तु विकृष्य धनुरद्भुतम्। कृत्वा ज्यातलनिर्घोषं नादमत्यन्तदुस्सहम्॥
आत्मनो नाम विश्राव्य समाभाष्य महासुरान्। मार्तण्डकोटिवपुषं काण्डमुग्रं मुमोच ह॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, यु० खं० १०। २५-२६)

तेजस्वी अग्नितुल्य दहकते हुए तीक्ष्ण शरके स्पर्शसे समस्त दैत्योंसहित त्रिपुर भस्म हो गया।

शिवप्राणवल्लभा भगवती उमाने भी गुडलड्डु-भोजी गजाननकी श्रद्धा और भक्तिसे पूजा की थी। रेणुकानन्दन परशुराम भी इन गंगाजलरसास्वादचतुर गजमुखकी उपासनासे शक्ति अर्जित करनेमें समर्थ हुए।

त्रैलोक्यपावनी रासरासेश्वरी राधाने भी अत्यन्त भक्तिपूर्वक गौरीहृदयनन्दनकी विधिपूर्वक अर्चना की थी। ब्रह्मवैवर्तपुराणकी वह मंगल-मोद-प्रदायिनी कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीराधाकी गणेशोपासना

पुण्यमय शुभ क्षेत्र सिद्धाश्रमकी बड़ी महिमा है। सनत्कुमारने वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। स्वयं लोक-पितामहने भी वहाँ तपश्चरण किया था और सिद्ध हुए थे। महात्मा कपिल और महेन्द्रने भी वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। इसी कारण उस दुर्लभ पावन क्षेत्रका नाम 'सिद्धाश्रम' प्रसिद्ध हुआ। उस पुण्यमय क्षेत्रमें नित्यदेवता गजानन नित्य निवास करते हैं।

वहाँ वैशाखी पूर्णिमाके अवसरपर सभी देवता, नाग, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र और सनकादि भी वरद गणपतिकी पूजा करते हैं।

एक बारकी बात है। पवित्र वैशाखकी पूर्णिमा थी। उस पुनीत अवसरपर हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीके साथ कल्याणकारी जगत्पति शिव, गणोंसहित षडानन और स्वयं पद्मयोनि भी सिद्धाश्रम पहुँचे। भगवान् गणेशकी पूजा करनेके लिये सभी देवता, मनु, मुनिगण और नरेश भी वहाँ उपस्थित हुए। द्वारकापुरीके निवासियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण और गोकुलवासियोंके साथ नन्द भी वहाँ पधारे। सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर श्रीकृष्णप्राणवल्लभा रासरासेश्वरी श्रीराधारानीका भी गोलोकवासिनी गोपकुमारी सखियोंके साथ वहाँ शुभागमन हुआ। भक्तानुग्रहमूर्ति श्रीराधारानीने वहाँ स्नान करके शुद्ध साड़ी और कंचुकी धारण की। फिर त्रैलोक्यपावनी कृष्णप्रियाने अपने चरणोंको अच्छी प्रकार धोया। इसके अनन्तर उन्होंने निराहार एवं संयतेन्द्रिय हो मणि-मण्डपमें प्रवेश किया।

वहाँ गोलोकविहारिणी श्रीकृष्णप्रियाने अपने प्राणधन श्रीकृष्णकी प्राप्तिकी कामनासे विधिवत् संकल्प किया। तदनन्तर उन्होंने परमपावनी सुरसरिके निर्मल जलसे भालचन्द्र गजाननको स्नान कराया। फिर सत्कीर्तिसम्पन्ना भगवती राधा अपने कर-कमलोंमें श्वेत पुष्प लेकर सामवेदोक्त प्रकारसे लम्बोदरका ध्यान करने लगीं—

खर्वं लम्बोदरं स्थूलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
गजवक्त्रं वह्निवर्णमेकदन्तमनन्तकम्॥
सिद्धानां योगिनामेव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम्।
ध्यातं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैर्ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः॥
सिद्धेन्द्रैर्मुनिभिः सद्भिर्भगवन्तं सनातनम्।
ब्रह्मस्वरूपं परमं मङ्गलं मङ्गलालयम्॥
सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम्।
भवाब्धिमायापोतेन कर्णधारं च कर्मिणाम्॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणम्।
ध्यायेद् ध्यानात्मकं साध्वं भक्तेशं भक्तवत्सलम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ० ज० खं० १२१। ७०—७४)

'जो खर्व (छोटे कदवाले), लम्बोदर, स्थूलकाय, ब्रह्मतेजसे उद्भासित, गजमुख, अग्नितुल्य कान्तिमान्, एकदन्त और अनन्त हैं; जो सिद्धों, योगियों और ज्ञानियोंके गुरुके गुरु हैं; ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवेन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र, मुनिगण तथा संतलोग जिनका ध्यान करते हैं; जो ऐश्वर्यशाली, सनातन, ब्रह्मस्वरूप, परम मंगल, मंगलके स्थान, सम्पूर्ण विघ्नोंको हरनेवाले, शान्त, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता, कर्मयोगियोंके लिये भवसागरमें मायारूपी जहाजके कर्णधारस्वरूप, शरणागत-दीन-दुःखीकी रक्षामें तत्पर, ध्यानरूप, साधना करनेयोग्य, भक्तोंके स्वामी और भक्तवत्सल हैं, उन गणेशका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करनेके अनन्तर परमसती राधाने उक्त पुष्पका अपने मस्तकसे स्पर्श कराकर फिर सर्वांगशुद्धिके लिये वेदोक्त न्यास किया। तदनन्तर ब्रह्मस्वरूपा राधारानीने पुनः उपर्युक्त कल्याणकर ध्यानके द्वारा उक्त पुष्प शूर्पकर्णके चरणोंमे अर्पित कर दिया। फिर परम महिमामयी श्रीकृष्णप्राणवल्लभा श्रीराधाने सुगन्धित सुशीतल तीर्थजल, दूर्वा, चावल, सुगन्धित श्वेत पुष्प, सुगन्धित चन्दनयुक्त अर्घ्य, पारिजात-पुष्पोंकी माला, कस्तूरी-केसरयुक्त चन्दन, उत्तम धूप, घृतदीप, सुस्वादु रमणीय नैवेद्य, चतुर्विध अन्न, फल,

विविध प्रकारके मोदक और व्यंजन, अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासन, दो सुन्दर वस्त्र, मधुपर्क, सुवासित सुशीतल पवित्र तीर्थजल, ताम्बूल, अमूल्य श्वेत चँवर, मणि-मुक्ता-हीरासे सुसज्जित सुन्दर सूक्ष्मवस्त्रद्वारा सुशोभित शय्या, सवत्सा कामधेनु गौ और पुष्पांजलि अर्पित कर अत्यन्त श्रद्धा और विधिपूर्वक शिवप्रिया पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्रकी षोडशोपचारसे पूजा की। इसके बाद श्रीकृष्णहृदयाधिकारिणी श्रीराधाने गणेशके इस षोडशाक्षर मन्त्रका एक सहस्र जप किया।

'ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा[१]॥'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृ० ज० खं० १२१। १००)

जपके अनन्तर पराम्बा भगवती राधाके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे सिर झुकाये पुलकित होकर गद्‌गदकण्ठसे गणेशजीका स्तवन करने लगीं—

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम्।
विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम्॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्।
सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम्[२]॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ०ज०खं० १२१। १०३-१०४)

'जो परमधाम, परब्रह्म, परेश, परम ईश्वर, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं, प्रधान-प्रधान सुर-असुर तथा सिद्धेन्द्र जिनका स्तवन करते हैं, जो देवरूपी कमलके लिये सूर्य और मंगलोंके आश्रयस्थान हैं, परात्पर गणेशकी मैं स्तुति करती हूँ।'

सर्वेश्वरी श्रीराधाने विधिवत् गणेशकी पूजा एवं भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना की। उनके मंगलमय सर्वांगमें धारण करनेयोग्य बहुमूल्य रत्नोंके आभूषण प्रदान किये।

'जगज्जननी! तुम्हारा यह अर्चन-वन्दन जगत्‌को शिक्षा देनेके लिये है।' सत्यस्वरूपा श्रीराधाकी श्रद्धा-भक्ति एवं पूजोपकरणोंसे संतुष्ट होकर वरद गणेशने कहा—'तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूपा एवं श्रीकृष्णवक्षःस्थलपर वास करनेवाली हो।'

महामहिमामयी श्रीराधाकी कल-कीर्तिका गान करते हुए परम प्रसन्न गणपतिने कहा—'मातः! तुमने मुझे जिन-जिन वस्तुओंको समर्पित किया है, उन सबको सार्थक कर डालो अर्थात् अब मेरी प्रसन्नताके लिये उन्हें ब्राह्मणोंको दे दो। तब मैं उसका भोग लगाऊँगा; क्योंकि देवताओंको देनेयोग्य दान या दक्षिणा ब्राह्मणको दे देनेसे अनन्त हो जाती है। राधे! ब्राह्मणोंका मुख ही देवताओंका प्रधान मुख है; क्योंकि ब्राह्मण जिस पदार्थको खाते हैं, वह देवताओंको मिलता ही है[३]।'

तब गोलोकवासिनी श्रीराधाने वह सारा पदार्थ ब्राह्मणोंको खिला दिया। इससे मंगलमूर्ति गणेश तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये।

इस प्रकार अभीष्ट-पूर्त्यर्थ प्रायः देवताओंने समय-समयपर इन विघ्नविनाशन मोदकप्रिय आदिदेवकी पूजा-अर्चा की।

देवताओंद्वारा गणेश-वन्दना

एक बारकी बात है। पवित्र गौतमीके उत्तर तटपर देवताओंने यज्ञ प्रारम्भ किया, किंतु उसमें अनेक विघ्न पड़ने लगे। यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सका। उदास होकर देवताओंने ब्रह्मा और विष्णुसे इसका कारण पूछा। दयामय चतुराननने ध्यानस्थ होकर इसके कारणका पता लगाया और फिर उन्होंने सुरसमुदायसे कहा—'इस यज्ञमें श्रीगणेशजी विघ्न उपस्थित कर रहे हैं। इसी कारण यज्ञ सविधि सम्पन्न नहीं हो पा रहा है। आपलोग आदिदेव विनायकको प्रसन्न कर लें, तब यज्ञ पूर्ण हो जायगा।'

विधाताके परामर्शसे देवताओंने गौतमीके निर्मल जलमें स्नान किया और फिर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वे अम्बिकानन्दन श्रीगणेशजीकी स्तुति करने लगे—

---

१. श्रीगणेशजीका यह मन्त्र श्रेष्ठ कल्पतरुके समान है। (१२१। १०१)

इस स्तोत्रका माहात्म्य यों है—

२. इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम्। यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ० ज० खं० १२१। १०५)

'जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंसे विमुक्त हो जाता है।'

३. ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम्। विप्रभुक्तं च यद् द्रव्यं प्राप्नुवन्त्येव देवताः॥

(ब्रह्मवैवर्तपु० श्रीकृ० ज० खं० १२२। २३)

देवा ऊचुः

य: सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्ण्वम्बुजसम्भवानाम्।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसम्प्रदाता।
निश्चित्य चैतत्त्रिपुरान्तकोऽपि तं पूजयामास वधे पुराणाम्॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन् महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां पूर्णा भविष्यन्ति मनोऽभिलाषाः॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव।
अतोऽवदन् सुरसंघाः कृतार्थाः सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः॥
यो मातुरुत्सङ्गगतोऽथ मात्रा निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम्।
संगोपयामास पितुर्जटासु गणाधिनाथस्य विनोद एषः॥
पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराज लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः॥
संवेष्टितो देवगणैर्महेशः प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच।
संतोषितो नूपुररावमात्राद् गणेश्वरत्वेऽभिषिषेच पुत्रम्॥
यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत् स्कन्धे कुठारं च तथा परेण।
अपूजितो विघ्नमथोऽपि मातुः करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः॥
धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम्।
यस्यार्चनं नैव विनाशमेति तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि॥
यस्यार्चनात्प्रार्थनयानुरूपां दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम्।
स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं भ्रातृप्रियं त्वाखुरथं तमीडे॥
यो मातरं सरसैर्नृत्यगीतैस्तथाभिलाषैरखिलैर्विनोदैः।
संतोषयामास तदातितुष्टं तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥
सुरोपकारैरसुरैश्च बुद्धैः स्तोत्रैर्नमस्कारपरैश्च मन्त्रैः।
पितृप्रसादेन सदा समृद्धं तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥
जये पुराणामकरोत् प्रतीपं पित्रापि हर्षात् प्रतिपूजितो यः।
निर्विघ्नतां चापि पुनश्चकार तस्मै गणेशाय नमस्करोमि॥

(ब्रह्मपुराण ११४। ६—१८)

''सदा सब कार्योंमें सम्पूर्ण देवता तथा शिव, विष्णु और ब्रह्माजी भी जिनका पूजन, नमस्कार और चिन्तन करते हैं, उन विघ्नराज गणेशकी हम शरण ग्रहण करते हैं। विघ्नराज गणेशके समान मनोवांछित फल देनेवाला कोई देवता नहीं है, ऐसा निश्चय करके त्रिपुरारि महादेवजीने भी त्रिपुरवधके समय पहले उनका पूजन किया था। जिनका ध्यान करनेसे सम्पूर्ण देहधारियोंके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, वे अम्बिकानन्दन गणेश इस महायज्ञमें शीघ्र ही हमारे विघ्नोंका निवारण करें। देवी पार्वतीके चिन्तनमात्रसे ही गणेशजी-जैसा पुत्र उत्पन्न हो गया, इससे सम्पूर्ण जगत्‌में महान् उत्सव छा गया है।'—यह बात उन देवताओंने अपने मुखसे कही थी, जो नवजात शिशुके रूपमें गणेशजीको नमस्कार करके कृतार्थ हुए थे। माताकी गोदमें बैठे हुए और माताके मना करनेपर भी जिन्होंने पिताके ललाटमें स्थित चन्द्रमाको बलपूर्वक पकड़कर उनकी जटाओंमें छिपा दिया, यह गणेशजीका बालविनोद था। यद्यपि वे पूर्ण तृप्त थे, तब भी अधिक देरतक माताके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं बड़े भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगें। उनकी बुद्धिमें बालस्वभाववश भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने विनोदवश कहा—'विघ्नराज! तुम बहुत दूध पीते हो, इसलिये लम्बोदर हो जाओ।' यों कहकर उन्होंने उनका नाम 'लम्बोदर' रख दिया। देवसमुदायसे घिरे हुए महेश्वरने कहा—'बेटा! तुम्हारा नृत्य होना चाहिये।' यह सुनकर उन्होंने अपने घुँघुरूकी आवाजसे ही शंकरजीको संतुष्ट कर दिया। इससे प्रसन्न होकर शिवने अपने पुत्रको गणेशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। जो एक हाथमें विघ्नपाश और दूसरे हाथसे कंधेपर कुठार लिये रहते हैं तथा पूजा न पानेपर अपनी माताके कार्यमें भी विघ्न डाल देते हैं, उन विघ्नराजके समान दूसरा कौन है। जो धर्म, अर्थ और काम आदिमें सबसे पहले पूजनीय हैं तथा देवता और असुर भी प्रतिदिन जिनकी पूजा करते हैं, जिनके पूजनका फल कभी नष्ट नहीं होता, उन प्रथम पूजनीय गणेशको हम पहले मस्तक नवाते हैं। जिनकी पूजासे सबको प्रार्थनाके अनुरूप सब प्रकारके फलकी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है, जिन्हें अपने स्वतन्त्र सामर्थ्यपर अत्यन्त गर्व है, उन बन्धुप्रिय मूषक-वाहन गणेशजीकी हम स्तुति करते हैं। जिन्होंने अपने सरस संगीत, नृत्य, समस्त मनोरथोंकी सिद्धि तथा विनोदके द्वारा माता पार्वतीको पूर्ण संतुष्ट किया है, उन अत्यन्त संतुष्ट हृदयवाले श्रीगणेशकी हम शरण लेते हैं।''

'देवताओ! अब तुम्हारा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जायगा।' सुरसमुदायके स्तवनसे संतुष्ट होकर भगवान् गजाननने प्रकट होकर कहा—'जो लोग इस स्तोत्रसे मेरा स्तवन करेंगे, वे दरिद्रता और दु:खसे बचे रहेंगे। इस तीर्थमें सोत्साह सविधि स्नान-दान करनेवालेके

कार्यमें भी विघ्न उपस्थित नहीं होगा। आपलोग भी इसका समर्थन करें।'[१]

भगवान् लम्बोदरके वचनसे प्रसन्न होकर देवताओंने उक्त पावन अविघ्न तीर्थके सम्बन्धमें तुरंत एक स्वरसे कहा—'ऐसा ही होगा।'

फिर देवताओंने उल्लासपूर्वक यज्ञ पूर्ण कर लिया।

* * * *

अभिशप्त चन्द्र

एक समय गणेशजीके द्वारा चन्द्रमाको शाप प्राप्त हुआ था। गणेशपुराणकी वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

एक बारकी बात है, कैलासके शिव-सदनमें लोक-पितामह ब्रह्मा कर्पूरगौर शिवके समीप बैठे थे। उसी समय वहाँ देवर्षि नारद पहुँचे। उनके पास एक अतिशय सुन्दर और स्वादिष्ट अपूर्व फल था। उक्त फल देवर्षिने करुणामय उमानाथके कर-कमलोंमें अर्पित कर दिया।

उक्त अद्भुत और सुन्दर फल पिताके हाथमें देखकर गणेश और कुमार दोनों बालक उसे आग्रहपूर्वक माँगने लगे। तब शिवने ब्रह्मासे पूछा—'ब्रह्मन्! देवर्षि-प्रदत्त यह अपूर्व फल एक ही है और इसे गणेश एवं कुमार दोनों चाहते हैं; आप बतायें, इसे किसे दूँ?'

चतुर्मुखने उत्तर दिया—'प्रभो! छोटे होनेके कारण इस एकमात्र फलके अधिकारी तो षडानन ही हैं।'

गंगाधरने फल कुमारको दे दिया। किंतु पार्वतीनन्दन गणेश सृष्टिकर्ता ब्रह्मापर कुपित हो गये।

लोक-पितामहने अपने भवन पहुँचकर सृष्टि-रचनाका प्रयत्न किया तो गजवक्त्रने अद्भुत विघ्न उत्पन्न कर दिया। वे अत्यन्त उग्ररूपमें विधाताके सम्मुख प्रकट हुए। विघ्नेश्वरके भयानकतम स्वरूपको देखकर विधाता भयभीत होकर काँपने लगे।

गजाननकी विकट मूर्ति एवं ब्रह्माका भय और कम्प देखकर चन्द्रदेव अपने गणोंके साथ हँस पड़े।

चन्द्रमाको हँसते देख गजमुखको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने चन्द्रदेवको तुरंत शाप दे दिया—'चन्द्र! अब तुम किसीके देखनेयोग्य नहीं रह जाओगे और यदि किसीने तुम्हें देख लिया तो वह पापका भागी होगा।'[२]

गजकर्ण वहाँसे चले गये। चन्द्रमा श्रीहत, मलिन एवं दीन होकर अत्यन्त चिन्तापूर्वक मन-ही-मन कहने लगे—'अणिमादि गुणोंसे युक्त, जगत्-कारण-कारण परमेश्वरके साथ मैंने मूर्खकी भाँति दुराचरण कैसे किया? मैं सबके लिये अदर्शनीय, वर्णहीन और अत्यन्त मलिन हो गया। अब मैं पुनः कलाओंसे युक्त, सुन्दर, वन्द्य एवं देवताओंके लिये सुखद कैसे हो सकूँगा?'

सुधाकरके अदर्शनसे देवगण भी दुःखित हुए। अग्नि और इन्द्र आदि देवगण देवदेव गजाननके समीप पहुँचकर उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे।

देवताओंके स्तवनसे प्रसन्न होकर गजमुखने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुतिसे संतुष्ट हूँ। वर माँगो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

देवता बोले—'प्रभो! आप चन्द्रमापर अनुग्रह करें, हमारी यही कामना है।'

गणेशने कहा—'एक वर्ष, छः मास या तीन मासके लिये चन्द्रमा अदर्शनीय हों या तुम्हें और कुछ अभीष्ट है?'

प्रभु गजाननकी वाणी सुनते ही देवगण उनके चरणकमलोंमें दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

'देवताओ! मैं अपना वचन मिथ्या कैसे कर दूँ? पर शरणागतका त्याग भी सम्भव नहीं।' महाप्रभु विकटने विकट परिस्थितिमें देवताओंसे कहा—'सुमेरु अपना स्थान त्याग दे, सूर्य गिर पड़े, अग्नि शीतल हो जाय और सागर अपनी मर्यादा छोड़ दे, पर मेरा वचन असत्य नहीं हो सकता। तथापि तुमलोग मेरी बात सुनो—

---

१. स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तोष्यन्ति यतव्रताः। तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुः कदाचन॥
अत्र ये भक्तितः स्नानं दानं कुर्युरतन्द्रिताः। तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरिति मन्यताम्॥
(ब्रह्मपुराण ११४। २२-२३)

२. अदर्शनीयस्त्रैलोक्ये मद्वाक्यात्त्वं भविष्यसि। कदाचित्केन दृष्टः स महापातकवान् भवेत्।
(गणेशपु० १। ६१। ७-८)

भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा॥
अभिशापी भवेच्चन्द्रदर्शनाद् भृशदुःखभाग्।
(गणेशपु० १। ६१। २५-२६)

'जो जानकर या अनजानमें ही भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीको चन्द्रका दर्शन करेगा, वह अभिशप्त होगा। उसे अधिक दुःख उठाना पड़ेगा।'

परमप्रभु द्विरदाननके वचन सुन देवगण अत्यन्त मुदित हुए। उन्होंने पुनः प्रभुचरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर वे चन्द्रमाके पास पहुँचे।

देवताओंने चन्द्रमासे कहा—'चन्द्र! गजमुखपर हँसकर तुमने अपनी मूढ़ताका ही परिचय दिया है। तुमने परम प्रभुका अपराध किया और त्रैलोक्य संकटग्रस्त हो गया। हमलोगोंने त्रैलोक्यनायक परब्रह्मस्वरूप सर्वगुरु गजानन प्रभुको बड़े यत्नसे संतुष्ट किया। इस कारण उन दयामयने तुम्हें वर्षमें केवल एक दिन भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीको अदर्शनीय रहनेका वचन देकर अपना शाप अत्यन्त सीमित कर दिया। तुम भी उन करुणामयकी शरण लो और उनकी कृपासे शुद्ध होकर यश प्राप्त करो।'

देवेन्द्रने सुधांशुको गजाननके एकाक्षरी[1] मन्त्रका उपदेश किया और फिर देवगण वहाँसे चले गये।

सुधाकर शुद्ध हृदयसे परम प्रभु गजमुखकी शरण हुए। वे पुण्यतोया जाह्नवीके दक्षिण तटपर उन सर्व-सुखदायक प्रभु गजाननका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार चन्द्रदेवने गणेशको संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षतक कठोर तप किया। इससे आदिदेव गजानन प्रसन्न हुए।

सिन्दूरारुण, रक्तमाल्याम्बरधर, रक्तचन्दनचर्चित, चतुर्भुज, महाकाय, कोटिसूर्याधिक दीप्तिमान् देवदेव गजानन चन्द्रमाके सम्मुख प्रकट हो गये। निशानाथने परम प्रभुके महान् स्वरूपको देखा तो वे आश्चर्यचकित ही नहीं हुए, भयसे काँपने लगे। किंतु फिर उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'मेरे सम्मुख दयामय आदिदेव गजानन ही मुझे कृतार्थ करनेके लिये प्रकट हुए हैं।' तब वे हाथ जोड़कर गद्‌गदकण्ठसे उनकी स्तुति करने लगे—

नमामि देवं द्विरदाननं तं यः सर्वविघ्नं हरते जनानाम्।
धर्मार्थकामांस्तनुतेऽखिलानां तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय॥
कृपानिधे ब्रह्ममयाय देव विश्वात्मने विश्वविधानदक्ष।
विश्वस्य बीजाय जगन्मयाय त्रैलोक्यसंहारकृते नमस्ते॥
त्रयीमयायाखिलबुद्धिदात्रे बुद्धिप्रदीपाय सुराधिपाय॥
नित्याय सत्याय च नित्यबुद्धे नित्यं निरीहाय नमोऽस्तु नित्यम्॥
(गणेशपु० १। ६१। ४१—४३)

'मैं उन गजाननदेवको नमस्कार करता हूँ, जो लोगोंके समस्त विघ्नोंका अपहरण करते हैं। जो सबके लिये धर्म, अर्थ और कामका विस्तार करते हैं, उन विघ्नविनाशन गणेशको नमस्कार है। कृपानिधे! देव!! आप विश्वकी रचना करनेमें कुशल हैं, विश्वरूप तथा ब्रह्ममय हैं। इस विश्वके बीज (आदि कारण) हैं। जगत् आपका स्वरूप है। आप ही तीनों लोकोंका संहार करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। तीनों वेद आपके ही स्वरूप—आपके ही तत्त्वके प्रतिपादक हैं। आप सम्पूर्ण बुद्धियोंके दाता, बुद्धिके प्रकाशक और देवताओंके अधिपति हैं। नित्य-बोधस्वरूप गणेश! आप नित्य, सत्य और निरीह हैं; आपको सदा-सर्वदा नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तवन करते हुए सुधांशुने अन्तमें कहा—
अज्ञानदोषेण कृतोऽपराधस्तं क्षन्तुमर्होऽसि दयाकर त्वम्।
तवापि दोषः शरणागतस्य त्यागे महात्मन् कुरु मेऽनुकम्पाम्॥
(गणेशपु० १। ६१। ४४)

'दयानिधान! मैंने अज्ञान-दोषके कारण आपके प्रति अपराध किया है; उसके लिये आप क्षमा प्रदान करें। महात्मन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। यदि आप शरणागतका त्याग कर देंगे तो यह आपके लिये भी दोषकी बात होगी; अतः मुझपर कृपा कीजिये।'

चन्द्रमाके गद्‌गदकण्ठसे किये गये स्तवन और दण्डवत्-प्रणामसे संतुष्ट होकर परम प्रभु गणेशने कहा—'चन्द्रदेव! पहले तुम्हारा जैसा रूप था, वैसा ही हो जायगा; किंतु जो मनुष्य भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको तुम्हें देख लेगा, वह निश्चय ही अभिशापका भागी होगा। उसे पाप, हानि एवं मूढ़ताका सामना करना पड़ेगा। उस तिथिको तुम अदर्शनीय रहोगे।[2] कृष्णपक्षकी चतुर्थीको जो लोगोंद्वारा

१. 'गं', 'ग्लौं' एवं 'गौं' यह एकाक्षरी मन्त्र है। (शारदातिलक, श्रीविद्यार्णव-तन्त्र)

२. भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको चन्द्रदर्शनजनित दोष दूर करनेके लिये श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धके ५७ वें अध्यायमें वर्णित स्यमन्तकहरणका प्रसंग पढ़ना या सुनना चाहिये।

व्रत किया जाता है, उसमें तुम्हारा उदय होनेपर यत्नपूर्वक मेरी और तुम्हारी पूजा होनी चाहिये। उस दिन लोगोंको तुम्हारा दर्शन अवश्य करना चाहिये; अन्यथा व्रतका फल नहीं मिलेगा। तुम एक अंशसे मेरे ललाटमें स्थित रहो, इससे मुझे प्रसन्नता होगी। प्रत्येक मासकी द्वितीया तिथिको लोग तुम्हें नमस्कार करेंगे।'

परम प्रभु गजाननके वर-प्रभावसे सुधांशु पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एवं वन्द्य हो गये।

~~~○~~~

श्रीगणेशके विभिन्न अवतार

(श्रीगणेशपुराणके आधारपर)

जब-जब आसुरी शक्तियोंके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-सम्पन्न सुर-समुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हें पीड़ित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र अनीति, अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एवं अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मंगल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भार-हरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं। वे गुणतत्त्वविवेचक आदिदेव गजमुख दैत्योंका विनाश कर देवताओंका अपहृत अधिकार उन्हें लौटाते हैं तथा प्रत्येक रीतिसे सद्धर्मकी स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है।

प्रत्येक युगमें उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्योंका संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

कृतयुगमें ये परमप्रभु गजानन सिंहारूढ 'महोत्कट विनायक' के नामसे प्रख्यात हुए, उन महातेजस्वी प्रभुके दस भुजाएँ थीं; त्रेतामें ये मंगल-मोद-प्रदाता गणेश मयूरारूढ 'मयूरेश्वर' के नामसे प्रसिद्ध हुए; उनकी कान्ति शुभ्र और भुजाएँ छः थीं; द्वापरमें मूषकवाहन शिवपुत्रकी 'गजानन' या 'गौरीपुत्र' के नामसे ख्याति हुई; उनकी अंग-कान्ति अरुण थी एवं उनके चार भुजाएँ थीं तथा कलिके अन्तमें ये धर्मरक्षक गजानन अश्वारोही 'धूम्रकेतु' के नामसे प्रसिद्ध होंगे, उनके दो भुजाएँ होंगी तथा उनकी अंग-कान्ति धूम्रवर्णकी होगी।

(१) महोत्कट-विनायक

असुर देवान्तक और नरान्तकका जन्म

अंगदेशके एक प्रसिद्ध नगरमें* रुद्रकेतु नामक एक वेदज्ञ ब्राह्मण निवास करते थे। वे अग्निहोत्री, सर्वागमविशारद, सुर-गो-द्विज-पूजक एवं ईश्वरोपासक थे। उनकी अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्ना सदाचारिणी पत्नीका नाम शारदा था। कुछ दिनों बाद शारदोत्पललोचना सती शारदा गर्भवती हुई। पत्नीमें अत्यधिक प्रीतिके कारण उसके विद्या-बुद्धि-सम्पन्न पति (द्विजवर रुद्रकेतु) -ने उसका प्रत्येक दोहद (मनोरथ) पूर्ण किया।

इस प्रकार पतिपरायणा शारदाके गर्भसे नवें मासमें अत्यन्त कान्तिमान् दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए। विशाल नेत्रवाले अजानुबाहु सुन्दर पुत्रोंको देखकर रुद्रकेतु अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने मन-ही-मन कहा—'मेरा मनुष्य-जीवन और मेरी तपस्या धन्य है। आज मेरा वंश धन्य हो गया, जो मुझे अलौकिक दो पुत्र-रत्नोंकी प्राप्ति हुई है।'

रुद्रकेतुने अर्घ्यादिके द्वारा ब्राह्मणोंका सत्कार किया। उन्होंने आदिदेव मंगलमूर्ति गणेशकी पूजा तथा स्वस्तिवाचन करवाया। ब्राह्मणोंके द्वारा मातृका-पूजन, भक्तिपूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध एवं जातकर्मादि संस्कार करवाये। तदनन्तर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की और उन्हें धन एवं रत्नोंका दान दिया। अनेक प्रकारके सुखद वाद्य बजवाये और घर-घर शर्करा वितरण कराया।

* कहते हैं, वह नगर बंगालमें पुण्यतोया जाह्नवीके तटपर अवस्थित था।
~~~

श्रेष्ठ द्विज रुद्रकेतुके आमन्त्रणपर ज्योतिषी आये। रुद्रकेतुने अर्घ्यादिके द्वारा उनका सत्कार किया। दैवज्ञोंने बालकोंका नाम देवान्तक और नरान्तक रखते हुए कहा—'निस्संदेह ये बालक परम पराक्रमी सिद्ध होंगे।'

देवान्तक और नरान्तक परम सुन्दर एवं तेजस्वी बालक थे। उनकी मनोहारिणी बाल-क्रीड़ासे माता-पिता मन-ही-मन मुदित होकर अपने भाग्यकी सराहना करते। माता-पिता ही नहीं, उन दोनों बालकोंकी सुन्दर मुखाकृति, सुन्दर देहयष्टि एवं मनोहर मुसकान देखकर सभी उनकी ओर आकृष्ट हो जाते थे। उनकी बाल-क्रीड़ाएँ मनोहर ही नहीं, साहसपूर्ण भी होतीं। यह देखकर सभी चकित होते और मन-ही-मन कहते—'ये दोनों बालक निश्चय ही महान् पराक्रमी, साहसी और यशस्वी होंगे।' शारदाके पुत्रद्वयकी प्रशंसा सुनकर उन्हें देखनेके लिये कितने ही लोग रुद्रकेतुके घर जाया करते थे।

तपस्वी रुद्रकेतुके पुत्रोंकी प्रशंसा सुनकर महामुनि नारद उनके यहाँ पधारे। मुनिवर रुद्रकेतु एवं उनकी सती पत्नी शारदाने ब्रह्मपुत्र देवर्षिके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उन्हें आसन दिया। उन्होंने अर्घ्यादिसे उनकी विधिवत् पूजा की। फिर अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर उन्हें प्रणाम करवाया।

देवर्षिने उन बालकोंको ध्यानपूर्वक देखा और फिर विप्रवर रुद्रकेतुसे कहा—'मैं आपके इन पुत्रोंकी प्रशंसा सुनकर ही इन्हें देखने आया हूँ। ये बालक वीर, धीर, पराक्रमी, त्रैलोक्यविजयी एवं यशस्वी होंगे। आप भाग्यशाली हैं, जो आपके यहाँ ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए।'

ब्रह्मपुत्रके वचन सुनकर सपत्नीक रुद्रकेतु अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने विनयपूर्वक देवर्षिसे कहा—'मुनिवर! आप इन बच्चोंपर अनुग्रह करें। ये बालक बल-वीर्य एवं ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न दीर्घजीवी हों। ये शत्रुओंको पराजित करनेवाले हों तथा त्रैलोक्यव्यापिनी कीर्ति अर्जित करें।'

मुनिवर रुद्रकेतु एवं उनकी साध्वी पत्नी शारदाके श्रद्धा-विश्वासपूर्ण वचन सुनकर देवर्षिने उन बालकोंके मस्तकपर अपना वरदहस्त फेरकर कहा—'ये देवान्तक और नरान्तक तपश्चरणके द्वारा देवाधिदेव महादेवको संतुष्ट करें।' महामुनि नारदने उन्हें पंचाक्षरी मन्त्र (**नमः शिवाय**)-का उपदेश भी कर दिया। फिर वे अपनी वीणापर मधुर हरि-नामका कीर्तन करते हुए ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हुए।

बन्धुद्वयका तप और वर-प्राप्ति

देवान्तक और नरान्तकने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी अनुमति प्राप्तकर भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये तपश्चरणार्थ एकान्त वनमें पहुँचे। वहाँ विशाल गिरि-कन्दराएँ थीं; पत्र-पुष्प और लता-जालसे मण्डित अत्यन्त शान्त वन-प्रदेश था; समीपस्थ निर्झरसे सदा जल झरता रहता था। दोनों मुनिकुमारोंने वहीं शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया।

मुनिवर रुद्रकेतुके पुत्र देवान्तक और नरान्तक एक पैरके अँगूठेपर स्थिरभावसे खड़े हो गये। वे पार्वतीवल्लभ शिवका ध्यान करते हुए देवर्षिप्रदत्त महिमामय पंचाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार भगवान् शशांकशेखरका ध्यान एवं उनके मन्त्रका जप करते हुए उन दोनों भाइयोंने दो सहस्र वर्षोंतक केवल वायुका ही आहार किया। फिर एक हजार वर्षतक केवल सूखे पत्ते खाकर वे तपमें लगे रहे। इस प्रकार उन अद्भुत मुनिकुमारोंने दस सहस्र वर्षोंतक असह्य कष्ट सहते हुए उमानाथ शिवके पावनतम मन्त्रका जप किया। फलस्वरूप उनका पांचभौतिक कलेवर दीप्तिमान् हो उठा। उनके तेजके सम्मुख प्रभाकरकी प्रभा मन्द पड़ने लगी।

उनकी तपस्यासे भक्तवत्सल करुणामूर्ति आशुतोष तुष्ट हुए। वृषारूढ़, व्याघ्राजिनधर, कर्पूरगौर, नीलकण्ठ, पंचमुख, त्रिलोचन, दशबाहु, गंगाधर प्रकट हुए। उनके मंगलमय कण्ठमें फणिहार, मुण्डमाला एवं दाहिने करकमलमें डमरू सुशोभित था। देवाधिदेव चन्द्रशेखरके मंगलकर अंगोंपर नाना प्रकारके अलंकार शोभा पा रहे थे।

देवान्तक और नरान्तकने जब गिरिजा-मन-मानस-मरालका दर्शन किया, तब वे आनन्दातिरेकसे नृत्य करने लगे। सफलमनोरथ मुनिकुमारोंने नृत्यके बाद पृथ्वीपर लेटकर त्रिपुरारिके वांछाकल्पतरु चरण-कमलोंमें प्रणाम किया। फिर उन्होंने बद्धांजलि हो विषम विलोचन शिवकी स्तुति करते हुए कहा—

'देवाधिदेव प्रभो! हम आपकी मन-वाणीसे अगोचर देवदुर्लभ मंजुल-मूर्तिके दर्शन कर रहे हैं, अतएव हमारे पितर, वंश, जीवन, जन्म, देह, नेत्र और तप—सभी सफल हुए—सभी धन्य हुए। सनकादि मुनि एवं सहस्रवदन शेष भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं। आप सर्वथा दीन-हीनको सर्वांगसुन्दर, धनाढ्य और अत्यन्त दरिद्रको राजा बना सकते हैं। आप मृतकको जीवित और जीवितको मृतक-तुल्य करनेमें समर्थ हैं। सर्वसमर्थ महामहिमामय करुणावरुणालय! आपके लिये कुछ भी असम्भव नहीं। आप हमपर कृपा करें।'

'मैं तुम्हारे तप और स्तवनसे संतुष्ट हूँ।' प्रसन्न होकर सर्वसौभाग्यमूल वृषभध्वजने मुनि रुद्रकेतुके पुत्रोंसे कहा—'तुम अभीष्ट वर माँगो।'

'देवाधिदेव! सर्वेश्वर! जगदीश्वर! यदि आप हमारे तपसे संतुष्ट हैं तो कृपापूर्वक हमें वर प्रदान कीजिये।' देवान्तक और नरान्तकने हर्ष-गद्गद वाणीमें वर-याचना की—'देव, देवेन्द्र, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा और किंनरोंसे, सभी शस्त्रोंसे, पशु, ग्रह, नक्षत्र, भूत, सर्प, कृमि, कीट (विधातारचित सृष्टिमें किसी भी प्राणीसे) एवं वन या ग्राममें हमारी मृत्यु न हो। देवेश्वर! आप हमें त्रैलोक्यका राज्य एवं अपने चरणोंकी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें।'

भगवान् भूतनाथने अपना पाणिपंकज देवान्तक और नरान्तकके मस्तकपर फेरते हुए कहा—'तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी होंगी। तुमलोग त्रिलोकीपर शासन करते हुए सृष्टिके सभी प्राणियोंसे निर्भय रहोगे।'

यह वरदान दे आशुतोष अन्तर्धान हो गये। सफल-मनोरथ देवान्तक और नरान्तक घर लौटे। उन्होंने अपने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें अपने तप, शिव-दर्शन एवं वर-प्राप्तिका विवरण सुनाया।

'तुमलोगोंने अपने जीवनको पवित्र एवं कुलको यशस्वी किया।' पुत्रोंके मस्तक सूँघकर पिताने उन्हें अपने अंकमें भर लिया।

हर्षविह्वल मुनि रुद्रकेतु एवं उनकी पतिपरायणा सहधर्मिणी शारदाने ब्राह्मणों एवं तपस्वियोंको आदरपूर्वक आमन्त्रित कर उनकी पूजा की। उन्हें सुन्दर-सुस्वादु भोजन कराकर अनेक प्रकारकी बहुमूल्य दक्षिणा प्रदान की। ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर रुद्रकेतुके यशस्वी पुत्रोंको आशीर्वाद दिया और ब्राह्मण-दम्पतिकी प्रशंसा करते हुए वे अपने-अपने आश्रमोंके लिये प्रस्थित हुए।

भुजगेन्द्रहार शिवके वर-प्रभावसे त्रैलोक्यविजयी देवान्तक और नरान्तक अत्यन्त शक्तिशाली और पराक्रमी हो गये। एक दिन देवान्तकने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की। उन्हें पुष्कल दक्षिणासे संतुष्ट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर उसने अपने भाई नरान्तकसे कहा—'भगवान् शंकरके वरदानसे मैं स्वर्गपर विजय प्राप्त करने जाता हूँ; तुम मृत्युलोक और पातालको अपने अधीन कर लो।'

देवान्तक शुभ दिन और शुभ मुहूर्त्त देखकर अमरावतीपर जा चढ़ा। वहाँ वह नन्दनवनको नष्ट करने लगा। देवताओंने उससे युद्ध किया, पर वे सभी पराजित हो गये। स्वयं वज्रायुध शचीपतिने उसका सामना किया, किंतु देवान्तकके पौरुषके सम्मुख वे टिक नहीं सके। उनका कठोर वज्र खण्डित हो गया। सुरेन्द्रने यत्नपूर्वक प्राण-रक्षा की। देवताओंने भागकर सुमेरु-गिरि-गह्वरमें शरण ली। वे कन्द-मूलका आहार करते हुए दुःखपूर्वक जीवन व्यतीत करनेको विवश हुए*।

पृथ्वीसे असंख्य असुर स्वर्ग पहुँचे। उन असुरों एवं अधीनस्थ सुरोंको देवान्तकने धन और अलंकार प्रदान किये। अनेक तीर्थोंसे जल आये। शंख, भेरी, दुन्दुभि और मृदंगादि वाद्य बजने लगे। ऋषियोंने मन्त्रपाठ करते हुए वीरवर देवान्तकको स्वर्गाधिप-पदपर अभिषिक्त किया।

इधर असुर-सैन्य लेकर नरान्तकने पृथ्वीके नृपतियोंपर आक्रमण किया। कितने नरेश पराक्रमी असुरके हाथों मारे गये और कितने राजाओंने उसकी शरण ग्रहण की। प्रबल असुरके आतंकसे कितने नरपाल अपना राज्य छोड़कर यत्र-तत्र पलायित हो गये। समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण भूमण्डल नरान्तकके अधीन हो गया। ऋषि-मुनियोंने यज्ञ और स्वाध्याय छोड़कर पर्वतोंकी गुफाओंमें आश्रय लिया।

* सर्वे सुरा गता हैमगिरिगह्वरमुत्तमम्। कन्दमूलफलान्यादन्निन्युर्दुःखेन वासरान्॥

(गणेशपु० २ । ३ । ३९)

तदनन्तर नागलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिये नरान्तकने असुरोंकी युद्ध-कुशल वीर वाहिनी और कूटनीतिमें दक्ष एवं परमधूर्त कपटशिरोमणि असुरोंको भेजा। असुरोंने गरुड़का वेष धारण किया और नागलोकमें उपद्रव प्रारम्भ कर दिया। असंख्य वीर नाग काल-कवलित हुए। नागलोक त्रस्त हो गया। नागपत्नियाँ क्रन्दन करने लगीं। इससे विवश होकर नागलोकने नरान्तककी अधीनता स्वीकार की। सहस्र फणधारी शेषनागने नरान्तकको वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

नरान्तकने एक वीर दैत्यको नागलोकका अधिपति बनाया। उसने सम्पूर्ण पातालमें घोषणा की—'असुर-शासनमें सभी नाग शान्तिपूर्वक रहें। किसी भी नागके द्वारा नियमोल्लंघन होनेपर सम्पूर्ण नागजाति दण्डित होगी।'

भूतल और रसातलमें नरान्तकके शासनका संवाद प्राप्तकर देवान्तक अत्यन्त पुलकित हुआ और अपने भाईके स्वर्गाधिप होनेके समाचारसे नरान्तककी प्रसन्नताकी भी सीमा न रही। असुर भ्रातृद्वय त्रैलोक्यका निष्कण्टक राज्य करने लगे। देवान्तक स्वर्गकी दुर्लभ बहुमूल्य वस्तुओंका प्रेमोपहार पृथ्वीपर अपने भाईके पास भेजता और नरान्तक भूतल एवं रसातलकी उत्तमोत्तम सामग्रियाँ अपने स्वर्गाधिप बन्धुके पास भेजता रहता। इस प्रकार देवान्तक और नरान्तकका सर्वत्र एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित हो गया। देवता, तपस्वी, ऋषि-मुनि एवं सदाचारी ब्राह्मण यत्र-तत्र अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन-निर्वाह कर रहे थे।

*   *   *

महोत्कटका प्राकट्य

महामुनि कश्यप स्रष्टाके मानसपुत्र थे। वे अत्यन्त बुद्धिमान्, पुण्यात्मा, धर्मशील, तपस्वी, संयतेन्द्रिय, कारुणिक, दुःखशोकावमर्दन, भूत-भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता, वेद-वेदान्त-शास्त्रोंमें निष्णात, सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ एवं मनोनिग्रही थे। उनकी परम पतिव्रता पत्नी अदिति समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एवं अदीना थीं। अद्भुत शीलवती होनेके कारण वे महर्षि कश्यपकी विशेष कृपाभाजन थीं। उन्हीं अनुपमगुणगणसम्पन्ना अदितिकी कोखसे इन्द्रादि देव उत्पन्न हुए थे। माता अदिति अपने देवपुत्रोंके पराभव एवं यातनासे मन-ही-मन चिन्तित—दुःखी रहने लगीं।

एक बारकी बात है, महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर चुके थे। सुगन्धित यज्ञ-धूम आकाशमें फैला हुआ था। इसी समय पुण्यमयी अदिति पतिके समीप पहुँचीं। परम तपस्वी पति कश्यपके चरणोंमें प्रणाम कर उन्होंने निवेदन किया—'स्वामिन्! साध्वी स्त्रियोंके लिये पतिके बिना कोई गति नहीं। अतएव मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ। यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो प्रार्थना करूँ?'

'कल्याणि! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, निस्संकोच कहो।' महर्षि कश्यपने स्नेहसिक्त वाणीमें उत्तर दिया।

'इन्द्रादि देवगणोंको तो मैंने पुत्ररूपमें प्राप्त किया है।' साध्वी अदितिने अपने पति महर्षि कश्यपसे विनयपूर्वक कहा—'किंतु पूर्ण परात्पर, सच्चिदानन्द परमात्मा मेरे पुत्ररूपसे प्राप्त हों और मैं उनकी सेवा करूँ, यह कामना मेरे मनमें बार-बार उदित हो रही है। वे परम प्रभु किस प्रकार मेरे पुत्र होकर मुझे कृतकृत्य करेंगे, आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट कीजिये।'*

'प्रिये! ब्रह्मादि देवताओं और श्रुतियोंके लिये भी अगोचर, निर्गुण, निरहंकार, निष्काम, निर्विकल्प, मायाके आधार, मायातीत, मायाविस्तारक, कार्यकारणकारण, करुणामय प्रभु कठोर तपश्चरणके बिना साकार-विग्रह कैसे धारण करेंगे?' अपनी पतिव्रता पत्नीकी सर्वोत्तम कामनासे अतिशय प्रसन्न होकर महर्षि कश्यपने उत्तर दिया।

'देव! यह पवित्रतम अनुष्ठान मैं किस प्रकार करूँ?' सती अदितिने सोल्लास पूछा—'किसका ध्यान और किस मन्त्रका जप करूँ?'

महर्षि कश्यपने अपनी प्रिय पत्नी अदितिको विनायकका ध्यान, उनका मन्त्र और न्याससहित पुरश्चरणकी पूरी विधि विस्तारपूर्वक बता दी और उन्हें

---

* परमात्मा चिदानन्द ईश्वरो यः परात्परः। यदा स्वपुत्रतामेष्येत्तदा मे स्यात् स्थिरं मनः॥
तस्य सेवां कर्तुमीहे उपायं तत्र मे वद। येन स पुत्रतामेष्येत् कृतकृत्यं मनो भवेत्॥
(गणेशपु० २। ५। ११-१२)

इस उपासनाके लिये प्रोत्साहित भी किया।

महाभागा अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने परम पवित्र तपस्वी पतिके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम कर अत्यन्त आदरपूर्वक उनकी पूजा की। फिर उनकी आज्ञा प्राप्तकर कठोर तप करनेके लिये प्रस्थित हुईं।

देवमाता अदिति एकान्त शान्त अरण्यमें पहुँचीं। वहाँ उन्होंने स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किये। पवित्र आसनपर बैठकर उन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंका निरोध कर लिया। फिर सविधि न्यास कर देवाधिदेव विनायकका ध्यान करती हुई प्रीतिपूर्वक उनके मन्त्रका जप करने लगीं।

भगवती अदिति देवदेव विनायकके ध्यान और जपमें अत्यन्त तन्मय हो गयीं। वे जप-ध्यानपरायणा देवमाता अदिति सर्वथा निराहार रहती थीं; केवल वायुपर उनका शरीर टिका हुआ था। उनकी उस कठिन तपस्याके प्रभावसे वनके समस्त प्राणी अपना स्वाभाविक वैरभाव त्यागकर निर्वैर हो गये।

'पता नहीं, माता अदिति क्या चाहती हैं?' सोचकर देवता भयभीत होने लगे। इस प्रकार उन्हें कठोर तपश्चरणका दुस्सह कष्ट सहते हुए सौ वर्ष व्यतीत हो गये।

भगवती अदितिकी सुदृढ़ प्रीति एवं कठोर तपसे कोटि-कोटि भुवनभास्करकी प्रभासे भी अधिक परमतेजस्वी, कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देवदेव गजानन विनायक उनके सम्मुख प्रकट हो गये। उनके दस भुजाएँ थीं। कानोंमें अनुपम कुण्डल झिलमिला रहे थे। उनकी दोनों पत्नियाँ सिद्धि और बुद्धि उनके साथ थीं। उनके मंगल कण्ठमें मोतियोंकी माला सुशोभित थी। उन्होंने परशु और कमल धारण किये थे। उनकी कटिमें स्वर्णिम कटिसूत्र एवं उनके ललाटमें कस्तूरीका तिलक लगा था। उन्होंने नाभिपर सर्प धारण कर रखा था। उन मंगलविधायक प्रभुके मंगल-विग्रहपर दिव्याम्बर शोभा दे रहे थे।[१]

परशुधर दशभुज विनायकके इस परम तेजस्वी रूपका दर्शन करते ही महिमामयी तपस्विनी अदिति भयभीत होकर काँपने लगीं। उनके नेत्र मुँद गये और वे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ीं।

'तुम दिवारात्रि जिनका ध्यान एवं जप करती हो, मैं वही हूँ।' माता अदितिको चेतना एवं धैर्य प्रदान करते हुए परमप्रभु विनायकने कहा—'मैं तुम्हारे अत्यन्त घोर तपसे संतुष्ट होकर तुम्हें वर प्रदान करने आया हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करूँगा।'

'प्रभो! आप ही जगत्के स्रष्टा, पालक और संहारकर्ता हैं।' अपने इष्टको सम्मुख देखकर देवमाता अदितिने उनके चरणकमलोंमें प्रणाम किया और फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रेमगद्गद वाणीमें कहने लगीं— 'आप सर्वेश्वर, नित्य, निरंजन, प्रकाशस्वरूप, निर्गुण, निरहंकार, नाना रूप धारण करनेवाले और सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं। सौम्यरूप प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरी आकांक्षाकी पूर्ति करना चाहते हैं तो कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमें प्रकट होकर मुझे कृतार्थ करें। आपके द्वारा दुष्टोंका विनाश एवं साधु-परित्राण हो और सामान्यजन कृतकृत्य हो जायँ।'[२]

'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' वांछाकल्पतरु विनायकने तुरंत कहा—'साधुजनोंका रक्षण, पृथ्वीके कण्टकरूप दुष्टोंका विनाश एवं तुम्हारी इच्छाकी पूर्ति करूँगा।'[३]

---

१. तेजोराशिः पुरस्तस्याः सूर्यकोटिसमप्रभः। गजाननो दशभुजः कुण्डलाभ्यां विराजितः॥
कामातिसुन्दरतनुः सिद्धिबुद्धिसमायुतः। मुक्तामालां च परशुं बिभ्रद्यो मेघपुष्पजम्॥
काञ्चनं कटिसूत्रं च तिलकं मृगनाभिजम्। उरगं नाभिदेशे तु दिव्याम्बरविराजितम्॥
(गणेशपु० २।५।२९—३१)

२. यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम। तदा मे पुत्रतां याहि ततो मे कृतकृत्यता॥
ततस्ते सेवनं यास्ये साधूनां पालनं भवेत्। दुष्टानां निधनं देव लोकानां कृतकृत्यता॥
(गणेशपु० २।५।४१-४२)

३. अहं ते पुत्रतां यास्ये पास्ये साधूंश्च कण्टकान्। हनिष्ये सकलां वाञ्छां पूरयिष्ये तवापि च॥
(गणेशपु० २।५।४३)

इतना कहकर देवदेव विनायक अन्तर्धान हो गये।

देवमाता अदिति अपने आश्रमपर लौटीं। उन्होंने अपने पतिके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। महर्षि कश्यप आनन्दमग्न हो गये।

*   *   *

देवान्तक और नरान्तकके कठोरतम क्रूर शासनमें समस्त देवसमुदाय और ब्राह्मण अत्यन्त भयाक्रान्त हो कष्ट पा रहे थे। वे अधीर और अशान्त हो गये थे। दुष्ट दैत्योंके भारसे पीड़ित व्याकुल धरित्री कमलासनके समीप पहुँची। हाथ जोड़े साश्रुनयना धराने चतुर्मुखसे निवेदन किया—'समस्त देवताओंसहित सहस्राक्ष एवं ऋषिगण गिरि-गुफाओंमें छिपकर यन्त्रणा पा रहे हैं। यज्ञ-व्रतादि स्थगित हो गये। दानवकुलके असह्य भारसे व्यथित होकर मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। आप दुष्ट दैत्योंके विनाशका यत्न कीजिये, अन्यथा मैं वनों, पर्वतों और सृष्टिके सम्पूर्ण प्राणियोंसहित रसातलमें चली जाऊँगी।'

'स्वयं मैं, समस्त लोकपाल, इन्द्रादि देवगण और ऋषिगण स्वधा-स्वाहारहित हो अतिशय दुःख पा रहे हैं।' विधाताने धरित्रीकी वाणी सुनकर कहा—'देवि! हम सभी स्थान, मन्त्र और आचारसे भ्रष्टप्राय हो गये हैं; अतएव इस विपत्तिसे त्राण पानेके लिये हम सभी करुणामय देवदेव विनायककी प्रार्थना करें।'

ब्रह्माके वचन सुन आदिदेव विनायकको संतुष्ट करनेके लिये उनके साथ पृथ्वी, देवता और ऋषिगण हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे—

नमो नमस्तेऽखिललोकनाथ नमो नमस्तेऽखिललोकधामन्।
नमो नमस्तेऽखिललोककारिन्नमो नमस्तेऽखिललोकहारिन्॥
नमो नमस्ते सुरशत्रुनाश नमो नमस्ते हतभक्तपाश।
नमो नमस्ते निजभक्तपोष नमो नमस्ते लघुभक्तितोष॥
निराकृते नित्यनिरस्तमाय परात्पर ब्रह्ममयस्वरूप।
क्षराक्षरातीतगुणैर्विहीन दीनानुकम्पिन् भगवन्नमस्ते॥
निरामयायाखिलकामपूर निरञ्जनायाखिलदैत्यदारिन्।
नित्याय सत्याय परोपकारिन् समाय सर्वत्र नमो नमस्ते॥

(गणेशपु० २। ६। १०—१३)

'हे सर्वलोकेश्वर! आपको नमस्कार है। हे सर्व लोकाधार प्रभो! आपको बार-बार नमस्कार है। हे निखिल सृष्टिके कर्ता एवं निखिल सृष्टिके संहारक! आपको नमस्कार है। देव-शत्रुओंके विनाशक एवं भक्तोंका पाश नष्ट करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। आप अपने भक्तोंका पोषण करते एवं उनकी थोड़ी-सी भक्तिसे संतुष्ट हो जाते हैं; आपको नमस्कार है। आप निराकार एवं परात्पर ब्रह्मस्वरूप, क्षर-अक्षरसे अतीत, सत्त्वगुणादिसे रहित एवं दीनजनोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं; आपको बार-बार नमस्कार है। आप निरामय, सम्पूर्ण कामनाओंसे पूर्ण, निरंजन, सम्पूर्ण दैत्योंका दलन करनेवाले, नित्य, सत्य, परोपकारी और सर्वत्र समरूपसे निवास करते हैं; आपको हमारा बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तवन करते हुए देवता और मुनियोंने दुःखसे अत्यन्त व्याकुल होकर पुनः विनायककी स्तुति करते हुए कहा—

हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधास्वाहाविवर्जितम्।
वयं मेरुगुहां याता आरण्याः पशवो यथा॥
अतोऽमुं त्वं महादैत्यं जहि विश्वम्भराधुना।

(गणेशपु० २। ६। १५-१५$\frac{१}{२}$)

'देव! सम्पूर्ण जगत् हाहाकारसे व्याप्त एवं स्वधा और स्वाहासे रहित हो गया है। हम सब पशुओंकी तरह सुमेरुपर्वतकी कन्दराओंमें रह रहे हैं। अतएव हे विश्वम्भर! आप इन महादैत्योंका विनाश करें।'

इस प्रकार करुण प्रार्थना करनेपर देवताओं और ऋषियोंने आकाशवाणी सुनी—

कश्यपस्य गृहे देवोऽवतरिष्यति साम्प्रतम्।
करिष्यत्यद्भुतं कर्म पदानि वः प्रदास्यति॥
दुष्टानां निधनं चैव साधूनां पालनं तथा।

(गणेशपु० २। ६। १७-१७$\frac{१}{२}$)

'सम्प्रति देवदेव गणेश महर्षि कश्यपके घरमें अवतार लेंगे और अद्भुत कर्म करेंगे। वे ही आपलोगोंको पूर्वपद भी प्रदान करेंगे। वे दुष्टोंका संहार एवं साधुओंका पालन करेंगे।'

'देवि! तुम धैर्य धारण करो।' आकाशवाणीसे आश्वस्त होकर पद्मयोनिने मेदिनीसे कहा—'समस्त देवता पृथ्वीपर जायँगे और निस्संदेह महाप्रभु विनायक अवतार ग्रहणकर तुम्हारा कष्ट निवारण करेंगे।'

पृथ्वी, देवता तथा मुनिगण विधाताके वचनसे प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

* * *

कुछ समय बाद सती कश्यपपत्नी अदितिने गर्भ धारण किया। उनके शरीरका तेज उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। इस प्रकार नौ मास पूरे हुए। शुभ मुहूर्त, मंगलमयी वेलामें महाभागा अदितिके सम्मुख अद्‌भुत, अलौकिक, परमतत्त्व प्रकट हुआ।

दशभुजो बहुबलः कर्णकुण्डलमण्डितः।
कस्तूरीविलसद्भालो मुकुटभ्राजिमस्तकः॥
सिद्धिबुद्धियुतः कण्ठे रत्नमालाविभूषितः।
चिन्तामणिलसद्वक्षा जपापुष्पारुणाधरः॥
उन्नसो भ्रुकुटीचारुललाटो दन्तदीप्तिमान्।
देहकान्त्या हततमा दिव्याम्बरयुतः शुभः॥

(गणेशपु० २। ६। २३—२५)

'वह अत्यन्त बलवान् था। उसके दस भुजाएँ थीं। कानोंमें कुण्डल, ललाटपर कस्तूरीका शोभाप्रद तिलक और मस्तकपर मुकुट सुशोभित था। सिद्धि-बुद्धि साथ थीं और कण्ठमें रत्नोंकी माला शोभा देती थी। वक्षपर चिन्तामणिकी अद्‌भुत सुषमा थी और अधरोष्ठ जपापुष्प-तुल्य अरुण थे। नासिका ऊँची थी और सुन्दर भ्रुकुटिके संयोगसे ललाटकी सुन्दरता बढ़ गयी थी। वह दाँतसे दीप्तिमान् था। उसकी अपूर्व देहकान्ति अन्धकारको नष्ट करनेवाली थी। उस शुभ बालकने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था।'

महिमामयी अदिति उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर चकित और आनन्द-विह्वल हो रही थीं। उस समय परम तेजस्वी अद्‌भुत बालकने कहा—'माता! तुम्हारी तपस्याके फलस्वरूप मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे आया हूँ। मैं दुष्ट दैत्योंका संहार कर साधुपुरुषोंका हित एवं तुम्हारी कामनाओंकी पूर्ति करूँगा।'

'आज मेरे अद्‌भुत पुण्य उदित हुए हैं, जो साक्षात् गजानन मेरे यहाँ अवतरित हुए।' हर्ष-विह्वल माता अदितिने विनायकदेवसे कहा—'यह मेरा परम सौभाग्य है; जो चराचरमें व्याप्त, निराकार, नित्यानन्दमय, सत्यस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर गजानन मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। किंतु अब आप इस अलौकिक एवं परम दिव्य रूपका उपसंहार कर प्राकृत बालककी भाँति क्रीड़ा करते हुए मुझे पुत्रसुख प्रदान करें।'*

तत्क्षण अदितिके सम्मुख अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट सशक्त बालक धरतीपर तीव्र क्रन्दन करने लगा। उसके रुदनकी ध्वनि आकाश, पाताल और धरतीपर दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी। उस अद्‌भुत बालकके रोदनसे धरती काँपने लगी। वन्ध्या स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं। नीरस वृक्ष सरस हो गये। देवसमुदायसहित इन्द्र आनन्दित और दैत्यगण भयभीत हो गये।

महर्षि कश्यपकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उन्होंने हर्षोल्लासपूर्वक शास्त्रविधिसे बालकका जातकर्म-संस्कार करवाया; नालच्छेदन आदि कराये। उन्होंने ब्राह्मणों और मुनियोंको विविध प्रकारके तुष्टिकर दान दिये और घर-घर मधुर बायन भिजवाये।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिके अंकमें बालक आया जानकर ऋषि-मुनि एवं ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी तथा देवगण सभी प्रसन्न थे। बालक अद्‌भुत और तेजस्वी तो था ही, वह अत्यन्त बलवान् था। उसकी मांसपेशियाँ सुदृढ़ थीं एवं उसका दीप्तिमय मुख प्रभावशाली था। बालकके स्वरूपके अनुसार पिता कश्यपने उसका नामकरण किया—'महोत्कट।'

तेजस्वी महोत्कटकी ख्याति सुनकर उनके दर्शनार्थ वसिष्ठ-वामदेव आदि परमर्षि भी महर्षि कश्यपके आश्रमपर पहुँचे। मुनि कश्यपने उनकी आसन, पाद्य और अर्घ्यके द्वारा प्रीतिपूर्वक पूजा की। उन्हें गायें प्रदान कीं; फिर हाथ जोड़कर श्रद्धापूरित शब्दोंमें कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो आप-जैसे तपोधनोंने यहाँ पधारनेका अनुग्रह किया। मुझे आज्ञा प्रदान करें कि मैं आपका क्या कार्य करूँ।'

'मुनिवर! देवर्षि नारदके द्वारा आपके अद्‌भुत, अलौकिक, परम तेजस्वी और लोकोद्धारक पुत्र महोत्कटके जन्मका समाचार पाकर हम उसे देखने आये हैं।' वसिष्ठने कहा—'यहाँ आनेका यही प्रयोजन है।'

माता अदिति तुरंत अपने प्राणप्रिय पुत्र महोत्कटको ले आयीं। वसिष्ठने बालकके भाल, करकमल एवं पाद-पंकजोंको ध्यानपूर्वक देखा और वे बोले—'इस बालकमें शुभ बत्तीस गुण विद्यमान हैं। यह महोत्कट जगत्‌के मंगलके लिये अत्यन्त भयानक कर्म करेगा। इस परम तेजस्वी एवं बल-पौरुष-सम्पन्न पराक्रमी

* इदं रूपं परं दिव्यमुपसंहर साम्प्रतम्। प्राकृतं रूपमास्थाय क्रीडस्व कुहको यथा॥ (गणेशपु० २ । ६। ३५)

बालकके रूपमें आदि-मध्यान्तहीन साक्षात् विनायक ही अवतरित हुए हैं। इस बालकके जीवनमें रह-रहकर अनेक आपदाएँ आयेंगी; किंतु वे सभी शान्त हो जायँगी। आपलोग सावधानतापूर्वक इसकी रक्षा करें।'

महर्षि वसिष्ठने कश्यपनन्दन महोत्कटके ध्वज-वज्रांकुश-शोभित अरुण चरणकमलोंकी पूजा की; फिर उन्होंने महोत्कटकी स्तुति करते हुए कहा—'हे देव! असुरोंके अनाचारसे त्रैलोक्य पीड़ित है। आप कृपापूर्वक दुष्ट दानव-कुलका दलन कर साधु-परित्राण करें और भूतलका भार उतारें*।'

समागत मुनियोंने पुनः-पुनः अदितिनन्दन महोत्कटके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर अपने-अपने आश्रमोंके लिये लौट गये।

प्रख्यात महर्षि वसिष्ठ-वामदेवादिके आगमन एवं उनके शुभ वचनसे कश्यपाश्रमके समीप रहनेवाले सभी ब्रह्मचारियों, ऋषियों एवं उनकी पत्नियोंके मनमें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि निश्चय ही भाग्यवती अदितिके अंकमें चराचरनायक आदिदेव विनायक ही महोत्कटके रूपमें क्रीड़ा कर रहे हैं और इनके द्वारा अनीति-अधर्मके मूलभूत असुरोंका उच्छेद होगा। उनका कुटिल-क्रूर शासन समाप्त हो जायगा और त्रैलोक्यमें सुख-शान्ति स्थापित होगी। पुनः वेदपाठ और यज्ञादि कर्म निर्विघ्न होने लगेंगे।

महोत्कटकी बाल-लीला

इतना ही नहीं, यह संवाद कश्यपाश्रमसे देश-देशान्तरोंमें फैल गया। असुरोंके मनमें अदितिके कठोर तपके समय ही शंका हुई थी; किंतु इस समाचारसे तो उनके मनमें दृढ़ निश्चय हो गया कि 'यह ऋषिपुत्र दनुज-कुलका शत्रु सिद्ध होगा। यह महोत्कट देवताओंद्वारा हमारे राज्यपर आक्रमण करनेका माध्यम बन सकता है।' इस कारण असुरोंने परामर्श कर यह निर्णय किया कि 'घातक तरुका अंकुर बढ़कर विशाल वृक्ष हो, इसके पूर्व ही उसे नष्ट कर दिया जाय।'

असुरराजने महोत्कटको मार डालनेके लिये 'विरजा' नामकी एक क्रूर राक्षसीको भेजा। वह अत्यन्त शक्तिशालिनी, परम धूर्त्ता एवं कुटिला थी। राक्षस-वंशके मंगलके लिये उसने कश्यपाश्रममें प्रवेश किया। महोत्कटका तो कुछ नहीं बिगड़ा, किंतु विरजाको ही मृत्यु-मुखमें प्रवेश करना पड़ा। उन्होंने उसे निजधाम प्रदान किया।

शक्तिशालिनी विरजाकी मृत्युसे असुर चिन्तित हुए। उन्होंने 'उद्धत' और 'धुन्धुर' नामक दो क्रूर राक्षसोंको महोत्कटकी हत्याके लिये भेजा। उन दोनों असुरोंने अत्यन्त मनोहर शुकका रूप ग्रहण किया। उनके विषाक्त चंचुपुट अत्यन्त तीक्ष्ण थे। वे महर्षि कश्यपके आश्रममें वहाँ पहुँचे, जहाँ माता अदिति महोत्कट विनायकको स्तनपान करा रही थीं।

'मुझे खेलनेके लिये वे शुक दे।' सुन्दर शुकोंको देखते ही महोत्कटने दुग्धपान छोड़कर अपनी माँ अदितिसे कहा।

वह बोली—'ये शुक आकाशमें उड़नेवाले पक्षी हैं; केवल भूमिपर चल सकनेवाली कोई स्त्री इन्हें कैसे पकड़ सकती है?'

बालकको इस उत्तरसे संतोष नहीं हुआ। उसने माताकी गोदसे उतर बाजकी तरह झपटा मारकर दोनों पक्षियोंको पकड़ लिया। यह देख उन दोनोंने पंखों और चोंचोंसे मार-मारकर महोत्कटको अत्यन्त घायल कर दिया। तब मुनिकुमारने उन शुकोंको बलपूर्वक धरतीपर दे मारा। वे शुक अपने असुररूपको प्रकट करके प्राणशून्य हो गये। माताने असुरके विशाल शवपर स्थित हुए अपने बालकको शीघ्रतापूर्वक उठा लिया। कश्यपमुनिने बालकके अभ्युदयके लिये शान्तिकर्म किया। बालकका अलौकिक पराक्रम देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अदितिको उपालम्भ देते हुए कहा—'तुमने बच्चेको अकेला कैसे छोड़ दिया। जगदीश्वरने आज इसकी रक्षा की है। यह निशाचरोंके रहनेका स्थान है, यहाँ मेरा शिशु कैसे जीवित रह सकेगा।'

यों बात-चीत करके मुनि-दम्पतिने बालकको नहलाया और स्वयं भी स्नान करके वे आश्रममें जा विश्राम करने लगे।

महोत्कट चार वर्षके हुए। अपने बुद्धि-कौशल एवं अलौकिक कर्मोंसे वे आश्रमवासियोंके प्राणप्रिय और सम्पूर्ण आशाओंके केन्द्र बन गये।

आश्रमके निकट ही तमाल, देवदारु, जम्बू, आम्र

* प्रार्थयामास सर्वस्तं भूभारहरणं कुरु। साधूनां पालनं देव दुष्टदानवघातनम्॥ (गणेशपु० २। ७। १०)

और कटहलके सघन वृक्ष थे। उनके मध्य एक सरोवर था। सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और मधुर था, किंतु उसमें बहुत-से मत्स्य और मगर रहते थे। उनसे आश्रमवासियोंको बड़ा कष्ट होता था। नक्रके भयसे आश्रमवासी उसमें स्वच्छन्द स्नान तो कर ही नहीं सकते थे, उसके तटपर संध्या-वन्दन करने एवं जल भरनेमें भी डरते थे।

एक दिनकी बात है। सोमवती अमावास्या थी और व्यतीपातका योग। इस उत्तम पर्वपर अदितिदेवी सरोवरमें स्नान करनेके लिये आयीं। माताके साथ शिशु महोत्कट भी वहाँ आया था। माँने उसे जलाशयके तटपर बिठा दिया और वे स्वयं आकण्ठ-जलमें स्नान करनेके लिये उतर गयीं। तब बालकने भी उछलकर माताके पास जानेकी चेष्टा की, परंतु वह पानीमें गिर पड़ा और उसीमें खेलने लगा। इतनेमें ही एक नक्रने आकर उसे पकड़ लिया। जलके भीतर खड़ी हुई माताने जब बालककी यह दशा देखी, तब वे घबरा गयीं और तुरंत उसकी रक्षाके लिये लोगोंको पुकारने लगीं—'दौड़ो, दौड़ो, बचाओ।'

अदिति स्वयं भी बच्चेको पकड़नेके लिये शीघ्रतापूर्वक उसके पास गयीं, पर वे उसे पकड़ न सकीं। नक्र उनकी पकड़से बाहर रखते हुए ही महोत्कटको पानीके भीतर खींचे लिये जा रहा था। माता भी दूरतक उसके साथ खिंचती चली गयीं।

महोत्कट और उसकी माताको सरोवरमें आकण्ठमग्न देख मुनिके शिष्य उछल-उछलकर जलमें कूद पड़े; किंतु वे भी उस बलवान् नक्रकी पकड़से बालकको छुड़ा न सके। तब बालकने असीम बलका परिचय दिया। उसने खेल-खेलमें ही नक्रको जलसे बाहर पृथ्वीपर फेंक दिया। उसका शरीर चूर-चूर होकर गिर पड़ा; वह निश्चेष्ट हो गया और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

बालककी माता और आश्रमके सभी लोग आश्चर्यचकित थे। महोत्कटके सम्मुख एक वस्त्राभरणभूषित तेजस्वी पुरुष हाथ जोड़े कह रहा था—'प्रभो! पहले मैं चित्रगन्धर्वनामक गन्धर्वोंका राजा था। मेरे विवाहके अवसरपर सभी गन्धर्व उपस्थित हुए। मैंने सबका स्वागत-सत्कार किया; किंतु उपस्थित महामुनि भृगुकी मैंने पूजा नहीं की।'

'तुम सरोवरके नक्र होओगे।' भृगुमुनिके शापकी कल्पना कर मैं भयसे काँपने लगा। मेरी करुण-प्रार्थना सुनकर दयालु मुनिने पुनः कहा—'कश्यपनन्दन! गजाननके स्पर्शसे तुम उक्त जलचर-योनिसे मुक्त हो जाओगे।'

इतना कहकर उक्त गन्धर्व देवदेव गजाननकी स्तुति करने लगा।* फिर उसने बालरूपी गजाननके चरणोंमें प्रणाम कर बार-बार उनकी प्रदक्षिणा की। तदनन्तर वह चित्रगन्धर्व अपने लोकको चला गया।

महोत्कट-जननीके आश्चर्यकी सीमा न थी। उन्होंने बड़े ही प्यारसे अपने पुत्रको गोदमें लेकर उसके मुखमें अपना स्तनाग्र लगा दिया। बालक विनायक प्रेमपूर्वक दुग्धपान करने लगे।

* * *

एक बारकी बात है। संगीतविशारद हाहा, हूहू और तुम्बुरु नामक गन्धर्व पीताम्बर धारण किये, गोपीचन्दनका तिलक लगाये, वीणापर मधुर स्वरोंमें हरिगुण गाते कैलासकी यात्रा करते हुए महर्षि कश्यपके आश्रमपर पहुँचे। मुनिने उनका स्वागत किया और उनसे भोजन ग्रहण करनेकी प्रार्थना की।

तीनों अतिथियोंने स्नान कर देवी पार्वती, शिव, विष्णु, विनायक और सूर्यकी पूजा की और फिर अपने इष्टका ध्यान करने लगे। उसी समय महोत्कट बाहरसे खेलकर आये। उनकी दृष्टि पंचदेवोंके विग्रहपर पड़ी तो उसने धीरेसे उन्हें उठाकर फेंक दिया। नेत्र खुलनेपर देवताओंकी प्रतिमा न देख गन्धर्व व्याकुल हो गये। उन्होंने यह बात महर्षि कश्यपसे कही।

महर्षि कश्यप चकित और चिन्तित थे। सम्मानित अतिथियोंकी देवप्रतिमाएँ ढूँढ़नेके लिये वे चारों ओर दौड़-धूप कर रहे थे। उन्हें अपने चंचल पुत्र महोत्कटपर

* त्वमेव जगतां नाथः कर्ता पापापहारकः। निर्गुणो निरहंकारः सदसत्कारणं परम्॥
नानावतारैर्भक्तानां पालको दुष्टनाशनः। सर्वव्यापी पूर्णकामोऽनेकब्रह्माण्डनायकः॥
मुनीनामप्यगम्यस्त्वं मनोवागनिरूपितः।

(गणेशपु० २। ८। ३२—३४)

संदेह हुआ। उन्होंने हाथमें छड़ी लेकर क्रोधसे काँपते हुए विनायकसे पूछा—'अतिथियोंकी प्रतिमाएँ क्या हुईं?'

'मैं तो बाहर बालकोंके साथ खेल रहा था।' भस्मलिप्तांग महोत्कटने भयकी मुद्रामें उत्तर दिया।

'तू शीघ्र ही मूर्ति ला दे, नहीं तो तुझे बुरी तरह पीटूँगा।' कुपित कश्यपने पुनः कहा।

'मैंने मूर्ति नहीं ली है।' महोत्कट रोने लगा। रोते-रोते वह पृथ्वीपर लेट गया। माता अदिति भी वहाँ पहुँच गयीं।

'यदि मैंने मूर्ति खा ली है तो मेरे मुँहमें देख लो।' महोत्कटने अपना मुखारविन्द खोल दिया। अत्यन्त आश्चर्य! माता अदिति मूर्च्छित हो गयीं। महर्षि कश्यप और हरिभक्तिपरायण गन्धर्वत्रयने आश्चर्यचकित होकर देखा—बालक महोत्कटके छोटेसे मुखाब्जमें कैलास, शिव, वैकुण्ठसहित विष्णु, सत्यलोक, अमरावतीसहित सहस्राक्ष, पर्वतों, वनों, समुद्रों, सरिताओं, यक्षों, पन्नगों एवं वृक्षोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी, चौदह भुवन, समस्त लोकपाल, पाताल, दसों दिशाएँ तथा अद्भुत सृष्टि दीख रही थी।

सचेत होनेपर माता अदितिने तुरंत बालक महोत्कटको अंकमें उठा लिया और उसे स्तनपान कराने लगीं। महर्षि कश्यपने मन-ही-मन कहा—'अरे! यह तो अखिलेश्वर प्रभुने ही मेरे पुत्ररूपमें जन्म लिया है। मैंने इन्हें दण्ड देनेका विचार कर बड़ी भूल की।'

'मैं तो इस बालकको दण्ड दे नहीं सकता। अब आप लोग जैसा उचित समझें, वैसा करें।' कश्यपने गन्धर्वोंसे स्पष्ट कह दिया।

'देव-प्रतिमाओंके मिले बिना हमलोग आपका अन्न, फल और कन्द-मूल आदि कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे।' अत्यन्त दुःखी होकर गन्धर्वोंने महर्षि कश्यपसे इतना कहा ही था कि उन्होंने महोत्कटके स्थानपर देवी पार्वती, शिव, विष्णु, विनायक और सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन किया। वही बालक क्षण-क्षणमें पंचदेवके रूपमें दीख रहा था।

फिर तो हाहा, हूहू और तुम्बुरुने महोत्कटके चरणोंमें प्रणाम किया और वे महर्षि कश्यप-प्रदत्त अन्नादिको प्रेमपूर्वक ग्रहण करने लगे। उस समय उन्होंने महोत्कटमें अनेक रूपोंके दर्शन किये। वह एक क्षण महोत्कट एवं दूसरे ही क्षण पंचदेवोंके रूपमें दीखने लगता। क्षणमें अत्यन्त भयानक दीखता तो दूसरे क्षण विश्वरूपमें उसका दर्शन होता।* इस प्रकार परमप्रभुके अचिन्त्य, अकथनीय स्वरूपोंका दर्शन कर गन्धर्वोंने अपना जीवन-जन्म एवं कश्यपाश्रममें आगमन सफल समझा।

गन्धर्वोंको महोत्कट विनायकके तत्त्वका साक्षात्कार हो गया। उन्होंने परमप्रभु विनायककी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे स्तुति की और बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम कर उनका स्मरण करते हुए कैलासके लिये प्रस्थान किया।

उपनयन-संस्कार

प्रतिभाशाली महोत्कट पाँच वर्षके हुए। महर्षि कश्यपने शुभ मुहूर्त और शुभ लग्नमें उनके व्रत-बन्धका निश्चय किया। शान्त तपस्वी महर्षि कश्यप सुर-असुर, चारों वर्णों और सभी श्रेणीके स्त्री-पुरुषोंके श्रद्धेय थे। इस कारण उनके पुत्रके यज्ञोपवीत-संस्कारके अवसरपर निस्पृह वेदज्ञ ब्राह्मण तो पधारे ही, समस्त सुर, राक्षस, ऋषि-मुनि, यक्ष, नाग, राजर्षि, व्यापारी, वैश्य तथा शूद्र प्रभृति—सभी लोग आये।

सशक्त असुर स्पष्ट तो कुछ नहीं कहते थे, किंतु कश्यपनन्दनसे अपनी क्षतिकी सम्भावनासे वे उन्हें छल-कपट तथा अन्य कौशलसे मार डालनेके लिये प्रयत्नशील थे। यज्ञोपवीतके अवसरपर विघात, पिंगाक्ष, विशाल, पिंगल और चपल नामक पाँच बलवान् असुर भी शुद्ध वस्त्र, भालपर त्रिपुण्ड्र एवं गलेमें रुद्राक्षकी माला पहने ब्राह्मणके वेषमें वहाँ पहुँचे। उन्होंने अपने कमण्डलुमें छोटे-छोटे अस्त्र छिपा रखे थे। वे ब्राह्मणवेषधारी असुर उपस्थित मुनियों और ब्राह्मणोंके बीच ऐसे स्थानपर बैठ गये, जहाँसे अदितिनन्दन विनायकपर सुविधापूर्वक सटीक प्रहार किया जा सके।

अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे। मण्डपमें गणेशपूजन और स्वस्तिवाचन हुआ। इसके अनन्तर

* क्षणं ते ददृशुर्बालं क्षणं पञ्चस्वरूपिणम्॥ क्षणं महाभीतिकरं क्षणं तं विश्वरूपिणम्॥
(गणेशपु० २।९।३९-४०)

व्रत-बन्धकी विधियाँ होने लगीं। होमके अनन्तर महर्षि कश्यपने ब्राह्मणोंकी पूजा की। अग्निस्थापनके बाद जब सुवासिनी स्त्रियाँ और ब्राह्मण मङ्गलाशीर्वादके साथ विनायकपर अक्षत छोड़ रहे थे, तब ब्राह्मणवेषधारी असुरोंने धीरेसे कमण्डलुसे अस्त्र निकाले और विनायकपर प्रहारका उपक्रम किया। विनायकने तत्क्षण उनकी दुरभिसंधि समझकर थोड़े-से अभिमन्त्रित चावल उनपर फेंके और तत्काल दुष्ट असुरोंका निर्जीव शरीर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

असुरोंके भयानक शवको देखकर उपस्थित देवता, ऋषि-मुनि, ब्राह्मण और सभी जन अत्यन्त चकित हुए। पंचवर्षीय बालक हृष्ट-पुष्ट और शक्तिसम्पन्न तो था ही, वह मन्त्रसिद्ध भी है, यह जानकर सब परस्पर कहने लगे—'पाँच छली राक्षसोंको क्षणभरमें ही इस बालकने कैसे मार डाला, यह बात समझमें नहीं आयी। क्या भूभार-हरण करनेके लिये परमात्माने ही अवतार ग्रहण किया है?[१]' ब्रह्मादि देवगण परमप्रभु विनायकदेवकी लीला समझकर उनपर सुगन्धित सुमनोंकी वृष्टि करने लगे।

तदनन्तर महोत्कटका उपनयन हुआ। महर्षि कश्यपने स्वयं उन्हें गायत्री-मन्त्र दिया। सर्वप्रथम महातपस्विनी माता अदितिने उन्हें भिक्षा प्रदान की। उसके बाद वहाँ उपस्थित लोगोंने भिक्षाके साथ उन्हें शास्त्रीय सदाचारका विस्तृत उपदेश दिया। परमप्रिय पुत्र महोत्कटकी प्राण-रक्षासे प्रसन्न होकर महर्षि कश्यपने पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की और उन्हें विविध प्रकारके वस्त्र, स्वर्ण एवं गायें प्रदान कीं।

इसके बाद एकत्र बृहत् समुदायके बीच महर्षि वसिष्ठ अत्यन्त स्नेहपूर्वक विनायकका हाथ पकड़ उन्हें ब्रह्माके पास ले गये।

ब्रह्माजीने अपने कमण्डलुके जलसे उनका तीर्थ ग्रहण किया और सदा खिला रहनेवाला पद्मपुष्प उन्हें प्रदान किया। उस समय उन्होंने विनायकका नाम 'ब्रह्मणस्पति' रखा। फिर बृहस्पतिने भी विनायककी पूजा करके उन्हें 'भारभूति' नाम प्रदान किया।

कुबेरने विनायककी पूजा करके उनका नाम 'सुरानन्द' रखा और उन्हें अपने कण्ठकी रत्नमाला प्रदान की। वरुणने अपना पाश प्रदान कर उन्हें 'सर्वप्रिय' नाम दिया। भगवान् शंकरने भी सब देवताओंके सुनते हुए अदितिनन्दनको त्रिशूल और डमरू देकर उन्हें 'विरूपाक्ष' कहा और फिर उन्हें 'भालचन्द्र' नामसे सम्बोधित करते हुए चन्द्रकला दे दी।

'परशुहस्त!' कहती हुई परशुरामजननी सती रेणुकाने अपनी सखी अदितिके बालकको परशु प्रदान किया और 'परशुहस्त' नाम रखा। फिर उनकी पूजा करके उन्होंने वाहनके लिये सिंह देकर उन्हें 'सिंहवाहन' नाम दिया। तदनन्तर उन्होंने महोत्कट विनायकको उपदेश दिया—'विनायक! तुम शीघ्र ही दुष्टोंका संहार करो।'[२]

द्विजवेषधारी समुद्रने विनायककी पूजा कर उन्हें मुक्तामाल प्रदान करते हुए 'मालाधर' कहा। शेषनागने उनके आसनके लिये अपना शरीर समर्पण कर दिया और बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें 'फणिराजासन' कहा। 'धनंजय' नाम देते हुए अग्निदेवने उन्हें अपनी दाहिका-शक्ति प्रदान की और 'प्रभंजन' नामसे सम्बोधित कर वायुदेवने अपनी शक्ति समर्पित कर दी।[३]

---

१. कथं व्यापादिताः पञ्च राक्षसाः कूटरूपिणः। क्षणेनानेन बालेन न जानीमोऽखिला अमुम्॥
अवतीर्णो भुवो भारं हर्तुं किं परमेश्वरः। (गणेशपु० २। १०। १५-१६)

२. उपादिशद् दुष्टनाशं कुरु शीघ्रं विनायक। (गणेशपु० २। १०। ३०)

३. 'ऋषियोंद्वारा उपनयनके समय दिया हुआ आशीर्वाद भी 'यह बालक शत्रुओंका नाश करनेवाला होवे'—ऐसा तेजस्वी होता था। ब्रह्मचारीको 'शस्त्रोंका उपयोग न कर'—ऐसा न कहकर मौंजीबन्धनके समय शस्त्र देकर उनका प्रयोग कैसे किया जाय, यह भी बताया जाता था और वह भी ब्राह्मण-बालकको—यह विशेष बात है। क्षत्रियके बालकको कहा जाय तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं। परंतु दमनशील कश्यपऋषिके बालकको मौंजीबन्धनके समय भिक्षामें शस्त्र मिलते हैं और उन्हें प्रयोग करनेकी विद्या भी सिखायी जाती है तथा आशीर्वादसे भी 'अपने राष्ट्रको स्वतन्त्र कर'—ऐसा अभिप्राय सूचित किया जाता है; वह भी एक अतिवृद्ध स्त्रीद्वारा, यह सब ध्यानमें रखनेयोग्य है। ऋषिकालमें ब्राह्मणोंका यज्ञोपवीत-संस्कार भी ऐसा तेजोवर्धक होता था'—पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस प्रकार सभी लोगोंने अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार महोत्कटको उत्तमोत्तम वस्तुएँ प्रदान कीं; किंतु सहस्राक्ष इन्द्रने न कुछ दिया और न उन्हें प्रणाम ही किया। सुरेन्द्रने सोचा—'मुझ देवाधिपके सम्मुख सभी नतमस्तक होते हैं; मैं इस छोटे-से बालकके सामने मस्तक क्यों झुकाऊँ?'

'मेरे घरमें किसी महान् अवतारी पुरुषने जन्म लिया है।' महात्मा कश्यपने इन्द्रको समझाया। 'अनिर्वचनीय गुणसम्पन्न पुरुषको छोटा समझकर तिरस्कार करना उचित नहीं। इस छोटे-से तेजस्वी बालक महोत्कटने इसी आयुमें कितने अद्भुत कर्म कर डाले। इसने विरजा-नामकी भयानक राक्षसीको खेलमें ही मार डाला। शुकरूपधारी प्रचण्ड उद्धत और धुन्धुर राक्षसोंको इसीने मारा। सरोवरका शापग्रस्त चित्रगन्धर्व इसीके स्पर्शसे मुक्त हुआ। हाहा-हूहू और तुम्बुरु गन्धर्वोंने इसीके दिव्य कलेवरमें पंचदेवोंका दर्शन प्राप्त किया। आप सबके सम्मुख भयानक पाँचों राक्षसोंको इसने मारा ही है।'

'मैंने तो प्रत्यक्ष कुछ देखा नहीं।' मदविमोहित सुरेन्द्रने कहा ही था कि महोत्कटके संकेतपर प्रचण्ड प्रलयंकर झंझावात उठा। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। व्याकुल सुरेन्द्रने महोत्कटकी ओर देखा तो उनके नेत्रोंसे अग्निज्वाला निकल रही थी। सहस्राधिक मस्तक, नेत्र, नासिका, कान, कर और चरण थे उनके। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्रोंमें दीख रहे थे। महोत्कटके रोम-रोममें अनन्त ब्रह्माण्ड एवं उनके विराट्रूपका दर्शन कर इन्द्रने व्याकुल हो उनकी स्तुति की और उनसे बार-बार क्षमाकी याचना की।

प्रबल प्रभंजन शान्त हुआ। इन्द्रने अचिन्त्य-गुणगणनिलय महोत्कटकी स्तुति कर बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर उनकी जय-जयकार करते हुए उन्हें अपना अंकुश और कल्पवृक्ष प्रदान कर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक कहा 'विनायक'।

फिर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको पधारे।

अत्यन्त मेधावी और प्रतिभासम्पन्न विनायककी शिक्षा प्रारम्भ हुई। विद्या-बुद्धि-विशारद विनायक अत्यल्प-कालमें ही सारे वेद-वेदांग, व्याकरण, गणित, ज्योतिष आदि शास्त्रोंके साथ अस्त्र-शस्त्रोंका सम्यक् ज्ञान प्राप्तकर उसमें निष्णात हो गये। शास्त्रीय सिद्धान्तोंपर विचक्षणबुद्धि महोत्कटकी अद्भुत व्याख्या सुनकर महान् शास्त्रज्ञ भी चकित होकर कहने लगे—'निश्चय ही विनायक कश्यपनन्दनके रूपमें अवतरित हुए हैं।'

महोत्कटने सातवें वर्षमें प्रवेश किया। अब वे बल, बुद्धि, विद्या आदिमें पूर्ण पारंगत होकर अपने पिताके कार्योंमें सहयोग देने लगे थे। अवसर प्राप्त होते ही वे उपनयनके अवसरपर प्राप्त सिंहपर आरूढ़ हो जाते। सर्वभयापह अंकुश, परशु, अम्लान पद्म और पाश धारण कर लेते। दण्ड, अजिन, रत्नजटित स्वर्णनिर्मित कुण्डल, कमण्डलु, दर्भ, उत्तम पीताम्बर, ललाटमें कस्तूरी तिलक और चन्द्रकला, गलेमें मुक्तामाला और नाभिपर शेषको धारणकर आश्रमके चारों ओर दूर-दूरतक घूमते। जब वे मेघतुल्य गर्जन करते तो पृथ्वी हिल जाती और आकाश कम्पित होने लगता था। भयवश असुर उधर आनेका साहस भी नहीं कर पाते थे। उनके इस अद्भुत वीर वेष एवं उनकी व्यवस्थासे आश्रममें पूर्णतया सुख-शान्ति देखकर कश्यप और अदिति आनन्दविह्वल होकर मन-ही-मन कहते—'हमारे पूर्वज और हम धन्य हैं।' सबके दुःख-निवारणके लिये निरन्तर प्रयत्नशील महोत्कटको देखकर सभी उन्हें अपना प्राणप्रिय समझते; सभी उनको आदर और सम्मान प्रदान करते।

एक दिन कश्यपके आश्रमपर काशीनरेश पधारे। उन्होंने महर्षि कश्यपके चरणोंमें प्रणाम किया तो स्नेहातिरेकसे महर्षिने उन्हें गले लगा लिया। भोजनादिके उपरान्त विश्राम कर लेनेपर महर्षिने उनसे उनके आगमनका हेतु पूछा।

'आप मेरे कुल-पुरोहित हैं, मुझे आपकी सेवामें पहले ही उपस्थित होना चाहिये था।' काशीनरेशने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'किंतु राज-कार्यमें व्यस्त रहनेके कारण मैं समय नहीं निकाल सका। मैंने अपने पुत्रके विवाहका निश्चय किया है। अतएव आपको ले जानेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। आप कृपापूर्वक शीघ्र ही काशी चलकर युवराजका विवाह सम्पन्न करायें।'

'राजन्! मैं तो चातुर्मास्य-व्रतके अनुष्ठानमें लगा हूँ।' महामुनिने काशीनरेशसे कहा—'किंतु मेरा पुत्र

महोत्कट सर्वशास्त्र-मर्मज्ञ तो है ही, कर्मकाण्डका भी अश्रुतपूर्व विद्वान् है। यद्यपि अभी यह बालक है तथा मैं, इसकी माता और समस्त आश्रमवासी इसे प्राणाधिक प्यार करते हैं; अतः इसकी अनुपस्थिति अत्यन्त कष्टकर है; तथापि आप इसे ले जायँ। यह आपका सम्पूर्ण वैवाहिक कार्य दक्षतापूर्वक सविधि सम्पन्न करा देगा।'

महामुनि कश्यपने महोत्कटको बुलाकर कहा—'बेटा विनायक! यद्यपि हमारे लिये तुम्हारा वियोग दुःखद है, किंतु तुम काशीनरेशके साथ जाकर इनके पुत्रका विवाह सम्पन्न कराकर लौट आओ।'

महर्षिकी आज्ञा प्राप्तकर नरेशने रथ प्रस्तुत किया। महोत्कटने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और अस्त्र-शस्त्रोंसहित रथमें जा बैठे।

अपने प्राणाधिक पुत्रको सुदूर देशकी यात्राके लिये प्रस्थान करते देखकर माता अदिति अधीर हो गयीं। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उन्होंने नरेशके पास जाकर अत्यन्त दीन वाणीमें कहा—'राजन्! मेरा महोत्कट निरा बालक और अतिशय चंचल है। इसने कभी प्रवास नहीं किया है। कुटिल असुरोंकी कुदृष्टि इसपर सदा बनी रहती है। अतएव आप इसकी निरन्तर रक्षा करेंगे और जिस प्रकार इसे अपने साथ ले जा रहे हैं, उसी प्रकार सकुशल इसे इस आश्रममें पहुँचा भी देंगे।'

'मैं अपना प्राण देकर भी इस परम तपस्वी पुरोहित-पुत्रकी प्राण-रक्षा करूँगा। आप सर्वथा निश्चिन्त रहें।' काशीनरेशने माता अदितिके चरणोंमें प्रणाम किया और रथ वायुवेगसे चल पड़ा। जबतक महोत्कटके रथकी ध्वजा दीखती थी, तबतक रोती हुई माता अदिति वहाँ खड़ी रहीं।

धूम्राक्ष-वध

काशिराजका रथ गहन वनमें पहुँचा। वहाँ रुद्रकेतुका बलवान् भाई धूम्राक्ष (नरान्तकका चाचा) भगवान् सहस्रांशुकी प्रसन्नताके लिये दस हजार वर्षसे अत्यन्त दारुण तप कर रहा था। त्रैलोक्यपर निरापद शासनके लिये सर्वसंहारक श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र उसे अभीष्ट थे। उसने अपने दोनों पैर वृक्षकी शाखामें बाँध रखे थे। अधोमुख धूम्राक्ष केवल धूम्रपानपर जीवित था।

सूर्यदेव प्रसन्न हुए। उन्होंने धूम्राक्षके लिये प्रभापुञ्जमय शस्त्र भेजा। उसकी प्रभासे अन्तरिक्ष उद्दीप्त हुआ ही था कि गरुड़ जैसे सर्पको पकड़ लेता है, उसी प्रकार महोत्कटने उछलकर उस परम तेजस्वी शस्त्रको ग्रहण कर लिया।

यह दृश्य देखकर काशिराज अत्यन्त विस्मित हुए। शस्त्र-परीक्षणार्थ महोत्कटने उसे धूम्राक्षकी ओर फेंका ही था कि भीषण गर्जनके साथ धूम्राक्षके दो टुकड़े दूर जा गिरे।

धूम्राक्षकी विशाल देहके गिरनेसे कई वृक्ष धराशायी हो गये।

धूम्राक्षके प्रख्यात वीर पुत्र जघन और मनुने यह दृश्य देखा तो उनके क्रोधकी सीमा न रही। काल-तुल्य तप्तांगारलोचन सशस्त्र जघन और मनुने कुछ ही देरमें काशिराजका रथ घेर लिया और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उन्होंने काशीनरेशसे कहा—'राजन्! तूने ब्राह्मणपुत्रको लाकर हमारे तपस्वी पिताकी हत्या कैसे करवायी। कृतघ्न! पहले असुरराज नरान्तकके कोपसे हमारे पिताने ही तुम्हारी रक्षा की थी। उन्हींकी कृपासे तू काशीनरेश बना हुआ है। हमारे पिताको मारकर तू जीवित कैसे रह सकता है?'

अत्यन्त शक्तिशाली धूम्राक्षपुत्रोंकी क्रुद्ध वाणी सुनकर काशिराज काँप उठे। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'अपस्मार रोगकी तरह मैं कहाँसे इस पुरोहित-कुमारको ले आया? यदि नरान्तक कुपित हुआ तो क्षणार्द्धमें ही मेरा राज्य ध्वस्त हो जायगा।'

भयाक्रान्त काशिराजने ब्राह्मण और ईश्वरकी शपथ लेते हुए कहा—'मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। मैं तो इस मुनिकुमारको अपने पुत्रका विवाह करानेके लिये ले जा रहा हूँ। आप कृपापूर्वक मेरे शुभकार्यमें व्यवधान उपस्थित न करें। आप इस पुरोहितपुत्रको ले जायँ। मुझे छोड़ दें।'

'राजन्! मुझ छोटे बच्चेको गहन वनमें लाकर आप शत्रुके हाथों कैसे दे रहे हैं?' महोत्कटने चकित होकर काशिराजसे कहा—'आपने मेरी माताको क्या वचन दिया था? क्या क्षत्रियधर्म यही है? यदि मेरे पिताने यह बात सुनी तो निश्चय ही वे आपको शाप दे देंगे और आप राज्यसहित भस्म हो जायँगे।'

इस प्रकार महोत्कट राजासे कह ही रहे थे कि जघन और मनुने उनपर आक्रमण कर दिया। क्रुद्ध हुए महोत्कटने भयानक गर्जना की। विनायकके नि:श्वास-योगसे पृथ्वीपर जैसे भूकम्प आ गया। उक्त भीषण ध्वनि एवं वायुवेगके प्रभावसे जघन और मनु अन्तरिक्षमें चक्कर खाते हुए नरान्तकके नगरमें शिलाखण्डकी तरह गिर पड़े। उनके प्रत्येक अंग क्षत-विक्षत हो गये।

'यह कैसे क्या हुआ?' सम्पूर्ण नरान्तक-नगरमें जैसे कोलाहल व्याप्त हो गया था और प्रमुख असुरोंके साथ नरान्तक विचार कर ही रहा था कि दौड़ता हुआ दूत आ पहुँचा। हाँफते-काँपते उसने कहा—'कश्यपपुत्रके हाथोंसे धूम्राक्ष-वध हुआ और जब जघन और मनुने उनपर आक्रमण करना चाहा तो उनकी यह दुर्गति हुई। वह काश्यपेय काशिराजके साथ उनके पुत्रका विवाह कराने जा रहा है।'

'ब्राह्मणपुत्र और काशिराजको तुरंत पकड़ो।' अत्यन्त कुपित होकर क्रूरतम नरान्तकने अपने सैनिकोंको आज्ञा दी। 'यदि वे युद्ध करें तो उन्हें मार डालो।'

शस्त्रसज्ज वीर असुर-वाहिनी द्रुतगतिसे दौड़ पड़ी। काशिराजने असुर-सेनाको देखा तो वे काँपने लगे; किंतु योगसिद्ध महोत्कटने विकट गर्जना की। पविपात-तुल्य उस भयंकर एवं प्रचण्ड रवसे कितने ही असुर-वीर मृत्यु-मुखमें चले गये। कुछ सैनिकोंके शरीर महोत्कटके तीक्ष्ण शरों एवं आयुधोंसे कट-कटकर गिर पड़े। महोत्कटकी अद्भुत शस्त्र-वर्षामें असुरोंको कुछ सूझ नहीं रहा था। कुछ ही देरमें असुरोंके रुण्ड-मुण्डसे वहाँकी धरती पट गयी। कुछ प्राण लेकर भागते हुए असुर नरान्तकके समीप पहुँचे और उसे सारा समाचार सुनाया।

'काशिराजके कुछ ही अंगरक्षकोंके साथ कश्यपकुमारने हमारे वीर सैनिकोंका संहार कैसे कर दिया?' क्रोधोन्मत्त नरान्तक सोच रहा था कि 'कुटिल काशिराजको दण्डित करना ही चाहिये।' यह निश्चय कर उसने काशीनरेशको पराजित करनेके लिये एक वीर असुरके सेनापतित्वमें पराक्रमी असुरोंकी सुशिक्षित सशस्त्र सैन्यदल प्रेषित किया। नरान्तकने अपने सेनापतिको काश्यपेयसहित काशिराजको जीवित या मृत पकड़ लेनेकी कठोर आज्ञा प्रदान कर दी थी। असुर-वाहिनी काशीके लिये प्रस्थित हुई।

इधर विनायकने काशिराजके साथ उनकी राजधानीमें प्रवेश किया। काश्यपेयकी सहायतासे ही नरेश निर्विघ्न सकुशल लौटे हैं, इस कारण विनायकका सोल्लास स्वागत किया गया। नगर सुन्दर ध्वजाओं, पताकाओं एवं विविध प्रकारकी पुष्पमालाओंसे सुसज्ज था। दुन्दुभि आदि अनेक वाद्य बज रहे थे। विविध प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंके साथ अमात्यों एवं सम्भ्रान्त नागरिकोंने विनायककी पूजा की। विनायकका रथ आगे बढ़ा तो नगरकी स्त्रियाँ छतोंसे सुमधुर गीत गाती हुई उनपर विविध प्रकारके सुमनोंकी वृष्टि करने लगीं। देवदेव विनायकको ब्राह्मणोंने अपने परमात्मा, क्षत्रियोंने रणोत्सुक महावीर, वैश्योंने सर्वसंहारक रुद्र एवं शूद्रोंने श्रीहरिरूप या नरेशके रूपमें देखा। जैसे शुद्ध स्फटिकमें अरुण और पीत रंग उसी रूपमें दीखता है, उसी प्रकार जिसकी जैसी भावना थी, उसीके अनुसार उन्हें महाप्रभु विनायकके दर्शन हो रहे थे।[1]

नगरके मध्य विघण्ट और दन्तुर नामक दो असुरोंने बाल-वेषमें उन्हें अपने समीप खेलनेके लिये सादर बुलाया। विनायकने समीप पहुँचते ही उनकी चेष्टाओंसे उनका दुरुद्देश्य समझ लिया। फिर क्या था? विनायकने आलिंगन करते हुए हाथके पुष्पकी तरह उन्हें मसलकर फेंक दिया। निष्प्राण विशाल असुर अपने असली रूपमें दूर जा गिरे। यह दृश्य देखकर काशिराज तथा अन्य नगर-निवासी चकित हो गये। अन्तरिक्षसे देवगण विनायकपर सुमनवृष्टि करते हुए धन्य! धन्य! एवं जय-जयकार करने लगे।[2]

---

१. ब्राह्मणाः परमात्मानं पश्यन्ति स्म विनायकम्। क्षत्रियास्तं महावीरं पश्यन्ति स्म रणोत्सुकम्॥
वैश्यास्तं ददृशुः सर्वे रुद्रं संहारकारकम्। शूद्रास्तं हरिरूपेण नृपरूपेण चालुकन्॥
यस्य यस्य यथा भावस्तादृशं सोऽभ्यवीक्षत। यथा रक्ते सिते पीते स्फटिकस्तादृशाकृतिः॥
(गणेशपु० २। १३। १९—२१)

२. मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवास्तस्मिन्नभोगताः। साधु साध्विति शब्दैश्च जयशब्दैश्च केचन॥
(गणेशपु० २। १३। २६)

रथ आगे बढ़ा। कुछ ही दूर जानेपर पतंग और विधुल नामक दो असुर झंझावातके रूपमें आये। उनके वेगमें वृक्ष गिरने लगे, नागरिकोंके वस्त्र आकाशमें उड़ गये एवं जनसमुदाय व्याकुल हो उठा। विनायकका रथ भी ऊपर उठने लगा, तब विनायकने स्तम्भन किया। एक असुर अशक्त होकर पृथ्वीपर गिरा ही था कि विनायकने उसे पकड़कर वज्र-तुल्य मुष्टिप्रहारसे अधमरा कर दिया। फिर उसे घुमाकर इतने जोरसे पटका कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। राक्षसकी निष्प्राण विशाल देह देखकर जनसमुदाय आश्चर्यचकित हो गया। सब लोग मन-ही-मन कह रहे थे—'यह कश्यपकुमार कौन शक्तिशाली देवता है, जिसने इन अजेय असुरोंका देखते-ही-देखते वध कर दिया?'

चकित काशिराजने विनायकके चरणोंमें प्रणाम कर रथ आगे बढ़ाया ही था कि बालक विनायकने पाषाणरूपी असुरको देखा। विनायकने तुरंत रथसे कूदकर उसपर अपने तीक्ष्ण परशुका प्रहार किया। उक्त विशाल पाषाण शतधा छिन्न हो गया। फिर तो उस शिलाखण्डसे अत्यन्त भयानक पिंगलवर्ण विशालकाय कूट नामक असुर निकला। उसके मुख-दाँत, श्मश्रुजाल एवं नेत्र अत्यन्त भयावह थे। उसे देखकर नगरनिवासी भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे; किंतु अमित साहसी कश्यपकुमारने उसे तुरंत पकड़ लिया और मुष्टि-प्रहारसे ही उसे मार डाला। यह दृश्य देखकर काशीवासियोंके मनमें दृढ़ निश्चय हो गया कि 'यह लोकोत्तर बालक अवश्य ही असुरोंका सर्वनाश करनेमें समर्थ सिद्ध होगा।'

काशिराज विनायकको सम्मान प्रदान करनेके लिये रथसे उतर पड़े। वे विनायकको राजभवनमें ले गये। उनकी षोडशोपचारसे पूजा एवं स्तुति की। उन्हें बहुमूल्य वस्त्र एवं अलंकरण प्रदान किये। अत्यन्त आदरपूर्वक विविध प्रकारके सुस्वादु व्यंजनोंका भोजन कराकर उन्हें एक श्रेष्ठ कक्षमें सुन्दरतम पर्यंकपर शयन कराया। दिनभरके थके विनायक रात्रिमें सो गये।

प्रातःकाल विनायकने शय्या त्यागकर स्नानादि किया। वे अग्निहोत्रादिसे निवृत्त हुए ही थे कि धर्मदत्त नामक एक ब्राह्मणदेवता उन्हें अपने घर लिवा जानेके लिये आये। विनायक उनके साथ जा ही रहे थे कि मार्गमें नरान्तकके भेजे हुए काम और क्रोध नामक दो राक्षस उन्हें मारनेके लिये आ गये। वे गर्दभरूपधारी राक्षस परस्पर लड़ते हुए विनायकके ऊपर गिर पड़े। विनायक उन दोनोंको मारकर ज्यों ही आगे बढ़े, त्यों ही उन्होंने सामने एक मदमत्त गजराजको देखा, जो नगरमें सर्वनाश करनेपर तुला हुआ था। नगरकी कुछ जनता घरोंमें छिप गयी थी और कुछ यत्र-तत्र प्राण लेकर भाग रही थी। उस गजको वशमें करनेका कोई उपाय नहीं था। विनायक दौड़े। गजके समीप पहुँचते ही उन्होंने विद्युत्-गतिसे उसकी सूँड़ काट दी। फिर व्याकुल गजके गण्ड-स्थलपर इतना तीव्र प्रहार किया कि वह चिग्घाड़ता हुआ धरतीपर जा गिरा। तब लोगोंने प्रत्यक्ष देखा, वह क्रूरतम महाबली कुण्ड राक्षस था। नगर-निवासी निश्चिन्त हुए।

जृम्भा-वध

धूम्राक्षकी पत्नीका नाम था—जृम्भा। राक्षसी जृम्भाने अपने पतिके संहारकसे प्रतिशोध लेनेका निश्चय कर लिया था। वह पीताम्बर, कंकण तथा आकर्षक वस्त्रालंकार धारणकर विनायकके समीप पहुँची और उनसे कहा—'तुम्हारे माता-पिता धन्य हैं, जो तुम्हारे-जैसा शूरवीर पुत्र उन्हें प्राप्त हुआ। तुमने कितने ही राक्षसोंका वध कर कितना शुभ किया। यह श्रम-निवारक सुगन्धित तैल मैं तुम्हारे लिये लायी हूँ। आओ, इसे स्वीकार करो।'

देवीरूपिणी जृम्भाकी मधुर वाणीसे मुसकराते हुए विनायकने तेल लगवाना स्वीकार कर लिया; किंतु तेलका स्पर्श होते ही उनके शरीरमें दाह उत्पन्न होने लगा। चतुर विनायकने तुरंत पासमें पड़ा हुआ नारिकेल उठाकर उस राक्षसीके सिरपर दे मारा। राक्षसीका सिर फट गया। तड़प-तड़पकर प्राण-त्याग करते समय उसका असली स्वरूप प्रकट हो गया। तब लोगोंकी समझमें आया कि यह धूम्राक्ष-पत्नी सुन्दर नारीके वेषमें विषमिश्रित तैलके द्वारा विनायकका जीवन नष्ट करने आयी थी।

दूसरे दिन काशिराज जन-प्रतिनिधियों, विनायक, मित्रों और अमात्योंके साथ सभामें पहुँचे। वे युवराजके विवाहके लिये पुरोहित-पुत्र विनायकको किस प्रकार ले आये तथा विनायकने किस-किस असुरका किस

प्रकारका विनाश किया, इसका भी विस्तृत वर्णन करते हुए उन्होंने विनायककी शूर-वीरता एवं विलक्षण बुद्धिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर उन्होंने युवराजके विवाहका मुहूर्त्त निश्चित करनेकी अपनी इच्छा व्यक्त की।

राजाकी बात सुनकर एक वरिष्ठ अमात्यने निवेदन किया—'राजन्! जबसे यहाँ विनायकका आगमन हुआ है, तभीसे असुरोंके नये-नये उपद्रव हो रहे हैं और मेरे विचारसे इनके यहाँ रहते यहाँ शान्ति भी नहीं होगी। अतएव विवाह एकाध मासके लिये टाल देना अधिक उचित होगा।'

नरेशने इसका कोई विरोध नहीं किया। वे लौट आये। विनायकके साथ भोजन किया। फिर दोनों शयन करने चले गये।

अनेक दैत्योंका वध

नीरव निशीथ! काशीनरेश, विनायक एवं समस्त प्रजा सो रही थी; किंतु क्रूर नरान्तकके अत्यन्त क्रूर सेनापति ज्वालामुख, व्याघ्रमुख और दारुण अपने विशाल सैन्यके साथ काशीको घेरकर उसका ध्वंस करनेकी योजना बना रहे थे।

भयंकर ज्वालामुखने दारुणके सहयोगसे काशीके चारों ओर आग लगा दी। नगर धायँ-धायँ जल उठा। काशीनरेशकी प्रजा व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगी, पर उसे कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। जो नगर-निवासी बाहर निकलते, व्याघ्रमुख उन्हें समाप्त कर देता। काशीमें हाहाकार व्याप्त हो गया।

नरेशने राज्यमें सर्वत्र घूमकर देखा, नगरकी सम्पूर्ण सीमा अग्निकी भयानक लपटोंमें जल रही थी। बाहर निकलनेका कोई मार्ग नहीं था। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने कहा—'सम्पूर्ण विपत्तियोंके मूल इस विनायकको मैं क्यों ले आया?* अब मेरा सर्वस्व नष्ट हो जायगा।'

फिर आकुलचित्त नरेशने अपने दुर्गपर चढ़कर नगरकी ओर दृष्टिपात किया तो उनकी बुद्धि निष्क्रिय हो गयी। वे विनायकको ढूँढ़ने लगे। राजा और सम्पूर्ण प्रजा विनायकको पुकार रही थी।

उसी समय पूर्व क्षितिजपर रक्तबिम्ब उदित हुआ। अमित शक्तिसम्पन्न परम तेजस्वी और परम शान्त विनायकने नगरकी दारुण दशा और नरेशकी अधीरता देखी तो उन्होंने योगमायाका आश्रय लिया। वे दौड़े और परम शूर-वीर, परम निष्ठुर, क्रूर व्याघ्रमुखको पकड़ लिया और उसे वहीं मार डाला। उसके शरीरके टुकड़े कर उसे आकाशमें दूर फेंक दिया।

फिर क्रोधानलकी प्रतिमा विनायक ज्वालामुखके समीप पहुँचे। उसका विशाल सैन्य-दल कुछ समझ नहीं पा रहा था कि कहाँ क्या हो रहा है? महोत्कटने ज्वालामुखका शरीर चीरकर रख दिया। भयानक दारुण भी उनके हाथों मारा गया।

असुर-सैन्यमें हाहाकार मचा। सिंहारूढ़ विनायककी अद्भुत शस्त्र-वर्षासे असुरोंकी सारी सेना गाजर-मूलीकी तरह कट मरी। कुछ ही असुर प्राण बचाकर भाग सके।

विनायकने गर्जना की। उसे सुनकर सारी प्रजा प्रसन्न हुई। विनायक नरेशके समीप पहुँचे। उन्होंने नागरिकों एवं काशिराजके सैनिकोंके सहयोग एवं अपनी अद्भुत शक्तिसे ध्वस्त नगरका पुनः निर्माण करा दिया। उन्होंने काशिराजके सैनिकोंको सावधान किया। उन्हें अनेक प्रकारके आयुधोंका संचालन एवं प्रक्षेपण भी सिखा दिया।

काशीमें नवजीवन एवं नवोल्लासकी लहर दौड़ पड़ी। नरान्तकके विशाल सैन्यके त्वरित पराजयसे महामहिम विनायकके साथ काशिराजकी भी कीर्ति और ख्याति सुदूर देशतक फैल गयी। गिरि-कन्दराओंमें निवास करनेवाले राजाओं, देवताओं एवं ऋषि-मुनियोंका मन प्रसन्न होने लगा। वे सभी असुर-विनाशकी विनायक-योजनामें सहयोग देनेका विचार करते हुए आशा और विश्वासके साथ विनायककी महिमाका गान करने लगे।

काशिराजने प्रसन्न होकर विनायककी पूजा की तथा ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान दिये। विनायकने भी ब्राह्मणोंको तृप्तिकर उपहार भेंट किये। काशिराजकी राजधानीमें सर्वत्र आनन्द और उल्लास छा गया। नरेश प्रसन्न रहने लगे; किंतु परम बुद्धिमान् विनायक

* कथं मया बाल एष सर्वारिष्टप्रवर्तकः। सर्वस्वहारको मौढ्याद् दुर्निमित्तस्य कारणम्॥
(गणेशपु० २ । १५ । २८)

नरान्तक और देवान्तककी अपरिमित शक्ति, उनकी कुटिलता और उनकी पराक्रमी वीर वाहिनीसे प्रतिक्षण सचिन्त और सशंक थे।

* * *

दूसरे दिन नित्यकर्मसे निवृत्त होकर विनायक बालकोंके साथ खेलने चले गये और नरेश राजसिंहासनपर पहुँचे। उसी समय वहाँ एक दीर्घश्मश्रुधर ज्योतिषी पहुँचा। उसने रेशमी वस्त्र धारण किये थे और सिरपर विशाल पगड़ी बाँध रखी थी। उसके बायें हाथमें पुस्तक और दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला थी। ललाटपर गोपीचन्दनका तिलक था।

राजाने उसे प्रणाम किया; फिर समीपस्थ आसनपर बैठाकर उसका परिचय एवं उसके आगमनका हेतु पूछा।

'राजन्! मेरा नाम हेमज्योतिर्विद् है और मैं गन्धर्वलोकसे आ रहा हूँ।' काशिराजको आशीर्वाद देकर गणकने कहा—'मैं भूत, वर्तमान और भविष्यका ज्ञाता हूँ। आपकी कल्याण-कामनासे यहाँ आया हूँ। आप अकण्टक राज्य कर रहे थे; किंतु अब नित्य नूतन उपद्रव हो रहे हैं और भविष्यमें और भी अधिक हानि होगी। आपके यहाँ कश्यपपुत्र महोत्कटका आगमन आपके राज्यके लिये शुभ नहीं है। कुछ नहीं तो बलवान् महोत्कट ही आपको बंदी बनाकर राज्यपर अधिकार कर लेगा। नीतिकी दृष्टिसे भी आप महोत्कटको यहाँसे शीघ्र हटा दें; यही वांछनीय है।'

'आपके वचन सुनकर तो मुझे आपका ज्योतिष-ज्ञान संदिग्ध प्रतीत होता है।' काशिराजने गणकसे स्पष्ट कहा—'काशी पधारनेके पूर्वसे ही महोत्कटने कितने उत्कट असुरोंका संहार किया है और सम्पूर्ण प्रजा कितनी सुखी है, यह तो प्रत्यक्ष ही है। आप विनायकसे सर्वथा अपरिचित हैं, अन्यथा ऐसा नहीं कहते। वे छोटा राज्य तो क्या, दूसरे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और निखिल ब्रह्माण्डकी रचना करनेमें समर्थ हैं। ये इन्द्रको अनिन्द्र, असमर्थको समर्थ, छोटेको बड़ा, बड़ेको छोटा, नीचको उच्च और ईश्वरको अनीश्वर कर सकते हैं।* जब इन्होंने दुष्टता करनेवाले भयानक असुरोंको मार डाला, तब दूसरे द्वेष करनेवालोंको किस प्रकार छोड़ देंगे। आपको ऐसा वचन नहीं कहना चाहिये।'

राजाकी वाणी सुनकर ज्योतिषीका मुख कुछ विकृत हो गया। उसने क्रोधके आवेशमें फिर कहा—'राजन्! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, किंतु सुनिश्चित भविष्य टल भी कैसे सकता है? तुम जरा उस बालकको बुलाओ। मैं उसकी भी रेखाएँ देखकर फल बता देता हूँ।'

उसी समय बालसमुदायके साथ विनायक वहाँ पहुँच गये। वे गणकको प्रणामकर राजाके समीप जा बैठे। अत्यन्त बलवान् कश्यपनन्दनको देखकर ज्योतिषी सहम गया। उसकी मुखाकृति म्लान हो गयी। 'इस बालककी दृष्टिमें आकर कोई भी राक्षस अबतक जीवित नहीं लौट पाया'—यह सोचते ही उसके भालपर स्वेद-बिन्दु निकल आये।

अदितिकुमारकी ओर देखकर फल बताते हुए जैसे वह प्रलाप करने लगा—'तू चार दिनमें कूएँमें गिर जायगा; यदि उससे बच गया तो समुद्रमें डूब जायगा। इससे भी बच सका तो तुझपर पहाड़ टूट पड़ेगा। तुझे कालपुरुष खा जायगा। यह सब निश्चय ही होगा, इसमें संदेह नहीं। यदि तू इन विपत्तियोंसे बचना चाहता है तो चार दिनोंके लिये मेरे साथ वनमें चल। मैं तुझे फिर यहाँ पहुँचा दूँगा।'

ज्योतिषीकी व्याकुलता तथा उसकी कम्पादि भाव-भंगिमा देखकर विनायकने उसके सुविस्तृत वज्र-तुल्य वक्षपर मुद्रिकास्त्रका प्रयोग किया। उसका वक्ष विदीर्ण हो गया और उससे रक्तका फब्वारा छूट पड़ा। चीत्कार करता हुआ नरान्तकका वह वीर असुर पृथ्वीपर रक्त फेंकता मृत्युमुखमें चला गया।

यह दृश्य देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। देवगण प्रसन्न होकर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। काशीनरेशने महोत्कटकी पूजा एवं उनके चरणोंकी वन्दना की। उन्होंने विघ्नशान्त्यर्थ अनेक प्रकारके दान दिये।

* * *

---

* ब्रह्माणं कमलाकान्तमपरं शूलिनं हरम्। जनयिष्यति वाञ्छा चेद् ब्रह्माण्डानि बहूनि सः॥
करोतीन्द्रमनिन्द्रं वाशक्तं शक्तं लघुं गुरुम्। उच्चं नीचं तथा नीचमुच्चमीशमनीश्वरम्॥
(गणेशपु० २। १८। २५, २९)

ब्राह्मणवेषधारी असुरके मारे जानेपर नरान्तकने असुरोंका प्रतिशोध लेनेके लिये कूपक और कन्दर नामक दो प्रचण्ड दैत्योंको अनेक प्रकारके रत्नालंकार प्रदान कर भेजा। उन प्रबल कूपक और कन्दरके साथ विशाल असुर-सेना तथा सभी सैन्य-सामग्रियाँ थीं।

कूपक काशिराजके आँगनमें कूप बना और कन्दरने बालकका वेष बनाकर बालकोंको एकत्र किया। खेलके मिस वे दैत्यद्वय विनायकका प्राण हरण करना चाहते थे; किंतु विनायकके सम्मुख उनकी एक न चली। दोनों महादैत्य मारे गये। फिर विनायककी कूटनीतिसे कूपक और कन्दरकी सेनाएँ परस्पर युद्ध करके मर मिटीं।

* * *

कूपक और कन्दर-जैसे प्रबल दैत्योंके निधनसे क्षुब्ध होकर नरान्तकने अन्धक, अम्भकासुर और तुंग—तीन प्रचण्ड असुरोंको महोत्कटका विनाश करनेके लिये भेजा। इन असुरोंका नाम सुनकर ही भयवश ब्रह्मादि देवगण पलायित हो गये थे। इन असुरोंने त्रैलोक्यके प्रख्यात वीरोंका मान मर्दन कर दिया था।

इन प्रसिद्ध तीनों असुरोंने यह प्रतिज्ञा की थी—'हम काशीराज्यका ध्वंस कर उसे जलमें डुबो देंगे। निश्चय ही महोत्कट मारा जायगा; बस, वह दृष्टिमें पड़ जाय। शत्रु-संहारके बिना हम जीवित घर नहीं लौटेंगे।'

तीनों मायावी प्रबल दैत्योंने अपनी शस्त्र-वर्षासे काशीराज्यको आच्छादित कर देनेका निर्णय कर लिया। यह दृढ़ निश्चय लेकर अपनी महान् सेनाओंके साथ वे तीनों असुर काशीके समीप पहुँचे। उनके गर्जनसे त्रैलोक्य कम्पित हो रहा था।

अन्धकासुरने अपनी मायासे भगवान् भुवनभास्करको आच्छादित कर लिया। सर्वत्र गहन अन्धकार व्याप्त हो गया। जो द्विज स्नान, संध्या-वन्दन, जप-तप, वेद-पाठ, पुराण-पाठ, कथा-कीर्तन और पूजन आदि कर्ममें तल्लीन थे, वे सहसा घोर अन्धकारसे चकित हो गये। गृहिणियाँ दुग्ध गर्म करने आदि घरके कार्य प्रारम्भ ही करने जा रही थीं कि अचानक प्रगाढ़तमसे व्याकुल हो गयीं। इसी प्रकार चारों वर्णोंके बालक-युवा-वृद्ध नर-नारी—सबके कार्य रुक गये। दिनमें ही घरोंके भीतर दीप जला दिये गये।

'यह कैसे क्या हो गया? प्रकृतिका अविचल नियम सहसा कैसे परिवर्तित हो गया? विन्ध्यगिरिने क्या पुनः सूर्यमण्डलको अवरुद्ध कर दिया है?'—इस प्रकारकी चिन्तासे काशीकी प्रजा चिन्तित हो रही थी।

सहसा अम्भकासुरके क्रोधसे प्रबल झंझावात उठा। गिरि-शिखर भू-लुण्ठित होने लगे। वृक्ष समूल उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े। तमसाच्छन्न नगरमें भयानक अंधड़से और विपत्ति आ गयी। इतना ही नहीं, आकाशमें दल-के-दल भयानक मेघोंका गर्जन होने लगा। चपला चमकने लगी और कुछ ही क्षणोंमें मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ हो गयी।

प्रगाढ़तम, प्रबल प्रभंजन और प्रलयकालीन वृष्टि। काशीकी प्रजाके कष्टकी सीमा नहीं थी। वन-उपवन और वाटिकाएँ ध्वस्त हो रही थीं। भयानक वृष्टिसे त्राण पानेके लिये समस्त स्त्री-पुरुष घरोंमें चले गये, पर गृहोंके धराशायी होनेसे कितनी प्रजा मृत्युमुखमें चली गयी। वृष्टि उत्तरोत्तर तीव्र होती गयी और सब कुछ तीव्रगतिसे जलमग्न होता जा रहा था। सभी लोग त्रस्त थे, सभी भयसे काँप रहे थे, सभी अधीर, अशान्त और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये थे तथा सबकी बुद्धि निष्क्रिय हो गयी थी।

निर्मम दैत्योंकी प्रलयंकर मायासे पीड़ित पुरवासियोंका कष्ट देखते ही आर्त्तत्राणपरायण विनायकने अपनी मायासे लता-गुल्म-सुशोभित एक अत्युच्च वटका निर्माण किया। उसकी शाखाएँ सौ योजनतक फैली हुई थीं। उस समय विनायक विशालतम अद्भुत पक्षीके रूपमें प्रकट हुए। उस पक्षीके सुपुष्ट पंख दूरतक फैले हुए थे। उसका मस्तक आकाशको स्पर्श कर रहा था। उन पक्षीरूपी विनायकने असुरकी माया दूर की और सूर्य प्रकाशित हुए।

फिर उस अलौकिक पक्षीने जलमें डुबकी लगायी और कुछ ही देरमें सम्पूर्ण जल सूख गया। मायावी अन्धक एवं अम्भकासुरकी माया नष्ट हुई। द्विजातियों एवं नगर-निवासियोंका जीवनक्रम पूर्ववत् प्रारम्भ हुआ।

अन्धक और अम्भकके सर्वथा अशक्त हो जानेपर तुंगने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस महान् पक्षीपर

मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ कर दी। प्रचण्ड तुंग भयानक गर्जन करता हुआ ब्राह्मणोंके आश्रमोंको जलधारा एवं शिला-वर्षणसे नष्ट करता जा रहा था और वह उस अद्भुत शक्तिशाली पक्षीको मार डालना चाहता था।

महान् पक्षिराजने अपने विशाल पंख पसारे और आकाशमें उड़ते हुए तीव्रगतिसे चारों ओर घूमने लगे। उन्होंने सहसा पर्वततुल्य तुंगको अपने तीक्ष्णतम कठोर चंचुपुटमें ले लिया और फिर आकाशमें उड़ने लगे। प्रख्यात असुर-योद्धा सर्वथा असहाय और निरुपाय हो गया।

तुंगासुरको अपनी चोंचमें लिये पक्षिराज तीव्रगतिसे धरतीकी ओर लपके। वे अपने एक पैरमें अन्धक और दूसरे पैरमें अम्भकको लेकर विस्तीर्ण नीलाकाशमें अत्यन्त ऊँचे जाकर चारों ओर चक्कर काटने लगे। असुरत्रय तीव्र भ्रमण एवं सूर्यकी अग्निमयी किरणोंसे झुलसकर मूर्च्छित हो गये थे। पक्षिराजने शून्यमें अत्यधिक ऊपर जाकर उन तीनों असुरोंको अपनी चोंच एवं पैरोंसे मुक्त कर दिया। पृथ्वीपर गिरते ही उनका शरीर चूर्ण-विचूर्ण हो गया। आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी।

करुणाकर विनायककी कृपासे काशिराज और उनकी प्रजाकी विपत्ति दूर हुई। सबने हर्षविभोर होकर विनायककी जय-जयकार की, किंतु प्रयत्न करनेपर भी उन्हें उक्त मायामय विशाल वट एवं पक्षीके पुनः दर्शन नहीं हुए।

काशिराजने विनायककी पूजा एवं स्तुति कर ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये। उन्होंने शान्ति-होम कराकर गोदान किया और सबके चले जानेके बाद वे विनायकके साथ भोजन करने बैठे।

* * *

अम्भकासुरका मस्तक उड़कर उसके भवनमें गिरा। उस समय उस महादैत्यकी माता भ्रमरी स्वर्णशय्यापर शयन कर रही थी। अम्भकका छिन्न मस्तक भ्रमरीकी एक सखीने देखा। अत्यन्त आश्चर्यसे उसने वह मस्तक भ्रमरीको दिखाया तो भ्रमरी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी।

होशमें आनेपर वह अपने अन्यतम वीर पुत्रका सिर गोदमें लेकर विलाप करने लगी—'मेरे जिस वीर पुत्रसे पृथ्वी और स्वर्ग दोनों त्रस्त थे, जिसकी वक्र भृकुटिसे सहस्रफणधारी शेष काँप उठता था, जिसने देवान्तक और नरान्तकको त्रैलोक्यके राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया था, जिसके रोषमात्रसे भयभीत होकर धरती और आकाश कम्पित होते थे और जिसे देखकर साक्षात् काल काँपने लगता था, उसे किसने, कब, कैसे, कहाँ मारा?'*

अत्यन्त दुःखसे भ्रमरीको विलाप करते देख उसकी सखीने समझाया—'प्रत्येक प्राणीकी अन्तमें यही गति होती है, पर मृत प्राणीके लिये रुदनसे गिरे हुए अश्रु उसके मुखमें तप्त ज्वालाकी तरह पड़कर उसे कष्ट देते हैं। अतएव तुम क्रन्दन छोड़कर शत्रुसे प्रतिशोध लेनेका प्रयत्न करो।'

'मेरे पुत्रका मस्तक तेलमें सुरक्षित रखो।' आँसू पोंछती हुई भ्रमरीने सखीसे कहा—'मैं काशी जाती हूँ। वहाँसे शीघ्र ही अदितिके पुत्रका सिर लाकर ही उसके साथ इसका दाह-संस्कार करूँगी।'

क्रुद्ध सर्पिणी-तुल्य फूत्कार करती हुई भ्रमरीने देवमाता अदितिका रूप बनाया और काशी पहुँची। उस समय विनायक बालकोंके साथ खेलने चले गये थे।

सर्वश्रद्धास्पद महोत्कटकी जननीके वेषमें आनेपर भ्रमरीका बड़ा स्वागत हुआ। काशिराजकी सहधर्मिणीने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उसके चरणोंमें प्रणाम कर उसकी पूजा की। उसे बहुमूल्य वस्त्रालङ्कार प्रदान किये। फिर प्रेमगद्गद वाणीमें उन्होंने कहा—'आज बड़े भाग्यसे

---

* येनेयं पृथिवी सर्वा त्रासिता सामरावती ॥
मूर्ध्नां सहस्रं शेषस्य भ्रूकटाक्षेण कम्पितम्। येन राज्येऽभिषिक्तौ तौ देवान्तकनरान्तकौ॥
यस्य क्ष्वेडितमात्रेण रोदसी कम्पिते भृशम्। स कथं पतितः कुत्र निहतः केन वा सुतः॥
यं दृष्ट्वा कम्पितः कालः स कथं निधनं गतः।

(गणेशपु० २। २१। ७—१०)

अम्भकासुरकी माता भ्रमरीके इस विलापसे स्पष्ट होता है कि विनायकने इस असुरका वध कर देवान्तक और नरान्तकका प्रमुख प्रबल स्तम्भ नष्ट कर दिया। असुरोंकी अजेय शक्ति क्षीण हो चली।

आप-जैसी महिमामयी देवीका दर्शन प्राप्त हुआ। यदि यहाँ विनायक नहीं होते तो यह कैसे सम्भव था?'

अदितिरूपिणी भ्रमरीने अन्तर्व्यथाको छिपाकर कहा—'आप स्त्री-हृदयसे परिचित हैं। इतने अधिक दिन बीत जानेसे मैं महोत्कटके बिना व्याकुल होकर यहाँ आ गयी। वह कहाँ है? उसे शीघ्र बुलाइये। उसे गोदमें बैठानेके लिये मैं तरस रही हूँ।'

रानीने तुरंत विनायकको ढूँढ़नेकी आज्ञा दी। अदितिके आगमनका समाचार काशीनरेशको मिला तो वे हर्षातिरेकसे दौड़ते आये। उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक अदितिरूपिणी भ्रमरीके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—'आज जगज्जननी, साक्षात् शक्ति देवमाताके यहाँ पधारनेसे मेरे पितर, मेरा तप, मेरा जन्म और राज्य सभी धन्य हो गये। आपकी महिमाका गान करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। आपके पुत्र विनायक सहस्राक्षसे भी अधिक पराक्रमी हैं। उन्होंने कुछ ही दिनोंमें कितने ही दुष्ट दैत्योंका संहार कर दिया। अभी-अभी अन्धक, तुङ्ग और महाशक्तिसम्पन्न क्रूरतम अम्भकका विनाश महोत्कटने ही किया है।'

अपने पुत्रका वध सुनकर भ्रमरी क्रोधोन्मत्त हो गयी। उसके अधर फड़कने लगे; किंतु अदितिरूपकी रक्षाके लिये उसने बलपूर्वक अपने मनपर नियन्त्रण किया। राजा कहते जा रहे थे—'विनायक यहाँ सुखपूर्वक रह रहे हैं। उनसे हम सभी प्रसन्न हैं। यह मेरा सौभाग्य है। आप कृपापूर्वक कुछ दिन यहाँ रहें। युवराजका विवाह होते ही मैं आप दोनोंको आश्रमपर पहुँचा दूँगा।'

'राजन्! आप कैसी बात करते हैं?' भ्रमरीने उत्तर दिया—'आप मातृ-वियोग क्या जानें? महोत्कट यहाँ कैसे सुखी रह सकता है?'

उसी समय बालकोंसे अपनी माताके आनेका संवाद पाकर देवदेव विनायक वहाँ पहुँच गये। भ्रमरीने उन्हें तुरंत अपने वक्षसे लगाया और साश्रुनयन कहने लगी—'अरे निष्ठुर विनायक! तूने कितने दिनोंसे अपनी माताको छोड़ दिया है। मैंने तेरे लिये अपने प्राणोंपर खेलकर तपस्या की थी और कितने कष्ट सहकर तुझे प्राप्त किया था। तेरे बिना मुझे एक-एक दिन कल्प-तुल्य बीत रहा था, इस कारण मैं यहाँ चली आयी।'

इस प्रकार कहती हुई भ्रमरीने उन्हें गोदमें लेकर मोदक दिया। विनायकने उक्त मोदक खा लिया, पर अपनी माताके स्वभावसे परिचित होनेके कारण उन्हें उसके छलका विश्वास हो गया। उन्होंने दूसरा मोदक माँगा। भ्रमरीने तुरंत दूसरा मोदक दे दिया। अत्यन्त चतुर विनायकको गन्धमात्रसे सहज ही भान हो गया कि यह मोदक भयानक गरलमिश्रित है।

'आप चलकर विनायकके साथ भोजन कर लें।' राजरानीने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अदितिरूपा भ्रमरीसे प्रार्थना की, किंतु हाथमें मोदक लिये विनायक भ्रमरीके अङ्कमें पर्वतकी तरह अत्यन्त भारी हो गये।

'छोड़, छोड़ ! अरे मुझे छोड़ ।' भ्रमरी विकल-विह्वल होकर बोल उठी। किंतु पुत्रस्नेहका प्रदर्शन करते हुए महोत्कट उसके वक्षसे और अधिक चिपट गये।

'अरे, क्या तू मुझे मार डालेगा?' भ्रमरी चिल्लाने लगी; किंतु महोत्कट बाल-क्रीड़ाके मिस उसे उत्तरोत्तर पीड़ित करने लगे। वह छटपटाती जा रही थी।

राक्षसीके श्वासोच्छ्वास चलने लगे। उसके नेत्र विकृत होने लगे। यह दृश्य देखकर विनायकके मित्र बालकोंने उन्हें खींचते हुए कहा—'अरे ! उठो, नहीं तो तुम्हारी माँ मर जायगी। यह तुम क्या कर रहे हो; तुम अपने पितासे क्या कहोगे?'

किंतु महोत्कट गिरीन्द्र-तुल्य उसके अङ्कमें बैठकर उसे अनेक प्रकारसे यातना दे रहे थे। भ्रमरी अधिक न सह सकी। उसके हाथ-पैर फैलकर कड़े हो गये, नेत्र निकल आये और उसका निष्प्राण कलेवर धरतीपर लुढ़क गया।

महोत्कट चुपचाप खड़े हो गये। तब राजा, रानी और बालकोंको विदित हुआ कि यह बालघातिनी महाराक्षसी अम्भकासुरकी माता भ्रमरी अदितिके वेषमें विनायकका प्राण हरण करने आयी थी।

विनायकके अत्यन्त अद्भुत ज्ञानमय सामर्थ्यको देखकर काशिराज, ऋषि तथा लोकपाल आदि उनकी स्तुति करने लगे। वह स्तुति 'उत्पातनाशनस्तोत्र' के नामसे प्रख्यात हुई।*

---

* नाथस्त्वमसि देवानां मनुष्योरगरक्षसाम् ॥
यक्षगन्धर्वविप्राणां गजाश्वरथपक्षिणाम् । भूतभव्यभविष्यस्य बुद्धीन्द्रियगणस्य च ॥

फिर सब लोगोंने विशाल राक्षसीके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर नगरके बाहर फेंक दिये।

* * *

विनायक-अभिनन्दन

अत्यन्त छल-कपटसे भरे कुटिलतम, अन्यायी असुरोंके साथ अम्भक जैसे इन्द्रविजयी महादैत्यके वध करने तथा काशीको महान् सौभाग्य एवं कीर्ति प्रदान करनेके कारण नगरनिवासियोंके मनमें यह दृढ़ निश्चय हो गया कि विनायक धरतीके महापुरुष ही नहीं, अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक हैं; वे परमात्मा गजानन ही मेदिनीको असुरविहीन कर सद्धर्मकी स्थापनाके लिये पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए हैं, इस विश्वासके साथ प्रातःकाल ही समस्त नागरिक नरेशके समीप पहुँचे। उस समय महोत्कट प्रातः संध्या-वन्दनादिसे निवृत्त होकर बालकोंके साथ क्रीड़ा करने चले गये थे।

'आपलोग प्रातःकाल ही किस उद्देश्यसे यहाँ उपस्थित हुए हैं?' काशिराजने प्रजाजनोंसे पूछा।

'हमलोगोंका परम सौभाग्य है कि आप कश्यपनन्दनको यहाँ ले आये।' प्रजा-प्रतिनिधिने महाराजसे निवेदन किया—'उनके आगमनसे हमारी आपदाएँ टलीं, हम सुखी और यशस्वी हुए, किंतु वे सदा राज-भवनमें रहते हैं। आपको प्रतिदिन उनकी सेवा-पूजाका अवसर सुलभ है, किंतु हम सबकी कामना है कि प्रभु विनायक हमारे यहाँ भी पधारें और हमारी पूजा स्वीकार कर हमारा जीवन एवं जन्म सफल करें।'

'आप सर्वथा उचित कहते हैं।' काशिराजने प्रजाजनोंसे कहा—'विनायककी सेवा-पूजा कर उनकी प्रीति प्राप्त करनेका अधिकार मेरी ही भाँति आप सबको भी है। सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके अनुसार मनुष्योंके तीन प्रकार हैं। जो अत्यन्त दुष्ट प्रकृतिके हैं, वे इनकी परीक्षा करने लगते हैं; किंतु पुण्यवान् पुरुष इनकी भक्ति करते हैं। कोई इनकी निन्दा करता है और कोई प्रशंसा। अपने स्वभावानुसार ही मनुष्य इन्हें जानते हैं। अतएव यदि इन मुनिकुमारके प्रति आपके मनमें श्रद्धा-भक्ति है और आप प्रीतिपूर्वक इनको प्रसन्न करना चाहते हैं तो इन्हें ले जाइये और इनकी पूजा कीजिये। इन्हें नैवेद्य अर्पित कीजिये; किंतु मातृ-पितृस्वरूप इन विनायकदेवकी परीक्षा मत कीजियेगा।'

'प्रजावत्सल! आपकी आज्ञासे हम सभी प्रसन्न हुए।' नागरिकोंके प्रतिनिधिने पुनः निवेदन किया—'आप ही हमलोगोंकी कामना-पूर्ति करें। आप अदितिनन्दनको हमारे यहाँ भेज दें, जिससे हम सब अपनी-अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार उनका सत्कार कर सकें।'

उस समय जगद्गुरु बालक विनायक वहाँ आकर बैठ गये थे। नगर-प्रतिनिधिकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने कहा—'आपलोग काशिराजसे किस लिये प्रार्थना करते हैं? मैं सामान्य ऋषिपुत्र हूँ? युवराजका व्रतबन्ध, विवाह और यज्ञादिक कर्म कराकर अपने आश्रमको लौट जाऊँगा। मेरी समझमें नहीं आता, आपलोग यह व्ययसाध्य आयोजन क्यों कर रहे हैं? सहस्रों नागरिकोंके यहाँ मैं एक बालक कैसे जाऊँगा और मुझ

हर्षस्य शोकदुःखस्य सुखस्य ज्ञानमोहयोः। अर्थस्य कार्यजातस्य लाभहान्योस्तथैव च॥
स्वर्गपातालल्लोकानां पृथिव्या जलधेरपि। नक्षत्राणां ग्रहाणां च पिशाचानां च वीरुधाम्॥
वृक्षाणां सरितां पुंसां स्त्रीणां बालजनस्य च। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणे ते नमो नमः॥
पशूनां पतये तुभ्यं तत्त्वज्ञानप्रदायिने। नमो विष्णुस्वरूपाय नमस्ते रुद्ररूपिणे॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय नमोऽनन्तस्वरूपिणे। मोक्षहेतो नमस्तुभ्यं नमो विघ्नहराय ते॥
नमोऽभक्तविनाशाय नमो भक्तप्रियाय च। अधिदैवाधिभूतात्मंस्तापत्रयहराय ते॥
सर्वोत्पातविघाताय नमो लीलास्वरूपिणे। सर्वान्तर्यामिणे तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय ते नमः॥
अदित्या जठरोत्पन्न विनायक नमोऽस्तु ते। परब्रह्मस्वरूपाय नमः कश्यपसूनवे॥
अमेयमायान्वितविक्रमाय मायाविने मायिकमोहनाय। अमेयमायाहरणाय मायामहाश्रयायास्तु नमो नमस्ते॥

* * *

य इदं पठते स्तोत्रं त्रिसंध्योत्पातनाशनम्। न भवन्ति महोत्पाता विघ्ना भूतभयानि च॥
त्रिसंध्यं यः पठेत् स्तोत्रं सर्वान् कामानवाप्नुयात्। विनायकः सदा तस्य रक्षणं कुरुतेऽनघ॥

(गणेशपु० २। २१। ६०—७०; ७२-७३)

बालकसे वांछितार्थ-प्राप्तिकी कामना आपलोग कैसे कर रहे हैं?'

'आप कृपापूर्वक हमारे हृदयमें भ्रम उत्पन्न मत कीजिये।' नगरप्रमुखने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक निवेदन किया—'आप सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थ, समस्त प्राणियोंकी चित्तवृत्तिसे परिचित एवं सर्वान्तर्यामी चिदानन्दस्वरूप परमप्रभु हैं। आपकी पूजा हमारे लिये नितान्त उपयोगी है। भक्तिप्रिय देव! आप शास्त्र-वचनोंको अन्यथा न कर दयापूर्वक हमारी कामना-पूर्ति कर दें।'

'आपलोगोंकी प्रीति और राजाज्ञाके सम्मुख मैं नतमस्तक हूँ।' भक्तवांछाकल्पतरु देवदेव विनायकने अपनी स्वीकृति दे दी।

'महाप्रभु विनायककी जय!' हर्षोल्लासपूर्वक समस्त नागरिक अपने-अपने घर लौटे।

फिर तो काशी-नगरीमें घर-घर अद्भुत, आकर्षक मण्डप बनने लगे। तोरण, बन्दनवार और पुष्पमालाओंसे प्रत्येक भवन सजाये गये। बहुमूल्य वस्त्र, आभरण, मनोहर पात्र, मधुर फल एवं पंचामृतयुक्त विविध पक्वान्न प्रस्तुत होने लगे। प्रत्येक घरमें विनायककी मूर्ति प्रतिष्ठित हुई। चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा की गयी। सारा नगर स्वच्छ करके सजा दिया गया। घर-घर विनायकका ध्वज लहराने लगा। सर्वत्र महोत्कटके गुणोंका कीर्तन होने लगा और मधुर वाद्य बजने लगे। इस प्रकार विनायकके सादर अभिनन्दनके लिये काशीमें अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व आयोजन किया गया। सभी लोग विनायकके पथमें पलक-पाँवड़े बिछाये उनके आगमनकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे।

काशीमें अत्यन्त सात्त्विक जीवन व्यतीत करनेवाले वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता शुक्ल नामक एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे श्रौत-स्मार्त-कर्मोंके ज्ञाता, ब्रह्मनिष्ठ, अतिथियोंकी सेवा करनेवाले, शान्त, दान्त और क्षमादि गुणोंसे विभूषित थे। उनकी साध्वी धर्मपत्नीका नाम विद्रुमा था। विद्रुमा अत्यन्त निःस्पृहा, ज्ञानसम्पन्ना, अनुपम रूपवती एवं अद्भुत पतिपरायणा थी।

विप्रवर शुक्ल दरिद्र थे। उनका घर इतना टूटा-फूटा और जीर्ण था कि आकाशके नक्षत्र उससे सहज ही दीखते रहते थे। उनके घरमें सोने, चाँदी और ताँबेके पात्र कहाँसे आते, जब कि उनकी गौरवर्णा लावण्यमयी पत्नी वल्कल धारण कर अपने दिन काटती थी; किंतु वह साध्वी अपनी उसी गम्भीर दीनावस्थामें भी संतुष्ट रहकर अत्यन्त विनयावनत पतिकी सेवा करती रहती थी।

धनहीन शुक्ल भिक्षाटनके लिये निकले। उन्होंने देखा—नगर सुसज्जित हो रहा है और प्रत्येक व्यक्तिके मनमें विनायक-पूजाका उल्लास छाया है। शुक्लने भी महोत्कट-पूजनकी इच्छा व्यक्त की तो लोग हँस पड़े—'अरे! आप क्यों व्यर्थ प्रयास करेंगे? आप महामहिम महोत्कटका स्वागत किस प्रकार करेंगे? आपके घरमें है भी कुछ ?'

भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हुआ, लेकर शुक्ल शीघ्रतासे घर पहुँचे। उन्होंने अपनी सहधर्मिणीसे कहा—'जो देवदेव विनायक भूभार-हरणार्थ महर्षि कश्यपके घर अवतीर्ण हुए हैं, वे आज प्रत्येक घरमें पधारेंगे। उनके अभिनन्दनके लिये प्रत्येक घरमें अद्भुत आयोजन किये जा रहे हैं। हम भी उनकी पूजा करके अपना जीवन सफल कर लें।'

विद्रुमाने उदास होकर कहा—'मुने! पहले तो हमारे-जैसे दरिद्रतम व्यक्तिके घर विनायक कैसे पधारेंगे और कदाचित् वे कृपापूर्वक आ ही गये तो उनके सत्कारके लिये गन्ध, पुष्प, पक्वान्न तथा विविध मधुर फलादि हमारे पास कहाँ हैं? हमारे यहाँ आनेसे उनका कौन प्रयोजन सिद्ध होगा ?'

ब्राह्मण बोले—'प्रिये! वे प्रभु दीन और अनाथोंके नाथ हैं। उन्हें प्रेमी भक्त प्राणाधिक प्रिय होते हैं। वे दम्भपूर्ण अर्पित किये गये सुवर्णादिसे भी संतुष्ट नहीं होते; वे लोभशून्य दयामय प्रभु तो प्रीतिपूर्वक समर्पित पत्र-पुष्पसे ही अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं।'

शुक्लपत्नी विद्रुमाने कहा—'तो फिर हमारे पास जो कुछ है, उसे ही प्रभुको निवेदन करें।'

विद्रुमा प्रायः भिक्षामें प्राप्त अनेक प्रकारके अन्न एकहीमें पीसकर रोटी बना लेती और थोड़े-से चावलमें अधिक पानी मिलाकर भात। पतिदेवको भोजन कराकर पीछे स्वयं खाती। कभी-कभी तो उसे जलपर ही रहना पड़ता। उस दिन शुक्लशर्माने उस अन्नको देकर विनायक-पूजनके लिये गन्ध, अक्षत,

पुष्प, धूप, दीप, वन्यफल, वल्कल और मुखशुद्ध्यर्थ सूखा आँवला आदि वस्तुएँ ले लीं।

विनायकके चरणोंमें अमित श्रद्धा-भक्ति रखनेवाली उनकी सहधर्मिणी विद्रुमाने अपने छोटे-से घरको झाड़-पोंछकर स्वच्छ किया। सुन्दर चौक पूरा और दर्भ बिछाकर उसपर पूजोपकरण रख लिया। पत्तोंका तोरण द्वारपर बाँधा और पत्तोंका ही ध्वज खड़ा कर लिया। फिर अत्यधिक जलमें उपलब्ध थोड़े-से चावलका भात बनाया। सर्वलोकमहेश्वर विनायकको अर्पित करनेके लिये उस श्रद्धामयी विद्रुमा और भक्तहृदय शुक्लशर्माके घर वही पतले माँड़से भरा थोड़ा-सा भात था।

पहले शुक्लशर्माने नैवेद्य और वैश्वदेव किया। फिर घरमें धूप जलाकर सहधर्मिणीके साथ विनायकका ध्यान करते हुए द्वारपर बैठ गये। परम प्रभु विनायकका नाम-जप करते हुए दम्पतिके नेत्रोंसे अविरल प्रेमाश्रु प्रवाहित होता जा रहा था।

अदितिनन्दन विनायक बालकोंके साथ मणिकर्णिकापर स्नान कर रहे थे। वे जलसे निकले, नवीन वस्त्र धारण किये और बालकोंके साथ सीधे शुक्लशर्माके द्वारपर पहुँचे।

'विनायक हमारे द्वारपर पधारे!'—ब्राह्मण-दम्पतिके आनन्दकी सीमा न रही। हर्षविभोर होकर वे नृत्य करने लगे। विद्रुमा आश्चर्यचकित हाथ जोड़े विनायकको अपलक दृष्टिसे देख रही थी। उसके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह रहे थे।

किसी प्रकार शुक्लशर्माका नृत्य बंद हुआ तो उनकी वाणी जैसे अवरुद्ध हो गयी। जगद्वन्द्य त्रैलोक्यनायक विनायककी अभ्यर्चनाके लिये क्या करूँ, क्या न करूँ? कुछ समझमें नहीं आ रहा था उनकी।

फिर भी उन्होंने प्रभुको आसनपर बिठाकर धीरे-धीरे उनके चरणकमलोंको दबा-दबाकर धोया। प्रभु-पद-पद्मका धोवन उन्होंने अपने माथेपर चढ़ाया, विद्रुमाके मस्तकपर छिड़का और शेष जल दोनों पी गये।

'आज मेरा जन्म, तप, ज्ञान, वंश, वय आदि सभी सफल हुए, जो पापोंका नाश करनेवाले दीनानाथ मुझ अकिंचनकी कुटियापर पधारे।'—शुक्लशर्माने हाथ जोड़कर कहा और गन्ध, अक्षत, पुष्पमाला, धूप, दीप, दूर्वांकुर, शमीपत्र, उत्तम तैल आदि विनायकको अर्पित किये। फिर उनके सम्मुख वन्यफल रखकर, पुष्पांजलि समर्पण करके चरणोंमें प्रणाम किया।

भक्त शुक्लशर्मा अत्यन्त पतला माँड़मिश्रित भात परसनेमें लज्जित हो रहे थे; इस कारण वे प्रभुके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

सर्वान्तर्यामी विनायकदेवने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक विद्रुमासे कहा—'माता! तुमने क्या भोजन बनाया है? जो कुछ तुम्हारे पास तैयार हो, मुझे वही निस्संकोच अर्पित करो। भक्तिपूर्वक प्रदत्त कदन्न भी मुझे अमृतसे अधिक सुस्वादु और तृप्तिकर प्रतीत होता है, श्रद्धाहीन बहुमूल्य पक्वान्न भी मेरे लिये विष-तुल्य है।'

'माता!' विद्रुमा तो निहाल हो गयी। दयाधाम विनायकने मुझे 'माता' कह दिया। बालक तो दरिद्रा माताका दिया सब कुछ खायेगा ही। फिर माँड़-भात क्यों नहीं खायेगा? सफलमनोरथ विद्रुमा भातका पूर्णपात्र ही उठा लायी। कुछ बालक विनायकके साथ वन्यफल खा रहे थे; किंतु कुछ विनायककी यह लीला देखकर ठहाका मारकर हँसने लगे।

शुक्लशर्माने अनेक अन्नोंकी पीठी परोसी। विनायक उक्त अन्नकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके बड़े चावसे आरोग रहे थे। बीच-बीचमें जल भी ग्रहण करते जाते। फिर शुक्लशर्माने माँड़-भात परोसना आरम्भ किया।

'घुटनेभर पानीमें भात बनाया है क्या, पंडितजी!' दरिद्र ब्राह्मणका अन्न न खानेवाले बालकोंने व्यंग्य किया और हँस पड़े।

'आजतक मैंने इतना सुस्वादु भोजन कभी नहीं किया?' अत्यन्त प्रसन्न होकर उल्लासपूर्वक महोत्कटने ब्राह्मण-दम्पतिसे कहा—'माँड़-भात और दीजिये।'

ब्राह्मणने पूरा पात्र पत्तलपर उलट दिया। भात बिखर गया और माँड़ बहने लगा। बालक विनायक उसे अपने नन्हें दो हाथोंसे नहीं रोक सके; अतएव वे तुरंत दशभुज हो गये और अपने दसों हाथोंसे माँड़-भात खाने लगे।* भक्तिप्रिय विनायकको अपना वर्तमान स्वरूप विस्मृत हो गया।

* तज्जलं चलितं दिक्षु बालो रोद्धुं न चाशकत्॥ ततोऽभवद्दशभुजो बुभुजे चौदनं च तैः।

(गणेशपु० २ । २३ । ४१-४२)

यह दृश्य उपस्थितजन चकित होकर देख रहे थे। जिन बालकोंने विनायकके साथ उस भक्त ब्राह्मणका अन्न ग्रहण किया, वे सभी देवस्वरूप हो गये। यह देखकर उपहास करनेवाले बालक मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगे।

उधर सम्पूर्ण नगरवासी उत्सुकतापूर्वक परस्पर पूछ रहे थे कि 'विनायक कहाँ हैं?' और जब उन्हें विदित हुआ कि महामहिम विनायक दरिद्र ब्राह्मण शुक्लशर्माके यहाँ दस हाथोंसे उसका माँड़-भात खा रहे हैं तो उनके आश्चर्यकी सीमा न रही।

भोजनोपरान्त करुणामयने शुक्लशर्माके दिये जलसे हाथ धोया और मुखशुद्धि ली। तब अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने शुक्लशर्मासे कहा—'अनघ! आपकी अद्भुत प्रीतिसे मैं पूर्ण प्रसन्न हूँ। महाभाग्यवान्! आप इच्छित वर माँगें!'

हर्षातिरेकसे शुक्ल-दम्पतिकी वाणी अवरुद्ध थी। उनसे बोला नहीं जा रहा था। देवी विद्रुमा हाथ जोड़े खड़ी थीं। उनके नेत्र सजल थे। बद्धांजलि शुक्लशर्माने किसी प्रकार कहा—'प्रभो! आपने सम्पन्न लोगोंकी उपेक्षा कर सर्वप्रथम मुझे अपना दुर्लभ दर्शन दिया और मुझ दरिद्र ब्राह्मणका कदन्न हर्षपूर्वक स्वीकार किया, यह निश्चय ही मेरा परम सौभाग्य है।'

शुक्लशर्माकी हिचकी बँध जाती थी। सँभलकर उन्होंने प्रार्थना की—'मैं आपकी सुदृढ़ भक्तिकी याचना करता हूँ। आपके बिना मेरा मन संसारके सुखोंमें कभी न लगे। अन्तमें आप हमें मोक्ष प्रदान कर दें, जिससे हमें पुनः जन्म-मृत्युकी यातना न सहनी पड़े।'

'एवमस्तु' कहते हुए विनायक पुनः द्विभुज बालक हो गये और उन्होंने शुक्ल-दम्पतिको अत्युत्तम स्वरूप, ज्ञान और सम्पत्ति प्रदान की। फिर ब्राह्मण-दम्पतिकी स्वीकृतिसे बालकोंसहित अन्यत्र चले गये।

इधर गृह-गृहमें और राज-भवनमें विनायक ढूँढ़े जा रहे थे। कुछ लोगोंको जब विदित हुआ कि विनायक बालकोंसहित शुक्लशर्माके घर भोजन कर आये तो उन्होंने कहा—'वह पिशाचकी तरह बालकोंके साथ दरिद्रके घर भोजन कर आया; सम्पन्न व्यक्तियोंका उसे कुछ पता नहीं।' इस प्रकार कुछ लोग उन जगद्गुरु विनायककी निन्दा करने लगे।

इस प्रकार दम्भ करनेवाले भावरहित दुष्ट व्यक्तियोंने जब विनायकसे अपने घर भोजन करनेके लिये आग्रह किया तो सर्वान्तर्यामी विनायकदेवने अपने उदरपर हाथ फेरकर डकार लेते हुए उत्तर दिया—'परम सात्त्विक ब्राह्मण शुक्लशर्माके अत्यन्त सुस्वादु पवित्रतम नैवेद्यसे मेरा पेट इतना भर गया है कि मुझसे चला भी नहीं जा रहा है। अब तो मैं एक ग्रास भी नहीं ले सकूँगा।'

यह सुनकर भ्रष्ट-संकल्प दाम्भिक अत्यन्त निराश हो गये और कुपित होकर उन्होंने स्वयं भोजन कर लिया[1]; किंतु जिन विनायकके सच्चे भक्तोंने अनेक प्रयत्नसे कष्ट सहकर पवित्रतापूर्वक नैवेद्य तैयार किया था तथा जो उपवास करते हुए विनायकका ध्यान कर रहे थे, उन सबके लिये एक विनायकने अनेक रूप धारणकर[2] सबकी कामना पूर्ण की।

सर्वज्ञानसम्पन्न, विद्या-बुद्धि-वारिधि विनायकने अपने प्रत्येक भक्तकी रुचिके अनुसार उसे तृप्त किया। वे भक्त-भावानुसार किसीके पर्यंकपर बैठे, किसीके घर जप करने लगे, कहीं विद्यार्थियोंको वेद-पाठ कराने लगे, कहीं शास्त्रार्थ करते तो कहीं स्वयं अध्ययन करते थे। कहीं भोजनके लिये अत्यन्त उत्सुक प्रतीत होते थे। इस प्रकार नाना रूपोंमें वे भक्तोंके घर उनका जीवन सफल करने लगे।[3]

विनायकके चरणोंमें प्रीति रखनेवाले सभी भक्त समझ रहे थे कि—'सर्वसंतापहारी सर्वप्रथम मेरे ही घर पधारे हैं। विनायक तो प्रत्येक रीतिसे मेरे परिवारको अपना ही समझते हैं। उनके मनमें मेरे प्रति कितना

---

१. बुभुजुस्तान् स्वयं दुष्टा दाम्भिका भक्तिवर्जिताः ॥

(गणेशपु० २। २४। १४)

२. 'एको नानास्वरूपोऽभूत्......।' (गणेशपु० २। २४। १६)

३. क्वचित्पाठयते शिष्यान् साङ्गं वेदं सहार्थकम् । क्वचिद् व्याकुरुते शास्त्रं क्वचिच्च पठति स्वयम्॥
एवं नानास्वरूपैः स नानागृहगतो बभौ ॥

(गणेशपु० २। २४। १८-१९)

आदर, कितना प्रेम और कितनी सद्भावना है?' सभी लोगोंने परमदेव विनायकके दिव्य अंगपर तेल और उद्वर्तन लगाया। उन्हें स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र पहननेको दिये। फिर विविध प्रकारसे उनकी पूजा की।

उसी समय सनक और सनन्दन विनायकके दर्शनार्थ राजाके समीप आये। राजाने उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा की। फिर जब उन्हें विदित हुआ कि विनायक नागरिकोंका आतिथ्य स्वीकार करने गये हैं तो वे नगरमें आये। उन्होंने एक ही परब्रह्म परमेश्वर विनायकको सर्वत्र देखा।

सनक-सनन्दनने प्रत्यक्ष देखा, एक ही देवदेव विनायक कहीं शिबिकारूढ़, कहीं गजारूढ़ और कहीं हयारूढ़ होकर भोजन करने जा रहे हैं। इस प्रकार सभी लोग बालक विनायककी पूजामें व्यग्र थे। सनक-सनन्दन जहाँ-जहाँ गये, वहीं उन्होंने विनायकको उपस्थित देखा। विनायकदेव कहीं नैवेद्य आरोग रहे थे तो किसी घरमें हाथ धो रहे थे; किसी घरमें फल खा रहे थे तो किसीमें ताम्बूल ग्रहण कर रहे थे और किसीमें सुकोमल पर्यंकपर विश्राम करते हुए भक्तकी लालसा पूरी कर रहे थे। इस प्रकार अनेक घरोंमें जाकर उन पूज्य ऋषियोंने विनायकदेवकी अद्भुत विभूतिका दर्शन किया। उन्होंने धरतीपर, गृहोंके भीतर-बाहर, दसों दिशाओं और अनन्त अन्तरिक्षमें सर्वत्र विनायकको प्रत्यक्ष देखा।

ऋषियोंने भीतर-बाहर सर्वत्र विनायकको ही देखा। उन्हें सिद्धि-बुद्धिसहित दशभुजाधारी चन्द्रभालके दिव्य रूपका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ। वे गद्गद कण्ठसे महाप्रभु विनायककी स्तुति करने लगे—

''निष्पाप परमेश्वर! आप समस्त कारणोंके भी कारण हैं, साथ ही सारे कारणोंसे अतीत हैं। आप ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्माण्डके कारण तथा व्यापक परमात्मा हैं। आप ही इस जगत्का पालन, सर्जन तथा संहार करते हैं। आप रूपरहित होते हुए भी नाना रूपोंसे युक्त हैं। नाना प्रकारकी माया-शक्तिसे सम्पन्न हैं। आप ही पंचभूत, यक्ष, गन्धर्व तथा राक्षस हैं। सम्पूर्ण चराचर विश्व आपका स्वरूप है; आपकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? आपके स्वरूपको न जाननेके कारण ही श्रुति 'नेति-नेति' कहकर मौन हो जाती है। हम दोनों मोहित हैं, आपके उत्तम रूपको नहीं जान सके हैं। विभो! आपके अनेक रूप हैं; हम आपकी महिमाको नहीं जानते। प्रभो! इस समय आपके चरणारविन्दोंके दर्शनसे ही हम कृतकृत्य हो गये हैं।''*

सनक-सनन्दनके स्तवनसे संतुष्ट होकर परमदेव विनायकने उन्हें वर प्रदान किया—'मेरे प्रसादसे तुम तत्त्वज्ञ और सर्वज्ञ होओगे।'

तदनन्तर प्रभु विनायक वहीं अन्तर्धान हो गये। सनक-सनन्दनने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक वहाँ स्वर्ण और रत्नोंका एक विशाल मन्दिर निर्माण कराया। उसमें विनायककी सुन्दर मूर्ति स्थापित की। मन्दिरके समीप ही गणेशकुण्ड नामक एक सुन्दर सरोवर बनवाया। मूर्तिका नाम 'वरदगणपति' रखा। उन्होंने स्वयं वरदगणपतिकी पूजा की और उक्त कुण्डमें स्नानकर विनायककी वरद-मूर्तिके पूजनका माहात्म्य-गान करते हुए कहा—'इस मूर्तिके पूजक स्त्री-पुरुष निस्संदेह पुत्र-पौत्र-सम्पन्न हो दीर्घायु प्राप्त करेंगे। उन्हें यश, धन, धान्य, कीर्ति एवं शाश्वत तत्त्वज्ञान उपलब्ध होगा। मृत्युके अनन्तर वे परम सुखद विनायकधाम प्राप्त कर लेंगे।'

वहाँ देवता, गन्धर्व, यक्ष तथा अप्सराओंके समुदायने वरद-विनायकका दर्शन कर उनकी विविध प्रकारसे पूजा की। उनके चले जानेपर सनक-सनन्दनने वरद-विनायकके चरणोंमें प्रणाम किया और वे अमरावतीके लिये प्रस्थित हो गये।

इधर नागरिकोंका आतिथ्य स्वीकार करनेके लिये

* सर्वेषां कारणानां त्वं कारणं कारणातिगः। ब्रह्मस्वरूपो ब्रह्माण्डकारणं व्यापकः परः॥
पासीदं सृजसे विश्वं त्वमेव हरसेऽनघ। नानारूपैररूपस्त्वं नानामायाबलान्वितः॥
त्वमेव पञ्चभूतानि यक्षगन्धर्वराक्षसाः। कस्त्वां स्तोतुं समर्थः स्याच्चराचरस्वरूपकम्॥
नेति नेति ब्रवीति स्म त्वद्रूपाज्ञानतः श्रुतिः। आवां विमोहितौ ज्ञातुं नेशाथे रूपमुत्तमम्॥
महिमानं न जानीवोऽनेकरूपस्य ते विभो। कृतकृत्यौ भवत्पाददर्शनात् स्वः प्रभोऽधुना॥
(गणेशपु० २। २५। १—५)

देवदेव विनायकको गये अधिक देर हो गयी। उनके लौट आनेपर राजा उनके साथ भोजन करना चाहते थे। प्रतीक्षा असह्य हो गयी तो स्वयं काशिराज अश्वपर आरूढ़ होकर उन्हें ढूँढ़ने निकले।

'विनायक भोजन करने कहाँ गये?' काशिराज घर-घर यही प्रश्न कर रहे थे और उन्हें सर्वत्र एक ही उत्तर मिलता था—'बाल विनायक तो भोजन कर आपके ही साथ बालकोंमें क्रीड़ा करने गये हैं। राजा चकित थे। उनकी समझमें कुछ नहीं आ रहा था। अन्तमें उन्हें पता चला कि महोत्कट दरिद्र शुक्लशर्माके घर गये हैं। काशिराज शुक्लशर्माके घर पहुँचे तो वहाँ देखा, 'बाल विनायक शिव-तुल्य वृषभपर आरूढ़ होकर हँसते हुए खेल रहे हैं।'

राजाने विनायकको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोले—'शिशुओंमें क्या आपका साधु-स्वभाव, ज्ञान और प्रेम नष्ट हो गया? आपने मुझे छोड़कर अकेले ही मिष्ठान्नका भोग कहाँ लगा लिया?'

हँसते हुए बालक महोत्कटने तुरंत उत्तर दिया—'महाराज! बच्चोंकी तरह मिथ्या-भाषण नहीं करना चाहिये। आप किसीसे पूछ लें, मैंने जहाँ-जहाँ भोजन किया, वहाँ-वहाँ आप मेरे साथ थे।'

वहाँ उपस्थित लोगोंने भी राजासे कहा—'वयोवृद्ध धर्मज्ञ महाराज! आपको असत्य शोभा नहीं देता। आपने हमारे सामने घर-घर विनायकके साथ बैठकर भोजन किया है।'

आश्चर्यचकित राजाने कहा—'प्रभो! आपकी परम दुर्विज्ञेय मायासे योगिराज भी मोहित हो जाते हैं। समस्त रूपोंमें सर्वत्र मान्य आप धन्य हैं।'

राजाके शरीरमें रोमांच हो आया। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तो उन्हें भय-तापहारी विनायकके दर्शन हुए। जल और उसकी वीचियोंकी तरह उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि एवं विनायकमें सर्वथा अभेदका दर्शन हुआ। फिर मायाके प्रभावसे उन्हें बालक विनायक दीखने लगे।

राजाने विनायकको शिबिकामें बैठाया। अनेक प्रकारके वाद्य बज रहे थे। नृत्य और गान हो रहा था। इस प्रकार देवदेव विनायक राजभवनकी ओर चले। दीन-हीन शुक्ल-दम्पति भी उनके पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे। विनायक राजभवन पहुँचे।

उन्होंने बालकोंको घर लौटा दिया और जब उन्होंने अपनी ओर अपलक दृष्टिसे निहारते शुक्ल-दम्पतिको देखा तो वे लज्जित हो गये। 'मैंने इन श्रद्धा-भक्तिकी दिव्य युगल-मूर्तियोंको कुछ नहीं दिया। इन प्रीति-प्रतिमाओंको मैं क्या दूँ? यद्यपि इनके लिये कुछ भी अदेय नहीं, किंतु इनके पवित्र प्रेमके सम्मुख त्रैलोक्यकी अनन्त सम्पदा भी तुच्छ है, हेय है।'

कुछ क्षण बाद विनायकने उन्हें अपनी उत्तम सम्पत्ति तो दे ही दी, धनपति कुबेरसे भी श्रेष्ठ धन-वैभव प्रदान कर दिया।

शुक्लशर्मा और उनकी धर्मपत्नी विद्रुमाको प्रत्यक्ष तो कुछ मिला नहीं, पर वे सर्वथा निस्स्पृह ब्राह्मण प्रसन्नमन विनायकका स्मरण करते हुए अपने घर लौटे।

ब्राह्मण-दम्पतिके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। उनके जीर्ण घरका अस्तित्व ही नहीं रह गया था; वहाँ उसके स्थानपर अमरावतीके इन्द्रभवनसे भी श्रेष्ठ भवन प्रस्तुत था। ब्राह्मण-दम्पति अत्यन्त चिन्तित हुए ही थे कि भवनसे सुन्दर वस्त्राभरणभूषित सेवक निकले।

वे ब्राह्मण-दम्पतिको भवनके भीतर ले जाकर तैल-मर्दन करने लगे। उन्हें स्नान कराया। उनको सुनहले वस्त्र और आभूषण पहनाये। इसी प्रकार स्त्री-सेविकाओंने विद्रुमाको स्नानादिके उपरान्त वस्त्राभूषणसे भूषित किया। उन्हें विविध पक्वान्न परोसा और प्रत्येक रीतिसे वे प्रतिक्षण उनके सेवार्थ प्रस्तुत रहे।

सहसा सर्वथा अकल्पित, अकथनीय, दुर्लभ सम्पत्ति प्राप्तकर ब्राह्मण-दम्पति चकित थे। ब्राह्मणका वह भवन विशाल एवं समस्त सुविधाओंसे भरपूर था। उक्त भवनकी दीवारें सोनेकी थीं। उसमें अनेक प्रकारके बैठनेयोग्य रत्नोंके सुन्दरतम मंच बने थे। उनके घरमें सभी पात्र सोनेके थे और विविध प्रकारकी अक्षय, दुर्लभ खाद्य-सामग्रियाँ वहाँ एकत्र थीं।

'मेरी यह क्षुद्र कुटिया सहसा इन्द्रभवनकी तरह कैसे हो गयी?' चकित होकर विद्रुमाने अपने पतिसे पूछा तो उन्होंने विनायकका स्मरण करते हुए कहा—'भाग्यवती! निश्चय ही यह भक्तवत्सल करुणामूर्ति विनायकका कृपाप्रसाद है। उन सर्वज्ञ प्रभुने हमें सामने

तो कुछ नहीं दिया, किंतु तुम्हारे माँड़-भातसे ही संतुष्ट होकर परोक्षरूपसे सब कुछ दे दिया। वे दयामय प्रभु अपने भक्तकी दी हुई स्वल्प वस्तुको भी अत्यधिक मानकर उसे महान् वस्तु प्रदान कर देते हैं और अपनी दी हुई महान् वस्तुको भी स्वल्प ही समझते हैं। इस कारण कल्याणेच्छुको चाहिये कि भय, स्नेह, काम अथवा शत्रुभावसे भी उनका सदा स्मरण करता रहे। भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे, स्तुति करे और उनके कल्याणमय चरणकमलोंमें बारम्बार प्रणाम निवेदन करता रहे।'[१]

नरान्तकका आक्रमण

देवरिपु नरान्तकके शूर और चपल नामक दो गुप्तचर अधिक समयसे काशीमें रहते हुए नागरिकोंमें इतने घुल-मिल गये थे कि उनपर संदेह करना सम्भव नहीं था। वे दोनों देवद्रोही असुर अत्यन्त बलवान् थे और काशीकी प्रत्येक घटनाकी सूचना राक्षसराज नरान्तकके पास भेजते तथा महोत्कटको मार डालनेके लिये अवसरकी ताकमें लगे रहते थे।

एक दिनकी बात है। महोत्कट शिबिकामें बैठकर राजभवनकी ओर लौट रहे थे कि उन महावीर शूर और चपल नामक असुरोंने उन्हें घेरकर घोर गर्जना की। उस गर्जनासे शिबिका ले जानेवाले कर्मचारी काँप उठे, किंतु विनायक तुरंत शिबिकासे उतर पड़े।

राक्षसोंका दुष्टतापूर्ण उद्देश्य समझते ही विनायकने तुरंत उन्हें अपने सबल हाथोंमें उठा लिया और घुमाते हुए पृथ्वीपर पटककर अपने कठोर पाशमें बाँध लिया। अत्यन्त बलवान् असुरोंके मनमें बालक विनायककी इस शक्ति और स्फूर्तिकी कल्पना भी नहीं थी। वे भयवश काँपने लगे और वीरवर विनायककी स्तुति करते हुए उनसे अपने प्राणोंकी भीख माँगने लगे।

विनायकने उनसे कहा—'तुमलोग कौन हो और यहाँ किसलिये रहते हो? यदि सच-सच बता दोगे तो तुम्हारे प्राण छोड़ दूँगा, अन्यथा मृत्यु निश्चित है।'

'प्रभो! आप करुणासागर, दीनोंके नाथ एवं हमारे पिता हैं।' असुरोंने हाथ जोड़े विनायकसे निवेदन किया—'क्योंकि गर्भाधान करनेवाले, उपनयन करानेवाले, विद्यादाता, अभयदाता और अन्नदाता—ये पाँच प्रकारके पिता कहे गये हैं[२]। हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।' हम असुरराज नरान्तकके गुप्तचर हैं। यहाँकी घटनाओंका संदेश तो उन्हें दिया ही करते हैं, आपको किसी भी विधिसे मार डालना भी हमारा उद्देश्य था। हम प्रत्येक रीतिसे काशीमें विघ्न उत्पन्न करते रहते थे।'

विनायकपर आक्रमणका संवाद सर्वत्र विद्युत्-गतिसे फैल गया। अतएव शीघ्र ही नगरनिवासियोंकी भीड़ वहाँ एकत्र हो गयी। नागरिकोंने विनायकसे कहा—'सर्पोंको दुग्धपान करानेसे उनका विष ही बढ़ता है। आप इनका अविलम्ब वध करें।'

'मैंने इन्हें अभयदान दे दिया है।' विनायकने असुरोंको तुरंत काशीसे चले जानेकी आज्ञा दी और स्वयं शिबिकारूढ़ होकर राजभवन पहुँचे।

शूर और चपल राक्षसराज नरान्तकके समीप पहुँचे। नरान्तक मणिमय सिंहासनपर आसीन था। उसके अमात्य उसके समीप ही सावधानीसे बैठे थे। दूतोंने नरान्तकके सम्मुख मस्तक झुकाकर उसका अभिवादन किया। फिर डरते हुए उन्होंने कहा 'राजन्! आपके आदेशानुसार हम काशीकी प्रजामें उनके स्वजन और आत्मीय बनकर रहते हुए प्रत्येक रीतिसे व्यवधान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करते थे; किंतु ऋषिपुत्रकी कुशाग्र बुद्धि, दूरदर्शिता, सावधानी, सजगता एवं अद्भुत शक्तिके सम्मुख विवश हो जाते थे। आपके भेजे हुए एक-से-एक वीर योद्धा उसके हाथों मारे गये। कोई भी बचकर नहीं आ सका। हमलोगोंने भी अवसर देखकर उसपर आक्रमण किया; किंतु जिस चपलतासे उस ब्राह्मण-बालकने हमें पटककर अपने

१. सर्वं जानीहि सुभगे न समक्षं महाविभुः। ददाति तु परोक्षेऽसावल्पमात्रेण तोषयन्॥
स्वयं दत्तं बहुतरमल्पमेव हि मन्यते। भक्त्योपपादितं स्वल्पं मन्यते बहुलं विभुः॥
तस्माद् भयेन कामेन स्नेहेन रिपुभावतः। स्मर्तव्यो नमनीयश्च स्तव्यः पूज्यो हिताय च॥
(गणेशपु० २। ५५। २७—२९)

२. सेककृच्चोपनेता च विद्यादोऽभयदोऽपरः॥ अन्नदः पञ्च पितरो विख्याता भुवनत्रये।
(गणेशपु० २। ५५। ४०-४१)

पाशमें जकड़ लिया, उसे देखकर हमारी बुद्धि निष्क्रिय हो गयी। हम किसी प्रकार अपने प्राण बचा पाये हैं। स्वामी! हमने तो ऐसी शूरता, ऐसी शक्ति एवं ऐसा दूरदर्शी पुरुष न कहीं देखा और न सुना है। अब आप जैसा उचित समझें, वैसा करें। हमारी दृष्टिमें तो उसे पराजित करनेवाला त्रैलोक्यमें कहीं कोई नहीं दीखता।'*

दूतोंके मुखसे यह संवाद सुनकर नरान्तकने क्रुद्ध होकर कहा—'वृक्षोंपर कूदनेवाला बंदर वनराजका कुछ नहीं बिगाड़ पाता; शरीर निगल जानेवाला अजगर वसुधापर ही रहता है; जुगनूका प्रकाश चन्द्रोदयके अनन्तर नहीं दीखता; सूर्यका तेज राहुके पहुँचते ही मन्द पड़ जाता है; अतएव काशिराजका मान मर्दन करने मैं स्वयं चलूँगा। सशस्त्र वाहिनी एकत्र हो।'

राक्षसराजका आदेश पाते ही विशाल सशस्त्र सेना कुछ ही देरमें तैयार हो गयी। मदमत्त गज एवं अश्वपर आरूढ़ योद्धाओं तथा असंख्य पैदल-सैनिकोंने ढाल, तलवार, खट्वांग, शक्ति, परशु, गदा, मुद्गर, चक्र, तोमर, धनुष-बाण, पाश और अंकुश आदि विविध प्रकारके घातक अस्त्र धारण कर रखे थे। इस प्रकारकी शस्त्रसज्ज चतुरंगिणी सेनाके साथ पृथ्वीको कम्पित करता हुआ नरान्तक काशीकी ओर चला। उसके साथ वीरोंको प्रोत्साहित करनेवाले दिगन्तव्यापी वाद्य बज रहे थे।

महान् दैत्य नरान्तककी झूमती विशाल सेना काशीके पूर्वभागमें पहुँची। आकाश धूलिसे आच्छादित हो गया था और रण-दुन्दुभियाँ बज रही थीं। यह देखकर एक दूत काशिराजके पास दौड़ा आया। उस समय काशिराज भोजनके परोसे थालके सम्मुख बैठे ही थे कि दूतने कहा—'महाराज! दैत्यराज नरान्तक अपनी चतुरंगिणी सेनाके साथ हमारी सीमाके पूर्वभागमें आ गया है।'

महाराज भोजनको स्पर्शकर खड़े हो गये। उन्होंने अपने सैनिकोंको तत्काल शस्त्रसज्ज होनेकी आज्ञा दी और वे स्वयं शिरस्त्राण एवं कवच आदि धारणकर वीर-वेषमें विनायकके समीप पहुँचे तथा उनकी पूजा की। तदनन्तर बोले—'जय विनायक!'

नरेशकी सेना कुछ ही क्षणोंमें अस्त्र-शस्त्र धारण करके एकत्र हो गयी। दुन्दुभियाँ बजने लगीं। महाराजने विनायकके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने अश्वपर जा बैठे। सेनाके विभिन्न अंगोंके सेनापति अश्व, रथ और गजपर आरूढ़ हो पहलेसे ही तैयार थे।

काशीनरेशकी सेना पैशाचिक आक्रमण करनेवाली असुर-सेनाका दर्प दलन करने अत्यन्त उत्साहसे प्रस्थित हुई। काशीकी पूर्वी सीमापर पहुँचकर नरेशने सेनापतियों एवं सैनिकोंको पुरस्कृत कर उन्हें अपनी पवित्र मातृभूमिकी रक्षाके लिये प्रोत्साहित करते हुए कहा—'अनेक असुर-योद्धाओंने हमपर क्रूरतम आक्रमण किया, किंतु विनायककी कृपासे वे सभी मारे गये। विनायकके यहाँ रहते हमें चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं; हमारी विजय निश्चित है।'

काशिराजने इतना कहा ही था कि समुद्रकी लहरोंकी तरह आती हुई असुरराज नरान्तककी सेनापर उनकी दृष्टि पड़ी। नरेश काँप उठे। अपने सैनिकोंको उत्साह प्रदान करनेके स्थानपर वे कहने लगे—'किंतु असुरशक्ति असीम है। उनके साधन अपरिमित हैं। उन्होंने अपने पराक्रमसे त्रैलोक्यपर अधिकार कर लिया है। उनके विशाल सैन्यके सम्मुख हमारी संख्या नगण्य है। प्रचण्ड सूर्यके सम्मुख खद्योतकी क्या गणना? अतएव यदि वे राक्षसराज अनुग्रह करें, तभी हम जीवित रह सकते हैं। उनके सम्मुख हमसे अपराध भी बहुत हुए हैं। केवल विनायकके बलसे हम इनको कैसे परास्त कर सकते हैं? अतएव आपलोग हितकर विचार करें।'

भयविह्वल राजाकी बात सुनकर महामात्यने कहा—''हमारे चार प्रतिनिधि संधिके लिये असुरराज नरान्तकके पास जायँ। अपने हितके लिये नीच पुरुषके भी समीप जानेमें आपत्ति नहीं। आचार्य बृहस्पतिने नीति-वचन

* स्वामिन्नेतादृशी शक्तिः क्वापि दृष्ट्वा न च श्रुता।
× × ×
जानीवहे न जेतास्य त्रैलोक्ये विद्यते पुमान्।
(गणेशपु० २। ५६। २६-२७)

कहा है—'प्रबल शत्रुको अनुकूल बनानेके लिये कन्यादान, सहभोजन, प्रेम, सम्भाषण, वस्त्रदान, नमस्कार तथा उसकी स्तुति भी कर लेनी चाहिये।' यदि असुरराज विनायकको भी माँगें तो उन्हें दे देना चाहिये। तात्पर्य यह कि जैसे भी हो, अपना हित-साधन करना चाहिये।''*

'यही उत्तम है।' सब लोगोंने कहा—'प्रबलतम असुरराजसे वैर समाप्त हो जाय, यही अच्छा है।'

इस प्रकार राजा परामर्श कर ही रहे थे कि टिड्डी-दलकी तरह नरान्तकके सैनिकोंने काशीपर तीव्रतम आक्रमण कर दिया। उन्होंने चारों ओर आग लगा दी। आकाश धूम्राच्छन्न हो गया। जो स्त्री-पुरुष प्राण-रक्षाके लिये घरसे बाहर निकलते, क्रूर राक्षस उन्हें मार डालते थे। उन्हें स्त्रियोंके सतीत्वपर आक्रमण करते देखकर पतिव्रता स्त्रियाँ छतोंसे कूदकर और कुछ विष-पानकर मृत्यु-मुखमें प्रवेश करने लगीं। राक्षस अत्यन्त रूप-यौवन-सम्पन्ना देवियोंको पकड़कर असुरराजके पास भेज देते थे।

इस प्रकार अपनी प्रजाकी दुर्दशा देखकर काशिराजको अपने दायित्वका भान हुआ। उन्होंने क्रोधसे काँपते हुए प्रत्याक्रमणकी आज्ञा दी।

राजाने स्वयं शर-संधान किया और शत्रुओंपर बाण-वृष्टि करने लगे। अपनी मातृभूमि एवं अपनी माँ-बहनोंकी लज्जाकी रक्षाके लिये काशिराजके वीर योद्धा प्राणोंपर खेल गये; राक्षस कटने लगे। उन्हें अकल्पित प्रत्याक्रमणसे विचलित होना पड़ा, किंतु राक्षसराजके भयसे वे युद्ध कर रहे थे। राक्षसोंके रुण्ड-मुण्ड धरतीपर बिछते जा रहे थे और दोनों ओरकी सेनाएँ विजयश्रीकी तीव्र कामनासे युद्धरत थीं। अश्वसे अश्व, गजसे गज, रथसे रथ और पैदलसे पैदल सेनाका भयंकर संग्राम हो रहा था।

नरान्तककी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। वह आश्चर्यचकित था। काशिराजके नगण्य सैनिक उसकी अजेय वाहिनीको त्रस्त, भीत और कम्पित कर देंगे, वह स्वप्नमें भी नहीं सोच सकता था। पर सत्य यही था। असुरराजकी सेना सिरपर पैर रखे प्राण लिये पीछे भागी जा रही थी। काशिराजने हर्षोन्मत्त होकर गर्जना की। त्रैलोक्यविजयी असुरराज नरान्तकको सर्वप्रथम पराजित करनेका श्रेय काशिराजको प्राप्त हुआ। वे प्रसन्नताके आवेगमें निश्चिन्त हुए ही थे कि सहसा असुरोंके शत-शत सैनिक उनके व्यूहमें प्रविष्ट हो गये। काशिराजके साथ उनके अमात्यके दोनों पुत्रोंको असुरोंने पकड़ लिया और उन्हें बंदी बनाकर नरान्तकके समीप ले गये। काशिराजके सैनिकोंका तीव्रतम प्रतिरोध विफल सिद्ध हुआ। नरेशके उदास सैनिक लौट पड़े।

अमात्यपुत्रोंसहित काशिराजको बंदी बनाकर नरान्तक अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने नगरमें अग्निकाण्ड रोक दिया। बोला—'वीरो! हम जिस उद्देश्यसे यहाँ आये थे, वह पूरा हो गया। काशिराज और अमात्यपुत्रोंकी पराजयका अर्थ काशीपर विजय है। काशिराजके आश्रयके बिना अब वह ब्राह्मण-बालक क्या कर सकेगा? अब मैं निस्संदेह उसे जीत लूँगा।'

विजय-दुन्दुभि बज उठी। नरान्तकने प्रसन्न होकर बंदियों और ब्राह्मणोंको दान दिया।

तदनन्तर असुरराज नरान्तकने काशीके राज-भवनमें प्रवेश करनेका निश्चय किया। असंख्य सैनिक उसके साथ थे। दैत्यराज बंदी नरेश और अमात्य-पुत्रोंको साथ लेकर आगे-आगे चला। वाद्य बज रहे थे। असुर-सैन्य विजय-गर्वसे मत्त था। प्रजामें अपनी धाक और आतंक फैलाते हुए नरान्तक धीरे-धीरे काशीमें प्रवेश करके राज-पथकी ओर बढ़ा।

इधर काशीमें असुरोंके अमानुषिक उपद्रव, अग्निकाण्ड, हत्या एवं बलात्कार आदिसे प्रजा अत्यन्त क्षुब्ध थी। राजा और अमात्यपुत्रोंको बंदी बनाकर दैत्यराजके राजभवनमें प्रवेश करनेके समाचारने तो प्रज्वलित अग्निमें घृताहुतिका काम किया। काशीके तरुण शेष सैनिकोंके साथ नरान्तकपर भीषण प्रत्याक्रमण करनेकी योजना बनाने लगे।

उधर जब राजरानी अम्बाने अपने पतिको बंदी बनाये जानेका समाचार सुना तो वे जल-हीन-मीनकी भाँति छटपटाती हुई विलाप करने लगीं।—'रिपुओंका मान मर्दन करनेवाले पतिदेव! आप असुरोंसे कैसे पराजित हो गये? मैं आपको कहाँ पाऊँगी? आपके

* स चेद् विनायकं याचेद्दत्त्वा राज्यस्य रक्षणम् । कर्तव्यमिति मे भाति स्वहितं तद् विचिन्त्यताम्॥ (गणेशपु० २। ५७। १८)

बिना मैं जीवित ही कैसे रह सकती हूँ? भगवान् शंकर मुझपर कैसे असंतुष्ट हो गये? मैं आपको मुक्त करानेके लिये किस देवताकी शरण लूँ? इस कश्यप-पुत्रने युद्धमें कितने ही असुरोंको मारा, किंतु एक बालकपर निर्भर कर आपने बुद्धिसे काम नहीं लिया। आपने उसके वचनका विश्वास कर अजेय असुरसे शत्रुता मोल ले ली। उस महादैत्यपर भला कौन विजय प्राप्त कर सकता है? मैं विधवा बनकर किस प्रकार जीवित रहूँ?'

बंदी नरान्तक

महारानी अम्बाका करुण विलाप सुनकर महोत्कट अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने भयानक गर्जना की। वे पुनः-पुनः गर्जन करने लगे। उनके उक्त महान् गर्जनसे अन्तरिक्ष और दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं; पर्वतों और वनोंसहित पृथ्वी काँपने लगी; पक्षियोंकी मृत्यु हो गयी और समस्त प्राणी भयभीत हो गये।

क्रोधव्याकुललोचन विनायकके स्मरणसे ही सिद्धि उपस्थित हो गयी। विनायकने पूछा—'युद्धके अवसरपर तू कहाँ चली गयी थी?'

सिद्धिने देवदेव विनायकका मन्तव्य समझकर तुरंत अनेक प्रकारकी युद्ध करनेवाली भयानक सेना प्रस्तुत कर दी। उसके सैनिक अत्यन्त शूर-वीर और भयानक थे। उनके अत्यन्त भयानक मुख, हल-तुल्य दाँत, सर्प-तुल्य जिह्वा एवं पर्वत-तुल्य मस्तक थे। उनके नेत्रोंसे अग्निकी भयानक ज्वाला निकल रही थी और उनके विकट नासारन्ध्रमें महागज प्रवेश कर सकते थे। उनके क्रूर नायकने विनायकके समीप जाकर विनयपूर्वक प्रार्थना की—'प्रभो! हमें क्या आज्ञा है? हम बुभुक्षित हैं। कृपया भक्ष्य प्रदानकर हमें तृप्त करें।'

विनायक बोले—'तू महादैत्य नरान्तककी विशाल वाहिनीका भक्षण कर। समस्त सैनिकोंको उदरस्थ करके नरान्तकका मस्तक मेरे समीप ले आ। इतनेपर भी तेरी तृप्ति न हो तो मैं तुझे अन्य भक्ष्य बताऊँगा।'

विनायककी अनुज्ञा प्राप्तकर उक्त महाभयानक सेनानायकने उनके चरणकमलोंमें प्रणाम कर भयानक गर्जन किया। उक्त गर्जन सुनकर दैत्यराज नरान्तकका हृदय काँप उठा।

काशीका युवक-वर्ग और सैनिक विजयोन्मत्त नरान्तकके नगरके मध्यमें पहुँचनेकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि विनायककी भयानक सेना उसपर टूट पड़ी। वे अतुलित बलशाली योद्धा भयानक गर्जन करते हुए नरान्तकके सैनिकोंको पकड़कर अपने विशाल मुखमें फेंकने लगे। आकाशमें इतनी धूल भर गयी कि सर्वत्र अन्धकार-सा व्याप्त हो गया; किसीको कुछ दीख नहीं रहा था।

उस घनान्धकारमें वे घोर पुरुष असुर-सैन्यका निर्ममतापूर्वक मर्दन करते हुए सैनिकोंको भक्षण करते जा रहे थे। वे किसी असुरको पैरोंसे मसल देते, किसीको आकाशमें गेंदकी तरह उछाल देते और किसीको पटककर पुनः अपने करालगालमें डाल लेते।

दैत्य-सेना प्राण लेकर भागना चाहती थी, किंतु इन घोर शूरोंसे बचकर भागना शक्य नहीं था। वे असुरोंको जितना ही चबाते, जितना ही खाते, उतनी ही उनकी क्षुधा तीव्र होती जा रही थी। इस कारण वे गजसहित गजारोहीको और अश्वसमेत अश्वारोहीको अपने मुँहमें डाल लेते। इस प्रकार कुछ ही देरमें इस निर्मम घोर पुरुषने असुर-सैन्यको प्रायः नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

प्रलयाग्नि-तुल्य घोर पुरुषके द्वारा अपने सैन्य-दलका विनाश देखकर नरान्तक घबरा गया। अवशिष्ट सैनिकोंको भक्षण करते देखकर वह अपना धनुष लेकर तीक्ष्णतम शरोंकी वर्षा करने लगा। नरान्तकके असंख्य शर उस घोर पुरुषके शरीरमें प्रविष्ट होकर बाहर निकल गये। उनसे रुधिर बहने लगा, पर जैसे उस पुरुषको कुछ उनका पता ही नहीं था। वह तो अपने सैनिकोंके साथ निरन्तर असुरोंको भक्षण करनेमें व्यस्त था।

नरान्तकके सारे अस्त्र निष्फल सिद्ध हुए। जब एक भी शर नहीं बचा, तब अपनी शक्तिके सर्वथा नष्ट हो जानेपर वह प्राण लेकर भागा, किंतु वह कालपुरुष भी उसके पीछे दौड़ा। नरान्तक पृथ्वीपर द्रुतगतिसे भागता हुआ जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वह कालपुरुष उसके पीछे दीख पड़ा। भयाक्रान्त नरान्तक भागकर स्वर्ग पहुँचा तो वहाँ भी उसे पीछे लगा कालपुरुष दिखायी दिया। नरान्तक फिर पृथ्वीपर लौटा, किंतु वहाँ

भी कालपुरुष उसे निगल जाना चाहता था। तब अत्यन्त भयभीत दैत्यराज पातालमें प्रविष्ट हुआ तो वहाँ भी जैसे भागते हुए सर्पको गरुड़ सरलतापूर्वक दबोच लेता है, उसी प्रकार कालपुरुषने नरान्तकके केश पकड़ लिये और कहा—'दुष्ट! मेरी दृष्टिमें पड़कर तू कहाँ भाग सकता है? महाखल! तूने परमात्मासे वर प्राप्तकर देवताओं और ऋषियोंको बहुत पीड़ित किया; कितने ही निर्दोष मनुष्योंका सर्वनाश कर दिया; अब तेरा संहार करनेके लिये विनायक अवतरित हुए हैं। तू अहंकार छोड़कर उनके चरणोंकी शरण ग्रहण कर ले। उन देवदेव विनायकके पद-पंकज तेरे पापोंको मिटा देंगे।'

इस प्रकार कहते हुए कालपुरुष नरान्तकको विनायकके पास ले आया। फिर विनायकके चरणोंमें प्रणाम कर उसने अत्यन्त विनीतभावसे निवेदन किया—'स्वामिन्! मैंने आपके आज्ञानुसार इसकी समस्त सेनाका भक्षण कर लिया और इसे भी बड़ी कठिनाईसे पकड़ लिया। हे प्रभो! श्रम-निवारणार्थ आप मुझे सोनेके लिये स्थान दें और सर्वानन्दप्रदाता दयामय! इसे मुक्ति प्रदान करें।'

'तुम मेरे मुँहमें इच्छानुसार विश्राम करो।' परम प्रभु विनायकने अपना मुँह खोल दिया और जिस प्रकार पृथ्वीसे उत्पन्न गन्ध पृथ्वीमें ही विलीन हो जाती है, उसी प्रकार वह प्रलयंकर कालपुरुष उन देवदेवके मुखमें प्रवेशकर उन्हींके स्वरूपमें मिल गया।

* * *

काशीनरेश विनायकके चरणोंपर गिर पड़े। कश्यपात्मजकी स्तुति करनेके अनन्तर उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा—'प्रभो! नरान्तक जब मुझे बंदी बनाकर सोत्साह और सोल्लास नगरमें प्रवेश करने जा रहा था, उस समय सहसा उसकी विशाल सेनाको भक्षण करनेवाला विकराल कालपुरुष कौन था और उन सबके साथ मैंने भी आपके उदरमें जाकर अनन्त सृष्टिका अवर्णनीय अद्भुत दृश्य देखा। मेरे व्याकुल होनेपर मुझे वहाँसे किसने बाहर किया? मुझे मतिभ्रम हो गया है। आप कृपया मेरा समाधान करें।'

परशुधरने नरेशके मस्तकपर अपना कर-कमल फेर दिया, फिर तो दिव्य-ज्ञानप्राप्त नरेशके नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु बहने लगे। वे गद्‌गद-कण्ठसे सर्वाधार, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, सर्वव्याप्त एवं सर्वान्तर्यामी महाप्रभु विनायककी स्तुति करने लगे—'देवेश! कश्यपनन्दन! आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूर्य हैं। आप ही पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशाएँ तथा पर्वतोंसहित वृक्ष हैं। सिद्ध गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मुनि, मनुष्य तथा समस्त स्थावर-जंगम जगत् भी आप ही हैं। सारा जड-चेतन-समुदाय आपका ही स्वरूप है। जन्मान्तरके पुण्यसे ही मुझे आपके दर्शन हुए हैं।'*

इस स्तुतिके कुछ ही देर बाद वे फिर मोहित हो गये।

राजाने देवदेव विनायककी पूजा कर अनेक प्रकारके दान दिये। फिर वे अपनी माताके चरणोंमें प्रणामकर पत्नीसे मिले। राजपरिवारकी चिन्ता मिटी। अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न विनायककी लीला देख राजपरिवारके प्रत्येक सदस्यने पुनः-पुनः विनायककी पूजा, स्तुति एवं उनके चरणोंकी वन्दना की।

महामान्य विनायकके अनुग्रहसे अमात्यपुत्रोंसहित काशिराज मुक्त होकर सुरक्षित राजभवनमें पहुँच गये। दैत्य-सेनाका संहार हुआ और परम पराक्रमी अजेय नरान्तक पकड़कर राजभवनमें लाया गया है—यह संवाद प्राप्त होते ही प्रत्येक भवनपर ध्वज लहराने लगे। काशीकी प्रजा हर्षसे नृत्य करने लगी, बाजे बजने लगे एवं गीत गाये जाने लगे। नगरमें विजयोत्सव मनाया जाने लगा। सर्वत्र रह-रहकर समवेत कण्ठकी ध्वनि आकाशमें गूँज रही थी—'विनायककी जय!'

* * *

नरान्तक-वध

दैत्यराज नरान्तक मन-ही-मन सोच रहा था—

* त्वमेव ब्रह्मा विष्णुश्च महेशो भानुरेव च ॥
त्वमेव पृथ्वी वायुरन्तरिक्षं दिशो द्रुमाः । पर्वतैः सहिताः सिद्धा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥
मुनयो मानवाश्चापि स्थावरं जङ्गमं जगत् । त्वमेव सर्वं देवेश सचेतनमचेतनम् ॥
जन्मान्तरीयपुण्येन दृष्टोऽसि कश्यपात्मज ।

(गणेशपु० २। ५९। ३१—३३½)

'इस लोकोत्तर बालकने ऐसा कालपुरुष उत्पन्न किया, जिसने मेरे अगणित सैनिकोंका भक्षण कर मुझे यहाँ आनेके लिये विवश कर दिया। निश्चय ही मुझे इसके समीप भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होंगी। इस कारण मैं इसे युद्धमें पराजित कर दूँ या इसके हाथ मारा जाऊँ—प्रत्येक दृष्टिसे मेरा लाभ है।'

इस प्रकार विचारकर उसने विनायकसे कहा—'तुमने अनेक ऐन्द्रजालिक क्रियाएँ कीं; किंतु तुम्हें पता नहीं कि दैत्य स्वाभाविक ही मायावी होते हैं। जिस वीरपुंगवके निश्श्वाससे पर्वत हिल जाते हैं, जिसके भ्रूक्षेपमात्रसे ब्रह्माण्ड काँप उठते हैं और जिसके कराघातसे धरती खण्ड-खण्ड हो सकती है, उसके साथ तू अबोध बालक युद्ध कैसे कर सकता है? मेरे-जैसे भयानक व्याघ्रके सम्मुख तू सुखपूर्वक कैसे रह सकेगा?'

नरान्तकके सामर्ष वचन सुनकर विनायकने उत्तर दिया—'अरे मूर्ख! तू व्यर्थ ही क्या बकता है? युद्धके समय तुम्हारी शक्ति कहाँ चली गयी थी? वीर पुरुष जल्पना नहीं करते, वे तो अपनी वीरता और पौरुष प्रकट करते हैं। प्रगाढ़ अन्धकारको एक लघु दीप नष्ट कर देता है और मदमत्त गज सिंहशावकके भयसे प्राण बचाये भागता फिरता है।'

निर्भय बाल विनायकके वचन सुन क्रोधसे काँपते हुए नरान्तकने भीषण गर्जना की। महान् असुर बालक ब्राह्मणपुत्र विनायककी ओर झपटा ही था कि काशिराजने अपना धनुष-बाण लेकर उससे कहा—'निर्लज्ज! तू अपना दुर्लभ जीवन क्यों नष्ट कर रहा है? सुखपूर्वक रह। दीपक-ज्योतिपर पतंगकी तरह क्यों मरने जाता है?'

अत्यन्त कुपित नरान्तकने काशिराजका तिरस्कार करते हुए कहा—''तेरे-जैसे नरोंका भक्षण करते रहनेके कारण ही मेरा 'नरान्तक' नाम प्रख्यात है। तू मेरे विरुद्ध इस विप्रबालककी शरण लेकर जीवित कैसे रहेगा?''

'मूढ! विनाशकालमें बुद्धि विपरीत हो जाती है और मित्र भी शत्रु हो जाया करते हैं। अब तेरे-जैसे महान् पापीका संहार कर पृथ्वीका भार हलका करनेके लिये ही परमात्मा विनायकके रूपमें अवतरित हुए हैं और तेरे कुकर्मोंके कारण तेरे देवप्राप्त वर एवं पुण्य समाप्त हो चुके हैं।' राजाने इतना कहा ही था कि अपने गर्जनसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए नरान्तकने काशिराजका धनुष-बाण छीनकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और फिर स्वयं उन्हें पकड़कर धरतीपर पटक दिया। पर्वताकार नरान्तक काशिराजके वक्षपर चढ़कर उन्हें मार डालनेका प्रयत्न कर रहा था।

प्रबलतम दैत्यके सम्मुख नरेशकी दयनीय दशा देखकर विनायक परशु लेकर दौड़े। उनकी गर्जनासे धरती, आकाश और समस्त दिशाएँ काँपने लगीं। सर्वशक्तिसम्पन्न विनायकने सबकी दृष्टिशक्ति क्षीण करनेवाले तेजसे धधकते हुए अपने परशुका दैत्यराजके विशाल मस्तकपर प्रहार किया। दैत्यराज आहत होकर क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गया।

किंतु दूसरे ही क्षण क्रुद्ध दैत्य उठकर विनायकपर वृक्षों और पर्वतोंसे प्रहार करने लगा। वह अत्यन्त चकित था कि वे पर्वत और वृक्ष विनायकके शरीरको स्पर्श करनेके पूर्व ही उनके दिव्य परशुकी प्रखर धारपर सुमन-सरीखे चूर्ण-विचूर्ण होकर बिखर जाते हैं। विनायककी वज्रदेहपर उनका किंचित् भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है।

महादैत्यने अनेक प्रकारके रूप धारणकर युद्ध करना प्रारम्भ किया; किंतु वह जो-जो रूप धारण करता, योगिराज विनायक भी उसी रूपमें युद्ध कर उसका दर्प-दलन करते जा रहे थे। उन्होंने नरान्तकके अस्त्रोंका अस्त्रोंसे, शस्त्रोंका शस्त्रोंसे निवारण किया। निराश होकर महासुर मल्लयुद्ध करने लगा; पर उसमें भी उसका वश नहीं चला तो उसने पुनः पर्वतों एवं वृक्षोंकी वृष्टि प्रारम्भ कर दी। विनायक उन सबका पद्म, पाश, अंकुश और परशुके प्रहारसे निवारण करते जा रहे थे, किंतु उनके मनमें चिन्ता हुई—'इस नरान्तकका अन्त आवश्यक है; किंतु मैं जिन देवतादिकोंकी अधिकार-रक्षा एवं उनके निरापद सुखमय जीवनके लिये युद्धरत हूँ, वे कहाँ गये?'

देवदेव विनायकके चिन्तित होते ही उनके कर-कमलोंमें कालदण्डोपम शरपूरित तूणीर और सुवर्णमय पिनाक आ गया। उसके तेजसे समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। प्रसन्नमन विनायकने उस धनुषका टंकार किया तो त्रैलोक्य काँपने लगा।

उस समय देवदेव विनायक साक्षात् काल-तुल्य प्रतीत हो रहे थे। उन्होंने नरान्तकपर शर-वर्षा प्रारम्भ की। नरान्तकके दोनों हाथ कटकर दूर जा गिरे और मस्तक उसके पिता रुद्रकेतुके सम्मुख गिरा। किंतु अत्यन्त आश्चर्यकी बात यह हुई कि उस वर-प्राप्त असुरकी नयी भुजाएँ और नया मस्तक पुनः निकल आया।

असुरने क्रुद्ध होकर पुनः पर्वतोंकी वृष्टि प्रारम्भ कर दी। वृक्षोंकी वर्षासे अन्धकार फैल गया। विनायकने धनुषकी प्रत्यंचा कानतक खींचकर तीक्ष्ण शर छोड़ा। असुरके दोनों पैर कट गये। वे पैर आकाशमें उड़ते हुए देवान्तकके समीप गिरे। नरान्तक बिना पैरके ही दौड़ा, किंतु उस मायावीके दोनों पैर पुनः निकल आये। क्रोधोन्मत्त असुरने विनायकसे कहा—'तुमने मेरा अंग-भंगकर अपना पौरुष दिखला दिया; अब मैं तुमपर आक्रमण करता हूँ; मेरा पराक्रम देखो!'

क्रुद्ध नरान्तकने असंख्य बाण-वृष्टि की, किंतु धनुर्वेदविशारद बालकने भी अद्भुत कौशलका परिचय दिया। उस असुरके सारे अग्निमुखी बाण बीचमें ही कट गये। फिर विनायकने एक बाणसे उसका मस्तक काट दिया। वह मस्तक चीत्कार करता हुआ पुनः उसके पिता रुद्रकेतुके सम्मुख गिरा। वहाँ उसे फिर नया सिर प्राप्त हो गया। इस प्रकार सहस्राधिक बार विनायकने उसका शिरश्छेद किया, किंतु पुनः-पुनः नये-नये सिर निकलते आये।

यह देखकर विनायक चिन्तित हुए। 'वर-प्राप्त असुर कैसे मरे?'—वे सोचने लगे। अन्ततः उन्होंने उसे मोहित किया। मोहग्रस्त नरान्तकको 'स्व' और 'पर' का भेद नहीं रहा। उसे दिन-रातमें भी अन्तर नहीं दीखता था। एक क्षण वह समझता था कि दिन है, किंतु दूसरे ही क्षण उसे रात्रि प्रतीत होती। वह क्षणभर स्वर्गमें तो क्षणभर पातालमें, क्षणभर जाग्रत् तो क्षणभर सुषुप्तिका अनुभव करता। विनायक स्त्री हैं या पुरुष, अपने हैं या पराये, निर्जीव हैं या सजीव—नरान्तकको कुछ भी जान नहीं पड़ता था; उसे मतिविभ्रम हो गया।

उसने मन-ही-मन कहा—'शूलपाणि शिवने वर-प्रदान करते हुए कहा था कि ऐसे ही समय तुम्हारी मृत्यु होगी।'*

उसी समय विराट्रूपधारी विनायकने उस महादैत्य नरान्तकको अपने हाथोंसे सुकोमल पुष्पकी तरह मसलकर फेंक दिया।

'विनायककी जय हो! जय हो!! जय हो!!!'—पुष्प-वृष्टिके साथ देवगण विनायकके चरणोंमें प्रणामकर उनका स्तवन करने लगे।

तदनन्तर काशिराजने पुनः देवदेव विनायककी पूजा की और अत्यन्त विनयपूर्वक स्तवन करते हुए कहने लगे—'प्रभो! मेरे अत्यधिक पुण्य उदित हुए हैं, जिससे मैंने आपके मन और वाणीसे अगोचर विराट्रूपका दर्शन प्राप्त किया। आपने तैंतीस कोटि देवताओंको पराजित करनेवाले महान् नरान्तकका अन्त कर जगत्का बड़ा उपकार किया। प्रभो! आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें और मैं आपसे कभी पृथक् न होने पाऊँ।'

'विनायककी जय!' बोलते हुए काशिराजने प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको दान दिया। फिर उन्होंने पृथ्वी और नागलोकके राजा-महाराजाओंको अपने-अपने राज्योंकी सुव्यवस्था करनेकी प्रेरणा प्रदान कर दी। इस प्रकार धरती और नागलोक क्रूरतम असुरसे मुक्त हुए। वसुधाका आधा भार उतर गया।

* * *

मुनिवर रुद्रकेतु और उनकी साध्वी सहधर्मिणी, दोनों तपस्वी और धर्माचरणसम्पन्न थे। उन्हें पहले तो अपने पुत्रोंका आचरण अच्छा नहीं प्रतीत हुआ, किंतु जब उनके दोनों पुत्रोंने त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त कर ली, अपार धन एवं त्रैलोक्यव्यापी कीर्ति अर्जितकर माता-पिताके लिये अपरिमित सुख-सामग्री और साधन एकत्र कर दिये, तब वे बड़े प्रसन्न हुए। फिर देवान्तक और नरान्तकके दैत्याचरण उन्हें अप्रिय नहीं लगते थे। वे सुखमय जीवन व्यतीत करनेके अभ्यस्त हो गये थे।

इस कारण जब शारदा और रुद्रकेतुने पृथ्वी और पातालपर शासन करनेवाले अपने प्राणप्रिय पुत्र नरान्तकका

* चिन्तां च परमामाप तर्कयामास चेतसि। एवं मे तु वरा दत्ताः शिवेन शूलधारिणा॥
अयं च समयः प्राप्तः प्रायो मृत्युर्भविष्यति।
(गणेशपु० २। ६१। २९-३०)

निस्तेज छिन्न मस्तक देखा तो दोनों ही मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कुछ देर बाद जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई तो मृतवत्सा गौकी तरह व्याकुल होकर शारदा नरान्तकका मस्तक गोदमें लेकर विलाप करने लगी। वह नरान्तकके वीरत्व और वैभवपूर्ण राज्यका गुणगान करती हुई रो रही थी; सिर धुन रही थी।

रुद्रकेतु भी व्याकुल होकर रोने लगे। वे नरान्तकके गुणोंका बखान करते हुए कह रहे थे—'बेटा! तू माता-पिताको छोड़कर कहाँ चला गया? तुम्हारे नामसे समस्त वन, पर्वत और शत्रु थर-थर काँपा करते थे; ऐसा प्रबल पराक्रमी तू भू-लुण्ठित क्यों है? सचमुच क्रूर कालकी गति अत्यन्त वक्र होती है—**दैवं ही बलवल्लोके पौरुषं तु निरर्थकम्**—हाय! मेरे वंश और पृथ्वीका भूषण कहाँ चला गया?'

अत्यन्त दुःखी रुद्रकेतु अपनी पत्नी शारदाके साथ स्वर्गमें देवान्तकके पास पहुँचे। वहाँ अपने पुत्रका सिर लिये शारदा क्रन्दन करने लगी। अनुजका मस्तक देखकर देवान्तकका हृदय काँप उठा। वरप्राप्त अजेय नरान्तककी मृत्यु सहज नहीं; पर विश्वास हो जानेपर वह अनुजका सिर हाथमें लेकर स्वयं रोदन करने लगा। 'हम दोनों साथ ही उत्पन्न हुए, साथ ही खेले, साथ ही सयाने हुए, साथ ही हमने तप किया, साथ ही जप किया और साथ ही त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त की। मेरे लिये सदैव प्राण देनेके लिये प्रस्तुत अब तू अचानक मुझे छोड़कर एकाकी कैसे चला गया?'

इस प्रकार भ्रातृ-स्नेहसे व्याकुल देवान्तकको रुदन करते देख वीर सैनिकोंने उससे कहा—'स्वर्गाधिप! वीर पुरुष युद्धमें शरीर त्याग करनेकी चिन्ता नहीं करते। मृत्यु तो सुनिश्चित होती है। प्रत्येक जीवधारीको आज नहीं तो सौ वर्षों बाद मरना ही पड़ेगा। हमें शत्रुसे प्रतिशोध लेना चाहिये! प्रतिशोध!!'

यह सुनकर देवान्तकने अपने माता-पितासे कहा—'आपलोग चिन्ता छोड़कर विश्राम करें। मैं अनुजके हत्यारेका वध कर डालूँगा या स्वयं मर-मिटूँगा। मेरी वक्र भृकुटि देखकर त्रैलोक्य काँप उठता है, फिर मेरे कुपित होनेपर उस क्षुद्र नरेश और विप्र-बालककी रक्षा कौन कर सकता है ?'

रुद्रकेतु और शारदा आश्वस्त हुए। देवान्तकने पृथ्वीको कम्पित करनेवाली गर्जना की। उसने माता-पिताके चरणोंमें प्रणामकर तत्काल सशस्त्र वाहिनी प्रस्तुत करनेके लिये सेनापतिको आज्ञा दी। देवान्तककी सेना समस्त आयुधोंसे सज्जित होकर काशीके लिये प्रस्थित हुई। देवान्तक क्रोधसे दाँत पीस रहा था। उसकी भुजाएँ शत्रुका सर्वनाश करनेके लिये फड़क रही थीं। इस प्रकार परम वीर रुद्रकेतुपुत्र देवान्तक अपने असंख्य सैन्यसहित पृथ्वीके सहिष्णु एवं शान्त गाँवों और नगरोंको जलाता, लूटता तथा रक्तसे खेलता काशीके समीप पहुँचा।

देवान्तककी पराजय

प्रबलतम असुर नरान्तककी पराजय और वधसे पृथ्वी और पाताललोकमें नवजीवनका संचार हो गया था, नयी चेतना उत्पन्न हो गयी थी। काशिराजकी प्रजामें तो अपरिमित आत्मबल उदित हुआ था। पृथ्वीके पराजित और पीड़ित नरपति तथा देवगण विनायकके चरणोंमें एकत्र होने लगे थे। वे त्रैलोक्य-त्राता विनायकके संकेतपर प्राणार्पण करनेके लिये प्रतिक्षण प्रस्तुत हो गये। नरान्तककी मृत्युका संवाद पाते ही उसका भाई देवान्तक काशिराजपर भीषण आक्रमण करेगा, यह पहलेसे ही निश्चय था। इस कारण काशीमें सर्वत्र सावधानी थी। युद्धभूमिमें देवान्तकको पराजित कर देनेके लिये सभी प्रस्तुत थे। विनायकके आदेशानुसार यथाशीघ्र समुचित व्यवस्था कर ली गयी थी।

इस कारण असुर-सैन्यद्वारा काशीको घेर लेनेके संवादसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ; किंतु काशिराज देवान्तकके प्रतापकी स्मृतिसे काँप उठे। वे तुरंत वहाँ पहुँचे, जहाँ बालविनायक बालकोंके साथ खेल रहे थे। राजाने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'लीलारूपधारी जगदीश्वर! आपके चरणोंमें प्रणाम है। अनेक प्रकारकी मधुर मनोहर लीला करनेवाले चराचरगुरु! आपके चरणोंमें बारंबार नमस्कार है। आपने बालरूपमें ही अनेक अवसरोंपर हमारी रक्षा की है; अब महादैत्य देवान्तकसे भी हमें बचाइये। उसने लक्ष-लक्ष सैनिकोंके साथ राज्यको घेर लिया है।'

राजाकी प्रार्थना सुनते ही बालविनायकने परम तेजस्वी विशाल स्वरूप धारण कर लिया। वे सिंहारूढ़ थे। उनके हाथोंमें धनुष-बाण, तलवार और परशु आदि

आयुध थे। सिद्धि, बुद्धि उनके साथ थीं। उनके तेजके सम्मुख सूर्य म्लान हो रहे थे। उनके नेत्रोंसे अंगारे बरस रहे थे। उनकी भयंकर ध्वनिसे दिशाएँ थर्रा उठीं।

महोत्कट विनायकने अगणित सैनिकोंके साथ नगरपर घेरा डाले देवान्तकके विशाल सैन्यको देखा तो उन्होंने सिद्धिदेवीसे कहा—'तुम इनके विनाशके लिये विशाल सेनाकी व्यवस्था करो।'

सिद्धिदेवीने विनायकके चरणकमलोंमें प्रणाम किया और उन्होंने तुरंत देवान्तककी सेनाके समीप जाकर भयानक गर्जना की। उनके गर्जनकी जो भयावनी प्रतिध्वनि हुई, उससे पर्वत और वृक्ष काँप उठे। उनके स्मरण करते ही अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व और ईशित्व—नामवाली आठ महादेवियाँ उपस्थित हो गयीं। वे सभी गज, अश्व, रथ और पैदल नाना प्रकारके सशस्त्र स्त्री-सैनिकोंके साथ थीं।

उन आठों देवियोंने अपनी-अपनी सेनाओंका अद्भुत व्यूह निर्माणकर अत्यन्त भयानक गर्जना की। वीर रमणियोंकी विचित्र व्यूहरचना एवं उन्हें युद्धके लिये प्रस्तुत देखकर देवान्तकने सिर थाम लिया। उसने सोचा—'कहाँ तो मैं काशिराज और महोत्कटको मिट्टीमें मिला देनेके लिये आया था और कहाँ मुझे सर्वप्रथम नारी-जातिके प्रतिरोधका सामना करना पड़ रहा है। बालविनायककी चकित कर देनेवाली अत्यन्त विलक्षण नीति है। ये नारियाँ हमें समाप्त कर देने या मर-मिटनेके लिये प्रस्तुत हैं। यदि मैंने इन्हें पराजित भी कर दिया तो यश तो मिलनेसे रहा, किंतु यदि इनके पराक्रमसे मैं विजय नहीं प्राप्त कर सका, तब कितना अयश होगा?'

इस प्रकार देवान्तक अपने मनमें विचार कर ही रहा था कि उसके एक सेनापतिने कहा—'स्वामिन्! आप सेनाके पीछे चले जायँ, वहाँकी व्यवस्थापर दृष्टि रखें; यहाँ हम इन्हें यथाशीघ्र परास्त करते हैं।'

सेनापतिके वचनसे प्रसन्न होकर देवान्तकने अपने सैनिकोंको प्रोत्साहित किया—'वीरो! तुम अपने साम्राज्यकी रक्षाके लिये युद्ध करने आये हो। यह तुम्हारा पुण्यकर्म है। निश्चय ही विजयश्री तुम्हें वरण करेगी।'

देवान्तकके कर्दम, दीर्घदन्त, तालजंघ, यक्ष्म, घण्टासुर, रक्तकेश, कालान्तक और दुर्जय नामक असुर दुर्जय योद्धा थे। उन्होंने देवान्तकको नमस्कार किया और आठों महान् देवियोंके व्यूहके सम्मुख डट गये।

देवियों और असुरोंमें भयानक संग्राम छिड़ा। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों एवं तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा होने लगी। शत्रुओंके मस्तक, भुजाएँ और पैर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। अश्व और गज भी घायल होकर पृथ्वीपर छटपटाते हुए प्राण त्याग रहे थे। पृथ्वी रुण्ड-मुण्डसे पटती जा रही थी।

देवियाँ और असुर दोनों अपनी-अपनी विजयके लिये प्राणपणसे प्रयत्न कर रहे थे, किंतु कभी असुरगण विजयी होते तो कभी अष्टसिद्धियोंका सैन्य विजयी होता। इस प्रकार असुरों और देवियोंमें अत्यन्त भयंकर संग्राम चल रहा था।

क्रुद्ध कालान्तक शस्त्रोंको छोड़कर प्राकाम्यसे द्वन्द्व युद्ध करने लगा। उसकी शक्तिके सम्मुख देवी प्राकाम्यको शिथिल होते देख वशित्वने तत्काल उनकी सहायता की। उन्होंने तत्क्षण कालान्तकका मस्तक काट दिया। चीत्कार करता और रक्तका फव्वारा छोड़ता कालान्तकका सिर पर्वतशिखरपर जा गिरा। उसका कबन्ध नाचता हुआ धराशायी हो गया। यह देखकर दैत्य-सेनामें हाहाकार मच गया।

फिर तो अत्यन्त कुपित होकर दैत्यनायक मुसल और मल्ल दो असुर योद्धा महिमा आदिको मार डालनेके लिये भयंकर युद्ध करने लगे। उन्होंने प्राकाम्यपर भीषण शस्त्र-वर्षा की। यह देखकर ईशिता, वशिता, और विभूति आदि वीर देवियाँ उनके सम्मुख आ गयीं। उन्होंने दैत्योंपर बड़े वेगसे चार पर्वत उठाकर फेंके; वीर असुर भीषण प्रहार नहीं सह सके; वे वहीं चूर्ण हो गये।

उधर परम शक्तिशालिनी अणिमाने बलात् कर्दमकी शिखा पकड़ ली और उसे घुमाकर पृथ्वीपर इतने जोरसे दे मारा कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसके शरीरका रक्त चारों ओर फैल गया। महिमा, गरिमा और लघिमाने वृक्षोंके प्रहारसे यक्ष्म, तालजंघ और दीर्घदन्तको मार डाला। महाबलवान् दुर्जय दैत्य घण्टासुर और रक्तकेशको पकड़कर वशिता और सिद्धि-बुद्धिने उनके

मस्तकपर वज्रमुष्टिका इतना भयानक प्रहार किया कि वे असुर रक्त-वमन करते हुए मृत्यु-मुखमें चले गये। अन्य असुर भी इसी प्रकार स्त्री-सैनिकोंद्वारा मार डाले गये।

इस प्रकार परम तेजस्विनी देवियों और असुरोंमें तीन दिन और तीन रात्रियोंतक निरन्तर भयानक संग्राम होता रहा। राक्षसीसेना तीव्र गतिसे समाप्त हो चली थी।

यह देखकर देवान्तक अत्यन्त चिन्तित हुआ। वह अपने मनमें तर्क करने लगा—'मैंने अपने प्रभावसे देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी, किंतु इस ब्राह्मण-पुत्रकी माया समझमें नहीं आ रही है। उसने केवल स्त्रियोंसे हमारी अगणित सेनाका संहार करवा दिया; युद्ध-सामग्रियाँ नष्ट कर दीं। अब मैं स्वयं अष्टसिद्धियोंको मार विनायकको पकड़कर स्वर्ग ले चलूँ।'

स्वयं देवान्तक अपने हाथमें तीक्ष्ण तलवार लेकर दौड़ा। उसके गर्जनसे देवसमुदाय काँप उठा। उसने देव-सैन्यपर इतना भीषण प्रहार किया कि रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी। देवगण त्राहि-त्राहि करते प्राण लेकर भागने लगे। देवी गरिमाने उसके ऊपर भयानक वृक्षों और पर्वतोंकी वर्षा की, किंतु देवान्तकने उसे खड्गसे ही चूर्ण कर दिया। महिमाने उड़कर क्रूर दानवराजके मस्तकपर खड्ग प्रहार किया। देवान्तकने उस खड्गको सिरसे निकालकर फेंक दिया। महिमाने झटकेसे उसका खड्ग उड़ा दिया। अत्यन्त कुपित होकर चकित देवान्तकने धनुष उठाया और बाणोंकी वर्षा की। वह महान् असुर एक-एक देवीको पाँच-पाँच, सात-सात और दस-दस तीक्ष्णतम शरोंसे बेध रहा था। इस कारण अष्टसिद्धियाँ व्याकुल होकर वहीं मूर्च्छित हो गयीं। असुरने प्रलयंकरी गर्जना की।

अष्टसिद्धियोंके मूर्च्छित होते ही देवगण युद्धमें डट गये। यह संवाद पाकर बुद्धि-विधाता विनायकने बुद्धिदेवीको रणांगणमें भेज दिया। उन्होंने समर-भूमिमें इतनी भयानक गर्जना की कि दैत्य-दल काँपने लगा। उनके मुखसे एक अत्यन्त शक्तिशालिनी वीर स्त्री प्रकट हुई। उनके केश धरतीपर फैले हुए थे, विशाल मुख भक्षण करनेके लिये प्रस्तुत था और नेत्रोंसे अग्निकी भयानक ज्वाला निकल रही थी।

वे दैत्य-सेनाकी ओर चलीं। उनकी महाभयावनी मूर्ति देखकर असुर भागने लगे। उन्हें प्राण-रक्षाकी कोई युक्ति नहीं दीखती थी। वे दैत्योंके समूह-के समूहको उठाकर अपने मुँहमें डाल लेती थीं। वे राक्षसोंको अपने पैरों और हाथोंसे मसलती हुई आगे बढ़ रही थीं। सम्पूर्ण असुर-सैन्यका विनाश कर उन्हें साक्षात् मृत्युकी तरह अपनी ओर आती देख देवान्तक उनपर भयानक बाण-वर्षा करने लगा। शर-वर्षणमें वह अद्भुत हस्तलाघवका परिचय दे रहा था। अनवरत तीक्ष्ण शर उक्त भयानक देवीके शरीरसे टकराकर गिर जाते। शरोंका उनकी वज्रदेहपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ रहा था। देवान्तकके समस्त शर समाप्त हो गये, किंतु उन अद्भुत देवीपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

'तू भी मेरे उदरमें चला आ!' कहती हुई देवी देवान्तककी ओर बढ़ीं। देवान्तकने देखा, दैत्य-सेनाका कहीं पता नहीं। सभी मार डाले गये और यदि कुछ बचे तो प्राण-भयसे भाग गये और यह साक्षात् मृत्यु सिरपर चढ़ी आ रही है। सर्वथा निराश, उदास और हतप्रभ देवान्तक प्राण-भयसे सिरपर पैर रखकर समर-भूमिसे भाग खड़ा हुआ।

बुद्धिदेवीने विनायकके चरणोंमें प्रणामकर निवेदन किया—'प्रभो! मैंने दैत्य-दलका भक्षण कर लिया है। अब मुझे विश्राम करनेके लिये स्थान दीजिये।'

'दैत्यनाशिनी देवि!' देवदेव विनायकने बुद्धिदेवीसे कहा—'तुमने इन्द्रसे भी अधिक पौरुष दिखाया है। अब तुम विश्रामके लिये मेरे मुखमें चली आओ।'

परमप्रभु विनायककी आज्ञा पाते ही बुद्धिदेवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं और जैसे बालक अपनी माताकी गोदमें सुखपूर्वक शयन करता है, उसी प्रकार वे विश्राम करनेके लिये सर्वलोकाश्रय विनायकके उदरमें चली गयीं।

* * *

वीर विनायक समर-क्षेत्रमें

शारदा और रुद्रकेतुने रात्रिमें देखा कि म्लानमुख देवान्तक मुँह ढककर सो रहा है। रुद्रकेतुने अत्यन्त स्नेहपूर्वक पूछा—'बेटा! तू अत्यन्त उदास हो मुँह छिपाकर क्यों सोया है? बता, क्या हुआ? मैं तुम्हारे हितके लिये सभी प्रयत्न करूँगा।'

पिताकी मधुर वाणी सुनकर लज्जित देवान्तकने

पत्नी-पुत्रसहित श्रीगणेश

(पत्नियाँ—सिद्धि और बुद्धि, पुत्र—क्षेम एवं लाभ)

उत्तर दिया—'पिताजी! आपके आज्ञानुसार मैं अपनी चतुरंगिणी सेनाके साथ विनायकसे युद्ध करने गया। किंतु वहाँ मेरे सम्मुख आठ महादेवियाँ अपने सैनिकोंके साथ डट गयीं। मेरी सेनाने कितने ही देवताओंको मार डाला, किंतु उन देवियोंने मेरे मुख्य-मुख्य सेनाधिपोंको चुन-चुनकर यम-सदन भेज दिया। अन्तमें अत्यन्त विकट, बीभत्सरूपा कृत्या आयी। उसने मेरे असुर-वीरोंके समूह-का-समूह भक्षण करना आरम्भ किया। उसे मारनेमें मैंने कोई प्रयत्न नहीं छोड़ा; किंतु उसके वज्रशरीरपर मेरे तीखे शर तथा अन्य शस्त्रास्त्र सुकोमल सुमनकी तरह टूट-टूटकर बिखर जाते थे। मेरी सारी सेना समाप्त हो गयी और मैं नहीं भागता तो मेरे प्राण भी नहीं बचते। अब मैं क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।'

'बेटा! तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ।' रुद्रकेतुने देवान्तकको समझाते हुए कहा—'तुम सबीज अघोर-मन्त्रका अनुष्ठान करो। शिवका ध्यान और उनकी पूजा कर यह उत्तम अनुष्ठान करना चाहिये। इसके अनन्तर जपका दशांश होम, होमका दशांश तर्पण और तर्पणका दशांश ब्राह्मण-भोजन कराओ। शंकरके प्रसादसे हवनकुण्डसे एक अश्व निकलेगा। तुम उसपर आरूढ़ होकर युद्धभूमिमें जाओ; तुझे निश्चित विजय प्राप्त होगी।'

देवान्तक प्रसन्न हुआ। उसने स्नानोपरान्त लाल वस्त्र धारण किये और लाल पुष्पोंसे शिवकी पूजा की। इस प्रकार वह दीर्घकालतक आदरपूर्वक अनुष्ठान करता रहा। इसके अनन्तर उसने कुण्डमें विधिवत् अग्निकी स्थापना की, फिर आहुति देकर अग्निदेवको तृप्त किया। इस प्रकार बलि आदि घोर तामसिक विधियोंसे उसने अनुष्ठानकी पूर्ति की।

अरुणोदयके समय उसके सम्मुख अत्यन्त बलवान् स्निग्धांग काला घोड़ा उपस्थित हुआ। उस चपल अश्वकी ध्वनि बड़ी भयानक थी। देवान्तकने प्रसन्न होकर उस अश्वकी पूजा की और फिर उसे मणि-मुक्तामय अलंकारोंसे सजाया। उसने ब्राह्मणोंको नमस्कार किया, माता-पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाया और फिर उस वेगशाली अश्वपर आरूढ़ हुआ।

उसने अपने लक्ष-लक्ष सैनिकोंको तुरंत युद्धके लिये संनद्ध होनेका आदेश दिया। उसका सम्पूर्ण असुर-सैन्य शस्त्रास्त्रसे सजकर प्रस्तुत हो गया। अश्वारूढ़ देवान्तककी अमित बलशाली सशस्त्र सेनाके चलते ही वाद्य बज उठे, देवगण अपने भयानक अनिष्टकी कल्पनासे काँपने लगे।

असुर-सैनिक विनायकसहित काशिराजको धूलमें मिला देनेके जोशमें बढ़ते जा रहे थे। देवान्तक क्रोधोन्मत्त था। वह यथाशीघ्र काशीकी सीमाके समीप पहुँचनेके लिये आतुर हो रहा था। इस प्रकार असुर-वाहिनी काशीके समीप पहुँची।

इस बार देवान्तकने अपने सम्पूर्ण सैन्यके साथ काशीपर भीषण आक्रमण किया। सिद्धिदेवी अपने सैनिकोंके साथ प्रत्याक्रमण कर बैठीं। भयानक युद्ध हुआ। असुर प्रबल थे, देवान्तकने नयी शक्ति अर्जित कर ली थी, इस कारण सिद्धिदेवीकी सेना व्याकुल हो गयी। सिद्धिदेवीने असुरोंका अत्यधिक विनाश तो किया, पर वे शिथिल होने लगीं। उनकी सेना पीछे हटने लगी।

देवान्तककी मुक्ति

यह समाचार सुनते ही देवदेव विनायक देव-सेना एवं काशिराजकी सुरक्षित सेना असुरोंपर प्रहार करनेके लिये भेजकर स्वयं सिंहारूढ़ हुए। उन्होंने धनुष-बाण, पाश और परशु आदि अपने अस्त्र धारण किये और समरभूमिमें देवान्तकके सम्मुख जा डटे। विनायकने भयानक गर्जना की। समस्त सैनिकोंसहित देवान्तकका हृदय हिल गया।

अपने प्रबलतम शत्रु विनायकको देखकर देवान्तकने कहा—'अरे बालक! तू रणांगणमें कैसे आ गया? जा, अपनी माताका दुग्धपान कर। मेरी दृष्टिमात्रसे काल भी भयभीत हो जाता है, तू यहाँ क्यों मरने चला आया? तुम्हारा अत्यन्त कोमल शरीर तो मेरा एक ग्रासमात्र ही है।

दैत्यके वचन सुन क्रोधारुणलोचन विनायकने उत्तर दिया—'अरे मूढ़! तू मद्यपों और संनिपातके रोगियोंकी तरह असम्बद्ध प्रलाप क्यों कर रहा है? एक अग्निकण ही विशाल नगरको ध्वस्त करनेके लिये पर्याप्त होता है। सम्पूर्ण जगत्‌को पीड़ित करनेवाले अधम असुर! तू मुझे नहीं जानता। तेरे जीवनकी अवधि

समाप्त हो गयी है और तेरा वध करनेके लिये ही मैंने मनुष्यशरीर धारण किया है। अधिक कहनेसे क्या लाभ; तू अपना पौरुष दिखा।'

इतना कहकर अदितिनन्दनने अपने धनुषकी प्रत्यंचा खींची। उसके भीषण रवसे त्रिभुवन संत्रस्त हो गया। विनायक शर-वर्षण करने लगे। देवान्तकने भी भयानक युद्ध किया।

विनायकके विविध प्रकारके अस्त्रोंसे देवान्तककी सेना गाजर-मूलीकी भाँति कटती जा रही थी। यह देखकर क्रुद्ध देवान्तकने मायाका आश्रय लिया। वह पृथ्वीपर और आकाशमें जहाँ जिस रूपमें जाता, विनायक वहीं उसपर प्रचण्ड प्रहार करते। देवान्तक घायल हो चला था और देवदेव विनायकके भी मंगलमय अंगोंपर जपा-पुष्पकी भाँति अरुण रक्त दीख रहा था। अन्ततः देवान्तकने मोहास्त्रका प्रयोग किया। बस, देवताओं और काशिराजके सैनिकोंके साथ विनायक वहीं रणांगणमें निद्रित हो गये।

देवान्तकने भयानक गर्जन किया और उसने निद्रित देव-सैनिकोंके चारों ओर सशस्त्र वीर प्रहरी नियुक्त कर दिये।

तदनन्तर उसने चक्रके मध्य त्रिकोणाकार कुण्ड निर्मित किया। फिर उसने पद्मासनपर बैठकर अभिचारकर्म प्रारम्भ किया। वह मन्त्रोच्चारणके साथ मांसका हवन कर रहा था।

उसी समय जब काशिराजको निद्रास्त्रसे मोहित सैन्यका पता चला तो वे व्याकुल होकर लुकते-छिपते किसी प्रकार विनायकके पास पहुँचे। उन्होंने विनायकको सावधान करते हुए कहा—'त्रिकालज्ञ देव! आप असुरके मोहास्त्रसे कैसे निद्रित हो रहे हैं? दैत्यराज देवान्तकका अभिचार-कर्म पूर्ण हो चला है। अब वह समस्त देव-सैन्यका वध कर डालेगा? आप कृपापूर्वक सावधान हो जाइये।'

नरेशके वचन सुन विनायक सावधान हो गये। उन्हें असुरकी माया विदित हुई तो उन्होंने तत्काल अपने दो बाण बाहर निकाले और उन्हें घण्टास्त्र एवं खगास्त्रसे अभिमन्त्रितकर धनुषपर रखा। फिर प्रत्यंचाको कानतक खींचकर उन दोनों बाणोंको आकाशकी ओर छोड़ दिया।

विनायकके हाथोंसे उन बाणोंके छूटते ही उनसे मेघ-गर्जन-जैसा शब्द हुआ। घण्टास्त्रसे भयानक घण्टानाद होने लगा, जिससे देवताओंके सैनिकोंकी निद्रा भंग हो गयी। उन्होंने तुरंत उठकर अपने-अपने शस्त्रास्त्र ले लिये और राक्षसोंसे युद्ध करने लगे। दूसरे बाणसे आकाशमें असंख्य भयानक पक्षी उत्पन्न हुए। उनकी पाँखोंसे सर्वत्र अन्धकार व्याप्त हो गया। उन्होंने असुरके गन्धर्वास्त्रको नष्ट कर दिया और उसके सैनिकोंको चुन-चुनकर खाने लगे। दैत्योंमें भयानक हाहाकार मच गया।

तब तो कुपित होकर देवान्तकने भीषण संग्राम किया; किंतु विनायकके सम्मुख उसकी एक नहीं चल पाती थी। असुर मृत्यु-मुखमें प्रवेश करते जा रहे थे और देवान्तककी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। उस मायावी असुरने अनेक प्रकारसे मायामय युद्ध किया, किंतु मायापति विनायकने उन्हें भी विफल कर दिया।

'इस विलक्षण बालकसे पार पाना कठिन प्रतीत होता है।' यह सोचकर उस मायावीने अपनी मायासे विनायकजननी अदितिकी रचना की। वे विलाप कर रही थीं और असुर अदितिको अपमानित कर रहे थे। यह देखकर विनायक अत्यधिक अशान्त और विकल-विह्वल हुए ही थे कि आकाशवाणी हुई—'देव! यह दुष्टबुद्धि असुरोंकी मायामयी रचना है। आप सावधान होकर दुष्ट दैत्यके संहारकी ओर ध्यान दें।'

आकाशवाणी सुनते ही विनायक निश्चिन्त होकर युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। भीषण युद्ध हुआ, पर असुर विचलित नहीं होता था। अचानक उसे कई विनायक दीखने लगे। वह जिधर मुड़ता, उधर ही उसका संहार करनेके लिये क्रुद्ध विनायक अपने प्रचण्ड अस्त्रोंका प्रहार करते दिखायी देते। देवान्तकको दायें-बायें, आगे-पीछे सर्वत्र विनायक ही दीखते। किसे मारूँ, किससे युद्ध करूँ, उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

पुनः देवान्तकने प्रभुके अत्यन्त पराक्रमी स्वरूपका दर्शन किया। देवदेव गजमुख विनायकने उत्तम वस्त्र धारण कर रखे थे। उनके माथेपर अद्भुत अलौकिक मुकुट चमक रहा था और कानोंमें तेजपूर्ण कुण्डल सुशोभित थे। उनके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा हो रही थी और

दन्त-पंक्तियाँ विद्युल्लता-सी चमक रही थीं। उनके मंगलमय कण्ठमें मोतीकी माला शोभा दे रही थी। उन परम तेजस्वी प्रभुका मस्तक अन्तरिक्षको स्पर्श कर रहा था।

'अत्यन्त आश्चर्य! आधा मनुष्य और आधा गजकाय, यह कौन है?' इस प्रकार मनमें कहता हुआ देवान्तक भयाक्रान्त हो गया। देवान्तककी यह मन:स्थिति देखकर विनायक पूर्ववत् बालक हो गये। वे पद्मासन लगाकर बैठ गये। फिर उन्होंने देवान्तकसे कहा— 'असुरराज! तुम अपने शुभ वरको स्मरण करो।'

देवान्तकने कुपित होकर विनायकके दोनों दाँत पकड़ लिये। वह अपनी पूरी शक्तिसे दाँतोंको उखाड़ फेंकना चाहता था। वह कभी विनायकको पीछे ढकेलता और कभी विनायक उसे पीछे ढकेल देते। इस प्रकार देवान्तक बार-बार करुणासिन्धु विनायकके दाँतोंको तोड़ डालनेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे झटका देता।

अचानक एक टूटे दाँतके साथ देवान्तक धरतीपर गिर पड़ा। तब विनायकने कुपित होकर तुरंत अपने दाँतसे उसके मस्तकपर भयानक प्रहार किया। व्याकुल देवान्तकने वज्र-कर्कश ध्वनिमें गर्जना की। उस गर्जनसे पृथ्वी, आकाश, पाताल और दसों दिशाएँ काँपने लगीं। किंतु तत्क्षण देवता, ऋषि और मनुष्य-जातिके उत्पीड़क त्रैलोक्यविजयी देवान्तकका सिर शतधा विदीर्ण हो गया। देवान्तकके पृथ्वीपर गिरते हुए शरीरसे एक ज्योति निकली और वह समस्त देवताओंके समक्ष परम प्रभु विनायकके स्वरूपमें विलीन हो गयी।

महान् दैत्य देवान्तककी मृत्यु देखते ही अवशिष्ट असुर-सेना यत्र-तत्र पलायन कर गयी।

देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं। अन्तरिक्षसे सुगन्धित सुमनोंकी वृष्टि होने लगी। धरतीपर काशिराजकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। दिशाएँ निर्मल हो गयीं। सुखद समीर चलने लगा। अग्निका तेज सबको मुदित करनेवाला हो गया। प्रतिकूल प्रवाहित होनेवाली सरिताएँ अनुकूल पथमें बहने लगीं।

इन्द्रादि देवगण तथा मुनियोंने प्रसन्नमन परम प्रभु विनायककी अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा की और फिर उनकी स्तुति करने लगे—"प्रभो! आपने हमें देवान्तकके बन्धनसे मुक्त कर दिया। आपने देवकार्यके लिये उपेन्द्रकी तरह पराक्रम किया है, इस कारण जगत्में आपका 'उपेन्द्र' नाम प्रख्यात होगा। अब हमलोग निर्भय होकर अपने-अपने अधिकारका उपभोग कर सकेंगे और 'स्वाहा' तथा 'वषट्कार'के स्वर पूर्ववत् घर-घरमें सुनायी देंगे।[१]"

इस प्रकार स्तुति करके देवताओंने विनायककी प्रदक्षिणा की, उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर प्रसन्नमन अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए। हृषीकेश नामक प्रसिद्ध मुनि उन परमप्रभुके चरणोंमें प्रणामकर सानन्द अपने आश्रमको चले गये।

फिर पृथ्वीके राजाओंने प्रभु विनायककी पूजा की और उन्हें प्रणाम करके कहा—"प्रभो! आपने दैत्योंके भारसे आक्रान्त धरणीका उद्धार किया है। इस कारण आपका नाम 'धरणीधर' प्रसिद्ध होगा।" इस प्रकार विनायकका गुणगान कर वे अपने-अपने राज्यमें चले गये।

तत्पश्चात् सिंहारूढ़ विनायकको बालकोंके साथ क्रीड़ा करते देखकर काशिराजने अश्रुपूरित नेत्रोंसे उन्हें अपने वक्षसे लगा लिया। विनायक और नरेश दोनों आनन्दमग्न थे। नरेशके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उन्होंने हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे कहा—'प्रभो! मेरा परम सौभाग्य है। मेरे परम पुण्य उदित हुए हैं, जो मैं ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ सनातन परब्रह्मका अपने नेत्रोंसे प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। जो नित्य, विश्वके कारणोंके कारण, कारणशून्य, वेदान्तवेद्य, सद्रूप, स्वयंप्रकाश, ज्योतिकी ज्योति, नाना रूपमय, सर्वथा अरूप, पृथ्वीका भार हरण करनेवाला है, वही मनोहर तत्त्व बालरूप धारणकर मेरे आँगनमें स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा करता है। मैं अपने सौभाग्यकी प्रशंसा किस प्रकार करूँ?*

---

१. ....देवदेवं विनायकम्। विमोचिता वयं बन्धाद्देवान्तककृताद् विभो॥
उपेन्द्र इव देवेन्द्र कार्यं यस्मात् कृतं त्वया। उपेन्द्र इति नाम्ना त्वं ख्यातिं लोके गमिष्यसि॥
वयं स्वस्वाधिकारेषु निरातङ्का वसामहे। स्वाहास्वधावषट्कारा भविष्यन्ति गृहे गृहे॥
(गणेशपु० २। ७०। १४—१६)

काशिराजकी इस प्रकारकी भक्ति-गद्गद वाणी सुनकर देवदेव विनायकने उनके आँसू पोछे और कहा—'मैं तुम्हें छोड़कर क्षणार्द्धके लिये भी अन्यत्र नहीं जाऊँगा।'

प्रभुके वचन सुन अत्यन्त आनन्दित काशिराजने अनेक उपचारोंसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा और बार-बार स्तुति की।

वाद्य बजने लगे। देवान्तक-वधसे समस्त सैनिक आह्लादित थे। नरेशने सबको वस्त्रालङ्कार और ताम्बूलादि देकर प्रसन्न किया। सब अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए। तदनन्तर हर्षोत्फुल्ल काशिराज परमप्रभुके साथ राजभवन पहुँचे।

त्रैलोक्यको कम्पित करनेवाले असुरोंके पराभवसे काशीमें सर्वत्र आनन्दोल्लास व्याप्त था। इस कारण वहाँ कई दिनोंतक अत्यन्त हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे अद्भुत महोत्सव होता रहा। सर्वत्र निरन्तर एक ही सामूहिक स्वर सुनायी देता था—'जय सिद्धिविनायक!'

दूसरे दिन काशिराजने अमात्यों, वीरों, वृद्धों एवं विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया; फिर उनसे अपने मनकी बात कही—'महर्षि कश्यपके आश्रमसे मैं देवदेव विनायकको अपने पुत्रके विवाहके लिये ले आया था; किंतु असुरोंके उपद्रवसे यह शुभ वैवाहिक-कार्य उत्तरोत्तर टलता गया। अब प्रभुने त्रैलोक्यका भार हटा दिया है; सर्वत्र सुख-शान्ति और सुव्यवस्था होने जा रही है; अतएव अब युवराजके विवाहके सम्बन्धमें आपलोगोंके क्या विचार हैं?'

'आप सर्वथा उचित कहते हैं। विलम्ब विघ्नका कारण होता है।' अमात्यने विनयपूर्वक निवेदन किया—'भगवान् विनायकके अनुग्रहसे दुष्टोंका संहार होकर सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गयी है; अतएव अब विवाह-कार्य अविलम्ब होना चाहिये।'

समागत वीरों, वृद्धों एवं ब्राह्मणोंने भी युवराजके शीघ्र विवाहका अनुमोदन किया। सर्वत्र लग्नपत्रिका भेजी गयी। अभ्यागतोंके अभिनन्दनार्थ व्यापक सुव्यवस्थाके साथ मंगलोत्सव मनाया जाने लगा।

मगधनरेश अपनी कन्यासहित पधारे। देवदेव विनायकको उपस्थितिमें युवराजका सविधि परिणय हुआ। काशिराजने ब्राह्मणोंको अत्यधिक दान दिया और सभी अभ्यागतोंको यथायोग्य रीतिसे सम्मानित किया। सभी लोग हर्षपूर्वक अपने-अपने देश चले गये। काशिराजने विविध उपचारोंसे विनायककी बार-बार पूजा की, स्तवन, परिक्रमा और प्रणाम किया एवं उन्हें अनेक प्रकारके वस्त्र, आभरण आदि बहुमूल्य वस्तुएँ अर्पित कीं।

तदनन्तर नरेशने प्रभु विनायकके आदेशानुसार साश्रुनयन उन्हें सुसज्जित रथपर बैठाया। महान् विपत्तियोंसे त्राण देनेवाले, प्राणप्रिय विनायकके कश्यपाश्रम-गमनका संवाद क्षणभरमें ही विद्युत्-गतिसे सर्वत्र फैल गया। बालक, युवा, वृद्ध—सभी स्त्री-पुरुषोंने रोते हुए उनके रथको घेरकर कहा—'देवदेव विनायक! हमें कल्पना भी नहीं थी कि आप इस प्रकार सहसा हमें त्यागकर चले जायँगे। आप हमारा मन चुराकर अब हमें जलहीन मीनकी तरह तड़पानेका कार्य क्यों करने जा रहे हैं? आपके बिना हम जीवित नहीं रह सकते।'

विनायकके साथ अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करनेवाले बालक उनके चरणोंको पकड़कर रोने लगे।

विविध वस्त्रालंकारभूषित करुणामय विनायकके नेत्र भी सजल हो गये। रथसे उतरकर उन्होंने अत्यन्त मधुर वाणीमें सबसे कहा—'मैं यहाँ युवराजके विवाहके लिये दस-पाँच दिनोंके लिये ही आया था। वहाँ मेरे माता-पिता उदास मनसे चिन्ता करते हुए मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। यहाँ रहकर मैं आपलोगोंका आत्मीय हो गया। आपलोगोंकी स्मृति मुझे सदा बनी रहेगी। आपलोगोंके सम्मुख मुझसे जो भी अपराध हुए हों, कृपापूर्वक मुझे अपना समझकर क्षमा करेंगे।'

---

* …………देवं महद्भाग्यं ममोदितम्। ब्रह्मादीनामगम्यं यत् परं ब्रह्म सनातनम्॥
तन्मे दृग्गोचरं नित्यं पूर्वपुण्यफलोदयात्। विश्वस्य कारणानां च कारणं तद्विवर्जितम्॥
वेदान्तवेद्यं सज्ज्योतिर्ज्योतिषामपि भास्वरम्। नानारूपमरूपं यद् बालरूपेण मे गृहे॥
क्रीडते स्वेच्छया पृथ्वीभारहारि मनोहरम्॥

(गणेशपु० २। ७०। २३—२६)

समस्त बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुषोंका समुदाय शान्त था। विनायकके एक-एक शब्द जैसे उनके तन-मन-प्राणमें ही नहीं, रोम-रोममें समाये जा रहे थे। उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रुधारा बहती जा रही थी। आनन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी विनायकने उन प्रेममूर्तियोंसे आगे कहा—'यदि मेरी स्मृतिसे आपलोगोंकी तुष्टि न हो तो आपलोग घर-घर मेरी मिट्टीकी प्रतिमा स्थापितकर उसकी पूजा करें।[1] जब भी आपपर कोई आपत्ति आयेगी, सूचना प्राप्त होते ही मैं यहाँ तुरंत आ जाऊँगा; आप विश्वास करें।'

'जय विनायक! आनन्दपूरित गगनस्पर्शी स्वर गूँजा। परमप्रभु विनायक रथारूढ़ हुए। काशिराज भी उनके साथ रथपर बैठे। समस्त उपस्थित जनोंने रथकी अनेक बार परिक्रमा की।

'जय विनायक!' दिगन्तव्यापी स्वर पुनः गूँज उठा। रथ धीरे-धीरे चल रहा था और इस स्वरसे आकाश गूँजता ही जा रहा था। प्राणधन विनायकका रथ अदृश्य हुआ तो लुटे वणिक्की भाँति रोते-बिलखते, अपने आँसू पोंछते आबाल-वृद्ध नर-नारी अपने-अपने घर लौटे।

विनायक अपने माता-पिताके दर्शनकी तीव्र लालसासे आतुर हो रहे थे। रथ वायुवेगसे भागा जा रहा था। इस प्रकार वे काशिराजके साथ शीघ्र ही अपने आश्रमपर पहुँच गये। उन्होंने अपनी जननी अदितिके चरणोंमें प्रणाम किया तो उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रु-प्रवाह चल पड़ा। उन्होंने सिसकते हुए अपने बिछुड़े बच्चेको गले लगा लिया।

फिर विनायक दौड़कर अपने पिता महामुनि कश्यपके चरणोंपर गिर पड़े। पिताने स्नेह-गद्गद-कण्ठसे अपने आत्मजको शुभाशीर्वाद प्रदान किया। फिर विनायक समस्त आश्रमवासियोंके समीप पहुँचे। कश्यपाश्रममें सर्वत्र आनन्द छा गया।

जब काशिराजने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भगवती अदिति और महामुनि कश्यपके चरणोंमें प्रणाम किया तो उन्होंने आशिष् प्रदान करते हुए उनसे कहा—'काशिराज! आप कुछ ही दिनोंके लिये विनायकको ले गये थे, किंतु उसे इतने दिनोंतक रखकर आपने हमें बच्चेके वियोगका अधिक कष्ट प्रदान किया। हमलोगोंका जलता हृदय आज शान्त हुआ है।'

नरेशने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'पूज्यवर! विनायकको मेरे यहाँ अवश्य देर हो गयी, पर मेरी विवशताके लिये आपलोग मुझे कृपापूर्वक क्षमा प्रदान करें। मैं विनायकको युवराजके विवाहके लिये ही ले गया था, किंतु ये सम्पूर्ण नगरवासियोंको उत्तरोत्तर प्रेमामृत प्रदान करते थे और प्रबल असुर अनुदिन उपद्रव मचाते जा रहे थे। इन्होंने असंख्य अजेय असुर-सैनिकोंका सर्वनाशकर सर्वत्र सुख-शान्ति और सद्धर्मकी स्थापना की है। देवगण हर्षित हुए और इनकी अमित कीर्ति सर्वत्र स्थापित हुई। फिर आप्तकाम विनायक शीघ्र ही युवराजका विवाह सम्पन्न कराकर यहाँ उपस्थित हो गये।'

अपने पुत्रके पराक्रम और उसके सद्गुणोंकी प्रशंसा सुनकर कश्यप और अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने काशिराजको विविध प्रकारके भोजन और फलोंसे संतुष्टकर विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

प्रातःकाल नरेशने कश्यप और अदितिके चरणोंमें प्रणाम कर काशी लौटनेकी आज्ञा माँगी। मुनि-दम्पतिने उन्हें आशीर्वाद दिये। राजाने पुनः-पुनः विनायकसहित कश्यप और अदितिकी परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम किया और विनायकके गुणों और प्रीतिका स्मरण करते, अश्रु पोंछते वे राजधानी लौटे।

काशिराजके आगमनका स्वागत-वाद्य सुनकर नगर-निवासी दौड़ पड़े, पर जब उन्होंने रथपर एकाकी नरेशको बैठे देखा तो वे विनायककी स्मृतिसे रोने लगे। उन्होंने काशिराजसे निवेदन किया—'राजन्! आप अपने साथ प्राणप्रिय विनायकको क्यों नहीं ले आये? आप उन्हें छोड़कर अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक यहाँ कैसे चले आये?'

उत्तर देते समय नरेशका गला रुँध गया। अश्रु पोंछते हुए उन्होंने प्रजाजनोंसे कहा—''यहाँ आनेके पूर्व मैंने उनसे बार-बार प्रार्थना की; किंतु उन मुनि-पुत्रने कहा कि 'तुम सब मेरी मूर्ति स्थापित कर उसकी सेवा करो। मुझ सर्वान्तर्यामीसे तुम्हारा कभी वियोग नहीं होगा[2]।''

१. न चित्तस्य समाधानं भवेद् वै चिन्तनेन मे। मम मूर्तिं मृदा कृत्वा पूजयन्तु गृहे गृहे॥ (गणेशपु० २। ७१। ३५)

२. मन्मूर्तिस्थापनं कृत्वा सेवध्वं सर्व एव माम्॥ वियोगो न च सर्वान्तर्यामिणा वः कथंचन।
(गणेशपु० २। ७२। २७-२८)

तदन्तर काशिराजने गजमुख विनायककी धातुमयी एक सुन्दर मूर्ति बनवायी, जिसके तीन नेत्र और चार भुजाएँ थीं। शूर्पाकार कर्ण थे। सर्वभूषणभूषित उक्त मूर्तिके प्रत्येक अवयव अप्रतिम, आकर्षक और मनोहर थे।

राजाने ब्राह्मणोंके द्वारा उक्त पावनतम मूर्तिकी अत्यन्त आदरपूर्वक स्थापना करायी। उस मूर्तिका नामकरण हुआ—'ढुण्ढिराज।'

अनेक प्रकारके उत्तम प्रसादसे उनकी पूजा होने लगी। ढुण्ढिराज विनायकके सर्वकामद विग्रहकी जिसने जिस कामनासे पूजा की, उसकी वही कामना पूरी हुई। इस प्रकार नाना रूप ग्रहण करनेवाले देवदेव विनायक वहाँ शोभा देने लगे।

* * *

देवदेव विनायकको आश्रमपर पधारे कुछ दिन भी नहीं बीते कि उन्होंने अपने माता-पिता अदिति और कश्यपसे कहा—'आपने पहले जिस उद्देश्यसे तपश्चर्या की थी, मैंने वह सब कार्य पूरा कर दिया। त्रैलोक्यको पीड़ित करनेवाले असुर मारे गये, देवताओं और साधुजनोंकी रक्षा हुई, उन्होंने अपना स्थान प्राप्त कर लिया। पृथ्वीका बोझ उतरा। अब मैं अपने धाम जाऊँगा।'

अलौकिक षोडशवर्षीय बालक विनायकके दृढ़तायुक्त वचन सुनते ही माता-पिताके कण्ठोष्ठतालु सूख गये। अत्यन्त दुःखी अदितिने पूछा—'देव! आपका दर्शन पुनः कब प्राप्त होगा?'

'माता! मेरा दर्शन पुनः भवानीके मन्दिरमें होगा, यह सर्वथा सत्य है।' कहते हुए परमप्रभु विनायक वहीं अन्तर्धान हो गये।

परमखिन्ना अदिति और महर्षि कश्यपने वहाँ धातुकी विनायककी श्रेष्ठ प्रतिमा स्थापित की। गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप और दीप आदिसे पूजा कर उन्हें विविध प्रकारके व्यंजनों और फलोंका भोग लगाया। उस प्रतिमाका नाम प्रसिद्ध हुआ—'विनायक!' उस मूर्तिके ध्यानमात्रसे परमप्रभु विनायक नित्य दर्शन देते हैं।[१]

* * *

परमदेव विनायकका यह पावनतम चरित्र समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है। इसके श्रवणसे धन, यश एवं आयुकी प्राप्ति होती है तथा इससे समस्त उपद्रवोंका नाश हो जाता है। यह मंगलमूर्ति विनायककी परम पुण्यमयी लीला-कथा सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली और समस्त संचित पापोंका नाश करनेवाली है।[२]

जय सिद्धिविनायक!

~~o~~

(२)

श्रीमयूरेश्वर

सिन्धुका जन्म

त्रेतायुगकी बात है। मैथिल देशमें गण्डकी-नामसे प्रसिद्ध एक नगर था। वहाँ चक्रपाणि नामक सद्धर्मपरायण नरेश राज्य करते थे। वे नरेश रूप-गुणसे सम्पन्न तथा परम पराक्रमी थे। राजा परम बुद्धिमान् एवं धन-वैभवसे सम्पन्न तो थे ही, रथों, गजों, अश्वों एवं पैदल वीर सैनिकोंकी अजेय वाहिनी उनके पास थी। सम्पूर्ण पृथ्वी उनके वशमें थी और सभी राजा सदा उनकी सेवाके लिये प्रस्तुत रहते थे। गौओं और गोविन्दके अनन्य भक्त नरेश प्रतिदिन नियमितरूपसे भक्तिपूर्वक पुराण-श्रवण करते थे।

उनके अत्यन्त बुद्धिमान् एवं परमनीतिज्ञ दो अमात्य थे, जिनके नाम थे—साम्ब और सुबोधन। वे नरेशकी सेवाके सम्मुख अपना बहुमूल्य जीवन तृण-

---

१. तस्यां मूर्तौ ध्यानमात्रेण नित्यं दर्शयते विभुः। (गणेशपु० २। ७२। ४१)

२. .... चरितं............ शुभम्। विनायकस्य देवस्य श्रवणात् सर्वसिद्धिदम्॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वोपद्रवनाशनम्। सर्वकामप्रदं सर्वपापसंचयनाशनम्॥
(गणेशपु० २। ७२। ४२-४३)

तुल्य समझते थे। राजा चक्रपाणिकी साध्वी पत्नीका नाम उग्रा था। उग्रा अनिन्द्य रूपवती, सरला, पतिपरायणा, सुशीला एवं बुद्धिमती थी। उसकी जीवनचर्या सतत पतिके मनोनुकूल थी।

इस प्रकार नरेश चक्रपाणि प्रत्येक दृष्टिसे सुखी थे, किंतु एक दुःखसे वे रात-दिन दुःखी भी रहते थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। एतदर्थ उन्होंने अनेक यज्ञ और व्रत किये, ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक पुष्कल दान दिया, किंतु इन सत्कर्मोंका कोई परिणाम नहीं निकला। संतति होती, पर काल-कवलित हो जाती। इस कारण सर्वसुख-सम्पन्न दम्पतिका हृदय अत्यन्त अशान्त और व्याकुल रहा करता था।

'पुत्रके बिना राज्य व्यर्थ है।' एक दिन अत्यन्त दुःखी हो नरेशने राज्य छोड़कर वनमें चले जानेका विचार किया; किंतु उसी समय वहाँ त्रैलोक्यविश्रुत वेद-वेदांग-शास्त्रोंके वक्ता महामुनि शौनक पधारे। राजाने उनके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उन्हें सुखद आसनपर बैठाया। फिर पाद्य-अर्घ्यादिसे महामुनिकी पूजा की और हाथ जोड़कर कहा—'आज मेरे किस महान् पुण्यका उदय हुआ है, जिससे मुझ पातकी पुरुषके लिये दुर्लभ, सर्वपापहर, सर्व-कामद और परम शुभद आपके चरण-कमलोंका दर्शन प्राप्त हो गया।'

'मैं तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हूँ।' महामुनि शौनकने नरेशसे कहा—'राजन् ! तुम निश्चिन्त हो जाओ और वन-गमनका विचार त्याग दो। मैं सत्य कहता हूँ कि निश्चय ही तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

परम तपस्वी शौनक ऋषिकी अमृतमयी वाणीसे प्रसन्न होकर चक्रपाणि नरेशने ऋषि-चरणोंमें बहुमूल्य रत्न, स्वर्ण एवं वस्त्रादि समर्पित किये, किंतु परम निःस्पृह महामुनिने उन्हें लौटाते हुए राजासे कहा— 'समस्त प्राणियोंका यथार्थ हित चाहनेवाले वल्कलधारी विरक्त ऋषियोंको भोग-सामग्रियोंकी अपेक्षा नहीं होती। मैं तो तीर्थयात्रा करते हुए तुम्हारे यहाँ आ गया था। सच्चे मुनियोंके मनमें तो साधु-दर्शनकी लालसा तीव्र होती है। उनकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला और सोना समान होता है।'

महामुनिने पत्नीसहित राजा चक्रपाणिसे आगे कहा—'तुम सूर्यदेवकी उपासना करो। एक महीनेका व्रत है। व्रतारम्भ सूर्यसप्तमीसे होता है। आभ्युदयिक श्राद्ध और मातृका-पूजनपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। फिर स्वर्ण-कलशपर स्वर्णका ही सूर्य-मण्डल स्थापित कर भक्तिपूर्ण हृदयसे षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। रक्तचन्दनमिश्रित तन्दुल, रक्त पुष्प, नाना प्रकारके रत्न, विविध फल और बारह अर्घ्य प्रदान कर नमस्कार और प्रदक्षिणा करना उचित है। फिर भगवान् सूर्यदेवकी भक्तिपूर्ण हृदयसे स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये।

'तदनन्तर भगवान् सूर्यके चरणोंमें एक लाख बार नमस्कार स्वयं करे और दूसरोंको भी नमस्कार करनेकी प्रेरणा दे। प्रतिदिन अत्यन्त आदरपूर्वक एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वेदज्ञ कुटुम्बी ब्राह्मणको एक दुधारू गाय देनी चाहिये। पत्नीसहित ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए दीन, दरिद्र, नेत्रहीन और असहाय स्त्री-पुरुषोंकी अन्नादिसे सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार एक मासका व्रत सम्पन्न हो जानेपर तुम्हें प्रख्यात सूर्यभक्त एवं पवित्र पुत्र प्राप्त होगा।'

महामुनि शौनक बिदा हुए और सहधर्मिणीसहित राजा चक्रपाणिने सूर्यदेवकी आराधना प्रारम्भ की। व्रतका सविधि पालन हो रहा था। चक्रपाणि-पत्नी उग्रा निरन्तर सूर्य-मन्त्रका जप कर रही थी। किंतु एक दिन उसने स्वप्नमें सूर्यदेवको अत्यन्त मनोहर अपने पतिके रूपमें देखा। उग्राका ब्रह्मचर्य स्खलित हो गया।

अपनी पत्नीके मुखसे उसके ब्रह्मचर्य-भंगका संवाद सुनकर कठोर व्रती चक्रपाणि अत्यन्त चकित हुए। उन्होंने कहा—'मैं तो अपना प्रत्येक क्षण सूर्यदेवकी उपासनामें व्यतीत कर रहा हूँ; पर भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे तुम्हें उत्तम पुत्र प्राप्त होगा।'

गर्भ बड़ा तेजस्वी था; उसकी वृद्धिके साथ उग्राका कष्ट बढ़ता जा रहा था। वह ताप-शमनके लिये चन्दन और कर्पूर आदि शीतल पदार्थोंका सेवन करती, किंतु जलन कम नहीं होती थी। वह प्रायः शीतल वायुका सेवन करती और अपने शरीरपर आर्द्र वस्त्र रखती, फिर भी उसकी ज्वाला दूर नहीं हो पाती थी। जलन बढ़ती ही गयी। विवश हो उसने सखियोंके साथ अपने नगरसे दूर सिन्धुके तटपर जाकर असमयमें ही

गर्भको त्याग दिया और फिर उग्रा अपने भवन लौट आयी। इस समाचारको जानकर राजा उदास हो गये।

उग्रा-पुत्र अत्यन्त बलवान्, तेजस्वी और भयंकर मुखवाला था। उसका भाल विशाल था और उसके तीन नेत्र थे। रक्तवर्णके केशवाले उस बालकके हाथमें त्रिशूल था। उक्त नवजात शिशुके रोदनसे त्रिभुवन काँप उठा। उस आजानुबाहु बालकसे जलजन्तु क्षुब्ध होने लगे। इस कारण समुद्रने उस बालकको राजा चक्रपाणिके यहाँ पहुँचा दिया। समुद्रने नरेशसे कहा—'राजन्! आपकी धर्मपत्नी इस तेजस्वी बालकका भार सहन नहीं कर सकीं; इस कारण उन्होंने अपना गर्भ असमयमें ही मेरे तटपर त्याग दिया। यह आपका वही तेजस्वी बालक है, जिसकी ओर देखना भी कठिन है। इसके रुदनमात्रसे त्रैलोक्य काँप उठा था।'

अपने अत्यन्त शक्तिशाली पुत्रको पुनः प्राप्तकर नरेश चक्रपाणि अत्यन्त प्रसन्न हुए। उग्राने हर्षपूर्वक बच्चेको अपनी गोदमें उठा लिया और उसे स्तन-पान कराने लगी।

आनन्दविभोर नरेशने ज्योतिषियों और ब्राह्मणोंको बुलाकर जातकर्म-संस्कार करवाया। उन्होंने ब्राह्मणोंको दान देकर संतुष्ट किया। नगरमें सर्वत्र नरेशके पुत्रका उत्सव मनाया जाने लगा। सिन्धुतटपर उत्पन्न होनेके कारण चक्रपाणि-पुत्रका नामकरण हुआ—'सिन्धु'। अमात्यने कहा—''उग्रमुद्राधारी इस उग्रा-पुत्रका नाम प्रख्यात होगा—'उग्रेक्षण''। नगरनिवासियोंने बालकको 'विप्रप्रसादन' नाम दिया।

सिन्धु तीव्रतासे बढ़ने लगा। उग्रेक्षण कुछ ही दिनोंमें इतना शक्तिशाली हो गया कि क्रीड़ा करते हुए तरुओंको उखाड़कर अपने बायें हाथसे मसल डालता था। वह अरण्यमें जाकर विशाल पर्वतों और वृक्षोंको पटककर चूर्ण कर देता था। एक बार उसने प्रवाहको अवरुद्धकर खड़े मदमत्त गजके गण्डस्थलको अपने मुष्टिप्रहारसे ही फोड़ दिया। चीत्कार करता हुआ गज मृत्युमुखमें चला गया। उक्त अतिमानवको देखकर नगरनिवासी चकित—विस्मित हो जाते, पर राजा और रानीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

सिन्धुका तप और वर-प्राप्ति

अत्यन्त शक्तिशाली विप्रप्रसादन अभी पूर्ण युवक भी नहीं हुआ था कि उसने अपने माता-पितासे कहा—'मैं वनमें तपस्या कर पृथ्वी, स्वर्ग और रसातलपर अधिकार करना चाहता हूँ। यहाँ मेरा समय व्यर्थ जा रहा है। आपलोग मुझे आज्ञा प्रदान करें।'

नरेश-दम्पतिने पुत्रोत्कर्षकी कामनासे व्रत और दान आदि पुण्यकर्म करके सिन्धुको आज्ञा दे दी। माता-पिताके चरणोंमें प्रणामकर सिन्धु अरण्यमें पहुँचा। वहाँ उसने विकसित कमलोंसे भरा और निर्मल जलसे पूरित एक सुन्दर सरोवर देखा।

सिन्धुने वहीं स्नानकर एक अंगूठेपर खड़े हो सूर्यदेवकी आराधना प्रारम्भ की। वह तेजोराशि सूर्यदेवको अर्घ्य देकर शीत, वात, उष्ण और जलवृष्टिका असह्य कष्ट सहते हुए केवल वायुके आहारपर निरन्तर उनका मन्त्र जपता रहा। उसका अस्थिपंजरमात्र अवशिष्ट रह गया, तथापि वह महामानव मन्त्रजप करता ही रहा।

इस प्रकार दो सहस्र वर्ष बीते। सहस्रांशु प्रसन्न हुए। उन्होंने उग्रेक्षणके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; अभीष्ट वर माँग लो।'

सिन्धुने अपने सामने जगत्पति सूर्यको देखा तो वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा। उसने गद्गद-कण्ठसे बद्धाञ्जलि स्तुति की और कहा—'प्रभो! मेरी मृत्यु न हो। आपके प्रसादसे मैं समस्त देवगणोंपर विजय प्राप्त कर लूँ। यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर प्रदान करें।'

'तुम यह अमृतपात्र ग्रहण करो।' अत्यन्त प्रसन्न हुए सूर्यदेवने सिन्धुसे कहा—'जबतक यह अमृतपात्र तुम्हारे कण्ठमें रहेगा, तबतक तुम्हें देवता, नाग, मनुष्य, पशु आदि तिर्यक्-योनिमें किसीसे दिन, रात, प्रातः या सायं किसी भी समय मृत्युका भय नहीं रहेगा। इसके निकलनेपर ही तुम्हारी मृत्यु होगी। जिस अवतारी पुरुषके अंगुष्ठके नखाग्रपर कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड निवास करते होंगे, तुम उसीके द्वारा मारे जाओगे; अन्यत्र तुम्हें सर्वत्र अभय है। मेरे प्रसादसे तुम त्रिभुवनविजयी होओगे।'

इस प्रकार वर प्रदान कर सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये।

उग्रेक्षणने विधिवत् अमृत-पात्र कण्ठमें धारण किया। फिर राजभवनमें पहुँचकर जब उसने अपने

माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया तो उन्होंने उसे वक्षसे लगा लिया और जब उन्होंने सुना कि 'मेरे पुत्रने भगवान् अंशुमालीका साक्षात्कारकर उनसे त्रैलोक्य-विजय और अमरणका वर प्राप्त कर लिया है, तब तो उनके आनन्दकी सीमा न रही।

'मेरा पुत्र सिन्धु वीर, धीर, पराक्रमी, बुद्धिमान् और सूर्यप्रदत्त अद्भुत वरसे पूर्णतया समर्थ है; इस कारण अब अपना शेष जीवन वनमें तपश्चरण करते हुए व्यतीत करना ही उत्तम है।' इस प्रकार विचारकर नरेश चक्रपाणिने अमात्योंसे परामर्श किया और फिर उग्रेक्षणका राज्याभिषेक कर उसे सम्पूर्ण सेनाका आधिपत्य प्रदान कर दिया। इसके बाद राजा चक्रपाणि अपनी पत्नी उग्राके साथ राज्य त्यागकर अरण्यमें चले गये।

सिन्धुका आक्रमण

अद्भुत शक्तिशाली युवक सिन्धु राजा हुआ। उसे सूर्यदेवका अमोघ वर प्राप्त तो था ही, अगणित सशस्त्र सैनिक भी उसके अधीन थे। उसने राज्य-संचालनका दायित्व अमात्योंको सौंपा और स्वयं शस्त्रसज्ज सैनिकोंके साथ दिग्विजयके लिये निकला।

दर्पोन्मत्त उग्रेक्षण जिधर जाता, उधर ही हाहाकार मच जाता। राजे-महाराजे उसके चरणोंमें शीश झुकाते और सहर्ष अधीनता स्वीकार कर लेते थे। नियमितरूपसे समयपर कर देते रहनेका वचन देकर वे उसे बहुमूल्य उपहार प्रदान करते थे।

धीरे-धीरे सिन्धुकी सेनामें असुरों और दैत्योंका बाहुल्य हो गया। उग्रा-पुत्र उग्रेक्षणका जीवन असुर-तुल्य था। न्याय और धर्म उसकी बुद्धिको स्पर्शतक नहीं कर पाते थे। इस कारण शक्ति-मद-मत्त सिन्धु जनपदोंको ध्वस्त करते, आबाल-वृद्ध नर-नारियोंकी हत्या करते और पृथ्वीपर रक्तकी सरिता बहाते हुए सर्वत्र अधिकार प्राप्तकर स्वर्गपर जा चढ़ा।

वज्रायुध सुरेन्द्रने ऐरावतपर चढ़कर उग्रेक्षणका सामना किया, किंतु असुरकी वज्र-मुष्टिके प्रहारसे ऐरावतका गण्डस्थल विदीर्ण हो गया। वह रक्त-वमन करता हुआ पृथ्वीपर लोट गया। शचीपति मूर्च्छित हो गये। वे किसी प्रकार प्राण बचाकर भागे। यह दृश्य देखकर समस्त देवगण तीव्रतम गतिसे पलायित हुए।

श्रीविष्णु बन्दी हुए

पराजित शचीपति वैकुण्ठ पहुँचे। उन्होंने श्रीविष्णुके चरणोंमें मस्तक झुकाकर निवेदन किया—'गोविन्द! प्रबलतम राक्षस सिन्धुने अमरावतीपर अधिकार कर लिया और अनाश्रित सुरसमुदाय यत्र-तत्र छिप गया। हमारे लिये कहीं स्थान नहीं रहा। आप कृपापूर्वक असुरका मान-मर्दन कर देवताओंको उनका पद प्रदान कीजिये।'

शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीहरि गरुड़पर विराजमान हुए। सशस्त्र देव-सैन्यके साथ गरुड़ध्वज स्वर्ग पहुँचे। उनका असुरोंसे भयानक संग्राम हुआ। देवताओंको शिथिल होते देख स्वयं श्रीविष्णु असुरपति उग्रेक्षणसे युद्ध करने लगे। माधवने अपने चक्रका प्रहार किया ही था कि दैत्यने सहस्रारपर वज्र-मुष्टिसे आघात किया। चक्र पृथ्वीपर दूर जा गिरा, तब विष्णुने असुरके मस्तकपर वज्र-तुल्य कौमोदकी गदासे प्रहार किया। महाबलशाली सिन्धुने कौमोदकी गदा पकड़ ली और उसे टुकड़े-टुकड़े करके दूर फेंक दिया।

अत्यन्त चकित होकर नीतिज्ञ श्रीविष्णुने सिन्धुसे कहा—'दैत्यराज! मैंने तुम-जैसा पराक्रमी असुर नहीं देखा; अतएव तुम मुझसे कोई वर माँगो।'

आनन्द-मग्न दैत्यराजने कहा—'देवाधिदेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सकुटुम्ब मेरे गण्डकी-नगरमें निरन्तर निवास करें। मुझे अन्य किसी वरकी अपेक्षा नहीं है।'

विष्णु बोले—'अपने वचनके अनुसार मैं तुम्हारे नगरमें निवास करूँगा।'

तदनन्तर सिन्धुने कैलास और वैकुण्ठके पदपर अपने श्रेष्ठ असुरोंको आसीन किया और स्वयं शचीपतिके सिंहासनपर आरूढ़ हुआ। फिर अमरावतीमें भी दूसरे असुरको नियुक्तकर वह महान् असुर सिन्धु रमापतिके साथ अपनी राजधानी गण्डकी-नगर लौट आया। वहाँ विविध वाद्यों और जयघोषके साथ उसका सादर अभिनन्दन हुआ।

सिन्धुने श्रीहरिको सर्वोत्तम भवनमें ले जाकर कहा—'आप यहाँ देवताओंसहित सुखपूर्वक स्वच्छन्द विहार करें।'

इसके अनन्तर इन्द्र, वरुण, कुबेर तथा अन्य

प्रमुख देवताओंने प्रभुके समीप जाकर निवेदन किया—'गरुड़ध्वज! यह क्या हुआ? आपका अमित पराक्रम कहाँ गया? आप मर्त्यधामके कारागारमें कैसे आ गये? जगदीश्वर! हमलोगोंकी दुर्दशा कैसे दूर होगी?'

'कालका उल्लंघन किसीके लिये शक्य नहीं।' लक्ष्मीपतिने देवताओंको आश्वस्त करते हुए कहा—'कालके प्रभावसे ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते, बढ़ते और नष्ट हो जाते हैं। तुमलोग कालकी प्रतीक्षा करो। वही काल इसे निगल जायगा।'[१]

सर्वाधारप्रभुके अभयद चरणकमलोंमें प्रणाम कर देवगण चले गये। उधर हर्षमग्न विप्रप्रसादन वनमें अपने माता-पिताके समीप पहुँचा। उसने तपस्वी चक्रपाणि और उग्राके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें वैकुण्ठ, स्वर्ग एवं कैलाससहित सम्पूर्ण धरित्रीके विजयका विस्तृत संवाद सुनाया। पुत्रके अद्भुत पराक्रमसे अत्यन्त आनन्दित होकर माता-पिताने उसे शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

उग्रेक्षणका शासन अत्यन्त उग्र था। अपनी इच्छाके तनिक भी विपरीत उसे कुछ भी सह्य नहीं था। वैभव-सम्पन्न सर्वथा निरंकुश सिन्धु उद्दण्ड तो बाल्यकालसे ही था, अब अमितशक्ति-सम्पन्न होकर उन्मत्त-सा हो गया। धर्मात्मा पिता एवं साध्वी मातासे असमयमें उत्पन्न दुष्टबुद्धि पुत्रने धर्म-विरुद्ध घोषणा कर दी—'यज्ञ, दान, स्वधा, स्वाहा और वषट्कार त्याग दिये जायँ। देवता, ब्राह्मण और गुरुओंकी कहीं पूजा न की जाय। प्रत्येक उपासना-गृहसे देव-प्रतिमाएँ हटाकर अगाध जलमें डुबा दी जायँ और उनके स्थानपर मेरी मूर्ति स्थापित कर उसे देवताओंकी तरह पूजी जाय।'

बाह्य मनसे ही सही, दुष्टतम सिन्धुका अनुमोदन करनेवाले ब्राह्मणोंके अतिरिक्त सभी ब्राह्मण[२] और ऋषि भागकर सुमेरुपर्वत तथा अरण्योंमें चले गये। असुरोंने तुरंत देव-प्रतिमाएँ जलमें फेंककर मन्दिरोंमें असुरराजकी मूर्ति स्थापित कर दी। त्रैलोक्यमें प्रबल दैत्यराजके शासन-कालमें समस्त धार्मिक कृत्य स्थगित हो गये। असुर-शासनमें सर्वत्र आसुरी क्रियाकी ही प्रधानता हो गयी।

देवताओंद्वारा संकष्ट-व्रत तथा वर-प्राप्ति

चिन्तित देवगण सिन्धु-वधका उपाय करनेके लिये एकत्र हुए। सहस्राक्षने कहा—'पापपरायण सिन्धुसे त्राण पानेके लिये क्या किया जाय; आपलोग अपना-अपना मत व्यक्त करें।' ब्रह्मा बोले—'सर्वसमर्थ परमात्मा ही कल्याण करेंगे; अतएव हमलोग उन्हें ही प्रसन्न करें। वे ही सर्वात्मा प्रभु असुरका वध कर हम सबको पूर्व-पद प्रदान करेंगे।' वहाँ उपस्थित देवगुरु बृहस्पतिने कहा—'वे परम प्रभु स्वल्पपूजासे ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।[३] अतएव उन असुरसंहारक परमेश्वरकी हमलोग शीघ्र स्तुति-प्रार्थना करें।'

'हमलोग अपने पदकी प्राप्तिके लिये किस देवताकी स्तुति करें?' देवताओंके इस प्रश्नका उत्तर बृहस्पतिने इस प्रकार दिया—'जो प्रभु सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं, जो अनादि, बीजरूप, नित्य, ब्रह्ममय, ज्योतिःस्वरूप, शास्त्रों एवं मन-वाणी आदिसे सर्वथा अगोचर, निर्गुण, अनन्तरूपमय एवं एकरूप हैं और जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मनुष्यकी कामना-पूर्ति हो जाती है, वे परम प्रभु विनायक पूजा करनेसे ही संतुष्ट होकर दुःख-निवारण कर देते हैं। अतएव आपलोग अपनी सिद्धिके लिये उन्हींकी आराधना करें।'

बृहस्पतिने सुरसमुदायसे आगे कहा—'माघ मासका कृष्णपक्ष प्रारम्भ हो चुका है। इस पक्षकी मंगल-

---

१. ………………कालो हि दुरतिक्रमः। कालेन जायते सर्वं ह्रसते वर्धतेऽपि वा॥
तस्मात् कालं प्रतीक्षध्वं काल एनं ग्रसिष्यति।
(गणेशपु० २। ७७। २१-२२)

२. यहाँ एक विचारणीय प्रश्न है कि 'साम्राज्यवादी असुर ब्राह्मणोंका वर्चस्व कम करनेकी खटपट क्यों करते हैं?' ब्राह्मण ज्ञानसम्पन्न होनेके कारण अनेक प्रयत्नोंसे ऐसे दुष्ट राजाको गद्दीसे उतरवा देते हैं, जनतामें क्रान्तिके विचार फैलाते हैं और अत्याचार सहन करके चुप नहीं बैठते हैं; इसीलिये अत्याचारी सम्राट् ब्राह्मणोंको नहीं चाहता। इन्हीं नियमोंका अनुसरण करके सम्राट् सिन्धु ब्राह्मणोंको छलने लगा। —पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

३. स्वल्पया पूजया सद्यः प्रसन्नो जायते विभुः। (गणेशपु० २। ७८। ५)

वारयुक्त चतुर्थी तिथि उन विघ्नेश्वरको अत्यधिक प्रिय और विघ्नोंका निवारण करनेवाली है। अतएव आपलोग उन सिंहवाहन दशभुज विनायककी पूजा-प्रार्थना करें। वे करुणासिन्धु अवतरित होकर असुरका वध करेंगे। इससे धराका भार उतरेगा और आपलोगोंके पद भी पुनः प्राप्त हो जायँगे।'

देवगुरुके वचन सुन इन्द्र, वरुण, कुबेर, मधुसूदन, गुरु, मंगल, चन्द्रमा, यम, अग्नि, वायु आदि सभी देवता पञ्चामृत, गन्ध, पुष्प, शमी, दूर्वा, पल्लव, वन्यफल तथा अन्य नाना प्रकारके फल और मृत्तिका लेकर गण्डकी नदीके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने वृक्षोंको तोड़कर मण्डपका निर्माण किया। कदली-स्तम्भ एवं लताओंसे आच्छादित वह भव्य मण्डप अत्यन्त शीतल था।

देवताओंने स्नानादिसे निवृत्त होकर सिद्धि-बुद्धियुक्त सिंहारूढ़, दशायुधधारी दशभुज, गजमुख, किरीट-कुण्डलमण्डित एवं वस्त्रालंकारविभूषित विनायककी मूर्ति मण्डपमें विधिपूर्वक स्थापित की और अत्यन्त भक्तिपूर्वक पंचामृत, शुद्ध जल, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नाना प्रकारके नैवेद्य, विविध प्रकारके फल और मंगल-आरती आदिसे उनकी षोडशोपचार-पूजा की।

तदनन्तर देवगण विघ्नविनाशन प्रभुकी तुष्टिके लिये उनके मन्त्रका जप करने लगे। सूर्यास्तके समय उन्होंने संध्या की; फिर इस प्रकार उन परम प्रभुकी स्तुति-प्रार्थना की—

दीननाथ दयासिन्धो योगिहृत्पद्मसंस्थित।
अनादिमध्यरहितस्वरूपाय नमो नमः॥
जगद्भास चिदाभास ज्ञानगम्य नमो नमः।
मुनिमानसविष्टाय नमो दैत्यविघातिने॥
त्रिलोकेश गुणातीत गुणक्षोभ नमो नमः।
त्रैलोक्यपालन विभो विश्वव्यापिन् नमो नमः॥
मायातीताय भक्तानां कामपूराय ते नमः।
सोमसूर्याग्निनेत्राय नमो विश्वम्भराय ते॥
अमेयशक्तये तुभ्यं नमस्ते चन्द्रमौलये।
चन्द्रगौराय शुद्धाय शुद्धज्ञानकृते नमः॥

(गणेशपु० २। ७८। २३—२७)

'हे दीननाथ! हे दयासिन्धो! हे योगियोंके हृत्कमलपर निवास करनेवाले प्रभो! आदि, मध्य और अन्तसे रहित स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। जगत्प्रकाशक! चिदाभास और ज्ञानगम्य प्रभु आपको नमस्कार है। मुनियोंके मनमें प्रविष्ट, दैत्योंका विनाश करनेवाले देव! आपको नमस्कार है। हे त्रैलोक्यके स्वामी! हे गुणातीत! हे गुण-क्षोभक! आपको नमस्कार है। हे त्रिभुवनपालक! हे विश्वव्यापिन् विभो! आपको नमस्कार है। हे मायातीत! हे भक्तोंकी कामनापूर्ति करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। चन्द्र, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं और जो विश्वका भरण करनेवाले हैं, उन्हें नमस्कार है। अमित-शक्तिसम्पन्न आप चन्द्रमौलिको नमस्कार है। चन्द्रोपम गौर, शुद्ध स्वरूप एवं शुद्ध ज्ञानप्रदाता आपको नमस्कार है।'

देवगण भक्तिपूर्वक स्तवन कर ही रहे थे कि उनके समक्ष एक दिव्यतम तेज प्रकट हुआ। उस तेजके प्रभावसे सुरोंकी आँखें चौंधिया गयीं। वे अत्यन्त विस्मित हुए ही थे कि उनके सम्मुख सौम्य तेजयुक्त करुणामय सिंहवाहन विनायक प्रकट हो गये। वे अद्भुत वस्त्राभूषणोंसे विभूषित थे। देवताओंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे—'गुरुके कथनानुसार हम जिस मन-वाणीसे अगोचर प्रभुकी पूजा कर प्रार्थना कर रहे थे, उन दयामय विनायकने प्रत्यक्ष दर्शन देकर हमें कृतार्थ कर दिया। हम निश्चय ही सौभाग्यशाली हैं।'

परम प्रभु विनायक बोले—''देवताओ! तुमलोगोंके संकष्टी-व्रतसे मैं संतुष्ट हुआ। तुम्हारा स्तवन 'संकष्टहर' नामसे प्रसिद्ध होगा। जो पवित्र होकर प्रतिदिन इसका पाठ करेंगे, वे निर्विघ्न सांसारिक सुखोंका उपभोग करते हुए अन्त-समयमें मोक्ष प्राप्त कर लेंगे।''

देवदेव विनायकने देवताओंसे आगे कहा—''जिस प्रकार मैंने महामुनि कश्यपकी परम साध्वी पत्नी अदितिके गर्भसे जन्म लिया था, उसी प्रकार पुनः धराधामपर अवतरित होकर सिन्धुदैत्यका वध और तुम सबका अपना-अपना पद प्रदान करूँगा। इस अवतारमें मेरा नाम 'मयूरेश्वर' प्रसिद्ध होगा।''

इतना कहकर परम प्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये। देवगण आनन्दमग्न थे।

मयूरेश्वर—शिवप्रियाके अंकमें

'प्रबलतम सिन्धुने देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली।' यह संवाद सुनते ही भूतभावन भगवान् शंकर

अपनी सहधर्मिणी पार्वती और सात करोड़ गणोंके साथ त्रिसंध्या-क्षेत्रमें चले गये। वहाँ भयाक्रान्त गौतमादि ऋषिगण अपने यज्ञादि कर्म त्यागकर निवास कर रहे थे। अत्यन्त खिन्न ऋषियोंने भुजगेन्द्रहार शिवका दर्शन किया तो अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने भक्तिपूर्वक त्रिपुरारिकी पूजा एवं स्तुति की। फिर उन्होंने सघन फलद वृक्षोंके मध्य एक निर्मल जलपूरित सरोवरके तटपर उनके लिये परम मनोहर, सुखद आश्रमका निर्माण किया और कहा—'सर्वसमर्थ करुणामय आशुतोष! आप यहाँ निवासकर हमें सेवाका अवसर प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करें।'

देवदेव महादेव गंगा, गौरी और गणोंके साथ वहाँ रहने लगे।* चराचरपति त्रिनयनकी उपस्थितिमें गौतमादि ऋषिगण निश्चिन्त होकर तप करने लगे। गंगा और गौरीकी सहायतासे चन्द्रमौलि भी तपश्चरण-निरत हुए।

'प्रभो! आप तो स्वयं सृष्टिके पालन एवं संहारकर्ता तथा अनन्तानन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं; फिर आप किसे प्रसन्न करनेके लिये तप करते हैं?' शिवप्रियाने एक दिन अवसर देखकर अपने प्राणपतिसे प्रश्न किया।

''निष्पापे! मैं उन अनन्त महाप्रभुकी प्रसन्नताके लिये तप करता हूँ, जिनकी शक्ति, गुण और कर्म, सभी अनन्त हैं। अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड उनके प्रत्येक रोममें निवास करते हैं। वे परम प्रभु समस्त गुणोंके ईश्वर होनेके कारण 'गुणेश' कहे जाते हैं। मैं उन्हीं गुणेशका निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ''। शूलपाणिने उत्तर दिया।

'प्रभो! आप कृपापूर्वक यह बतानेका कष्ट करें कि वे प्रभु मुझपर कैसे प्रसन्न होंगे? मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन किस प्रकार हो सकेगा?' गौरीने जिज्ञासा की।

'निष्ठापूर्वक आराधना एवं तपश्चरणके बिना उनका दर्शन कैसे हो सकेगा?'—कहते हुए भगवान् शम्भुने शिवाको गणेशके एकाक्षरी मन्त्र (गं)-का उपदेश दिया और फिर तप करनेकी विधि बताकर बोले—'इस प्रकार बारह वर्ष तपश्चरण करनेपर निश्चय ही तुम्हें देवदेव गुणेशका साक्षात्कार हो जायगा।'

गौरीने प्रसन्नमनसे अपने जीवन-धन शूलपाणिके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनकी आज्ञा प्राप्तकर तपश्चरणार्थ जीर्णापुरसे उत्तर मनोहर लेखनाद्रिपर चली गयीं।

वहाँ एक रमणीय स्थानपर भगवती पार्वती पद्मासन लगाकर बैठ गयीं और फिर गणेशका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगीं। वे जल, फल, मूल, कन्द और पर्ण तो लेती ही नहीं थीं, वायुका भी आहार नहीं करती थीं। इस प्रकार गौरी शुष्ककाष्ठ-तुल्य हो बारह वर्षतक कठोर तप करती रहीं। गुणवल्लभ गुणेश प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हुए।

वे मनोहर किरीट और कुण्डल धारण किये थे। उन दशभुज प्रभुके मस्तकपर चन्द्रमा सुशोभित था। उनके गलेमें मोतियोंकी माला अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उन्होंने अक्षमाला, कमल और कस्तूरी-तिलक धारण कर रखे थे। उनके मध्यभागमें नारायणमुख, दक्षिणभागमें शिवमुख एवं वामभागमें ब्रह्ममुखके दर्शन होते थे। कुन्द और कर्पूर-तुल्य गौर प्रभु शेषनागपर पद्मासन लगाये बैठे थे। उन्होंने परम तपस्विनी शिव-प्रियासे कहा—'जगदीश्वरी! मैं तुम्हारे अद्भुत तपसे अतिशय प्रसन्न हूँ। तुम अभीष्ट वर माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है।'

त्रिमूर्ति गुणेशके दर्शन कर उमाने अत्यन्त प्रसन्न हो उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर वे बोलीं—'आपके दर्शनसे मेरा तप सफल हुआ। आपकी तुष्टिके अतिरिक्त मुझे अन्य कुछ भी अभीष्ट नहीं; तथापि आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं वरकी याचना करती हूँ कि आप मेरे पुत्ररूपमें प्रकट हों, जिससे मुझे निरन्तर आपके दर्शन, सेवन और पूजनका फल प्राप्त होता रहे।'

'निश्चय ही मैं आपके पुत्ररूपमें प्रकट होकर आपकी तथा जगत्‌की कामना पूर्ण करूँगा।' इतना कहकर देवदेव गणेश अन्तर्धान हो गये।

'क्या मैंने क्षणभर अत्यन्त सुखद स्वप्न देखा है?' त्रिभुवनपति गणेशके अद्भुत मनोरम दर्शनसे वंचित पार्वती व्याकुल हो गयीं। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण कराया। उसमें चार द्वार थे। उस

* तत्रावसन्महादेवो गङ्गागौरीगणैर्युतः। (गणेशपु० २। ७९। १६)

मन्दिरमें उन्होंने गणेशकी सुन्दरतम प्रतिमा स्थापित कर उनकी पूजा की। प्रतिमाका नामकरण किया—'गिरिजात्मज।'

'यह पवित्र स्थल सिद्धिक्षेत्रके नामसे प्रख्यात होगा और यहाँ अनुष्ठान करनेसे निस्संदेह सिद्धि प्राप्त होगी।' सर्वेश्वरीने कहा—और फिर वे गणेशकी पुनः पूजा, प्रदक्षिणा और प्रणाम कर अपने प्राणधन शिवके समीप लौट आयीं।

प्राणप्रियाके वचन सुन प्रोत्फुल्लनयन शिवने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'देवि! तुमने जिनका दर्शन किया है, वे गुणेश तुम्हारे यहाँ अवतरित होंगे। वे महादैत्यका वध कर पृथ्वीका भार उतारेंगे और इन्द्रादि लोकपालोंको उनका अधिकार प्रदान कर देंगे।'[1]

भगवान् शंकर तो प्रसन्न थे ही, जगज्जननी शिवा भी अत्यन्त आह्लादित हुईं। 'शिवप्रिया भगवती पार्वतीकी कोखसे धर्माभ्युत्थानार्थ अनन्त ब्रह्माण्डपति साक्षात् गणेश अवतरित होंगे।' यह समाचार तुरंत ऋषि-मुनियोंके सहस्रों आश्रमोंमें पहुँच गया। देवता, ऋषि एवं ब्राह्मण प्रभृति सद्धर्मपरायण नर-नारी अत्यन्त प्रसन्न होकर देवदेव गणेशकी पूजा-प्रार्थना करते हुए निरन्तर उनके नामका जप करने लगे और यही क्रम भगवती पार्वतीका भी था। उनके नेत्रोंमें निरन्तर गणेशकी दिव्य मंजुल मूर्ति नाचती रहती थी। इस प्रकार गणेशके ध्यान एवं उनके आराधनमें कुछ समय व्यतीत हुआ।

भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी आयी। उसमें चन्द्रवार, स्वाती-नक्षत्र एवं सिंहलग्नका योग। पाँच शुभग्रह एकत्र थे। महिमामयी देवी पार्वतीने गणेशकी षोडशोपचारसे पूजा की। वे भक्तिपूर्वक प्रार्थना कर ही रही थीं कि उनके सम्मुख परम तेजस्वी, असंख्य मुख, असंख्य नेत्र, असंख्य कर्ण, असंख्य नासिका और असंख्य हस्तपदयुक्त महामहिम सच्चिदानन्दघन प्रकट हुए।

'शुभे! आपने जिसके लिये कठोर तप किया था और जिसकी निरन्तर आराधना कर रही हैं, मैं वही गणेश आपके घर अवतरित हुआ हूँ।'

परम प्रभुकी अमृतमयी वाणीसे आप्यायित होकर महाभाग्यशालिनी गौरीने निवेदन किया—'प्रभो! आप अपने इस विराट् रूपको त्यागकर मुझे पुत्रका सुख प्रदान करें।'

पार्वतीके सम्मुख स्फटिकमणि-तुल्य षड्भुज त्रिनयन शिशु क्रीड़ा करने लगा। उसकी नासिका सुन्दर थी। उसके मुखारविन्दकी शोभा अवर्णनीय थी और उसका वक्षःस्थल विशाल था। उसके चरणकमलोंमें ध्वज, अंकुश और ऊर्ध्वरेखायुक्त कमल आदि परम शुभ चिह्न थे। उसका मंगल-वपु कोटि-कोटि शशिके तुल्य था।

पार्वतीनन्दनके प्रथम शब्दसे ही प्रकृति मनोरम हो गयी। शुष्क वृक्ष हरित-पत्रयुक्त हो गये। दुन्दुभि बज उठी। आकाशसे सुमन-वृष्टि होने लगी। ऋषियोंके आश्रमोंमें हर्षकी लहर दौड़ गयी।

उधर गणोंसे संवाद पाकर प्रसन्न शिव पार्वतीके समीप पहुँचे। वे स्फटिक-सदृश, कुन्दधवल, कंजलोचन बालकका अनिर्वचनीय सौन्दर्य देखकर चकित हो गये। कुछ क्षण बाद उन्होंने गिरिजासे कहा—'यह बालक नहीं, यह तो अनादि-सिद्ध, जरा-जन्मशून्य, लीलापूर्वक शरीर धारण करनेवाला, स्वप्रकाश, गुणातीत, शुद्धसत्त्वस्वरूप, समस्त प्राणियोंका स्वामी, अखिल भुवनपति, मुनियोंका ध्येय, सर्वाधार, सर्वभूतमय और सब कुछ प्रदान करनेवाला परमात्मा है।'

पार्वतीवल्लभने शिशुको अंकमें ले लिया और उसे आशीर्वाद प्रदान करते हुए पार्वतीकी गोदमें देकर पुनः उन्होंने कहा—'देवि! तुमने कठोर तपसे जिस प्रभुका साक्षात्कार किया था, वे ही गुणातीत परमात्मा गणेश तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं।'[2]

कैलासपतिने बालकका सविधि जातकर्मादि संस्कार करवाया। उसके निमित्त अनेक प्रकारके दान दिये। माता पार्वतीने शिशुके मुखमें स्तनाग्र लगा दिया।

---

१. साक्षाद्दृष्टो गुणेशस्ते गृहे सोऽवतरिष्यति ॥
हनिष्यति महादैत्यं भूभारं च हरिष्यति । इन्द्रादिलोकपालानां स्वपदानि प्रदास्यति ॥
(गणेशपु० २ । ८० । ३१-३२)

२. परमात्मा गुणातीतः पुत्रतां ते समागतः । परानुष्ठानतो देवि साक्षाद्दृष्टो विभुस्त्वया ॥
(गणेशपु० २ । ८२ । ८)

अनादिसिद्ध बालक जगज्जननीके पवित्रतम अंकमें सुखपूर्वक लेटकर दुग्धपान करने लगा।

ज्योतिषियोंने बालकके जन्म-कालके अनुसार अद्भुत फल बतलाया—'यह अत्यन्त पराक्रमी बालक अपने भक्तों एवं सम्पूर्ण जगत्को सुख प्रदान करनेवाला होगा।'

भगवान् शंकर, माता पार्वती एवं शिवगणोंमें ही प्रसन्नता नहीं थी, ऋषियों, ऋषि-पत्नियों एवं उनके बालकोंके मनमें आनन्दकी लहर दौड़ रही थी। सम्पूर्ण दण्डकारण्यमें सुगन्धित पवनके साथ जैसे मदमत्त आनन्द डोल रहा था—उन्मुक्त नर्तन कर रहा था।

पार्वतीके मंगलमय दिव्य पुत्र-जन्मके अवसरपर दस दिनोंतक शिवके आश्रममें ही नहीं, समस्त ऋषियोंके यहाँ मंगल-महोत्सव मनाया गया। सर्वत्र विनायककी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा-स्तुति हुई और निरन्तर नाम-जप होता रहा। शिव और शिवा प्रतिदिन सहस्रों ब्राह्मणोंको भोजन कराते और उन्हें विविध प्रकारके दान देते रहे।

ग्यारहवें दिन समस्त गणक और ऋषिसमुदाय एकत्र हुआ। बालकका नामकरण हुआ—''यह बालक सर्वेश्वर एवं समस्त गुणोंका आगार है। यह समस्त विघ्नोंका हरण करनेवाला, सर्वारम्भमें प्रथम पूज्य होगा, इस कारण इसका नाम 'गुणेश' होना चाहिये।''

शम्भुने सर्वविधि सत्कार कर सबको संतुष्ट किया। ऋषिवृन्द बालकको शुभाशिष् प्रदान करते हुए प्रसन्न मनसे अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए।

चिन्तित सिन्धु

गुप्तचरोंने सिन्धुके समीप पहुँचकर निवेदन किया—'दैत्यराज! दण्डकारण्यके त्रिसंध्या-क्षेत्रमें शिव अपने कोटि-कोटि गणोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ शिवप्रिया पार्वतीने कठोर तपके द्वारा एक अलौकिक शक्तिशाली पुत्र प्रसव किया है। सहस्रों ऋषियोंका विश्वास है कि वह बालक असुरोंका संहार करनेमें समर्थ होगा। शिवगणों और ऋषियोंका आत्मबल अत्यधिक बढ़ गया है। वे बालककी रक्षामें प्राणपणसे तत्पर हैं।'

उसी समय आकाशवाणी हुई—'असुरराज! तेरा वध करनेवालेने जन्म ले लिया है। तू सावधान हो जा।'

'यह क्रूर वचन कौन बोल रहा है?' कहते हुए सिन्धु मूर्च्छित हो गया। कुछ देर बाद सचेत होकर उसने कहा—'सामान्य मशक विशाल गजका वध कैसे कर सकता है? मैंने करोड़ों देवताओंको क्षणार्द्धमें ही पराजित कर विष्णुको बंदी बना लिया है; यह क्षुद्र बालक तो सर्वथा नगण्य है।'

किंतु सिन्धु मन-ही-मन भयाक्रान्त हो गया था। उसके वीर असुरोंने कहा—'असुरराज! आप अमरणवरप्राप्त सर्वथा अजेय हैं। आपकी मृत्यु कैसे हो सकती है? आप हमें आज्ञा प्रदान करें। हम उक्त आश्रममें जाकर अवसर देखते ही बालकको यम-सदन भेज देंगे।'

सिन्धुकी चिन्ता कम हुई। उसने असुरोंकी प्रशंसा कर उन्हें पुरस्कृत किया। फिर उसने शिवा-पुत्रका संहार कर देनेके लिये वीराग्रणी असुर गुप्तचरोंको आज्ञा दी। सिन्धुके गुप्तचर मुनियोंके वेषमें त्रिसंध्या-क्षेत्रमें यत्र-तत्र निवास कर अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे।

हिमगिरिका आगमन और उनकी सम्मति

बालक गुणेश उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। दौहित्र-जन्मका संवाद प्राप्तकर प्रसन्नमन हिमगिरि शिवके आश्रम पहुँचे। उन्होंने बालकको गोदमें लेकर उसे बहुमूल्य रत्नाभरण आदि उपहार दिये और बालकका नाम रखा—'हेरम्ब।' उसके लक्षणोंको देखकर उन्होंने अपनी प्राणप्रिया पुत्रीको समझाया—'बेटी! यह असाधारण बालक सर्वसमर्थ है। यह निश्चय ही असुरोंका विनाश करके देव-जगत्का हितसाधन करेगा; धरणीका बोझ हलका करेगा; किंतु इसपर कुटिलतम असुरोंकी क्रूर दृष्टि है। खूब सावधानीसे पालन करते हुए इसकी सुरक्षाका ध्यान रखना।'

हिमगिरि शिव और पार्वतीको आशीर्वाद देते हुए उनकी अनुमतिसे प्रसन्नतापूर्वक चले गये।

गुणेशका मुक्ति-वितरण

एक दिनकी बात है। समस्त ऋषियोंके अन्यतम प्रीतिभाजन हेरम्ब बाहर क्रीड़ा कर रहे थे कि सहसा गृध्ररूपधारी एक भयानक असुरने उन्हें अपनी चोंचमें पकड़ लिया और आकाशमें अत्यन्त ऊँचे उड़ चला। जब पार्वतीने पुत्रको नहीं देखा तो वे व्याकुल होकर उसे इधर-उधर ढूँढ़ने लगीं।

प्राणप्रिय हेरम्बको कहीं न देखकर पार्वती अत्यन्त दुःखी थीं और जब उन्होंने आकाशमें विशाल गृध्रके मुखमें अपने बालकको देखा तो वे सिर धुन-धुनकर करुण-विलाप करने लगीं।

सर्वात्मा हेरम्बने माताकी व्याकुलता देखकर मुष्टिप्रहारमात्रसे ही गृध्रासुरका वध कर दिया। चीत्कार करता हुआ विशाल असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके अंग-प्रत्यंग क्षत-विक्षत हो गये। हेरम्ब सर्वथा सुरक्षित थे। उन्हें खरोंचतक नहीं लगी थी।

माता पार्वतीने दौड़कर बच्चेको उठा लिया और देवताओंको मनाती हुई उसे दुग्धपान कराने लगीं।

* * *

संध्याकाल था। माता पार्वती हेरम्बको पालनेमें लिटाकर लोरी सुना रही थीं। उसी समय क्षेम और कुशल नामक दो महाभयानक असुर पार्वतीके आश्रममें प्रवेश कर गये। उन्होंने बालकको मारनेका प्रयत्न किया तो पार्वती चिल्ला उठीं; किंतु तबतक बालकके पदाघातसे ही उन असुरोंका हृदय विदीर्ण हो गया। वे रक्त-वमन करते हुए भागे, किंतु कुछ ही दूर जाकर गिर पड़े। फिर उठ नहीं सके। गणेशने उन्हें मोक्ष प्रदान किया।

* * *

एक दिन माता पार्वती सखियोंके साथ मन्दिरमें पूजा करने गयीं। हेरम्ब मन्दिरके बाहर क्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय क्रूर नामक महाबलवान् असुर ऋषिपुत्रके वेषमें आकर उनके साथ खेलने लगा। वह हेरम्बको मार डालनेके लिये कभी उनके केश पकड़कर धरतीपर पटकना चाहता तो कभी गला दबानेका प्रयत्न करता। सर्वज्ञ हेरम्ब उसका कण्ठ पकड़कर दबाने लगे।

'अरे! मुनिपुत्र मरा तो पाप लगेगा।' माता पार्वतीकी दृष्टि पड़ी तो वे दौड़ीं। तबतक असुर मुक्त हो चुका था। उसके नेत्र बाहर निकल आये थे। असुरकी विशाल मृतदेह देखकर काँपती हुई पार्वतीने बालकको अंकमें उठा लिया।

* * *

गौतमादि ऋषिगण, शिवगण, ऋषि-पत्नियाँ और पार्वतीकी सहचरियोंके साथ मयूरेशके उपवेशन-संस्कारका आयोजन किया गया था। गणेश-पूजन और पुण्याहवाचन हुआ। मयूरेशको दिव्य वस्त्र और अलंकार पहनाये गये थे। देवताओंने विविध प्रकारके रत्न प्रदान कर मयूरेशकी पूजा की। देवताओं और ऋषियोंके साथ ब्राह्मणोंने उन्हें आशीर्वाद दिया।

इसी बीच सिन्धु-दैत्यका कुटिलतम प्रचण्ड असुर व्योम आश्रमके सम्मुख वृक्षपर बैठकर उसे हिलाने लगा। प्रबल झंझावातमें किसीको कुछ सूझ नहीं रहा था; पर जब उपद्रव शान्त हुआ तो पार्वतीसहित सबने रक्तपंकमें पड़े हुए महान् व्योमासुरका शव देखा। व्याकुल पार्वती सिद्धिदाताको अंकमें लेकर उनके मस्तकपर प्रेमपूर्वक हाथ फेरती हुई स्तनपान कराने लगीं।

मरीचिके वचनोंका स्मरण कर देवदेव महादेवने कहा—"जिसकी रक्षा ईश्वर करता है, उसे मारनेका प्रयत्न करनेवाला दीपकपर दौड़े पतंगके तुल्य स्वतः जल मरता है।"

तदनन्तर देवता, मुनि और मुनि-पत्नियाँ अपने आश्रमको गयीं। कुछ लोगोंने बालकके प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुए शिव-प्रियासे कहा—'माता! तू धन्य है! इस बालककी असुरोंसे रक्षा करती रहना। निश्चय ही दुष्टोंका नाश होता है; साधुजनोंकी हानि नहीं होती।'

* * *

व्योमासुरके एक अत्यन्त दुष्टा, विकटानना भगिनी थी। उसके केश, नासिका, ओष्ठ, दाँत, मुख और स्तनादि सभी भयानक थे। वह क्षुधार्त होनेपर महाबलवानोंको भी भक्षण कर जाती थी। उस भयावनी व्योमासुर-भगिनीका नाम था—'शतमाहिषा।'

शतमाहिषा अपने भाईकी मृत्युसे अत्यन्त दुःखी हुई। वह क्रोधसे काँपने लगी। उस मायाविनीने षोडशवर्षीया अनुपम लावण्यवती स्त्रीका वेष बनाया। वह सीधे पार्वतीके पास पहुँचकर उनके चरणोंपर गिर पड़ी और उनकी प्रशंसा करने लगी।

परम सरला जननी पार्वतीने उसे भोजनादिसे संतुष्ट किया और रात्रिमें अपने ही समीप पर्यंकपर सुलाया। सर्वज्ञ हेरम्ब मायाविनी राक्षसीकी प्रत्येक गति-विधि जानते थे। शतमाहिषाने उन्हें स्पर्श किया ही

था कि केवल पाँच मासके हेरम्बने अपने नन्हें हाथोंसे उसकी नासिका और कान पकड़ लिये।

राक्षसीके लिये बालक पर्वत-तुल्य और उसके सुकोमल हाथ वज्र-सदृश प्रतीत हुए। वह छटपटाती हुई चिल्लाने लगी। शतमाहिषा बालकको जितना छुड़ानेका प्रयत्न करती, बालकके वज्रहस्त उसे और अधिक जकड़ते जा रहे थे।

पार्वती और उनकी सखियाँ दौड़ीं। राक्षसीकी नासिका और कान बालकसे छुड़ानेका उनका प्रयत्न भी विफल रहा। अन्ततः चीत्कार करती हुई राक्षसी उछलकर धरतीपर गिर पड़ी। सहचरियोंने मृत देहकी ओर ध्यानपूर्वक देखा तो घबरा गयीं। निश्चय ही यह मायाविनी भयानक राक्षसी गुणेशका प्राण हरण करना चाहती थी।

शिवगण उक्त राक्षसीका शव ले जाकर दूर फेंक आये।

इस प्रकार असुरराज सिन्धुके भेजे हुए कमठ, तल्प, दुन्दुभि, अजगर, शलभ, नूपुर, कूट, मत्स्य, शैल, कर्दम, खड्ग, छाय और चंचल आदि अनेक बलशाली तथा मायावी असुर मयूरेशको मारने त्रिसंध्या-क्षेत्र पहुँचे। उन्होंने एक-से-एक माया रची और बालकको मार डालनेका भरपूर प्रयत्न किया; किंतु मायापति मयूरेशके सम्मुख उनकी एक न चली। उनका भौतिक कलेवर तो नष्ट हो गया, पर वे परमोदार मुक्तिदाता प्रभु मयूरेशके कर-कमलोंका स्पर्श पाकर जन्म-जरा-मृत्युसे सदाके लिये मुक्त हो गये।

मयूरेशने पाँचवें शरच्चन्द्रका दर्शन किया।

मयूरेशकी बाल-लीला

मयूरेश ऋषि-पुत्रोंके साथ विविध प्रकारकी बाल-क्रीड़ाएँ करते। उन भाग्यवान् बालकोंके साथ वे नाचते, गाते और अनेक प्रकारके खेल खेलते थे।

एक दिनकी बात है, गुणेश शिशुओंके साथ क्रीड़ा करते हुए दूर निकल गये। निश्चिन्त शिशु क्रीड़ामें संलग्न थे। मध्याह्न हो गया। उन्हें भूख लगी। ईशनन्दन सोचने लगे—'आहार कैसे प्राप्त हो?'

सिद्धिदाता समीपस्थ महर्षि गौतमकी कुटीपर पहुँचे। महर्षि ध्यानस्थ थे और ऋषिपत्नी भोजन बना रही थीं। वे कुछ ही देरके लिये बाहर निकलीं कि चपल चन्द्रभाल पाकशालामें प्रविष्ट हो गये और प्रस्तुत अन्न-पात्र लेकर शीघ्रतासे बाहर निकल आये। उक्त आहार उन्होंने शिशुओंमें वितरण कर कहा—'खेलमें हमलोगोंको देर हो गयी। अब यह प्रसाद पाकर खेला जायगा।' शेषांश हेरम्बने स्वयं भोग लगाया।

'बलिवैश्वादि हुआ नहीं और भोजन-पात्रका पता नहीं।' सहधर्मिणीकी चिन्ता जानकर महर्षि उठे। पाकशालामें गये, सचमुच वहाँ भोजन नहीं था। चकित महर्षिने आश्रमके बाहर जाकर देखा तो उनकी पत्नीकी बनायी रसोई बालमण्डली आनन्दपूर्वक भोग लगा रही है।

महर्षि गौतम कुपित हुए। उन्होंने बुद्धीशके समीप जाकर कहा—'शिवा और शिवका पुत्र होकर तू ऐसी अनीति कैसे कर रहा है? हम तुम्हें परब्रह्मस्वरूप परात्पर देव समझते थे; तुम्हें शिशुओंके साथ इस प्रकारके कार्य करनेमें लज्जा नहीं आ रही है?'

गिरिजानन्दनकी भीत मुखाकृति देखकर भी महर्षि गौतमने उसका हाथ पकड़ लिया। वे रिक्त अन्न-पात्रके साथ मयूरेशका हाथ पकड़े माता पार्वतीके पास पहुँचे। उन्होंने हेरम्बका हाथ माता पार्वतीके हस्त-कमलमें देते हुए उन्हें रिक्त अन्न-पात्र दिखाकर कहा—'माता! तुम्हारा पुत्र इसी प्रकार सदा उपद्रव करता है। आज मैंने तुम्हें प्रत्यक्ष दिखा दिया। मैं क्या करूँ? तुम्हीं बताओ? कहो तो मैं दण्डकारण्य त्यागकर अन्यत्र चला जाऊँ?'

अत्यन्त क्षुब्ध महर्षि गौतमके उपालम्भसे जगज्जननी कुपित हो गयीं। उनके नेत्रोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने विनम्रतापूर्वक महर्षिसे कहा—'मुनिवर! जन्मसे ही इसने मुझे त्रस्त कर रखा है। इसने धरतीपर पैर रखा और उधर क्रूर असुरोंने उपद्रव प्रारम्भ कर दिये। इसकी निरन्तर चिन्तासे मेरा चित्त कभी स्थिर नहीं हुआ। अब इसने तपस्वियोंका भोजन चुराना भी प्रारम्भ कर दिया। यह बड़ा दुष्ट है। किन्तु मुनिनाथ! यह मेरा पुत्र है, इस कारण आप कृपापूर्वक इसे कोई शाप मत दे दीजियेगा।'

इतना कहकर सर्वाभयदायिनी माता दृढ़ रज्जुसे हेरम्बका हाथ-पैर बाँधने लगीं।

'बालकको बाँधो मत! इसे मत बाँधो।' महर्षि

कहते ही रहे, पर जगदीश्वरीने निखिल ब्रह्माण्डनायकको कसकर बाँध दिया और फिर उन्हें एक घरमें ले जाकर बाहरसे साँकल लगा दी।

महर्षि चुपचाप अपने आश्रमपर चले गये।

स्नेहमयी जननी उमा क्रोधावेशमें बाहर निकलीं तो उन्हें भान हुआ कि गुणेश मेरे वाम कटिपर अंकमें बैठा हुआ है। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तो अपना भ्रम समझा, किंतु आँगनमें दृष्टि पड़ी तो देखा मयूरेश वहाँ खेल रहा है।

'मैंने तो उसका हाथ-पैर बाँधकर घरमें बंद कर दिया था?' चकित-भ्रमित माताने किवाड़ खोलकर देखा तो शिशुके हाथ-पैर बँधे थे। उसके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल रहा था और वह अपनी दयामयी जननीकी ओर करुण दृष्टिसे निहार रहा था।

वात्सल्यमयी जननी यह दृश्य सह नहीं सकीं। वे अधीर हो गयीं। अपने प्राणप्रिय शिशुको गोदमें लेनेके लिये व्याकुल हुईं। उनके नेत्र भर आये, पर उन्होंने मुँह फेरकर द्वार बंद कर दिया। चपल बालकको डराना जो था।

माता समीपस्थ ऋषि-पत्नीके यहाँ चली गयीं। वे बात तो कर रही थीं मुनिपत्नीसे, पर उनके प्राण हेरम्बमें समाये थे। उनके नेत्रोंके सम्मुख जगदुद्धारक अलौकिक पुत्रकी ही मूर्ति थी। 'मैंने कितने कठोर तपसे इस नवनीतोपम बालकको प्राप्त किया है। देवताओं, ऋषियों और गणकोंने ही नहीं, स्वयं सत्यमूर्ति त्रिनयनने कहा है कि ये विश्वत्राता अखिलेश्वर हैं।'

माताके नेत्र बरस पड़े। वे वहाँ और नहीं बैठ सकीं। जगदीश्वरी अपने सुकोमल मयूरेशके बन्धन खोल उसे सहलाती हुई अंकमें लिटाकर स्तन-पान करानेके लिये अत्यधिक आतुर हो उठीं और वे निजाश्रमके लिये शीघ्रतासे चलीं।

मार्गमें मुनि-पुत्र खेल रहे थे। जननीने देखा, उनके मध्य मयूरेश भी क्रीड़ा कर रहा है। मैंने हेरम्बको हाथ-पैर बाँधकर घरमें बंद कर दिया है'—स्नेहातिरेकमें स्मरण नहीं रहा। पुकार बैठीं—'आओ बेटा! स्तन-पान कर लो।'

'माता! यहाँ हेरम्ब कहाँ? तूने तो अपने पुत्रको बाँधकर घरमें बंद कर दिया है।'

बालकने उत्तर दिया तो माँने ध्यानपूर्वक देखा, सचमुच हेरम्ब नहीं था। वे द्रुतगतिसे अपने आश्रममें प्रविष्ट हुईं। द्वार खोला तो देखा, अबोध शिशु अनाथकी तरह रोते-रोते सो गया था। अपने शिशुकी यह स्थिति स्नेहमूर्ति पार्वती कैसे सह पातीं? वे सिसकने लगीं और उनके नेत्रोंसे अजस्र अश्रुप्रवाह चलने लगा।

माताने तुरंत शिशुका बन्धन खोलकर उसे अंकमें उठा लिया। रज्जु-बन्धनसे शिशुके हाथ-पैरमें लाल-लाल चिह्न बन गये थे। माता फूट पड़ीं। वे मन-ही-मन अपनी निर्दयतापर पश्चात्ताप करती हुई प्रेमपूर्वक बच्चेके हाथ-पैर सहलाने लगीं। उन्होंने उस निखिल सृष्टिपति शिशुके अधरोंसे अपने स्तनका स्पर्श कराया। हेरम्ब सर्वेश्वरीका अमृतमय दुग्ध पान करने लगे।

उधर जब महर्षि गौतमने अपने आश्रमपर पहुँचकर अर्चना प्रारम्भ की तो उन्हें सभी देवता गणेशके रूपमें दर्शन देने लगे। महामुनिने अत्यन्त विस्मित होकर पश्चात्ताप करते हुए अपनी सहधर्मिणीसे कहा—'मैं कैसा दुर्बुद्धि हूँ कि मैंने रिक्त अन्न-पात्र उमाको दिखाकर उपालम्भ दिया। उन्होंने परात्पर देवको डाँटा और उन्हें कठोर रज्जुसे बाँध दिया। जो परम प्रभु थोड़ेसे पत्र-पुष्पसे तृप्त हो जाते हैं, उन्होंने स्वयं अपनी शिशुमण्डलीसहित मेरा अन्न-पात्र लेकर भोजन किया; मेरा कितना बड़ा भाग्य है? पर मैं उनकी मायासे मोहित हो गया; पहले नहीं समझा। मुझ मतिभ्रष्टपर वे दयानिधान दया करें।'

पश्चात्ताप करती हुई अहल्या पुनः भोजन बनाने लगीं और महर्षि गौतम ध्यानमग्न हो गये।

* * *

वृकासुर-वध

मयूरेशने छठे वर्षमें पदार्पण किया। उनकी बालसुलभ मधुर-मनोहर क्रीड़ासे शिव-पार्वती, समस्त शिवगण, ऋषि-महर्षि, उनकी पत्नियाँ एवं शिशुगण—सभी आनन्दित होते। सभी हेरम्बको अतिशय प्यार करते।

एक दिनकी बात है। मयूरेश बालकोंके साथ क्रीड़ा करने चले गये थे। इसी बीच विश्वकर्मा शिव-सदन पहुँचे। उन्होंने माता पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम

करके उनकी स्तुति की। जगन्माताने उन्हें परम भक्तिका वर प्रदान किया।

फिर माता पार्वतीने उन्हें अजेय सिन्धुके उपद्रव, देवताओंकी पराजय, विष्णुका बंदी-जीवन व्यतीत करना आदि समाचार बताकर कहा कि 'हमलोग भी उसी उद्दण्ड असुरके भयसे यहाँ अरण्यमें निवास कर रहे हैं। बहुत दिनोंके बाद आपको देखकर प्रसन्नता हुई।'

उसी समय सर्वारुणावयव प्रसन्न-वदन तेजस्वी मयूरेश आ गये। उनके सुदृढ़ अलौकिक स्वरूपके दर्शन करके विश्वकर्मा मन-ही-मन मुदित हुए। उन्होंने विनायकके चरणोंमें प्रणामकर उनकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर उन्होंने कहा—'प्रभो ! आपके प्राकट्यका संवाद पाकर मैं आपके मंगलकारी दर्शन करने यहाँ आया हूँ ?'

गणेश बोले—'इतनी दूरसे तुम मेरा दर्शन करने तो आये हो, पर मुझे संतुष्ट करनेके लिये कौन-सा बहुमूल्य उपहार ले आये हो ?'

'सम्पूर्ण प्राणियोंकी इच्छापूर्ति करनेवाले, सच्चिदानन्दघन, चराचरपतिको भला मैं क्या उपहार दे सकता हूँ ?'—अत्यन्त दीनवाणीमें विश्वकर्माने उत्तर दिया।

'फिर भी तुम अपने सामर्थ्यानुसार मेरे लिये क्या उपहार ले आये हो ?' गणेशने फिर पूछा।

'प्रभो! आपके लिये मैं समस्त शत्रुओंका संहार करनेवाला तीक्ष्ण अंकुश, परशु, पाश और पद्म ले आया हूँ।' विश्वकर्माने शस्त्रास्त्र मयूरेशके सम्मुख रख दिये।

'अत्यन्त सुन्दर! नितान्त उपयोगी !!' मयूरेशने उन्हें उठाते हुए कहा—'इस समय असुर निरन्तर उपद्रव कर रहे हैं। देवगण त्रस्त हैं और श्रीहरि गण्डकीनगरसे बाहर नहीं जा सकते।'

विश्वकर्माने उनको उन अस्त्रोंके प्रयोग भी सिखा दिये। वे भगवान् शंकर, माता पार्वती और मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी आज्ञासे प्रस्थित हुए।

मयूरेशने शीघ्र ही उक्त शस्त्रोंके संचालनका अभ्यास कर लिया। अब वे प्रायः शस्त्रसज्ज होकर ही बाहर निकलते।

एक दिन वे बालकोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे कि उसी समय वृक नामक महाबलवान् और अत्यन्त दुष्ट असुर वहाँ आया। उस भयानक असुरको देखते ही मुनिपुत्र भागने लगे, किंतु मयूरेश सर्वथा निर्भीक भावसे खड़े रहे। वृकासुर अपने मुख्य लक्ष्य गुणेशपर झपटा ही था कि उन्होंने अपने तीक्ष्णतम अंकुशसे उसपर भयानक प्रहार किया। दैत्य चीत्कारके साथ रक्त-वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा और छटपटाता हुआ मृत्यु-मुखमें चला गया।

वृक-वधसे ऋषिवृन्द अत्यन्त प्रसन्न हुए और सभी गुणेशकी प्रशंसा करने लगे।

उपनयन

मयूरेशका सातवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। माता पार्वतीने अपने प्राणवल्लभ शिवको बालकके उपनयन-संस्कारकी प्रेरणा दी। भगवान् शंकरने गौतमादि ऋषियोंको सादर आमन्त्रित करके उनसे परामर्श किया। मयूरेशके यज्ञोपवीतकी तैयारी प्रारम्भ हुई।

समस्त देवता, अट्ठासी हजार ऋषि, यक्ष, किंनर और चारण आदि सभी सोल्लास त्रिसंध्या-क्षेत्रमें शिव-सदन पधारे। शम्भुने सबकी अभ्यर्थना की। सर्वत्र आनन्दोल्लास था। सुविस्तृत भव्य मण्डप निर्मित किया गया; वाद्य बजने लगे; मंगल-गीत गाये जाने लगे। मयूरेशका चौलकर्म हुआ। उन्हें चार ब्राह्मणोंके साथ भोजन कराया गया।

प्रातःकाल बटुने स्नान कर सर्वोत्तम वस्त्र धारण किये। मुनिगण मन्त्र-पाठ करने लगे। इसी समय कृतान्त और काल नामक दो भयानक असुर मदमत्त गजके रूपमें पहुँचकर उपद्रव करने लगे। शिवगणोंने उन्हें रोकना चाहा, पर गजबलके सम्मुख वे टिक नहीं सके। दोनों मत्त गज सर्वसंहार करते उपनयन-मण्डपके समीप पहुँचकर मण्डप-स्तम्भ आदि गिराने लगे। उन्हें देखकर देवता, ऋषि-पत्नियाँ एवं ऋषिकुमार जान बचाकर भागे।

सभी प्राण लेकर भाग रहे थे और दोनों मत्त गयन्द सर्वनाश करनेपर तुले थे। यह दृश्य देखकर वटु गुणेश उठे। उन्होंने अत्यन्त चपलतासे एक गजकी सूँड़ उमेठकर उसपर तीव्रतम मुष्टि-प्रहार किया; जैसे उसपर वज्रपात हो गया हो। हाथी चिग्घाड़ता हुआ

दूसरी ओर मुड़ा ही था कि दूसरे गजसे उलझ गया। मयूरेशने तुरंत दूसरे गजके गण्डस्थलपर मुष्टिप्रहार किया। उसके चीत्कारसे पृथ्वी, आकाश, देवता, ऋषि तथा स्त्री-बालक—सबके हृदय काँप उठे।

चपल गुणेश उन दोनों हाथियोंको उलझाकर उनपर प्रहार करते ही जा रहे थे; फलतः कुछ ही देरमें वे दोनों असुर छटपटाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। अब वे गुणेशके वज्र-तुल्य मुष्टि-प्रहार एवं कठोर पदाघातसे छटपटा भी न सके। उनका प्राणान्त हो गया। गुणेशने उनके अंग खण्ड-खण्डकर दूर फिंकवा दिये।

सबके प्राण लौटे। सबने परमपराक्रमी बालककी प्रशंसा की। उत्सव पुनः प्रारम्भ हुआ, बाजे बजने लगे, मंगल-गान गूँज उठा।

मयूरेशको मेखला, अजिन और यज्ञोपवीत दिये गये। उनसे सविधि हवन करवाकर उन्हें विधिपूर्वक सावित्री-मन्त्र प्रदान किया गया।

सर्वप्रथम माता पार्वतीने अपने पुत्र गुणेशको भिक्षा प्रदान की। भिक्षामें उन्होंने दो वस्त्र, भूषण, उत्तरीय, मोतियोंसहित रत्न और मोदक आदि भक्ष्य पदार्थ प्रदान किये। भगवान् शंकरने उन्हें त्रिशूल और चन्द्र देकर कहा—'शूलपाणि! भालचन्द्र!!' श्रीहरिने चक्र देकर उन्हें सम्बोधित किया—'शोचिष्केश!'

शचीपति इन्द्रने मयूरेशकी पूजा कर सर्वार्थप्रदायक चिन्तामणि उनके गलेमें पहनाकर उनका नामकरण किया—'चिन्तामणि'। ब्रह्मदेवने गुणेशकी पूजा कर उन्हें कमल प्रदान करते हुए कहा—'विधाता'। तदनन्तर समस्त देवताओंने मयूरेशकी पूजा की और उन्हें अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार नाम प्रदान किया।

इसके अनन्तर अदिति और कश्यपने उनकी पूजा की। परमप्रभु विनायकने उन्हें सिंहवाहन दशभुज विनायकके रूपमें दर्शन दिये। माता अदितिने विनयपूर्वक कहा—'बेटा! मैं तुम्हारे वियोगमें अत्यन्त कृश हो गयी हूँ। तू मुझे इतना दुःख क्यों दे रहा है?'

'माँ! सर्वान्तर्यामीसे कभी वियोग नहीं होता।' गुणेशने स्नेहस्निग्ध स्वरमें उत्तर दिया। तू विश्वास कर, मैं तो सदा तुम्हारे पास ही रहता हूँ; फिर दुःखका कोई कारण नहीं।'

समस्त देवता, ऋषि, यक्ष, किंनर और चारण आदि सबने मयूरेशकी वन्दना की और शिव-पार्वतीकी आज्ञा प्राप्तकर सब लोग प्रस्थित हुए। अदिति और कश्यप भी विनायककी पूजा कर प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमको चले गये।

मयूरेश! मयूरेश!! मयूरेश!!!

अत्यन्त प्रतिभाशाली गुणेशने वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। कुशाग्रबुद्धि गुणेश जब वेदका सस्वर गायन प्रारम्भ करते, तब देवता, ऋषि, हरिन, सिंह, व्याघ्र, भुजंग और गगनचर आदि भी गानमें तल्लीन हो जाते। उनके नेत्रोंसे अजस्र वारि-धारा प्रवाहित होने लगती। गुणेशका वेद-पाठ श्रवण करनेके लिये सहस्रों ऋषि-मुनि तत्पर रहते और प्रमथादि गणोंसहित शिवादि देवगण आनन्दमग्न हो जाते।

इसी प्रकार एक दिन गुणेशका चराचरको मुग्ध कर देनेवाला वेद-गान हो रहा था। प्राणिमात्र आनन्दसिन्धुमें निमज्जित था। उस अमृतमय वातावरणमें अत्यन्त क्षुब्धकर श्वापद-रूपमें नूतन नामक दैत्य कूद पड़ा। उसके कर्कश स्वरसे गिरिगुहाएँ विदीर्ण होने लगीं।

उस भयानक असुरके तीन मुख, चार सींग, पाँच नेत्र, चार कान, आठ पैर और दो पूँछें थीं। उक्त दैत्य गुणेशके सम्मुख नृत्य करने लगा। वह आकाशमें उड़ा और दूसरे ही क्षण पृथ्वीमें अदृश्य हो गया। इसी प्रकार वह क्षण-प्रतिक्षण दृश्य-अदृश्य होने लगा। उसकी अत्यन्त भयानक आकृति और ढंग देखकर सभी डरने लगे।

असुरारि गुणेश उठे और असुरके पीछे दौड़े। छल-कपटसे भरा दैत्य वनमें भागा। दैत्यारि भी उसके पीछे-पीछे दौड़ते गये। इस प्रकार वह गुणेशको गहन वनमें ले गया। वह जब मेघ-गर्जन करता, तब सिंह, व्याघ्र, गज, शूकर और वानर आदि पशु भू-लुण्ठित हो जाते थे।

गुणेशने उसे पकड़ना चाहा तो वह विकट असुर पृथ्वीको रौंदता हुआ आकाशमें उड़ गया। गुणेशके नेत्र अरुण हुए। कुपित होकर उन्होंने उसे लक्ष्य करते हुए अपना पाश फेंका। पृथ्वी काँप उठी और अन्तरिक्षमें मेघ बिखर गये। आकाशके नक्षत्र टूट-टूटकर गिरने लगे।

पाशके सम्मुख असुरकी माया नहीं चली। क्षणभरमें

ही पाशबद्ध महादैत्य गुणेशके समक्ष धरतीपर गिर पड़ा। असुरके विशाल हाथ-पैर टूट गये और उसका श्वास अवरुद्ध हो गया। वहाँ मयूरेशके पीछे दौड़कर एकत्र हुए मुनि-बालकोंके सम्मुख नेत्रोंके द्वारा उसका प्राण निकल गया। मुनि-पुत्रोंने उसके शवकी बड़ी दुर्दशा की।

वहाँ आम्र-कानन था। आम्रवृक्ष फलोंसे लदे थे। अत्यधिक फलोंके बोझसे उन वृक्षोंकी डालियाँ झुक गयी थीं। अधिक दौड़ने और देर हो जानेसे मुनि-पुत्रोंकी क्षुधा जाग्रत् हो गयी थी। वे मुनिपुत्र गुणेशकी अनुमतिसे फलोंसे लदे आम्रवृक्षोंसे आम्र-फल तोड़-तोड़कर खाने लगे। कुछ बालक फल खाते और कुछ विनोद करते हुए उसे दूर फेंक देते। एक मुनि-पुत्रका फेंका हुआ फल उस स्त्रीके मस्तकपर जोरसे लगा, जो बहुत दिनोंसे एक अण्डेकी रक्षा कर रही थी।

कुपित स्त्री दौड़ी। उसके क्रोधारुण नेत्र देखकर बालक सहम गये। उसने कठोर स्वरमें पूछा—'जिस बालकने इस श्वापदका वध कर मुझे आम्र-फलसे मारा है, वह कहाँ है?'

कुपित नारीको देखते ही गुणेश वृक्ष-कोटरमें छिप गये। वहाँ उन्होंने शशि-मण्डलतुल्य एक श्वेत अण्डा देखा। गुणेशने उसे अपने सशक्त हाथोंमें उठाया ही था कि वह अण्डा फूट गया।

उस अण्डेसे एक विशाल पक्षी निकला, जिसका कण्ठ नीला था। उसके नेत्र और पंख विशाल थे। उसके मुखसे अनल-ज्वाला निकल रही थी। उसने अपना पंख हिलाया ही था कि धरती काँपने लगी। उसकी ध्वनिसे समुद्र मर्यादाका अतिक्रमण करने लगा, सूर्यमण्डल चंचल हो गया। उस महान् पक्षीने भागते हुए मुनि-पुत्रोंपर अपने पंखोंसे प्रहार कर उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

'यह विशाल पक्षी मुनि-पुत्रोंको मार डालेगा'—यह सोचते ही गुणेश वृक्ष-कोटरसे कूदे और शीघ्रतापूर्वक उक्त महान् पक्षीका पंख जोरसे पकड़ लिया। पक्षी और गुणेशमें भयानक युद्ध छिड़ा। पक्षीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे। वह अपनी तीक्ष्णतम चोंच और पंखसे गुणेशपर प्रहार करता और गुणेश घूमकर उसपर अपनी वज्र-मुष्टिसे आघात करते।

विशाल पक्षीकी अतिशय शक्ति देखकर गुणेशने उसपर एक साथ अपने चारों आयुधोंसे प्रहार किया। पक्षी तुरंत धरतीपर गिरा। चपल गुणेशने तत्क्षण उसे अस्त्र-मुक्त किया और उछलकर वे उस अण्डजपर आरूढ़ हो गये। उन्होंने बलपूर्वक विशालतम पक्षीको स्ववश कर लिया।

यह दृश्य देखकर तेजस्विनी स्त्री गुणेशकी स्तुति करने लगी—'प्रभो! आप रजोगुणके योगसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव, सत्त्वगुणके योगसे पालक विष्णु और तमोगुणके योगसे संहारक रुद्र भी हैं। आपका सगुण-तत्त्व देवता और ऋषि नहीं जानते, फिर चराचरगुरु आपके निर्गुण-तत्त्वको कौन जाननेवाला है?'*

स्तुतिके अनन्तर अपना परिचय देती हुई साध्वी नारीने कहा—''प्रभो! मैं परम तपस्वी महर्षि कश्यपकी पत्नी हूँ। मेरा नाम विनता है। यह शिखण्डी (मयूर) उन्हीं महामुनिका पुत्र है। आप इसे अपने सेवकके रूपमें स्वीकार करें। उन मुनिराजने पहले ही कहा था कि 'इस अण्डेको फोड़नेवाला इसका स्वामी होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।' दीर्घकालतक प्रतीक्षा करनेके अनन्तर मुझे आज आपका दर्शन प्राप्त हुआ है।''

पुनः अत्यन्त दीनभावसे विनताने प्रार्थना की—'प्रभो! मेरे जटायु, श्येन और सम्पाति—इन तीन पुत्रोंको कद्रूपुत्रोंने नागलोकमें बंदी बना रखा है। दयामय! आप शीघ्र ही उनको मुक्त कर मुझे शान्ति प्रदान करें।'

'माता! तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे पुत्रोंको शीघ्र ही मुक्त करके तुम्हारे समीप ले आऊँगा।' गुणेशने परम पुण्यमयी विनताको आश्वासन दिया। फिर उन्होंने मयूरसे वर माँगनेके लिये कहा।

मयूरने वरकी याचना की—'यदि आप मुझपर प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो भूमण्डलपर

* त्वं सृष्टिकर्ता रजसा ब्रह्मा सत्त्वेन पालकः॥ विष्णुस्त्वमसि तमसा संहरञ्शंकरोऽपि च।
न देवा ऋषयस्तत्त्वं विदुस्ते सगुणस्य ह॥ निर्गुणस्य तु को वेद चराचरगुरोरपि॥
(गणेशपु० २। ९८। ३९—४१)

आपके नामके पूर्व मेरा नाम प्रसिद्ध हो जाय। सर्वेश्वर! इसके साथ ही आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें।'*

'अत्यन्त शुभ! लोभशून्य अन्तःकरणसे तुमने शुभ वरकी याचना की है।' देवदेव गुणेशने अपने वाहन मयूरसे कहा—'मयूरेश्वर!—मेरे नामके पूर्व तुम्हारा नाम त्रिभुवनमें विख्यात होगा और तुम्हारे मनमें मेरे प्रति दृढ़ भक्ति भी रहेगी।'

गुणेश मयूरपर आरूढ़ होकर अपने आश्रम पहुँचे। ऋषिपुत्रोंने माता पार्वतीको सूचित करनेके लिये एक साथ उच्चस्वरसे घोष किया—'मयूरेश! मयूरेश!! मयूरेश!!!'

सारा वृत्तान्त सुनकर माता पार्वती प्रमुदित हुईं और ऋषिपुत्र मयूरेशका गुणगान करते हुए अपने-अपने घर गये।

* * *

जल-क्रीड़ा

मयूरेशका नवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। अबतक उन्होंने वेदादि शास्त्रोंका गहन अध्ययन कर लिया था। वे धनुर्वेद और विभिन्न प्रकारके शस्त्रास्त्र-संचालनमें दक्ष हो चुके थे। जैसे-जैसे सयाने होते जाते, वैसे ही सिन्धु-प्रेषित असुर चिन्तित होकर उन्हें मार डालनेका नित्य नवीन कुचक्र रचते जाते। उन्हें सफलता तो मिलती नहीं, उलटे जो भी दैत्य आता, गण्डकीनगर लौट नहीं पाता था; यम-सदन पहुँच जाता था। इस कारण दैत्यराज सिन्धु और अधिक सशंक एवं सावधान रहने लगा।

एक दिनकी बात है—आम्र-काननके सरोवर-तटपर मयूरेश मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। बालक आम्र-वृक्षपर चढ़ते, कुछ फल खाते, कुछ खट्टे-अधपके फलोंको दूर फेंक देते एवं कुछ आम्र-फल मुँहमें दबाये डालियोंसे सरोवरमें कूद जाते; तैरते और एक-दूसरेपर जल उछालते हुए विविध प्रकारके खेल खेलते।

उसी समय सिन्धु-प्रेषित एक प्रचण्ड दैत्य अश्वके रूपमें वहाँ पहुँच गया। उसके उपद्रवसे कुछ मुनि-पुत्र सरोवरमें कूद पड़े, कुछ पेड़ोंपर चढ़ गये; कुछ घायल होकर गिर पड़े और कुछ प्राण लेकर भागे।

मयूरेशने असुरका दुरुद्देश्य समझ लिया; अतः वे तत्काल उसपर मुष्टि-प्रहार कर बैठे। करारी चोट पड़नेसे छटपटाता हुआ वह अश्वरूपी असुर सरोवरमें कूद पड़ा। मयूरेशने भी उसके पीछे सरोवरमें छलाँग लगायी। उन्होंने उस मदोन्मत्त अश्वको पानीमें डुबाकर मार डाला और फिर उसका मृत-शरीर सरोवरसे निकालकर बाहर बहुत दूर फेंक दिया।

यह देखकर मुनिपुत्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे पुनः फल खाने और जल-क्रीड़ा करने लगे। एक बार सभी बालक एक साथ मिलकर गुणेशपर जल उछालने लगे, तब मयूरेशने सहस्र हाथोंसे उनपर जल उलीचना प्रारम्भ कर दिया। चकित होकर एक बालकने पूछा—'अरे, यह मयूरेश तो षड्भुज है न?'

'हाँ! षड्भुज तो है ही।'

'फिर यह सहस्रभुज कैसे हो गया?'

'सचमुच बड़े आश्चर्यकी बात है।'

फिर बालकोंने देखा कि उनके चारों ओर अनेक मयूरेश खड़े होकर उनपर जल उलीच रहे हैं। वे सभी चकित-विस्मित थे।

इस प्रकार परात्पर परब्रह्म मयूरेश परम पुण्यात्मा मुनि-पुत्रोंको क्रीड़ाका अद्भुत अलौकिक आनन्द प्रदान कर ही रहे थे कि वहाँ कुछ नाग-कन्याएँ आकर क्रीड़ा करने लगीं। उनकी दृष्टि जब मयूरेशपर पड़ी तो वे लज्जित हो गयीं। उन्होंने अपने नेत्र नीचे कर लिये। वे मयूरेशके अलौकिक सौन्दर्यपर मुग्ध हो गयी थीं।

सहचरियोंके परामर्शसे एक नागकन्याने मयूरेशके समीप जाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप कौन हैं, कहाँसे आये हैं? हमलोग आपका दर्शन करके विह्वल हो गयी हैं; आप कृपया हमारा चित्त शान्त कीजिये।'

'मैं शिवा-शिवका पुत्र हूँ। मयूरेश मेरा नाम है।

---

* यदि मे त्वं प्रसन्नोऽसि यदि देयो वरो मम। तदा मन्नामपूर्वं ते नामाख्यातं भवेद् भुवि॥
एतन्मे देहि सर्वेश तव भक्तिं दृढां तथा।

(गणेशपु० २। ९८। ४७-४८)

मैं मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीड़ार्थ यहाँ आ गया, इसी कारण आपलोगोंके दर्शन हो गये।'

'आप कृपापूर्वक एक क्षणके लिये ही सही, हमलोगोंके घरपर पधारकर विश्राम कर लें।'

'अधिक विलम्ब होनेके कारण माता पार्वती सचिन्त मनसे मेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी; अतएव मैं अपने आश्रमको जाना चाहता हूँ। आपलोग अपने भवन पधारिये।'

नाग-कन्याएँ साग्रह मयूरेशको अपने साथ ले गयीं। प्राणप्रिय मयूरेशको न देख मुनिपुत्र अत्यन्त दुःखी हुए, पर कुछ ही देर बाद उन्हें अनुभव हुआ कि 'मयूरेश हमारे साथ हैं।' मार्गमें भगासुर नामक असुरने मुनि-बालकोंके साथ छल किया, किंतु सर्वज्ञ मयूरेशने उनकी रक्षा कर ली, असुर मारा गया।

जिस प्रकार मुनि-पुत्रोंने मयूरेशको अपने साथ अनुभव किया, उसी प्रकार मुनि-बालकोंके घर पहुँचनेपर माता पार्वतीने भी समझा कि 'मयूरेश घर आ गया है।' जननीने उन्हें भोजन कराया और स्तनपान कराकर सुला दिया।

नागलोकपर विजय

लावण्यवती नाग-कन्याएँ प्रसन्नवदन मयूरेशको पाताल लोकके अपने भव्य भवनमें ले गयीं। वहाँ उन्होंने चित्ताकर्षक देवदेव मयूरेशको सुगन्धित तेल और उद्वर्तन लगाकर उष्ण जलसे स्नान कराया। उन्हें दिव्य वस्त्रालंकारोंसे विभूषित कर उनको चन्दन लगाया और धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूलादिसे उनकी पूजा की। तदनन्तर उन्होंने मयूरेशकी स्तुति करते हुए कहा—'ब्रह्मादि देवगण जिनके दर्शनके लिये नित्य आकांक्षा रखते हैं, वे ही प्रभु हमारा अभीष्ट प्रदान करनेके हेतु यहाँ पधारे हैं। हम चाहती हैं कि आप यहाँ कुछ दिन निवास करनेके अनन्तर ही अपने आश्रमको जायँ।'

पार्वतीनन्दनने कहा—'वहाँ मेरी माता मेरे वियोगमें दुःखी होकर अन्न-जल भी नहीं ग्रहण करती होंगी। क्या पूछ सकता हूँ कि मैं यहाँ किनकी पुत्रियोंके दर्शन कर रहा हूँ?'

'जिनके यहाँ ब्रह्मादि देवगण आते रहते हैं और जिनके विषकी ज्वालासे त्रिभुवन भस्म हो सकता है, हम उन्हीं नागराज वासुकिकी कन्याएँ हैं।' इस प्रकार अपना परिचय देकर नाग-कन्याएँ मयूरेशको अपने पिताके समीप ले गयीं।

अतिशय शक्तिशाली वासुकि अनेक तेजस्वी नागोंके साथ देदीप्यमान रत्नसिंहासनपर आसीन थे। उनके मस्तकपर चतुर्दिक् किरणें बिखेरता रत्नमुकुट और कण्ठमें रत्नहार सुशोभित थे।

वासुकिको देखते ही देवदेव मयूरेश तत्काल कूदकर उनके फणपर चढ़ गये। उनके फणमें घनान्धकारनिवारक अद्भुत मणि थी। उनके मस्तकके हिलनेसे त्रैलोक्य हिल उठा। मयूरेशने परम तेजस्वी वासुकिको दण्ड देकर उन्हें अपने कण्ठमें धारण कर लिया। इस कारण उन परमप्रभु मयूरेशका नाम प्रख्यात हुआ—'सर्पभूषण!' सर्पभूषणने सोल्लास गर्जन किया।

'मेरे भाई वासुकिको पराजित करनेवाला कौन है?'—ऐसा कहकर सहस्रफणधारी शेष भयानक विष उगलते हुए दौड़े। उन्होंने पार्वतीनन्दनपर आक्रमण कर दिया।

सर्पभूषणके स्मरण करते ही उनके वाहन मयूरने उपस्थित होकर चरणोंमें नमस्कार किया। गुणेश मयूरपर बैठे। भयानक युद्ध हुआ। मयूरने असंख्य नागोंको अपने विशाल पंखोंके प्रबल प्रहारसे मार डाला। कितने ही विषधर उसके उदरमें पड़ गये; किंतु शेषके भयानकतम विषकी असह्य ज्वाला वह मयूर नहीं सह सका; मूर्च्छित हो गया।

अपने वाहन मयूरके धरतीपर गिरते ही मयूरेश अत्यन्त कुपित हुए और कूदकर शेषके फणपर चढ़ गये। उन विराट् प्रभुका भार शेषके लिये असह्य हो उठा। वे रक्त वमन करने लगे। उनके अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गये। शेषकी सहायताके लिये अन्य नाग दौड़े, किंतु वे तो मयूरेशका हुंकार भी नहीं सह सके।

क्रीड़ारत बालक जैसे कटिमें रस्सी लपेट लेता है, उसी प्रकार मयूरेशने शेषको अपनी कटिमें लपेट लिया। चकित-थकित शेष मयूरेशकी स्तुति करने लगे। तब मयूरेशने शेषसे कहा—'सम्पाति, जटायु और श्येनको शीघ्र मुक्त करके यहाँ ले आओ।'

शेषने आज्ञा दे दी। नागलोग विनताके तीनों पुत्रोंको मुक्त करके वहाँ ले आये। उन तीनोंने मयूरेशके

चरणोंमें प्रणाम किया। मयूरने अपने तीनों भाइयोंका आलिंगन कर उनका समाचार पूछा। तदनन्तर सम्पाति आदिने अपनी माताका हाल पूछा।

'माता प्रसन्न हैं।' यह सुनकर तीनों भाइयोंको संतोष हुआ।

मयूरेश मयूरपर आरूढ़ होकर पृथ्वीपर लौटे। आश्रमकी ओर जाते समय वे बालकोंसे घिरे थे। उन बालकोंने छत्र, चामर और दण्ड आदि धारण कर रखा था। कोलाहल सुनकर मुनिगणोंने जाकर देखा—'बालकोंसे घिरे मयूरवाहन मयूरेश आ रहे हैं।'

'मेरा बालक तो घरपर है।' चकित होकर सभी मुनि परस्पर कहने लगे। फिर उन्होंने देखा, वे सभी बालक मयूरेश ही हैं। एक नहीं, शत-शत मयूरेश।

'पाताल-विजयी मयूरेशकी जय!'—यह गगनभेदी स्वर मुनियोंके मुँहसे स्वयं निकल गया।

* * *

त्रिसंध्या-क्षेत्रसे विदा

मयूरेशके नौ वर्ष पूरे हुए। उन्होंने दसवें वर्षमें प्रवेश किया। इतनी अल्पायुमें ही उन्होंने अनेक वीराग्रणी असुरयोद्धाओंका संहार तो किया ही, प्रख्यात नागलोकपर भी विजय प्राप्त कर ली, इस समाचारसे सिन्धु उत्तरोत्तर अधिक चिन्तित होता जा रहा था और उसके वीर सैनिक मयूरेशके सम्मुख जानेमें भयभीत होने लगे थे।

भगवान् शंकर और पार्वती अपने पुत्रका पौरुष और असुरोंका उत्तरोत्तर क्षय देखकर मन-ही-मन प्रसन्न थे, किन्तु दण्डकारण्यमें मयूरेशकी उपस्थितिके कारण ऋषियोंको असुरोंकी अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। इस कारण महादेवने त्रिसंध्या-क्षेत्रसे अन्यत्र जानेका निश्चय कर लिया।

ऋषि-वृन्द, ऋषि-पत्नियाँ और मयूरेशके मित्र दुःखी हुए। उन्होंने शिवसे प्रार्थना की, किंतु पार्वतीवल्लभ अनेक कारणोंसे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए।

जब शिव-पार्वती मयूरेश और अपने गणोंके साथ दण्डकारण्यसे बिदा हुए, तब बड़ा ही करुण दृश्य उपस्थित हुआ। शिव-पार्वती तथा मयूरेशके अनन्य भक्त ऋषि-मुनि और बालक उनके साथ चले। बृहत् समुदायके चलनेसे उड़ी हुई धूलिसे अन्तरिक्ष भर गया।

कमलासुरकी मुक्ति

शिव-पार्वती अपने गणादिके साथ जिस मार्गसे जा रहे थे, उसी मार्गमें दैत्यराज सिन्धुका भेजा हुआ कमलासुर नामक प्रसिद्ध असुर बारह अक्षौहिणी सशस्त्र वाहिनीके साथ डट गया। उसकी सेनामें गज, अश्व, रथ और पैदल सभी प्रकारके सैनिक थे।

असुरोंका महासैन्य देखकर शिवगणोंने मयूरेशको सूचना दी। उन गणोंको चिन्तित देखकर मयूरेशने कहा—'भगवान् शिवकी उपस्थितिमें चिन्ताका कोई कारण नहीं है।'

फिर उन्होंने जाकर अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'कमलासुर नामक प्रख्यात वीर असुर महान् सैन्यके साथ सम्मुख उपस्थित है। यदि आप सानुग्रह आज्ञा प्रदान करें तो मैं उससे युद्धके लिये जाऊँ?'

शिवने प्रसन्न होकर कहा—'तुमने सुखद बात कही, पर तुम एकाकी बारह अक्षौहिणी सैनिकोंके साथ कैसे युद्ध करोगे? अतः अपने साथ सात कोटि गणोंको भी ले जाओ और शीघ्र ही शत्रुको मारकर विजय प्राप्त करो।'

मयूरेशने अपने पितासे पुनः निवेदन किया—'आपकी कृपासे मैं त्रैलोक्यको भस्म कर सकता हूँ; इस क्षुद्र दैत्यकी कौन गिनती है? मैं अभी उसपर विजय प्राप्त करके लौट आता हूँ।'

मृत्युंजयने पुत्रका आलिंगन किया। उसे अपना त्रिशूल देकर सिरपर हाथ फेरते हुए आशिष् दी। तदनन्तर उसे अपने गणोंके साथ समरांगणमें जानेकी आज्ञा प्रदान की।* वृषारूढ़ शिवा-शिव भी पुत्रका रणकौशल देखने चले।

मयूरेश असुर-सैन्यके सम्मुख पहुँचे। उन्होंने

* बारह सालका बालक गुणेश! किंतु वह ऐसी विशाल सेनाके साथ युद्धके लिये जाता है और उसे इसके लिये माँ-बाप अनुमति देते हैं। ये बातें सचमुच बोधप्रद—प्रेरणादायक ही हैं। घरकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये, यह बात इस प्रसङ्गसे अच्छी तरह समझमें आती है। बारह वर्षके बालकपर उसके पिताका इतना विश्वास! जिस जातिके बच्चे इतने शूर हों, वह कभी परतन्त्र नहीं रह सकती। —पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

भारतके प्रमुख श्रीगणेश-विग्रह—२

बड़े गणपति—उज्जैन

श्रीसिद्धिगणेश—भीलवाड़ा (राजस्थान)
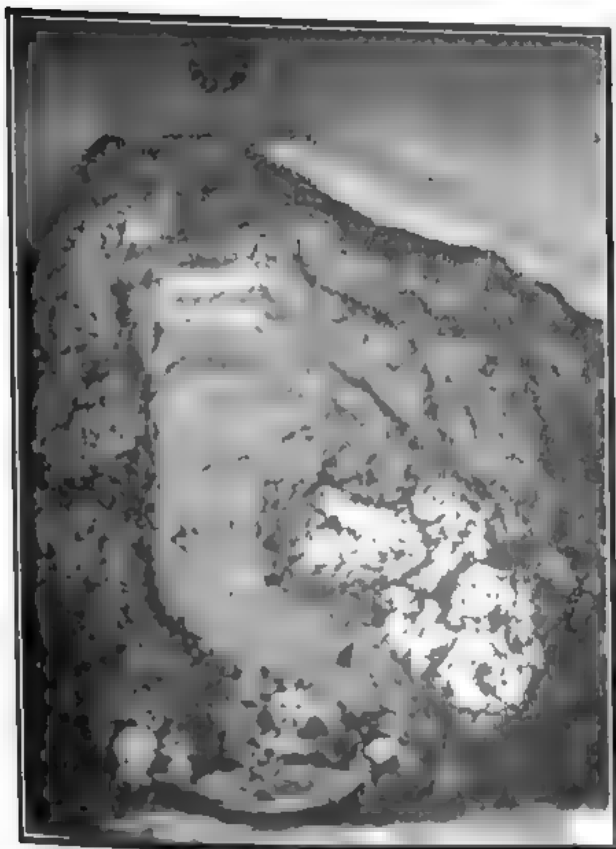
पर्वतमें स्वतः प्रकट श्रीगणेश-रेजंतल (आन्ध्रप्रदेश)

श्रीढुण्ढिराज गणपति—बड़ोदा

श्रीसिद्धिगणेश, वृन्दावन

श्रीढुण्ढिराज-विनायक, वाराणसी
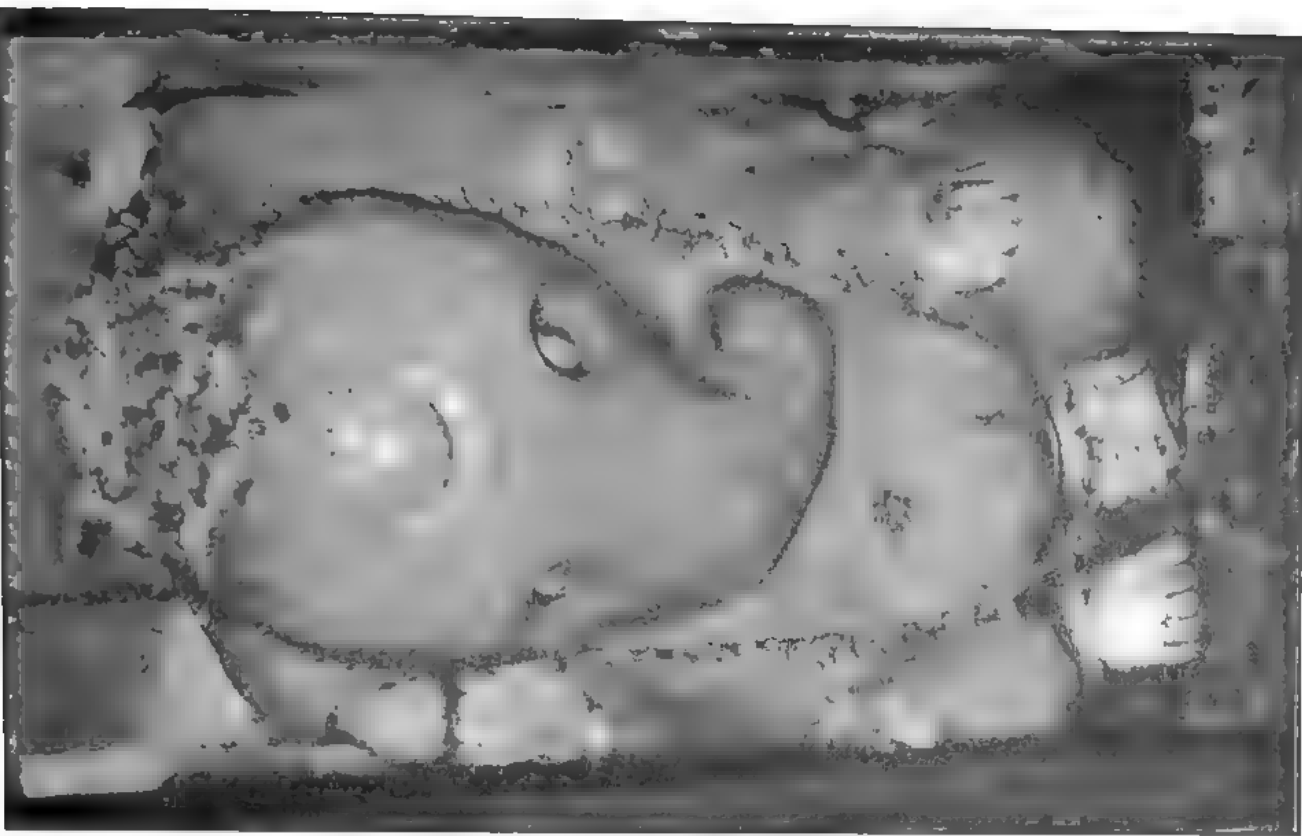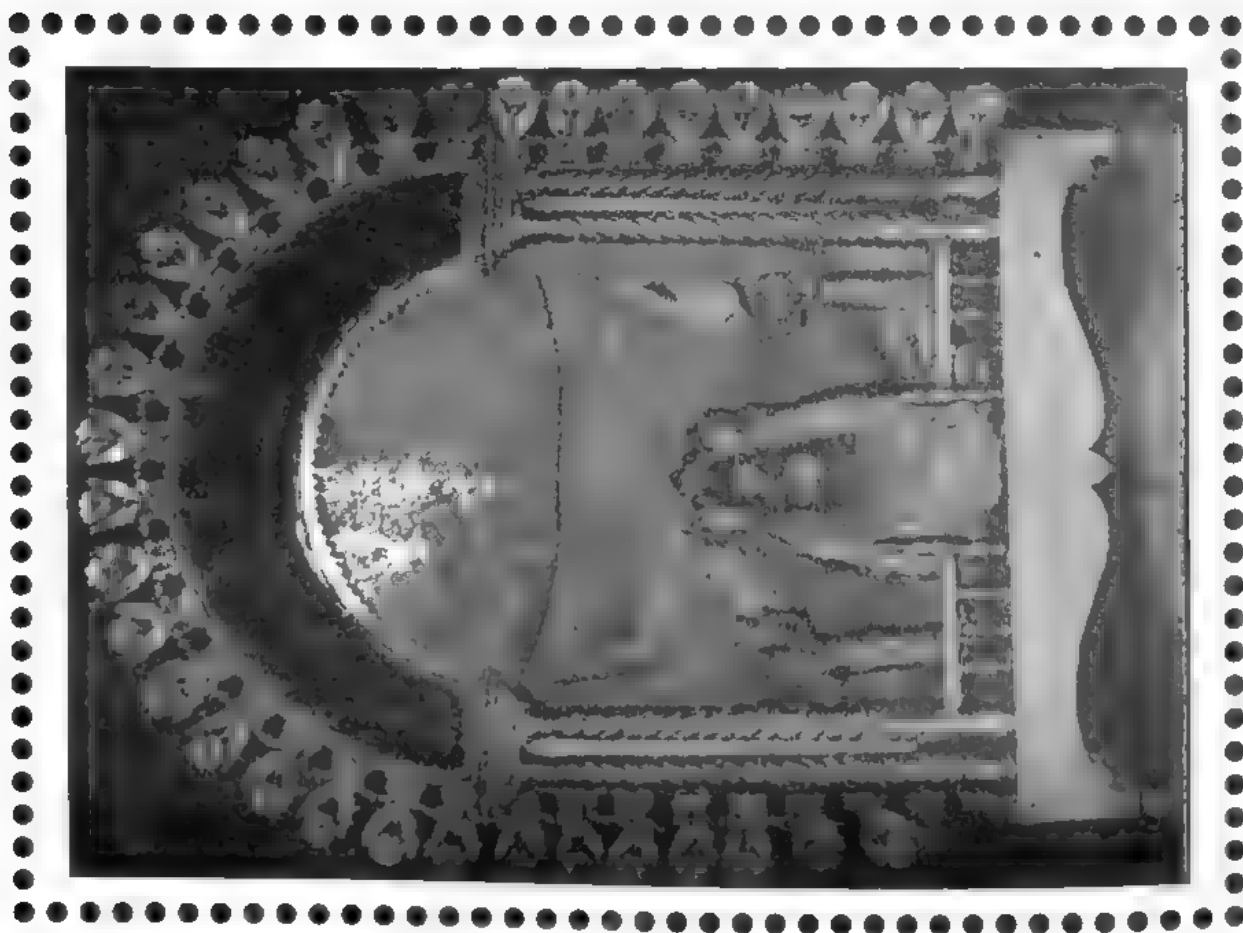
कमलासुरकी विशाल वाहिनी देखकर अपने शरीरसे असंख्य सैनिक उत्पन्न किये।

'मयूरेशके पास तो थोड़े-से ही सैनिक थे, अभी तुरंत इतनी विशाल सेना कहाँसे आ गयी?'—यह सोचकर असुर चकित हो गया।

उभय पक्षकी सेनाएँ एक-दूसरेपर टूट पड़ीं। मयूरवाहन मयूरेशने महादैत्यको अश्वारूढ़ देखकर अपनी दस भुजाओंमें दसों आयुध लिये। भयंकर संग्राम हुआ। असंख्य असुर-सैनिक कालके गालमें चले गये और रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी।

हाथमें खड्ग लिये अतिशय क्रुद्ध कमलासुर मयूरेशसे युद्ध कर रहा था। उसने मयूरेशको मारनेके लिये विविध प्रकारके अस्त्रोंका प्रयोग किया, किंतु उसके सभी शस्त्रास्त्र व्यर्थ हो गये। इसी बीच गुणेश-वाहन मयूरने अपने पक्ष एवं तीक्ष्ण चंचु-प्रहारसे असुरके अश्वको मार डाला। उस असुरने आकाशमें जाकर कहा—'मेरा घोड़ा गिर गया, यह मैं अद्भुत दृश्य देख रहा हूँ।'

फिर उसने मयूरेशसे कहा—'बालक! तू मेरे साथ क्या युद्ध करेगा? जाकर अपनी माताका स्तनपान कर और बालकोंके साथ खेल। मेरे भयसे त्रिभुवन काँपता है।'

'तू पिशाचकी तरह क्या प्रलाप करता है?' देवदेव मयूरेशने असुरको डाँटते हुए कहा—'देवद्विजविनिन्दकको कभी जय प्राप्त नहीं होती। मैं तो अपने रोषानलसे ही त्रिभुवनको भस्म कर सकता हूँ, किंतु तुम्हें यश प्रदान करनेके लिये ही इस युद्धमें प्रवृत्त हुआ हूँ।'

यह सुनकर क्रुद्ध कमलासुर गरज उठा। पृथ्वी काँपने लगी। उसने अपने अस्त्रोंकी इतनी भयानक वर्षा की कि शिवगण व्याकुल हो गये। यह देखकर मयूरेशने जलधारावत् तीक्ष्णतम शरोंकी वृष्टि प्रारम्भ कर दी।

असुर अपनी पूरी शक्तिसे उन शरोंका निवारण करने लगा; यह देखकर गुण-ग्राहकोंमें श्रेष्ठ गुणेश संतुष्ट हुए। उन्होंने उसे अपने अनन्त विश्वरूपका दर्शन करा दिया। उसने दसों दिशाओंमें मयूरेशको देखा। अत्यन्त चकित होकर उसने नेत्र बंद किये तो हृद्देशमें भी उसे मयूरेशके ही दर्शन हुए।[१]

तब प्रचण्ड शूर कमलासुर युद्ध-भूमिसे भाग चला, किंतु देवताओंने उसकी शिखा पकड़ ली और उसे लाकर कहा—'दैत्य! तू अपने वचनका पालन करनेके लिये यहाँ युद्ध कर।'

यह सुनकर उस महादैत्यने भयानक गर्जना की और वह विविध प्रकारके अस्त्रोंद्वारा प्रहार करने लगा। उसने अनेक प्रकारकी मायाएँ रचीं, किंतु मायापतिके सम्मुख उसकी एक न चली। मयूरेशने अपने त्रिशूलसे प्रहार किया ही था कि कमलासुरका मस्तक कटकर भीमानदीके दक्षिणी तटपर जा गिरा। मयूरेश कृष्णा नदीके उत्तरी तटपर थे।

'मयूरवाहन मयूरेशकी जय।' सम्पूर्ण असुर-सैन्यके विनाशसे प्रसन्न होकर देवताओं, मुनियों और शिवगणोंने बार-बार उच्चस्वरसे उद्घोष किया—'मयूरवाहन मयूरेशकी जय! मयूरवाहन मयूरेशकी जय!!'

फिर प्रमथगणोंसे आवृत उमा-महेश्वर और गौतमादि ऋषि मयूरेशके समीप पहुँचे। विजयसे आह्लादित शिवपुत्रको गले लगाकर उसके सिरपर हाथ फेरने लगे। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी और मुनिगण पार्वतीनन्दन मयूरवाहन मयूरेशकी स्तुति करने लगे।

विश्वकर्माने वहाँ गणोंसहित पार्वती-महेश्वर और मुनियोंके रहनेके लिये अत्यन्त सुन्दर नगर और एक अत्यन्त अद्भुत मन्दिरका निर्माण कर दिया। पार्वतीसहित भगवान् शंकर वहीं रहने लगे। मुनिगण तपस्यामें निरत हुए। ब्राह्मणोंका भजन-पूजन आरम्भ हुआ और मयूरेश बालकोंके साथ पूर्ववत् क्रीड़ा करने लगे।

महर्षियोंने उक्त पवित्र क्षेत्रका नाम रखा—'मयूरेश'।[२]

---

१. ततस्तुतोष भगवान् मयूरेशो गुणाग्रणीः॥
दर्शयामास तस्मै स विश्वरूपमनन्तकम्। दशदिक्षु मयूरेशं ददर्श कमलासुरः॥
विस्मितश्छन्न नयने हृदि तं परिदृष्टवान्।
(गणेशपु० २। १०३। २—४)

२. मोरेश्वर।

बाल-विनोद

मंगलमूर्ति भगवान् मयूरेशकी प्रत्येक लीला प्रेरक, सुखद एवं मनको मुग्ध कर देनेवाली थी। प्राकट्य-कालसे ही वे पुण्यात्माओं, तपस्वियों एवं सदाशय व्यक्तियोंके हित-साधनमें संलग्न थे। असुर-विनाश उनका लक्ष्य था। वे ब्रह्मादि देवताओं, ऋषियों, शिवगणों एवं मुनिपुत्रोंको भी अपनी अनिर्वचनीय शक्ति एवं महिमाके कभी-कभी दर्शन करा देते थे।

मयूरेशका तेरहवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। वे बालकोंके साथ क्रीड़ा-रत थे। उसी समय मंगल नामक दैत्य कज्जलगिरितुल्य वराहके रूपमें वृक्षोंको ध्वस्त करता हुआ मुनि-पुत्रोंके सम्मुख आया। उसके नेत्र प्रज्वलित अग्निकुण्डके समान लाल-लाल थे। उस कुपित एवं काल-तुल्य वराहको देखकर मुनिपुत्र किंकर्तव्यविमूढ़ एवं स्वेद-सिक्त हो गये।

दैत्यसूदन उछले। उन्होंने असुरको सोचनेका अवसर दिये बिना ही उसके दोनों दाँत पकड़ लिये। वराह गुर्रा भी नहीं पाया था कि अत्यन्त चपलतासे सर्वशक्तिमयने उसके वज्र-तुल्य दाँतोंको नीचे-ऊपर इतने जोरसे झटका दिया कि असुर पीड़ासे चिल्ला उठा। मयूरेशने उसके दाँतोंको नीचे-ऊपर झटका देते तथा पीछे ढकेलते हुए शिथिल ही नहीं कर दिया, उसे मार डाला।

'पार्वतीपुत्र! धन्य हो! धन्य हो!!' उस विशाल वराहके संहारसे चकित और प्रसन्न होकर मित्र-मण्डली मयूरेशकी प्रशंसा करने लगी।

एक दिनकी बात है; कर्पूरगौरने देखा, ललाटपर चन्द्रमा नहीं था। 'सुधांशु क्या हुआ?' लीलामय शिव इधर-उधर देखने लगे। गणोंने बताया—'प्रभो! सुधांशुको लेकर मयूरेश क्रीड़ा करने चले गये हैं।'

'तुमलोग इतने असावधान कैसे रहते हो?' रोषमयी मुद्रामें लीलामयने कहा—'जाओ! सुधांशुको ले आओ।'

शिवगण दौड़े। मुनिपुत्रोंके साथ क्रीड़ा-रत मयूरेशके समीप पहुँचकर उन्होंने कहा—'मयूरेश! तुम भगवान् शिवके पास चलो, अन्यथा चन्द्रमा दे दो।'

'मैं त्रिभुवनको उत्पन्न करनेवाली अमित महिमाशालिनी जननीका पुत्र हूँ। इस कारण तुम-जैसे गणोंकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता।' मयूरेशने गणोंको उत्तर दिया और दूसरे ही क्षण शिवगण उनके श्वास-वायुसे पत्तेकी तरह उड़ते हुए परम प्रभु शिवके समीप पहुँच गये।

उनकी दशा देखकर कुपित पार्वतीनाथने प्रमथादिकोंको आज्ञा दी—'तुमलोग मयूरेशको पकड़ लाओ।'

प्रमथादि गण मयूरेशको पकड़नेके लिये क्रीड़ा-रत बालकोंके समीप पहुँचे; किंतु विनायकने उन्हें मोहित कर दिया और स्वयं अदृश्य हो गये। प्रमथादि गण मयूरेशको घर-घर और वनोंमें ढूँढ़ने लगे।

'हमलोग तुम्हें पकड़कर प्रभुके सम्मुख ले चलेंगे।' मयूरेशके दर्शन हुए तो प्रमथादिकोंने कहा और उन्हें पकड़नेके लिये दौड़े। मयूरेश कभी प्रकट और कभी गुप्त हो जाते थे। प्रमथगण थककर चूर और खिन्न हो गये, तब कृपामय मयूरेश उनके हाथ आ गये। प्रमथगण बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें बाँधकर अपने स्वामीके समीप ले चले। कुछ दूर चलनेपर मयूरेश जडवत् बैठ गये। प्रमथगणोंने उन्हें उठानेका प्रयत्न किया, पर वे हिल भी न सके। तब उन्हें उठानेके लिये सबने मिलकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, पर मयूरेश भूधर-तुल्य अडिग हो गये थे; अपने स्थानसे टस-से-मस नहीं हो सके।

'प्रभो! हम तो उन्हें लानेमें सफल नहीं हुए। हमारी शक्ति व्यर्थ हो गयी।' प्रमथगणोंका संवाद पाकर नीलकण्ठने नन्दीको आज्ञा दी—'तुम जाओ और मयूरेशको शीघ्र ले आओ।'

'प्रभो! आपकी आज्ञासे मैं सूर्य, चन्द्र और शेषको समाप्त कर सकता हूँ; मयूरेशकी क्या गणना है?'—नन्दीने स्वामीके चरणोंमें प्रणाम किया और मयूरेशको पकड़नेके लिये द्रुतगतिसे चल पड़े।

नन्दी मुनिपुत्रोंके साथ क्रीड़ा करते मयूरेशके समीप पहुँचे। क्रोधसे उनके नेत्र लाल हो गये थे। उन्होंने कठोर शब्दोंमें कहा—'तुम स्वामीके पास चलो, नहीं तो मैं स्वयं तुम्हें पकड़कर ले चलूँगा। मुझे प्रमथादि गणों-जैसा न समझो।'

नन्दीका अहं-भाव देखकर व्यक्ताव्यक्तस्वरूप मयूरेशने श्वास छोड़ा। उस श्वासचक्रसे नन्दी रक्तका

वमन करते हुए पृथ्वीपर गिरकर मूर्च्छित हो गये। दो मुहूर्तके अनन्तर मूर्च्छा भंग होनेपर लज्जित नन्दी शिवके समीप पहुँचे तो अत्यन्त चकित हुए। उन्होंने देखा, दिव्य वस्त्राभरण धारण किये देदीप्यमान मयूरेश अपने पिता शिवके अंकमें विराजमान हैं और चन्द्र देवाधिदेव महादेवके भालपर सुशोभित हैं।

'प्रभो! सुधांशु तो आपके मस्तकपर विराजित हैं।'

नन्दीके वचन सुन शोकशूल-निर्मूलन शिवने अपने भालपर चन्द्र देखकर कहा—'अरे हाँ, चन्द्रमा तो ललाटपर ही है। मैंने व्यर्थ ही प्रमथादि गणोंको कष्ट दिया।'

प्रमथगणोंने शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! ये मयूरराज आजसे हमारे स्वामी हों।'

गणोंने शिव, गणेश और गणेश-जननीके चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक गर्जना की—'जय गणराज! जय गणपति!! जय गणेश!!! जय मयूरवाहन मयूरेश!!!!'

विवाहका निश्चय

मयूरेशकी तेरहवीं वर्ष-गाँठपर गौतमादि ऋषिगण माता पार्वतीके समीप पहुँचे। पार्वतीने उनकी पूजा की। ऋषियोंके परामर्शके अनुसार इन्द्र-याग प्रारम्भ हुआ। उसी समय वहाँ कल और विकल नामक दो असुर प्रचण्ड महिषके वेषमें पहुँच गये। वे दोनों विकट असुर मयूरेशके हाथों मुक्त हुए।

मयूरेशके द्वारा अपनी उपेक्षा देखकर देवेन्द्र कुपित हुए; पर उन चिदानन्दके सम्मुख उनका गर्व खर्व हुआ। उन्होंने देवदेव मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी स्तुति की। वे निर्विकार मयूरेशके द्वारा क्षमा प्राप्तकर आश्वस्त हुए।

पार्वतीनन्दनने पंद्रहवें वर्षमें प्रवेश किया। एक दिन सिन्धुप्रेरित एक महादैत्य व्याघ्रके रूपमें मयूरेशके सम्मुख पहुँचा। वह शिवनन्दनको मारकर खा जाना चाहता था, किंतु पराक्रमी मयूरेशके द्वारा स्वयं काल-कवलित हुआ।

सूर्यनन्दन यम सदसद्रूप मयूरेशपर क्रुद्ध हुए, पर उनका अहंकार नष्ट हुआ। उन्होंने निखिलसृष्टिनायक गणपतिसे क्षमाकी याचना की।

इस प्रकार अत्यन्त बलवान्, विद्या-विनय-सम्पन्न, अद्भुत प्रतिभाशाली, अप्रतिम शूर मयूरेशकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी। इस कारण एक दिन माता पार्वतीने अपने प्राणवल्लभ शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! मयूरेश पंद्रह वर्षका हो गया। यह अत्यन्त सुन्दर, सुशील, बुद्धि-वैभव-सम्पन्न, शूरवीर एवं सर्वसद्‌गुण-सम्पन्न है। अतएव अब इसका विवाह कर देना चाहिये।'

'तुमने बड़ी सुन्दर बात कही। मैं भी इसके परिणयके पक्षमें हूँ।' इतना कहकर श्रीसदाशिव सोचने लगे—'मयूरेशके अनुकूल कन्या कहाँ प्राप्त होगी?'

उसी समय वहाँ ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद पहुँचे। माता पार्वतीने उनका स्वागत-सत्कार कर उन्हें श्रेष्ठ आसन प्रदान किया।

भगवान् शंकरने नारदजीसे कहा—'मुनिवर! आप बहुत दिनोंके बाद यहाँ पधारे; मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आप कृपापूर्वक परम मेधावी रूप-गुण-सम्पन्न मयूरेशके योग्य कोई कन्या बतलाइये। इसकी माता पुत्र-विवाहके लिये आतुर हैं।'

'कन्या—एक नहीं दो हैं।' अत्यन्त प्रसन्नताके साथ नारदजीने उत्तर दिया—'ब्रह्मदेव आपके पुत्रका यश सुनकर पुलकित हैं। सिद्धि और बुद्धि नामक उनकी दो कन्याएँ हैं। दोनों कन्याएँ सौन्दर्य, शील, गुण, कर्म आदि प्रत्येक दृष्टिसे अनुकूल एवं मंगलमयी हैं। स्वयं पद्मयोनिने मयूरेशके विवाहके लिये मुझे आपकी सेवामें प्रेषित किया है। आपलोग कृपापूर्वक यह सम्बन्ध स्वीकार कर लें।'

महर्षि नारदके ये वचन सुनकर भगवान् शंकर और जगज्जननी पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुईं। देवता, ऋषिगण, शिवगण और मुनिपुत्र—सभी आनन्दित हुए। मंगल यात्रा प्रारम्भ हुई।

भगवान् शंकर माता पार्वतीके साथ नन्दीपर बैठे थे। इन्द्रादि देवगण और ऋषिगण प्रसन्नतापूर्वक चल रहे थे। मयूरेश अपने वाहन मयूरपर बैठे थे। महर्षि नारद आकाशमार्गसे और शिवगण अपने शस्त्रास्त्रसहित यात्रा करते हुए हर्षोत्फुल्ल थे। मंगल वाद्य बज रहे थे। आकाश धूलिकणोंसे आच्छादित हो रहा था। विशाल समूह आनन्दमग्न था।

मयूरेशकी प्रतिज्ञा

भुजगेन्द्रहार शिव बृहत्तम समुदायके साथ गण्डकी-नगर जानेवाले मार्गसे जा रहे थे। उन्हें बीचमें ही सात कोटि प्रचण्ड असुर-योद्धाओंका शिविर मिला। वे सभी युद्धप्रिय असुर अत्यन्त उद्दण्ड थे। शिवका विशाल जनसमुदाय देखकर असुर-सेनापतिने मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

उद्धत सेनापतिने कहा—'तुमलोग कौन हो, कहाँसे आ रहे हो और कहाँ जाओगे? तुम दैत्यराज सिन्धुकी आज्ञा प्राप्त किये बिना यहाँसे आगे नहीं बढ़ सकते।'

मयूरेशने तुरंत उत्तर दिया—'मैं साधुपुरुषोंका संरक्षक एवं दैत्यों और असुरोंका संहार करनेवाला पूर्ण स्वतन्त्र हूँ। अतएव तुम मुझे जाने दो; अन्यथा यहीं ससैन्य मारे जाओगे।'

गणराजके अत्यन्त कर्णकटु वचन सुनते ही असुर क्रोधसे उन्मत्त हो गया। उसके नेत्रोंसे ज्वाला निकलने लगी। बोला—'तुम्हीं लोग मेरे आहार हो।' और उसने तत्क्षण असुरोंको आक्रमण करनेकी आज्ञा दे दी।

मयूरराज भी कुपित हुए। उन्होंने मुनिपुत्रोंको दर्भास्त्र-प्रयोगकी आज्ञा दे दी।

मुनिपुत्रोंने हाथमें जल लेकर संकल्प किया। मन्त्रपाठके अनन्तर जल छोड़ते ही दर्भके अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़े असुर-सैन्यमें फैल गये* और असुर-सेनाकी नासिका, कान, आँख और श्वासके साथ उसके लघुतम खण्ड हृदयमें प्रविष्ट होने लगे।

वीर असुर-सैनिक छींकने लगे; उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। कानमें दर्भके छोटे-छोटे टुकड़े प्रविष्ट होनेसे वे बहरे हो गये। उनका श्वास अवरुद्ध हो गया। कुछ ही क्षणोंमें असुरोंकी विशाल वाहिनी कुछ ही निशस्त्र ब्राह्मण-बालकोंद्वारा समाप्त हो गयी।

ब्राह्मण-वटुकोंने गणेशसे कहा—'गुणेश्वर! तुम्हारी कृपासे हमने सम्पूर्ण असुरोंका संहार कर दिया। अब तुम जो आज्ञा दो, हमलोग वही करें।'

उक्त स्थानपर उपस्थित ऋषि-वृन्द बालकोंके दर्भास्त्रसे महान् असुर-सैन्यका विनाश देखकर अत्यन्त चकित हुए। पार्वतीने अपने पुत्रको गोदमें उठा लिया। भगवान् शंकरने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'बेटा गुणेश! आज मैंने तेरा पराक्रम देख लिया। तुम्हारी शक्ति देवगण नहीं जानते और फिर तू क्या-क्या करेगा, यह भी विदित नहीं।'

विजयी मयूरेश आगे चले। उनके पीछे मुनिपुत्र थे। उनके बाद वृषभारूढ़ उमा-महेश्वर, देवता, ऋषि और शिवगण आदि प्रसन्न होकर चलने लगे। शिवके साथ यह बृहत् समुदाय सिन्धुकी राजधानी गण्डकी-नगरसे एक योजन दूर था, तभी मयूरेश अपने वाहनसे उतर गये।

वहाँ मयूरेशने एक अतिशय सुन्दर बहुमूल्य विस्तीर्ण सिंहासन स्थापित किया। उसपर पार्वती, शिव और ऋषियोंको बैठाया। उस समय वाद्य बजने लगे।

मयूरेशने सबके सम्मुख कहा—''मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं महादैत्य सिन्धुके कारागारसे देवताओंको मुक्त किये बिना अपना विवाह नहीं करूँगा। अतएव आपलोग किसी बुद्धिमान् पुरुषको बलवान् दैत्यराजके पास भेजकर अनुरोध करें कि 'वह देवताओंको कारागारसे मुक्त कर दे।' उसके अस्वीकार करनेपर मैं उसे पराजित कर देवताओंको उसके बन्धनसे छुड़ाऊँगा और तभी मेरा विवाह हो सकेगा।''

गुणेश्वरके वचन सुन ब्रह्मदेवने कहा—'मयूरेश! तुम्हारी प्रतिभा बृहस्पति-तुल्य है। यद्यपि तू बालक है, पर तूने अत्यन्त उचित बात कही है। देवताओंकी ओरसे वार्ता करनेके लिये नीति-निपुण पुष्पदन्तको भेजना चाहिये। पुष्पदन्त चतुर वक्ता एवं बलवान् हैं; उन्होंने महिम्नःस्तोत्रके द्वारा महेश्वरको संतुष्ट कर लिया है।'

ब्रह्मदेवका प्रस्ताव श्रवण कर पुष्पदन्तने गणेशसे निवेदन किया—'मयूरेश! आपकी महिमा मन और वाणीसे परे है। मायामोहित जीव आपकी महिमा नहीं जानते। नित्यज्ञानस्वरूप मयूरेश! आपने भू-भार हरण करनेके लिये शिवके घरमें अवतार लिया है। आप सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं। इस कार्यके लिये कृपया मुझे न भेजकर, किसी दूसरेको भेज दें। अत्यन्त उद्धत और पराक्रमी सिन्धुके सम्मुख होते ही मैं क्रुद्ध हो

* पहले इस अस्त्रका प्रयोग उन्मत्त सम्राट् दण्डोद्भवके लिये भगवान् नरने किया था।

('कल्याण'—'श्रीविष्णु-अंक')

जाऊँगा; नीति और मर्यादाकी रक्षा नहीं कर पाऊँगा। मैं उससे समरभूमिमें ही मिलूँगा।'

माता पार्वतीने कहा—'पुष्पदन्त! तुमने अत्यन्त प्राचीन नीतिकी बात कही है; क्योंकि शत्रु क्रोधी, बलवान् और सामके योग्य नहीं है। पर षडाननको भेजा जाय तो वह इसे पकड़ लेगा, वीरभद्रको भेजा जाय तो वह तुरंत क्रुद्ध हो जायगा, शृंगी तो वहाँ जानेपर युद्ध कर बैठेगा और प्रमथको भेजा जाय तो पता नहीं, वह क्या कर डाले? भूतराज भी इसके उपयुक्त नहीं और रक्तलोचन तो स्त्रीसौन्दर्यमें ही भूल जायगा।'

इस प्रकार माताके द्वारा सबका निषेध करनेपर मयूरेशने कहा—'नन्दी अवश्य ही अत्यन्त धीर, वीर, गम्भीर, बुद्धिमान्, धूर्त और दूसरेका आशय समझनेवाले हैं; इसलिये इन्हें भेजा जाय।'

भगवान् शंकरने कहा—'मयूरेश! तुमने उत्तम निर्णय किया। नन्दीको विविध रत्न और वस्त्र दो।'

मयूरेशने नन्दीको वस्त्राभूषण देकर कहा—'आप उसी नीतिका अनुसरण करें, जिससे बंदी देवता मुक्ति प्राप्त कर लें।'

नन्दीने मयूरेश एवं गौरी-शंकरके चरणोंमें प्रणाम किया तथा फिर गणोंके साथ समस्त देवताओंकी वन्दना कर समयके अनुसार कहा—'प्रभो! आप जिसपर अनुग्रह करते हैं, वही श्रेष्ठ हो जाता है। अतएव मैं श्रेष्ठ नीतिका पालन कर आपका प्रयोजन सिद्ध करूँगा। आपके प्रसादसे निश्चय ही मैं सम्पूर्ण पृथ्वी, शेष और सूर्यको पकड़कर आपके सम्मुख ला सकता हूँ।'

इस प्रकार कहकर नन्दी गणेश, शिव एवं जगज्जननी पार्वतीका स्मरण करते हुए वायुवेगसे चले। वे अपनी प्रतिज्ञा-पूर्तिके लिये अपने आराध्य शिवा-शिवसे मन-ही-मन प्रार्थना करते जा रहे थे।

महादैत्य सिन्धुसे वार्ता

नन्दी सीधे सिन्धुकी राजसभाके द्वारपर पहुँचे। द्वारपालने सिन्धुको इसकी सूचना दी। नन्दी असुरराजकी सभामें पहुँचे। वह सभा विशाल और अतिशय सुन्दर थी। उस समय अंगरक्षकोंसे घिरा रत्नसिंहासनासीन सिन्धु वारांगनाके नृत्यका आनन्द ले रहा था। मधुर वाद्य बज रहे थे।

नन्दी असुरोंको ऐसे प्रतीत हुए, जैसे राजसभामें साक्षात् सूर्यदेवका आगमन हुआ हो। कुछ असुर नन्दीकी सुदृढ़ काया और उनकी महती शक्तिका अनुमान कर भयभीत हुए एवं कुछ डरसे काँपने लगे। संकेतानुसार नन्दी आसनपर बैठे। सभा सर्वथा नीरव हो गयी। असुर जैसे काष्ठ-पुत्तलिका बन गये थे।

देवगुरु बृहस्पतिकी भाँति परम बुद्धिमान् नन्दीने सिन्धु-दैत्यसे कहा—'असुरराज! आजतक मैं कितनी ही राजसभाओंमें गया, किंतु तुम्हारे-जैसा मूढ़ अन्यत्र नहीं देखा। तुमलोग अत्यन्त बलवान् और सुन्दर हो, किंतु भेड़िये-जैसे बुद्धिहीन हो।* अपनी सभामें आये सम्मानित, बलवान् और बुद्धिमान् पुरुषका स्वागत करना नीति है, किंतु उसे तुम्हारे यहाँ न देखकर मैं अत्यन्त चकित हूँ। तुम्हारे अमात्य, सभासद् और समस्त नागरिक भी महामूर्ख हैं; क्योंकि यह धर्म केवल राजाका नहीं, अमात्यादिका भी है।'

गुणेशके शान्तिदूत नन्दीके वचन सुन सिन्धुने कहा—'गुणाकर! तुम्हारी बुद्धि ब्रह्माके समान है। तुम्हारा तेज अग्नि-तुल्य प्रतीत हो रहा है। वृषवर! तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा उद्देश्य क्या है?'

नन्दीने उत्तर दिया—''मैं ब्रह्माण्डाधिपति भगवान् शूलपाणिका वाहन हूँ। मेरा नाम नन्दी है। उन भगवान् शिवके घरमें दुष्टोंका संहार कर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये गुणेश अवतरित हुए हैं। वे अबतक सहस्रों वीराग्रणी असुरोंका वध कर चुके हैं। उनकी महिमाका गान करनेमें शेष भी समर्थ नहीं। तुम उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर लो; अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है।'' उन मयूरेशने कहा है कि—''तुम बंदी देवताओंको मुक्तकर सानन्द जीवन-निर्वाह करो। अन्यथा मैं युद्धके लिये विवश हूँ।''

नन्दीके वचन सुनकर सिन्धु अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसके नेत्र लाल हो गये और वह अग्नि-तुल्य जलन पैदा करनेवाली वाणी कहने लगा—'वृषभपुत्र! तेरी बृहस्पति-तुल्य बुद्धिमानी व्यर्थ होगी। तू मेरे पौरुषको नहीं जानता। मैंने जिन देवताओंको अपने बाहुबलसे बंदी बनाया है, वे युद्धमें मुझे पराजित करनेपर ही मुक्त हो सकेंगे। तृणपर जीवन-निर्वाह

* सुन्दराः कामसदृशा बुद्ध्या हीना वृका इव। (गणेशपु० २। १११। ८)

करनेवाले शिव मेरे भयसे मारे-मारे फिर रहे हैं और तू उसके दुधमुँहे बालकका मुझे भय दिखाता है। भला, शृगाल सिंहके सम्मुख क्या कर सकता है? तू शान्तिदूत होकर आया है, अन्यथा तेरे दुर्वचनसे यहाँ तेरे प्राण चले जाते। अरे वृष! मेरे कुपित होनेपर उन्हें त्रिभुवनमें भी शरण नहीं मिलेगी।'

सिन्धुके विषदग्ध वाक्शरसे क्षुब्ध होकर नन्दीने कहा—'असुराधम! तेरी बुद्धि विपरीत हो गयी है। इस कारण तू संनिपातग्रस्तकी भाँति प्रलाप कर रहा है। नीतिके उपदेश खलोंको प्रभावित नहीं करते। तू शिव और उनके सर्वशक्तिसम्पन्न महान् पुत्र मयूरेशकी निन्दा करता है। इससे प्रतीत होता है कि तेरी मृत्यु तेरे सिरपर नाच रही है। यहाँ मैं ही तुझे मृत्यु-मुखमें ढकेल देता, किंतु मेरे शान्तिप्रिय स्वामीकी आज्ञा नहीं है।'

इस प्रकार कहते हुए नन्दीने हुंकार किया। फलस्वरूप कितने ही भयभीत असुर पृथ्वीपर गिर पड़े। नन्दीने हर्षपूर्वक गर्जना की और तुरंत अपने स्वामी शिवके पास चले आये।

उन्होंने पार्वती-शिव तथा अन्य देवर्षियोंके सम्मुख मयूरेशसे कहा—'स्वामिन्! मैंने सम्राट् सिन्धुकी भर्त्सना करते हुए उसे समझाया; पर उस मूढ़मति असुरपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब उसपर आक्रमण करना ही श्रेयस्कर है।'

नन्दीके वचनसे प्रसन्न होकर मयूरेशने प्रमथगणों और सभासदोंको आक्रमणकी आज्ञा देते हुए कहा—'हमें युद्ध प्रिय नहीं। हम शान्तिकामी हैं, पर युद्धके बिना सत्त्वगुणी निरीह देवताओंकी मुक्ति सम्भव नहीं, इस कारण हमें असुरोंका प्राण-हरण करना ही होगा। यह हमारा परम पवित्र धर्मयुद्ध है। यह रणका अवसर हमें बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है और असुरोंकी पराजय होकर ही रहेगी। सुनिश्चित विजयश्रीकी प्राप्तिके लिये हमें तुरंत प्रबल आक्रमण करना चाहिये।' यों कहकर मयूरेशने सिंह-गर्जना की।

'मयूरेशकी जय!' प्रमथादि गणोंके सामूहिक उद्घोषसे आकाश गूँज उठा।

युद्धारम्भ

शस्त्रसज्ज प्रमथादिगण प्रस्तुत थे। मयूरेशने अपने कर-कमलोंमें चारों आयुध धारणकर मयूरपर बैठते ही गर्जना की। मयूरेश वाहिनी चली। त्रिशूल लिये वृषभारूढ़ शिव भी उनके साथ थे।

नन्दीने मयूरेशसे निवेदन किया—'स्वामिन्! आपकी वाहिनीके साथ गणनायक वीरभद्र और मैं ही शत्रुओंका सर्वनाश करनेमें समर्थ हूँ। आप पहले अपने सेवकोंका पराक्रम देखिये, फिर हमसे बचे-खुचे असुरोंका संहार कर लीजियेगा।'

अत्यन्त प्रसन्न होकर परम पराक्रमी मयूरेशने कहा—'अच्छी बात है। तुम सिंधु-दैत्यके सम्मुख अपना शौर्य प्रदर्शन करो। वीर्यवान् भूतराज, पुष्पदन्त और एक करोड़ गणोंके साथ पहले तुम्हीं जाकर युद्ध करो।'

'जय मयूरेश!' नन्दीने गर्जना की।

सिन्धुके दस करोड़ असुर-सैनिक गण्डकी-नगरसे बाहर निकले। वे अत्यन्त वीर, धीर, पराक्रमी, युद्धमें दक्ष एवं विविध शस्त्रास्त्रोंसे सज्ज थे।

असुरोंकी सेना सम्मुख आयी और प्रमथादि गणोंके साथ नन्दीने उनपर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध हुआ। विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा हुई। असुरोंके शवसे धरती पटने लगी। अन्ततः राक्षसोंकी विशाल सेना समाप्त हो गयी।

कुछ बचे सैनिक भागकर सिन्धुके समीप गये और बोले—'असुरराज! मयूरेशकी सेनाने हमारे सुदक्ष दस करोड़ वीर-सैनिकोंको काट डाला। उन्होंने नगरकी सीमापर, काननों, प्रमुख मार्गों एवं महत्त्वके सभी स्थलोंपर अधिकार कर लिया है। आप शीघ्रता करें, अन्यथा सम्पूर्ण नगर ध्वस्त हो जायगा।'

'अरे! मेरी अजेय वाहिनी तुच्छ गणोंसे पराजित कैसे हो गयी? पतंगोंके आक्रमणसे क्या मन्दरगिरि समाप्त हो जायगा?' सिन्धु व्यग्र हो गया। उसकी यह दशा देखकर उसके शेष वीर सैनिकोंने कहा—'राजन्! आप निश्चिन्त रहें। हमें आज्ञा दें। हम मयूरेश-वाहिनीको मक्खियोंकी तरह मसल देते हैं।'

'मेरे वीर सैनिको! तुम तुरंत जाओ और शत्रुको युद्धमें पराजित कर दो।' सिन्धुकी आज्ञा प्राप्तकर उसके वीर सैनिक गर्जन करने लगे। विशाल राक्षसी सेना धरतीको कँपाती गण्डकीनगरसे बाहर निकली। स्वयं सिन्धुने शस्त्र धारण किया और अश्वपर आरूढ़ हो युद्धभूमिमें जा डटा।

असुरोंने भयानक आक्रमण किया, किंतु नन्दी, भूतराज और पुष्पदन्तकी सेना पराक्रममें कम नहीं थी। घमासान युद्ध हुआ, पर शिव-वाहिनीके पैर उखड़ते देख भूतराज और पुष्पदन्त मयूरेशके समीप पहुँचे। युद्धमें अपनी सेनाके शिथिल होनेका समाचार पाकर स्वयं मयूरेश अपने शस्त्र धारणकर मयूरपर आरूढ़ हुए। वे तीव्रगतिसे युद्धभूमिमें पहुँचे। वृषभारूढ़ शिव भी समरके लिये जा डटे।

नन्दीने मयूरेशके चरणोंमें प्रणामकर भीषण गर्जना की। इस भयानक युद्धमें नन्दीके प्रहारसे सिन्धुका अश्व मारा गया और उसका दीप्तिमान् ध्वज टूटा। असुरने दूसरे अश्वपर बैठकर नवीन छत्र धारण किया, तब नन्दीने उससे कहा—'असुरराज! तुम्हारा पराक्रम कहाँ गया?'

'शत्रु-सैन्यका विनाश किये बिना हम आपको मुँह नहीं दिखायेंगे। आप तनिक भी चिन्ता न करें।'—सिन्धुके अन्यतम प्रीतिभाजन वीर अमात्य कौस्तुभ और मैत्र दो असुरोंने उसे संतोष दिया और वे तुरंत युद्धभूमिमें चले गये।

मयूरेशकी सेना इन योद्धाओंका आक्रमण न सह सकी। रात्रि आरम्भ हो गयी और दैत्य विजयी हुए। हर्षमें भरे कुछ दैत्य गर्जन करते और सिन्धु दैत्यकी जय मनाते नगरमें प्रविष्ट हुए

वीरभद्र और षडानन मयूरेशके समीप पहुँचे तो उन्होंने अपने कुछ और गणोंके साथ उन्हें तुरंत पुनः आक्रमण करनेकी आज्ञा दी।

विजयोन्मत्त असुरोंपर षडानन और वीरभद्र शिव-गणोंके साथ टूट पड़े। इस युद्धमें षडानन मूर्च्छित हो गये, पर मैत्र और कौस्तुभ मारे गये। अवशिष्ट असुर भाग गये। विजय मयूरेशकी सेनाके हाथ लगी। हर्षोन्मत्त गणोंने गगनभेदी गर्जन किया—'जय मयूरेश! जय गणेश!! जय विनायक!!!'

* * *

असुर-सैन्यकी पराजय

अपने सैनिकोंकी पराजयके संवादसे असुरराज सिन्धु अत्यन्त चकित, विस्मित और खिन्न हुआ। उसने असुर-सैनिकोंसे कहा—'वीरो! त्रैलोक्यको पराजित करनेवाले असुरोंको पराजयका मुँह देखना पड़े, यह कितने आश्चर्यकी बात है? निश्चय ही तुमलोग परम पराक्रमी और रणांगणमें शत्रुके मस्तकोंको कन्दुककी तरह उछालनेवाले हो। अब चक्रपाणि-पुत्र मैं शत्रुसे युद्ध करूँगा। तुमलोग शत्रुओंका सर्वनाश करनेके लिये प्रस्तुत हो जाओ।'

सेनाको आज्ञा देकर सिन्धु-दैत्यने शस्त्रास्त्र धारण किये और वह अश्वपर आरूढ़ हो गया। उसके साथ अमर्षमय गन्धासुर, मदनकान्त, वीर, ध्वज, महाकाय, शार्दूल और धूर्त—ये सात महारथी अपने-अपने सैनिकोंके साथ चले। उन सातों असुरोंने समरभूमिमें पृथक्-पृथक् व्यूहकी रचना की।

उधर युद्ध करनेके लिये सर्वप्रथम मयूरारूढ़ गणपति चले। तदनन्तर महाबलवान् नन्दी और पुष्पदन्त बढ़े। भूतराज और विकट दस लाख योद्धाओंके साथ थे। युद्धमें जयकी कामना करनेवाले चपलके सैनिक अर्धलक्ष थे। वीरभद्र और षडानन असंख्य सैनिकोंके साथ वहाँ पहुँचे। इन सातों सेनानायकोंने पृथक्-पृथक् अपनी अद्भुत सात व्यूह-रचना की।

भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों ओरके पराक्रमी सैनिक शत्रुको परास्त करनेके लिये विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करते थे, किंतु मयूरेशकी वाहिनी प्रबलतर होती जा रही थी। उस दिन युद्धमें सिन्धुके परम पराक्रमी गन्धासुर, मदनकान्त, वीर, ध्वज, महाकाय, शार्दूल और धूर्त—ये सातों सेनानायक परलोक सिधारे। असुरोंको आशातीत दुःखद पराजय प्राप्त हुई।

मयूरेशकी सेनामें विजय-दुन्दुभि बज उठी।

'जय मयूरेश!' शिवगणोंने उच्च स्वरसे हर्ष व्यक्त किया—'मयूरेशकी सदा जय!!'

सिन्धु-पराजय

अपनी पराजयका संवाद पाकर सिन्धु अत्यन्त खिन्न हुआ। उसका मुख मलिन हो गया। दुःखसे विकल होकर वह सोचने लगा—'यह सर्वथा विपरीत कैसे हो रहा है? देवताओंका दलन करनेवाले मेरे अन्यतम वीर सैनिक कैसे मार डाले गये? जिनके सम्मुख देवता मच्छरकी तरह भागते थे, उन्हें शिवके नगण्य बालकने यमपुरी कैसे भेज दिया?'

इस प्रकार सोचते हुए सिन्धु धनुष-बाण तथा अन्य अस्त्र लेकर अश्वारूढ़ हुआ और अत्यन्त कुपित

होकर मयूरेशकी सेनाके सम्मुख पहुँचा। उस समय सिन्धु साक्षात् काल प्रतीत हो रहा था। उसने तीक्ष्णतम शरोंकी इतनी वर्षा की कि देवता तथा शिवगण त्राहि-त्राहि करने लगे। कुछ ही देरमें उस महादैत्यने मयूरेशके अधिकांश सैनिकोंका नाश कर दिया। उसकी शस्त्र-वर्षासे वे कहीं भाग भी नहीं सकते थे। अवशिष्ट मयूरेश-वाहिनी अतिशय व्याकुल हो गयी।

क्रोधोन्मत्त असुर सिन्धु अश्वसे उतरकर पैदल युद्ध करने लगा। उसने वीरवर वीरभद्रका पैर पकड़ लिया और उन्हें घुमाकर इतने जोरसे पृथ्वीपर पटका कि वे फिर उठ न सके। फिर उसने नन्दीके मस्तकपर इतना तीव्र प्रहार किया कि उनका मस्तक फट गया, रक्तकी धारा फूट पड़ी।

यम-तुल्य सिन्धुने भूतराजकी कमर तोड़ दी और पुष्पदन्तका पेट चीर दिया। हिरण्यगर्भकी शिखा पकड़ कर उन्हें पृथ्वीपर पटका। बाणके प्रहारसे श्यामलका शिरश्छेद किया और वीर चपलकी ठोडी तोड़ दी। रक्तलोचनका पैर पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया। सुमुख उसके हाथसे बचकर दूर भागे। तलवारके प्रहारसे भृंगीका उदर विदीर्ण हो गया। इस प्रकार पराक्रमी सिन्धुके प्रहारसे देवताओं और गणोंके निष्प्राण शरीरोंसे धरती पट गयी। हर्षित महादैत्यने मेघ-गर्जन किया। विरूपाक्ष आदि सभी पलायित हो गये। मुनियोंके साथ केवल मयूरेश ही युद्ध-रत थे।

मयूरेश विकराल असुर सिन्धुके सामने पड़े। वे रक्त-पिपासु सिन्धुको देखकर सिंहके सम्मुख गज-शावककी भाँति भयभीत हो गये।

मयूरेशको देखकर क्रोधोन्मत्त सिन्धुने कहा— 'शिवपुत्र! मैंने तेरे पौरुषकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी; किंतु तू तो शृगालकी तरह काँप रहा है। तू तो मातृ-स्तनोंका पान कर गृहांगणमें क्रीड़ा करनेवाला है। अरे मूर्ख! मैं तो यही सोच रहा हूँ कि तुम्हारे कोमल शरीरपर अपने तीक्ष्ण शरोंका प्रहार कैसे करूँ?'

मयूरेशने तुरंत उत्तर दिया—'पामर! तू प्रलाप क्या करता है? मैं तो तेरा क्षणार्द्धमें ही वध कर डालूँगा। तूने सूर्यप्रदत्त वरके प्रभावसे भयानक पाप किया है; अब तेरी मृत्यु समीप आ गयी है। मैं तेरा वध करके देवताओंको मुक्त करूँगा। अन्तकाल समीप आनेपर सारे पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाते हैं। तू मेरे द्वारा मरकर दुर्लभ मुक्ति प्राप्त करेगा।'

सिन्धुने कुपित होकर कहा—'मूर्ख! जबतक मैं तेरा कोमल शरीर छिन्न-भिन्न नहीं कर देता, तबतक तू जल्पना कर ले। जो जिसका भक्त होगा, वह उसके लोक जायगा। तू व्यर्थ आत्मप्रशंसा क्यों करता है?'

इतना कहकर सिन्धुने शत्रुजयी जिस शरका कभी प्रयोग नहीं किया था, उसे उसने सूर्यदेवका स्मरण कर अपने धनुषपर रखा। उसने प्रत्यंचा कानतक खींची और उसे मयूरेशपर छोड़ दिया। किंतु मयूरेशने उक्त धनुष और बाणके लक्ष्यपर अपने वज्र-तुल्य परशुसे प्रहार किया। असुरका दुर्लभतम शर आकाशमें ही सैकड़ों टुकड़े होकर बिखर गया और उसके हाथके भी सैकड़ों टुकड़े हो गये। धनुष पृथ्वीपर गिर पड़ा।

क्रुद्ध दैत्यने मयूरेशपर चक्रसे प्रहार किया, किंतु गणेश्वरने तुरंत उसपर शूल फेंका। भयानक शब्दके साथ वह चक्र जल गया और शूल सिन्धुके मस्तकपर गिरा। उसके मुकुट तथा कुण्डलसहित दोनों कान लिये वह शूल मयूरेशके पास लौट आया।

छिन्नकर्ण सिन्धुने अत्यन्त व्याकुल होकर कहा— 'तुमने अपना पौरुष प्रदर्शित कर लिया, अब मैं तुम्हारी नाक काटता हूँ।' इतना कहकर वह पराक्रमी असुर खड्ग लेकर गुणेशकी ओर दौड़ा।

किंतु वह चकित हो गया। उसके चारों ओर विभिन्न रूपोंमें सायुध मयूरेश दीखने लगे। वह जिधर दृष्टि डालता, उधर ही चार आयुधोंसे विभूषित मयूरेश। लज्जित महादैत्यने अपने नगरमें जानेका विचार किया, किंतु उधर भी सायुध मयूरेशको खड़े देखा। आकुलतासे उसने नेत्र बंद कर लिये, पर हृदेशमें भी वही मयूरेश! असुरने नेत्र खोले तो सम्मुख चार आयुध धारण किये मयूरवाहन मयूरेश।

पराजयसे दुःखी, चकित और लज्जित सिन्धु अपने भवनको लौटा और चुपचाप मुँह ढककर सो गया।

मयूरेशने अपने मंगलमय विग्रहके अमृतमय वायुसे नन्दी, पुष्पदन्त, भूतराज, विकट, चपल और वीरभद्रादिको जीवित और स्वस्थ कर दिया। निद्रासे जगे व्यक्तिकी तरह सैनिकोंने मयूरेशसे निवेदन किया—

'स्वामिन्! कहाँ युद्ध करना है?' किंतु सिन्धुकी पराजयके संवादसे वे सभी हर्षमग्न हो गये। मृत असुरादि परम प्रभुके मंगलमय धाम पहुँच गये थे।

पत्नी-परामर्श

अत्यन्त दुःखी, उदास, म्लानवदन, निस्तेज, निष्फल और चिन्तित सिन्धु मुँह ढके पड़ा था। उसी समय उसकी वस्त्रालंकारभूषिता अनुपम लावण्यवती पत्नी दुर्गा उसके समीप गयी। उसने कहा—'स्वामिन्! आप चिन्तित और उदास कैसे पड़े हैं? प्रत्येक प्राणी ईश्वरके अधीन है; अतएव जो होना है, वह तो होगा ही, किंतु आप अपनी चिन्ताका कारण स्पष्ट करें तो मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ युक्ति बताऊँ।'

दुर्गाकी मधुर वाणी सुनते ही गण्डकीनरेश उठ बैठा और उससे कहने लगा—'प्रिये! अत्यन्त दुःखकी बात है; मैं तुम्हें क्या बताऊँ? रणमें मैंने सात कोटि देवता और शिवगणोंको धरतीपर सुला दिया, किंतु शिवके छोटे बच्चेने शूल फेंककर मेरे दोनों कान काट लिये। इसी कारण मैं लज्जावश मुँह छिपाये बैठा हूँ। तुम वह उपाय बताओ, जिससे मेरे शत्रुका वध हो।'

'स्वामिन्! आपने कोटि-कोटि शत्रुओंका वध कर वीर-धर्मका पालन करते हुए अद्भुत पराक्रम और पौरुषका परिचय दिया।' दुर्गाने अपने पतिसे कहा—'किंतु स्वामिन्! देवता, ब्राह्मण और गायसे द्वेष करनेवाला कभी यश नहीं प्राप्त कर सकता। इनसे द्वेष करनेसे कभी कल्याण नहीं होता। इनकी सेवा, वन्दन, ध्यान और पूजनसे ही इन्द्रादि देवताओंने सुस्थिर स्थान प्राप्त किया है।[1] जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही अंकुर उत्पन्न होता है। अशुभकर्मोंका परिणाम दुःख और शुभकर्मोंका फल सदा सुख होता है। इस कारण सज्जन पुरुष सदा आदरपूर्वक शुभकर्म करते और अपने शरीर, मन तथा वाणीसे सदा सबके हितका प्रयत्न करते रहते हैं।'[2]

सिन्धु-प्रिया दुर्गाने आगे कहा—"इसके सर्वथा विपरीत आपके पुरुषार्थसे देवता और ऋषि पीड़ित हुए हैं। पुरुषार्थ तो धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका साधक होता है। जिससे मन दूसरेके धनपर लुब्ध न हो, पर-स्त्रीकी ओर आकृष्ट न हो सके, वह 'पुरुषार्थ' है। जो अनिन्द्यकी निन्दा नहीं करते; जो शरणागतकी रक्षा करनेमें सतत तत्पर, धर्मपरायण और सम्पूर्ण भूतोंमें समदृष्टिसम्पन्न हैं, वे 'पुरुषार्थी' कहलानेयोग्य हैं। स्वामिन्! आप मेरी प्रार्थनापर ध्यान देंगे तो निश्चय ही आपका कल्याण होगा। आप समस्त सुरोंको मुक्त कर अखिललोकपालक मयूरेशकी चरण-शरण ग्रहणकर सानन्द जीवन व्यतीत करें। इसके विपरीत आपके निर्विघ्न सुखका अन्य कोई साधन या पथ नहीं दीखता।"

मरणोन्मुख रोगीके लिये ओषधिकी भाँति दुर्गाके प्रीतिपूर्ण शुभ-वचन सिन्धुको विष-दग्ध शर-तुल्य प्रतीत हुए। क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। उसने कहा—'कल्याणि! मैं तुम्हें चतुरा और बुद्धिमती समझता था, किंतु अपकीर्ति प्रदान करनेवाली तुम्हारी वाणी सुनकर मैं चकित हो गया हूँ। मैं मनसे भी कभी शत्रुकी प्रशंसा नहीं करता; युद्धारम्भ करके समर्पण करना तो मैंने सीखा ही नहीं। मैं सुख-दुःख, यश-अपयश, लाभ-हानि और जीवन-मृत्युकी चिन्ता नहीं करता। रणमें विजय प्राप्त करनेसे त्रिभुवनमें ख्याति और मृत्यु प्राप्त होनेपर स्वर्गकी प्राप्ति होती है। युद्धसे विरत होकर शत्रुकी शरण जानेपर निश्चय ही मुझे लोकमें अयश और मृत्युके पश्चात् पूर्वजोंके साथ नरककी प्राप्ति होगी।'

अन्ततः सिन्धुने अपनी सहधर्मिणीसे अपने अन्तर्हृदयकी बात कह दी—'मैं जगद्गुरु देवदेव मयूरेशको अच्छी तरह जानता हूँ। लंकाधिपति रावणके लिये भगवान् श्रीरामकी भाँति ये परमप्रभु मुझे मुक्त करनेके लिये ही अवतरित हुए हैं; किंतु मैंने रणांगणमें उनका शिरश्छेद करनेका निश्चय कर लिया है। मैं

१. न यशः प्राप्यते स्वामिन् गोब्राह्मणसुरद्विषाम्॥ तद्द्वेषाच्चैव कल्याणं कस्यापि हि न जायते।
सेवनाद् वन्दनाद्ध्यानात् स्मरणात् पूजनादपि। देवैरिन्द्रादिभिः स्थानान्याप्तानि च स्थिराणि च॥
(गणेशपु० २। ११७। १३—१५)

२. अशुभात् कर्मणो दुःखं सुखं स्याच्छुभकर्मणः। अतः सन्तः प्रकुर्वन्ति शुभं कर्म सदाऽऽदरात्॥
हितं च सर्वजन्तूनां कायेन मनसा गिरा। (गणेशपु० २। ११७। १७–१८)

कालको भी तुच्छ समझता हूँ। शूर जीवनमें अहंकार नहीं छोड़ते।'

इतना कहकर सिन्धु वस्त्राभूषण, केयूर, मुकुट, रत्नहार, धनुष, तूणीर, तलवार और ढाल आदि शस्त्र और शिरस्त्राण धारणकर राजसभामें जाकर अत्युत्तम सिंहासनपर आसीन हुआ।

सिन्धुपुत्र धर्म और अधर्मका वध

सिन्धु अपने त्रैलोक्य-विजयी वीर कौस्तुभ और मैत्रकी मृत्युपर दुःख प्रकट करते हुए अत्यन्त उद्विग्न हो गया। उस समय कल और विकल नामक दो वीर असुरोंने मयूरेशकी सेनाको पराजित करनेकी आज्ञा माँगी। सिन्धुने उन दोनों सेनानायकोंकी प्रशंसा करते हुए उन्हें शत्रुको ध्वस्त करनेका आदेश दे दिया।

विशाल सैन्यके साथ कल और विकल रणांगणमें पहुँचे। भीषण युद्ध हुआ। देवसेनाका संहार होने लगा। फिर तो पुष्पदन्त और नन्दी असुरोंका नाश करने लगे। लाखों दैत्योंको मृत्युमुखमें झोंककर वीरवर नन्दी और पुष्पदन्त असुरके भीषण प्रहारसे मूर्च्छित हुए ही थे कि वीरभद्र और षडानन आगे बढ़े। उन्होंने राक्षसोंका बड़ा विनाश किया और अन्तमें वीरभद्रने कलके ऊपर पत्थर पटककर उसे मार डाला और विकल षडाननके कराघातसे मुक्त हुआ।

विजयी देवसेना प्रसन्नमन शिविरमें पहुँची, किंतु सिन्धुका दुःख बढ़ता गया। उसे व्याकुल देखकर उसके वीर पुत्र धर्म और अधर्मने कहा—'हमारे वीर सैनिकोंने युद्धमें अद्भुत वीरताका परिचय देकर मुक्ति प्राप्त कर ली। अब आप हमें आज्ञा दें। हम शत्रु-सैन्यको नष्ट कर मयूरेशको बंदी बनाकर ही लौटेंगे। हमारे जीवित रहते आपके लिये चिन्ताका कोई कारण नहीं।'

सिन्धुने उन्हें प्रोत्साहित किया और वे दोनों धर्म और अधर्म गज, अश्व और पैदल असुरोंकी सेना लेकर युद्धभूमिमें जा डटे। उन्होंने इतना भयानक युद्ध किया कि वीरभद्र, हिरण्यगर्भ, भूतराज तथा मयूरेशकी सेना व्याकुल होकर भागने लगी। षडाननने अपने बारहों हाथोंसे भयानक युद्ध किया। फिर धर्म-अधर्म उनसे बाहुयुद्ध करने लगे। षडाननने उन दोनों असुरोंको एक साथ ऊपर उठा लिया और आकाशमें अनेक बार घुमाकर पृथ्वीपर जोरसे पटक दिया। धर्म और अधर्मके शरीर शतधा विदीर्ण हो गये। षडाननकी जय-जयकार होने लगी। प्रसन्नमन देवताओंने विजयके हर्षमें उच्च घोष किया—'जय मयूरेश!'

सिन्धु-दैत्यकी पुनः पराजय

अपने पुत्र धर्म और अधर्मकी मृत्युका संवाद सुनकर सिन्धु मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर वह करुणामूर्ति बना अवसन्न बैठा ही था कि उसकी लावण्यवती सहधर्मिणी केश बिखेरे करुण विलाप करती सभा-भवनमें पहुँची। उसका क्रन्दन सुनकर सभी सभासदोंके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे।

'मेरे दुधमुँहे बच्चोंको युद्ध करनेकी आज्ञा किसने दी?' रोती हुई दुर्गा कह रही थी। 'उन्हें मेरा आशीर्वाद भी नहीं लेने दिया गया। यदि मैं उन्हें आशिष् दे देती तो उनका संहार कदापि नहीं होता। मेरे आशीर्वादको विधाता भी नहीं टाल सकते थे।' दुर्गा उत्तरोत्तर रोती और विलाप करती जा रही थी। किसी प्रकार उसे पकड़कर अन्तःपुर भेजा गया।

महादैत्य सिन्धु अत्यन्त क्रोधोन्मत्त हुआ। उसने शस्त्रास्त्र ग्रहण किये और दाँत पीसता हुआ देवसेनाका सर्वनाश करनेके लिये प्रस्थित हुआ। उसके पीछे असुरोंकी विशाल सेना भी जा रही थी।

वीरभद्रादि वीरोंने मयूरेशको सूचना दी—'हमारा संहार करनेके लिये पुनः काल-तुल्य सिन्धु ससैन्य आ गया है।'

मयूरेश प्रसन्न होकर मयूरपर आरूढ़ हुए। उन्होंने चारों आयुध धारणकर मेघ-गर्जन किया, किंतु षडाननने उनके समीप पहुँचकर कहा—'विघ्नराज! वीरभद्रादिकोंके साथ मेरे रहते आप रणभूमिमें न जायँ। हमारे पराक्रम-प्रदर्शनके अनन्तर आप युद्ध कीजियेगा।'

इतना कहकर षडाननने मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम किया और चतुरंगिणी सेनाके साथ शत्रुके सम्मुख जा डटे।

देवताओं और असुरोंमें संग्राम छिड़ा। कई दिनोंतक भयानक युद्ध चलता रहा। उसमें दोनों पक्षोंकी हानि हुई, पर असुर अधिक मारे गये। अन्ततः सिन्धुने मायाका प्रयोग किया, तब मयूरवाहन रणभूमिमें पधारे। उनके सम्मुख असुरकी प्रत्येक माया नष्ट हो

गयी। प्रायः सभी असुर मार डाले गये। सिन्धुके मुकुट, कुण्डल तथा सभी शस्त्रास्त्र नष्ट हुए। वह भागकर अपने भवनमें छिप गया।

महादैत्य सिन्धुकी मुक्ति

देवाधिदेव मयूरेश अपने गणोंसे घिरे सुन्दर सिंहासनपर आसीन थे। उन परमप्रभुकी गौतमादि ऋषिगण स्तुति करने लगे। उसी समय वहाँ माता पार्वती पहुँचीं; उन्होंने तुरंत अपने पुत्रको अंकमें भर लिया। वे बोलीं—'बेटा! तू युद्धमें बुरी तरह थक गया होगा।' भगवान् शंकरने भी आते ही अपने प्राणप्रिय पुत्र मयूरेशका आलिंगन किया और कहने लगे—'तुमने इन्द्रादि देवताओंके लिये असाध्य कर्म कर दिया। परब्रह्मस्वरूप, चराचरगुरु, सर्वज्ञ और पृथ्वीका भार उतारनेमें तत्पर तुम्हें ब्रह्मादि देव भी नहीं जानते, फिर अन्य ऋषिगण कैसे जान सकेंगे?'

इस प्रकार भगवान् शंकर कह ही रहे थे कि वहाँ देवर्षि नारदने पहुँचकर माता पार्वतीसे कहा—'माता! मुझे यहाँ आये अधिक दिन बीत गये और दैत्य-वध सम्भव नहीं दीखता। दुष्ट सिन्धु न मरेगा और न मयूरेशका विवाह होगा; अतएव मुझे तो अब जानेकी आज्ञा प्रदान कीजिये।'

महामुनि नारदके वचन सुन षडानन बोले—'निष्पाप महामुनि! आप सर्वज्ञ होकर भी ऐसी बात कैसे कह रहे हैं? आप सर्वगुणसम्पन्न और निर्गुण मयूरेशकी महिमा नहीं जानते; अन्यथा ऐसी बात नहीं करते।'

'मैं तो प्रत्यक्ष सिन्धुकी मुक्ति देखकर ही आपलोगोंकी बात मान सकता हूँ।' नारदजीने स्पष्ट कह दिया।

'सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर! अब मैं कुछ विचार किये बिना सिन्धु-दैत्यकी जीवन-लीला समाप्त करूँगा।' देवर्षिको उत्तर देते हुए मयूरेश अपने वाहन मयूरपर जा बैठे। उन्होंने नन्दी और भृंगीसे कहा—'मैं युद्ध करता हूँ, तुमलोग मेरा रण-कौशल देखो।'

मयूरेशके पीछे नन्दी और भृंगी भी तीव्रगतिसे गण्डकीनगरमें प्रविष्ट हुए। वीरभद्र और भूतराज भी वहाँ पहुँचे। उस समय धरती काँपने लगी।

देवदेव मयूरेशके साथ चारों गण दुर्गपर चढ़ गये। यह समाचार सुनते ही सिन्धु अवसन्न हो गया। उसकी बुद्धि काम नहीं करती थी। रोती हुई उसकी पत्नी दुर्गाने कहा—'महाराज! मैंने आपको पहले ही समझाया, पर आपने मेरी बात नहीं मानी। अब फल सामने आ जानेपर चिन्ता करनेसे क्या लाभ होगा?'

तबतक भृंगी उड़कर सुवर्ण-रत्ननिर्मित शिखरपर पहुँच गये। उन्होंने सभा-मण्डपके बहुमूल्य स्तम्भोंको बलपूर्वक ध्वस्तकर उसके टुकड़ोंको चारों ओर फेंक दिया। युद्धावेशसे उनका मुख लाल हो गया था।

यह देखते ही सिन्धु-दैत्यके असंख्य सैनिक ढाल-तलवार, धनुष-बाण, भाला और मुद्‌गर आदि लिये 'मारो! मारो!!' चिल्लाते बाहर निकले। पराक्रमी असुर अपने प्राणोंपर खेल गये; किंतु कुछ ही देरमें उन्हें इन चार वीरोंने समाप्त कर दिया। एक भी असुर-सैनिक शेष नहीं बचा।

वे सिन्धुके भवनमें पहुँचे, जहाँ वह पर्यंकपर विश्राम कर रहा था। ये चारों उसके केश पकड़कर खींचने लगे। तब अत्यन्त क्रुद्ध सिन्धु-दैत्य बाहर निकला और भीषण युद्ध करने लगा।

सिन्धु भयानक संग्राम कर रहा था। सहसा उसने मयूरेशके विराट् रूपका दर्शन किया। उनका मस्तक अन्तरिक्षको भी लाँघ रहा था, चरण पातालमें थे एवं कानोंसे दिशाएँ आच्छादित थीं। उन विराट् प्रभुके सहस्र सिर, सहस्र नेत्र, सहस्र हाथ और सहस्र पैर थे। उसे भगवान् सूर्यके वचनका स्मरण हुआ—'ऐसे ही पुरुषके हाथों तुम्हारा प्राणान्त होगा।'

सिन्धुने मयूरेशपर एक-से-एक भयानक अस्त्रोंका प्रहार किया, किंतु देवदेव मयूरेश उन समस्त अस्त्रोंको विफल करके मयूरसे उतर पड़े। उन्होंने शुद्ध जलसे आचमन किया। फिर अमृतके बीजमन्त्रसे संयुक्त कर पवित्र मन्त्रका जप करते हुए दसों दिशाओंमें तेज बिखेरनेवाले अपने परशुको अभिमन्त्रित किया और क्रोधारुणलोचन मयूरेशने उक्त परशुसे असुरकी नाभिपर प्रहार किया। वह परशु आकाश और दसों दिशाओंको निनादित करता तथा पृथ्वीपर विद्युत्तुल्य प्रकाश फैलाता धनुषपर शर-संधान करते हुए असुरकी नाभिमें प्रविष्ट हो गया। अमृतस्थलीके ध्वस्त होते ही महादैत्य सिन्धु कटे वृक्षकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा।

मयूरेशके अनुग्रहसे उसे दुर्लभ मुक्ति प्राप्त हुई।

आकाशसे सुमन-वृष्टि होने लगी। मेघ मन्द-मन्द स्वरोंमें गर्जन करने लगे। सुखद वायु बहने लगी। दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं; गन्धर्व गान और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देवता-मुनि और षडाननादि वीर आदिदेव मयूरेशकी गद्गद कण्ठसे स्तुति करने लगे—

परब्रह्मरूपं चिदानन्दरूपं सदानन्दरूपं सुरेशं परेशम्।
गुणाब्धिं गुणेशं गुणातीतमीशं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
जगद्वन्द्यमेकं परोंकारमेकं गुणानां परं कारणं निर्विकल्पम्।
जगत्पालकं हारकं तारकं तं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
महादेवसूनुं महादैत्यनाशं महापूरुषं सर्वदा विघ्ननाशम्।
सदा भक्तपोषं परं ज्ञानकोशं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
अनादिं गुणादिं सुरादिं शिवाया महातोषदं सर्वदा सर्ववन्द्यम्।
सुरार्यन्तकं भुक्तिमुक्तिप्रदं तं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
परं मायिनं मायिनामप्यगम्यं मुनिध्येयमाकाशकल्पं जनेशम्।
असंख्यावतारं निजाज्ञाननाशं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
अनेकक्रियाकारणं श्रुत्यगम्यं त्रयीबोधितानेककर्मादिबीजम्।
क्रियासिद्धिहेतुं सुरेन्द्रादिसेव्यं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
महाकालरूपं निमेषादिरूपं कलाकल्परूपं सदागम्यरूपम्।
जनज्ञानहेतुं नृणां सिद्धिदं तं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
महेशादिदेवैः सदा सेव्यपादं सदा रक्षकं योगिनां चित्स्वरूपम्।
सदा कामरूपं कृपाम्भोनिधिं तं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥

सदा भक्तानां त्वं प्रसभपरमानन्दसुखदो
यतस्त्वं लोकानां परमकरुणामाशु तनुषे।
षडूर्मीणां वेगं सुरवर सदा नाशय विभो
ततोऽमुक्तिश्लाघ्या तव भजनतोऽनन्तसुखदात्॥
किमस्माभिः स्तोत्रं गजवदन ते शक्यमतुलं
विधातुं वा रम्यं गुणनिधिरसि प्रेम जगताम्।
न चास्माकं शक्तिस्तव गुणगणं वर्णितुमहो
त्वदीयोऽयं वारां निधिरिव जगत्सर्जनविधिः॥*

(गणेशपु० २। १२३। ४०—४९)

'जो परब्रह्मस्वरूप, चिदानन्दमय, सदानन्दरूप, देवेश्वर, परमेश्वर, गुणोंके सागर, गुणोंके स्वामी तथा गुणोंसे अतीत हैं, उन आदि ईश्वर मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो एकमात्र विश्ववन्द्य और एकमात्र परम ओंकारस्वरूप हैं, जो गुणोंके परम कारण एवं निर्विकल्प हैं, उन जगत्के पालक, संहारक एवं उद्धारक आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो महादेवजीके पुत्र, महान् दैत्योंके नाशक, महापुरुष, सदा विघ्न-विनाशक तथा सदैव भक्तोंके पोषक हैं, उन परम ज्ञानके कोष आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जिनका कोई आदि नहीं है, जो समस्त गुणोंके आदि-कारण तथा देवताओंके भी आदि-उद्भावक हैं, पार्वतीदेवीको महान् संतोष देनेवाले तथा सबके द्वारा सदा ही वन्दनीय हैं, उन दैत्यनाशक एवं भोग तथा मोक्षके प्रदाता आदि-मयूरेशको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो परम मायावी (मायाके अधिपति) और मायावियोंके लिये भी अगम्य हैं, महर्षिगण जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो अनादि आकाशके तुल्य सर्वव्यापक हैं, जीवमात्रके स्वामी हैं तथा जिनके असंख्य अवतार हैं, उन आत्मतत्त्वविषयक अज्ञानके नाशक आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो अनेकानेक क्रियाओंके कारण हैं, जिनका स्वरूप श्रुतियोंके लिये भी अगम्य है, जो वेदबोधित अनेकानेक कर्मोंके आदिबीज हैं, समस्त कार्योंकी सिद्धिके हेतु हैं तथा देवेन्द्र आदि जिनकी सदा सेवा करते हैं, उन आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो महाकालस्वरूप हैं, लव-निमेष आदि भी जिनके ही स्वरूप हैं, जो कला और कल्परूप हैं तथा जिनका स्वरूप सदा ही

---

* इस स्तुतिकी महिमा इस प्रकार कही गयी है—
इदं यः पठते स्तोत्रं स कामाँल्लभतेऽखिलान्॥ सहस्रावर्तनात्कारागृहस्थं मोचयेज्जनम्।
अयुतावर्तनान्मर्त्योऽसाध्यं यत्साधयेत्क्षणात्॥ सर्वत्र जयमाप्नोति श्रियं परमदुर्लभाम्।
पुत्रवान् धनवांश्चैव वशतामखिलं नयेत्॥

(गणेशपु० २। १२३। ५५—५७)

'जो इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। इसकी एक सहस्र आवृत्ति करनेसे मनुष्य कैदमें पड़े हुए अपने स्वजनको भी मुक्त कर सकता है। दस हजार बार इसका पाठ करनेसे मनुष्य असाध्य वस्तुको भी क्षणमात्रमें सिद्ध कर लेता है। उसे सर्वत्र विजय प्राप्त होती है; परम दुर्लभ लक्ष्मी उपलब्ध होती है। वह पुत्रवान् और धनवान् होता है तथा सबको वशमें कर लेता है।'

अगम्य है, जो लोगोंके ज्ञानके हेतु तथा मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं, उन आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। महेश्वर आदि देवता सदा जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, जो योगियोंके नित्य रक्षक, चित्स्वरूप, निरन्तर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और करुणाके सागर हैं, उन आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। सुरश्रेष्ठ! आप सदा भक्तजनोंके लिये हठात् परमानन्दमय सुख देनेवाले हैं; क्योंकि आप संसारके जीवोंपर शीघ्र परम करुणाका विस्तार करते हैं। प्रभो! काम-क्रोधादि छः प्रकारकी ऊर्मियोंके वेगको शान्त कीजिये; क्योंकि आपके अनन्त सुखदायक भजनकी अपेक्षा मुक्ति भी स्पृहणीय नहीं है। हे गजानन! क्या हम आपके योग्य कोई उत्तम या सुन्दर स्तवन कर सकते हैं? आप समस्त गुणोंकी निधि और सम्पूर्ण जगत्के प्रेमपात्र हैं। आपके गुणसमूहोंका वर्णन करनेकी शक्ति हममें नहीं है। आपका जो यह जगत्की सृष्टिरचनाका क्रम है, वह समुद्रके समान अपार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर देवताओंने कहा—'मयूरेश्वर! आपने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी। आपने असुरोंका वध कर देवताओंको निश्चिन्त और सुखी कर दिया।'

'मयूरेश्वरके द्वारा महादैत्य मारा गया।'—यह समाचार सुनते ही माता पार्वती आनन्द-विह्वल हो गयीं। उन्होंने आकर अपने परम पराक्रमी पुत्र मयूरेशको छातीसे लगा लिया। जननीके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये थे।

आनन्दमग्न पार्वतीवल्लभ शिव भी वहाँ पहुँचे। उन्होंने अपने पुत्रका आलिंगन करते हुए कहा—'बेटा! तुमने अद्भुत कार्य किया। जिस महादैत्यके भयसे देवता प्राण लिये भागते फिरते थे, उसे तुमने मारकर पृथ्वीका बोझ उतार दिया। त्रैलोक्य हर्षित हो गया।'

मयूरेश-स्तवनके अनन्तर देवगण स्वधाम पधारे।

लीला-संवरण

महावीर सिन्धुके निधनका संवाद जब नगरमें पहुँचा तो सिन्धुके माता-पिता उग्रा और चक्रपाणि तथा सहधर्मिणी दुर्गा हाहाकार करने लगी। उनके करुण-क्रन्दनसे सम्पूर्ण राजभवन शोकाकुल हो उठा। विलाप करती हुई दुर्गा अपने पतिके शवके साथ बिल्व और चन्दनकी चितापर जा बैठी।

चक्रपाणिने देवदेव मयूरेशके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति करने लगे—'प्रभो! आप निर्गुण, चराचर-गति, गुणाध्यक्ष, शुद्ध और विश्वपति हैं। आपकी मायासे मोहित प्राणी आपको नहीं जानते। आपके दुर्लभ दर्शनसे आज मेरा और मेरे समस्त नागरिकोंका जीवन सफल हो गया। हम सभी धन्य हो गये।'

करुणासागर मयूरेशने अत्यन्त संतुष्ट होकर चक्रपाणिसे कहा—'नरेश! तुम्हारा वीर पुत्र मेरे हाथों मुक्त हुआ। अब तुम कोई वर माँगो।'

राजाने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'देवेश्वर! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं तो कृपापूर्वक अपने त्रैलोक्यपावन चरणकमलोंसे मेरे राजभवन और नगरको पवित्र करें।'

करुणामूर्ति मयूरराजने स्वीकृति दे दी।

ध्वजा और पताका आदिसे सजे गण्डकीनगरमें गणोंसहित मयूरराजने प्रवेश किया। राजा तथा समस्त प्रजाने उनका उन्मुक्त हृदयसे अभिनन्दन किया। मयूरेश चक्रपाणिकी सभामें अत्युत्तम सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके चारों ओर गणोंका समुदाय था। चक्रपाणि-नरेशके द्वारा मुक्त किये गये नवीन वस्त्राभरण धारण किये विष्णु आदि समस्त देवता भी श्रेष्ठ आसनपर विराजमान थे।

समस्त देवताओं और नागरिकोंने उक्त विशाल रत्न-मण्डपमें देवदेव मयूरेशकी पूजा और स्तुति की। फिर नरेशने सम्पूर्ण देवताओंकी विधिवत् पूजा की और हाथ जोड़कर कहा—'आज मेरा जीवन और जन्म धन्य है, जिससे मुझे समस्त देवताओंका एक साथ दर्शन और पूजनका परम पुनीत अवसर प्राप्त हुआ। मेरे शत-शत जन्मोंके पुण्य उदित होनेसे मुझे परम प्रभु मयूरेशके प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं।'

परम प्रभुकी अद्भुत लीलासे मोहित होकर मोहाच्छन्न इन्द्रने रुष्ट होकर कहा—'राजन्! आज इतने श्रेष्ठ देवताओंकी उपस्थितिमें एक बालककी प्रथम पूजा करके तुमने बुद्धिहीनताका परिचय दिया है। स्रष्टा पद्मयोनि, पालक विष्णु, सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी

त्रैलोक्यजननी अम्बा और सूर्यादि महान् देवोंकी उपेक्षा करके तुमने एक बच्चेको सम्मान प्रदान किया, यह कदापि उचित नहीं था।'

चक्रपाणिने देवेन्द्रका समाधान करनेका प्रयत्न किया—'महामान्य सुरेन्द्र! रुद्र, सूर्य, कुबेर, इन्द्र, वायु, अग्नि आदि समस्त देवताओंको मेरे वीर पुत्रने पराजित कर दिया था। सभी देवता उसके भयसे छिप गये, बंदी हुए; किंतु परमपराक्रमी सर्वात्मा मयूरेशने मेरे पुत्रसहित समस्त योद्धाओंको मुक्ति प्रदान कर देवताओंको भी स्वतन्त्रता प्रदान की। मेरी दृष्टिमें इस धरतीका उद्धार करनेवाले सर्वसमर्थ सर्वप्रभु शिवा-शिवनन्दन मयूरेश ही अग्रपूजाके अधिकारी हैं।'

उसी समय मयूरेशने भयंकर गर्जना की। उक्त गर्जनसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो ब्रह्माण्ड फट जायगा। कितने ही लोग मूर्च्छित हो गये। पृथ्वी काँपने लगी। सहसा कोटि-कोटि सूर्य-तुल्य प्रकाशसे जगत् आच्छादित हो गया। तदनन्तर देवताओंने मयूरेशके रूपमें अनेक वस्त्रालंकार-विभूषित, दशबाहु अत्यन्त सुन्दर गजाननका दर्शन किया।

देवगण अत्यन्त विस्मित हुए। उन्हें तुरंत दशबाहु गजाननके स्थानपर मध्यमें पद्मासनस्थ वक्रतुण्ड, अग्निकोणमें शिव, नैर्ऋत्यमें सूर्य, वायव्यमें पार्वती और ईशानकोणमें बैठे नारायणके दर्शन हुए। समस्त देवता भ्रमित हो गये।

उस समय देवताओंने भ्रमनिवारिका आकाशवाणी सुनी—'सबकी आराधनाके योग्य अनादिनिधन जगद्व्यापी गजानन ही पाँचों रूपोंमें प्रकट होते हैं। वे समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले प्रभु देव, मनुष्य, यक्ष, नाग और राक्षस—सबके पूज्य हैं; इन एक मयूरेशकी पूजासे ही पंचदेवोंकी पूजा सम्पन्न हो जाती है; अतएव भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये।'

इन्द्रादि देवताओंने शुण्डदण्डसे सुशोभित मयूरेशको आदिपुरुष और ओंकारके रूपमें देखा, तब उनके भ्रमका निवारण हो गया और उन्होंने आदरपूर्वक 'मयूरेशकी जय' बोलते हुए उनकी पूजा की। फिर तो चक्रपाणिने अत्यन्त प्रसन्न होकर मयूरवाहन मयूरेशकी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पंचामृत, शुद्ध जल, दिव्य वस्त्र, आभूषण, पुष्प, धूप, दीप, विविध प्रकारके उत्तम नैवेद्य, फल, ताम्बूल, पुष्कल दक्षिणा, नीराजन, मन्त्र-पुष्प, नमस्कार और स्तुतिके द्वारा विधिपूर्वक पूजा की।

वहीं आनन्दित देवर्षिने ब्रह्मासे कहा—'कमलोद्भव! आपके आदेशानुसार मैंने पार्वती-शिवसे आपकी सिद्धि और बुद्धि दोनों पुत्रियोंका परिणय मयूरेशके साथ निश्चित कर दिया था; किंतु मयूरेशने देवताओंकी मुक्तिके पूर्व विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। वह प्रतिज्ञा उन्होंने पूरी कर दी। अब आप उन पुत्रियोंका विवाह परम पराक्रमी मयूरेशके साथ कर दें।'

विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी अनिन्द्य सुन्दरी, सद्‌गुणसम्पन्ना सिद्धि-बुद्धिका विवाह विधिपूर्वक मयूरेशके साथ कर दिया और बोले—'मयूरेश! मेरी कामना आज पूरी हो गयी। आजतक मैंने बड़े ही प्यारसे इन पुत्रियोंका लालन-पालन किया है, अब इनकी रक्षा तुम करो।'

इन्द्रादि देवताओंने हाथ जोड़कर मयूरेशसे निवेदन किया—'प्रभो! आपने हमें पराधीनतासे मुक्त कर दिया और कृपापूर्वक आपने सिन्धुको भी मोक्ष प्रदान किया। अब आप आज्ञा दें, हम सब और गौतमादि ऋषि भी अपने-अपने धामको प्रस्थान करें।'

मयूरेशने आज्ञा प्रदान कर दी। समस्त देवताओं और ऋषियोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सब अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए।

मयूरेश मोरपर आरूढ़ हुए। उन्होंने पार्वती-शिव और गणोंसहित अपने नगर जानेकी इच्छा व्यक्त की। चक्रपाणि-नरेश और समस्त नागरिक उन्हें पहुँचाने नगरसे बाहर एक योजन दूर आये। मयूरेशने जब उन्हें लौटनेके लिये कहा तो सबके नेत्र सजल हो गये। उन्होंने कहा—'प्रभो! आपका वियोग असह्य है। हमपर सदा कृपा रखें।' प्रेममूर्ति मयूरेशने उन्हें समझा-बुझाकर बिदा किया और अपने नगर पहुँचे।

एक दिन मयूरेशने ब्रह्मदेव, विष्णु और शंकर आदि समस्त देवताओंके सम्मुख अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'देवताओ! मैंने जिस उद्देश्यसे पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया था, वह पूर्ण हो गया। दैत्योंकी मृत्युसे धरतीका बोझ उतर गया और सिन्धु-कारागारसे मुक्त देवगण स्वतन्त्र हुए। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार पूर्ववत् होने लगा। अब मैं अपने धामको जाऊँगा।'

प्रभु मयूरेशके ये वचन सुनकर देवताओंके नेत्रोंसे अश्रु बह चले। उन्होंने कहा—'प्रभो! आप हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?'

मयूरेशके जानेकी बात सुनकर माता पार्वती तो मूर्च्छित हो गयीं। सचेत होनेपर वे रोती हुई बोलीं—'हे दीनानाथ! हे दयासागर! तुम माताको छोड़कर कहाँ जा रहे हो? मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती।'

मयूरेशने जननीको समझाया—'माता आपके वियोगका दुःख मुझे भी है, पर मैं एक स्थानपर सदा नहीं रह सकता। एक भयंकर दैत्यका वध करनेके लिये मैं द्वापरमें पुनः आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होकर आपको पुत्र-सुख प्रदान करूँगा। मेरा वचन मिथ्या नहीं होता।'

षडाननने व्याकुल होकर कहा—'आप जहाँ जाते हैं, वहाँ मुझे भी साथ ले चलें। मुझ कृपण, दीन और बालककी उपेक्षा न करें।'

परम प्रभुने रोते हुए षडाननको आश्वस्त किया—'भाई! तुम चिन्ता मत करो। मैं सर्वान्तर्यामी तुम्हारे हृदयमें भी हूँ। तुमसे मेरा वियोग कदापि सम्भव नहीं।'

तदनन्तर उन्होंने अपना मयूर षडाननको देते हुए कहा—'मयूरध्वज!'

और मयूरेश प्रभु वहीं अन्तर्धान हो गये।

जय मयूरेश्वर!

~~o~~

(३)

श्रीगजानन

सिन्दूरका जन्म

द्वापर युगकी बात है। एक दिन पार्वतीवल्लभ शिव ब्रह्म-सदन पहुँचे। उस समय चतुर्मुख शयन कर रहे थे। कमलासनने निद्रासे उठते ही जँभाई ली। उसी समय उनके मुखसे एक महाघोर पुरुष प्रकट हुआ। जन्म लेते ही उसने त्रैलोक्यमें भय उत्पन्न करनेवाली घोर गर्जना की। उसके उस गर्जनसे सम्पूर्ण वसुधा काँप गयी, दिक्पाल चकित हो गये और शेषनाग क्षुब्ध होकर विष उगलने लगे। पर्वत खण्ड-खण्ड हो गये और मनुष्यजाति तो कल्पान्तके भयसे अत्यन्त व्याकुल हो गयी।

उस महाघोर पुरुषकी अंग-कान्ति जपा-पुष्पके समान लाल थी और उसके शरीरसे अत्यन्त सुगन्ध निकल रही थी। वह पुष्पधन्वाकी तरह अत्यन्त सुन्दर था। उसके अनुपम रूप-सौन्दर्यको देखकर पद्मयोनि भी चकित हो गये। उन्होंने उससे पूछा—'तुम कौन हो? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने उत्तर दिया—'देवाधिदेव! आप अनेक ब्रह्माण्डोंका निर्माण करते हैं, सर्वज्ञ हैं; फिर अनजानकी तरह कैसे पूछ रहे हैं? जँभाई लेते समय मैं आपके मुखसे प्रकट हुआ आपका पुत्र हूँ; अतएव आप मुझे स्वीकार कीजिये और मेरा नामकरण कर दीजिये। हे नाथ! आप मुझे रहनेका स्थान और आहार प्रदान कीजिये तथा मुझे क्या करना है, यह भी बता दीजिये।'

विधाता अपने पुत्रका सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये थे; अब उसकी मधुर वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"बेटा! अतिशय अरुणवर्ण होनेके कारण तेरा नाम 'सिन्दूर' होगा। त्रैलोक्यको अधीन करनेकी तुझमें अद्भुत शक्ति होगी।"

अपने पुत्रसे अत्यधिक तुष्ट वेदगर्भने उसे वर प्रदान करते हुए आगे कहा—'तू क्रोधपूर्वक अपनी विशाल भुजाओंमें पकड़कर जिसे दबोच लेगा, उसके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे। पंचभूतोंसे तुम्हें कभी कहीं भय नहीं रहेगा। देव, दानव, यक्ष और मनुष्यसे तू सदा निर्भय रहेगा। इन्द्रादि लोकपाल और काल भी तेरी क्षति नहीं कर सकेंगे। दिनमें और रात्रिमें भी तुझे कभी भय नहीं प्राप्त होगा। बेटा सिन्दूर! सजीव और निर्जीव किसी वस्तुसे तुझे भय नहीं; त्रैलोक्यमें तेरी जहाँ इच्छा हो, तुझे जो स्थान प्रिय लगे, वहीं निवास कर।'

पितामहसे इतने वर प्राप्तकर सिन्दूरने प्रसन्नतापूर्वक गर्जन किया। उसके अतिशय कर्कश स्वरसे समुद्र क्षुब्ध हो गये। उनमें ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। सिन्दूरने अपने पिताके चरणोंमें प्रणामकर कहा—'अखिल ब्रह्माण्डनायक! मैं आपके वचनामृतसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया। आप सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके योगसे

विश्वकी रचना, पालन और संहार करते हैं। आपके शयन करनेसे सम्पूर्ण सृष्टि तमसाच्छन्न हो जाती है; सभी जीव शान्त हो जाते हैं। कोटि-कोटि कल्पोंतक कठोर तपश्चरण करनेपर आपके दुर्लभ दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है और आप सहज ही मुझपर प्रसन्न हो गये; अतएव इससे बढ़कर मुझे और क्या चाहिये?'

इतना कहकर उसने लोक-पितामहकी प्रदक्षिणा कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी अनुमति लेकर वह भूलोकके लिये प्रस्थित हुआ। सिन्दूर मार्गमें सोचने लगा—'जन्म लेकर मैंने तो जप, तप एवं वेदाध्ययन आदि कुछ भी नहीं किया, फिर पिताने मुझे इतने वर कैसे दे दिये? उनका वर-प्रदान सत्य है कि नहीं, कैसे पता चले? यहाँ कोई है भी नहीं, जिसे मैं आलिंगन कर वरका परीक्षण कर लूँ। कहाँ जाऊँ? कहीं तो कोई नहीं दीखता।'

चतुर्मुख पलायित हुए

सिन्दूर वहींसे लौटा। वह सीधे पितामहके समीप पहुँचा। उसने अपनी दोनों भुजाओंको तौलते हुए गर्जना की। उसकी कुचेष्टाकी कल्पना कर भयभीत पद्मयोनिने दूर जाकर पूछा—'लौट कैसे आये बेटा?'

'आपके वरकी परीक्षा करना चाहता हूँ।'

सिन्दूरका कथन सुनकर पितामहने उससे कहा—'सिन्दूर! तेरे सौन्दर्यको देखकर मैंने तेरी कुटिलताका विचार किये बिना ही पुत्र-स्नेहवश तुझे वरदान दे दिया और तू उसकी परीक्षा मुझपर ही करना चाहता है? मैं तेरी दुष्टता नहीं जान सका।'

अपने सुन्दर पुत्र सिन्दूरसे सावधान विधाता दूरसे ही दुःखभरे हृदयसे पश्चात्ताप करते हुए कह रहे थे—'विषधरको दुग्धपान करानेसे उसका विष ही बढ़ता है, यह मैं नहीं समझ पाया था। पर अब तू असुर हो जायगा। सिन्दूर-प्रिय सिन्दूरारुण प्रभु गजानन तेरे लिये अवतरित होंगे और निश्चय ही तुझे मार डालेंगे।'

इस प्रकार शाप देते हुए पितामह प्राण लेकर भागे। उनके पीछे अत्यन्त बलवान् वर-प्राप्त असुर भी दौड़ा। असुरकी तुलनामें लोकस्रष्टा दुर्बल थे; किंतु प्राण-रक्षाके लिये वे तीव्र गतिसे दौड़ रहे थे। मूढ़ असुर भी वरकी परीक्षा करनेके लिये उनके पीछे-पीछे दौड़ता जा रहा था। आगे-आगे विधाता और उनके पीछे-पीछे देखनेमें अतिशय सुन्दर, किंतु हृदयका अत्यन्त क्रूर कुटिल पुत्र उनको अपनी भुजाओंमें जकड़कर पीस डालनेके लिये दौड़ रहा था।

दौड़ते-दौड़ते वयोवृद्ध पितामहका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। वे हाँफते-काँपते साँस लेनेके लिये जरा-सा रुकना चाहते थे, पर पीछे देखा तो चिरंजीव दौड़े आ रहे हैं। स्रष्टाने साहस किया। फिर दौड़े। दौड़ते-दौड़ते वे वैकुण्ठ पहुँचे।

अत्यन्त भयभीत, कम्पित, स्वेदसिक्त, म्लानवदन स्रष्टा और उनके पीछे विशालकाय शक्तिशाली असुरको देखकर श्रीहरिने तुरंत उठकर पितामहका आलिंगन किया और उनका हाथ पकड़कर उन्हें अपने आसनपर बैठाया, उनकी पूजा की। फिर उन्होंने पूछा—'आप इतने भीत और उदास कैसे हैं? आपका शरीर पसीनेसे भीग कैसे गया है?'

भयभीत पितामहने निवेदन किया—'प्रभो! मैं सो रहा था, उस समय दयामय कर्पूरगौर मेरे यहाँ पधारे। निद्रासे उठकर मैंने जँभाई ली, उसी समय यह अत्यन्त सुन्दर सिन्दूर पैदा हुआ। पुत्र-सौन्दर्यसे मुग्ध होकर मैंने इसे त्रैलोक्यको वशमें करनेका वरदान दे दिया और पुत्र-स्नेहके वश मैंने इसे किसीका आलिंगन करनेपर उसे समाप्त कर देनेका वर प्रदान कर दिया; किंतु यह दुरात्मा मुझे ही अपने भुजपाशमें आबद्ध कर मार डालना चाहता है। दयामय! इस दुष्टसे आप मेरी रक्षा कीजिये।'

श्रीविष्णुने कहा—'पितामह! पहले बिना सोचे वर प्रदान करनेका जो दुष्परिणाम होता है, वह तो होगा ही। मोहग्रस्त पिताके अविचारपूर्ण वरसे त्रिभुवनको यातना सहनी पड़ेगी।'

इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुमें वार्ता हो ही रही थी कि दौड़ता हुआ सिन्दूर आ पहुँचा। वह गर्जन करते हुए विधाताको अंग-पाशमें लेनेके लिये झपटा ही था कि वे चिल्ला पड़े—'प्रभो! रक्षा कीजिये! रक्षा कीजिये!!'

वर-प्राप्त सिन्दूरकी सुगठित प्रचण्ड काया देखकर श्रीविष्णुने अत्यन्त मधुर वाणीमें उस महामूढ़ असुरको समझाया—'बेटा! तू शक्तिशाली तरुण है और पितामह वयोवृद्ध निर्बल ब्राह्मण हैं। अतएव इनसे युद्ध करनेमें तुम्हें किसी प्रकारका यश तो प्राप्त होगा नहीं, अपितु तुम्हारी सर्वत्र निन्दा होने लगेगी। अतएव इन्हें छोड़ दे।'

'तब तुम्हीं युद्ध करो।' सर्वथा मूर्ख, उद्दण्ड, प्रचण्ड असुर विष्णुकी ओर बढ़ा।

'अरे बेटा! मैं तो सत्त्वगुणसम्पन्न होनेके कारण सृष्टिके पालनमें लगा रहता हूँ। इस कारण युद्धमें मुझे पराजित करना तुम्हारे लिये अत्यन्त सरल है।' श्रीविष्णुने असुरको वहाँसे हटानेका प्रयत्न किया—'हाँ, वीरतामें कामारि प्रसिद्ध हैं। तुम उनसे युद्ध करो; तब तुम्हें संतोष तो होगा ही, तुम्हारी कीर्ति भी बढ़ेगी।'

कैलासपर

बलोन्मत्त मूर्ख असुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह बड़े वेगसे उड़ा। त्रिभुवनको कम्पित, पर्वतोंको चूर्ण और वनोंको ध्वस्त करता हुआ वह कैलासपर्वतपर पहुँचा। वहाँ आशुतोष शिव पद्मासन लगाये ध्यानस्थ थे। नन्दी और भृंगी आदि गण उन परम प्रभुके आस-पास थे और माता पार्वती उनकी सेवा कर रही थीं।

भस्माच्छादित व्याघ्राजिनधर तपस्वी कर्पूरगौरके ललाटपर अर्धचन्द्र सुशोभित था। उनके विशाल स्कन्धपर गजचर्म पड़ा हुआ था। ऐसे परम पावन एवं परम शान्त त्रैलोक्य-त्राता शिवको देखकर सिन्दूर उनकी निन्दा करने लगा। उसने कहा—'इस अरण्यवासी तपस्वीसे क्या युद्ध करूँ? हाँ, इसकी परम सुन्दरी सहधर्मिणीको ही ले जाऊँ।'

यह सोचकर सिन्दूर सतीकी ओर मुड़ा ही था कि वे वट-पत्रकी भाँति काँपती हुई मूर्च्छित हो गयीं। महापातकी असुरने जगजननीकी वेणी पकड़ ली और उन्हें बलपूर्वक ले चला।

नन्दी और भृंगी आदि गण उक्त असुरका कुछ बिगाड़ न सके। सर्वथा असहाय और निरुपाय माता पार्वती रोती हुई विलाप करती जा रही थीं।

व्याकुल नन्दी और भृंगी आदि शिवगण हाहाकार करने लगे। अत्यधिक कोलाहलसे त्रिपुरारिकी समाधि भंग हुई। त्रिनेत्रने गणोंसे चिन्ताका कारण पूछा तो अधीर गणोंने बताया—'प्रभो! आप प्रगाढ़ समाधिमें स्थित थे, उस समय अत्यन्त बलवान् पर्वताकार एक दैत्य आया। उसके गर्जनसे धरा काँपती थी, पर्वत चूर्ण होते जा रहे थे और वृक्ष टूट-टूटकर गिर पड़ते थे। उसे देखते ही माता काँपने लगीं और उसकी दृष्टि पड़ी तो वे भयवश मूर्च्छित हो गयीं। उक्त क्रूरतम असुर मूर्च्छित माता पार्वतीको बलात् ले गया। राक्षसराज दशाननके क्रूर करोंमें पड़ी जनकनन्दिनीकी तरह माता रोती और विलाप करती जा रही थीं। हमलोग कुछ नहीं कर सके, हाथ मलते रह गये।'

क्रोधसे भगवान् शंकरके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने तुरंत अपनी दसों भुजाओंमें त्रिशूलादि शस्त्रास्त्र धारण किये और वृषभपर आरूढ़ हो वे तीव्रतम गतिसे सिन्दूरके पीछे दौड़े तथा क्षणभरमें ही उसके समीप पहुँच गये। उन्होंने मदान्ध असुरके सम्मुख जाकर कहा—'महादुष्ट! मेरी पत्नीको तुरंत छोड़ दे। मेरी दृष्टिमें पड़कर तू भाग नहीं सकता।'

अतिशय गर्वोन्मत्त सिन्दूरने क्रोधपूर्वक उत्तर दिया—'मैं मच्छरके भिनभिनानेकी चिन्ता नहीं करता। मेरे श्वासवायुसे सुमेरु काँप जाता है, फिर तुझ तपस्वीकी क्या गणना है? तू यहाँसे सीधे जाकर किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह कर ले; अन्यथा यदि युद्ध करना चाहता है तो आ जा।'

सिन्दूरका शिवसे युद्ध

इस प्रकार कटूक्ति कहकर दर्पोन्मत्त सिन्दूर त्रिपुरारिसे बाहु-युद्धके लिये आगे बढ़ा। अत्यन्त कुपित वृषभध्वज भी असुरसे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत थे ही; उसी समय माता पार्वतीने मन-ही-मन मयूरेशका चिन्तन किया। तत्क्षण कोटि-सूर्यसमप्रभ देवदेव मयूरेश्वर ब्राह्मणके वेषमें सिन्दूर और शंकरके बीच प्रकट हो गये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं वस्त्राभूषणभूषित थे। उन्होंने अपने तीक्ष्णतम तेजस्वी परशुसे असुरको पीछे हटाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'माता गिरिजाको तुम मेरे पास छोड़ दो; फिर शिवके साथ युद्ध करो। युद्धमें जिसकी विजय होगी, पार्वती उसीकी होंगी; अन्यथा नहीं।'

ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशके वचन सुनकर सिन्दूर संतुष्ट हुआ। उसने माता पार्वतीको मयूरेशके पास चले जाने दिया और फिर युद्ध आरम्भ हुआ। वर-प्राप्त असुर बालक था और देवेश पराक्रमी और युद्धपटु थे। क्रोधसे उन दोनोंके नेत्र लाल थे। जब असुर भगवान् शिवको अपने भुज-पाशमें लेना चाहता, तब मयूरेश अदृश्य रूपसे उसके विशाल वक्षपर अपने तीव्रतम परशुसे प्रहार कर देते; वह छटपटा उठता। इस प्रकार

अनेक बार परशुके आघातसे सिन्दूरकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी। असुरके शिथिल होते ही मदनान्तकने उसपर अपने कठोर त्रिशूलका प्रहार किया।

आहत असुर गिर पड़ा। तब ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशने उससे कहा—'त्रैलोक्यका विनाश करनेवाले शिवको तुम युद्धमें पराजित नहीं कर सकते। इस कारण माता पार्वतीको छोड़कर यहाँसे चले जाओ, अन्यथा कालकण्ठ तुम्हें यहीं समाप्त कर देंगे।'

विवश हो सिन्दूरने पार्वतीकी आशा छोड़ दी और वह पृथ्वीके लिये प्रस्थित हुआ। शंकर विजयी हुए।

तब माता पार्वतीने ब्राह्मणसे कहा—'मुनिवर! पातकी असुरके करोंसे मुझे मुक्ति दिलानेवाले आप कौन हैं? आप कृपापूर्वक मुझे अपने वास्तविक स्वरूपका दर्शन कराइये। आप मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। मुनिनाथ! मैं प्राण देकर भी आपकी कृपाका प्रतिदान देनेमें समर्थ नहीं हूँ।'

'माता! मैंने कुछ नहीं किया।' ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशने उत्तर दिया—'भगवान् शंकरने ही असुरको पराजित कर आपको मुक्त कराया है।'

मयूरेश्वर अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये। अत्यन्त सुन्दर दस भुजाएँ, मस्तकपर विद्युच्छटा बिखेरता मणिमय मुकुट, ललाटपर कस्तूरी-तिलक, कानोंमें झिलमिलाते कुण्डल, सुन्दर गोल कपोल, शुक-चंचु-तुल्य नासिका, वक्षपर अद्‌भुत मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित दिव्य माला सुशोभित थी। वे माताकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे।

मयूरेश्वरको देखकर माता परमानन्दमें मग्न हो गयीं। उन्होंने अपना मस्तक मयूरेश्वरके चरणोंपर रखा ही था कि उन्होंने उन्हें तुरंत उठाकर कहा—''माता! त्रेतामें मैंने आपको पुनः दर्शन देनेके लिये कहा था; अतएव अब पुनः मैं इस द्वापरमें भी आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होऊँगा। उस समय 'गजानन' मेरा नाम विख्यात होगा और मैं इस दुर्दान्त सिन्दूरासुरका वध कर धरतीका बोझ उतार दूँगा।'

मयूरेश्वर अदृश्य हो गये। स्नेहमयी माता पार्वती उनका वियोग न सह सकीं; तत्क्षण मूर्च्छित हो गयीं।

'प्रिये! तुम अपने मनको शान्त करो। तुम मयूरेशको अपने हृदयमें देखो। उन देवदेव विनायककी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। वे अपना कथन चरितार्थ करते ही हैं।' इस प्रकार भगवान् शंकरने माता पार्वतीको आश्वस्त किया और उनके साथ वृषभारूढ़ हो तीव्र गतिसे कैलासके लिये चल पड़े।

सिन्दूरासुरकी विजय

ब्रह्मदेवको पराजित करनेवाले वर-मदोन्मत्त मूढ़ सिन्दूरने मर्त्यधाममें पहुँचकर आसुरी गर्जना की। उसके गर्जनसे विशाल भूधर हिल उठे, वृक्ष समूल उखड़कर पृथ्वीपर गिरने लगे, भयाक्रान्त पक्षी आकाशमें उड़ गये और सिंहादि वन्य-पशु व्याकुल होकर अरण्यमें इधर-उधर भागने लगे।

दुष्ट सिन्दूरकी शक्ति देखकर उसके समीप अनेक उद्दण्ड आसुरी प्रकृतिके मनुष्य एकत्र हो गये। सिन्दूरके साथ उनकी निरंकुश दानवी प्रवृत्तियाँ तुष्ट होती जा रही थीं, इस कारण वे सभी शक्तिशाली सिन्दूरका सम्मान तो करते ही थे, उसकी रुचि और इच्छाकी पूर्तिके हेतु मर-मिटनेके लिये भी तैयार रहते थे।

इस प्रकार सिन्दूरकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। थोड़े ही समयमें उसके अधीन अत्यन्त निष्ठुर, क्रूरकर्मा, हिंसक असुरोंकी विशाल सेना एकत्र हो गयी। पितामहका अमोघ वर, अमित शक्ति, तरुणावस्था, तामसिक प्रवृत्तियोंका अहर्निश प्रभाव, विशाल वाहिनी और सर्वोपरि बुद्धिहीनता—ऐसी स्थितिमें ब्रह्मपुत्र सिन्दूरका नियन्त्रण कैसे सम्भव था?

उद्दण्ड एवं निरंकुश शक्तिशाली सिन्दूरने राजाओंपर आक्रमण किया। उसने अत्यन्त निर्दयतापूर्वक कितने ही नरेशोंको चीरकर उनके दो टुकड़े कर दिये और कितने राजाओंको आकाशमें फेंक दिया। उसके सम्मुख जो प्रजापालक राजा युद्ध करने आये, वे सब स्वर्गवासी हुए। कुछ नरपालोंने उसकी शरण ग्रहण कर ली, किंतु स्वाभिमानी नरेश अपना राज्य छोड़ अरण्यादिमें छिप गये और अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार सिन्दूरने सम्पूर्ण नरपतियोंपर विजय प्राप्त कर ली।

इसके अनन्तर दुरात्मा सिन्दूर परम विरक्त ऋषियों और मुनियोंके पीछे पड़ा। उसने निस्स्पृह तपस्वी ऋषियोंको निर्दयतापूर्वक मार डाला और कुछ ऋषियोंको दण्ड देकर कारागारमें भेज दिया। शेष ऋषिगण भयवश

गिरि-कन्दराओं एवं अरण्योंमें छिपकर जीवन-निर्वाह करने लगे। असुराधमने समस्त मन्दिरों एवं देव-प्रतिमाओंको नष्ट कर उन्हें धूलमें मिला दिया। उक्त असुर-शासनमें समस्त वैदिक क्रियाएँ लुप्त हो गयीं। स्वाहा, स्वधा और वषट्कारके स्वर शान्त हो गये, सर्वत्र हाहाकार व्याप्त हो गया।*

पर्वतकी गुफाओंमें गुप्त रीतिसे निवास करनेवाले देवता, मुनि, यक्ष और किंनरादि एकत्र होकर दुर्दान्त दानवके क्रूरतम शासनसे मुक्त होनेका उपाय सोचने लगे।

उस समय देवगुरु बृहस्पतिने कहा—"देवताओ और ब्राह्मणो! भगवान् विनायक सर्वत्र विद्यमान हैं। उनके रहते भयभीत होनेका कोई कारण नहीं। आप सब लोग उन देवदेव विनायककी प्रार्थना करें। वे दयामय 'गजानन' नामसे भगवान् शिवके घर अवतरित होंगे और निश्चय ही असुराधम सिन्दूरका वध करेंगे। उस समय सम्पूर्ण जगत्‌की यातना दूर हो जायगी।"

सुरगुरु बृहस्पतिके ये वचन सुन देवगण करुणामय विनायककी स्तुति करने लगे—

जगतः कारणं योऽसौ रविनक्षत्रसम्भवः।
सिद्धसाध्यगणाः सर्वे यत एव च सिन्धवः॥
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मनुष्योरगराक्षसाः।
यतश्चराचरं विश्वं तं नमामि विनायकम्॥
यतो ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च महर्षयः।
यतो गुणास्त्रयो जातास्तं नमामि विनायकम्॥
यतो नानावताराश्च यश्च सर्वहृदि स्थितः।
यं स्तोतुं नैव शक्नोति शेषस्तं गणपं भजेत्॥
सिन्दूरो निर्मितः केन विश्वसंहारकारकः।
तेनार्तिप्रापितं विश्वं त्वयि स्वामिनि जाग्रति॥
अन्यं कं शरणं यामः को नु पास्यति नोऽखिलान्।
जह्येनं दुष्टबुद्धिं त्वमवतीर्य शिवालये॥

(गणेशपु० २। १२९। १४—१९)

'जो जगत्‌के कारण हैं, सूर्य और नक्षत्रकी उत्पत्ति जिनसे हुई है, सिद्ध, साध्यगण और समस्त सागर जिनसे प्रकट हुए हैं, गन्धर्व, किंनर, यक्ष, मनुष्य, नाग, राक्षस तथा समस्त चराचर जगत् जिनसे प्रकट हुए हैं, उन भगवान् विनायकको हम प्रणाम करते हैं। जिनसे ब्रह्मा आदि देवता, मुनि, महर्षि और तीनों गुण प्रकट हुए हैं, उन विनायकको हम नमस्कार करते हैं। जिनसे नाना अवतारोंका प्रादुर्भाव होता है, जो सबके हृदयमें विराजमान हैं तथा शेषनाग भी जिनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, उन भगवान् गणपतिका भजन करना चाहिये। जगत्‌का संहार करनेवाले इस सिन्दूरासुरका निर्माण किसने किया है? आप-जैसे स्वामीके जागरूक रहते हुए उस असुरने सम्पूर्ण विश्वको संकटमें डाल दिया है। इस दशामें हम आपको छोड़कर किसकी शरणमें जायँ? कौन हम सबका पालन करेगा? आप ही भगवान् शिवके घरमें अवतीर्ण हो इस दुष्टबुद्धि असुरका संहार कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति कर देवता और मुनि, सभी तपस्यामें संलग्न हुए। कुछ देवता और मुनि निराहार रहकर, कुछ एक पैरपर खड़े होकर, कुछ अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये और कुछ जलमें खड़े होकर विनायकका ध्यान और जप करने लगे। इस प्रकार देवताओं और ऋषियोंके कठोर तपसे देवदेव गणराज प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हुए।

वे अनेकों सूर्य और प्रलयाग्निके तुल्य तेजस्वी थे। देवता और मुनिगणोंने गणराजका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्नतासे उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़े अपलक दृष्टिसे वे उनके परम तेजस्वी मुखारविन्दकी ओर निहारने लगे।

भक्तवाञ्छाकल्पतरु गणेशने कहा—"देवताओ! मैं असुर सिन्दूरका वध करूँगा। तुमलोग निश्चिन्त हो जाओ। तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह स्तवन

---

* अकरोद्दुष्टबुद्धिः स बबन्ध सहसा च तान्। तदा केचिन्मुनिगणास्त्यक्त्वा देहं दिवं गताः॥
केचिच्च मेरुकन्दर्यां न्यवसन् विगतज्वराः। केचिच्च निहतास्तेन केचिच्च ताडिता भृशम्॥
प्रासादाः सकलास्तेन विध्वस्ता देवता अपि। एवं तु प्रलये जातेऽलुप्यन् क्रियाश्च वैदिकाः॥
स्वाहास्वधावषट्कारा हाहाकारोऽप्यजायत।

(गणेशपु० २। १२९। ६—९)

'दुःखप्रशमनस्तोत्र'के नामसे प्रसिद्ध होगा।* जो इसका दिनमें एक बार, दो बार या तीन बार पाठ करेगा, उसके त्रिविध तापोंका शमन हो जायगा। मैं शिवके घरमें अवतरित होऊँगा। 'गजानन'—यह मेरा सर्वार्थसाधक नाम प्रसिद्ध होगा। मैं सिन्दूरका वध कर पार्वतीके सम्मुख अनेक प्रकारकी लीलाएँ करूँगा।''

इतना कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये।

श्रीगजाननका प्राकट्य

देवाधिदेव भगवान् शंकरके अनुग्रहसे माता पार्वतीने गर्भ धारण किया। वह गर्भ धीरे-धीरे बढ़ने लगा। माताका तेजोमय शरीर अत्यधिक उद्दीप्त हो उठा। माता पार्वतीने एक दिन अपने प्राणवल्लभ शिवसे निवेदन किया—'स्वामिन्! आप मुझे किसी शीतल-सुखद स्थानपर ले चलें।'

भगवान् शंकर हिमगिरिनन्दिनीके साथ वृषभपर आरूढ़ होकर चले। उनके तथा माता पार्वतीके शरीरके तेजसे दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। शिवगण आनन्दोल्लासपूर्वक वृषभके पीछे-पीछे चल रहे थे। अन्तरिक्षमें देवगण मंगलमय मधुर वाद्य बजा रहे थे। इस प्रकार अनेक प्राकृतिक दृश्योंकी छटा निहारते भगवान् शंकर पर्यलीके सुन्दर काननमें पहुँचे।

उस वनमें अनेक प्रकारके सद्गन्धपूरित पुष्प खिले थे। नाना प्रकारके वृक्ष सुस्वादु फलोंसे लदे थे। वहीं एक शीतल निर्मल जलसे पूरित सरोवर था। सरोवरके तटपर सघन वृक्ष थे, जिनकी छाया अत्यन्त शीतल थी। उक्त मनोरम कानन माता पार्वतीको प्रिय लगा, इस कारण भगवान् शंकर वहीं रुक गये।

'स्वामिन्! यह पवित्र स्थल मुझे अतिशय सुखद प्रतीत होता है; अतएव यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यहाँ कुछ समय रहकर मन बहलाऊँ?' माता पार्वतीने भगवान् शिवसे निवेदन किया।

दयामय शिवकी रुचिके अनुसार गणोंने वहाँ अत्यन्त भव्य मण्डप प्रस्तुत कर दिया। उक्त मण्डपमें माता पार्वतीके अनुकूल समस्त सुविधाओंकी व्यवस्था थी। यह देखकर शिवने कहा—'प्रिये! तुम्हारे लिये यहाँ सभी आवश्यक व्यवस्था हो गयी है; अतएव तुम गणोंके साथ यहाँ इच्छानुसार सुखपूर्वक रहो।'

जगदीश्वरीकी सेवामें एक कोटि गणोंको छोड़कर कृपालु शिव कैलास लौटकर समाधिस्थ हो गये।

माता पार्वती वहाँ सखियोंके साथ क्रीड़ा करने लगीं। एक कोटि शिवगण उनकी रक्षा करते थे। वे प्रतिक्षण जननीकी आज्ञाकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते रहते थे।

नवाँ महीना पूर्ण हुआ। आकाश स्वच्छ था। वातावरण अत्यन्त शान्त और सुखद था। शीतल और सुगन्धित समीर मन्द-मन्द बह रहा था। जगज्जननी पार्वतीके सम्मुख अतिशय तेजोराशिसे उद्दीप्त चन्द्र-तुल्य परमाह्लादकर परम तत्त्व प्रकट हुआ।

अनुपम सुन्दर वदनारविन्द था गुणेशका। उसके विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पाते थे। उसके मस्तकपर अत्यन्त सुन्दर किरीट सुशोभित था। अरुण अधरोष्ठ प्रबालकी आभाको तिरस्कृत कर रहा था। उसके चार भुजाएँ थीं। उन भुजाओंमें परशु, माला, मोदक और कमल शोभा दे रहे थे। गलेमें सुन्दर मोतियोंकी माला और कटिमें करधनीकी छटा निराली थी। चारु चरण ध्वज, अंकुश और कमलके चिह्नोंसे युक्त थे। अपरिमित प्रभापुंजमयी उस मूर्तिको देखकर पार्वती काँपने लगीं।

माता पार्वतीने उस परम तेजस्वी मूर्तिसे पूछा—'आप कौन हैं? कृपया परिचय देकर आप मुझे आनन्द प्रदान करें।'

तेजस्वी विग्रहने उत्तर दिया—''माता! आप उद्विग्न न हों। मैं सम्पूर्ण सृष्टिका स्वामी गुणेश हूँ। जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और लय मैं ही किया करता हूँ। त्रेतामें शुभ्रवर्ण, षड्भुज मयूरेश्वरके रूपमें मैंने ही आपके पुत्रके रूपमें अवतरित होकर सिन्धुदैत्यका वध किया था और द्वापरमें पुनः आपको पुत्र-सुख प्रदान करनेका जो वचन दिया था, उसका पालन करनेके लिये मैं आपके पुत्र-रूपमें प्रकट हुआ हूँ। मैंने ही ब्राह्मणवेषमें आकर सिन्दूरके हाथसे आपकी रक्षा की थी। माता! अब मैं सिन्दूरका वध कर त्रिभुवनको सुख-शान्ति दूँगा और भक्तोंकी कामना-पूर्ति करूँगा। मेरा नाम 'गजानन' प्रसिद्ध होगा।''

देवदेव विनायकको पहचानकर गौरीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर वे उनका स्तवन करने लगीं—

* हनिष्ये सिन्दुरं देवा मा चिन्तां कर्तुमर्हथ। दुःखप्रशमनं नाम स्तोत्रं वः ख्यातिमेष्यति॥ (गणेशपु० २। १२९। २६)

निर्विकल्पचिदानन्दघनं ब्रह्मस्वरूपिणम्॥
भक्तप्रियं निराकारं साकारं गुणभेदतः।
नमाम्यहमतिस्थूलमणुभ्योऽणुतरं विभुम्॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं रजःसत्त्वतमोगुणम्।
मायाविनं मायिनं च सर्वमायाविदं प्रभुम्॥
सर्वान्तर्यामिणं नित्यं सर्वाधारं परात्परम्।
चतुर्णामपि वेदानां मानसस्याप्यगोचरम्॥
महद्भाग्यं मम विभो स त्वं मे पुत्रतां गतः।
प्रतीक्षन्त्या मम विभो प्रत्यक्षं दर्शनं गतः।
इदानीं त्वद्वियोगो मे न स्याद्देव तथा कुरु॥
(गणेशपु० २। १३०। १६—२०)

'जो निर्विकल्प, चिदानन्दघन, ब्रह्मस्वरूप, भक्तप्रिय, निराकार तथा गुणभेदसे साकार हैं, उन परमेश्वरको मैं नमस्कार करती हूँ। प्रभो! आप अतिशय स्थूल, सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, सर्वत्र व्यापक तथा अव्यक्त होते हुए भी भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्यक्तभावको धारण करनेवाले हैं; आप सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके आधार हैं; मायावी, मायाके आश्रय, सम्पूर्ण मायाओंके ज्ञाता, सर्वसमर्थ, सर्वान्तर्यामी, नित्य, सर्वाधार और परात्पर हैं; आपतक चारों वेदों और मनकी भी पहुँच नहीं होती; प्रभो! मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप मेरे पुत्र हो गये। मैं दीर्घकालसे इस शुभ अवसरकी प्रतीक्षा कर रही थी। आज आपने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दे दिया। अब ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मुझे आपका कभी वियोग न देखना पड़े।'

इस प्रकार माता पार्वतीकी प्रार्थना सुनते ही परम प्रभु अत्यन्त अद्‌भुत चतुर्भुज शिशु हो गये। उनके चार भुजाएँ थीं। नासिकाके स्थानपर शुण्डदण्ड सुशोभित था। उनके मस्तकपर चन्द्रमा और हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थी। वे गणपति दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्यगन्धयुक्त नवजात शिशुकी तरह माताके सम्मुख उपस्थित थे।

माता पार्वतीने अपने पुत्रको ध्यानपूर्वक देखा तो व्याकुल हो गयीं। ऊबड़-खाबड़ सिर, छोटी-छोटी आँखें, हाथीकी सूँड़की तरह नाक, शूर्पाकार कर्ण, छोटे-छोटे हाथ-पैर और विशाल उन्नत उदर! शिशुका विकट रूप देखकर गौरी अधीर हो गयीं।

शिवप्रिया मन-ही-मन सोचने लगीं—'रक्तवर्णका इतना कुरूप और भयानक पुत्र तो मैंने कहीं नहीं देखा। देवता, ऋषि, देव-पत्नियाँ और ऋषियोंकी स्त्रियाँ इसे देखेंगी तो अपने मनमें क्या कहेंगी? शिशु थोड़ा कम सुन्दर हो, तब भी उसका प्यारपूर्वक पालन किया जाता है; किंतु इसके तो प्रत्येक अवयव—हाथ-पैर, सिर, आँख, कान, नाक और पेट—सभी एक-से-एक विचित्र, विकट और भयावह हैं। इस शिशुको देखनेवाले सभी हँसेंगे।' माताके नेत्रोंमें आँसू भर आये।

उसी समय वहाँ सर्वात्मा शिव पहुँचे। सम्मुख नवजात शिशुका आकार-प्रकार देखकर वे पार्वतीके दुःखका कारण समझ गये। पुत्रको ध्यानपूर्वक देखकर उन्होंने कहा—'प्रिये! बाह्य सौन्दर्यसे व्यक्तित्वका सर्वथा सत्य अनुमान कठिन है। यह रक्तवर्ण, चतुर्भुज, गजमुख, लम्बोदर शिशु असाधारण है। यह निखिल सृष्टिका स्वामी, सर्वसमर्थ, सर्वात्मा एवं मंगल-मूल-निधान है। यह त्रैलोक्यकी रक्षाके लिये कृतयुगमें दशभुज विनायकके रूपमें अवतरित हुआ था। त्रेतामें शुक्लवर्ण, षड्‌भुज मयूरेशके रूपमें इसीने तुम्हारा पुत्र होकर सिन्धुका वध कर त्रिभुवनको स्वतन्त्रता प्रदान की थी और अब इस द्वापरमें अपने कथनानुसार पुनः सिन्दूरवधके लिये तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुआ है। कलियुगमें यह पापाचार और अनाचारको ध्वस्तकर सत्त्वकी स्थापनाके लिये पुनः सुन्दर चतुर्भुज रूपमें अवतरित होगा। उस समय इसका 'धूम्रकेतु' नाम प्रसिद्ध होगा।'*

---

* गणेशपुराणमें गणेशके कलियुगीय अवतार धूम्रकेतुको यहाँ 'चतुर्भुज' बताया गया है। परंतु इसी पुराणमें अन्यत्र धूम्रकेतुको 'द्विभुज' भी कहा गया है। यहाँ क्रमशः चतुर्भुज और द्विभुजके सूचक वचन प्रमाणरूपमें प्रस्तुत किये जाते हैं। भगवान् शिव पार्वतीसे कहते हैं—

अयं कलियुगे देवि धूम्रकेतुरिति प्रथाम्। चतुर्बाहुश्चारुनेत्रो भास्वरो रुचिरो भुवि॥ (२। १३१। ३२)

द्विभुज बतानेवाले वचन इस प्रकार हैं—

'कलौ तु धूम्रवर्णोऽसावश्वारूढो द्विहस्तवान्।' (२। १। २१)

'धूम्रकेतुरिति ख्यातो द्विभुजः सर्वदैत्यहा॥' (२। ८५। १५)

'आशुतोष! आपने सर्वथा उचित कहा।' आपने मुझे समझ लिया।' पार्वतीवल्लभके वचन सुन शिशु बोल उठा—'मैं त्रैलोक्यविजयी सिन्दूरासुरका वध कर धरतीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुआ हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत्‌को तुष्ट करूँगा। वैदिक कर्म प्रारम्भ हो जायँगे और मैं भक्तोंकी वाञ्छा सिद्धकर राजा वरेण्यको वर एवं ज्ञान प्रदान करूँगा।'

शिशुरूपधारी परम प्रभु गजाननने शिवसे आगे कहा—''सदाचारपरायण परम पवित्र धर्मात्मा राजा वरेण्य मेरा भक्त है। वह देवता, ब्राह्मण एवं अतिथियोंका पूजक तथा पंचयज्ञोपासक है। वह सदा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुराण-श्रवण करता है। उसकी सत्य और धर्मका पालन करनेवाली सुन्दरी साध्वी पत्नीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिका पतिव्रता, पतिप्राणा और पतिवाक्यपरायणा है। उन दोनोंने मुझे संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षोंतक कठोर तप किया था। मैंने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया था—'निश्चय ही मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' पुष्पिकाने अभी-अभी प्रसव किया है, किंतु उसके पुत्रको एक राक्षसी उठा ले गयी। वह मूर्च्छिता है। पुत्रके बिना वह प्राण त्याग देगी। अतएव आप मुझे तुरंत उस प्रसूताके पास पहुँचवा दीजिये।''

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने विविध उपचारोंसे उनकी पूजा और प्रार्थना की।

नवजात गजमुख अरण्यमें

भगवान् शंकरने नन्दीको बुलाकर कहा—'पराक्रमी नन्दी! मैंने तुम्हें एक आवश्यक कार्यसे स्मरण किया है; तुम अत्यन्त सावधानीसे उसे पूरा करो। माहिष्मती नामक श्रेष्ठ नगरीमें वरेण्य नामक प्रजापालक, धर्मपरायण वीर नरेश राज्य करते हैं। उनकी अत्यन्त साध्वी उदार सहधर्मिणीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिकाने अभी कुछ ही देर पूर्व प्रसव किया है। वह तो कष्टसे मूर्च्छित हो गयी, किंतु उसके शिशुको एक राक्षसी उठा ले गयी। तुम इस पार्वती-पुत्रको तुरंत उसके समीप रखकर लौट आओ। पुष्पिकाकी मूर्च्छा दूर होनेके पूर्व ही यह शिशु उसके समीप पहुँच जाय; अन्यथा प्रसूताके प्राण-संकटकी सम्भावना है।'

नन्दीने अपने स्वामीके चरणोंमें प्रणाम किया और गजाननको लेकर वायुवेगसे उड़ चले। मार्गमें अनेक बाधाएँ उपस्थित हुईं, किंतु पराक्रमी नन्दीने शिवके ध्यान और स्मरणसे उनपर विजय प्राप्त की और मूर्च्छिता पुष्पिकाके सम्मुख चुपचाप गजमुखको रखकर तुरंत लौट आये।

नन्दीने शिव और पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम कर गजमुखको सुरक्षित पुष्पिकाके समीप पहुँचा देनेका समाचार सुनाया तो उन लोगोंने प्रसन्न होकर नन्दीकी प्रशंसा करते हुए उन्हें आशिष् दी।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणोदय हुआ। पुष्पिकाने ध्यानपूर्वक अपने शिशुको देखा—रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, गजवक्त्र, कस्तूरी-तिलक, चन्दन-चर्चित अंगपर पीत परिधान और मोतियोंकी माला तथा विविध रत्नाभरण शोभित हो रहे थे।

इस प्रकारका अद्भुत बालक देखकर पुष्पिका चकित और दुःखी ही नहीं हुई, भयसे काँपती हुई वह प्रसूतिगृहसे बाहर भागी। वह शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी। रानीका रुदन सुनकर परिचारिकाएँ प्रसूति-गृहमें गयीं। अलौकिक बालकको देखकर वे भी भयाक्रान्त हो काँपती हुई बाहर आ गयीं। दूसरे जिन-जिन स्त्री-पुरुषोंने उन शिशु-रूपधारी परम पुरुषका दर्शन किया, वे सभी भयभीत हुए। कुछ तो मूर्च्छित हो गये।

प्रत्यक्षदर्शियोंने राजासे कहा—'आजतक मनुष्यके यहाँ ऐसा पुत्र कभी नहीं उत्पन्न हुआ और न भविष्यमें ऐसे शिशुके उत्पन्न होनेकी सम्भावना ही है। अतएव इस वंशविनाशक बालकको घरमें नहीं रखना चाहिये।'

सबके मुँहसे भयभीत करनेवाले ऐसे वचन सुनकर नरेश वरेण्यने अपने दूतको बुलाकर आज्ञा दी—'इस शिशुको निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

राजाके दूतने नवजात शिशुको उठाया और शीघ्रतासे नगरसे बाहर निकल गया। वह निर्जन सघन वनमें पहुँचा। वहाँ एक स्वच्छ जलपूरित सरोवर था। हिंस्र पशुओंके अतिरिक्त वहाँ और किसी मनुष्यके पहुँचनेकी सम्भावना नहीं थी। दूतने उक्त परम तेजस्वी शिशुको वहीं सरोवर-तटपर धीरेसे रख दिया और द्रुत गतिसे लौट चला।

दूत नगरमें पहुँचा। उसने राजसभामें जाकर नरेशका अभिवादन कर निवेदन किया—'राजेन्द्र! आपके आदेशानुसार मैं शिशुको हिंस्र-जन्तुओंसे भरे निविड़ वनमें रख आया। निश्चय ही उसे व्याघ्रादि हिंस्र-पशु खा जायँगे।'

धर्मात्मा वरेण्यने खिन्न मनसे समाचार सुना और सिर झुका लिया।

महर्षि पराशरके आश्रममें

सृष्टिके सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्यके मनमें विद्या-बुद्धिका कितना अहंकार होता है; किंतु कितना अल्पज्ञ होता है वह? लोकपितामहका पुत्र स्वस्थ और सुन्दर था; उसे देखकर विधाता इतने प्रसन्न हुए कि पात्र-अपात्रका विचार किये बिना उसे अनमोल निधि दे दी और माता पार्वती तथा धर्मपरायण बुद्धिमान् नरेशके यहाँ त्रैलोक्यत्राता परम पुरुष अवतरित हुए। गजमुख उनकी दृष्टिमें सुन्दर नहीं थे और इस कारण देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों एवं पृथ्वीके उद्धारक अवतारी महापुरुष प्रकट होते ही हिंसक पशुओंके आहारके लिये निर्जन वनमें फेंक दिये गये।

गहन काननमें सरोवरके तटपर पड़े नवजात शिशुपर एक जम्बुककी दृष्टि पड़ी। जम्बुक प्रसन्न होकर शिशुकी ओर दौड़ा ही था कि उसी मार्गसे महर्षि पराशर आ गये। उन्होंने धरतीपर हाथ-पैर उछालते दीप्तिमान् बालकको देखा तो मन-ही-मन सोचने लगे—'मुझे तपभ्रष्ट करनेके लिये देवेन्द्रने कोई माया रची है। मैं स्वाभाविक ही पापभीरु हूँ। जान-बूझकर मैंने कोई पाप किया नहीं है। हे दीनानाथ! हे चन्द्रचूड़! मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार मन-ही-मन प्रार्थना करते हुए करुणामूर्ति महर्षि पराशरने शिशुके समीप पहुँचकर देखा—'दिव्य वस्त्रालंकारविभूषित, सूर्यतुल्य तेजस्वी, चतुर्भुज, गजमुख अलौकिक शिशु।'

महामुनिने शिशुको बार-बार ध्यानपूर्वक देखा। उसके नन्हें-नन्हें अरुण चरणकमलोंपर दृष्टि डाली—उनपर ध्वज, अंकुश और कमलकी रेखाएँ दिखायी दीं।

महर्षिको रोमांच हो आया। हर्षातिरेकसे हृदय गद्‌गद, कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र सजल हो गये। आश्चर्यचकित मुनिके मुँहसे निकल गया—'अरे, ये तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। ये मुझसे छल क्यों करेंगे? इन करुणामयने देवता और ऋषियोंका कष्ट निवारण करने और मेरा जीवन-जन्म सफल बनानेके लिये अवतार ग्रहण किया है।'

महर्षिके नेत्र बरस रहे थे। अपने भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्होंने जगद्वन्द्य परम प्रभुके त्रिताप-नाशक भवाब्धिपोत नन्हें-नन्हें लाल-लाल चरणोंको अपने मस्तकसे स्पर्श कराया। उन्हें अपने नेत्रोंसे स्पर्श किया, वक्षसे लगाया और फिर साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए कहा—'आज मैं धन्य हो गया। मेरा जीवन, जन्म, मेरे माता-पिता और मेरा तप, सभी धन्य हुए। अब मैं जन्म-मृत्युसे मुक्त हो गया; मेरी सम्पूर्ण वाञ्छाओंकी पूर्ति हो गयी। मैं ही नहीं—यह धरती, यह आकाश, यह पवन, यह निविड़ वन, यह सरोवर और सरोवरका तट, सभी धन्य हो गये—सभी कृतकृत्य हो गये। आह! किस निष्ठुर अभागेने इन महामहिमको यहाँ छोड़ दिया।'

महर्षिने शिशुके चरणोंमें पुनः प्रणाम कर उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अंकमें ले लिया और प्रसन्नमन द्रुत गतिसे आश्रमकी ओर चले। आश्रममें पहुँचनेपर उनकी सहधर्मिणी वत्सलाने शिशुको देखा तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और जब उसने महर्षिके मुखसे उस शिशुकी अनिर्वचनीय महिमा सुनी तो उसके आनन्दकी सीमा न रही।

वत्सलाने शिशुको लेकर अपने वक्षसे लगाया ही था कि वह आनन्द-विभोर हो गयी। हर्षातिरेकसे उसने कहा—'स्वामिन्! आपके दीर्घकालीन कठोर तपका फल आज प्रत्यक्ष प्राप्त हो गया। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिन्हें नहीं जानते, वे परम प्रभु हमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जो निखिल ब्रह्माण्डके सर्जक, पालक और संहारक हैं; जो भूमिका भार हरण करनेके लिये अवतरित हुए हैं, वे अखिल लोकनायक प्रभु अनायास ही हमारे मन, वाणी और इन्द्रियोंके विषय हो गये। उन दयामयकी दया और हमारे भाग्यकी प्रशंसा कैसे की जाय?'

स्नेहाधिक्यके कारण नवजात शिशु गजाननके

स्पर्शसे सती वत्सलाके स्तनोंमें दूध उतर आया। महर्षि पराशर और वत्सला प्यारपूर्वक शिशु पालनमें अपने परम सौभाग्यका अनुभव करते थे। अब अग्निहोत्र, जप, तप एवं स्वाध्यायकी महर्षि चिन्ता नहीं कर पाते थे। बस, नियमोंका निर्वाहमात्र कर वे तो निखिलसृष्टिनियामक गजमुखके समीप ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते। जब जप करने बैठते तो शिशुके सम्मुख रहे बिना उनसे जप हो नहीं पाता था। वत्सला भी वहीं बैठी रहती। दोनों उस गजमुखको प्रतिपल निहारा करते, फिर भी अतृप्त ही रहते।

गजाननके चरण-स्पर्शसे ही महर्षि पराशरका सुविस्तृत आश्रम अतिशय मनोहर हो गया। वहाँके सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो उठे। वहाँकी गायें कामधेनु-तुल्य हो गयीं। सुखद पवन बहने लगा। आश्रम दिव्यातिदिव्य हो गया।

'मेरे शिशुका पालन दिव्यदृष्टिसम्पन्न महर्षि पराशर कर रहे हैं।' इस संवादसे नरेश वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने यहाँ पुत्रोत्सव मनाया। वाद्य बजने लगे। घर-घर मिष्टान्न-वितरण हुआ। नरेशने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको बहुमूल्य वस्त्र, स्वर्ण और रत्नालंकरण देकर संतुष्ट किया।

सिन्दूरका विस्मय

मदमत्त सिन्दूरने एक दिन अपनी सभामें कहा— 'मेरी अतुलनीय शक्ति व्यर्थ गयी। मेरा पौरुष निष्क्रिय रहा। इन्द्रादिकोंने मेरे साथ युद्ध नहीं किया और ब्रह्मा-विष्णु आदि मेरे सम्मुख ही नहीं हुए। मृत्युलोकके नरेशोंमें तो मुझसे युद्ध करनेकी सामर्थ्य ही नहीं। मेरी युद्ध-कामना तृप्त नहीं हो पा रही है।'

उसी समय आकाशवाणी हुई—'अरे मूर्ख! तू व्यर्थ क्या प्रलाप कर रहा है? तेरी युद्ध-कामनाकी पूर्ति करनेवाला शिवप्रिया पार्वतीके यहाँ प्रकट हो गया है। वह शुक्लपक्षके शशि-सदृश उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।'

सहसा अत्यन्त अप्रिय एवं भयानक वाणी सुनकर सिन्दूर मूर्च्छित हो गया। फिर सचेत होनेपर उसने कहा— 'यह कौन बोल रहा था? यदि ऐसा दुर्वचन बोलनेवाला सामने आ जाय तो मैं उसका मस्तक उतार लूँ।'

इतना कहकर असुरने भयानक गर्जन किया और वह तुरंत उड़कर कैलास पहुँचा। अत्यन्त चिन्तित सिन्दूर पार्वतीके नवजात शिशुके लिये बड़ा होनेका अवसर ही नहीं आने देना चाहता था। पर्वतोंको चूर्ण एवं वनोंको ध्वस्त करता हुआ दुरात्मा सिन्दूर भगवती उमाके भवन गया, किंतु वहाँ किसीको न देख वह पुनः पृथ्वीपर लौट आया।

गिरिराज-नन्दिनी तथा शिवको ढूँढ़नेके लिये सिन्दूर पृथ्वीपर चारों ओर घूमने लगा। अन्ततः वह पर्यलीकाननमें पहुँचा। वहाँ उसने सुन्दर सरोवर, पार्वती-शिवका विशाल मनोहर मण्डप एवं उनके गणोंको देखा। सिन्दूर सीधे गिरिजाके प्रसूतिगृहमें जाकर शिशुको ढूँढ़ने लगा, किंतु वहाँ शिशुको न पाकर उस दुरात्माने सोचा—'यदि बालकने जन्म नहीं लिया है तो पार्वतीके ही उदरसे प्रकट होगा। यदि पार्वतीकी जीवन-लीला समाप्त कर दी जाय तो इसके पुत्रका प्रश्न ही नहीं उठेगा।'

यह सोचकर क्रूरतम सिन्दूरने पार्वतीपर प्रहार करनेके लिये अपना अस्त्र उठाया ही था कि उसके सम्मुख पार्वतीकी गोदमें पाश, परशु, कमल और माला धारण किये वस्त्रालंकारविभूषित अमित तेजस्वी बालक दीखा। असुरने बालकका हाथ पकड़ लिया और उसे समुद्रमें डुबा देनेकी दृष्टिसे अपने साथ ले चला।

मार्गमें वह बालक पर्वत-तुल्य भारी हो गया। उस असह्य भारसे व्याकुल होकर असुर काँपने लगा। वह शिशुको किसी प्रकार आगे ले जानेमें समर्थ नहीं था, इस कारण उसने कुपित होकर उसे पृथ्वीपर पटक दिया।

शिव-शिशुको पटकनेसे पर्वत हिल गये, पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र क्षुब्ध हो उठा और ब्रह्माण्ड जैसे विदीर्ण हो गया। शिशु नर्मदा नदीमें गिरा। वह पवित्र स्थल 'गणेश-कुण्ड' नामसे प्रख्यात हुआ।* गणेशके शरीरके रक्तसे वहाँके पत्थर लाल हो गये। वे पापोंको नाश करनेवाले 'नार्मद गणेश' कहे जाते हैं। उनके दर्शन और पूजनकी बड़ी महिमा है।

'मेरा शत्रु समाप्त हो गया।' यह समझकर आनन्दित सिन्दूरासुर वहाँसे चलना ही चाहता था कि

* गणेश-कुण्ड श्रेष्ठ तीर्थ है। इस तीर्थके दर्शन, इसमें स्नान एवं इसके स्मरणका भी बड़ा माहात्म्य है।

गणेश-कुण्डसे एक अत्यन्त भयंकर पर्वताकार क्रोधोन्मत्त पुरुष निकला। उसकी जटा विशाल थी। उसके मुख और दाँत अत्यन्त भयंकर थे। जिह्वा सर्पिणीके सदृश थी। उसके हाथ-पैर अत्यन्त लम्बे और सुपुष्ट थे। उसके नेत्रोंसे अग्निकी ज्वालाएँ निकल रही थीं।

महाबलवान् सिन्दूरासुरने उसे मारनेके लिये अपने खड्गसे प्रहार किया ही था कि वह भयानक पुरुष आकाशमें दीखने लगा। उसने कहा—'अरे मूढ़! तेरा काल अन्यत्र बढ़ रहा है। वह साधुजनोंकी रक्षामें तत्पर होनेके कारण तेरा वध अवश्य करेगा।'

यह संकेत देकर भयंकर पुरुष अदृश्य हो गया।

सिन्दूरको बड़ा विस्मय हुआ। उसने अपने सेवकोंसे कहा—'कठोर वचन बोलनेवाले उस भयानक पुरुषको धिक्कार है, जो मेरे भयसे छिप गया। यदि वह मेरे सम्मुख होता तो उसे मेरे बल-वीर्यका पता चल जाता।'

सिन्दूरने चारों ओर देखा, पर किसीको कहीं न देखकर चिन्ता-निमग्न अपनी राजधानी सिन्दूरवाड लौट गया।

असुरके उत्पातसे चिन्तित माता पार्वतीने अपने जीवन-धन महेश्वरसे निवेदन किया—'प्रभो! इस पर्यलीमहारण्यमें भी दैत्यका उपद्रव प्रारम्भ हो गया है। अतएव अब आप मुझे कैलास ले चलिये।'

अपनी प्रियतमाकी इच्छा जानकर देवाधिदेव शंकर प्रसन्न हुए। वे पार्वतीसहित वृषभपर आरूढ़ हुए और अपने गणोंसहित कैलासके लिये चल पड़े। कैलासके अपने भवनमें पहुँचकर भगवती उमा प्रसन्न हो गयीं।

मूषक-वाहन

सुरपति इन्द्रकी सभामें क्रौंच नामक एक श्रेष्ठ गन्धर्व था। वह सभासे उठकर शीघ्रतासे जाना चाहता था। असावधानीसे उसके पैरका वहाँ उपस्थित मुनिवर वामदेवसे स्पर्श हो गया। अपनेको अनादृत अनुभवकर कुपित हुए मुनिने उसे तुरंत शाप दे दिया—'गन्धर्व! तू मूषक हो जायगा।'

भयभीत गन्धर्व हाथ जोड़कर मुनिसे करुण प्रार्थना करने लगा। तब दयालु ऋषिने पुनः कहा—'तू देवदेव गजाननका वाहन होगा, तब तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा।'

उसी समय क्रौंच गन्धर्व मूषक होकर पराशर-आश्रममें गिर पड़ा। वह मूषक पर्वत-तुल्य अत्यन्त विशाल और भयानक था। उसके रोम और नख गिरिशृंगके समान महान् थे। उसके दाँत अत्यन्त बड़े, तीक्ष्ण और भय उत्पन्न करनेवाले थे। उसका कर्कश स्वर भी अत्यधिक भयावह था।

उस महाबलवान् मूषकने पराशर-आश्रममें भयानक उपद्रव किया। उसने मृण्मय पात्रोंको तोड़-फोड़कर समस्त एकत्र अन्न समाप्त कर दिया। ऋषियोंके समस्त वस्त्रों, वल्कलों और ग्रन्थोंको कुतरकर टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस भूधराकार मूषकके पुच्छ-प्रहारसे आश्रमके वृक्ष धराशायी हो गये; वाटिका उजाड़ हो गयी।

आश्रमकी समस्त उपयोगी वस्तुओंके नष्ट हो जानेसे महर्षि पराशर अत्यन्त दुःखी होकर कहने लगे—'दुष्टोंके उपद्रवसे स्थान छोड़कर चले जाना चाहिये, किंतु इस समय मैं कहाँ जाऊँ, जहाँ निश्चिन्त होकर साधन-भजन कर सकूँ? प्राण त्याग करना शास्त्र पातक बताते हैं। मेरे किस अपकर्मके फलस्वरूप इस आश्रमकी सुख-शान्ति नष्ट हो गयी है। इस विपत्तिसे त्राण पानेके लिये मैं क्या करूँ? किसका स्मरण करूँ? मेरा यह दुःख कौन दूर करेगा? मैं किसकी शरण ग्रहण करूँ?'

इस प्रकार दुःखसे व्याकुल अपने पिताके वचन सुन तुरंत गजमुखने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'पूज्य पिताजी! मैं दुष्टोंका संहार करनेवाला हूँ। मेरे रहते आप चिन्ता न करें। मैं आपको पुत्ररूपमें प्राप्त हुआ हूँ तो आपका प्रिय कार्य भी करूँगा। मेरे गर्जनमात्रसे पृथ्वी विशीर्ण और पदाघातसे पर्वत चूर्ण हो जायँगे। आप मेरी क्रीड़ा देखिये। उक्त मूषकको मैं अपना वाहन बना लेता हूँ।'

महर्षि पराशरसे इतना कहकर गजाननने मूषकपर सूर्य-सदृश अपना तेजस्वी पाश फेंका। उस पाशसे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष प्रकाशित हो उठा और उसके भयसे देवताओंने अपना स्थान त्याग दिया। उक्त अग्निमुख पाशने दसों दिशाओंमें घूमते हुए पातालमें प्रवेश कर मूषकका कण्ठ बाँध लिया और उसे बाहर निकालने लगा। महाबलाढ्य, महावीर्यवान्, महापर्वत-सरीखा

महामूषक सर्वथा अवश हो गया था। वह भय और पीड़ासे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गया।

कुछ देर बाद सचेत होनेपर तीव्र श्वास छोड़ता हुआ शोकाकुल मूषक कहने लगा—'अचानक दैवनिर्मित काल कैसे आ गया? निश्चय ही होनी होकर रहती है; वहाँ पुरुषार्थ कुछ नहीं कर पाता। मैं अपने दंष्ट्राग्रसे पर्वतोंको नष्ट कर देता था और देवता, असुर, राक्षस और मनुष्योंकी तो कोई गणना ही नहीं करता था; ऐसे मुझ शक्तिशालीका गला किसने बाँध लिया!'

जैसे गरुडास्त्र साँपको वशमें कर लेता है, उसी प्रकार गजाननके तेजस्वी पाशने मूषकको बाँध लिया और उसे खींचकर गजाननके सम्मुख उपस्थित कर दिया। पाशबद्ध मूषकने गजमुखका दर्शन प्राप्त किया तो उसे ज्ञानोदय हुआ। उसने परम प्रभुके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया और स्तुति करते हुए कहने लगा—'प्रभो! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, जगत्के कर्ता, हर्ता और पालक हैं। ब्रह्मादि देवताओंके लिये अगम्य और मुनि-मन-मानस-मराल दयामय देव! आपका दर्शन करनेसे मैं धन्य हो गया; मेरे दोनों नेत्र सफल हो गये। अब आप मुझपर दया करें।'

मूषककी इस प्रकार दृढ़ भक्तिपूरित स्तुति सुनकर पराशरनन्दन प्रसन्न हो गये। उन्होंने मूषकसे कहा—'अनघ! तूने देवताओं और ब्राह्मणोंको बड़ा कष्ट दिया और मैंने दुष्टोंके नाश और साधु-पुरुषोंको सुखी करनेके लिये अवतार ग्रहण किया है। तू मेरी शरण आ गया, इसलिये निर्भय हो जा और तेरी कोई इच्छा हो, वह वर माँग ले।'

मूषकका अहंकार जगा। बोला—'मुझे आपसे कुछ नहीं माँगना है। आप चाहें तो मुझसे वरकी याचना कर सकते हैं।'

'यदि तेरा वचन सत्य है तो तू मेरा वाहन बन जा।'[१] गर्वोन्मत्त मूषकसे गर्वहारी गणेशने कहा।

'तथास्तु!' मूषकके कहते ही पिंगाक्ष तत्क्षण उसके ऊपर जा बैठे।

'आह!' मूषक गजाननके भारसे दबकर अत्यन्त कष्ट पाने लगा। उसे प्रतीत हुआ कि 'मैं चूर्ण-विचूर्ण हो जाऊँगा।' तब उसने देवेश्वर गणेशसे प्रार्थना की—'प्रभो! आप इतने हलके हो जायँ कि मैं आपका भार वहन कर सकूँ।' मूषकका गर्व खर्व हो गया और गजमुख उसके वहन करनेयोग्य हलके हो गये।[२]

गजाननकी यह लीला देखकर महर्षि पराशरने अत्यन्त विस्मयके साथ उनके चरणोंमें प्रणाम निवेदन कर कहा—'अत्यन्त आश्चर्य! बालकोंमें इतना पौरुष मैंने कहीं नहीं देखा। जिस मूषकके शब्दसे पर्वत विदीर्ण हो जाते थे, उसे आपने क्षणभरमें ही अपना वाहन बना लिया।'

---

१. वाहतां मम याहि त्वं यदि सत्यं वचस्तव।

(गणेशपु० २। १३४। ३८)

२. क्रौंच नामक गन्धर्वको आदिदेव गजाननका वाहन बननेका सौभाग्य कैसे प्राप्त हुआ, इसके सम्बन्धमें गणेशपुराणमें ही एक कथा आती है, जिसका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

प्राचीन कालमें सुमेरुपर सौभरि ऋषिका अत्यन्त मनोरम आश्रम था। उनकी अत्यन्त रूपवती और पतिव्रता पत्नीका नाम मनोमयी था। एक दिन ऋषि समिधा लेने अरण्यमें गये और मनोमयी गृह-कार्यमें लग गयी। उसी समय दुष्ट क्रौंच गन्धर्व वहाँ आया। उसने अनुपम लावण्यवती मनोमयीको देखा तो व्याकुल हो गया।

कामातुर क्रौंचने ऋषि-पत्नीका हाथ पकड़ लिया। रोती और काँपती हुई ऋषि-पत्नी उससे दयाकी भीख माँगने लगी। उसी समय सौभरि ऋषि आ गये। क्रोधके कारण उनके नेत्रोंसे ज्वाला निकलने लगी। उन्होंने गन्धर्वको शाप देते हुए कहा—'दुष्ट! तूने चोरकी तरह आकर मेरी सहधर्मिणीका हाथ पकड़ा है, इस कारण तू मूषक होकर धरतीके नीचे और चारों ओर चोरीके द्वारा अपना पेट भरेगा।'

काँपते हुए गन्धर्वने मुनिसे प्रार्थना की—'दयालु मुनि! अविवेकके कारण मैंने आपकी पत्नीके केवल हाथका स्पर्श किया था। आप कृपया मुझे क्षमा कर दें।'

ऋषिने कहा—'मेरा शाप व्यर्थ नहीं होगा; तथापि द्वापरमें महर्षि पराशरके यहाँ देवदेव गजमुख पुत्ररूपमें प्रकट होंगे। तू उनका वाहन बन जायगा। तब देवगण भी तुम्हारा सम्मान करने लगेंगे।'

हर्ष और शोकसे भरा क्रौंच वहाँसे लौट गया।

उसी समय वहाँ गजाननकी माता वत्सला आ गयीं। वे अत्यन्त आनन्दपूर्वक पुत्रको अंकमें लेकर स्तनपान करातीं और उसके मस्तकपर धीरे-धीरे अपना हाथ फेरती हुई कहने लगीं—'मैं तेरे स्वरूप और पराक्रमको नहीं जानती। मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि तू मेरे जन्म-जन्मान्तरके परम पुण्यसे मेरे अंकमें आया है।'

दूसरे दिन गजाननने मूषकके गलेमें रस्सी बाँधी और फिर उसके साथ उनकी क्रीड़ा प्रारम्भ हो गयी।

सिन्दूरासुरका उद्धार

गजानन नौ वर्षके हुए। इस बीच उन्होंने अपनी भुवनमोहिनी बाल-क्रीड़ाओंसे महर्षि पराशर, माता वत्सला और आश्रमके ऋषियों, ऋषि-पत्नियों तथा मुनि-पुत्रोंको अतिशय सुख प्रदान किया। साथ ही कुशाग्रबुद्धि, विचक्षण गजानन समस्त वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों एवं शस्त्रास्त्र-संचालन आदिके पारंगत विद्वान् हो गये। उनकी प्रखर प्रतिभाका अनुभव कर महर्षि पराशर चकित हो जाते; ऋषिगण विस्मित रहते। गजमुख सबके अन्यतम प्रीति भाजन बन गये थे।

इधर सर्वथा निरंकुश, परम उद्दण्ड, शक्तिशाली सिन्दूरका अत्याचार पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उसके भयसे देव-पूजन और यज्ञ-यागादि सब बंद हो गये थे तथा देवता, ऋषि और ब्राह्मण त्रस्त थे, भीत थे। कुछ गिरि-गुफाओं और निविड़ वनोंमें छिपकर अपने दिन व्यतीत करते थे। अधिकांश सत्त्वगुणसम्पन्न धर्मपरायण देव-विप्रादि सिन्दूरके कारागारमें यातना सह रहे थे।

उस उद्धत असुरकी इस अनीतिका संवाद जब पराशर-आश्रममें पहुँचता तो गजानन अधीर और अशान्त हो जाते और अब तो त्रैलोक्यकी दारुण स्थिति उनके लिये असह्य हो गयी। क्षुब्ध गजाननने अपने पिता पराशरके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर! सिन्दूरासुरके दुराचारसे धरती त्रस्त हो गयी है, सर्वत्र अनीति और अनाचारका साम्राज्य छा गया है; सद्धर्म लुप्त हो गया और सदाचारपरायण जन अत्यन्त पीड़ित हैं। उन्हें अपने त्राणका कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है। ऐसी परिस्थितिमें मैं उद्विग्न हो उठा हूँ; धरतीका बोझ उतारनेके लिये मैं अधीर, अशान्त और आकुल हो गया हूँ। आप कृपापूर्वक अपना वरद हस्त मेरे सिरपर रख दें, जिससे मैं अपने पवित्रतम कर्तव्यका पालन करूँ।'

महर्षि हँस पड़े, किंतु गजमुखके शुभ आन्तरिक भावोंसे उन्हें प्रसन्नता भी हुई। उन्होंने स्नेहपूर्वक गजाननको समझाते हुए कहा—'बेटा गजानन! तेरे विचार अत्युत्तम हैं; किंतु तू अभी केवल नौ वर्षका सुकुमार बालक है; आकाशका चन्द्र कैसे पकड़ेगा? जिस सिन्दूरके हुँकारसे पर्वत शतधा विदीर्ण होकर धरतीपर बिखर जाते हैं और जिसके पदाघातसे त्रिभुवन काँप उठता है, उस अमित शौर्यशाली असुरके साथ तुम केवल मेरे अनुग्रहसे युद्ध करना चाहते हो तो मेरा शुभाशीर्वाद तो सदा तुम्हारे साथ ही है।'

'परम पूज्य मुनिनाथ! आप अपना मंगलमय वरद हस्त मेरे सिरपर रख दें, फिर आप प्रत्यक्ष देखेंगे कि आपका यह पुत्र धरतीका बोझ उतारकर देवताओं, मुनियों एवं ब्राह्मणादिकोंको स्वतन्त्र और सुखी कर देगा।' गजमुखने बलपूर्वक कहा—'असुर निश्चय मारा जायगा। सिन्दूरका संहार होकर रहेगा।'

पुलकित महर्षि पराशरने अपने प्राणप्रिय गजाननके मस्तकपर स्नेहपूरित वरद हस्त रखा तो उनके नेत्र सजल हो गये। अवरुद्ध कण्ठसे उन्होंने कहा—'चन्द्रचूड़ तुम्हें विजय प्रदान करें।'

गजाननने प्रसन्नतापूर्वक अपने वृद्ध पिताके चरणोंपर मस्तक रख दिया। महर्षि अपना हाथ बालकके सिरपर अतिशय स्नेहसे फेरते रहे और जब गजाननने अपनी माता वत्सलाके चरणोंपर सिर रखा तो उन्होंने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया।

'माँ ! मुझे आशिष् दो, जिससे मैं अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना कर सकूँ।'

'प्राणप्रिय वत्स।' वत्सलाके नेत्र बरस पड़े। गजाननके सिरपर हाथ फेरती हुई स्नेहमयी जननी बोल नहीं सकीं। उनके मुँहसे केवल अधूरा वाक्य निकल सका—'माता तो अपने प्राण-प्रिय पुत्रकी सदा ही विजय·····।'

सिर झुकाये गणेश मातासे बिदा हुए तो उनके नेत्रोंसे दो मुक्ता-कण ढुलक पड़े, जिन्हें उन्होंने इस सावधानीसे छिपा लिया कि माता नहीं देख सकीं। गजाननने महर्षि पराशर और जननीके अनन्तर दुर्गा,

शिव एवं श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। वहाँ उपस्थित ऋषियोंके चरणोंमें शीश झुकाया।

फिर वत्सलानन्दन अपने चारों हाथोंमें अंकुश, परशु, पाश और कमल धारणकर मूषकपर आरूढ़ हुए। वीर बालक गजाननने गर्जना की। उनके गर्जनसे त्रिभुवन काँपने लगे। गजानन वायुवेगसे चले। उनके परम तेजस्वी स्वरूपसे प्रलयाग्नि-तुल्य ज्वाला निकल रही थी।

सिन्दूरासुरकी राजधानी घृसृणेश्वरके समीप सिन्दूरवाड़ नगरमें थी। वह वहींसे त्रैलोक्यका शासन करता था। महाप्रभु गजानन उक्त राजधानीके उत्तर पहुँचे। वहाँ वे भयानक गर्जन करने लगे। गजाननके गर्जनसे पर्वत टूट-टूटकर गिरने लगे, सागरमें गगनचुम्बी लहरें उठने लगीं, भीरुजन मूर्च्छित हो गये और दैत्योंका हृदय काँप उठा। कुछ देरके लिये सिन्दूर भी मूर्च्छित हो गया।

प्रकृतिस्थ होनेपर सिन्दूरने अपने सेवकोंसे कहा—'अरे, यह कौन वीर गर्जन कर रहा है, जिससे वीर पुरुष भी काँप उठे हैं। तुमलोग पता लगाओ; फिर मैं उसके सम्मुख चलता हूँ।'

दूत तुरंत चले। जब उन्होंने गजाननका अत्यन्त विकट रूप देखा तो काँपने लगे। अत्यन्त साहससे उन्होंने पूछा—'अरे, तुम नौ-दस वर्षके बालक कौन हो, कहाँसे आये हो, तुम्हारा नाम क्या है और तुम त्रैलोक्यविजयी सिन्दूरकी सीमापर गर्जन क्यों कर रहे हो? तुम्हें महाबलशाली असुरराजकी शक्तिका पता नहीं है क्या?'

क्रोधारुणलोचन विकटतम मुनिपुत्रने उत्तर दिया—'राक्षसो! मैं तुम्हारे राजा सिन्दूरासुर और उसकी शक्तिसे अच्छी तरह परिचित होकर ही उसका वध करने यहाँ आया हूँ। मैं पार्वती-परमेश्वरका पुत्र हूँ। मेरा नाम गजानन है। मैं समस्त असुरकुलका सर्वनाश करके देवताओं तथा मुनियोंको त्राण देकर सद्धर्मकी स्थापना करने आया हूँ। मेरा यह संदेश तुम शीघ्र ही असुरराजके पास पहुँचा दो।'

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर बताया—'स्वामिन्! शिवा और शिवका केवल नौ-दस वर्षका महाभयानक पुत्र गजानन आप-जैसे अमित पराक्रमी शूरसे युद्ध करने आया है। वह काल-तुल्य बालक दैत्यकुलका संहार करनेके लिये आतुर प्रतीत होता है; किंतु आप-जैसे अद्वितीय वीर योद्धाके सम्मुख वह मच्छर-तुल्य बालक कैसे बच सकेगा?'

सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गया; किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। बोला—'दूतो! तुम जानते हो, मेरे भयसे त्रैलोक्यके समस्त चराचर प्राणी काँपते हैं। पराक्रमी नरेश और देवता मेरे कारागारमें अपने जीवनके दिन गिनते हैं और शेष प्राण लेकर पर्वतों एवं वनोंमें छिपे बैठे हैं। इस नगण्य बालकको मसल देनेमें मुझे कितनी देर लगेगी।'

जब सिन्दूरने भयानक गर्जना की और अपने शस्त्रास्त्र धारण करने लगा, तब उसके अमात्योंने उसे समझाते हुए कहा—'स्वामिन्! आपकी परम पराक्रमी विशाल वीर-वाहिनीको बहुत दिनोंसे युद्धका अवसर नहीं मिला; अतएव आप हमें आज्ञा प्रदान करें। हम तुरंत उस गर्वोन्मत्त बालकका वध कर देते हैं। हमलोगोंके रहते आपको शस्त्र उठानेकी आवश्यकता नहीं।'

'वीरो! मैं तुम्हारे शौर्यसे परिचित हूँ, किंतु उक्त अहंकारी बालकको मृत्यु-दण्ड देनेके लिये मैं आतुर हो गया हूँ।' कहता हुआ सिन्दूर वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख पहुँच गया।

'मूर्ख बालक!' महामदमत्त सिन्दूरासुर गजाननके समीप पहुँच उनकी उपेक्षा करते हुए कहने लगा—'तू गर्जन तो ऐसा कर रहा है, जैसे त्रैलोक्यको निगल जायगा, किंतु मेरे भयसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव—सभी त्रस्त हैं। त्रैलोक्य मुझसे काँपता है। इस कारण क्षुद्रतम बालकसे युद्ध करनेमें मुझे लज्जा आ रही है। तू सुकुमार बच्चा है। जा, अपनी माताके अंकमें बैठकर दुग्धपान कर; अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु-मुखमें चला जायगा और तेरी माता रोती हुई विलाप करने लगेगी।'

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे उत्तर दिया—'तूने बात तो उचित कही; किंतु अग्निका एक लघुकण सम्पूर्ण नगरको दग्ध करनेमें समर्थ होता है। मैं जगत्‌का सर्जन, पालन और संहार भी करता हूँ। मैं दुष्टोंका सर्वनाश कर धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ। यदि तू मेरी शरण आकर अपने पातकोंके लिये क्षमा-प्रार्थनाकर सद्धर्मपरायण नरेशकी

भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर ले, तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा; अन्यथा विश्वास कर, तेरा अन्तकाल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धारण कर लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। दोनों पैर पातालमें थे। कानोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र व्याप्त थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उन अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखकर परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर वह प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ़! तू मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता; अब मैं तुझे मुक्ति प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लिया और उसे अपने वज्र-सदृश दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुरके नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपने दिव्य अंगोंपर पोत लिया। इस कारण जगत्‌में उन भक्तवाञ्छा-कल्पतरु प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।*

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

ब्रह्मा, इन्द्रादि देव और वसिष्ठादि मुनि 'गजाननकी जय' बोलते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दुःख दूर करनेवाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर-वधसे प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अंकुश, परशु और मालाधारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी षोडशोपचारसे भक्तिपूर्वक पूजा की। तदनन्तर इन्द्रादि देवगण परम प्रभु पार्वती-पुत्र गजाननकी स्तुति करने लगे—

.......स्तोतुं त्वां न हि शक्नुमः॥
यत्र कुण्ठाश्चतुर्वेदा ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः।
त्वं कर्ता कारणं कार्यं रक्षकः पोषकोऽपि च॥
संहर्ता मोहनश्चास्य विश्वस्य ज्ञानदः क्वचित्।
सरितः सागरा वृक्षाः पर्वताः पशवोऽखिलाः॥
वायुराकाशपृथिवी वह्निर्वारि त्वमेव च।
ब्रह्मा विष्णुः शिवः शक्रो मरुतो मुनयोऽपि च॥
गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा यक्षराक्षसपन्नगाः।
अप्सरः किन्नरा देव त्वमेव सचराचरम्॥
वयं धन्या यतो दृष्टः प्रत्यक्षं मोक्षसाधनः।
सिन्दूरे तु हते देव सुखं प्राप्ताः सुरोत्तमाः॥
राजानो मुनयो लोकाः स्वस्वकार्ये मुदा रताः।
भविष्यन्ति स्वधास्वाहावषट्काराश्रिताः क्रियाः॥
नानावतारैः कुरुषे पालनं त्वं विशेषतः।
दुष्टानां नाशनं सद्यो भक्तानां कामपूरकः॥

(गणेशपु० २। १३७। २८—३५)

'प्रभो! हम आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; जिनके विषयमें कुछ कहनेमें चारों वेद, ब्रह्मादि देवता और मुनीश्वर भी कुण्ठित हैं, वहाँ हमारी क्या गिनती है? आप इस जगत्‌के कर्ता, कारण, कार्य, रक्षक, पोषक, संहारक, मोहक और कहीं ज्ञानदाता भी हैं। नदियाँ, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, समस्त पशु, वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि और जल भी आप ही हैं। देव! आप ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्‌गण, मुनि, गन्धर्व, चारण, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, नाग, अप्सराएँ, किन्नर तथा चराचर प्राणियों-सहित समस्त जगत् हैं। हम धन्य हैं; क्योंकि हमने मोक्ष-साधक आप परमेश्वरका प्रत्यक्ष दर्शन किया है। देव! इस सिन्दूरासुरके मारे जानेसे समस्त श्रेष्ठ देवताओंको सुख प्राप्त हुआ है। अब राजा, मुनि, लोक अपने-अपने कार्यमें प्रसन्नतापूर्वक लग जायँगे। स्वधा, स्वाहा और वषट्कारके आश्रित समस्त क्रियाएँ निर्विघ्न होंगी। आप नाना प्रकारके अवतार लेकर विशेषरूपसे जगत्‌का पालन करते हैं एवं दुष्टोंका विनाश करके भक्तोंकी कामनाओंको तत्काल पूर्ण करते हैं।'

---

* ततः सिन्दूरवदनः सिन्दूरप्रिय एव च। अभवज्जगति ख्यातो भक्तकामप्रपूरकः॥

(गणेशपु० २। १३७। २३)

इस प्रकार स्तुति कर देवताओंने वहाँ एक भव्य मन्दिरका निर्माण किया और फिर उसमें गजाननकी सुन्दर मूर्ति स्थापित की। उसके दर्शनमात्रसे प्राणी निष्पाप हो जाता है।

देवताओंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उस मूर्तिकी विविधोपचारसे पूजा कर उसे प्रणाम किया। तदनन्तर मुनियोंने भी प्रसन्नमनसे उक्त गजानन-प्रतिमाका पूजन किया। सिन्दूरासुरको मारकर उन्हें सुखी करनेके कारण देवताओं और ऋषियोंने उक्त मूर्तिका नामकरण किया—'सिन्दूरहा'। फिर वे सभी अपने-अपने स्थानको चले गये।

इसके बाद श्रेष्ठ मुनियोंने नाना प्रकारके द्रव्योंसे गजानन-मूर्तिकी पूजा करके उसे प्रणाम किया और उक्त स्थानका नाम 'राजसदन' रखा।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने यह विचारकर कि गजाननने दैत्यका नाश करके राजाओंको उनका पद प्रदान किया, उन्हें 'दैत्य-विमर्दन!' कहा।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की। अत्यधिक प्रेमके कारण राजा वरेण्यकी वाणी अवरुद्ध थी; नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। फिर दुःखके कारण रोते हुए उन्होंने देवदेव गजाननसे कहा—'जिस अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मैं अपनी मूढ़ताको क्या कहूँ? घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर खदेड़ दिया। आपकी मायासे मोहित होकर मैंने बड़ा अनर्थ किया है। आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने उन्हें अपनी चारों भुजाओंसे आलिंगन किया और फिर कहा—'नरेश! पूर्वकल्पमें जब तुमने अपनी पत्नीके साथ सूखे पत्तोंपर जीवन-निर्वाह करते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तप किया था, तब मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें दर्शन दिया। तुमने मुझसे मोक्ष न माँगकर मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। अतएव तुम्हारे पुत्ररूपमें सिन्दूर-वधकर भू भार-हरण करने तथा साधुजनोंके पालनके लिये मैंने साकार विग्रह धारण किया; अन्यथा मैं तो निराकार रूपसे अणु-परमाणुमें व्याप्त हूँ। मैंने अवतार धारणकर सारा कार्य पूर्ण कर लिया। अब स्वधाम-प्रयाण करूँगा। तुम चिन्ता मत करना।'

'प्रभो! जगत् शाश्वत दुःखालय है।' प्रभुके स्वधाम-गमनकी बात सुनते ही राजा वरेण्यने अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर कहा—'आप कृपापूर्वक मुझे इससे मुक्त होनेका मार्ग बता दीजिये।'

कृपापरवश प्रभु गजानन वहीं आसनपर बैठ गये। अपने सम्मुख बद्धांजलि आसीन राजा वरेण्यके मस्तकपर उन्होंने अपना त्रितापहारी वरद हस्त रख दिया। तदनन्तर उन्होंने नरेश वरेण्यको सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीगजानन अन्तर्धान हो गये। परम प्रभुकी संनिधि, उनके कर-स्पर्श एवं अमृतमय उपदेशसे नरेश वरेण्य पूर्ण विरक्त हो गये। उन्होंने राज्यका दायित्व अमात्योंको सौंपा और स्वयं तपश्चरणार्थ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपना चित्त विषयोंसे हटाकर परब्रह्म श्रीगजाननमें केन्द्रित किया तथा अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

श्रीगजानन-प्रदत्त अमृतोपदेश 'गणेश-गीता'के नामसे प्रख्यात हुआ।

(४)

श्रीधूम्रकेतु

श्रीगणेशका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकेतु' के नामसे विख्यात होगा। उस समय देश-समाजकी कैसी परिस्थिति रहेगी, इसका दिग्दर्शन गणेशपुराण १४९वें अध्यायमें इस प्रकार कराया गया है—

कलियुगमें प्रायः सभी आचारभ्रष्ट एवं मिथ्याभाषी हो जायँगे। ब्राह्मण वेदाध्ययन और संध्या-वन्दनादि कर्म त्याग देंगे। यज्ञ-यागादि और दान कहीं नहीं होगा। परदोष-दर्शन, पर-निन्दा एवं परस्त्री-अपमान सभी करने लग जायँगे। सर्वत्र विश्वासघात होने लगेगा। मेघ समयपर वर्षा नहीं करेंगे। कृषक नदियोंके तटपर खेती करेंगे। बलवान् दुर्बलका धन छीन लेंगे और उनसे

अधिक बलवान् उनकी सम्पत्तिका अपहरण करेंगे। ब्राह्मण शूद्र-कर्म करने लगेंगे और शूद्र वेद-पाठ करेंगे। क्षत्रिय वैश्योंके और वैश्य शूद्रोंके कर्म करने लग जायँगे। ब्राह्मण चण्डालका प्रतिग्रह स्वीकार करने लगेंगे। प्रायः सभी मूर्ख और दरिद्र होंगे। सर्वत्र हाहाकार मच जायगा। कलियुगी मनुष्य दूसरेका धन लेकर भी शपथपूर्वक अस्वीकार कर जायँगे।

सभी लोग पर-धनकी याचना करनेवाले होंगे और पर-धन स्वीकार करनेमें लज्जा एवं संकोचका अनुभव नहीं करेंगे। उत्कोच लेकर मिथ्या साक्षी देनेमें लोगोंको तनिक भी झिझक या आत्मग्लानि नहीं होगी। लोग सज्जनोंकी निन्दा और दुष्टोंसे मैत्री करेंगे। ब्राह्मण मांसाहारी हो जायँगे। सज्जनोंका उच्छेद और दुर्जनोंका उत्कर्ष होगा। मनुष्य देवताओंको त्यागकर इन्द्रिय-सुखमें तल्लीन रहने लगेंगे। वे भूत, प्रेत और पिशाचकी पूजा करने लगेंगे। नाना प्रकारके वेष बनाकर दम्भपूर्वक उदरपूर्तिका प्रयत्न होगा। क्षत्रिय अपने धर्मका पालन छोड़कर भिक्षाटन करने लगेंगे। व्रत, नियम, आचरण—सभी लुप्त हो जायँगे।

संतान वर्णसंकर होगी। घोर कलिके उपस्थित होनेपर साध्वी स्त्रियाँ अपने व्रतसे भ्रष्ट हो जायँगी। पर-धन-हरण करनेवाले सभी मनुष्य म्लेच्छप्राय हो जायँगे। वे कुमार्गगामी होंगे। पृथ्वीकी उर्वरा-शक्ति नष्ट हो जायगी और वृक्ष रसहीन हो जायँगे।

पाँच और छः वर्षकी कन्याएँ प्रसव करने लगेंगी। उस समय स्त्री-पुरुषोंकी पूर्णायु सोलह वर्षकी होगी। देवता और तीर्थ लुप्त हो जायँगे। धनार्जन ही प्रधान धर्म होगा। इस प्रकार सर्वत्र अधर्म, अनीति, अत्याचार और दुराचारका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा। ईर्ष्या, द्वेष एवं मानसिक ज्वालासे सभी जलते रहेंगे। कलिकी अत्यन्त दारुण स्थितिका विवेचन सम्भव नहीं।

उस समय स्वाहा, स्वधा और वषट्कार-कर्म न होनेसे देवगण उपवास करने लगेंगे। वे अत्यन्त भयभीत होकर देवाधिदेव गजाननकी शरण जायँगे। फिर विविध प्रकारसे उन सर्वविघ्नविनाशन गजानन-प्रभुका स्तवन कर उन्हें बार-बार नमस्कार करेंगे।

तब कलिके अन्तमें सर्वदुःखापह परम प्रभु गजानन धराधामपर अवतरित होंगे। उनका 'शूर्पकर्ण' और 'धूम्रवर्ण' नाम प्रसिद्ध होगा। क्रोधके कारण उन परम तेजस्वी प्रभुके शरीरसे ज्वाला निकलती रहेगी। वे नीले अश्वपर आरूढ़ होंगे। उन प्रभुके हाथमें शत्रु-संहारक तीक्ष्णतम खड्ग होगा। वे अपने इच्छानुसार नाना प्रकारके सैनिक एवं बहुमूल्य अमोघ शस्त्रास्त्रोंका निर्माण कर लेंगे।

फिर पातकध्वंसी परमप्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज एवं सेनाके द्वारा सहज ही म्लेच्छोंका सर्वनाश कर देंगे। म्लेच्छ या मलेच्छजीवन व्यतीत करनेवाले निश्चय ही परम प्रभु धूम्रकेतुके द्वारा मारे जायँगे। उन धर्म-संस्थापक प्रभुके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होती रहेगी।

वे सर्वाधार, सर्वात्मा प्रभु धूम्रकेतु उस समय गिरि-कन्दराओं एवं अरण्योंमें छिपकर वनफलोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें सम्मानित करेंगे और वे करुणामय धर्ममूर्ति शूर्पकर्ण उन सत्पुरुषोंको सद्धर्म एवं सत्कर्मके पालनके लिये प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करेंगे। फिर सबके द्वारा धर्माचरण सम्पादित होगा और धर्ममय सत्ययुगका शुभारम्भ हो जायगा।

~~○~~

जय गणपति !

जय गणपति, गणनायक जय हे! जन-मन-मङ्गल, त्राता।
एक-रदन, गज-वदन, विनायक, कृपासिन्धु सुखदाता॥
जय लम्बोदर, मूषक-वाहन, विघ्न-विनाशन-कर्ता।
जय जग-वन्दन, शंकर-नन्दन, कलुष-ताप-तम-हर्ता॥
बुद्धिराशि, शुभ ज्ञान-प्रकाशक, मोदक-प्रियवर वर दो।
भारत-माताके अञ्चलमें सुखद सम्पदा भर दो॥

—श्रीवासुदेवजी गोस्वामी

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार

(मुद्गलपुराणमें)

मुद्गलपुराणमें कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेशके अनन्त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है। उनमें कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवतारोंमें भी ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

वक्रतुण्डावतारश्च देहानां ब्रह्मधारकः।
मत्सरासुरहन्ता स सिंहवाहनगः स्मृतः॥
एकदन्तावतारो वै देहिनां ब्रह्मधारकः।
मदासुरस्य हन्ता स आखुवाहनगः स्मृतः॥
महोदर इति ख्यातो ज्ञानब्रह्मप्रकाशकः।
मोहासुरस्य शत्रुर्वै आखुवाहनगः स्मृतः॥
गजाननः स विज्ञेयः सांख्येभ्यः सिद्धिदायकः।
लोभासुरप्रहर्ता वै आखुगश्च प्रकीर्तितः॥
लम्बोदरावतारो वै क्रोधासुरनिबर्हणः।
शक्तिब्रह्माखुगः सद् यत् तस्य धारक उच्यते॥
विकटो नाम विख्यातः कामासुरविदाहकः।
मयूरवाहनश्चायं सौरब्रह्मधरः स्मृतः॥
विघ्नराजावतारश्च शेषवाहन उच्यते।
ममतासुरहन्ता स विष्णुब्रह्मेति वाचकः॥
धूम्रवर्णावतारश्चाभिमानासुरनाशकः।
आखुवाहन एवासौ शिवात्मा तु स उच्यते॥

(मुद्गलपुराण २०।५—१२)

'वक्रतुण्डावतार' देह-ब्रह्मको धारण करनेवाला है, वह मत्सरासुरका संहारक तथा सिंहवाहनपर चलनेवाला माना गया है। 'एकदन्तावतार' देहि-ब्रह्मका धारक है, वह मदासुरका वध करनेवाला है; उसका वाहन मूषक बताया गया है 'महोदर' नामसे विख्यात अवतार ज्ञान-ब्रह्मका प्रकाशक है। उसे मोहासुरका विनाशक और मूषकवाहन बताया गया है। जो 'गजानन' नामक अवतार है, (वह सांख्यब्रह्म-धारक है,) उसको सांख्ययोगियोंके लिये सिद्धिदायक जानना चाहिये। उसे लोभासुरका संहारक और मूषकवाहन कहा गया है। 'लम्बोदर' नामक अवतार क्रोधासुरका उन्मूलन करनेवाला है; वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है। वह भी मूषकवाहन ही है। 'विकट'-नामसे प्रसिद्ध अवतार कामासुरका संहारक है, वह मयूर-वाहन एवं सौरब्रह्मका धारक माना गया है। 'विघ्नराज' नामक जो अवतार है, उसके वाहन शेषनाग बताये जाते हैं, वह विष्णुब्रह्मका वाचक (धारक) तथा ममतासुरका विनाशक है। 'धूम्रवर्ण' नामक अवतार अभिमानासुरका नाश करनेवाला है, वह शिवब्रह्म-स्वरूप है। उसे भी मूषक-वाहन ही कहा जाता है।'

उन आठ अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

(१)

वक्रतुण्ड

देवराज इन्द्रके प्रमादसे महान् असुर मत्सरका जन्म हुआ। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यसे शिव-पंचाक्षरी मन्त्र (**ॐ नमः शिवाय**)-की दीक्षा प्राप्त की। मत्सरने इस मन्त्रका जप करते हुए कठोर तप किया। उसके तपश्चरणसे संतुष्ट होकर भगवान् शंकरने अपनी सहधर्मिणी पार्वती और गणोंके साथ उसे दर्शन दिया।

मुदितमन मत्सरने शिवा और शिवकी प्रेमपूर्ण स्तुति की। भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान किया—'तुम्हें किसीसे भय नहीं रहेगा।'

प्रसन्नचित्त मत्सर घर लौटा तो शुक्राचार्यने उसे दैत्यराजके पदपर अभिषिक्त किया। दैत्योंने सामर्थ्यशाली मत्सरको विश्व-विजयका परामर्श दिया।

फिर क्या था, वर-प्राप्त मत्सरासुरने अपनी विशाल वाहिनीके साथ पृथ्वीके नरेशोंपर आक्रमण कर दिया। पृथ्वीके नरपति युद्धभूमिमें उस महान् असुरके सम्मुख टिक नहीं सके। कुछ पराजित हो गये और कुछ प्राण लेकर भागे। सम्पूर्ण पृथ्वी मत्सरासुरके अधीन हो गयी।

तदनन्तर गर्वोन्मत्त असुरने पाताललोकपर आक्रमण किया। अमित शक्तिसम्पन्न असुरके द्वारा सर्वनाश होते देख शेषने विनयपूर्वक उसके शासनमें रहकर नियमितरूपसे कर देना स्वीकार कर लिया।

पृथ्वी और पातालको अपने अधिकारमें ले लेनेके अनन्तर महासुरने देवलोकपर चढ़ाई कर दी।

वरुण, कुबेर और यम आदि देवता पराजित हो गये। फिर उसने अमरावतीको घेर लिया। सुरेन्द्र भी पराक्रमी असुरके सम्मुख टिक नहीं सके। मत्सरासुर स्वर्गका अधिपति हुआ।

असुरोंसे त्रस्त ब्रह्मा और विष्णु आदि देवता कैलास पहुँचे। उन्होंने भगवान् शंकरसे दैत्योंके उपद्रवका वृत्तान्त सुनाया। भगवान् शंकरने असुरकी निन्दा की।

यह समाचार जब मत्सरको प्राप्त हुआ तो वह अत्यन्त कुपित होकर कैलासपर जा चढ़ा। त्रिपुरारिने मत्सरासुरसे युद्ध किया; किंतु उस त्रैलोक्यविजयी दैत्यने भवानीपतिको भी पाशमें बाँध लिया। वह कैलासका स्वामी बनकर वहीं रहने लगा।

मत्सरासुरने कैलास और वैकुण्ठके शासनका भार अपने पुत्रोंको देकर स्वयं वैभवसम्पन्न मत्सरावासमें रहने लगा। उस निष्ठुर असुरका शासन अत्यन्त क्रूर था। अनीति और अत्याचारका ताण्डव होने लगा।

दुःखी देवता मत्सरासुरके विनाशका उपाय सोचनेके लिये एकत्र हुए। कोई मार्ग न देखकर वे अत्यन्त चिन्तित हो रहे थे। उसी समय वहाँ भगवान् दत्तात्रेय आ पहुँचे। उन्होंने देवताओंको वक्रतुण्डके एकाक्षरी मन्त्र (**गं**)-का उपदेश देकर उन्हें अनुष्ठान करनेके लिये प्रेरित किया।

समस्त देवताओंके साथ भगवान् पशुपति वक्रतुण्डके ध्यानके साथ एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। उनकी आराधनासे संतुष्ट होकर सद्यः फलदाता वक्रतुण्ड प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'आपलोग निश्चिन्त हो जायँ। मैं मत्सरासुरका गर्व खर्व कर दूँगा।'

वक्रतुण्डके स्मरणमात्रसे गणोंकी असंख्य सशस्त्र सेना एकत्र हो गयी। वे मत्सरासुरकी राजधानी पहुँचे। शत्रु द्वारपर आ गये—यह समाचार पाकर अमर्षसे भरे हुए असुर युद्धके लिये निकल पड़े; किंतु जब उन्होंने असंख्य गणोंकी विशाल सेनाके साथ महाकाय वक्रतुण्डको देखा तो वे अत्यन्त भयभीत होकर काँपने लगे।

'पराक्रमी शत्रुसे युद्ध उचित नहीं।' लौटकर असुरोंने मत्सरासुरसे कहा। इसपर त्रैलोक्यविजयी असुर अत्यन्त कुपित हुआ। वह स्वयं आक्रमणकारी शत्रुको मिटा देनेके लिये समरभूमिमें उपस्थित हुआ।

उसके आते ही अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ गया। पाँच दिनोंतक वह युद्ध चलता रहा, किंतु किसी पक्षकी विजय नहीं हो सकी। मत्सरासुरके दो पुत्र थे, सुन्दरप्रिय और विषयप्रिय। उन दोनोंने समरभूमिमें पार्वती-वल्लभको मूर्च्छित किया ही था कि वक्रतुण्डके दो गणोंने उन्हें मार डाला।

मत्सर छटपटा उठा। पुत्र-वधसे व्याकुल मत्सरासुरको असुरोंने समझाया और उससे शत्रुका संहार कर प्रतिशोध लेनेके लिये कहा। तब वह रणभूमिमें उपस्थित हुआ। वहाँ उसने वक्रतुण्डका अत्यन्त तिरस्कार किया।

'दुष्ट असुर! यदि तुझे प्राण प्रिय है तो मेरी शरण आ जा; अन्यथा निश्चय ही मारा जायगा।' देवदेव वक्रतुण्डने उससे प्रभावशाली स्वरमें कहा।

पुत्र-वधसे आहत भयाक्रान्त मत्सरासुर भयानकतम वक्रतुण्डको देखकर विनयपूर्वक उनकी स्तुति करने लगा। उसकी प्रार्थनासे संतुष्ट होकर दयामय वक्रतुण्डने उसे अपनी भक्ति प्रदान कर दी।

प्रभु-कृपा-प्राप्त मत्सरासुरने निश्चिन्त होकर सुखका अनुभव किया और देवगण आनन्दमग्न होकर वक्रतुण्डकी स्तुति करने लगे। देवताओंको पूर्ण स्वतन्त्र कर प्रभु वक्रतुण्डने उन्हें अपनी भक्ति भी प्रदान कर दी।

*   *   *

प्रलयके अनन्तर सृष्टिनिर्माणमें अनेक व्यवधान उत्पन्न होनेपर लोक-पितामहने षडक्षरी मन्त्र (**'वक्रतुण्डाय हुम्'**)-का जप करते हुए गणेशको संतुष्ट करनेके लिये कठोर तप करना प्रारम्भ किया। उनके तपश्चरणसे प्रसन्न होकर वक्रतुण्ड प्रकट हुए और विधाताको अभीष्ट वर प्राप्त हुआ। तदनन्तर वे सृष्टिकार्यमें समर्थ हो गये।

लोक-पितामहके कम्पसे दम्भका जन्म हुआ। उसने स्रष्टाको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठोर तपस्या की। पद्मयोनिने संतुष्ट होकर उसे सर्वत्र निर्भयताका वर प्रदान कर दिया।

तब दम्भने अपने लिये एक अत्यन्त सुन्दर नगरका निर्माण करवाया और वहीं रहने लगा। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने उसे दैत्याधिपतिके पदपर अभिषिक्त कर दिया।

अजेय दम्भासुरके अत्यन्त पराक्रमी सैनिक युद्धमें

वीरोंका सहज ही मान-मर्दन किया करते थे। उन असुर-वीरोंके साथ दम्भने सम्पूर्ण पृथ्वीको तो अपने अधीन किया ही, स्वर्ग, वैकुण्ठ और कैलासपर भी अधिकार कर लिया।

निराश्रित देवगण अत्यन्त चिन्तित और दुःखी होकर विधाताके समीप पहुँचे और उनकी स्तुति करने लगे। अत्यन्त दुःखसे उन्होंने प्रार्थना की—प्रभो! हमारी रक्षा कीजिये।'

समस्त देवताओंके साथ ब्रह्माने एकाक्षरी मन्त्रसे वक्रतुण्डका यजन किया। वक्रतुण्ड प्रसन्न होकर देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए। देवताओंने उन करुणामूर्ति वक्रतुण्डका स्तवन करते हुए निवेदन किया—'दारिद्र्य दुःखहर प्रभो! दम्भासुरके द्वारा हमें अतिशय कष्ट हो रहा है। आप कृपापूर्वक हमें सुख-शान्ति प्रदान करें।'

'मै दम्भासुरको पराजित करूँगा।' समस्त आपदाओंका हरण करनेवाले परम प्रभुने सुरसमुदायको आश्वस्त किया।

भगवान् वक्रतुण्डने सुरेन्द्रको दूतके रूपमें दम्भासुरके पास भेजा। उन्होंने असुरसे कहा—'तुम प्रभुकी आज्ञा स्वीकार कर लो और देवताओंको मुक्त कर उन्हें स्वाधीन रहने दो; अन्यथा परम प्रभु वक्रतुण्डसे युद्ध करनेके लिये रणांगणमें आ जाओ। विश्वास करो, युद्ध करनेपर तुम्हारा सर्वनाश सुनिश्चित है।'

'मैं तुमलोगोंका अहंकार चूर्ण कर दूँगा।' दम्भका उत्तर प्राप्तकर शचीपति वक्रतुण्डके समीप पहुँचे।

'यह गणेश कौन है? सिद्धि-बुद्धि उनकी कौन हैं तथा उसका स्वरूप कैसा है?' मघवाके प्रयाणके बाद दम्भने तुरंत शुक्राचार्यके पास जाकर पूछा। शुक्राचार्यने उसे गणेशके यथार्थ स्वरूपका परिचय दिया।

अमित महिमामय वक्रतुण्डके अभूतपूर्व एवं अश्रुतपूर्व दिव्य स्वरूपको जानकर दम्भासुरके मनमें श्रद्धा उदित हुई। उसने गणेशकी शरण जानेका निश्चय किया, किंतु दैत्यगण उसका विरोध करने लगे। दैत्यपतिने सबकी उपेक्षा कर दी और वह नगरके बाहर महोदर महाकाय वक्रतुण्डके चरणोंपर गिरकर उनकी स्तुति करते हुए उनसे क्षमा-प्रार्थना की।

सहज दयामय गणेशने उसे क्षमा कर अपनी भक्ति प्रदान कर दी। देवगण सुखी होकर निश्चिन्ततापूर्वक अपने-अपने कार्यमें लग गये।

(२)

एकदन्त

महर्षि च्यवनने मदकी सृष्टि की। मदने महर्षिके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी अनुमतिसे वह पातालमें शुक्राचार्यके पास पहुँचा। वहाँ उसने दैत्य-गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर दूर खड़ा हो गया।

दैत्य-गुरुके पूछनेपर अपना परिचय देते हुए उसने कहा—"प्रभो! मैं आपके भाई महर्षि च्यवनका पुत्र हूँ; इस प्रकार आपका भी पुत्र हुआ। मेरा नाम 'मद' है। आप कृपापूर्वक मुझे अपना शिष्य बना लें। मैं ब्रह्माण्डका महान् राज्य चाहता हूँ। आप मेरी इच्छा पूरी कर दें।"

शुक्राचार्यने संतुष्ट होकर मदको शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। सर्वार्थकोविद आचार्यने उसे एकाक्षरी विधानसे (**'ह्रीं'** यह) शक्तिमन्त्र दे दिया।'

मदने अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्तकर अरण्यमें तप करने चला गया। शक्तिध्यानपरायण मद सर्वथा निराहार रहकर तपश्चरण करने लगा। सहस्रों वर्ष व्यतीत होनेपर उसका अस्थिमात्र अवशिष्ट शरीर वल्मीकावृत हो गया। उसके चारों ओर वृक्ष उग गये; लताएँ फैल गयीं। असुरके दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तपसे संतुष्ट सिंहवाहिनी भगवती प्रकट हुईं। आदिशक्तिने उसे सावधान किया तो असुर जगज्जननीके चरणोंमें गिर पड़ा। उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर माताने उसे इच्छानुसार वर प्रदान किया—'तुम नीरोग रहोगे और तुम्हें ब्रह्माण्डका निष्कण्टक अचल राज्य प्राप्त होगा। तुम्हारी प्रत्येक इच्छा पूरी हो जाया करेगी।'

परमेश्वरी अन्तर्धान हो गयीं। मद प्रसन्न मनसे घर लौटा। उसने अपने सुन्दर नगरको और भी भव्य एवं सुखद बनवाया। तदनन्तर उसने प्रमादासुरकी कन्या सालसासे विवाह किया।

दूर-दूरके पराक्रमी दैत्य आकर उसके नगरमें रहने लगे। वे अत्यन्त आदरपूर्वक गुरु शुक्राचार्यको ले आये। उन्होंने अपने शिष्य मदको राज्यपदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न दैत्यराज मद सानन्द जीवन व्यतीत करने लगा। उसकी प्राणप्रिया सालसासे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—विलासी, लोलुप और धनप्रिय।

अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न मदासुरने पहले सम्पूर्ण धरतीपर अपना साम्राज्य स्थापित किया। फिर उसने स्वर्गपर चढ़ाई की। इन्द्रादिक देव पराजित हो गये। मदासुर स्वर्गका शासक हुआ।

उस असुरने शूलपाणि त्रिनेत्रको भी पराजित कर दिया। त्रैलोक्य उसके अधीन हो गया। सर्वत्र असुरोंका क्रूरतम शासन चलने लगा। पृथ्वीपर स्वाहा, स्वधा और वषट्कार आदि समस्त धर्म-कर्म लुप्त हो गये। देवताओं और मुनियोंके दुःखकी सीमा नहीं थी। सर्वत्र हाहाकार मच गया।

चिन्तित देवगण सनत्कुमारके समीप पहुँचे। उन्होंने अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए असुर-विनाश एवं धर्म स्थापनाका उपाय पूछा।

सनत्कुमारने कहा—'देवगण! आप श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एकदन्तकी उपासना करें। वे संतुष्ट होकर अवतीर्ण होंगे और निश्चय ही आपलोगोंका मनोरथ पूर्ण होगा।'

देवताओंके पूछनेपर सनत्कुमारने उन्हें एकाक्षरी मन्त्रका उपदेश कर एकदन्तका ध्यान इस प्रकार बताया—

एकदन्तं चतुर्बाहुं गजवक्त्रं महोदरम्।
सिद्धिबुद्धिसमायुक्तं मूषकारूढमेव च॥
नाभिशेषं सपाशं वै परशुं कमलं शुभम्।
अभयं दधतं चैव प्रसन्नवदनाम्बुजम्॥
भक्तेभ्यो वरदं नित्यमभक्तानां निषूदनम्।

(मुद्गलपु० २। ५२। ९—११)

'गणेशजीके एक दाँत और चार भुजाएँ हैं। उनका मुख हाथीके समान है। वे लम्बोदर हैं। उनके साथ सिद्धि और बुद्धि भी हैं। वे मूषकपर आरूढ़ हैं। उनकी नाभिमें शेषनाग हैं। वे अपने हाथोंमें पाश, परशु, सुन्दर कमल और अभय मुद्रा धारण करते हैं। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ है। वे भक्तोंके लिये सदा वरदायक और अभक्तोंके विनाशक हैं (मैं उनका ध्यान करता हूँ)।'

इसके अनन्तर महर्षिने 'एकदन्त'शब्दकी व्याख्या करते हुए देवताओंसे कहा—

एकशब्दो मता माया देहरूपा विलासिनी।
सत्तात्मको दन्तशब्दः प्रोक्तस्तत्र न संशयः॥
मायाया धारकोऽयं वै सत्तामात्रेण संस्थितः।
एकदन्तो गणेशानः कथ्यते वेदवादिभिः॥

(मुद्गलपु० २। ५२। १३-१४)

"एक-शब्द मायाका सूचक माना गया है; वह माया देहस्वरूपा एवं विलासवती है। 'दन्त'-शब्द सत्ता-स्वरूप (परमात्मा) कहा गया है, इसमें संशय नहीं है। ये गणेश मायाके धारक हैं और स्वयं सत्तामात्र (परमात्मस्वरूप)-से स्थित हैं; इसलिये वेदवादी विद्वान् इन्हें 'एकदन्त' कहते हैं।"

महर्षिके उपदेशानुसार देवगण एकदन्तको संतुष्ट करनेके लिये उनकी उपासना करने लगे। उन्हें तप करते हुए सौ वर्ष बीत गये, तब मूषकवाहन एकदन्त प्रकट हुए।

प्रभुके दर्शन कर प्रसन्न हुए देवताओं और ब्राह्मणोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति की। इससे संतुष्ट होकर एकदन्तने देवताओंसे कहा—'**वरं वृणुत।**'

देवताओंने निवेदन किया—'प्रभो! मदासुरके शासनमें देवगण स्थानभ्रष्ट और मुनिगण कर्मभ्रष्ट हो गये हैं। आप हमारा विघ्न नष्टकर हमें अपनी भक्ति प्रदान करें।'

'**तथास्तु।**' एकदन्तने कह दिया।

उधर देवर्षिने मदासुरके समीप जाकर सूचना दी—'ब्राह्मणोंने कठोर तपके द्वारा एकदन्तको प्रसन्न कर लिया। एकदन्तने प्रकट होकर उनकी इच्छापूर्तिका वरदान दे दिया है। अब वे तुम्हारा प्राण-हरण करना ही चाहते हैं।'

मद अत्यन्त कुपित हुआ। वह अपनी विशाल सेनाके साथ एकदन्तसे युद्ध करने चला। मार्गमें एकदन्त प्रकट हो गये। राक्षसोंने देखा—'अत्यन्त उग्र मूषकारूढ़ महाकाय नर-कुंजर! चार हाथोंमें भयानकतम परशु और पाश आदि आयुध।'

'यह मूषकारूढ़ भयानक नर-नाग कौन है?' भयाक्रान्त असुर कोलाहल करने लगे। दैत्य डर गये थे। मदासुरने अपने दूतसे कहा—'तुम जाकर पूछो, वह विकट नर-नाग कौन है?'

दूतने एकदन्तके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर अत्यन्त आदरपूर्वक उनसे पूछा—'मैं त्रैलोक्याधिपति मदासुरका दूत हूँ। मेरे स्वामी आपकी अद्‌भुत मूर्ति देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये हैं। वे जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं, कहाँसे आ रहे हैं और आपका क्या कार्य है? आप उनका संशय निवारण करें।'

एकदन्तने हँसते हुए कहा—'मैं स्वानन्दवासी हूँ और अभी स्वानन्दसे ही यहाँ मदासुरका वधकर देवताओंको सुख प्रदान करनेके लिये आया हूँ। तुम अपने स्वामीसे कह दो कि वह यदि जीवित रहना चाहता है तो देवतादिकोंका द्वेष छोड़कर मेरी शरणमें आ जाय, अन्यथा मैं उसका वध अवश्य करूँगा।'

दूतने जब एकदन्तका संदेश मदासुरको दिया तो उसे नारदजीकी बात स्मरण हो आयी। उसने एकदन्तके कर-कमलोंमें अमित तेजस्वी परशु और पाश देखा। इतनेपर भी महाक्रूर असुर मद युद्धके लिये प्रस्तुत हो गया।

'आह! मदासुरने अपने धनुषकी प्रत्यंचापर शर रखा ही था कि तीव्र परशु उसके वक्षमें प्रविष्ट हो गया। असुर पृथ्वीपर गिरा और मूर्च्छित हो गया। कुछ ही देर बाद सचेत होनेपर उसने परशु उठाकर देखना चाहा, पर वह दिव्य अस्त्र उसके हाथसे छूटकर एकदन्तके कर-कमलोंमें लौट गया।'

आश्चर्यचकित मदासुरने कुछ देर विचार किया। उसने समझ लिया—'ये सर्वात्मा, सर्वसमर्थ परमात्मा हैं।' बस, वह अपना आसुरी-भाव छोड़ दौड़कर प्रभुके चरणोंमें लेट गया और हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए उसने कहा—'प्रभो! आज मुझे आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गया, यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं आपकी शरण हूँ। आप मुझे क्षमा कर अपनी दृढ़ भक्ति प्रदान करें।'

'जहाँ दैवी सम्पदासे पूर्ण मेरी पूजा-आराधना हो, वहाँ तुम मत जाना।' कहते हुए प्रसन्न एकदन्तने उससे कहा—'इसके विपरीत आसुरी-भावके कर्मोंका फल तुम भक्षण करते रहना।'

एकदन्तसे वर प्राप्तकर मदासुर पातालमें चला गया और प्रसन्न देवगण मूषक-वाहनकी स्तुति कर अपने-अपने स्थानको गये।

एक बार विष्णुने एकदन्तकी उपासना की। एकदन्तने प्रसन्न होकर उन्हें मणि-रत्न चिन्तामणि दे दी। वह चिन्तामणि शचीपतिने विष्णुके अवतार कर्दम-पुत्र महामुनि कपिलको दी। प्रसिद्ध गणासुरने बलात् उक्त मणि महर्षि कपिलसे छीन ली। कपिलकी प्रार्थनापर गणेशने आश्रमपर आये कुपित गणासुरका शिरश्छेद कर वह मणि पुनः कपिलदेवको लौटा दी।

महाविरक्त कपिलने उक्त चिन्तामणि अत्यन्त आदरपूर्वक त्रैलोक्यपावन एकदन्तके गलेमें पहना दी।

(३)

महोदर

प्राचीनकालमें तारक नामक अत्यन्त दारुण असुर हुआ। वह ब्रह्माके वरदानसे त्रैलोक्यका स्वामी हो गया। उसके शासनकालमें देवता और मुनि अत्यन्त पीड़ित थे। वे वनोंमें रहकर अत्यन्त कष्ट सहते हुए अपना जीवन व्यतीत करते थे। देवताओं और ऋषियोंने बहुत समयतक शिव और शिवाका ध्यान किया। भगवान् आशुतोष समाधिस्थ थे। इस कारण देवता और मुनियोंने माता पार्वतीकी शरण ग्रहण की।

माता पार्वती अत्यन्त रूपवती युवती भीलनीके रूपमें शिवके आश्रममें गयीं। वे सुगन्धित पुष्पोंका चयन करती हुई मोह उत्पन्न कर रही थीं। त्रिनयनकी समाधि टूटी। उन्होंने बलात् आकृष्ट करनेवाली लावण्यवतीको ध्यानपूर्वक देखा ही था कि भीलनी अदृश्य हो गयी। तब शिवके द्वारा अत्यन्त उग्र महान् पुरुष मोह उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त सुन्दर और मानी था।

ध्यानसे पार्वतीकी लीला समझ भगवान् शंकरने कुपित होकर कामदेवके शरीरको दग्ध कर दिया। शापमुक्त होनेके लिये कामदेवने महोदरकी उपासना की। महोदर प्रकट हो गये। कामदेव उनके चरणोंमें प्रणाम कर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति करने लगा।

प्रसन्न महोदर बोले—'मैं शिवके शापको तो अन्यथा नहीं कर सकता, किंतु तुम्हारे रहनेके लिये तुम्हें अन्य देह दे रहा हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने कामदेवके निवासयोग्य शरीर एवं स्थानोंका यों वर्णन किया—

यौवनं स्त्री च पुष्पाणि सुवासानि महामते।
गानं मधुरसश्चैव मृदुलाण्डजशब्दकः॥

उद्यानानि वसन्तश्च सुवासाश्चन्दनादयः।
सङ्गो विषयसक्तानां नराणां गुह्यदर्शनम्॥
वायुर्मृदुः सुवासश्च वस्त्राण्यपि नवानि वै।
भूषणादिकमेवं ते देहा नाना कृता मया॥
तैर्युतः शंकरादींश्च जेष्यसि त्वं पुरा यथा।
मनोभूः स्मृतिभूरेवं त्वन्नामानि भवन्तु वै॥

(मुद्गलपु० ३। ४। ४३—४६)

''महामते! यौवन, नारी और पुष्प, तुम्हारे सुन्दर वासस्थान हैं। गान, मकरन्द-रस, पक्षियोंके मधुर कलरव, उद्यान, वसन्त और चन्दनादि तुम्हारे सुन्दर आवास हैं। विषयासक्त मनुष्योंका संग, गुह्य अंगोंका दर्शन, मन्द-वायु, सुन्दर वास, नये वस्त्र और आभूषण आदि—ये सब मैंने तुम्हारे लिये नाना प्रकारके शरीर निर्मित किये हैं। इन शरीरोंसे युक्त होकर तुम पहलेकी ही भाँति शंकरादि देवताओंको भी जीत सकोगे। इस प्रकार तुम्हारे '**मनोभूः**' और '**स्मृतिभूः**' आदि नाम होंगे।''

कामदेवकी प्रार्थनापर दयामय गणेशने पुनः कहा—'श्रीकृष्णके अवतरित होनेपर तू उनका पुत्र प्रद्युम्न होगा।'

शिवपुत्र कार्तिकेयने षडक्षर-विधान ('**वक्रतुण्डाय हुम्**' के जप)-से गणेशको प्रसन्न किया और सद्यःफलदाता गणेशने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया—'तू तारकासुरका वध करेगा।' और फिर कार्तिकेयने तारकको मारकर देवताओंको संतोष प्रदान किया।

असुर-गुरु शुक्राचार्यने मोहासुरका संस्कार कर उसे दीक्षा दी। उनके आदेशानुसार मोहासुरने सूर्यको प्रसन्न करनेके लिये निराहार रहकर दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तपस्या की। उस तपसे संतुष्ट हो सूर्यदेव प्रकट हुए।

मोहासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम कर षोडशोपचारसे उनकी पूजा की और फिर हाथ जोड़कर वह सूर्यदेवकी स्तुति करने लगा। प्रसन्न सूर्यदेव उसे रोगहीन और सर्वत्र विजयी होनेका वर प्रदान करके अन्तर्धान हो गये।

वर पाकर हर्षमग्न हुआ असुर अपने स्थानपर लौटा। शुक्राचार्यने उसे दैत्यराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया। महान् असुरोंका सम्राट् होते ही मोहासुरने त्रैलोक्यपर अधिकार कर लिया। देवता और मुनि पर्वतों और अरण्योंमें छिप गये। मोहासुर अपनी परम रूपवती पत्नी (प्रमादासुरकी पुत्री) मदिराके साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

कर्ममार्ग, धर्माचरण और वर्णाश्रम-धर्म आदि सब नष्ट हो गये। दुःखी देवगण और ऋषिसमुदायको भगवान् सूर्यने एकाक्षर-विधानसे गणेशको संतुष्ट करनेकी प्रेरणा दी। देवता और मुनिगण अत्यन्त कष्ट सहकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मूषक-वाहनकी उपासना करने लगे।

इससे प्रसन्न हो महोदर प्रकट हुए। देवता और मुनियोंकी स्तुतिसे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन्होंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा—'मैं मोहासुरका वध करूँगा। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ।'

मूषक-वाहन महोदर मोहासुरसे युद्धके लिये प्रस्थित हुए। यह समाचार देवर्षिने मोहासुरको दे दिया। साथ ही उन्होंने अनन्त पराक्रमशील, सर्वसमर्थ एवं सर्वाधार महोदरका सत्यस्वरूप भी उसे समझाया और उसे उनकी शरण ग्रहण करनेकी प्रेरणा दी। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने भी उसे महोदरकी शरण लेनेका ही शुभ परामर्श दिया। उसी समय महोदर-दूत विष्णुने उपस्थित होकर मोहासुरसे कहा—'अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न प्रभु महोदरको तुम्हारी मैत्री अभीष्ट है। यदि तुम महोदरकी शरण ग्रहण कर देवताओं, मुनियों, ब्राह्मणों एवं सद्धर्मपरायण स्त्री-पुरुषोंके सुखपूर्वक जीवन-यापन करनेमें कभी व्यवधान उपस्थित न करनेका वचन दो तो दयामय प्रभु तुम्हें क्षमा कर देंगे; अन्यथा रणांगणमें तुम्हारी रक्षा सम्भव नहीं।'

'मैं अखण्डज्ञानसम्पन्न महोदरकी शरण लेता हूँ।' अहंकार शून्य चित्तसे मोहासुरने अत्यन्त आदर, प्रेम और विनयपूर्वक विष्णुसे निवेदन किया। 'आप परम प्रभु महोदरको मेरे नगरमें लाकर मुझे उनके सादर अभिनन्दनका दुर्लभतम अवसर प्रदान करें।

महोदरने मोहासुरके नगरमें पदार्पण किया। मोहासुरने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। उसने प्रभुकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा और गद्गदकण्ठसे स्तुति की। असुरने महोदरकी प्रत्येक आज्ञाके पालनका वचन दिया।

सहज कृपालु महोदरने उसे अपनी दुर्लभ भक्ति प्रदान कर दी। मोहासुरके शान्त होनेसे देवता, ऋषि,

ब्राह्मण एवं सद्धर्मपरायण स्त्री-पुरुष—सभी सुखी हो गये।

देवता और मुनि महोदर प्रभुका स्तवन एवं जय-जयकार करने लगे।

* * *

भगवान् गजमुखने दुर्बुद्धि नामक दैत्यका वध कर दिया था; इस कारण उक्त दैत्यका महान् पुत्र ज्ञानारि गजमुखसे प्रतिशोध लेनेके लिये अधीर और आतुर था। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यसे शिवके पंचाक्षरी मन्त्र (**नमः शिवाय**)-की दीक्षा प्राप्त की और तप करने लगा। ज्ञानारिके कठोर तपसे संतुष्ट होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए और उसे निर्भयताका वर प्रदान कर दिया।

फिर क्या था; वर प्राप्त असुर सर्वत्र विजय प्राप्त कर सर्वथा निरंकुश जीवन व्यतीत करने लगा। उसके शासनमें सत्य, धर्म और नीति-नामकी कोई वस्तु नहीं रह गयी। सर्वत्र छल, प्रवंचना, असत्य, अधर्म, अनीति, अनाचार और दुराचार व्याप्त थे। पापपरायण असुरोंसे धरती काँप उठी।

दुःखी, पीड़ित, अनाथ, अनाश्रित, असहाय और सर्वथा निरुपाय देवताओंको लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने गणेशके दशाक्षरी मन्त्र (**गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः**)-का उपदेश दिया। देवगण देवदेव महोदरकी उपासना करने लगे। प्रसन्न महोदरने स्वप्नमें लक्ष्मीसे कहा—'मैं तुम्हारी इच्छापूर्तिके लिये तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट होऊँगा।'

समुद्रतनया मन-ही-मन गणेशका स्मरण कर रही थीं। सहसा उन्होंने अपनी शय्यापर देखा—'परम तेजस्वी अद्भुत शिशु।'

स्वप्नका स्मरण कर माताने उस अलौकिक बालकको अंकमें ले लिया और उसका नामकरण किया—'पूर्णानन्द'।

महादैत्य ज्ञानारिके पुत्रका नाम सुबोध था। सुबोधके हृदयमें पूर्णानन्द महोदरके प्रति अमित श्रद्धा एवं भक्ति थी। वह निरन्तर महोदरका स्मरण, उन्हींका ध्यान एवं उनके नामका जप किया करता था। सुबोध प्रायः महोदरके गुण गाता था। उसके पिता ज्ञानारिको यह सब सह्य नहीं था।

ज्ञानारिने अपने पुत्र सुबोधको अनेक प्रकारसे समझाया, किंतु उसपर उसका कोई प्रभाव पड़ता न देख वह उसे मार डालनेके लिये प्रस्तुत हो गया। अत्यन्त कुपित होकर उसने अपने पुत्रसे पूछा—'तेरा पूर्णानन्द महोदर कहाँ रहता है?'

'पृथ्वी, आकाश, जल, थल, पवन, तरु-लता-वल्लरियों, सर-सरिताओं, समुद्रों, वनों, पर्वतों, सचराचर प्राणियों और अणु-परमाणुमें वे सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वसमर्थ मूषक-वाहन गजमुख महोदर सदा निवास करते हैं।'

सुबोधके वचन सुन क्रोधोन्मत्त ज्ञानारिका हाथ खड्गपर गया। दाँत पीसते हुए उसने कहा—'यदि तेरा महोदर सर्वत्र है तो यहाँ भी होगा।'

'हाँ।' सुबोधने उत्तर दिया ही था कि भयानक शब्द हुआ, जैसे ब्रह्माण्ड विदीर्ण हो गया हो। काँपते हुए ज्ञानारिने अद्भुत, अलौकिक, अत्यन्त तेजस्वी, परम पराक्रमी, महाभयानक, मूषकारूढ़, सायुध नर-नागस्वरूप महोदरको देखा।

'यह अद्भुत प्राणी कौन है?' आश्चर्यचकित ज्ञानारि कुछ निश्चय भी नहीं कर पाया था कि पूर्णानन्दने उसका वध कर दिया।

सबकी आपदा टल गयी। सभी स्वतन्त्र और सुखी हो गये।

(४)

गजानन

एक बार धनाधिपति कुबेर कैलास पहुँचे। वहाँ उन्होंने जगद्वन्द्य शिवा-शिवका दर्शन किया। अमित सौन्दर्यशालिनी परम सती शिवा कुबेरको अपनी ओर लुब्ध-दृष्टिसे निहारते देख अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं। जगज्जननीकी कोप-दृष्टिसे भयभीत कुबेरसे लोभासुर उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त पराक्रमी और प्रतापी था।

लोभासुरने दैत्यगुरु शुक्राचार्यके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। आचार्यने उसे पंचाक्षरी मन्त्र (**नमः शिवाय**)-की दीक्षा देकर तप करनेके लिये प्रेरणा दी। लोभासुर गुरु-चरणोंमें आदरपूर्वक प्रणाम करके वनमें चला गया।

निर्जन अरण्यमें जाकर असुरने स्नानादिसे निवृत्त हो भस्म धारण किया। फिर वह पार्वतीवल्लभ शिवका ध्यान करता हुआ पंचाक्षरी मन्त्रका जप करने लगा। वह

सर्वथा निराहार रहता था। इस प्रकार दीर्घकालतक अखण्ड तप करते रहनेसे उसका शरीर वल्मीकसे आवृत हो गया। दिव्य सहस्र वर्षतक तप करनेके अनन्तर करुणामय शिव उसके समक्ष प्रकट हुए।

लोभासुर देवाधिदेव महादेवके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगा। प्रसन्न फणिभूषणने उसे अभीष्ट वर प्रदान करते हुए सबसे निर्भय कर दिया।

सर्वथा निर्भय लोभासुरने प्रमुख दैत्योंको एकत्र किया। वे सभी लोभासुरका समर्थन करने लगे। उन असुरोंके सहयोगसे लोभासुरने पृथ्वीपर अपना एकच्छत्र राज्य स्थापित कर लिया। फिर उसने स्वर्गपर आक्रमण किया। वज्रायुध पराजित हो गये। लोभासुर स्वर्गाधिप बना।

पराजित सुरेशने अपनी व्यथा-कथा श्रीविष्णुसे कह सुनायी। श्रीविष्णु असुर-नाशके लिये चले। युद्ध हुआ। वर-प्राप्त असुरके सम्मुख श्रीविष्णु भी टिक नहीं सके; पराजित हो गये।

'विष्णु तथा अन्य देवताओंके रक्षक महादेव हैं—यह सोचकर लोभासुरने अपना दूत शिवके पास भेजा। दूतने उनसे कहा—'आप परम पराक्रमी लोभासुरसे युद्ध कीजिये या कैलास उनके लिये रिक्त कर दीजिये।'

भगवान् शंकरको उसे अपना दिया हुआ वर स्मरण हो आया और वे कैलास त्यागकर सुदूर अरण्यमें चले गये।

लोभासुरके हर्षकी सीमा न रही। उसके शासनमें समस्त धर्म-कर्म समाप्त हो गये; पापोंका नग्न ताण्डव होने लगा एवं ब्राह्मण और ऋषि-मुनि यातना सहने लगे।

रैभ्यने देवताओंको गणेशोपासनाका परामर्श दिया। देवगण आदिदेव गजमुखकी आराधना करने लगे। इससे संतुष्ट होकर मूषकारूढ़ गजानन प्रकट हुए। उन्होंने देवताओंको निश्चिन्त करते हुए कहा—'मैं लोभासुरको पराजित कर दूँगा।'

तदनन्तर गजाननने शिवको लोभासुरके समीप भेजा। वहाँ शिवने असुरसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'तुम गजमुखकी शरण ग्रहणकर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करो, अन्यथा युद्धके लिये उद्यत हो जाओ।'

इसके अनन्तर शिवने लोभासुरको गजमुख-माहात्म्य सुनाया। उसके गुरु शुक्राचार्यने भी उसे गजाननकी शरण लेना कल्याणकर बतलाया। लोभासुरने गणेश-तत्त्वको समझ लिया। फिर तो वह परमप्रभुके चरणोंकी वन्दना करने लगा।

शरणागतवत्सल गजाननने उसे सान्त्वना प्रदान की। देवता, मुनि और ब्राह्मण आदि सभी सुखी हुए। सभी देवदेव गजाननका गुणगान करने लगे।

(५)

लम्बोदर

श्रीविष्णुके महामोहप्रद अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न मोहिनीरूपको देखकर कामारि काम-विह्वल हो गये थे। जब हँसते हुए श्रीविष्णुने मोहिनीरूपको त्यागकर पुरुषरूप धारण किया, तब शिव खिन्न हो गये; किंतु उनका शुक्र स्खलित हो गया। उससे एक परम शक्ति-सम्पन्न असुर पैदा हुआ। उस परम प्रतापी असुरका वर्ण श्याम था। उसके नेत्र ताँबेके समान चमक रहे थे।

उक्त असुरने शुक्राचार्यके समीप जाकर उनके चरणोंमें अत्यन्त विनयपूर्वक प्रणाम किया; फिर विनीत स्वरमें कहा—'प्रभो! आप मुझ शिष्यका पालन कीजिये।'

शुक्राचार्य कुछ देरके लिये ध्यानमग्न हुए। फिर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—''शिवके क्रोधके समय सहसा उनके शुक्रका स्खलन हो गया और उसीसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई, इस कारण तुम्हारा नाम 'क्रोधासुर' होगा।''

शुक्राचार्यने उक्त क्रोधासुरका संस्कार कर उसे प्रत्येक रीतिसे योग्य बनाया। फिर उन्होंने शम्बरकी अत्यन्त लावण्यवती पुत्री प्रीतिके साथ उसका विवाह करा दिया। अत्यन्त प्रसन्न होकर आचार्य-चरणोंमें प्रणामकर हाथ जोड़े असुरने निवेदन किया—'मैं आपकी आज्ञा प्राप्तकर ब्रह्माण्ड-विजय करना चाहता हूँ; अतएव आप मुझे यश प्रदान करनेवाला मन्त्र देनेकी कृपा कीजिये।'

दैत्योंके हितचिन्तक शुक्राचार्यने उसे सविधि सूर्य-मन्त्र (**घृणि सूर्य आदित्य ओम्**) प्रदान किया। क्रोधासुरने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और वह अरण्यमें चला गया।

वहाँ वह एक पैरपर खड़ा होकर उक्त सूर्य-मन्त्रका जप करने लगा। उसकी दृष्टि ऊपर उठी हुई थी। वह निराहार रहकर वर्षा, शीत और आतपका दुःख सहता हुआ सूर्यदेवको प्रसन्न करनेके लिये दारुण तप कर रहा था।

असुरके दिव्य सहस्र वर्षोंतक तप करनेके अनन्तर भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—'**वरं वृणु।**'

क्रोधासुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने तिमिरारिके चरणोंमें प्रणाम कर उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया। फिर उसने विनयपूर्वक वरकी याचना की—'उत्पत्ति-स्थिति-संहारयुक्त देवनायक! मेरी मृत्यु न हो। मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर विजय प्राप्त कर लूँ। आप मुझे चराचरका राज्य प्रदान कीजिये; आरोग्य दीजिये। मैं अद्वितीय सिद्ध होऊँ।'

क्रोधासुरके भयोत्पादक वचन सुन अत्यन्त विस्मित सूर्यदेवने उसे वर दे दिया—'तुम्हारा अभीष्ट सफल होगा।'

क्रोधासुर अत्यन्त प्रसन्न होकर लौटा। उस सफलमनोरथ महायशस्वीको देखकर उसके सुहृद् आनन्दित हुए। उसने पहले गुरुके चरणोंकी वन्दना की, फिर अपने घर गया। उसकी सहधर्मिणी प्रीतिने दो पुत्र उत्पन्न किये—हर्ष और शोक। वह विविध प्रकारके भोग भोगने लगा।

क्रोधासुरने परम नीतिज्ञ शुक्राचार्यको आदरपूर्वक बुलाकर उनकी पूजा की। शुक्राचार्यने उसे अत्यन्त सुन्दर आवेशपुरीमें दैत्याधिपतिके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। असुर अपने महादारुण प्रधानोंके साथ शासन करने लगा।

कुछ दिनों बाद उसने असुरोंके सम्मुख अपनी ब्रह्माण्ड-विजयकी इच्छा व्यक्त की। असुर बड़े प्रसन्न हुए। विजय-यात्रा प्रारम्भ हुई। उसने सहज ही पृथ्वीपर अधिकार कर लिया। फिर वह अमरावतीपर दौड़ा। उसके डरसे देवगण भागे। इससे स्वर्ग असुरके अधीन हो गया। इसी प्रकार वैकुण्ठ और कैलासपर भी उस महादैत्यका राज्य स्थापित हुआ।

अन्ततः क्रोधासुरने अपना दूत भगवान् सूर्यदेवके पास भेजा। सूर्यदेव वर प्रदान कर चुके थे; अतएव दुःखी हृदयसे उन्होंने सूर्यलोक त्याग दिया। वहाँ क्रोधासुरका शासन होने लगा।

अत्यन्त दुःखी देवताओं और ऋषियोंने गणेशकी आराधना की। इससे संतुष्ट होकर लम्बोदर प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'देवताओ और ऋषियो! मैं क्रोधासुरका अहंकार चूर्णकर उसे नष्ट कर दूँगा। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ।'

आकाशवाणीसे यह संवाद क्रोधासुरने भी सुना। वह भयाक्रान्त हो मूर्च्छित हो गया। चेतना लौटनेपर उसके वीर सैनिकोंने उसे समझाया—'सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हमारे अधीन है। आप आज्ञा प्रदान करें; हम किसी भी शत्रुका नाश करनेमें समर्थ और प्रतिक्षण प्रस्तुत हैं।'

अपने वीर सैनिकोंके वचन सुन क्रोधासुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह अपनी अजेय सेनाके साथ समरांगणमें पहुँचा। वहाँ उसने मूषकारूढ़ गजमुख, त्रिनयन, लम्बोदरको देखा। उनकी नाभिमें शेष लिपटे हुए थे। लम्बोदरके इस विचित्र स्वरूपको देखकर क्रोधासुर अत्यन्त कुपित हुआ।

भीषण संग्राम होने लगा। लम्बोदरके साथ देवगण भी असुरोंका सर्वनाश करने लगे। क्रोधासुरके बलि, रावण, जृम्भ, माल्यवान्, कुम्भकर्ण और राहु आदि महाबलवान् योद्धा अत्यन्त आहत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। वे मृतप्राय हो गये। क्रोधासुर दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो गया।

उसने लम्बोदरको सम्मुख देखकर कहा—'मूर्ख लम्बोदर! तू ब्रह्माण्डविजयी शूरके सम्मुख युद्ध करना चाहता है। तेरी बुद्धि मारी गयी है। तू शीघ्र ही मेरी शरण आ जा, अन्यथा मैं तेरा लम्बा उदर एक ही शरसे फोड़ दूँगा।'

भगवान् लम्बोदरने उत्तर दिया—'अरे दैत्य! तू व्यर्थ क्यों बकता है? मैं तुझ-जैसे खलका वध करनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। तूने सूर्यके वरके प्रभावसे बड़ा अधर्म किया। पर तेरे अत्यन्त पापसे वे सारे शुभ कर्म निष्फल हो गये। अब मैं तेरा और तेरे अधर्मोंका नाश कर धर्मकी स्थापना करूँगा। मैं मन-वाणीसे परे, आनन्दस्वरूप और सम्पूर्ण भूतोंमें वास करता हूँ, फिर तू मुझपर कैसे विजय प्राप्त कर सकेगा?'

असुरने तुरंत पूछा—'ब्रह्मका जन्म नहीं होता

और मन-वाणीसे अगोचरको मैं देख कैसे रहा हूँ?'

लम्बोदर बोले—"मेरे वामांगमें जो यह सिद्धि है, वह भ्रान्तिस्वरूपा है। सब लोग सिद्धिके लिये भटकते हैं और भ्रममें पड़े रहते हैं। दायें भागमें स्वयं बुद्धि विराजमान है, जो भ्रान्तिको धारण करती है। बुद्धिसे विचार करके फिर उस विषयमें मनुष्य भ्रान्त होता है। स्वयं बुद्धि चित्तरूपा है और वह पाँच प्रकारकी बतायी गयी है। सिद्धि पंच भ्रान्तिमयी है और मैं इन दोनों बुद्धि और सिद्धिका पति हूँ। नाना प्रकारका विश्व और ब्रह्म सदा मेरे उदरमें स्थित है, इसलिये मैं 'लम्बोदर' कहा गया हूँ। सारा जगत् मेरे उदरसे उत्पन्न हुआ है, मुझसे ही पालित होता है और अन्तमें सबको अपने उदरस्थ करके मैं निरन्तर क्रीड़ा करता रहता हूँ। अतएव यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो मेरी शरणमें आ जाओ। शुक्राचार्य मुझे जानते हैं। तुम तो समझानेपर भी मेरे तत्त्वको नहीं समझ सकते। न तो मैं दैत्योंके वधका अभिलाषी हूँ और न देवताओंका ही वध मुझे प्रिय है। अपने-अपने धर्ममें लगे हुए सब लोगोंका मैं पालन करता हूँ; इसमें संशय नहीं है।" क्रोधासुरकी शंकाओंका समाधान होते ही वह प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। उसने भक्तिभावसे उनकी पूजा कर गद्‌गद कण्ठसे स्तुति की। सहज कृपालु लम्बोदरने उसे क्षमा तो कर ही दिया, उसे अपनी भक्ति भी प्रदान कर दी।

क्रोधासुरने परम प्रभु लम्बोदरके चरणकमलोंमें पुनः प्रणाम कर उनकी पूजा की। फिर वह उनकी आज्ञा प्राप्तकर शान्त जीवन व्यतीत करनेके लिये पातालको चला गया।

प्रसन्न देवगण देवदेव लम्बोदरका स्तवन करने लगे।

*　　　*　　　*

एक बारकी बात है, लोकपितामह सत्यलोकमें ध्यानस्थ बैठे थे। उसी समय उनके श्वास-वायुसे एक पुरुष प्रकट हुआ।

उक्त पुरुषने विधाताके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। संतुष्ट ब्रह्माने उससे पूछा—'तुम कौन हो और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—'प्रभो! मैं आपके श्वास-वायुसे उत्पन्न आपका पुत्र हूँ। मेरा नामकरण कर मुझे रहनेके लिये स्थान प्रदान करनेका अनुग्रह करें।'

ब्रह्मा बोले—"महामते! तुम्हारे दर्शनमात्रसे ही माया बढ़ती है, इस कारण तेरा नाम 'मायाकर' होगा। तुम जो इच्छा करोगे, वही पूरी हो जायगी। तुम्हारी अव्याहत गति होगी। सब तुम्हारे वशीभूत होंगे। तुम सदा स्वस्थ रहोगे।"

मायाकर पितामहके चरणोंमें प्रणाम कर वहाँसे लौट पड़ा। अत्यन्त शक्तिशाली मायाकरको देखकर विप्रचित्ति नामक असुरने उसके चरणोंमें प्रणाम किया। उसने मायाकरकी अधीनता स्वीकार कर ली और शुक्राचार्यके द्वारा उसे दैत्याधिपतिके पदपर प्रतिष्ठित करवाया। प्रत्येक दृष्टिसे मायाकरको संतुष्ट कर लेनेके अनन्तर विप्रचित्तिने उसे सांसारिक भोग-सामग्रियोंकी ओर आकृष्ट किया।

फिर तो मायावी दैत्यने सबको पराजित कर अपने अधीन कर लिया। तदनन्तर उसने पातालपर आक्रमण किया। मायाकरके सम्मुख किसीका वश नहीं था। पातालमें हाहाकार मच गया।

इसपर शेषनागने विघ्नराज गणेशका स्मरण किया। प्रकट होकर देवदेव लम्बोदरने कहा—'मैं आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होकर असुर मायाकरका वध करूँगा।'

जब सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, मूषक-वाहन प्रभु लम्बोदर शेषके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए तो देवगण हर्ष-विभोर होकर उनकी स्तुति करने लगे।

जगत्त्राता मूषक-वाहन लम्बोदर रणांगणमें उपस्थित हुए। मायाकर भी अपनी वीर-वाहिनीके साथ डट गया। तुमुल युद्ध हुआ। दैत्योंको शिथिल होते देख मायाकरने अपनी मायाका आश्रय लिया, किंतु मायापतिके सम्मुख उसकी एक न चली। मायाकर मारा गया।

देवगण प्रसन्न हो गये।

(६)

विकट

क्षीराब्धिशायी विष्णु जब जलन्धर-पत्नी वृन्दाके समीप पहुँचे, उस समय उनके शुक्रसे अत्यन्त तेजस्वी कामासुरकी उत्पत्ति हुई। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यके यहाँ जाकर उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

दैत्य-शुभाकांक्षी शुक्राचार्यने उसे शिव-पंचाक्षरी मन्त्रकी दीक्षा दे दी। असुरने पुनः अपने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर तपश्चरणार्थ वनको चला गया।

वहाँ उसने देवाधिदेव महादेवको संतुष्ट करनेके लिये अन्न, जल और फलादिका सर्वथा परित्याग कर उक्त महिमामय पंचाक्षरी मन्त्रका जप करते हुए तपस्या प्रारम्भ की। अत्यन्त धीर कामासुरने अनेक कष्ट सहते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोरतम तप किया।

उस तपसे प्रसन्न आशुतोषने प्रकट होकर उससे वर माँगनेके लिये कहा। कामासुर, हर्षोत्फुल्लनेत्र, प्रसन्नवदन, भक्तवत्सल प्रभुके दर्शन कर कृतार्थ हुआ। उसने कर्पूरगौरके चरणोंमें प्रणिपात कर वर-याचना की—'प्रभो! आप मुझे अपने चरणोंकी भक्ति और ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान कीजिये। मैं बलवान्, निर्भय एवं मृत्युजयी होऊँ।'

स्वर्गापवर्गदाता करुणामय शिवने कहा—'यद्यपि तुमने अत्यन्त दुर्लभ और देव-दुःखद वरकी याचना की है, तथापि तुम्हारे कठोर तपसे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारी कामना पूरी करता हूँ।'

शूलपाणि अन्तर्धान हो गये। प्रसन्न कामासुरने अपने गुरु शुक्राचार्यके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उन्हें शिवदर्शन एवं उनके द्वारा वर-प्राप्तिका वृत्तान्त कह सुनाया।

महायशस्वी दैत्याचार्यने संतुष्ट होकर उसका महिषासुरकी रूपवती पुत्री तृष्णाके साथ विवाह करा दिया। उक्त मंगल-अवसरपर दूर-दूरके सभी प्रसिद्ध दैत्यगण एकत्र हुए। उसी समय शुक्राचार्यने उसे दैत्यराजके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। समस्त दैत्योंने उसके अधीन रहना स्वीकार किया।

कामासुरने अत्यन्त सुन्दर रतिद नामक नगरमें अपनी राजधानी बनायी। उसके रावण, शम्बर, महिष, बलि और दुर्मद—ये पाँच शूर प्रधान थे। कामासुर इन प्रचण्ड दैत्योंके साथ सुशोभित होने लगा।

महा असुरने अपने प्रधान दैत्योंके साथ विचार-विमर्शकर पृथ्वीपर आक्रमण कर दिया। उसके तीक्ष्णतम अमोघ शरोंसे धरतीके प्राणी व्याकुल होकर उसके वशमें हो गये। फिर वह स्वर्गपर दौड़ा। उसके शस्त्रोंके सम्मुख देवता भी नहीं टिक सके; सभी उसके अधीन हो गये। वर-प्राप्त कामासुरने कुछ ही समयमें त्रैलोक्यपर अधिकार प्राप्त कर लिया।

उसने समस्त धर्म-कर्मोंको नष्ट कर दिया। छल-कपट और झूठ सर्वत्र व्याप्त हो गये, स्वाहा, स्वधा और वषट्कार लुप्त हो गये, वर्णाश्रमधर्म मिटने-सा लगा और देवता, मुनि एवं धर्मपरायण जन अतिशय कष्ट पाने लगे।

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये समस्त देवता एकत्र हुए। उसी समय वहाँ योगिराज मुद्गल ऋषि पधारे। देवताओंने अर्घ्य-पाद्य आदिसे उनकी आदरपूर्वक पूजा की। भगवान् शंकरने पूछा—'हमें स्थान-भ्रष्ट करनेवाले कामासुरके विनाशका मार्ग बताइये।'

मुनिवर मुद्गलने कहा—'आपलोग सिद्धक्षेत्र मयूरेशमें जाकर तप करें। वहाँ आपलोगोंके तपसे संतुष्ट होकर स्वयं भगवान् गणेश प्रकट होंगे और आपके संकटोंका निवारण करेंगे।'

शिवादि देवता पावनतम मयूरेश-क्षेत्रमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रद्धा एवं विधिपूर्वक गणेशकी पूजा की। तदनन्तर वे एकाक्षरी-विधानसे गणेशकी उपासना और गद्गदकण्ठ तथा अश्रुपूरित नेत्रोंसे उनका स्तवन करने लगे।

भक्तवत्सल मयूर-वाहन गणेशने प्रकट होकर कहा—'देवताओ! वर माँगो। मैं प्रसन्न हूँ।'

देवताओंने निवेदन किया—'प्रभो! दैत्यराज कामासुरकी क्रूरतासे हम सभी देवता स्थान-भ्रष्ट हैं और मुनिगण कर्मरहित हो गये हैं। आप हमारी रक्षा करें।'

'मैं कामासुरका वध कर समस्त देवताओं और मुनियोंको निरापद करूँगा।' मयूरेशने कहा।

आकाशवाणीसे यह घोषणा सुनकर कामासुर मूर्च्छित हो गया। कुछ देर बाद विचार-विमर्श कर उसके वीर असुरोंने देवताओं और मुनियोंपर आक्रमण कर दिया। देवता और मुनि परम प्रभु मयूरेशको पुकारने लगे।

पाश-अंकुशधारी मयूर-वाहन महाविकट गजानन प्रकट हुए। उन्होंने भयानक गर्जना की। शिवादि देवता उनकी स्तुति करने लगे।

'मैं कामासुरको नष्ट करूँगा।' मयूर-वाहनने

महाराष्ट्रीय संतोंका ध्येय स्वरूप

पाशांकुशवरद हस्त । एके करीं मोदक शोभत॥
मूषकावरि अति प्रीत । सर्वांगीं सिंदूर चर्चिला॥

कहा और देव-सैनिकोंके साथ रहकर युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये।

अपने प्रबलतम सैनिकोंके साथ कामासुर भी पहुँचा। संग्राम छिड़ा। देवताओंके प्रबल प्रहारसे दैत्यगण व्याकुल हो गये। वे भयसे यत्र-तत्र भागने लगे। उस भीषण युद्धमें कामासुरके दो प्रिय पुत्र शोषण और दुष्पूर मारे गये।

तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर कामासुर सम्मुख आया। उसने प्रभुसे कहा—'मूर्ख! मैंने त्रैलोक्यको वशमें कर लिया है। तेरे वीर देवगण मूर्च्छित पड़े हैं। यदि तू प्राण-रक्षा चाहता है तो यहाँसे भाग जा।'

हँसते हुए मयूर-वाहन विकटने उत्तर दिया—'असुर! तूने शिव-वरके प्रभावसे बड़ा अधर्म किया है। मैं सृष्टि-स्थिति-संहारकर्ता एवं जन्म-मृत्युरहित हूँ। तू मुझे किस प्रकार मार सकता है? अपने गुरु शुक्राचार्यके उपदेशका स्मरण करके मेरे स्वरूपको समझ। यदि तू जीवित रहना चाहता है तो मेरी शरण आ जा। अन्यथा तेरा सम्पूर्ण गर्व खर्व होकर रहेगा और तू निश्चय ही मारा जायगा।'

मयूर-वाहनकी वाणी सुनते ही कामासुर अत्यन्त कुपित हुआ। उसने अपनी भयानक गदा मयूर-वाहनपर फेंकी, किंतु वह गदा प्रभुवर विकटका स्पर्श न कर पृथ्वीपर गिर पड़ी; यह देख दैत्यराज कामासुर सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद सचेत होनेपर उसने अपने अंग-प्रत्यंगमें भयानक पीड़ा और अकल्पित अशक्तिका अनुभव किया। कामासुरने अत्यन्त आश्चर्यसे अपने मनमें सोचा—'इस अद्भुत देवने शस्त्रके बिना ही मेरी ऐसी दुर्दशा कर दी और जब शस्त्रका स्पर्श करेगा, तब क्या होगा? युद्धमें तो यह निश्चय ही मुझे मार डालेगा।'

यह सोच उसने प्रभु विकटसे उनके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किये और उसका समाधान होते ही वह दयामय मयूर-वाहन विकटकी शरणमें गया। मूषकध्वजने उसे अपनी भक्ति प्रदान की।

कामासुर शान्तजीवन व्यतीत करनेके लिये प्रस्थित हुआ। देवता और मुनि प्रसन्न हो गये। सर्वत्र धर्म-प्रधान आचरण होने लगे।

(७)
विघ्नराज

एक बारकी बात है। विवाहोपरान्त हिमगिरिनन्दिनी अपनी सखियोंके साथ बात करती हुई हँस पड़ीं। उनके हास्यसे अत्यन्त मनोरम पर्वततुल्य एक महान् पुरुष उत्पन्न हुआ।

उसे देखकर अत्यन्त चकित शिवप्रियाने पूछा—'तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और क्या चाहते हो?'

उक्त पुरुषने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'माता! मैं अभी-अभी आपके हास्यसे उत्पन्न हुआ आपका पुत्र हूँ। आप आज्ञा प्रदान करें, मैं उसका अवश्य पालन करूँगा।'

माता पार्वती बोलीं—'मैं अपने प्राणनाथसे मान किये बैठी थी; उस मानकी स्थितिमें तुमने जन्म लिया है। अतएव मानपरायण तुम्हारा नाम मम (ममता) होगा। तुम जाकर गणेशका स्मरण करो। उनके स्मरणसे तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा।'

माता पार्वतीने ममताको गणेशका षडक्षर (**वक्रतुण्डाय हुम्**) मन्त्र प्रदान कर दिया। ममताने अत्यन्त भक्तिपूर्वक माताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर वनमें तप करने चला गया।

वहाँ उसकी शम्बरासुरसे भेंट हुई। पार्वतीपुत्र ममने उससे पूछा—'आप कौन हैं तथा यहाँ कैसे पधारे हैं?'

शम्बरने उत्तर दिया—'महाभाग! मैं तुम्हें विद्या-दान करने आया हूँ। उस विद्यासे तुम निस्संदेह सामर्थ्यशाली हो जाओगे।'

इतना कहकर शम्बरने ममताको नाना प्रकारकी आसुरी विद्याएँ सिखा दीं। उन विद्याओंके अभ्याससे ममता कामरूप हो गया। विविध प्रकारकी शक्तियोंको प्राप्तकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

तब उसने शम्बरके चरणोंमें प्रणाम कर हाथ जोड़े अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—'महाभाग! आपने मुझपर अद्भुत कृपा की है। अब मैं आपका शिष्य हूँ। आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं क्या करूँ?'

शम्बरने ममताको समझाया—'अब तुम महान् शक्तिकी प्राप्तिके लिये विघ्नराजकी उपासना करो। उनके प्रसन्न होकर प्रकट होनेपर उनसे सम्पूर्ण

ब्रह्माण्डका राज्य और अमरण-वरके अतिरिक्त अन्य कुछ मत माँगना। वर प्राप्तकर तुम मेरे पास चले आना।'

इतना कहकर शम्बर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया और मम वहीं बैठकर कठोर तप करने लगा। वह केवल वायुपर निर्भर रहकर गजमुखका ध्यान एवं उनके मन्त्रका जप कर रहा था। इस प्रकार उसे तप करते हुए दिव्य सहस्र वर्ष बीत गये।

प्रसन्न होकर गणनाथ प्रकट हुए। उन्होंने ममतासे कहा—'मैं तुम्हारे कठोर तपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँग लो।'

परम प्रभु गजाननकी वाणी सुनकर ममताके नेत्र खुले और जब उसने विघ्नेश्वर गजवक्त्रका दर्शन किया तो आनन्दविभोर हो गया। उसने विघ्नराजके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की और फिर गद्गदकण्ठसे स्तुति करने लगा।

अन्तमें वर-याचना करते हुए उसने कहा—'वरदाता प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मुझे ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान करें, युद्धमें मेरे सम्मुख कभी विघ्न उपस्थित न हों। मैं शंकर आदिके लिये भी सदा अजेय रहूँ। आप मुझे अमोघ शस्त्रधर करें।'

विघ्नराज बोले—'दैत्येन्द्रनायक ! तुमने दुस्साध्य वरकी याचना की है; किंतु तुम्हारे तपसे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा।'

इतना कहकर विघ्नराज अन्तर्धान हो गये। वर-प्राप्त ममतासुरने प्रसन्नतापूर्वक शम्बरके घर जाकर उसे प्रणाम किया। ममताके तप एवं वर-प्राप्तिका वृत्तान्त सुनकर शम्बर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने उससे अपनी रूपवती पुत्री मोहिनीका विवाह कर दिया। ममतासुर अपनी प्राणप्रियाके साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

कुछ ही समय बाद शम्बर दैत्यगुरु शुक्राचार्यके समीप पहुँचा। प्रणामके अनन्तर उसने ममतासुरके तप और वर-प्राप्तिका वृत्तान्त कह सुनाया। शुक्राचार्य बड़े प्रसन्न हुए। वे समस्त असुरोंको सूचितकर स्वयं शम्बरके साथ ममासुरके भवन पहुँचे। ममासुरने आचार्य-चरणोंमें प्रणाम कर उनकी भक्तिपूर्वक पूजा की।

इससे प्रसन्न होकर शुक्राचार्यने समस्त दैत्योंके सम्मुख ममको दैत्याधीशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। उन्होंने दैत्यराज ममके यहाँ अत्यन्त बलवान् प्रेत, काल, कलाप, कालजित् और धर्महा नामक पाँच प्रधान भी नियुक्त कर दिये।

ममने उपस्थित दैत्य, दानव और राक्षस राजाओंको प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट किया। उसकी सेवासे प्रसन्न सभी असुर अपने-अपने राज्यमें लौटे। ममासुर अपनी चिन्तानाशक निर्मम पुरीमें सुखपूर्वक निवास कर रहा था। वहाँ उसकी सहधर्मिणी मोहिनीसे धर्म और अधर्म नामक दो पुत्र हुए।

एक दिन ममासुरने शुक्राचार्यके चरणोंमें प्रणाम कर उनके सम्मुख ब्रह्माण्डविजयकी इच्छा व्यक्त की। दैत्यगुरुने कहा—'राजन्! तुम दिग्विजय तो करो, किंतु विघ्नेश्वरका विरोध कभी मत करना। स्मरण रखना, विघ्नराजके अनुग्रहसे ही तुम्हें यह शक्ति एवं वैभवकी प्राप्ति हुई है।

ममासुरने पर्वतोन्मूलनमें समर्थ अपने महावीर्यवान् असुरोंको युद्धार्थ उद्यत होनेका आदेश दिया। उसने अपने वीर पुत्रों एवं परम पराक्रमी सैनिकोंके द्वारा पृथ्वी और पातालपर अधिकार कर लिया। फिर उसने स्वर्गपर आक्रमण किया। वज्रायुधके साथ भयानक संग्राम हुआ। रक्तकी सरिता प्रवाहित हो चली; किंतु वरप्राप्त असुरके सामने देवगण टिक न सके। स्वर्ग ममासुरके अधीन हो गया। ममासुरने समरक्षेत्रमें विष्णु और शिवपर भी विजय प्राप्त कर ली। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर उस महासुरका निरंकुश शासन व्याप्त हो गया। देवगण बंदी-गृहमें पड़े। सर्वत्र अनीति और अनाचारका साम्राज्य छा गया।

ममासुरके कारागारमें पीड़ित देवता एकत्र होकर अपनी मुक्तिका उपाय सोचने लगे। लक्ष्मीपति विष्णुने कहा—'हम सभी मिलकर विघ्नेश्वरकी आराधना करें। उनकी प्रसन्नतासे ही असुर-विनाश एवं धर्मकी स्थापना हो सकेगी।

समस्त देवताओंने मन्त्र-स्नानकर विघ्नेश्वरकी मानसिक पूजा की। फिर वे एकाक्षरी-विधानसे भक्तिपूर्वक उनका स्मरण करने लगे। एक वर्ष व्यतीत होनेपर भाद्र-शुक्लचतुर्थीके मध्याह्नमें शेष-वाहन विघ्नराज

प्रकट हुए। देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका स्तवन करनेके अनन्तर कहा—'प्रभो! धर्मका ध्वंस करनेवाले ममासुरके कारागारमें हम सभी देवता अतिशय कष्ट पा रहे हैं। सर्वत्र पाप-तापका साम्राज्य है। आप हम पीड़ितोंकी रक्षा करें।'

संतुष्ट गणनाथ देवताओंको अभीष्ट वर प्रदान कर अदृश्य हो गये। यह समाचार सुनकर ममासुर चकित, चिन्तित और अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

उसी समय महर्षि नारद ममासुरके सम्मुख पहुँचे। असुरने उनकी अनेक उपचारोंसे पूजा की। फिर देवर्षिने उससे कहा—''मुझे देवदेव विघ्नराजने भेजा है। वे सर्वात्मा, सर्वसमर्थ, धर्मपालक एवं अधर्मके शत्रु हैं। उन्हींके वरसे तुम शक्तिमान् हुए हो। अब तुम्हारे अपकर्मोंसे देवगण बंदीगृहमें यातना पा रहे हैं। धर्म लुप्त हो गया है। अतएव विघ्नेश्वरने आज्ञा दी है कि तुम इस अधर्म और अनाचारको समाप्त कर तुरंत मेरी शरण आ जाओ, अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है।''

दैत्यगुरु शुक्राचार्यने भी उसे यही परामर्श दिया, पर उस मदोन्मत्त ममासुरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह युद्धके लिये प्रस्तुत हो गया।

महर्षि नारदसे यह संवाद पाकर परम प्रभु गणेशने कहा—'मैं ममासुरका दर्प दलन करूँगा।'

ममासुर अपने दोनों पुत्रों एवं अजेय वाहिनीके साथ पृथ्वीको कम्पित करता हुआ युद्धके लिये नगरके बाहर निकला। मत्त एवं निरंकुश दानव ममकी दुष्टता देखकर विघ्नराज कुपित हुए। उन्होंने अपना कमल असुरसैन्यके बीच छोड़ दिया। उक्त पद्म-गन्धसे समस्त असुर सर्वथा अशक्त एवं मूर्च्छित हो गये। ममासुर आधे पहरतक मूर्च्छित रहा। सचेत होनेपर उसने अपने समीप कमल देखा तो काँपने लगा। वह विघ्नराजके चरणोंपर गिर पड़ा। फिर उसने भक्तिपूर्वक प्रभुकी पूजा और स्तुति करके उनसे क्षमा-याचना की।

दयामय विघ्नराज संतुष्ट हुए। उन्होंने ममको अपनी भक्ति प्रदान करते हुए कहा—

स्वस्थाने निर्भयो भूत्वा तिष्ठ त्वं मत्परायणः।
स्वधर्मविधिहीनं त्वं कर्म भुङ्क्ष्व जनैः कृतम्॥
यत्रादौ पूजनं मे न स्मरणं वा ममासुर।
मम भावेन सम्मोह्य राज्यं कुरु हृदि स्थितः॥
मद्भक्तान् दासवन्नित्यं रक्षस्व स्नेहभावतः।
मम भावविहीनांश्च कुरु मे ममतायुतान्॥

(मुद्गलपु० ७ । ८ । ३२—३४)

'तुम अपने स्थानपर मेरी आराधनामें लगे रहकर निर्भयतापूर्वक निवास करो। अन्य लोगोंद्वारा जो अपने धर्मकी विधिसे रहित कर्म किया गया हो, उसके श्रेष्ठ फलको तुम भोगो। असुर! जहाँ पहले मेरा पूजन अथवा स्मरण न किया गया हो, वहाँ लोगोंको ममतासे मोहित करके उनके हृदयमें विराजमान होकर तुम राज्य करो। जो मेरे भक्त हों, उनकी प्रतिदिन स्नेहभावसे दासकी भाँति रक्षा करो। जिनका मेरे प्रति भाव या प्रेम न हो, उन्हें ममतासे युक्त कर दो।'

दैत्यराजने देवाधिदेव विघ्नराजके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी अनुमति प्राप्त कर शान्तभावसे उनका स्मरण करने चला गया।

देवगण मुक्त होकर प्रसन्न हुए। अधर्मके स्थानपर धर्मका राज्य संस्थापित हो गया।

(८)

धूम्रवर्ण

एक बार लोकपितामहने सहस्रांशुको कर्मराज्यके अधिपतिके पदपर सविधि अभिषिक्त किया। राज्य-पद प्राप्तकर सूर्यदेवके मनमें अहंकारका उदय हो गया। वे सोचने लगे—'कर्मके प्रभावसे पितामह सृष्टि-रचना करते हैं, कर्मसे ही विष्णु जगत्का पालन करते हैं, कर्मके द्वारा शिव संहार-समर्थ हैं और कर्मोंके ही फलस्वरूप शक्ति जगत्की पालिका और पोषिका हैं। निस्संदेह सम्पूर्ण जगत् कर्माधीन ही है और मैं उन कर्मोंका संचालक देवता हूँ। सभी मेरे अधीन हैं।'

यह सोचते ही उन्हें छींक आ गयी और उससे एक महाबलवान्, महाकाय, विशालाक्ष सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ। वह सर्वांगसुन्दर पुरुष विद्वान् शुक्राचार्यके समीप पहुँचा। शुक्राचार्यने उसका परिचय पूछा।

उक्त पुरुषने विनीत स्वरमें उत्तर दिया—'प्रभो! मैं सूर्यदेवकी छींकसे उत्पन्न उनका पुत्र हूँ! मैं धरतीपर सर्वथा अनाथ और अनाश्रित हूँ। मैं आपके अधीन रहना चाहता हूँ और आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करूँगा।'

उस मनोरम पुरुषके वचन सुन शुक्राचार्य कुछ

देरके लिये ध्यानावस्थित हुए। फिर उन्होंने कहा—'तुम्हारा जन्म सूर्यके अहं-भावसे हुआ है, इस कारण तुम्हारा नाम 'अहम्' होगा। तुम तपश्चरणके द्वारा शक्ति अर्जित करो।' इतना कहकर दैत्यगुरुने उसे गणेशका षोडशाक्षर मन्त्र* दिया। उसे मन्त्र-जपकी विधि भी विस्तारपूर्वक बता दी।

'अहम्' वनमें जाकर उपवास करता हुआ गणेशके ध्यानके साथ गुरुप्रदत्त मन्त्रका जप करने लगा। वह शीतोष्ण-वात-वर्षादिका कष्ट सहता हुआ दृढ़ निश्चयके साथ तप करता रहा। इस प्रकार कठोर तप करते हुए उसे दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

उसके समक्ष भक्तवत्सल मूषक-वाहन, त्रिनेत्र, गजवक्त्र, एकदन्त, शूर्पकर्ण, पाशादिसे सुशोभित चतुर्भुज महोदर प्रकट हुए। उन मंगलमूर्ति प्रभुका दर्शन होते ही अहम्ने उठकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। तदनन्तर वह प्रमथेश्वरके चरणोंमें पुनः प्रणाम कर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करने लगा। स्तवनके अनन्तर उसने पुनः दयानिधान गजवक्त्रके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया।

इससे संतुष्ट होकर लम्बोदरने कहा—'मैं तुम्हारे तप और स्तवनसे प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँग लो।'

अहम्ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—प्रभो! आप मुझे अपनी भक्ति दीजिये। मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायँ। आप मुझे आरोग्य, विजय, अमोघास्त्र और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान करें। माया-विकारसे मेरी मृत्यु न हो।'

'तथास्तु!' कहकर गणनाथ अन्तर्धान हो गये।

अहम्ने प्रसन्नतापूर्वक अपने गुरुके यहाँ जाकर उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। उसके तप एवं वर-प्राप्तिका वृत्तान्त सुनकर शुक्राचार्य अत्यन्त मुदित हुए। उन्होंने समस्त असुरोंको बुलाकर अहम्के तप एवं प्रभावका वर्णन किया। असुरसमुदायने प्रतापी अहम्के अधीन रहकर उसकी इच्छाका अनुसरण करना स्वीकार कर लिया। तब शुक्राचार्यने उसे सविधि दैत्याधीशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। उस समय हर्षोत्फुल्ल असुरोंने वाद्यादिके साथ अद्भुत महोत्सव मनाया।

विषय-प्रिय नामक सुन्दर नगर निर्मित हुआ। अहम् वहाँ असुरोंके साथ निवास करने लगा। उसे योग्यतम पात्र समझ प्रमादासुरने अपनी रूप-यौवन-सम्पन्ना ममता-नामकी पुत्री उसके साथ ब्याह दी। कुछ ही दिन बाद उसे ममताके द्वारा गर्व और श्रेष्ठ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

कुछ समय बाद एक दिन अहम्के श्वशुर प्रमादासुरने उससे कहा—'तुमने सर्वत्र विजय एवं निर्भयताका वर प्राप्त कर लिया है, फिर व्यर्थ क्यों बैठे हो? ब्रह्माण्डपर विजय प्राप्तकर सुखोपभोग करो।'

अहम्को अपने पूज्य श्वशुरकी बात प्रिय लगी। उसने गुरुवर शुक्राचार्यके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी पूजा करके उनका शुभ आशीर्वाद प्राप्त कर लिया।

फिर उसने अपने अत्यन्त बलवान् और क्रूर सशस्त्र सैनिकोंको विजययात्राके लिये आज्ञा दी और स्वयं भी वह शस्त्र धारणकर रथपर आरूढ़ हुआ। प्रचण्ड अहंतासुर अपने पुत्र तथा वीर असुरोंके साथ सर्वत्र विजय प्राप्त करने चला। असुरोंने भयानक संहार किया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। इस प्रकार मार-काट मचाकर उसने सप्तद्वीपवती पृथ्वीपर अधिकार कर लिया और सर्वत्र उच्चतम पदोंपर अपने असुरोंको नियुक्त कर दिया।

तदनन्तर उसने पातालपर आक्रमण किया। परम प्रतापी अहंतासुरसे भयभीत शेषने उसे कर देना स्वीकार कर लिया। फिर उस असुरने स्वर्गपर आक्रमण किया। स्वयं विष्णु रणभूमिमें उपस्थित हुए, किंतु वरप्राप्त असुरके अमोघास्त्रसे उन्हें भी पराजित होना पड़ा। सर्वत्र अहंकारासुरका आधिपत्य हो गया। देवता, ऋषि एवं धर्मात्मा पुरुष पर्वतों और वनोंमें छिपकर कष्ट सहते हुए जीवन व्यतीत करने लगे। परम स्वतन्त्र अहंतासुर मद्य और मांसका तो अत्यधिक सेवन करता ही था, वह मनुष्यों, नागों और देवताओंकी भी कन्याओंका बलात् अपहरण कर निर्लज्जतापूर्वक उनका शील हरण करता। इस प्रकार अत्यन्त पापरत दुष्टात्मा अहम्को अपने आराध्य विघ्नराजकी विस्मृति हो गयी।

* ब्रह्मवैवर्तपुराण (कृष्णज० १२१। १००)-में षोडशाक्षरी मन्त्र इस प्रकार है—
'ॐ मं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा।'

एक दिन अहम्‌की राजसभामें अधर्मधारक उपस्थित हुआ। उसने दैत्यराजका अभिवादन कर निवेदन किया—'राजन्! आपका राज्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर स्थापित हो गया है, किंतु अमरगण पहाड़ोंकी गुफाओं और वनोंमें छिपकर हमारे समूलोन्मूलनका निरन्तर उद्योग कर रहे हैं। तनिक-सा छिद्र पाते ही वे हमारा सर्वनाश कर देंगे। अतएव उनका अस्तित्व समाप्त करनेका प्रयत्न आवश्यक प्रतीत होता है। अमरोंका पोषण यज्ञादि-कर्मसे होता है। उस कर्मकी समाप्तिसे वे स्वयं समाप्त हो जायँगे।'

'तुमने सर्वोत्तम परामर्श दिया।' अहंतासुरने अधर्म-धारककी प्रशंसा की और असुरगण सत्-कर्मोंके पीछे पड़ गये। प्रचण्ड असुरोंने यज्ञादि कर्मोंका खण्डन कर दिया। वर्णाश्रमधर्म समाप्त-प्राय हो चला। धर्म-कर्मका दर्शन भी दुर्लभ हो गया। दुरात्मा असुरोंने देवताओंको अतिशय पीड़ित करनेके लिये पर्वतों और अरण्योंको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। अहम्‌ने देवालयोंसे गणेशादिकी प्रतिमाएँ फेंकवा दीं और उनके स्थानपर अपनी मूर्ति स्थापित करायी।* उनके पूजक भी अहम्‌के अन्यतम श्रद्धालु असुर नियुक्त हुए। इस प्रकार सभी घरोंमें आसुरी कर्मोंकी प्रवृत्ति एवं अहंतासुरकी उपासना होने लगी। यह देखकर अधर्मधर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

देवताओंके दुःखकी सीमा नहीं थी। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि समस्त देवता एकत्र हुए। ब्रह्माने दुःखी देवताओंके सम्मुख कहा—'अहंतासुर गणनाथके वरसे मत्त होकर त्रैलोक्यको त्रस्त कर रहा है, किंतु अब उसे देवदेव विघ्नेश्वरकी भी विस्मृति हो गयी है। अतएव हमलोग उन्हीं सर्वसमर्थ प्रभुको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करें। वे करुणामूर्ति गजानन शीघ्र प्रसन्न होकर हमारा दुःख दूर कर देंगे।'

भगवान् शंकरने पितामहके परामर्शका अनुमोदन किया और सभी देवता उपवास करते हुए अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एकाक्षरी-विधानसे देवदेव गणेशकी उपासना करने लगे। इस प्रकार गणेशकी आराधना करते उन्हें सौ वर्ष व्यतीत हुए।

इससे संतुष्ट होकर मूषक-वाहन द्विरदानन प्रकट हुए। देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन धूम्रवर्ण प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उन्होंने आदरपूर्वक उन सुरश्रेष्ठकी पूजा की। इसके अनन्तर देवताओंने पुनः प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। परम प्रभु धूम्रवर्णका स्तवन करते हुए देवताओंने अन्तमें निवेदन किया—'प्रभो! कृपामय देव! आप हमारी विपत्ति दूर करें' 'तथास्तु' कहते हुए परम प्रभु धूम्रवर्ण अदृश्य हो गये। देवगण प्रसन्न हुए और वहीं उचित समयकी प्रतीक्षा करते हुए साधन-भजन करने लगे।

रात्रि हुई। प्रभु धूम्रवर्णने अहंतासुरको स्वप्नमें दर्शन दिया। उनके परम तेजस्वी स्वरूपका दर्शन कर असुर भयभीत होकर काँपने लगा। दूसरे दिन उसने अत्यन्त चिन्तित मनसे असुरोंसे कहा—'मैंने रात्रिमें धूम्रवर्ण गणेशको प्रत्यक्ष देखा है। क्रोधसे उनके नेत्र अरुण थे। उन्होंने हमारे सम्पूर्ण नगरको अग्निमें जलाकर भस्म कर दिया और हम सर्वथा अशक्त हो गये। देवगण पुनः स्वतन्त्र होकर धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगे। मुझे इस अशुभके शीघ्र फलद होनेकी आशंका प्रतीत हो रही है।'

अहम्‌को चिन्तित देखकर दूसरे दैत्यने कहा—'राजन्! आप वरके प्रभावसे सर्वथा निर्भय हो चुके हैं, अतएव चिन्ताका कोई कारण नहीं। स्वप्नमें धन-प्राप्ति और मृत्यु आदि मिथ्या सिद्ध होती हैं। अतएव स्वप्नका व्यर्थ विचार नहीं करना चाहिये।' इस प्रकार हास्य-विनोद करता हुआ दैत्य वहाँसे उठ गया।

स्वप्नके अप्रभावकारी हो जानेपर सर्वान्तर्यामी धूम्रवर्णने पुनः देवर्षि नारदको दूतके रूपमें अहम्‌के समीप भेजा। महर्षि नारदने असुरको धूम्रवर्ण गणेशकी शरण ग्रहण कर शान्त-जीवन व्यतीत करनेका संदेश दिया। तब अहंतासुर अत्यन्त कुपित हो गया। महर्षिने लौटकर प्रभुको सूचना दे दी।

उधर देवगण धूम्रवर्णके समीप पहुँचकर कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगे। भक्तवत्सल धूम्रवर्णने देवताओंसे कहा—'आपलोग यहीं बैठकर मेरी लीलाका दर्शन करें। मैं अहंकारासुरका वध करता हूँ।'

उन प्रभुने अपना अत्यन्त उग्र पाश छोड़ दिया।

* सर्वत्राहंप्रतिमाश्च स्थापिता भूमिमण्डले। पूजका राक्षसास्तत्र कृतास्तेन सुपापिना॥ (मुद्गलपु० ८। ४। १६)

उक्त पाश प्रभु धूम्रवर्णके हाथसे पृथक् होते ही अनन्त रूपोंमें परिवर्तित हो गया और जहाँ कहीं असुर मिलते, वहीं उनके कण्ठमें लिपटकर उन्हें मार डालता। उस बलवान् पाशने गाँव, नगर तथा प्रान्तोंके असंख्य असुरोंको यम-सदन भेज दिया। असुर हाहाकार करने लगे।

यह समाचार सुनकर अहंतासुर अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगा—'मैंने पहले ही कहा था कि धूम्रवर्ण गणेशका स्वप्न शीघ्र फल देगा; पर अब क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।'

अहंतासुरके पुत्रोंने पिताको सान्त्वना दी—'हमलोगोंके रहते आप व्यर्थ क्यों चिन्तित होते हैं? मायायुक्त धूम्रवर्ण क्या करेगा? देवताओंके समर्थक देहधारीको हम शीघ्र नष्ट कर देते हैं।' इतना कहकर गर्व और श्रेष्ठने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनी सशस्त्र सेनाके साथ वे युद्धभूमिमें पहुँचे।

असुरोंने भीषणतम युद्धकी चेष्टा की; किंतु अमित तेजस्वी पाशकी ज्वालामें वे सभी जलकर भस्म हो गये। यह देखकर अहंकार-तनय गर्व और श्रेष्ठ खड्ग लेकर पाशपर टूट पड़े। वे पाशकी ज्वाला सह नहीं पाते थे; किंतु अपने खड्गसे पाशको नष्ट कर देना चाहते थे। प्रज्वलित पाश उनके कण्ठमें लिपटा और दैत्य-पुत्रोंका श्वास अवरुद्ध हो गया। नेत्र बाहर निकल आये और उनका झुलसा हुआ शव पृथ्वीपर गिर पड़ा।

कुछ बचे असुर हाहाकार करते दैत्यपतिके पास पहुँचे। अपने पुत्रोंकी मृत्युका संवाद सुनकर अहंकार दुःखातिरेकसे मूर्च्छित हो गया। किंतु सावधान होनेपर उसके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होने लगी। वह अपने सैनिकोंके साथ समरभूमिमें पहुँचा।

रणांगणमें पाशकी भयानक ज्वालासे असुर भस्म होने लगे। पाश उनका गला कसकर प्राण ले लेता। अहम्की प्रायः समस्त सेना मर मिटी। कुछ बचे असुर प्राण बचानेके लिये भागे। अत्यन्त कुपित अहम्ने अपने अनेक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया। उन शस्त्रास्त्रोंकी विफलता और पाशकी असह्य ज्वालासे व्याकुल होकर उसने अपने अमोघ अस्त्रोंका प्रहार किया; किंतु उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। वे शस्त्र भी निष्फल हो गये और यदि अहम् वहाँसे नहीं भागता तो धूम्रवर्ण गणेशका पाश उसका कण्ठ पकड़कर निश्चय ही उसे मार डालता।

अत्यन्त भयाक्रान्त अहंतासुरने अपने गुरु शुक्राचार्यके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'देव! मायायुक्त धूम्रवर्णके पाशके सम्मुख वरप्राप्त मेरे अमोघास्त्र कैसे निष्फल हो गये? मैं किसी प्रकार अपनी रक्षा कर यहाँ आ सका हूँ।'

शुक्राचार्यने कहा—'मूर्ख! तू मायातीत गणेशको नहीं जानता। उनकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। वे स्वर्गमें देवताओं, धरतीपर मनुष्यों और पातालमें असुरोंके निर्विघ्न जीवनकी व्यवस्था करते हैं। तूने उनके वरके प्रभावसे त्रैलोक्यपर अधिकार कर देवताओं और मुनियोंको बड़ा कष्ट दिया। तुम्हारे इस अनाचारसे सर्वेश्वर धूम्रवर्ण तुम्हारा सर्वनाश कर देंगे। यदि प्राण-रक्षा चाहते हो तो तुरंत उनके चरणोंकी शरण ग्रहण करो।'

अहम्ने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और तुरंत धूम्रवर्णकी शरण ग्रहण करने चला। उसने परम तेजस्वी पाशसे अपने नगरको भस्म होते देखा तो अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर पाशका स्तवन करने लगा। अहम्की स्तुतिसे तुष्ट पाश शान्त हो गया और अपने स्वामी धूम्रवर्णके कर-कमलोंमें पहुँच गया। तदनन्तर अहम् अत्यन्त विनम्रतापूर्वक सर्वशान्तिप्रदायक सुरासुरमय देवदेव धूम्रवर्णके समीप जाकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। फिर उसने दयामय धूम्रवर्णकी विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजा की। तदनन्तर वह साश्रुनयन हाथ जोड़े सर्वेश्वर धूम्रवर्णकी गद्गदकण्ठसे स्तुति करने लगा।

अहंतासुरकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर परमदेव धूम्रवर्णने उसे अपनी भक्ति प्रदान करते हुए कहा—'महासुर! जहाँ आदिमें मेरा पूजन नहीं होता है, उन कर्मोंमें तुम्हारे निवासके लिये स्थान दिया जाता है। तुम वहाँ रहकर उन कर्मोंके महान् फलका उपभोग करो। किसी भी कार्यके प्रारम्भमें जहाँ मेरा स्मरण नहीं किया जाता हो, वहाँ तुम सुस्थिर होकर बैठ जाओ और अपने आसुर स्वभावके अनुसार वहाँ कार्यमें सफलता न होने दो। अब तुम अपने नगरको जाओ और मेरे भक्तोंकी सदा रक्षा करते रहो।

अहंतासुरने परम प्रभुके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया।

अहंकारासुरको अत्यन्त शान्तभावसे धूम्रवर्ण गणेशके चरणोंकी भक्तिपूर्वक वन्दना कर प्रस्थित होते देख देवगण बहुत विस्मित हुए। उन्होंने श्रद्धापूर्वक सुरनायक मंगलमूर्ति धूम्रवर्ण गणेशकी पूजा और स्तुति की। दयामय गणेशने उन्हें अपनी भक्ति प्रदान की।

'सिद्धि-बुद्धिके स्वामी भक्तवत्सल गणेशकी जय!' बोलते हुए देवगण मुदित मनसे अपने-अपने धाम पधारे।

उपसंहार

इस प्रकार मंगलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर श्रीगणपतिके अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त मंगलमयी लीलाकथा पूरी हुई। इसका पठन, श्रवण और मनन-चिन्तन जन-जनके लिये परम कल्याणकारक है। इन अवतारोंका पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, उससे भी बढ़कर आध्यात्मिक महत्त्व है। श्रीगणपति सर्वव्यापी परमात्मा सबके हृदयमें नित्य विराजमान हैं। संग और प्राक्तन संस्कारवश प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें समय-समयपर मात्सर्य, मद, मोह, लोभ, काम, ममता एवं अहंता—इन आन्तरिक दोषोंका उद्बोधन होता ही है। आसुरी सम्पत्तिके प्रतीक होनेसे इनको 'असुर' कहा गया है। इन आसुरी वृत्तियोंसे परित्राण पानेका अमोघ उपाय है—'भगवान् गणपतिका चरणाश्रय ।' गीतामें भी भगवान्ने यही कहा है—'**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**॥' अतः इन आसुरी वृत्तियोंके दमन तथा दैवी सम्पदाओंके संवर्धनके लिये परम प्रभु गणपतिका मंगलमय स्मरण करना ही सबके लिये सर्वथा श्रेयस्कर है और यही इस अवतार-कथाका सारभूत संदेश है।

मंगलमूर्ति भगवान् गणेशकी जय! जय!! जय!!!

~~०~~

श्रीगणेशजीके शिरश्छेदनका हेतु

(ले०—श्रीमती सावित्रीदेवी त्रिपाठी, बी० ए०, बी० एड्०)

देवदेव गणेश सर्वाधार शिवके पुत्र और विघ्नोंका नाश करनेवाले हैं। स्वयं परब्रह्म परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण अपने अंशसे पार्वतीनन्दनके रूपमें अवतरित हुए थे, फिर उन ग्रहाधिराज भगवान् श्रीकृष्णका ग्रह (शनि)-की दृष्टिसे मस्तक कैसे कट गया? इस सम्बन्धमें ब्रह्मवैवर्तपुराणमें एक कथा इस प्रकार है—

एक बारकी बात है। भक्तोंको प्राणाधिक प्यार करनेवाले जगद्वन्द्य शिव माली और सुमालीको मारनेवाले सूर्यपर अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपने ही समान अपने परम तेजस्वी तीक्ष्णतम त्रिशूलसे सूर्यपर प्रहार कर दिया। उक्त अमोघ त्रिशूलका आघात सूर्यके लिये असह्य था। वे तुरंत मूर्च्छित होकर रथसे नीचे गिर पड़े।

लोक-पितामहके पौत्र परम तपस्वी महर्षि कश्यपने जब अपने चेतना-शून्य पुत्र सूर्यकी ऊपर चढ़ी आँखोंको देखा तो उन्होंने उसे अपने वक्षसे लगा लिया और करुण-क्रन्दन करने लगे। उस समय समस्त सुरसमुदाय भी शोकविह्वल होकर रुदन करने लगा और तिमिरारिके बिना सम्पूर्ण जगत् तमसाच्छन्न हो गया। सर्वत्र हाहाकार मच गया।

ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित महर्षि कश्यपने अपने पुत्रको म्लान देखकर दुःखके आवेगमें पार्वतीवल्लभको शाप दे दिया—'आज जिस प्रकार तुम्हारे तीक्ष्णतम अमोघ त्रिशूलसे मेरे पुत्रका वक्ष विदीर्ण हुआ है, उसी प्रकार तुम्हारे प्राणप्रिय पुत्रका भी शिरश्छेद हो जायगा।'

सहज करुणामय आशुतोषका रोष कुछ ही देरमें शान्त हो गया। बस, उन्होंने उसी क्षण ब्रह्मज्ञानके द्वारा सूर्यको जीवित कर दिया।

त्रिगुणात्मक भक्तवत्सल सविताके पूर्ववत् स्वस्थ हो जानेके कारण देवगण एवं समस्त प्राणी सुखी हो गये; किंतु महर्षि कश्यपके अमोघ वचनसे सूर्यपुत्र शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिवपुत्र गणेशका मस्तक कट गया।

~~०~~

श्रीगणेश—वैदिक देवता

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य)

शास्त्रोंमें जिस प्रकार एक ही ब्रह्म (परमात्मा)-के ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों रूप कहे गये हैं, उसी प्रकार 'गणेश' को भी ब्रह्मका ही विग्रह कहा गया है। जिस प्रकार एक ब्रह्मके होते हुए भी ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताएँ हैं, उसी प्रकार 'गणेश' की भी हैं।

समस्त देवताओंमें गणेश ही एक ऐसे देवता हैं, जिनका समस्त शुभ कार्योंके प्रारम्भमें सर्वप्रथम पूजन किया जाता है। इनकी पूजा किये बिना किसी भी शास्त्रीय तथा लौकिक शुभ कर्मका प्रारम्भ नहीं होता। अतएव वेदभगवान्‌ने भी कहा है—

'न ऋते त्वत् क्रियते किञ्चनारे।'

(ऋग्वेद १०। ११२। ९)

'हे गणेश! तुम्हारे बिना कोई भी कर्म प्रारम्भ नहीं किया जाता।'

जिन गणेशका प्रत्येक शुभ कार्यके प्रारम्भमें सर्वप्रथम पूजन करना अनिवार्य है, उन्हें पूज्य वैदिक देवता मानकर ही उनका प्रत्येक शुभ कार्यमें पूजनके समय सर्वप्रथम स्मरण करते हुए भक्तगण कहते हैं—

'गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳहवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳहवामहे।'

(शुक्लयजुर्वेद २३। १९)

'हे गणेश! तुम्हीं समस्त देवगणोंमें एकमात्र गणपति (गणोंके पति) हो, प्रिय विषयोंके अधिपति होनेसे प्रियपति हो और ऋद्धि-सिद्धि एवं निधियोंके अधिष्ठाता होनेसे निधिपति हो; अतः हम भक्तगण तुम्हारा नाम-स्मरण, नामोच्चारण और आराधन करते हैं।'

भगवान् गणेश सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके ईश हैं। गुणोंका ईश ही प्रणवस्वरूप 'ॐ' है। प्रणवस्वरूप 'ॐ' में गणेशजीकी मूर्ति सदा स्थित रहती है। अतः 'ॐ'—यह गणेशजीकी प्रणवाकार मूर्ति है, जो वेदमन्त्रके प्रारम्भमें रहती है। इसीलिये 'ॐ' को गणेशकी साक्षात् मूर्ति मानकर वेदोंके पढ़नेवाले सर्वप्रथम 'ॐ' का उच्चारण करके ही वेदका स्वाध्याय करते हैं। वेदके स्वाध्यायके प्रारम्भमें 'ॐ' का उच्चारण करना गणेशजीका ही नाम-स्मरण अथवा नामोच्चारण करना है। अतः सिद्ध है कि प्रणवस्वरूप ओंकार ही भगवान् गणेशकी आकृति (मूर्ति) है, जो वेद-मन्त्रोंके प्रारम्भमें प्रतिष्ठित है।

'गणेशपुराण' में भी लिखा है—

ओंकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।
यं सदा मुनयो देवाः स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि॥
ओंकाररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः।
यथा सर्वेषु कार्येषु पूज्यतेऽसौ विनायकः॥

'ओंकाररूपी भगवान् जो वेदोंके प्रारम्भमें प्रतिष्ठित हैं, जिनको सर्वदा मुनि तथा इन्द्रादि देवगण हृदयमें स्मरण करते हैं। ओंकाररूपी भगवान् गणनायक कहे गये हैं। वे ही विनायक सभी कार्योंमें पूजित होते हैं।'

गणेशजीके अनन्त नाम हैं, जिनका उल्लेख समस्त श्रुति-स्मृति-पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थोंमें बड़े विस्तारसे मिलता है।

महाभारतके आदिपर्व (१। ७५—८३)-में गणेशजीके हेरम्ब, गणेशान, गणनायक, विघ्नेश और गणेश—ये नाम आये हैं।

स्कन्दपुराणके माहेश्वरखण्ड, उत्तरार्ध (१७। २३)-में गणेशजीके गजानन, हेरम्ब आदि नाम कहे गये हैं तथा उसी पुराणके काशीखण्डमें गणेशजीके वक्रतुण्ड, कपिल, चिन्तामणि तथा विनायक-प्रभृति अनेकों नामोंका उल्लेख किया गया है।

गणेशपुराणके उपासनाकाण्ड (४६। १४; ४६। १०५)-में गणेशजीके कवि, ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति और ज्येष्ठराज—ये नाम आये हैं।

पद्मपुराणके सृष्टिखण्ड (६५। ३२)-में गणेशजीके गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त और गणाधिप—ये नाम कहे गये हैं।

इसी प्रकार अन्य पुराण और उपपुराणोंमें तथा 'गणेशसहस्रनामस्तोत्र' आदिमें भी गणेशजीके गजानन, गणपति, गणनायक, गणाध्यक्ष, विनायक, विघ्ननाशक, लम्बोदर, भालचन्द्र और एकदन्त आदि अनेक नाम आये हैं।

पुराणादिमें जिस प्रकार गणेशजीके अनेक नामोंका उल्लेख है, उसी प्रकार गणेशजीके अवतार, स्वरूप एवं महत्त्व आदिका भी वर्णन है, जो वेदोंके आधारपर ही भगवान् वेदव्यासजीने किया है।

अब हम वैदिक-संहिता तथा वैदिक वाङ्मयके कुछ महत्त्वपूर्ण मन्त्र उद्धृत करते हैं, जिनसे गणेशजीकी वैदिकता और महत्ता स्पष्ट सिद्ध है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिःसीद सादनम्॥*

(ऋग्वेद २। २३। १)

'तुम देवगणोंमें प्रभु होनेसे गणपति हो, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी हो, उत्कृष्ट कीर्तिवालोंमें श्रेष्ठ हो। तुम शिवके ज्येष्ठ पुत्र हो, अतः हम तुम्हारा आदरसे आह्वान करते हैं। हे ब्रह्मणस्पते गणेश! तुम हमारे आह्वानको मान देकर अपनी समस्त शक्तियोंके सहित इस आसनपर उपस्थित होओ।'

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किञ्चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥

(ऋग्वेद १०। ११२। ९)

'हे गणपते! आप देव आदिके समूहमें विराजमान होइये; क्योंकि विद्वज्जन आपको ही समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ कहते हैं। आपके बिना समीपका अथवा दूरका कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता। हे पूज्य एवं आदरणीय गणपते! हमारे सत्कार्योंको निर्विघ्न पूर्ण करनेकी कृपा कीजिये।'

'गणानां त्वा०' इत्यादि मन्त्रका उल्लेख तो पहले किया ही गया है।

'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्' में गणेशके विभिन्न नामोंका उल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है—

'नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमो नमः।' (१०)

'व्रात अर्थात् देवसमूहके नायकको नमस्कार; गणपतिको नमस्कार; प्रमथपति अर्थात् शिवजीके गणोंके अधिनायकको नमस्कार; लम्बोदरको, एकदन्तको, विघ्नविनाशकको, शिवजीके पुत्रको और श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार, नमस्कार।'

'यजुर्विधान' में **'गणानां त्वा०'** (शुक्लयजुर्वेद २३। १९)—इस मन्त्रको गणपति-देवतापरक कहा गया है; अतः इस मन्त्रका गणेशके पूजन और हवनादिमें विनियोग होता है।

'शुक्लयजुर्वेद' (२२ । ३०)-में **'गणपतये स्वाहा'** से गणेशजीके लिये आहुति देनेका विधान है।

'कृष्णयजुर्वेदीय काण्वसंहिता' (२४। ४२)-में **'गणपतये स्वाहा'** के द्वारा गणेशजीके निमित्त आहुति देनेके लिये कहा गया है।

'कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणी-संहिता' (३। १२। १३)-में **'गणपतये स्वाहा'** से गणेशजीको आहुति प्रदान करनेके लिये लिखा है।

'बौधायन-गृह्यशेषसूत्र' (३। १० । १)-के विनायक-कल्पमें लिखा है—

'मासि मासि चतुर्थ्यां शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यां वा अभ्युदयादौ सिद्धिकाम ऋद्धिकामः पशुकामो वा भगवतो विनायकस्य बलिं हरेत्।'

'प्रत्येक महीनेके शुक्लपक्षकी चतुर्थी अथवा पंचमी तिथिको अपने अभ्युदयादिके अवसरपर सिद्धि, ऋद्धि और पशु कामनावाला पुरुष भगवान् विनायक (गणेश) के लिये बलि (मोदकादि नैवेद्य) प्रदान करे।'

महर्षि पराशरने **'गणानां त्वा०'** (शु० य० २३। १९)— इस मन्त्रके अन्तमें **'स्वाहा'** जोड़कर गणेशजीके लिये हवन और पूजन करनेके लिये कहा है—

विनायकाय होतव्या घृतस्याहुतयस्तथा॥
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेद् यत्नतस्तु तम्।
गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमादृतः॥
चतस्रो जुहुयात् तस्मै गणेशाय तथाऽऽहुतीः।

(बृहत्पाराशरस्मृति ४। १७६—१७८)

आचार्य आश्वलायनने **'गणानां त्वा०'**—इस मन्त्रसे गणेशजीका पूजन करनेके लिये कहा है।

भगवान् वेदव्यासजीने गणेशजीका मन्त्र **'गणानां त्वा०'** लिखा है—

'गणानां त्वेति मन्त्रेण विन्यसेदुत्तरे ध्रुवम्।'

(भविष्यपुराण, मध्यपर्व, द्वितीय भाग २०। १४२)

बृहत्पाराशरस्मृति (११ । ३३९) में—

* यह मन्त्र कृष्णयजुर्वेदसंहिता (२ । ३ । १४) और त्रिपुरातापिन्युपनिषद् (३)-में भी है।

'आ तू न इन्द्र वृत्रहन् सुरेन्द्रः स गणेश्वरः।'

—इस मन्त्रको गणेश्वरपरक कहा है। ऋग्वेद (८।८१।१) में—

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं ग्राभं सं गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन॥

—इस मन्त्रको गणेश्वरपरक माना है। शुक्लयजुर्वेद (३३।६५—७२)में—

'आ तू न इन्द्र वृत्रहन्०' इत्यादि आठ मन्त्रोंको गणपतिपरक कहा गया है। अतः इन आठ मन्त्रोंसे गणेशजीका स्मरण, पूजन और हवन करनेका विधान है।

सामवेदीय रुद्राष्टाध्यायीमें 'विनायकसंहिता' है, जिसमें '**अदर्दरूत्०**' इत्यादि आठ मन्त्र (३१५ से ३२२) गणपतिपरक कहे गये हैं। जिनका गणपति-पूजन और गणपति-हवनमें उपयोग होता है।

उपर्युक्त वैदिक प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि गणेशजी वैदिक देवता हैं। अतएव ऋषि-महर्षियोंने **'गणानां त्वा०'** आदि वैदिक-मन्त्रोंसे गणेशजीके निमित्त पूजन, हवन और बलि देनेके लिये कहा है।

वेदों और उपनिषद् आदिमें गणेशजीकी विविध गायत्रियोंका उल्लेख है, जिनमें गणेशजीके तत्पुरुष, एकदन्त, हस्तिमुख, वक्रतुण्ड, दन्ती, कराट आदि अनेक नाम आये हैं, जो गणेशजीके ही पर्यायवाचक नाम हैं और वे सभी नाम गणेशजीके स्वरूप और महत्त्वको व्यक्त करनेवाले हैं एवं भक्तोंके लिये शुभ और लाभप्रद हैं। ये गणेश-गायत्रियाँ इस प्रकार हैं—

ॐ तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणीसंहिता २।९।१।६)

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक, नारायणोपनिषद् १०।१)

ॐ एक दन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्)

ॐ लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(अग्निपुराण ७१।६)

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(अग्निपुराण १७९।४)

उपर्युक्त समस्त वैदिक प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि वेदादिमें तथा समस्त शास्त्रोंमें गणेशजीका विशिष्टरूपमें वर्णन है। अतः गणेशजी वैदिक देवता हैं, यह निर्विवाद है। गणेशजीको वैदिक देवता मानकर ही भक्तगण अपने प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन करते हैं और उनका स्मरण करते हैं।

जिस प्रकार गणेशजी वैदिक देवता हैं, उसी प्रकार वे अनादिसिद्ध, आदिदेव, आदि-पूज्य और आदि-उपास्य हैं। गणेशतापिन्युपनिषद्के **'गणेशो वै ब्रह्म'** एवं गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्के **'त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि'**के अनुसार गणेशजी प्रत्यक्ष ब्रह्म ही हैं। गणेशजीके 'ब्रह्म' होनेके कारण ही उन्हें कर्ता, धर्ता एवं संहर्ता कहा गया है। गणेशजी जीवात्माके अधिपति हैं। गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्में **'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुः'** इत्यादिद्वारा गणेशजीको 'सर्वदेवरूप' कहा गया है। अतएव गणेशजी सभीके वन्दनीय और पूजनीय हैं। प्राणिमात्रका मंगल करना गणेशजीका प्रमुख कार्य है, अतः वे 'मंगलमूर्ति' कहे जाते हैं। इसलिये जो मनुष्य मंगलमूर्ति गणेशजीका श्रद्धा-भक्तिसे प्रतिदिन स्मरण, पूजन और उनके स्तोत्रादिका पाठ तथा गणपतिमन्त्रका जप एवं 'गणेशसहस्रनाम'से हवन करता है, वह निष्पाप होकर धर्मात्मा बन जाता है। उसके यहाँ समस्त प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धिका भण्डार भरा रहता है और वह गणेशजीकी कृपासे अपना इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन सुखद बना लेता है। अतः मनुष्यमात्रको आत्मकल्याणार्थ ऋद्धि-सिद्धि-नवनिधिके दाता मंगलमूर्ति गणेशजीका सर्वदा समाराधन करना चाहिये।

~~०~~

पांचरात्र आगममें श्रीगणेश

(लेखक—प्राध्यापक डॉ० श्रीवे० वरदाचार्य)

विष्णुको परदेवता मानकर जो उपासना करते हैं, वे 'वैष्णव' कहलाते हैं। पर-तत्त्वका स्वरूप, उसकी प्राप्तिका उपाय, निःश्रेयस्का स्वरूप आदिका निश्चय वैष्णवमतसे श्रुति-स्मृति तथा पांचरात्र आगमके द्वारा होता है। इस आगममें यह निर्णय किया गया है कि विष्णु ही देवताओंमें अग्रणी हैं, दूसरे देवता उनकी अपेक्षा अवर (गौण) हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। **'विष्लृ व्याप्तौ'**—इस धातुसे 'विष्णु'-पद निष्पन्न हुआ है। इससे सर्वत्र गुणोंसे, स्वरूपसे तथा गुण-गणोंसे विष्णुकी व्याप्तिका बोध होता है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि विश्व-ब्रह्माण्डमें जो देवता, जीव तथा पदार्थसमूह हैं, वे सब बाहर और भीतर सर्वत्र श्रीभगवान्के द्वारा व्याप्त हैं। अन्तरात्माके रूपमें भगवान् उनके नियन्ता हैं। परमपुरुषका माहात्म्य, गृह और मन्दिरमें उनकी अर्चा-विधि, उनके मन्दिर-निर्माणकी विधि आदि विषयोंको लेकर आलोचना करनेवाले पांचरात्र आदि आगम विष्णुके परिवारके रूपमें अन्य देवताओंका निर्देश करते हैं और मन्दिरोंमें तथा उनके गोपुर-विमान आदिमें अधिकारानुसार उन देवताओंकी प्रतिष्ठाकी विधिको बतलाते हैं।

'गणेश'-पद **'गणानामीशः'** अर्थात् गणोंके ईश, इस योग-वृत्तिसे व्युत्पन्न होता है। शिवके परिवारके लोगोंका 'प्रमथगण' नाम है। उन गणोंका ईश होकर, पशुपतिका अपकार सोचनेवालोंको दण्ड प्रदान करके उनके विघ्नोंका नाश करते हुए वे 'विघ्नेश्वर' नामको प्राप्त होते हैं।

श्रीवैष्णव अर्थात् विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदायके लोग तो भगवान्से ही सब अर्थोंकी याचना करते हुए उनके ही शरणापन्न होते हैं। विघ्नोंका निवारण करनेके साथ-साथ सारे अभिवांछित फलकी प्राप्ति उनके द्वारा ही होगी, यह इन लोगोंका दृढ़ निश्चय है। अतएव इनके आचारमें गणेश-पूजाका कोई अवसर नहीं आता।

विष्णु-परिवारके देवताओंमें केवल चतुर्मुख ब्रह्मा आदि देवताओंका ही समावेश नहीं होता, बल्कि पशुपतिके पुत्र गणेशकी भी उसमें गणना होती है। इसके सिवा कुछ और देवता भी गणनायकके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जैसे—कुमुद, कुमुदाक्ष, सुमुख, शंकुकर्ण, पुण्डरीकाक्ष* आदि देवताओंका गणोंके अधिनायकके रूपमें पांचरात्र आगममें निर्देश है। तथापि 'गणेश' नामकी प्रसिद्धि विनायककी ही है, इसमें कोई संदेह नहीं।

भगवान्के मन्दिरके प्राकारों और विमानोंमें दिक्पाल तथा ब्रह्मा आदि देवता बिम्बरूपसे स्थापित होते हैं—यह पांचरात्र ग्रन्थोंमें प्रतिपादित हुआ है। जैसे—

कौशिकं च गणेशं च कंदर्पं स्कन्दमेव च।
आग्नेयादिषु कोणेषु यथासंख्यं प्रकल्पयेत्॥

(सनत्कुमारसंहिता, इन्द्ररात्र ५। ३१)

'आग्नेय आदि कोणोंमें क्रमशः कौशिक, गणेश, कामदेव तथा स्कन्दको स्थापित करे।'

उसी ग्रन्थमें लिखा है कि—

गणेशसिंहयोर्मध्ये कुर्यान्मिश्रं विचक्षणः।
श्रीधरस्य गणेशस्य मध्ये तु वरुणं न्यसेत्॥

'गणेश और सिंहके बीचमें विद्वान् पुरुष मिश्रकी स्थापना करे तथा श्रीधर और गणेशके बीचमें वरुण देवताका निवेश करे।'

इन परिवार-देवताओंके लिये मंगलाशासन प्राप्त होता है। यथा—

कुमारी च कुमारश्च गणेशश्च विनायकः।
सिद्धाश्च किन्नराश्चापि मङ्गलं प्रदिशन्तु नः॥

(सनत्कुमारसंहिता, ऋषिरात्र, अ० ६)

'कुमारी, कुमार, गणेश, विनायक, सिद्ध तथा किन्नरगण हमें मंगल प्रदान करें।'

उसी संहितामें शिवरात्रमें अध्याय १ श्लोक ८९-९० में लिखा है कि ग्रामके दक्षिण भागमें उत्तरमुख गणेशकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

आवाहन और निवेदनकी यह विधि कही गयी है—

गायत्रीयं गणपतेः प्रतिष्ठाकर्मसु स्मृता।
महोल्कायेति मन्त्रेण स्वाहान्तेन यथाविधि।
तेनैवावाहयेद्देवं गणेशं विघ्ननायकम्॥

(सनत्कुमारसंहिता अ० १। ९४, ९९)

* विश्वामित्र-संहिता अ० १७। १३३, १३६, १३९, १४२, १४८, १५३।

'**महोल्काय**.........। गणेशकी यह गायत्री प्रतिष्ठा-कर्ममें गृहीत हुई है। उसी मन्त्रके अन्तमें '**स्वाहा**' जोड़कर विघ्ननायक गणेशका आवाहन करे।'

गणपतिकी पूजामें गणपति-गायत्रीका प्रयोग करना चाहिये—ऐसा कहा गया है और मन्त्रका इस प्रकार निर्देश हुआ है—

ॐ नमो गणाधिपतये शूर्पकर्णाय विद्महे।
कोटिरक्षाय धीमहि तन्नो गणपतिः प्रचोदयात्॥

(सनत्कुमारसंहिता अ०१।९४)

पूजाके अवसरपर मुद्राका प्रयोग करना चाहिये—यह तान्त्रिकोंका सिद्धान्त है। मुद्राकी महत्ता यों बतायी गयी है—

मोदनात् सर्वदेवानां द्रावणात् पापसंततेः।
तस्मान्मुद्रेति सा ख्याता सर्वकामार्थसाधिनी॥

(शब्दकल्पद्रुम, भा० ३, पृ० ७४५)

'वह सब देवताओंको मोद देती और पापराशिका द्रावण (निवारण) करती है; इसलिये 'मुद्रा' कही जाती है।'

इस प्रकार '**मुद्**'-धातुसे यह 'मुद्रा' शब्द निष्पन्न हुआ है। लक्ष्मीतन्त्र अ० ३७।६१ में, विष्णु-संहिता अ० ३९ में, विश्वामित्र-संहिता अ० १८।२९ में लिखा है कि विमानस्थ गणेशकी पूजा करते समय उनकी मुद्रा* प्रदर्शित करनी चाहिये। गणेश-पूजाकी क्रम-विधि नारदीय-संहिता अ० २८।३३—३७ में संग्रहपूर्वक वर्णित है।

वर्णोंके अधिष्ठाताके रूपमें अनेक देवताओंका निर्देश किया गया है। ओंकारके अधिष्ठाता गणेश हैं—यह श्रीप्रश्नसंहिताके '**ओंकार एकदंष्ट्रश्च वक्रतुण्डश्च खड्गधृक्।**' (अ० ५०।४३) के वाक्यसे प्रकट होता है।

इस प्रकार विष्णुके परिवारके रूपमें शिवात्मज गणेशकी अवस्थिति भलीभाँति प्रकल्पित है—यह स्पष्ट हो जाता है।

~~~०~~~

स्मृतियोंमें श्रीगणेश

(लेखक—पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्री, साहित्यकेसरी)

संसिद्ध्यर्थमिलत्सुरासुरनमन्मौलिस्थितप्रोल्लसत्-
सद्रत्नप्रभवप्रकृष्टविविधप्रेङ्खन्मयूखोज्ज्वलम्।
श्रेयोविघ्नमहामयप्रशमने दिव्यं यदेकौषधं
भूयान्नो द्विरदाननाङ्घ्रिकमलद्वन्द्वं तदिष्टाप्तये॥

'अभीष्ट-सिद्धिके लिये संगठित होकर आये हुए देवताओं और असुरोंके द्वारा नमस्कार करनेके कारण उनके मस्तकपर स्थित आबदार बहुमूल्य रत्नोंसे उद्भूत विभिन्न रंगोंकी झिलमिलाती हुई उत्कृष्ट किरणोंसे जो उद्भासित हो रहा है तथा कल्याणमार्गके विघ्नरूपी महान् रोगका प्रशमन करनेमें जो एकमात्र दिव्य औषध है, गजानन गणेशजीका वह युगल चरणकमल हमारी इष्ट-प्राप्तिका साधन हो।'

हमारे पूर्वज महर्षियोंकी तपःपूत वाणीसे निस्सृत श्रुतिमूलक अनुभवपूर्ण प्रवचनोंका संकलन जिन ग्रन्थोंमें

* 'शारदातिलक'की व्याख्यामें गणपति-मुद्रा इस प्रकार बतायी गयी है—

मुखात् प्रलम्बितं हस्तं कृत्वा संकुचिताङ्गुलिम्। मध्या तर्जनिर्गताग्राङ्गुष्ठं चाधःस्थमध्यमम्॥
कुर्यान्मुद्रा गणेशस्य प्रोक्तेयं सर्वसिद्धिदा।

'मुखसे लगाकर अपना हाथ लंबा करे। उसकी अंगुलियाँ संकुचित हों, मध्यमा और तर्जनी अंगुलियोंका अग्रभाग आगेकी ओर निकलता रहे और अंगुष्ठ मध्यमाके ऊपर रहे। ऐसी मुद्रा प्रदर्शित करे। यह गणेशकी सर्वसिद्धिदायिनी मुद्रा कही गयी है।'

अथवा

कुञ्चिताग्रस्य हस्तस्य मूले नासानियोगतः। गणेश्वरी भवेन्मुद्रा..................। इति।

'हाथके अग्रभागको सिकोड़ ले और उसके मूलभागमें नाक सटा ले। यह गणेश्वरी मुद्रा है।' यह सभी गणपति-मन्त्रोंके लिये साधारण मुद्रा है—ऐसा जानना चाहिये।
~~~

किया गया है, वे 'स्मृतियाँ' कहलाती हैं। जिन महर्षिका विवेचन जिस स्मृतिमें संग्रथित है, वह उन्हींके नामसे प्रचलित है।

यद्यपि ग्रन्थ-प्रणयन-कालमें '**ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयम्**—ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें मंगलका उल्लेख करना चाहिये' का प्राचीन विधान है, परंतु इन स्मृतियोंमें इस नियमका पूर्णतया पालन नहीं हुआ है। यही कारण है कि इनमें गणेशजीका प्रसंग नाममात्रको ही है। जो कुछ उपलब्ध हो सका, वही इस लेखका प्रतिपाद्य है।

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें प्रत्येक कार्यारम्भमें विघ्ननिवारणार्थ गणेश-स्मरणका विधान है। इसी आधारपर परम्परानुसार हमलोग सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन-स्तवन करते हैं। यहाँतक कि ब्रह्मा आदि देवगण भी गणेशजीको नमस्कार करते हैं—

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम्॥

'ब्रह्मा आदि देवगण सभी कार्योंके आरम्भमें जिन्हें नमस्कार करके कृतकृत्य होते हैं, उन गजानन गणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

स्मार्त-प्रक्रियामें जो पंचदेवोपासना प्रचलित है, उसमें भी गणेशजीका एक प्रमुख स्थान है। साथ ही भक्तिमार्गके आचार्योंमें भी इनकी गणना है—

शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा।
स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि॥

'शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, वैनायक और स्कान्द—ये ही भक्तिमार्गके छः दर्शन कहे गये हैं।'

आह्निक कर्मोंमें भी नित्य गणेशजीकी पूजाका विधान है। जैसा कि 'बृहत्पाराशरस्मृति' में आया है—

विनायकाय होतव्या घृतस्याहुतयस्तथा॥
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेद्यत्नतस्तु तम्।
गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमादृतः॥
चतस्रो जुहुयात्तस्मै गणेशाय तथाऽऽहुतीः।

(वैश्वदेवप्र० ४। १७६—१७८)

''बलिवैश्वदेव-कालमें गणेशजीके लिये घीकी आहुतियाँ देनी चाहिये और सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्तिके लिये यत्नपूर्वक उनका पूजन करे। पुनः '**गणानां त्वा०**'—इस मन्त्रसे अन्तमें स्वाहाका प्रयोग करके गणेशजीके निमित्त आदरपूर्वक चार आहुतियोंसे हवन करे।''

महर्षि लौगाक्षिका कथन है कि विभिन्न देवता भिन्न-भिन्न प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति करते हैं, परंतु गणेशजी तो सभी अभिलषित वस्तुओंके प्रदाता हैं—

आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात्।
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्॥
दुर्गादिभिस्तथा रक्षां भैरवाद्यैस्तु दुर्गमम्।
विद्यासारं सरस्वत्या लक्ष्म्या चैश्वर्यवर्धनम्॥
पार्वत्या चैव सौभाग्यं शच्या कल्याणसंततिम्।
स्कन्दात् प्रजाभिवृद्धिं च सर्वं चैव गणाधिपात्॥
मूर्तिभेदा महेशस्य त एते यन्मयोदिताः॥

(लौगाक्षिस्मृति)

'सूर्यसे आरोग्यकी, अग्निसे श्रीकी, शिवसे ज्ञानकी, जनार्दनसे मोक्षकी, दुर्गा आदि देवियोंसे रक्षाकी, भैरव आदिसे कठिनाइयोंसे पार पानेकी, सरस्वतीसे विद्या-तत्त्वकी, लक्ष्मीसे ऐश्वर्य-वृद्धिकी, पार्वतीसे सौभाग्यकी, शची-इन्द्राणीसे कल्याणपरम्पराकी, स्कन्दसे संतान-वृद्धिकी और गणेशसे सभी वस्तुओंकी याचना करनी चाहिये। ये सभी, जिनका मैंने वर्णन किया है, महेश्वरकी विभिन्न मूर्तियाँ हैं।'

भगवान् गणेश विघ्नोंके अधिपति हैं, अतः उनके पूजनसे विघ्नोंकी शान्ति होती है। इस विषयमें याज्ञवल्क्यस्मृतिके आचाराध्यायमें एक समूचे प्रकरणका ही वर्णन है, जिसे 'गणपतिकल्प' कहते हैं। उसमें उल्लेख है—

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा॥

(२७१)

'ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुने गणेशजीको कर्मोंमें विघ्न डालनेका अधिकार तथा पूजनोपरान्त उसे शान्त कर देनेकी सामर्थ्य प्रदान की है। साथ ही पुष्पदन्त आदि गणोंके अधिपति-पदपर भी नियुक्त किया है।'

अब आगे विनायकसे गृहीत जनोंके लक्षण और उसकी शान्तिके विधानका वर्णन किया जाता है—

जो विनायकके चंगुलमें फँस जाता है, वह स्वप्नमें अगाध जलमें डूबता-उतराता है, गेरुए वस्त्रधारी

मुण्डित सिरवाले पुरुषोंका दर्शन करता है, मांसभक्षी पक्षियोंकी सवारी करता है, चण्डालों, गधों और ऊँटोंसे घिरकर एक साथ बैठता है, चलते समय वह अपनेको शत्रुओंद्वारा पीछा किया जाता हुआ मानता है, उसका चित्त विक्षिप्त रहता है, उसके सभी कार्य निष्फल होते हैं, अकारण ही वह दीन बना रहता है, राजपुत्र होनेपर भी उसे राज्यकी प्राप्ति नहीं होती। कुमारी कन्या अभीष्ट पतिको, गर्भिणी स्त्री संतानको, ऋतुमती गर्भको, श्रोत्रिय आचार्यत्वको, शिष्य अध्ययनको, बनिया लाभको और किसान खेतीके लाभको नहीं पाता। अतः उसकी शान्तिके निमित्त किसी पुण्य दिनमें विधिपूर्वक उस व्यक्तिको स्नान कराना चाहिये। स्नानकी विधि यों है—

उस मनुष्यके शरीरमें घी मिलाकर पीली सरसोंका उबटन लगावे; सिरपर सर्वौषधि और सर्वगन्धसे लेप करे। तदनन्तर उसे भद्रासनपर बैठाकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन करावे। पुनः एक ही वर्णके चार कलशोंको किसी नदी या सरोवरके जलसे पूर्ण करके मँगावे और उन्हें भद्रासनके चारों दिशाओंमें क्रमशः स्थापित करे। फिर उन कलशोंमें घुड़साल, गजशाला, बिमवट, नदीके संगम और कुण्डकी मिट्टी, गोरोचन, चन्दन आदि गन्ध और गुग्गुल डाले। तत्पश्चात् आचार्य उन्हीं कलशोंके जलसे अभिषेक करे। अभिषेकके मन्त्र ये हैं—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु सर्वदा॥
(२८१—२८३)

'ऋषियोंने अनेकों शक्तियों तथा बहुतसे प्रवाहोंद्वारा जिस जलको पवित्र बनाया है, उसी जलसे मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। ये पावन करनेवाले जल तुम्हें पवित्र करें। अब राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सप्तर्षियोंने तुम्हें कल्याण प्रदान किया। ये जल तुम्हारे बाल, सीमन्त, मूर्धा, ललाट, दोनों कानों और दोनों नेत्रोंमें जो दौर्भाग्य स्थित है, उसका नाश करें।'

इस प्रकार स्नान कर लेनेके उपरान्त बायें हाथसे सिरपर कुशा रखकर दाहिने हाथसे गूलरके स्रुवासे सरसोंके तेलका अग्निमें हवन करे। हवनका मन्त्र यों है—

मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः॥
(२८५)

'मित, सम्मित, शाल, कटंकट, कूष्माण्ड और राजपुत्र—इन नामोंके अन्तमें (चतुर्थी विभक्ति और) '**स्वाहा**' जोड़कर (जैसे—**मिताय स्वाहा**) हवन करना चाहिये।'

तत्पश्चात् चौराहेपर जाकर, वहाँ सूप रखकर उसपर चारों ओर कुशा बिखेर दे। फिर उसपर चावल, तिलकी पीठीसहित भात, अनेकों रंगोंके पुष्प, चन्दन आदि सुगन्ध, मूली, पूरी, पूआ, छोटे-छोटे पूओंकी गुँथी हुई माला, दही मिला हुआ अन्न, खीर, गुड़मिश्रित चावलका चूर्ण और लड्डूकी बलि दे। तदनन्तर पृथ्वीपर सिर रखकर विनायककी माता अम्बिकाका उपस्थान करना चाहिये। उपस्थानका मन्त्र यों है—

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे॥

'भगवति ! आप मुझे रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र और धन प्रदान करें तथा मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करें।' इस प्रकार उन्हें अर्घ्य देकर दूब, सरसों और पुष्पोंसे भरी हुई अंजलि प्रदान करनी चाहिये।

तत्पश्चात् स्वच्छ वस्त्र, उज्ज्वल पुष्पोंकी माला और मलयागिरि चन्दन धारण करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और आचार्यको दक्षिणामें दो वस्त्र प्रदान करे। इस प्रकार विधिपूर्वक विनायककी पूजा करनेसे कर्मोंके फल तथा सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो महागणपतिकी सदा पूजा करके उनको चन्दन लगाता है, उसे सभी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं।

~~~o~~~
~~~

श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्रीगणेश

(लेखक—प्राचार्य श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए० (द्वय) स्वर्णपदकप्राप्त, डिप्० एड्०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्रीगणेशजीका स्थान बहुत उच्च एवं विशिष्ट है। परमपदमें श्रीवैकुण्ठपति भगवान् माया-मण्डलसे परे अखिल हेयप्रत्यनीक परब्रह्म सगुण साकाररूपमें सदैव वर्तमान रहते हैं, जहाँ नित्यसूरि सदा उनका दर्शन करते रहते हैं।

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।'

(ऋग्वेद १ । २२ । २०)

इन्हीं नित्यसूरियोंमें अग्रगण्य स्थान श्रीअनन्त (शेषजी) तथा श्रीविष्वक्सेनजीका है। भगवान् विष्णु शेष-पर्यंकपर विराजमान हैं और विष्वक्सेन उनके सेनानायक हैं। यह माया-मण्डल या लीला-विभूति, जहाँ भू-देवी या त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका राज्य है, नित्य-विभूति या त्रिपाद्विभूतिका प्रतिबिम्बमात्र है। केवल लीला-विभूति सत्त्व-रज-तमके कारण परिणामशीला है और परिणामवादके कारण सदैव बदलती रहती है, किंतु परमपदमें शुद्ध-सत्त्वके कारण वहाँकी विभूति शाश्वत और चिरन्तन है। वहाँ मुक्तात्माओंका शरीर तथा सभी भोग्यपदार्थ शुद्ध सत्त्वके बने हैं और वहाँ परिणामशीला प्रकृतिका अस्तित्व नहीं है। अतः वहाँ अक्षय यौवन, अनन्त सौन्दर्य और अचिन्त्य माधुर्य है। लीला-विभूतिमें हम जो सौन्दर्य और माधुर्यकी झलक देखते हैं, वह परमपदके दिव्य सौन्दर्य और माधुर्यका प्रतिबिम्बमात्र है। पर चाहे लीला-विभूति हो या नित्य-विभूति, परमात्मा सर्वत्र हैं। परमपदमें मायामण्डलसे परे परब्रह्म श्रीमन्नारायण भगवान् हैं और लीला-विभूतिमें भगवान्का व्यूहरूप विराजमान है। व्यूहरूपके अन्तर्गत षड्गुणसम्पन्न शेषशायी श्रीवासुदेवभगवान् हैं। पर लीला-विभूतिमें परिणामशीला प्रकृतिके कारण जन्म-मरणका चक्र चलता रहता है; अतः सृष्टि-संचालनके लिये भगवान्को दो-दो गुणोंसे सम्पन्न तीन रूप धारण करने पड़ते हैं, जिन्हें पांचरात्रकी भाषामें संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा पौराणिक भाषामें ब्रह्मा-विष्णु-महेश कहा गया है। ये सृष्टि-संचालन करते हुए उत्पत्ति-पालन-संहारका कार्य सँभालते रहते हैं। जब-जब अन्यायियों एवं अत्याचारियोंके उपद्रवसे सत्त्वपर रज और तमकी यवनिका आ जाती है, मानवतामें पशुता घुस जाती है, मानवता उलट जाती है, धर्मका पतन और पापका उत्कर्ष होने लगता है, तब-तब शेषशायी वासुदेवभगवान्का अवतार होता है। भगवान् शरीर धारणकर मानवताका संरक्षण और पथ-प्रदर्शन करने लगते हैं।

परमपदमें जो परब्रह्म श्रीमन्नारायण हैं, व्यूहरूपमें वे ही श्रीवासुदेवभगवान् हैं; परमपदमें जो नित्यसूरि अनन्त हैं, लीला-विभूतिमें वे ही श्रीशंकरजी हैं और परमपदमें जो सेनानायक श्रीविष्वक्सेनजी हैं, वे ही लीला-विभूतिमें विघ्नोंको दूर करनेवाले तथा सिद्धि और सफलताको देनेवाले गणोंके अधिनायक श्रीगणेशजी हैं। परमपदके सेनानायक ही लीला-विभूतिमें गणनायकके नामसे प्रसिद्ध हैं। विद्या और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हैं तथा विद्या और ज्ञानके अधिष्ठाता देवता श्रीगणेशजी हैं। यही कारण है कि प्रत्येक हिंदूके घरमें धनकी अधिष्ठात्री देवी 'लक्ष्मी' तथा विद्या एवं ज्ञानके अधिष्ठाता देव 'श्रीगणेश' की पूजा होती है।

विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें 'अर्थ-पंचक' ज्ञानका बहुत बड़ा महत्त्व है। अर्थ-पंचक-ज्ञानके अन्तर्गत पाँच विषयोंका समावेश है—

१-स्वरूप (जीवात्माका स्वरूप),

२-परस्वरूप (परमात्माका स्वरूप),

३-पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष),

४-उपाय [जीवात्माको परमात्मासे मिलनेका साधन क्या है अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, प्रपत्तियोग (शरणागति) तथा आचार्याभियान],

५-विरोधी (अर्थात् जीवात्माको परमात्मासे मिलनेके मार्गमें विघ्न) क्या हैं और वे कैसे दूर होंगे?

यहींपर श्रीगणेशजी हमारी सहायता करते हैं। जबतक साधन-पथके विघ्न दूर नहीं होंगे, तबतक हम परमात्माको प्राप्त नहीं कर सकते और ये विघ्न श्रीगणेशजीकी कृपासे ही दूर हो सकते हैं।

विशिष्टाद्वैत-वेदान्तके प्रवर्तक तथा श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके आदि आचार्य सेनाधीश श्रीविष्वक्सेन स्वामी हैं, जिनका लीला-विभूतिमें नाम श्रीगणेशजी है। श्रीवैष्णवोंकी

गुरुपरम्परा इस बातको स्पष्ट करती है। विशिष्टाद्वैत-वेदान्त एवं शरणागति-मार्गके प्रवर्तक श्रीमन्नारायणभगवान्से लेकर श्रीरामानुजस्वामीतक दस आचार्य हुए हैं—

१-श्रीमन्नारायणभगवान्, २-श्रीलक्ष्मीजी, ३-सेनाधीश श्रीविष्वक्सेनस्वामी, ४-श्रीशठकोपस्वामी, ५-श्रीनाथमुनिस्वामी, ६-श्रीपुण्डरीकाक्षस्वामी, ७-श्रीराममिश्रस्वामी, ८-श्रीयामुनाचार्यस्वामी, ९-श्रीमहापूर्णस्वामी और १०-श्रीरामानुजस्वामी।

इनमेंसे भगवान् और श्रीलक्ष्मीजी प्राप्य और आराध्य हैं। इनके अतिरिक्त आचार्योंमें श्रीविष्वक्सेनस्वामीका नाम सर्वप्रथम आता है। श्रीविष्वक्सेनस्वामीने ही शठकोपस्वामीको शरणागति-मन्त्रका उपदेश दिया। इसी शरणागति-मन्त्र तथा मन्त्रार्थके आधारपर श्रीशठकोपस्वामीने द्राविड़ी (तमिळ) भाषामें 'तिरुवायमौलि' नामक ग्रन्थकी रचना की, जिसका संस्कृतमें अनुवाद एक हजार श्लोकोंमें 'सहस्रगीति'के नामसे हुआ और जिसकी टीका 'भगवद्विषय'के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीसम्प्रदायमें 'तिरुवायमौलि' या 'सहस्रगीति'का स्थान बहुत श्रेष्ठ है। श्रीवैष्णवोंका मुख्य साधन प्रपत्ति (शरणागति) एवं आत्मसमर्पण इसी 'सहस्रगीति'पर अवलम्बित है। श्रीवैष्णवोंमें भक्ति और प्रपत्तिके अतिरिक्त एक मुख्य साधन आचार्याभियान है। इसी आचार्यनिष्ठाके कारण श्रीविष्वक्सेनस्वामी अथवा श्रीगणेशजी प्रथम पूज्य माने गये हैं।

वैष्णवोंके चार सम्प्रदाय हैं—

१-श्रीसम्प्रदाय—यह विशिष्टाद्वैत-वेदान्तको मानता है। इसके प्रवर्तक श्रीरामानुजाचार्य हैं।

२-मध्व-सम्प्रदाय—यह द्वैत-वेदान्तको मानता है, इसके प्रवर्तक श्रीमध्वाचार्य हैं।

३-श्रीविष्णुस्वामि-सम्प्रदाय—यह शुद्धाद्वैत-वेदान्तको मानता है, इसके प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य हैं।

४-श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय—यह भेदाभेद या द्वैताद्वैत-वेदान्तको मानता है। इसके प्रवर्तक श्रीनिम्बार्कस्वामी हैं।

चारों वैष्णव-सम्प्रदायोंने और इनसे उत्पन्न सब शाखाओंने मुक्तकण्ठसे विघ्न-बाधाओंको दूर करनेके लिये श्रीगणेशजीकी आराधना स्वीकार की है। सभी वैष्णव-सम्प्रदायोंने संसारकी सत्यता और भक्तिकी उपादेयता स्वीकार की है। संसार सत्य है और संसारमें सिद्धि तथा सफलता प्राप्त करनेके निमित्त श्रीगणेशजीकी आराधना भी आवश्यक है। स्वामी शंकराचार्यजीने परमार्थ-पक्षमें ब्रह्मको निर्गुण और संसारको मिथ्या माना है तथा ज्ञानको ही ब्रह्मप्राप्तिका साधन बतलाया है; पर व्यवहार-पक्षमें उन्होंने भी संसारकी स्थिति तथा भक्तिकी उपयोगिता स्वीकार की है। इन्होंने ही व्यावहारिक जगत्में पंचदेवोपासना प्रचलित की, जिसमें भगवान् गणपतिका स्थान सर्वोपरि है—

'ॐ गणपत्यादिपञ्चदेवता इहागच्छत इह तिष्ठत।'

तान्त्रिक उपासनामें तो गणेशजीका महत्त्व है ही, वैदिक आराधनामें भी गणेशजीका स्थान बहुत ऊँचा है।

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे।'

(शुक्लयजु० २३ । १९)

विशिष्टाद्वैत-वेदान्तने ब्रह्मको सगुण और संसारको सत्य माना है। ब्रह्म यदि सत्य है तो ब्रह्मसे निकला हुआ संसार भी सत्य है। सत्यसे मिथ्या पदार्थकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। ब्रह्म ही जगत्का उपादान कारण और निमित्त कारण है। ब्रह्मके अतिरिक्त और कोई पदार्थ ही नहीं है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन।'

शंकरने इसी ब्रह्मको निर्गुण माना है, पर रामानुजने इसे चिदचिद्विशिष्ट माना है, अतः सगुण है। चित् (चैतन्य जीव) तथा अचित् (अचेतन या जड प्रकृति)-से बना संसार ब्रह्मका शरीर है और ईश्वर इस संसारकी आत्मा। जिससे जगत्के जन्म आदि (सृष्टि, स्थिति और संहार) होते हैं, (वह ब्रह्म है)—

'जन्माद्यस्य यतः।' (ब्रह्मसूत्र १ । १ । ३)

जिससे ये भूत (प्राणी) उत्पन्न होते, उत्पन्न होकर जिनसे जीवन धारण करते और मृत्युको प्राप्त हो जिनमें ही लीन होते हैं, उसे जाननेकी इच्छा करो। वह ब्रह्म है।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म।'

(तैत्तिरीय-उप०, भृगुवल्ली १ । १)

यह संसार ब्रह्मकी विभूति है और ब्रह्मसे ओत-प्रोत है। सर्वत्र ब्रह्मका प्रकाश है और सारा विश्व ब्रह्मसे ओत-प्रोत है—

'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'

(मानस १ । ७ । १)

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।'

(ईशावास्योपनिषद्)

यह सारा विश्व ब्रह्ममय है और संसारके प्रत्येक नर-नारी भगवत्स्वरूप हैं। प्रत्येक नर-नारीका शरीर परमात्माका मन्दिर है। परमात्मा अनन्त अपरिमित प्रकाशके समूह हैं और जीवात्मा कर्म-संस्कारमें उलझा हुआ तथा अविद्याकी राखसे ढका हुआ प्रकाशकण (चैतन्यकी चिनगारी) है। इस माया-मण्डलमें परिणामवादके कारण जो सृष्टि-चक्र चल रहा है, उसके सफल संचालनके हेतु लीला-विभूतिमें परमात्माको अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं। जब जैसी आवश्यकता पड़ती है, परमात्मा वैसा ही रूप धारण कर लेते हैं।

एक ही ईश्वर भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। वे ही सृष्टि करते हैं, वे ही संसारका पालन और संहार भी करते हैं। वे ही जल देते हैं, वे ही रोशनी देते हैं और वे ही विघ्न-बाधाओंका शमन करते हैं। वे ही ब्रह्मा हैं, वे ही विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं, वे ही इन्द्र हैं, वे ही वरुण, कुबेर, मित्र (सूर्य) तथा गणपति हैं। काली एवं दुर्गा उन्हींकी शक्तियाँ हैं। परमात्माकी हम किसी रूपमें आराधना करें, उन्हींको प्राप्त होंगे।

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

'जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल अन्ततः समुद्रमें चला जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके प्रति किया गया नमस्कार भगवान् केशवको ही प्राप्त होता है।'

गणेशजी वस्तुतः परमात्माके अवतार हैं। विघ्नोंको दूर करनेके लिये तथा मनुष्यको सिद्धि और सफलता प्रदान करनेके निमित्त भगवान्ने ही गणेशका रूप धारण किया है। भारतके चिरस्मरणीय वैष्णव-कवि तुलसीदासजीने श्रीगणेशकी वन्दना की है—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

(श्रीरामचरितमानस १ । १ सो०)

संस्कृत वाङ्मयमें पांचरात्रका साहित्य बहुत विशाल है। इसमें १०८ संहिताएँ हैं। उन्हींमेंसे एक 'श्रीविष्वक्सेन-संहिता' है, जिसमें श्रीगणेशभगवान्की दक्षिणपंथी आराधनाका विस्तृत वर्णन है। भगवान् श्रीगणेशजीकी कृपासे ही मुमुक्षुओंके मोक्ष-पथसे विघ्न-बाधाओंका शमन होता है। यही 'श्रीविष्वक्सेन-संहिता' हमें बतलाती है कि भगवान् विष्वक्सेन ही लीला-विभूतिमें गणेशजीके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। श्रीविष्वक्सेन-संहितामें भगवान् विष्वक्सेन हमें बतलाते हैं कि 'परमात्मा अन्तर्यामीरूपसे सर्वत्र वर्तमान हैं; अतः ऐसा कोई भी स्थल नहीं, जहाँ हमलोग छिपकर पाप कर सकें। भगवान् तो साक्षीरूपसे सर्वत्र हमारे कर्मोंको देख रहे हैं। अन्तर्यामी भगवान् प्रत्येक प्राणीके अन्तःकरणमें वर्तमान हैं, अतः प्रत्येक नर-नारीको अपनी अन्तरात्मा—अपना अन्तःकरण पवित्र और निर्मल रखना चाहिये।' श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्रीगणेशजीका स्थान श्रीविष्वक्सेनस्वामीके रूपमें बहुत ऊँचा है। वे सेनानायक और गणनायक तो हैं ही, साथ-ही-साथ देवताओंमें और श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके आचार्योंमें भी प्रथम पूज्य हैं।

~~~○~~~

मध्व-सम्प्रदायमें श्रीगणेश

(लेखक—श्रीभाऊ आचार्यजी टोणपे)

मध्व-सम्प्रदाय निर्गुण उपासनाका समर्थक नहीं, अपितु सगुण उपासनाको मानता है। इस सम्प्रदायमें प्रत्येक देवताके सगुण रूपका ध्यान एवं पूजन श्रेष्ठ माना गया है। मध्व-सम्प्रदाय किसी भी देवताकी प्रत्यक्ष पूजा एवं ध्यानको मान्यता नहीं देता, बल्कि सर्वलोकान्तर्यामी विष्णुकी पूजा एवं ध्यानको प्रश्रय देता है। जैसा कि मध्वाचार्यकृत '**तत्त्वसंख्यानम्**'का प्रारम्भिक श्लोक है—

स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च द्विविधं तत्त्वमिष्यते।
स्वतन्त्रो भगवान् विष्णुर्भावाभावौ द्विधेतरत्॥

अर्थात् तत्त्व दो प्रकारके हैं—स्वतन्त्र एवं परतन्त्र। भगवान् विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व हैं। अस्वतन्त्र अथवा
~~~

परतन्त्र तत्त्व दो प्रकारके होते हैं—एक तो भावस्वरूप और दूसरा अभावस्वरूप।

श्रीमन्मध्वाचार्यकृत 'तन्त्रसार'में एक उदाहरण मिलता है—

तत्र तत्र स्थितो विष्णुस्तत्तच्छक्तीः प्रबोधयन्।
एक एव महाशक्तिः कुरुते सर्वमञ्जसा॥

''उन-उन देवताओंमें स्थित रहते हुए अथवा उन-उनको अपने 'अन्तर्गत' (अधीन) रखते हुए एवं उनकी शक्तियोंको जाग्रत् करते हुए एक ही महाशक्ति भगवान् विष्णु सभी कार्य शीघ्र सम्पन्न करते हैं।' इस दृष्टिसे प्रत्येक देवता अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखता, अपितु विष्णुके ही अधीन रहते हुए वह कार्य करता है। यथा विघ्नेश्वर गणेशको ही लें। भगवान् विष्णु जब विघ्नेश्वरको अपने अधीन रखते हैं, तब वे उनकी विघ्नहारिणी शक्तिको प्रबोधित करते हैं। इस प्रकार गणेश भी सर्वलोकान्तर्यामी विष्णुके अधीनस्थ देवता हैं। उनके अनुसार श्रीगणेशका भगवान् विष्णुके अधीनस्थ देवताओंमें अठारहवाँ स्थान है। जैसी कि उक्ति है—

'विष्वक्सेनोऽश्विनी तौ गणपतिधनपावुक्तशेषाः शतस्था—'

अन्य सम्प्रदायोंमें '**श्रीगणेशाय नमः**' कहते हुए गणेश-पूजन किया जाता है, किंतु मध्व-सम्प्रदायमें '**ॐ श्रीगणेशान्तर्गतविश्वम्भरमूर्तये नमः**'—यह नमस्कार-मन्त्र पूजनके समय प्रयुक्त होता है। अर्थकी दृष्टिसे विष्णुभगवान्‌के अधीन श्रीगणेश कार्य करते समय अपनी विघ्नहारिणी शक्तिको जाग्रत् करते हुए विश्वम्भर अर्थात् समस्त विश्वका पालन करनेवाले होते हैं।

मध्व-सम्प्रदायमें श्रीगणेशको आकाशका अभिमानी देवता माना गया है। 'श्रीमन्मध्वाचार्य-सिद्धान्त-सार-संग्रह' पुस्तकके अन्तर्गत 'पंचभूत-प्रकरण'में यह उल्लिखित है—

'तत्र शब्दादाकाशोत्पत्तिः। तदभिमानी विनायकः।'

तात्पर्य यह कि शब्दसे आकाशकी उत्पत्ति होती है। उसके अभिमानी देव विनायक अर्थात् गणेश हैं। यह नाममन्त्र भी इसी सिद्धान्तको प्रतिपादित करता है—

'ॐ आकाशात्मने श्रीमहागणपतये नमः।'

मध्व-सम्प्रदायमें आकाशके दो रूप माने गये हैं। एक व्यक्त आकाश और दूसरा अव्यक्त आकाश। व्यक्त आकाशसे दिक् और कालके ज्ञानका बोध होता है तथा अव्यक्त आकाश अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक भगवान् विष्णुके प्रकाशपुंजमय शरीरमें ही व्याप्त है। उनकी 'नाभि'से शब्दकी उत्पत्ति होती है; अतः शब्द या वाणीके देवता गणेश हैं। इसलिये गणेशको 'नाभ्याकाशाभिमानी गणेश' कहा गया है—

'नाभ्याकाशाभिमानी गणेशः।'

'गणेशपुराण'के 'गणेशसहस्रनामस्तोत्र'में गणेशजीको 'क्षिप्रप्रसादन' नामसे सम्बोधित किया गया है—

'महागणपतिर्बुद्धिप्रियः क्षिप्रप्रसादनः।'

इसका अर्थ है—शीघ्र कृपा करनेवाला या शीघ्र प्रसन्न होनेवाला; मध्व-मतमें भी गणेशको 'क्षिप्रप्रसाद' कहा गया है। इस सम्प्रदायमें क्षिप्रप्रसादन गणपतिका अष्टाक्षर-मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ क्षिप्रप्रसादाय नमः ॐ'

उक्त मन्त्र मध्वाचार्यप्रणीत 'तन्त्रसार'में उल्लिखित है। इस मन्त्रके द्रष्टा महर्षि कौशिक हैं एवं इसका छन्द गायत्री है। मध्व-मतमें क्षिप्रप्रसाद-गणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

रक्ताम्बरो रक्ततनू रक्तमाल्यानुलेपनः।
महोदरो गजमुखः पाशदन्ताङ्कुशाभयान्॥
बिभ्रद् ध्येयो विघ्नहरः कामदस्त्वरया ह्ययम्।

अर्थात् 'रक्त वस्त्र पहननेवाले, रक्त वर्ण, रक्त माला एवं रक्त चन्दनसे सुशोभित, विशाल उदरशाली, भुजाओंमें पाश, दन्त, अंकुश एवं अभय-मुद्राको धारण करनेवाले, विघ्नहर्ता, शीघ्र कामनापूर्ति करनेवाले गजाननका ध्यान करना चाहिये।'

गणेशजीका द्वितीय ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है—

गजाननं चतुर्बाहुं लम्बकुक्षिं सितप्रभम्।
.... लम्बयज्ञोपवीतिनम्॥
वामहस्तेन मुख्येन संगृहीतमहाफलम्।
इतरेण तु हस्तेन भग्नदन्तपरिग्रहम्॥
अपराभ्यां च हस्ताभ्यां पाशाङ्कुशवराभयान्।
आरब्धकर्मनिर्विघ्नफलं दुग्धे यथेप्सितम्॥

अर्थात् 'गजानन गणेश चतुर्भुज, लम्बोदर, शुभ्रकान्तिवाले,.... लंबा यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, मुख्य वाम करसे महाफल लेनेवाले, दक्षिण करसे खण्डित दन्त धारण करनेवाले एवं अन्य दो करोंसे पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्रा धारण करनेवाले,

प्रारम्भ किये हुए कार्यको निर्विघ्नरूपसे समाप्त करनेवाले और मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं।'

माध्व कवियोंकी दृष्टिमें गणेश

मध्व-सम्प्रदायमें कुछ ऐसे महान् कवि हुए हैं, जिन्होंने अपने जीवन-कालमें मध्व-साहित्यको अपने भक्तिगीतोंद्वारा पोषित किया है और समृद्ध बनाया है। इन कवियोंने, जो मध्व-सम्प्रदायके अनुयायी हैं, गजानन गणेशकी स्तुति बड़े ही सुन्दर ढंगसे की है। मध्व-सम्प्रदायकी दास-परम्परामें पुरन्दरदास, जगन्नाथदास, विट्ठलदास आदि भक्त-श्रेष्ठ कन्नडभाषी कवि हैं। इन कवियोंने अपनी भक्ति और विद्वत्तासे कन्नड़-साहित्य-जगत्को आलोकित किया है। पुरन्दरदासजीका समय १४८४ से १५६४ ई० तक माना गया है। ये दक्षिण भारतके प्रसिद्ध कवि थे। जगन्नाथदास और विट्ठलदास भी मध्व-सम्प्रदायके श्रेष्ठ कवि हैं। दासश्रेष्ठ पुरन्दरदास गजानन श्रीगणेशकी वन्दना करते हुए कहते हैं—

गजवदना बेडुवे। गौरीतनया,
त्रिजगवंदिताने। सुरनरपोरेदने। पाशांकुशधर परमपवित्र॥
मूषकवाहना। मुनिजनप्रेमा,
मोददिंदलि निम्म पादवतोरो। साधुवंदितने।
आदरदिंदलि। सरसिजनाभ श्रीपुरंदरविट्ठलन,
निरुत नेनेवंते भरदि दयमाडो॥

अर्थात् 'गणेश! मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ। हे गौरीपुत्र! तीनों लोकोंमें वन्दित होनेवाले, देवोंके प्रिय, पाश और अंकुशधारी, परम पवित्र देव, मूषक (चूहा)-वाहनवाले, मुनियोंके प्रिय गणेश तुम जो साधुजनोंद्वारा वन्दित हो मेरा उद्धार करो। मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं नाभिमें कमल धारण करनेवाले विष्णुका निरन्तर ध्यान कर सकूँ। हे गणेश! मेरे ऊपर दया करो।'

श्रीविट्ठलदासजी गणपतिभगवान्की स्तुति करते हुए कहते हैं—

वंदिसुवेनु श्रीगणराया, वरगणराया।
सुरमुनिकिंनरसंस्तुतिचर्या, हरगौरीसुतपंकजसूर्या।
आनंदवकोट्टु नीसलहो विघ्नेशा॥

अर्थात् 'हे गणराज गणपति! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम सभी देवताओंमें ऊँचे हो। देवता, ऋषि-मुनि-नर आदिकी संस्तुतिके तुम विषय हो। ये लोग तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। शंकर और पार्वतीके पुत्र! तुम कमलके समान कोमल एवं सूर्यके समान प्रकाशमान हो। हे विघ्नहर्त्ता! मुझे आनन्द प्रदान कर मेरा उद्धार करो।'

इस प्रकार हमें मध्व-सम्प्रदायके गणेशभक्त कवियोंके भक्ति-गीतोंका अवलोकन प्राप्त होता है। मध्व-सम्प्रदाय श्रीगणेशको विष्णुके अधीन मानता है और विष्णुके माध्यमसे गणेशकी पूजा या ध्यानको प्राथमिकता देता है।

~~○~~

श्रीरामोपासनामें भगवान् गणेश

(लेखक—पं० श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि')

श्रीरामोपासक भगवान् गणेशके प्रति अत्यन्त आदरभाव रखते हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन श्रीराम-साहित्यका अन्वेषण करनेसे भगवान् गणेशके प्रति श्रीरामभक्तोंकी भावनाका स्पष्टीकरण हो जाता है। यों तो श्रीरामोपासक ***'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'*** (मानस १।७।१) का आदर्श अपने जीवनमें चरितार्थ करनेका पूर्णतः प्रयत्न करते ही रहते हैं, इसलिये सनातनधर्मके पंचदेवोंके प्रति उनका विशेष सम्मान होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके अनेकानेक मन्दिरोंमें श्रीहनुमान्जी तथा श्रीगणेशजीके विग्रहोंकी स्थापना दृष्टिगोचर होती है।

परब्रह्म श्रीरामके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं। अतएव शुक्लयजुर्वेद २३। १ में **'गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे**……'—इस मन्त्रके द्वारा परब्रह्मको 'गणपति'-नामसे पुकारा गया है। शास्त्रों एवं संतोंने नाम तथा नाम-जापकमें एकरूपता मानी है। भगवान् श्रीगणेशजी श्रीराम-नामकी अनन्य निष्ठाके कारण ही प्रथम पूज्य माने गये हैं:—

'महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥'

(मानस १।१८।२)

जिस प्रकार मन्त्र तथा मन्त्र-जापकमें एकरूपता मानी गयी है, उसी प्रकार भगवान् एवं

भक्तमें भी अभेदान्वय सम्बन्ध स्वीकृत है—

भक्ति-भक्त-भगवंत-गुरु चतुर-नाम वपु एक।
इनके पद-वन्दन किए नासत विघ्न अनेक॥

(भक्तमाल—१)

पुनः—

संत-भगवंत अंतर-निरंतर नहिं……

(विनयपत्रिका)

भगवान् गणेशको यदि श्रीराम-भक्त-शिरोमणि मानते हैं तो भी '**राम ते अधिक राम कर दासा**' तथा '**आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्। तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥**' (पद्मपुराण) इस दृष्टिकोणसे श्रीरामोपासकोंद्वारा भगवान् गणेशका पूजनाराधन होना शास्त्र एवं सम्प्रदायके अनुकूल है। इसे अधिक स्पष्ट करनेके लिये श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके सर्वमान्य शास्त्रीय ग्रन्थों एवं श्रीरामभक्त-संतोंके वचनोंके कतिपय उद्धरण कल्याणोपासकोंके सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं:—

विघ्नं दुर्गां क्षेत्रपालं च वाणीं बीजादिकांश्चाग्निदेशादिकांश्च।
पीठस्याङ्घ्रिष्वेषु धर्मादिकांश्च नञ्पूर्वांस्तांस्तस्य दिक्ष्वर्चयेच्च॥

(श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् १०। ३)

'विघ्न गणेश, दुर्गा, क्षेत्रपाल और सरस्वती, इनके आदिमें इन्हींके 'बीज' लगाकर '**ॐ विं विघ्नाय नमः**' '**ॐ दुं दुर्गायै नमः**' इत्यादि रूपसे—इन चारोंका पीठके ऊपर यथास्थान पूजन करे। पीठके पायोंमें धर्म आदिका आग्नेय आदि कोणोंमें तथा अधर्म आदिका इन पायोंके पार्श्ववर्ती पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे।'

श्रीराम-पूजन-पीठमें विघ्नेश भगवान् गणपतिका ही सर्वप्रथम नाम लिया गया है। इसी प्रकार—

गणाधिप नमस्तुभ्यमिहागच्छ गजानन।
पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं गृह्यतामिदम्॥

(श्रीरामार्चापद्धति १। ३)

इस मन्त्रके द्वारा श्रीरामार्चा-महायज्ञमें भगवान् गणेशके पूजनका विधान है।

'गणेशादिचतुर्णां तु रामाङ्गत्वं प्रतीयते।
सर्वे वेदाः स्तुवन्तीति सामान्यश्रुतिचोदनात्॥

(श्रीरामार्चनचन्द्रिका, पटल—१)

'सब वेद जिनकी स्तुति करते हैं। इस सामान्य श्रुतिके विधानसे गणेश आदि चार देवता श्रीरामके अंग प्रतीत होते हैं।'

'ॐ नमो रामभद्राय गं गणेशाय ते नमः॥'

(श्रीरामार्चनचन्द्रिका, पटल—२)

श्रीअगस्त्यसंहितान्तर्गत—'रामार्चनचन्द्रिका'के इस मन्त्रमें भी श्रीरामभद्रजूके साथ ही श्रीगणेशजीको नमस्कार किया गया है।

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥

(श्रीसीतायज्ञ-पद्धति)

नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः॥

(श्रीरामयज्ञ-पद्धति)

—इन मन्त्रोंद्वारा श्रीसीताराम-युगलप्रभुके महायज्ञार्चनके अवसरपर भी श्रीगणेशजीकी आदरपूर्वक पूजा तथा प्रार्थना की जाती है।

गणेशं पार्वतीं शम्भुं सूर्यं विष्णुं सनातनम्।
मारुतिं नारदं नत्वा वाल्मीकिं कविपुंगवम्॥

(वाल्मीकीय काव्योपनिषद्—१)

यहाँपर भी सभी श्रीराम-प्रिय-परिकरोंके साथ श्रीगणेशजीका सर्वप्रथम सादर स्मरण किया गया है।

नित्यं नौमि गुरुं गणेश्वरमजं देवीं तथा भारतीं
शेषं चैव तथा शिवं कपिवरं व्यासं च कुम्भोद्भवम्।
वाल्मीकिं च सुरर्षिमेव सशुकं तीर्थं सरय्वादिकं
साकेतादिपुराणि रामचरणञ्चान्तःपुरानन्ददम्॥

(श्रीमद्रामपवनात्मजचतुर्दशरहस्य—८)

इस वन्दनामें भी सर्वप्रथम श्रीगणेशजीकी ही गणना की गयी है।

श्रीसीता रघुनायकश्च गिरिजा शम्भुर्गणेशस्तथा
नन्दी षण्मुखलक्ष्मणौ च भरतः कंजोद्भवः शत्रुहा।
सर्वे ते मुनयः सुराश्च दितिजास्तीर्थानि नद्यो नदा
दिक्पालाः शशिभास्करौ च हनुमान् कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥

(आनन्दरामायण-विवाहकाण्ड—४। १)

श्रीदाशरथि रामभद्रजूके साथ राजकुमारोंके विवाह-प्रसंगमें आशीर्वादात्मक मंगलाचरण करते हुए *'मंगलभवन अमंगल हारी'* श्रीसीताराम एवं श्रीगौरीशंकरके साथ ही 'श्रीगणेशजी भी आपका मंगल करें', ऐसी शुभ कामना की गयी है।

अर्वाचीन श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव-संत-साहित्यकारोंमें कवि-कुल-सम्राट्, श्रीराम-भक्त-शिरोमणि श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजसे लेकर अद्यावधिपर्यन्त श्रीरामोपासक संत-साहित्यकारोंके श्रीगणेश-सम्बन्धी वचनोंका संकलन यदि किया जाय तो लेखका कलेवर अतिबृहत् हो जायगा। अतः उसमेंसे यत्किंचित् ही उदाहरण पाठकोंके आत्मतोषार्थ दिये जा रहे हैं—

जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभगुन सदन॥

(रामचरितमानस १। १)

'गाइये गनपति जगबंदन।' (विनय-पत्रिका १)

इतना ही नहीं, उन्होंने लोक-मर्यादा-संरक्षणार्थ अपने परमाराध्य भगवान् श्रीराम तथा परमाराध्या जगज्जननी श्रीजनकनन्दिनीजू एवं श्रीरामचरितमानसके अन्यान्य विशिष्ट पात्रोंद्वारा भी समयानुसार श्रीगणेशजीका स्मरण-पूजन-प्रार्थनादि करवाया है, जो श्रीतुलसी-साहित्यके मर्मज्ञोंको सुविदित ही है।

श्रीसीताराम-रहस्योपासक, रसिकशिरोमणि तथा श्रीरामचरितमानसके सम्माननीय सर्वप्रथम टीकाकार श्रीस्वामी करुणासिन्धुजी महाराजने अपने रहस्य-ग्रन्थकी वन्दनामें भी श्रीगणेशजीका अभिवन्दन किया है—

श्रीगनेस, श्रीसंभु, ब्रह्मश्री, सरस्वतीश्री।
श्रीसुरसरि, श्रीगौरि, चंद्र श्रीसूर्य, यतीश्री॥

(रसमालिका—१)

अनन्य श्रीरामोपासक संत श्रीरघुनाथदासजी 'रामसनेही' ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'विश्रामसागर'में श्रीगणेशजीके प्रति क्या ही सुन्दर भाव व्यक्त किया है—

एकरदन करिबदन सदन सुख के, दुखनासक।
ईसतनय गन ईस, सीस रजनीस-प्रकासक॥
ऋद्धि-सिद्धि-बुधि देत, लेत हरि कुमति न जागत।
जो सुमिरै मन लाय, विघ्न ता जन के भागत॥
जय-जय गनेश गिरिजासुवन, भुवन बिदित जस अघहरन।
'रघुनाथदास' बंदन करत बार-बार गनपति-चरन॥

श्रीसीतारामजीकी अन्तरंग निष्ठामें रस-मग्न संत, जिन्होंने अपने भौतिक पुरुष-शरीरका भी बादशाही परीक्षाके समय अपूर्वभावनामय दिव्य सखीस्वरूपमें दर्शन कराया था, ऐसे विलक्षणभावुक श्रीबालाअलीजीने भी अपनी 'ध्यानमंजरी'में श्रीगणेश-वन्दना करना नहीं छोड़ा—

श्रीरघुबर गुरुचरन तरन भवसागर जल के।
बिघ्नहरन सुख-खानि, दानि बिद्या-बुधि-बल के॥

श्रीयुगल-नाम-लीला-धाम तथा स्वरूपके अनन्योपासक, जिन्होंने चौरासी लक्ष योनियोंसे जीवोंको विमुक्त करनेहेतु चौरासी सद्ग्रन्थोंकी रचना की है तथा शयनावस्थामें भी जिनकी वाणीसे श्रीसीतारामनाम-ध्वनि होती थी, ऐसे परमभावावेशी, रसिकाग्रणी, संतशिरोमणि श्रीस्वामी युगलानन्यशरणजी महाराजने अपने ग्रन्थोंमें श्रीगणेजीके प्रति भाव व्यक्त किये हैं—

श्रीगौरीस-सुवन सरस, सदन सुमति गुन-ऐन।
मंगलकरन सुचरन नित, नमो मथन मद मैन॥

(श्रीसीतारामनामप्रताप-प्रकाश)

श्रीसुषमा-मुद-मोद-निधि, सब बिधि रिधि-सिधि-दानि।
बंदौ बोध बिचित्र बरदायक गुरु-गुनखानि॥

(उज्ज्वल-उत्कण्ठा-विलास)

श्रीमिथिला-रस-रसिक, मधुर-भाव-विभोर संत श्रीप्रधान कविजीने भी अपने ग्रन्थोंके मंगलाचरणमें श्रीगणेशजीकी वन्दना की है—

जय गनपति गिरिजा गिरिजापति, जयति सरस्वतिमाता।
जय गुरुदेव केसरीनंदन, चरन-कमल सुखदाता॥

(रामकलेवा-रहस्य)

जय गनेस गिरिजा महेस जय, जय भारती-भवानी।
जय सियराम भरत रिपुसूदन, लखनलाल सुखदानी॥

(रामहोरी-रहस्य)

संत-भगवन्तमें अनन्य निष्ठा एवं अटूट विश्वास रखनेवाले, जिनके लिये भक्तवत्सल भगवान्ने स्वयं पहरेदारका कार्य किया तथा श्रीसरयू महारानीने अपने विमल जलको ही दिव्य घृत बनाकर संत-सेवार्थ जिन्हें समर्पण किया, ऐसे महात्मा श्रीस्वामी रघुनाथदासजी महाराजने भी श्रीगणेशवन्दना की है—

'श्रीगुरु-प्रताप उर आनि कै, प्रथम पद बंदन करौं—
गननायक विनायक को॥'

(हरिनाम-स्मरणिका)

श्रीसीताराम-लीला-रस-केलि-निरन्तर-निमग्न-रसिक-संत श्रीज्ञानाअलीजी महाराजने भी, जिनके प्रेम-रसभरे पदोंका श्रवण-मनन करते ही रसिकोंका मन

दिव्य भावनामें मग्न हो जाता है, श्रीगणेशजीका सप्रेम स्मरण किया है—

श्रीबानी गौरीसपद, गनपति कविवर सेस।
बालमीक आदिक अमित, तिन सों लहि उपदेस॥

(श्रीसियवरकेलि-पदावली)

समस्त श्रीतुलसी-साहित्यके विलक्षण टीकाकार श्रीबैजनाथजीने भी श्रीगणेशजीका मंगलमय वन्दन किया है—

श्रीसीतापति पद सुमिरि, श्रीगुरुचरन मनाय।
विघ्नहरन गननाथ-पद, मंगल-मोद-निकाय॥

(श्रीसुभावशतक)

श्रीसीताराम-परमतत्त्व-प्रकाशक, स्नेह तथा वैराग्यके सजीव सद्विग्रह, वेद-वेदान्त एवं तन्त्र-विद्याके प्रकाण्ड पण्डित श्रीमन्मैथिली-पद-पद्म-पराग-मानस-मधुप श्रीकाष्ठजिह्व—श्रीदेवस्वामीजीने तो श्रीगणपतिको श्रीराम-मन्त्रका मूर्तिमान् स्वरूप ही माना है—

मंत्रमय गनेस विघ्नहरन सदा गाइये।
प्रथम जाहि गाय-गाय सकल सिद्धि पाइये॥
मंत्र को सरूप सोई गजमुख ठहराइये।
मंत्रभाग चारिभुजा भालचंद्र ध्याइये॥
अंकुस-सी दूब ज्ञानरूप सो बढ़ाइये।
मदहर सिंदूर सीस मोदक फल भाइये॥
भक्तमान एकदंत केवल सुखदाइये।
देव-देव भक्तन के मानस में आइये॥

(वैराग्य-प्रदीप—१)

एवंविध अन्यान्य श्रीरामभक्त कवियोंने भी अपनी भव्य भावनाद्वारा श्रीगणेशजीका स्मरण-कीर्तन किया है—

एकरदनवारे सुमिर, बंदि जुगलपद-कंजु।
गिरिजा सुअन करहु मम पूर्न मनोरथ मञ्जु॥

(रामशिरोमणि)

गनपति-गो-द्विज-सारदा, महि-मुनि-देव-दिनेस।
विधि-ससि-सुरसरि, मातु-पितु-नारद-उमा-महेस॥

(श्रीसीतारामीय प्रथम पुस्तक)

प्रनवौं गनपति चरन हमेसा॥
जिनकी कृपा विघ्न सब नासे—
छूटत कठिन कलेसा—॥
'कंचनकुवँरि' कृपा करि दीजै—
सिय-पिय-प्रेम-परेसा ॥

(कंचनकुसुमांजलि)

सब विघ्नहर गननाथ सारद, गिरिसुता हर ध्याइ कै।
भगवत् सरूप समस्त-साधुन के चरन चित लाइ कै॥
सियरामपद-पंकज-मधुप सब भक्तबृन्द मनाइ कै।
सियराम-प्रेम-प्रवाह बरनौं गुरु-चरन सिर नाइ कै॥

(श्रीसीताराम-प्रेम-प्रवाह)

धूम्रकेतु संकर-सुअन, सिद्धिसदन-गननाथ।
कृपा करिय मंगलकरन, नावौं तव पद माथ॥

(सरयूचालीसा)

राजस्थानके श्रीराम-रसभरित, अमृतमय काव्यप्रणेता श्रीअमृतलालजी माथुरने अपने 'श्रीमद्-राम-रसामृत' काव्यमें श्रीगणेशजीकी क्या ही सुन्दर वन्दना की है—

सुमति-भरन, मंगल-करन, सुमरन हरन-अकाज।
बिजय, सुजस, सुख-संचरन, नमो चरन गनराज॥

(अमृतसतसई—९)

अन्तमें श्रीमिथिला-रस-मोद-प्रमोद-भरित, श्रीसीताराम-विवाहोत्सवमें परमानन्द-रस-लहरी लहरानेवाले, अनन्य-अन्तरंग-भावना-विभोर भावुक भक्त श्रीमोदलताजीके द्वारा श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजीकी परमप्रिय मातृभाषा-मैथिलीमें सुरचित श्रीराम-नाम-निष्ठा, परिक्रमाके प्रचण्ड प्रताप एवं अपने अखण्ड आत्मविश्वासका दिग्दर्शक तथा श्रीगणेश-गुण-गानपरक एक मधुर पद देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं—

ऐ उमा, अहाँक नन्दन।
देखते-देखते भेला जगत-बंदन॥
सुनितहि नामक निष्ठा कएलनि,
दए परदच्छिन कसिकए धएलनि;
ताहिसँ भए गेलनि,
गनाधिप-बिघ्नबाधा-निकन्दन ॥ १॥
कनि हमरा पर दृष्टि करथु,
हियमें भव्य-भाव भरथु,
झटदै हरथु सकल,
भ्रम-भेदक फंदन॥ २॥
किछु चाहै छी प्रभु-गुन-गावक,
कहिऔन 'मोद'क उर में आवक
सत्पथ दरसावक,
नसावक द्वंदन॥ ३॥

योगसाधनामें श्रीगणेशका स्वरूप-चिन्तन

अनन्त, अखण्ड, अव्यक्त, परम ज्योतिःस्वरूप तथा सर्वथा चिन्मय परमात्माकी सर्वव्याप्तिका अनुभव अथवा बोध ही 'योग' है। इस आध्यात्मिक रहस्यका परिशीलन भगवत्कृपा तथा सत्संगसे ही सहज सम्भव है। श्रीगणेशजीको षट्चक्र-साधनायोगका आधार स्वीकार किया गया है। वे मूलाधार-चक्रमें संस्थित रहते हैं। इसी मूलाधार-चक्रसे कुण्डलिनीको जगानेकी साधना आरम्भ होती है। मूलाधारसे निम्न भागमें गोलाकार वायुमण्डल है। उसमें वायुका बीज 'य'कार स्थित है। उस बीजसे वायु प्रवाहित होती है। उससे ऊपर अग्निका त्रिकोणमण्डल है। उसमें अग्निके बीज 'र'कारसे आग प्रकट होती है। वायु तथा अग्निके साथ मूलाधारमें स्थित कुल-कुण्डलिनी सोयी हुई सर्पिणीके आकारवाली है। वह स्वयम्भूलिंगको आवेष्टित करके सोती है। उसे जगाकर ब्रह्मरन्ध्रतक ले जाया जाता है तथा वहाँके अमृतमें निमग्नकर आत्मचिन्तन किया जाता है, ऐसा वर्णन नारदपुराणके पूर्व भागके ६५वें अध्यायमें मिलता है। मूलाधारचक्र—आधारपद्मका ध्यान करनेपर योगीका पापसमूह नष्ट हो जाता है।

मूलपद्मं यदा ध्यायेद् योगी स्वयम्भूलिङ्गकम्।
तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद् ध्रुवम्॥

(शिवसंहिता ५। ९६)

दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है। स्वाधिष्ठान-कमलके ध्यानसे योगी दिव्य सौन्दर्यसे सम्पन्न हो उठता है। तीसरे मणिपूर-चक्र-कमलके ध्यानसे योगीकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। वह शोक-रोगपर विजय पाता है। अनाहतचक्र-कमल चौथा है; इसके ध्यानसे योगी त्रिकालज्ञ होता है। पाँचवें विशुद्ध-चक्र-कमलके ध्यानसे वह वेदज्ञ बन जाता है। इस चक्रका ध्यानी जब क्रोधयुक्त नेत्रसे विश्वको देखता है, तब त्रिलोकीको प्रकम्पित कर देता है। छठे आज्ञाचक्र-कमलके ध्यानसे योगी साक्षात् विश्वनाथका दर्शन करता है और दुःख-शोकसे परे हो जाता है—

'पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति॥'

(शिवसंहिता ५। १३०)

योगी उपर्युक्त चक्र-कमलोंका ध्यान करते हुए ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित सहस्रार-पद्मसे प्रवाहित अमृतका पान करता है। यह दिव्य सहस्रार-पद्म मुक्ति प्रदान करता है। इसका नाम 'कैलास' है। कुण्डलिनी—जीवशक्तिको जाग्रत् करते हुए आत्मा-चैतन्य जीव इस कैलासमें शिवका साक्षात्कार कर अमरपदमें प्रतिष्ठित हो जाता है—

अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम्॥
कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति।

(शिवसंहिता ५। १९६-१९७)

मूलाधारचक्रमें चार दलका कमल है, जो बन्धूक-पुष्पके समान लाल है। उसके चारों दलोंमें (व, श, ष, स) अक्षर अंकित हैं। उसमें अपनी शक्तिके साथ मूषकवाहन गणेशजी विद्यमान हैं। वे चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अंकुश, सुधापात्र और मोदक लेकर उल्लसित हैं—

मूलाधारे वादिसान्तबीजयुक्ते चतुर्दले।
बन्धूकाभे स्वशक्त्या तु सहितायाखुगाय च॥
पाशाङ्कुशसुधापात्रमोदकोल्लासपाणये।

(नारदपुराण, पूर्व०, तृ० ६५। ८१-८२)

निष्कर्ष यह है कि मूलाधारचक्रमें स्थित गणेशके पादपद्ममें यौगिक साधनाका समारम्भ कर योगी षट्चक्रोंका भेदन कर सहस्रार—कैलासके शिवका साक्षात्कार कर परम पदमें स्थित हो जाता है। योगसाधनाके आधार मूलाधारस्थ श्रीगणेश हैं—

श्रीगणेशजी पूर्णानन्द, परानन्द, पुराण-पुरुषोत्तम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं—

'पूर्णानन्दः परानन्दः पुराणपुरुषोत्तमः॥'

(गणेशपु० २। १५। १०३)

उनमें योगस्थ होनेपर जीवात्माकी समस्त मायिक भ्रान्तियों और प्रपंचोंका अन्त हो जाता है। वे अव्यक्त हैं, परम ज्योतिःस्वरूप हैं एवं मायासे अतीत हैं। उनके योगध्येय रूपका तात्त्विक विश्लेषण गणेशपुराणके उत्तरखण्ड (३१। १४-१५)-में मिलता है।

श्रीगणेशजी चिदानन्दस्वरूप और वेदोंके भी अगोचर हैं। वे निर्गुण और परब्रह्मस्वरूप योगप्रतिपाद्य परम तत्त्व हैं। उनकी संस्तुति है—

परब्रह्मस्वरूपाय निर्गुणाय नमो नमः।
चिदानन्दस्वरूपाय वेदानामप्यगोचरः॥

(गणेशपु० २। ३७। ४)

योगकी साधनाभूमिपर श्रीगणेशजी सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त—सब कुछ हैं। ब्रह्माकी उक्ति है—

'सदसद् व्यक्तमव्यक्तं सर्वं हि गणनायकः॥'

(गणेशपु० १। १२। ९)

श्रीगणेशजी इच्छा, ज्ञान, क्रिया—तीनों शक्तियोंमें व्याप्त हैं। वे मूलाधारचक्रमें स्थित हैं—

'त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्।'

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् ६)

सृष्टिके आदिमें आविर्भूत प्रकृति और पुरुषसे परे श्रीगणेशजीका जो नित्य ध्यान करता है, वह योगी सब योगियोंमें श्रेष्ठ है—

आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥

(गणपत्युपनिषद्)

मूलाधारचक्रमें योगियोंद्वारा गणेशका ध्यान किया जाता है। यह चक्र चार दलोंसे युक्त कमल है। इसका स्वर्णवर्ण है—

किं च हेमनिभे चक्रे मूलाधारे चतुर्दले।
गणेशोऽस्ति .... ॥

(शंकरदिग्विजय धनपतिसूरिकृत टीका १५। ३५०)

मूलाधारचक्रकी स्थिति और उसमें संस्थित इष्ट देवता श्रीगणेशका वर्णन प्रसिद्ध अघोरी संत बाबा कीनारामने भी किया है—'गणेशजीका वर्ण अरुण है, उनका ध्यान और दर्शन करनेवाला पण्डित—ज्ञानी हो जाता है—

मूलचक्र वश गूद मझारा। चारि पत्र जनु अगिनि अँगारा॥
ताहि कमल महँ योनि तृकोना। ता महँ पुरुष बसै गहि मौना॥
'रा' अक्षर जस दीपक जोती। तेहि महँ पुरुष कान्ति उद्योती॥
नाम गणेश अरुण तन सोई। ताहि लखत बड़ पण्डित होई॥
मानसिक पूजा तहवाँ कीजै। लडुवा धूप गणेशहि दीजै॥

(पोथी विवेकसार)

संत गरीबदासजीकी उक्ति है—

'मूलचक्र गनेस बासा रक्त बरन जहँ जानिये।'

श्रीगणेशजी योगियोंके हृदयमें सदा अधिष्ठित रहते हैं। आचार्य शंकरकी उक्ति है कि 'जिनकी दन्तकान्ति अत्यन्त रमणीय है, जिनका रूप अचिन्त्य है, जिनका अन्त नहीं है, जो योगियोंके हृदयमें सदा अधिष्ठित हैं, मैं उन प्रणवस्वरूप, मृत्युंजय-नन्दन, विघ्नविनाशक एकदन्त श्रीगणेशजीका चिन्तन करता हूँ'—

नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मजं
अचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम्।
हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि संततम्॥

(श्रीगणेशपञ्चरत्न ५)

योगिराज निवृत्तिनाथके शिष्य बालयोगीश्वर महात्मा ज्ञानेश्वरने ज्ञानेश्वरीके पहले अध्यायमें अखिल विश्वके मूल बीज ओंकारस्वरूप गणेशजीकी यों वन्दना की है—'गणेशजीके दोनों चरण 'अकार' हैं, विशाल उदर 'उकार' है और मस्तकका महामण्डल 'मकार' है। अकार, उकार और मकार—इन तीनोंके योगसे ओंकार होता है, जिसमें सारा शब्द-ब्रह्म समाविष्ट है। मैं सद्गुरुकी कृपासे अखिल विश्वके मूल बीज—गणेशजीको नमस्कार करता हूँ'—

अकार चरणयुगुल। उकार उदर विशाल॥
मकार महामंडल। मस्तकाकारें॥
हे तिन्हीं एकवटले। तेथें शब्दब्रह्म कवळलें॥
तें मियां गुरुकृपा न मिलें। आदिबीज॥

(ज्ञानेश्वरी १। १९-२०)

श्रीगणेशजी अनादिकालसे ही बड़े-बड़े योगीश्वरोंद्वारा पूज्य होते चले आ रहे हैं। गणेशपुराणके उपासना-खण्डमें योगेश्वर विष्णुद्वारा श्रीगणेशजीके प्राणायामपूर्वक ध्यान, मन्त्रजप तथा आराधनका विवरण उपलब्ध होता है। पृथ्वीपर सिद्धि प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुने सिद्धिक्षेत्रमें घोर तप किया। उन्होंने षडक्षर-मन्त्रका जपकर विधिपूर्वक श्रीगणेशजीका ध्यान किया। यत्नपूर्वक इन्द्रियोंको अपने वशमें कर गणेशजीकी आराधना की। चित्तको प्रसन्न करनेवाली आवाहन आदि मुद्राओंसे पूजा कर योगेश्वर विष्णुने परम मन्त्रका जप किया—

प्राणानायम्य मूलेन ध्यात्वा देवं गजाननम्।
आवाहनादिमुद्राभिः पूजयित्वा मनोमयैः॥

द्रव्यैर्नानाविधैश्चैव षोडशैश्चोपचारकैः।
जजाप परमं मन्त्रं विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः॥

(गणेशपु० १। १८। ६-७)

योगियोंके परमाराध्य भगवान् योगेश्वर शिवकी दृष्टिमें लीला विग्रहधारी, स्वयं-प्रकाश श्रीगणेशजी त्रिगुणातीत परात्पर परमात्मा हैं। वे शुद्ध सत्त्वमय, समस्त जीवोंके ईश्वर भुवनेश्वर हैं। वे ही पार्वतीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं। भगवान् शिवकी पार्वतीके प्रति उक्ति है—

लीलाविग्रहवानेषः स्वप्रकाशो गुणातिगः।
शुद्धसत्त्वमयः सर्वजीवेशो भुवनेश्वरः॥
परमात्मा गुणातीतः पुत्रतां ते समागतः॥

(गणेशपुराण २ ।८२।५, ८)

हिमांचलके प्रासादमें विवाहके समय मण्डपमें विराजित योगिराज शिवने जगदम्बिका पार्वतीके साथ मुनियोंके आदेशसे गणपतिका पूजन किया था। नानापुराणनिगमागमसम्मत रामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासकी उक्ति है—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(बाल० १००)

अनादि, अनन्त, विश्वव्यापी एवं सर्वविघ्नविनाशन ये श्रीगजाननदेव ही सबके लिये सदा पूज्य हैं।

अनादिनिधनो देवो जगद्व्यापी गजाननः॥
अयमेव सदा पूज्यः सर्वविघ्नविनाशनः।

(गणेशपु० २। १२५। ३०-३१)

गणेशजी योगविद्याके परमतत्त्वज्ञ स्वीकार किये जाते हैं। उनकी ही वाणीमें संयोजित 'श्रीगणेशगीता' योगमार्गप्रकाशिनी कही गयी है। इसमें कर्म, भक्ति और ज्ञानके तत्त्वका अत्यन्त समीचीन विश्लेषण किया गया है।

यह योगमार्गप्रकाशिका गीता श्रीगणेशके वचनामृतका सागर है। इसके भाष्यकार महामति नीलकण्ठकी स्वीकृति है; आरम्भमें ही निवेदन है—

क्व गणनाथवचोऽमृतसागरो जडतरा मम बुद्धिरियं क्व वा।
तदपि तं गुरुलक्षणपादुकातरणिसंश्रयणेन तितीर्षति॥

'कहाँ तो गणेशवचनामृतका सागर और कहाँ मेरी यह अत्यन्त जड बुद्धि; तथापि गुरुपादुकारूप नौकाका सहारा लेकर यह उसके पार जाना चाहती है।'

श्रीव्यासजीकी सूतके प्रति उक्ति है कि 'मैं योगमार्गप्रकाशिका 'गणेशगीता'का वर्णन करता हूँ, जिसका राजा वरेण्यके पूछनेपर श्रीगणेशजीने कथन किया था'—

अथ गीतां प्रवक्ष्यामि योगमार्गप्रकाशिनीम्।
नियुक्ता पृच्छते सूत राज्ञे गजमुखेन या॥

(श्रीगणेशगीता १। ४)

श्रीगणेशने राजा वरेण्यसे कहा कि 'मैं योगामृतमयी गीताका प्रवचन करता हूँ; मेरे अनुग्रहसे आपकी बुद्धि अच्छी तरह संयत है; इसे सुनिये'—

सम्यग्व्यवसिता राजन् मतिस्तेऽनुग्रहान्मम।
शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप॥

(श्रीगणेशगीता १। ५)

योगामृतमयीका आशय उस गीतासे है, जो ब्रह्म और आत्माकी एकता—अभिन्नताका प्रतिपादन करती है। उपर्युक्त श्लोकके भाष्यमें महामति नीलकण्ठका स्पष्टीकरण है—

'कीदृशीं योगामृतमयीम्। ब्रह्मात्मैक्यप्रतिपादकं शास्त्रं तत्प्रधानम्।' गणेशगीतामें योग वही है, जिसके द्वारा ज्ञानी संसारसे विरक्त होते हैं। जीवन्मुक्त होकर ब्रह्मानन्दपदमें लीन हो ज्ञानयोगी हृदयमें स्थित परब्रह्मका दर्शन करते हैं। वे योगसे वशीभूत चित्तमें परब्रह्मका ध्यान करते हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मवत् समझते हैं—

ध्यायन्तः परमं ब्रह्म चित्ते योगवशीकृते।
भूतानि स्वात्मना तुल्यं सर्वाणि गणयन्ति ते॥

(श्रीगणेशगीता १। १६)

गणेशजी योगसाधनाकी पद्धति यों प्रकट करते हैं कि 'योगीको उचित है कि वह मनसे समस्त कर्मोंका त्याग कर सुखसे जीवन-यापन करे'—

'मनसा सकलं कर्म त्यक्त्वा योगी सुखं वसेत्।'

(श्रीगणेशगीता ४। १२)

उपर्युक्त श्लोकके भाष्यमें नीलकण्ठका कथन है—

'योगी—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपैरष्टभिरङ्गैर्युक्तो योगोऽस्यास्तीति योगी। अतएव मनसा सह सकलं कर्माहं ब्रह्मेतिवाक्यार्थानुसंधानमपि त्यक्त्वा निर्बीजसमाधिस्थः सम्मुखमखण्डानन्दमनुभवन् वसेत्।'

गणेशजीने सुखकी व्याख्यामें कहा कि 'जो अपनी आत्मामें रमण करते हैं और कहीं भी आसक्त नहीं हैं, वे ही आनन्दका भोग करते हैं; यही अविनाशी सुख है, विषयोंमें सुख नहीं। जो योगी मुझ परमात्मामें ही रमण—सुख-आनन्दका अनुभव करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। देह रहते भी वे अदेह अथवा विदेह हैं। ऐसे योगी तीनों लोकोंमें ब्रह्मादिकों तथा देवताओंके वन्दनीय हैं'—

आनन्दमश्नुतेऽसक्तः स्वात्मारामो निजात्मनि।
अविनाशि सुखं तद्धि न सुखं विषयादिषु॥
जीवन्मुक्तः स योगीन्द्रः केवलं मयि संगतः।
ब्रह्मादीनां च देवानां स वन्द्यः स्याज्जगत्त्रये॥

(श्रीगणेशगीता ४। २१; ५। १८)

निस्संदेह योगप्रतिपाद्य श्रीगणेश परम शक्ति—चिन्मय ज्योति हैं। वे आकाश और वायुरूप हैं, विकारोंके आदिकारण, कला और कालके उत्पत्तिस्थान हैं, अनेक क्रिया और शक्तिके स्वरूप हैं—

प्रकाशस्वरूपं नभोवायुरूपं
विकारादिहेतुं कलाकालभूतम्।
अनेकक्रियानेकशक्तिस्वरूपं
सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः॥

(गणेशपुराण, उपा० १३। ११)

निस्संदेह—गणेशजी योगियोंके परम ध्येय हैं। वे योगशास्त्रके तत्त्वज्ञ और योगप्राप्य ब्रह्म हैं।

—श्रीरामलाल

~~~o~~~

श्रीगणेश—ऐश्वर्यदाता एवं संरक्षक

दोर्द्योतद्दन्तखण्डः सकलसुरगणाडम्बरेषु प्रचण्डः
सिन्दूराकीर्णगण्डः प्रकटितविलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः।
गण्डस्थानन्तघण्डः स्मरहरतनयः कुण्डलीभूतशुण्डो
विघ्नानां कालदण्डः स भवतु भवतां भूतये वक्रतुण्डः॥

जिनके एक हाथमें दाँतका खण्ड (टुकड़ा) उद्दीप्त हो रहा है, जो समस्त देवगणोंकी मण्डलीमें प्रचण्ड हैं, जिनके गण्डस्थलमें सिन्दूरका रंग फैला हुआ है, भालदेशमें प्रकट मनोहर चन्द्रखण्ड शोभा पाता है, कपोलोंपर अनन्त भ्रमर मँडरा रहे हैं, जिन्होंने अपने शुण्डको कुण्डलाकार (गोल) कर लिया है तथा जो विघ्नोंके लिये कालदण्ड हैं, वे कामारि शिवके पुत्र वक्रतुण्ड आपलोगोंके लिये कल्याणकारी एवं ऐश्वर्यदाता हों।

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो
विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु वः॥

वे विघ्नेश्वर आपलोगोंकी रक्षा करें, जो विघ्नान्धकारका निवारण करनेके लिये एकमात्र सूर्य हैं, विघ्नरूपी विपिनको जलाकर भस्म करनेके लिये दावानलरूप हैं, विघ्नरूपी सर्पकुलके अभिमानको कुचल डालनेके लिये गरुड़ हैं, विघ्नरूपी गजराजको पकड़ खानेके लिये सिंह हैं, विघ्नोंके ऊँचे पर्वतका भेदन करनेके लिये वज्र हैं, विघ्न-समुद्रके लिये बड़वानल हैं तथा विघ्न एवं पापसमूहरूपी मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करनेके लिये प्रचण्ड पवन हैं।

~~~o~~~

श्वेताम्बर जैन-कवियोंद्वारा श्रीगणेशका स्मरण

(लेखक—श्रीभँवरलालजी नाहटा)

जैन-धर्म भारतका प्राचीन धर्म है। उसके प्रमुख दो सम्प्रदाय हैं—१-श्वेताम्बर और २-दिगम्बर। इनमेंसे दिगम्बर सम्प्रदायवाले काफी कट्टर रहे हैं, अतः उनके यहाँ तो श्रीगणेश-सम्बन्धी कोई सामग्री नहीं मिलती। बाबू श्रीसम्पूर्णानन्दजीकी 'गणेश' नामक पुस्तकके नवें अध्यायमें पं० श्रीकैलासचन्द्रजी शास्त्रीकी सूचनाके अनुसार यह उल्लेख किया गया है कि जैन-धर्ममें जिनेन्द्रभगवान्‌को ही 'गणेश' और 'विनायक' कहते हैं। इसके अतिरिक्त इस नामके किसी पृथक् देवका उल्लेख नहीं मिलता। विवाहके समय विनायकयन्त्रकी पूजा की जाती है। उस अवसरपर जो श्लोक पढ़े जाते हैं, उनमेंसे दो श्लोक नीचे दिये जा रहे हैं—

गणानां मुनीनामधीशस्त्वतस्ते
गणेशाख्यया ये भवन्तं स्तुवन्ति।
सदा विघ्नसंदोहशान्तिर्जनानां
करे संलुठत्यायतश्रेयसानाम्॥
यतस्त्वमेवासि विनायको मे
दृष्टेष्टयोगानवरुद्धभावः ।
त्वन्नाममात्रेण पराभवन्ति
विघ्नारयस्तर्हि किमत्र चित्रम्॥*

श्वेताम्बर-सम्प्रदायमें गणेशजीके समान ही गजमुखवाले पार्श्वयक्षकी कई प्रतिमाएँ जैन-मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित हैं। इससे कई बार लोगोंको भ्रम भी हो जाता है कि गणेशजीकी मूर्ति जैन-मन्दिरोंमें कैसे? पर वास्तवमें २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथका अधिष्ठायक शासनदेव श्वेताम्बरग्रन्थानुसार वे पार्श्वयक्ष ही हैं।

यद्यपि श्वेताम्बर विद्वान् और कवियोंने अपनी रचनाओंके मंगलाचरणमें प्रायः तीर्थंकरों, गौतमगणधर एवं विशेषतः सरस्वती आदिका ही स्मरण किया है, पर कई कवि ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने विघ्नविनाशक गणेशजीकी लोकप्रसिद्धिके कारण अपनी रचनाओंके मंगलाचरणमें श्रीगणेशजीको नमस्कार और उनका स्मरण किया है। ऐसे कुछ कवियोंके मंगलाचरणके श्रीगणेश-सम्बन्धी पद्य नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं; जिनसे श्वेताम्बर कवियोंकी उदार भावना और समन्वयवृत्तिका परिचय मिल जाता है।

१-सं० १५६५ में उदयभानुरचित 'विक्रमसेन रास'के प्रारम्भमें—

शंभु शक्ति मनिधरी, करिस कवि नव नवइ छंदि।
सिद्धि बुद्धिवर विघनहर, गुण निधान गणपति प्रसादि॥

२-सं० १५७५ में अमृतकलशरचित 'हमीरे-प्रबन्ध'के प्रारम्भमें—

गवरीपुत्र गजवदन विशाल, सिद्धि बुद्धि वर वचन रसाल।
सुर-नर-किंनर सारइं सेव, धुरि प्रणमूं लम्बोदर देव॥

३-सं० १६४५ में कवि हेमरत्नरचित 'गौरा बादल चौपाई'के प्रारम्भमें—

सकल सुखदायक सदा सिद्धि बुद्धि सहित गुणेश।
विघन विडारण रिध करण, पहिली तुझ प्रणमेश॥

४-सं० १७७२ में दलपतिविजयरचित 'सुन्माण रासो'के प्रथममें—

शिव सुत सुंढालो सजल, सेवे सकल सुरेश।
विघन विडारण वरदीयण, गवरी-पुत्र गणेश॥
भृकुटिचंद भलछले गंग छलहले समुजल
एकदंत उज्जलो, सुंडल लवले रुंडगल
पुहप धूए प्रमाले, सेस सलवले जीहलल
धुम्र नेत्र प्रजले अङ्ग अक्कले अतुल बल
यम बलें विघन छालिईअल चमर-ढलें उज्जल कमल।
सुंढाल देव रिद्ध सिद्ध दीअण, समरी दल्लपति भवल॥

५-सं० १७७६ में केशरकविरचित 'चंदनमलियागिरी चौ०'के प्रारम्भमें—

विघन विडारन सुख करन आनंद अंग उल्लास।
गवरी-सुत प्रणमु धवर प्रत्यक्ष पूरो आस॥

६-सं० १६०५ में पं० मतिसारके 'कपूरमंजरीरास'-के प्रारम्भमें—

प्रथम गणपति वर्णवऊं गवरी-पुत्र उदार।
लक्ष लाभ जे पूरवइ, देव सविहुं प्रतिहार॥

* आप गणों और मुनियोंके अधीश्वर हैं, अतः जो लोग 'गणेश'-नामसे आपकी स्तुति करते हैं, वे 'आयतश्रेयस' (विस्तृत कल्याणके भागी) होते हैं; उनके विघ्नसमूहोंकी शान्ति सदा उनके हाथमें लोटती रहती है। चूँकि आप ही मेरे विनायक हैं, आपका भाव प्रत्यक्ष—दृष्ट योगसे अवरुद्ध नहीं होता है; अतः यदि आपके नाम लेनेमात्रसे विघ्नरूपी शत्रु पराजित हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?

सेवंत्रे जस मुगट भर, सींदूर सोहि सिरीर।
सिद्धि बुद्धि नउ भरतार, जे बुद्धि दातार बड वीर॥

७-सं० १६३० में महेश्वरसूरि-शिष्यरचित 'चंपकसेन रास'के प्रारम्भमें—

'गणपति गुण निधि विनऊँ, सरस्वति करो पसाद।'

८-सं० १७३६ में कवि लालचन्दरचित 'लीलावती' (गणित) भाषा बीकानेरमें रचित—

गणपति देव मनाइ कै, समरि देवि सरसत्ति।
भाषा लीलावती करूं चतुर सुनो इक चित्त॥
सोभित सिंदूर पूर, गजसीस नीके नूर,
एकदंत सुंदर विराजे भालचंद जू।
सुर कोरि कर जोरि, अभिमान दूर छोरि,
प्रणमत जाके पद पंकज अमंद जू॥
गौरी-पूत सेवे जेउ सोउ मन चिंत्यो पावे,
ऋद्धि वृद्धि सिद्धि बुद्धि होत आनंद जू।
विघन निवारै संत लोककूं सुधारै जैसे,
गणपति देव जय जय सुखकंद जू॥

९-सं० १७२० में कवि रामचन्द्ररचित 'रामविनोद'के प्रारम्भमें—

सिद्धि-बुद्धिदायक सलहीयै, गवरी-पुत्र गणेश।
विघन विडारण सुख करण, हरख धरी प्रणमेश॥

१०-सं० १७२५ के लगभग लक्ष्मीवल्लभरचित 'कालज्ञान'के प्रारम्भमें—

सकति शंभु शंभू-सुतन, धर तीनोंका ध्यान।
सुन्दर भाषा बंध करि, करिहुँ कालज्ञान॥

११-सं० १७६४ में समरथ कवि वि० 'रसमञ्जरी' भाषाके प्रारम्भमें—

सवैया—

गणेशको रूप अनूप विराजित गंडौं-स्थल मद वारि झरै।
ते पान कीयें अति मत्त भए भर गुंजित भौंर अनेक फिरैं॥
ते गुंजत ही मुखकी छबि देखि, मनों मनि नील की संक हरै।
सो देव विनायक सदा सुखदायक, तुमकौ नित ही सौख्य करै॥

इस तरह और भी कई ऐसी रचनाएँ हैं, जिनके मंगलाचरणमें श्रीगणेशजीका स्मरण किया गया है, पर उनमें अन्दर 'रासो' आदिके तो रचयिताका नाम नहीं मिलता और कइयोंके रचयिता जैन हैं या नहीं, ठीकसे पता नहीं चलता।

१६ वीं शताब्दीसे १८ वीं शताब्दीके श्वेताम्बर कवियोंके हिंदी और राजस्थानी—दोनों भाषाओंके ग्रन्थोंके प्रारम्भमें गणेशजीका स्मरण किया गया है। इनमेंसे कई ग्रन्थ तो वैद्यक एवं गणितके हैं। वैद्यकादि ग्रन्थ तो सार्वजनिक हैं ही, अन्य कई संस्कृत एवं चरितकाव्य भी हैं, जिनकी कथाएँ भी ऐतिहासिक एवं सर्वजनोपयोगी हैं। श्रीगणेशजीके भक्त भी उन रचनाओंसे लाभ उठा सकें—इस विशाल दृष्टिसे गणेशजीकी अति प्रसिद्धिके कारण ही जैन-विद्वानोंने इनका स्मरण ग्रन्थके प्रारम्भमें किया है।

~~○~~

स्तवन

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम्।
अमन्दानन्दसंदोहबन्धुरं सिन्धुराननम्॥

जो वन्दना करनेवाले भक्तजनोंके लिये मन्दार (कल्पवृक्ष)-के समान इच्छापूरक हैं, चन्द्रभूषण शिवको आनन्दित करनेवाले पुत्र हैं और अमन्दानन्दराशिसे मनोहर प्रतीत होते हैं, उन सिन्धुरवदन (गजानन)-की मैं स्तुति करता हूँ।

हस्तपङ्कजनिविष्टमोदकव्याजसंचरदशेषपुमर्थम्।
नौमि किंचिदवधूनितशुण्डादण्डकुण्डलितमण्डितगण्डम्॥

जिनके चारों कर-कमलोंमें रखे हुए लड्डूके व्याजसे चारों पुरुषार्थ ही वहाँ संचार करते हैं। कुछ-कुछ हिलाये जाते हुए शुण्डदण्डका जो कुण्डलाकार रूप है, उससे मण्डित गण्डस्थलवाले उन गणेशजीकी मैं स्तुति करता हूँ।

अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम्।
अनेकदं तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे॥

जो गिरिराजनन्दिनी उमाके मुख-कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यरूप हैं और भक्तोंको अनेकानेक अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करते हैं, उन एकदन्तधारी गजाननकी हम दिन-रात उपासना करते हैं।

~~○~~

जैन-मतमें गणेशका स्वरूप

(लेखक—श्रीताराचन्दजी पाण्ड्या)

'गणानाम्' (अथवा गणस्य) अर्थात् साधुगण—जनगणके ईश (नियामक या नेता)-को 'गणेश' कहते हैं। आजकलके माने गये शब्दार्थमें लोकतन्त्रके सर्वमान्य या बहुमान्य नेताको भी हम 'गणेश' मान सकते हैं। **'संघे शक्तिः कलौ युगे'**—इस दृष्टिसे लोकतन्त्रका या लोकमान्यताका समर्थन प्राप्त करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है।

महाभारतकी रचना तो वेदव्यासजीने अपने मनमें कर ली, लेकिन उसे लिपिबद्ध करने—बाह्यरूप देनेका कार्य गणेशजीने किया और वे बिना अर्थ समझे लिपिबद्ध करते नहीं थे। अतः ज्ञानके संकलनका कार्य भी गणेशजी करते थे।

गणेशजीके सिरपर गज-मस्तक है, अर्थात् सब तरहका ज्ञान है; लेकिन दन्त एक ही है। इसका भाव यह है कि 'ज्ञान नाना अपेक्षात्मक होनेपर भी उद्देश्य-सिद्धि तो एक अपेक्षाको ही मुख्य कर कार्य करनेसे होती है, अन्यथा अनिश्चयात्मा (संशयात्मा) नष्ट हो जाता है।' मूषकवाहन यह इंगित करता है कि 'सूक्ष्म तर्क-वितर्क करके विश्लेषण करनेसे ज्ञान प्राप्त होता है।' इसी प्रकार उनके स्वरूपके विभिन्न अंगों आदिके अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं।

जैन-धर्ममें ज्ञानका संकलन करनेवाले 'गणेश' अर्थात् 'गणधर'की मान्यता है। केवल ज्ञान (सर्वज्ञता)-को उपलब्ध करनेपर अरहन्त (तीर्थंकरों)-का उपदेश प्रायः गणधरके निमित्तसे ही होता है—गणधर ही उसका मुख्य पात्र होता है और वे ही उस ज्ञानका बारह अंगों और चौदह पूर्वोंमें संकलन करते हैं। वे मति, श्रुत, अवधि (परोक्ष बातोंका सीमासहित प्रत्यक्ष ज्ञान) और दूसरेके मनकी बातोंको प्रत्यक्ष जाननेवाला मन-पर्यय-ज्ञान—इन चार प्रकारके ज्ञानवाले होते हैं। तीर्थंकर तो किसीको शिष्य बनाते नहीं, किसीको दीक्षा आदि देते नहीं हैं। तीर्थंकरोंके साथ जो साधुओंका संघ रहता है, उसके नियामक गणधर होते हैं; क्योंकि तीर्थंकर अनादि कालसे होते आये हैं और अनन्त कालतक होते रहेंगे, इसलिये गणधर भी अनादि सिद्ध हैं और अनन्त कालतक होते रहेंगे?

जैन-मान्यताके अनुसार वर्तमान कल्पके अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीको केवल ज्ञान होनेपर उनकी 'दिव्य-ध्वनि' (उपदेश) सुननेके लिये समवशरण (दिव्य-सभा-भवन)-में शचीपतिसहित देव, मनुष्य, पशु, पक्षी बैठे रहे, लेकिन योग्य पात्रके अभावमें भगवान्‌की दिव्य-ध्वनि ६३ दिनोंतक नहीं खिरी। शचीपति इन्द्र इसका कारण विचारकर उस कालके महाविद्वान् एवं पाँच सौ शिष्योंवाले इन्द्रभूति गौतमको श्रीमहावीरस्वामीसे शास्त्रार्थ करनेके बहानेसे ले आये। समवशरणके बाहर स्थित 'मानस्तम्भ'के दर्शनसे गौतमका अभिमान गलित हो गया और वे विनयशील हो गये, तब वे समवशरणके अंदर प्रविष्ट हुए। उनके प्रविष्ट होते ही श्रीमहावीरस्वामीकी दिव्य-ध्वनि खिरने लगी और गौतमके मनकी शंकाओंका समाधान हो गया। निर्मल भावोंके फलसे वे उसी समय बुद्धि, औषध, अक्षय, ऊर्ज, रस, तप और विक्रिया—इन सात प्रकारकी अद्भुत शक्तियों (ऋद्धियों) एवं चार प्रकारके ज्ञानके धारी हो गये और वे ही महावीरस्वामीके मुख्य 'गणधर' बने और उन्होंने उसी दिन एक ही मुहूर्तमें भगवान्‌के उपदेशका १२ अंग और १४ पूर्वोंके रूपमें संकलन किया। जैन-मतमें इन्हीं गौतम-गणधरको 'गणेश' माना जाता है।

सभी तीर्थंकरोंकी भाँति महावीरस्वामीकी भी दिव्य-ध्वनि 'ॐकार' रूप एवं निरक्षरात्मक होनेपर भी सर्वभाषामयी थी; अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब श्रोतागणोंकी श्रवणेन्द्रियमें पहुँचनेपर वह उन-उनकी भाषामें परिणत हो जाती थी और उस दिव्य-ध्वनिमें समस्त विश्वके सभी पदार्थों एवं विषयोंका शाब्दिक (अक्षरात्मक) ज्ञान-विज्ञान, सभी विद्याएँ एवं कलाएँ प्रकट होती थीं। अतः 'गणधर' द्वारा संकलित शास्त्र भी सभी विषयों, पदार्थों, विद्याओं एवं कलाओंके शाब्दिक ज्ञान-विज्ञान-रूप थे। यह सही है कि सर्वज्ञके सम्पूर्ण ज्ञानका अति अल्प अंश ही उसकी दिव्य-ध्वनिद्वारा प्रकट हो सकता था और उसके भी अति अल्प अंशका ही संकलन शाब्दिकरूपमें अर्थात् अक्षरात्मक शास्त्ररूपमें

प्रकट किया जा सकता था; (क्योंकि भाव-ज्ञान तो असीम-अनन्त है, जबकि अक्षरात्मक एवं शाब्दिक ज्ञान सीमित ही होता है) लेकिन वह अति अल्प अंशका शाब्दिक ज्ञान भी सुविशाल ज्ञान-विज्ञानका महासागर है, जो सामान्य जनोंके लिये तो असीम ही है। इससे 'गणधर'के भी ज्ञानका अथाहपना सूचित होता है।

बौद्ध धर्म, साहित्य एवं संस्कृतिमें श्रीगणेश

(लेखक—श्रीअक्षयवरमणिजी त्रिपाठी, एम० ए०, बी-एड्०, आचार्य)

बौद्धधर्म, साहित्य, संस्कृति एवं साधनाने लंका, बर्मा, मलयद्वीप, सुमात्रा (स्वर्णद्वीप), जावा, बालीद्वीप, बोर्नियो, चीन, अफगानिस्तान, कोरिया, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नैपाल, मेसोपोतामियाँ और मलाया प्रभृति विश्वके बहुत बड़े भू-भागको प्रभावित किया है। मानवजातिके इतने बड़े भू-भागपर बौद्धधर्मके सफलतापूर्वक प्रसारका रहस्य यह है कि बुद्धका जोर 'शील', 'समाधि' और 'प्रज्ञा'पर था। शीलमें अवैर (मैत्रीभाव)-को ही प्रधानता दी गयी है। अवैरके लिये वैरके सभी कारणोंको छोड़ना पड़ता है। बुद्ध और उनके शिष्योंने इस बातका प्रचार केवल मौखिक ही नहीं किया, अपितु इसको अपनी कार्यप्रणालीका भी एक अंग बना लिया। बुद्ध और उनके शिष्य अपने विचारोंको तो श्रेष्ठ मानते थे, लेकिन उसको हठात् दूसरोंके ऊपर लादनेका प्रयास वे नहीं करते थे। वे इस मनोविज्ञानको जानते थे कि ज्ञान समझानेसे दूसरोंके मस्तिष्कमें प्रविष्ट होता है, बलात् नहीं। अपने धर्मके प्रचारार्थ बौद्धोंने कभी बलात् करनेकी कोशिश नहीं की। धर्मोंके इतिहासमें यह अद्वितीय उदाहरण है। बौद्धोंने अपने विचारोंके प्रचारार्थ जिस मार्गका अनुसरण किया, वह था—'समझा-बुझाकर विचारोंमें परिवर्तन लाना।' प्रत्येक देश, जाति एवं समाजकी अपनी एक संस्कृति होती है, जिसका सम्बन्ध मनुष्यके विचारोंसे उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार चेतन आत्मा और स्थूल शरीरका। मानव-मनकी इसी विशेषताको जानकर बौद्धधर्म जिस देशमें गया, वहाँकी भाषा और संस्कृतिमें उसने बहुत बड़े परिवर्तनका प्रयास नहीं किया; अपितु उन्हींकी भाषा, धर्म एवं संस्कारोंपर बौद्धधर्मका लेप कर दिया। अपनी-अपनी भाषामें बुद्ध-वचनोंको सीखनेकी सुविधा भी प्रदान कर दी। यहाँतक कि उस देश और जातिमें पूर्वप्रचलित देवी-देवताओंका विरोध नहीं किया, अपितु उनको मान्यता प्रदान करके अपने धर्मका अंग बना लिया। उदाहरणार्थ—भारतमें बौद्धोंने श्रीगणेश, इन्द्र, ब्रह्मा, सनत्कुमार, प्रजापति, सूर्य, चन्द्रमा, पर्जन्य (वरुण), लक्ष्मी (श्री), श्रद्धा, आशा, लोकपाल, चतुर्महाराजिकदेव, धृतराष्ट्र, महाराज, यक्ष, नाग, वृक्ष-पूजा, गन्धर्व, गरुड़, वृषभ और कुबेर इत्यादि देवी-देवताओंको ज्यों-का-त्यों मान लिया। सभी बौद्ध-ग्रन्थोंमें इन देवी-देवताओंका वर्णन सादर किया गया है। अतः बौद्धोंके द्वारा 'हमारे देवता-तुम्हारे देवता'का झगड़ा ही नहीं उत्पन्न हुआ। विचार बौद्ध, परंतु रूप राष्ट्रीय रखना उनकी कार्यप्रणालीका एक अंग था। इस प्रकार संघर्षके एक जबरदस्त कारणका हल बौद्धोंने निकाल लिया।

भारतीय देववाद तो विश्वमें प्रसिद्ध ही है। इन देवी-देवताओंकी लम्बी सूचीमें श्रीगणेशका विशेष महत्त्व है। भारतके सभी हिंदू लेखक अपनी रचना '**श्रीगणेशाय नमः**' से ही प्रारम्भ करते हैं। बच्चोंका विद्यारम्भ-संस्कार भी '**हरिः गणपतये नमः**' लिखवाकर ही किया जाता है। दक्षिणी भारतमें तो इसका विशेष प्रचलन है। पुरातात्त्विक महत्त्वके स्थानोंकी खुदाईसे 'श्रीगणेश'की जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनसे यह प्रमाणित होता है कि 'श्रीगणेश-पूजा'की परम्परा बौद्धकालके बहुत पूर्वसे भारतके कोने-कोनेमें प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त विश्वके सभी बौद्ध-राष्ट्रोंमें भी 'श्रीगणेश'की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अतः 'श्रीगणेश' विश्व-देवालयके एक प्रमुख देवता हैं। बौद्ध महायान-सम्प्रदायकी वज्रयान-शाखाके साधकोंने तो 'श्रीगणेश'को अपनी साधनाकी सिद्धिके लिये एकमात्र सहायक मान लिया।

'गणपति-हृदय' में श्रीगणेश

'गणपति-हृदय' नेपाली बौद्ध-साहित्यका एक प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थरत्नमें 'गणपति' अर्थात् 'गणेश'की वन्दनाको देखनेके बाद प्रत्येक प्रज्ञावान्

पुरुष यह निर्णय ले सकता है कि बौद्धधर्म एवं साहित्यमें 'श्रीगणेश'-पूजाका विशेष स्थान है। इस ग्रन्थके अनुसार—एक बार जब भगवान् तथागत बुद्ध राजगृहमें विहार कर रहे थे, उसी समय वे स्वयं आनन्दसे कहते हैं—'हे आनन्द! जो गणपतिहृदयको श्रद्धासे पढ़ता और सुनता है, वह शीघ्र अपनी इच्छाओंको पूरा कर लेता है।' इस ग्रन्थके प्रत्येक मन्त्र निम्न वाक्योंसे प्रारम्भ हुए हैं—

'ॐ नमोऽस्तु ते गणपतये स्वाहा, ॐ गणपतये स्वाहा।'

इस ग्रन्थकी कुछ प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'ॐ नमो भगवते आर्यगणपतिहृदयाय। ॐ नमो रत्नत्रयाय। एवं मया श्रुतमेकस्मिन् समये राजगृहे विहरति स्म गृद्धकूटपर्वते महता भिक्षुसंघेन सार्द्धं त्रयोदशभिक्षुशतैः सम्बहुलैश्च बोधिसत्त्वो महासत्त्वः। तेन खलु पुनः समये भगवान् आयुष्मान्नानन्दमामन्त्रयते स्म। यः कश्चित् कुलपुत्र आनन्द! इमानि गणपतिहृदयानि धारयिष्यति वाचयिष्यति पर्यवाप्स्यति प्रवर्तयिष्यति तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धानि भविष्यन्ति। तद्यथा—ॐ नमोऽस्तु ते गणपतये स्वाहा।' इत्यादि। इस ग्रन्थके अन्तमें लिखा है—

'इदमवोचद् भगवानात्तमनास्ते च बोधिसत्त्वाश्च सर्वावनी पर्षत् सदेवमानुषासुरगरुडगन्धर्वाश्च लोका भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति।'

और ग्रन्थकी समाप्ति की गयी है, निम्नवाक्योंके साथ—

'आर्यगणपतिहृदयनामधारणी समाप्ता'

बौद्धधर्मके वज्रयान-शाखावालोंका तो यहाँतक विश्वास है कि 'श्रीगणेश'की स्तुतिके बिना मन्त्रोंकी सिद्धि हो ही नहीं सकती। बौद्धोंने शाक्यमुनि गौतमबुद्धका गर्भप्रवेश भी हाथीके शरीरके रूपमें करवाया है। यही बीज 'गणेश-पूजा' रूपी विशाल वटवृक्षकी टहनियोंकी तरह बौद्धधर्मकी सभी शाखाओंमें दूर-दूरतक फैला हुआ दृष्टिगोचर होता है। नेपाली एवं तिब्बती वज्रयान बौद्ध-सम्प्रदायवालोंके घर-घरमें तथागतकी मूर्तिके साथ-साथ श्रीगणेशकी मूर्ति भी रहती है। ये बौद्धलोग गणेशकी पूजा विघ्नविनाश एवं ऐश्वर्यकी वृद्धिहेतु करते हैं। डा० राजेन्द्रलाल मैत्रने अपने ग्रन्थ 'The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal' और एच० हेरासने अपनी पुस्तक 'The Problem of Gaṇapati' में ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्योंके आधारपर बौद्धतन्त्रमें 'श्रीगणेश'के एक महत्त्वपूर्ण स्थानका उद्घाटन किया है।

बौद्ध-राष्ट्रोंमें 'श्रीगणेश'

नेपाल, बर्मा, थाईलैंड, तिब्बत, अफगानिस्तान, मध्येशिया, चीन, श्याम, कम्बोडिया, तुर्किस्तान, मंगोलिया, तथा समुद्रपारके देशों—जापान, इंडोनेशिया, जावा, बोर्नियो और बालिद्वीप प्रभृति तमाम शुद्ध बौद्धदेशोंके धर्म, साहित्य एवं साधनामें भी 'श्रीगणेश'-पूजाका विशेष स्थान है। इन बौद्ध-राष्ट्रोंमें श्रीगणेश-पूजाकी प्राचीनताकी परम्पराका ज्ञान उन राष्ट्रोंमें प्राप्त पुरातात्त्विक एवं खननसामग्रियोंसे प्रमाणित होता है।

जावासे प्राप्त कई मुद्राओंसे श्रीगणेशकी मूर्तियाँ आज भी 'ब्रिटिश म्यूजियम'में सुरक्षित हैं। नेपालके काठमाण्डू नामक शहरमें निर्मित अनेक बौद्ध-मन्दिरोंमें भगवान् बुद्धकी मूर्तिके साथ-साथ 'श्रीगणेश'की भी मूर्तियाँ कई मुद्राओंमें सुरक्षित हैं। कहते हैं कि महान् बौद्ध सम्राट् अशोककी एक पुत्रीने नेपालमें अनेक बौद्ध-मन्दिरोंका निर्माण कराया और उनमें स्वयं अपने हाथोंसे 'श्रीगणेश'की मूर्तियाँ स्थापित कीं। चीनी बौद्ध-साहित्यके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि ५ वीं और ८ वीं शताब्दीके मध्य चीनने भारतसे बहुत कुछ लिया। उदाहरणार्थ प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान जब ५ वीं शताब्दीमें भारतसे चीन वापस गया तो वह 'श्रीगणेश'-पूजाकी परम्परा और अनेक मूर्तियाँ अपने साथ ले गया। महायानी बौद्धग्रन्थोंमें 'श्रीगणेश'-सम्बन्धी अनेक छोटी-छोटी परम्परागत दन्तकथाओंका वर्णन आया है। बौद्ध-साहित्यमें श्रीगणेशसे सम्बन्धित दन्तकथाएँ जब दृष्टिगोचर होती हैं तो यह विश्वास हो जाता है कि बौद्धधर्म एवं साधनामें 'श्रीगणेश-पूजा'का बहुत महत्त्व है। नेपालमें मंजुश्री नामक एक बुद्ध-मूर्तिके समीप ही 'श्रीगणेश'की मूर्ति आज भी स्थापित है। भगवान् बुद्धके धर्मचक्रप्रवर्त्तनस्थान सारनाथ (वाराणसी)-की खुदाईमें 'श्रीगणेश' और 'कार्तिकेय' की मूर्तियाँ मिली हैं, जो परिनिर्वाणमुद्रामें सोये हुए भगवान् गौतमबुद्धकी सेवा कर रहे हैं। लंकाके 'मन्तक चेतया' स्तूपके पास दो हाथोंवाली 'श्रीगणेश'की मूर्ति आज भी स्थापित है।

इससे प्रमाणित होता है कि 'श्रीगणेश'ने महायान बौद्धोंकी सीमासे बाहर जाकर लंका-जैसे बौद्धदेशमें भी प्रवेश किया है। '**कप्पद्रुमावदानम्**' एक महायानी-मिश्रित संस्कृतका ग्रन्थ है। इसमें श्रीगणेशस्तुति-सम्बन्धी एक कथा आयी है, जो इस प्रकार है—श्रावस्तीके एक वणिक्-पुत्रने, जो बौद्ध-उपासक था, व्यापारके लिये अपने साथियोंके साथ 'रत्नाकार द्वीप'के लिये प्रस्थान किया। उसकी नाव कुछ ही दिनोंके बाद एक तूफानसे टकराकर डूब गयी। उसने अपने प्राणरक्षार्थ उस समयके समाजमें मान्यताप्राप्त अनेक देवी-देवताओंकी स्तुति की। इसीके साथ उसने 'श्रीगणेश'की भी स्तुति की थी। इस दृष्टान्तसे यह सिद्ध होता है कि 'श्रीगणेश' बौद्धधर्ममें बहुत प्राचीन कालसे अन्य देवी-देवताओंके साथ-साथ स्तुत्य हैं। 'श्रीगणेश'की मूर्तिकी रचना जिस प्रकार की गयी है, बौद्धोंने भी उसीसे मिलती-जुलती ही अपने कुछ महापुरुष-लक्षणोंकी भी कल्पना की है।

वास्तवमें श्रीगणेश-पूजाकी परम्पराने महायानी बौद्ध-सम्प्रदायरूपी यानपर आरूढ़ होकर विश्वके अधिकाधिक देशोंकी यात्रा की है। इस संक्षिप्त विवेचनसे भी यह सिद्ध हो जाता है कि बौद्ध धर्म, साहित्य एवं साधनामें, 'श्रीगणेश-पूजा'की परम्परा सदैवसे रही है और आज भी, विशेषकर महायान बौद्ध-सम्प्रदायमें संस्कारवश प्रतिष्ठित है।

~~~o~~~

समर्थ श्रीरामदासस्वामीजीके काव्यमें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीकेशव विष्णु मुळे)

समर्थ श्रीरामदासस्वामीजीकी ख्याति महाराष्ट्रके रामभक्त संतके रूपमें है। वे गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक छत्रपति श्रीशिवाजी महाराजके गुरुदेव थे। उन्होंने मराठी तथा हिंदी-भाषामें विपुल काव्य-रचना की है। उन्होंने स्थान-स्थानपर अपने काव्यमें श्रीगणेशकी स्तुति तथा वन्दना करते हुए श्रीगणेशका मनोरम रूप व्यक्त किया है।

'मनोबोध' काव्यके प्रारम्भिक श्लोकमें श्रीगणेशजीका वर्णन निम्न प्रकारसे किया गया है—

'गणाधीश जो ईश सर्वागुणांचा। मुळारंभ आरंभ तो निर्गुणाचा ॥ नमू……॥'

'जो समस्त गणोंके अधिपति हैं, जो यश, श्री, धर्म, निर्वाण, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि गुणोंके स्वामी हैं तथा जिनसे निर्गुण परब्रह्मका आरम्भ होता है, ऐसे श्रीगणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

श्रीगणेशको 'गुणपति' भी कहा जाता है। 'गुणाधीश'में उनके समस्त गुणोंके स्वामित्वका निर्देश है। गणोंमें सांख्यके चौबीस तत्त्व अर्थात् पंचेन्द्रिय, पंचप्राण, पंच विषय एवं अन्तःकरणचतुष्टय आदिका अन्तर्भाव होता है। उपासनामें इन चौबीस तत्त्वोंके ज्ञानसे उपासक मूल उपास्य पुरुषकी उपासना सहज ही कर पाता है।

'श्रीमद्दासबोध' समर्थ श्रीरामदासस्वामीजीका श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ है। उसमें प्रथम दशकके द्वितीय समासमें 'श्रीगणेशस्तवन' है। उस समासका आरम्भ निम्न प्रकार है—

ॐ नमोजि गणनायेका। सर्वसिद्धिफळदायेका। अज्ञान-भ्रांति छेदका। बोधरूपा ॥

श्रीगणेश ओंकार—प्रणवस्वरूप हैं। वे श्रीगणेशरूपमें प्रणवाकार हैं, ऐसा उल्लेख श्रीसंत ज्ञानेश्वरजीने भी अपनी 'ज्ञानेश्वरी' के मंगलाचरणकी काव्य-पंक्तियोंमें किया है—

अकार चरणयुगुल। उकार उदर विशाळ। मकार महामंडळ। मस्तकाकारें ॥ (१। १९)

'अकार' श्रीगणेशका चरणद्वयरूप है, 'उकार' विशाल उदररूप है और 'मकार' मस्तकरूप है। इस प्रकार श्रीगणेश एकाक्षर ब्रह्मरूप हैं।

ये ओंकारस्वरूप श्रीगणेशजी प्रकृतिके गुणोंके नायक हैं। ऐसे ओंकाररूप गणनायक, सर्वसिद्धिफलदायक, अज्ञान-भ्रान्ति-विभेदक तथा ज्ञानस्वरूप श्रीगणेशजीकी समर्थ श्रीरामदासस्वामीजी वन्दना करते हैं। वन्दनाके बाद इस 'गणेश-स्तवन' में फिर प्रार्थना करते हैं कि ''आप मेरे हृदयमें आकर निरन्तर निवास करें। मैंने केवल आपके लिये ही अपने हृदयको पूर्णरूपसे रिक्त कर दिया है। मुझ-जैसे वाक्शून्यपर आपकी कृपादृष्टि
~~~

हो, जिससे मेरे मुखसे इस ग्रन्थकी निष्पत्ति हो सके। आपकी कृपासे मेरे भ्रम नष्ट होंगे तथा विश्वभक्षक काल भी मेरा दास बन जायगा। आपकी कृपा प्राप्त होते ही विघ्न काँप उठते हैं तथा आपका मंगल-नामस्मरण करते ही वे भाग जाते हैं। इसीलिये आपको 'विघ्नहर्ता' कहा जाता है। आप हम अनाथोंके आधार हैं। हरि, हर आदि देवगण नित्य आपको विनम्र प्रणाम करते हैं। मंगलनिधि श्रीगणेशजीको श्रद्धापूर्वक नमन करके जो कार्यारम्भ किये जाते हैं, वे निर्विघ्न पूर्ण होते हैं; उसमें कोई संकट, आघात या बाधा उत्पन्न नहीं होती। श्रीगणेशजीका ध्यान करनेसे पूर्ण समाधान प्राप्त होता है। एकाग्र अन्तःकरणसे ध्यान करनेपर वे नेत्रोंमें समा जाते हैं। इस (ध्यानकी प्रगाढ़ता)-से शरीरकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं।''

समर्थ श्रीरामदासस्वामी पुनः कहते हैं—''श्रीगणेश! आपका सगुण रूप महालावण्ययुक्त है। आपके कुशल, ललित नृत्यसे सारे देवतागण चकित हो जाते हैं। ब्रह्मानन्दके मदसे उन्मत्त आपका शरीर थिरकता है तथा मुखपर अवर्णनीय प्रसन्नता दिखायी देती है। आपका रूप प्रचण्ड, भव्य, महान् हाथीके सदृश है। आपके विशाल मस्तकपर सिन्दूरकी लालिमा दमक रही है। आपके ज्ञानरूप गण्डस्थलसे स्रवित होनेवाले परमार्थोपदेशका सेवन करनेके लिये भक्त-भ्रमरोंका समूह 'सोऽहम्' का शुभ गुंजार करते हुए आपके चरण-कमलोंपर मँडराता रहता है। आपकी शुण्ड सरल दण्डस्वरूप है तथा अन्तमें मुड़ी हुई है। आपका मस्तक चमत्कारी तथा शोभायुक्त है; अधर कुछ लंबे हैं और मस्तकसे लगातार मद झरता रहता है। आप चौदह विद्याओंके स्वामी हैं। आपके लघु नेत्रोंकी तथा विशाल कर्णोंकी क्रीडाएँ विलोभनीय हैं। आपके मस्तकपर रत्नखचित तेजस्वी मुकुट सुशोभित है, जिसके रत्नोंसे भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रकाशकी किरणें विकीर्ण होती रहती हैं। कर्णकुण्डलोंकी नीलमणिकी ज्योति अवर्णनीय है। आपके शुभ्र दन्तपर रत्नजटित सुवर्ण-कंकण है, जो लटकते हुए लघु सुवर्ण-पत्रोंसे सुशोभित है। आपका उदर थुलथुल है तथा नागराजसे घिरा हुआ है, मानो वह आपका कटिबन्ध ही है। कमरबंदमें लगे हुए घुँघुरू मधुर ध्वनि करते हैं। आप चतुर्भुज तथा लम्बोदर हैं एवं पीताम्बर पहने हुए हैं। आपके उदरपर बैठा नागराज नाभि-कमलपर बैठकर फूत्कार करता है तथा सतत इधर-उधर देखता है। कण्ठसे लटकती हुई विविध पुष्प-मालाएँ सर्प-मालाओंसे मानो स्पर्धा करती हैं। रत्नजटित कण्ठमालाका स्वर्णपदक आपके हृदयपर विराजमान है। आपके एक हाथमें फरसा, दूसरे हाथमें कमल, तीसरेमें अंकुश और चौथेमें आपका अति प्रिय लड्डू है।''

''आप उत्कृष्ट नट हैं। नाना छन्द तथा तालोंपर होनेवाले आपके कुशल नृत्यकी कला आकर्षक है। आपके नृत्यके समय झाँझरियाँ, मृदंग आदि वाद्य बजाये जाते हैं। आपका पद-विन्यास इतना गतिमान् है कि आप एक क्षण भी स्थिर नहीं रहते । आपकी वह नृत्यमूर्ति शोभापूर्ण, सुलक्षण और अतीव सुन्दर है। आप जब नृत्य करते हैं, तब आपके चरणोंके नूपुर मधुर रुनझुन ध्वनि करते हैं, बाजूबंदकी घंटियाँ निनादित हो उठती हैं तथा घुँघुरुओंसे युक्त आपके चरण-विन्यास अत्यन्त मनोहर होते हैं। आपके नृत्यसे सारी शिवसभा अपूर्व शोभासे मण्डित हो जाती है। वह शिवसभा दिव्य अम्बरोंसे आच्छादित है। उस सभामें आपके नृत्यके समय अष्ट-नायिकाओंके गानके स्वर मुखरित होते रहते हैं।''

''इस तरह सर्वांगसुन्दर, सकल विद्यानिधि श्रीगजाननको मैं भावभरे अन्तःकरणसे साष्टांग प्रणिपात करता हूँ। श्रीगणेशका ध्यान करनेसे भ्रान्त व्यक्तिको मति-प्रकाश प्राप्त होता है तथा श्रीगणेशका गुणगान सुननेसे श्रीसरस्वतीजी प्रसन्न होती हैं। जिन श्रीगणेशका ब्रह्मादिक देवता वन्दन करते हैं, वहाँ मानवकी क्या गणना? मन्दमति मानवको विनम्रतासे गणेश-पूजन करना चाहिये, जिससे वह मूर्ख, हेय लक्षणोंवाला तथा दीनातिदीन होनेपर भी कुशल एवं सर्वकला-प्रवीण हो जाय। श्रीगणेशके भजनसे उसकी सारी कामनाएँ सफल होती हैं। परम समर्थ श्रीगणेश सर्वमनोरथ पूर्ण करते हैं। शास्त्रका वचन है कि '**कलौ चण्डीविनायकौ**'। ऐसे मंगलमूर्ति श्रीगणेशकी यह स्तुति मैंने यथामति परमार्थप्राप्तिकी इच्छासे की है।''

इसी प्रकार श्रीदासबोधमें स्थान-स्थानपर गणेशजीका स्मरण और उनकी स्तुति की गयी है। समर्थ श्रीरामदास-स्वामीद्वारा रचित श्रीगणेशकी आरती महाराष्ट्रमें तो घर-घरमें पूजाके समय सर्वप्रथम गायी जाती है। इतना ही

नहीं, उनके 'ओवी चतुर्दशशतक' नामक अध्यायमें तथा उनकी अनेक रचनाओंके विभिन्न स्थानोंपर बड़े भावपूर्ण हृदयसे श्रीगणेशजीका स्मरण-वन्दन हुआ है। जहाँ-जहाँ श्रीगणेशजीका स्मरण-वन्दन हुआ है, वहाँ-वहाँ समर्थ श्रीरामदासस्वामीजी महाराजकी अगाध गणेश-भक्तिका मधुर दर्शन मिलता है। कहीं श्रीगणेशजीके भव्य स्वरूपका वर्णन है, कहीं उनकी लीलाओंका चिन्तन है, कहीं उनके अमित सामर्थ्यका प्रकाश है, कहीं उनके अनन्त गुणोंकी जय-जयकार है, कहीं उनके परब्रह्म और ओंकार-तत्त्वकी ओर संकेत है, कहीं उनसे कातर याचना है, कहीं उनकी कृपाके प्रभावका दिग्दर्शन है, कहीं उनके भजन-पूजनके फलका उन्मुक्त गान है, कहीं गणेशाराधनके निजी अनुभवका उल्लेख है। समर्थ श्रीरामदासजी महाराजको जब-जब अवसर मिला है, श्रीगणेशजीके स्मरण-वन्दनमें वे विभोर हो उठे हैं।

~~0~~

श्रीज्ञानेश्वरमहाराजकी गणेश-भावना

(लेखक—ह० भ० प० श्रीधुंडा महाराजजी देगलूरकर)

महाराष्ट्रके प्रसिद्ध संत श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने श्रीमद्भगवद्गीतापर मराठी भाषामें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सारगर्भित एवं सुबोध टीका लिखी है, जिसका विद्वानोंमें और साधकोंमें बड़ा ही आदर है। महाराष्ट्रमें वारकरी भक्त और अन्य भावुक व्यक्ति भी नियमसे इस ग्रन्थका पारायण वैयक्तिक या सामूहिक रूपसे करते हैं। इस टीका-ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वरी' के आरम्भमें विस्तृत मंगलाचरण है। ग्रन्थके आरम्भमें मंगलाचरण करना अनादिकालीन शिष्टाचार है, जिससे ग्रन्थप्रणयनका कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो सके। मंगलाचरणमें श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने श्रीगणेशभगवान्‌का ही स्मरण किया है। महान् भक्त श्रीतुलसीदासजीने भी रामचरितमानसके आरम्भमें श्रीगणेशको ही नमन किया है, जिससे कार्यके मध्यमें आनेवाले सम्पूर्ण विघ्न शान्त हो जायँ।

उपनिषदोंमें तथा गीतामें निर्गुण-निर्विशेष परब्रह्मके प्रतीकस्वरूपमें प्रणवका वर्णन आया है। उस प्रणवका स्मरण करनेके बाद श्रीज्ञानेश्वरमहाराज उसी प्रणवसे भगवान् श्रीगणेशजीकी एकात्मताकी स्थापना अपने मंगलाचरणमें करते हैं। वे कहते हैं—'हे ओंकार! आप आद्य हैं; वेद आपका प्रतिपादन करते हैं; आप आत्मस्वरूप हैं; आपका ज्ञान केवल अनुभवसे हो सकता है; आप ही श्रीगणेश हैं, जो सभीकी बुद्धिके प्रकाशक हैं। आपको प्रणाम है।'

ॐ नमो श्रीआद्य। वेदप्रतिपाद्य।
जय जय स्वसंवेद्य। आत्मरूप ॥ १ ॥
देव तू ही श्रीगणेश। सकल मति प्रकाश।
कहे निवृत्तिका दास। सुनिये जी ॥ २ ॥

कोई भी उपासक अपने उपास्यकी मूर्ति अपनी भावना, रुचि तथा शक्तिके अनुसार ताम्र, रजत, सुवर्ण आदि धातुओंसे या स्फटिक, प्रवाल, रत्न, शिला, काष्ठ, मृत्तिका आदि वस्तुओंसे बनाता या बनवाता है। श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने यदि वैसी मूर्ति ही बनायी तो सामान्य उपासकोंमें और उनमें क्या भेद रहेगा? उन्होंने श्रीगणेशमूर्तिका आकार तो '**एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्**' ऐसा ही रखा है; परंतु उनकी मूर्ति-निर्माणकी सामग्री स्थूल नहीं, सूक्ष्म है। गणपत्यथर्वशीर्षका '**त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः।**' (४) '**त्वं चत्वारि वाक्पदानि**' (५) सूत्र लेकर श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशमूर्तिका निर्माण किया है। प्रणव, जो ब्रह्मस्वरूप है तथा वेद और वाणीका मूल है, उसकी आकृति ॐ ही भगवान् श्रीगणेशकी साकार मूर्ति है। प्रणवको 'तू' कहकर सम्बोधन करना और स्पष्ट शब्दोंमें प्रणवको गणेश कहना यह सिद्ध करता है कि सम्पूर्ण सत्य श्रीज्ञानेश्वरमहाराजको पूर्णतः प्रत्यक्ष है। इस वर्णनमें साहित्य और तत्त्व-ज्ञानका योग्य समन्वय दिखायी देता है। अखिल '**शब्दब्रह्म**' श्रीगणेशजीकी सुन्दर और सुवेषवाली मूर्ति है। शब्दब्रह्ममें जो निर्दोष वर्ण-रचना है, वही उनका सौन्दर्य है। वेदस्वरूप निर्दोष है, इस कारण शब्दब्रह्मरूप श्रीगणेशके स्वरूपको निर्दोष कहा है। स्वरूप-निश्चयके पश्चात् मंगलाचरणमें

श्रीगणेशजीके पृथक् अवयवोंका विचार किया गया है। वाङ्मय कहनेसे उसमें वेद, स्मृति, पुराण, षड्दर्शन, वार्तिक, काव्य-नाटकादि—सबका समावेश होता है। परंतु किस अंगमें किसकी योजना उचित है, उसका क्रम बड़ी योग्यतासे बताया गया है। श्रुतियोंके पश्चात् स्मृतियोंका क्रम आता है, जिनमें वर्णाश्रमधर्म, सामान्य-विशेष-धर्म, शौचाशौच-विचार, प्रायश्चित्त और आपद्धर्मादि विषयोंका विस्तृत विचार किया गया है। स्मृतियाँ ही श्रीगणेशजीके विभिन्न अवयव हैं और उनका अर्थ-सौन्दर्य ही श्रीगणेशजीका लावण्य है—

शब्द-ब्रह्म यह अशेष । वही है जो मूर्ती सुवेष।
वहाँ वर्ण भी है निर्दोष । सजाया जो॥ ३॥
स्मृति ही है अवयव । रेखाएँ अंगके भाव।
लावण्य रूप-वैभव । अर्थ शोभा॥ ४॥

आभूषण अंगके सौन्दर्यको अत्यधिक बढ़ा देते हैं। पुराण-साहित्य ही आभूषणस्थानीय हैं। पुराणोंने श्रुतिप्रतिपादित गूढार्थपर अधिक प्रकाश डाला है, इस कारण पुराणोंकी मणिजटित आभूषणोंसे उपमा दी गयी है—

अष्टादश जो पुराण । वही है मणि भूषण।
पदपद्धति कोंदण । प्रमेय रत्नका॥ ५॥

अब श्रीगणेशजीके वस्त्रका वर्णन करते हैं—

पदबन्ध है वसन । रँगाया अति महीन।
साहित्य शोभायमान । किनारी है॥ ६॥

शब्द-ब्रह्मस्वरूप साहित्यमें जो रचना-कौशल है, वही सुन्दर और चमकीला रंगीन वस्त्र है। उस रचनामें अनेकविध जो शब्दालंकार और अर्थालंकार हैं, वे ही उस वस्त्रके सूक्ष्म और चमकीले तन्तु हैं। साहित्यमें जो काव्य-नाटकादिकोंका भी समावेश है, उनकी योजना शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशके चरण-युगलमें मंजुल ध्वनि करनेवाले नूपुरोंके स्थानपर की है—अनेक तत्त्वोंका निरूपण विलक्षण-निपुणता तथा शुभ लक्षण उचित वचन रत्नके समान दीखते हैं।

मानो है काव्य-नाटक । सोचनेसे सकौतुक।
पदकी क्षुद्र घंटिका । अर्थ ध्वनि॥ ७॥
अनेक तत्त्वोंका निरूपण । उसका नैपुण्य विलक्षण।
उचित बचन सुलक्षण । दीखे रत्न सम॥ ८॥

श्रीगणेशकी कमरमें बँधा हुआ एक उपवस्त्र होता है, उसको 'मेखला' कहते हैं। व्यास-वाल्मीकि आदि महाकवियोंकी बुद्धिकी प्रतिभा अद्वितीय है। वही मेखला-स्थानीय है—

व्यासादिकोंका शुद्ध ज्ञान । शोभता मेखला समान।
उसकी दशा है महीन । झलकती सदा॥ ९॥

शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशजीके कर-कमलका स्वरूप दिखाते हुए श्रीज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं—

कहलाते जो षड्दर्शन । जैसे भुजदंड महान्।
तभी हे असंगतपूर्ण । आयुध करमें॥ १०॥

षड्दर्शनोंकी हाथके स्थानपर योजना की है। जैसे भारतीय आस्तिक-दर्शन छः हैं, वैसे ही भगवान् श्रीगणेशके छः हाथ हैं। यहाँ 'आस्तिक'का अर्थ है—वेदोंके अस्तित्व और महत्त्वको स्वीकार करनेवाले। हमलोग चतुर्भुज गणेशको वन्दना करते हैं; किंतु त्रेतायुगमें अवतरित श्रीगणेशजीके छः हाथ हैं। ये छः दर्शनशास्त्र ही छः हाथ हैं।

षड्दर्शनोंमें प्रत्येक दर्शनके प्रमाण-प्रमेय-विचार स्वतन्त्र हैं। ये भिन्न-भिन्न विचाररूपी आयुध ही भिन्न-भिन्न हाथोंमें सुशोभित हैं। कहा है—

तर्क ही है परशु । नीति-भेद अंकुश।
वेदान्त महारस । शोभता मोदक॥ ११॥

तर्कको परशु (कुल्हाड़ी) कहा है। न्यायदर्शनमें तर्ककी प्रधानता है। गौतमप्रणीत न्यायदर्शनरूपी हाथमें तर्करूपी परशु आयुध है। वैशेषिक-दर्शनरूपी हाथमें नीतिभेदरूपी अंकुश है। श्रीगणेशजीके एक हाथमें मोदक रहता है। वेदान्तको महारसस्वरूप मोदक माना गया है।

एक हाथमें है दन्त। स्वभावसे ही खण्डित।
जो बौद्धमत संकेत। वार्तिकोंका॥ १२॥

श्रीगणेशजीके एक हाथमें खण्डित दन्त रहता है। यह टूटा हुआ दन्त बौद्धमतके समान है, जिसका खण्डन श्रीकुमारिलभट्टने अपने 'श्लोकवार्तिक' और 'तन्त्रवार्तिक'में किया है। वार्तिकमें भारतके प्रचलित अवैदिक मतका खण्डन है। श्रीगणेशजीके एक हाथमें पद्म (कमल) है और एक हाथ अभयमुद्रांकित है। उस विषयमें श्रीज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं—

सहज सत्कारवाद । है पद्मकर वरद।
धर्म प्रतिष्ठामें सिद्ध । अभय हस्त॥ १३॥

सांख्यशास्त्रका सत्कार्यवाद ही पद्महस्त है। वेदान्त और सांख्यदर्शनमें मत-भिन्नता है; फिर भी दोनोंने ही

सत्कार्यवाद माना है। सेश्वर-सांख्य कहलानेवाला पातंजलयोगदर्शन ही अभयमुद्रांकित हाथ है। श्रीगणेशजीके अवयवोंमें शुण्ड प्रमुख होता है; अतः निर्मल विवेकको शुण्डका स्थान दिया गया है—

विवेकवन्त सुविमल। वही सुण्ड दण्ड सरल।
है परमानन्द केवल। महासुखका ॥१४॥

सत्यासत्यनिर्णायक विवेक ही शब्दब्रह्म श्रीगणेशका सरल शुण्ड है। गज सूँडसे सूँघकर ही भले-बुरेकी पहचान करता है। श्रीगणेशका एक नाम 'एकदन्त' है। उसके विषयमें कहा गया है—

अजी संवाद है दशन। जो है समता शुभ्रवर्ण।
देव उन्मेष सूक्ष्मेक्षण। विघ्नराज ॥ १५ ॥

शास्त्रमें संदेहोंके निवारणके लिये अथवा सिद्धान्त-निरूपणके लिये जो परस्पर प्रश्नोत्तर हैं, ये संवाद ही शुभ्र वर्णात्मक दन्त हैं। गजके नेत्र बहुत सूक्ष्म होते हैं। सत्यका उद्घाटन करनेके लिये शास्त्रोंकी सूक्ष्म दृष्टि ही श्रीगणेशके नेत्र हैं। पूर्वोत्तर-मीमांसा, दोनों श्रीगणेशके कान माने गये हैं—

पूर्व उत्तर मीमांसा मान। उसके हैं दो श्रवण स्थान।
मुनि-मन बोधामृत पान। करते भ्रमरसे ॥१६॥

गजके गण्डस्थलसे जो मदस्राव होता है, उसके विषयमें श्रीज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं कि 'शास्त्रोंसे निस्सृत होनेवाला बोधरूपी अमृत ही मदका स्राव है और बोधामृतरूपी मदस्रावपर मननशील मुनिरूपी भ्रमर उसका सेवन करनेके लिये सतत मँडराते रहते हैं।' श्रीगणेशजीके गलेमें प्रवालकी माला पहनायी जाती है, उसका स्वरूप बताते हैं—

प्रमेय प्रवाल सुप्रभ। द्वैत अद्वैत है निकुम्भ।
तुल्य बल है जो सुलभ। मस्तक पर ॥ १७ ॥

उपनिषदोंके जो प्रमेय सिद्धान्त हैं, वे ही श्रीगणेशके गलेमें धारण की जानेवाली प्रभायुक्त प्रवालमणियोंकी माला हैं। द्वैताद्वैतके शास्त्रीय सिद्धान्त ही दोनों गण्डस्थल हैं, जो समानरूपसे शोभित हो रहे हैं। इन शब्दब्रह्म श्रीगणेशजीकी पूजा सदा चलती रहती है। पूजनोपरान्त जो पुष्पांजलि चढ़ायी जाती है, उसके सम्बन्धमें वर्णन करते हुए श्रीज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं—

उसपर है दस उपनिषद्। जिसके उदार ज्ञान मकरंद।
मुकुटपर जो सुमन सुगन्ध। सुहाते हैं ऐसे ॥ १८ ॥

ज्ञानरूपी मकरन्दसे युक्त दशोपनिषद्रूपी पुष्पांजलि श्रीगणेशजीको अर्पित की गयी है, वही उनके मस्तकके मुकुटपर विराजमान है। इससे उनकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। श्रीगणेशजीके अवयवोंको प्रणवकी तीन मात्राओंके समान बताया गया है।

अकार चरण युगुल। उकार उदर विशाल।
मकार है महामंडल। मस्तकाकार ॥ १९ ॥
जहाँ ये तीनों हुए एक। शब्दब्रह्म प्रकटानेक।
गुरु-कृपासे जाना देख। यह आदिबीज ॥ २० ॥

'अ'कार चरण-युगल है, 'उ'कार उदरस्थानीय है और 'म'कार महामण्डलाकार मस्तक है। इन तीन मात्राओंके संयोगसे ॐकी रचना होती है, जिसमें सम्पूर्ण शब्दब्रह्म समाविष्ट है। श्रीज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं कि 'मुझे श्रीगुरुकृपासे इन शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेश-भगवान्‌का ज्ञान हुआ एवं दर्शन मिला; मैं उनको नमस्कार करता हूँ।'

~~~ ० ~~~

जय विघ्नेश्वर हे!

तोहि मनाऊँ गणपति हे, गौरीसुत हे, करो विघ्नका नाश, जय विघ्नेश्वर हे॥
विद्याबुद्धि-प्रदायक हे, वरदायक हे, रिद्धि-सिद्धिदातार, जय विघ्नेश्वर हे॥
वक्रसूँडके धारक हे, उद्धारक हे, जय गजवदन गणेश, जय विघ्नेश्वर हे॥
मङ्गलकर दुखहर्ता हे, इकदन्ता हे, मूषकवाहन देव, जय विघ्नेश्वर हे॥
'निर्मल' की यह विनय सुनो लम्बोदर हे, करो बुद्धिका दान, जय विघ्नेश्वर हे॥

—श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल'

~~~ ० ~~~

संत श्रीएकनाथजीका श्रीगणेश-चिन्तन

(लेखक—श्रीबसन्त शेषगीरराव कुलकर्णी)

महाराष्ट्रके संतसमुदायमें श्रीएकनाथजीका स्थान बहुत ही ऊँचा है। संत एकनाथजीके बारेमें न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे महोदयकी एक उक्ति प्रसिद्ध है कि 'ये ही महाराष्ट्रके सच्चे नाथ प्रतीत होते हैं'। श्रीएकनाथजी एक महान् साक्षात्कारी संत थे। उन्होंने अपने अनुभवके आधारपर मुक्ति-प्राप्तिके लिये भगवन्नाम-संकीर्तनका सीधा-सादा मार्ग लोगोंको दिखाया। श्रीएकनाथजीकी ग्रन्थ-सम्पदा तो बहुत बड़ी है। इन ग्रन्थोंमें श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धके ऊपर मराठीमें उन्होंने जो विस्तृत टीका लिखी है, वह महाराष्ट्रमें 'श्रीएकनाथी भागवत'के नामसे सुविख्यात है। इस ग्रन्थके मंगलाचरणमें श्रीएकनाथजीने श्रीगणेशजीकी जो स्तुति की है, वह बहुत ही रहस्यमयी जान पड़ती है। श्रीगणेशजीके अनेक नामोंमें 'एकदन्त', 'लम्बोदर' और 'विघ्नहर'—ये तीन नाम भी हैं। अपनी स्तुतिमें श्रीएकनाथजीने पहले-पहल इन तीन नामोंकी व्याख्या की है और इसके बाद उन्होंने श्रीगणेशविग्रहका विशद वर्णन किया है। भगवान् श्रीगणेशको 'एकदन्त' बताकर तथा उनको नमस्कार करके उन्होंने 'एकदन्त' नामकी व्याख्या की है। वे कहते हैं कि ''श्रीगणेशजीका 'एकदन्त' नाम एकत्वका बोधक है। अतः श्रीगणेशजी एकमेवाद्वितीय ब्रह्म ही हैं। ब्रह्मरूपी गणेशकी उस एकतामें ही सृष्टिरूपी अनेकता विद्यमान है। इस अनेकतामें भी उनकी एकता कभी भंग नहीं हो पाती''—

नमन श्रीएकदंता। एकपणें तूंचि आतां॥
एकीं दाविसी अनेकता। परी एकात्मता न मोडे॥

'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्' (४) में कहा है—

'त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।'

श्रीगणेशजीका दूसरा नाम 'लम्बोदर' है। लम्बोदरका अर्थ है—विशाल उदरवाले। ब्रह्मतत्त्व तो बृहत् है, **'महतो महीयान्'** है और परिमाणशून्य है; अतः गणेशजीका उदर या स्वरूप भी विशाल है। उस उदरसे जगत्का आविर्भाव होता है और अन्तमें वह उस विशाल उदरमें ही प्रविष्ट हो जाता है—

तुजमाजी वासु चराचरा। म्हणोनि बोलिजे लंबोदरा॥
यालागीं सकळांचा सोयरा। साचोकारा तूं होसी॥

'गणपत्यथर्वशीर्ष' (५) में यह बात आयी है—

'सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति।'

इतना ही नहीं, इस 'लम्बोदर' नामसे वे सभीके माता-पिता भी हैं। उपरिनिर्दिष्ट क्रमसे गणेशजीका तीसरा नाम है 'विघ्नहर'। श्रीगणेशजीको परमब्रह्म मानते हुए जो उपासना करता है, उस नरके समक्ष संसारमें विघ्न नहीं आते। पर नर बनना सहज नहीं। 'नर'-शब्दकी व्याख्या है—'**न+रम्**' अर्थात् विषयोंमें जो रममाण नहीं होता, वही 'नर' है। विषयविरक्त नरके सम्पूर्ण विघ्नोंको श्रीगणेशजी हर लेते हैं—

तुज देखे जो नरु। त्यासी सुखाचा होय संसारु॥
यालागीं विघ्नहरू। नामादरू तुज साजे॥

हर्ष तो गणेशजीका मुख ही है। उस मुखमें सूर्य-चन्द्रादिकोंको भी प्रकाशयुक्त बनानेवाला उनका दाँत अति निर्मल है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार ही उनकी चार भुजाएँ हैं—

हरुष तें वदन गणराजा। चाऱ्ही पुरुषार्थ त्याचि चाऱ्ही भुजा॥
प्रकाशिया प्रकाशी वोजा। तो झळकत तुझा निजदंतु॥

पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा ही श्रीगणेशजीके श्रवणस्थानीय हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी आदि वाणी उनके मुखमें नित्य विराजित रहती हैं—

पूर्व उत्तर मीमांसा दोना। लागलिया श्रवणस्थानीं॥
निःशब्दादि वाचा वदनीं। कर जोडूनि अभिया॥

'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्' (४-५) में भी कहा है—

'त्वं चत्वारि वाक्पदानि। त्वं वाङ्मयः।'

जब गणेशजी दृष्टिपात करते हैं, उसी समय यह समग्र सृष्टि आविर्भूत होती है। यही उनकी आनन्दमय दृष्टि है—

एकेचि काळीं सकळ सृष्टी। आपुलेपणें देखत उठी॥
तेचि तुझी देखणी दृष्टी। सुखसंतुष्टी विनायका॥

उपनिषद्‌में '**कं ब्रह्म**' जो कहा है, इस उक्तिके अनुसार गणेशजी सुखमय हैं। उनके नाभिस्थानमें आनन्द समाया हुआ है। इतना ही नहीं, वे कटिमें बोधरूपी कटिसूत्र बाँधकर मानो विघ्ननाशके लिये कटिबद्ध हैं—

सुखाचें तेललें दोंद। नाभीं आवर्तला आनंद॥
बोधाचा मिरवे नागबंध। दिसे सन्नद्ध साजिरा॥

श्रीगणेशजी शुद्ध सत्त्वका शुभ्र वस्त्र पहनकर बैठे हैं। अद्वैत-वेदान्तमें शुद्ध सत्त्वका दूसरा नाम 'माया' है। इस वेदान्तमें प्रकृतिके दो भेद हैं। एक तो वह, जिसमें सत्त्वगुण शुद्ध रहता है और दूसरा वह, जिसमें सत्त्वगुण अन्य दो गुणोंके साहचर्यसे अशुद्ध हो जाता है। पहलेका नाम 'माया' है और दूसरेका नाम 'अविद्या'। यह माया ही ईश्वरकी उपाधि है। गणेशजीका शुद्ध सत्त्वमय वस्त्र पहनना मायाशबल ब्रह्मका परिचायक है। इस प्रकार शुभ्र वस्त्र पहनकर बैठे हुए श्रीगणेशजी अनेक सुवर्णमय अलंकारोंसे सुशोभित हैं—

शुद्धसत्वाचा शुक्लांबर। कासे कसिला मनोहर॥
सुवर्णवर्ण अलंकार। तुझेनि साचार शोभति॥

प्रकृति और पुरुष, जिनको उपनिषद्‌में 'रयि' और 'प्राण' बताया गया है, साथ ही जिनसे बहुविध प्रजा उत्पन्न होती है, वे दोनों श्रीगणेशजीके दो चरण हैं। श्रीगणेशजी सहजासनके ऊपर पूर्णरूपसे स्थित हैं। उनकी कृपासे विघ्न तो ढूँढ़नेसे भी नहीं मिलते—

प्रकृतिपुरुष चरण दोनी। तळीं घालिशी बोजावुनी॥
तयांवरी सहजासनीं। पूर्णपणीं मिरवसी॥
तुझी अणुमात्र झालिया भेटी। शोधिता विघ्न न पड़े दृष्टी॥

संसारके पाश तो बड़े भीषण हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये ही संसारके प्रधान पाश हैं। जीववर्गको इन पाशोंसे ही बहुत क्लेश उठाना पड़ता है। श्रीगणेशजी अपने परशुसे इन पाशोंको काट देते हैं। इसमें संशय नहीं कि श्रीगणेशजीके अनन्यभक्त इन पाशोंसे मुक्त हो जाते हैं—

तोडिसी संसार फांसोटी। तोचि तुझे मुष्टी निजपरशु॥
भावें भक्त जो आवडे। त्याचें उगविसी भवसांकड़ें॥

अनन्यभक्तिसे युक्त नरको श्रीगणेशजी अपने अंकुशद्वारा संसार-समुद्रसे अपनी ओर खींच लेते हैं। श्रीएकनाथजी निरपेक्षताको बहुत महत्त्व देते हैं। वे कहते हैं कि 'जो सच्चा निरपेक्ष है, उसके सुखको श्रीगणेशजी बढ़ाते हैं।' इतना ही नहीं, वे उस भक्तको हर्षमय मोदक अपने हाथसे खिलाकर उसको शान्ति प्रदान करते हैं—

बोढुनि काढ़िसी आपणाकडे। निजनिवाडें अंकुशें॥
साच निरपेक्ष जो निःशेख। त्याचें तूँचि वाढविसी सुख॥
देंऊनि हरिखाचे मोदक। निववि‍सी देख निजहस्तें॥

उपनिषद्‌में '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**' वचन आया है। अर्थात् ब्रह्मका अधिष्ठान सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुमें भी है और महान्-से-महान्‌में भी। श्रीगणेशजीद्वारा मूषकको वाहन बनाया जाना यह सूचित करता है कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुमें उनका अधिष्ठान है—

सूक्ष्माहूनि सूक्ष्म सान। त्यामाजी तुझें अधिष्ठान॥
यालागीं मूषकवाहन। नामाभिधान तुज साजे॥

श्रीगणेशजीकी आकृति सम्पूर्णतः न तो नराकार है और न गजाकार। वास्तवमें वे व्यक्त और अव्यक्तसे अतीत हैं और निर्विकार हैं। यही उनका स्वरूप है—

पाहतां नरू ना कुंजरू। व्यक्ताव्यक्तासी परू॥
ऐसा जाणोनि निर्विकारू। ....॥

महाराष्ट्रका भागवत-धर्म अद्वैतका मतानुयायी और भक्तिप्रधान है। भागवत-धर्ममें 'विष्णु', 'वासुदेव', 'राम' और 'कृष्ण'—इन देवताओंका यद्यपि प्राधान्य है, तथापि महाराष्ट्रका भागवत-धर्म 'शिव', 'गणेश', 'विष्णु' आदि देवताओंमें तारतम्य नहीं देखता। वह 'विष्णु', 'शिव', 'गणेश'—इन सभीको एक ही परमात्माका रूप मानता है। इस दृष्टिकोणसे श्रीएकनाथजीका यह श्रीगणेशवर्णन यथार्थ ही है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा गणेश-स्मरण

(१)

(लेखक—प्रो० श्रीरामाश्रयप्रसादसिंहजी)

भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने अपने ग्रन्थोंमें, विशेषकर 'श्रीरामचरितमानस', 'विनय-पत्रिका', 'श्रीरामलला-नहछू', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल' एवं 'बरवै-रामायण'के प्रारम्भमें गणेशजीकी वन्दना बड़ी भक्तिसे की है। गोस्वामीजी वैष्णव भक्तकवि थे और इनके इष्टदेव थे मर्यादापुरुषोत्तम परात्पर भगवान् श्रीराम। अतः यह प्रश्न उठ सकता है कि गोस्वामीजीने सबसे पहले गणेशजी और सरस्वतीजीकी ही वन्दना क्यों की? श्रीरामचरितमानसमें संस्कृतके प्रथम श्लोकमें ही सरस्वती और गणेशकी वन्दना मिलती है। फिर सोरठामें जब वन्दना प्रारम्भ करते हैं, तब गणेशको ही प्रथम स्थान देते हैं। 'विनय-पत्रिका'का पहला ही पद गणेश-वन्दनाका है। श्रीरामचरितमानस एवं विनय-पत्रिका गोस्वामीजी महाराजके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माने जाते हैं और इन दोनों ही ग्रन्थोंका प्रारम्भ श्रीगणेशजीकी ही वन्दनासे हुआ है।

गोस्वामीजीके इष्टदेव भगवान् राम हैं। इन्होंने अपने सारे ग्रन्थ भगवान् रामको आधार मानकर ही लिखे। उनका श्रीरामचरितमानस अद्वितीय ग्रन्थ है। वेदों, उपनिषदों एवं पुराणोंसे लेकर धर्मशास्त्रों, नीतिशास्त्रों तथा इतिहास-ग्रन्थोंके सार-तत्त्वको गोस्वामीजीने इस ग्रन्थमें रख दिया है। हमारे धर्मचिन्तन और संस्कृति-सभ्यताका मूर्तिमान् वाङ्मय है—रामचरितमानस। गोस्वामीजीकी इच्छा एक ऐसे काव्य-ग्रन्थके निर्माणकी थी, जो देवनदी गंगाकी सुविमल धाराके समान सबका हित करनेवाला हो। उनकी मान्यता भी है—

'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥'

(मानस १। १३। ४ १/२)

अतः ऐसे विश्व-कल्याणकारी काव्य-ग्रन्थके पूर्ण समापनके लिये मंगलके देवता गणेशकी वन्दना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य थी।

योगकी दृष्टिसे देखनेपर भी गणेशजीका स्मरण बड़ा ही उचित, स्वाभाविक और समीचीन लगता है। योगपथके अनुसार हमारे शरीरमें छः चक्र हैं। इनमें सर्वप्रथम चक्र है—'मूलाधारचक्र। इसके नीचे कुण्डलिनी शक्ति सोयी हुई है। कुण्डलिनी जगकर जब सुषुम्णामें प्रवेश करती है, तब सर्वप्रथम वह मूलाधारमें ही आती है। मूलाधारके जाग्रत् होनेका फल ही है—अपार प्रतिभाकी प्राप्ति। मूलाधारचक्रके देवता हैं—गणेश। उस चक्रकी बनावट ऐसी है कि गणेशजीकी आकृतिका ध्यान करनेसे मूलाधारकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अतः अव्याहत प्रतिभाकी प्राप्तिके लिये गोस्वामीजीने गणेशजीका स्मरण आवश्यक समझा।

हमारे यहाँ अति प्राचीनकालसे ही 'मंगलाचरण'की परम्परा चली आ रही है। ऐसा समझा जाता है कि मंगलाचरण करनेसे ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्ति हो जाती है। इसीलिये कविगण अपने काव्य-ग्रन्थोंकी निर्विघ्न-समाप्तिके लिये अपनी इच्छाके अनुरूप देवताओंका स्मरण करते आ रहे हैं। मंगलाचरणमें गोस्वामीजी श्रीगणेशजीके स्थानपर अपने आराध्य भगवान् श्रीरामका स्मरण कर सकते थे, परंतु चली आती हुई परम्पराको आदर देनेके लिये तथा धर्मशास्त्रोंकी मर्यादाकी रक्षाके लिये उन्होंने श्रीगणेशजीका ही स्मरण मंगलाचरणमें किया। हमारे धर्मशास्त्रोंके अनुसार मंगलके दाता हैं—गणेशजी। **'मङ्गलानां च कर्त्तारौ'** (१।१ श्लोक) तथा **'मोदक-प्रिय, मुद-मंगलदाता'** (१)—कहकर गोस्वामीजीने 'श्रीरामचरितमानस' तथा 'विनय-पत्रिका'में श्रीगणेशजीकी वन्दना की है। गोस्वामीजी श्रीरामजीके चरितमें माधुर्य एवं प्रसादगुणकी विशिष्टता अनिवार्य मानते थे। वे सभी प्रकारके विघ्नोंसे निश्चिन्त होकर पूर्ण शान्तिसे राम-काव्यकी रचना करना चाहते थे; अतः विघ्नेश्वर विनायक श्रीगणेशका स्मरण नितान्त आवश्यक था।

गोस्वामीजीके विचारसे गणेशजी 'विद्या-वारिधि' और 'बुद्धि विधाता' हैं। इस प्रकार गणेशजी विवेकके देवता हैं। मानव-जीवनमें सब कुछ हो और विवेक न हो तो उसका जीवन व्यर्थ है। विवेककी प्राप्ति किसी महान् संतसे ही हो सकती है और वह भी जिसपर

विदेशोंमें श्रीगणेश-मूर्तियाँ

ब्रिटिश संग्रहालयकी श्रीगणेशमूर्ति

श्रीगणेशकी स्थानक मूर्ति—जावा

श्रीगणेशकी कांस्य मूर्ति—बोर्नियो

श्रीगणेशका भित्तिचित्र—चीनी तुर्किस्तान

दो प्रसिद्ध प्राचीन गणेश-मूर्तियाँ

सिंहवाहिनी शक्तिसहित मूषकवाहन श्रीहेरम्बकी मूर्ति—नेपाल

श्रीगणेशकी कांस्य मूर्ति—कंबोडिया

भगवान् रामकी कृपा हो। संत-वन्दना प्रकरणमें गोसाईंजी कहते भी हैं—

'बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥'

(मानस १। २। २ 1/2)

गणेशजी उच्चकोटिके संत हैं। गणेशजीका समग्र स्वरूप ही उनके विवेकमय स्वरूपका प्रतीक है। सदसत्‌की पहचान जिस शक्तिसे हो, वह 'विवेक' है; अत: विवेकी बड़ा गम्भीर होता है और सुचिन्तन करता है। यही कारण है कि गणेशजीकी सवारी चूहा है। विवेकी सबकी सुनता है; अत: गणेशजीके कान बहुत बड़े-बड़े हैं। विवेकी वाचाल नहीं होता; अत: गणेशजी लम्बोदर हैं, हलके पेटवाले नहीं। चूहा कर्मका प्रतीक है। गणेशजी वाहनसहित ऐसे सुशोभित होते हैं, मानो विवेकने कर्मपर आसन जमा लिया हो। विवेकमें सत्संगकी अटूट आस्था होती है। इसीलिये जब प्रथमपूज्यका आसन ग्रहण करनेके लिये प्रतियोगिता हुई, तब जहाँ अन्य देवताओंने रास्तेमें नारद-जैसे संतका मिलना विघ्नप्रद समझा, उन्हें नमस्कारतक नहीं किया, वहीं गणेशजी उनसे मिलकर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने नारदजीको अपना प्रणाम निवेदित किया और वे सत्संगके लिये ठहर भी गये। परिणाम यह हुआ कि नारदजीके सत्सङ्गसे वे ही प्रथमपूज्य बने। अत: रामकाव्यके निर्माणके पूर्व ऐसे प्रथमपूज्य एवं सत्संगपरायण बुद्धि-विधाता देवता श्रीगणेशजीका स्मरण अनिवार्य था।

गणेशजीके विषयमें पौराणिक मान्यता है कि वे शंकरजीके विघ्न डालनेवाले गणोंके अधिष्ठाता एवं शासक हैं। अत: उन गणोंके विघ्नोंको सर्वथा रोककर आनन्द एवं मंगलका विधान करनेके लिये ही गोस्वामीजीने गणेशजीका स्मरण किया।

गोस्वामीजीने सारी मानव-जातिको ही राममय एवं रामप्रेमी (ईश्वर-प्रेमी) बनानेका पावन संकल्प लिया था। अत: उनके लिये यह आवश्यक था कि सबसे पहले उसी देवताका स्मरण किया जाय, जो राम-नाम-माहात्म्यका अनुपम ज्ञाता हो। गोस्वामीजीकी दृष्टि गणेशजीपर पड़ी। राम-नामकी महिमाके वे अद्वितीय ज्ञाता हैं। श्रीरामचरितमानसमें ही गोस्वामीजीने लिखा है—

'महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥'

(मानस १। १८। २)

गोस्वामीजी अपने मानसमें राम-नाम-महिमाका ही गान करनेवाले थे। अत: श्रीराम-नाम-माहात्म्यके ज्ञाता एवं अद्वितीय रामभक्त श्रीगणेशका स्मरण कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करना अनिवार्य था। इसलिये गोस्वामीजीने गणेशजीका स्मरण सबसे पहले किया।

ऐसी लोकश्रुति है कि भगवान् शंकरने दक्ष और गणेश—दोनोंके सिर काटे। दक्ष एवं गणेश दोनों ही अनुपम बुद्धिमान् माने जाते हैं; किंतु विश्वासद्वारा दोनोंको ही दण्डित किया गया। भगवान् शंकर विश्वासके स्वरूप हैं। दक्षको अज (बकरा)-का और गणेशको गज (हाथी)-का सिर प्रदान किया गया। गजका सिर पा लेनेपर गणेशजी 'विद्या-वारिधि' और 'बुद्धि-विधाता' बन गये; साथ ही विश्वासी रामभक्त भी; क्योंकि गजका यह सिर उन्हें विश्वासके प्रतीक भगवान् शंकरद्वारा प्रदान किया गया था, जो भक्तिका जनक है। मानसमें स्पष्ट कथन है—

'बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।'

(७। ९०)

अत: मानस-निर्माणके समय 'विश्वास' द्वारा पुष्ट रामभक्त गणेशका स्मरण अनिवार्य था।

गणेशजी शिव और पार्वतीके पुत्र हैं, अर्थात् विश्वास और श्रद्धाके पुत्र हैं। भगवान् शिवको 'विश्वास' और भगवती पार्वतीको 'श्रद्धा' कहा गया है। मानसके मंगलाचरणमें वन्दना है—

'भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।'

(मानस १। २ श्लोक)

गणेशजी इन्हीं श्रद्धा-विश्वासरूपी भवानी-शंकरके सुपुत्र हैं। अत: वे षट्सम्पत्तिसम्पन्न ज्ञानके स्वरूप हैं। विश्वास और श्रद्धाके अभावमें न तो ज्ञान ही सम्भव है और न भक्ति ही। गीतामें कहा गया है—'**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्**।' अर्थात् श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है। मानस (७। ९०)-में कहा गया है—***'बिनु बिस्वास भगति नहिं।'*** श्रद्धा और विश्वासके पुत्र होनेके नाते गणेशजी ज्ञान एवं भक्तिके समन्वित रूप हैं। रामचरितमानसमें भक्ति और ज्ञानका ही विशेष विवेचन है। अत: भक्ति-ज्ञानसे परिपूर्ण श्रीरामचरितमानसके प्रणयनके समय

सबसे प्रथम भक्ति और ज्ञानके स्वरूप श्रीगणेशजीकी वन्दना आवश्यक थी; इसलिये तुलसीदासजीने गणेशजीका स्मरण किया।

ऐसा माना जाता है कि रामजीके दरबारके सर्वप्रथम द्वारपाल भी गणेशजी ही हैं। द्वारपालकी अनुमतिके बिना राम-दरबारमें प्रवेश पाना कठिन है। यही कारण है कि 'विनय-पत्रिका' में जब सभी द्वारपालोंकी वन्दना करनेकी बात हुई, तब सर्वप्रथम पुस्तकके प्रारम्भमें गणेशजीकी ही वन्दना की गयी। गोस्वामीजी जानते थे कि बिना गणेशजीकी कृपाके श्रीरामके दर्शन, उनकी भक्ति तथा उनकी कृपाकी प्राप्ति असम्भव है; अतः गणेशजीकी वन्दना करते हुए गोस्वामीजीने श्रीसीतारामको अपने हृदयमें निवास करनेकी प्रार्थना की—

'माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे॥'

(विनय-पत्रिका १)

गणेशजी अद्वितीय लेखक माने जाते हैं। कहा जाता है कि अठारहों पुराणोंके मननशील द्रुत लेखक गणेशजी ही हैं। व्यासदेव बोलते गये और गणेशजी चुपचाप लिखते गये। गोस्वामीजीने समझा कि श्रीशंकरभगवान्‌द्वारा रचित तथा उनके ही द्वारा पार्वतीसे कथित इस अद्वितीय राम-कथाको उनके (तुलसीदास) द्वारा भाषामें निबद्ध करनेके लिये लेखन-कार्यमें निपुण गणेशजीके सहयोगकी नितान्त आवश्यकता है; अतः गोस्वामीजीने 'मानस'के प्रारम्भमें इनका बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे स्मरण किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गणेशजीके स्मरणके पीछे गोस्वामी तुलसीदासके बड़े ही पवित्र भाव छिपे थे। गणेशजी मंगलदाता, बुद्धि-विधाता, बाधा-हर्ता और सिद्धि-दाता तो हैं ही, स्वभावसे परम संत, राम-नाम-माहात्म्यके अद्वितीय ज्ञाता, अनुपम लेखक, भक्ति तथा ज्ञानके मूर्तिमान् विग्रह एवं सच्चे श्रीसीतारामभक्त भी हैं। कुछ संतों और महात्माओंकी तो यह भी धारणा है कि "गणेशजीका स्मरण स्वयं भगवान्‌का स्मरण है। गणेशजीकी मूर्तिका ध्यान करनेसे 'ॐ'का ध्यान हो जाता है। वेदों और उपनिषदोंमें कहा गया है कि 'ॐ' ही सब कुछ है। 'ॐ' ब्रह्मका वाचक है।" गणेशजीका सर्वप्रथम स्मरण कर गोस्वामीजीने उपनिषद्‌की भाषामें पुरुषोत्तमभगवान् परात्पर ब्रह्मका ही स्मरण किया। 'वसिष्ठसंहिता'में भी गणेशजीको श्रीरामका स्वरूप कहा गया है—

रामस्य नाम रूपं च लीलाधाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

पं० श्रीरामकुमारजी रामायणीकी मान्यता है कि—

जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन॥

(मानस १। १ सो०)

—में भगवान्‌के नाम (गणनायक), रूप (करिवरवदन), लीला (सुमिरत सिधि होइ) और धाम (शुभगुणसदन) सब कुछ आ जाते हैं। अतः गोस्वामीजीने श्रीगणेशकी वन्दनाके रूपमें परात्पर भगवान् रामकी ही वन्दना की है।

(२)

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणलाल शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अतीतके पृष्ठोंके आलोडनसे विदित होता है कि भारतीयोंके प्रत्येक शुभ कार्यका सूत्रपात श्रीगणेश-पूजन एवं स्तवनद्वारा होता रहा है। उनकी दृष्टिमें गणेश आदिदेव, विघ्नविनाशक, मंगलकर्त्ता और सिद्धि-प्रदाता रहे हैं। भारतीय समाजका कोई भी अंग श्रीगणेश-पूजन एवं स्तवनकी प्रथासे अछूता नहीं रहा। तभी तो साधारण कवि तथा भक्तकवि—दोनोंकी ही रचनाओंके प्रारम्भमें मंगलाचरणके रूपमें श्रीगणेश-वन्दना उपलब्ध होती है। भारतकी इस परम्पराको आदर देने तथा स्थिर रखनेकी दृष्टिसे ही कविकुलगुरु भक्त-शिरोमणि महात्मा तुलसीदासजीने अपनी रचनाओंके प्रारम्भमें गणेश-वन्दनाको स्थान दिया है। उन्होंने अपने पूर्वजनोंकी ही भाँति गणेशजीको कृपा-सिन्धु, सर्वसमर्थ, विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता और सिद्धि-प्रदाताके रूपमें निहारा है। भक्ति-भावनासे ओत-प्रोत उनकी प्रसिद्ध रचना 'विनय-पत्रिका' का प्रथम पद इसका प्रतीक है—

गाइये गनपति जगबंदन । संकर-सुवन भवानी-नंदन॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक । कृपा-सिंधु, सुंदर, सब लायक॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता । बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं राम सिय मानस मोरे॥

पदकी अन्तिम पंक्तिसे स्पष्ट होता है कि

गणेशजी मनोरथदाता भी हैं, तभी तो तुलसीने उनसे अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामको सीतासहित अपने हृदयमें निवास करानेकी याचना की है। विनयपत्रिकाके इस प्रथम पदमें श्रीगणेशस्मरणद्वारा मंगलाचरण करके काव्य-परम्पराका निर्वाह तो हुआ ही है, भक्तिभावकी याचना भी की गयी है। सर्वप्रथम श्रीगणेशजीसे भक्तिकी याचना करके गोस्वामीजीने यह संकेत किया है कि न केवल काव्य-रचना, अपितु ईश-अर्चना-प्रार्थनादि भी श्रीगणेशजीसे आरम्भ करनी चाहिये। तभी तो 'विनयपत्रिका'-पर उनके आराध्य अनाथनाथ श्रीरघुनाथने अपने हाथसे 'सही' कर दी।

गोस्वामीजीने श्रीगणेशजीका वन्दन एवं स्मरण अपनी रचनाओंकी सफलता तथा निर्विघ्नसमाप्तिहेतु भी किया है। उदाहरणस्वरूप 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल', 'रामाज्ञा-प्रश्न' और 'रामचरितमानस'को रखा जा सकता है। 'पार्वती-मंगल' तथा 'जानकी-मंगल'में उन्होंने दो-दो छन्दोंमें गुरु, शिव, पार्वती, शारदा, विष्णु तथा राम आदिके सहित श्रीगणेशजीकी वन्दना की है। यथा—

बिनइ गुरहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि।
हृदयँ आनि सिय राम धरे धनु भाथहि॥ १॥
गावउँ गौरि गिरीस बिबाह सुहावन।
पाप नसावन पावन मुनि मन भावन॥ २॥

(पार्वती-मंगल)

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकवि श्रुति संत सरल मति॥ १॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं।
सिय रघुबीर बिबाहु जथामति गावौं॥ २॥

(जानकी-मंगल)

'रामाज्ञा-प्रश्न'के प्रथम सर्गके प्रथम सप्तकमें उन्होंने गणेश-स्मरणकी महत्ता प्रतिपादित की है। उसके अनुसार—स्वदेश अथवा विदेशमें गणेश-स्मरणसे प्रारम्भ किये गये सभी शुभ कार्योंका परिणाम कल्याणकारी होता है। श्रीगणेशजीका स्मरण सभी देवताओंको अनुकूल बनानेवाला, सभी सिद्धियोंको देनेवाला तथा यात्राको सफल करनेवाला होता है। वह विद्या, विनय और धर्मके फलको सुलभ करानेवाला तथा सुमंगलकी खानको प्रकट दिखानेवाला है। अतः सभी कार्योंकी सफलताके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

'रामचरितमानस'के आरम्भमें 'गणेश-वन्दना' श्लोक तथा सोरठेके माध्यमसे की गयी है। श्लोकमें गणेश और वाणी (सरस्वती)-की सम्मिलित वन्दना है। यथा—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥ १॥

दोनोंकी वन्दनाका कारण बतलाते हुए गोस्वामीजीने स्पष्ट किया है—'वर्णों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मंगलोंके विधायक सरस्वतीजी और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

सोरठामें उन्होंने मात्र गणेशजीसे अनुग्रह (कृपा) करनेकी अभ्यर्थना की है—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥ १॥

अभ्यर्थनाका कारण स्पष्ट करते हुए कहा है—'जो गणोंके नायक (स्वामी) हैं, बुद्धिकी राशि और शुभ गुणोंके घर हैं तथा जिनका गजके समान मुख है, उन गणेशजीका स्मरण करते ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है।'

मंगलाचरण या भक्ति-याचनाके अवसरपर की गयी गणेश-वन्दनाके अतिरिक्त गोस्वामीजीने विवाहादि मांगलिक अवसरोंपर भी गणेश-पूजनकी प्राथमिकताकी भी चर्चा की है। पार्वती-शिव और सीतारामके विवाह इसके द्योतक हैं। पार्वती-शिवके विवाहके अवसरपर किये गये गणेश-पूजनकी झाँकी देखिये—

'मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।'

(मानस १। १००)

सीतारामके विवाहकी झाँकी भी द्रष्टव्य है। इस अवसरपर सीताजीद्वारा गणेश-पूजन कराया गया है—

'आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।'

(मानस १। ३२२। १ छन्द)

स्पष्ट है, जब सीताजीको विवाह-मण्डपमें लाया गया, तब दोनों कुल-गुरुओंने कुलाचार करके प्रथम तो उनसे गणेशजी और गौरीजीकी पूजा करवायी और तदुपरान्त उनको सुन्दर सिंहासनपर बैठाया।

यात्राके पूर्व भी तुलसीदासजीने गणेश-स्मरणकी बात कही है। जैसे—अयोध्यानरेश दशरथ राम-विवाहके अवसरपर जनकपुरीको प्रस्थान करते समय रथारूढ़ होनेसे पूर्व गणेश, गुरु, शिव, पार्वती आदिका स्मरण करते हैं—

तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥

(बालकाण्ड ३०१)

कतिपय ऐसी स्थितियोंमें भी गोस्वामीजीने गणेशस्मरण कराया है, जहाँ कार्यकी अथवा मन:कामनाकी सफलतामें पूर्णत: बाधा उपस्थित हो जाती है और उस बाधाको दूर करनेमें मानवकी बुद्धि और शक्तिके सम्मुख प्रश्नवाचक चिह्न लग जाता है, वहाँ मनुष्य दैवी शक्तियोंकी शरणमें जा गिरता है। इस सम्बन्धमें धनुष-यज्ञका प्रसंग द्रष्टव्य है।

गुरु श्रीविश्वामित्रकी आज्ञा पाकर शिव-धनुष तोड़नेके लिये जब भगवान् श्रीराम चापके समीप आते हैं, तब वज्रसे भी कठोर शिव-धनुष और श्रीरामके सुकोमल शरीरको देख जानकीजी मन-ही-मन अत्यन्त ही व्याकुल होती हैं और उनकी यह व्याकुलता जब चरम सीमापर पहुँच जाती है, तब वे इससे मुक्त होनेके लिये पार्वती-शिव और गणेशजीकी मन-ही-मन वन्दना करके उन्हें मनाने लगती हैं—

मन हीं मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी॥

* * *

गन नायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

(बालकाण्ड २५६। ३-४)

—और वरदाता गणेशजीके स्मरण एवं वन्दनद्वारा उनका मनोरथ सिद्ध भी हो गया।

पंचदेवोंकी उपासनाके समय भी श्रीगणेशजीकी उपासना श्रीगोस्वामीजीने सर्वप्रथम करवायी है। अयोध्यावासियोंकी पंचदेवोंमें निष्ठा है। पंचदेवोपासना उनका दैनिक नियम है। इस नियम-पालनकी झाँकी चित्रकूटमें देखनेको मिलती है—

करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥
रमारमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥

(मानस २। २७२। २-२ १/२)

चित्रकूटमें अयोध्यावासी श्रीगणेश, गौरी, शंकर, सूर्य तथा विष्णुकी वन्दना करके फिर सीतारामके राजा-रानी होनेकी करबद्ध प्रार्थना करते हैं।

उल्लासका उत्कर्ष तथा भावकी अगम्यता प्रदर्शित करनेके लिये श्रीगणेशजीकी कहीं-कहीं असमर्थता भी प्रस्तुत की गयी है। श्रीसीतारामके विवाहोपरान्त अयोध्याका उल्लास-सागर इतना उच्छलित हुआ कि अयोध्याके प्रेम, प्रमोद, विनोद एवं मनोहरताका वर्णन करनेकी सामर्थ्य शत-शत शारदा, शेष, गणेश, महेश, वेद और ब्रह्मा आदिमें भी नहीं है—

प्रेमु प्रमोद बिनोदु बड़ाई। समउ समाजु मनोहरताई॥
कहि न सकहिं सत सारद सेसू। बेद बिरंचि महेस गनेसू॥

(मानस १। ३५४। २-२ १/२)

इसी प्रकार भरतजीकी मति-रति-गति, उनका भाव-वैभव शारदा, शेष, गणेशके लिये भी अगम्य है—

भरत रहनि समुझनि करतूती।

....

सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥

(मानस २। ३२४। ४)

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजीने विभिन्न परिस्थितियोंमें श्रीगणेशजीका पूजन, स्तवन, वर्णन एवं स्मरण स्वयं करके मानवमात्रके लिये हितकारी सिद्ध किया है। इसके पीछे उनका दृष्टिकोण केवल परम्पराका निर्वाह करना ही नहीं है, अपितु उनके अन्तरकी आस्था अभिव्यक्त हुई है। श्रीगोस्वामीजी श्रीरामभक्त होकर भी श्रीगणेशजीको आदिदेव एवं प्रथमपूज्य देवता मानते हैं। कुछ भी हो, इतना अवश्य है कि गोस्वामीजीने रामचरितमानस तथा अन्य रचनाओंके माध्यमसे श्रीगणेशजीके पूजन, वन्दन, स्तवन एवं स्मरणका जो संदेश दिया है, वह आज भी बड़ा ही उपयोगी और कल्याणकारी है। उसमें मानवसमाज और राष्ट्र—दोनोंका हित समानरूपसे निहित है।

~~~o~~~
~~~

तमिळनाडुमें श्रीगणेशका प्रभाव

(लेखक—विद्वान् डी० श्रीनिवासवरदन्, एम्० ए० [तमिळ एवं हिंदी])

श्रीगणेशजी ओंकारकी साक्षात् मूर्ति हैं तथा सम्पूर्ण तमिळ-प्रदेशमें उनकी सभक्ति पूजा की जाती है। तमिळ-प्रदेशकी जनता श्रीगणेशके सभी नामोंसे परिचित है। (१) विनायक, (२) विघ्नेश, (३) विघ्नविनाशक, (४) गणपति, (५) एकदन्त, (६) मोदकहस्त, (७) मूषकवाहन, (८) गजमुख, (९) गजानन,(१०) वक्रतुण्ड तथा (११) हेरम्ब आदि सभी नाम उनको जिह्वापर रहते हैं। ये सब संस्कृत-शब्द होकर भी सामान्य जनताकी वाणीमें नित्यप्रति प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त तमिळ-भाषासे सम्बद्ध तथा लोकप्रिय एक और नाम है 'पिळ्ळैयार' (पिल्लैयर)। 'पिळ्ळै'का अर्थ है—पुत्र तथा 'आर' आदरसूचक प्रत्यय है। अतः हिंदीमें इसे 'पुत्रजी' कह सकते हैं। यह सभी जानते हैं कि श्रीगणेश पार्वती-शिवजीके पुत्र हैं।

पिळ्ळैयार शुळि

तमिळ हिंदू-जनता पत्र लिखते समय प्रारम्भमें ऊपर श्रीगणेशसूचक एक विशेष चिह्न बनाती है जो श्रीगणेशजीका ही द्योतक है। इस चिह्नविशेषको तमिळ-प्रजा पिळ्ळैयार शुळि (श्रीगणेशगोल्) कहती है।

श्रीगणेशजीके सेवा-प्रकार

तमिळनाडुकी भक्त जनता विष्णु तथा शिवजीके मन्दिरोंमें साष्टांग प्रणाम करती है परंतु विनायक-मन्दिरके सामने अपनी विनतीको दूसरे प्रकारसे प्रकट करती है। भक्त विनायकके सामने खड़े होकर अपने मस्तकके दोनों ओर दोनों मुष्टियोंसे मृदुल आघात करते हैं। अपने दोनों कानोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर उठते-बैठते हैं। यह सेवा-प्रकार बड़ा विचित्र है। ये दोनों क्रियाएँ यौगिक दर्शनसे सम्बद्ध हैं। मस्तकपर मुष्टिसे मृदुल आघात करनेसे आज्ञाचक्र उत्तेजित किया जाता है; उठने-बैठनेकी क्रियासे सुषुम्णा नाड़ीपर प्रभाव पड़ता है; अतः सुषुम्णा ऊर्ध्वमुखी हो जाती है। तमिळनाडुमें श्रीगणेशजीकी प्रसिद्ध पूजा-सामग्री है—(१) दूर्वा, (२) वह्निपत्र (शमीपत्र) और (३) अर्कपत्र।

गणेश-सम्बन्धी रचना

ग्रन्थ-लिपिमें एक छोटी-सी पुस्तिका 'गणेशसहस्रनाम' की है, जिसमें प्रत्येक नाम गकार-अक्षरसे प्रारम्भ होता है। एक दूसरा 'गणेशसहस्रनाम' भी है, जिसमें दूसरे अक्षर प्रारम्भिक अक्षरके रूपमें प्रत्येक नामके आदिमें अवस्थित हैं। उनकी अष्टोत्तरशत-नामावलियाँ बहुत-सी हैं। इससे परब्रह्मकी इस विशिष्ट मूर्तिके प्रति सर्वसाधारणकी यथार्थ भक्तिकी स्पष्ट सूचना मिलती है।

दो सौ वर्षके पहले तंजौर जिलेके 'क्षेत्रपालक' नामक ग्राममें 'साम्बशिवशास्त्रीजी' का जन्म हुआ। वे जन्मसे शैव होनेपर भी अपनी आयुके मध्यकालमें गणपत्युपासक बन गये। इन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभासे (१) गणेशाद्वैतम् (२) ज्ञानकाण्डम्, (३) कर्मकाण्डम्, (४) उपासनाकाण्डम्, तथा (५) गणेश-उपनिषद् आदि कई संस्कृत गाणपत्यवेदान्त ग्रन्थोंकी रचना की थी। इन्होंने इन समस्त ग्रन्थोंको योगीन्द्र मठको समर्पित किया, जो पूनासे तीन मील दूर 'मयूरेश' नामक स्थानपर है।

श्रीगणेश-विषयक ग्रन्थ तमिळ-भाषामें अनेक हैं। इनमें 'औवैयार' (कवयित्री) द्वारा रचित 'विनायकर् अकवळ' सुप्रसिद्ध है। इनके द्वारा रचित 'नल्वळि'-ग्रन्थका मंगलाचरण श्रीगणेशजीके वन्दनापरक है। यह पद्य समस्त तमिळनाडुमें प्रचलित है—

पालुम् तेळितेनुम् पाकुम् परुप्पुमिवै
नालुम् कलन्दुनक्कु नान् तरुवेन्-कोलम् शेय्।
तुङ्गक्करिमुत्तुत्तूमणिये नीयेनक्कु
शङ्गत्तमिळ मुन्रुम् ता॥

भाव यह है कि 'हे तुङ्ग गजशुण्डाकार मुँहवाले! मैं तुम्हारे लिये दूध, शुद्ध मधु, पाक् तथा दाल—इन चारोंको मिलाकर दूँगा। तुम मेरे लिये शंगत्तमिल तीनोंको दे दो।'

इसके अतिरिक्त अरुणगिरिनाथन्, रामलिंगम् स्वामिगल् आदि शैव संतोंने भगवान् श्रीगणेशके विषयमें कई मुक्तक-रचनाएँ की हैं, जिनको भक्तगण गा-गाकर भावविभोर हो जाते हैं।

~~~o~~~
~~~

तमिळ भक्ता औवैयार्-विरचित 'विनायकर् अकवल' में श्रीगणेश

(लेखक—प्रो० के० एस० चिदम्बरम्, एम्० एड्०, 'भारद्वाजन्')

अनादिकालसे सनातनधर्मावलम्बी हम भारतीय श्रीगणेशकी प्रार्थनाके बलपर सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करते आये हैं। पौराणिक प्रमाण है कि देवगणतक अपनी कार्यसिद्धिके लिये प्रथमतः गणेशकी वन्दना करते हैं। ऐसे श्रीगणेशजीकी अमोघ साधनामें सिद्धिप्राप्त एक तमिळ वृद्धाकी आत्मानुभूतिपूर्ण प्रार्थना ही प्रस्तुत 'विनायकर् अकवल'का विषय है।

तमिळनाडुकी जनतामें 'औवैयार्' नामकी एक वृद्धा कवयित्रीकी बालजनोचित नीतिपरक रचनाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। तमिळमें 'औवै' शब्द—पूर्वजा, माता, मातामही-जैसा अर्थका निर्देशक है। आदरवाची 'आर्' प्रत्यय लेकर वही उनका नाम हो गया। जन्मसे ही वे देवांशयुक्त थीं और अपने माँ-बापकी सात संतानोंमें अग्रजा थीं। नियतिकी ही बात थी कि इनके जन्म होते ही इन्हें छोड़कर माताको अपने यात्री-पतिके साथ-साथ आगे बढ़ना पड़ा। इसपर व्याकुलहृदया माताको आश्वासन देते हुए उस नवजात बच्चीके मुँहसे वाणी निकली, जिसका सार था कि 'सर्वनियन्ता शिव मेरी रक्षा करेंगे, तुम दुःखी मत होना।' थोड़ी ही देर बाद उस रास्तेसे वाणकुलके एक दम्पति आये। उन्होंने उस शिशुको गोदमें उठा लिया। बालिकाका पालन-पोषण होने लगा। बचपनसे ही उनकी लगन गणेश-पूजापर रही, फलतः वे अल्पकालमें ही विदुषी हो गयीं। वयःप्राप्त होते-होते सांसारिक जीवनकी असारता उनकी समझमें आ गयी और उन्होंने इस संसारमें पावन जीवन व्यतीत करनेके लिये वृद्धा रूप ही उचित समझा। अतः गणेशसे प्रार्थना कर उन्होंने यौवनमें ही वार्धक्यका वरदान प्राप्त कर लिया और तत्कालीन तमिळ-प्रदेशभरमें धर्मका प्रचार किया। चेर-चोळ-पाण्ड्य राजाओंसे आदृत हो उन्होंने तमिळ-जनताको विविध प्रकारसे आत्मबोधपूर्ण उपदेश दिये। उनके कई महत्कार्योंके वृत्तान्त तमिळनाडुके बच्चोंके लिये आज भी स्मरणीय हैं। उनकी सूत्ररूप सूक्तियाँ तमिळ बाल-शिक्षामें प्रमुख स्थान रखती हैं।

यद्यपि उनके कालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें ऐकमत्य नहीं है, पर उनके जीवनकी एक घटना प्रमाणित करती है कि वे राजा चेरमान तेरुमाल तथा 'तमिळ तेवारन्' के गायकोंमें अन्यतम और सुन्दररकी समकालीन थीं। वे दोनों शिवभक्त एक बार ईश्वराज्ञा पाकर कैलास-यात्राको निकले। बीच रास्तेमें राजाने औवैयार्को याद किया। औवैयार् अपने निवासस्थानपर गणेश-पूजामें लीन थीं। उनका मन थोड़ा विचलित हो उठा। प्रज्ञाबलसे बात समझकर वे तत्क्षण कैलास-यात्रामें उनके साथ होनेके विचारसे पूजामें जल्दी करने लगीं। उसी समय गजमुख श्रीगणेशजीने उन्हें शान्त करते हुए कहा कि 'अनुष्ठानके सम्पन्न होनेपर तुम उनके पहले ही कैलास पहुँच जाओगी।' तब शान्त एवं सानन्द मनसे उन्होंने गणेशकी प्रार्थनामें जो स्वानुभूतिपूर्ण गान गाया, वही यह 'विनायकर् अकवल' माना जाता है। इस प्रार्थनागानकी समाप्तिके बाद क्षणभरमें भगवान् गणेशने औवैयार्को उठाकर कैलास-शिखरपर खड़ा कर दिया। स्वयं देरीसे पहुँचनेपर राजाने चकित मनसे उनसे प्रश्न किया, प्रश्नके उत्तरमें उनका कथन था—

मतुर मोळि नल् उमैयाळ् पुतल्वन् मलर् पतत्तै
मुतिर निनैय वल्लार्क्करितो ? मुकिल् पोल् मुळंकि
अतिर नटन्तिटु यानैयुं तेरुं अतन् पिन् वरुम्
कुतिरैयुं कातं किळवियुं कातं कुलमन्नने।

अर्थात् उमानन्दन गणेशका अनवरत स्मरण करनेवालोंके लिये दुस्साध्य क्या है ? रथ-गज-तुरगादि कोसों पीछे रह जायँ, पर बूढ़ी कोसों आगे निकल जा सकेगी। स्पष्ट है कि गणेशध्यानमें निमग्न अजपा-जाप-सिद्ध योगबलसे ही औवैयार् कैलासशिखरपर एकदम पहुँच गयी थीं। ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरस्थित शिव-परमहंससे एक हो चिदानन्दामृतपान करती हुई वे अमर हैं, ऐसी उस प्रदेशवासियोंकी मान्यता है।

'केकारव'को तमिळमें 'अकवल' कहा जाता है। तमिळके एक छन्दविशेषका भी यह नाम होता है। केकारव-आलापमें गणेशको पुकारकर प्रार्थना करनेकी रीतिसे रचित ७२ पंक्तियोंका यह गीत है। इस गीतमें भगवान् गणेशको सम्बोधित करते हुए उनके संक्षिप्त

पादादिकेशान्तका वर्णन है। तत्पश्चात् स्वानुभूतिका निवेदन करते हुए अन्तमें उनके चरणोंपर अपनेको न्योछावर कर दिया गया है। इस भक्ति-रस-सिक्त गीतका एक अंश इस प्रकार है—

चीतक्कलपच्चेन्तामरैप्पूम्
पातच्चिलंपु पलविशै पाढ
प्रोन्नरै ज्ञाणुं पूत्तुकिल् आटैयुं
बन्न मरुंकिल् वळर्न्तळकेरिप्प
तत्तुव निलैयैत्तन्तेनै आण्ट
वित्तक विनायक विरै कळल् शरणे॥

'शीतल कलश-गन्धसे युक्त लाल कमल-सम चरणोंपर संगीत-वैविध्यमें बजनेवाले नूपुरोंसे शोभित होनेवाले तथा स्वर्ण-कटिसूत्र एवं कोमल शुक्लाम्बर-परिधानसे देदीप्यमान सूक्ष्म कटि प्रदेशवाले सर्वसमर्थ विनायक! दैवी गन्धयुक्त तेरे चरणकमल ही शरण्य हैं (उन्हींपर मैं न्योछावर हूँ)।'

~~○~~

तेलुगु कवियोंका गणेश-स्मरण

(लेखक—श्रीचल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु, बी० ए०, बी० एड्०)

तेलुगु-भाषा दक्षिण भारतकी प्रधान भाषाओंमेंसे एक है। गत एक हजार वर्षोंमें तेलुगु-भाषाके लगभग सभी प्रसिद्ध कवियोंने श्रीगणेशजीका स्मरण किया है। यहाँ सीमित स्थानमें कुछ कवियोंके गणेश-स्मरणोंका परिचय दिया जाता है—

नन्नेचोड कविराज (११-१२ शती)—इनका 'कुमार-सम्भव' आन्ध्र वाङ्मयका अद्भुत रत्न है। इसमें इन्होंने गणेशकी स्तुति अनोखे ढंगसे की है—

सितदन्तयुगंबचिरांशुलात्म गचं
तनुवसिताम्बुर्जन मुरु गर्जनम्बुग
रसद्रुचि शक्रशरासनंबुनै चन
मदवारिवृष्टि हितसस्यं समृद्धियनथ वेळ नां।
जनु गणनाथुडिच्चु ननिशम्बु न भीष्ठ फलंबु माकिलन्॥

'गणेशजीके शरीरकी छवि काले मेघकी तरह, सफेद कान्तिवाले दाँत मेघके अरे (Edge)-की भाँति, उनके कटाक्ष इन्द्रचापके सदृश और उनका मदस्राव जल-वृष्टि (जो धन-धान्य-समृद्धिका हेतु है)-के समान है। ऐसे मेघरूपी श्रीगणेशजी हमारे अभीष्टोंकी पूर्ति करें।'

यहाँ श्रीनन्नेचोडद्वारा गणेशजीकी शरीरकान्तिको काला कहना तथा उनको मेघसे अभिन्न कहना दोनों विशिष्ट ही हैं।

ऐर्रना (१३००-१३५० ई०)—अपने 'नरसिंहपुराण'के आरम्भमें इन्होंने गणेशजीकी स्तुति इस प्रकार की है—

'अम्बिकाजी पुत्र-प्रेमके वशीभूत हो गणेशजीका आलिंगन करने लगीं। माताजीके इस आलिंगनसे मुदित गणेशजी हमारा मनोरथ पूरा करें।'

बम्मेर पोतना (चौदहवीं शती)—ये तेलुगु-भाषाके भक्त-कवियोंमें अग्रगण्य हैं। इन्होंने दारिद्र्य-पीड़ित होनेपर भी राजाश्रयकी उपेक्षा करके खेतीसे जीविकोपार्जन किया और श्रीरामचन्द्रकी प्रेरणासे 'श्रीमद्भागवत'को आन्ध्र-भाषामें लिखकर आत्महित तथा लोक-कल्याणको सिद्ध किया। इन्होंने अपने भागवतमें श्रीगणेशजीकी प्रार्थना बहुत ही सुन्दर ढंगसे की है।

अल्लसानि पेद्दना (सोलहवीं शती)—इन्होंने 'मनुचरित्र' नामक एक प्रबन्ध-काव्यकी रचना की है, जिसका आन्ध्रभाषामें अपनी मौलिकताके कारण विशिष्ट स्थान है। रचना-वैशिष्ट्यके कारण आप प्रबन्ध-शैलीके प्रवर्तक कहे जाते हैं। इन्होंने गणेशजीकी बाल्यलीलाका वर्णन गणेश-स्मरणमें यों किया है—

'गणेशजी सतीजीके अंकमें लेटकर स्तन-पान करने लगे। उन्होंने बाल-चापल्यसे सतीजीके दूसरे स्तनको अपने शुण्डसे पकड़नेकी चेष्टा की। परंतु अर्द्धनारीश्वरका शेष भाग शिवस्वरूप था और दूसरे स्तन-भागपर नागराज विद्यमान थे। उन नागराजको मृणाल समझकर उसे पकड़नेकी कोशिश करनेवाले श्रीगणेशजी कृतिपतिको समस्त सौभाग्य प्रदान करें।'

धूर्जटि (सोलहवीं शती)—इन्होंने अपने 'काळहस्तीश्वरमाहात्म्य' में गणेशकी स्तुति उदात्त रीतिसे की है—

'अपने-अपने कार्यके निर्विघ्न सम्पादनकी अभिलाषासे प्रेरित होकर सृष्टि, स्थिति तथा लयके समय ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर जो श्रीगणेशजी अपने स्मरणमात्रसे ही विघ्न-नाश तथा कामनापूर्ति कर देते हैं, उन दया-समुद्र श्रीगणेशजीकी हम उपासना करते हैं।'

इस तरह समय तथा स्थानाभावके कारण बहुत ही परिमितरूपमें कवियोंका परिचय दिया गया है।

~~~o~~~

वंगदेशमें श्रीगणेशोपासना

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पुराणरत्न, विद्या-विनोद)

वंगदेशमें सेन राजवंशके संस्थापक विजयसेन और उनके पुत्र वल्लालसेन (बारहवीं शताब्दी) शैव-मतावलम्बी थे। वे लोग 'परम माहेश्वर' उपाधि धारण करते थे। उनके पूर्वज दक्षिण भारतके अन्तर्गत कर्णाटकसे वंगदेशमें आये थे। सम्भवतः उस समय दक्षिण भारतीय शैव-गाणपत्य-सम्प्रदायका आविर्भाव भी उनके ही द्वारा वंगदेशमें हुआ था। राजा लक्ष्मणसेनने शैवमत त्यागकर वैष्णवधर्ममें दीक्षा ली थी। लक्ष्मणसेनके सभासद और सुहृद् वटुदासके पुत्र श्रीधरदासने १२०६ ई०में **'सदुक्तिकर्णामृत'** नामक एक प्रसिद्ध संस्कृत-कविता-संग्रहका संकलन किया था। 'सदुक्तिकर्णामृत'में गणेशके सम्बन्धमें पाँच कविताएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें वसुकल्परचित दो, दंकरचित एक, पापाकरचित एक तथा लक्ष्मणसेनके एक, सभाकवि उमापतिधररचित एक श्लोक है। इन कविताओंसे तत्कालीन वंगीय समाजमें गणेशके सम्बन्धमें जो तत्त्व-भावना थी, उसका परिचय प्राप्त होता है। सभाकवि उमापतिधररचित श्लोक इतना प्रसिद्ध है कि वह तभीसे पूजा-अर्चनामें गणेशके नमस्कारके मन्त्रके रूपमें वंगीय समाजमें व्यापकरूपसे व्यवहृत होता चला आ रहा है। वह इस प्रकार है—

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥*

(सुदुक्ति कर्णामृत १। २९। ५)

सिद्धिदाता गणेश

इस बातमें बंगाली हिंदूमात्रकी प्रगाढ़ आस्था है। सब प्रकारकी आपद-विपदमें गणेशका नाम लेनेसे विपत्तिका नाश होता है। किसी धर्म-कार्यको करते समय, पुस्तक लिखते समय, गृह-निर्माणके समय—सब कार्योंके प्रारम्भमें गणेशजीका नाम लिया जाता है। बंगाली हिंदू गणेशको नमस्कार करके यात्रा करता है; व्यवसायी अपने कार्यालयमें सिन्दूरसे 'सिद्धिदाता गणेश,' '**श्रीगणेशाय नमः**' आदि लिखता है। वंगदेशमें बंगाली हिंदूमात्र प्रथम वैशाख नववर्षके मेलेसे गणेशकी एक मूर्ति खरीदकर सबसे पहले अपने घरके द्वारदेशमें उसका स्थापन करके पंचोपचार-पूजन करते हैं और गणेशको सिन्दूर अर्पण करते हैं; पश्चात् उस सिन्दूरसे रौप्यमुद्राको वेष्टित करके उस मुद्राको मांगलिक द्रव्यके रूपमें यत्नपूर्वक पेटीमें रखते हैं और दीवारके ऊपर तथा बही-खातेमें सिन्दूरसे '**सिद्धिदात्रे गणेशाय नमः**' लिखते हैं। पूजाके अन्तमें उस गणेशमूर्तिको द्वारदेशके ऊपरी भागमें स्थापित करते हैं और प्रातः-संध्याकालमें उसे धूपादि प्रदान करते हैं। गृहस्थ किसी कार्यके लिये यात्रा करते समय सिद्धिदाता गणेशको प्रणाम करके बाहर जाते हैं।

स्कन्दपुराणके मतसे भाद्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिको गणेशने पार्वतीनन्दनके रूपमें कैलासमें जन्म लिया था। किंतु दूसरे मतसे वे माघमासकी शुक्ल-चतुर्थीको आविर्भूत हुए थे। इस कारण गणेश-पूजा और व्रत आदि साधारणतया दाक्षिणात्य और बम्बई-प्रदेशमें भाद्रमासकी शुक्ल-चतुर्थीको अनुष्ठित होते हैं और गृह आदि आलोक-मालासे सुसज्जित होते हैं। किंतु वंगदेशमें गणेश-पूजामें विशेष आडंबर नहीं दिखलायी देता और थोड़े ही लोग मूर्ति खरीदकर पूजादि करते हैं। वंगदेशमें कहीं-कहीं भाद्रमासकी शुक्ल-चतुर्थीके दिन सिद्धि-विनायकीय व्रत अनुष्ठित होता है।

(क) गणेश-पूजा—वङ्गदेशमें गणेश-पूजामें दो प्रकारके ध्यान-मन्त्र प्रचलित हैं। उनमेंसे एक

* देवराज इन्द्रके मुकुटमें विद्यमान मन्दार-मालाके मकरन्द-कणोंसे अरुणवर्ण हुई श्रीगणेशके चरण-कमलोंकी धूलियाँ हमारे विघ्नोंका निवारण करें।
~~~

पौराणिक है और दूसरा तान्त्रिक। निम्नाङ्कित पौराणिक ध्यान-मन्त्र अधिक प्रचलित है—

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥*

गणेशजीका पौराणिक मन्त्र है—'**ॐ नमो गणेशाय।**'

गणेशजीका तान्त्रिक ध्यान है—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद् बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्युतिमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥†

गणेशका तान्त्रिकमन्त्र है—'**गं गणपतये नमः।**'

गणेशका प्रणाम-मन्त्र है—

एकदन्तं महाकायं लम्बोदरं गजाननम्।
विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥‡

(ख) सिद्धिविनायकव्रत—सर्वाभीष्ट-सिद्धिकी कामनासे वङ्ग-देशमें यह व्रत भाद्रपद-मासकी शुक्लचतुर्थीमें अनुष्ठित होता है। पूजाके अन्तमें भविष्यपुराणोक्त 'सिद्धि-विनायक-व्रत-कथा'-का पाठ होता है। इस व्रत-कथासे ज्ञात होता है कि 'कौरव-पाण्डव-युद्धके पूर्व युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे प्रश्न किया था कि उस महायुद्धमें जय प्राप्त करनेके लिये किस देवताकी पूजा करना ठीक होगा।' श्रीकृष्णने उत्तर दिया था—

पूजयध्वं गणाध्यक्षं उमामलसमुद्भवम्।
तस्मिन् सम्पूजिते देवे ध्रुवं राज्यमवाप्स्यथ॥

'उमाके देहमलसे समुद्भूत गणेशकी तुमलोग पूजा करो; उनके सम्यक्-रूपसे पूजित होनेपर तुम निश्चय ही राज्य प्राप्त करोगे।'

(ग) वङ्गीय स्मृति-निबन्धोंमें पञ्चदेवोपासना और श्रीगणेश—सनातनधर्मावलम्बी हिंदू प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं—श्रौत और स्मार्त। स्मार्त लोगोंकी संख्या यहाँ अत्यधिक है और इनमें दीक्षित-अदीक्षित प्रायः सभी पञ्चदेवता अर्थात् विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेशकी एक साथ उपासना करते हैं। किसी विशेष देवताके मन्त्रमें दीक्षित स्मार्तोपासक पूजाके समय अपने इष्ट देवताको स्वभावतः प्राधान्य प्रदान करता है, किंतु वह पञ्चदेवोपासनाके अङ्गीभूत अन्य देवताको भी हार्दिक श्रद्धा-भक्ति समर्पण करता है। पञ्चदेवोपासनाके अभिन्न अङ्गके रूपमें गणपतिकी उपासना स्मार्त-मतावलम्बी हिंदूमात्रमें सर्वत्र प्रचलित है। स्मार्त गृहस्थके घर नित्य-नैमित्तिक पूजा आदिमें तथा अन्नप्राशन, उपनयन एवं विवाहादि संस्कारोंमें सर्वप्रथम विघ्नविनायक सिद्धिदाता गणेशकी अर्चना की जाती है। इसी कारण पुरोहित '**गणेशादिपञ्चदेवेभ्यो नमः**'—इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलिद्वारा गणेशसे ही आरम्भ करके पञ्चदेवोंकी पूजा समाप्त करते हैं और तत्पश्चात् वे अभीष्ट कार्यमें लगते हैं।

वङ्गीय स्मृति-निबन्धोंसे ज्ञात होता है कि बंगालीके जीवनमें बारहों महीने पूजोत्सवादि लगा रहता है। ध्यान देनेकी बात यह है कि वङ्गदेशमें मध्ययुगमें वैदिक याग-यज्ञ आदिका विशेष प्रचलन नहीं था। समाजमें व्रतानुष्ठानका प्रचलन अवश्य अधिक था। इन व्रत-संक्रान्ति-आचार आदिमें विशेषतः स्नान-काल आदिमें पुराणोंका यथेष्ट प्रभाव दीख पड़ता है। वङ्गीय स्मृति-निबन्ध-समूहपर, विशेषतः शूलपाणि (पंद्रहवीं शताब्दी)-से लेकर रघुनन्दन और गोविन्दानन्दके काल (१६-१७वीं शताब्दी)-तक रचित निबन्धोंपर तन्त्रोंका

---

* जिनका शरीर नाटे कदका और स्थूल है; मुख गजराजका-सा है और उदर लम्बा है; जो सुन्दर हैं, जिनके गण्डपर झरते हुए मधुकी गन्धके लोभी भ्रमर मँड़रा रहे हैं; जो अपने दाँतके आघातसे विदीर्ण किये गये शत्रुओंके रुधिरसे मानो सिन्दूरकी शोभा धारण करते हैं, उन सिद्धिदाता, मनोरथपूरक, गिरिजानन्दन गणपतिकी मैं वन्दना करता हूँ।

† जो सिन्दूरकी-सी अङ्गकान्ति धारण करनेवाले और त्रिनेत्रधारी हैं; जिनका उदर बहुत मोटा है; जो अपने चार हस्त-कमलोंमें दन्त, पाश, अङ्कुश और वर-मुद्रा धारण करते हैं; जिनके विशाल शुण्ड-दण्डमें बीजपूर (बिजौरा नीबू या अनार) शोभा दे रहा है; जिनका मस्तक बालचन्द्रसे दीप्तिमान् और गण्डस्थल मदके प्रवाहसे आर्द्र है; नागराजको जिन्होंने भूषणके रूपमें धारण किया है तथा जो लाल वस्त्र और अरुण अङ्गरागसे सुशोभित हैं, उन गजेन्द्र-वदन गणपतिका भजन करो।

‡ जो एक दाँतवाले, विशालकाय, लम्बोदर, गजानन एवं विघ्नविनाशक हैं, उन हेरम्बदेवको मैं प्रणाम करता हूँ।

प्रगाढ़ प्रभाव दीख पड़ता है। वङ्गदेशके पूजा-उत्सवादिमें तान्त्रिक मन्त्रोंका प्रयोग, तान्त्रिकमण्डल, मुद्रा, यन्त्र आदिका व्यवहार विशेषरूपसे परिलक्षित होता है। जीवनमें तान्त्रिक दीक्षाकी अपरिहार्यता भी इस देशमें स्वीकृत हुई थी। समाजमें जिन सम्प्रदायोंका प्रभाव था, उनमें शैव, शाक्त और वैष्णव प्रधान थे। इन तीन प्रधान सम्प्रदायोंके अतिरिक्त वङ्गदेशके हिंदू-समाजमें सौर, गाणपत्य, पाशुपत, पांचरात्र, कापालिक आदि अनेक सम्प्रदाय विद्यमान थे।

वंगदेशके स्मृति-निबन्धकारोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध स्मार्त रघुनन्दन भट्टाचार्य थे। उनका समय १५०० से १६०० ई०के बीच माना जाता है। अपने द्वारा रचित सुप्रसिद्ध स्मृतिनिबन्ध 'अष्टाविंशति तत्त्व'में उन्होंने जो अगाध शास्त्रज्ञान, स्वाधीन-चिन्तन और सूक्ष्म-विचार-विश्लेषणका परिचय दिया है, वह अत्यन्त विस्मयप्रद है। रघुनन्दन भट्टाचार्यने अपने 'आह्निक-तत्त्व' निबन्धके देव-पूजा-प्रकरणमें पद्मपुराणसे वचन उद्धृत करके पंचदेवताकी पूजाका विधान इस प्रकार दिया है—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं यथाक्रमम्।
नारायणं विशुद्धाख्यमन्ते च कुलदेवताम्॥*

सब देवताओंमें पहले गणेशकी पूजा करनी चाहिये—'**आदौ विनायकः पूज्यः अन्ते च कुलदेवता।**' सबसे पहले गणेशकी पूजा नहीं करनेसे किस प्रकार विघ्न उपस्थित होता है; इस सम्बन्धमें उन्होंने भविष्यपुराणसे निम्नलिखित प्रमाण उद्धृत किया है—

देवतादौ यदा मोहाद् गणेशो न च पूज्यते।
तदा पूजाफलं हन्ति विघ्नराजो गणाधिपः॥

'यदि मोहवश देवताओंके आदिमें गणेशकी पूजा नहीं की जाती है तो विघ्नराज गणेश पूजाके फलको नष्ट कर देते हैं।'

''**अथ गणेशपूजनम्। तत्र तुलसीव्यतिरेकेण। 'न तुलस्या विनायकम्' इति वचनात्।**'' (आह्निकतत्त्वम्)। गणेशकी पूजामें तुलसीदलका व्यवहार निषिद्ध है। गणेशके आवाहन-मन्त्रमें भी वैशिष्ट्य है। तीनों व्याहृतियोंके द्वारा गणेशका आवाहन करते हैं। यथा '**ॐ भूर्भुवः स्वर्गणपते इहागच्छागच्छ, इह तिष्ठ इह तिष्ठ, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण।**'

रघुनन्दनने इस सम्बन्धमें वायुपुराणका निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च।
आवाहयेद् व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ॥

(आह्निकतत्त्वम्)

(घ) वंगदेशके तान्त्रिक निबन्धोंमें गणेश और गाणपत्य-सम्प्रदाय—

वंगदेशके पूजा-उत्सवों तथा स्मृति-निबन्धोंपर तान्त्रिक प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके समकालीन अथवा किंचित् परवर्ती श्रीकृष्णानन्द आगम-वागीश (१६वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें) तन्त्रशास्त्रके धुरंधर विद्वान् थे। उनके द्वारा रचित सुप्रसिद्ध पुस्तक 'तन्त्रसार'में बिन्दुतन्त्रके सब सम्प्रदायोंका सार लिपिबद्ध है। इस ग्रन्थमें शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर और गाणपत्य-सम्प्रदायोंके उपास्य देवी-देवताओंके मन्त्र-यन्त्र, पूजा-विधि इत्यादि विशदरूपमें वर्णित हैं।

'तन्त्रसार'में संक्षेप-दीक्षा, पंचायतनी-दीक्षा आदि कतिपय अन्य दीक्षा-विधियाँ भी वर्णित हैं। पंचायतनी-दीक्षाके पूजाक्रमका जो वर्णन यामल-तन्त्रशास्त्रसे उद्धृत करके आगम-वागीश महोदयने 'तन्त्रसार' पुस्तकमें विवृत किया है, उसको देखनेपर स्मार्त पंचोपासनाकी बात ध्यानमें आती है। पंचायतनी-दीक्षामें शक्ति, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश—इन पाँच देवताओंके पाँच यन्त्र अंकित करके उनमें उपर्युक्त पंचदेवताओंकी पूजा की जाती है। इनमें विशेषता यह है कि गुरु यदि इन पाँच देवताओंमें शक्तिको प्रधान मानकर भावना करता है (शाक्त-सम्प्रदायके पक्षमें) तो शक्तिका यन्त्र मध्य भागमें अंकित करके उसकी पूजा की जाती है। उस यन्त्रके ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें शिव, नैर्ऋत्यकोणमें गणेश और वायुकोणमें सूर्यका यन्त्र निर्माण करके उनकी पूजा की जाती है। गाणपत्यसम्प्रदायके साधक मध्यस्थानमें गणपति-यन्त्र अंकितकर अन्य देवताओंको निम्नोक्त क्रमसे स्थापित करके पूजा करते हैं—

गणनाथं यदा मध्ये ऐशान्यां केशवं यजेत्।
आग्नेय्यामीश्वरं चैव नैर्ऋत्यां तपनं तथा॥
वायव्यां पार्वतीं चैव पूजयेन्मोक्षसाधिनीम्।
स्वस्थानवर्जिता देवा दुःखशोकभयप्रदाः॥

* पहले क्रमशः सूर्य, गणेश, दुर्गादेवी, रुद्र तथा विशुद्ध नारायणदेवकी पूजा करके अन्तमें कुलदेवका पूजन करे।

'मध्यस्थानमें गणेशकी पूजा करते समय ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें महादेव, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्य तथा वायुकोणमें मोक्षसाधिनी पार्वतीकी पूजा करे। स्थान-व्यतिक्रम होनेपर देवता दुःख, शोक और भय प्रदान करते हैं।'

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें गणेश-प्रकरण प्राप्त होता है। उसके प्रारम्भमें ही लिखा है—

अथ वक्ष्ये गणपतेर्मन्त्रान् सर्वार्थसिद्धिदान्।
यज्ज्ञात्वा मानवा नित्यं साधयन्ति मनोरथान्॥

'अब सर्वार्थसिद्धिप्रद गणेशके मन्त्रोंको बतलाऊँगा। इन मन्त्रोंको जानकर साधक सब प्रकारके मनोरथोंको सिद्ध करता है।'

तन्त्रसारमें गणेशकी विभिन्न प्रकारकी मूर्तियाँ, उनके मन्त्र और पूजाकी विधियोंका वर्णन है। वंगदेशमें मध्ययुगमें गाणपत्यसम्प्रदायका अस्तित्व था और उसकी उपासक-मण्डली भी थी— आगमवागीशके सुप्रसिद्ध तान्त्रिक निबन्ध 'तन्त्रसार'से यह प्रमाणित होता है।

~~~o~~~

छत्तीसगढ़ी लोकगीतोंमें श्रीगणेश

(लेखक—श्रीचतुर्भुजसिंहजी वर्मा)

गणेशजीका प्रायः सभी सम्प्रदायों एवं सभी धर्मोंमें पूजनीय होनेके कारण जन-मानसपर जो अमिट प्रभाव पड़ा है, उसीको देखकर गाँवके एक अबोध बच्चेने अपनी मूक-भाषामें प्रथम श्रीगणेशजीकी वन्दना कर फिर अपने इष्टदेव श्रीहनुमान्‌जीका गुणगान किया है। यहाँ छत्तीसगढ़ी भाषाका इसी प्रकारका एक बाल-गीत प्रस्तुत किया जा रहा है—

हाथी लोलो हाथी लोलो, पावके पदोलो लो।
दोनों भुजा बंम लाल, छाती सुरुक लाल॥
नदी नाला टीप टाप, कहैय्या ला मारे तीन लात।
बोलो कदम्मा, कदम्मा, कदम्मा॥

'हे हाथीके बच्चेके समान सूँड़वाले श्रीगणेशजी! हम आपके पाँवको पकड़कर प्रणाम करते हैं।' फिर हनुमान्‌जीको आवाहन करके कहते हैं कि ''आपकी दोनों भुजाएँ और छाती लाल हैं, ऐसे हनुमान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। नालासे नदी और नदीसे समुद्रमें पानी इस पारसे उस पारतक भरा हो, ऐसे समुद्रको एक छलाँगमें कूदकर पार जानेवाले तथा ***'मोर अहार लंक कर चोरा'''' ।'*** इस प्रकार कहनेवाली उस लंकिनीको लातसे मारकर मूर्च्छित कर देनेवाले श्रीहनुमान्‌जीको मैं सादर नमस्कार करता हूँ। फिर प्रज्वलित पूँछसे कदम-कदम उछल-कूदकर लंकाको जलानेवाले श्रीहनुमान्‌को प्रणाम कर मैं अपना खेल शुरू करता हूँ।''

~~~o~~~

छोटा नागपुरमें श्रीगणेश-भक्ति

(लेखक—श्रीगोकुलचन्द्रजी रावत)

बिहार-प्रान्तका दक्षिणी भाग छोटा नागपुर पाँच जिलोंकी एक कमिश्नरी है। यहाँकी रीति-नीति उत्तर-बिहारसे सर्वथा भिन्न है। यह बिलकुल जंगली स्थान था, जहाँपर आदिवासी मुण्डा-जातिके राजा थे। अब इस जंगलको 'झारखण्ड' कहते हैं।

यहाँके ग्राम्यगीतोंमें फगुआ और झूमर अधिक प्रसिद्ध हैं। सबसे पिछड़ा भाग होनेपर भी यहाँके कई अनपढ़ कवियोंने अपनी रचनाओंमें सर्वप्रथम गणेशजीकी वन्दना की है, जो बहुत ही प्रभावशाली प्रतीत होती है। प्रत्येक कार्यके आरम्भमें 'गौरी-गणेश'की पूजा अनिवार्य है। जहाँ-तहाँ पर्वतोंमें भी चट्टानपर गणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। इससे प्रतीत होता है कि जंगल-निवासी लोग भी अनादिकालसे गणेशकी पूजा करते आ रहे हैं। उनके गीतोंमें गणेशका वर्णन बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया है। दो गीत यहाँ दिये जा रहे हैं, जिनसे गिरिजा-वनवासियोंकी श्रीगणेश-भक्तिकी झलक मिल सके।

फगुआ गीत (होलीके अवसरपर गाया जाता है)

बंदौ गणेश गणनायक, देहु बुधि वरदान, बंदौं गणेश गणनायक॥
बुधि सागर, अति नागर, प्रभु दयाके निधान।
जन-रक्षक, अघ-भक्षक, सब गुन कर खान॥
सेन्दुर भूषण, भभूती तन, सिद्धिप्रद सुख-खान।
मूस-वाहन, गज-वदन, गौरी-शंकर-संतान॥
लम्बोदर, अति सुन्दर, जेहि सूप-सम कान।
एक-रदन, गज-वदन रूप अनूप सुजान॥
धासी मति रंकपर ढरू वेगी प्रभू देहु शुभ ग्यान।
जेहिते करब हम वर्णन, हरि-हर-गुन-गान॥

झूमर (वर्षामें गाया जाता है)

दोहा

गजेन्द्र वदनं, लम्बोदरं, शैलसुता कर सूत।
द्विज विशेश्वर पद वंदत, दुइयो कर संजूत॥
विघन-हरन, हर-नन्दन करौं पद-वन्दन।
लम्बोदर, गजमुख, बुधके सदन सुख, सुमिरत कटे जम-फंदन॥
सादर आरज मोरि, देहु न आछर जोरि, चाहत करन गुन कन्दन।
जत हरि विद्या पाय, कण्ठमें बसहु आय, विशेश्वर केर उर आनंद॥

~~~o~~~

लोकाचारमें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीधनवतीजी)

मंगल-मूर्ति श्रीगणेशका अस्तित्व शक्ति एवं शिवके युगल-तत्त्वोंका साकार स्वरूप है। कुछ पौराणिक कहानियोंके अनुसार स्वयं विष्णुभगवान् ही माता पार्वतीकी इस वात्सल्य-मूर्तिमें समाविष्ट हैं। इसीलिये जीवनके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्यके आरम्भका शुभारम्भ तभी होगा, जब इन दोनों तत्त्वोंका सुखद स्वरूप सर्वोपरि होगा, सर्वप्रथम होगा। श्रीगणेशकी सर्वप्रथम पूजाका यही रहस्य है, यही कारण है।

सिद्धिदाता गणेश वैदिक तथा पौराणिक देवी-देवताओंमें जिस प्रकार मान्य हैं, साधारण लोक-जीवनमें भी उसी प्रकार सर्वपूज्य हैं।

लोक-जीवन प्रकृतिका प्रतिरूप है। जटिल-से-जटिल तथ्यों और गूढ़-से-गूढ़ तत्त्वोंको भी जन-मानसके लिये सरल, सुबोध, सुग्राह्य ही नहीं, सरस भी कर देना लोक-जीवनकी अपनी विशेषता है। लोकाचार इसके प्रमाण हैं। लोकव्यवहार एवं रीति-रिवाजोंमें इसकी पुष्टि सहज ही होती है।

शुभारम्भका पर्याय 'श्रीगणेश' एक मुहावरा बन गया है। किसी भी कार्यको आरम्भ करनेका आग्रह यह कहकर किया जाता है कि 'श्रीगणेश कीजिये'। किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये घरसे दूर जाते समय 'सिद्धि-गणेश' कहना अत्यन्त शुभ समझा जाता है। गृह या मन्दिरनिर्माण कराते समय सबसे पहले गणपतिको स्थापित करा देनेसे सब संकट टल जाते हैं, विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं, ऐसा लोकविश्वास है। इसी प्रकार लोकाचारके रीति-रिवाजोंमें, शुभ-संस्कारोंमें तथा तिथि-त्योहारोंमें विघ्नविनाशक गणेशजीकी स्थापनाके बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं किया जाता। कुछ उदाहरण देखिये—

सह-भोजोंमें—भोजन एवं तृप्तिकी देवी माता अन्नपूर्णा हैं। किंतु (उत्तर-प्रदेशके ग्राम्य-जीवनमें, जैसा मैंने देखा है,) भोजके आयोजनके आरम्भमें कड़ाही चढ़ानेके पूर्व ही मंगल-घट चूल्हेके पास रख दिया जाता है और कड़ाहीका श्रीगणेश 'गणेश-गोंठ'से किया जाता है। एक मोटी पूड़ी, जिसके चारों ओर गुझियाकी-सी नक्काशी की जाती है, कड़ाहीमें तलकर मंगल-घटपर रख दी जाती है। कुछ अनाज और द्रव्य भी साथमें रखा जाता है। भोजकी समाप्तिपर यह सामग्री किसी मान्य ब्राह्मणको दे दी जाती है। असावधानीसे यदि 'गणेश-गोंठ' भूल जाय तो क्षमा माँगते हुए शीघ्र ही पहले यह कार्य सम्पन्न किया जाता है, फिर आगेकी कार्यवाही बढ़ायी जाती है। इस प्रकार सहभोजके आयोजनमें भोजनकी बढ़ोत्तरी तथा भोजकी सफलताके लिये सर्वप्रथम 'गणेश गोंठे' जाते हैं।

संस्कार-समारोहोंमें—हिंदू जातिके सभी संस्कारोंमें किसी-न-किसी प्रकारके समारोह अवश्य आयोजित किये जाते हैं। संस्कारोंके प्रारम्भमें देवपूजाके लिये जहाँ शक्ति एवं सौभाग्यदायिनी माता गौरीकी स्थापना मिट्टीकी पाँच या सात ढेलियाँ रखकर की जाती है, वहीं जलभरे घट या मंगल-कलशमें गणेशजीकी भी
~~~

प्रतिष्ठा की जाती है। इस प्रकार गणेश गौरी या गौरी-गणेश-पूजनके पश्चात् ही आगेके कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

विद्यारम्भ-संस्कार-समारोहमें तथा वसन्तपंचमीके महोत्सवपर (विशेषकर बंगालियोंमें) सरस्वती-गणेशकी पूजा होती है। महाराष्ट्रमें लेखन-कला सीखते समय '**श्रीगणेशाय नमः**' से ही लिखना प्रारम्भ करते हैं। बहीखातोंमें, शुभ-संस्कारोंके निमन्त्रण-पत्रोंमें तथा साधारण पत्रोंमें भी '**श्रीगणेशाय नमः**' लिखना अत्यन्त शुभ माना जाता है। यही कारण है कि बुद्धिदाता विनायकके बिना वाणीकी आराधना अधूरी ही रहती है।

तिथि-त्योहारोंमें—दीपावली लक्ष्मी-आवाहनका अनुपम पर्व है; किंतु लक्ष्मीके साथ भी गणेशजी प्रतिष्ठित हैं। कारण, क्षेम और लाभके जनक तो गणेशजी ही हैं। इसीलिये दीपावलीपर बाजारमें गणेश-लक्ष्मीकी युगल-मूर्ति ही मिलेगी।

इसके पश्चात् कुछ ऐसे त्योहार भी हैं, जिनका सम्बन्ध गणेश-जन्म-कथा तथा उनकी संकट-निवारण-शक्तिसे है। पौराणिक साहित्यके अनुसार गणेशजीकी उत्पत्ति भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको मानी गयी है। उत्तरप्रदेशमें इसे 'बहुला' या 'बहुरा चौथ' कहते हैं। 'बहुरा' का अर्थ (अवधी भाषाके अनुसार) है—गया हुआ, जिसके आनेकी आशा कम थी या थी नहीं, आ गया। गणेश-जन्म-कथाओंके अनुसार गणेशजीका पुनः जीवित होना सर्वविदित है और इस 'बहुरा चौथ' में इतने बड़े तथ्यको किस सरलतासे निरूपित किया गया है, यह देखकर लोक-मानसकी सूझ-बूझका लोहा मानना पड़ता है।

'गणेश-चतुर्थी' या 'बहुरा चौथ' पुत्रवती माताओंका त्योहार माना जाता है। माताएँ विधि-विधानसे गणेशजीका पूजन करती हैं तथा पुत्रोंकी दीर्घायुकी कामना करते हुए उनके विघ्न-बाधाओंके निवारणकी प्रार्थना करती हैं। इस व्रतकी मुख्य कथा एक गाय और बाघकी है। किस प्रकार वह गाय बाघके चंगुलमें पड़ जाती है और अपने जीवनका अन्त निकट देख बाघसे प्रार्थना करती है कि अपने बच्चेको दूध पिलाकर वह शीघ्र ही लौट आयेगी। बाघको उसके कथनमें सत्यकी झलक मिलती है। अतएव वह उसे छोड़ देता है तथा उसके आनेकी प्रतीक्षा करने लगता है। इधर माता दूध पिलाते समय बच्चेको सब कथा सुनाती है और शीघ्र ही जानेको उद्यत होती है। किंतु बच्चा माँके बिना कैसे रहता; अतः माँने उसे अपनी सखियोंको सौंपकर प्रस्थान किया। गायको सामने पाकर बाघ उसके सत्य और वचन-पालनसे अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसने उसे अभयदान दिया। इसी प्रकारकी अन्य कथाएँ भी हैं, जिनका सार यह निकलता है कि माँकी अनुपस्थितिमें बच्चोंपर संकट आते हैं, किंतु माँकी तपस्यासे वे सब दूर हो जाते हैं तथा माँ पुनः अपने बच्चोंको पा जाती है। इस प्रकारकी कथाएँ कहते हुए माताएँ बारम्बार अपने पुत्रोंकी कल्याण-कामना करती हैं। यह गणेश-चतुर्थी सम्भवतः उत्तर-भारतमें ही मनायी जाती है। दक्षिण-भारतमें विशेषकर महाराष्ट्र-समाजमें भाद्र-सुदी चतुर्थीको गणेश-उत्सवका आयोजन किया जाता है। घरों, देवालयों तथा सार्वजनिक स्थानोंमें गणेशजीकी प्रतिमाएँ समारोहके साथ प्रतिष्ठित की जाती हैं। दस दिनतक भजन-पूजन चलता है। इसे 'गणेश-उत्सव' या 'गणपति-पूजा' कहा जाता है। इसके पश्चात् अनन्त-चतुर्दशीको पासके किसी जलाशयमें बड़ी धूम-धामसे गणेश-विसर्जन किया जाता है। इस प्रकार गणपति-पूजाकी इस प्रक्रियामें हमारा पूरा जीवन-दर्शन ही निहित मिलता है।

एक और चतुर्थीका लोक-जीवनमें विशेष महत्त्व है। वह है—माघ-कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी। इसे 'संकट-चौथ' (उत्तरप्रदेशमें सकठ-चौथ) कहते हैं। माताओं, विशेषकर पुत्रवती माताओंके लिये यह व्रत अनिवार्य है। इस व्रतमें जो कथाएँ कही जाती हैं, उन सबका अभिप्राय यही रहता है कि 'सज्जनोंपर चाहे जैसे संकट आयें, संकटा माता या संकटके देवता आकर उनकी रक्षा करते हैं; किंतु दुर्जनोंको या बनावटी संकट दिखानेवालोंको दण्ड ही मिलता है।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि जन-जीवनके लोकाचार, व्यवहार तथा विचारमें गणेशजीका वही स्थान है, जो माता पार्वतीने चाहा था। पार्वतीजी चाहती थीं कि मेरा पुत्र देवताओंके मध्य प्रथम पूज्य हो। शिवजीने भी उनकी मातृभक्ति या सेवा-लगनसे प्रभावित होकर यही घोषित किया था कि 'गणेश देवताओंमें प्रथम पूज्य होंगे'।

~~~०~~~
~~~

पंजाबके जन-जीवनमें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीनवरत्नजी कपूर, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी० ई० एस्०, एवं श्रीमती सरोजबाला कपूर, एम्० ए०)

पंजाबमें स्वतन्त्र-मन्दिरके निर्माण या मूर्तिकी स्थापनाके द्वारा जिस परिमाणमें शक्ति-शिवको सम्मान प्राप्त हुआ है, उतना महत्त्व शक्ति-शिव-तनय विघ्नविनाशक श्रीगणेशजीको भले ही उपलब्ध न हुआ हो, किंतु मंगलमूर्ति गजानन पंजाबमें पार्थक्यकी प्रतिमा न बनकर हमारे लोक-जीवनमें समन्वयके प्रतीक बनकर अवतरित हुए हैं। वे पंजाबियोंके दैनिक जीवनके आस्था-विश्वासोंमें इतने घुल-मिल गये हैं कि गणेशजीके प्रति हमारी श्रद्धा अनन्यताकी सीमाएँ लाँघ गयी है।

नवनिर्मित मकानोंको बुरी नजरसे बचानेके लिये अब भी धार्मिक प्रवृत्तिके अनेक महानुभाव अपने घरोंके सिंहद्वारपर मिट्टी या प्लास्टिककी बनी गणेशजीकी मूर्ति छोटे-से चौखटे और शीशेमें मँढ़वाकर लगवाते हैं। सम्पन्न परिवारके अध्यात्मवादी घरोंके मुख्य द्वारपर अब भी गजाननभगवान्‌की पाषाण-प्रतिमाके दर्शन कहीं-कहीं हो जाते हैं। अधिकांश वैश्य-परिवारोंमें लोहेकी छड़ोंवाले रोशनदान या खिड़कीमें सिन्दूरी रंगमें पुती गणेश एवं लक्ष्मीकी मिट्टीकी मूर्तियाँ ही प्रायः दृष्टिगोचर होती हैं।

पुराने मन्दिरों और पुरानी हवेलियोंके मुख्य द्वारके बिलकुल ऊपर एक छोटे-से आलेमें अब भी गणेशजीकी पत्थरकी प्रतिमाएँ देखनेको मिलती हैं। कहीं-कहीं तो लकड़ीके दरवाजेके चौखटके ऊपरवाले पल्लेमें बढ़ईद्वारा गढ़ी गणेशजीकी मूर्ति भी दिखायी पड़ती है। आर्थिक बोझसे विपन्न ये खानदानी लोग जब साल-दो-सालके बाद घरमें रंग-रोगन करवाते हैं, तब चौखटपर विराजमान गणेशजी बड़े भव्यरूपमें सम्पन्न होकर दृश्यमान होते हैं।

पंजाबके हिंदू-मन्दिरोंमें श्रीगणेशजी समन्वय-भावनाके साक्षात् प्रतीक बनकर प्रतिष्ठित होते हैं। मन्दिर-विशेषकी मुख्य प्रतिमाके आवास-कक्षके बिलकुल बाहर एक ओर गणेशजी और दूसरी ओर हनुमान्‌जी (जिन्हें पंजाबमें 'महाबीरजी'की संज्ञासे विभूषित किया जाता है) आशीर्वादकी मुद्रामें दिखायी पड़ते हैं। पटियालाके प्रसिद्ध 'सत्यनारायणमन्दिर' में यद्यपि लक्ष्मी एवं नारायणकी विशाल मूर्ति स्थापित है, तब भी उनके आवास-कक्षके बाहर अगल-बगल गणेशजी और हनुमान्‌जी प्रहरीके रूपमें प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। स्वभावतः ही पार्वतीपुत्र एवं रामसेवकके सम्मुख भक्तजन शीश झुकाकर भगवान् सत्यनारायणका चरणामृत प्राप्त करते हैं।

श्रीगणेशजी ठहरे भोलेबाबाके आत्मज। वे पैतृक गुणोंसे विभूषित सभी स्थानोंपर सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं। पंजाबके प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रोंकी ओरसे छपनेवाले नये वर्षके कलेंडरोंमें वीणावादिनी सरस्वती और ऐश्वर्य-वर्षा करती लक्ष्मीके पास अपने वाहन मूषकके साथ गजाननके भी दर्शन होते हैं।

श्रीगणेशजीने पंजाबी-जीवनको और भी प्रभावित किया है। भगवान् रामके सिंहासनासीन होनेके उपलक्ष्यमें उन्हें लक्ष्मीकी उपलब्धिके प्रतीकस्वरूप दीपावली त्योहार पंजाबी घरोंमें तबतक नहीं मनाया जाता है, जबतक बाजारसे लक्ष्मीसहित गणेशका नया चित्र अथवा नयी मूर्ति खरीदकर नहीं लायी जाती।

हिंदू परिवारोंमें भले ही चैत्र और आश्विनके नवरात्रोंमें दुर्गाष्टमीके दिन दुर्गा-पूजन हो, विजयादशमी (दशहरे)-के दिन राम-पूजा हो, करवा चौथ (दीवालीसे ग्यारह दिन पहले)-के माध्यमसे भले ही सुहागिनें पतिकी शुभकामनाके लिये 'पोंजा मनसे' (बड़ी-बड़ी मठड़ियाँ घरकी सबसे बड़ी महिलाको देना।), 'अहोई आठें' (दीवालीसे सात दिन पूर्व)-के दिन बालकोंके मंगलमय जीवनके लिये 'अहोई माता' से प्रार्थना करें, 'देवोठान' (देवोत्थान) एकादशीका पर्व परिवारके लोग मना रहे हों—सर्वत्र गणेशजीका ध्यान अवश्यम्भावी है।

इन सभी त्योहारोंसे सम्बन्धित देवी-देवताओंका नाम लेकर 'रोला चर्चने' (रोली छिड़कने)-से पहले मौली लिपटी सुपारीपर रोली छिड़ककर गणेशजीको तिलक लगाया जाता है। घरमें मुण्डन-संस्कार हो, यज्ञोपवीत हो, विवाह हो अथवा नामकरण-संस्कार—पूजनसे पहले पण्डितजीका आदेश होता है—'बिब्बीजी!

सुपारी जरूर ले आना।' पूजनकी प्रत्येक प्रक्रियामें सुपारीपर रोली लगानेका संकेत करते हुए पण्डितजी कहते रहते हैं—'गनेशजीका ध्यान धरोजी' और उधरसे उनके मुखसे मन्त्र निकलते रहते हैं—'**ॐ सिरी गनेशाय नमः, मङ्गलकारी विघनहारी (विघ्नहारी) जय सिरी गणेशजी नमः**' इत्यादि। *

'संकटहारी'-नाम पंजाबमें गणेशजीके लिये प्रचलित है। सम्भवतः भोलेबाबाकी भाँति भोले-भाले होनेके कारण शीघ्र प्रसन्न हो जानेवाले एवं शक्तिपुंज, माता पार्वतीके सदृश पराक्रमपूर्ण गणेशजीको 'संकटहरण'की उपाधि मिली है। पंजाबीमें 'क' से 'ग' (प्रकट-प्रगट) और 'ट' से 'ड' या 'ड़' (कटु-कड़वा) होनेकी प्रवृत्ति है। इसी प्रकार संस्कृत-हिंदीका शब्द 'संकट' पंजाबीमें 'सँगड़'में परिणत हो गया। कार्तिकके कृष्णपक्षकी चतुर्थीको हिंदू महिलाएँ कठिन उपवास करती हैं; दिनभर जलकी एक बूँद भी मुँहमें नहीं डालतीं। सूर्यास्तके उपरान्त सारा परिवार सम्मिलित होकर 'गणेश-पूजन' (सुपारीको तिलक लगाकर) करता है। यह त्योहार चौकेमें मनाया जाता है। चकलेपर सुपारी रखकर पूजा होती है। चढ़ावेके रूपमें गुड़ मिलाकर तिलकुटे और रोटीके टुकड़ोंके (चूरीके) अलग-अलग पदार्थ (जो रूईकी पूनी-जैसे लम्बे होते हैं) बनाकर गणेशजीको अर्पित किये जाते हैं। इन्हींका नैवेद्य-वितरण होता है। 'करवा चौथ'की भाँति रात्रिमें 'चन्द्रदर्शन'के उपरान्त ही व्रतधारिणी देवी भोजन करती है। गणेशजीकी तुष्टिके निमित्त उसे 'विघ्नहरण'से प्रार्थना करनेके लिये भूखे रहनेका संकट सहना पड़ता है। तभी इस व्रत-त्योहारको 'सँगड़ चौथ' की अभिधा प्रदत्त की गयी है।

विवाहके समय वर और वधूके हाथमें जो कंकण (पंजाबी शब्द 'कंगना') पहनाया जाता है, वह मौलीका बना रहता है। उसमें लोहेके एक छल्ले और कौड़ीके साथ सुपारी भी पिरोयी जाती है। कंकणमें सुपारीका होना गणेशजीके अंग-संग रहनेका प्रतीक है। मकानकी छतमें लकड़ीका नया शहतीर या लोहेका गर्डर डालनेके समय राज-मजदूर लोग मकान-मालिकसे मौलीमें सुपारी बाँधकर शहतीर या गर्डरमें लटकानेके लिये कहते हैं। मकानकी नयी चौखट लगाते समय बढ़ईका भी ऐसा ही निवेदन होता है। प्रायः लाल कपड़ेमें सुपारी लपेटकर और मौलीसे कपड़ेको बाँधकर यथास्थान लटका दिया जाता है। यह गणेश-पूजाका प्रतीक है। इसके उपलक्ष्यमें मुँह मीठा करवानेके लिये लड्डुओंकी माँग भी श्रमिक-वर्गकी ओरसे होती है, जो मोदकका प्रतीक है।

पंजाबमें प्रणीत और गुरुमुखी लिपिमें लिखित बहुत-से प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंमें रंग-बिरंगी रोशनाईसे '**ॐ श्रीगणेशाय नमः**' आरम्भमें ही मिलता है। कुछेक पोथियोंमें गजानन गणेशका चित्र भी पुस्तकारम्भमें दृष्टिगोचर होता है और कई बार प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें '**ॐ श्रीगणेशाय नमः**' शब्दोंके दर्शन भी होते हैं। 'विजया-दशमी'-पूजनसे पूर्व, भले ही वे गृहस्थ व्यापारी हों अथवा नौकरी पेशेवाले, वर्षोंसे घरमें मँगवाकर रखी कापी या रजिस्टरमें सबसे पहले '**ॐ श्रीगणेशाय नमः**' लिखते हैं, तदनन्तर परिवारमें सुख-शान्ति-हेतु भगवान् रामकी कृपाकांक्षा-विषयक शब्द लिखे जाते हैं। पंजाबका व्यापारी-वर्ग नया बहीखाता लगाते समय आरम्भिक पृष्ठपर '**ॐ श्रीगणेशाय नमः**' भी लिखता है और इसी खुशीमें लड्डू—अथवा बतासा वितरण करता है।

गणेशजीकी मोदक-प्रियताने पंजाबी-जीवनमें माधुर्यका संचार कर दिया है। घरमें कोई भी शुभावसर हो, भले ही पुत्रजन्म, मुण्डन-संस्कार, बेटी या बहूका गौना, सगाई-विवाह या बच्चोंकी परीक्षामें साफल्य-प्राप्तिकी कामना हो, सर्वत्र बेसनकी बूँदीसे बने मोदकोंके (जिन्हें 'मोतीचूरके लड्डू' कहा जाता है) बिना हृदयके आह्लादकी पूर्ति नहीं होती। शादीके अवसरपर तो सफेद शक्करके लड्डू मोतीचूरके मोदकोंसे सहयोग करते दिखायी पड़ते हैं। बेटीके दहेजमें माँ-बाप कितने भी वस्त्राभूषण, कार, फ्रिज भेंट कर दें, किंतु यदि सूतके लड्डू और मोतीचूरके लड्डू अर्पित न किये जायँ तो आज भी बड़ी-बूढ़ियाँ उलाहना देती हैं—''समधीको बचत करनी थी तो एक आध

* 'श्रीगणेशाय नमः' के स्थानपर जो वाक्य ऊपर दिया गया है, उसका वैसा प्रयोग पंजाबी उच्चारणकी भिन्नताके कारण होता है।

'ट्रम-छल्ला' (आभूषण) कम दे देता, सगन (शकुन-सगुण)-की चीज तो देनी थी।'' कितने 'सद्गुण'-सम्पन्न हैं मोदक महाराज कि नवविवाहिताके गृह-प्रवेशके समय अथवा किसी समीपस्थ सम्बन्धीके यहाँ नवविवाहिता नवप्रसूताके जानेपर लड्डुओंके 'सगुन' का ही बोलबाला रहता है।

शारीरिक गरिमाके सम्मुख गणेशजीका वाहन इतना छोटा क्यों है? मूषकको अपनी सवारी मानना गणेशजीकी अपार महिमाका प्रतीक है। इतना विशालकाय होकर भी हाथी मांसाहारी जीव नहीं है। ठीक ऐसे ही चूहा भी निरामिष प्राणी है। इसी कारण वाहक और वाहनमें भावैक्य है। दूसरी बात यह कि सभी देवताओंके प्रदर्शनका भाव उनके वाहनसे प्रकट होता है; गणेशजी इस बारेमें नितान्त विरक्त हैं और चूहे-जैसे तुच्छ जीवको महानता प्रदान करते हैं। गरुड़का दर्शन बड़ा शुभ माना जाता है; क्योंकि उसके दृष्टिगोचर होते ही भगवान् विष्णुका स्मरण हो आता है। ठीक ऐसे ही घर-घरमें मूषकराजकी संतान सर्वत्र गणेशजीकी मंगलमूर्तिकी उपस्थितिकी सूचना देती है। बहुत-से घरोंमें चूहे पकड़ना अथवा उन्हें मारना पाप समझा जाता है।

धन्य हैं गणेशजी! आप सर्वव्यापक हैं, हृदय, मन, बुद्धिमें आपका एकच्छत्र राज्य है। दृश्यस्वरूप और अदृश्यस्वरूपमें आपने पंजाबियोंको विमुग्ध कर लिया है और वे भी निजी प्रवृत्तियोंके अनुरूप ही आपको सामंजस्यभावनासे भरपूर देखते हैं। **'भक्तके वशमें हैं भगवान्'**—इस उक्तिको पंजाबियोंने भली प्रकार चरितार्थ कर दिखाया है।

~~~०~~~

मरुप्रदेशीय सिद्ध-साहित्यमें श्रीगणेश-स्तवन

(लेखक—श्रीसूर्यशंकरजी पारीक)

विद्या विनायक सिंवरिये पौरस में हणवंत।
रिधि सिधि दाता सिंवरिये, गौर तिमिणों कंत॥

(सबद-ग्रन्थ)

मरुप्रदेशीय सिद्ध-साहित्यमें भगवान् गणेशका स्तवन बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिसे हुआ है। इस साहित्यके आदि उद्गाता सिद्ध जसनाथजी (सं० १५३९—१५६३ विक्रमी) एवं उनकी शिष्य-परम्पराके प्रायः समस्त कवियोंने अपने ग्रन्थोंके आदिमें जहाँ त्रिदेव, सरस्वती, शक्ति, धरित्री, अन्नदेव, पवन-पानी आदि महाशक्तियोंका मंगलाचरणके रूपमें स्तवन किया है, वहाँ उन्होंने विघ्न-विनाशक, सर्वसिद्धिदाता, साफल्य-प्रदायक भगवान् गणेशका स्तवन कहीं उक्त शक्तियोंके साथ तथा कहीं स्वतन्त्ररूपसे किया है।

मरुप्रदेशीय सिद्ध-साहित्य-धारा एवं 'सिद्ध-सम्प्रदाय'के प्रवर्तक सिद्धाचार्य जसनाथजीने अपने नैतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्त निर्गुण तथा सगुण—दोनों रूपोंमें स्थिर किये हैं। जहाँ इनके निर्गुण सिद्धान्त औपनिषद विचारधाराके निकट हैं, वहाँ इनके सगुण सिद्धान्त कई अंशोंमें आचार-विचारकी पृथक्ता रखते हुए भी स्मार्त अधिक प्रतीत होते हैं। यह निर्विवाद है कि स्मार्त-धर्मावलम्बी गणेशादि मांगलिक देवोंकी आराधना-उपासना तथा स्तुति-वन्दनाकी किसी भी प्रकारसे अवहेलना नहीं कर सकता। 'सिद्ध-सम्प्रदाय'में भी गणेशादि देवाराधन एवं आचार-विचारकी शुद्धता प्रायः स्मार्त-धर्मावलम्बियोंकी भाँति ही है।

अग्रांकित पंक्तियोंमें मरुप्रदेशीय सिद्ध-साहित्यमेंसे गणेशस्तवनके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। सिद्ध देवोजीने अपने भक्ति-नीतिपरक 'गुणमाला'-ग्रन्थमें गणेशकी स्तुति की है—

जाग जाग ओ! गवरी पूत अवधूत, जाग स्वामी सूंडाळा।
खासा खाने जाग, बीनती गाऊँ बाळा॥
जपां तिमिणों जाप, हाथ ले हर की माळा।
सुध बुध आवै साच, हियै बिच हुवै उजाळा
अर तो सिंवरयां रिध सिध हुवै, सह बिध आवै सूत
चरण बिनै देवो कह, गवर पूत अवधूत॥

सिद्ध देवोजीने अपने 'देसूँटै' नामके ग्रन्थमें गणेशस्तुति की है—
~~~

रथ आयो गवरी रो पूत, झाड़ जटा जोगी अवधूत।
गवरी नंदन विद्या वियास, रिध-सिध दाता थांरी आस॥

भक्तवर करभोजीने अपने भक्ति-ग्रन्थ 'हरकथा'-में गणेश-स्तवन किया है—

पैली निवण गणेश नै, गवर पूत गुणवंत।
राग छतीसूं सनमुखी, विद्या पार अणंत॥
निजहि निंवण कुंजर कंवर, कंठां सोवती माळ।
जटा मुकट सिर आपरै, ठमक्या कांसी थाळ॥
लिखमा करै ज आरतो, धणी रा केळ करंत।
रिधि-सिधि करभों कथै, गवर पूत गुणवंत॥

सिद्ध-कवि संत लालनाथजीने अपने ग्रन्थोंमें गणेशस्तवन बड़ी ही श्रद्धासे किया है। आपके 'वरणविद्या' ग्रन्थमें गणेश-स्तुति—

ॐ शिव का पुत्र गणेश, माय पारबती गौरां।
सास्त्री समरथ, ज्ञान द्यो गणपत ओरां॥
विप्र करै बिधान, बिनती प्रज बिनोरां।
जल थल थांरी जोत, ज्ञान द्यो गुरु कठोरां॥
चिंत्या मेट्या चतरभुज, ध्यान धरणीधर दोरां।
'लालू' परसण पात ज्ञान का मादळ घोरां॥

इसी प्रकार आपने अपने 'हरिलीला' और 'निकळँगपुराण' में गणेश-स्तुति की है—

(१) **'सनमुख हो गणपात, सिधि स्वामी सूंडाळा।'**
(२) **'ध्यावां गुरु गणेश' नै, खुलै गुणां भंडार।'**

सिद्ध रुस्तमजीने अपने अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ 'क्रिसनव्यावलो' में गणेश-वन्दना की है—

हित कर सिंवरां गुरु गणेश। मात पारवती पिता महेश॥
सुरग पियाळां निवै सो देश। गुणपतनै मानै आदेश॥

सिद्ध रुस्तमजीने अपने 'क्रिसनव्यावलो' ग्रन्थ-निर्माणके लिये श्रीगणेशजीसे सहायता माँगी है—

गुणदाता गुणपत जपां, सैविध अवो सिहाय।
कथां व्यावलो क्रिसन को, सोझी द्यौ समझाय॥

इसी प्रकार 'सिद्ध-सम्प्रदाय' के आधुनिक युगके अगुआ कवि सिद्ध रामनाथजीने अपने 'श्रीशब्दपदन्ति' ग्रन्थमें श्यामकल्याण-रागके अन्तर्गत विघ्नहरण और मंगलकरण श्रीगणेशभगवान्‌की स्तुति की है—

(१) **श्रीगणपति मेरा विघ्न हरो री,**
विघ्न हरो री स्वामी करुणा करो री,॥ टेक॥

* * *

सब सुख कारण विघ्न विडारण, गजानन आप खरो री।
विद्या सुधारण ज्ञान उच्चारण, या विध याद करो री॥
मुक्ति के कारण, भव से तारण, ताकै चरण परो री।
'रामनाथ' गावै भजन सुणावें, सुणतांहि पाप जरो री॥

* * *

(२) **संतो भाई गणपति तेरा गुण गाई।**
विघ्न बिडारण संपत सारण, सरस्वती सार मिलाई॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेकशः बातोंमें 'सिद्धसम्प्रदाय' अपनी मौलिकता एवं भिन्नता रखता हुआ भी श्रीगणेश-स्तवनमें सनातन परम्पराका पोषक एवं पालनकर्ता है।

~~o~~

राजस्थानी लोक-साहित्यमें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीमनोहरजी शर्मा)

भारतके अन्य भू-भागोंकी तरह राजस्थानमें भी श्रीगणेशकी पूरी मान्यता है। यहाँ प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें उनका सादर स्मरण किया जाता है। सुदृढ़ लोक-विश्वास है कि श्रीगणेशकी कृपा प्राप्त कर लेनेपर किसी भी कार्यमें उपस्थित होनेवाले विघ्न स्वयं समाप्त हो जाते हैं।

श्रीगणेश विद्या-बुद्धिके विधायक माने जाते हैं। अतः विद्यार्थी बालकोंके लिये वे परम पूज्य हैं। राजस्थानमें बालकोंका प्रमुख त्योहार 'गणेश-चौथ' (भाद्रपद-शुक्ला-चतुर्थी) है। इस दिन बालकोंमें बड़ा उत्साह एवं उल्लास रहता है। वे नये वस्त्र धारण करते हैं। उनके लिये मिष्टान्न बनाया जाता है। पाठशालाओंकी ओरसे भी यह त्योहार बड़े उत्साहके साथ मनाया जाता है। लोकभाषामें इसे 'चौक-चाँदणी' (अर्थात् च्यानणी चौथ) कहा जाता है। पाठशालाओंकी ओरसे विशेष झाँकी तथा जुलूस निकलते हैं। इस अवसरपर बालक

समवेत स्वरमें गीत भी गाते हैं। इन गीतोंको 'गजल'* कहा जाता है। 'चौक-चाँदणी'के अवसरपर गायी जानेवाली गजलोंमें 'गणेशजीकी गजल' प्रमुख है। इसमें श्रीगणेशजीके जन्मकी पुराण-कथा है।

राजस्थानमें प्रत्येक भवनके प्रमुख द्वारपर ताखमें श्रीगणेशकी प्रतिमा स्थापित किये जानेका नियम है। इस प्रकार वे भवन एवं उसमें निवास करनेवाले लोगोंके 'आरक्ष देव' हैं। कन्या-विवाहके अवसरपर उस भवनके द्वारपर पहुँचनेवाला 'वर' सर्वप्रथम उन्हींकी वन्दना करता है। इस प्रथाको 'तोरण-वन्दना' कहा जाता है। इसे आजकल 'तोरण मारणो' नाम दे दिया गया है, जो मध्यकालीन राजपूत-जीवनका प्रभाव है।

सम्पूर्ण वैवाहिक कार्यके सानन्द सम्पन्न किये जानेका भार तो विशेषरूपसे श्रीगणेशजीपर ही छोड़ा जाता है। राजस्थानमें रणथंभौर गढ़के गणेशकी विशेष ख्याति है। वहाँ गणेश-चौथके अवसरपर बड़ा भारी मेला लगता है, जहाँ दूर-दूरके यात्री अपनी मनौती पूरी करनेके लिये, देवदर्शनहेतु पहुँचते हैं। वैवाहिक कार्य प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम उन्हींका आवाहन किया जाता है। इस अवसरपर गाया जानेवाला गीत बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय है। गीत इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

गढ रणथभँवर सैं आवो विनायक, करो ए नचीती बिड़दड़ी।
बिड़द विनायक दोनूं जी आया, आय पवास्या सीळै बड़ तळै।
बूजत-बूजत नगर पहेठ्या, पोल बतावो लाडेला रै बाप की।
ऊँची-सी मैड़ी, लाल किंवाड़ी, केळ झबरकै लाडेला रै बारणै।

"हे विनायक! रणथंभौर-गढ़से आओ और आकर हमारे विवाहके कार्यको सर्वथा चिन्तारहित करो। वृद्धि और विनायक दोनों ही आये और आकर उन्होंने शीतल बड़के नीचे ठहराव किया। वे नगरमें यह पूछते-पूछते प्रविष्ट हुए कि कोई हमें दुलहेके पिताकी 'पोल' (घरका प्रधान दरवाजा) बतलावे। उन्हें उत्तर मिला—"दुलहेके घरकी 'मैड़ी' ऊँची-सी है। उसके किवाड़ लाल रंगके हैं, उसके दरवाजेके पास केला हवामें लहलहा रहा है।"

पहलो तो बासो कांकड़ बसियो, कांकड़ निपजै मोठ र बाजरो।
(दूजो तो बासो सरवर बसियो, सरवर भरियो ठंडै नीर सैं।
भरियो तो सरवर लेवै हिलोळा, नीर भरै जी पणिहारियाँ।)
दूजो तो बासो बाड़ी जी बसियो, नाड़ी भरी ए खिजूर सैं।
फल-फूल बाड़ी सो फळ फलिया, कूंजां जी मरवा केवड़ा।
(अगणो तो बासो बड़ तळै बसियो, बड़ नारेलां जी छाइयो।)
अगणो तो बासो नगरी जी बसियो, नगरी में बैठ्या बामण बाणिया।
चोथो तो बासो तोरण बसियो, तोरण छायो रूड़ी चिड़कल्याँ।
वै तो एवड़-छेवड़ सात चिड़कली, बिच हरियाळो सूवटो।
ये तो चग चग बोलैसात चिड़कली, इमरत बोलै हरियो सूवटो।
पँचवों तो बासो फेरां जी बसियो, फेरां में बैठ्या लाडो-लाडली।
म्हारी लाडली को चीर बधज्यो, राईबर को बागो-बीटळी।
बधज्यो-बधज्यो ए लाडी गोत तुमारो, एक पिवर दूजो सासरो।
छट्ठो तो बासो थापै जी बसियो, थापै में बैठ्या देई-देवता।
सतवों तो बासो ओवरै बसियो, ओवरड़ो घी-गुड़ भर्‍यो।

"उन्होंने पहला ठहराव सीमान्तपर किया। वहाँके खेतोंमें 'मोठ' और 'बाजरा' अन्न प्रचुरमात्रामें पैदा होता है। उन्होंने दूसरा ठहराव सरोवरके पास किया। वह सरोवर ठंडे पानीसे भरा हुआ है। उसमें लहरें उठ रही हैं और पनिहारिनें जल भर रही हैं। उन्होंने दूसरा ठहराव 'बाड़ी' (वाटिका)-में किया। बाड़ी खजूर-जैसे मधुर फलसे भरी-पूरी है। उसमें अन्य भी नाना प्रकारके फल हैं और कुंज, मरवा तथा केवड़ा आदि फूले हुए हैं। उन्होंने अगला अर्थात् तीसरा ठहराव नगरीमें किया। नगरीमें स्थान-स्थानपर ब्राह्मण और बनिये बैठे हुए हैं। उन्होंने चौथा ठहराव 'तोरण'के पास किया। तोरण सुन्दर चिड़ियोंसे छाया हुआ है। उसमें इधर-उधर सात चिड़ियाँ हैं और बीचमें हरा सुग्गा है। वे चिड़ियाँ चहचहा रही हैं और वह सुग्गा अमृत-वाणी बोल रहा है। उन्होंने पाँचवाँ ठहराव 'फेरों' (भाँवर)-में किया। वहाँ दुलहा और दुलहिन बैठे हुए हैं। हमारी दुलारी दुलहिनका 'चीर' (ओढ़ना) तथा 'राईवर' (दुलहे)-का 'बागा' (शरीरपर धारण करनेका वस्त्र) और 'बींटली' (पगड़ी) वृद्धिको प्राप्त हों। हे दुलहिन! तुम्हारे पीहर और ससुरालके दोनों ही 'गोत' (गोत्र) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हों। उन्होंने छठा ठहराव 'थापे' (देवस्थापनाका स्थान)-के पास किया। वहाँ समस्त देवियाँ और देव विराजमान हैं। उन्होंने सातवाँ ठहराव 'ओबरे' (अपवरक—सुन्दर कमरा)-में किया। 'ओबरा'

* राजस्थानमें नगर-वर्णन-सम्बन्धी काव्यको 'गजल' कहा जाता है और यहाँ ऐसे 'गजल' नामक काव्योंकी पुरानी परम्परा है। जैसे—'चूरूकी गजल', बिसाऊकी गजल' आदि।

(अर्थात् भंडार) गुड़ और घीसे भरा-पूरा है।"

एक कोथलड़ी जस देई विनायक, लाडलै कै ताऊ-बाप नैं।
ये तो खाय-खरचै सो धन बिलसै, जस रैवै परवार में।
एक बाँहड़ली जस देई विनायक, लाडलै कै चाचै-बीर नैं।
एक जीभड़ली जस देई विनायक, लाडलै की दादी-माय नैं।
ये तो मीठी सी बोलै नै कर चालै, ज्यूं सरसै परवार में।
एक भात में जस देई विनायक, लाडलै कै नानै-मामां नैं।
एक आरतै जस देई विनायक, लाडलै की भूवा-भैण नैं।

"हे विनायक! दुलहेके ताऊ और पिताको 'कोथली' (थैली)-का यश देना अर्थात् उनकी थैलीको सदैव भरी-पूरी रखना। वे अपने धनका अच्छी तरह आनन्द लें, उसे खायें-खरचें, जिससे पूरे परिवारमें उनको यश प्राप्त हो। हे विनायक! दुलहेके चाचा और भाइयोंको भुजाका बल देना। हे विनायक! दुलहेकी दादी और माँको जीभ-सम्बन्धी यश देना। वे मधुर वाणी बोलें और नम्रताका व्यवहार करें, जिससे पूरे परिवारमें सरसताका प्रचार रहे। हे विनायक! दुलहेके नाना तथा मामोंको 'भात' (मायेरा)-में यश देना। हे विनायक ! दुलहेकी बूआ और बहनको 'आरते'में यश देना।"

एक गाजत-घोरत आवो विनायक, सांवणियां कै मेह ज्यूं।
एक भरयो-बथूलो आवो विनायक, बिणजारै कै बैल ज्यूं।
एक मांड्यो-चूंड्यो आवो विनायक, सरब-सुहागण कै हाथ (सीस) ज्यूं।
ये तीन बस्त निवारी विनायक, पून ज पाणी बसन्दरा।
एक अळी-गळी मत जाई विनायक, सीधो ई आई सामीं साळ में।

"हे विनायक! सावनके मेघके समान गर्जना करते हुए आना, जो सर्वत्र उल्लासका विस्तार कर देता है। हे विनायक ! बनजारेके बैलकी तरह सब प्रकारसे भरे-पूरे होकर आना। हे विनायक! सर्वसुहागिन स्त्रीके हाथ जिस प्रकार मेंहदीके 'माँडनों' (अलंकरणों)-से सुन्दर बन जाते हैं, उसी प्रकार सब तरहसे मण्डित होकर आना। हे विनायक! पवन, जल तथा अग्नि— इन तीनोंकी बाधाका निवारण करना। हे विनायक! इधर-उधरकी गलियोंमें न चले जाना, सीधे हमारे घरकी सामनेवाली 'साल' (कमरेमें) ही आना।"

या तो आवै गूगळियां की वास सुगंधी, कूण सुहागण गणपत पूजियो
गणपत पूजै लाडेलै की माय सुहागण, जां घर बिड़द उतावळी।

"गुग्गुलकी सुगन्ध फैल रही है। किस सुहागिनने गणपतिकी पूजा की है? दुलहेकी माता सुहागिन गणपतिकी पूजा कर रही है, जिसके घरमें वैवाहिक कार्यके लिये उतावली हो रही है।"

राजस्थानमें श्रीगणेशसे सम्बन्धित अन्य लोकगीत भी प्रचलित हैं, परंतु उपर्युक्त गीतमें इस वर्गके सभी गीतोंकी विशेषताएँ समाविष्ट हैं; अतः अधिक उदाहरण देकर लेखका कलेवर बढ़ाना उचित नहीं है।

प्रस्तुत गीतमें श्रीगणेशका गुण-गौरव भलीभाँति प्रकट है। साथ ही उनके प्रति प्रकट लोकश्रद्धा भी स्पष्ट है। मंगलकामना तो इस गीतका प्राणतत्त्व ही है।

गीत कुछ बड़ा-सा है। इसमें धनसम्पन्नता, भुज-बल, मधुर व्यवहार, पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावनाकी चर्चा है और ये सब प्रदान करनेके लिये विनायकसे विनय की गयी है। यहाँ परिवारका अत्यन्त उज्ज्वल एवं सुखपूर्ण चित्र प्रकट हुआ है। भारतीय लोक-जीवनका यह पुरातन आदर्श है, जो यहाँ वैदिक-कालसे चला आ रहा है। इसमें एक ऐसे गृहस्थ-जीवनकी झाँकी है, जो सब प्रकारसे सम्पन्न, शक्तिशाली एवं सौहार्दपूर्ण है। भारतीय गृहस्थ इसी आदर्शको प्राप्त करना चाहता है और इसीके लिये प्रस्तुत राजस्थानी गीतमें प्रार्थना की गयी है, जो '**लोके वेदे च**'का तथ्य प्रकट करते हुए निम्नलिखित वेदमन्त्रोंका सहज ही स्मरण करा देती हैं—

आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुः, वोढानड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा,
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु।
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्।
योगक्षेमो नः कल्पताम्।

(यजुर्वेद २२। २२)

इस प्रकार कहना न होगा कि यह लोकगीत असाधारण सांस्कृतिक महत्त्वसे सम्पन्न है और भारतकी अतिप्राचीन जीवन-धारासे इस महान् देशकी वर्तमान जीवन-पद्धतिको जोड़नेवाला एक प्रकाशमान स्वर्णसूत्र है।

लोकगीतोंके समान ही लोक-साहित्यका एक प्रमुख अंग लोककथा भी है। नहीं कहा जा सकता कि किसी देशमें प्रचलित कोई लोककथा कितनी पुरानी है

और समयानुसार वह किस प्रकार अपना रूप परिवर्तन करती हुई चली आ रही है। राजस्थानमें 'विनायक'-विषयक अनेक लोककथाएँ भी प्रचलित हैं और उनका अपना सांस्कृतिक महत्त्व है। श्रीगणेशके जन्म और उनके विवाहकी कथाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं। उनमें पुराण-कथाके सूत्र हैं और उनको आधारभूत मानकर राजस्थानमें काव्य-रचना भी हुई है; परंतु अन्य कथाओंमें विनायक-महिमा देखते ही बनती है।

राजस्थानमें व्रत-कथाओंका बड़ा प्रचार है। प्रत्येक व्रतके बाद उससे सम्बन्धित कथा कही जाती है। इन कथाओंमें कई पौराणिक कथानकपर आधारित हैं तो कई सर्वथा लौकिक भी हैं। इस प्रकारकी लौकिक व्रत-कथाको राजस्थानमें सामान्यतया 'कहाणी' कहा जाता है। ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी व्रतकी 'कहाणी' कहने-सुननेके बाद नियमसे 'विनायकजी'की 'कहाणी' कही ही जाती है। विनायकजीकी 'कहाणी' कहे बिना किसी भी व्रतकी 'कहानी' फलवती नहीं मानी जाती। इस नियमसे राजस्थानी महिलासमाजमें व्याप्त श्रीगणेश-महिमाका सहज ही पता चल सकता है।

राजस्थानी कहानियोंमेंसे कुछ यहाँ संक्षिप्त रूपमें दी जाती हैं, जिससे कि इस वर्गकी कहानियोंका सार-तत्त्व स्पष्ट हो सके—

(१)

एक बार विनायकजी बालकरूपमें चम्मचभर दूध और चुटकीभर चावल लिये हुए नगरकी गलियोंमें घूम रहे थे और पुकार-पुकारकर कह रहे थे—'कोई मेरे लिये खीर बना दे, कोई मेरे लिये खीर बना दे'; परंतु इतने थोड़ेसे दूध तथा चावलसे खीर किस प्रकार बन सकती है? अतः कोई भी व्यक्ति उस बालकका काम कर देनेके लिये तैयार नहीं हुआ। अन्तमें बालक विनायक एक बुढ़ियाके घरके सामने पहुँचा तो उसने स्नेहवश उसकी बात स्वीकार कर ली और बर्तनमें उसका दूध-चावल भरकर उसे आगपर चढ़ा दिया। बालक स्नान करनेके लिये बाहर चला गया और इधर बुढ़ियाका बड़ा बर्तन खीरसे भर गया। अब तो बुढ़ियासे खीर खाये बिना नहीं रहा गया। पहले उसने एक थाली भरकर बालकके लिये अलग रख दी और फिर अपने लिये थाली खीरसे भर ली तथा आरामसे उसे खा लिया। इसके बाद बालक स्नान करके आया और उसने खीर माँगी तो बुढ़ियाने उसके सामने खीरकी थाली रख दी। परंतु बालकने उस खीरको देखते ही कहा कि 'यह तो जूठी है'। इसपर बुढ़ियाने सारी बात प्रकट कर दी। बालक विनायक बुढ़ियाके सत्य वचनपर परम प्रसन्न हुआ और उसे सब प्रकारसे सुखी बना दिया।

(२)

किसी गाँवमें एक ब्राह्मण और उसकी पत्नी रहते थे; परंतु दुर्भाग्यवश वे दोनों ही अंधे हो गये और घरमें एक पुत्रीके अतिरिक्त अन्य कोई भी न था। वह बालिका ही अपने माता-पिताकी सेवा करती थी। एक बार गणेशजीके मेलेका दिन आया तो छोटी लड़कीने अपने माता-पिताके सामने मेलेमें जानेकी इच्छा प्रकट की। पिताने उसे दो पैसे दिये और वह मेलेमें जा पहुँची। वहाँ कोई कुछ खरीद रहा था और कोई कुछ खा रहा था; परंतु लड़कीने किसी ओर भी ध्यान नहीं दिया। वह तो केवल गणेशजीकी प्रतिमाकी ओर ही टकटकी लगाये खड़ी रही। बालिकाकी इस भक्ति-भावनासे गणेशजी बड़े प्रसन्न हुए और उससे वरदान माँगनेके लिये कहा। लड़कीने बुद्धिमानी की और वह एक साथ ही कह गयी—"मैं अंगुली पकड़े हुए दो भाई माँगती हूँ, माता-पिताके लिये नेत्र-ज्योति माँगती हूँ, जरी-बादलके वस्त्र माँगती हूँ और मोती-मूँगोंका जेवर माँगती हूँ।" गणेशजीने कहा 'तथास्तु' और उसी समय दो बालकोंने आकर उस बालिकाके दोनों हाथोंकी अँगुलियाँ पकड़ लीं। अब लड़की घरकी ओर चली तो उसे ध्यान आया कि कई बार उसकी अंधी माता गरम बर्तन पकड़ लेती है और उसके हाथ जल जाते हैं; अतः उसने अपनी माताके लिये दो पैसोंका एक 'चिमटा' खरीद लिया। जब वह घर पहुँची तो अपने माता-पिताको चिमटा देखनेके लिये कहा। उसी समय उन दोनोंके नेत्रोंमें ज्योति आ गयी। भाई दो साथ थे ही। वह घर धनसे भी भरा-पूरा हो गया।

(३)

किसी बनियेके बेटेकी बहूके कोई संतान न थी। उसकी सासने विनायकजीकी मनौती मानी कि 'यदि उसकी पुत्रवधू गर्भ धारण कर ले तो वह उनको सवा

सेरका चूरमा चढ़ायेगी।' देवकृपासे ऐसा ही हो गया। उसकी पुत्रवधू गर्भवती हुई तो फिर सासने विनायकजीकी मनौती मानी कि 'यदि उसके घरमें पोता जन्म लेगा तो वह देवताको अढ़ाई सेरका भोग चढ़ा देगी।' समयपर उसकी बहूने पुत्रको जन्म दिया, परंतु उसने अपनी मनौती पूरी नहीं की और कहा कि 'जब पोता पैरों चलने लगेगा तो एक साथ ही सवा पाँच सेरका भोग चढ़ा दिया जायगा।' इससे विनायकजी रुष्ट हो गये और उसके पोतेको उन्होंने सूक्ष्मरूप देकर उसीके घरकी चौखटमें छिपा दिया। जब शिशुकी खोज हुई तो शिशु बोल उठा—*'चरड़क चूं विनायकजी कै गहणै छूं'।* इस आवाजको सुनकर सब चकित हो गये तो फिर नयी आवाज आयी—*'चरड़क चूं, चौखट में छूं।'* सबने विनायकजीकी वन्दना की और तत्काल मनौती पूरी की गयी तो उन्होंने सुरक्षित रूपमें शिशुको लाकर पालनेमें लिटा दिया।

इसी प्रकार अन्य भी कई लघु-कथाएँ लोकमुखपर अवस्थित हैं और वे व्रत-कथाके बाद बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिके साथ कही जाती हैं। इनमें विनायकजीकी प्रसन्नताका मधुर फल प्रकट किया गया है; परंतु नाराज होनेपर वे बाधा भी उत्पन्न कर देते हैं, ऐसा उनका स्वभाव है। अतः प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। विवाहके अवसरपर तो एक छोटे बालकको वरके साथ रहनेवाला विनायक बनानेकी प्रथा भी है। इन लोककथाओंमें लोकहृदयकी सरलता देखते ही बनती है। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि इन पुण्यकथाओंमें सुखी एवं सम्पन्न गृहस्थीकी कामनाके साथ ही लोकमंगलकी भावना भी व्याप्त है, जो भारतीय संस्कृतिका एक प्रकाशमान तत्त्व है। प्रत्येक व्रत-कथाके अन्तमें नियमपूर्वक कहा जाता है—'हे विनायक महाराज! जिस प्रकार आपने इस कथाके पात्रपर प्रसन्न होकर उसे सब प्रकारसे सुखी बना दिया, उसी प्रकार सबपर कृपा कीजियेगा—कथा कहनेवालेपर, कथा सुननेवालेपर और हुँकारा देनेवालेपर।'

असलमें यह अन्तिम वाक्य इन व्रत-कथाओंका माहात्म्य प्रकट करता है, जिससे सहज ही लोकहृदयमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। यही कारण है कि राजस्थानी जन-साधारणका अटल विश्वास है—

विघन-हरण मंगल-करण, काटण सकल कलेस।
सारां पहली सुमरिये, गौरीपुत्र गणेस॥

'विघ्नोंको हरनेवाले, मंगलको करनेवाले, सब प्रकारके क्लेश मिटानेवाले गौरीपुत्र गणेशका स्मरण सभी देवी-देवताओंसे पहले करना चाहिये।'

इसीलिये यात्रारम्भके पूर्व घरसे निकलते ही यह स्तुति की जाती है—

सदा भवानी दाहणी, सनमुख देव गणेश।
पाँच देव रक्षा करैं, ब्रह्मा विष्णु महेश॥

'श्रीगणेश मेरे सम्मुख रहें, भवानी सदा दाहिनी ओर रहें तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये पाँचों देवी-देवता मेरी रक्षा करते रहें।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थानी जनताके रोम-रोममें श्रीगणेशजीके प्रति अपार श्रद्धा और भक्ति-भावना रमी हुई है। वे यथार्थ ही गणपति एवं परम पूजनीय हैं।

~~०~~

खम्भात-क्षेत्रके कवियोंद्वारा श्रीगणेश-स्मरण

गुजरातके खम्भात-क्षेत्रमें भी कवियोंने श्रीगणपतिका स्मरण करके अपने काव्यका शुभारम्भ किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) कवि विष्णुदास (समय १६३४ से १६८१ वि०)

(क) 'जालन्धरा-आख्यान' के प्रारम्भमें कहते हैं—

श्रीशंकर सुतने प्रणमुं रे, मागुं मति मनोहर सार।
मुज मंदने करुणा करो रे, गणपति बुद्धि-दातार॥

ढाल

बुद्धितणो दातार गणपति, सुध-बुध स्वामी सुजाण।
लक्ष-लाभ कुमार वे मन-कामना बधु प्रमाण॥
मूषक वाहन, आहार मोदक, विघ्नहर विवेक।
गजानन, गुणवंत पूरण, दंत उज्ज्वल एक॥

(ख) 'शल्यपर्व-आख्यान' में—

श्रीगुरु गणपतिने विनवुं रे प्रणामि लागूं पाय।
शुभमति मुजने आपो रे, स्वामी श्रीगणराय॥

(ग) 'रुक्मांगदके आख्यान'में (रचना-काल १६३४ ई०)

प्रथमे प्रणमुं गणपति राय, जेथी कारजतणी सिद्धि थाय।
दया करो मने दुंदाला देव, निर्मल मति मने आपो अवश्यमेव॥

(घ) 'हरिश्चंदपुरी-आख्यान' (रचना-काल १६५७ ई०)

गणपति गिरिजानन्दन, वंदन करूँ शिर नायी रे।
स्वामी रे सेवक, कार्य सिद्ध करो रे॥

इस कविने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है।

(२) कवि शिवदास (विष्णुदासके समकालीन)

(क) 'जालन्धराख्यान'—

प्रथमे प्रणमुं आद्य अनंत कृपा करो श्रीकमलाकंत।
जश आपो गणपति, गुणराय प्रेम धरीने लागुं पाय॥

(ख) 'परशुरामाख्यान'—

'गुरु गणपतिने करूँ बीनति शुद्ध बुद्ध वरदा त्रिभुवन पति।'

(ग) 'डांगवाख्यान'—

श्रीगणपतिने लागूँ पाय, जश आपो उमया माय।
करो सहाय ब्रह्मसुता, तुजने स्तवुं रे॥

(३) कवि रेवाशंकर (१९वीं सदी)

(रचना-काल १८२६ ई०)

शंभुसुतने वर्णवुं प्रेमे, पूजीने लागुं रे पाय।
विधि तनया व्रजराजसमरतां शुभ मति स्वाधीन थाय॥
गौरी-नंदन जय जगबंदन विघ्नविनायक देव।
संकटहरण अधमोधारण, सर्व करे जेनी सेव॥
लंबोदर शुभ लक्षण पूरण, पावन परम पवित्र।
कृपा करो करुणासागर, वरणवुं विष्णुचरित्र॥

इस कविने अनेकों ग्रन्थोंकी रचना की है। उनमें गणपतिका स्मरण पहले किया है।

(४) कवि दुर्गाशंकर (१९ वीं सदी)

'पुरुषोत्तममासकी कथा' काव्यमें (रचनाकाल १८५० ई०)

विघ्नविदारण सरस्वतीने श्रीगुरु इष्ट दयाल।
एटलाने बंदीने हुं तो ग्रंथ रचुं आ काल॥

इस कविने अनेक ग्रन्थ रचे हैं। उनमें पहले गणपतिका स्मरण किया है।

~~०~~

महाराष्ट्रमें श्रीगणेशोत्सव और लोकमान्य तिलक

(लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा)

"पूनामें लोकमान्य तिलकके नेतृत्वमें गणेश-उत्सव देशभक्तिके प्रचारार्थ एक राष्ट्रीय उत्सव बन गया था। उसे राष्ट्रधर्मका स्वरूप मिला। उसीके अनुकरणपर ही बम्बई, अमरावती, वर्धा, नागपुर आदि नगरोंमें भी सार्वजनिक गणेश-उत्सव आरम्भ हुए। गणेशजी '**गणानां त्वा गणपतिं हवामहे**'—इस मन्त्रके अनुसार व्यापक रूपसे गणराज्य देनेवाले, स्वतन्त्र देवता हैं, यह प्रचार आरम्भ हुआ। उत्तम भाषण और देशभक्तोंके द्वारा गणेशके आश्रयमें क्रान्तिकारियोंको संगठित करनेका कार्य सफल रहा। धार्मिक उत्सव होनेके कारण पुलिस उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी।"

—ये विचार सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्रीखानखाजेने अपने संस्मरणोंमें प्रकट किये हैं, जो 'केसरी'में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुए थे।

बात भी सच है। लोकमान्यने देशके लिये अपना जीवन अर्पण करनेका दृढ़ निश्चय किया था। इसीलिये राष्ट्रीय शिक्षासे ओत-प्रोत नवयुवकोंको तैयार करनेके लिये इन्होंने 'न्यू इंग्लिश स्कूल'की स्थापनाके एक वर्षके बाद ही 'केसरी' और 'मराठा'—इन दो पत्रोंका प्रकाशन आरम्भ किया, जिनका मुख्य ध्येय प्रौढ़ जनताको राजनीतिक दृष्टिसे जाग्रत् करना था।

गणेशका मूलस्वरूप ॐ माना जाता है। इस रूपमें उनकी प्रार्थना और पूजा अनादिकालसे चली आ रही है। किसी भी देवताका उपासक हो, फिर भी वह प्रथम गणेशपूजाके बाद ही अपने उपास्य देवकी पूजा करता है। सभी धार्मिक कर्मकाण्ड प्रथम गणेश-पूजनसे आरम्भ होते हैं। यहाँतक कि चाहे कोई मन्त्र हो—आदिमें ॐ अवश्य लगा रहता है और यदि मन्त्रके अन्तमें भी ॐ लगा दिया जाता है तो उसकी शक्ति और बढ़ जाती है।

केवल भारतमें ही नहीं, ब्रह्मदेश, हिंद चीन,

स्याम, तिब्बत, चीन, मैक्सिको, अफगानिस्तान, रूस, हिंदेशिया आदि देशोंमें ऐसे प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि वहाँ भी श्रीगणेश-उपासकका प्रभाव था। उन देशोंसे प्राप्त मूर्तियोंके कई चित्र मूर्तिविज्ञान-विषयक ग्रन्थोंमें मिलते हैं।

हिंदू-धर्ममें अनेक उपासना-मार्ग हैं, जैसे—शैव, वैष्णव, शाक्त आदि। इनमें गणेशकी उपासना करनेवालोंको 'गाणपत्य' कहते हैं। ये लोग गणेश-पंचायतनकी उपासना करते हैं। इनके उपासक दक्षिणमें और विशेषरूपसे महाराष्ट्रमें मिलते हैं। श्रीमन्त पेशवा-सरकार गणेशकी उपासक थी। उनके शासनकालमें गणेशोत्सव बड़े ही राजकीय ठाट-बाटसे मनाया जाता था। श्रीमन्त सवाई माधवरावके शासनकालमें यह उत्सव शनिवारवाडाके गणेश-महलमें विशाल रूपसे होता था। उस समय यह उत्सव छः दिनोंतक चलता था। गणेश-विसर्जनकी शोभायात्रा सरकारी लाव-लश्करके साथ निकलकर ओंकारेश्वर घाट पहुँचती थी, जहाँ नदीमें विग्रहका विसर्जन होता था।

इसी तरह पटवर्धन, दीक्षित, मजुमदार आदि सरदारोंके यहाँ भी उत्सव होता था। उत्सवमें कीर्तन, प्रवचन, रात्रिजागरण और गायन आदि भी होते थे।

पूनामें निजीरूपसे इस चालू उत्सवको सरदार कृष्णाजी काशीनाथ उर्फ नाना साहेब खाजगीवालेने सर्वप्रथम सार्वजनिक रूप दिया। सन् १८९२में वे ग्वालियर गये थे, जहाँ उन्होंने राजकीय ठाट-बाटका सार्वजनिक गणेश-उत्सव देखा था, जिससे प्रभावित होकर पूनामें भी उन्होंने इसे १८९३ ई० में आरम्भ किया। पहले वर्ष खाजगीवाले, घोटवडेकर और भाऊ रंगारीने अपने यहाँ सार्वजनिक रूपसे गणेश-उत्सव आरम्भ किया। विसर्जनके लिये शोभायात्रा भी निकली। कहा जाता है कि खाजगीवालेके गणेशको शोभायात्रामें पहला स्थान मिला।

अगले वर्ष १८९४ ई० में इनकी संख्या बहुत बढ़ गयी। कौन-से गणेश आगे रहें, यह प्रश्न उठा। इसके लिये ब्रह्मचारी बोवाने लोकमान्य और अण्णा साहेब पटवर्धनको निर्णायक बनाया। इन दोनोंने पूनाके ग्रामदेवता श्रीकसबागणपति और जोगेश्वरीके गणपतिको क्रमशः पहला, दूसरा और तीसरा स्थान खाजगीवालेको दिया। यह क्रम आज भी चालू है।

राष्ट्रीय चेतनाके लिये लोकमान्यने महाराजा शिवाजीकी स्मृतिमें शिवाजी-जयन्तीका महाराष्ट्रमें प्रचलन किया। प्रथम बार मराठा-नरेशोंने भी इसमें भाग लिया था। इससे ब्रिटिश सरकार अप्रसन्न हो गयी; क्योंकि लोगोंमें राष्ट्रीयताका संचार होता था तथा उसमें सरकारको विद्रोहके बीज दिखायी दे रहे थे, जिसे वह अंकुरित होने देना नहीं चाहती थी। अतः बादमें सरकारी कोपसे बचनेके लिये मराठा-नरेश उससे उदासीन हो गये।

लोकमान्यको गणेश-उत्सवके रूपमें स्वर्ण अवसर हाथ लगा। उन्होंने इसे राष्ट्रीय उत्सवके रूपमें परिवर्तित कर दिया—ज्ञानसत्रका रूप दे दिया। छः दिनोंके उत्सवको अब दस दिनोंका बना दिया गया। अंग्रेजी शिक्षाके कारण हिंदू युवक आचार-भ्रष्ट और विचार-भ्रष्ट होने लगे। उनमें हिंदू-धर्मके प्रति अश्रद्धा पैदा होने लगी। देवी-देवताओं और पूजा-उपासनाका वे मजाक उड़ाने लगे। इस अनिष्टकी ओर कई लोगोंका ध्यान गया और वे इसके निराकरणका उपाय भी सोचने लगे। लोकमान्यने इसके लिये गणेश-उत्सवको अपना साधन बनाया। इसके माध्यमसे उन्होंने हिंदुओंमें जीवन और जागरण उत्पन्न करनेवाले कार्यक्रम रखने आरम्भ किये। कीर्तन, प्रवचन, व्याख्यान और मेला (ख्याल)-के साथ संगीतके तीनों अंग—गायन, वादन और नृत्यकी त्रिवेणीको भी इसमें स्थान मिला। प्रहसन और नाटक भी इसकी शोभा बढ़ाने लगे। व्याख्यानोंके विषय ऐसे रखे जाते थे, जिनसे अपने अतीत—धर्म, वेदों और पुराणों, भारतीय साहित्य और संस्कृति, अपने देश, राम और रामायण, कृष्ण और गीता, ज्योतिष, संस्कृत और आयुर्वेदके प्रति लोगोंकी उत्पन्न होनेवाली घृणा श्रद्धामें बदल गयी। उन्हें यह भान हुआ कि वेद और पुराण कल्पित नहीं हैं। विदेशियों और विशेषकर अंग्रेजोंने हमारे इतिहासको इस ढंगसे लिखा है कि हमारा अतीत कलुषित दिखायी दे। पर इन उत्सवोंके माध्यमसे अतीतके उज्ज्वल पृष्ठ उजागर होकर सामने आने लगे। अपने-अपने विषयके विद्वान् वक्ता सब कुछ इस ढंगसे व्याख्या करने लगे कि लाख प्रयत्न करनेपर भी वे सरकारी कानूनके शिकंजेमें नहीं आ सके और जो कुछ कहना चाहते, धर्मकी आड़में कह देते।

प्रारम्भमें तो सरकारने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। पर जैसे-जैसे यह उत्सव अपना प्रभाव फैलाने लगा, इसकी किरणें देशमें ही नहीं, विदेशोंमें, जैसे—अदन, नैरोबी आदिमें—अपना प्रकाश फैलाने लगीं, सरकारके कान खड़े हो गये। उसमें उसे विद्रोहकी झलक दिखायी देने लगी। इसको लेकर हिंदुओंमें फूट डालनेका भी प्रयत्न किया गया। लोकमान्य इन सब विरोधियों और सरकारके पक्षपातियोंको अपने व्याख्यानों और 'केसरी' और 'मराठा'के इन दो पत्रोंके माध्यमसे मुँहतोड़ जवाब दिये, जिससे उनकी एक नहीं चली और जनता इसमें दुगुने उत्साहसे सम्मिलित होने लगी।

बादमें अंग्रेजोंने मुसलमानोंको भड़काया कि 'गणेश-उत्सव तो तुम्हारे विरोधमें है।' पर जब वे लोग इसमें सम्मिलित होते तो उनके सामने इसकी सत्यता उजागर हो जाती थी कि यह तो विशुद्ध धार्मिक पर्व है, जिसकी आड़में राष्ट्रीयताका प्रचार होता है; किसी धर्म, जाति या सम्प्रदायके विरोधमें नहीं; अत: उनके भाषण भी उत्सवोंमें होने लगे। १८९२ ई० के बादसे १९२० ई० तक एकाध अपवादको छोड़कर कहीं भी हिंदू-मुस्लिम दंगे नहीं हुए। यह गणेशजीकी ही कृपा थी।

लोकमान्य गणेश-उत्सवके माध्यमसे राष्ट्रीयताकी पोषक चतु:सूत्री योजना—स्वदेशी मालका प्रचार, विदेशी मालका बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षाका प्रसार और मद्यपान-निषेधका प्रचार आदिके संदेशको जनतातक पहुँचानेमें पूर्ण सफल रहे। किंतु इन उत्सवोंके पूर्णतया धार्मिक होनेसे प्रत्यक्षरूपसे सरकारके लिये उनपर प्रतिबन्ध लगाना असम्भव था, अत: उसने दूसरे मार्गका अवलम्बन किया। लोकमान्यपर 'केसरी'में प्रकाशित लेखोंको राजद्रोहात्मक सिद्ध कर उन्हें मांडले जेलमें भेज दिया गया। सरकारको आशा थी कि लोकमान्यके जेल चले जानेसे उत्सव स्वयं ही बंद हो जायँगे; पर ऐसा हुआ नहीं। जन-जनके हृदयमें स्वतन्त्रताकी लहरें हिलोरें ले रही थीं। वंग-भंग भी इसी कालमें हुआ था; अत: गणेश-उत्सव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहा। अब बड़े नगरोंमें ही नहीं, छोटे-छोटे गाँवोंमें भी उत्सव मनाया जाने लगा। उत्सवोंमें कर्जनशाहीके विरुद्ध मेलों (खयाल)-के गीतोंमें प्रहार होने लगा। उस समय आजकी तरह बिजली नहीं थी। इसलिये तेलकी मशाल जलायी जाती थी, जो लकड़ीपर कपड़ा लपेटकर तैयार होती थी। सरकारने लाठी लेकर उत्सवमें भाग लेनेपर पाबंदी लगा दी, जिसमें बेचारी मशाल भी गयी। लेझिमका खेल भी उत्सवमें बंद हो गया। नकली भाला लेकर जो करामात दिखाते थे, उन अखाड़ोंपर भी रोक लगा दी गयी। इतना ही नहीं, मेला (खयाल) गानेवाले बालकोंके नाम-ग्राम भी लिखकर उनके माता-पिताको तंग किया जाने लगा। इससे मेला गानेवालोंकी संख्या कुछ समयके लिये घट गयी। इतना ही नहीं, 'तिलक महाराजकी जय'का नारा भी गैरकानूनी घोषित किया गया। इस नारेके लगानेके झूठे आरोपपर लोगोंको चार-चार सौ रुपयोंके अर्थ-दण्ड भी दिये गये। 'शिवाजी महाराजकी जय' पर भी लोगोंको सजा होने लगी। शोभा-यात्रामें शिवाजी और लोकमान्यके चित्रोंपर रोक लगा दी गयी। इस तरह सरकारने उत्सवमें भाग लेनेवालोंको तंग करना आरम्भ कर दिया। फिर भी जन-जनमें व्याप्त स्वाधीनताका संदेश अपना प्रभाव प्रकट करने लगा। लोगोंने कानून तोड़ना आरम्भ कर दिया। यहाँतक कि शोभा-यात्राको पुलिसने कहीं रोका तो गणेशजीकी सवारीको वहीं रखकर लोग चले गये और बादमें पुलिसको उठाकर उन्हें विसर्जित करना पड़ा और इन लोगोंपर सड़क रोकनेके अपराधमें सजा हुई। इस तरह भावी सत्याग्रह-संग्रामका प्रशिक्षण जनताको सरकारकी अदूरदर्शिताके कारण अनायास ही मिलने लगा। महात्मा गांधीके भावी सत्याग्रह-संग्रामके लिये सरकारने सत्याग्रही तैयार किये। उसके लिये भूमिका सरकारने बनायी। यह सब कुछ १९१४ ई०-तक सरकारने किया। लोकमान्यके जेलसे छूटते ही वह चुप हो गयी।

अब गणेश-उत्सव केवल महाराष्ट्रतक ही सीमित नहीं रहा, सारे देशमें यह उत्साहके साथ मनाया जाने लगा। महात्मा गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द पाल, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, अब्दुला ब्रेलवी, महामना मदनमोहन मालवीय, आचार्य ध्रुव, बाबू भगवानदास, नरीमान, सरोजिनी नायडू, मौलिचन्द्र शर्मा, जमनादास मेहता, पन्नालाल व्यास-जैसे हिंदू

मुसलमान, पारसी आदि सभी धर्मोंके प्रभावशाली लोग इनमें भाषण देने लगे। तब आजकी तरह ध्वनिप्रसारक-यन्त्र (लाउडस्पीकर) नहीं थे; अत: वक्ताको अपनी वाणीपर ही अधिकार रखकर अपनी बात हजारों श्रोताओंतक पहुँचानी पड़ती थी। यह साहस और जीवटका काम था।

गणेश-उत्सवके कारण एक ओर जहाँ राष्ट्रीय चेतनाको बल मिला तो दूसरी ओर साहित्य और कलाको प्रोत्साहन मिला। उत्सवोंके सभी कार्यक्रम मराठी, हिंदी या स्थानीय भारतीय भाषामें होते थे, जिससे भारतीय भाषाओंके प्रति जन-जनमें आदर पैदा हुआ कि ये भी विद्वानोंकी भाषाएँ हैं।

मेला (खयाल)-के लिये कवि गीत बनाकर देने लगे। पोवाडे (वीररस-काव्य) और भी लोकप्रिय हो गये। रंगमंचने प्रगति की। नये-नये नाटक-प्रहसन आदि लिखे और खेले जाने लगे। उत्सवके कारण ही मराठी रंगमंचमें नया जीवन आया। शाहीर (लोकगीत) और लावनीके प्रति लोगोंमें आकर्षण बढ़ा। मूर्तिकार गणेशजीकी छोटीसे लेकर बड़ीतक असंख्य मूर्तियाँ प्रतिवर्ष बनाने लगे, जिससे मूर्तिकला और उसके कलाकारोंको संरक्षण मिला; क्योंकि मूर्तियाँ मिट्टीकी रहनेसे प्रतिवर्ष नयी बनाकर स्थापित की जाती हैं। इस तरह लोकमान्यने गणेश-उत्सवको देशकी सर्वांगीण प्रगतिका लोकप्रिय आधार बना दिया। लोकमान्य तिलक तो १९२० ई० में तिरोहित हो गये, पर उनके द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रीय 'चेतनाका पर्व गणेश-उत्सव' आज भी देश-विदेशमें दुगुने उत्साह और ठाट-बाटसे मनाया जा रहा है। गत ८० वर्षोंमें अनेक उतार-चढ़ाव आये, देश दासतासे मुक्त हुआ, पर भगवान् गणेशजीकी कृपासे इन उत्सवोंमें कोई कमी नहीं आयी। वह सतत चल रहा है और चलता रहेगा। उसके साथ लोकमान्यकी राष्ट्रीय जागरणकी भावना जो है, जन-जागरणकी यह महान् ज्योति सदा प्रज्वलित रहेगी। इसीलिये बाल गंगाधर तिलक 'लोकमान्य' कहलाये।

~~○~~

तानसेन और उनकी गणेश-अर्चना

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेशव्रतराय, एम्० ए०, डी० फिल्०, एल्-एल्० बी०)

प्रत्येक हिंदूधर्मावलम्बीके जन-जीवनमें गणेश-पूजन सबसे अधिक प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय है। चाहे घर हो चाहे दूकान, चाहे विवाह-कार्य हो अथवा अन्य कोई मांगलिक अवसर, गणपतिकी प्रतिमा अथवा चित्रकी अर्चना किये बिना कार्यका आरम्भ ही नहीं होता। मूर्ति नहीं है तो सिन्दूर, रोली अथवा लाल रंगसे द्वारों-दीवारों और बही आदि स्थानोंमें '**श्रीगणेशाय नमः**' का अंकन गणेशकी व्यापक लोकप्रियताका परिचायक है। लोकभाषामें 'श्रीगणेश' शब्द ही मंगलकारी शुभारम्भका पर्याय बन गया है। पंचदेवों (विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा और गणेश)-में सिद्धियों एवं ऋद्धियोंके दाता गणेशका ही प्रमुख स्थान है। शास्त्रोंमें गणेशके ५१ स्वरूपोंका वर्णन है, जैसे—बाल, तरुण, विघ्नराज, हेरम्ब, नृत्य आदि। मत्स्यपुराणमें गणेशके विभिन्न नामोंका उल्लेख है। 'शारदातिलक'में भी गणेशके अनेक नामोंकी चर्चा की गयी है, जैसे—विघ्नराज, गणपति, शक्ति-गणेश, वक्रतुण्ड, हेरम्ब, महागणपति, विरि-गणपति, उच्छिष्ट-गणपति आदि।

नृत्य-गणपतिके रूपमें गणेशजी संगीतकलाके प्रतीक हैं। दक्षिण भारतमें नृत्य-गणपतिकी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। मैसूरके हलेविदके होयलेश्वर-मन्दिरमें नृत्य-गणपतिकी अष्टभुजी नयनाभिराम मूर्तिके हाथोंमें परशु, पाश, मोदकपात्र, दन्त, सर्प एवं पद्म सुशोभित हैं तो शेष दो हाथ गजहस्त-मुद्रा और विस्मयहस्तकी मुद्रामें है। तंजौरके मन्दिर, भेड़ाघाटस्थित मन्दिरमें गणेशकी कलात्मक प्रतिमाएँ मिली हैं।

उड़ीसाके मयूरभंजमें प्राप्त नृत्य-गणपतिकी मूर्तिकी सौम्य मुद्रा देखनेवाला ठगा रह जाता है। दोहरे कमलपर आसीन अष्टभुजी मूर्ति नृत्य-मुद्रामें है। खजुराहोमें चतुर्भुजीसे लेकर अष्टभुजी, षोडशभुजीतक गणपतिकी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मैसूरमें प्राप्त नृत्य-गणेशकी मूर्तिके हाथोंमें अक्षमाला, मोदक आदि हैं तो दाहिना हाथ वरदमुद्रामें

है। पैरोंके मोड़से नृत्यकी कलात्मक भाव-भंगिमा इंगित होती है। बंगालसे प्राप्त मूर्तिमें गणेशजी आम्रवृक्षके नीचे नृत्य करते दिखलाये गये हैं। कलकत्ता-संग्रहालयमें नृत्य-गणपतिकी अनेक मध्यकालीन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। काशी-हिंदू-विश्वविद्यालयके भारतकला-भवनमें संगृहीत प्रतिमामें नृत्य-मुद्रामें तिरछे खड़े गणेश प्रसन्न मुद्रामें प्रस्तुत किये गये हैं।

नृत्य-मुद्रामें गणेशकी अर्चना और लोकप्रियताके कारण संगीतके क्षेत्रमें वीणावादिनी सरस्वती और नटराजके साथ गणेशको प्रतिष्ठित स्थान मिला। संगीत-साधकको प्रेरणा देनेवाले, मंगलकर्ता और विघ्नहर्ताके रूपमें अग्रणी तबला, मृदंग, पखावज-वादक आज भी गणेशवन्दनाके निम्न छन्दको परनके रूपमें प्रस्तुत करनेके साथ कार्यक्रमका शुभारम्भ करते हैं—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥ (ऋग्वेद १।२३।१)

यही नहीं, संगीतज्ञोंने इष्टदेव गणपतिको समर्पित २१ मात्रावाले गणेशतालकी रचना की। गणेशतालका रूप निम्न प्रकार है—

(मात्रा २१ भाग १०)

१ २ ३ ४	५	६ ७ ८ ९	१०	११	१२ १३ १४ १५	१६	१७	१८	१९ २० २१
धा ता दिं ता	कत	तिट धा दिं ता	कत	तिट	ता धागे दिं ता	धागे	ता	तिट	कत गदि गन
x	२̆	३̆	४̆	५̆	६	७̆	८	९̆	१०̆

ऐसा प्रतीत होता है कि 'गणेशताल'का प्रचलन 'संगीतरत्नाकर'के उपरान्त हुआ। तानसेनने 'संगीत-सार'में शार्ङ्गदेव तथा भरतके मतानुसार 'तालाध्याय'के अन्तर्गत ब्रह्मताल, रुद्रताल, विंध्यताल, कंदर्पताल, सिंहताल, जनकताल तथा विष्णुतालका उल्लेख किया है, परंतु गणेशतालकी चर्चा नहीं मिलती।

अपनी ध्रुपद रचनाओंमें तानसेनने संगीत एवं काव्यकला गजाननके चरणोंमें अर्पित कर दी है। गणेश समस्त सिद्धियों, नौ निधियोंके दाता और विघ्नहर्ता हैं, जिनके स्मरणमात्रसे सारे कष्ट दूर हो जाते हैं। इष्टदेवके विभिन्न नामोंके उल्लेख, वंश-परिचयप्रधान इस ध्रुपदमें तानसेनकी प्रगाढ़ गणेशभक्ति परिलक्षित होती है—

एकदंत गजबदन बिनायक बिघ्न-बिनासन है सुखदाई॥
लंबोदर गजानन जगबंदन सिव-सुत ढुंढिराज सब बरदाई॥
गौरीसुत गनेस मुसक-वाहन फरसा धर शंकर सुवन रिद्ध-सिद्ध नव-निद्ध दाई॥
'तानसेन' तेरी अस्तुत करत काटे कलेस प्रथम बंदन करत द्वंद मिट जाई॥

अनेक नामधारी गौरीसुत गणेशकी महिमा सागरकी भाँति अगाध है। संसारमें गणेश सर्वोच्च सिंहासनपर प्रतिष्ठित हैं, इसलिये तानसेनने उनके प्रसाद और आशीर्वादकी याचना की है—

एकदंत वंत लंबोदर फिरत जाहे बिराजे,
गनेस गौरी-सुत महा सुनि महिमा सागर गुरु गन नाथ अविघन राजे।
हेरंब गन दीपक तूं ही महातुर,
उग्र तप बट चंद्रमा सों छबिनायक जगत के सिरताजे।
'तानसेन'को प्रसाद दीजे सकल बुध नव निध के,
सदा दायक लायक जगत के सरे काजे॥

सरस्वतीकी भाँति गजानन भी बुद्धि, सिद्धि और कलाके देनेवाले सिद्धेश्वर-आराध्य हैं, जिनका मनुष्य, देवता, गुणी जन, मुनिगण, गन्धर्व एवं पण्डित प्रतिदिन, हर समय स्मरण करते हैं। तानसेन भी गणेशकी भक्तिमें विह्वल होकर गाने लगते हैं—

तुम हो गनपत देव बुधदाता सीस धरे गज-सुंड,
जेइ-जेइ ध्यावै तेइ-तेइ पावै चंदन लेप किये भुजदंड,
सिद्धेश्वरी नाम तुमारो कहियत जे विद्याधर तिन लोक मध सप्त दीप नव खंड,
'तानसेन' तुमको नित सुमिरत सुर-नर-मुनि-गुनि-गंधर्व-पंडित॥

एक अन्य ध्रुपदमें तानसेनने अष्टसिद्धि नौ-निधियोंके दाता, विद्यागार, लालवेषधारी, सौम्य मुद्रावाले गणपति, ब्रह्मा-विष्णु-महेश और शेषनागके भी आराध्यकी अत्यन्त भावभीने शब्दोंमें अर्चना की है—

लंबोदर गजानन गिरिजासुत गनेस एक-रदन प्रसन्न बदन अरुन भेस,
नर-नारी-मुनी-गंधर्व-किंनर-यक्ष-तुंबर मिलि ब्रह्मा बिष्नु आरत पूजवत महेस।
अष्टसिद्ध नव निद्ध मूषकवाहन बिद्यापति तोहि सुमिरत तिनको नित सेष,
'तानसेन' प्रभु तुमही कूँ ध्यावे अबिघन रूप बिनायक रूप स्वरूप आदेस॥

तानसेनके अतिरिक्त गोपाल नायकने ***'जय सरस्वती गनेस महेस'*** कहकर अन्य देवताओंके साथ गजाननकी स्तुति की है तो बैजू बावराने भी गणेशको सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी है। ***'प्रथम नाम गनेस को लीजिए जा सुमिरे होए सिद्धि काम'।*** परंतु तानसेनके ध्रुपदोंमें मुखरित गणेश-वन्दनाका अपना रंग है। साहित्यिक सौन्दर्यके साथ भक्तिकी चरमाभिव्यक्ति और आध्यात्मिक दृष्टिसे तानसेनके ध्रुपद अद्वितीय हैं और सम्भवत: उनकी प्रगाढ़ भक्ति ही है उनकी अद्वितीय कलाका रहस्य। इसमें कोई संदेह नहीं कि तानसेनकी संगीत-साधना-रचनाओंमें गणेशकी प्राणप्रतिष्ठा अत्यन्त भव्य रूपमें हुई है।

~~~o~~~

श्रीगणेश-मन्दिरके निर्माणके नियम

श्रीगणेश-मन्दिरके निर्माणके नियम निम्न प्रकारके हैं। यह संकेतमात्र है, विशेषके लिये शास्त्रोंका अध्ययन आवश्यक है—

गणेश-मन्दिरमें प्रधान मूर्तिसे बायीं ओर गजकर्णकी और दाहिनी ओर सिद्धिकी मूर्ति होनी चाहिये। उत्तरकी ओर गौरीकी, पूर्वकी ओर बुद्धिकी, आग्नेय दिशामें बालचन्द्रकी, दक्षिणमें सरस्वतीकी, पश्चिममें कुबेरकी और पीछेकी ओर धूमककी मूर्ति होनी चाहिये। मन्दिरके चारों फाटकोंपर दो-दो द्वारपाल होने चाहिये। पूर्वी फाटकके द्वारपालोंके नाम अविघ्न और विघ्नराज, दक्षिणवालोंके सुवक्त्र और बलवान्, पश्चिमके गजकर्ण और गोकर्ण और उत्तरके सुसौम्य और शुभदायक हैं। द्वारपालोंकी ये सब प्रतिमाएँ वामनाकृति और घोररूपी होनी चाहिये। सभीके चार हाथोंमेंसे एक हाथमें दण्ड और एक हाथ तर्जनी-मुद्रामें हो। अविघ्न और विघ्नराजके शेष दो हाथोंमें परशु और पद्म हों, सुवक्त्र और बलवान्‌के खड्ग और खेटक, गजकर्ण और गोकर्णके धनुष और बाण तथा सुसौम्य और शुभदायकके पद्म और अंकुश होने चाहिये।

गणेशका तुण्ड (सूँड़) प्राय: बायीं ओर घूमा होता है। ऐसी मूर्तिको तमिळमें 'इलमबुरि विनायक' कहते हैं। यदि सूँड़ दाहिनी ओर झुकी हुई हो तो तमिळमें उसे 'बलमबुरि विनायक' कहते हैं।

—श्रीगणेशप्रसादजी जैन

~~~o~~~

श्रीगणेशप्रतिमा-पूजाका मूल्यांकन

निस्संदेह श्रीगणेशजी सर्वसौन्दर्य निधि हैं। वे मंगलमूर्ति हैं। उनकी रूपाकृतिका महत्त्व उनकी ही कृपासे वाणीमें अंकित किया जा सकता है। स्वरूपसे गणेशजी समस्त कर्तृत्वके आरम्भ हैं। वे ही मूल पुरुष और मूलारम्भ हैं, परात्पर हैं तथा सबके आदि, अन्त और स्वयम्भू हैं—इस तरह समर्थ रामदासने अपने 'दासबोध'में उनके स्वरूपका स्मरण किया है—

तैसी मंगलमूर्ती अद्या। पासूनि जाल्या सकळ विद्या॥
मूळ पुरुषाचेनि द्वारे। तैसे कवी। नमूं ऐसिया गणेंद्रा॥

(दासबोध ७। १। ३-४)

श्रीगणेशजीकी प्रतिमा सौन्दर्यकी प्रतीक है। जो व्यक्ति गणेशजीकी पूजा करता है, उसे विघ्नका भय नहीं रहता—

'गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते।'

(पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ६६)

श्रीगणेशजी प्रकृतिस्वरूप हैं। वे महत्तत्त्वरूप हैं। वे पृथ्वी और जलके रूपमें अभिव्यक्त हैं। वे ही दिक्पालोंके रूपमें प्रकट हैं। असत् और सत्—दोनों ही उनके स्वरूप हैं। वे जगत्‌के कारण हैं। वे विश्वरूप—सर्वत्र व्यापक हैं। उनका यह साकार स्वरूप ही उनका रूप है। उनकी मूर्ति अथवा प्रतिमामें इसी साकार स्वरूप अथवा रूपकी अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है—

प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धरावारिरूपं दिगीशादिरूपम्।
असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुभूतं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः॥

(गणेशपु० १। १३। १२)

श्रीएकनाथ महाराजने अपनी प्रसिद्ध रचना 'भावार्थ-रामायण'के आरम्भमें वेदान्तवेद्य, स्वसंवेद्य आद्यदेव अनादि गणेशकी वन्दनामें उनके अरूप-रूप—स्वरूपकी वन्दना की है; महाराजकी इस संस्तुतिमें श्रीगणेशके रूपका महत्त्वांकन सहज सुलभ है—

ॐ नमो अनादि आद्या। वेद वेदान्त वंद्या॥
वंद्य ही परम वंद्या। स्वसंवेद्या श्रीगणेशा॥
तुझें निर्धारिता रूप। केवल अरूपा चें स्वरूप॥

(भावार्थ-रामायण, बाल० १। १-२)

श्रीगणेशजीका रूप परम सुन्दर है। उनकी मूर्ति बड़ी ही मनोहर स्वीकार की गयी है। उन्हें सौन्दर्यमण्डित कहा गया है—

'सौन्दर्यमण्डितः।' (गणपतिसहस्रनामस्तोत्र-५६)

वेद उनके रूपका वर्णन करनेमें अपने-आपको सर्वथा असमर्थ पाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी उन्हींकी कृपासे उन्हें मूर्तिमान् देखनेमें समर्थ होते हैं। एक बार प्रलय हो गया।''''ब्रह्मा, विष्णु और महेशने गणेशजीकी स्तुति की। उन्होंने करुणा कर त्रिदेवोंको अपना रूप दिखलाया। यह रूप मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला था—

ततोऽतिकरुणाविष्टो लोकाध्यक्षोऽखिलार्थवित्॥
दर्शयामास तान् रूपं मनोनयननन्दनम्।

(गणेशपु० १। १२। ३२-३३)

श्रीगणेशजीने ब्रह्माजीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे दिव्य मायाविभूषित हैं। उनके हाथमें परशु और कमल सुशोभित हैं। वे समस्त पापोंको हरनेवाले तथा सर्वसौन्दर्य-कोश हैं। उनका मुख हाथीके मुखके समान है। वे अपने भक्तोंकी कामनाको पूरी करनेवाले हैं; सुर, मनुष्य और मुनियोंके सम्पूर्ण विघ्नोंको नष्ट करनेवाले हैं—इस रूपमें ब्रह्माजीने उनका दर्शन किया—

परशुकमलधारी दिव्यमायाविभूषः
सकलदुरितहारी सर्वसौन्दर्यकोशः।
करिवरमुखशोभी भक्तवाञ्छाप्रपोषः
सुरमनुजमुनीनां सर्वविघ्नैकनाशः॥

(गणेशपु० १। १५। १९)

भगवान् विष्णुद्वारा श्रीगणेशके प्रतिमा-पूजनका उल्लेख मिलता है। गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें वर्णन है कि मधु-कैटभपर विजय प्राप्तकर भगवान् विष्णुने सिद्धिविनायककी प्रतिमाकी स्थापना की थी। शिवजीने भगवान् विष्णुको श्रीगणेशका पूजन कर मधु-कैटभसे लड़नेके लिये युद्धमें प्रस्थान करनेकी सम्मति दी। भगवान् विष्णुने सिद्धिक्षेत्रमें जाकर गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये घोर तप किया। श्रीगणेशजी प्रकट हो गये। श्रीविष्णुने उनकी स्तुति की। गणेशजी उन्हें अभीष्टपूर्तिका वर देकर अन्तर्धान हो गये। विष्णुने राक्षसोंको जीता और श्रीगणेशजीके मन्दिरका निर्माण करवाया। वह स्फटिकका बना हुआ था। उसमें प्रचुर रत्न जड़े हुए थे। उसका शिखर सोनेका था, उसमें चार द्वार थे। वह मन्दिर सुन्दर शोभासे सम्पन्न था। उसमें गण्डकीय पाषाणोंसे निर्मित श्रीगणेशकी प्रतिमा स्थापित की; देवताओं और ऋषि-मुनियोंने इस मूर्तिका नाम 'सिद्धविनायक' रखा और विष्णुका यह तप-क्षेत्र 'सिद्धिक्षेत्र'के नामसे विख्यात हुआ—

तत आनन्दपूर्णोऽसौ मेने तावसुरौ जितौ।
प्रासादं निर्ममे तत्र स्फाटिकं भूरिरत्नकम्॥
लसत्काञ्चनशिखरं चतुर्द्वारं सुशोभनम्।
प्रतिमां स्थापयामास गाण्डकीयोपलैः कृताम्॥
देवाश्च मुनयः सिद्धविनायक इति प्रथाम्।
चक्रुरत्र यतः सिद्धिः प्राप्तेयं हरिणा शुभा॥
सिद्धिक्षेत्रं ततस्तत्तु पप्रथे भुवि सर्वशः।

(गणेशपु० १। १८। २०—२३)

विष्णुके ही स्वरूप श्रीवामनने गणेशजीकी मूर्ति स्थापित की थी। गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये कश्यपके संकेतसे श्रीवामनने (**'वक्रतुण्डाय हुम्'** इस) षडक्षरमन्त्रका जप किया था। गणेशजीने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। वे शुण्डदण्डसे सुशोभित और मयूरपर विराजमान थे—

'मयूरवाहनो देवः शुण्डादण्डविराजितः।'
(गणेशपु० २। ३१। १०)

श्रीवामनने उनकी स्तुति की। गणेशजीके अन्तर्धान हो जानेपर श्रीवामनने काश्मीरीय पाषाणसे उनकी उत्तम मूर्तिका निर्माण करवाकर उसको स्थापित करवाया। यह मूर्ति चतुर्भुज, तीन नेत्रोंवाली, शुण्ड-मण्डित, प्रसन्नमुखी तथा दो श्रेष्ठ हाथोंसे भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली थी। इस मूर्तिके लिये उन्होंने रत्न-कांचन-जटित एक मन्दिर बनवाया और गणेशजीकी कृपासे बलिपर विजय पायी।

.............................वामनोऽकारयच्छुभाम्।
काश्मीरोपलजां सोऽथास्थापयन्मूर्तिमुत्तमाम्॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां शुण्डादण्डविराजिताम्।
प्रसन्नां वरहस्ताभ्यां भक्तानामभयप्रदाम्॥
स्मरणाद्दर्शनाद्ध्यानात् पूजनात् सर्वकामदाम्।
प्रासादं कारयामास रत्नकाञ्चननिर्मितम्॥
(गणेशपु० २। ३१। २१—२३)

भगवान् शंकरद्वारा गणेशजीकी मूर्ति-स्थापना और मन्दिरनिर्माणका प्रसंग गणेशपुराणमें उपलब्ध होता है। उन्होंने श्रीगणेशकी प्रसन्नतासे ही त्रिपुरपर विजय पाकर अपना 'त्रिपुरारि' नाम सार्थक किया था। संक्षिप्त आख्यान यह है कि त्रिपुरासुरको श्रीगणेशजीने सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगर प्रदान किये थे। उसने काश्मीरके पाषाणसे श्रीगणेशजीकी मूर्ति बनवाकर मन्त्र-विद्या-विचक्षण ब्राह्मणोंके द्वारा उसकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करायी। इसके लिये उसने गणेशपुरमें रत्न और स्वर्ण आदिसे उनका एक भव्य मन्दिर बनवाया था।

ततः काश्मीरपाषाणभवां मूर्तिं गजाननीम्।
स्थापयामास विधिवद्ब्राह्मणैर्मन्त्रकोविदैः॥
महान्तं काञ्चनं दिव्यं मणिमुक्ताविभूषितम्।
गणेशपुरमध्ये स प्रासादं कृतवान् शुभम्॥
(गणेशपु० १। ३९। २-३)

त्रिपुरासुरने अमरावतीपर अधिकार कर लिया। ब्राह्मणवेष धारणकर गणेशजीने त्रिपुरासुरसे कहा कि 'मैंने कैलासमें शिवजीके पास गणेशजीकी मूर्ति देखी है। वह मूर्ति चिन्तित कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली है। यह शिवजीद्वारा पूजित है'—

अहं कैलासमगमं दृष्टवान् मूर्तिमुत्तमाम्।
शिवेन पूजितां सम्यग्गाणेशीं चिन्तितार्थदाम्॥
(गणेशपु० १। ४१। २०)

त्रिपुरासुरने दूत भेजकर शिवजीसे उस चिन्तामणिमूर्तिकी याचना की—

'मूर्तिश्चिन्तामणेस्तेऽस्ति गृहे सर्वार्थदा शुभा।'
(गणेशपु० १। ४२। ५)

शिवजीने कहलाया कि 'बिना युद्धके वह मूर्ति नहीं दी जा सकती।' त्रिपुरासुर कैलास गया। भ्रमण करते हुए उसे वहाँ एक चिन्तामणिमयी सुन्दर मूर्ति दीख पड़ी। वह सहस्रों सूर्योंके समान प्रभामयी, अनेक आभूषणोंसे शोभित एवं त्रैलोक्यसुन्दर थी। उसे लेकर वह अपने स्थानपर लौट आया—

भ्रमन् ददर्श तत्रैकां मूर्तिं चिन्तामणेः शुभाम्॥
सहस्रसूर्यसंकाशां नानालङ्कारशोभिनीम्।
त्रैलोक्यसुन्दरां सद्यो गृहीत्वा स्वस्थलं ययौ॥
(गणेशपु० १। ४३। ४३-४४)

शिवने घोर तपके द्वारा गणेशजीको प्रसन्न किया। उनकी कृपासे उन्होंने त्रिपुरासुरपर विजय प्राप्त की। शिवजीने श्रीगणेशकी मूर्ति स्थापित करनेके लिये एक भव्य मन्दिर बनवाया, उसमें मूर्ति स्थापित की और गणेशजीकी पूजा की—

'संस्थापयामास महागणेशं प्रासादमुच्चैर्दृढमाशु चक्रे॥'
(गणेशपु० १। ४५। १९)

गणेशजीकी मूर्तिकी पूजा देवता-ऋषि-मुनि—सभीने की।

देवराज इन्द्रने भी गणेशमूर्ति स्थापित की थी। उन्होंने महर्षि गौतमके शापसे मुक्त होनेके लिये गणेशजीकी आराधना की। गणेशजीने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। इन्द्रने चिन्तामणिपुर-तीर्थमें रत्न और सुवर्णसे जटित एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीगणेशजीकी एक दिव्य, सर्वावयवसुन्दर स्फटिकमयी मूर्ति स्थापित की—

स्थापयामास शक्रोऽपि स्फाटिकीं मूर्तिमादरात्॥
वैनायकीं शुभां दिव्यां सर्वावयवसुन्दराम्।
कारयामास विपुलं प्रासादं रत्नकाञ्चनैः॥
(गणेशपु० १। ३४। ३७-३८)

मुद्गल ऋषि गणेशजीके महान् भक्त थे। कमलाके

पुत्र दक्षने मुद्‌गल ऋषिको गणेशजीकी मूर्तिकी षोडशोपचार एवं विधि-विधानसे पूजा करते देखा था। वह मूर्ति रत्न-कांचनसे निर्मित, चार भुजा तथा तीन नेत्रोंवाली एवं अनेक आभूषणोंसे अलंकृत थी—

वैनायकीं महामूर्तिं रत्नकाञ्चननिर्मिताम्॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां नानालङ्कारशोभिनीम्।
उपचारैः षोडशभिः पूजयन्तं विधानतः॥

(गणेशपु० २१। १०-११)

गृत्समद मुनिकी गणना श्रेष्ठ गणेश-भक्तोंमें है। उनके तपसे प्रसन्न होकर श्रीगणेशजीने प्रकट होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शनसे कृतार्थ किया था। मुनिने पुष्पक-क्षेत्रमें उनका विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें वरद-गणेशमूर्तिकी स्थापना की थी। वहाँ गणेशकी कृपासे सिद्धिका स्थान हो गया। वह पुष्पकक्षेत्र सबकी कामनाओंका पोषण (साधन) करता है।

गणेशमूर्तिप्रासादं कारयामास सुन्दरम्॥
वरदेति च तन्नाम स्थापयामास शाश्वतम्।
सिद्धिस्थानं च तत्रासीद् गणेशस्य प्रसादतः॥
कामान् पुष्णाति सर्वेषां पुष्पकं क्षेत्रमित्यपि।

(गणेशपु० १। ३७। ४५—४७)

स्पष्ट है कि अनादिकालसे श्रीगणेशकी कृपा-प्राप्तिके लिये उनकी प्रतिमाकी पूजा होती आ रही है और यह परम्परा अनवरत चलती ही रहेगी। समय-समयपर अनेक गणेश-मन्दिरोंके निर्माणका उल्लेख इतिहासमें उपलब्ध होता है। नेपालके पशुपतिनाथ-मन्दिरके उत्तरमें एक प्राचीन गणेश-मन्दिर है; कहा जाता है कि इसका निर्माण सम्राट् अशोककी लड़की चारुमतीने कराया था। कालड़ीमें शंकराचार्य और शारदादेवीके मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। त्रिवेन्द्रम्‌में केवलगणपतिकी प्रतिमा स्थापित है। १४४६ ई०में पाण्ड्य-शासक अरिकेसरिने तेनकाशीमें विश्वनाथस्वामीका मन्दिर बनवाया था, जिसमें लक्ष्मीगणपतिकी मूर्ति स्थापित है। कुम्भकोणम्‌के नागेश्वर-स्वामी-मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। पंद्रहवीं शताब्दीके लगभग निर्मित नेगापटम्‌के नीलायताक्षी-यमन-मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति स्थापित है। बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीके लगभग तंजौर-जनपदके पट्टीश्वरम्‌में निर्मित शिव-मन्दिरमें प्रसन्नगणपतिकी त्रिभंग प्रतिमा प्रतिष्ठित है। होयसल-शासकोंकी प्राचीन राजधानी हलेविदमें होयसलेश्वर-मन्दिरमें नृत्तगणपतिकी मूर्ति स्थापित है। विष्णुवर्धनके शासनकालमें ११२१ ई०में उपर्युक्त मन्दिरका निर्माण आरम्भ हुआ था।

'श्रीतत्त्वनिधि'में श्रीगणेशजीके विभिन्न रूपोंके ध्यानका वर्णन उपलब्ध होता है। वे बालगणपति, तरुणगणपति, भक्तगणपति, वीरगणपति, शक्तिगणपति, द्विजगणपति, सिद्धगणपति, उच्छिष्टगणपति, विघ्नगणपति, क्षिप्रगणपति, हेरम्बगणपति, लक्ष्मीगणपति, महागणपति, विजयगणपति, नृत्तगणपति, ऊर्ध्वगणपति, एकाक्षरगणपति, वरगणपति, त्र्यक्षरगणपति, क्षिप्रप्रसादगणपति, हरिद्रागणपति, एकदन्तगणपति, सृष्टिगणपति, उद्दण्डगणपति, ऋणमोचकगणपति, ढुण्ढिगणपति, द्विमुखगणपति, त्रिमुखगणपति, सिंहगणपति, योगगणपति, दुर्गागणपति तथा संकष्टहरणगणपति आदि रूपोंमें अंकित किये गये हैं। इन्हीं रूपोंके ध्यानके अनुसार मन्दिरोंमें उनकी प्रतिमाएँ स्थापित की गयी हैं।

श्रीगणेशजीकी मूर्ति प्रायः स्थानक (खड़ी) होती है, उनकी आसन-मूर्तियाँ (बैठी प्रतिमाएँ) भी उपलब्ध होती हैं। श्रीगोपीनाथ रावने अपनी पुस्तक 'एलीमेंट्स आफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें गणेश-प्रतिमाके लक्षणोंपर यथेष्ट प्रकाश डाला है। गणेशजीकी स्थानक मूर्तियाँ त्रिभंग और समभंग प्राप्त होती हैं। उनकी प्रतिमाएँ चतुर्भुज, षड्‌भुज, अष्टभुज, दशभुज, षोडशभुज होती हैं, पर प्रायः चतुर्भुज गणेशमूर्तियाँ ही देखनेमें आती हैं।

श्रीगणेशकी मूर्तिके निर्माणके सम्बन्धमें कहा गया है कि 'विनायकको गजमुख तथा चार भुजावाला बनाना चाहिये। उनके दाहिने हाथमें शूल, अक्षमाला और बायें हाथमें परशु और मोदकपूर्ण पात्रका संयोजन करना चाहिये। उनका बायाँ दाँत नहीं बनाना चाहिये। एक आसनसे स्थित उनके चरणका निर्माण पादपीठपर करना चाहिये। उनके करके अग्रभागमें मोदकपूर्ण पात्र रखना चाहिये। उनका उदर बड़ा तथा कान स्तब्ध होने चाहिये। उनके वक्षको सर्पयज्ञोपवीत तथा शरीरको व्याघ्रचर्मसे अलंकृत करना चाहिये।'

विनायकस्तु कर्तव्यो गजवक्त्रश्चतुर्भुजः।
शूलकं चाक्षमालां च तस्य दक्षिणहस्तयोः॥

पात्रं मोदकपूर्णं तु परशुश्चैव वामतः।
दन्तश्चास्य न कर्तव्यो वामो रिपुनिषूदन॥
पादपीठकृतः पाद एक आसनगो भवेत्।
पूर्णमोदकपात्रं तु कराग्रे तस्य कारयेत्॥
लम्बोदरस्तथा कार्यः स्तब्धकर्णश्च यादव।
व्याघ्रचर्माम्बरधरः सर्पयज्ञोपवीतवान्॥

(विष्णुधर्मोत्तरपु० ३। ७१। १३—१६)

'शिल्परत्न' तथा सूत्रधार मण्डनकृत 'रूपमण्डन' आदि ग्रन्थोंमें भी गणेशमूर्ति-निर्माणकी विधिका समीचीन विवेचन उपलब्ध होता है। श्रीगणेशजीकी प्रतिमा-पूजा और उनकी उपासना सनातन है, सिद्धिदात्री और मंगलदायिनी है।

श्रीगणेशजीकी मूर्ति कृपामयी, मंगलमयी है। असंख्य देवताओंके उपास्य हैं—श्रीगणपति। उनकी प्रतिमा अनन्त शुभदायिनी और अनन्त सुखदात्री है।

—श्रीरामलाल

~~~○~~~

मूर्तिकलामें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीव्रजेन्द्रनाथजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, एफ्० आई० ए० एस्०)

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद् बलिं बध्नता
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः॥*

गणेश अथवा गणपतिके, जो '**गणानां त्वा गणपतिः हवामहे**' इस मन्त्रके अनुसार शिवके गणोंके नायक भी हैं, एकदन्त, विघ्नेश्वर, लम्बोदर, हेरम्ब, शूर्पकर्ण, गजानन, गजेन्द्र, गणेश्वर, गुहाग्रज आदि अनेक नाम हैं। शिवपुराण, स्कन्दपुराण, वराहपुराण, मत्स्यपुराणमें इनके जन्मकी कथाके विस्तृत एवं विविध वर्णन प्राप्त होते हैं। दसवीं शतीमें उत्पन्न हुए हरिभद्रसूरिने 'धूर्ताख्यान' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमें भी इनके जन्मकी कथाका बृहद् वर्णन दिया है। अमरसिंहके 'अमरकोष'में इनके अनेक नामोंकी सूची दी गयी है। गरुडपुराणमें गणेशको हिंदुओंके अन्य चार प्रमुख देवताओंके समान स्थान दिया है तथा अग्निपुराणमें इनकी पूजाका विस्तारसे वर्णन मिलता है।

गणेशकी पूजा अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित है। गणेशकी प्राचीनतम मूर्तियाँ यक्षों और नागोंकी प्रतिमाओंका प्रतिरूप प्रतीत होती हैं। यक्ष और नागोंकी मूर्तियोंकी पूजा ईसासे भी कई शताब्दी पूर्व भारतमें प्रचलित थी, जैसा कि प्राचीन साहित्य तथा मथुरा, विदिशा और पवाया आदि अनेक स्थानोंसे मिली मूर्तियोंसे ज्ञात होता है। इनके अतिरिक्त अमरावतीसे प्राप्त एक शिलापट्टपर (दूसरी शती), जो अब मद्रास-संग्रहालयमें प्रदर्शित है, गजानन यक्षका अंकन मिलता है। इसमें बड़े कान भी गजके हैं, परंतु मुख गजका नहीं है। जयपुरके समीप रेढ़ नामक स्थानसे प्राप्त (प्रथम शती ई० पूर्वसे प्रथम शती ई०) एक मिट्टीकी बनी गजमुखी मातृकाकी भी मूर्ति मिली है। मथुरासे प्राप्त एक शिलापट्टपर (दूसरी शती ई०) भी गजमुखी यक्षोंका अंकन मिलता है। इन सभी उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि प्राचीन कलाकार गजमुखी मानव-आकृतियाँ बनानेमें भलीभाँति निपुण थे और जब लगभग चौथी शती ई०के करीब उनसे गणपतिकी मूर्तियाँ बनानेको कहा गया तो उन्होंने पाषाणके माध्यमसे हिंदू, बौद्ध एवं जैनधर्मके देवी-देवताओंके साथ ही गणेशकी भी कलात्मक प्रतिमाओंका निर्माण किया।

प्रारम्भिक गुप्त युग लगभग चौथी शती ई० की स्वतन्त्ररूपसे सर्वप्रथम गणेशकी स्थानक-मूर्तियाँ भगवान् कृष्णकी जन्मस्थली मथुरासे प्राप्त हुई हैं, जो वहाँके

* त्रिपुरको जीतनेके लिये शिवने, भू-दान माँगनेके व्याजसे बलिको बाँधनेवाले विष्णु (वामन)-ने, सृष्टिके लिये ब्रह्माजीने, पृथ्वीको धारण करनेके लिये शेषने, महिषासुरका मर्दन करनेके निमित्त पार्वतीजीने, सिद्धिके लिये सिद्धेश्वरोंने तथा विश्व-विजयके लिये कामदेवने जिनका ध्यान किया था, वे गजमुख गणेश हमारी रक्षा करें।
~~~

पुरातत्त्व-संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। इनमें उनके केवल दो हाथ हैं तथा शुण्ड बायीं ओर मुड़ी हुई है, जिसका अग्रभाग बायें हाथमें पकड़े मोदकपात्रपर रखा है। भूमरासे भी लगभग इन्हींकी समकालीन एक आसन-मूर्तिमें गणेश सुन्दर यज्ञोपवीत तथा उदर-बंध पहने दिखाये गये हैं। गुप्तकालीन पाँचवीं शतीकी एक अन्य मूर्तिमें भी उनके केवल दो हाथ हैं और उनके बाँयें हाथमें एक मोदकपात्र है। परंतु इस मूर्तिमें 'ऊर्ध्वरेतस्' भावकी स्पष्ट अभिव्यक्ति की गयी है। यह मूर्ति उदयगिरि (मध्यप्रदेश)-में आज भी देखी जा सकती है। उत्तर गुप्तयुगीन पाँचवीं-छठीं शती ई०की मूर्तियोंमें गणेशके दोके स्थानपर चार भुजाओंका प्रदर्शन मिलना प्रारम्भ हो जाता है और यह बादकी मध्यकालकी मूर्तियोंमें भी मिलता है। झाँसी जिलेके देवगढ़के प्रसिद्ध दशावतार-मन्दिरपर इस प्रकारकी चतुर्भुजी मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

पूर्व-मध्ययुगीन प्रतिहार-काल (लगभग ७५६-१०१८ ई०)-में गणेशकी अनेक मूर्तियोंका निर्माण हुआ है। राजस्थानमें घटियालाके स्तम्भ-लेखके, जो '**ॐ विनायकाय नमः**' से प्रारम्भ होता है, ऊपरी भागमें गणेशकी चार मूर्तियाँ चारों दिशाओंकी ओर मुँह किये हुए बनी हुई हैं। जोधपुर जिलेके मण्डोरके पास रावणकी खाईके समीप सप्तमातृकाओंके साथ भी गणेशका अंकन हुआ है, जिसका एक अन्य उदाहरण इलोरामें भी देखा जा सकता है। आबानेरीसे प्राप्त एक मूर्तिमें चतुर्भुजी गणेशको ललितासनमें बैठे दिखाया गया है। ओसियामें गणेशकी कई मूर्तियाँ आज भी वहाँके प्रतिहारकालीन मन्दिरोंपर देखी जा सकती हैं। वहाँके अम्बिकामाता-मन्दिरमें गणेश, महिषासुरमर्दिनी दुर्गा तथा कुबेरकी विशाल प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। ओसियाके सूर्यमन्दिरके बाह्य भागपर गणपति-अभिषेककी एक अद्वितीय मूर्ति बनी है, जो मूर्ति-कलाका उच्चतम उदाहरण है। चित्तौड़-दुर्गमें निर्मित कालिका-माता-मन्दिरके बाह्य भागपर भी गणेशकी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति उत्कीर्ण है, जो आठवीं शती ई०की प्रतीत होती है। उत्तर प्रदेशमें कन्नौजसे लगभग इसीकी समकालीन चतुर्भुजी नृत्य-गणपतिकी मूर्ति मिली है, जिसमें वे सर्पयज्ञोपवीत एवं बाघकी खाल पहने दिखलाये गये हैं। ग्वालियर-संग्रहालयकी एक ऐसी ही मूर्तिमें नृत्य-गणपतिके साथ मृदंगवादकको भी दिखाया गया है। नृत्य-गणपतिकी एक अन्य सुन्दर मूर्ति भारत कलाभवन वाराणसीमें भी विद्यमान है।

अमेरिकाके वर्जीनिया-संग्रहालयमें नृत्य-गणपतिकी अष्टभुजी प्रतिमा प्रदर्शित है। इसमें वे चार प्रकारकी मुद्राओंमें नृत्य करते दिखाये गये हैं। इनकी दाहिनी ओर एक मृदंगवादक एवं बायीं ओर वंशीवादक बना है। मूर्तिपर सिन्दूरके चिह्न स्पष्ट हैं, जिससे विदित होता है कि वहाँ पहुँचनेसे पूर्व उस मूर्तिकी किसी देवालयमें पूजा होती रही होगी। ऐसी ही एक अन्य भव्य मूर्ति वहाँके 'क्लीवलैंडम्यूजियम आफ आर्ट'में भी है, जिसमें उनके अधिकतर हाथ, जो नृत्य-मुद्रामें हैं, खण्डित हो गये हैं और वे अपने दो बायें हाथोंमें कमल एवं मोदकपात्र पकड़े हैं। उनका वाहन मूषक उनके बायें पैरके पास चित्रित है। यह मूर्ति भी दसवीं शतीकी बनी हुई लगती है। राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें भी इसीकी समकालीन नृत्य-गणपतिकी एक मूर्ति है, जो अपने एक दाहिने हाथमें परशु लिये है और उसके अन्य हाथ टूट चुके हैं।

प्रतिहारकालीन दसवीं शतीकी भूमरासे प्राप्त शक्तिगणेशकी एक सुन्दर प्रतिमा बोस्टनके कला-संग्रहालयमें प्रदर्शित है। इसमें चतुर्भुज गणेश अपनी शक्ति लक्ष्मीके साथ एक ऊँचे आसनपर बैठे दिखाये गये हैं। इसीसे साम्य रखती एक मूर्ति मथुरा-संग्रहालयमें भी है। इस आशयकी मध्यभारतसे प्राप्त मूर्तियाँ भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता एवं राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें भी सुरक्षित हैं।

प्रतिहार-साम्राज्यके पतनके पश्चात् उत्तरी भारतमें अनेक राज्योंकी स्थापना हो गयी। दिल्ली-अजमेरके चौहान सम्राटोंने, जो मुख्यतः शैवमतानुयायी थे, अनेक गणेशप्रतिमाओंका भी निर्माण करवाया। हर्षनाथ, सीकरसे गणेशकी कई सुन्दर मूर्तियाँ मिली हैं। यहाँसे प्राप्त एक मूर्तिमें, जो दसवीं शतीकी है, गणेश स्थानकमुद्रामें दिखाये गये हैं। वे अपने हाथोंमें पद्म, परशु, अक्षमाला और मोदकपात्र लिये तथा यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं।

अलवर-संग्रहालयमें नृत्य-गणेशकी एक तोमर-

कालीन मूर्ति प्रदर्शित है, जो अपने ऊपरके दो हाथोंमें एक सर्प पकड़े हैं। पैरोंके समीप मूषक तथा गण बने हैं। मूर्तिकी पीठिकापर उत्कीर्ण लेखसे ज्ञात होता है कि बरबर नगर (सम्भवतः रेवाड़ीके समीप बावल) निवासी महालोकस नामक व्यक्तिने इस गणेश-मूर्तिका निर्माण विक्रम संवत् ११०१ (१०४४ ई०)-में करवाया था।

मध्यप्रदेशके खजुराहो-क्षेत्रमें चन्देलोंने अनेक विशाल मन्दिरोंका निर्माण करवाया, जिनमें कई आज भी विद्यमान हैं। यहाँपर बनी द्विभुजी, चतुर्भुजी, षड्भुजी आदि अनेक प्रकारकी स्थानक, आसन, नृत्य करती हुई तथा अपनी शक्तिके साथ मूर्तियाँ अब भी देखी जा सकती हैं। खजुराहोमें गणेश-मूर्तियोंके जितने प्रकार मिलते हैं, उतने सम्भवतः भारतके किसी अन्य स्थानमें प्राप्त नहीं हैं। खजुराहोके पुरातत्त्व-संग्रहालयमें गणेशकी आदमकद कई प्रतिमाएँ हैं, जिनमें वे अनेक नृत्य-मुद्राओंमें चित्रित किये गये हैं। इसी संग्रहालयमें गणेशकी आसन, स्थानक, शक्तिसहित तथा सप्त-मातृकाओं एवं वीरभद्रके साथ प्रतिमाएँ भी प्रदर्शित हैं, जो मूर्ति-विज्ञानकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। खजुराहो-संग्रहालयमें ही उनके वाहन मूषककी भी एक स्वतन्त्र मूर्ति है, जो मोदकपात्र पकड़े हैं।

मध्यप्रदेशमें चन्देलोंके समकालीन चेदि या हैहयवंशीय शासकोंने भी अनगिनत मन्दिरों एवं प्रतिमाओंका निर्माण करवाया। रायपुर-संग्रहालयमें गणेशकी एक कांस्यमूर्तिमें उन्हें एक ऊँचे आसनपर बैठे हुए दिखाया गया है, जिसमें वे योगपट्ट बाँधे हैं। चतुर्भुजी गणेश पद्म तथा त्रिशूल, दन्त एवं मोदकपात्र पकड़े हैं और मूषक-पीठिकापर अंकित हैं। यह नवीं-दसवीं शतीकी कृति है। इसी समयकी दो नृत्य-गणपतिकी प्रस्तर-प्रतिमाएँ अमरपाटन एवं चौंसठ योगिनियोंके मन्दिर, भेड़ाघाटमें भी विद्यमान हैं। अन्तिम दोनों मूर्तियाँ खजुराहोसे मिली नृत्यगणपतिकी प्रतिमाओंसे काफी साम्य रखती हैं और चेदि-कलाके अनुपम उदाहरण हैं।

प्रतिहारोंकी शक्तिका अन्त होनेपर गाहवालवंशीय नरेशोंने वर्तमान उत्तर प्रदेशके विशाल भू-भागपर शासन किया तथा अपनी कीर्तिके लिये अनेकों मन्दिरोंका निर्माण कराया, जिन्हें बादमें मुसलमानी शासकोंने पूर्णतया नष्ट कर दिया। इस वंशकी कलाके अब थोड़े ही उदाहरण शेष बचे हैं। इनमें सम्भवतः सबसे प्रमुख कमपिल्ल, जिला फर्रूखाबादसे प्राप्त नृत्य-गणपतिकी मूर्ति है, जो अब राज्यसंग्रहालय, लखनऊमें प्रदर्शित है। भाग्यवश यह मूर्ति पर्याप्तरूपसे अच्छी दशामें है और १२ वीं शतीकी मूर्तिकलाका सुन्दर उदाहरण है।

पालवंशीय सम्राटों (७५०—११९९ ई०)-ने पूर्वी भारतमें लम्बे समयतक शासन किया। बौद्ध होनेपर भी इन्होंने अन्य धर्मोंको समानरूपसे पनपनेका अवसर दिया, जिसके फलस्वरूप सनातनधर्मावलम्बियोंके अनेक देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ भी पर्याप्त संख्यामें मिली हैं। नृत्य-गणपतिकी बिहारसे प्राप्त एक मूर्ति पटना-संग्रहालयमें तथा बंगालसे प्राप्त एक अन्य मूर्ति मद्रास-संग्रहालयमें प्रदर्शित है। यद्यपि बंगालसे प्राप्त मूर्तिका ऊपरी भाग खण्डित है, फिर भी कलाकी दृष्टिसे वह बिहारसे प्राप्त मूर्तिसे कहीं अधिक सुन्दर एवं कलात्मक है। दोनों मूर्तियाँ पाल-कला—लगभग ग्यारहवीं शती ई०में बनी लगती हैं। इनके अतिरिक्त बिहारसे प्राप्त दो चतुर्मुखी शिवलिंगपर भी गणेशका अंकन मिला है, जो महत्त्वपूर्ण है। ऐसा ही एक अन्य शिवलिंग, जो प्रतिहारयुगीन नवीं शती ई०का है, काशीनरेश वाराणसीके संग्रहमें भी है।

आसाममें नौगाँव जिलेके गचतल नामक स्थानपर बने एक मध्यकालीन मन्दिरपर, जो अब खण्डित दशामें है, चतुर्भुजी गणेशकी आसनमूर्ति विद्यमान है। गणेशकी एक काष्ठप्रतिमा गौहाटीके राज्य-संग्रहालयमें भी प्रदर्शित है।

दक्षिणभारतमें भी गणेश-मूर्तियोंकी पूजा एवं निर्माणकी प्रथा प्राचीन कालसे ही प्रचलित है। बदामीकी गुफाओंमें, जो प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्य-युग छठीं शती ई० की है, शिव नटराज-मूर्तिकी बायीं ओर द्विभुज खड़े गणेशका अंकन मिलता है। इसपर प्रारम्भिक गुप्तकलाका प्रभाव स्पष्ट दीखता है। इसीसे साम्य रखती हुई एक पूर्वी चालुक्ययुगीन प्रतिमा आठवीं शतीकी बिक्कोवलसे प्राप्त है। इसमें भी गणेशके केवल दो ही हाथ हैं। गणेशकी चतुर्भुजी मूर्तियाँ दक्षिणमें चोल-कालसे बनने लगी थीं। इस

प्रकारकी एक कांस्य-प्रतिमा तंजौर जिलेके वेलानकण्डीसे मिली है, जो अब मद्रास-संग्रहालयमें रखी हुई है। इसकी तिथि दसवीं शती ई० है। बारहवीं शती ई०की एक अन्य गणेशमूर्ति, जो तंजौर जिलेके सेमंगलम्-स्थानसे प्राप्त हुई थी, इसी संग्रहालयमें सुरक्षित है। इस कालमें पाषाणमें भी गणेशकी अनगिनत मूर्तियाँ बनीं, जिनमेंसे कई राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें प्रदर्शित हैं।

विजयनगर कालमें भी गणेशपूजाके साथ उनकी मूर्तियोंका निर्माण जारी रहा। इस कालकी अनेक मूर्तियोंमें सम्भवतः सबसे प्रमुख तंजौर जिलेके नागपट्टिनम् नामक स्थानसे प्राप्त हेरम्ब-गणेशकी कांस्य-प्रतिमा है। इसमें पंचमुखी एवं दसभुजी गणेशका वाहन मूषक न होकर सिंह है। यह पंद्रहवीं शती ई० का विलक्षण उदाहरण है।

वर्तमान मैसूर-राज्यमें हलेविद एवं बेलूरमें होयसलकालीन अनेक मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंपर अनेक पौराणिक कथाओंके चित्रणके साथ-साथ गणेशकी भी कई प्रकारकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। हलेविदके होयसलेश्वर-मन्दिरपर, जो बारहवीं शती ई०में बना था, नृत्य-गणपतिकी एक अद्वितीय मूर्तिका अत्यन्त भव्य अंकन हुआ मिलता है, जो अपने प्रकारका बेजोड़ उदाहरण है। उनके दस हाथ हैं, जिनमें वे विविध आयुध लिये हुए हैं। नीचेकी पट्टिकामें उपासकोंके अतिरिक्त उनका वाहन मूषक लड्डू खाता दिखाया गया है। इसीकी समकालीन हलेविदसे प्राप्त एक आसन-मूर्ति वर्जीनिया-संग्रहालयमें भी प्रदर्शित है। इसमें वे ऊपरके दो हाथोंमें परशु और कमल तथा निचले हाथोंमें दन्त और मोदकपात्र लिये हुए हैं। उन्होंने जटामुकुट तथा सर्पका उदरबन्ध धारण कर रखा है।

इन प्रतिमाओंके अतिरिक्त उत्तरी आर्कट जिलेमें वैल्लोरके जलकण्ठेश्वरके मन्दिरमें बाल-गणेशका एक अद्वितीय चित्रण मिलता है, जिसमें वे सूँड़ उठाये बालकृष्णकी भाँति हाथमें मोदक लिये भागते दिखाये गये हैं। यह लगभग अठारहवीं शतीकी कृति है।

केरल-प्रान्तसे भी गणेशकी कुछ प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इनमें या तो वे मूषकपर सवार दिखाये गये हैं, अथवा अपनी शक्तिके साथ बैठे हैं। ऐसी मूर्तियाँ, जो अधिकतर कांस्यनिर्मित हैं, सोलहवीं-सत्रहवीं शती ई० की है।

गुजरात-प्रान्तके शामलाजीसे मिली गणेशकी अपने गणसहित एक स्थानक-मूर्ति (चौथी शती ई०), टिंटोईसे मिली माता पार्वतीके साथ नृत्य-गणपति (छठीं शती ई०)-की तथा रोडासे मिली आसन-मूर्ति (आठवीं शती ई०) विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।

उड़ीसासे भी गणेशकी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमेंसे अधिकतर भुवनेश्वरके मन्दिरोंपर देखी जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त किचिंगसे प्राप्त तथा वहाँके स्थानीय संग्रहालयमें ग्यारहवीं शती ई० की एक स्थानक एवं एक नृत्य करती गणेश-प्रतिमा प्रदर्शित है।

बौद्ध एवं जैनियोंने भी गणेशका अपने देवी-देवताओंके साथ अंकन किया है, परंतु उन्हें हीन स्थान दिया है। बौद्धोंकी देवी अपराजिताकी मूर्तियोंमें, जो नालन्दासे मिली हैं, गणेशको पैरोंसे कुचलते दिखाया गया है। ऐसे ही मथुरासे भी प्राप्त एक जैनदेवी अम्बिकाकी मूर्तिमें गणेश उनके पैरोंके पास कुबेरके साथ प्रदर्शित किये गये मिलते हैं।

विदेशोंमें भी गणेशकी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। अफगानिस्तानमें गरदेजसे प्राप्त लेखयुक्त मूर्तिमें, जो छठीं शती ई०की है, स्थानक-गणेश मुकुट, सर्प-यज्ञोपवीत तथा व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं। ऊर्ध्वरेतस् भी स्पष्ट हैं। ऐसी एक अन्य मूर्ति काबुलके पास सकरधरसे भी प्राप्त हुई है।

पूर्वी नेपालके बनेपा नामक स्थानसे एक मूर्ति, जिसपर १३९० ई०का लेख है, कुछ वर्ष पूर्व प्राप्त हुई थी। उसमें ये सर्पफणोंकी छायामें परशु, दन्त तथा मोदकपात्र लिये बैठे दिखाये गये हैं। एक अन्य मूर्तिमें उनके चार मुख और दस हाथ हैं तथा वे दो चूहोंपर सवार हैं। नेपालसे ही हेरम्ब-गणेशकी भी अनेक कांस्य-प्रतिमाएँ मिली हैं। तिब्बतमें शक्तिसहित हेरम्ब-गणेशकी मूर्तियाँ प्रकाशमें आयी हैं।

इनके अतिरिक्त कंबोडिया, जावा, इंडोचीन, जापान, इंडोनेशिया, चीनी तुर्किस्तान, बोर्नियो, बाली आदि देशोंमें भी अनेक गणेशप्रतिमाओंका निर्माण हुआ, जो आज वहाँके तथा अन्य देशोंके संग्रहालयोंमें

प्रदर्शित हैं। इससे सर्वथा ज्ञात होता है कि गणेशकी पूजा न केवल भारतमें ही प्रचलित थी, वरन् पड़ोसी देशोंके अतिरिक्त सुदूर देशोंमें भी समानरूपसे प्रचलित थी और सभी प्रार्थना करते थे कि—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्युतिमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥

~~०~~

भारतीय साहित्य और कलामें श्रीगणेश तथा उनका प्रतीकत्व

(लेखक—प्रो० श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

भारतीय देवोंमें गणेशजीका विशिष्ट स्थान है। इस विशिष्टताका मुख्य कारण यह है कि वे पाँच उदात्त तत्त्वोंके समन्वित रूप हैं। ये तत्त्व हैं—१-शौर्य-साहस, २-आनन्द-मंगल, ३-बुद्धि, ४-कृषि तथा ५-व्यवसाय-वाणिज्य। यहाँ हम इन पाँचों तत्त्वोंका संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

१-शौर्य-साहस

'अमरकोश'में गणेशजीके आठ नाम इस प्रकार दिये गये हैं—

विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपाः।
अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदरगजाननाः॥
(१।१।३३)

प्रथम दोनों नाम, विनायक एवं विघ्नराज, गणेशजीके शौर्य-साहस तथा तज्जनित नेतृत्वके परिचायक हैं। उनकी युद्धप्रियताका भान उनके लिये प्राचीन साहित्यमें प्रयुक्त 'हेरम्ब' (युद्धमें नाद करनेवाला) संज्ञासे होता है। गणेशजीकी असाधारण वीरता तथा साहसके कारण उन्हें शिवगणोंके नायकत्वका पद प्राप्त हुआ। 'विनायक'-शब्द गणेशके यक्षों-जैसी भयंकरताकी ओर भी इंगित करता है। 'मानवगृह्यसूत्र', 'महाभारत' आदि ग्रन्थोंमें विघ्नकारी विनायकोंके उल्लेख मिलते हैं। शान्ति-कामनाहेतु उनकी अर्चा-पूजा की जाती थी। ऐसा न करनेपर वे कतिपय स्त्री-पुरुषोंके सिरोंपर आ जाते थे, जिससे मंगल-कार्योंमें बाधा उत्पन्न हो सकती थी। पूजा-पाठद्वारा वे सिरोंसे उतारे जाते थे। गणेशजीके युद्धप्रियरूपके द्योतक उनके आयुध हैं, जो उनकी प्राचीन मूर्तियोंमें मिलते हैं। ये आयुध परशु, त्रिशूल, असि, अंकुश, पाश तथा नाग हैं। मूषक उनका वाहन हुआ। नाग तथा मूषक मूलतः शिवजीसे सम्बद्ध थे। बादमें शिवजीने मूषकको गणेशके लिये उधार दे दिया। यह उधार कभी न लौटाया जानेवाला था। नाग काल (मृत्यु या समय)-का द्योतक है। मूषक आयु (या आयुका मूल आधार अन्न)-को शनैः-शनैः नष्ट करनेवाला है। शिवजीने नाग तथा मूषक—दोनोंको अपने वशमें कर लिया था। गणेशजीको वाहनरूपमें मूषक प्रदान करनेका तात्पर्य यही है कि जीवनके आधार अन्नको नष्ट करनेवाले तत्त्वोंको नियन्त्रित रखा जाय। नेतृत्वके गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण उन्हें गणाधिप, गणपति या गणेशकी संज्ञासे विभूषित किया गया।

२-आनन्द-मंगल

विघ्नराजके अनन्तर गणेशजीका दूसरा रूप 'विघ्नहर्ता' सामने आता है। यह उनका मनोहर रूप था। इसी रूपमें वे पार्वती-शिवके पुत्र प्रख्यात हुए। अब वे कल्याण एवं मंगलकारी प्रवृत्तियोंके प्रतिनिधि माने गये। गोस्वामी तुलसीदासजीने उनकी ***'मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता'*** छविकी वन्दना की है। 'याज्ञवल्क्यस्मृति'में अम्बिका-पुत्रके रूपमें विनायकका उल्लेख है। पुराणोंमें उनके इस रूपकी विस्तृत चर्चा मिलती है। विविध संस्कारों, उत्सवों आदिके निर्विघ्न समाप्ति-हेतु गणेशजीको सिद्धिदाता मानकर उनकी वन्दना सर्वप्रथम की जाने लगी। मोदक उनका प्रिय भोज्य पदार्थ हुआ। उनकी प्राचीन प्रतिमाओंमें उन्हें लड्डू लिये हुए या खाते हुए प्रदर्शित किया गया है।

३-बुद्धि

गणेशजी बुद्धिके भी प्रतिनिधि देवता मान्य हुए। वैदिक साहित्यमें 'गणपति'-शब्द आया है। इसका प्रयोग 'अग्रपूज्य देव' के लिये मिलता है, यथा—**'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। कविं कवीनाम्'** (ऋग्वेद २।२३।१) और **'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च**

भ्यो नमो नमः।' (यजुर्वेद १६। २६) आदि। यहाँ 'गणपति'-शब्द वाग्देवताके लिये प्रयुक्त हुआ है। परवर्ती साहित्य-पुराणादिमें वेदव्यासजीके लेखकरूपमें भी गणेशजीकी परिचर्चा मिलती है। यह इस बातका द्योतक है कि एक अच्छे श्रोता एवं लेखकके रूपमें गणेशजी पौराणिक साहित्यमें आदृत हुए। वे विद्या और बुद्धिके देवता कहे जाते हैं।

४-कृषि

कृषिके प्रारम्भिक देवता देवराज इन्द्र हैं। वे उस वर्षाके प्रतिनिधि हैं, जो भूमिको उर्वरा बनाती है। भूमि अन्न, जल, वनस्पतियों तथा खनिज-पदार्थोंका अक्षय भंडार है। इसीलिये उसे हमारे यहाँ माता कहा गया है—'**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**' (अथर्ववेद)। भारतीय साहित्य और कलामें 'गजलक्ष्मी'की कल्पना मिलती है। अनेक मूर्तियोंमें दो हाथियोंद्वारा जलपूरित कलशोंसे लक्ष्मीदेवीका अभिषेक मिलता है। यहाँ लक्ष्मी पृथिवीकी द्योतक हैं और हाथी (ऐरावत) इन्द्रके प्रतिनिधि हैं। अनेक प्राचीन कलाकृतियोंमें श्रीलक्ष्मी तथा गणेशजीको एक साथ दिखाया गया है। गणेशजीका गजमस्तक जलके देव इन्द्रका परिचायक है और इस प्रकार वर्षाका द्योतक है, जो कृषिको प्रवर्धित करती है। इस देशकी वसुधाको धन-धान्यसम्पन्न करनेमें प्रमुख हाथ खेतीका रहा है। अन्ननाशक चूहेको गणेशजीद्वारा वशवर्ती बनानेकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

५-व्यवसाय-वाणिज्य

खेतीके अतिरिक्त अन्य उद्योग-धंधों तथा व्यापारद्वारा देशकी समृद्धि बढ़ती है और उसका आर्थिक आधार पुष्ट होता है। वाणिज्यके प्रवर्धकरूपमें गणेशजीकी मान्यता मध्यकालमें बहुत बढ़ी। वे वणिकोंके विशेष पूज्य देवता हो गये। कुबेरको हमारे यहाँ धनका अधिपति माना जाता है। उनका भारी-भरकम तोंदवाला शरीर वणिकोंद्वारा पूज्य था। कुबेर-जैसी तुन्दिल प्रतिमाएँ गणेशजीकी भी बड़ी संख्यामें मिली हैं। इन दोनों देवोंमें अन्तर यह था कि कुबेर बहुत कम हिलते-डुलते थे, जबकि गणेशजी युद्ध तथा नृत्यादि व्यायामोंसे मोदक-पुष्ट अपने शरीरको कृशकाय बनानेका उद्यम करते रहते थे। विविध आयुधधारी योद्धा तथा नृत्यरत रूपोंमें गणेशजीके ध्यान साहित्यमें उपलब्ध हैं। इन दोनों रूपोंमें उनकी प्रतिमाएँ भारत तथा विदेशोंमें प्रचुर संख्यामें प्राप्त हुई हैं।

उपर्युक्त पाँचों तत्त्वोंका असाधारण समन्वय गणेशजीमें मिलता है। इसीलिये इन्हें भारतीय देवोंमें असाधारण स्थान प्राप्त हुआ। अनेक लेखकोंने गणेशजीके प्रतीकत्वको सही अर्थोंमें न समझनेके कारण उनके विषयमें भ्रान्त धारणाओंकी सृष्टि कर ली है। उनके गजशीर्ष, तुन्दिल शरीर, मूषकवाहन आदिको लेकर अनेक अनर्गल बातें लिखी गयी हैं। भारतीय परम्पराको समुचित ढंगसे न समझ सकनेके कारण ऐसी भ्रान्तियोंका होना स्वाभाविक है।

गणेशजीकी गणना हमारे प्रमुख पंचदेवोंमें है। विष्णु, शिव, सूर्य, देवी तथा गणेश—ये पंचदेव हैं। गुप्त-युगमें इस पंचदेवोपासनाका विस्तार हुआ। गणेशजीकी गुप्तकालीन प्रतिमाएँ बहुत कम मिली हैं। कार्तिकेयकी पूजा उनके पहले प्रचलित हो चुकी थी। यौधेयगण, कुणिन्द तथा उज्जयिनी-जनपदने अपनी मुद्राओंपर कार्तिकेयको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त प्रथमने भी अपने एक विशेष प्रकारके स्वर्णसिक्कोंपर कार्तिकेयकी छवि अंकित करायी। जहाँतक गणेश-पूजाका सम्बन्ध है, गुप्त-युगके पहले किसी ग्रन्थ या अभिलेखमें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। मथुरा-कलामें नृत्य करते हुए गणेशकी एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली है। सम्भवतः सर्वप्रथम भूमरा (जिला सतना, मध्यप्रदेश)-में गणेशजीकी पूज्य मूर्ति मिली है, जो ईसवी पाँचवीं शतीकी है। आन्ध्रप्रदेशके अमरावती स्थानमें भी गजानन यक्षकी एक उल्लेखनीय प्रतिमा मिली है।

शिवपुत्रके रूपमें मान्य होनेपर गणेशजीका महत्त्व अधिक बढ़ा। गुप्तकालके पश्चात् तो उनकी बहुसंख्यक प्रतिमाएँ बनने लगीं। समृद्धिके प्रतिनिधिरूपमें उन्हें मान्यता मिली, तब उनकी पूजाकी व्यापकता बढ़ी। जोधपुरके पास घटियाला (राजस्थान)-से गणेशजीकी एक चतुर्मुखी प्रतिमा मिली है, जिसपर विक्रम संवत् ९१८ (८६७ ई०) का लेख उत्कीर्ण है। लेखसे ज्ञात होता है कि व्यापारियोंद्वारा यह पूजनीय प्रतिमा यहाँ स्थापित की गयी थी।

हालमें मुझे होशंगाबाद जिला (मध्यप्रदेश)-के

सिवनी-मालवा नामक स्थानपर गणेशजीका एक दुर्लभ मन्दिर देखनेको मिला, जिसमें गणेशजीकी एक विशिष्ट मूर्ति अब भी सुरक्षित है। इस मन्दिरका प्रारम्भिक निर्माण ई० नवीं शतीमें सम्पन्न हुआ है।

सातवीं शती ईसवीसे गणेशजीकी बहुसंख्यक मूर्तियाँ बनने लगीं। उनकी मूर्तियाँ चार, आठ, दस तथा सोलह भुजाओंवाली भी मिली हैं। कुछ प्रतिमाओंमें उनकी शक्ति भी साथमें दिखायी गयी है। पौराणिक तथा तान्त्रिक साहित्यमें उनकी पत्नीकी संज्ञा श्रीभारती, विघ्नेश्वरी आदि मिलती है। कभी-कभी उनकी दो पत्नियाँ, बुद्धि और कुबुद्धि कही गयी हैं। मध्य-कालीन गणेश-पूजापर तान्त्रिक प्रभाव भी बढ़ता गया, जो इन मूर्तियोंसे स्पष्ट है।

गणेश-पूजा भारततक ही सीमित नहीं रही, मध्य एशिया, नेपाल, तिब्बत, चीन, बर्मा, स्याम, कंबोडिया, जावा, सुमात्रा आदि देशोंमें उनकी बहुसंख्यक मूर्तियाँ मिली हैं, जो गणेश-अर्चाके व्यापक प्रसारको द्योतित करती हैं।

~~~o~~~

वंगदेशकी मूर्त्तिकलामें गणेश

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद)

वंगदेशमें गाणपत्य धर्मका स्पष्ट प्रमाण न मिलनेपर भी सिद्धिदाता, विघ्नहर गणेशकी अनेक मूर्तियाँ गुप्तयुगसे ही पायी गयी हैं। बैठी, खड़ी और नृत्य करती हुई गणेशकी तीन प्रकारकी मूर्तियोंकी कल्पना की गयी है। उत्तर वंगके एक पहाड़पुरमें (आठवीं शताब्दीकी) पत्थरकी, पकायी मिट्टी तथा धातुकी अनेक बैठी और खड़ी मूर्तियाँ पायी गयी हैं और मूर्तितत्त्वकी दृष्टिसे सभी बहुमूल्य हैं। इनमें एक नृत्यपरायण गणेशकी प्रतिमा है और उस प्रतिमामें लोकायत मतके सरल, सरस, कौतुकपूर्ण शिल्पमय प्रकाश सुस्पष्ट हैं। गणेशका जो कुछ प्रधान लक्षण और चिह्न है, वह सब इन प्रतिमाओंमें सम्यक्-रूपसे परिस्फुट हुआ है। एक धूसरवर्णके बेल पत्थर (पत्थरकी एक जाति)-की गणेशमूर्ति विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। मूर्ति चतुर्भुजी है, जिसने एक ओरके एक हाथमें जपमाला और दूसरेमें एक पत्रगुच्छयुक्त मूली तथा दूसरी ओरके एक हाथमें त्रिशूल और दूसरेमें एक सर्पकी पूँछ धारण कर रखी है। सर्प यज्ञोपवीतकी तरह देहको आवेष्टित करके स्थित है। इस प्रतिमाकी वेदीमें गणेशका वाहन मूषक अंकित किया गया है और मूर्तिके कपालके मध्यभागमें तृतीय नेत्र विराजित है। पकी मिट्टी (Terra-cotta plaque)-की एक खड़ी गणेशमूर्ति उल्लेखनीय है। वह चतुर्भुजी है और उसमें वाहन मूषक प्रभुकी ओर ताक रहा है।

इस शिल्पलेखसे यह ज्ञात होता है कि पालवंशके सम्राट् महाराज महीपालके राज्य-कालके (९८८—१०३८ ई०) क्रमशः तृतीय और चतुर्थ राज्यांगमें विलकिन्दक (त्रिपुरा जिलेका आधुनिक विलकान्दि) ग्रामनिवासी दो वणिक्—बुद्धमित्र और लोकदत्तने एक नारायण और एक गणेशकी मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी। रामपाल (१०७७—११२० ई०)-ने रामावतीमें शिवके तीन मन्दिर, एकादश रुद्रका एक मन्दिर और सूर्य, स्कन्द एवं गणपतिके मन्दिरोंकी स्थापना की थी, ऐसा उल्लेख है। पालवंशमें गणेशकी अधिकांश प्रतिमाएँ मूषक-वाहनके ऊपर नृत्यपरायण हैं। उसके एक हाथमें फल है। यह फल सिद्धिका प्रतीक है। गणेश वंगदेशके सब सम्प्रदायोंमें, विशेषरूपसे व्यवसायीवर्गमें सिद्धिफलदाताके रूपमें ही पूजित और आदृत हैं। वंगदेशमें पालवंशके राज्यकालमें किसी-किसी देवी-प्रतिमामें भगवतीके पारिवारिक सदस्यके रूपमें भी गणेशकी मूर्ति दृष्ट होती है।

पालयुगके तान्त्रिक बौद्धधर्ममें भ्रुकुटी ताराके परिवार देवताके रूपमें गणेश भी पूजित होते थे। इस प्रकारकी एक मूर्ति ढाका जिलेके भवानीपुर गाँवसे प्राप्त हुई है। देवी त्रिशिरस्का, अष्टभुजा वीरासनमें बैठी हुई हैं। उसके मुकुटमें अमिताभ बुद्धकी और पादपीठमें गणेशकी मूर्ति उत्कीर्ण है। पालवंशके शासनकालमें बौद्ध देव-देवियाँ कुछ-कुछ ब्राह्मण (हिंदू-शास्त्रोक्त)
~~~

देव-देवियोंके साथ मिश्रित होती जा रही थीं और ब्राह्मण देव-देवियोंको भी बौद्ध और शैवतन्त्रमें स्थान प्राप्त होने लगा था। पालयुगमें बौद्ध साधनमालामें ब्राह्मण, महाकाल और गणपतिका स्थान तथा बौद्ध-तन्त्रमें शिवलिंग एवं शैव देव-देवियोंका स्थान ही घट गया था।

वंगदेशमें गणेशमूर्तिके प्रकारभेद और वैशिष्ट्य

वंगदेशमें आविष्कृत प्राचीन गणेशमूर्तियोंको तीन भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। जैसे—(१) स्थानक (खड़ी), (२) आसीन (बैठी) और (३) नृत्यरत। प्रथम भागकी अर्थात् खड़ी मूर्तिकी संख्या अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। 'स्थानक' गणेश कहीं-कहीं 'सम-पद स्थानक' रूपमें अवस्थित मिलते हैं और कहीं द्विभंग या त्रिभंगरूपमें खड़े पाये जाते हैं। 'आसीन' अर्थात् बैठी हुई मुद्रामें अनेक मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। 'आसीन' मूर्तियोंमें गणेशका वामपद आकुंचित है और पीठके ऊपर स्थित है। दक्षिणपद पीठके ऊपर प्रस्थापित या अन्य प्रकारसे न्यस्त है। वंगदेशमें गणेशकी नृत्य मूर्तिका प्राचुर्य है। द्विभुजगणेशमूर्तिकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। चतुर्भुज गणपतिका अपेक्षाकृत बाहुल्य है और षड्भुज तथा अष्टभुज गणेशमूर्ति भी विरल नहीं है। नृत्यरत भावमें प्रदर्शित देवताकी पूजाकी अधिकता विचारणीय है। द्विभुज गणेशके एक हाथमें मोदक-भाण्ड, दूसरे हाथमें परशु, अक्षमाला या मूलक है। चतुर्भुज गणपतिके हाथोंमें चार द्रव्य साधारणतः पाये जाते हैं और प्रकार-भेदसे अंकुश, पाश-दण्ड इत्यादि भी देखे जाते हैं। नृत्यमूर्तियोंके छः या आठ हाथोंमें इन द्रव्योंमेंसे किसी-किसीके बदले शूल, सर्प, नीलोत्पल, धनुष, शर आदि भी विन्यस्त हैं। गणपति अधिकांश स्थलोंमें मूषकवाहन हैं। यहाँतक कि उनकी नृत्यरत मूर्तियाँ भी मूषकवाहनके ऊपर नृत्य-मुद्रामें ही प्रदर्शित हैं। वंगदेशमें शिवकी मध्ययुगीन नृत्यमूर्तियाँ प्रायः देवताके वाहन वृषभाकार नन्दीके पृष्ठके ऊपर ही नृत्यरत हैं। इस प्रदेशमें उपर्युक्त भावमें गणपतिकी मूर्ति भी अपने वाहन मूषकके ऊपर नर्तनशील है। नृत्य-गणेश, जो शिव नटराजके एक प्रकारके अद्भुत अनुकरण हैं, यह इन दोनों देवताओंकी मूर्तियोंके एक साथ निरीक्षण करनेसे स्पष्ट हो जाता है। कहीं-कहीं दक्षिणदेशीय नटराज शिवकी दण्डहस्त मुद्राकी पूर्ण अनुकृति गणपतिकी इस प्रकारकी मूर्तिमें देखी जाती है। वंगदेशमें प्राप्त मध्ययुगकी अनेक नृत्यरत गणेश मूर्तियोंकी प्रभावलीमें ऊपरकी ओर मध्यभागमें पल्लवयुक्त आम्रगुच्छ लिये हुए दीख पड़ते हैं। इसको अंकित करनेका कारण यह है कि आम्र सर्वोत्कृष्ट फल है और गणपति अपने प्रति श्रद्धालु साधकोंको मानो अनुरूप उत्कृष्ट फल अर्थात् सिद्धि और साफल्य प्रदान करते हैं।

उत्तर-वंगके दिनाजपुर जिलाके वानगढ़में प्राप्त पत्थरकी बनी एक नृत्य-गणेशकी मूर्ति विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। गणपति अपने मूषकवाहनके ऊपर नृत्यरत हैं; पार्श्वमें दो मूर्तियाँ वाद्ययन्त्रके साथ नर्तनशील हैं। ये गणेश षड्भुज हैं, दाहिनी ओरके तीनों हाथोंमें क्रमशः हाथीदाँत, परशु और जपमाला है तथा बायीं ओरके तीनों हाथोंमें क्रमशः वरमुद्रा, नीलोत्पल और मोदकभाण्ड हैं। मोदकभाण्डके ऊपर गणेशका शुण्ड स्थापित है। ऊर्ध्वप्रभावलीके मध्यभागमें पल्लवयुक्त आम्रगुच्छ लटक रहा है। यह सिद्धिदाता गणेशके सिद्धि-प्रदानका प्रतीक है। मूर्तिकी शिल्पकला विशेषरूपसे दर्शनीय है।

हेरम्ब-गणपति

पूर्व-वंगके रामपालके ध्वंसावशेषमें 'हेरम्ब-गणपति'-की एक प्रस्तरमूर्ति प्राप्त हुई है। यह मूर्ति विशेष गौरवपूर्ण है। ढाका म्यूजियमके क्यूरेटर (Curator) स्वर्गीय डॉ० नलिनीकान्त भट्टशालीने अपनी (Catalogue of Buddhist and Brahmanical Sculptures in the Dacca Museum) पुस्तकमें इसका विवरण और चित्र प्रकाशित किया है (पृष्ठ १४६-४७)। अन्य गणेश तो मूषकवाहन हैं, किंतु हेरम्ब-गणपतिका वाहन सिंह है। मूर्तिशास्त्रमें वर्णित हेरम्ब-गणपतिका रूप अति विचित्र है। यह पंच-गजवदनयुक्त है। चार वदन एक-एक करके चारों ओर देख रहे हैं और पाँचवाँ आकाशमुखी होकर उनके ऊपर स्थित है। ये सिंहके ऊपर आसीन हैं। इनकी दस भुजाओंमें पाश, दन्त, अक्षमाला, परशु, अंकुश, मुद्गर, मोदक, वरमुद्रा और अभयमुद्रा प्रदर्शित हैं। इस प्रकारकी मूर्ति दक्षिणदेशमें विरल नहीं हैं। सुप्रसिद्ध मूर्तितत्त्वके ज्ञाता श्रीगोपीनाथरावने अपनी (Elements of Hindu Iconography, Vol.I)

पुस्तकमें हेरम्ब-गणपतिका जो विवरण दिया है, पूर्व-वंगमें प्राप्त यह मूर्ति अनेक अंशोंमें उसके प्रतिरूप होते हुए भी अपनी एक विशिष्टता रखती है। इसकी प्रभावलीके ऊपरी भागमें छः छोटे आकारकी गणेशमूर्तियाँ खुदी हुई हैं। ये छोटी मूर्तियाँ गाणपत्यसम्प्रदायके छः विभागोंके छः प्रकारके गणपतिकी प्रतीक हैं। ये छः प्रकारके गणपति हैं—महागणपति, हरिद्रागणपति, उच्छिष्टगणपति, नवनीतगणपति, स्वर्णगणपति और संतानगणपति। उच्छिष्टगणपति-उपासक-सम्प्रदायकी एक शाखाके उपास्य थे—हेरम्ब-गणपति। वे लोग शाक्त वाममार्गियोंके समान नाना प्रकारके कौलाचारमें लिप्त थे। वंगदेशके मध्ययुगीन तान्त्रिक निबन्धकार श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश (१६वीं शताब्दी)-द्वारा प्रणीत 'तन्त्रसार' ग्रन्थमें महागणपति, हरिद्रागणपति, उच्छिष्टगणपति और हेरम्ब-गणपतिके ध्यान, मन्त्र और उपासना-विधि वर्णित हैं। इससे वंगदेशमें गाणपत्य-सम्प्रदायके अस्तित्वका पता लगता है। रामपालके ध्वंसावशेषमें प्राप्त हेरम्ब-गणपतिकी उपर्युक्त प्रस्तरमूर्ति वंगदेशके पूर्वप्रान्तमें मध्ययुगीन गाणपत्य-सम्प्रदायके उपासकोंके अस्तित्वका दृढ़तापूर्वक समर्थन करती है।

~~○~~

श्रीगणेश-लोक

(१)

श्रीगणेशजी विभु हैं, सर्वत्र व्यापक आद्य—प्रथम पूज्य देव हैं। उनके धाम-निवासस्थलको 'स्वानन्दधाम' कहा गया है। सर्वसौन्दर्यनिधि श्रीगणेश अपने स्वानन्दधाममें निरन्तर नित्य निवास कर समस्त लोकका मंगल करते रहते हैं। गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें उनका सर्वसौन्दर्यकोशके रूपमें वर्णन उपलब्ध होता है—

परशुकमलधारी दिव्यमायाविभूषः
सकलदुरितहारी सर्वसौन्दर्यकोशः।
करिवरमुखशोभी भक्तवाञ्छाप्रपोषः
सुरमनुजमुनीनां सर्वविघ्नैकनाशः॥

(गणेशपु० १। १५। १९)

यह बात सहज सिद्ध है कि सर्वसौन्दर्यकोशका प्रतीक है—उनका 'स्वानन्दधाम'। पूर्णानन्द, परानन्द और पुराणपुरुषोत्तम श्रीगणेशजीका धाम आनन्दसे परिपूर्ण है। उन्हें 'चिन्तामणि-द्वीपपति' कहा गया है; कल्पद्रुमवनालय—कल्पद्रुमके उपवनमें निवास करनेवाला निरूपित किया गया है—

'चिन्तामणिद्वीपपतिः कल्पद्रुमवनालयः।'

(गणेशसहस्रनामस्तोत्र-२९)

'शारदातिलक'में महागणपतिके ध्यान-निरूपण-प्रसंगमें उनके इक्षुरसके समुद्रके मध्यमें स्थित नवरत्नमय द्वीपका वर्णन उपलब्ध होता है—

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदिक्षुरसाम्बुधौ।
तद् वीचिधौतपर्यन्तं मन्दमारुतसेवितम्॥
मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलताकुलम्।
तद्भूतरत्नच्छायाभिररुणीकृतभूतलम्॥
उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्भासितदिगन्तरम्।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत्।
ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनैः॥
तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे।
षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत्॥

(शारदातिलक १३। ३२—३५)

आशय यह है कि साधकको ईखके रसके समुद्रमें नवरत्नमय द्वीपका ध्यान करना चाहिये। उस द्वीपका प्रान्तभाग उक्त सागरकी लहरोंसे प्रक्षालित है। उसमें मन्द-मन्द पवनका संचार हो रहा है। मन्दार, पारिजात आदि पंचविध कल्पवृक्षोंकी लताओंसे वह व्याप्त है। वहाँ प्रकट हुए रत्नोंकी प्रभासे भूतल अरुण दीखता है। उदित सूर्य और चन्द्रमाके प्रकाशसे दिग्-दिगन्त प्रकाशित है। उस द्वीपके मध्यमें नवरत्नमय पारिजात है, प्रीतिवर्धक छहों ऋतुओंद्वारा वह नित्य सेवित है। उसके नीचे निर्मित महापीठपर मातृकामय कमलके मध्यमें षट्कोण है। षट्कोणके भीतर त्रिकोण है। उसके भीतर महागणपति स्थित हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिये।

गणेशपुराणके उत्तरखण्डके ५०वें अध्यायमें मुद्गलमुनिद्वारा श्रीगणेशके स्वानन्दलोक अथवा धामका वर्णन मिलता है। उस लोकमें कामदायिनी शक्तिमय पीठपर सदा गणेशजी विराजमान रहते हैं। यह स्वानन्दलोक

या धाम चिन्तामणि द्वीपका ही पर्याय है—

'स कामदायिनीपीठे संतिष्ठति विनायकः।'

(गणेशपुराण २। ५०। ३१)

श्रीगणेशजीका यह स्वानन्दधाम पाँच सहस्र योजनके विस्तारमें स्थित है। दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली रत्न-कांचनमयी भूमि है इसकी। यह इक्षुरस-सागरके मध्यमें विराजित है। वेदाध्ययन, दान, व्रत, यज्ञ, जप-तपसे यह किसी भी स्थितिमें प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसकी प्राप्ति तो भक्तिके परिणामस्वरूप विनायकदेवकी कृपासे ही होती है। विघ्नेश्वर इसमें समष्टि-व्यष्टिरूपसे निवास करते हैं—

विस्तीर्णं पञ्चसाहस्रं योजनानि महामते॥
रत्नकाञ्चनभूमौ स राजते भासयन् दिशः।
स्वानन्दनामा दिव्योऽयमिक्षुसागरमध्यगः॥
न वेदैर्न च दानैश्च व्रतैर्यज्ञैर्जपैरपि।
तपोभिर्विविधैश्चायं प्राप्यते नैव कर्हिचित्॥
विनायकस्य कृपया प्राप्यते नित्यभक्तितः।
समष्टिव्यष्टिरूपोऽत्र सदा तिष्ठति विघ्नराट्॥

(गणेशपु० २। ५०। ३१—३४)

स्वानन्दभवनकी अमित शोभा है। उसमें गजमुक्तामणिमय असंख्य प्रकाशमान गृह हैं। दुःख और मोहसे रहित वह गणेश-लोक उनकी कृपासे ही प्राप्य है। उसके उत्तरभागमें इक्षुसागर शोभा पाता है। उसमें सहस्र पत्रोंसे युक्त पद्मिनी है। उसमें चन्द्रमाके समान कान्तिमान् सहस्रदलवाला कमल शोभित है। उसकी कर्णिकामें रत्न-कांचननिर्मित शय्या है। दिव्याम्बरयुक्त विनायक उसपर शयन करते हैं। सिद्धि-बुद्धि अत्यन्त भक्ति-भावसे उनके चरणोंकी सेवा करती रहती हैं। तीन मूर्तियोंसे युक्त सामवेद उनका गान करता है। शास्त्र मूर्तिमान् होकर उनकी स्तुति करते हैं। समस्त पुराण उनके सद्गुणोंका वर्णन करते हैं। उसमें शुण्ड-दण्डसे विभूषित बालरूप श्रीगणेशजी विराजमान हैं। उनका अंग कोमल है। अरुण वर्ण है। उनके बड़ी-बड़ी आँखें हैं और एक दाँत है। वे मुकुट एवं कुण्डल, कस्तूरी-तिलकसे शोभित हैं। उनकी माला दिव्य है। उनका अम्बर—परिधान दिव्य है। उनके शरीरमें दिव्यगन्धका लेप है। वे मुक्ता-मणि गणोंसे युक्त रत्नमण्डित हार धारण करते हैं। अनन्त कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट है। स्मरण करते ही वे शीघ्र ही पापोंका नाश करते हैं—

असंख्याता गृहा भान्ति भास्वरा गजमौक्तिकाः।
तस्यैव कृपया प्राप्यो दुःखमोहविवर्जितः।
तदुत्तरे भाति पर इक्षुसागर एव तु॥
सहस्रपत्रसंयुक्ता तन्मध्ये पद्मिनी शुभा।
सहस्रपत्रं कमलं तस्यां भाति यथा शशी॥
तत्कर्णिकागतस्तल्पो रत्नकाञ्चननिर्मितः।
दिव्याम्बरयुतः शेते नृप तत्र विनायकः॥
सिद्धिबुद्धी सदा तस्य पादसंवाहनं मुदा।
कुर्वाते परया भक्त्या सामवेदस्त्रिमूर्तिमान्॥
गानं करोति शास्त्राणि मूर्तिमन्ति स्तुवन्ति तम्।
पुराणानि च सर्वाणि वर्णयन्त्यस्य सद्गुणान्॥
बालरूपधरस्तत्र शुण्डादण्डविराजितः।
कोमलाङ्गोऽरुणनिभो विशालाक्षो विषाणवान्॥
मुकुटी कुण्डली राजत्कस्तूरीतिलकः स्वराट्।
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः।
मुक्तामणिगणोपेतं सरत्नं दाम संदधत्॥
अनन्तकोटिसूर्यौजाश्चन्द्रार्धकृतशेखरः ।
स्मरणात् पापहा सद्यः........॥

(गणेशपुराण २। ५०। ५१—५९)

तेजोवती और ज्वालिनी—ये दो शक्तियाँ उस पर्यंकके निकट सदा स्थित रहती हैं। ये शक्तियाँ सहस्र सूर्योंके समान तेजस्विनी हैं—

तेजोवती ज्वालिनी च शक्ती पर्यङ्कपार्श्वयोः।
सहस्रादित्यसंकाशे तिष्ठतो नृप सर्वदा॥

(गणेशपु० २। ५०। ६०)

श्रीगणेशजीका यह स्वानन्दधाम शीत, जरा, क्लम, स्वेद, तन्द्रा, क्षुधा, तृषा, दुःख आदिसे सर्वथा रहित है, पुण्यात्मा जन ही इसमें आनन्दमग्न होकर निवास करते हैं।

सर्वसौन्दर्यनिधि श्रीगणेशजीका स्मरण परम मंगलकारी है। वे समस्त समृद्धि प्रदान करते हैं। उनके स्वरूप, रूप, अंग-प्रत्यंग, आभरण-आभूषण, परिधान, परिवार, प्रतिहार, पार्षद, वाहन तथा लोकादि—सब-के-सब दिव्य हैं। उनसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। उनके चिन्तनसे बड़ी शान्ति और आत्मतृप्तिकी उपलब्धि होती है। वे संसारमें यात्रा करनेवालोंके श्रम हर लेते हैं। उनके चरण-

कमलके ध्यानसे यह लोक और परलोक—दोनों सफल होते हैं। वे पापतरुको नष्टकर विघ्नोंके गढ़को धूलि-धूसरित कर अपने स्वजनोंका—समस्त संसारके प्राणियोंका आनन्द-संवर्धन करते हैं। महाकवि भूषणने श्रीगणेशजीकी बड़ी ललित स्तुति की है—

अकथ अपार भवपंथ के चले को स्त्रम-
हरन, करन बीजना-से बरदाइयै।
वह लोक परलोक सफल करन कोक-
नद से चरन हियें आनिकै जुड़ाइयै॥
अलिकुल कलित कपोल ध्याय ललित
अनंदरूप-सरित मों भूषन अन्हाइयै।
पापतरु-भंजन विघनगढ़ गंजन, भगत
मन-रंजन द्विरदमुख गाइयै॥

(शिवराजभूषण)

श्रीगणेशजी परब्रह्म परमात्मा हैं। वे सर्वविघ्नविनाशक और सदा पूज्य हैं—

'अयमेव सदा पूज्यः सर्वविघ्नविनाशनः॥'

(गणेशपुराण २। १२५। ३१)

निस्संदेह श्रीगणेशजी परम समर्थ हैं। वे समस्त मनोरथ और संकल्प पूर्ण कर देते हैं। उनका भजन करनेसे समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। मंगलमूर्ति श्रीगणेशजीके स्वरूपके चिन्तन, रूपके ध्यान और पूजनसे परमार्थकी सिद्धि होती है।

—श्रीरामलाल

(२)

(लेखक—श्रीमोहनलालजी खारकर)

गणेश-लोकको 'दिव्य लोक' भी कहते हैं। यह इक्षु-सागरमें स्थित है। भगवान् श्रीगणेशने अपनी कामदायिनी योग-शक्तिद्वारा इस लोकका निर्माण किया। इसका विस्तार पाँच हजार योजन है। गणेश-लोकका प्रकाश अत्यन्त सौम्य होते हुए भी कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशको भी मन्द करनेवाला है। गणेश-लोकमें श्रीगणेश व्यष्टि और समष्टि रूपसे विराजमान रहते हैं।

इक्षु-सागरमें एक विशेष प्रकारका सहस्रदल कमल है। उसके ऊपर एक सुन्दर मंच है। उस मंचपर भगवान् श्रीगणेश शयन करते हैं। वहाँ शीतल, मन्द तथा सुगन्धित वायु सदा बहती रहती है।

मंचशायी भगवान् श्रीगणेशका वर्णन प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय ब्रह्मलीन कवि श्रीविनायक महादेव नातूने अपने 'गणेशप्रताप' ग्रन्थमें इस प्रकार किया है—

सिद्धि बुद्धिचे प्राण जीवन। स्वस्वरूपी करी शयन।
दो पदांचे संवाहन। दीन युवती करिती सदा॥
ज्याचा न कळे वेदा पार। निर्गुण आनंदमय साचार।
भक्तावरी दया थोर। यदर्थ साकार मिरवे सदा॥
बालभावे गजवदन। सुंदर शोभे हास्य वदन।
पादांगुष्ठी कोटि मदन। ओवाळावे क्षणो क्षणी॥
चरण तळवे आरक्त दोन। तो नभी रंग भासमान।
ध्वज पताका वज्र चिन्ह। तळी शोभती सामुद्रिके॥
आरक्त शोभे बालशशी। नखे शोभती पदे तैसी।
चरणी नूपुरे झणत्कारेसी। गजर करिती असुरांवरी॥
जंघा वर्तुल सोज्ज्वल। सूर्यापरी उरु तेजाळ।
कटि पश्चात् भाग वर्तुळ। उदर लांबट साजिरे॥
विशाल शोभे वक्षस्थल। नव रत्नमाला अति तेजाळ।
कर्णी कुंडले रत्नमय सळ। सदा वाहती शशि सूर्यी॥
बाहुदंड वर्तुळ सुलक्षण। गंडस्थली आमोद घन।
भ्रमर करिती वरी भ्रमण। सदा दान सेविती॥
त्यावरी मुकुट नवरत्नमय। भक्ताभिमानी गणराय।
जे सेविती त्याचे पाय। नाही भय त्यांसी कधी॥
क्षीर सागरी नारायण। तैसा इक्षु सागरी गजकर्ण।
पाचां मध्ये भेद जाण। नाही नाही सत्य है॥

(गणेश-प्रताप, क्रीड़ा-खण्ड, अध्याय १२। २३—३२)

गणेश-लोककी भूमि सुवर्णमय है। वहाँ देवताओंके मन्दिर भी रत्नों और हीरोंसे बने हुए हैं। वहाँके घर भी सुवर्ण तथा रत्नमय हैं। गणेश-लोकका प्रत्येक वृक्ष कल्पतरु है तथा प्रत्येक पाषाण सुवर्ण तथा रत्नमय है। वहाँके रहनेवाले गणेश-भक्तोंको 'गणेश-दूत' कहा जाता है। उनका स्वरूप भी भगवान् श्रीगणेश-जैसा ही है। वे अत्यन्त तेजस्वी हैं। सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदिकी पीड़ा गणेश-लोकमें नहीं है। ऋद्धि-सिद्धि गणेश-लोकमें रहनेवाले गणेश-दूतोंकी सेवा सदा-सर्वदा करती रहती हैं। गणेशदूतोंका गुणगान सामवेद सदा करते रहते हैं। वहाँके रहनेवाले लोगोंके मनोरथ तत्काल सिद्ध हो जाते हैं। गणेश-लोककी प्राप्ति केवल उसीको होती है, जो भगवान् श्रीगणेशजीकी दृढ़ भक्तिमें निमग्न रहता है तथा जिसपर भगवान् श्रीगणेशकी कृपा है।

~~~0~~~
~~~

श्रीगणेश-सम्बन्धी तीर्थस्थलों एवं प्रतिमाओंके विषयमें नम्र निवेदन

पंचदेवोंमेंसे एक, पार्वती-शिवके आत्मज, सब देवी-देवताओंमें सर्वाग्रपूज्य और जन-जीवनमें अत्यधिक परिव्याप्त भगवान् श्रीगणेशसे सम्बन्धित सभी तीर्थस्थलों, मूर्तियों और क्षेत्रों आदिका पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना असम्भव है। श्रीगणेशजीके स्वतन्त्र मन्दिर भले ही अधिक न हों, परंतु प्रायः प्रत्येक आस्तिक हिंदू-घरमें, दूकानमें, व्यवसाय-केन्द्रमें श्रीगणेशकी प्रतिमा, चित्रपट या अन्य कोई प्रतीक अवश्य विद्यमान रहता है। इसी प्रकार प्रायः सभी श्रीशक्ति-शिव-मन्दिरोंमें श्रीगणेशके मंगल-विग्रह प्रतिष्ठित हैं। अन्य देव-स्थलोंपर भी श्रीगणेश उनके रक्षणार्थ विद्यमान हैं। भारत ही क्या, भारतके बाहर भी श्रीगणेशोपासना किसी-न-किसी रूपमें प्रचलित है। आगेके पृष्ठोंमें भगवान् श्रीगणेशसे सम्बन्धित तीर्थों आदिका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। अनेक स्थलोंका विवरण प्रयत्न करनेपर भी प्राप्त नहीं हो पाया है तथा कुछ स्थलोंका बहुत विस्तृत रूपमें प्राप्त हुआ था, जिसे स्थान-संकोचके कारण संक्षिप्त करना पड़ा है। विवरण अनेकों बन्धुओंद्वारा प्रेषित सूचनाओंके आधारपर तैयार किया गया है, अतएव सम्भव है, उसमें कहीं कोई त्रुटि रह गयी हो। इतना होनेपर भी, आशा है कि इससे पाठकोंको श्रीगणेशोपासनाके विस्तारकी एक झलक मिल जायगी।

इस विवरणको तैयार करनेमें जिन महानुभावोंसे सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके हम हृदयसे आभारी हैं। सहयोग प्रदान करनेवाले सज्जनोंके नाम प्रकाशित नहीं हो सके, इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

—सम्पादक

~~○~~

इक्कीस प्रधान गणपति-क्षेत्र

(लेखक—श्रीहेरम्बराज बाळशास्त्री)

१. मोरेश्वर—गाणपत्य-तीर्थोंमें यह सर्वप्रधान श्रीभूस्वानन्दक्षेत्र है। यहाँ 'मयूरेश-गणेश'की मूर्ति है। पूनासे ४० मील और जेजूरी स्टेशनसे १० मील यह स्थान पड़ता है।

२. प्रयाग—यह प्रसिद्ध तीर्थ उत्तरप्रदेशमें है। यह 'ओंकार-गणपतिक्षेत्र' है। यहाँ आदिकल्पके आरम्भमें ओंकारने वेदोंसहित मूर्तिमान् होकर गणेशजीकी आराधना एवं स्थापना की थी।

३. काशी—यहाँ ढुण्ढिराज गणेशका मन्दिर प्रसिद्ध है। यह 'ढुण्ढिराजक्षेत्र' है।

४. कलम्ब—यह 'चिन्तामणि-क्षेत्र' है। महर्षि गौतमके शापसे छूटनेके लिये इन्द्रने यहाँ 'चिन्तामणि-गणेश'की स्थापना करके उनका पूजन किया था। इस स्थानका प्राचीन नाम कदंबपुर है। बरारके यवतमाल नगरसे यहाँ मोटर-बस जाती है।

५. अदोष—नागपुर-छिंदवाड़ा रेलवे-लाइनपर सामनेर स्टेशन है। वहाँसे लगभग पाँच मीलपर यह स्थान है। इसे 'शमी-विघ्नेश-क्षेत्र' कहा जाता है। महापाप, संकट और शत्रु-नामक दैत्योंके संहारके लिये देवताओं तथा ऋषियोंने यहाँ तपस्या की और भगवान् गणेशकी स्थापना की। वामनभगवान्ने भी बलि-यज्ञमें जानेसे पूर्व यहाँ गणेशजीकी आराधना की थी।

६. पाली—इस स्थानका प्राचीन नाम पल्लीपुर है। बल्लाल नामक वैश्य-बालककी भक्तिसे यहाँ गणेशजीका आविर्भाव हुआ, इसलिये इसे 'बल्लाल-विनायकक्षेत्र' कहते हैं। यह मूल क्षेत्र तो सिन्धुदेशमें शास्त्रोंद्वारा वर्णित है, किंतु वह अब लुप्त हो गया है। अब तो महाराष्ट्रके कुलाबा जिलेमें पाली नामक क्षेत्र प्रसिद्ध है।

७. पारिनेर—यह 'मंगल-मूर्तिक्षेत्र' है। मंगल ग्रहने यहाँ तपस्या करके गणेशजीकी आराधना की थी। ग्रन्थोंमें यह क्षेत्र नर्मदाके किनारे बताया गया है, किंतु स्थानका ठीक पता नहीं है।

८. गंगा-मसले—यह 'भालचन्द्र-गणेशक्षेत्र' है। चन्द्रमाने यहाँ गणेशजीकी आराधना की है। काचीगुडामनमाड रेलवे-लाइनपर परभनीसे छब्बीस मील दूर सैलू स्टेशन है। वहाँसे पंद्रह मीलपर गोदावरीके मध्यमें श्रीभालचन्द्र-गणेशमन्दिर है।

९. राक्षसभुवन—जालनासे ३३ मीलपर गोदावरीके किनारे यह स्थान है। यह 'विज्ञान-गणेश-क्षेत्र' है। गुरु दत्तात्रेयने यहाँ तपस्या की और विज्ञान-गणेशकी स्थापना-अर्चना की है। विज्ञान-गणेशका मन्दिर यहाँ है।

१०. थेऊर—पूनासे पाँच मीलपर यह स्थान है। ब्रह्माजीने सृष्टिकार्यमें आनेवाले विघ्नोंके नाशके लिये गणेशजीकी यहाँ स्थापना की थी।

११. सिद्धटेक—बंबई-रायचूर लाइनपर धौंड जंक्शनसे ६ मील दूर बोरीवली स्टेशन है। वहाँसे लगभग ६ मील दूर भीमा नदीके किनारे यह स्थान है। इसका प्राचीन नाम 'सिद्धाश्रम' है। यहाँ भगवान् विष्णुने मधु-कैटभ दैत्योंको मारनेके लिये गणेशजीका पूजन किया था। द्वापरान्तमें व्यासजीने वेदोंका विभाजन निर्विघ्न सम्पन्न करनेके लिये भगवान् विष्णुद्वारा स्थापित इस गणपतिमूर्तिका पूजन किया था।

१२. राजनगाँव—इसे 'मणिपुर-क्षेत्र' कहते हैं। शंकरजी त्रिपुरासुर-युद्धमें प्रथम भग्न-मनोरथ हुए। उस समय इस स्थानपर उन्होंने गणेशजीका स्तवन किया और तब त्रिपुरध्वंसमें सफल हुए। शिवजीद्वारा स्थापित गणेशमूर्ति यहाँ है। पूनासे राजनगाँव मोटर-बस जाती है।

१३. विजयपुर—अनलासुरके नाशार्थ यहाँ गणेशजीका आविर्भाव हुआ था। ग्रन्थोंमें यह क्षेत्र तैलंगदेशमें बताया गया है। स्थानका पता नहीं है। मद्रास-मंगलोर लाइनपर ईरोडसे १६ मील दूर विजयमंगलम् स्टेशन है; वहाँका गणपतिमन्दिर प्रख्यात है; किंतु यह वही क्षेत्र है या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

१४. कश्यपाश्रम—यह क्षेत्र भी शास्त्रवर्णित है, पर स्थानका पता नहीं है। महर्षि कश्यपजीने अपने आश्रममें गणेशजीकी स्थापना-अर्चना की है।

१५. जलेशपुर—यह क्षेत्र भी अब अज्ञात है। मय-दानवद्वारा निर्मित त्रिपुरके असुरोंने इस स्थानपर गणेशजीकी स्थापना करके पूजन किया था।

१६. लेह्याद्रि—पूना जिलेमें जूअर-तालुका है। वहाँसे लगभग पाँच मीलपर यह स्थान है। पार्वतीजीने यहाँ गणेशजीको पुत्ररूपमें पानेके लिये तपस्या की थी।

१७. बेरोल—इसका प्राचीन नाम 'एलापुर-क्षेत्र' है। औरंगाबादसे बेरोल (इलोरा) मोटर-बस जाती है। घृष्णेश्वर (घुश्मेश्वर) ज्योतिर्लिंग यहाँ है। उसी मन्दिरमें गणेशजीकी भी मूर्ति है। तारकासुरसे युद्धमें स्कन्द विजयलाभ करनेमें पहले सफल नहीं हुए। पश्चात् शंकरजीके आदेशसे इस स्थानपर गणेशजीकी स्थापना करके उनका अर्चन किया और तब उन्होंने तारकासुरको युद्धमें मारा। स्कन्दद्वारा स्थापित मूर्तिका नाम 'लक्ष-विनायक' है।

१८. पद्मालय—यह प्राचीन प्रवाल-क्षेत्र है। बम्बई-भुसावल रेलवे-लाइनपर पाचोरा जंक्शनसे १६ मील दूर महसावद स्टेशन है। वहाँसे लगभग पाँच मील दूर यह पद्मालयतीर्थ है। यहाँ कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) तथा शेषजीने गणेशजीकी आराधना की थी। दोनोंके द्वारा स्थापित दो गणपतिमूर्तियाँ यहाँ हैं। मन्दिरके सामने ही 'उगम' सरोवर है।

१९. नामलगाँव—काचीगुडा-मनमाड लाइनपर जालना स्टेशन है। जालनासे बीड़ जानेवाली मोटर-बससे घोसापुरी गाँवतक जाया जा सकता है। वहाँसे पैदल नामलगाँव जाना पड़ता है। यह प्राचीन 'अमलाश्रम-क्षेत्र' है। यम-धर्मराजने माताके शापसे छूटनेके लिये यहाँ गणेशजीकी आराधना की है। यमराजद्वारा स्थापित आशापूरक गणेशकी मूर्ति यहाँ है। यहाँपर 'सुबुद्धिप्रद-तीर्थ'-नामक कुण्ड भी है। भुशुण्डि योगीन्द्रकी भी यहाँ मूर्ति है।

२०. राजूर—जालना स्टेशनसे यह स्थान चौदह मील है। इसे 'राजसदन-क्षेत्र' कहते हैं। सिन्दूरासुरका वध करनेके पश्चात् गणेशजीने यहाँ राजा वरेण्यको 'गणेश-गीता'का उपदेश किया था।

२१. कुम्भकोणम्—यह दक्षिणभारतका प्रसिद्ध तीर्थ है। इसे 'श्वेत-विघ्नेश्वरक्षेत्र' भी कहते हैं। यहाँ कावेरी-तटपर सुधा-गणेशकी मूर्ति है। अमृत-मन्थनके समय जब पर्याप्त श्रम होनेपर भी अमृत नहीं निकला, तब देवताओंने यहाँ गणेशजीकी स्थापना करके पूजा की थी।

~~०~~

महाराष्ट्रके कुछ प्रसिद्ध गणेश-मन्दिर

(लेखक—प्रो० श्रीमाधव अनन्त फड़के, एम्० ए०, साहित्य-पुराणेतिहासाचार्य)

महाराष्ट्रमें गणेशोपासना अत्यधिक प्रचलित है। गणेशजीके विख्यात अष्टगणपति-क्षेत्र महाराष्ट्रमें ही हैं। उन अष्टगणपति-क्षेत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—१-मोरगाँव, २-थेऊर, ३-लेह्याद्रि, ४-ओझर, ५-राजनगाँव, ६-महड़, ७-पाली और ८-सिद्धटेक। इनका तथा महाराष्ट्रके अन्य स्थानोंका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

मोरगाँव (जिला-पूना)—पूनासे चालीस मीलकी दूरीपर गाणपत्य-सम्प्रदायका यह आद्य पीठ है। यहाँके देवता हैं—मयूरेश्वर। इस अत्यन्त जाग्रत् देवस्थानकी गणना अष्टविनायकोंमें है। यहाँ गणेशजीके आगे एक बहुत बड़े चूहेकी प्रतिमा है, जो पैरमें लड्डू पकड़े है। भीतरी आँगनमें मुद्गलपुराणोक्त श्रीगणेशकी आठ प्रतिमाएँ आठ कोनोंमें हैं। प्रतिमाके अगल-बगल धातुकी सिद्धि-बुद्धिकी प्रतिमाएँ हैं। मूर्तिके सामने वाहनके रूपमें मूषक एवं मयूर हैं। इन सिद्धिदाता मयूरेश्वर-गणपतिकी अनन्य उपासना महागणपति-भक्त मोरया गोसावीने चौदहवीं शताब्दीमें इस क्षेत्रमें आकर की और उन्हें यहाँके 'ब्रह्म-कमण्डलु'-तीर्थमें भगवत्कृपासे जो उपास्य देवताकी मूर्ति मिली, उसीकी स्थापना बादमें इन्होंने चिंचवड़में करके भव्य मन्दिर खड़ा किया। आगे चलकर श्रीमोरया गोसावी सालमें दो बार माघ एवं भाद्रपदकी चतुर्थीको मोरगाँवमें आने लगे। आज भी 'चिंचवड़'से भगवान्‌की पालकी इन दो चतुर्थियोंको यात्राके निमित्त यहाँ आती है। इसी प्रकार अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें एक दूसरे सिद्ध सत्पुरुष श्रीगणेश-योगीन्द्रका भी सम्बन्ध इस क्षेत्रसे रहा है।

थेऊर (जिला-पूना)—थेऊर पूनासे चौदह मीलपर है। अष्टविनायकोंमें यह भी एक स्थान है। यहाँके गणेशजीका नाम 'चिन्तामणि' है। चिंचवड़के श्रीमोरया गोसावीने थेऊरके जंगलमें उग्र तपश्चर्या की थी। इनकी तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर श्रीगणेशजी व्याघ्रके रूपमें प्रकट हुए थे। उस व्याघ्रके प्रतीकरूपमें आज भी यहाँ एक पाषाण-खण्ड है। यहाँपर स्थित श्रीगणेश-प्रतिमा पालथी मारे हुए बैठी मुद्रामें है तथा प्रतिमाकी सूँड़ बायीं ओर एवं पूर्वाभिमुख है। यह देवस्थान चिंचवड़-संस्थानके अधिकारमें है।

लेह्याद्रि (जिला-पूना)—यह अष्टविनायक-स्थान पूनासे ६० मील दूर है। यह स्थान पहाड़ खोदकर तैयार किया गया है। इसके आस-पास बौद्ध गुफाएँ भी हैं। गणेशपुराणमें इस स्थानका उल्लेख है। यहाँपर गणेश-प्रतिमा एक ताखेके भीतर है, जो 'गिरिजात्मज'-के नामसे प्रसिद्ध है।

ओझर—यह अत्यन्त रमणीय स्थान लेह्याद्रिके पास है। अष्टविनायकोंमें यहाँके 'श्रीविघ्नेश्वरजी'की बड़ी प्रतिष्ठा है। यहाँका मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं सुन्दर है। मूर्तिकी सूँड़ बायीं तरफ है।

राजनगाँव (जिला-पूना)—अष्टविनायकोंमें यह भी एक स्थान है, जो पूनासे ३१ मील है। मन्दिर पूर्वाभिमुख है। मन्दिरकी रचना ऐसी है कि उत्तरायण एवं दक्षिणायनके मध्यकालमें सूर्यकी किरणें निश्चितरूपसे मूर्तिपर पड़ती हैं। यहाँके श्रीविग्रहको 'महागणपति' कहते हैं। इस समय मन्दिरमें जो पूजामूर्ति है, उसके नीचे तहखानेमें दूसरी एक छोटी मूर्ति है। वही असली मूर्ति है। मुस्लिम-शासन-कालके आक्रमणकारी मुसलमानोंके डरसे उस प्राचीन मूर्तिको इस प्रकार छिपाकर रखा गया था। इन श्रीगणेशका नाम 'महोत्कट' है।

चिंचवड़ (पूना)—पूनासे ग्यारह मील दूर यह एक जाग्रत् देवस्थान है। महाराष्ट्रके श्रेष्ठ गणपति-भक्त मोरया गोसावीने इस स्थानपर 'मंगलमूर्ति' नामके गणेशजीको स्थापना की। यहींपर इन्होंने जीवित समाधि भी ली थी। इस क्षेत्रको समर्थ रामदास, संत तुकाराम भी बहुत मानते थे। प्रशस्त सभा-मण्डपके अन्दर जानेपर समाधि है। इस समाधिपर मोरया गोसावीकी उपास्य-मूर्ति है। समाधिपर स्थित श्रीगणेशमूर्ति पद्मासनमें है। सूँड़ दाहिनी ओर मुड़ी है। केवल दो आँखें दिखलायी देती हैं।

पूना शहरके गणपति-विग्रह

(क) कसवागणपति—ठकार नामक एक गणेशभक्तको प्राप्त आदेशके आधारपर जमीन खोदकर यह प्रतिमा मिली थी। यही आदेश शिवाजी एवं जीजाबाईको भी हुआ था। यह 'स्वयम्भू-मूर्ति' है एवं ये पूना-नगरके ग्रामदेवता हैं। इन्हें 'जयति गणपति' भी कहते हैं।

(ख) सिद्धि-विनायक—श्रीगणेशजीसे आदेश पाकर गणेशभक्त सवाई श्रीमाधवराव पेशवाने दाहिनी सूँड़की गणेश-प्रतिमा बनवाकर सारसबाग तालाबके शान्त वातावरणमें इसकी स्थापना की थी।

(ग) वरद—गुपचुप गणपति—लोकमान्य तिलकजीके समयके शनिवार पेठमें यह एक प्रसिद्ध गणेशस्थान है। देवस्थानकी स्थापना श्रीरामचन्द्र विष्णु गुपचुपने करके प्रतिमाका नाम 'श्रीवरदगणपति' रख दिया।

(घ) दशभुज चिन्तामणि—यह मूर्ति भी आदेशके आधारपर कुएँसे मिली है। गणेशपुराणमें गणेशमन्दिर-निर्माणके सम्बन्धमें जो आवश्यक निर्देश है, तदनुरूप ही गणेश-लोकके भावनानुसार इस मन्दिरका निर्माण हुआ है।

(ङ) त्रिशुण्ड—नागझरीके किनारे पूनाका अत्यन्त प्राचीन एवं विशिष्ट रचनावाला मन्दिर है। मन्दिरकी दीवारपर एक गणेश-यन्त्र खुदा हुआ है, जिसके आधारपर शोध करनेवालोंका कथन है कि यह तन्त्रमार्गीय मन्दिर है। मन्दिरके नीचे गुप्त तहखानेमें मन्दिरके संस्थापक महंत श्रीदत्तगुरु महाराजकी समाधि है। इस मन्दिरकी ऐसी रचना की गयी है कि गजानन-मूर्तिके अभिषेकका पानी सीधे समाधिपर पड़े। इन मुख्य स्थानोंके अतिरिक्त पूना नगरमें अन्य भी कई बड़े श्रीगणेश-मन्दिर हैं।

पाली (जिला-कुलाबा)—यह अष्टविनायकस्थान है। यहाँके श्रीगणेशजीका नाम बल्लालेश्वर है। गणेशपुराण तथा मुद्गलपुराणमें भी इसका उल्लेख है। प्राचीनकालसे ही यह एक जागरूक स्थान है। मन्दिरकी ऐसी रचना है कि सूर्योदय होते ही सूर्यकी किरणें सभामण्डपसे होकर मूर्तिपर पड़ती हैं। इस मन्दिरके पीठकी ओर श्रीधुण्डिविनायकका मन्दिर है, जिसमें श्रीधुण्डिविनायककी स्वयम्भू-मूर्ति है।

महड़ (जिला-कुलाबा)—महड़के श्रीवरदविनायक अष्टविनायकोंमें प्रसिद्ध हैं। ऐसी धारणा है कि 'मन्दिरकी स्थापना वेद-प्रसिद्ध गृत्समद ऋषिने की।' ये ऋषि हजारों वर्ष पहले हुए हैं। '**गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे**' इस ऋचाको सिद्ध करनेवाले एवं ऋग्वेदके दूसरे मण्डलके मन्त्रद्रष्टा ऋषि श्रीगृत्समदने गणेशजीकी प्रखर उपासना की और उनकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव किया। गृत्समद ऋषि गाणपत्य सम्प्रदायके आद्यप्रवर्तक हैं। इसीलिये इस स्थानका अधिक महत्त्व है।

नाँदगाँव (जिला-कुलाबा)—यहाँ स्वयम्भू गणपति-देवता हैं एवं इन सिद्धि-विनायककी स्थापना 'ग्रहलाघवकार' श्रीगणेश दैवज्ञने की थी। यह मन्दिर चौदहवीं शताब्दीसे ही प्रसिद्ध है।

कनकेश्वर (जिला-कुलाबा)—ढाई सौ वर्ष पूर्व कन्हाड़के लम्बोदरानन्दस्वामीजीको भगवान् परशुरामने पीले संगमरमरके पत्थरकी सिद्धि-बुद्धि एवं लक्ष-लाभ बालकोंसहित श्रीलक्ष्मीगणेशकी एक सुन्दर एवं कलापूर्ण मूर्ति दी और कहा कि 'यह मूर्ति केवल ध्यानके लिये है, पूजनके लिये नहीं।' बादमें श्रीगणेशजीके आदेशानुसार एक दूसरी मूर्ति यहाँपर स्थापित की गयी एवं मूल-मूर्ति ताम्बेके एक सन्दूकमें बंद करके रखी हुई है। उस मूर्तिका दर्शन सबको मिले, इसलिये आजकल उसकी एक प्रतिकृति बनाकर वहाँ रखी हुई है। इन श्रीगणेशजीका नाम 'श्रीराम-सिद्धि-विनायक' है।

कडाव (जिला-कुलाबा)—के श्रीदिगम्बर सिद्धि-विनायकका मन्दिर एक अत्यन्त जाग्रत् देवस्थान है। इस मन्दिरका जीर्णोद्धार नाना फडनवीसने कराया था। तीन सौ वर्ष प्राचीन यह मूर्ति '**एकदन्तं शूर्पकर्णम्** ···' श्लोकके भावानुसार निर्मित है।

टिटवाला (जिला-थाना)—भारतके प्रसिद्ध कण्वमुनिका आश्रम यहीं था। दुष्यन्त-शकुन्तलाका गान्धर्व-विवाह एवं अन्य घटनाएँ यहीं हुई थीं। शकुन्तलाको कण्वमुनिने गणेशव्रत करनेको कहा था। जिन गणेशकी कृपासे उसे उसके पतिकी पुनः प्राप्ति हुई थी, यह वही गणेश-प्रतिमा है। इसे 'वरविनायक' या 'विवाहविनायक' भी कहते हैं।

बंबई—यहाँ दो प्रसिद्ध गणपति-मन्दिर हैं। एक है, प्रभादेवीका 'सिद्धिविनायक-मन्दिर' और दूसरा है, मूलजी जेठा कापड़ मार्केटका 'सिद्धिविनायक-मन्दिर'। ये दोनों गणपति-मन्दिर अति प्राचीन हैं। मूलजी जेठा मार्केटमें एक बार भयानक आग लगी थी, तब यह मन्दिर उससे केवल २५—३० कदम दूर था; फिर भी वह पूर्णतः बच गया था। आगकी ज्वाला दूर-दूरतक फैल गयी, तथापि इस मन्दिरको और इसके अन्दर मौजूद यशवंतराव पुजारीको कुछ भी आँच नहीं आयी। इस अग्निकाण्डमें यह एक चामत्कारिक बात हुई कि इस मार्केटमें आनेवाली अनेक गलियोंमें आग लग गयी थी, परंतु अन्दरके 'गणेश-चौक' तथा उसकी दूकानोंकी

कोई क्षति नहीं हुई थी। भक्तलोग मानते हैं कि यह चमत्कार सिद्धिविनायकका ही है। बंबईमें अनेक गणेश-मन्दिर हैं। गिरगाँवके फड़के गणपतिजी और मुम्बादेवीके गणेशजीके दर्शनके लिये भक्तोंकी भीड़ लगी रहती है। इनके अतिरिक्त वाणगंगा, वालकेश्वर, भुलेश्वर, गणेशवाड़ी, बडाला, माटुंगा, कालबादेवी, मंदार-गणेश, बांद्रा आदि स्थानोंके श्रीगणेश-मन्दिर दर्शनीय हैं।

पुल्या (जिला-रत्नागिरि)—यहाँका गणपति-मन्दिर अष्टविनायकोंसे अलग समुद्रतटवर्ती होकर भी एक प्रख्यात देवस्थान है। गणेशजीके दाँत साफ दिखलायी देते हैं। यहाँकी व्यवस्था ऐसी है कि सूर्यास्तके समय सूर्यकी किरणें ठीक स्वर्णिम-कलशसे होकर मूर्तिपर पड़ती हैं।

ताशगाँव (जिला-साँगली)—यहाँ गणपति-पंचायतनका मन्दिर है। बीचमें श्रीसिद्धिविनायक हैं। उनकी दाहिनी ओर उमा-रामेश्वर और बायीं ओर श्रीविष्णुका मन्दिर है।

साँगली—यहाँका गणपति-मन्दिर चमकते हुए काले पत्थरका है। कृष्णानदीके पूर्वी किनारेपर स्थित इस मन्दिरका सभा-मण्डप एवं गर्भगृहका शिखर कलापूर्ण है।

बाई (जिला-सतारा)—यहाँके ढोल्या-गणपतिके देवालयका पिछला हिस्सा मछली-जैसा है, जिससे कृष्णा नदीकी बाढ़से मन्दिरकी रक्षा होती है। मूर्ति विशाल होनेके कारण ही लोग इसे 'ढोल्या (विशालकाय) गणेश' कहते हैं।

सतारा—शहरके 'ढोल्या-गणपति'का मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है एवं मूर्ति स्वयम्भू है। यह मूर्ति आकारमें काफी बड़ी है। सताराके सभी मंगलकार्य इन्हें अक्षत देकर शुरू होते हैं। शहरके पास आज्जिक्य किलेकी पहाड़ीके उतारपर भी गणेश-मन्दिर है।

सिद्धटेक (जिला-अहमदनगर)—यहाँके 'सिद्धविनायक' अष्टविनायकोंमेंसे एक हैं। यह प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक महत्त्वका स्थान है। गणेशमूर्ति स्वयम्भू है। इसकी सूँड़ दाहिनी ओर झुकी है।

मालीवाडा (जिला-अहमदनगर)—यहाँका गणपति-मन्दिर प्राचीन एवं जाग्रत् है। कुछ साल पूर्व यहाँके गणेशजीको पसीना आने लगा, जो कि यज्ञादिके अनुष्ठानसे बंद हुआ। तबसे यह स्थान अधिक प्रसिद्ध हो गया।

नासिक—यहाँके मोदकेश्वर 'हिंगल्याका गणपति' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इनकी गणना छप्पन विनायकोंमें होती है। यह 'कामवरद महोत्कट-क्षेत्र' है। यहाँकी मूर्ति मोदकाकार है, इसीलिये इन्हें 'मोदकेश्वर' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त नासिक-नगरमें और भी सात-आठ गणेश-मन्दिर हैं।

एरंडोल (जिला-जलगाँव)—भारतके गणेशजीके प्रसिद्ध अढ़ाई पीठोंमें अर्धपीठके रूपमें इस स्थानका उल्लेख होता है। इसे 'पद्मालय-क्षेत्र' कहते हैं एवं इसकी कथा गणेशपुराणमें है। गर्भगृहमें गणेशजीकी दो स्वयम्भू मूर्तियाँ हैं। एक दाहिनी ओर मुड़ी सूँड़की एवं दूसरी बायीं ओर मुड़ी सूँड़की है। यह इक्कीस क्षेत्रोंमेंसे एक है।

कदम्बपुर (जिला-यवतमाल)—मन्दिरके सामने ही 'चौमुखी गजानन'की मूर्ति है। इसकी विशेषता यह है कि एक ही पत्थरमें चारों ओर चार गणेश-मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। सामनेके गर्भगृहमें मुख्य चिन्तामणि-गणेशकी मूर्ति है। 'कलम्ब' नामसे इक्कीस गणपतिक्षेत्रमें इसकी गणना है।

केलझर (जिला-वर्धा)—यहाँकी गणेश-प्रतिमा पाण्डवोंके द्वारा स्थापित है। महाभारतकालीन एकचक्रा-नगरी ही आधुनिक केलझर है। यहाँ एक अति प्राचीन मन्दिर है।

आधासा (जिला-नागपुर)—इक्कीस गणेश-क्षेत्रोंमें यह 'अदोष क्षेत्र'के नामसे प्रसिद्ध है। यह जाग्रत् देवस्थान है। मन्दिर टीलेपर एवं पूर्वाभिमुख है। यहाँ 'श्रीशमीविघ्नेश' की मूर्ति है।

नागपुर—शहरमें सीतावर्डी किलेमें गणपतिका पहले बना हुआ बड़ा मन्दिर था, जो मुस्लिमकालमें ध्वस्त किया गया। उसके अवशेष आज भी दिखलायी देते हैं। मूर्ति पेड़के नीचे है। पहले यह मूर्ति स्पष्ट दिखायी देती थी, किंतु अब अधिक सिन्दूर लगनेके कारण मूर्ति स्पष्ट नहीं दीखती है। नागपुर शहरमें शुक्रवार-तालाबके पास एक उत्तम गणेश-मन्दिर है। मूर्ति दाहिनी ओर झुकी सूँड़की एवं संगमरमरकी है।

अजिंठा (जिला-औरंगाबाद)—यह गणेशस्थान अत्यन्त जागरूक है और अर्धचन्द्राकार है। गणेश-गुफामें प्रवेश करनेपर बड़ा सभा-मण्डप आता है। मण्डपके मध्यभागमें दीवारमें चार फीट ऊँचाईपर मंगलमूर्ति है।

वेरुल (जिला-औरंगाबाद)—इक्कीस गणपति-

क्षेत्रोंमेंसे यह एक है। यहाँ 'श्रीलक्ष-विनायक'की स्थापना श्रीशिवपुत्र स्कन्दने की थी।

सेन्दुवाड़ा (जिला-औरंगाबाद)—यहाँ सिन्दूरासुरका राजबाग था। सिन्दूरासुरका अन्त करनेके कारण यहाँके श्रीगणेशजी 'सिन्दूरान्तक' कहलाते हैं।

सातारा (जिला-औरंगाबाद)—पहले बाजीराव पेशवाद्वारा यहाँकी श्रीगणेशमूर्ति तैयार करवायी गयी थी। मूर्ति पंचरसी धातुकी है। इसके बारह हाथ हैं। सूँड़ बायीं ओर मुड़ी है।

राजूर (जिला-औरंगाबाद)—भारतमें श्रीगणेशके साढ़े तीन पीठोंमें यह पूर्ण पीठ माना जाता है। यहाँके अति जाग्रत् एवं सिद्धि देनेवाले देव 'वरेण्य-पुत्र गणपति' कहलाते हैं। यहाँ गणेशजीने राजा वरेण्यको गीताका उपदेश दिया था। यहाँका मन्दिर गाँवके पास एक ऊँचे टीलेपर स्थित है। निरन्तर जलनेवाले तैल-दीपके मन्द प्रकाशमें ईश्वरका दर्शन होता है।

गंगामसले (जिला-परभणी)—यह स्थान पुराणोक्त है। यहाँ श्रीभालचन्द्र एवं गणेशके तीर्थक्षेत्रको 'भालचन्द्रपुर' भी कहते हैं। गणेशजीके इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमें इसकी भी गणना है। प्राचीनकालमें इसका नाम 'सिद्धाश्रम'-क्षेत्र था।

परभणी—जिलेके 'औढ्या नागनाथ-मन्दिर'में निज मन्दिरके दक्षिण दीवारपर गणेशकी कुछ सुन्दर मूर्तियाँ हैं। उनमें 'दिगम्बर गणेश', 'बैठा गणेश', 'खड़ा गणेश' 'ऋद्धि-सिद्धि गणेश' एवं 'दशभुज गणेश' हैं।

मानवतरोड (जिला-परभणी)—स्टेशनसे बीस मीलपर गोदावरीके किनारे मुद्गलतीर्थ है, जहाँ नदीमें एक गणपति-मन्दिर एवं तीर्थ है।

नांदेड़—यहाँके 'चित्रकूट-गणेश'का महाराष्ट्रके अष्टविनायकोंके समान ही माहात्म्य है एवं यह मन्दिर मराठवाड़ेका स्वयम्भू सिद्ध-स्थान है। यह छोटा-सा मन्दिर गोदावरी-असना नदियोंके संगमपर नदीमें ही पत्थरोंसे बना हुआ है। शिवलिंग एवं उसीके ऊपर गणेशजीकी स्वयम्भू प्रतिमा है। यह सिन्दूर-चर्चित है। लोगोंकी यह धारणा है कि यह प्रतिमा प्रतिवर्ष तिल-तिल बढ़ती है। नांदेड़ नगरमें तथा नांदेड़ जिलेमें भी कुछ गणपति-मन्दिर एवं क्षेत्र हैं।

नवगण राजुरी (बीड़)—यह मराठवाड़ेका प्रसिद्ध गणेशक्षेत्र है। गाँवमें प्रवेश करते ही सरहदपर पेशवाई ढंगका यह 'श्रीनवगणपति'का मन्दिर है। यहाँ चार गणेश-मूर्तियाँ हैं एवं एक चौकोर पत्थरके चार दिशाओंमें हैं। प्रत्येक मूर्तिकी बैठक विशिष्ट आसनमें है। उनके नाम इस प्रकार हैं—पूर्वकी ओर 'महामंगल', दक्षिणकी ओर 'मयूरेश्वर', पश्चिमकी ओर 'शेषाब्धिस्थित' तथा उत्तरकी ओर 'उत्तिष्ठ गणेश'की मूर्तियाँ हैं। मन्दिरमें चारों गणेशजीके अतिरिक्त एक पूजाके गणेश हैं। बीड़के जिलेके आँबेजोगाई तथा नामल गाँवके गणेश-मन्दिर भी दर्शनीय हैं। नामल गाँव इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमेंसे एक है।

राक्षस भवन (बीड़)—'श्रीविज्ञान-गणेश'का मन्दिर गोदावरीके दक्षिण किनारेपर गाँवके बाहर है। विज्ञान-गणेशकी मूर्ति पहले वर्तमान स्थानके नीचे गुफामें थी। दो सौ साल पूर्व किसी गणेशभक्त शंकर बुआ मंगलमूर्तिजीने इसे निकालकर बाहर स्थापित किया।

खाण्डोले (गोवा)—यहाँका गणपति-मन्दिर छोटा है, फिर भी सुन्दर है। यह पहाड़के नीचे नारियलके झुरमुटमें है, जिससे इसकी नैसर्गिक शोभा अप्रतिम है।

बांदिवडे (गोवा)—यहाँकी श्रीगोपाल-गणपतिकी मूर्ति जंगलमें मिली थी। इसकी ऊँचाई एक फुट है। पहले तो इसे नारियलके पत्तोंसे ढके हुए मण्डपके नीचे स्थापित किया गया था, किंतु बादमें यह मूर्ति काफी लोगोंकी मान्यताको पूरा करनेसे विख्यात हो गयी।

इसके अतिरिक्त महाराष्ट्रमें अनेकों छोटे-बड़े गणपति-मन्दिर एवं क्षेत्र तथा तीर्थ और कुण्ड हैं। जैसे—१-पूना जिलेके जुन्नर, २-कोलाबा जिलेके उरण, गरुड, आवास, ३-थाणा जिलेके अणजूर, मुरबाड, थाणा, ४-रत्नागिरि जिलेके अगरगुळे, हेदवी, आँबोळी, गुहागर, आँजर्ले, दोणवली, कैलशी, सोनगाँव, परशुराम, ५-कोल्हापुर जिलेके गणेशवाड़ी, कोल्हापुर, बीड़, इंचनाल, ६-सातारा जिलेके अंगापुर, ७-शोलापुर जिलेके पंढरपुर, अक्कलकोट, ८-नासिक जिलेके सिन्नर गाँव, त्र्यम्बकेश्वर, गणेशकुण्ड और ९-गोवाके धारगल, हरमल तथा भट्टबाड़ी स्थानोंके श्रीगणेशमन्दिरोंका दर्शन श्रीगणेश-भक्तोंको अवश्य करना चाहिये।

~~०~~

द्रविड़-देशमें श्रीगणेश

(लेखक—श्री एन्० कनकराज ऐयर, एम्० ए०)

द्रविड़—देश तमिळनाडुमें श्रीगणेशजी देवताके रूपमें सर्वसाधारणके चित्तको बहुत आकर्षित करते हैं। नदियोंके तटपर, पीपलवृक्षके नीचे तथा कण्टकाकीर्ण उदेयरम्-वृक्षकी छायामें बिना किसी प्रकारके आवरणके खुली जगहमें सहस्रों छोटी-छोटी वेदिकाओंके ऊपर उनकी अर्चना होती है। कोई भी धनी या गरीब आदमी सच्ची श्रद्धा-भक्तिसे उनके लिये कहीं भी स्थान बनवा देता है। इस प्रकार भक्तोंके हृदयमें गणपतिने एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

परमक्कुड़ि—पीपलका वृक्ष सब वृक्षोंका वस्तुतः राजा है। उसके नीचे श्रीगणेशजीकी महत्ता बढ़ जाती है। परमक्कुड़िके समीप वे एक काँटेदार वृक्षके नीचे अपने भाई स्कन्दके साथ आसीन हैं। नव-दम्पति अपने वैवाहिक जीवनकी सफलताके लिये गणेशजीसे प्रार्थना करते हैं और वे उसे पूर्ण भी करते हैं।

मद्रास—यहाँ कई मन्दिर हैं। शिव-मन्दिर अम्बाजीके मन्दिरसे कुछ ही दूरीपर एक साधारण-सा मन्दिर है। उसमें भगवान् शंकरकी लिंग-मूर्ति है। मन्दिरमें ही पार्वतीजीकी मूर्ति अलग मन्दिरमें है। नवग्रह, शिवभक्त-गण, श्रीगणेशजी आदि देवताओंकी मूर्तियाँ भी जगमोहन तथा परिक्रमामें हैं। इसके अतिरिक्त मइलापुर मुहल्लेमें कपालीश्वरका मन्दिर है। प्रधान मन्दिरमें कपालीश्वर शिवलिंग प्रतिष्ठित है। मन्दिरमें ही पार्वतीजी तथा सुब्रह्मण्यस्वामीके पृथक्-पृथक् मन्दिर हैं। मुख्य मन्दिरकी परिक्रमामें सुब्रह्मण्य, पार्वती, नटराज, नायनार (शिवभक्तगण), गणेश एवं दक्षिणामूर्ति आदिके दर्शन हैं।

कालहस्ती—यह रेनीगुंटासे १५ मील है। दक्षिण-भारतमें भगवान् शंकरके जो पाँच तत्त्वलिंग माने जाते हैं, उनमेंसे कालहस्तीमें वायुतत्त्वलिंग-मूर्ति है। परिक्रमामें श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

वेंकटगिरि—यह रेनीगुंटासे ३० मील है। काशीपेठ मुहल्लेमें काशी-विश्वेश्वर शिव-मन्दिर है। मन्दिरके परिक्रमा-मार्गमें अन्नपूर्णा, कालभैरव, सिद्धिविनायक आदि देवताओंकी मूर्तियाँ भी हैं।

अरुणाचलम् (तिरुवण्णामलै)—बिल्लुपुरम्से बयालीस मील दूर तिरुवण्णामलै स्टेशन है। अरुणाचल पर्वतके नीचे पर्वतसे लगा हुआ अरुणाचलेश्वरका विशाल मन्दिर है। इस मन्दिरके दूसरे आँगनमें सरोवरके किनारे कई मण्डप हैं, उनमें गणेश आदि देवताओंके मन्दिर हैं।

कांची—यह चेंगलपटसे बाईस मील दूर है। इस नगरके दो भाग हैं—शिवकांची और विष्णुकांची। शिवकांचीमें एकाम्रेश्वर भगवान्‌का मुख्य मन्दिर है। मन्दिरके द्वारके दोनों ओर क्रमशः श्रीकार्तिकेयजी तथा श्रीगणेशजीके मन्दिर हैं। मन्दिरकी दो परिक्रमाएँ हैं। पहली परिक्रमामें अनेक मूर्तियोंके साथ भगवान् श्रीगणेशजीकी भी भव्य मूर्ति है। विष्णुकांचीमें भगवान् श्रीवरदराजका विशाल मन्दिर है। भगवान्‌के निज मन्दिरकी परिक्रमामें अण्डाल, धन्वन्तरि एवं श्रीगणेशजीकी मूर्तियाँ हैं।

सक्कोत्तरी—एक दूसरा विनायक-मन्दिर है। इसमें विशालकाय गणेशके दर्शन और पूजाके लिये हजारों भक्त आते हैं।

चिदम्बरम्—तमिळनाडुमें पूजे जानेवाले विनायक ब्रह्मचर्यके अधिष्ठातृ-देवता हैं। भारतदेशके इस भागमें प्रायः सारी गणेश-मूर्तियाँ ब्रह्मचर्यकी पवित्र भावनाकी अभिव्यक्ति हैं। इस नियमके बहुत ही कम अपवाद मिलते हैं। तमिळनाडुमें वल्लभ-विनायकको व्यक्त करनेवाली दक्षिण गोदमें नारीमूर्तिके साथ गणेशकी मूर्ति बहुत ही दुर्लभ है। इस प्रकारकी एक मूर्ति चिदम्बरम्‌में श्रीनटराजमन्दिरमें पायी जाती है। श्रीवल्लभ-गणपति, जो मुख्य शिव-मन्दिरके बहुत समीपमें प्रतिष्ठित हैं, यहाँ अत्यन्त भक्तिभावसे पूजे जाते हैं।

तिरुनारैयूर—चिदम्बरम्‌के समीप तिरुनारैयूरमें श्रीगणेशजीका एक विशेष मन्दिर है। उसमें जिस मूर्तिकी पूजा होती है, उसके विषयमें पुजारियों और भक्तोंमें एक अपूर्व ही कथा प्रचलित है। दसवीं शताब्दीमें नंबि नामका एक कुआँरा ब्राह्मण इस स्थानमें रहता था। बाल्यकालमें वह एकदम निरक्षर था, किंतु वैदिक पाठशालामें वेदाध्ययनके लिये प्रविष्ट हुआ। उस समय उसकी अवस्था नौ वर्षसे अधिक न थी। वह इस विनायक-मन्दिरके पुजारीका इकलौता पुत्र था। माता-पिता उस मन्दिरमें प्रतिदिन सनातन रीति-रिवाजके अनुसार पूजा

और सेवा आदि करते थे। एक दिन उस पुजारीको किसी दूसरी जगह अनुष्ठान आदि कार्यसे जाना पड़ा। उसने अपने पुत्र नंबिके ऊपर उस दिन पूजा करने और गणेशजीसे वरदान माँगनेका कार्य सौंप दिया। नंबि निरा बालक था और विनायक-मन्दिरमें पूजा तथा वैदिकाचारका ज्ञान उसमें पर्याप्त नहीं था। वह मन्दिरमें गया, मूर्तिके सामने खड़ा हो गया और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भूलोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करके पूजा करने लगा। उस बालकके अन्तःकरणमें दयालु प्रभुकी अपूर्व कृपा हुई। उसके मुखसे कुछ श्लोक और वेदमन्त्र उच्चरित होने लगे और उसने अपने ढंगसे देवताके अभिषेक और अर्चनाका अनुष्ठान किया। जब नैवेद्य-निवेदनका समय आया तो उसने एक छोटे-से पात्रमें ओदन भरकर मूर्तिके आगे रखा और पूर्ण भक्तिपूर्वक हृदयसे प्रार्थना करने लगा। विघ्नेश्वर उस ब्रह्मचारीकी मानसिक अवस्थाको स्पष्टतः देख रहे थे। नंबि अपनी सरल भाषामें अपने हृदयके उद्‌गारको व्यक्त करते हुए प्रार्थना करने लगा—'हे मेरे प्रभु विघ्नेश्वर! तुम हमारे प्रभु हो; तुम सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहर्ता हो। तुम्हारे एकान्त भक्त, मेरे पिताने अपनी अनुपस्थितिमें मुझको अपने स्थानमें तुम्हारी सेवामें लगाया है। वे आशा लगाये हैं कि मैं उनके स्थानमें तुम्हारी सेवा-पूजा करके तुम्हें पूर्ण संतुष्ट करूँ। मैं तुम्हारे चरणोंमें शरणापन्न हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम अनुग्रह करके प्रसाद ग्रहण करो और अपने कृपा-कटाक्षसे मुझको कृतार्थ करो। यदि तुम मेरा यह नैवेद्य स्वीकार न करोगे तो मैं तुम्हारी इस चौखटपर अपना सिर फोड़ लूँगा और तुम्हारे सामने इस असार-संसारसे विदा हो जाऊँगा।' भगवान् गणपति उस नौ वर्षके बालककी इस विचित्र प्रार्थनाको सुनकर दंग रह गये। नारैयूरके विघ्नेश्वरने अपनी सूँड़रूपी उस लम्बे पाँचवें हाथको फौरन बढ़ाया और सारे नैवेद्यको उठाकर उस बालक नंबिके देखते-देखते उदरस्थ कर लिया। वह बालक पुजारी आनन्दसे तथा हृदयमें असीम तृप्तिसे देवताके सामने नाचने लगा। पूरे एक घंटेतक आनन्दमग्न रहनेके बाद उसे अपना घर याद आया। बहुत देरसे उसकी माँ घरके द्वारपर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसे बालकके आनेमें देरी अद्भुत और विलक्षण प्रतीत हो रही थी। वह सोच रही थी कि पूजा तो कुछ ही मिनटोंमें समाप्त हो जानी चाहिये। अपने इकलौते बेटेकी वह प्रतीक्षा कर रही थी और घंटेभरसे दोपहरका भोजन बनाकर उसकी राह देख रही थी। वह बालकके इस व्यवहारपर चकित थी। उसको माता-पिताकी सुधि न थी, बल्कि वह एक अदम्य ईश्वरीय शक्तिसे अभिभूत था। नंबि घर पहुँचा और उसने गणपतिदेवके प्राकट्यके विषयमें अपनी माताको अवगत कराया। माता बालककी मानसिक दशाको पिताकी अपेक्षा कहीं अधिक आसानीसे समझ सकती थी। उसने विघ्नेश्वरके उस कृपापात्र बालकको घरमें ले जाकर उसके लिये विशिष्ट भोजन तैयार किया, किंतु उस बालकको उसे ग्रहण करनेकी इच्छा न हुई।

दूसरे दिन पिताके आनेपर माताने उस दिन मन्दिरमें घटित अपूर्व घटनाका वर्णन किया और पिताने पूजाका काम सँभाला। उसने अपने पुत्रको भी साथ लेकर स्वभावतः मन्दिरमें प्रवेश किया। उसने वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करके शास्त्रविधिसे पूजा-अनुष्ठान किया, देवताके सम्मुख नैवेद्य रखा और पिछले दिनके समान उसे ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। विनायक उस वयस्क पुजारीके समक्ष प्रकट न हुए। तब पिताने अपने बालकसे अनुरोध किया कि 'वह पिछले दिनके समान ही नैवेद्य ग्रहण करनेके लिये देवतासे प्रार्थना करे।' बालक देवताके सामने खड़ा हो गया और पूर्ववत् उसने बड़े ही अनुनय-विनयपूर्वक प्रभुसे नैवेद्य-ग्रहणके लिये प्रार्थना की। विघ्नेश्वरको अपने भक्त और प्रिय सेवककी प्रार्थनाके आगे झुकना पड़ा। उन्होंने अपने पाँचवें हाथ—सूँड़के द्वारा एक ही लपेटमें सारे नैवेद्यको ग्रहण कर लिया। इसपर उसका पिता चिल्ला उठा—'नंबि! अब तुम मेरे पुत्र नहीं रहे। अबसे तुम हमारे प्रभु नारैयूरके विघ्नेश्वरके परम प्रिय भक्त और शिष्य हो गये। उन्होंने तुमको अपनी शरणमें ले लिया है। तुमको उनके तत्त्वावधानमें सारे वेद-शास्त्र और दूसरी अध्यात्मविद्याकी शिक्षा ग्रहण करनी है। वे तुम्हारी सारी मनःकामना पूर्ण करेंगे। मेरे कर्तव्यकी इति श्री हो गयी। प्रभुके प्रति तथा जगत्‌के प्रति तुम्हारे कर्तव्यका श्रीगणेश हो गया। तुम्हारी माँ अपने अभ्यासके अनुसार तुम्हारी देख-भाल करती रहेगी।' इतना कहकर पिताने अपने पुत्रको गणेशके सुपुर्द कर दिया।

तमिळ-साहित्यमें इन गणेशजीको 'पोल्लेपिचिआयुर' के नामसे पुकारते हैं। उनकी मूर्ति किसी शिल्पकारके

द्वारा नहीं गढ़ी गयी है। वह एक शुभ मुहूर्तमें पाताललोकसे स्वयं उद्भूत हुई है। अतएव यह एक विटंक-विनायक विग्रह है। बालक नंबि इसी विघ्नेश्वरका शिष्य बना। उसको स्वयं प्रभुने अपने हाथसे ग्रहण किया। तबसे उसका नाम नंबियाण्डार नंबि पड़ा। उस बालकने अपने देव-गुरुसे सम्पूर्ण ज्ञातव्य विषयोंकी शिक्षा ग्रहण की और वह एक महान् भक्त तथा संस्कृत और तामिळका महान् विद्वान् हो गया। शिवभक्तोंकी महिमापर उसने एक काव्यरचना की है।

राजाराज चोल-नृपति कतिपय प्रसिद्ध मन्दिरोंके चट्टानोंपर देवारम्-शिवस्तुतिको उत्कीर्ण देखकर चिदम्बरम् पधारे। उस स्तुतिकी पूर्ण लिपिका उद्धार करनेकी उनकी अभिलाषा हुई। उन्होंने यथासम्भव उसे खोज निकालनेकी चेष्टा की, जो स्वयं प्रभुके द्वारा मानवीय दृष्टिसे अन्तर्हित कर दी गयी थी। वे चिदम्बरम् आये। श्रीनटराजके तीन हजार भक्तोंने मन्दिरकी ओरसे राजाका स्वागत किया और उनको परामर्श दिया कि इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये नंबियाण्डार नंबिके पास जाना चाहिये। चोल-नृपति तिरुनारैयूर गये और उस बालकसे उस दिव्य देवारम्-स्तुतिका अनुसंधान करनेका अनुरोध किया, जो वहाँ मन्दिरमें कहीं लुप्तावस्थामें निहित थी। नंबिने अपने गुरु और प्रभुसे प्रार्थना की। उन्होंने उसको चिदम्बरम्-तहखानेसे स्तोत्रको ढूँढ़ निकालनेका आदेश देकर भेजा, जहाँ वह तीन शिवभक्तों—सम्बन्ध, अप्पर और सुन्दरके द्वारा भोजपत्रमें लपेटकर रखा गया था।

वह तहखाना तीन हजार ब्राह्मणों और चोल-नृपतिकी उपस्थितिमें नंबिके द्वारा खोला गया। प्रेम, भक्ति, प्रार्थना और तत्त्वज्ञानका वह खजाना तहखानेसे निकला। देवारम्-स्तोत्रोंकी संख्या शिवभक्तोंके द्वारा तहखानेमें रखते समय दस लाख थी। भोजपत्रपर लिखित अधिकांश पदोंको दीमक चट कर गये थे।

नंबिके द्वारा उपस्थित किये गये सात सौ पदोंको चोल-नृपतिने अपने अधिकारमें लिया। उन्होंने उसे लेकर एक बड़ी शोभायात्रा निकाली और सर्वत्र घोषित किया कि 'देवारम्-स्तोत्रका गुम खजाना अब हाथ लग गया है।' भोजपत्रमें देवारम्-स्तोत्र एक हाथीके शानदार हौदेके ऊपर स्वर्ण आसनपर रखा गया और नंबियाण्डार नंबि उस ग्रन्थके पास बैठाये गये। दो श्वेत चँवर हाथमें लेकर राजा पीछे बैठे तथा उन सबके ऊपर एक श्वेत छत्र लगाकर एक मन्त्री आसीन हुए। उस शोभायात्राने चिदम्बरम्‌की परिक्रमा की और श्रीनटराजके मन्दिरमें विशेष पूजाका आयोजन किया गया। इस प्रकार देवारम्-स्तोत्रको उसके गुप्त स्थानसे ढूँढ़ने तथा तीन भक्तोंके तमिळ वेदके रूपमें तमिळ-जनताके सामने लानेमें नंबि निमित्तकारण बने।

शियाली—चिदम्बरम्‌से यह स्थान बारह मीलपर है। यहाँका ब्रह्मपुरीश्वर शिव-मन्दिर प्रसिद्ध है। मन्दिरकी परिक्रमामें भगवती पार्वती, श्रीकार्तिकेय तथा श्रीगणेशजी और अन्य देवताओंके श्रीविग्रह हैं।

पिळ्ळैयार पट्टी—कराइकुडिके समीप एक चट्टानको तराशकर विनायक-मन्दिर बनाया गया है। कराइकुडिके समीप एक दूसरा विनायक-मन्दिर है।

तिरुच्चेंगट्टांगुडि—मायावरम्-कराइकुडि लाइनपर मायावरम्‌से पंद्रह मील दूर नन्निलम्‌के पास यह स्थान है। यह अपने विनायक-मन्दिरके कारण बड़ा विख्यात है। यहाँ भगवान् विनायक गजवदन न होकर नरवक्त्र (मनुष्यके मुख)-से ही विराजते हैं। प्रसिद्धि है कि गजमुखासुरका वध इन्हीं विनायकद्वारा हुआ था।

कोट्टाइयूर—कराइकुडिके समीप एक विशेष विनायक हैं, जिनकी बड़ी अभ्यर्थना होती है। सरोवरके निकट एक छायाकार कुंज है। इस सरोवरके पश्चिममें एक खुला प्लेटफार्म (चबूतरा) है, जिसके चारों ओर न दीवार है और न ऊपरसे कोई आच्छादन है। कोई भी भक्त, चाहे वह किसी भी जातिका हो, बिना किसीकी सहायताके सरोवरसे जल लेकर देवताके अभिषेकके लिये इस देवस्थानमें जा सकता है।

तिरुप्पुरंपयम्—यह स्थान कुम्भकोणम्‌से छः मील दूर है। यहाँ एक सरोवरके किनारे दक्षिणामूर्ति तथा गणपतिके मन्दिर हैं। यहाँके गणपतिका नाम 'प्रलयंकर्ता विनायक' है। इन्होंने जगत्‌की प्रलयसे रक्षा की थी, ऐसा कहा जाता है।

तिरुवलम्-चुळि—चोलदेशमें कुम्भकोणम्‌के पास एक छोटा शिवालय है। यह स्थान तिरुवलम्-चुळि कहलाता है; क्योंकि कावेरी इस स्थानको लगभग चारों ओरसे घेरे हुए है। यह मन्दिर अपनी शिल्पकला, पच्चीकारी और चित्रकलाके लिये प्रसिद्ध है। इस मन्दिरके सामनेके मण्डपमें एक विनायकका विग्रह है। इस मूर्तिके विषयमें यह किंवदन्ती है कि जब देवताओंने

अमृत प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरका मन्थनकार्य आरम्भ किया, तब उससे गगनचुम्बी फेन राशि उत्थित हुई। उसी फेनराशिसे यह गणपतिकी मूर्ति निकली थी। इस विग्रहकी रचना विशुद्ध दुग्धफेनसे हुई है। अतएव यहाँ अर्चा करनेवाले विग्रहका अभिषेक शुद्ध उदक या गो-दुग्धसे भी नहीं करते। वहाँ गणपतिकी पूजा-प्रार्थना सुनी जाती है और भक्तोंकी मन:कामना पूर्ण होती है। कुम्भकोणम्-क्षेत्रमें कई गणपति-मन्दिर हैं, जिनके सम्बन्धमें अनेक पौराणिक गाथाएँ प्रचलित हैं। यह क्षेत्र इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमेंसे एक है।

पुदुच्चेरि (पांडिचेरी)—इस स्थानके समुद्रतटपर श्रीगणेशजीका एक मन्दिर है। यह मन्दिर विदेशियोंने बनवाया था। कहा जाता है कि जब इस विनायककी पूजाके लिये भक्त जनताकी भीड़ बढ़ने लगी, तब विदेशी शासकोंने इस मूर्तिको समुद्रमें फेंकवा दिया। दूसरे ही दिन यह मूर्ति उसी स्थानपर स्वत: विराजित हो गयी। इसे देखकर आश्चर्यचकित विदेशी शासकोंने भक्तिपूर्वक यहाँ मन्दिर बनवाया। इन गणेशजीकी अद्भुत महिमाके विषयमें 'भारतियार' ने गाया है।

तंजौर—कुम्भकोणम्से चौबीस मीलपर तंजौर स्टेशन है। बृहदीश्वर-मन्दिर ही यहाँका मुख्य मन्दिर है। इस शिवमन्दिरके पश्चिम गणेशजीका मन्दिर है।

कोडमुडी—ईरोडके निकट कोडमुडीमें एक अति प्राचीन शिवालय है। उसका पूरा नाम है—तिरुप्पाण्डिकोडमुडी। यह शिवमूर्ति मनुष्यके द्वारा विरचित नहीं है, अपितु एक भूमिस्थ पहाड़ीका उच्च शिखर है। इसी कारण भगवान् शंकरका नाम 'कोडमुडी' है। तमिळ भाषामें 'कोडमुडी' पर्वतके उच्च शिखरका पर्याय है। इस मन्दिरमें स्थित विनायककी मूर्तिका नाम 'कावेरीकान्त विनायक' है (अर्थात् वे विनायक, जो कावेरीको भूतलपर लाये)।

त्रिचिनापल्ली—त्रिशीर्षगिरि आधुनिक (तिरुच्चिरापल्ली)-की पहाड़ीपर तीन शिखर दीख पड़ते हैं। उनमें सबसे ऊँची पहाड़ीपर गणपति विराजमान हैं। उनको यहाँ 'उचिप्पिळ्ळैयार' के नामसे पुकारते हैं; क्योंकि वे सर्वोच्च मन्दिरमें आसीन हैं। इस सर्वोच्च देवताका दर्शन करनेके लिये बड़े परिश्रम और कठिनाईसे पूजा करनेवाले ऊपर पहाड़ीपर चढ़ते हैं। उसी मन्दिरमें पहाड़ीकी निम्नतम सतहपर एक नवाविर्भूत विनायक हैं। ये गणेश सीकर-विनायककी अपेक्षा कहीं अधिक लोकप्रिय देवता हैं; क्योंकि द्वार-मण्डपसे वे भक्तोंको आमन्त्रित करते हैं और जब कभी वे उनके पूजास्थलमें जाते हैं, उनपर अपनी कृपावृष्टि करते हैं।

जम्बुकेश्वर—यह स्थान श्रीरंगम्-नगरका एक अंग है। दक्षिणी भारतके पंचतत्त्वलिंगोंमें जम्बुकेश्वर आपोलिंगम् (जलतत्त्व-लिंग) माना जाता है। जम्बुकेश्वर-मन्दिरके प्रांगणके बायीं ओर एक फाटक है। उससे भीतर जानेपर भगवती जगदम्बाका मन्दिर मिलता है। यहाँ अम्बाको 'अखिलाण्डेश्वरी' कहते हैं। यह मन्दिर विशाल है। श्रीजगदम्बाके निज-मन्दिरके ठीक सामने गणेशजीका मन्दिर है। इसमें भगवान् शंकराचार्यद्वारा प्रतिष्ठित श्रीगणेशजीकी मूर्ति है। यह मूर्ति इस ढंगसे स्थापित है कि जगदम्बाके ठीक सामने पड़ती है। अम्बाके निज-मन्दिरमें भगवतीकी भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति तेजोदीप्त है। कहा जाता है, यह मूर्ति पहले इतनी उग्र थी कि इसका दर्शन करनेवाला वहीं प्राण त्याग देता था। आद्य शंकराचार्य जब यहाँ पधारे, तब उन्होंने जगदम्बाके उग्र तेजको शान्त करनेके लिये उनके कानोंमें दो हीरकजटित श्रीयन्त्रके कुण्डल पहना दिये और उनके सम्मुख श्रीगणेशजीकी मूर्ति स्थापित कर दी। पुत्रकी मूर्ति सामने होनेसे जगदम्बाका उग्र तेज वात्सल्यके कारण सौम्य हो गया।

रामेश्वरम्—चार दिशाओंके चार धामोंमें रामेश्वर दक्षिण दिशाका धाम है। द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें भी रामेश्वरकी गणना है। भगवान् श्रीरामने इसकी स्थापना की थी। कहते हैं, भगवान् श्रीराम जब यहाँ पधारे, तब उन्होंने पहले उप्पूरमें श्रीगणेशजीकी प्रतिष्ठा की। फिर रामेश्वरम् जाकर उन्होंने रामेश्वर-स्थापन तथा पूजन किया। रामेश्वर-मन्दिरके दक्षिण श्रीपार्वती-मन्दिरका द्वार है। यहाँ श्रीपार्वतीजीको 'पर्वतवर्द्धिनी' कहते हैं। श्रीपार्वतीजीके मन्दिरकी परिक्रमामें पीछे संतान-गणपति तथा पल्लिकोंड पेरुमाल्के मन्दिर हैं। रामेश्वरसे पाम्बन् जानेवाली सड़कपर रामेश्वरसे लगभग डेढ़ मील दूर 'वन-विनायक'-मन्दिर है। इसमें साक्षी-विनायककी मूर्ति है। रामेश्वरधामकी यात्रा करके चलते समय इनका दर्शन किया जाता है।

मदुरै—हलासीक्षेत्र मदुराइमें मीनाक्षी और सुन्दरेश्वरका एक बहुत बड़ा मन्दिर है। दोनों देवालयोंके प्राकार बहुत लम्बे हैं। इस मन्दिरमें विनायककी दिव्य

प्रतिमाके विषयमें एक कथा प्रचलित है। यह मूर्ति एक छोटी चट्टानसे ढकी एक गहरी गुफासे खोदकर निकाली गयी है। कहते हैं कि यह चट्टान एक बड़ा जलाशय खोदते समय विघ्नके रूपमें उपस्थित हो गयी थी। दक्षिणभारतके महान् मन्दिर-निर्माणकर्ता तिरुमलैनायकने मीनाक्षी और सुन्दरेश्वरके लिये तेप्पकुळम् बनानेके उद्देश्यसे इस स्थानमें एक बड़ा जलाशय खुदवाया था। भक्त श्रमिकोंके एक दलके ऊपर इस कार्यका भार सौंपा गया था और राजा सरोवर खुदवानेके कार्यकी देख-भाल करता था। उसने उस चट्टानको देखा और श्रमिकोंको आदेश दिया कि चट्टानको हटाते समय बहुत सावधानीसे काम लें। धीरे-धीरे और बहुत सावधानीसे वह चट्टान हटायी गयी और उसके नीचे जो गुफा थी, उसमें यह महान् विनायक-विग्रह पूर्णतः दीप्तिमान् अवस्थामें अवस्थित था। नायक राजाने उस वैभवशाली विग्रहको तत्काल केन्द्रीय मन्दिरमें पहुँचाया। उसने अपने इस अभीष्ट देवताकी प्रतिष्ठाका विशेष आयोजन किया।

तिरुप्परंकुण्ड्रम्—यह मदुरासे पाँच मील दक्षिण है। पर्वतको काटकर यहाँ गुफा बनायी गयी है, जिसमें अति विशाल मन्दिर है। यहाँ निज-मन्दिरमें श्रीकार्तिकेयस्वामीकी एक प्रमुख भव्य मूर्ति है। इनके अतिरिक्त महाविष्णु, शिव-पार्वती, श्रीगणेशजी आदिकी मूर्तियाँ भी मन्दिरमें हैं। यहाँ एक ही मण्डपमें एक पंक्तिमें मयूर, नन्दी तथा मूषककी मूर्तियाँ बनी हैं। कहा जाता है, स्वामी कार्तिकेयका विवाह इसी तीर्थमें हुआ था। इस स्थानसे तीन फर्लांगपर 'शरश्रवण' तालाब है। उसे पवित्र तीर्थ माना जाता है। उसके किनारे श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

वंडियूर तेप्पकुळम्—मदुरासे दो मील दूर बैगे (वेगवती) नदीके दक्षिण यह सुविस्तृत सरोवर है। इसी सरोवरसे वह विशाल गणपति-मूर्ति मिली थी, जो मीनाक्षी-मन्दिरसे सुन्दरेश्वर-मन्दिरमें जाते समय द्वारके सामने ही प्रतिष्ठित है।

तिरुप्पेरुन्दुराई—माणिक्कवाचकद्वारा निर्मित यहाँका शिवालय अनेक दृष्टियोंसे निराला है। इस मन्दिरमें विनायक-मूर्तिकी आराधनाका एक विशेष स्थान है। एक लघु मण्डपमें, जो चार स्तम्भोंसे निर्मित है तथा आच्छादनविहीन है, यह अकेली मूर्ति विराजती है। ये 'वेपिल उकाण्डा विनायकर्' नामसे पुकारे जाते हैं, जिसका अर्थ है—वह विनायक, जिसे सूर्यकी धूप प्रिय लगती है। उस मन्दिरके अधिष्ठातृ-देव और देवीके दर्शनके लिये प्रवेश करनेके पूर्व इस विनायककी पूजा करनी पड़ती है।

कुत्तालम्—तेन्काशी स्टेशनसे साढ़े तीन मीलपर कुत्तालम्-प्रपात है। प्रपातसे थोड़ी दूरपर कुत्तालेश्वर शिव-मन्दिर है। मन्दिरकी परिक्रमामें नटराज, श्रीगणेशजी, सुब्रह्मण्यम् आदिके श्रीविग्रह हैं।

तिरुनेल्वेली (तिन्नेवेली)—तेन्काशीसे ४३ मील दूर ताम्रपर्णी नदीके किनारे तिरुनेल्वेली एक अच्छा नगर है। इस नगरका मुख्य मन्दिर नीलप्पुश्वर-मन्दिर है, जिसके एक भागमें शिव-मन्दिर और दूसरे भागमें पार्वती-मन्दिर है। इस मन्दिरके द्वारपर गणेशजीकी मूर्ति है। पार्वतीजीके मन्दिरके उपवनमें दक्षिणामूर्ति, गणेशजी नन्दी तथा सुब्रह्मण्यम्की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

कन्याकुमारी—यह स्थान भारतकी दक्षिणी सीमापर तिन्नेवलीसे साठ मील है। कन्याकुमारीमें, जहाँ अरबसागर, हिंद महासागर तथा बंगालकी खाड़ीके तीनों समुद्रोंका संगम है, यह पवित्र तीर्थ है। समुद्रतटपर जहाँ स्नानका घाट है, वहाँ एक छोटा-सा गणेशजीका मन्दिर घाटसे ऊपर दाहिनी ओर है। लोग गणेशजीका दर्शन करके कुमारीदेवीका दर्शन करने जाते हैं। मन्दिरकी द्वितीय प्राकारके भीतर 'इन्द्रकान्तविनायक' नामक गणपति-मन्दिर है। इन गणेशजीकी स्थापना देवराज इन्द्रने की थी। कई द्वारोंके भीतर जानेपर कुमारीदेवीके दर्शन होते हैं।

शुचीन्द्रम्—यह स्थान कन्याकुमारीसे उत्तर आठ मील दूर स्थित है। गौतमके शापसे इन्द्रको यहीं मुक्ति मिली थी। यहाँ इन्द्र उस शापसे पवित्र हुए, इसलिये इस स्थानका नाम 'शुचीन्द्रम्' पड़ा। शुचीन्द्रम्-मन्दिरमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनोंके अलग-अलग मन्दिर हैं। शिव-मन्दिरमें पार्वती, नटराज, सुब्रह्मण्यम् तथा गणेशजी आदिकी प्रतिमाएँ हैं। यहाँके 'मायागणपति', 'शक्तिविनायक' तथा 'वल्लभ-विनायक'के श्रीविग्रह दर्शनीय हैं।

तिरुवदनाई ताल्लुकाके तोंडी-विनायक, मायावरम्के गणेशत्रय (स्थल-विनायक, अगस्त्य-विनायक और कोढी-विनायक), तिरुक्कदैयूरके अमृतसिद्धि-विनायक, गुडुवाचेरीके सिद्धि-गणपति, नेगापट्टम्के हेरम्ब-गणपति आदि श्रीगणेश-स्थलों एवं मन्दिरोंकी तमिळनाडुमें बड़ी ख्याति है।

~~~०~~~
~~~

आन्ध्र, कर्नाटक तथा केरलके कुछ गणेश-स्थल

(लेखक—श्रीचल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु एवं श्रीमाणिकराव कोहिरकर)

हम्पी—विजयनगर-राज्यकी इस प्राचीन राजधानीको अब 'हम्पी' कहा जाता है। इसका घेरा चौबीस मील है। हम्पीके मध्यमें श्रीविरूपाक्ष-मन्दिर है। यह मन्दिर हॉस्पेटसे नौ मील दूर है। विरूपाक्षके निज-मन्दिरके उत्तरवाले मण्डपमें भुवनेश्वरीदेवीकी प्रतिमा है और उनसे पश्चिम पार्वतीजी विराजती हैं। उनके समीप ही श्रीगणेशजी तथा नवग्रह विराजमान हैं। विरूपाक्ष-मन्दिरसे अग्निकोणमें पास ही ऊँची भूमिपर एक मण्डपमें लगभग बारह हाथ ऊँची बड़े गणेशजीकी मूर्ति है। बड़े गणेशजीसे थोड़ी दूर दक्षिण-पश्चिम एक छोटे मण्डपमें छोटे गणेशजीकी भग्नमूर्ति है। यह स्मरण रखनेकी बात है कि यह हम्पी-नगर दक्षिणके वैभवशाली राज्य विजयनगरकी राजधानी थी। दक्षिणके मुसलमानी राज्योंके सम्मिलित आक्रमणसे यह राज्य ध्वस्त हुआ। आक्रमणकारियोंने उसी समय और पीछे भी यहाँके मन्दिरों तथा मूर्तियोंको नष्ट-भ्रष्ट किया।

कुमारस्वामी—यह सुंडूरसे छः मीलकी दूरीपर पड़ता है। यहाँ पर्वतपर स्वामिकार्तिकेयका भव्य मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके पास हेरम्ब-गणपतिका मन्दिर है। कहा जाता है कि गणेशजी और स्वामिकार्तिकेयमें कुछ विवाद हो गया था। गणेशजीका विवाह पहले हो गया; इससे रुष्ट होकर स्वामिकार्तिकेय कैलास छोड़कर दक्षिण चले आये और यहीं क्रौंचगिरिपर उन्होंने अपना निवास बनाया। पीछे स्वामिकार्तिकेयके स्नेहवश भगवान् शंकर तथा पार्वतीजी भी कैलाससे दक्षिण आकर श्रीशैलपर स्थित हुए।

गोकर्ण—समुद्र-तटपर छोटी पहाड़ियोंके बीचमें गोकर्ण एक छोटा नगर है। यह हुबलीसे सौ मील है। गोकर्णमें भगवान् शंकरका आत्मतत्त्वलिंग है। महाबलेश्वर-मन्दिरमें आत्मतत्त्वलिंगका दर्शन करके गर्भगृहसे बाहर आनेपर सभा-मण्डपमें गणेश तथा पार्वतीकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। महाबलेश्वर-मन्दिरके पास चालीस कदमपर सिद्धगणपतिकी मूर्ति है। इसमें गणेशजीके मस्तकपर रावणद्वारा आघात करनेके चिह्न हैं। इनका दर्शन-पूजन करके ही आत्मतत्त्वलिंगके दर्शन-पूजनकी विधि है। इसकी कथा इस प्रकार है—

कहते हैं कि एक बार रावणने कैलासपर तपस्या करके भगवान् शंकरसे आत्मतत्त्वलिंग प्राप्त किया। रावण जब गोकर्ण-क्षेत्रमें पहुँचा, तब संध्या होनेको आयी। रावणके पास आत्मतत्त्वलिंग होनेसे देवता बड़े चिन्तित थे। उनकी मायासे रावणको शौचादिकी तीव्र आवश्यकता हुई। देवताओंकी प्रार्थनासे गणेशजी वहाँ रावणके पास ब्रह्मचारीके रूपमें उपस्थित हुए। रावणने उन ब्रह्मचारीके हाथमें वह लिंग-विग्रह दे दिया और स्वयं शौचादिसे निवृत्त होनेके लिये चला गया। इधर सहसा मूर्ति भारी हो गयी। ब्रह्मचारी बने गणेशजीने तीन बार नाम लेकर रावणको पुकारा; पर वह नहीं आ पाया और उसके न आनेपर उस ब्रह्मचारीने मूर्तिको पृथ्वीपर रख दिया।

रावण शौचादिसे निवृत्त होकर जब वहाँ आया तो वह बहुत परिश्रम करनेपर भी उस मूर्तिको उठा न सका। खीझकर उसने गणेशजीके मस्तकपर प्रहार किया और निराश होकर लंकाको चला गया। रावणके प्रहारसे व्यथित गणेशजी वहाँसे चालीस कदम जाकर खड़े रह गये। भगवान् शंकरने प्रकट होकर उन्हें आश्वासन दिया और वरदान दिया कि 'तुम्हारा दर्शन किये बिना जो मेरा दर्शन-पूजन करेगा, उसे उसका पुण्यफल नहीं प्राप्त होगा।' गोकर्णके 'पट्टविनायक' और 'केतकी-विनायक' भी दर्शनीय हैं।

रेजंतल—यह स्थान जहिराबाद रोड (बीदर)-के पास है। यहाँका गणेश-मन्दिर पर्वतकी गोदमें स्थित है। ये शिवप्रभु महागणपति अद्भुत चमत्कारी हैं। कहते हैं, शक-संवत् १७२३ पौष शुक्लकी विनायकीचतुर्थीके दिन गणेशभक्त श्रीशिवराम महाराज चिंतलगिरिने पूजाके समय 'जय सिद्धविनायक' कहकर भूमिपर हाथ रखा। तत्काल श्रीशिवप्रभु महागणपतिकी मूर्ति भूमिसे साकार प्रकट हो गयी। पश्चात् महाराजने यथाविधि उसकी पूजा की। तभीसे इसकी बड़ी मान्यता है।

अइनविल्लि—प्रसिद्ध शैवक्षेत्र मुक्तीश्वरम्से एक किलोमीटरपर अइनविल्लिमें गणपति-क्षेत्र तथा तीन किलोमीटरपर भगवान् षण्मुखका क्षेत्र है। अइनविल्लिमें स्थित गणपति बड़े प्रसिद्ध तथा प्रत्यक्ष फलदायक हैं।

(फ्रेंच) यानाम्—गोदावरी-तटपर स्थित यहाँका गणपति-मन्दिर प्रसिद्ध है। यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। यहाँके गणपति भी प्रत्यक्ष फलदायक कहे जाते हैं। साठ वर्ष पूर्व एक साधुने इस गणपति-मन्दिरमें रहकर सैकड़ों रोगियोंको आरोग्य-दान दिया था।

भद्राचलम्—राजमहेन्द्रीसे भद्राचलम् लगभग अस्सी मील है। गोदावरीके किनारे भगवान् श्रीरामका यह प्राचीन मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त अन्य मन्दिरोंमें हनुमान्, गणेश आदि देवता प्रतिष्ठित हैं।

विजयवाड़ा—राजमहेन्द्रीसे तिरानबे मीलपर बैजवाड़ा (विजयवाड़ा) एक प्रसिद्ध नगर है। विजयवाड़ामें एक पर्वतपर पुराना जीर्ण-शीर्ण किला है। उसमें चट्टान काटकर कई बौद्धगुफाएँ बनी हैं। विजयवाड़ा नगरके पूर्वोत्तर बड़ी पहाड़ीके पादमूलमें एक छोटी गुफामें श्रीगणेशजीकी मूर्ति है।

कुरूडमडे (कर्नाटक)—मन्दिरका महाद्वार, प्राकार तथा मुखमण्डप विजयनगर-कालका है। मन्दिरमें हरे संगमरमरकी श्रीसुब्रह्मण्यम्की मूर्ति है। मन्दिरके गर्भगृहमें महागणपतिकी हरे संगमरमरकी मूर्ति है। इसकी कारीगरी प्रमाणबद्ध एवं सुन्दर है। मूर्तिके आगे एक बड़ा चूहा है।

इडगुंजी (कर्नाटक)—यहाँके पंचखाद्यप्रिय महागणपतिकी मूर्ति द्विहस्त तथा सर्पालंकारभूषित है। ये गणेशजी बाल ब्रह्मचारी हैं।

कोक्कड (कर्नाटक)—कोक्कड-गाँवमें एक मैदानमें एक पेड़के नीचे ये गणेशजी हैं। यहाँके चरवाहे इन गणेशजीको ककड़ीका नैवेद्य चढ़ाते हैं। इनका कोई मन्दिर नहीं बना; क्योंकि गणेशजीने सपनेमें आकर मन्दिर बनानेके लिये मना कर दिया था।

मंगलूर (कर्नाटक)—यहाँके 'शरऊ-गणपति' कर्नाटक एवं केरल राज्योंमें जाग्रत्-देवताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इस मूर्तिकी स्थापना एक तान्त्रिकने की थी। यहाँकी विशेष बात यह है कि यहाँपर कुटुम्बीलोग ही गण-हवन करने आते हैं। गणेश-चतुर्थीको यहाँ एक हजार नारियल फोड़े जाते हैं।

कासरागोड—केरलमें मद्रास-मंगलोर रेलवे लाइनपर कासरागोड स्टेशन है। यह स्थान पयस्विनी नदीपर है। श्रीसमर्थ स्वामी रामदास, पुरन्दरदास आदि संत इस स्थानपर आये और रहे थे। इस स्थानके पास ही माधुरेनामक स्थानपर श्रीमहागणपति-मन्दिर है। कहते हैं, यह प्रतिमा स्वयं उद्भूत है। एक बार एक हरिजन-स्त्री घासके मैदानमें घास काट रही थी। अचानक उसका हँसिया प्रतिमासे जा टकराया। उस समय गणपतिकी प्रतिमा ३×१$\frac{१}{२}$ इंच बाहर निकली हुई थी। हँसिया लगनेसे, कहते हैं कि उनके अंगसे रक्त बहने लगा। स्त्री अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गयी और उसने अन्य लोगोंको बुलाया। लोगोंने इसी समय वहाँपर भगवान्का गर्भगृह बना दिया और पूजा प्रारम्भ हो गयी। यह घटना आठ सौ वर्ष पुरानी कही जाती है। तबसे मूर्ति लगातार बढ़ती जाती है। अब वह १०×४$\frac{१}{२}$ इंचकी हो गयी है तथा उसने प्रायः समूचे गर्भ-गृहको ढक लिया है।

कर्नाटकमें कुमढ़ाके लवणेश-गणपति, अग्निहोत्र-गणपति और चिंतामणि-गणपति, शिशीके महागणपति, सिद्धापुरके सिद्ध-गणपति और मधुरैके मदनेश्वर-सिद्धि-विनायकका दर्शन भक्तोंको करना चाहिये। कर्नाटक-प्रदेशके श्रीक्षेत्र धर्मस्थल, मुंडाजे, कारकल, सेडी, कुणीगल, हलेविद, कडलेकालु, बेलूर, मुत्तुर, शिरानी, अणेगड्डे, गिब्बलगुड्डे, कोडसाद्री, तंबट्ढे, गिरकेमठ, लंबापुर, उरकेरी, हालनगद्दे, अग्रहार, बनवासी, शृंगेरी आदि स्थानोंके श्रीगणेश-मन्दिर एवं विग्रह दर्शनीय हैं। भक्तोंको आन्ध्रप्रदेशके द्राक्षाराम तथा आरासवल्लीलाकी गणपति प्रतिमाओंका भी दर्शन करना चाहिये।

गुजरातके गणेश-स्थल

गुजरातमें भगवान् गणेशजीकी बड़ी मान्यता है। गुजरातके कुछ गणेश-मन्दिरोंका विवरण श्रीअरविन्द नर्मदाशंकरजी शास्त्री, श्रीहिम्मतलाल मूलशंकर काव्यशास्त्री और श्रीनर्मदाशंकर त्र्यम्बकराम भट्टद्वारा प्रेषित विवरण एवं अन्य सूत्रोंके आधारपर दिया जा रहा है।

मोढेरा—बेचराजीसे मोढेरा १८ मील दूर है। श्रीमातंगीदेवी यहाँका मुख्य देवस्थान है। यहीं श्रीगणेशजीका उप-मन्दिर है। मोढेरा गाँवके दक्षिण श्रीगणेशजीका एक मन्दिर और है। इसमें सिद्धि और बुद्धि नामक पत्नियोंके साथ श्रीगणेशजीकी मूर्ति है।

सोमनाथ—यह सौराष्ट्रका प्रमुख स्थान है और भगवान् शंकरके द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें सोमनाथ-लिंग यहीं है। प्राचीन सोमनाथ-मन्दिरके पास श्रीअहल्याबाईद्वारा निर्मित एक अन्य सोमनाथ-मन्दिर भी है, जहाँ सोमनाथ-लिंग भूमिके नीचे है। मन्दिरके घेरेमें ही श्रीगणेशजीका भी मन्दिर है। इसके अतिरिक्त नगरमें भी भगवान् श्रीगणेशका एक मन्दिर है। सोमनाथ-नगरके पास भालकतीर्थ एक स्थान है। यहाँ मोक्षपीपल है। कहते हैं, यहाँ पीपलके नीचे बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णके चरणमें जरा नामक व्याधने बाण मारा था। चरणोंमें लगा हुआ बाण निकालकर भालकुण्डमें फेंका गया। भालकुण्डके पास ही दुर्गकोटि-गणेशजीका मन्दिर है।

जूनागढ़—सौराष्ट्रके इस प्रसिद्ध नगरमें ही भक्त श्रीनरसीमेहताका घर था। नगरमें रेवतीकुण्डसे आगे मुचुकुन्द-महादेव तथा भवनाथ-महादेव हैं। मुचुकुन्द-महादेवकी स्थापना राजा मुचुकुन्दने की थी। उस मन्दिरकी परिक्रमामें श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

सायर—यह स्थान नर्मदाके उत्तरतटपर फतेपुरसे चार मीलपर है। यहाँ सागरेश्वर-मन्दिर है। गाँवमें कपर्दीश्वर-मन्दिर है, जिसे नारेश्वर भी कहते हैं। यहाँ श्रीगणेशजीने तप किया था।

सूरत—सूरतमें अम्बादेवीका विशाल मन्दिर है। इसमें जो देवी-मूर्ति है, वह एक स्वप्नादेशके अनुसार चार सौ वर्ष पहले अहमदाबादसे सूरत लायी गयी थी। देवीके दाहिने श्रीगणेशजी और शंकरजी तथा बायीं ओर बहुचरादेवीकी मूर्ति है।

बड़ोदा—यहाँ कई गणेश-मन्दिर हैं। सावरकर गणेश-मन्दिरकी मूर्ति मांदारकी है। श्रीढुण्ढिराज-गणपतिका मन्दिर शिल्पकला तथा वैभवकी दृष्टिसे बड़ा विख्यात है एवं श्रीविग्रह बहुत भव्य है। नीलकण्ठेश्वर-गणपतिकी रचना भी कलापूर्ण है। सिद्धनाथ-गणपतिके मन्दिर-निर्माणकी विशेषता यह है कि जब भगवान् सूर्य उत्तरायणसे दक्षिणायन और दक्षिणायनसे उत्तरायण जाते समय भूमध्यरेखापर अवस्थित होते हैं, तब उनकी किरणें मूर्तिपर पड़ती हैं। बड़ोदा शहरमें अन्य कई छोटे-छोटे मन्दिर हैं।

गणेश-वट सीसोदरा—यह नवसारी शहरके पास है। यहाँ बड़े-बड़े वटवृक्षके झुण्ड हैं और उनके बीचमें यह एक पक्का बना हुआ मन्दिर है। श्रीगणेशजीकी मूर्ति एक फुट ऊँची है। इसकी सूँड़ बायीं ओर मुड़ी है। आगेके थोड़े भागमें जलहरीके साथ महादेव हैं। गणेशजीकी मूर्तिके पास पार्वतीमाताकी एक प्रतिमा है। इस मन्दिरके आगेके भागमें यहाँ जमीनमें एक पट्ट गड़ा हुआ है, जिससे इसके ऐतिहासिक महत्त्वका पता चलता है।

बलसाड—इस नगरमें एक भव्य गणपति-मन्दिर है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है, जिसका जीर्णोद्धार विपुल धनराशि लगाकर हालमें ही कराया गया है। यहाँ दाहिनी सूँड़वाली गणेशमूर्ति चमत्कारिक तथा सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

खम्भात—यहाँ श्रीगणेशजीका स्वतन्त्र मन्दिर ब्राह्मणवाड़ामें है, जहाँ श्रीगणेशजीकी मनुष्यके कदकी भव्य प्रतिमा विराजित है। इसके चार हाथोंमें चार फणवाले सर्प हैं इसमें सर्पका यज्ञोपवीत भी है। यह मूर्ति बहुत प्राचीन है।

ध्रांगध्रा—यहाँकी सात फीट ऊँची एकदन्त-मूर्ति एक अखण्ड पत्थरमें उत्कीर्ण है। मन्दिर जोगसर-तालाबके एक किनारेपर है। दूसरे किनारेपर अन्य मन्दिर भी हैं।

गोरज—यहाँके सिद्धि-विनायककी मूर्ति चतुर्भुज है। यह मन्दिर पहलेसे ही एक शमीके पेड़के नीचे है।

अहमदाबाद—भद्रमें यह मन्दिर पेशवाओंके समयका बना हुआ है। भगवान् गणेशकी मूर्ति सिन्दूरी रंगकी है। इसकी सूँड़ दाहिनी ओर है।

धोलका—यहाँ गणेशजीका एक प्राचीन एवं

विशाल मन्दिर है। यहाँ गणेशजीकी प्रतिमाके समक्ष अखण्ड दीपक सदैव जलता रहता है।

बलाला—यहाँके मन्दिरकी गणेश-प्रतिमा कुआँ खोदते समय मिली थी। बादमें लिंबडी-नरेशने एक भव्य मन्दिर बनवा दिया।

रामकुण्ड—तापी-नदीके किनारे गणेशजीका मन्दिर है। ऐसा कहा जाता है कि कभी ताड़का वधके बाद भगवान् श्रीरामने यहाँ आकर इनका पूजन किया था।

सेजकपुर—इस ऐतिहासिक ग्राममें पुरातन सभ्यता तथा संस्कृतिके भग्नावशेष हैं, जिसकी खुदाई करते समय विशाल मूर्तियुक्त एक गणेश-मन्दिर भी प्राप्त हुआ है।

~~~o~~~

मध्यप्रदेशके गणेश-स्थल

मध्यप्रदेशकी आस्तिक जनताकी गणेशजीमें बड़ी आस्था है। स्थान-स्थानपर श्रीगणेशके दर्शनीय स्थल हैं। पं० श्रीनाथूशंकरजी शुक्ल, श्रीमोहरेजी, श्रीनारायणाश्रम-स्वामीजी आदिसे प्राप्त विवरण तथा अन्य सूत्रोंके आधारपर यहाँके गणेश-स्थानोंकी अल्प झलक प्रस्तुत की जा रही है।

खोड़—शिवपुरीके पास खोड़ग्राममें धाय-महादेवका प्रसिद्ध मन्दिर है। यह मूर्ति एक धाय-वृक्षके नीचे भूमिमें पायी गयी थी, इसीसे इन्हें 'धाय-महादेव' कहते हैं। इस मन्दिरका स्थान तीन ओर उमंग नदीसे घिरा हुआ है। मुख्य मन्दिरके सामने गणेशजीकी मूर्ति है।

उज्जैन—द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें अत्यन्त प्रसिद्ध महाकाललिंग यहीं है और महाकालका मन्दिर ही उज्जैनका प्रधान मन्दिर है। महाकालेश्वरकी विशाल लिंग-मूर्तिके एक ओर गणेशजी हैं, दूसरी ओर पार्वती और तीसरी ओर स्वामिकार्तिक। महाकाल-मन्दिरके पास ही बड़े गणेशका मन्दिर है। यह मूर्ति यद्यपि है तो आधुनिक, किंतु बहुत बड़ी और अत्यन्त सुन्दर है। यहाँके षट्-विनायकके मन्दिर इस प्रकार स्थित हैं—१-मोदविनायक—महाकालेश्वरके मन्दिरमें कोटितीर्थपर इमलीके नीचे। २-प्रमोदविनायक (लड्डूविनायक)—विराट् हनुमान्‌के पास रामघाटपर। ३-सुमुखविनायक (स्थिरविनायक या थल-महागणपति)—गढ़कालिकाके मन्दिरके पीछे। ४-दुर्मुखविनायक—मंगलनाथकी सड़कपर खाकयोके अखाड़ेके पीछे अंकपाद (चित्रगुप्तमार्ग)-की सड़कके पास। ५-अविघ्न विनायक—खाकयोके अखाड़ेके सामने है, तथा ६-विघ्नविनायक-(विघ्नकर्ता-) चिन्तामणि गणेश-मन्दिर स्टेशनके पास बहुत प्रसिद्ध है। इन षट्-विनायकोंके पूजन आदिका बड़ा महत्त्व है।

यहाँ एक गणेश-तीर्थ भी है, जो पूजाभिषेकके लिये रामभ्राता श्रीलक्ष्मणजीद्वारा स्थापित किया गया माना जाता है। उज्जैनमें और भी कई गणेश-मन्दिर हैं।

चिन्तामनगणपति—यह स्थान उज्जैनसे चार किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। यहाँ गणेशजीका पुराना मन्दिर है, जो अहिल्याबाई होल्करद्वारा निर्मित है। यहाँपर चैत्र महीनेके हर बुधवारको यात्रा लगती है।

नवगढ़—(गोडवानी)—श्रीतात्याजी विश्वम्भरपंत मोहरेजीने इस मन्दिरका निर्माण करवाया। यह मन्दिर बहुत पुराना है। इसमें श्रीगणेशजीकी एक बड़ी भव्य सिद्धिदायक मूर्ति है। इसी मन्दिरमें एक किनारेपर श्रीकृष्ण-राधा-रुक्मिणीकी तथा अन्य देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिरके सामने एक बड़ा शमी-वृक्ष है, जिसकी पत्तियाँ गणेशजीकी पूजाके काममें आती हैं।

अमरकण्टक—शोण-नर्मदाके उद्गमस्थल अमर-कण्टकके गहन वनमें महर्षि भृगुका आश्रम है। यहाँ सिद्धविनायककी भव्य द्विभुज मूर्ति है। इनके दाहिने-बायें ऋद्धि-सिद्धि अवस्थित हैं। मूर्ति सजीव-जैसी लगती है।

ओंकारेश्वर—अजमेर-खण्डवा-लाइनपर ओंकारेश्वर रोड स्टेशन है। द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें ओंकारेश्वरकी भी गणना है। श्रीओंकारेश्वरकी मूर्ति अनगढ़ है। यह मूर्ति मन्दिरके ठीक शिखरके नीचे न होकर एक ओर हटकर है। मूर्तिके चारों ओर जल भरा रहता है। पासमें ही पार्वतीजीकी मूर्ति है। मन्दिरके हातेमें पंचमुख गणेशजीकी मूर्ति है।

पगारा—माण्डवगढ़से नर्मदा-प्रवाहके ऊपरकी
~~~

ओर दस मील दूर यह स्थान है। यहाँ वक्रतुण्ड गणेशजीका मन्दिर है।

राजघाट—चिखलदाके सामने नर्मदाके दक्षिण तटपर बड़वानी नगरसे यह स्थान तीन मील दूर है। यहाँ अनेकों मन्दिर हैं, जिनमें भगवान् गणपतिका मन्दिर मुख्य और भव्य है।

लोणार—मेहकरसे लोणार पंद्रह मील दूर है। यहाँ हाथीकी सूँड़के समान एक प्रपात एक कुण्डमें गिरता है। इस पवित्र कुण्डमें उतरनेके लिये सीढ़ियाँ बनी हैं। पासमें ही गणेशजी तथा अन्य देवी-देवताओंके बड़े दर्शनीय मन्दिर हैं।

इन्दौर—यहाँ बारह फीट ऊँची विशाल गणेशमूर्ति है। तल रंगसे रँगी मूर्ति बड़ी सुन्दर लगती है।

निष्कलंकेश्वर गणेश—उज्जैनके पास निष्कलंकेश्वर महादेवके मन्दिरके प्रवेशद्वारमें ही यह गणेशमूर्ति है।

~~○~~

राजस्थानके श्रीगणेश-क्षेत्र

राजस्थान जिस प्रकार अपनी वीरताके लिये प्रसिद्ध रहा है, वैसे ही प्रसिद्ध है अपनी सुदृढ़ धर्मनिष्ठा एवं भक्ति-भावनाके लिये भी। राजस्थानकी आस्तिक जनताका मस्तक भगवान् श्रीगणेशके चरणोंमें सदा ही नत है। श्रीगणेशका राजस्थानी-साहित्यमें स्मरण एवं राजस्थानी भूमिपर गणेश-मन्दिरोंकी अवस्थिति इसके प्रबल प्रमाण हैं। अनेक सहयोगियोंके द्वारा प्राप्त विवरणके आधारपर आगे इन मन्दिरोंका यत्किंचित् वर्णन किया जा रहा है।

जोधपुर—शहरमें गणपतिके मन्दिर, मूर्तियाँ स्थान-स्थानपर दर्शनीय हैं। चाँदपोल दरवाजेके बाहर दरवाजेके सम्मुख रामेश्वरके मन्दिरकी मूर्ति दर्शनीय है। सनावड़ा-गणेशजीकी मूर्ति इतनी स्पष्टरूपसे अंकित नहीं है, परंतु प्रत्येक बुधवारको दर्शनार्थियोंकी भीड़ यहाँ रहती है। सोजतियाँ गेटकी छतरीपर हर समय दर्शनार्थियोंकी भीड़ रहती है।

पिचियाक (जोधपुर)—बिलाड़ा नगरके उत्तरकी ओर स्थित यह ग्राम एक अति प्राचीन एवं ऐतिहासिक स्थान है। इस ग्रामके दक्षिण दिशामें राजा बलिका मन्दिर और गजानन्दजीके स्थान दर्शनीय हैं। इस स्थानपर गणेशजीका एक प्राचीन देवालय था, जिसके अवशेषरूपी पत्थर ग्रामके आसपास यत्र-तत्र बिखरे दीख पड़ते हैं। इस स्थानके गणेशजी बड़े चमत्कारी एवं फलदाता माने जाते हैं तथा प्राय: रात्रि-जागरणका भी यहाँ आयोजन होता है। इस स्थानके आसपास बिखरे हुए गणेशजीके देवालयकी छोटी-बड़ी कई प्राचीन भव्य प्रतिमाएँ पिचियाक ग्रामके अन्य स्थानोंपर रखी हुई हैं। इन प्रतिमाओंमेंसे एक बड़ी सुन्दर प्रतिमा इसी ग्रामके पासवाले जसवंतसागर-नामक बाँध (झील)-में खोदे गये 'खारोलोंका लाम्बड़ो' नामक अरहठपर रखी हुई है। सम्भव है, गणेशजीकी प्राचीन प्रतिमाएँ अन्य स्थानोंपर भी रखी हुई हों।

घटियाला—जोधपुरके पास इस जगहपर एक प्राचीन पाषाण-स्तम्भ है, जिसपर गणेश-स्तुतिका लेख उत्कीर्ण है। इसका समय सन् ८६२ ई० है। स्तम्भके शिखरपर चार गणेश चार दिशाओंकी ओर मुँह किये पीठ-से-पीठ सटाकर बैठे हुए हैं।

रायपुर (पाली)—यहाँ गणेशजी महाराजका एक प्राचीन मन्दिर है। गणेशजीकी मूर्ति चमत्कारी होनेसे हजारों नर-नारी यहाँ दर्शनार्थ आते हैं। गणेशजीके मन्दिरके सामने ही एक गणेश-तालाब है। यहाँ प्रतिवर्ष भाद्र-शुक्ल चौथको गणेशजीकी जयन्ती धूमधामसे मनायी जाती है।

जयपुर—यहाँकी मोती डूँगरीकी मूर्ति दर्शनीय है। यहाँ भी प्रति बुधवारको दर्शनार्थियोंकी भीड़ रहती है। यहाँकी पुरानी राजधानी आमेरके मन्दिरोंमें स्थित गणपतिकी मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। गलता-तीर्थके शिव-मन्दिरोंमें भी गणपतिकी मूर्तियाँ देखनेयोग्य हैं। यहाँके विश्वेश्वर-मन्दिरमें एक अत्यन्त प्रसिद्ध गणेश-प्रतिमा है।

सिद्धगणेश—सवाई-माधोपुर स्टेशनसे पाँच मील दूर एक पर्वतशिखरपर सिद्धगणेशका मन्दिर है। कहा

जाता है कि ये गणेशजी मेवाड़के इतिहास-प्रसिद्ध राणा हम्मीरके आराध्यदेव थे।

चौथका बरवाड़ा—सवाई-माधोपुरके बीच इस स्थानसे कुछ दूर पहाड़पर चौथमाताजीका मन्दिर है। वहाँ एक गणेश-मूर्ति है, जिसके आगे विगत कई वर्षोंसे एक अखण्डज्योति जल रही है।

बरुँधन (बूँदी)—आमथूँण-ग्रामके श्रीपंचांग साहको इसका स्वप्नादेश हुआ। साथ ही कुछ चमत्कार भी हुए। अतः उन्होंने बरुँधनमें गणेशजीका मन्दिर बनवा दिया। इसमें उपस्थित गणेशजीके पूजनसे अन्य भक्तोंकी भी कामनाएँ पूर्ण हुईं, अतः क्रमशः जन-सहयोगसे मन्दिरका विस्तार होता गया। मन्दिरके पास एक कुण्ड भी है। इस क्षेत्रका यह प्रसिद्ध मन्दिर है।

रणथम्भौर—सवाई-माधोपुर स्टेशनसे दक्षिण-पूर्वकी ओर गिरि-शृंखलाओंसे घिरा भारतीय इतिहासमें सुप्रसिद्ध वीर हम्मीरका रणथम्भौर-दुर्ग पर्वतके ऊपर बना हुआ है। यहाँ लाखों निवासियोंके आराध्य 'सिद्धिदाता भगवान् गजानन'का सुप्रसिद्ध तीर्थ है। मुसलमानोंके बहुत दिनोंतक अधिकारमें रहनेके कारण प्राचीन मन्दिर तो नष्ट कर दिया गया, पर भगवान् गजाननके श्रीविग्रहकी केवल सूँड़मात्र ही पूर्णरूपसे अक्षुण्ण है। दोनों ओर ऋद्धि-सिद्धिकी परम मनोरम प्रतिमाएँ हाथोंमें चँवर लिये शोभित हैं। यह स्थान गणपतिका सिद्धपीठ है। मन्दिर आधुनिक है पर बड़ा ही भव्य एवं दर्शनीय है। यहाँ सभी प्रकारके मंगल-अनुष्ठान और मनः-कामनाएँ सिद्ध होती हैं। राजस्थानकी प्राचीन खयालों, वार्ताओं, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंमें विक्रमकी छठीं शताब्दीसे ही अनेक स्थानोंपर इनका भव्य वर्णन मिलता है। आषाढ़ और कार्तिक-मासोंमें खेतोंकी बुवाईके पूर्व यहाँका कृषकवर्ग गणपति-नौतन (निमन्त्रण देने)-के लिये सहस्रोंकी संख्यामें नित्य आता है। विवाह-शादियोंके समय तो गणेशजीको नौतनेवालोंका ताँता ही लगा रहता है।

श्रीकेशवराय पाटण—यह स्थान कोटा-जंकशनसे पाँच मील दूर है। यहाँ चर्मण्वती (चम्बल) नदीमें विष्णुतीर्थ है। उसके तटपर भगवान् श्रीकेशवरायकी चतुर्भुज मूर्तिका मुख्य पीठ स्थित है। मुख्य मन्दिरके चारों ओर मण्डपमें कई देवताओंके मन्दिर हैं; उनमेंसे एक मन्दिर गणेशजीका भी है।

उदयपुर—घाटेश्वर-मन्दिरके बाहर तोरण-सदृश दो खंभोंपर गणेशजी एवं नारदजीके मन्दिर हैं। ये मन्दिर मेवाड़की उत्कृष्ट शिल्पकृतिके नमूने हैं।

चित्तौड़गढ़—गणेशपोलके पासकी एवं प्रत्येक द्वारपर अंकित गणपतिकी मूर्तियाँ दर्शकके मनको अकस्मात् मोह लेती हैं। जिस भूमिपर बार-बार सतियोंने अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये जीते-जी आगमें जलकर अपनी कंचन-सी कमनीय कायाको भस्मकर अपने नामको अमर कर दिया, वहाँ भी मंगलदाता गजाननकी कई मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। उदयपुर शहरमें गणेशघाटीकी गणेशमूर्तियाँ एवं किलेके दरवाजोंपर अंकित मूर्तियाँ भी दर्शनीय हैं। शिव-मन्दिरोंमें भी गणपतिकी छोटी-बड़ी मूर्तियाँ देखनेयोग्य हैं।

एकलिंगजी—उदयपुरसे नाथद्वारा जाते समय मार्गमें हल्दीघाटी और एकलिंगजीका स्थान आता है। एकलिंगजीका मन्दिर विशाल है। ये मेवाड़के राजाओंके आराध्यदेव हैं। मन्दिरसे थोड़ी ही दूरपर इन्द्रसागर नामक स्थान है। सरोवरके पास गणेशजीका एक मन्दिर है।

गोगुन्दा (उदयपुर)—यहाँसे दो मीलकी दूरीपर गणेशजीका विग्रह स्थित है। यह मन्दिर बड़ा ही सुन्दर है। यहाँपर वर्षमें एक बार गणेशचतुर्थीपर विशाल मेला आयोजित किया जाता है।

सोहागपुर—इसके पास ही भग्नावस्थामें एक शिव-मन्दिर है। मन्दिरके सभामण्डपके ऊपरी भाग (Bracket)-पर उत्कीर्ण नृत्य करती हुई गणेश-मूर्ति है। इस मूर्तिके छः हाथ हैं।

शंकरगढ़—यहाँ अनेक मन्दिर हैं, जिनमें एक जगह नृत्यमुद्रामें एक षड्भुजी गणेशमूर्ति है।

जालोर—जालोर-दुर्गकी गणपतिकी मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। मकरानेके पत्थरपर बनी हुई मूर्तियाँ देखकर मन-मयूर नाच उठता है। प्राचीन कालकी स्थापत्य-कलाका सुन्दर रूप यहाँके किलेमें दृष्टिगोचर होता है।

नागौर—लगभग सातवीं शताब्दीमें बने नागौरके दुर्गमें गणपतिकी विशाल मूर्ति दर्शनीय है। यद्यपि पूर्ण देखभालके अभावमें किलेकी मूर्तिका दृश्य इतना मनोरम नहीं रह गया है, तथापि यहाँ प्राचीन कालकी पूजाका स्वरूप अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

भीलवाड़ा—यहाँ श्रीमूलचन्द्र घीयाद्वारा निर्मित श्रीसिद्ध-गणेश-मन्दिरके विग्रह विशेष दर्शनीय हैं।

इसी प्रकार अलवर, कोटा, सिरोही, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, प्रतापगढ़, बीकानेर, पुष्कर, अजमेर आदि स्थानोंपर भी भगवान् गणेशके स्वतन्त्र मन्दिर हैं और कहीं वे श्रीराम-मन्दिर अथवा श्रीशिव-मन्दिरके अंगरूपमें भी विराजित हैं। राजस्थानियोंके मध्य (चाहे वे सनातनी हों अथवा जैनी) श्रीगणेशकी बड़ी मान्यता है।

~~०~~

पंजाब-काश्मीरके गणेश-स्थल

पटियाला (पंजाब)—श्रीनैनादेवीजी, श्रीगौरीदेवीजी, श्रीसत्यनारायणजी आदिके मन्दिरोंमें श्रीगणेशकी सुन्दर मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

अचलेश्वर—अमृतसर-पठानकोट लाइनमें बटाला स्टेशनसे चार मीलपर यह स्थान है। यह स्थान भगवान् श्रीगणेशकी लीलास्थली रह चुकी है। मन्दिरके समीप एक सुविस्तृत सरोवर है। यहाँ मुख्य मन्दिरमें शिवलिंग तथा स्वामिकार्तिककी मूर्ति है। उत्तर भारतमें स्वामिकार्तिकका यह एक ही मन्दिर है। कहा जाता है कि एक बार पारस्परिक श्रेष्ठताको लेकर गणेशजी तथा स्वामिकार्तिकमें विवाद हो गया। भगवान् शंकरने इन लोगोंसे पृथ्वी-प्रदक्षिणा करके श्रेष्ठताका निर्णय कर लेनेका निर्देश दिया। इसपर गणेशजीने माता-पिताकी ही परिक्रमा कर ली और वे ही विजयी माने गये। पृथ्वी-परिक्रमाको निकले स्वामिकार्तिकको मार्गमें जब यह समाचार मिला तो उन्होंने अपनी आगेकी यात्रा व्यर्थ समझी और वे वहीं अचलरूपमें समाधिमें स्थित हो गये। पीछे भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ वहीं उनसे मिलने आये।

बैजनाथ (काँगड़ा)—बैजनाथके षड्भुज-गणेश यहाँके प्रसिद्ध एक शिव-मन्दिरमें अवस्थित हैं। इनके हाथोंमें वे ही आयुध हैं, जिनका वर्णन श्रीज्ञानदेवने अपने ग्रन्थ भावार्थ-दीपिकामें किया है।

गणेशबल (काश्मीर)—यहाँ गणेशजीके रूपमें पूजित एक विशाल स्वयम्भू-शिला है।

हरिपर्वत—यह स्थान श्रीनगर (काश्मीर)-के पास है। यहाँ गणपतिका विग्रह एक टीलेके नीचे है। इनका नाम 'भीमस्वामी' है। इसमें गणेशजीका मस्तक स्पष्ट दीखता है।

गणेशघाटी—यहाँ एक अति प्रसिद्ध स्वयम्भू-गणेशमूर्ति है। यहाँ प्रकृतिके प्रभावसे एक चट्टानका आकार गणेशजी-जैसा हो गया है, जिसमें उनकी सूँड़ लटकी दीखती है।

अमरनाथ—यहाँ जो बर्फके लिंग बनते हैं, उनमें एकको 'पार्वती' एवं दूसरेको 'गणेश' कहा जाता है।

~~०~~

नेपालके गणेश-स्थल

जनकपुर—जनकपुरमें विशेष प्रख्यात दो मन्दिर हैं। एक टीकमगढ़की रानीका बनवाया हुआ जानकीजीका नौलखा-मन्दिर तथा दूसरा नेपाल-नरेशका बनवाया हुआ स्वर्ण-शिखरवाला राम-मन्दिर। इसी राम-मन्दिरके घेरेमें गणेशजीकी भी सिद्ध प्रतिमा है।

फुलहर—जनकपुरसे दस मील दक्षिण यह स्थान है। जहाँ जानकी-रामका प्रथम दर्शन पुष्पवाटिकामें हुआ था और सीताने गिरिजाकी स्तुति भी की थी। इसी स्थानपर गणेशजीका भी विग्रह है।

भाटगाँव—यह काठमाण्डूसे आठ मीलकी दूरीपर है और प्राचीन मेवाड़-राजवंशकी तीन राजधानियोंमेंसे एक है। यहाँ देवी, भवानी आदि कई दूसरे मन्दिर भी बड़े आकर्षक हैं। यहाँका सूर्यविनायक-गणेशका मन्दिर अत्यन्त भव्य है। मन्दिरके समक्ष एक स्तूप है, जिसके सिरेपर कमल बना है। कमलके ऊपर गणेशजीका वाहन चूहा है। इसकी बायीं ओर घंटा है, जिसके बगलमें कई क्षुद्र घण्टिकाएँ हैं।

गोर्खा—पश्चिम नेपालके इस स्थानपर गुरु गोरखनाथजीका एक विशाल मन्दिर है। इसके पास ही गणेशजीका मन्दिर है, जो बड़ा प्रसिद्ध है। नेपालके प्रसिद्ध गणपतियोंमेंसे ये एक माने जाते हैं। गोर्खा-क्षेत्रके निवासी इन्हें 'विजय-गणपति' या 'कामना-गणेश' भी कहते हैं।

~~०~~

उत्तरप्रदेशके गणेश-स्थल

गाणेश्वरी शिला (टिहरी गढ़वाल)—इस क्षेत्रमें एक गाणेश्वरी शिला है। यह लाल रंगकी है एवं इसका आकार हाथी-जैसा विशाल है।

सोमद्वार (सोम-प्रयाग)—यह स्थान केदारनाथके मार्गमें त्रियुगीनारायणके पास पड़ता है। यहाँ सोमनदी मन्दाकिनीमें मिलती है। पुल-पार एक मीलपर छिन्नमस्तक गणपतिका मन्दिर है। महादेवजीने गणेशजीका सिर भ्रमसे यहीं काटा था और पीछेसे हाथीका सिर लगाकर उन्हें जीवित कर दिया। यह स्थान भी इसीलिये तीर्थ बन गया।

केदारनाथ—बदरीनाथके यात्री केदारनाथ प्रायः जाते ही हैं। यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। लोगोंका कहना है कि यह मन्दिर पाण्डवोंके समयका बना हुआ है। मुख्यद्वारपर पहले गणेशजीका पूजन होता है और इसके बाद यात्री मन्दिरके अन्दर जाते हैं।

काँड़ी चट्टी—हरिद्वारसे काँड़ी ४५वें मीलपर है। काँड़ी चट्टीसे कुछ दूरपर शुकदेव और गणेशजीके दर्शन होते हैं।

कुबेरशिला—इस रमणीक स्थानसे सुन्दर हिमाच्छादित श्वेत पर्वत-माला दिखायी देती है। यहाँ गणेशजीका एक छोटा-सा मन्दिर है। यहाँसे बदरीनाथके मन्दिरके भी दर्शन होते हैं।

बदरीनाथ—भारतके चार प्रधान धामोंमेंसे यह एक है। श्रीबदरीनारायणजीकी मूर्ति काले पत्थरकी बनी है। पासमें उसी सिंहासनपर नर-नारायण, कुबेर, उद्धवजी, गरुड़जी और लक्ष्मीजी हैं। पासमें ही गणेशजी और वीणा लिये हुए नारदजी विराजमान हैं।

गणेशगुफा—बदरीनाथसे २ मील दूर भाणा-ग्रामके निकट व्यासगुफाके समीप ही गणेशगुफा है। यहाँ श्रीगणेशकी अनगढ़ आकृतिस्वरूप एक पाषाण है। कहते हैं, यहीं व्यासद्वारा वर्णित पुराणोंको श्रीगणेशने लिपिबद्ध किया था।

आदिबदरी—यहाँके मन्दिरमें भी श्रीगणेश-विग्रह है। यह प्रतिमा काले पाषाणकी है तथा कलाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। जनश्रुतिके अनुसार यह श्रीआद्य शंकराचार्यजीद्वारा स्थापित है।

हरिद्वार—यहाँ गणेशघाट है, जहाँ गणेशकी एक विशालकाय मूर्ति है।

वृन्दावन—यहाँ श्रीमोटागणेशका मन्दिर है तथा श्रीकात्यायनीमन्दिरका श्रीसिद्धगणेशका श्रीविग्रह दर्शनीय है।*

अयोध्या—यहाँ श्रीगणेशजीका कोई स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है। मणिपर्वतके दक्षिण एक गणेश-कुण्ड है। वहीं पासमें सहस्रशीर्षा-मन्दिर और गणेश-मन्दिरके अलग-अलग भग्नावशेष भी हैं, जिन्हें यवनोंने धराशायी कर दिया था। पुराने लोग बतलाते हैं, उस गणेश-मन्दिरकी प्रतिमा वही है, जो आजकल कैथाना मुहल्लेमें बड़ी सड़कके पास एक पीपलके पेड़की जड़पर रखी है। मूर्ति-विशेषज्ञोंका कहना है कि यह गणेश-प्रतिमा डेढ़ हजार वर्षसे भी पुरानी है। वैसी ही एक प्रतिमा भरत-कुण्डपर थी, जिसे कोई विदेशी पर्यटक दो-तीन वर्ष पहले चुरा ले गया। नागेश्वरनाथ-मन्दिर और सीता-कुण्डपर भी एक गणेश-प्रतिमा है, जो लगभग चार-पाँच सौ वर्षकी है। हनुमानगढ़ीसे थोड़ी दूरपर अयोध्यानरेशके महलमें एक पंचमन्दिर है, जिसमें गणेशजीका भी एक मन्दिर है।

चित्रकूट—यहाँ चित्रकूट एवं करवीके बीच गणेशकुण्ड एवं गणेशजीका एक प्राचीन मन्दिर है।

प्रयाग—ऐसे तो सिद्धिसदन गजवदन विनायककी बहुत-सी मूर्तियाँ प्रयागमें जगह-जगहपर स्थापित हैं, किंतु महामना मालवीयनगर और झंझरियापुलकी विशाल मूर्तियाँ अपने ढंगकी निराली ही हैं। इन दोनों मूर्तियोंसे भी अधिक भव्य मूर्ति गंगाके किनारे कमलनालतीर्थ तथा दशाश्वमेध महादेवके संनिकट प्राचीन, बहुत बड़ी, बहुत सुन्दर, 'बड़े गणेशजी' के नामसे पुकारी जाती है। प्रयागको 'ओंकार-गणेश-क्षेत्र' कहा जाता है।

वाराणसी—प्रसिद्ध अन्नपूर्णा-मन्दिरकी पश्चिमी गलीकी दाहिनी मोड़पर सर्वफलप्रद श्रीढुण्ढिराज गणेश विराजमान हैं। काशीके समस्त विनायक-विग्रहोंमें

* श्रीसिद्धगणेशका विस्तृत विवरण इसी अंकमें अन्यत्र देखना चाहिये।

सर्वाधिक पूज्य एवं श्रेष्ठ स्थान इन्हें ही प्राप्त है। काशी-निवासके लिये इनकी कृपा नितान्त अपेक्षित मानी जाती है।

गोरखपुर—यहाँके प्रसिद्ध श्रीगोरखनाथ-मन्दिरमें श्रीगणेशभगवान्‌का नव-प्रतिष्ठित विग्रह दर्शनीय है।

पड़रौना—गोरखपुरसे पैंतालीस मील दूर इस स्थानपर गणेशजीका एक छोटा-सा, किंतु स्वतन्त्र तथा सिद्धिप्रदायक मन्दिर है।

~~~०~~~

बिहार-प्रान्तके गणेश-स्थल

बिहारशरीफ—यहाँके 'बड़े मन्दिर'में अन्य देवी-देवताओंके साथ भगवान् गणेशकी संगमरमरकी बनी हुई एक आकर्षक प्रतिमा है। यहाँका दूसरा मन्दिर चौंदियाहा-गणेशजीका है। यद्यपि इस मन्दिरकी प्रतिमा कई बार चोरी गयी, तथापि श्रद्धालु भक्तोंने हर बार नव-निर्मित प्रतिमा स्थापित करवायी। यह जनताकी श्रद्धाका द्योतक है।

सोहसराय—यहाँ बुढ़वा-गणेशजीका एक भग्न मन्दिर है। यहाँ मेला भी लगा करता है। यहाँका दूसरा मन्दिर जवनका गणेशजीका है, जो कई सौ वर्ष पुराना है।

गया—श्रीरामशिलाके समीप भगवान् श्रीगणेशका अति मनोहर मन्दिर है। यहाँका श्रीविग्रह अतीव भव्य और सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण दर्शकोंको अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है।

गणेश-स्थान, माँझा—हथुआ रेलवे स्टेशनसे तीन मील दूर यह श्रीगणेशजीका एक स्वतन्त्र मन्दिर है, जो हथुआनरेश श्रीकृष्णप्रताप शाहीका बनवाया हुआ है। यहाँ मेला भी लगता है।

बड़का-गाँव—सीवानसे तीन मीलकी दूरीपर स्थित इस ग्राममें श्रीगणेशजीका एक स्वतन्त्र मन्दिर है। यहाँ दूर-दूरसे दर्शनार्थी आते हैं।

बडरम—यह ग्राम सीवानसे दक्षिण-पूर्वके कोनेपर लगभग दो मीलपर है। यहाँ श्रीगणेशजीके विशाल एवं प्राचीन मन्दिरके भग्नावशेष हैं। यहाँ श्रीगणेशजीकी विशाल काले पत्थरकी बनी हुई एक प्राचीन मूर्ति है।

बेदौल—मुजफ्फरपुरसे सत्रह मीलपर जनाढ़-बेदौल नामक ग्रामसे दक्षिण ओर एक सरोवर है। उस सरोवरसे आजसे लगभग सौ वर्ष पूर्व बहुत-सी गुप्तकालीन मूर्तियाँ—शंकर, नारायण एवं शेषशायीकी निकली हैं। उसीमें एक भव्य प्रतिमा गणेशजीकी भी है।

देकुली—सीतामढ़ीसे बारह मीलपर भुवनेश्वरनाथ महादेवका स्थान है। यहाँपर एक मन्दिर स्थूलकाय गणेशजीका भी है।

कन्हौली गजपति—सीतामढ़ीसे बारह मील दक्षिण इस गाँवमें एक ब्राह्मणके यहाँ २५० वर्षोंसे पूजित एक भव्य गणेश-विग्रह है, जो अत्यन्त मनोहारी है।

पुनौरा—यह स्थान सीतामढ़ीसे तीन मील पश्चिम है। कुछ लोगोंकी मान्यताके अनुसार यहीं भूमिसे जानकीजी प्रकट हुई थीं। यहाँ श्रीमहादेव-मन्दिरमें एक भव्य गणेश-विग्रह है।

राजनगर—यहाँ गणेशजीका एक अत्यन्त मनोरम, भव्य एवं विशाल मन्दिर है, जिसे दरभंगानरेश-रामेश्वरसिंहने बनवाया है। पासमें ही एक सरोवर भी है। यह दरभंगा जयनगर लाइनमें पड़ता है। यहाँ स्टेशन भी है।

वासुकिनाथ—वैद्यनाथधामसे अट्ठाईस मीलकी दूरीपर वासुकिनाथ महादेव हैं। यहाँपर श्रीगणेशजीका एक भव्य विग्रह है। बिहारमें वैद्यनाथधामके बाद वासुकिनाथकी ही अधिक प्रसिद्धि है।

सीतामढ़ी—रक्सौल-दरभंगा रेलवे लाइनपर सीतामढ़ी स्टेशन है, जहाँ भगवती सीताका प्राकट्य हुआ था। यहाँ एक घेरेके भीतर श्रीसीताजीका मन्दिर है। मुख्य-मन्दिरके पास श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

अजगैबीनाथ—हावड़ा-क्यूल लाइनपर भागलपुर जंकशनसे पंद्रह मील दूर सुल्तानगंज स्टेशन है। स्टेशनसे थोड़ी दूर उत्तर जहाँगीरा गाँवके पास गंगाजीकी
~~~

बीच धारामें एक चट्टानपर 'अजगैबीनाथ'-महादेवका मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं जह्नु ऋषिका आश्रम था। आसपास और भी कई पुराने मन्दिर हैं। एक ओर चट्टानपर काटकर गणेश, सूर्य, विष्णुभगवान्, देवी तथा हनुमान्जी आदिकी मूर्तियाँ बनायी गयी हैं।

वैद्यनाथधाम—यह हबड़ा-पटना लाइनपर जसीडीह स्टेशनके पास है। श्रीवैद्यनाथ-लिंग द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमेंसे एक है। श्रीवैद्यनाथ-मन्दिरके घेरेमें ही अनेक मन्दिर हैं, जिनमें एक मन्दिर भगवान् श्रीगणेशका भी है।

श्रीमहादेव सिमरिया—यह स्थान क्यूल-गया लाइनपर स्थित शेखपुरा स्टेशनके पास है। इस स्थानपर धनेश्वरनाथ-महादेवका विशाल मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त यहाँ श्रीगणेशजीका भी एक प्रसिद्ध स्थान है।

राजगृह—यह एक बौद्ध-तीर्थस्थल है। यहाँ विपुलाचलपर्वतके दक्षिणमें एक सुन्दर गणेश-मन्दिर है। इनके सिवा शाहाबाद जिलेके अन्तर्गत रामगढ़, मसाई तथा राँची-जिलेके जगरनाथपुर और भागलपुर-उचैठाके श्रीगणेशविग्रह दर्शनीय हैं।

~~○~~

उत्कल-प्रदेशके श्रीगणेश-सम्बन्धी तीर्थ, मन्दिर एवं प्रतिमाएँ

प्राचीनकालसे उत्कल-प्रदेश धर्मक्षेत्रके रूपमें प्रख्यात रहा है। उस प्रदेशमें पंचदेवोंके पाँच प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। भुवनेश्वर शैवक्षेत्र, पुरी वैष्णवक्षेत्र, कोणार्क सौरक्षेत्र, जाजपुर (विरजा) शाक्तक्षेत्र एवं महाविनायक गाणपत्यक्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार पाँच प्रसिद्ध क्षेत्रोंसे समन्वित होनेका महान् गौरव उत्कल-प्रदेशको प्राप्त है।

महाविनायकक्षेत्र कटक-जिलेमें हरिदासपुर स्टेशनसे चार मीलकी दूरीपर अवस्थित है। यहाँ महाविनायकका भव्य मन्दिर एवं तीर्थ है। कहा जाता है कि जब रावण कैलाससहित सपरिवार भगवान् शंकरको उठाकर लंका ले जा रहा था, तब भगवान् शंकर यहाँ कुछ देर विश्रामके लिये रुके थे। यहाँ महाविनायकका मन्दिर एवं क्षेत्र होनेके कारण यह स्थान 'महाविनायक' नामसे ही प्रसिद्ध हो गया है।

श्रीजगन्नाथपुरी—यह भारतके चार प्रधान धामोंमेंसे एक है। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें कई गणेश-विग्रह हैं, जो इस प्रकार हैं—

(क) कर्णाटक-गणपति—जगन्नाथ-मन्दिरके अन्तर्गृहके पश्चिमके प्रवेश-पथमें एक रमणीय मन्दिरके अंदर श्रीकर्णाटक-गणेशजीकी मूर्ति विराजमान है। ये गणेशजी 'उच्छिष्टगणेश' अथवा 'भण्ड-गणपति'के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनकी स्थापना प्रतापी राजा पुरुषोत्तम देव गजपतिने सम्भवतः ५०० वर्ष पूर्व कर्णाटक-विजयके प्रतीकके रूपमें की थी।

(ख) नृत्यगणपति—श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके प्रांगणमें माता विमलादेवीजीके मन्दिरके सामने सुरम्य मन्दिरमें रमणीय नृत्यगणेशजीकी मूर्ति विराजमान है। ऐसी मान्यता है कि राजा अनंग भीमदेव इस सुन्दर गणेश-प्रतिमाके प्रतिष्ठाता हैं।

(ग) कल्पगणपति—श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके प्राचीनतम कल्प-वृक्षके नीचे कल्प-गणपतिजी स्वतन्त्र मन्दिरमें विद्यमान हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इन गणेशभगवान्के पूजनोपरान्त भगवान् श्रीजगन्नाथके दर्शन किये थे।

(घ) चारगणपति—१०४० ई०के लगभग श्रीअनन्तवर्म चोडगंगदेवने जगन्नाथपुरीके मन्दिरको दूसरे ढंगसे बनवाना शुरू किया और उसी दिन उन्होंने चारगणपति-विग्रहकी स्थापना की। यहाँ ज्येष्ठ पूर्णिमाको विशेष उत्सव होता है। इस दिन श्रीजगन्नाथजी, सुभद्रा तथा बलरामजीकी स्नान-यात्रा होती है। ये श्रीविग्रह स्नानमण्डपमें ले जाये जाते हैं। वहाँ उन्हें १०८ कलशोंके जलसे स्नान कराया जाता है। स्नानके पश्चात् भगवान्का गणेशवेषमें शृंगार होता है। कहा जाता है कि इस अवसरपर श्रीजगन्नाथजीने एक गणेश-भक्तको गणेशरूपमें दर्शन दिया था। इसके पश्चात् पंद्रह दिनोंतक मन्दिर बंद रहता है।

(ङ) पंच-विनायक—पुरी-नगरके उत्तरमें सिद्ध हनुमान्जीके मन्दिरमें पंच-मस्तक-विशिष्ट गणेशजीका भव्य विग्रह है, जो आद्य शंकराचार्यद्वारा स्थापित है।

(च) मणिकर्णिका-गणेश—पुरीके कपाल-

मोचन महादेवजीके प्रांगणमें मणिकर्णिका-कुण्ड तथा मणिकर्णिका-गणेशजीके अति मनोरम विग्रह स्वतन्त्र मन्दिरोंमें विराजित हैं। यहाँका पूजा-विधान आथर्वणीय 'गणेशकल्प' के अनुसार होता है।

पुरीमें 'सिद्धविनायक' का प्रसिद्ध मन्दिर भी है, जिसमें सिद्धविनायकको लगभग आठ फीट ऊँची दर्शनीय मूर्ति है।

पुरीके निकट ही उत्कल-प्रदेशकी वर्तमान राजधानी भुवनेश्वर है, जो कभी मन्दिरोंके नगरके रूपमें प्रसिद्ध रही है। इस नगरके प्राचीन भागमें तथा उसके आस-पास अनेकों मन्दिर एवं प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष हैं। भुवनेश्वरके सभी मन्दिरोंमें पार्श्वदेवताके रूपमें गणेशजीकी विविध प्रतिमाएँ मिलती हैं। यहाँके प्रसिद्ध लिंगराज-मन्दिर (११वीं शताब्दी ई०)-में सिंहद्वारसे प्रवेश करते ही सबसे पहले भगवान् गणेशकी लगभग दस फीट ऊँची विशालकाय प्रतिमाके दर्शन होते हैं। मूर्तिकला, स्थापत्यकला, केशविन्यास, अलंकरण आदिकी दृष्टिसे यह भुवनेश्वर-प्रतिमा शिल्पका सुन्दर नमूना है। ध्यानमन्त्रके अनुसार यह मूर्ति 'कपिलगणपति'की है, परंतु यह 'एकाग्रगणपति'के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीगणेशकी बिलकुल ऐसी ही एक विशाल मूर्ति भारतीमठके गणपति-मन्दिरमें भी है। भुवनेश्वरसे कुछ दूर धौली-पहाड़ीके नीचे स्थित गणेश-मन्दिरकी प्रतिमा आकार-प्रकार-शिल्पादिमें लिंगराज-मन्दिरमें स्थित श्रीगणेशप्रतिमाके समान ही है। भुवनेश्वरकी पश्चिम दिशामें लगभग पाँच मीलकी दूरीपर उदयगिरि नामक दर्शनीय पहाड़ी स्थान है। यहाँ जैनधर्मसे सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण पर्वतीय गुफाएँ भी हैं। उन्हींमें एक गणेश-गुफा भी है। इस गुफाके अंदर दीवारमें गणेशकी सुन्दर मूर्ति उट्टंकित है।

भुवनेश्वरमें मुक्तेश्वरका बालुका-प्रस्तरसे निर्मित मन्दिर अत्यन्त सुन्दर है एवं भारतके अत्यन्त प्राचीन तीन मन्दिरोंमें इसकी गणना होती है। इसका निर्माण सन् ८०० एवं १०६० ई० के बीच हुआ। इस मन्दिरमें नृत्यगणेशकी अष्टभुजा मूर्ति है। इस नृत्यमुद्रामें गणेश सबसे ऊपरके दो हाथोंमें सिरके ऊपर सर्पको पकड़े हुए हैं। शेष छः हाथोंमेंसे दो हाथ अब गायब हैं। अवशिष्ट चार हाथोंमें मोदक, कुठार, भग्न-गजदन्त एवं कमल हैं। इस प्रतिमाकी बायीं ओर एक सेवक खड़ा हुआ मँजीरा (झाँझ) बजा रहा है तथा दायीं ओर खड़ा दूसरा सेवक अंकच-मृदंगपर थाप दे रहा है।

परमेश्वर-मन्दिर (६५०ई०)-की गणना भुवनेश्वरके अति प्राचीन मन्दिरोंमें होती है। यह अतिशय अलंकृतशैलीमें निर्मित सुन्दर मन्दिर है। इसकी दीवारोंके आलेमें विभिन्न देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। ऐसे ही एक आलेमें शिव-पार्वतीके साथ गणेशकी सुन्दर छोटी-सी मूर्ति है। यह मूर्ति देवीवाहन सिंह एवं शिववाहन वृषके मध्यमें स्थित है। इसी मन्दिरके जगमोहनमें शिवचरितके दृश्य प्रतिमा-शैलीमें उट्टंकित हैं। एक दृश्य है—रावणद्वारा शिव-परिवारको कैलाससहित उठाकर ले जानेका। उस दृश्यमें कुठार उठाये हुए आतंकित गणेशका अंकन हुआ है। उसी मन्दिरकी चारदीवारीकी पूर्व दिशाकी दीवारमें शिव-विवाहका दृश्य उट्टंकित है। उस प्रतिमा-दृश्यमें शिवकी दाहिनी ओर अग्निदेव दोनों ओर ज्वाला उगलते हुए बैठे हैं तथा अग्निके नीचे गणेशकी लघुकाय प्रतिमा है।

भुवनेश्वरके शैव-मन्दिरोंमें नटराज शंकरकी अनेक प्रतिमाएँ हैं। प्रत्येक नटराज-प्रतिमाके साथ उसकी दाहिनी ओर गणेशकी प्रतिमा है। मुक्तेश्वर-मन्दिरके प्रांगणमें अवस्थापित नटराजकी विशाल प्रतिमा विशेषरूपसे अवलोकनीय है। इन प्रतिमाओंके साथ गणेश दाहिने हाथमें मूलकन्द एवं बायें हाथमें मोदकपात्र (जिसपर गजाननका सूँड़ टिका हुआ है) धारण किये हुए दिखाये गये हैं। परमेश्वर-मन्दिरवर्गकी नटराज-प्रतिमाओंके साथ गणेशकी प्रतिमा नहीं है।

परशुरामेश्वरके जगमोहन एवं वैताल-मन्दिर (७७५ ई०)-की दीवारोंके आलेमें सप्तमातृकाओंके साथ गणपतिकी प्रतिमा मिलती है। यहाँ गणेशके हाथोंमें कुठार, मोदक, अक्षमाला एवं मूलक-कन्द है। प्रतिमा मूषकरहित है। वैताल-मन्दिरमें गणेश-प्रतिमाके नीचे आधारपर स्थित पूजापात्रमें दो कटहल, मोदक एवं मध्यमें पुष्प रखे हुए हैं।

भरतेश्वर-मन्दिरके द्वारका टूटा हुआ ऊपरी भाग (करगहना) उड़ीसाके सरकारी म्यूजियममें सुरक्षित

है। इसपर सजावटके लिये उत्कीर्ण मूर्तियोंमें सिद्ध, विद्याधर एवं तपस्वीगण गणेशको प्रणाम करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक आते हुए दिखाये गये हैं।

गणेशके मन्दिर एवं तीर्थ उड़ीसामें प्रायः सर्वत्र ही मिल जाते हैं, जिनमेंसे कुछका परिचय दिया जा रहा है—

नइगुआ—पुरी-जिलेके काकटपुर थानाके पास नइगुआ नामक ग्रामके मन्दिरमें भोगद-गणेशकी विचित्र मूर्ति पूजित होती थी। किंतु सम्प्रति वहाँ एक हाथीकी मूर्ति पूजित होती है। साथ ही पूजाके समय भोगद-गणनाथका ध्यान भी किया जाता है।

गोप—यह स्थान पुरीसे कुछ दूर है। ऐतिहासिक तथ्योंसे विदित होता है कि राजा भानुदेवने अपने पुरोहित वामदेवयाजिसे एक महागाणपत्य-यज्ञ करवाया था। यज्ञकी समाप्तिके बाद यहाँ ब्राह्मणोंको गणेशभगवान्‌की खदिरकाष्ठकी मूर्ति दानमें दी थी। यहाँ खदिर-गणपतिकी पूजा प्रचलित है।

कटक—यहाँ नगरकी कालीगलीके पास वरद-गणनाथके नामपर एक मुहल्ला और मन्दिर है, जिसमें गणेशजीकी प्राचीन मूर्ति विराजित है। महाराष्ट्र-शासनकालमें श्रीरघुजी भोंसलेने इनकी सेवा-पूजाके लिये जमीन तथा अर्थकी व्यवस्था की थी।

गणेश-घाट-गणेश—प्राचीन कालमें कटकके श्रीनगरकी रक्षाके लिये मर्कटकेसरीद्वारा काठयोड़ि नदीपर प्रस्तरबाँधका निर्माण हुआ था। उक्त महान् बाँधके निर्माणमें विघ्न-विनाशके लिये वहीं श्रीगणेशजीकी मूर्ति स्थापित हुई थी और गणेश-घाट भी बनवाया गया था।

महावीणा पर्वत—यहाँ उत्कल प्रान्तका प्रधान गाणपत्य-पीठ है। यह स्थान कटक जिलेमें चण्डिखोल पर्वतमालान्तर्गत है। यहाँपर महाविनायक श्रीगणेशजीका सुन्दर मन्दिर है। मूर्तिकी सेवा-पूजा उड्डामरेश्वर-महातन्त्रके अनुसार होती है।

गुहा-गणपति—उत्कलके उदयाचल-पर्वतमें प्राचीनतम गुहा-मन्दिर विद्यमान हैं। वहाँकी गणेश-गुफा अति प्राचीन है। इसमें गाणपत्य-सम्प्रदायकी प्राचीन गणेशमूर्तियाँ प्रतिष्ठित थीं; किंतु सम्प्रति ये मूर्तियाँ हटा दी गयी हैं।

याजपुर—हबड़ा-वाल्टेयर लाइनपर कटकसे चौवालीस मील पहले ही याजपुर-क्योंझर-रोड स्टेशन है। याजपुर नाभिगया-क्षेत्र माना जाता है। यहाँ श्राद्ध-तर्पण आदिका महत्त्व है। कहते हैं कि यहाँ पहले ब्रह्माजीने यज्ञ किया था। यहाँ वैतरणी-नदीके घाटपर मन्दिर हैं। इनमेंसे एक मन्दिरमें श्रीगणेशजीकी सुन्दर मूर्ति है।

धेनकानल जिलेमें 'कविलास' नामक स्थानमें श्रीगणेशका सुन्दर महिमाशाली मन्दिर है। बहरामपुर जिलेमें बहरामपुरसे दक्षिण दिशामें ७-८ मीलकी दूरीपर 'पंचम' नामक महत्त्वपूर्ण गणेशतीर्थ है। यहाँके मन्दिरकी गणपति-प्रतिमा 'पंचम गणेश' के नामसे प्रसिद्ध है। कोरापुट जिलेमें कोरापुटसे दक्षिण दिशामें लगभग २८ मीलकी दूरीपर नन्दपुर नामक रमणीय पर्वतीय स्थान है। यहाँ केवल एक कृष्णप्रस्तर-खण्डसे निर्मित गणेशकी लगभग दस फीट ऊँची विशालकाय प्रतिमा एवं भव्य मन्दिर है। कहते हैं कि इस मूर्तिकी प्रतिष्ठापना चन्द्रगुप्त विक्रमार्कके द्वारा हुई थी। गणेशजन्म-चतुर्थीके दिन यहाँ भारी मेला लगता है। इसी प्रकारका एक अन्य प्रसिद्ध गणेशस्थान है—'ओणकाडेल'। यह कोरापुटसे ५५ मीलकी दूरीपर जयपुर-लाभतापीट-मार्गपर स्थित है। माघ-मासकी चतुर्थीको यहाँ विशेष पूजा-समारोह होता है।

गणेश-प्रतिमाका निर्माण भुवनेश्वर-प्रतिमा-शिल्पका एक प्रिय विषय रहा है। विभिन्न युगोंमें भुवनेश्वरके मन्दिरोंमें गणेशकी नाना प्रकारकी प्रतिमाओंका निर्माण हुआ है, जो शिल्पकला, संस्कृति एवं धर्मके विकासके विविध चरणोंका संकेत करती हैं। भुवनेश्वरकी गणेश-प्रतिमाओंकी जो विशेषताएँ हैं, वे ही उड़ीसा एवं उत्तर-भारतके अन्य भागोंमें उपलब्ध गणपति-प्रतिमाओंमें भी मिलती हैं।

भुवनेश्वरकी गणेश-प्रतिमाओंको मुख्यरूपसे दो वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक वर्ग तो गणेशके प्रसिद्ध वाहन मूषकसे रहित प्रतिमाओंका है, जिनके ऊर्ध्व दक्षिणहस्तमें मूलक-कन्द है तथा दूसरा वर्ग मूषकसहित प्रतिमाओंका। इस वर्गकी प्रतिमाओंके दाहिने ऊर्ध्वहस्तमें मूलक-कन्दके स्थानपर भग्न-गजदन्त है। ये दोनों वर्ग संस्कृति एवं इतिहासकी

दृष्टिसे भिन्न-भिन्न युगोंके हैं। एक तीसरा वर्ग इन दोनोंके मध्यवर्ती कालका भी है, जिस वर्गकी प्रतिमाओंमें विशेषताएँ तो प्रथम वर्गकी ही हैं; परंतु साथमें मूषक भी है। ऐसी प्रतिमाएँ संख्यामें बहुत कम हैं।

प्रथमवर्गकी मूषकरहित सभी प्रतिमाएँ बैठी हुई स्थितिमें, आसनस्थ मुद्रामें हैं। शायद ही इस वर्गकी कोई प्रतिमा खड़ी हुई स्थितिमें मिले। इस वर्गके चतुर्भुज गणेशके हाथोंमें मूलक-कन्द, जपमाला, उठा हुआ कुठार और मोदकपात्र है। इनमें सर्पको कमरबंद एवं यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किया गया है। इन मूर्तियोंके सिरपर जटा-मुकुट नहीं है। प्रतिमाके नीचे आधार-प्रस्तर या तो सादा है या उसके नीचे तिपाई निर्मित है, जिसपर पूजापात्रमें फल-फूल रखे हुए हैं एवं जिसके दोनों ओर दो सिंह एक-दूसरेकी ओर देखते हुए स्थित हैं। मूषकका अभाव इन मूर्तियोंकी विशेषता है। ये मूर्तियाँ गणेशकी प्राचीनतम मूर्तियाँ हैं, जिनका निर्माण लगभग छठी-सातवीं शताब्दीमें हुआ है। बृहत्संहिताके प्रतिमाध्यायमें गणपति-मूर्तिकी इन्हीं विशेषताओंका उल्लेख मिलता है।

इस वर्गकी मूर्तियोंके दो उपभेद हो सकते हैं। एक भेद तो प्रतिमामें गजाननकी सूँड़के दायीं या बायीं ओर मुड़े हुए होनेपर निर्भर है एवं दूसरा भेद प्रतिमाके सिरपर जटा-मुकुट होने एवं प्रतिमाधारपर रखे पूजापात्रमें एक या दो कटहलके फलोंके होनेके कारण है।

दूसरे वर्गकी सभी प्रतिमाएँ खड़ी हुई मुद्रामें निर्मित हैं एवं उन सबके साथ मूषक अवश्य है। इन प्रतिमाओंके ऊपरके दाहिने हाथमें भग्न गजदन्त है तथा नीचेके दाहिने हाथमें जपमाला। दूसरी ओर ऊपरके बायें हाथमें मोदकपात्र है, जिसपर सूँड़ स्थापित है एवं नीचेके वामहस्तमें कुठार है। सर्प यज्ञोपवीतके रूपमें है। सिरपर जटा-मुकुट है। प्रतिमाका आधार-प्रस्तर पूर्ण विकसित कमलके रूपमें है। मूषक या तो देवमूर्तिके एक ओर है या आधारप्रस्तरपर देवताके चरणोंके नीचे।

प्रथमवर्गकी मूषकरहित गणेश-प्रतिमाएँ सातवीं-आठवीं शताब्दी ईसवीयुगके परशुरामेश्वर, वैताल तथा शिशिरेश्वरके मन्दिरोंमें मिलती हैं। उनके अतिरिक्त ये इनसे प्राचीनकालके भरतेश्वर, स्वर्णजालेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, मोहिनी एवं बहिरंगेश्वर आदि मन्दिरोंमें भी पायी जाती हैं। प्राचीनकालके मन्दिरोंके अंग होनेके कारण इस वर्गकी प्रतिमाओंको भुवनेश्वरकी प्राचीन मूर्तिकलाका रूप मानना चाहिये। उत्तरेश्वर, लिंगराज एवं यमेश्वरके उत्तरकालीन मन्दिरोंमें भी इस वर्गकी पुनः स्थापित प्रतिमाएँ मिलती हैं। चिन्तामणीश्वर एवं भारतीमठमें भी ऐसी प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं, जो दूसरे प्राचीन भग्न मन्दिरोंसे लाकर पुनः वहाँ स्थापित की गयी हैं।

प्रथमवर्गकी गणेश-प्रतिमाका एक प्रथम उपभेद वह है, जिसमें गजाननकी सूँड़ बायीं ओर मुड़ी हुई है। ऐसी मूर्ति परमेश्वर-मन्दिर (६५०ई०)-में पार्श्वदेवताके रूपमें दक्षिण दिशाकी भित्तिके आलेमें प्रतिष्ठित है। चिन्तामणीश्वर, रामेश्वर एवं भारती-मठमें इस वर्गकी प्रतिमाएँ अन्य किन्हीं भग्न प्राचीन मन्दिरोंसे लाकर प्रतिष्ठापित की गयी हैं। यमेश्वरमें मूल-मन्दिरके निर्माण होनेके बहुत पीछे जाकर उस वर्गकी गणेश-प्रतिमाओंको कहींसे लाकर स्थापित किया गया है। परशुरामेश्वर, चिन्तामणीश्वर एवं भारती-मठकी गणपति-प्रतिमाओंकी एक विशेषता यह है कि प्रतिमाधारके नीचे दोनों ओर दो सिंह परस्पर सम्मुख दृष्टि रखे हुए स्थित हैं।

इस वर्गकी प्रतिमाका दूसरा उपभेद वह है, जिसमें गजाननकी सूँड़ दाहिनी ओर मुड़ी हुई है। इस प्रकारकी प्रतिमाएँ वैताल-मन्दिर, शिशिरेश्वर-मन्दिर एवं उदयगिरिपर स्थित गणेश-गुफामें हैं।

गणेश-गुफाके समीप ही उपलब्ध प्रस्तर-लेखसे यह ज्ञात होता है कि इस गुफामें स्थित गणेश-मूर्तिका नाम 'गजास्यमूर्ति' है एवं इसका निर्माण भौम राजा शान्तिकर देवके समयमें ८०० ई०में हुआ है। इस मूर्तिके साथ भी मूषक है, जो प्रतिमाधारपर रखे मोदक-पात्रसे मोदकको चुराते हुए दिखाया गया है। इसी कोटिकी दो मूर्तियाँ और भी हैं—एक तो लिंगराज-मन्दिरमें एवं दूसरी उड़ीसा सरकारके म्यूजियममें। (पहले यह मूर्ति दूदवावाला धर्मशालाके निकट एक छोटे-से मन्दिरमें थी) लिंगराज-मन्दिरकी गणेश-

प्रतिमासे दाहिनी ओर एक महिला मोदकपात्र हाथमें लिये हुए बैठी है, जिससे मूषकको मोदक चुराते हुए दिखाया गया है। दूसरी मूर्तिमें केवल मूषक ही देवतासे दाहिनी ओर है। देव-प्रतिमासे दूसरी ओर बायीं तरफ कटहल रखा हुआ है। इन तीनों मूर्तियोंके साथ यद्यपि मूषक है, तथापि इनकी सभी विशेषताएँ प्रथमवर्गकी गणपति-प्रतिमाओंकी हैं। अतः इनका निर्माणकाल प्रथम एवं द्वितीय वर्गकी प्रतिमाओंके निर्माण-कालके मध्यमें रखा जा सकता है।

मूषक (वाहन)-सहित द्वितीय वर्गकी प्रतिमा सबसे पहले मुक्तेश्वर (८००—१०६० ई०के मध्य)-में मिलती है। इसके बाद इस वर्गकी गणेश-प्रतिमाएँ ब्रह्मेश्वर (१०६०ई०), केदारेश्वर (११०० ई०), मेघेश्वर (११९५ ई०)-के युगके मन्दिरोंमें तथा इनके बाद निर्मित सभी शैव-मन्दिरों—लिंगराज, सिद्धेश्वर, रामेश्वर, भास्करेश्वर, यमेश्वर, चित्रेश्वर, ईशानेश्वर—आदिमें मिलती हैं। मुक्तेश्वर-मन्दिरकी भित्तिके दक्षिण-पूर्व-कोनेमें स्थित छोटी-सी गणेश-प्रतिमाके साथ जो मूषक है, वह अपने पिछले पैरोंपर खड़ा है।

उड़ीसामें उपलब्ध गणपतिकी सभी प्रतिमाएँ कृष्ण-प्रस्तरसे निर्मित हैं। ऐसा सम्भवतः आगम-प्रभावके कारणसे है। सनत्कुमारसंहिताके अनुसार कलियुगमें कृष्णप्रस्तर-खण्डसे निर्मित श्यामवर्णके देवविग्रहकी उपासना शुभ एवं मंगलदायिनी है। भुवनेश्वरके मन्दिरोंमें उपलब्ध गणेश-प्रतिमाओंमें शिल्पकलाकी दृष्टिसे एक और भेद परिलक्षित होता है। प्राचीनकालमें गणेश-प्रतिमाका निर्माण एक ही विशाल कृष्ण प्रस्तरखण्डसे होता था एवं उस निर्मित प्रतिमाको लाकर मन्दिरमें मुख्य या पार्श्वदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित किया जाता था या लघुदेवमूर्तिको मन्दिरकी चहारदिवारीके आलेमें स्थापित किया जाता था। परमेश्वर-मन्दिर-वर्गके मन्दिरोंमें ऐसी ही मूर्तियाँ हैं। पीछे जाकर जब पुरातत्त्व-संग्राहकोंद्वारा ऐसी मूर्तियाँ मन्दिरोंसे हटाकर चुरायी जाने लगीं, तब भौम-युगके शिल्पकारोंने इस शैलीको बदल दिया। वे मन्दिरकी दीवारके अंगरूपमें प्रतिमाओंका निर्माण करने लगे। मन्दिरके अंगभूत प्रस्तरखण्डके दो-तीन टुकड़ोंसे प्रतिमाका निर्माण करनेकी शैली प्रचलित हुई। दीवारका अङ्ग होनेसे प्रतिमाको निकालकर चुरा ले जाना सम्भव नहीं था। इस प्रकार देव-विग्रहोंको सुरक्षित रखा गया। नवीं शताब्दी एवं उसके बादकी उत्तरकालीन देवमूर्तियाँ इसी शैलीमें दीवारके प्रस्तरखण्डोंसे बनी हैं एवं मन्दिरके अंगके रूपमें सुरक्षित हैं।[१]

—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव

~~~o~~~

बंगाल और आसामके श्रीगणेश-स्थल

बडनगर (बंगाल)—अजीमगंज स्टेशनके पास इस गाँवमें अनेक देवालय हैं, जिनमें अष्टभुज गणेशका भी एक श्रेष्ठ मन्दिर है।

गोहाटी (असम)—कामाक्षादेवीके मन्दिरमें श्रीगणेशजीका एक सुन्दर विग्रह है।

~~~o~~~

१. इस लेखमें वर्णित श्रीगणेशकी प्रतिमाओंके चित्र श्रीकृष्णचन्द्र पाणिग्रही-लिखित ग्रन्थ 'Archeological remains at Bhubaneshwar'-में उपलब्ध हैं। इस लेखकी गणपति-प्रतिमा-विवेचन-सम्बन्धी अधिकांश सामग्री इसी ग्रन्थसे ली गयी है, जिसके लिये लेखक श्रीपाणिग्रहीका आभारी है।

काशीके छप्पन विनायक

(लेखक—श्रीअवधेशनारायणसिंहजी)

भारतीय देवताओंमें शिवपुत्र गणेशकी अत्यधिक महत्ता है। लोकप्रिय देवताके रूपमें इनका स्थान सर्वोपरि है। प्राय: सम्पूर्ण भारतमें गणेशकी पूजा की जाती है। काशीकी सुरम्य स्थलीमें गणेशकी कई प्रतिमाएँ स्थापित हैं। सभी गणेश-मूर्तियोंमें अन्नपूर्णा-मन्दिरके पश्चिममें गलीकी मोड़पर स्थित ढुण्ढिराज विनायककी विशेष प्रतिष्ठा है। ढुण्ढिराज गणेश ही काशीके सात आवरणोंमें प्रत्येक आवरणमें आठ रूप धारणकर छप्पन विनायक हो गये हैं। गणेशकी संख्या छप्पन होनेके कारण इन्हें 'छप्पन विनायक'की संज्ञा दी गयी है। छप्पन विनायक सात आवरणोंपर रक्षाके निमित्त विराजमान होकर आततायियोंका निग्रह एवं उच्चाटन करते तथा अपने भक्तोंको सिद्धि देते रहते हैं।

काशीके छप्पन विनायकोंके नामों और उनकी स्थितियोंका उल्लेख काशीखण्डमें मिलता है। जो लोग छप्पन विनायकोंका स्मरण करते हैं, उनका कल्याण होता है और उनके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं।

काशीखण्डके ५७वें अध्यायमें लिखा है—

षट्पञ्चाशद् गजमुखानेतान् यः संस्मरिष्यति।
दूरदेशान्तरस्थोऽपि स मृतो ज्ञानमाप्नुयात्॥
इमे गणेश्वराः सर्वे स्मर्तव्या यत्र कुत्रचित्।
महाविपत्समुद्रान्तः पतन्तं पान्ति मानवम्॥

(स्कन्द०, काशीखं०, ५७। ११५—११७)

इस वचनके अनुसार काशीके छप्पन विनायक सात आवरणोंमें विभक्त हैं। प्रथमावरणके अन्तर्गत अर्कविनायक, दुर्गविनायक, भीमचण्डविनायक, देहलीविनायक, उद्दण्डविनायक, पाशपाणिविनायक, खर्वविनायक तथा सिद्धिविनायकका वर्णन किया गया है। द्वितीयावरणके अन्तर्गत लम्बोदरविनायक, कूटदन्तविनायक, शालकटंकविनायक, कूष्माण्डविनायक, मुण्डविनायक, विकटदन्तविनायक, राजपुत्रविनायक एवं प्रणवविनायकका उल्लेख मिलता है। तृतीयावरणके अन्तर्गत वक्रतुण्डविनायक, एकदन्तविनायक, त्रिमुखविनायक, पंचास्यविनायक, हेरम्बविनायक, विघ्नराजविनायक, वरदविनायक और मोदकप्रियविनायकके विग्रह प्रसिद्ध हैं। चतुर्थावरणके अन्तर्गत अभयदविनायक, सिंहतुण्डविनायक, कूणिताक्षविनायक, क्षिप्रप्रसादविनायक, चिन्तामणिविनायक, दन्तहस्तविनायक, पिचिण्डिलविनायक तथा उद्दण्डमुण्डविनायकके नाम आते हैं। पाँचवें आवरणमें स्थूलदन्तविनायक, कलिप्रियविनायक, चतुर्दन्तविनायक, द्वितुण्डविनायक, ज्येष्ठविनायक, गजविनायक, कालविनायक एवं नागेशविनायकका उल्लेख हुआ है। छठे आवरणके अन्तर्गत मणिकर्णविनायक, आशाविनायक, सृष्टिविनायक, यक्षविनायक, गजकर्णविनायक, चित्रघण्टविनायक, स्थूलजंघविनायक और मंगलविनायकका नामोल्लेख हुआ है। मोदविनायक, प्रमोदविनायक, सुमुखविनायक, दुर्मुखविनायक, गणनाथविनायक, ज्ञानविनायक, द्वारविनायक तथा अविमुक्त-विनायककी प्रतिमाएँ सातवें आवरणके अन्तर्गत प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त छप्पन विनायकोंमेंसे छ:के दो-दो नाम मिलते हैं। लम्बोदरविनायक, वक्रतुण्डविनायक, दन्तहस्तविनायक, द्वितुण्डविनायक, गजविनायक तथा स्थूलजंघविनायक—ये क्रमशः चिन्तामणिविनायक, सरस्वतीविनायक, हस्तदन्तविनायक, द्विमुखविनायक, राजविनायक और मित्रविनायकके नामसे पुकारे जाते हैं।

वैसे काशीखण्डमें प्रमाणित इन सभी विनायकोंकी बड़ी महत्ता है, किंतु पंचक्रोशी-यात्राकी दृष्टिसे केवल दस गणेश ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनके नाम हैं—अर्कविनायक, दुर्गविनायक, देहलीविनायक, उद्दण्डविनायक, पाशपाणिविनायक, सिद्धिविनायक, मोदविनायक, प्रमोदविनायक, सुमुखविनायक और दुर्मुखविनायक।

छप्पन विनायकोंमें सुप्रसिद्ध देहलीविनायकका मन्दिर वाराणसीनगरसे १२-१३ मील पश्चिम तथा रामेश्वरसे डेढ़-दो मील दक्षिण पंचक्रोशी-मार्गमें काशीके पश्चिमद्वार देहलीविनायक नामक तीर्थस्थानपर स्थित है। देहलीविनायक-मन्दिरका निर्माण लेखपट्टके आधारपर संवत् १८४८ ज्ञात होता है; किंतु मन्दिर-विग्रहकी

स्थापना पुरानी है। इस मन्दिरकी ऊँचाई ४५—५० फीट है। प्रवेशके लिये उत्तर, दक्षिण और पूर्वदिशामें कुल तीन द्वार हैं। मुख्य प्रवेशद्वार उत्तरदिशामें है, जिसपर 'देहलीविनायक—काशीखण्ड' नामका शिलालेख लगा है। देहलीविनायक-मन्दिरका भीतरी कक्ष लगभग ११ फीट लंबा, ११ फीट चौड़ा वर्गाकार है। इस कक्षमें पश्चिमकी दीवारमें ३ फीट ऊँची गणेशकी प्रतिमा स्थापित है। यह मूर्ति गणेश-वाहन चूहेपर स्थापित की गयी है। चतुर्भुज गणेशके चारों हाथोंमें चार वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं। एक हाथमें वे शस्त्र और दूसरे हाथमें माला धारण किये हुए हैं। तीसरे हाथमें वे फल लिये हुए प्रतीत होते हैं और उनके चौथे हाथमें एक लड्डू है, जिसे पकड़कर वे खानेकी मुद्रामें दृष्टिगत होते हैं। मूर्ति अति श्रेष्ठ है। इस मूर्तिपर पञ्चक्रोशीके यात्री लड्डू, लावा, ईख और सत्तू चढ़ाते हैं। 'काशीखण्ड'के अनुसार भगवान् शशिशेखर शंकरने इन विनायकको द्वारपालके रूपमें प्रतिष्ठित कर काशीके पश्चिमी भागकी रक्षा करनेका आदेश दिया है। देहलीविनायक-मूर्तिके उत्तरमें १ फुट ८ इंच ऊँची नृसिंहभगवान्की प्रतिमा स्थापित है। द्वारगणेशके निकट ही पूर्वोत्तर दिशामें एक नन्दीकी मूर्ति है तथा सात शिवलिंग भी स्थापित हैं।

'उद्दण्डविनायक'का यह मन्दिर देहलीविनायक और रामेश्वर-तीर्थके मध्य भुइली-ग्रामके पूर्व पंचक्रोशी-मार्गमें पड़ता है। पंचक्रोशी-सड़कसे तीन सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद मन्दिरके बरामदेमें प्रवेश होता है। उद्दण्डविनायक-मन्दिरका बरामदा उत्तर-दक्षिण ७ फीट ९ इंच लंबा तथा पूर्व-पश्चिम ६ फीट चौड़ा है। इसकी ऊँचाई लगभग ६.५ फीट है। बरामदेके पूर्वी द्वारसे प्रवेश करनेपर उद्दण्डविनायक-मन्दिरका भीतरी कक्ष है, जो करीब ५ फीट लंबा और ५ फीट चौड़ा वर्गाकार है। इसमें दीपक जलानेके लिये ताखे बने हुए हैं। कक्षके दक्षिणकी दीवारमें उद्दण्डविनायककी प्रतिमा स्थित है। सर्वदा बड़े उद्दण्ड विघ्नोंको दण्ड देनेवाले ये विनायक 'उद्दण्डविनायक' कहे जाते हैं। उद्दण्डविनायककी मूर्तिकी ऊँचाई लगभग ४ फीट है। इनका पेट निकला हुआ है। ऐसा लगता है, ये पद्मासन लगाकर बैठे हैं। इनकी मूर्ति अस्पष्ट मालूम पड़ती है। गणेशके हाथ दिखायी नहीं पड़ते। मन्दिरके पूर्वकी दीवारमें 'उद्दण्डविनायक'—काशीखण्ड अंकित है।

'पंचास्यविनायक-मन्दिर' पिशाचमोचन-सरोवरके पूर्वभागमें भूतनाथके पीछे स्थित है। ये गणेश वाराणसीपुरीकी रक्षा करते हैं। पंचास्यविनायक-मूर्तिकी ऊँचाई २.५-३ फीट है। इस मूर्तिमें गणेशजी बैठे हुए दिखायी पड़ते हैं। इनका मुख पूर्वदिशामें है। पंचास्यविनायकके चार हाथ हैं। दो हाथोंमें क्रमसे वे त्रिशूल और शस्त्र धारण किये हुए हैं। शेष दो हाथ उनकी जाँघपर हैं। गणेशके निकट दक्षिणदिशामें एक प्रस्तरका शिवलिंग स्थापित है। शिवलिंगके निकट क्रमशः दुर्गा, अष्टभुजी दुर्गा और विष्णुभगवान्की प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

त्रिमुखविनायककी मूर्ति सिगरा-नामक स्थानपर है। इनके मुख क्रमशः वानर, सिंह और हस्तीके हैं, इसीलिये इनको 'त्रिमुखविनायक' कहते हैं। ये गणेश काशीके भयहर्ता कहे जाते हैं।

'हेरम्बविनायक'का मन्दिर काशी अनाथालयके निकट वाल्मीकिके टीलेपर स्थित है। यह टीला महर्षि वाल्मीकिकी तपःस्थली बताया जाता है। पक्की सड़कसे इस टीलेकी ऊँचाई ७०—८० फीट या इससे भी अधिक है। सड़कसे ४२ सीढ़ियाँ चढ़नेके पश्चात् हम वाल्मीकिके टीलेपर पहुँचते हैं। यहाँ लगभग १४ फीट लंबा और उतना ही चौड़ा एक मन्दिर है, जिसमें हेरम्बविनायककी एक फीट ऊँची प्रतिमा स्थापित है। इसमें गणेशजी बैठे हुए दिखाये गये हैं। हेरम्बविनायकके निकट मन्दिरकी पश्चिमी दीवारमें महर्षि वाल्मीकिकी मूर्ति चित्रित है। इस मूर्तिके समक्ष एक सुन्दर शिवलिंग स्थापित है।

'दन्तहस्तविनायक' की मूर्ति 'आज-कार्यालय'के निकट स्थित बड़े गणेशके घेरेमें है। मन्दिरके उत्तरी द्वारसे हम बड़े गणेशके घेरेमें प्रविष्ट होते हैं। यहाँसे कुछ दूर जानेपर एक बरामदेमें पूर्वकी दीवारमें दन्तहस्तविनायककी ढाई फीट ऊँची प्रतिमा स्थित है। दन्तहस्तविनायकके दस हाथ हैं। उनका एक हाथ मुँहमें है। ऐसा जान पड़ता है कि वे कुछ भक्षण कर रहे हैं। एक हाथके सहारे वे लक्ष्मीको धारण किये हुए हैं। इन गणेशके चरणोंके निकट उनका वाहन चूहा भी दृष्टिगत होता है। गणेशकी बायीं और दायीं ओर सिद्धि-बुद्धिकी मूर्तियाँ हैं।

'ज्येष्ठविनायक'की मूर्ति काशीपुरा मुहल्लेमें कालीदेवीके मन्दिरके निकट स्थित है। यह मूर्ति ज्येष्ठेश्वर महादेव (काशीखण्डमें प्रमाणित)-के मन्दिरमें पश्चिमी दीवारमें स्थापित है। ज्येष्ठविनायक खड़े दिखायी पड़ते हैं। इनकी ऊँचाई करीब दो फीट है। ज्येष्ठविनायक सब विनायकोंमें जेठे बताये गये हैं। ज्येष्ठ मासकी शुक्ल चतुर्दशीके दिन ज्येष्ठता पानेके लिये लोग इनकी पूजा करते हैं।

'मोदविनायक'की प्रतिमा काशी करवटमें एक पण्डितजीके मकानमें स्थित है। इस मूर्तिकी ऊँचाई करीब एक फीट है। मोदविनायक बैठे हुए दृष्टिगत होते हैं। मोदविनायक-मूर्तिके दक्षिण करीब ३० फीटकी गहराईमें भीमशंकर (भीमेश्वर) स्थित हैं। भीमेश्वरका वर्णन काशीखण्डके ६९वें अध्यायमें किया गया है। मोदविनायक-मन्दिरमें प्रतिमास कृष्ण गणेशचतुर्थीके दिन स्कन्दपुराणमें वर्णित 'संकष्ट-गणेशचतुर्थी-व्रत-कथा' होती है।

'प्रमोदविनायक'की प्रतिमा कचौड़ीगलीमें एक अग्निहोत्रीजीके मकानके पास स्थित है। इन गणेशकी ऊँचाई एक-डेढ़ फीट है। प्रमोदविनायक खड़े दृष्टिगत होते हैं। इस मूर्तिके निकट ९ शिवलिंग तथा ४ नन्दीकी मूर्तियाँ हैं।

'सुमुखविनायक'की प्रतिमा श्रीखत्रीजीके मकानके एक कक्षमें स्थित है। इस मूर्तिकी ऊँचाई ४-४॥ फीट और चौड़ाई ३.२५-३.५ फीट है। ये गणेश बैठे हुए दिखाये गये हैं।

'दुर्मुखविनायक'की मूर्ति सुमुखविनायकके निकट स्थित है। इस मूर्तिकी ऊँचाई ३ फीट है। दो भुजाओंवाले दुर्मुखविनायकके एक हाथमें लड्डू है और उनका दूसरा हाथ घुटनेपर है। इस मूर्तिके निकट एक ब्रह्माकी और एक नन्दीकी मूर्ति स्थापित है।

~~०~~

वृन्दावनके सिद्धगणेश

(लेखक—महन्त स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज)

श्रीराधाबाग वृन्दावनका एक प्रसिद्ध मन्दिर है, जहाँ भगवती कात्यायनीका दिव्य श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है। श्रीकात्यायनी-पीठमें स्थित गणपतिकी मूर्तिका भी एक विचित्र इतिहास है, जो इस प्रकार है—

एक अंग्रेज श्रीडब्लू० आर० यूल कलकत्तेमें मेसर्स एटलस इंस्योरेंस कंपनी लिमिटेडमें ईस्टर्न सेक्रेटरीके पदपर कार्य करते थे। इस कंपनीका कार्यालय ४, क्लाइव रोडपर स्थित था। इनकी पत्नी श्रीमती यूलने सन् १९११ या १९१२ ई०के लगभग जयपुरसे एक श्रीगणपतिकी मूर्ति खरीदी, जब कि वे इंगलैंड जा रही थीं। वे अपने पतिको कलकत्ता छोड़कर इंगलैंड चली गयीं तथा उन्होंने अपनी बैठकमें कारनिसपर गणपतिजीकी प्रतिमा सजा दी।

एक दिन श्रीमती यूलके घर भोज हुआ तथा उनके मित्रोंने गणेशजीकी प्रतिमाको देखकर उनसे पूछा—'यह क्या है?'

श्रीमती यूलने उत्तर दिया—'यह हिंदुओंका सूँड़वाला देवता है'। उनके मित्रोंने गणेशजीकी मूर्तिको बीचकी मेजपर रखकर उनका उपहास करना आरम्भ किया। किसीने गणपतिके मुखके पास चम्मच लाकर पूछा—'इसका मुँह कहाँ है?'

जब भोज समाप्त हो गया, तब रात्रिमें श्रीमती यूलकी पुत्रीको ज्वर हो गया, जो बादमें बड़े वेगसे बढ़ता गया। वह अपने तेज ज्वरमें चिल्लाने लगी, 'हाय! सूँड़वाला खिलौना मुझे निगलनेको आ रहा है।' डाक्टरोंने सोचा कि वह संनिपातमें बोल रही है; किंतु वह रात-दिन यही शब्द दुहराती रही एवं अत्यन्त भयभीत हो गयी। श्रीमती यूलने यह सब वृत्तान्त अपने पतिको कलकत्ते लिखकर भेजा। उनकी पुत्रीको किसी भी औषधने लाभ नहीं किया।

एक दिन श्रीमती यूलने स्वप्नमें देखा कि वे अपने बागके संलापगृहमें बैठी हैं। सूर्यास्त हो रहा है। अचानक उन्हें प्रतीत हुआ कि एक घुँघराले बाल और मशाल-सी जलती आँखोंवाला पुरुष हाथमें भाला लिये, वृषभपर सवार, बढ़ते हुए अन्धकारसे उन्हींकी ओर आ रहा है एवं कह रहा है—'मेरे पुत्र सूँड़वाले देवताको

तत्काल भारत भेज; अन्यथा मैं तुम्हारे सारे परिवारका नाश कर दूँगा।' वे अत्यधिक भयभीत होकर जाग उठीं। दूसरे दिन प्रातः ही उन्होंने उस खिलौनेका पार्सल बनाकर पहली डाकसे ही अपने पतिके पास भारत भेज दिया। श्रीयूल साहबको पार्सल मिला और उन्होंने श्रीगणेशजीकी प्रतिमाको कंपनीके कार्यालयमें रख दिया। कार्यालयमें श्रीगणेशजी तीन दिन रहे, पर उन तीन दिनोंतक कार्यालयमें सिद्ध-गणेशके दर्शनार्थ कलकत्तेके नर-नारियोंकी भीड़ लगी रही। कार्यालयका सारा कार्य रुक गया। श्रीयूलने अपने अधीनस्थ इंस्योरेंस एजेंट श्रीकेदारबाबूसे पूछा कि 'इस देवताका क्या करना चाहिये?' अन्तमें केदारबाबू गणेशजीको अपने घर ७, अभयचरण मित्र स्ट्रीटमें ले गये एवं वहाँ उनकी पूजा प्रारम्भ करवा दी। तबसे सभी श्रीकेदारबाबूके घरपर ही जाने लगे।

इधर वृन्दावनमें स्वामी केशवानन्दजी महाराज कात्यायनीदेवीकी पंचायतन पूजन-विधिसे प्रतिष्ठाके लिये सनातन-धर्मकी पाँच प्रमुख मूर्तियोंका प्रबन्ध कर रहे थे। श्रीकात्यायनीदेवीकी अष्टधातुसे निर्मित मूर्ति कलकत्तेमें तैयार हो रही थी तथा भैरव चन्द्रशेखरकी मूर्ति जयपुरमें बन गयी थी। जब कि महाराज गणेशजीकी प्रतिमाके विषयमें विचार कर रहे थे, तब उन्हें माँका स्वप्नादेश हुआ कि 'सिद्ध-गणेशकी एक प्रतिमा कलकत्तेमें केदारबाबूके घरपर है। जब तुम कलकत्तेसे मेरी प्रतिमा लाओ, तब मेरे साथ मेरे पुत्रको भी लेते आना।' अतः स्वामी श्रीकेशवानन्दजीने अन्य चार मूर्तियोंके बननेपर गणपतिकी मूर्ति बनवानेका प्रयत्न नहीं किया।

अन्तमें जब स्वामी श्रीकेशवानन्दजी श्रीश्रीकात्यायनी माँकी अष्टधातुकी मूर्ति पसंद करके लानेके लिये कलकत्ते गये, तब केदारबाबूने उनके पास आकर कहा—"गुरुदेव! मैं आपके पास वृन्दावन ही आनेका विचार कर रहा था। मैं बड़ी आपत्तिमें हूँ। मेरे पास पिछले कुछ दिनोंसे एक गणेशजीकी प्रतिमा है। प्रतिदिन रात्रिको स्वप्नमें वे मुझसे कहते हैं कि 'जब श्रीश्रीकात्यायनी माँकी मूर्ति वृन्दावन जायेगी तो मुझे भी वहाँ भेज देना।' कृपया आप इन्हें स्वीकार करें।" गुरुदेवने कहा—'बहुत अच्छा, तुम वह मूर्ति स्टेशनपर ले आना। मैं तूफान एक्सप्रेससे जाऊँगा। जब माँ जायगी तो उनका पुत्र भी उनके साथ ही जायगा। सिद्ध-गणेशजीकी यही मूर्ति भगवती कात्यायनीजीके राधाबाग मन्दिरमें प्रतिष्ठित है।

युगलविहार-धर्मशालाके पास 'श्रीमोटे गणेश'का एक विशाल मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीगणेशजीकी विशाल मूर्ति है। इनकी वृन्दावनमें बड़ी मान्यता है।

~~o~~

विदेशोंके गणेश-विग्रह और मन्दिर

(लेखक—श्रीगणेशप्रसादजी जैन)

उन सभी देशोंमें, जिनपर भारतीय-संस्कृतिका प्रभाव पड़ा या भारतीय जाकर बस गये, भारतीय देवताओंकी उपासनाका स्पष्ट प्रभाव दीखता है। भारतीय संस्कृतिका प्रभाव पश्चिममें तुर्किस्तान, उत्तरमें चीन और ईशानकोणमें जापानतक फैला हुआ था।

मलयद्वीप-पुंजमें जो 'गणेश'की प्रस्तरनिर्मित या धातुनिर्मित प्रतिमाएँ मिलती हैं, वे सामान्यतः भारतीय प्रतिमाओंके सदृश तो हैं ही, किंतु उनमें अन्य अनेक विशेषताएँ भी हैं। भारतीय गणेश-प्रतिमाएँ प्रायः पद्मासन, स्वस्तिकासन या अर्द्धासनसे बैठी मिलती हैं। इन आसनोंमें पाँव प्रायः एक-दूसरेके ऊपर-नीचे होते हैं। किंतु जावा आदिकी मूर्तियोंमें 'गणेश' इस प्रकार पालथी मारकर बैठे हैं कि दोनों पाँव भूमिपर समरूपमें पड़े हैं एवं उनके तलवे मिले हुए हैं। भारतमें सूँड़ प्रायः बीचमें ही दाहिनी या बायीं ओर मुड़ी होती है; किंतु विदेशोंमें वह बिलकुल सीधी जाकर सिरेपर मुड़ती है। कतिपय प्रतिमाओंके गलेमें मुण्डमाल है और उनके सिंहासनमें भी मुण्ड खुदे हैं। 'बाली'के जमबरन-स्थानकी एक मूर्तिके सिंहासनके चारों ओर अग्निशिखाएँ बनी हुई हैं और उनके दाहिने हाथमें मसाल है।

जावामें नदियोंके घाटों और दूसरे भयके स्थानोंपर गणेशजीकी मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। वहाँकी श्रीगणेशकी

स्थानक मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। यहाँ गणेशका कोई स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है। शिव-मन्दिरमें ही इनकी पूजा होती है। बर्मामें 'श्रीगणेशजी'की अधिक मूर्तियाँ हैं। यहाँ इन्हें 'महापिएन' कहा जाता है। 'पिएन' विनायकका विकृतरूप हो या विघ्न-शब्दका रूपान्तर (जिससे गणेशजी 'विघ्नेश्वर' कहलाये) 'पिएन' हो सकता है।

स्यामदेशमें भी गणेशजीकी अनेक मूर्तियाँ हैं। इनमें अनेक कलात्मक और सुन्दर हैं। मूर्ति-कलाकी जिस शैलीके अनुसार ये निर्मित हुई हैं, उसको 'अयूथियन' कहते हैं; क्योंकि उन दिनों स्यामदेशकी राजधानीका नाम भी अयूथिया (अयोध्या) था।

'स्यामदेश'के निवासी मंगोल हैं, परंतु उनकी संस्कृति आर्य-संस्कृतिसे ओत-प्रोत है। पहले तो वैदिक-धर्म ही वहाँका राजधर्म था, आज वे लोग बौद्ध हो गये हैं। किंतु राज्याभिषेक आदि आज भी वैदिक-विधिसे ही होते हैं।

कंबोडिया एशिया महाद्वीपके उस भागका टुकड़ा है, जिसे 'हिंद चीन' कहा जाता है। यहाँ 'गणेशजी' को 'केनेस' कहते हैं। कंबोडिया स्यामसे पूर्व है। इसका प्राचीन नाम 'कम्बुज' था। यह देश अपनी मूर्ति-राशिके लिये प्रसिद्ध है। यहाँकी श्रीगणेशकी आसन कांस्य-मूर्ति विशेष विख्यात है। पुरानी राजधानी 'अंकुरवट'को 'प्रतिमाओंकी खान' कहा जाता है। यहाँकी गणेश-मूर्तियाँ रूप एवं कलामें भिन्न पायी जाती हैं।

चीनमें गणेशजीका प्रवेश 'विनायक'-रूपमें ही हुआ होगा। उनकी मूर्तियाँ चीनी यात्री अपने साथ ले गये होंगे। वहाँ जाकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी। कारण स्पष्ट है कि ''जातकके कथानुसार 'बुद्धदेव'की माताको स्वप्न हुआ कि एक हाथी उनके कोखमें प्रवेश कर रहा है। उसी गर्भसे तथागत बुद्ध जन्मे थे। इसलिये चीनमें हाथी बुद्धका प्रतीक मानकर पूजा जाता है। सम्भवतः इसी कारण हस्तिमुख गणेश भी उनके आराध्य देवता हो गये हों।''

चीनके तुनहु-आंगमें एक गुफाकी दीवारपर मूर्तियाँ बनी हैं। ये मूर्तियाँ उसी ढंगकी हैं, जैसी कि अजन्ताकी हैं। इनको या तो भारतीय शिल्पियोंने चित्रित किया है या उनके चीनी शिष्योंने। इनमें बुद्ध-मूर्तियोंके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, कामदेव आदिके साथ-साथ गणेशजीकी भी मूर्ति है। उन्होंने सिरपर पगड़ी और पाँवमें सलवार पहन रखा है। कुंग हिसएनके गुफा-मन्दिरमें जो मूर्ति है, उसके साथ उसके निर्माणकी तिथि (सं० ५८८) अंकित है। इतनी प्राचीन मूर्ति कदाचित् भारतमें भी उपलब्ध नहीं है। यह विनायककी मूर्ति है। इसपर चीनी-भाषामें लिखा है कि 'यह हाथियोंके अमानुष राजाकी मूर्ति है।' वहीं नागों, मछलियों तथा पेड़ोंके अमानुष राजाओंकी भी मूर्तियाँ हैं। चीनमें गणेशजी दो नामोंसे प्रख्यात हैं—'विनायक' और 'कांगितेन'। यहाँ अन्य देवताओंकी अपेक्षा विनायक-पूजनका विशेष महत्त्व है। नृत्यगणपतिकी पूजा यहाँ विशेषरूपमें होती है।

जापानके कोबो दाइशी (सुप्रसिद्ध) विद्वान्ने चीनके बौद्धाचार्योंसे शिक्षा ग्रहणकर १९वीं शतीमें अपने यहाँ 'विनायक'-पूजन प्रचलित कर दिया था। अब यहाँके शिंगवैन-सम्प्रदायमें भी विनायक-पूजाका प्रचलन जारी है।

तिब्बतमें प्रत्येक मठके अधीक्षकके रूपमें विनायक (गणपति)-पूजन प्रचलित है। बोर्नियों तथा बालीद्वीपमें गणेश-पूजनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा है। यहाँ बड़े ही समारोहपूर्वक गणेश-पूजनके सभी कृत्य होते हैं। नेपालमें बौद्ध-धर्मके साथ-साथ हेरम्ब और विनायकके नामसे गणपतिमूर्तिका पूजन देशभरमें बड़ी भक्ति और श्रद्धासे होता है। वहाँकी सिंहवाहिनी शक्तिसहित मूषक-वाहन हेरम्बकी मूर्ति विशेष प्रख्यात है।

अमेरिकामें लम्बोदर गणेशकी मूर्ति मिलती है। दीवान श्रीचम्मनलालने अपनी रचना 'हिंदू-अमेरिका'में विस्तृतरूपसे गणेश-पूजापर प्रकाश डाला है। कोलंबसद्वारा अमेरिकाका आविष्कार होनेके पूर्व ही वहाँ गणेश, सूर्य आदि भारतीय देवताओंकी मूर्तियाँ उपलब्ध हो चुकी थीं। इससे सिद्ध है कि भारतीयोंने ईसवी सन्से बहुत वर्षों पूर्व अमेरिकामें भी अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था।

यूनान-निवासी गणेशका पूजन 'ओरेनस'के नामसे करते हैं। उनके धार्मिक-ग्रन्थोंमें ओरेनसकी अत्यधिक महत्ताका वर्णन उपलब्ध है। हिंदू-धर्म-ग्रन्थोंके अनुसार गणेश 'लक्षसिन्दूरवदन' कहलाते हैं। यूनानियोंके 'ओरेनस' और भारतीयोंके 'अरुणास्य' सम्बोधन एक-से प्रतीत

होते हैं। 'अरुणास्य'का अपभ्रंशरूप 'ओरेनस' प्रतीत होता है।

ईरानी पारसियोंमें 'अहुरमज्दा' नामसे गणेशकी उपासना की जाती है। 'जेन्दवस्ता'की पचासों आयतें 'अहुरमज्दा'की लोकोत्तर शक्तियोंका वर्णन करती हैं। फारसी-भाषामें '**स**' प्रायः '**ह**' कारमें परिवर्तित हो उच्चरित होता है। 'सप्त' को 'हप्त', 'मास'को 'माह' आदि बोलते हैं। इसी प्रकार 'अहुरमज्दा' भी 'असुरमदहा'का ही अपभ्रंश होना चाहिये। हिंदू-पुराणोंमें 'गणेश'द्वारा असुरोंके पराजित होनेकी अनेक गाथाएँ हैं। इसीलिये गणेश 'असुरमदहा' (असुरोंका मद हरनेवाला) नामसे विख्यात हैं और यह नाम अन्वर्थक भी है।

चीनी और जापानी बौद्ध त्रिमूर्ति गणेशकी उपासना (फो) नामसे करते हैं। मिस्रदेशके इतिहासज्ञ 'हर्मिज'ने लिखा है कि "सब देवोंका वह अग्रिम है। जिसका विभाग नहीं हो सकता, जो बुद्धिका अधिष्ठाता है, उसका नाम 'एकटोन' है। सम्भवतः वे देव 'गणेश' ही हैं; क्योंकि ये ही अग्रपूजनीय हैं और 'एकटोन'-शब्द एकदन्तका ही पर्यायवाची है।"

श्रीमती एलिस गेट्टीने अपनी पुस्तक 'गणेश' में जो १९३६में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेससे प्रकाशित हुई है, गणेश-पूजन आदिपर विस्तृत विवेचना की है। एलिस गेट्टीके कथनानुसार तमिळ भाषामें गणेशका नाम—'पिल्लैयर', भोटमें 'सोम्सदान, बर्मामें 'महापिएन', मंगोलियामें 'बातरलारुमखागान्', कंबोडियामें 'पाट्टकेनीज', जापानीमें 'कांगितेन' और चीनीमें 'कुआन-शी-तिएन' आदि-आदि हैं।

उपर्युक्त तथ्यों और प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि उत्तरी मंगोलियासे लेकर दक्षिणमें बालीद्वीपतक और जापानसे अमेरिकातकमें श्रीगणेशका पूजन पद्धति-अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारोंसे अति प्राचीनकाल, बल्कि आदिकालसे ही प्रचलित था।

दक्षिण अमेरिकाके ब्राजील-नामके स्थानकी खुदाईमें जो गणेशकी मूर्ति मिली है, उसे पुरातत्त्वविदोंने चार-पाँच हजार वर्ष प्राचीन माना है। इससे यह सिद्ध है कि कोलंबसके जन्मके पूर्वकालसे ही अमेरिकी-जनतामें श्रीगणेश श्रद्धाके पात्र रहे और उनका पूजन आदि होता रहा। आज भी गणेशके भक्त वहाँ विद्यमान हैं।

~~~०~~~

विदेशोंमें श्रीगणेश-पूजा

(लेखक—पं० श्रीहिमांशुशेखरजी झा, एम्० ए०)

सर्वलोकवन्दित भगवान् गणेशकी अर्चनाका आलोक केवल भारतवर्षको ही नहीं, प्रत्युत विश्वके अन्य अंचलोंको भी सदियोंसे उद्भासित करता आया है। वाचस्पति विनायककी आराधनाका जो प्रदीप अनेक शताब्दियोंके पूर्व भारतेतर राष्ट्रोंमें जलाया गया था, वह आज भी निर्धूम और निष्कम्प जल रहा है। इससे लोकभावन भगवान् गणेशके प्रति लोकमानसमें व्याप्त श्रद्धा और प्रेमका पता चलता है।

विदेशोंमें श्रीगणेश-पूजाके सम्बन्धमें ऑक्सफोर्डके क्लारेंडन प्रेससे प्रकाशित 'गणेश—ए मोनोग्राफ ऑफ द एलीफेंट-फेस्ड गॉड'[1]-नामक पुस्तकमें विशद वर्णन किया गया है। इस पुस्तकमें प्रकाशित तथ्योंके अनुसार भारतके अतिरिक्त चीन, चीनी तुर्किस्तान, तिब्बत, जापान, बर्मा, स्याम, हिंद-चीन, जावा, बाली तथा बोर्नियोमें भी श्रीगणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। इन मूर्तियोंसे उन-उन देशोंमें श्रीगणेशके नाम और पूजनके प्रसारका पता चलता है। बोर्नियोकी श्रीगणेशकी आसन कांस्य मूर्ति विशेष प्रसिद्ध है। चीनमें श्रीगणेशकी दो मूर्तियाँ एक साथ जुड़ी हुई खड़ी मुद्रामें पायी जाती हैं। चीनी भाषामें भगवान् श्रीगणेशका नाम है—'कुआन-शी-तिएन'! जापानमें विघ्नेश श्रीगणेशकी जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनके दो अथवा चार हाथ दिखाये गये हैं। जापानी भाषामें भगवान् श्रीगणेशको 'कांगितेन'के नामसे सम्बोधित किया जाता है। चीन और जापानके अतिरिक्त जावामें भी श्रीगणेश-पूजनके प्रमाण मिलते हैं। 'शैवमत'[2]-नामक पुस्तकके लेखकके मतानुसार जावामें ब्राह्मणधर्मका

१. 'गणेश-ए मोनोग्राफ ऑफ द एलीफेंट-फेस्ड गॉड'—एलिस गेट्टी' क्लारेन्डन प्रेस' ऑक्सफोर्ड, युनाइटेड किंगडम।
२. 'शैवमत'—डॉ० यदुवंशी, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना (१९५५ ई०)।
~~~

प्रचार प्राचीनकालमें ही हो चुका था। आठवीं शतीके उत्तरार्ध अथवा नवीं शतीके पूर्वार्धतक वहाँ गणेश-पूजाका प्रचार भी हो गया था। जावा-स्थित 'चण्डी-बनोन'-नामक शिवमन्दिरमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशके साथ गणेशकी मूर्ति भी अंकित है। तिब्बतमें भी गणेशकी प्रतिमाएँ पायी जाती हैं। तिब्बतमें शैव एवं बौद्ध—दोनों ही प्रकारके मन्दिरोंमें गणेशजीकी मूर्तियाँ पायी गयी हैं। नेपालमें भी गणेश-पूजाके सम्बन्धमें प्रमाण मिले हैं। नेपालकी राजधानी काठमाण्डूमें गणेशकी प्रतिमाएँ पायी गयी हैं। नेपालमें 'सूर्य-विनायक'के रूपमें भगवान् श्रीगणेशकी पूजा की जाती थी। स्याममें भी श्रीगणेशकी प्रतिकृति मिली है। चंपाकी तरह कंबोडियामें शिवोपासनाके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इन क्षेत्रोंमें गणपति-विग्रह पाये जाते हैं। हिंद-चीनमें अन्य देवताओंके साथ गणपतिकी प्रतिमा भी पायी जाती है। वहाँ ऐसे शिलालेख मिले हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि उस क्षेत्रमें अनेक शताब्दियोंपूर्व भगवान् गणेशके नामका प्रचार हो गया था। तिब्बत, बर्मा, स्याम, हिंद-चीन, जावा, बाली, बोर्नियो, चीन, जापान तथा खोतानके अतिरिक्त उत्तरी मंगोलियामें भी श्रीगणेश-पूजाका प्रचार था। 'पुराण-विमर्श,* के लेखकके मतानुसार ''नेपालमें बौद्धधर्मके साथ ही गणपति-पूजाका भी प्रचलन है और वहींसे गणेशोपासनाका प्रसार खोतान, चीनी तुर्किस्तान तथा तिब्बतमें भी हुआ। चीनी तुर्किस्तानसे प्राप्त चतुर्भुज गणेशका भित्ति-चित्र विशेष महत्त्वपूर्ण है। नवम शतीके बाद जापानमें भी श्रीगणेशकी पूजा आरम्भ हुई।'' 'पुराण-विमर्श' नामक पुस्तकमें अमेरिकामें भी श्रीगणेशकी मूर्तिके मिलनेका उल्लेख है। इस प्रकार भारतके बाहर भी यत्र-तत्र न्यूनाधिक मात्रामें वक्रतुण्ड श्रीगणेशकी पूजा प्रचलित रही है।

भले ही भगवान् गणेशके नाम तथा गुणोंसे संसारके अधिकांश मानव अपरिचित हों तथा उनकी पूजामात्र भारत एवं भारतेतर कुछ क्षेत्रोंतक ही सीमित हो, परंतु प्राणियोंकी बुद्धिरूपिणी गुहाओंमें तो ज्योतियोंकी भी ज्योति परमात्मा सदा विराजमान हैं ही। ब्रह्माण्डका कोई ऐसा भाग नहीं है, जहाँ परमब्रह्म श्रीगणेशका निवास न हो तथा कोई ऐसा जीव नहीं है, जो उनसे रहित हो—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

(गीता १३। १७)

~~~0~~~

उदयवर्ष (जापान)-में गणेश

(लेखक—डॉ० श्रीलोकेशचन्द्र, डी० लिट्०)

देवत्वका वह प्रकटीकरण, जिसे हमारी इन्द्रियाँ समझ सकें, गणोंके रूपमें अभिव्यक्त किया जाता है। जो भी गण्य—बुद्धिगम्य हैं, वे गण हैं—'**गण्यन्ते बुद्ध्यन्ते ते गणाः**' यह गण ही सृष्टिके अस्तित्वका मूलतत्त्व है और इन गणोंका अधिपति 'गणपति' ही सृष्टिका स्वामी है। गजशीर्ष-मानव अर्थात् गणपति लघु ब्रह्माण्डकी महत् ब्रह्माण्डसे एकता अभिव्यक्त करता है, जिसमें महत्को गजके रूपमें चित्रित किया गया है। गणपति लम्बोदर हैं; क्योंकि 'नाना विश्व उन्हींके उदरसे उत्पन्न हुए हैं—**तस्योदरात् समुत्पन्नं नाना विश्वम्।**' किंतु वे स्वयं इन सबसे परे हैं।

जापानकी आत्माने कोबो दाइशिके विलक्षण व्यक्तित्वके रूपमें पारगामी मार्ग अपने लिये चुना; इसलिये जापानकी गुह्यप्रणाली अर्थात् मन्त्र-यानमें गणेश भी अन्तर्भूत हो गये हैं। सन् ८०४ में कोबो दाइशि (७७४—८३५ ई०) 'धर्मकी खोज'में चीन गया, जहाँ वज्रबोधि और अमोघवज्र-जैसे महान् भारतीय आचार्योंद्वारा मूल ग्रन्थों और भाष्योंके किये गये चीनी अनुवादोंके कारण यह गुह्य-प्रणाली अपने उच्चतम शिखरपर पहुँची हुई थी।

अमोघवज्र या अमोघज्ञान (सन् ७०५—७७४ ई०) एक भारतीय ब्राह्मण था, जो सन् ७२० ई० में चीनकी राजधानी लो-याङ् पहुँचा और लो-याङ्के कुआङ्-फू-मन्दिरमें उसे दीक्षित किया गया। चीनी सम्राट्ने उसपर विशेष कृपा-वृष्टि की और अपने

* 'पुराण-विमर्श'-श्रीबलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी—१
~~~

राज-दरबारमें उसे अत्यधिक सम्मान प्रदान किया। युआन्-चाउने अपने 'वाग्मिता और प्रज्ञाके त्रिपिटक-भदन्त अमोघकी संस्मरणावली'में उसे 'प्राचीनों और नवीनोंमें अप्रतिम' कहा है। उसने साम्राज्यके विविध मठोंमें बिखरी हुई संस्कृत पाण्डुलिपियाँ एकत्र करायीं तथा उनका पुनरुद्धार, अनुवाद और प्रचार कराया। वज्रबोधिके अधीन अमोघने 'वज्रधातुकल्प'का मुख्यरूपसे अध्ययन किया। उसके इस वैचारिक विकासका आधारतत्त्व यही बना कि 'आचरण और उपलब्धिकी दृष्टिसे लोकप्रचलित धर्मकी अपेक्षा मन्त्र-यानकी रीति ही अधिक उपयोगी और कार्यक्षम है।' जटिल मन्त्रयानी ग्रन्थोंको चीनीमें अनूदित करना लगभग असम्भव था। यह अमोघवज्रकी ही प्रतिभा और अपने जीवनमें अधिक समयतक चीनमें रहनेके कारण चीनी भाषापर उसके अधिकारके वशकी बात थी कि कठिन संस्कृत-विषयवस्तु प्रवाहपूर्ण सुन्दर चीनीमें अनूदित की जा सकी। उसने 'वज्रधातुकल्प'के अंशोंका चीनीमें अनुवाद किया, जो 'चिन्-काङ्-तिङ्-ई-चिये-जु-लई-चन्-शिह-तशे-चङ्ष्येन-चङ्-ता-चियाओ-बाङ्-चिङ्' नामसे वज्रशेखर योगसूत्रके प्रथम संग्रहका एक भाग है, जिसका संस्कृत रूपान्तर 'वज्रशेखर-सर्वतथागत-तत्त्वसंग्रह-महायान-प्रत्युत्पन्नभिसम्बुद्ध-महातन्त्रराज-सूत्र' होगा। अतः आगेके लिये वज्रधातुकल्प गुह्य तन्त्र-योगकी विविध ध्यान-पद्धतियोंका आधार बन गया, जिनमें गणेशको सम्मानपूर्ण स्थान मिला हुआ है।

अमोघवज्रके प्रतिभावान् चीनी शिष्य हुई-कुओ (सन् ७४६—८०५ ई०)-से कोबो दाइशिने मन्त्रयानकी दीक्षा या अभिषेक प्राप्त किया। कोबो दाइशिने मन्त्रयानके नये मार्गका सारतत्त्व लिया, जिसका रोपण तो चीनमें किया गया था, परंतु वह पुष्पित और फलित हुआ जापानमें। सन् ८०६ ई० में जब कोबो जापान लौटा, तब उसमें गहन देवताओंने अवतार ले लिया था। होमने निम्न वासनाओंको समाप्त कर दिया और उसका सम्पूर्ण अस्तित्व एक नयी दृष्टिसे जगमग-जगमग कर रहा था।

वज्रधातुकी विवेचना करनेवाले सूत्रोंके साथ कोबो दाइशि अपने साथ वज्रधातु-मण्डलके रूपमें उनके चित्र भी ले गया। इन्हें हुई-कुओने कोबो दाइशिके लिये 'तत्त्वसंग्रह'के अनुसार प्रसिद्ध चित्रकार ली-चनसे चित्रित करवाया, जिसकी इस कार्यमें सहायता दससे अधिक अन्य चित्रकारोंने की। मूल-मण्डल बहुरंगी था; केन्द्रीय वज्रधातु-मण्डलमें महाभूतमण्डल नामक केन्द्रीय वर्गके बाह्य-वृत्तमें गणेश या विनायक पाँच रूपोंमें अभिव्यक्त किये गये। इसलिये जापानमें गणेश-पूजाका सर्वप्रथम उल्लेख सन् ८०६ ई० माना जायगा, जिस वर्ष कोबो दाइशि स्वदेश अर्थात् जापान लौटकर आया था।

जापानीमें गणेशके नाम विनायक, शोदेन और कांगितेन हैं। हिजोकीमें सामान्यतः 'विनायक' शब्दका प्रयोग हुआ है। कांगितेनका अर्थ 'सुख-समृद्धि और कुशलताका देवता' है। शोदेनको संस्कृतमें 'आर्यदेव' कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त उनके विशिष्ट रूपोंके पृथक्-पृथक् नाम भी हैं।

वज्रधातु-मण्डलमें गणेशके पाँच रूप इस प्रकार चित्रित हैं—

१-विनायक अथवा विनायक-तेन अथवा कांगि-तेन—जापानीमें जिसका अर्थ है—'भाग्य-देवता'। इसके एक हाथमें मूली है तथा दूसरेमें लड्डू।

२-हिजोकीके अनुसार, जिसमें कोबो दाइशिने मन्त्रयानके सिद्धान्तपर अपनी टिप्पणियाँ संगृहीत की हैं, प्रदक्षिणा उत्तर-पूर्वके कोनेसे आरम्भ की जाती है। पूर्वमें वज्रच्छिन्न हैं, जिसे जापानीमें 'कोंगो-जाई-तेन' कहते हैं। हिजोकी इसे 'छत्र-विनायक' कहता है। ये श्वेत छत्रधारी हैं।

३-दक्षिणमें वज्रभक्षण है, जिसे जापानीमें 'कोंगों-जिकी-तेन' कहते हैं। हिजोकीमें इसे 'माल्यविनायक' कहा गया है। यह पुष्प-मालासे अलंकृत है।

४-पश्चिममें 'वज्रवासिन्' है, जिसे जापानीमें 'कोंगो-एतेन' कहते हैं। हिजोकीके अनुसार यह धनुष-बाणधारी विनायक अर्थात् 'धनुर्विनायक' है।

५-उत्तरमें 'जय' है, जिसे जापानीमें 'जोबुकुतेन' कहते हैं। हिजोकीके अनुसार यह खड्गधारी है और इसका वर्ण रक्ताभ है। यह 'खड्ग-विनायक' है।

यह द्रष्टव्य है कि हिजोकीके अनुसार गणेशके सभी रूपाभिधानोंके साथ 'विनायक' संज्ञा दी हुई है। कोबो दाइशिने इसे हुई-कुओसे उस मौखिक परम्पराद्वारा

ग्रहण किया होगा, जो पीछेकी ओर अमोघवज्र और वज्रबोधितक पहुँचती है। गणेशके ये पाँचों रूप मन्त्रयानकी रक्षा करनेवाले बीस देवताओंमें सम्मिलित किये गये हैं। इनकी गणना 'कांगोचोयुग-चूर्याकुशुत्सुनेनजुक्यो' में भी की गयी है, जिसका अनुवाद ताङ्वंशके समय सन् ७२३ ई०में वज्रबोधिने किया था। गणेशके विविध रूपोंके नाम और स्थान ग्रन्थ-ग्रन्थमें थोड़े-थोड़े भिन्न हैं; जैसे कि 'कियाओ वाङ् चिङ'में देखनेको मिलता है। इसका चीनी अनुवाद उत्तर शुङ्वंशकालमें सन् ९८०—१००० ई०में संस्कृतके 'सर्वतथागततत्त्वसंग्रह' नामक ग्रन्थसे दानपालने किया। पंच-गणेशोंकी गणना 'केंगोजुरोकुसोन'-में भी की गयी है।

वज्रधातु-मण्डलके अन्य नौ भागोंमें पंच-गणेशोंमेंसे प्रत्येकके और रूपोंका उल्लेख भी है। इन नौ भागोंके नाम इस प्रकार हैं—१-वज्रधातु-महाभूतमण्डल, २-समयमण्डल, ३-सूक्ष्ममण्डल, ४-पूजामण्डल, ५-चतुर्मुद्रामण्डल, ६-एकमुद्रामण्डल, ७-नयमण्डल, ८-त्रैलोक्यविजय-कर्ममण्डल तथा ९-त्रैलोक्यविजय-समयमण्डल। ऊपर बताये रूपोंका वर्णन और अंकन पहले महाभूतमण्डलके अनुसार है।

दूसरे समय-मण्डल अर्थात् धारणी-मण्डलमें गणेशके रूप, महाभूतमण्डलके रूपोंका समय अर्थात् गुह्य रूप है। इसमें प्रत्येक देवताको किसी प्रतीक अथवा उसकी एक या एकाधिक विशिष्ट वस्तुओंके अंकनसे प्रकट किया गया है। 'समय'का अर्थ व्रत या संकल्प या देवताकी मूलभूत विशिष्टता है। समय-रूपमें पंच-गणेशोंके अंकनमें उनके विशेष चिह्नोंको कमलपत्रोंपर अंकित किया गया है, जिनसे किरणें प्रतिभासित हो रही हैं। विनायकका प्रतीक लड्डू रखा गया है। इन्हें लेखककी 'दि इसोटेरिक इकानोग्राफी ऑफ जैपेनीज मण्डल्स' पुस्तकमें भी देखा जा सकता है।

तीसरे सूक्ष्म-मण्डलमें देवताओंको वज्र अर्थात् परमके सूक्ष्म और अनश्वर ज्ञानके रूपमें दिखाया गया है। इसीलिये '**शे पा हुएई चे कुएई**' इसे 'सूक्ष्म-वज्र-मण्डल' कहता है। चित्रोंमें देवताओंको त्रिशूली वज्रपर अधिष्ठित दिखाया गया है। बीस देवता, जिनमें पंच-गणेश भी हैं, वज्रपर अधिष्ठित नहीं हैं, इसलिये उनके रूप, हस्तमुद्राओंमें सामान्य परिवर्तनके अतिरिक्त, प्रथम महाभूत-मण्डलके समान ही हैं। इनके चित्र भी लेखककी अंग्रेजी पुस्तक 'दि इसोटरिक इकानोग्राफी ऑफ जैपेनीज मण्डल्स' में देखे जा सकते हैं।

चौथे पूजामण्डलमें पंच-गणेशोंकी स्थिति पहले मण्डलके समान ही है। इन्हें भी उपर्युक्त पुस्तकमें देखा जा सकता है। मूल काष्ठचित्रोंमें, जिनसे पुनरंकन किया गया है, माल्य-विनायक और खड्ग-विनायक दो बार हैं तथा छत्रविनायक और धनुर्विनायक नहीं हैं। विनायक वहाँ ६७२ संख्यापर है।

आठवें अर्थात् त्रैलोक्यविजय-कर्ममण्डलमें भी देवांकन प्रथम महाभूत-मण्डलके ही समान है। नवें त्रैलोक्यविजय-समय-मण्डलमें पंच-गणेशोंका अंकन द्वितीय समय-मण्डल-जैसा है। इन्हें कमलपत्रपर आसीन अंकित किया गया है, जिसके चतुर्दिक् ज्वालाएँ बनायी गयी हैं। इन्हें भी उपर्युक्त पुस्तकमें देखा जा सकता है।

पंच-गणेशोंके चित्रांकनको दो वर्गोंमें रखा जा सकता है—

(१) मानवपशु-आरोपित, जैसा भारतमें है और (२) प्रतीक या समयरूपी, जिसकी परम्परा भारतमें लुप्त हो गयी है; यद्यपि मूल संस्कृत-ग्रन्थोंके चीनी और तिब्बती अनुवादोंसे यह देखी जा सकती है।

वज्रधातुमण्डलके अतिरिक्त कोबो दाइशि 'महाकरुणगर्भमण्डल' भी लाया था। इसके 'वज्रलोक'में गणपतिको परशु और मूलीद्वारा अंकित किया गया है। जापानीमें इसका नाम 'विनायक' तथा सिद्धम्-लिपिमें 'गणपत' दिया गया है और इसका बीज 'ग' है।

९वीं शताब्दीकी हस्तलिपिमें परशु और मूलीवाले गणेशका एक सुन्दर चित्र क्योतोके दाइगोजी-विहारमें रखा हुआ है। यह हस्तलिपि सन् ८२१ ई०में लिखी गयी तथा इसका शीर्षक 'शिशु-गोम-होनजन-नरविनी-केनजोकु-जुजो' अर्थात् 'चतुर्विध होमके प्रधान देवता और उनके परिचरोंके चित्र' हैं।

जापानी पूजा-पद्धतिमें भक्तके अन्तस्को रूपान्तरित करनेके लिये देवताओंके रूपकी स्थितिको मनमें बैठानेमें मुद्राओंका अविभाज्य अंश है। जापानी ग्रन्थ '**दाइनिचिक्यो**'के अनुसार मुद्राएँ हस्त-संकेत, विचारों, समर्पणों, धारणी-मन्त्रों—सभी कुछको, जो रूपसे परे है, दृश्यमान रूप प्रदान करती हैं, जिससे चिन्तनके

जापानकी मूर्तिकलामें प्राप्त श्रीगणेशके कुछ रूप

'विनायक'-विग्रह
'कोबोदाइशि'के 'वज्रलोक'के अनुसार
(हाथमें परशु और मूली लिये हुए)

त्रिमुख-चतुर्भुज गणेश—
(दो हाथ जुड़े हुए, अन्य दोमें मूली और लड्डू)

सुवर्णगणपति
(हाथमें अंकुश, गदा, परशु, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि लिये हुए)

युग्म गणेश

क्षेत्रमें भौतिक जगत्से परेकी स्थिति सुदृढ़ हो जाती है। पूजाके लोकप्रिय मुद्रा-ग्रन्थमें, जिसका नाम '**शिंगो-मिक्कयो-जु-इन-शू**' अर्थात् 'मन्त्रयान-मुद्राओंके उद्रेखणोंका संग्रह' है, विनायककी मुद्रा भी दी हुई है।

शोदेन (आर्यदेव) या गणपतिकी भी दो मुद्राएँ हैं। महाकरुणोद्भव-महामण्डलके 'बुसेत्सु-दईबीरुशन-जोबुत्सुजिम्बेन-काजी-क्यों-शु-शिंगौं-ग्यो-दाइही-तइजोशो-दई-मन्दर-ओ-फुत्सु-नेजु-गिकी'-नामक कल्पमें पंच-गणेशोंकी अलग-अलग मुद्राएँ और मन्त्र दिये गये हैं—

१-विनायक और उसकी देवी। साथमें '**ओं वज्र विनायकाय हूम्**' मन्त्र है; २-वज्रछिन्न और वज्रछिन्नी, ३-वज्रभक्षण और वज्रभक्षिणी, ४-वज्रवासिन् और वज्रवासिनी तथा ५-वज्रजय और वज्रजयी।

गणेशको बीजरूपमें भी चित्रित किया गया है। बीज अक्षरको जापानीमें 'शुजि' कहते हैं; बीज-मन्त्रके उच्चारणसे भक्तमें उसकी शक्ति और सत्त्व व्याप्त हो जाते हैं और उस देवता और भक्तिकर्तामें आध्यात्मिक सांनिध्य स्थापित हो जाता है। क्वाम्बुन-युग (सन् १६६१—७३ ई०)-में भिक्षु चोजेनद्वारा प्रकाशित 'शुजिशू' बीज-संग्रहमें पृष्ठ ५९ पर गणेशका बीज 'गः' या 'गः-गः' की यह परम्परा आजतक सुललित सिद्धम्-लिपिमें दी हुई है। यह बीज-परम्परा यथावत् चली आ रही है। 'बोनशु-शित्तान-शुजि रुइशु' नामक आधुनिक 'सिद्धम्-बीजसंग्रह'में चोजेनद्वारा बनाये हुए बीज उद्धृत किये गये है। गः-द्वय गणेशके दो रूपोंके स्वरूप चित्रणके प्रतीक हैं। उसी ग्रन्थमें दूसरा बीजाक्षर 'कं' है, जो '**ॐ गः गः हूम् स्वाहा**' मन्त्रसे संयुक्त है।

कोबो दाइशिद्वारा सन् ८०६ ई०में चीनसे लाये गये मूल बहुरंगी-मण्डलसे लगभग सन् ८२४ ई०में टैंको-युगमें ताकाओ-मण्डल चित्रित किया गया। इसकी अनुकृति बैंगनी कौशेय वस्त्रपर सोने-चाँदीकी रेखाओंमें की गयी। इस समय यह जिंगोची विहारमें सुरक्षित है। इसमें सभी पंच-गणेश अपने सम्पूर्ण रूपोंमें वज्रधातु-मण्डलके छः उपमण्डलोंमें चित्रित किये गये हैं।

मूल बहुरंगी-मण्डलकी दूसरी प्रति तोजी-विहारमें रखी हुई है। ९वीं शताब्दीके अन्तमें इसकी पहली प्रतिलिपि तैयार की गयी। इसकी खोज एक काले लाक्षित बक्समें १९३४ ई०में की गयी, जिसके ढक्कनकी पीठपर ८९९ ईस्वीका लाक्षित अभिलेख भी है। यह शिंगोन-इन-मन्दिरमें रखी हुई है। इसमें पंच-गणेशोंके सभी रूप बनाये हुए हैं।

केन्कूय-युग(११९०—११९८)-में मूलतोजी-मण्डलसे कौशेय(रेशमी)-वस्त्रपर वज्रधातु-मण्डल चित्रित किया गया। इसमें छः उपमण्डलोंमें आये हुए पंच-गणेशोंके सभी रूप विद्यमान हैं। वज्रधातु-मण्डलकी निम्नलिखित हस्तलिपियोंमें भी पंच-गणेश अपने लोकप्रचलित तथा गुह्य रूपोंमें दिखाये गये हैं।

१-कोजानजी-हस्तलिपिमें कामाकुरा-कालकी समाप्तिके लगभग १४ वीं शताब्दीमें ताकाओ-मण्डलकी नयी प्रतिलिपि तैयार की गयी, जो क्याताके कोजानजी-विहारको सौंपी गयी।

२-केईशो-इन-हस्तलिपिमें १६९३ ई०में भिक्षु शूकाकुने दाता केईशो-इनके लिये मण्डल चित्रित किया। यह प्रति तोजी-विहारमें उपयोग की जाती है।

३-१७७३ ई०में काष्ठ-खण्डोंसे छपाई करानेके लिये कोयासानके भिक्षु जोतोने शिमिजु नोबुमाससे तोजी-मण्डलकी प्रतिलिपि करायी। इसका आकार घटाकर मूल-मण्डलका चौथाई रखा गया। काष्ठखण्ड आगमें जलकर नष्ट हो गये।

४-हासेदेरा-हस्तलिपिमें १८३४ ई०में कोबो दाइशिके निर्वाणकी १०००वीं वार्षिकीके स्मारकस्वरूप बुजानकेन्द्रके भिक्षुयुको और काइन्योंने चित्रकार तोशुकू हासेगावाको तोजी-मण्डलकी प्रतिलिपि करनेके लिये नियुक्त किया।

५-ओमुमें काष्ठ-मुद्रित संस्करणमें १८६९ ई०में शिमाप्रान्तके सोम्पोने भिक्षु होऊनसे काष्ठफलक तैयार कराये। शुद्धताकी दृष्टिसे ये बहुत सुन्दर हैं।

वज्रधातु-मण्डलपर लिखे गये विभिन्न ग्रन्थोंमें पंचगणेश अपने विविध रूपोंमें चित्रित किये गये हैं—

१-कोंगो-काइ-मन्दर, दाईगोजी-विहार क्योतोमें रखाया हुआ।

२-ईशीयामाजी-विहारमें रखे हुए कोंगो-काइ-सम्मय-मन्दर-जूमें पंच-गणेशोंके केवल समय-रूप दिखाये गये हैं।

३-सम्मय-ग्यो-होरिन-इन-बोनमें, जो पहले होरिन-इन-विहारमें थी और इस समय दाइगोजी-विहार,

क्योतोमें सुरक्षित है, पंच-गणेशोंके प्रतीक रूप चित्रित किये गये हैं।

४-गोहित्स-शिशु-गोमा-दान-संजुशिची-सोन-केंगी-सम्मयग्यो, अर्थात् 'चार प्रकारकी होम-वेदिकाओंके लिये सैंतीस देवताओं तथा भद्रकल्पके सोलह बोधिसत्त्वोंके समय-प्रतीक' जो क्योतोके दाइगोजी-विहारमें रखी हुई है, पंचगणेशोंको उनके समय-रूपमें चित्रित किया गया है।

महाकरुणा-गर्भ-मण्डलके विनायकके प्रधान रूप (मूली और परशुयुक्त) तथा वज्रधातु-मण्डलके विविध रूपोंके अतिरिक्त जापानमें गणेशके अन्य रूप भी मिलते हैं। वज्रधातु मण्डलमें गणेशके रूप द्विभुज हैं, परंतु अन्यत्र गणेश चतुर्भुज या षड्भुज या युग्म-रूपमें चित्रित किये गये हैं। वज्रधातु-मण्डलमें पंचगणेशोंके अतिरिक्त चार गणेशोंका भी अंकन उपलब्ध होता है, जिनका सर्वप्रथम १२ वीं शतीमें शिनकाकु, १३वीं शतीमें शोचों और उसके बाद जु-जोशोंद्वारा चित्रण किया गया है। इनमेंसे कुछ अलग-अलग अन्य ग्रन्थ-मालाओंमें भी चित्रित किये गये हैं, जिनका वर्णन आगे दिया जा रहा है।

चार गणेश

शिनकाकु (११८० ई०)-ने बेस्सोनजाक्कीमें देवताओंका वर्णन किया है, जो इस समय निन्नाजी-विहार, क्योतोकी ५७ हस्तलिपियोंमें सुरक्षित है। अपने ग्रन्थराजमें शिनकाकुने गणेशमूर्तियोंका वर्णन किया है, उनका मन्त्र दिया है तथा चार रूपोंमें स्थानक शोदेन या गणेशका अंकन किया है।

१३वीं शताब्दीमें तेन्दाई-सम्प्रदायके शोचो (१२०५—१२८२ ई०)-ने देवताओंके विषयमें अपना 'असब-शो' नामक एक विशाल ग्रन्थ लिखा। असव मन्त्रमें 'अ' (अज) अजन्मे तथागत, 'स' कमल तथा 'व' वज्रके लिये हैं; ये तीनों बीजाक्षर 'महाकरुणोद्भव-मण्डल'के प्रत्येक देवताके लिये प्रयुक्त होते हैं। इस ग्रन्थके १४९वें खण्डमें लेखकने 'कांगितेन'या गणेश और उनकी पूजाका वर्णन किया है। पहले सिद्धम्-लिपिमें संस्कृत-नाम 'गणपति' दिया गया है। उसके बाद जापानी नाम 'विनायक' और 'शौदेन' दिये गये हैं। चार गणेशोंके चित्रमेंसे एकमें गणेश-पूजाकी तीन वेदियोंकी व्यवस्था है, जो क्रमशः प्रभात, मध्याह्न तथा रात्रिपूजासे सम्बद्ध है, दूसरेसे विनायकदेवकी सामान्य पूजा कढ़ी (रसा), भात, रोटी, मूली और होमाग्नि आदिसे संयुक्त हैं।

खण्ड १०५में उदक-गणपतिकी पूजाका विधान वर्णित है। 'ताइशो जुजो' के नवें खण्डके पृष्ठ ४८७पर उदक गणपतिकी वेदीकी व्यवस्था दी गयी है। जुजो-शो अर्थात् चुने हुए चित्र दस आवलियोंमें एन्तसुजी-विहार (कोयसानमें) सुरक्षित हैं और उसमें चार गणेशोंके चित्र दिये हुए हैं—

१—षड्भुज-गणेशके हाथोंमें गदा, हस्तिदन्त, पाश, खड्ग, कमण्डलु और चक्र हैं।

२—चतुर्भुज-गणेशके चार हाथोंमें लड्डू, परशु, गदा और हस्तिदन्त हैं।

३—सुवर्णगणपतिके छः हाथोंमें अंकुश, गदा, पाश, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि हैं।

४—युग्मगणेश।

अन्य रूप

शिनकाकुने दो खण्डोंमें 'शोसोन-जुजो' अर्थात् 'देवचित्रावली' भी तैयार की, जो तोजी-विहार, क्योतोके काँची-इन मन्दिरमें सुरक्षित है। इसमें गणेशके छः रूप चित्रित हैं, जिनमें षड्भुजगणेश तथा सुवर्णगणपतिका एक अन्य रूप—ये दो नये हैं।

काकुजेनने (११८३—१२१३के लगभग) सभी देवताओंका विस्तृत अध्ययन लेखबद्ध किया और उनके चित्र भी बनाये। ये क्योतोंके काजूजी-विहारमें १३६आवलियोंमें सुरक्षित हैं तथा कोयसान और तोक्योके विहारोंमें भी इनकी प्रतिकृतियाँ उपलब्ध हैं। इसमें विस्तृत वर्णनसहित गणेशके नौ विभिन्न रूप चित्रित किये गये हैं। १-युग्मगणेश, २-चतुर्भुजगणेश।

१—चतुर्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें पाश, वज्र और परशु हैं।

२—षड्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें पाश, गदा, अंकुश, खड्ग, लड्डू और चक्र हैं।

३—षड्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें गदा, अङ्कुश, पाश, खड्ग, लड्डू और चक्र हैं।

४—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश—इनके दो हाथ जुड़े हुए हैं और अन्य दोमें मूली और लड्डू हैं।

५—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश—इनके चार हाथोंमें गदा, खड्ग, लड्डू हैं।

६—युग्मगज-शीर्ष-वराहशीर्ष गणेश—यह हाथीके मस्तक और वराहके मस्तकसे शोभित युग्मगणेश हैं।

गणेशके ऊपर वर्णित रूप अन्य ग्रन्थोंमें भी दुहराये गये हैं, जिनमें कुछका वर्णन नीचे दिया जाता है। इनमें कोई विशिष्टता तो नहीं है, परंतु उनके हाथोंके क्रममें थोड़ा-बहुत अन्तर है।

तोजी-विहारमें युग्मगणेशकी एक शोतेन-जो या परत है। यह चिनकाई (१०९१—११५२ई०)-ने बनायी। ताइशोजुजो भाग ७में इसका उल्लेख है।

१४वीं शताब्दीमें रयोसोन (१२७९—१३४९ई०)-ने १६७आवलियोंके 'व्याकु-होक्कु-शा' अर्थात् श्वेतमणि मौखिक परम्पराएँ बनायीं, जो कांगो-सम्मई-इन-विहार, कायसानमें सुरक्षित हैं। इसके १३०से १३४ खण्डोंमें गणेश-पूजा-विधिका वर्णन है।

'शिका-शो-जुजो' अर्थात् 'चार आचार्योंद्वारा उतारे गये चित्रों'में गणेशके चार रूप दिये गये हैं—

१-षड्भुज-गणेश,

२-विनायक (मूली और परशुसे युक्त),

३-सुवर्णगणपति और

४-षड्भुज युग्मरूप।

एइहान्द्वारा संकलित 'जो-बोदाई-शू'के एक अध्यायमें गणेशकी साधनापर प्रकाश डाला गया है।

कानाजावा-बुन्को, कानाजावामें रखायी हुई 'शोजोन-जुजो-शू'की तीन आवलियोंमें गणेशके चार रूप चित्रित किये गये हैं—१-षड्भुज-गणेश, २-युग्म-गणेश, ३-विनायक और ४-षड्भुज-गणेश।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि जापान गणेशके मूर्ति-अंकनमें बहुत सम्पन्न है। जापानमें अंकित विभिन्न मूर्तियोंका सार इस प्रकार दिया जा सकता है—

१-विनायक (परशु और मूलीयुक्त)।

पंचगणेश (सभी द्विभुज)

२-विनायक (लड्डू और मूली)।

३-छत्र-विनायक या वज्रछिन्न (छत्र)।

४-माल्य-विनायक या वज्रभक्षण (माला)।

५-धनुर्विनायक या वज्रवासिन् (धनुष और बाण)।

६-खड्ग-विनायक या (जय खड्ग)। सभीके गुह्य रूप, बीज और मुद्राएँ हैं।

चार गणेश

७-षड्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, हस्तिदन्त, पाश, खड्ग, कमण्डलु, चक्र)।

८-चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें लड्डू, परशु, गदा, हस्तिदन्त)।

९-सुवर्णगणपति(छः हाथोंमें अंकुश, गदा, पाश, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि)।

१०-युग्मगणेश।

अन्यरूप

११-षड्भुज-गणेश (हाथोंमें चक्र, हस्तिदन्त, गदा, खड्ग, कमण्डलु, पाश)।

१२-सुवर्णगणपति (छः हाथोंमें मूली, वज्र, पाश, खड्ग, लड्डू, वज्र-असि)।

१३-चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें पाश, वज्र, परशु तथा····)।

१४-षड्भुज-गणेश (हाथोंमें पाश, गदा, अंकुश, खड्ग, लड्डू, चक्र)।

१५-षड्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, अंकुश, पाश, खड्ग, लड्डू, चक्र (१४का एक विभेद)।

१६-त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश (दो हाथ जुड़े हुए, अन्य दो हाथोंमें मूली और लड्डू)।

१७-त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, खड्ग, लड्डू)।

१८-युग्म-गजशीर्ष-वराहशीर्ष गणेश।

जापानमें आजकल भी गणेशकी पूजा की जाती है। ताकओके जिंगोजी-विहारमें गुह्य युग्म-गणेशको जो एक विशेष मन्दिर समर्पित है, प्रत्येक वर्ष उनका पूजन होता है। अन्य मन्त्रयानी-विहारोंमें भी गणेशको समर्पित किये गये विशेष मन्दिर हैं। कोयसानमें पिछली बार ठहरनेपर मैं रेलवे स्टेशन जानेवाली बसकी प्रतीक्षामें एक बेंचपर बैठा था। जिज्ञासावश भीतर दूकानमें गया तो देखा, वहाँ 'श्वेत-काष्ठ'के गणेशकी एक स्थानक-प्रतिमा रखी है। बारंबार देनेके लिये कहनेपर भी दूकानदार केवल मुसकराता और विनम्रतापूर्वक वन्दना करता रहा। खेद है कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। गणेशकी अतिप्लावी करुणाकी आभा जापानके पूजामय हृदयोंमें अभी भी जगमगा रही है।

(रूपान्तरकर्ता श्रीबाबूरामजी वर्मा)

~~o~~

मूषकध्वजके ध्यानका माहात्म्य

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्। अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्। रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्। आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्)

'एकदन्त, चतुर्भुज, चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, अभय और वरदानकी मुद्रा धारण किये हुए तथा मूषक-चिह्नकी ध्वजा लिये हुए, रक्तवर्ण, लंबे उदरवाले, सूप-जैसे बड़े-बड़े कानोंवाले, रक्तवस्त्रधारी शरीरपर रक्त चन्दनका लेप किये हुए, रक्त पुष्पोंसे भलीभाँति पूजित, भक्तके ऊपर अनुकम्पा करनेवाले देवता, जगत्के कारण, अच्युत, सृष्टिके आदिमें आविर्भूत, प्रकृति और पुरुषसे परे मूषकध्वज श्रीगणेशजीका जो नित्य ध्यान करता है, वह योगी सब योगियोंमें श्रेष्ठ है।'

~~~०~~~

गाणपत्य-सम्प्रदाय

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पुराणरत्न, विद्याविनोद, पी-एच्० डी०)

गणेशका पर्यायवाची 'गणपति' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद २। २३। १ मन्त्रमें **'गणपति'** शब्दका प्रथम बार उल्लेख हुआ है—**'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे'**। तैत्तिरीय-आरण्यकके १०। १। ५ मन्त्रमें भी इस देवताके गायत्रीमन्त्रमें 'वक्रतुण्ड' और 'दन्ती'-शब्दका उल्लेख हुआ है। जैसे—

'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥'

इससे ज्ञात होता है कि गणेश-उपासना अति प्राचीन कालसे हिंदू-समाजमें प्रचलित है। पुराणोंमें शिवपुराण, स्कन्दपुराण, अग्निपुराण तथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराण आदिमें गणेशजीके सम्बन्धमें बहुत-सी आख्यायिकाएँ, तत्त्वचिन्तन और पूजा-पद्धतियाँ आदि मिलती हैं। गणेशजीके नामसे एक उपपुराण भी है, जिसका नाम 'गणेशपुराण' है। गणपति सर्वतोभावेन जन-साधारणके देवता हैं तथा यह भी उनकी प्रतिष्ठाका एक कारण है। इसका एक दूसरा कारण यह था कि वे केवल 'विघ्नराज' या 'विघ्नविनाशक'के रूपमें ही प्रसिद्ध न थे, बल्कि सिद्धिदाताके रूपमें भी उनकी ख्याति थी। यह विश्वास भी जन-साधारणमें बद्धमूल रहा कि उनका स्मरण करके कोई शुभ कार्य प्रारम्भ करनेपर वह पूर्णतः और बिना किसी विघ्न-बाधाके सुसम्पन्न होगा तथा वांछित फलकी प्राप्ति होगी, इस कारण सनातनमतावलम्बी देवसमूहके अन्तर्गत होते हुए भी गणेशजीने बौद्ध और जैनमतावलम्बियोंके देवताओंमें भी श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है।

सनातनमतावलम्बियोंमें मुख्यतः पाँच सम्प्रदाय हैं—वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य, जो क्रमशः भगवान् विष्णु, भगवान् शिव, भगवती शक्ति, भगवान् सूर्य और भगवान् गणेशकी आराधना मुख्य रूपमें करते हैं। गाणपत्य-सम्प्रदायके साधक गणपतिकी ही परब्रह्मके रूपमें भावना तथा उपासना करते हैं। वे छः दलोंमें बँटे हैं और एक-एक दल पृथक्-पृथक् रीतिसे गणपतिकी उपासना करता है—यथा महागणपति, हरिद्रागणपति, उच्छिष्टगणपति, हेरम्बगणपति, स्वर्णगणपति और संतानगणपति। आनन्दगिरि या अनन्तानन्दगिरिरचित 'शंकर-विजय' काव्यके डिण्डिम-भाष्यमें भाष्यकार धनपतिने गाणपत्यसम्प्रदायकी विभिन्न शाखाओंका जो संक्षिप्त विवरण दिया है, उससे ज्ञात होता है कि वे वामाचारी कौल-तन्त्रके अनुयायी थे। उनके मतसे गणेश आनन्दस्वरूप परमात्मा हैं तथा ब्रह्मा आदि देवता उनके अंशमात्र हैं। इस अंश-अंशीमें स्वरूपतः पार्थक्य नहीं है। यह उनके मतसे श्रुति-सम्मत है। यथा—
~~~

आनन्दात्मा गणेशोऽयं तदंशाः पद्मजादयः।
अंशांशिनोरभेदस्तु वेदे सम्यक् प्रकीर्तितः॥

कुछ विद्वानोंके मतसे आद्य शंकराचार्यके अद्वैत मतके प्रसारसे गाणपत्य-सम्प्रदायकी मान्यताएँ भी प्रभावित हुईं और गणपति-उपासनाका विस्तार कुछ अवरुद्ध हो गया; किंतु वह उपासना लुप्त न हुई। पूर्व-वंगके रामपालके ध्वंसावशेषमें प्राप्त एक मध्ययुगीय हेरम्ब-गणपतिकी प्रस्तरमूर्तिसे उपर्युक्त बात प्रमाणित होती है।

श्रीमत्कृष्णानन्द आगमवागीश (१६वीं शताब्दी)-ने अपने सुप्रसिद्ध 'तन्त्रसार' नामक बँगला तान्त्रिकग्रन्थके चतुर्थ परिच्छेदमें एक 'गणेशस्तोत्र'का संकलन किया है, जिसमें गाणपत्य-सम्प्रदायमें प्रचलित तत्त्वभावनाका सुन्दर निदर्शन हुआ है।

श्रीगणेश वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मतत्त्व हैं। वे प्रणव-स्वरूप हैं। इस सम्बन्धमें गणेश-स्तोत्रमें लिखा है—

ओंकारमाद्यं प्रवदन्ति संतो वाचः श्रुतीनामपि यं गृणन्ति।
गजाननं देवगणानताङ्घ्रिं भजेऽहमर्धेन्दुकृतावतंसम्॥

''सत्पुरुष जिनको आदि अक्षर 'ॐ' कहते हैं तथा श्रुतियोंके वचन भी जिनका स्तवन करते हैं, देवगण जिनके पाद-पद्ममें प्रणत होकर रहते हैं और अर्द्धचन्द्र जिनके सिरका आभूषण है, मैं उन गजाननका भजन करता हूँ।''

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें विभिन्न गाणपत्य-सम्प्रदायोंके उपास्य (१) महागणेश, (२) हेरम्बगणेश, (३) हरिद्रागणेश, (४) उच्छिष्टगणेशके मन्त्र, ध्यान-पूजा और प्रयोगविधि विस्तृत रूपसे वर्णित हैं। गाणपत्य-सम्प्रदायकी छः शाखाओंमेंसे चार शाखाओंकी पूजा-पद्धतिकी एक झलक संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

(१) महागणेश या महागणपति—

'तन्त्रसार'में महागणेशके विविध ध्यान और मन्त्र दीख पड़ते हैं—(क) महागणपति दशभुज और रक्त-वर्णके हैं तथा (ख) प्रकारान्तरसे महागणपति चतुर्भुज और गौरवर्ण भी हैं।

महागणपतिलोक—'तन्त्रसार'में 'महागणपति-लोक'का निम्नोक्त वर्णन देखा जाता है—

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदिक्षुरसाम्बुधौ।
तद्वीचिधौतपर्यन्तं मन्दमारुतसेवितम्॥
मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलताकुलम्।
उद्भूतरत्नच्छायाभिररुणीकृतभूतलम्॥
उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्भासितदिगन्तरम्।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत्॥
ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनैः।
तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे॥
षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत्॥

(द्वितीय परिच्छेदमें उद्धृत 'शारदातिलक' १३। ३२—३४)

'साधक ध्यानमें देखे कि इक्षुरसमय सिन्धुमें नवरत्नमय द्वीप है। इस द्वीपका प्रान्तभाग उस सिन्धुकी लहरोंसे प्रक्षालित और मन्द-मन्द समीरणसे परिसेवित है तथा वह मन्दार, पारिजात और कल्पवृक्षकी लता आदिसे परिपूर्ण है। उद्भूत रत्नोंकी कान्तिसे उस द्वीपका भूतल अरुणीकृत है तथा उदीयमान सूर्य और चन्द्रके द्वारा दिग्-दिगन्तर आलोकित है। उस द्वीपके मध्यभागमें नवरत्नमय पारिजात-वृक्षका चिन्तन करे। उस स्थानकी प्रीतिवर्धिनी छः ऋतुएँ निरन्तर सेवा करती हैं। उस पारिजातवृक्षके नीचे एक महापीठ है। उसके ऊपर पंचाशत्-मातृका (वर्ण)-मय कमल अंकित है। उसकी कर्णिकामें षट्कोण है और उसके भीतर एक त्रिकोणमण्डल है, जिसमें महागणपति विराजमान हैं, उनका स्मरण करे।'

(क) दशभुज, रक्तवर्ण महागणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसा-
दाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया स्वाङ्कस्थया संततम्।
बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक्चक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे॥

(तन्त्रसार, परि० २; शा० ति० १३। ३६)

'श्रीमहागणपतिका मुख श्रेष्ठ हाथीका है। उनके सिरमें अर्द्धचन्द्र विराजित है। उनके देहकी कान्ति अरुणवर्णकी है। वे त्रिनयन हैं और अपनी गोदमें स्थित पद्महस्ता प्रियाके द्वारा सप्रेम आलिंगित हैं। वे दस भुजाओंमें क्रमशः दाडिम, गदा, धनुष, त्रिशूल, चक्र, पद्म, पाश, उत्पल, धान्यगुच्छ, स्वदन्त और रत्नकलश धारण किये हुए हैं; इस प्रकारके महागणपतिका ध्यान करें।'

गण्डपालीगलद्दानपूरलालसमानसान्।
द्विरेफान् कर्णतालाभ्यां वारयन्तं मुहुर्मुहुः॥
कराग्रधृतमाणिक्यकुम्भवक्त्रविनिःसृतैः।
रत्नवर्षैः प्रीणयन्तं साधकान् मदविह्वलम्।
माणिक्यमुकुटोपेतं रत्नाभरणभूषितम्॥

(तन्त्रसार, परि० २ तथा शा० ति० १३। ३७-३८)

'महागणपतिके गण्डयुगलसे जो मदप्रवाह झर रहा है, उसका पान करनेकी लालसासे युक्त भ्रमरसमूह निरन्तर उसके चारों ओर भ्रमण करता रहता है। वे कर्ण-संचालनके द्वारा उन भ्रमरोंका बारंबार निवारण करते रहते हैं। वे अपने हाथके अग्रभागमें धारण किये हुए माणिक्य-कुम्भसे विनिस्सृत रत्नोंकी वर्षाके द्वारा साधकोंको परितृप्त करते हैं। वे स्वयं मदविह्वल रहते हैं। उनके मस्तकपर माणिक्यनिर्मित मुकुट विराजित हैं और उनके सर्वांग रत्नाभरणोंसे भूषित हैं। महागणपतिके इस रूपका मैं ध्यान करता हूँ।'

उपर्युक्त ध्यानसम्मत महागणपतिका अष्टाविंशति अक्षरोंका मन्त्र है—'**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।**'

(ख) महागणपतिका ध्यान—

इसमें मुक्ताके समान गौरवर्ण, चतुर्भुज गजाननका क्रोधमें स्थित शक्तिसहित ध्यान करते हुए द्वादशाक्षर-मन्त्रके जपका विधान है—'**ॐ ह्रीं गं ह्रीं महागणपतये स्वाहा।**'

उपर्युक्त ध्यानसम्मत महागणपति एकादशाक्षर-मन्त्र है— '**ॐ ह्रीं गं ह्रीं वशमानय स्वाहा।**'

(२) हेरम्बगणपति—

'तन्त्रसार'में हेरम्बगणपतिके भी दो प्रकारके ध्यान और मन्त्र हैं—(क) पंचहस्तिमुख, दशभुज और सिंहवाहन तथा (ख) चतुर्भुज-हेरम्ब।

(क) हेरम्बगणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै-
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभम्।
दृप्तं दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कं शिरोऽक्षात्मिकां
मालां मुद्गरमङ्कुशं त्रिशिखिकं दोर्भिर्दधानं भजे॥

(तन्त्रसार, परि० २, शा० ति० १३। १०९)

'हेरम्बगणपति पाँच हस्तिमुखोंसे युक्त हैं। चार हस्तिमुख चारों ओर और एक ऊर्ध्व दिशामें है। उनका ऊर्ध्व हस्तिमुख मुक्तावर्णका है। दूसरे चार हस्तिमुख क्रमशः काञ्चन, नील, कुन्द(श्वेत) और कुंकुमवर्णके हैं। प्रत्येक हस्तिमुख तीन नेत्रोंवाला है। वे सिंहवाहन हैं। उनके कपालमें चन्द्रमा विराजित है और देहकी कान्ति सूर्यके समान प्रभायुक्त है। वे बलदृप्त हैं और अपनी दस भुजाओंमें वर और अभयमुद्रा तथा क्रमशः मोदक, दन्त, टंक, सिर, अक्षमाला, मुद्गर, अंकुश और त्रिशूल धारण करते हैं। मैं उन भगवान् हेरम्बको भजता हूँ।'

उक्त ध्यानसम्मत हेरम्बगणपतिका चतुरक्षर-मन्त्र है—'**ॐ गूं नमः।**' 'तन्त्रसार'के चतुर्थ परिच्छेदमें जो 'गणेशस्तोत्र' मिलता है, उसमें हेरम्बकत्वकी भावना इस प्रकार व्यक्त हुई है—

मदोल्लसत्पञ्चमुखैरजस्रमध्यापयन्तं सकलागमार्थान्।
देवानृषीन् भक्तजनैकमित्रं हेरम्बमर्कारुणमाश्रयामि॥

(तन्त्रसार, परि० २ तथा शा० ति० १३। ४१)

'जो मदोल्लसित पञ्चमुखोंद्वारा देवता और ऋषियोंको निरन्तर सारे आगमोंका अर्थ पढ़ाते रहते हैं, भक्तोंके एकमात्र परम मित्र हैं और सूर्यके समान अरुणवर्ण हैं, उन हेरम्बदेवका मैं आश्रय लेता हूँ।'

(ख) हेरम्बगणपतिका प्रकारान्तरसे ध्यान—

'तन्त्रसार'(परिच्छेद, हेरम्ब-मन्त्र)-में चतुर्भुज हेरम्बके इस प्रकार ध्यान और मन्त्र प्राप्त होते हैं—

पाशाङ्कुशौ कल्पलतां विषाणं दधत्सुशुण्डाहितबीजपूरः।
रक्तस्त्रिनेत्रस्तरुणेन्दुमौलिर्हारोज्ज्वलो हस्तिमुखोऽवताद् वः॥

'हेरम्बगणपतिकी चार भुजाओंमें क्रमशः पाश, अंकुश, कल्पलता और गजदन्त हैं। उनकी सूँड़के ऊपर एक दाडिमफल है। उनका शरीर रक्तवर्णका है। वे त्रिनयन हैं और उनके सिरपर तरुणचन्द्र सुशोभित है। गलेमें उज्ज्वल हार प्रकाशित हो रहा है। वे गजानन हेरम्बदेव तुम्हारी रक्षा करें।'

उपर्युक्त ध्यानसम्मत चतुर्भुज हेरम्बका दशाक्षर-मन्त्र है—

'गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः।'

(३) हरिद्रागणपति—

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें हरिद्रागणपतिके निम्नांकित ध्यान और मन्त्र प्राप्त होते हैं—

हरिद्राभं चतुर्बाहुं हारिद्रवसनं विभुम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं मोदकं दन्तमेव च॥

'हरिद्रागणपति' का शरीर पीतवर्णका है। वे चतुर्भुज हैं तथा हरिद्रारंजित वस्त्र ही धारण भी करते हैं। उनके चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अंकुश, मोदक और दन्त विराजित हैं।'

हरिद्रागणपतिका एकाक्षर मन्त्र है—'**ग्लम्**'।

'तन्त्रसार'के चतुर्थ परिच्छेदमें 'हरिद्रागणपति'का कवच भी उपलब्ध होता है।

(४) उच्छिष्टगणपति—

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें गाणपत्य-सम्प्रदायके अन्तर्गत उच्छिष्टगणपतिका ध्यान, मन्त्र, पूजा और प्रयोगविधि प्राप्त होती है। उच्छिष्टगणपति चतुर्भुज और रक्तवर्ण हैं। उनका ध्यान इस प्रकार है—

रक्तमूर्तिं गणेशं च सर्वाभरणभूषितम्।
रक्तवस्त्रं त्रिनेत्रं च रक्तपद्मासने स्थितम्॥
चतुर्भुजं महाकायं द्विदन्तं सस्मितोननम्।
इष्टं च दक्षिणे हस्ते दन्तं च तदधः करे॥
पाशाङ्कुशौ च हस्ताभ्यां जटामण्डलवेष्टितम्।
ललाटं चन्द्ररेखाढ्यं सर्वालङ्कारभूषितम्॥

'उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति रक्तवर्ण तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित है। उनके परिधेय वस्त्र रक्तवर्ण हैं। वे त्रिनयन हैं और रक्तवर्णके पद्मासनपर आसीन हैं। उनके चार हाथ हैं, शरीर विशाल है, दो दन्त हैं और मुखपर हास्यछटा है। उनके दक्षिणभागके ऊपरवाले हाथमें वरमुद्रा और निचले हाथमें एक दन्तका दर्शन होता है। वामभागके ऊपरवाले हाथमें पाश तथा निचले हाथमें अंकुश विद्यमान है। उनका सिर जटामण्डलसे वेष्टित है तथा उनके ललाटपर अर्द्धचन्द्र सुशोभित है। वे सब प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हैं।'

उच्छिष्टगणपतिका मन्त्र है—'**ॐ हस्ति पिशाचिनि खे स्वाहा।**'

'तन्त्रसार'में उच्छिष्टगणपतिकी पूजा-विधिके विषयमें लिखा है कि उच्छिष्टमुखसे और अशुचि-अवस्थामें ही इस देवताके मन्त्र-जप और पूजा आदि कार्य किये जाते हैं। किसी-किसी तन्त्रके मतसे इस देवताकी आराधनामें पूजा नहीं करनी पड़ती, केवल मानसिक जप ही करना होता है। गर्गमुनि कहते हैं कि 'इनका साधक निर्जन वनमें बैठकर रक्तचन्दनसे लिप्त ताम्बूल चबाते हुए इनकी पूजा करे।' दूसरे तन्त्रके मतसे देवताकी अर्चना करके मोदक चबाते हुए मन्त्र-जप करना पड़ता है। भृगुमुनिका मत है कि 'उच्छिष्टगणपतिकी आराधनामें फल खाते हुए जप करे।'

उच्छिष्टगणपति-पूजनका माहात्म्य इस प्रकार कहा गया है—राजद्वारपर, अरण्य, सभा, गोत्र-समाज, विवाद, व्यवहार, युद्ध, शत्रुसंकट, नौका, कानन और द्यूतकार्यमें, विपद्के समय, ग्रामदाह तथा चौरभयमें, सिंह-व्याघ्र आदिके भयके समय उच्छिष्टगणपतिका मन्त्र जप करनेसे सब विघ्न दूर हो जाते हैं। इस मन्त्रसे दस सहस्र होम करनेपर राजा तत्काल वशीभूत होता है। उक्त मन्त्रका एक कोटि जप करनेपर साधकको अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उसमें आकाशगमनकी शक्ति उत्पन्न होती है तथा सर्वज्ञताकी प्राप्ति होती है।

हेरम्बगणपति-सम्प्रदाय, स्वर्णगणपति-सम्प्रदाय एवं संतान-गणपति-सम्प्रदायके उपासकोंकी पूजा-पद्धति सामान्यतः वैदिक विधानके अनुसार देखनेमें आती है।

~~०~~

गुरु गणेश

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

महादेव गणेशके विषयमें बहुत-सी भ्रान्तियाँ भी हैं एवं कुतर्क भी। उदाहरणके लिये पंचमुख गणेशकी मूर्ति दक्षिण भारतमें देखकर लोग पूछते हैं कि 'ब्रह्माके चार ही मुख हैं—चारों वेदोंके प्रतीक; पर गणेशके पाँच मुख कैसे हो गये। क्या वे उनसे भी बड़े हैं?'

देव-परिवारमें बड़े-छोटेका प्रश्न नहीं उठता। एक ही परमात्माके भिन्न गुणोंको व्यक्त करनेवाली विभूतियोंके भिन्न रूप हैं। दुर्गासप्तशतीमें जब निशुम्भने देवियोंकी सेनाको देखकर कहा कि 'तुम तो अन्य देवियोंका सहारा लेकर लड़ रही हो'—उस समय भगवतीने कहा था, '**अहं विभूत्या बहुभिः**……'—'मैं अपनी ऐश्वर्य-शक्तिसे अनेक रूप धारण करके युद्धभूमिमें खड़ी थी; देखो अब उन्हें समेट लेती हूँ।' फिर तो निशुम्भके देखते-ही-देखते समूची देवी-सेना भगवतीके शरीरमें विलीन हो गयी।

हमारे प्रत्येक देवता भिन्न-भिन्न विभूतिके द्योतक या परिचायक हैं। जिनकी जैसी, जहाँ रुचि हो, वह वैसी, वहाँ उपासना करे। इसीलिये प्रत्येक देव-परिवार प्रतीकात्मक है। स्कन्दपुराणमें दक्षिण भारतसे सम्बद्ध मृगमुखवाली मृगमुखीकी तथा बकरीके मुखवाली शतशृंग-कन्याकी गाथा है। गणेशका मुख भी एक महान् दैवी-विभूतिको प्रकट करता है।

रही बात पंचमुख-गणेशकी। गीताशास्त्रने जीवनके सम्बन्धमें जो अकाट्य सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उनके अनुसार प्रत्येक कर्मके पाँच हेतु हैं—अधिष्ठान, कर्ता, करण, विविध चेष्टा और दैव। इनमेंसे करण पन्द्रह हैं—श्रोत्रादि पाँच ज्ञानकरण, वाग् आदि पाँच कर्मकरण तथा प्राणादि पाँच वायु चेष्टाकरण। इन पाँचों त्रिविध करणों तथा पाँच हेतुओंका अपनेमें समन्वयकर, इस विनाशवान् शरीरकी सब विघ्न-बाधाएँ हरकर हमें सन्मार्गपर लगानेवाले ये 'गणेश' हैं।

गणपति-प्रतिमाका अर्थ

गणपति हैं कौन? गणोंके गणपति। '**गणानां त्वा गणपतिः**'—इस श्रुतिके अनुसार वे गणोंके अधिपति हैं। गणपति-प्रतिमाका क्या अर्थ है—इसका स्पष्टरूपसे निरूपण एक बार स्वर्गीय डॉ० भगवानदासजीने किया था। वह व्याख्या प्रायः हम भूल गये हैं। यदि नित्य गणेशके अर्चनके समय हम उसे ध्यानमें रखें, यदि उनके रूपका हम एक अंश भी अपने जीवनमें उतार सकें, यदि हमारे नेता गणेशका यह अर्थ समझ लें तो आज हम और हमारा देश ही बदल जाय।

जिसके नेत्र इतने छोटे हैं कि वह दूसरेके अवगुण देखता ही नहीं या बहुत कम देखता है; जिसके कान इतने बड़े हैं कि सब ओरकी सभी बातें उसके कानमें पड़ जाती हैं; पर उसका पेट इतना गम्भीर है कि सब कुछ पेटमें ही रख लेता है, गहरे पेटका है—दूसरेकी निन्दा या बकवासमें समय नष्ट नहीं करता, जो फूँक-फूँककर हाथीकी तरह पैर रखता है तथा जिसकी सवारी चूहा है—यानी चूहा जितनी दूर जाता है, बड़ी तेजीसे जाता है; फिर रुककर चारों ओरकी स्थिति देखकर तीव्रगतिसे आगे बढ़ता है—ऐसे जो देवता हैं, वे ही 'गणेश'या 'गणपति'हो सकते हैं। उन्हींके दोनों हाथोंमें लड्डू हैं—यश तथा कीर्ति हैं; दोनों ओर सिद्धि और बुद्धि हैं। ऐसे गणेशको हम गणपति मानते हैं और उनकी उपासना करते हैं।

गणपतिका यह सांसारिक अर्थ हुआ। लेखके आरम्भमें हम आध्यात्मिक अर्थ दे चुके हैं। इन दोनोंके सामंजस्य तथा देव-परिवारके इस सर्वोपरि देवताकी उपासनासे ही कार्य-सिद्धि होती है। जो व्यक्ति 'गणेश-सहस्रनाम'का जप तथा विधिपूर्वक हवनका अनुष्ठान करता है, उसके लिये सिद्धि तथा सफलता अवश्यम्भावी है।

~~~०~~~

'मोदकप्रिय मुद-मंगलदाता'

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा।
माता तेरी पारबती, पिता महादेवा॥
पान चढ़े फूल चढ़े और चढ़े मेवा।
लडुअनको भोग लगै, संत करें सेवा॥
एकदन्त दयावन्त चार भुजाधारी।
मस्तक सेंदूर सोहे मूसकी सवारी॥
जय गणेश०॥

* * *

गणराज्य भारतमें गणदेवताका राज्य है शताब्दियोंसे। वैदिक कालसे ही हम प्रार्थना करते आ रहे हैं—

'गणानां त्वा गणपतिःहवामहे।'

परात्पर ब्रह्मका नाम है—महागणाधिपति।

गजानन हैं—परात्पर ब्रह्मके अवतार।

कहा जाता है कि महागणाधिपतिने ही अपनी इच्छासे अनन्त विश्वोंका निर्माण किया। प्रत्येक विश्वमें अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना की और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अपने अंशसे त्रिमूर्ति प्रकट की।

तो ऐसे हैं हमारे आदिदेव गणपति, गणेश, गजानन।

* * *

गणेशजीकी और विशेषताओंकी बात छोड़कर मुझे तो एक ही विशेषता सबसे अच्छी लगती है और वह है उनका मोदक-प्रिय होना।

मोदक, लड्डू, लाडू!
क्या बढ़िया चीज!

मीठा-मीठा, गोल-गोल! देखनेमें बढ़िया, खानेमें बढ़िया! कुछ लोगोंके मुँहमें इमली, नीबू, खटाई, अचार और मुरब्बाके नामसे पानी भर आता है; पर यहाँ तो लड्डू देखकर वैसा ही हाल होता है।
~~~

लाडू कैसा भी हो, बेसनका हो या मोतीचूरका—देखते ही तबीयत फड़क उठती है। पचास साल पहले लड्डू जैसा अच्छा लगता था, आज भी वैसा ही अच्छा लगता है।

रामकृष्ण परमहंसको जलेबी बहुत प्रिय थी। पेट भरा रहता, फिर भी जलेबी आती तो उसे पा लेते। लोग पूछते तो कहते—'स्टेशनपर तमाम गाड़ियाँ खड़ी हों, पर अचानक वाइसरायकी गाड़ी आ जाय, तो उसे तुरंत 'लाइन क्लीयर' मिल जाता है। वही हाल मेरे लिये जलेबीका है!'

कोई पैंतीस साल पहलेकी बात है। काशी आनेपर एक बन्धुसे परिचय बढ़ा। उनका सबसे छोटा भाई उस समय आठ-दस सालका रहा होगा। वह जब मुझे देखता तो जोरसे कह उठता—

'भट्ट कढ़ी चट्ट, लाडू गप्प, टका दक्षिणा!'

सोचता, शायद ऐसा कहनेसे मैं चिढ़ूँगा, पर लाडू गप्प करनेमें चिढ़नेका सवाल ही कहाँ था?

* * *

हाँ, तो हमारे गणेशदादा भी हमारी ही बिरादरीके हैं। बचपनसे लाडूके शौकीन।

बड़ी मुसीबत रहती जगज्जननीको। भभूतिया बाबा शंकरके घर, जहाँ भूँजी भाँगका ठिकाना न होता, वहाँ 'पूत मोदक को मचलै!'

आप बिस चाखै, भैया षट्मुख राखै देखि
आसन में राखै बस बात जाको अचलै।
भूतन के छैया, आस-पास के रखैया और
काली के नथैया हूँ के ध्यान हूँ ते न चलै॥
बैल-बाघ-बाहन, बसनको गयंद खाल,
भाँग को धतूरे को पसारि देत अँचलै।
घर को हवाल यहै संकर की बाल कहै—
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै॥

पिताजीके तबेलेका हाल तो और भी बुरा है। जब देखिये—'**रारि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में**'।—

बार बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि
हुंकरत बाघ बिरझानो रस रेला में।
'भूधर' भनत ताकी बास पाइ सोर करि
कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में॥
फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग तासों
जंग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला में।
आपस में पारषद कहत पुकारि कछु
रारि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में॥

अब भला बताइये, त्रिपुरारिकी हालत क्या होगी? इस धमा-चौकड़ीसे किसकी तबीयत न खीझ उठेगी? जो देखो, दूसरेपर गुर्रा रहा है। एक दूसरेको फाड़ खानेको तैयार है।

तब शिवजी यदि धूनी रमानेको त्रिशूल लेकर चल पड़ें तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात?

आपु को बाहन बैल बली बनिताहू को बाहन सिंहहि पेखि कै।
मूसे को बाहन है सुत एक सुदूजो मयूर के पच्छ बिसेखि कै॥
भूषन है कबि 'चैन' फनिंद के बैर परे सब ते सब लेखि कै।
तीनहुं लोक के ईस गिरीस सु जोगी भए घर की गति देखि कै॥

विषमता ही विषमता।

'विरोध ही विरोध।'

कहीं बैल तो कहीं बाघ। कहीं चूहा तो कहीं साँप। शिवका तबेला माने विरोधाभासोंका जमघट।

और इन सारे वैर-विरोधोंके कालकूटको पी जानेवाला, हँसते-हँसते गटक जानेवाला ही तो नीलकण्ठ है, सदाशिव है, शंकर है।

उसीके यहाँ माल-मलीदा, मेवा-मिष्ठान्न नहीं, भाँग और धतूरा चलता है। गरीब-से-गरीबके लिये गुंजाइश।

उसीके गण हैं—'**कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू।**'

(मानस १। ९२। $3\frac{1}{2}$) नंगे-लूले-लँगड़े—दरिद्र, सर्वहारा—ऐंडे-बेंडे-टेंढ़े!

जिन्हें कहीं ठिकाना नहीं, उन्हें शिवजीकी बारातमें बराती बननेका सौभाग्य हासिल है।

भोलेबाबाके दरबारमें किसीका प्रवेश निषिद्ध नहीं।

* * *

हाँ, तो इन्हीं विरोधाभासोंके बीच पलते हैं—गणेशजी! कौन गणेशजी?

वही, जो शिवजीके सपूत हैं—और वही, जिनकी पूजा करते हैं अपने विवाहके अवसरपर शिवजी भवानीके साथ—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(मानस १। १००)

इन गणेशजीकी पूजा सबसे पहले की जाती है।

प्रत्येक मंगल-कार्यमें पहला नंबर गणेशजीका।

विद्या पढ़ने चलिये, गुरुजी पाटीपर लिख देंगे—
'ॐ नमः सिद्धम्!'

पढ़ो बेटा, **'ॐ नमः सिद्धम्।'**

बच्चा ठीक नहीं बोल पाता। **'ओनामासीधम!'** कहकर किसी प्रकार पीछा छुड़ाता है। और सिद्धि-सदन गणेशजी इतनेसे ही खुश।

दीवालीमें लक्ष्मी-पूजन करिये। गणेश-लक्ष्मीकी पूजा करिये। नयी बहीमें सबसे ऊपर लिखिये—
'श्रीगणेशाय नमः।'

विवाह-शादी है, कथा-पूजा है—सबसे पहले गणेशजीका पूजन अनिवार्य।

पत्र लिखिये! पुस्तक लिखिये, सबमें गणेशकी वन्दना सबसे पहले।

* * *

तुलसीबाबा दर्खास्त लिखते हैं—रामजीको; किंतु 'विनय-पत्रिका'का श्रीगणेश करते हैं—गणेश-वन्दनासे—

गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥
सिद्धि-सदन गज-बदन बिनायक। कृपा-सिंधु सुंदर सब लायक॥
मोदक-प्रिय मुद-मंगल-दाता। बिद्या-बारिधि बुद्धि-बिधाता॥

धन्य हो, गणेशजी! सारा संसार तुम्हारी वन्दना करता है। तुम शंकर-सुअन हो, भवानी-नन्दन हो। सिद्धियोंके सदन हो, गजबदन हो, समस्त विघ्नोंके नाशक हो। कृपासिन्धु हो, सुन्दर हो, सब तरहसे लायक हो, योग्य हो। मोदक प्रिय हो, मुद भी देते हो, मंगल भी देते हो। विद्या-सागर हो एवं बुद्धिके विधाता हो।

ये सब गुण आपमें हैं।

दर्खास्तमें इतनी प्रशस्ति गणेशजीकी कर लेनेके बाद असली मुद्दा, तनकीहका मुद्दा पेश करते हैं तुलसीदासजी।

'माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे॥'

गोसाईंजीसे पूछनेकी बात यह है कि 'महाराज! राम-सियको जब मानसमें बैठाना था, तब राम-सियसे ही दर्खास्त करनी चाहिये थी? गणेशजीसे प्रार्थना करनेकी कौन जरूरत थी? गणेशजी कोई पेशकार हैं रामजीके?'

न हों पेशकार। पर कायदा यही है कि हर दर्खास्त इसी ड्योढ़ीसे पहले पास होनी चाहिये। पहले लड्डू चढ़ाइये गणेशजीको। उसके बाद आपकी रपट लिखी जायगी—**'सिद्धि करहु गनपति सुमिरि!'** नहीं तो खाते रहिये धक्के, कोई पूछनेवाला नहीं?

* * *

सवाल है कि गणेशजीको यह रुतबा मिल कैसे गया?

कहते हैं कि एक बार देवताओंमें यह विवाद छिड़ गया कि सबसे पहले किसकी पूजा की जाय।

आज मिनिस्टरकी एक कुर्सी खाली होती है तो एक सौ एक दर्खास्तें पहुँच जाती हैं। जो देखिये, अपनेको तीसमारखाँ बताकर कुर्सीका दावा करने लगता है।

देवताओंके दरबारमें भी यही हाल था।

सब अपनी-अपनी पीठ ठोंक रहे थे।

बड़ी मुश्किलसे तय यह हुआ कि 'सारे ब्रह्माण्डकी परिक्रमा करके जो सबसे पहले लौट आये, उसीको यह ओहदा मिलेगा।'

बस, दौड़ शुरू हो गयी।

सब अपने-अपने वाहन लेकर निकल पड़े।

एक-से-एक तेज वाहनोंका बाजार था।

गणेशजी भी इस प्रतियोगिता (कम्पटीशन)-में शामिल थे। पर इनका वाहन ठहरा—'चूहा'।

मूषकराज किताबें-कापियाँ कुतरनेमें तो तेज हैं, पर इस रैकेट-दौड़में पार पाना उनके वशकी बात कहाँ थी।

अजीब परेशानी थी गणेशजीके सामने।

कहनेवाले कहते हैं कि नारदजीने आकर गणेशजीको अकल सुझायी। पर हमारी मान्यता है कि गणेशजी तो स्वयं विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता हैं; उन्होंने स्वयं ही अकल लगायी होगी। जो हो, हुआ यह कि गणेशजीने 'राम'-नाम लिखकर उसीकी परिक्रमा कर डाली।

मिनटोंका तो काम था।

खरहे दौड़ते रह गये। कछुआ फर्स्ट आ गया।

राम-नामकी महिमा! गणेशजी खूब समझते हैं—
'महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥'

* * *

काशीमें 'बड़े गणेश' पर गणेशजीकी एक विशालकाय मूर्ति है।

एकाध बार गणेश-चतुर्थीपर मैंने भी उसके दर्शन किये हैं।

क्या कहना है गणेशजीके शृंगारका।

एक तो विशाल काया, दूसरे ऊपरसे नीचेतक लड्डू-ही-लड्डू।

दो-चार, दस-बीस लड्डू नहीं—हजारों।

देखकर तबीयत खुश हो जाती है।

मन्दिरके आसपास रास्तेमें फर्लांगोंतक लड्डुओंकी पीली, गुलाबी, लाल कतारें। बेसनके, मोतीचूरके। किसीके पास आलूके, किसीके पास शकरकन्दके।

लम्बोदरको क्या चाहिये? लड्डू, लड्डू, लड्डू।

दाँत तो एक है, चबायेंगे कैसे?

लड्डू लिया—गप्पसे उदरस्थ कर लिया। एक-दो-चार-दस····। भक्तोंकी रेल-पेल मची है। गणेशजी लड्डू उड़ा रहे हैं।

*　　　*　　　*

लड्डू मिले कि तबीयत खुश—'जा बेटा, तेरा कल्याण होगा।'

प्रसन्नतामें सहज ही आशीर्वाद निकलता है। गणेशजी मोदक पाते ही मुद और मंगल बाँटने लगते हैं।

लेकिन एक बात है—गणेशजी विनायक भी हैं।

विनायक माने विघ्न।

आप उन्हें लड्डू नहीं चढ़ायें तो समझ लीजिये कि खैर नहीं। क्या तमाशा करते हैं विनायक?

आप कोई काम करनेमें समर्थ हैं, कर सकते हैं, करने जाते हैं, पर आप उस कामको कर ही नहीं पाते।

आप मतलबके काम नहीं कर पाते, व्यर्थके काम करने लगते हैं।

मिट्टीके ढेले उठाकर पीसने लगते हैं; घास काटने लगते हैं; अपनी उँगलियोंसे अपने ही शरीरपर लिखने लगते हैं।

सपना देखते हैं तो पानी, ऊँट, सूअर, मुण्डित मस्तकवाले आदमी दीखते हैं। हवामें उड़ते हैं तो लगता है, कोई पीछा कर रहा है!

*　　　*　　　*

विनायकके इन उत्पातोंसे बचनेका उपाय?

उपाय भी विनायक।

तुम्हींने दर्द दिया, तुम्हीं दवा देना।

विनायक विघ्ननाशन भी हैं।

'**सर्वविघ्नोपशान्तये**'—गणेशजीकी पूजा कर लीजिये।

'*जय गणेश देवा*' कहकर लड्डुओंका भोग लगा दीजिये—विघ्न-बाधाएँ कपूर बनकर उड़ जायँगी।

दो लड्डू चढ़ाये कि काम बना।

निषाद कहता है—

'तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥'

(मानस २। १८९। ३)

आपको तो निषाद-जैसा खतरा उठानेकी भी जरूरत नहीं। सिर्फ दो लड्डू चढ़ानेकी देर है। फिर वह प्रसाद भी तो आपके ही हाथमें रहेगा। '*दुहूँ हाथ मुद* '*मोदक*' हैं। लोक भी बनेगा, परलोक भी। मुद भी, मंगल भी।

आइये—गणेशजीसे हम प्रार्थना करें—'महाराज! ऐसी कृपा करो कि हम जो शुभ कार्य करें, वह सब निर्विघ्न पूरा हो'—

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥

~~~o~~~

दैनिक जीवनमें गणेशका स्थान

(लेखक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी)

देशमें शायद ही ऐसा कोई हिंदू-परिवार होगा, जहाँ श्रीगणेशजीकी पूजा न होती हो। सभी हिंदू-परिवारोंमें श्रीगणेशकी पूजा व्याप्त है। 'गणेश'-शब्दका विग्रह है—गण ईश। 'गण'का अर्थ देवताओंका समूह और 'ईश'का अर्थ उसका स्वामी है। अतएव 'गणेश'का अर्थ हुआ 'देवताओंके समूहका स्वामी', जो परमपिता परमेश्वरके अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता। अतएव गणेशकी पूजासे हम प्रभु परमेश्वरकी ही पूजा करते हैं।

श्रीगणेशजीके पिता जगद्-विख्यात श्रीशिवजी हैं। इनकी माता जगज्जननी श्रीपार्वतीजी हैं और इनके भाई युद्धविद्या-विशारद श्रीकार्तिकेयजी हैं। ऐसे छोटे और महान् परिवारके एक सदस्य श्रीगणेशजी हैं। इनके विषयमें केवल इतना ही संकेत करना आवश्यक
~~~

होगा कि यदि महाभारतके रचयिता श्रीवेदव्यासको श्रीगणेशजी-जैसा लिखनेवाला न मिला होता तो यह असम्भव था कि महाभारत-जैसा महान् ग्रन्थ आज हमलोगोंको देखनेको मिला होता। श्रीगणेशजीके गुणोंकी महत्ताको समझते हुए ही अपने शास्त्रकारोंने इनकी पूजाको प्रथम स्थान दिया है।

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

सभी हिन्दू-परिवारोंमें बच्चोंको जब विद्या आरम्भ करायी जाती है, तब उनसे गणेशजीका पूजन कराया जाता है, जिससे भविष्यमें बच्चा पढ़े, इच्छानुकूल विद्या प्राप्त करे, परीक्षामें उत्तीर्ण हो और वह श्रेष्ठ विद्वान् बने। ठीक उसी प्रकार विवाहके लिये भी पद-पदपर गणेश-स्मरण होता है, जिससे वर या कन्याके मनोनुकूल जोड़ा मिले, भविष्यमें दोनोंका जीवन सुखी हो और वे योग्य संतान प्राप्त करें। ठीक इसी प्रकार घरसे बाहर जानेके समय प्रायः गणेश-स्मरण किया जाता है, जिससे यात्रा सानन्द सम्पन्न हो। व्यापार-व्यवसायके करनेके पूर्व भी गणेशजीकी वन्दना की जाती है, जिससे लाभ हो। किसान तो गणेशजीको याद करना भूलते ही नहीं। गणेशचतुर्थीके दिन उनके मन्दिरोंमें पूजाके घड़ी-घंट बजते ही हैं। इस प्रकार श्रीगणेशजी जीवनके प्रत्येक कार्यमें हमारे साथ रहते हैं और उनकी कृपासे हम मंगलको प्राप्त करते हैं।

~~~o~~~

गणतन्त्रके आदि प्रणेता एवं नेता गणेश

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

राष्ट्र-धर्म प्रत्येक युगमें भारतका प्रधान धर्म रहा है। इस देशका 'गणपति'—राष्ट्रपति वही बन सकता है, जो देशको भौतिक ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धिसे परिपूर्ण कर लोगोंको परमात्मतत्त्वकी ओर भी अग्रसर कर सके। इसके लिये आवश्यकता है—सत्-असत्-विवेचनी बुद्धिकी। यही हेतु है कि हमारे 'गणपति'—राष्ट्रपतिका सिर हाथीके समान, धड़ मनुष्य-जैसा तथा वाहन भी चूहे-जैसा ही होना चाहिये। हाथीकी एक यह भी विशेषता है कि वह कभी जोशमें नहीं आता; किंतु यदि परिस्थितिवश उसे जोश आ जाय तो उसका जोश कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसी प्रकार 'राष्ट्रपति'में भी गुरुता और गम्भीरता—दोनों होनी चाहिये। गणपतिके वाहन मूषककी भी कुछ विशेषताएँ हैं। चूहा बिलके अंदर गुप्त रहता है, पर आवश्यकता पड़नेपर किसी वस्तुको नष्ट करनेके पहले उसकी जड़ें काट देता है। उसी प्रकार राष्ट्रपतिको भी अपनी नीति गुप्त रखनी चाहिये और विपक्षी राष्ट्रोंका विनाश करनेके पहले उनकी लोक-प्रतिष्ठाको भंग करना चाहिये। प्रचारद्वारा उनकी अन्ताराष्ट्रीय स्थितिको निर्बल बना देना चाहिये।

हमारे बुद्धिमान् गणेशजीमें बुद्धिकी विशिष्टता भी है। इसीलिये उन्हें ऋद्धि-सिद्धि-दाताके साथ 'बुद्धि-विधाता' भी कहा जाता है। बुद्धिमान् होनेके कारण ही वे प्रथम-पूज्यपद प्राप्त करनेमें समर्थ हो सके हैं। प्रथम-पूज्य होनेकी कथाका वर्णन भिन्न-भिन्न ढंगसे हुआ है, किंतु गणेशजीको यह राष्ट्रपतिका प्रथम-पूज्य पद केवल सम्मानमें नहीं, अपितु कठिन परीक्षाके बाद प्राप्त हुआ है। इस 'गणपति'के प्रथम-पूज्य पदकी लिखित परीक्षामें वेदव्यासद्वारा गणेशजीको योग्यता-क्रमके अनुसार प्रथम स्थान दिया गया। गणेशजी इतनी द्रुतगतिसे लिखते थे कि उतनी शीघ्रतासे व्यासजी श्लोकोंकी रचना ही नहीं कर पा रहे थे। फलस्वरूप उन्हें यह प्रतिबन्ध लगाना पड़ा कि श्लोकका अर्थ समझे बिना वे (गणेशजी) उसे लिपिबद्ध न करें। भगवान् वेदव्यासद्वारा रचित श्लोकोंके अर्थ-गाम्भीर्यको समझते हुए उसे द्रुतगतिसे लिखना गणेशजीकी बौद्धिक प्रतिभाका अनुपम उदाहरण है। इसी प्रकार एक और भी परीक्षा हुई। उस प्रथम-पूज्य पदके अभ्यर्थियों—सभी देवताओंके समक्ष सम्पूर्ण विश्वकी परिक्रमा करके सर्वप्रथम आनेका प्रश्न रखा गया। अन्य देवता प्रश्नकी बारीकी न समझकर शारीरिक भाग-दौड़ करने लगे, किंतु गणेशजीने अपनी सूक्ष्म सूझ-बूझसे विश्वकी परिक्रमा विश्व-निर्माता श्रीरामके नामकी परिक्रमा लगाकर कर ली। बुद्धि-कौशलद्वारा इसमें भी उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया तथा समस्त जनमतको
~~~

अपनी ओर आकृष्ट कर सर्वसम्मतिसे 'गणपति'—'राष्ट्रपति'के प्रथम-पूज्य पदपर प्रतिष्ठित हो गये।

ऐसे बुद्धिमान्‌के गणपति—राष्ट्रपति बनते ही सारा देश धन-जनसे सम्पन्न होने लगा। स्वयं सिद्धि-बुद्धि अनुचरी—अर्धांगिनी बनकर गणपतिकी सेवा करने लगीं। क्षेम और लाभ पुत्र बनकर सम्पूर्ण समाजके कुशल-क्षेमके लिये कार्यमें जुट पड़े। भौतिक समृद्धिके साथ-साथ अन्त:शान्ति और अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्तिसे लोग कृतकृत्य हो उठे। परिणामस्वरूप राष्ट्रके नेता, प्रणेता, कर्णधार—गणपति(राष्ट्रपति)-की स्तुति-प्रशस्तिके जयकारोंसे सभी दिग्-दिगन्त गूँजने लगे, जिसकी प्रतिध्वनि आज भी गणेशजीकी वन्दनाके माध्यमसे सुननेको मिलती है। सभी देवताओंने गणेशजीकी इस राष्ट्र-सेवासे प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया। **'गणेशो विघ्नहर्ता हि सर्वकामफलप्रदः।'**

गणतन्त्रके निर्माता गणेशजीके आदर्शोंको अपनाकर आजका यह गणतन्त्र—प्रजातन्त्र-शासन भी देशका सर्वांगीण सार्वभौमिक विकासकर राष्ट्रको सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक शक्तिशाली राष्ट्रके रूपमें संसारके समक्ष उपस्थित कर सकता है।

~~~○~~~

राष्ट्रोद्धारक श्रीगणपति

(लेखक—श्रीत्रिभुवनदास दामोदरदास सेठ)

गणेशजीका जन्म राष्ट्रके अभ्युदयकी प्रेरणा देता है। गणेशजीके जन्मके पहले संघभावका बिलकुल ही अस्तित्व न था। गणेशजीने दस वर्षमें सबको संगठित और उन्नत किया, जिससे वे सम्मानके पात्र बने। इतना ही नहीं, उनका स्थान पूजामें प्रथम हुआ, जो स्थान अबतक चला आ रहा है। गणेशजीने धूम्राक्ष, नरान्तक, देवान्तक आदि राक्षसोंका नाश किया, जो राज्य करते समय सज्जनोंको पीड़ित करते थे। इससे गणेशजी सर्वपूज्य बन गये तथा विघ्ननाशक माने गये। एक पतित राष्ट्र या जातिकी उन्नति थोड़े समयमें कैसे हो गयी, यह राष्ट्रीय उन्नतिके लिये आदर्श है, अनुकरणीय है। यह उन्नति गणेशजीके संगठन और बुद्धिके बलसे सम्पन्न हुई।

गणेशजीकी सारी योजनाएँ गुप्त रहती थीं; उनके अनुसार काम हो जानेपर ही सबको पता चलता था। गणेशजीकी विद्वत्ता अपार थी, जिससे छोटी उम्रमें ही वे सारे शास्त्रोंको सीख गये।

गणेशजी पाखण्डवादका खण्डन करके शास्त्रोंका सार लेकर सबकी एकरूपता करनेमें अद्वितीय हैं। वे श्रेष्ठ वक्ता एवं ब्रह्मविद्याके स्वामी हैं। इस कारण उनकी योजनाओंमें अध्यात्मविद्याकी प्रधानता रही है। गणेशजी महान् गणितज्ञ और इतिहासके ज्ञाता हैं तथा **'गणक गणितागमसारवित् गणकश्लाघ्य'** कहे गये हैं।

युद्धमें भी गणेशजी अजेय हैं। कार्तिकेय सेनापति थे, परंतु राष्ट्र-संगठनके विषयमें वे इतने प्रख्यात न थे। गणेशजी राष्ट्र-संगठन और सेना-संचालन—दोनों ही कार्योंमें जगत्-प्रसिद्ध हैं। गणेशजीमें अनुपम बुद्धिमत्ता है। जो काम दूसरोंसे नहीं हो सकता, उसे वे अपनी बुद्धि और बलसे सहज ही कर लेते हैं। दूरदृष्टि, प्रज्ञा, बुद्धि और धारणाशक्तिका अद्भुत सम्मिश्रण गणेशजीमें पाया जाता है।

इन विनायकका उपनयन कश्यप ऋषिके आश्रममें हुआ था। उस आश्रममें यज्ञ तो होता ही रहता था; वहाँ बटुकको लाकर उसे यज्ञोपवीत, कौपीन, दण्ड एवं मेखला भी धारण कराये गये। तब विनायकने भिक्षा माँगी। भिक्षामें वरुणदेवने विनायकको 'पाश' दिया और उस पाशसे शत्रुओंको बाँधनेकी रीति सिखलायी। भगवान् शंकरने 'त्रिशूल' प्रदान किया और शत्रुओंपर उसे चलानेकी रीति सिखला दी। परशुरामजीकी माता रेणुकादेवीने 'फरसा' प्रदान किया और आशीर्वाद दिया कि 'तू शत्रुओंका विनाश करेगा'। इस प्रकार वहाँ उपस्थित देवताओंने विनायकको अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये और सबने सामूहिकरूपसे आशीर्वाद दिया कि 'इन शस्त्रोंसे तू शीघ्र दुष्टोंका नाश करेगा'। इस प्रकार राष्ट्रोद्धारके कार्यमें गणपतिको अलौकिक स्थान प्राप्त हो गया।

गणपतिका राष्ट्र-संगठन-तत्त्व बड़ा ही सरल और बोधप्रद है तथा वह उन्नतिमें सहायक है।
~~~

हिंदुओंके घर-घर गणेशकी पूजा होती है; परंतु गणेशजीके द्वारा किये गये कार्योंकी ओर रत्तीभर भी ध्यान नहीं दिया जाता। उनको समझनेका भी प्रयत्न नहीं किया जाता, तब फिर उनके आचरणकी तो बात ही कैसे की जा सकती है। किंतु जो राष्ट्र उनका अनुसरण करता है, वह उन्नत बनता है।

~~०~~

लोकमान्य तिलकद्वारा प्रवर्तित गणेशोत्सव

(लेखक—श्रीकाशीनाथजी सोमण, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

पराधीन देशका स्वातन्त्र्य-संग्राम उसी दिनसे आरम्भ होता है, जिस दिनसे उसके पैरोंमें गुलामीकी जंजीर पड़ी है और उस गुलामीको नष्ट करनेके कई मार्ग हो सकते हैं। शत्रुके पाँव पड़नेसे लेकर उसके पैरोंको खींचनेतक सभी मार्ग वैध ही हैं। अपना देश भी उसके लिये अपवाद नहीं है। इसीलिये स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये 'साधनाना अनेकता'—यह लोकमान्यका साधन-सूत्र था। स्वराज्यकी प्राप्तिके मार्गपर जिस साधनसे एक पैर भी आगे पड़ता हो, उस साधनका उपयोग करनेमें लोकमान्य कभी हिचकिचाते नहीं थे। इसी दृष्टिसे महाराष्ट्रमें लोकमान्यने सर्वजनीन गणेशोत्सव शुरू किया था। गणेशोत्सव-जैसे धार्मिक और शिवाजी-जयन्ती-जैसे ऐतिहासिक उत्सवोंका उपयोग स्वातन्त्र्य-संग्रामके साधन समझकर ही किया गया। घर-घरमें व्यक्तिगत रूपसे मनाये जानेवाले गणेशोत्सवको उन्होंने सार्वजनिक समष्टिरूप दिया; गणेशोत्सवको जन-जागरणका एक प्रभावशाली साधन बना डाला।

किसीके मनमें यह बात आ सकती है कि 'लोकमान्यने राम, कृष्ण, शंकर, विष्णु आदिके स्थानपर गणेशजीको ही क्यों चुना?' उसके कई कारण हैं। सनातन वैदिक हिंदूधर्मके उपास्य देवताओंमें श्रीगणेशजीका महत्त्व असाधारण है। चाहे जो मंगल-कार्य हो, बिना गणेश-पूजनके उसका आरम्भ हो ही नहीं सकता। यहाँतक कि अन्य किसी देवताका पूजन या महोत्सव मनाते समय भी पहले महागणपतिका पूजन और स्मरण किया जाता है। श्रीगणेशजीका इतना महत्त्व इसीलिये है कि वे विघ्नहर्ता हैं। गणेशजी वेदकालसे ही परिचित एवं पूज्य माने जाते हैं। ऋग्वेदमें **'गणानां त्वा गणपतिम्'**—नामक ऋचाको 'गणपति-सूक्त' कहते हैं। 'गणपति-अथर्वशीर्ष'में गणपतिको ओंकाररूप माना गया है। उसी रूपमें गणेशजीकी प्रार्थना और पूजाकी परम्परा अखण्डरूपसे चलती आयी है। कोई किसी भी देवताका उपासक क्यों न हो, वह गणेशजीका विरोधी नहीं हो सकता। गणपतिका प्रथम वन्दन करके ही उपासक अपने उपास्य देवताकी पूजा किया करता है।

हिंदू-धर्ममें शैव-वैष्णव-जैसे कई उपासना-पंथ हैं। इनमें गणपतिकी उपासना करनेवालेको 'गाणपत्य' कहा जाता है। उत्तर भारतकी अपेक्षा दक्षिण भारतमें यह उपासना अधिक प्रचलित है। महाराष्ट्रमें गणपतिके उपासक अधिक हैं। पेशवाओंके राजत्व-कालमें गणेशोत्सव बड़ी धूम-धामसे मनाया जाता था। पेशवा-शासक स्वयं गणपतिके उपासक थे। सवाई माधवराव पेशवाके शासनकालमें तो पूनाके प्रसिद्ध शनिवारवाड़ा नामक राजमहलमें भव्य गणेशोत्सव मनाया जाता था। अंग्रेजोंके आते ही पेशवा-शासन लगभग समाप्तप्राय हो गया, पर गणेशोत्सवकी परम्परा बनी ही रही। मजूमदार, पटवर्धन, दीक्षित आदि सरदारोंके परिवारोंमें गणेशोत्सव ठाट-बाटसे मनाया जाता रहा।

पर गणेशोत्सवको सार्वजनिक रूप देनेके केवल ये ही कुछ कारण नहीं थे। अंग्रेजी शासन यहाँ स्थिर हो चुका था। लोगोंके विचारोंमें भ्रष्टता आने लगी थी। धर्मके सम्बन्धमें लोग उदासीन-से दिखायी देने लगे। युवकवर्गमें अपने आचार-विचारोंके प्रति घृणा और अंग्रेजी आचार-विचारोंके प्रति प्रेम बढ़ने लगा था। सारे समाजमें गरमाहट पैदा कर राष्ट्रीय भावनाको जगाना आवश्यक था। लोकमान्यने सोचा कि गणेशजी ही एक ऐसे देवता हैं कि जो समाजके सभी स्तरोंमें पूजनीय हैं। उन्हींका उत्सव मनाकर अस्त-व्यस्त समाजको संघटित किया जा सकेगा; नवयुवकोंमें राष्ट्रीय भाव प्रज्वलित किये जा सकेंगे एवं राजनीतिक आन्दोलनको बढ़ावा मिल सकेगा। गणेशोत्सव एक धार्मिक उत्सव होनेके कारण अंग्रेज शासक भी उसमें दखल नहीं दे

सकेंगे। धार्मिक उत्सवोंमें हस्तक्षेप करनेसे पहले शासकोंको कई बार सोचना होगा। इसके अतिरिक्त गणेशोत्सव शुरू करनेमें और भी एक कारण था। ईसाइयों तथा मुसलमानोंके क्रिसमस या मुहर्रम-जैसे महोत्सवमें, ताजियोंके जुलूसमें हिंदू-समाजके निम्न श्रेणीके लोग भी सम्मिलित हुआ करते थे। यह देखकर लोकमान्यके दिलमें बेचैनी महसूस होती थी। अतः उत्सवप्रिय जनताको एक ऐसा महोत्सव मिलना चाहिये था, जिसमें हिंदू-समाजके सभी वर्ग एक साथ सम्मिलित हो सकें। इसी विचार-मन्थनसे उनके मनमें सार्वजनिक गणेशोत्सवकी कल्पना उदित हुई। सन् १८९३में पूनामें यह कल्पना कार्यान्वित हो गयी।

लोकमान्य तिलकने गणेशोत्सवको स्वाधीनताके आन्दोलनका एक प्रभावशाली साधन बनाया था। उन्होंने गणेशोत्सवको राष्ट्रीय महोत्सवके रूपमें ही प्रसारित किया। फिर भी, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सार्वजनिक गणेशोत्सव मनानेके पीछे यह भी एक विचार कार्य कर रहा था कि अन्य धर्मवालोंके त्यौहार, जुलूस आदिका बुरा असर हिंदू-समाजके नवयुवकोंपर न पड़े। सन् १८९३में ही गणेशोत्सवको सार्वजनिक रूप मिलनेका भी यही कारण था। सन् १८९३ में बंबई तथा महाराष्ट्रके चंद अन्य नगरोंमें भी हिंदू-मुसलिम दंगे हुए। इसी सम्बन्धमें पूनामें एक सभा हुई। मुसलिम-उपद्रवोंका सामना करनेके लिये हिंदू-समाजको किस प्रकार संगठित किया जाय, इस बारेमें उस सभामें विचार हुआ। सार्वजनिक गणेशोत्सव उसी विचारकी फलश्रुति थी। महाराष्ट्रमें भाद्रपद और माघ-मासकी शुक्ल-चतुर्थी-तिथिको गणेश-देवताका उत्सव मनानेकी परम्परागत परिपाटी है। अब यह तय हुआ कि भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीसे लेकर भाद्रपद-शुक्ल चतुर्दशी (अनन्त-चतुर्दशी)-तक गणेशोत्सव मनाया जाय। दस दिनके इस सार्वजनिक गणेशोत्सवमें धार्मिक पूजा-अर्चाके साथ-साथ कीर्तन-प्रवचन-व्याख्यान भी आयोजित किये जायँ। समाजको स्वराज्यके आन्दोलनहेतु सुसंगठित बनानेका प्रयत्न किया जाय। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता स्वर्गीय खानखोजेने लिखा है कि 'पूनामें तिलकजीके नेतृत्वमें गणेशोत्सवका प्रारम्भ हुआ। वह केवल कोई धार्मिक उत्सव नहीं था, देशभक्तिके प्रसारके लिये शुरू हुआ एक राष्ट्रीय महोत्सव था। उसे चंद ही दिनोंमें राष्ट्रधर्मका स्वरूप प्राप्त हुआ। पूनासे प्रेरणा लेकर वर्धा, नागपुर, अमरावती आदि नगरोंमें भी गणेशोत्सव मनाया जाने लगा।' खानखोजे आगे चलकर लिखते हैं कि '**गणानां त्वा गणपतिं हवामहे**'—इस व्यापक दृष्टिसे गणराज्य दिलानेवाले गणपति हमारे स्वातन्त्र्यके देवता हैं, इस प्रकारका प्रचार शुरू हुआ। गणेशोत्सवके माध्यमसे प्रभावशाली और देशभक्त वक्ता एवं कीर्तनकारोंके द्वारा क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओंको इकट्ठा करनेका काम सुलभ हुआ। धार्मिक उत्सव होनेके कारण पुलिस भी गणेशोत्सवमें हस्तक्षेप करनेमें हिचकिचाती थी। खुद लोकमान्य तथा अन्य राजनीतिक कार्यकर्ता गणेशोत्सवके अवसरपर व्याख्यानद्वारा स्वराजका ही प्रचार किया करते थे।''

गणेशोत्सवके अवसरपर दिये गये एक व्याख्यानमें लोकमान्यने कहा था कि ''गणपतिकी आराधना करते समय स्वराज्य, वैराज्य पारमेष्ठ्य-राज्यकी माँग करनेकी परिपाटी प्राचीन समयसे चली आयी है। ये शब्द जिस मन्त्रमें आये हैं, वह कोई नया नहीं। बंगालके विभाजन-जैसे आन्दोलनके बाद वह मन्त्र गठित नहीं हुआ। वह हमारा प्राचीन मन्त्र है। हाँ, हम उसे अंग्रेजोंके यहाँ आनेके बाद भूल-से गये हैं। मन्त्रके प्राचीनत्वका स्मरण दिलानेके लिये ही हम यह गणेशोत्सव मना रहे हैं। इस मन्त्रमें कई शब्द हैं। सभी समानार्थी नहीं हैं। यों ही फिजूल शब्दोंका इस्तेमाल करनेकी हमारे ऋषियोंकी आदत नहीं थी। अतः नाहकका शब्दजाल नहीं बनायें। मन्त्रकी प्रथम सीढ़ीसे शुरू करें, अन्तिम सीढ़ीतक गजानन देवता आपको पहुँचा देंगे।''

'**गणपति**' शब्दसे ही प्रतीत होता है कि वे गणोंके पति हैं—गणोंके अधिपति हैं। यानी सब समाजके—जनताके—ये राष्ट्र-देवता हैं। समाजमें इकाईका भाव कैसे पैदा किया जा सकता है, इस अनुशासनके पालनका पाठ भी हमें गणेश-देवताकी उपासनासे मिलता है। आत्मसंयम कैसे किया जाय, इसकी शिक्षा भी हमें गणेशोत्सवसे मिलती है; क्योंकि गणेश-देवता बुद्धि और शक्ति, दोनोंके प्रतीक हैं।

लोकमान्यने राष्ट्रोद्धारका विशिष्ट उद्देश्य मनमें रखकर इस राष्ट्रीय उत्सवको प्रवर्तित किया था। तिलकसे प्रेरणा लेकर अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओंने भी इसमें जी-जानसे हाथ बँटाया। हिंदुओंको संगठित करनेका एक साधन समझकर गणेशोत्सव शुरू किया गया। शुरू-शुरूमें वह एक धार्मिक उत्सवके रूपमें मनाया गया,

पर कुछ ही वर्षोंमें गणेशोत्सवको राष्ट्रीय रूप प्राप्त हुआ। सब भारतीय एक हैं—इस प्रकार एकताका मन्त्र इस महोत्सवसे दिया गया। व्यक्तिगतरूपसे घर-घरमें छुआछूतका भाव भले ही रहा हो, गणेशोत्सवके अवसरपर समान स्तरपर ही सभी काम करने लगे। यहाँतक कि पूनामें मुसलमान-समाजकी ओरसे भी राष्ट्रीय भावनासे गणेशोत्सव मनाया गया। गणेशोत्सवमें होनेवाली सभाओंमें मुसलिम नेता भी सम्मिलित होने लगे। इस सम्बन्धमें सन् १९०८की एक घटनाका उल्लेख करना अनुचित न होगा। लोकमान्य तिलकके 'केसरी-कार्यालय'में प्रसिद्ध नेता श्रीसैय्यद हैदरी रेझाका व्याख्यान हुआ। आपका विषय था—'हिंदू-मुसलिम-आपसी-सम्बन्ध'। उसी समय पूनाके जिलाधीश महोदयने रेझा साहबको मिलनेके लिये बुलाया। उन्होंने उनको समझाया, 'क्या आपको यह मालूम नहीं कि यह गणेशोत्सव मुसलमानोंके खिलाफ है; किंतु फिर भी आप उसमें सम्मिलित हो रहे हैं। ऐसा ही है तो फिर आप हिंदू ही क्यों नहीं हो जाते?' रेझा साहबने झट उत्तर दिया—'ऐसा होना न होना मेरी मर्जीपर निर्भर है; उसमें आपके दखल देनेकी कोई जरूरत नहीं।' रेझाजीका वह व्याख्यान श्रीमान् नरसिंह चिन्तामणि केलकरकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ था।

सार्वजनिक गणेशोत्सवमें सामाजिक-धार्मिक सुधार तथा राष्ट्रीय भावनाको प्रखर बनानेका काम गीत-गायकोंने किया, जिन्हें उस समय 'मेळा' नामसे सम्बोधित किया जाता था। मेळा यानी मण्डली। बालक-बालिकाओं तथा युवकोंका एक गुट होता था, जिसके सभी सदस्य विशिष्ट गणवेशधारी हुआ करते थे और यह अनुशासित मण्डली गणेशोत्सवके सुअवसरपर राष्ट्रीय गीत गाया करती थी। गणेशोत्सवके प्रति समाजको आकर्षित करनेका बहुमूल्य कार्य इस मेळा-मण्डलीने किया। इस मेळा-मण्डलीके बिना सार्वजनिक गणेशोत्सव इतना प्रख्यात कभी न हो पाता। मेळा-मण्डलीका नाम गणेशोत्सवके साथ जुड़ा हुआ है।

पूनामें १८९३ई०में एक राष्ट्रीय महोत्सवके रूपमें गणेशोत्सवकी नींव डाली गयी। लोकमान्यकी प्रेरणासे महाराष्ट्रभरमें उसका विस्तार हुआ। महाराष्ट्रका प्रत्येक नगर और नगरका मुहल्ला-मुहल्ला 'गणपति बाप्पा मोरया' के जयघोषसे गूँज उठा। महाराष्ट्रके बाहर भी बड़े-बड़े नगरोंमें मराठी-भाषी समाजने स्थानीय समाजके सहयोगसे गणेशोत्सव मनाया, जो प्रथा आजतक प्रचलित है। इस प्रकार काश्मीरसे कन्याकुमारीतक और कराचीसे कलकत्तातक गणेशोत्सव सार्वजनिक रूपमें मनानेकी प्रथा प्रारम्भ हुई। यहाँतक कि भारतके बाहर अदन, नैरोबी, लंदन आदि स्थानोंमें भी गणेशोत्सव मनाया जाने लगा। १९२०ई०में लोकमान्य तो चल बसे, पर गणेशोत्सव मनानेकी परिपाटी ज्यों-की-त्यों चालू रही। महात्माजीके नेतृत्वमें स्वराज्यके नये-नये आन्दोलन शुरू हुए। गणेशोत्सवोंमें उन सभी आन्दोलनोंका प्रचार किया गया। जन-जागृतिका व्रत चलता रहा। १९४७ ई०में देश स्वतन्त्र हुआ; अतः गणेशोत्सवके स्वरूपमें अपने-आप परिवर्तन होने लगा। अबतक वह स्वराज्य-प्राप्तिका एक साधन समझा गया था, अब प्राप्त स्वराज्यको सुराज्य कैसे बनाया जाय, इस सम्बन्धकी जन-जागृतिका कार्य गणेशोत्सवके द्वारा होने लगा। सार्वजनिक गणेशोत्सवोंकी संख्या बढ़ गयी। पहले विदेशी सत्ताके प्रति जनतामें असंतोष पैदा करनेकी दृष्टिसे गणेशोत्सवका उपयोग किया गया; स्वाधीनता-प्राप्तिके बाद अब वह भूमिका नहीं रही। इसी कारण गणेशोत्सवके कार्यक्रममें व्याख्यान, प्रवचन, राष्ट्रीय गीत-गायन आदि कार्यक्रमोंपर जो बल दिया जाता था, वह अब नहीं रहा। गणेशोत्सवके उद्देश्यका रुख ही बदल गया। अब रोशनीकी, सजावटकी, जगमगाहटकी ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। वैसा होना स्वाभाविक भी था। आज सन् १९७३में गणेशोत्सवका प्रारम्भ हुए ८०वर्ष बीत जानेके बाद भी सार्वजनिक गणेशोत्सवका सिलसिला ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। लोकमान्यके समयमें पूनामें सार्वजनिक रूपसे मनाये जानेवाले गणेशोत्सवोंकी संख्या कोई सौ रही होगी, पर अब वह संख्या लगभग हजारतक हो गयी है। गणेशोत्सवको प्रारम्भ हुए १९५३ ई०में साठ वर्ष पूरे हो चुके थे, उसीके उपलक्ष्में पूनामें गणेशोत्सवका हीरक-महोत्सव मनाया गया। १९५२ ई०में ही २६जनवरीको भारत गणराज्य घोषित किया गया। अब भी प्राप्त स्वातन्त्र्यकी रक्षा और सुराज्यकी साधनाहेतु गणेशोत्सवका उपयोग किया जा सकता है। इसके लिये लोकमान्यकी प्रेरणा हमें हमेशा मिलती रहेगी।

श्रीगणेशगीता और श्रीमद्भगवद्गीता—एक तुलनात्मक अध्ययन

(लेखक—श्रीनागोराव वासरकर, एडवोकेट)

गणेशं गाणेशाः शिवमिति च शैवाश्च विबुधा
रविं सौरा विष्णुं प्रथमपुरुषं विष्णुभजकाः।
वदन्त्येकं शाक्ता जगदुदयमूलां परशिवां
न जाने किं तस्मै नम इति परं ब्रह्म सकलम्॥

(पुष्पदन्तकृत गणेशमहिम्नःस्तोत्रम् २)

"जिस एक तत्त्वको गणपतिके उपासक 'गणेश', शैव विद्वान् 'शिव', सूर्योपासक 'सूर्य', विष्णुभक्त 'आदि पुरुष विष्णु' तथा शक्तिके उपासक जगत्की उत्पत्तिकी मूल कारण-भूता 'परा शिवा' कहते हैं, वह वास्तवमें क्या है? यह मैं नहीं जानता; किंतु सब कुछ परब्रह्मस्वरूप है; इसलिये ब्रह्मभावसे ही उस अद्वितीय तत्त्वके प्रति मेरा नमस्कार है।"

जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता महाभारतके भीष्मपर्वका एक भाग है, उसी प्रकार श्रीगणेशपुराणके क्रीडाखण्डके अध्याय १३८—१४८को 'गणेशगीता' कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके १८ अध्यायोंमें ७०० श्लोक हैं तो 'श्रीगणेशगीता'के ११ अध्यायोंमें ४१४ श्लोक हैं। भगवद्गीताका उपदेश युद्धके आरम्भमें कुरुक्षेत्रकी पावन भूमिपर अर्जुनके प्रति दिया गया था तो गणेशगीताका उपदेश युद्धके बाद राजूरकी पवित्र स्थलीमें नरेश वरेण्यके प्रति किया गया था। यह स्थान जालना स्टेशनसे चौदह मीलपर स्थित है। भगवद्गीताके अनुकरणमें लगभग सैकड़ों अन्य गीताओंकी रचना हुई है, जिनमें कुछ ये हैं—रामगीता, हंसगीता, गुरुगीता, अवधूतगीता, पाण्डवगीता आदि। इनमें भी 'गणेशगीता'को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन सारी गीताओंके विषय भिन्न-भिन्न होनेपर भी गणेशगीतामें वे ही विषय आये हैं, जो श्रीमद्भगवद्गीतामें हैं। गणेशगीता तथा भगवद्गीतामें कर्मयोग-सांख्ययोग-भक्तियोगपरक जो वर्णन आये हैं, वे भी प्रायः समान भावमय हैं। गणेशगीतामें योगसाधन, प्राणायाम, तान्त्रिकपूजा, मानसपूजा, सगुणोपासना इत्यादिको विस्तारके साथ समझाया गया है और विभूतियोग, विश्वरूपदर्शन आदिका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। उसमें शब्दोंकी भिन्नता अवश्य है, परंतु विषय वे ही हैं।

जिस प्रकार अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने योगमार्गका उपदेश किया, उसी प्रकार राजा वरेण्यको श्रीगजाननने यह योग बताया। परंतु इन दोनों गीताओंमें दोनों श्रोताओंकी मनःस्थिति और परिस्थितियाँ भिन्न हैं। भगवद्गीताके प्रथम अध्यायसे स्पष्ट है कि मोहके कारण अर्जुनकी मूढ़-अवस्था हो गयी थी; वह अपने कर्तव्यका भी ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाता था और निष्क्रियता, विमूढ़ता, नपुंसकता, भ्रान्तता एवं शिथिलता आदिसे भी आक्रान्त था। परंतु राजा वरेण्यकी ऐसी विमोह-ग्रस्त अवस्था नहीं थी; अपितु वह साधनचतुष्टयसम्पन्न मुमुक्षु स्थितिमें था। वह अपने धर्म तथा कर्तव्यको जानता था। उसने धर्मयुक्त राज्य किया था। उसके मनमें केवल एक ही पश्चात्ताप था। उसे बड़ा खेद था कि 'हाय! मैं कैसा अभागा हूँ कि स्वयं भगवान् गणेशजीने मेरे घर जन्म लिया, उसपर भी मैंने उन्हें कुरूप पुत्र मानकर सरोवरपर त्याग दिया। यह अच्छा हुआ कि यह बालक मुनि पराशरजीको मिला और उन्होंने उसका पालन-पोषण किया। इसी नौ वर्षके बालक गजाननने सिन्दूरासुरका संहार करके भू-भार हटाया है। अब मैं उन्हीं गजाननसे चरणाश्रयकी याचना करूँगा।' तदनन्तर राजाने उनसे प्रार्थना की—

विघ्नेश्वर महाबाहो सर्वविद्याविशारद।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ योगं मे वक्तुमर्हसि॥

(गणेशगीता १। ५)

'हे महाबाहु विघ्नेश्वर! आप सब शास्त्रों तथा विद्याओंके ज्ञाता हैं। मुझे विमुक्तिके लिये योगका उपदेश कीजिये।' इसके उत्तरमें गजाननने कहा—

सम्यग्व्यवसिता राजन् मतिस्तेऽनुग्रहान्मम।
शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप॥

(गणेशगीता १। ६)

'राजन्! तेरी बुद्धि मेरे अनुग्रहसे उत्तम निश्चयपर पहुँच गयी है। मैं तुम्हें योगामृतसे भरी गीता सुनाता हूँ, सुनो।' यह कहकर श्रीगणेशने 'सांख्यसारार्थ' नामक प्रथम अध्यायमें योगका उपदेश देकर उन्हें शान्तिका मार्ग बतलाया। स्थितप्रज्ञ पुरुषका जो वर्णन किया, वह भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें भी आया है। तदनुसार ही श्रीगणेशजीने कहा—'सच्चे योगयुक्त पुरुषके लक्षण तो और ही होते हैं। वे तृष्णासे मुक्त, दयामय, जगत्का

उद्धार करनेवाले, हृदयस्थित परब्रह्मको सदा ही सर्वत्र व्याप्त देखनेवाले और सर्वदा संतुष्ट रहनेवाले होते हैं। उनकी दृष्टिमें सोना, मिट्टी, पत्थर—सब समान है।'

शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप।
याभेदबुद्धिर्योगः स सम्यग्योगो मतो मम॥

(गणेशगीता १। २१)

'नरेश्वर! शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य तथा मुझमें भी जो अभेदबुद्धि है, वही मेरे मतमें उत्तम योग है।'

'मैं ही सब कुछ हूँ और मुझसे ही सब हैं। मैं ही सत्, चित् और आनन्दरूप ब्रह्म हूँ।

अच्छेद्यं शस्त्रसंघातैरदाह्यमनलेन च॥
अक्लेद्यं भूप भुवनैरशोष्यं मारुतेन च।
अवध्यं वध्यमानेऽपि शरीरेऽस्मिन् नराधिप॥

(गणेशगीता १। ३१-३२)

'शस्त्र उसका छेदन नहीं कर सकते, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल उसे भिगो नहीं सकता, वायु उसे सुखा नहीं सकती और नरेश्वर! इस शरीरका वध होनेपर भी वह अवध्य है।' भगवद्गीताके दूसरे अध्यायके श्लोक १८, २०,२३-२४ में भी यही कहा गया है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रशंसन्ति श्रुतीरिताम्।
त्रयीवादरता मूढास्ततोऽन्यन्मन्यतेऽपि न॥

(गणेशगीता १। ३३)

'पुष्पित लताके समान आपातरम्य '**अक्षय्यं सुकृतं भवति**' इत्यादि वेदवाक्योंसे मोहित मूढ़लोग यज्ञादिकी ही प्रशंसा करते हैं। उससे अलग दूसरा कोई श्रेय-साधन माननेको भी वे लोग तैयार नहीं होते। अतः स्वर्ग-ऐश्वर्यकी भोगबुद्धिमें आसक्त वे स्वयं संसारके बन्धनमें पड़ते हैं।' अतः सुनो—

यस्य यद्विहितं कर्म तत्कर्तव्यं मदर्पणम्।
ततोऽस्य कर्मबीजानामुच्छिन्नाः स्युर्महाङ्कुराः॥

(गणेशगीता १। ३६)

'वर्णाश्रम-धर्मयुक्त कर्मोंका अनुष्ठान करके मुझे अर्पण करनेपर उनके पाप-पुण्यरूप बीजांकुर नष्ट हो जाते हैं।' ऐसा ही भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें श्लोक ४२से ४६तक कहा गया है।

धर्माधर्मौ जहातीह तयाऽत्यक्त उभावपि।
अतो योगाय युञ्जीत योगो वैधेषु कौशलम्॥

(गणेशगीता १। ४९)

'इस प्रकार आत्मानात्मविवेक-बुद्धिसे युक्त पुरुष पाप-पुण्यसे मुक्त हो जाता है। यही योग विधियुक्त कर्मोंमें सच्ची कुशलता है।' ऐसा योगी 'स्थितप्रज्ञ' कहलाता है। गणेशगीताके अ० १ श्लोक ५३से ६४तक ऐसे स्थितप्रज्ञके लक्षण दिये गये हैं। ये ही बातें भगवद्गीताके दूसरे अध्यायके श्लोक ५६से ७१तक बतलायी गयी हैं।

एवं ब्रह्मधियं भूप यो विजानाति दैवतः।
तुर्यामवस्थां प्राप्यापि जीवन्मुक्तिं प्रयास्यति॥

(गणेशगीता १। ६९)

'भूप! यदि दैवकी अनुकूलतासे वृद्धावस्थामें भी ऐसी ब्रह्म-बुद्धि प्राप्त हो जाती है तो वह भी जीवन्मुक्तिको प्राप्त होगा।' यही बात भगवद्गीतामें भी कही गयी है—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(२। ७२)

'इस ब्राह्मी स्थितिको प्राप्त पुरुष कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें इसमें निष्ठाको प्राप्त होकर वह ब्रह्ममें विलीन हो जाता है।'

'कर्मयोग' नामक दूसरे अध्यायमें श्रीगजाननने वरेण्यको कर्मयोगका उपदेश दिया। 'सांख्यसारार्थ' नामक पिछले प्रथम अध्यायमें ज्ञानका प्रकाशमय मार्ग बतलाया गया था; परंतु केवल मार्ग देख लेना ही पर्याप्त नहीं; उसपर चलना भी आवश्यक है तथा श्रद्धा या भक्तिकी भी इसमें आवश्यकता पड़ती है। गणेशगीताके पहले अध्यायमें श्लोक ३४ तथा ३८में कुछ विरोधाभास-सा दिखायी देनेसे वरेण्यने भी इस सम्बन्धमें अर्जुन-जैसा ही प्रश्न किया—

ज्ञाननिष्ठा कर्मनिष्ठा द्वयं प्रोक्तं त्वया विभो।
अवधार्य वदैकं मे निःश्रेयसकरं नु किम्॥

(गणेशगीता २। १)

'प्रभो! आपने ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा दोनोंका वर्णन किया है। अब यह निश्चय करके बताइये कि इन दोनोंमें कौन मेरे लिये कल्याणकारी है।'

भगवद्गीताके तीसरे अध्यायके दूसरे श्लोकमें अर्जुनने भी ऐसा ही अनुरोध किया है। श्रीगजाननने कहा कि ''स्थिर स्वभाववालोंके लिये 'बुद्धियोग' और अस्थिर स्वभाववालोंके लिये 'कर्मयोग' बताया गया है। विधियुक्त कर्मको आलस्य या विषादसे कोई त्याग

देता है तो वह निष्क्रियताको नहीं प्राप्त होगा। कोई क्षणभर भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, मायाके स्वभावानुसार तीनों गुण उससे कर्म करवाते हैं। कर्मेन्द्रियको रोककर मनसे विषयोंका चिन्तन भी निन्द्य कर्म है; अतः केवल परमेश्वरकी प्रीतिके लिये कर्म करनेवाला ही श्रेष्ठ पुरुष और सच्चा कर्मयोगी है।''

मदर्थे यानि कर्माणि तानि बध्नन्ति न क्वचित्।
सवासनमिदं कर्म बध्नाति देहिनं बलात्॥

(गणेशगीता २। ९)

'जो कर्म मेरे लिये किये जाते हैं, वे कहीं और कभी कर्ताको बाँधते नहीं हैं। वासना या फलासक्तिपूर्वक किया गया यह कर्म देहधारीको बलपूर्वक बाँध लेता है।'

मैंने ही सारे वर्ण और उनके धर्म एक साथ उत्पन्न किये हैं। वे ही धर्म-कर्म-यज्ञ हैं। इसे निष्काम बुद्धिसे करनेपर यह कल्पवृक्ष-सा फल देता है—

वर्णान् सृष्ट्वावदं चाहं सयज्ञांस्तान् पुरा प्रिय।
यज्ञेन ऋध्यतामेव कामदः कल्पवृक्षवत्॥

(गणेशगीता २। १०)

भगवद्गीता ३।७—१०के भाव भी इसके समानार्थक हैं। उपरिनिर्दिष्ट गणेशगीताके श्लोकसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्णाश्रमधर्मके अनुसार विधियुक्त कर्मको निष्कामभावसे केवल ईश्वरार्पण-बुद्धिसे करना ही 'यज्ञ' है। ऐसे यज्ञका जो वर्णन भगवद्गीतामें आया है, वही गणेशगीतामें भी उपलब्ध है—

शस्तोऽगुणो निजो धर्मः साङ्गादन्यस्य धर्मतः।
निजे तस्मिन् मृतिः श्रेयो परत्र भयदः परः॥

(गणेशगीता २। ३५)

'अपना धर्म गुणरहित हो तो भी दूसरेके सांगोपांग धर्मसे उत्तम है। अपने धर्ममें मर जाना भी परलोकमें कल्याणकारी है, परंतु दूसरेका धर्म भय देनेवाला है।'

यही तथ्य भगवद्गीतामें कहा गया है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(३। ३५)

'विज्ञानयोग' नामक तीसरे अध्यायमें भगवान् गजाननने भी अपने अवतार-धारणके सम्बन्धमें वे ही बातें बतलायी हैं, जो भगवद्गीताके चौथे अध्यायमें कही गयी हैं। गणेशगीताके 'वैधसंन्यासयोग' नामक चौथे अध्यायमें योगाभ्यास तथा प्राणायामके सम्बन्धमें जो विशेष बातें बतलायी गयी हैं, वे इस प्रकार हैं—

'प्राणायामके तीन प्रकार हैं—बारह वर्णोंके उच्चारण करनेतकके समयतक जो प्राणायाम किया जाय, वह 'लघु', चौबीस वर्णोंके उच्चारणका समय लेनेवाला 'मध्यम' तथा छत्तीस वर्णोंके उच्चारणका समय लेनेवाला 'उत्तम' प्राणायाम है। प्राणायामका अभ्यास करनेसे भूत और भविष्यकी बातोंका ज्ञान होने लगता है'—

'अतीतानागतज्ञानी ततः स्याज्जगतीतले॥'

(गणेशगीता ४। ३३)

बारह उत्तम प्राणायाम होनेतक चित्त स्थिर करनेको 'धारणा' कहते हैं। दो धारणाओंको 'योग' कहते हैं। इस योगका अभ्यास करनेसे साधकको 'त्रिकालज्ञान' प्राप्त होता है।

'योगवृत्तिप्रशंसनयोग' नामक पाँचवें अध्यायमें योगाभ्यासके अनुकूल-प्रतिकूल देश-काल-पात्रकी चर्चा की गयी है—

तप्तः श्रान्तो व्याकुलो वा क्षुधितो व्यग्रचित्तकः।
कालेऽतिशीतेऽत्युष्णे वानिलाग्न्यम्बुसमाकुले॥
सध्वनावतिजीर्णे गोः स्थाने साग्नौ जलान्तिके।
कूपकूले श्मशाने च नद्यां भित्तौ च मर्मरे॥
चैत्ये सवल्मिके देशे पिशाचादिसमावृते।
नाभ्यसेद् योगविद् योगं योगध्यानपरायणः॥

(गणेशगीता ५। ७—९)

'जो संतप्त, श्रान्त (थका-माँदा), व्याकुल, भूखा अथवा व्यग्रचित्त हो, वह योगाभ्यास न करे। जहाँ अत्यन्त सर्दी या अत्यन्त गरमी हो; वायु, अग्नि और जल—तीनोंसे जो स्थान व्याप्त हो; जहाँ कोलाहल होता हो; जो स्थान अधिक जीर्ण खंडहर हो; वहाँ, और अग्नियुक्त गोशालामें, जलके निकट, कुएँके किनारे, श्मशानभूमिमें, नदीमें, दीवारपर, मर्मरध्वनिसे युक्त सूखे पत्तोंकी राशिपर, जहाँ बाँबी लगी हो, ऐसे चैत्यवृक्षके नीचे और पिशाच आदिसे घिरे हुए स्थानमें योग-ध्यानपरायण योगवेत्ता पुरुष योगाभ्यास न करे।'

उपरिनिर्दिष्ट स्थिति एवं देश-कालको योगाभ्यासके लिये अयोग्य बताया है। अविहित रीतिसे योगाभ्यास करनेपर लाभके स्थानपर हानि होनेकी सम्भावना रहती है।

स्मृतिलोपश्च मूकत्वं बाधिर्य मन्दता ज्वरः।
जडता जायते सद्यो दोषाज्ञानाद्धि योगिनः॥

एते दोषाः परित्याज्या योगाभ्यसनशालिना।
अनादरे हि चैतेषां स्मृतिलोपादयो ध्रुवम्॥

(गणेशगीता ५। १०-११)

'इन दोषयुक्त स्थानोंका ज्ञान न होनेसे योगके साधकको शीघ्र ही स्मरणशक्तिका लोप, गूँगापन, बहरापन, मन्दता (आलस्य), ज्वर और जडता आदि दोष प्राप्त होते हैं। योगाभ्यासशाली पुरुषको इन दोषोंका परित्याग कर देना चाहिये। इनकी अवहेलना करनेपर स्मृति-लोप आदि दोष निश्चय ही प्राप्त होते हैं।'

योगीको सदा संयमी रहना चाहिये। राजा वरेण्यने भी अर्जुनकी तरह वही शंका प्रकट की कि 'यदि कोई योगभ्रष्ट हो जाय तो उसकी क्या गति होगी?' उत्तरमें भगवान् गणेशने कहा—'ऐसा योगी अपने योग्यतानुसार स्वर्गके भोगोंको भोगकर उच्चकुलमें जन्म लेता तथा फिर योगाभ्यास करके मुझको प्राप्त होता है।'

'न हि पुण्यकृतां कश्चिन्नरकं प्रतिपद्यते।'

(गणेशगीता ५। २६)

'पुण्य कर्म करनेवालोंमेंसे कोई भी नरकमें नहीं पड़ता।' इसीको भगवद्गीतामें इस प्रकार कहा गया है—

'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥'

(६। ४०)

'बुद्धियोग' नामक छठे अध्यायमें कहा गया है— 'अपने किसी पूर्व सुकृतके कारण ही मनुष्य मुझे जाननेकी इच्छा करेगा। जिसका जैसा भाव होता है, तदनुरूप ही मैं उसकी इच्छा पूर्ण करता हूँ। अन्तकालमें मेरी इच्छा करनेवाला मुझमें मिलता है। मेरे तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंका योग-क्षेम मैं चलाता हूँ।'

'उपासनायोग' नामक सातवें अध्यायमें भक्तियोगका वर्णन है। यहाँ सगुण भक्तिको ही 'उपासना' कहा गया है—

ध्यानाद्यैरुपचारैर्मां तथा पञ्चामृतादिभिः॥
स्नानवस्त्राद्यलंकारसुगन्धधूपदीपकैः।
नैवेद्यैः फलताम्बूलैर्दक्षिणाभिश्च योऽर्चयेत्॥
भक्त्यैकचेतसा चैव तस्येष्टं पूरयाम्यहम्।
एवं प्रतिदिनं भक्त्या मद्भक्तो मां समर्चयेत्॥
अथवा मानसीं पूजां कुर्वीत स्थिरचेतसा।
अथवा फलपत्राद्यैः पुष्पमूलजलादिभिः॥

(गणेशगीता ७। ६—९)

'जो मनुष्य ध्यान आदि, पंचामृत आदि तथा स्नान, वस्त्र, अलंकार, सुगन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल और दक्षिणा आदि उपचारोंद्वारा भक्तियुक्त एकाग्रचित्तसे मेरी अर्चना करता है, मैं उसका अभीष्ट पूर्ण करता हूँ। मेरा भक्त इसी प्रकार प्रतिदिन भक्तिभावसे मेरी पूजा करे। अथवा सुस्थिर चित्तसे मानसी पूजा करे या फल, पत्र, पुष्प, मूल और जलादिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक मेरी अर्चना करे।'

तान्त्रिक, मानसी, पत्र-पुष्पादि—ऐसे पूजाके तीन प्रकारोंमेंसे किसी भी एक प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। परंतु निष्कामभावसे की गयी पूजा श्रेयस्कर है। मेरा द्वेष करते हुए किसी दूसरे देवताके प्रति की हुई पूजा भी मुझे ही प्राप्त होगी; परंतु वह विधि विरुद्ध है। ऐसा प्राणी दुःख भोगकर रास्तेपर आ जायगा। पूजामें भूतशुद्धि, प्राणायाम, न्यास, मन्त्र-जप एवं स्तोत्र-पाठ आवश्यक हैं। पूजामें अधिकार सभीका है। मैं ही सारे विश्वमें परिव्याप्त हूँ। जो मेरी इन विभूतियोंको जानकर मेरी उपासना करता है, वह कभी नष्ट नहीं होता।

लोकमें जो-जो अतिशय श्रेष्ठ वस्तु है, वह मेरी विभूति है; ऐसा समझो—

'यद्यच्छ्रेष्ठतमं लोके सा विभूतिर्निबोध मे।'

(गणेशगीता ७। २५)

इसीके समानार्थक भाव भगवद्गीतामें भी प्राप्त होते हैं—

'यद्यद्विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।'

(१०। ४१)

'विश्वरूपदर्शनयोग' नामक आठवें अध्यायमें श्रीगणेशने भी भक्त वरेण्यको विश्वरूपका दर्शन कराया है। जैसे समुद्रसे उत्पन्न सारे जलबिन्दु समुद्रमें ही लीन होते देखे जाते हैं, वैसे ही अनेक विश्व भगवान् गणेशके उस विशाल रूपमें समाते ही जा रहे थे। वरेण्य उस अनन्तरूपसे भयभीत होकर फिर उसी सौम्य रूपको दिखलानेके लिये प्रार्थना करते हैं। इसपर गणेशजीने सगुण रूप धारण किया और बतलाया कि सगुणोपासना ही मुझे अधिक मान्य है—

यो मां मूर्तिधरं भक्त्या मद्भक्तः परिसेवते।
स मे मान्योऽनन्यभक्तिर्नियुज्य हृदयं मयि॥

(गणेशगीता ९। ३)

'राजन्! जो मेरा भक्त मुझमें अपना मन लगाकर अनन्यभक्ति रखते हुए प्रेमपूर्वक मुझ साकार ईश्वरका सेवन करता है, वह मेरे लिये समादरके योग्य है।'

'क्षेत्रज्ञातृज्ञानज्ञेयविवेकयोग' नामक नवें अध्यायमें क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका ज्ञान तथा सत्त्व-रज-तम आदि तीनों गुणोंके लक्षण भी बतला दिये और संक्षेपसे कह दिया—

येन येन हि रूपेण जनो मां पर्युपासते।
तथा तथा दर्शयामि तस्मै रूपं सुभक्तितः॥

(गणेशगीता ९। ४०)

'लोग जिस-जिस रूपमें मेरी उपासना करते हैं, उनकी उत्तम भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं उन्हें उसी-उसी रूपमें दर्शन देता हूँ।'

अब श्रीमद्भगवद्गीतासे इसकी तुलना करें—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

(७। २१)

'उपदेशयोग' नामक दसवें अध्यायमें दैवी, आसुरी और राक्षसी—ऐसी तीन प्रकारकी प्रकृतियोंके लक्षण बतलाये गये हैं, जब कि भगवद्गीतामें केवल दैवी और आसुरी दो ही प्रकारकी प्रकृतियोंका वर्णन किया गया है। दैवी प्रकृतिके लक्षण अपैशुन्य, अक्रोध, धैर्य, तेज, अभय, अमानित्व आदि हैं, जो मुक्ति प्रदान करते हैं। अतिवाद, अभिमान, गर्व, भोगेच्छा आदि आसुरी स्वभावके चिह्न हैं, जो पहले भोग तथा बादमें दुःख प्रदान करते हैं। निष्ठुरता, मद, मोह, द्वेष, क्रूरता, जारण-मारणादि प्रयोग, अविश्वास, अपवित्रता, निन्दा, भय एवं असत्य आदि राक्षसी प्रकृतिके गुण हैं, जो नरक और दुःख देनेवाले हैं। पूर्वकृत पापोंके कारण ही नारकी जीव पुनः संसारमें कुबड़े, अन्धे, पंगु एवं दीन-हीन होकर उत्पन्न होते हैं—

दैवान्निःसृत्य नरकाज्जायन्ते भुवि कुब्जकाः।
जात्यन्धाः पङ्गवो दीना हीनजातिषु ते नृप॥

× × ×

कामो लोभस्तथा क्रोधो दम्भश्चत्वार इत्यमी।
महाद्वाराणि वीचीनां तस्मादेतांस्तु वर्जयेत्॥

(गणेशगीता १०। १३, २३)

'नरेश्वर! दैववश नरकसे निकलकर वे पृथ्वीपर कुबड़े, जन्मके अंधे, पंगु और दीन होकर हीन जातियोंमें जन्म लेते हैं।'

× × ×

'काम, क्रोध, लोभ और दम्भ—ये चार नरकोंके महाद्वार हैं। अतः इनका त्याग कर देना चाहिये।'

अतः दैवी-प्रकृतिका आश्रय लेकर मोक्षका साधन करना चाहिये।

'त्रिविधवस्तुविवेकनिरूपणयोग'-नामक अन्तिम ग्यारहवें अध्यायमें कायिक, वाचिक तथा मानसिक भेदसे तपके तीन प्रकार बताये गये हैं। ऋजुता, श्रद्धा, शौच (शुद्धता), ब्रह्मचर्य और देव-द्विज-पूजन आदि 'कायिक तप' हैं, सत्य और प्रियभाषण 'वाचिक तप' है एवं निष्कपटता, समाधान, शान्ति और दया आदि 'मानसिक तप'के प्रकार हैं। तीन गुणोंके सम्बन्धके कारण भी तपके तीन प्रकार और होते हैं। इन्हीं तीन गुणोंके कारण यज्ञ, दान, ज्ञान, कर्म, कर्ता, सुख इत्यादिके भी तीन-तीन भेद हो जाते हैं। इनमें सत्त्वगुण श्रेष्ठ और मोक्षदायक है। चातुर्वर्ण्य भी इन्हीं गुणोंके आधारपर प्रतिष्ठित हुए हैं। प्रत्येकके धर्म भी अलग-अलग हैं—

स्वस्वकर्मरता एते मय्यर्प्याखिलकारिणः।
मत्प्रसादात् स्थिरं स्थानं यान्ति ते परमं नृप॥

(गणेशगीता ११। ३४)

'राजन्! अपने-अपने कर्मोंमें लगे हुए ये चारों वर्णोंके लोग मुझे समर्पित करके यदि समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं तो मेरी कृपासे सुस्थिर परम पदको प्राप्त होते हैं।'

इसी भावकी झलक भगवद्गीतामें भी दिखलायी पड़ती है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८। ४६)

जिस प्रकार भगवद्गीता और गणेशगीताका आरम्भ भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें हुआ था, उसी तरह इन दोनों गीताओंके श्रवणका परिणाम भी भिन्न-भिन्न हुआ। अर्जुन अपने क्षात्र-धर्मके अनुसार युद्ध करनेको तैयार हो गये, परंतु राजा वरेण्य पुत्रको राज्यभार सौंपकर वेगपूर्वक वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने योगका आश्रय ले मोक्ष प्राप्त कर लिया—

त्यक्त्वा राज्यं कुटुम्बं च कान्तारं प्रययौ रयात्।
उपदिष्टं यथा योगमास्थाय मुक्तिमाप्तवान्॥

(गणेशगीता ११। ३८)

उस मुक्त-स्थितिका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

यथा जलं जले क्षिप्तं जलमेव हि जायते।
तथा तद्ध्यानतः सोऽपि तन्मयत्वमुपाययौ॥

'जिस प्रकार जल जलमें मिलनेपर जल ही हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मरूपी गणेशका चिन्तन करते हुए राजा वरेण्य भी उस ब्रह्मरूपमें समा गये।'

प्रचारकी दृष्टिसे गणेशगीताका प्रचार अत्यल्प है। भगवद्गीताका प्रचार अनन्त गुना है। गणेशगीतापर भाष्य भी बहुत ही कम लिखे गये हैं, जब कि भगवद्गीतापर लिखे गये भाष्योंकी संख्या करनी कठिन है। इतना होनेपर भी दोनों गीताओंकी फलश्रुति एक ही है। साधक इन दोनोंमेंसे चाहे भगवद्गीताका आश्रय ले, चाहे गणेशगीताका, किसी भी गीताके अनुसार साधन-भजन करनेपर प्रत्येक साधकको समान प्रकारकी ब्राह्मी स्थितिकी प्राप्ति होगी। यह इसलिये कि दोनोंका प्रतिपाद्य विषय एक ही है तथा विषयकी प्रतिपादन-शैली भी लगभग एक-सी है।

श्रीगणेशप्रिय चतुर्थीव्रत-माहात्म्य एवं व्रत-विधि

चतुर्थी तिथिकी श्रेष्ठता

शिवपुराणकी कथा है—श्वेतकल्पमें जब भगवान् शंकरके अमोघ त्रिशूलसे पार्वतीनन्दन दण्डपाणिका मस्तक कट गया, तब पुत्रवत्सला जगज्जननी शिवा अत्यन्त दुःखी हुईं। उन्होंने बहुत-सी शक्तियोंको उत्पन्न किया और उन्हें प्रलय मचानेकी आज्ञा दे दी। उन परम तेजस्विनी शक्तियोंने सर्वत्र संहार करना प्रारम्भ किया। प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। देवगण हाहाकार करने लगे। तब समस्त भयनाशिनी जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये देवताओंने उत्तर दिशासे हाथीका सिर लाकर शिवा-पुत्रके धड़से जोड़ दिया। महेश्वरके तेजसे पार्वतीका प्रिय पुत्र जीवित हो गया।

अपने पुत्र गजमुखको जीवित देखकर त्रैलोक्यजननी शिवा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उस समय दयामयी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवताओंने वहीं गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न देवाधिदेव महादेवने अपने वीर पुत्र गजाननको अनेक वर प्रदान करते हुए कहा—'विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।'

तदनन्तर परम प्रसन्न भक्तवत्सल आशुतोषने गणपतिको पुनः वर प्रदान करते हुए कहा—'गणेश्वर! तू भाद्रपद-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था। इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें प्रसन्नताके साथ (प्रतिमास) तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये। वह व्रत परम शोभन तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका प्रदाता होगा।[१]

फिर व्रतकी विधि बतलाते हुए सर्वसुहृद् प्रभु पार्वतीवल्लभने गणेश-चतुर्थीके दिन अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक गजमुखको प्रसन्न करनेके लिये किये गये व्रत, उपवास एवं पूजनके माहात्म्यका गान किया और कहा—'जो लोग नाना प्रकारके उपचारोंसे भक्तिपूर्वक तेरी पूजा करेंगे, उनके विघ्नोंका सदाके लिये नाश हो जायगा और उनकी कार्यसिद्धि होती रहेगी। सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तेरी सेवा करनी चाहिये।'[२]

* * *

'गणेशपुराण'में भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको मध्याह्न-

---

१. चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर। असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः। आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥
तस्मात्तद्दिनमारभ्य तस्यामेव तिथौ मुदा। व्रतं कार्यं विशेषेण सर्वसिद्ध्यै सुशोभनम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ३५—३७)

२. यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम्। अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ६०)

कालमें भी आदिदेव गणेशके पूजनका माहात्म्य बताया गया है। कथा इस प्रकार है—गणेश-दर्शनकी तीव्र लालसासे शिवप्रिया लेखनाद्रिके एक रमणीय स्थानपर गणेशका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगीं। इस प्रकार बारह वर्षतक कठोर तप करनेपर गुणवल्लभ गुणेश संतुष्ट हुए और पार्वतीके सम्मुख प्रकट होकर उन्होंने उनके पुत्रके रूपमें अवतरित होनेका वचन दिया।

भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीका मध्याह्नकाल था। उस दिन चन्द्रवार, स्वातिनक्षत्र एवं सिंहलग्नका योग था। पाँच शुभ ग्रह एकत्र थे। जगज्जननी शिवाने गणेशजीकी षोडशोपचारसे पूजा की और उसी समय उनके सम्मुख अमित महिमामय, कुन्दधवल, षड्भुज, त्रिनयन भगवान् गुणेश पुत्ररूपमें प्रकट हो गये।

भक्तसुखदायक परमप्रभु गुणेशकी प्राकट्य-तिथि होनेके कारण भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी दयाधाम गुणेशकी वरदा तिथि प्रख्यात हुई। उस दिन मध्याह्नकालमें भगवान् गणेशकी मृन्मयी मूर्तिकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण पूजा एवं मंगलमूर्ति प्रभुके स्मरण, चिन्तन एवं नाम-जपका अमित माहात्म्य है। वह पुण्यमय तिथि अत्यन्त फलप्रदायिनी कही गयी है। चतुर्मुख ब्रह्माने अपने मुखारविन्दसे कहा है कि 'इस चतुर्थी-व्रतका निरूपण एवं माहात्म्य-गान शक्य नहीं।'[१]

'मुद्गलपुराण'में भी आता है कि परम पराक्रमी लोभासुरसे त्रस्त होकर देवताओंने परम प्रभु गजाननसे उसके विनाशकी प्रार्थना की। दयाधाम गजमुख उस महान् असुरके विनाशके लिये परम पावनी चतुर्थीको मध्याह्नकालमें अवतरित हुए, इस कारण उक्त तिथि उन्हें अत्यन्त प्रीतिप्रदायिनी हुई।[२]

तिथियोंकी माता चतुर्थीकी उत्पत्ति, उनका तप और वर-प्राप्ति

श्रीगणेशको अत्यन्त प्रिय परम पुण्यमयीको 'वरदा चतुर्थी' की उत्पत्तिकी पवित्रतम कथा मुद्गलपुराणमें प्राप्य है। वह अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

लोकपितामह ब्रह्माने सृष्टि-रचनाके अनन्तर अनेक कार्योंकी सिद्धिके लिये अपने हृदयमें श्रीगणेशका ध्यान किया। उसी समय उनके शरीरसे परा प्रकृति, महामाया, तिथियोंकी जननी कामरूपिणी देवी प्रकट हुईं। उन परम लावण्यवती देवीके चार पैर, चार हाथ और चार सुन्दर मुख थे। उन्हें देखकर विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

उन महादेवीने स्रष्टाके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर अनेक स्तोत्रोंसे उनका स्तवन करनेके अनन्तर निवेदन किया—'ब्रह्माण्डनायक! मैं आपके शुभ अंगसे उत्पन्न हुई हूँ। आप मेरे पिता हैं। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें, मैं क्या करूँ? प्रभो! आपके पावन पद-पद्मोंमें मेरा बारंबार प्रणाम है। आप मुझे कृपापूर्वक रहनेके लिये स्थान और विविध प्रकारके भोग्य पदार्थ प्रदान करें।'

लोकस्रष्टाने श्रीगणेशका स्मरण कर उत्तर दिया—'तुम अद्भुत सृष्टि करो।' और फिर प्रसन्न पिता ब्रह्माने उन्हें श्रीगणेशका '**वक्रतुण्डाय हुम्**'—'यह षडक्षर-मन्त्र दे दिया।'

महिमामयी देवीने भगवान् वेदगर्भके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और फिर वे वनमें जाकर श्रीगणेशका ध्यान करते हुए उग्र तप करने लगीं। वे अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दिव्य सहस्र वर्षतक तप करती रहीं।

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवदेव गजानन प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'महाभागे! मैं तुम्हारे निराहार तपश्चरणसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।'

परम प्रभुकी सुखद वाणी सुनकर महिमामयी माताने हर्षगद्गद कण्ठसे उनका स्तवन किया।

इससे अतिशय संतुष्ट हुए मूषक-वाहनने पुनः कहा—'देवि! मैं तुम्हारे तप एवं स्तवनसे अत्यन्त संतुष्ट हूँ। तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो।'

---

१. चतुर्थ्यां महिमानं नो न शक्यं सुनिरूपितुम् ॥

(गणेशपु० २। ८२। ३४)

२. चतुर्थ्यां मध्यगे भानौ देहधारी समागतः। सा तिथिः परमा तस्य प्रीतिदा सम्बभूव वै॥

(मुद्गलपु० ४। १। २०)

साश्रुनयना देवीने परम प्रभु गजाननके पावनतम चरणोंमें प्रणामकर निवेदन किया—'करुणानिधे! आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें। मुझे सृष्टि-सर्जनकी सामर्थ्य प्राप्त हो। मैं आपको सदा प्रिय रहूँ और मुझसे आपका कभी वियोग न हो।'

स्वीकृतिसूचक 'ओम्'का उच्चारण कर परम प्रभुने वर प्रदान किया—"चतुर्विध फलप्रदायिनी देवि! तुम मुझे सदा प्रिय रहोगी! तुम समस्त तिथियोंकी माता होओगी और तुम्हारा नाम 'चतुर्थी' होगा। तुम्हारा वामभाग 'कृष्ण' एवं दक्षिणभाग 'शुक्ल' होगा। निस्संदेह तुम मेरी जन्मतिथि होओगी। तुम्हारेमें व्रत करनेवालेका मैं विशेषरूपसे पालन करूँगा और इस व्रतके समान अन्य कोई व्रत नहीं होगा।"

यह कहकर भगवान् गजमुख अन्तर्धान हो गये। तिथियोंकी माता चतुर्थी गणपतिका ध्यान करते हुए सृष्टि-रचना करने लगीं। सहसा उनका वामभाग कृष्ण और दक्षिणभाग शुक्ल हो गया। महाभाग्यवती शुक्लवर्णा अत्यन्त विस्मित हुईं। उन्होंने पुनः गणाध्यक्षका ध्यान करते हुए सृष्टि-रचनाका उपक्रम किया ही था कि उनके मुखारविन्दसे प्रतिपदा तिथि उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार नासिकासे द्वितीया, वक्षसे तृतीया, अंगुलीसे पंचमी, हृदयसे षष्ठी, नेत्रसे सप्तमी, बाहुसे अष्टमी, उदरसे नवमी, कानसे दशमी, कण्ठसे एकादशी, पैरसे द्वादशी, स्तनसे त्रयोदशी, अहंकारसे चतुर्दशी और मनसे पूर्णिमा तथा जिह्वासे अमावस्या तिथि प्रकट हुई।

सभी तिथियोंसहित दोनों चतुर्थियोंने भगवान् गजमुखके ध्यान और नाम-जपके साथ तपश्चरण प्रारम्भ किया। इस प्रकार उनके एक वर्षतक तप करनेपर भक्तवत्सल प्रभु विघ्नेश्वर प्रकट हुए। वे मध्याह्नमें शुक्ल-चतुर्थीके समीप पहुँचकर बोले—'वर माँगो।'

शुक्ल-चतुर्थीने आदिदेव गजमुखके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर उन्होंने कहा—'परमप्रभु गजमुख! मैं आपका वासस्थान होऊँ और आप मुझे अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान करें।'

दयामय गजमुखने वर प्रदान किया—"तुम्हें मध्याह्न-कालमें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है; अतएव मध्याह्नकालमें शिवादि देवगण मेरा भजन करेंगे। शुक्लपक्षकी चतुर्थीको मेरे भक्तजन सदा तुम्हारा व्रत करेंगे। जो निराहार रहकर मेरे साथ तुम्हारी उपासना करेंगे, उनका संचित कर्म-भोग समाप्त हो जायगा और उन्हें मैं सब कुछ प्रदान करूँगा। तुम्हारा नाम 'वरदा' होगा।"

इतना कहकर श्रीगणेश अन्तर्धान हो गये और भगवती शुक्ल-चतुर्थीका 'वरदा' नाम प्रख्यात हुआ। वे श्रीगणेशको अत्यन्त प्रिय हुईं। उस दिन व्रतके साथ श्रीगणेशकी उपासना कर पंचमीको सविधि पारण करनेसे निश्चय ही मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। व्रतीकी प्रत्येक कामना पूरी होती है और अन्तमें वह अतिशय सुखदायक गणेश-धामको प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर भगवान् गणपतिने रात्रिके प्रथम प्रहरमें चन्द्रमाके उदित होनेपर कृष्ण-चतुर्थीके समीप पहुँचकर कहा—'महाभाग्यवती! तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा।'

विघ्ननिघ्न प्रभुके दर्शन एवं उनके वचनसे प्रसन्न होकर भगवती कृष्ण-चतुर्थीने उनके मंगलमय चरणोंमें प्रणाम कर उनकी विधिपूर्वक पूजा की। फिर उनका स्तवन कर निवेदन किया—'मंगलमय लम्बोदर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें। मैं आपको सदा प्रिय रहूँ और मुझसे आपका वियोग कभी न हो। आप मुझे सर्वमान्य कर दें।'

कृष्ण-चतुर्थीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण वाणीसे प्रसन्न हो महोदरने वर-प्रदान करते हुए कहा—'महातिथे! तुम मुझे सदा प्रिय रहोगी और तुमसे मेरा कभी वियोग नहीं होगा। चन्द्रोदय होनेपर तुमने मुझे प्राप्त किया है; अतएव चन्द्रोदयव्यापिनी होनेपर तुम मुझे अत्यधिक प्रिय होओगी। मेरे प्रसादसे तुम उस समय अन्न-जल त्यागकर उपासना करनेवालोंका संकट हरण करो। उस दिन व्रतोपवास करनेवालोंको तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्रदान करोगी। उनकी समस्त कर्मराशि ध्वस्त हो जायगी और वे निश्चय ही इस लोकमें समस्त सुखोंको भोगकर अन्तमें जन्म-मृत्युके पाशसे मुक्त हो मेरे दुर्लभ धाममें जायँगे। संकष्टहारिणी देवि! निस्संदेह मेरी कृपासे तुम सर्वदा लोगोंको आनन्द प्रदान करनेवाली होओगी।'

'उस दिन यति मेरा व्रत निराहार रहकर करें। दूसरे लोग रात्रिमें चन्द्रोदय होनेपर मेरा पूजन कर ब्राह्मणकी साक्षिता देकर (उन्हें भोजन कराकर) स्वयं

भोजन करें। पूजनके अनन्तर उस दिन श्रावणमें लड्डू और भाद्रमें दधिका भोजन करना चाहिये। व्रती आश्विनमें निराहार रहे। कार्तिकमें दुग्ध-पान, मार्गशीर्षमें जलाहार और पौषमें गोमूत्र लेना चाहिये। माघमें श्वेत तिल, फाल्गुनमें शर्करा, चैत्रमें पंचगव्य, वैशाखमें पद्मबीज (कमलगट्टा), ज्येष्ठमें गोघृत और आषाढ़में मधुका भोजन करना चाहिये।'

महिमामयी चतुर्थीव्रत करनेवालोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। इस व्रतके प्रभावसे धन-धान्य और आरोग्यकी प्राप्ति होती है, समस्त आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं तथा भगवान् गणेशकी कृपासे परमार्थकी भी सिद्धि होती है। अतएव यदि सम्भव हो तो प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्थी तिथियोंको व्रत और उपवाससहित श्रीगणेशजीका पूजन करे और यदि यह सम्भव न हो तो भाद्रपद-कृष्ण-चतुर्थी 'बहुला', कार्तिक-कृष्ण-चतुर्थी करका (करवा) और माघ-कृष्ण-चतुर्थी 'तिलका'का व्रत कर ले। रविवार या मंगलवारसे युक्त चतुर्थी तिथिका अमित माहात्म्य है। इस प्रकारकी एक चतुर्थी-व्रतका सविधि पालन करनेसे वर्षभरकी चतुर्थी-व्रतोंका फल प्राप्त हो जाता है।

कृष्णपक्षकी प्रायः सभी चतुर्थी तिथियाँ कष्ट-निवारण करनेवाली हैं और उनमें चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीमें व्रतकी पूजाका विधान किया गया है। यदि दोनों ही दिन चतुर्थी चन्द्रोदय-व्यापिनी हो तो तृतीयासे विद्धा पूर्वाका ही ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि '**मातृविद्धा गणेश्वरे**—गणेश्वरके व्रतमें मातृ-तिथि (तृतीया)-से विद्धा चतुर्थी ग्रहण की जाती है',—यह वचन मिलता है। यदि दोनों ही दिन चन्द्रोदयव्यापिनी न हो तो परा-चतुर्थी लेनी चाहिये। (व्रतराज)

यदि वह दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो या न हो तो '**मातृविद्धा प्रशस्यते**'के अनुसार पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। (व्रत-परिचय) अन्य विद्वानोंका मत है कि 'तृतीयायुक्त चतुर्थी इस व्रतके लिये श्रेष्ठ अवश्य मानी गयी है, किंतु जब सूर्यास्त होनेके पहले तृतीयामें छः घड़ी चतुर्थीका प्रवेश होता हो। पहले दिन चन्द्रोदय-कालमें तिथिका अभाव होनेपर दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये।'

इस विषयमें धर्मशास्त्रीय निर्णय इस प्रकार है—'संकष्ट-चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्य है। यदि दो दिन चतुर्थी हो और दूसरे दिनकी ही चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये। यदि दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी तिथि हो तो पहले दिनकी तृतीयायुक्त चतुर्थीको ही व्रतके लिये ग्रहण करना चाहिये। यदि दोनों ही दिनोंकी चतुर्थी चन्द्रोदय-व्यापिनी न हो तो दूसरे दिन ही व्रतका पालन करना चाहिये।' (गणेश-कोश)

वर्षभरके चतुर्थी-व्रतोंकी संक्षिप्त विधि और उनका माहात्म्य

(१) चैत्र-मासकी चतुर्थीको वासुदेवस्वरूप गणेशजीकी विधिपूर्वक पूजा कर ब्राह्मणको सुवर्णकी दक्षिणा देनेपर मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो क्षीराब्धिशायी श्रीविष्णुके सुखद लोकमें जाता है।*

(२) वैशाख-मासकी चतुर्थीको संकर्षण गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंको शंखका दान करना चाहिये। इसके प्रभावसे मनुष्य संकर्षण-लोकमें कल्पोंतक सुख प्राप्त करता है।

(३) ज्येष्ठ-मासकी चतुर्थीको प्रद्युम्नरूपी गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंको फल-मूलका दान करनेसे व्रती स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है।

ज्येष्ठ चतुर्थीको 'सतीव्रत' नामक एक दूसरा श्रेष्ठ व्रत होता है। इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे स्त्री गजमुखजननी शिवाके लोकमें जाकर उन्हींके समान आनन्द प्राप्त करती है।

(४) आषाढ़-मासकी चतुर्थीको अनिरुद्धस्वरूप गणेशकी प्रीतिपूर्वक पूजा करके संन्यासियोंको तूँबीका पात्र दान करना चाहिये। इस व्रतको करनेवाला मनुष्य मनोवांछित फल प्राप्त करता है।

रथन्तर-कल्पका प्रथम दिन होनेसे आषाढ़की चतुर्थीको एक दूसरा उत्तम व्रत होता है। उस दिन मनुष्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मंगलमूर्ति गणेशकी सविधि पूजा कर वह फल प्राप्त कर लेता है, जो देव-समुदायके लिये भी दुर्लभ है।

(५) श्रावण-मासकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर मंगलमय श्रीगणेशजीके स्वरूपका ध्यान करते हुए उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। फिर आवाहन आदि सम्पूर्ण

* चैत्र-मासकी चतुर्थीको 'दमनक'-पत्रों (दौनाके पत्तों)-से गणेशजीका पूजन करके मनुष्य सुख-भोग प्राप्त करता है। (अग्निपुराण)

उपचारोंसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा कर लड्डूका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। व्रत पूरा होनेपर व्रती स्वयं भी प्रसादस्वरूप लड्डू खाय और फिर रात्रिमें गणेशजीका पूजन कर पृथ्वीपर ही शयन करे। इस व्रतको करनेवाले मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी होती हैं और अन्तमें उसे गणेशजीका पद प्राप्त हो जाता है। त्रैलोक्यमें इसके समान अन्य कोई व्रत नहीं है।

श्रावण-शुक्ल-चतुर्थीको 'दूर्वागणपति' (सौरपुराण)-का व्रत बताया गया है। उस दिन प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होकर सिंहासनस्थ चतुर्भुज, एकदन्त गजमुखकी स्वर्णमयी मूर्तिका निर्माण कराये और सोनेकी दूर्वा बनवाये। तदनन्तर सर्वतोभद्र-मण्डलपर कलश-स्थापन करके उसमें सोनेकी दूर्वा लगाकर उसपर गणेशजीकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये। मंगलमूर्ति गणेशजीको अरुण वस्त्रसे विभूषितकर सुगन्धित पत्र-पुष्पादिसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। आरती, स्तवन, प्रणाम और परिक्रमा कर अपराधोंके लिये क्षमा-याचना करे। इस प्रकार तीन या पाँच वर्षतक व्रत-पालनसे समस्त कामनाएँ पूरी होती हैं।

(६) भाद्रपद-कृष्ण-चतुर्थीको बहुलासहित गणेशकी गन्ध, पुष्प, माला और दूर्वा आदिके द्वारा यत्नपूर्वक पूजा कर परिक्रमा करनी चाहिये। सामर्थ्यके अनुसार दान करे। दान करनेकी स्थिति न हो तो बहुला गौको प्रणामकर उसका विसर्जन कर दे। इस प्रकार पाँच, दस या सोलह वर्षोंतक इस व्रतका पालन करके उद्यापन करे। उस समय दूध देनेवाली स्वस्थ गायका दान करना चाहिये। इस व्रतको करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको सुखद भोगोंकी उपलब्धि होती है। देवता उनका सम्मान करते हैं और अन्तमें वे गोलोकधामकी प्राप्ति करते हैं।

भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको सिद्धिविनायक-व्रतका पालन करना चाहिये। इस दिन गणेशजीका मध्याह्नमें प्राकट्य हुआ था, अतः इसमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ही ली जाती है।

सर्वप्रथम एकाग्र चित्तसे सर्वानन्दप्रदाता सिद्धिविनायकका ध्यान करे। फिर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उनके इक्कीस नाम लेकर इक्कीस पत्ते समर्पित करे। उनके प्रत्येक नामके साथ '**नमः**' जुड़ा हो। वे इक्कीस नाम और पत्ते इस प्रकार हैं—

'**सुमुखाय नमः**' कहकर शमीपत्र अर्पित करे। '**गणाधीशाय नमः**' कहकर भँगरैयाका पत्ता, '**उमापुत्राय नमः**' कहकर बिल्वपत्र, '**गजमुखाय नमः**' कहकर दूर्वादल, '**लम्बोदराय नमः**' कहकर बेरका पत्ता, '**हरसूनवे नमः**' कहकर धतूरेका पत्ता, '**शूर्पकर्णाय नमः**' कहकर तुलसीदल,[१] '**वक्रतुण्डाय नमः**' कहकर सेमका पत्ता, '**गुहाग्रजाय नमः**' कहकर अपामार्गका पत्ता, '**एकदन्ताय नमः**' कहकर वनभंटा या भटकटैयाका पत्ता, '**हेरम्बाय नमः**' कहकर सिन्दूर (सिन्दूरचूर्ण या सिन्दूर-वृक्षका पत्ता), '**चतुर्होत्रे नमः**' कहकर तेजपात, '**सर्वेश्वराय नमः**' कहकर अगस्त्यका पत्ता, '**विकटाय नमः**' कहकर कनेरका पत्ता, '**हेमतुण्डाय नमः**' कहकर अश्मातपत्र या कदलीपत्र, '**विनायकाय नमः**' कहकर आकका पत्ता, '**कपिलाय नमः**' कहकर अर्जुनका पत्ता, '**वटवे नमः**' कहकर देवदारुका पत्ता, '**भालचन्द्राय नमः**' कहकर मरुआका पत्ता, '**सुराग्रजाय नमः**' कहकर गान्धारीपत्र और '**सिद्धिविनायकाय नमः**' कहकर केतकीपत्र प्रीतिपूर्वक समर्पित करे।

इससे श्रीगणेशजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके अनन्तर दो दूर्वादल लेकर गन्ध, पुष्प और अक्षतके साथ गणेशजीपर चढ़ाना चाहिये। फिर नैवेद्यके रूपमें पाँच लड्डू उन दयासिन्धु प्रभु गजमुखको अत्यन्त प्रेमपूर्वक अर्पण करे। तदनन्तर आचमन कराकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनके चरणोंमें बार-बार प्रणाम और प्रार्थना करते हुए विसर्जन करना चाहिये। समस्त सामग्रियोंसहित गणेशजीकी स्वर्णमयी प्रतिमा आचार्यको अर्पित करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार पाँच वर्षतक व्रत एवं गणेश-पूजन करनेवालोंको लौकिक एवं पारलौकिक समस्त सुख प्राप्त होते हैं।[२] इस तिथिकी रात्रिमें चन्द्रदर्शनका निषेध है। चन्द्रदर्शन करनेवाले मिथ्या कलंकके भागी होते हैं।[३]

१. 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'के अनुसार श्रीगणेशको तुलसी-अर्पण निषिद्ध है; किंतु 'नारदपुराण'में भगवान् गणेशके 'शूर्पकर्ण'-स्वरूप एवं 'व्रतराज'में 'गजवक्त्र'-स्वरूपके लिये तुलसीपत्र अर्पण करनेका विधान है।

२. भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको व्रत करनेवाला शिवलोकको प्राप्त होता है।

३. भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रदर्शन हो जानेपर दोषकी शान्तिके लिये श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके ५७वें अध्यायका पाठ या श्रवण करना चाहिये। (अग्निपुराण)

(७) आश्विन-शुक्ल-चतुर्थीको 'पुरुषसूक्त' द्वारा षोडशोपचारसे कपर्दीश-विनायककी भक्तिपूर्वक पूजाका माहात्म्य है।

(८) कार्तिक-कृष्ण-चतुर्थीको 'करकचतुर्थी'(करवा चौथ)-का व्रत कहा जाता है। यह व्रत स्त्रियाँ विशेषरूपसे करती हैं। इस दिन व्रतीके लिये प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गणेशजीकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। पवित्र चित्तसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पकवानसे भरे हुए दस करवे परमप्रभु गजाननके सम्मुख रखे। समर्पण करते हुए मन-ही-मन प्रार्थना करे कि 'करुणासिन्धु कपर्दिगणेश! आप मुझपर प्रसन्न हों।' तदनन्तर सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको इच्छानुसार आदरपूर्वक उन करवोंको बाँट दें।

समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले भगवान् गणेशका स्मरण-चिन्तन एवं नाम-मन्त्रका जप करते रहना चाहिये। रात्रिमें चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करे। व्रतपूर्तिके लिये स्वयं मिष्ठान्न भोजन करना चाहिये।

इस व्रतको बारह या सोलह वर्षोंतक करना चाहिये। तदनन्तर इसका उद्यापन करे। इसके बाद स्त्री चाहे तो इसे छोड़ सकती है; अन्यथा सुख-सौभाग्यके लिये स्त्री इसे जीवनपर्यन्त कर सकती है। स्त्रियोंके लिये इसके समान सौभाग्य प्रदान करनेवाला अन्य व्रत नहीं है।

(९) मार्गशीर्ष-शुक्ल-चतुर्थीकी 'कृच्छ्र-चतुर्थी'-संज्ञा है। (स्कन्दपु०) इससे लेकर एक वर्षतक प्रत्येक चतुर्थीका व्रत रखकर देवदेव गजमुखका प्रीतिपूर्वक पूजन करे। उस दिन एकभुक्त (दिनमें एक समय भोजन) करे और दूसरे वर्ष प्रत्येक चतुर्थीको केवल रात्रिमें एक बार भोजन करे। तीसरे वर्ष प्रत्येक चतुर्थीको अयाचित (बिना माँगे मिला हुआ) अन्न एक बार खाकर रहे और फिर चौथे वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको सर्वथा निराहार रहकर गणेशजीका स्मरण, चिन्तन, भजन एवं अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत करते हुए चार वर्ष पूरे होनेपर अन्तमें व्रत-स्नान करे। उस समय व्रत करनेवाला मनुष्य गणेशजीकी सुवर्णकी प्रतिमा बनवाये। यदि सुवर्णमूर्ति बनवानेकी क्षमता न हो तो वर्णक (हल्दी-चूर्ण)-से ही गणपतिकी प्रतिमा बना ले।

फिर विविध रंगोंसे भूमिपर पद्मपत्र बनाकर उसपर कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर चावलसे भरा ताँबेका पात्र रखे। उक्त चावलोंसे भरे पात्रपर दो वस्त्र रखकर उसपर गणेशजीको विराजमान करे। इसके बाद गन्धादि उपचारोंसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उन दयामय देवकी पूजा करनी चाहिये। फिर मोदक-प्रिय मंगलविग्रह गणेशजीको संतुष्ट करनेके लिये उन्हें नैवेद्यके रूपमें लड्डू समर्पित करे। प्रणाम, परिक्रमा एवं प्रार्थनाके अनन्तर सम्पूर्ण रात्रि गीत, वाद्य, पुराण-कथा एवं गणेशजीके स्तवन और नाम-जपके साथ जागरण करनेका विधान है।

अरुणोदय होनेपर स्नानादि दैनिक कृत्यसे निवृत्त हो शुद्ध वस्त्र धारणकर श्रद्धापूर्वक तिल, चावल, जौ, पीली सरसों, घी और खाँड़से मिली हवन-सामग्रीका विधिपूर्वक होम करे। गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी तथा परमेष्ठी—इन सोलह नामोंद्वारा प्रत्येकके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और उसमें '**नमः**' पद लगाकर अग्निमें एक-एक आहुति दे।

इसके बाद '**वक्रतुण्डाय हुम्**'—इस मन्त्रसे एक-सौ आठ आहुतियाँ दे। तदनन्तर व्याहृतियोंद्वारा* यथाशक्ति होम करके पूर्णाहुति देनी चाहिये। फिर दिक्पालोंकी पूजा करके चौबीस ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक लड्डू और खीर भोजन करावे। आचार्यको दक्षिणाके साथ सवत्सा गौका दान कर दूसरे ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार भूयसी दक्षिणा दे। इसके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनकी परिक्रमा करे। तदुपरान्त उन्हें आदरपूर्वक विदा करना चाहिये। फिर स्वजन-बन्धुओंके साथ स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे।

इस महिमामय व्रतका पालन करनेवाले मनुष्य दयासिन्धु गणेशजीके प्रसादसे इस लोकमें उत्तम भोग भोगते और परलोकमें भगवान् विष्णुके सायुज्यके अधिकारी होते हैं।

(१०) पौष-मासकी चतुर्थीको भक्तिपूर्वक विघ्नेश्वर

---

* 'ॐ भूः स्वाहा'—इदमग्नये न मम। 'ॐ भुवः स्वाहा'—इदं वायवे न मम। 'ॐ स्वः स्वाहा' इदं सूर्याय न मम—ये व्याहृतिहोमके मन्त्र हैं।

गणेशकी पूजा और प्रार्थना कर एक ब्राह्मणको लड्डूका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेवाले पुरुषके यहाँ धन-सम्पत्तिका अभाव नहीं होता।

(११) माघ-कृष्ण-चतुर्थीको 'संकष्टव्रत' कहा गया है। उस दिन प्रातःकाल स्नानके अनन्तर देवदेव गजमुखकी प्रसन्नताके लिये व्रतोपवासका संकल्प करके दिनभर संयमित रहकर श्रीगणेशका स्मरण, चिन्तन एवं भजन करते रहना चाहिये। चन्द्रोदय होनेपर मिट्टीकी गणेशमूर्ति बनाकर उसे पीढ़ेपर स्थापित करे। गणेशजीके साथ उनके आयुध और वाहन भी होने चाहिये। पहले उक्त मृन्मयी मूर्तिमें गणेशजीकी स्थापना करे; तदनन्तर षोडशोपचारसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। फिर मोदक तथा गुड़में बने हुए तिलके लड्डूका नैवेद्य अर्पित करे। आचमन कराकर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिये।

अर्घ्य-प्रदान

तदनन्तर शान्तचित्तसे भक्तिपूर्वक गणेशमन्त्रका इक्कीस बार जप करे और फिर भगवान् गणेशको अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य प्रदान करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक।
संकष्टहर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां तु सम्पूजित विधूदये।
क्षिप्रं प्रसीद देवेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'समस्त सिद्धियोंके दाता गणेश! आपको नमस्कार है। संकटोंको हरण करनेवाले देव! आप अर्घ्य ग्रहण कीजिये; आपको नमस्कार है। कृष्णपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर पूजित देवेश! आप अर्घ्य ग्रहण कीजिये; आपको नमस्कार है।'

इन दोनों श्लोकोंके साथ '**संकष्टहरणगणपतये नमः**' (संकष्टहरणगणपतिके लिये नमस्कार है) दो बार बोलकर दो अर्घ्य देने चाहिये।

इसके अनन्तर निम्नांकित मन्त्रसे चतुर्थी-तिथिकी अधिष्ठात्री देवीको अर्घ्य प्रदान करे—

तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे।
सर्वसंकटनाशाय गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
'चतुर्थ्यै नमः' इदमर्घ्यं समर्पयामि।

'तिथियोंमें उत्तम गणेशजीकी प्यारी देवि! आपके लिये नमस्कार है। आप मेरे समस्त संकटोंको नष्ट करनेके लिये अर्घ्य ग्रहण करें। चतुर्थी तिथिकी अधिष्ठात्री देवीके लिये नमस्कार है। मैं उन्हें यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ।' [व्रतराज]

तत्पश्चात् चन्द्रमाका गन्ध-पुष्पादिसे विधिवत् पूजन करके ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, कुश, दूर्वा, फूल, अक्षत, शमीपत्र, दधि और जल एकत्र करके निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करते हुए उन्हें अर्घ्य दे—

गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक॥

(नारद पु०, पूर्व० ११३। ७७)

'गगनरूपी समुद्रके माणिक्य, दक्षकन्या रोहिणीके प्रियतम और गणेशके प्रतिरूप चन्द्रमा! आप मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'*

फिर भगवान् गणेशके चरणोंमें प्रणामकर यथाशक्ति उत्तम ब्राह्मणोंको प्रेमपूर्वक भोजन और दक्षिणासे संतुष्टकर उनकी अनुमतिसे स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे।

इस परम कल्याणकारी 'संकष्टव्रत'के प्रभावसे व्रती धन-धान्यसे सम्पन्न हो जाता है और उसके सम्मुख कभी कष्ट उपस्थित नहीं होता।

इस व्रतको 'वक्रतुण्ड-चतुर्थी' (भविष्योत्तर) भी कहते हैं। इस व्रतको माघ-माससे आरम्भ करके हर महीनेमें करे तो संकटका नाश हो जाता है।

माघ-मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको उपवास करके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करे और पंचमीको तिलका भोजन करे। इस प्रकार व्रत करनेपर मनुष्य निर्विघ्न सुखी जीवन व्यतीत करता है। '**गं स्वाहा**'—

* तिथिकी अधिष्ठात्री देवी एवं रोहिणीपति चन्द्रमाको प्रत्येक कृष्णपक्षकी चतुर्थीको गणेश-पूजनके अनन्तर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। गणेश-कोशमें दिये गये निर्णयके अनुसार भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको केवल तिथिके लिये मध्याह्न-कालमें तीन बार अर्घ्य देना चाहिये; परंतु कृष्ण-चतुर्थीको चन्द्रोदयकालमें गणेशके लिये तीन, तिथिके लिये तीन और चन्द्रमाके लिये सात अर्घ्य देने चाहिये। इस प्रकार शुक्ल-चतुर्थीमें तीन बार और कृष्ण-चतुर्थीमें तेरह बार अर्घ्य देनेका विधान है। किंतु ऐसी प्रथा महाराष्ट्रमें ही प्रचलित है।

यह मूलमन्त्र है। **'गां नमः।'** आदिसे हृदयादि-न्यास करे।[१]

'आगच्छोल्काय' कहकर गणेशका आवाहन और **'गच्छोल्काय'** कहकर विसर्जन करे। इस प्रकार आदिमें गकारयुक्त और अन्तमें 'उल्का'-शब्दयुक्त मन्त्रसे उनके आवाहनादि कार्य करे। गन्धादि उपचारोंसे सविधि गणपतिका पूजन कर उन्हें नैवेद्यरूपमें लड्डू अर्पण करे; फिर आचमन, प्रणाम और परिक्रमा आदिके अनन्तर इस गणेश-गायत्रीका जप करे—

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

(अग्निपुराण)

इस व्रतकी बड़ी महिमा है।

इसी तिथिको 'गौरी-व्रत' भी किया जाता है। इस दिन योगिनी-गणोंसहित गौरीकी पूजा करनी चाहिये। मनुष्यों, विशेषतः स्त्रियोंको कुन्द, पुष्प, कुंकुम, लाल सूत्र, लाल फूल, महावर, धूप, दीप, गुड़, अदरख, दूध, खीर, नमक और पालक आदिसे भगवती गौरीका प्रीतिपूर्वक पूजन करना चाहिये। अपने सुख-सौभाग्यकी वृद्धिके लिये सौभाग्यवती स्त्रियों एवं उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजाका भी विधान है। तदनन्तर प्रसन्न-मन बन्धु-बान्धवोंसहित स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इस 'गौरीव्रत'के प्रभावसे सौभाग्य एवं आरोग्यकी वृद्धि होती है। कुछ लोग इसे 'ढुण्ढि-व्रत[२],' 'कुण्ड-व्रत[३],' 'ललिता-व्रत' और 'शान्ति-व्रत[४]' भी कहते हैं।

इस पुण्यमय तिथिके स्नान, दान,जप और होम आदि शुभ कर्म आदिदेव गजवदनकी कृपासे सहस्रगुने फलदायी हो जाते हैं।

(१२) फाल्गुन-मासकी चतुर्थीको मंगलमय 'ढुण्ढिराज-व्रत' बताया गया है। उस दिन व्रतोपवासके साथ गणेशजीकी सोनेकी मूर्ति बनवाकर उसकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर दे। गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये उस दिन तिलोंसे ही दान, होम और पूजन आदि करे। उस दिन तिलके पीठेसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रती स्वयं भी भोजन करे। इस व्रतके प्रभावसे समस्त सम्पदाओंकी वृद्धि होती है और मनुष्य गणेशजीकी कृपासे सहज ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

'मत्स्यपुराण'के अनुसार फाल्गुन-शुक्ल-चतुर्थीको 'मनोरथ-चतुर्थी' कहते हैं। आराधनाकी विधि यही है। पूजनोपरान्त नक्तव्रतका विधान है। इस प्रकार बारहों महीनेकी प्रत्येक शुक्ल-चतुर्थीको व्रत करते हुए वर्षभरके बाद उस स्वर्णमूर्तिका दान करनेसे मनोरथ सिद्ध होते हैं।

अग्निपुराणमें इसको 'अविघ्ना-चतुर्थी'की संज्ञा दी गयी है।

जिस किसी मासमें भी चतुर्थी तिथि रविवार या मंगलवारसे युक्त हो, वह विशेष फलदायिनी होती है। उसे 'अंगारक-चतुर्थी' कहते हैं। उस दिन गणेशजीका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है।[५]

अमित महिमामयी चतुर्थी-व्रतमें पूजाके अन्तमें चतुर्थी-व्रतकथा-श्रवणकी बड़ी महिमा गायी गयी है। पौराणिक कथाओंके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्तमें परम्परागत कुछ लोक-कथाएँ भी कही-सुनी जाती हैं। वे सभी भगवान् गणेशकी प्रीति प्रदान करनेवाली हैं।

परम महिमामयी अंगारक-चतुर्थी

'अंगारक-चतुर्थी'की माहात्म्य-कथा गणेशपुराणके

---

१. हृदयादि षडंगोंका न्यास इस प्रकार करे—

'गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं नेत्रत्रयाय वौषट्। गौं कवचाय हुम्। गः अस्त्राय फट्।'

२. इस दिन काशीवासी ढुण्ढिराज गणेशका दर्शन-पूजन करे। उन्हें श्वेत तिल और चीनीका मोदक अर्पण करना चाहिये। रात्रिमें एक समय भोजन कर भगवान् ढुण्ढिराजका स्मरण, कीर्तन एवं गुणगान करते हुए जागरण करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। (त्रिस्थलीसेतु)

३. इस दिन उपवास करके देवीकी सविधि पूजा करनेसे संतति और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। (देवीभागवत)

४. इस दिन भक्तिपूर्वक गणपतिकी पूजा कर उन्हें घृतसिक्त अपूप (पूआ) और लवणके पदार्थ अर्पण करने चाहिये। फिर गुरुकी पूजा कर गुड़, नमक और घी प्रदान करनेसे स्थिर शान्ति प्राप्त होती है। (भविष्यपुराण)

५. यह वर्षभरके चतुर्थी-व्रतोंकी संक्षिप्त-विधि और माहात्म्य 'कल्याण'के 'नारद-विष्णु-पुराणाङ्क' के आधारपर प्रस्तुत किया गया है। विस्तृत पूजा-विधि तथा माहात्म्य जाननेके लिये 'व्रतराज' आदि ग्रन्थोंको देखना चाहिये।

उपासनाखण्डके ६०वें अध्यायमें वर्णित है। वह कथा अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

पृथ्वीदेवीने महामुनि भारद्वाजके जपापुष्पतुल्य अरुण पुत्रका पालन किया। सात वर्षके बाद उन्होंने उसे महर्षिके पास पहुँचा दिया। महर्षिने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पुत्रका आलिंगन किया और उसका सविधि उपनयन कराकर उसे वेद-शास्त्रादिका अध्ययन कराया। फिर उन्होंने अपने प्रिय पुत्रको गणपतिमन्त्र देकर उसे गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये आराधना करनेकी आज्ञा दी।

मुनिपुत्रने अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर पुण्यसलिला गंगाजीके तटपर जाकर वह परम प्रभु गणेशजीका ध्यान करते हुए भक्तिपूर्वक उनके मन्त्रका जप करने लगा। वह बालक निराहार रहकर एक सहस्र वर्षतक गणेशजीके ध्यानके साथ उनका मन्त्र जपता रहा।

माघ-कृष्ण-चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर दिव्य वस्त्रधारी अष्टभुज चन्द्रभाल प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उन्होंने अनेक शस्त्र धारण कर रखे थे। वे विविध अलंकारोंसे विभूषित अनेक सूर्योंसे भी अधिक दीप्तिमान् थे। भगवान् गणेशके मंगलमय अद्भुत स्वरूपका दर्शन कर तपस्वी मुनिपुत्रने प्रेमगद्‌गद कण्ठसे उनका स्तवन किया।

वरद प्रभु बोले—'मुनिकुमार! मैं तुम्हारे धैर्यपूर्ण कठोर तप एवं स्तवनसे पूर्ण प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

प्रसन्न पृथ्वीपुत्रने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—"प्रभो! आज आपके दुर्लभ दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया। मेरी माता पर्वतमालिनी पृथ्वी, मेरे पिता, मेरा तप, मेरे नेत्र, मेरी वाणी, मेरा जीवन और जन्म सभी सफल हुए। दयामय! मैं स्वर्गमें निवासकर देवताओंके साथ अमृत-पान करना चाहता हूँ। मेरा नाम तीनों लोकोंमें कल्याण करनेवाला 'मङ्गल' प्रख्यात हो।"

पृथ्वीनन्दनने आगे कहा—'करुणामूर्ति प्रभो! मुझे आपका भुवनपावन दर्शन आज माघ-कृष्ण-चतुर्थीको हुआ है। अतएव यह चतुर्थी नित्य पुण्य देनेवाली एवं संकटहारिणी हो। सुरेश्वर! इस दिन जो भी व्रत करे, आपकी कृपासे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाया करें।'

सद्यःसिद्धिप्रदाता देवदेव गजमुखने वर प्रदान कर दिया—"मेदिनीनन्दन! तुम देवताओंके साथ सुधा-पान करोगे। तुम्हारा 'मंगल' नाम सर्वत्र विख्यात होगा। तुम धरणीके पुत्र हो और तुम्हारा रंग लाल है, अतः तुम्हारा एक नाम 'अंगारक' भी प्रसिद्ध होगा और यह तिथि 'अंगारक-चतुर्थी'के नामसे प्रख्यात होगी। पृथ्वीपर जो मनुष्य इस दिन मेरा व्रत करेंगे, उन्हें एक वर्षपर्यन्त चतुर्थी-व्रत करनेका फल प्राप्त होगा। निश्चय ही उनके किसी कार्यमें कभी विघ्न उपस्थित नहीं होगा।"

परम प्रभु गणेशने मंगलको वर देते हुए आगे कहा—'तुमने सर्वोत्तम व्रत किया है, इस कारण तुम अवन्ती नगरमें परंतप-नामक नरपाल होकर सुख प्राप्त करोगे। इस व्रतकी अद्भुत महिमा है। इसके कीर्तनमात्रसे मनुष्यकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होगी।'

गजमुख अन्तर्धान हो गये।

मंगलने एक भव्य मन्दिर बनवाकर उसमें दशभुज गणेशकी प्रतिमा स्थापित करायी। उसका नामकरण किया—'मंगलमूर्ति'। वह श्रीगणेश-विग्रह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, अनुष्ठान, पूजन और दर्शन करनेसे सबके लिये मोक्षप्रद होगा।

पृथ्वीपुत्रने मंगलवारी चतुर्थीके दिन व्रत करके श्रीगणेशजीकी आराधना की। उसका एक अत्यन्त आश्चर्यजनक फल यह हुआ कि वे सशरीर स्वर्ग चले गये। उन्होंने सुरसमुदायके साथ अमृत-पान किया और वह परमपावनी तिथि 'अंगारक-चतुर्थी'के नामसे प्रख्यात हुई। यह पुत्र-पौत्रादि एवं समृद्धि प्रदान कर समस्त कामनाओंको पूर्ण करती है।

परम कारुणिक गणेशजीको अन्तर्हृदयकी विशुद्ध प्रीति अभीष्ट है। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक त्रयतापनिवारक दयानिधान मोदकप्रिय सर्वेश्वर गजमुख कपित्थ, जम्बू और वन्यफलोंसे ही नहीं, दूर्वाके दो दलोंसे भी प्रसन्न हो जाते हैं और मुदित होकर समस्त कामनाओंकी पूर्ति तो करते ही हैं, जन्म-जरा-मृत्युका सुदृढ़ पाश नष्टकर अपना दुर्लभतम परमानन्दपूरित दिव्य धाम भी प्रदान कर देते हैं।

—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे

श्रीगणपति-पूजनकी विधि

(लेखक—साहित्याचार्य पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

नित्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा एक और अद्वितीय हैं। वे निर्गुण-निराकार होनेके साथ ही सगुण-साकार भी हैं। जैसे उनका निर्गुण-निराकार रूप नित्य है, उसी प्रकार सगुण-साकार भी। वे परमात्मा जगत्‌की सृष्टिके लिये ब्रह्मा, पालनके लिये विष्णु तथा संहारके लिये रुद्र-रूप धारण करते हैं। वे ही जगत्‌के प्राणियोंको माताका वात्सल्य एवं संरक्षण देनेके लिये दयामयी माता दुर्गाके रूपमें कार्य करते हैं। वे ही लोकोंकी आवश्यकताओंके अनुसार ताप एवं प्रकाश प्रदान करनेके निमित्त लोक-प्रसविता सविता (सूर्य) हुए हैं। हम सब यह अनुभव करते हैं कि प्रत्येक अभीष्ट कार्यके सम्पादनमें नाना प्रकारके विघ्न आते रहते हैं, उन सभी विघ्नोंका निवारण करके जगत्‌को मंगल प्रदान करनेके लिये परब्रह्म परमात्मा ही नित्य गणपतिरूपमें प्रतिष्ठित हैं। वे विद्या-वारिधि और बुद्धि-विधाता हैं। वे ही सदा, विशेषतः कलियुगमें, थोड़ी-सी भी आराधनासे शीघ्र प्रसन्न होकर भक्तजनोंके अभीष्ट सिद्ध करते हैं। भगवान् गणपति नित्य वैदिक देवता हैं; आर्योंकी सनातन आवासभूमि आर्यावर्त (भारत)-में इनकी अनादि-सिद्ध पूजन-परम्परा सदासे ही चली आ रही है। पुराणोंमें भी उनकी महामहिमाका विशद वर्णन उपलब्ध होता है। पंचदेवोंमें ये भगवान् गजानन मुख्य हैं; प्रत्येक कार्यका आरम्भ श्रीगणेशके स्मरण-वन्दनसे ही होता है। जिन लोगोंको मुक्ति या कोई भौतिक सिद्धि चाहिये, वे इस युगमें गणेशजीको शीघ्र प्रसन्न करके अपनी अभीष्टपूर्ति कर सकते हैं। वे मंगलमूर्ति, सिद्धि-सदन, गजवदन विनायक बहुत अल्प श्रमसे ही उपासकपर दयासे द्रवित हो जाते हैं। जो विनायककी पूजा करता है, उसे कभी विघ्न नहीं प्राप्त होता।[१] उनकी आराधनासे कर्ममें सिद्धि प्राप्त होती है।[२] महागणपति सम्पूर्ण जगत्‌को उपासकके वशीभूत कर देते हैं।[३]

यहाँ गणेशजीके पूजनकी शास्त्रीय विधि दी जाती है। जो यज्ञोपवीतधारी द्विज हों, वे वैदिक मन्त्रों तथा पौराणिक मन्त्रोंसे भी गणपतिकी पूजा कर सकते हैं। जिनके यज्ञोपवीत न हों, वे वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण न करके केवल पौराणिक मन्त्रोंद्वारा पूजन सम्पन्न कर सकते हैं। गणपतिकी पूजामें सभी वर्णके लोगोंका अधिकार है। पूजाका मुख्य समय पूर्वाह्णकाल है। प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल तीनों समय भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। जो तीनों समय पूजन करनेमें असमर्थ हो, उसे प्रातःकाल ही विस्तृत पूजा कर लेनी चाहिये और मध्याह्न तथा संध्याकालमें केवल पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिये।

पूजाके सोलह उपचार ये हैं—१—आवाहन, २—आसन, ३—पाद्य, ४—अर्घ्य, ५—आचमनीय, ६—स्नान, ७—वस्त्र, ८—यज्ञोपवीत, ९—गन्ध, १०—पुष्प (दूर्वांकुर)-माला आदि, ११—धूप, १२—दीप, १३—नैवेद्य, १४—ताम्बूल, १५—आरार्तिक-प्रदक्षिणा और १६—पुष्पांजलि।[४]

पूजनमें चार प्रकारके पात्र अपेक्षित होते हैं—पाद्य-पात्र, अर्घ्य-पात्र, आचमनीय-पात्र और स्नानीय-पात्र। पाद्य[५]-पात्रमें जल तो होता ही है, उसकी अंगभूत

---

१. विघ्नो न जायते तस्य यजेद् यस्तु विनायकम्।

२. महागणपतेः कर्मसिद्धिं प्राप्नोति मानवः।

३. सर्वं जगद् वशीकुर्यान्महागणपतिः सदा। (वीर०, पूजाप्रकाश)

४. जैसा कि 'कर्मप्रदीप'में वर्णन है—

आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् । स्नानं वस्त्रोपवीते च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात्॥ १॥
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा । पुष्पाञ्जलिरिति प्रोक्ता उपचारास्तु षोडश॥ २॥

५. दूर्वां च विष्णुक्रान्तं च श्यामाकं पद्ममेव च । पाद्याङ्गानि च चत्वारि कथितानि समासतः॥ (आह्निकसूत्रावली)

चार वस्तुएँ और होती हैं—'दूर्वा, विष्णुक्रान्ता (सहदेइया), श्यामाक (सावाँ) और कमल।'[1] अर्घ्य-पात्र में जलके अतिरिक्त आठ वस्तुएँ होती हैं—'दही, दूर्वा, कुशाग्र, पुष्प, अक्षत, कुंकुम, पीली सरसों, जल और सुपारी।' इस प्रकार पाद्य-पात्र चतुरंग और अर्घ्य-पात्र अष्टांग होता है।[2] आचमनीय-पात्रमें जलके अतिरिक्त जायफल, लवंग और कंकोल डालने चाहिये।[3] स्नानीय-पात्रमें जलके साथ अक्षत, गन्ध और पुष्प डालें। जिस द्रव्यका अभाव हो, उसके बदले उसके स्मरणपूर्वक अक्षत डालने चाहिये। जाती (चमेली), शमी, कुशा, कंगु, मल्लिका, कनेर, नाग (नागकेसर), पुन्नाग, अशोक, लाल कमल, नील कमल, चम्पा, बकुल (मौलसिरी), पद्म, बिल्व और पवित्रक—ये पत्र-पुष्प सभी देवताओंके लिये ग्राह्य हैं[4]। गणेशजीके लिये तुलसी निषिद्ध है और दूर्वांकुर अत्यन्त प्रिय।

जो कीड़ोंसे दूषित हों, बिखरे हों, बासी हों, स्वयं पेड़से नीचे गिरे हों, ऐसे फूल उपहत माने जाते हैं, उनका देवपूजामें उपयोग न करे। अधखिले पुष्प (मुकुल) और अपक्व अन्न (नैवेद्य) देवताको निवेदित न करे। जहाँतक बने, स्वयं वृक्षसे चुनकर लाये हुए पुष्पोंका पूजामें उपयोग करना चाहिये। देवतापर चढ़ा हुआ, बायें हाथमें रखा हुआ, पहनी हुई धोतीके पल्लेमें लाया हुआ अथवा जलसे धोया हुआ पुष्प भी निर्माल्य समझा जाता है; उसे देवता लोग ग्रहण नहीं करते। फूल डालीपर जिस स्थितिमें खिला हो, उसी रूपमें उसे दायें हाथसे देवतापर चढ़ाना चाहिये; उसे अधोमुख करके नहीं। कुशाग्रसे देवविग्रहपर जल नहीं छिड़कना चाहिये; वह वज्रपात-तुल्य माना गया है। फूल तोड़नेका काम स्नानसे पहले करना चाहिये। किंतु तुलसीदलका चयन स्नान करके ही करना उचित है। फूलको वस्त्र या हाथमें न लाकर पात्र-विशेषमें लाना चाहिये। रेंडके पत्तेमें भी नहीं लाना चाहिये। शुष्क और अपवित्र पुष्प पूजामें सर्वथा त्याज्य हैं। (द्रष्टव्य—आह्निकसूत्रावली)

उपासक स्नान-संध्या आदि नित्यकर्मका सम्पादन करके शुद्ध एवं सुखद आसनपर पूर्वाभिमुख होकर बैठे। पूजनके लिये गंगाजल एवं षोडशोपचार-पूजनकी सामग्री एकत्र करके अपने पास रख ले। सामने देवताके लिये पीठ (छोटी चौकी) स्थापित करे। उसपर आधारशक्तिकी पूजा करके पायोंमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी तथा पूर्वादि दिशाओंमें अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्यकी पूजा करे। तत्पश्चात् पीठपर कमलकी भावना करके उसकी कर्णिकामें गणपतिदेवकी प्रतिमाको विराजमान करे। प्रतिमाके अभावमें एक पात्रमें चावल भरकर, उसके ऊपर मौली लिपटी हुई सुपारी स्थापित करके उसीमें गणपतिदेवकी भावना करे। पूजक यदि गृहस्थ हो तो पूजनके समय सपत्नीक बैठकर पूजा करे। पूजन आरम्भ करनेसे पूर्व घीका दीपक जलाकर देवपीठके दाहिने भागमें अक्षत-पुंजपर उसे रख दे और '**ॐ दीपज्योतिषे नमः**'—यह मन्त्र बोलकर गन्ध-पुष्पसे उसका पूजन करे। फिर उस दीपमें इष्टदेवके ज्योतिर्मय रूपकी भावना करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

(क) **भो दीप देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्।**
यावत् कर्मसमाप्तिः स्यात् तावत् त्वं सुस्थिरो भव॥

'हे दीप! तुम देवताके रूप हो, कर्मके साक्षी तथा विघ्नके निवारक हो; जबतक पूजा-कर्म पूरा न हो जाय, तबतक तुम सुस्थिरभावसे संनिकट रहो।'

तदनन्तर पूर्वाभिमुख बैठा हुआ सपत्नीक यजमान निम्नांकित मन्त्रोंको पढ़कर तीन बार आचमन करे—

ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः॥

फिर '**ॐ हृषीकेशाय नमः**' कहकर हाथ धो ले

---

१. दधिदूर्वाकुशाग्रैश्च कुसुमाक्षतकुङ्कुमैः। सिद्धार्थोदकपूगैश्च अष्टाङ्गं ह्यर्घ्यमुच्यते॥ (व्रत-परिचय)

२. तथाऽऽचमनपात्रेऽपि दद्याज्जातिफलं मुने। लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयके॥

३. अक्षता गन्धपुष्पाणि स्नानपात्रे तथा त्रयम्।

४. जाती शमी कुशा कङ्गुर्मल्लिका करवीरजम्। नागपुन्नागकाशोकरक्तनीलोत्पलानि च॥
चम्पकं वकुलं चैव पद्मं बिल्वं पवित्रकम्। एतानि सर्वदेवानां संग्राह्याणि समानि च॥ (आह्निकसूत्रावली)

और दाहिने हाथमें कुशकी पवित्री* धारण करे। उस समय इस मन्त्रका पाठ करे—

(ख) **ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।** (यजुर्वेद १। १२)

तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥ (यजुर्वेद ४। १४)

इस प्रकार पवित्री धारण करनेके बाद तीन बार प्राणायाम करे। तत्पश्चात्—

(क) **ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।**
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥
'ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु॥'

'कोई पवित्र हो, अपवित्र हो, अथवा किसी भी अवस्थाको प्राप्त क्यों न हो, जो भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण करता है, वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो जाता है।' 'सच्चिदानन्दघन पुण्डरीकाक्ष पवित्र करें।'

यह मन्त्र पढ़कर अपने ऊपर तथा पूजन-सामग्रीपर जल छिड़के। इसके बाद निम्नलिखित मंगल-मन्त्रोंका पाठ करे—

(ख) **ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥**

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬं रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाᳬं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्। अर्यमणं वरुणᳬं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬं सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः॥
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥

(यजु० २५। १४। २३)

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳬं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वᳬं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥

(यजु० ३६। १७, २२)

सुशान्तिर्भवतु। श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमामहेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः। मातापितृभ्यां नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। कुलदेवताभ्यो नमः। ग्रामदेवताभ्यो नमः। वास्तुदेवताभ्यो नमः। स्थानदेवताभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः।

(क)

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥ १ ॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥ २ ॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥ ३ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥ ४ ॥

---

* कात्यायनने पवित्रीका लक्षण इस प्रकार बताया है—

अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्॥

''कुशके प्रादेश-मात्र दो पत्ते, जिनके गर्भमें दूसरा पत्ता न हो और अग्रभाग सुरक्षित हों, वे ही प्रत्येक कर्ममें 'पवित्र' जाननेयोग्य हैं।''

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥ ५ ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥ ६ ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥ ७ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ८ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः॥ ९ ॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥ १० ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥ ११ ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ १२ ॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ १३ ॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥ १४॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः॥ १५॥

उपर्युक्त मांगलिक श्लोकोंका भावार्थ इस प्रकार है—

"विश्वनाथ, माधव, ढुण्ढिराज गणेश, दण्डपाणि, भैरव, काशी, गुहा, गंगा तथा भवानी मणिकर्णिकाको मैं वन्दना करता हूँ॥१ ॥ कोटि सूर्योंके समान महातेजस्वी, विशालकाय और टेढ़ी सूँड़वाले गणपतिदेव! आप सदा सब कार्योंमें मेरे विघ्नोंका निवारण करें॥ २ ॥ सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशक, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचन्द्र और गजानन— ये गणेशजीके बारह नाम हैं। जो मनुष्य विद्यारम्भ, विवाह, गृहप्रवेश, यात्रा, संग्राम (युद्ध) तथा संकटके अवसरपर इन बारह नामोंका पाठ और श्रवण करता है, उसके कार्यमें विघ्न उत्पन्न नहीं होता है॥ ३—५ ॥ शुक्लवस्त्र धारण करनेवाले, चन्द्रमाके समान गौर, चार भुजाधारी और प्रसन्न मुखवाले गणपतिदेवका ध्यान करे। इससे सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति हो जाती है॥ ६ ॥ देवताओं और असुरोंने भी अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये जिनका पूजन किया है तथा जो समस्त विघ्नोंको हर लेनेवाले हैं, उन गणाधिपतिको नमस्कार है॥ ७॥ नारायणि! तुम सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हो; कल्याणदायिनी शिवा हो, सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, त्रिनेत्रधारिणी गौरी हो; तुम्हें नमस्कार है॥ ८॥ जिनके हृदयमें मंगलधाम भगवान् श्रीहरि विराजते हैं; अर्थात् जो मन ही-मन उनका चिन्तन करते हैं, उनके समस्त कार्योंमें और सदा ही अमंगल नहीं होने पाता है॥ ९॥ लक्ष्मीपते! मैं जो आपके युगल चरणोंका स्मरण करता हूँ। वह स्मरण ही शुभ लग्न है, वही सुदिन है, वही ताराबल, वही चन्द्रबल, वही विद्याबल और वही दैवबल है॥ १०॥ जिनके हृदयमें नील कमलके समान श्याम-कान्तिवाले भगवान् जनार्दन विराज रहे हैं, उन्हींका लाभ है, उन्हींकी विजय है; उनकी पराजय किससे हो सकती है?॥ ११॥ जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीं श्री, विजय, भूति तथा ध्रुवा नीति है, ऐसा मेरा विश्वास है।॥ १२॥ भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'जो लोग अनन्यभावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, मुझमें नित्य संयुक्त रहनेवाले उन भक्तोंके योग-क्षेमका भार मैं स्वयं वहन करता हूँ'॥ १३॥ जिनका स्मरण करते ही मनुष्य समस्त कल्याणका भाजन हो जाता है, उन नित्य, अजन्मा आदिपुरुष श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ॥१४॥ त्रिभुवनके स्वामी तीन देव—ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु—आरम्भ किये जानेवाले सभी कार्योंमें हमें सिद्धि प्रदान करें"॥ १५॥

—इस प्रकार मंगल-पाठके अनन्तर यजमान पवित्रीयुक्त हाथमें जल, अक्षत और द्रव्य लेकर निम्नांकित वाक्य पढ़ते हुए संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतैकदेशे अमुकनगरे अमुकग्रामे स्थाने वा बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे श्रीसूर्ये अमुकायने

अमुकतौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु च यथा यथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्मा (अमुकवर्मा अमुकगुप्तः) अहं ममात्मनः श्रीमहागणपतिप्रीत्यर्थं यथालब्धोपचारैस्तदीयं पूजनं करिष्ये।

—इस प्रकार संकल्प पढ़कर हस्तगत जलाक्षत-द्रव्य किसी भूमिगत पात्रमें छोड़ दे। तत्पश्चात् गणपति-पूजन आरम्भ करे। सबसे पहले निम्नांकित श्लोकोंके अनुसार गणेशके स्वरूपका चिन्तन करते हुए उनका आवाहन करे—

आवाहन

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि ह्याम्बिकात्र्यम्बकात्मज।
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुः पितः॥
नागास्यं नागहारं त्वां गणराजं चतुर्भुजम्।
भूषितं स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः॥
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां यागं च रक्ष मे॥

'हे माता पार्वती तथा त्रिलोचन महादेवके पुत्र हेरम्ब! आप आइये, आइये। आप सिद्धि और बुद्धिके पति हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं; लाखोंका लाभ करानेवाले तथा पिताके भी पिता हैं; यहाँ पधारिये। आप गजानन हैं, नागमय हार धारण करते हैं; आपके चार भुजाएँ हैं; आप गणोंके राजा हैं; पाश, अंकुश और परशु आदि दिव्य निजी आयुध आपके हाथोंकी शोभा बढ़ाते हैं। मैं पूजनके लिये और अपने इस यज्ञकी रक्षाके लिये भी आपका आवाहन करता हूँ। यहाँ पधारकर आप पूजा ग्रहण करें और यागकी रक्षा भी करें।'*

(ख) **ॐ गणानां त्वा गणपतिः हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिःहवामहे निधीनां त्वा निधिपतिः हवामहे वसो मम॥ आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥** (यजु० २३।१९) **ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि स्थापयामि।**

प्रतिष्ठापन

आवाहनके पश्चात् देवताका प्रतिष्ठापन करे—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञःसमिमं दधातु। विश्वेदेवास इह मादयन्तामो ३ प्रतिष्ठ॥ (यजु० २।१३)

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥
सिद्धिबुद्धिसहितगणपते सुप्रतिष्ठितो वरदो भव।

आसन-अर्पण

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर दिव्य सिंहासनकी भावनासे पुष्प अर्पित करे—

(क) **विचित्ररत्नखचितं दिव्यास्तरणसंयुतम्।**
स्वर्णसिंहासनं चारु गृह्णीष्व सुरपूजित॥

'देवपूजित गणेश! यह सुन्दर स्वर्णमय सिंहासन ग्रहण कीजिये। इसमें विचित्र रत्न जड़े गये हैं तथा इसपर दिव्य आस्तरण (बिछावन) पड़ा हुआ है।'

(ख) **ॐ पुरुष एवेदः सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥** (यजु० ३१।२) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आसनं समर्पयामि।**

इसके बाद निम्नांकित मन्त्रसे गणेशजीके पाद-प्रक्षालनके लिये पाद्य अर्पित करे—

(क) **ॐ सर्वतीर्थसमुद्भूतं पाद्यं गन्धादिभिर्युतम्।**
विघ्नराज गृहाणेदं भगवन् भक्तवत्सल॥

'भक्तवत्सल भगवान् विघ्नराज! यह सब तीर्थोंके जलसे तैयार किया गया तथा गन्ध आदिसे मिश्रित पाद्य-जल आप ग्रहण कीजिये।'

(ख) **ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥** (यजु० ३१।३) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पादयोः पाद्यं समर्पयामि।**

अर्घ्य-दान

तदनन्तर गन्ध आदिसे युक्त अर्घ्यजल अर्पित करे और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—

* यहाँ आवाहनी मुद्राका प्रदर्शन करे। दोनों हाथोंकी अंजलि जोड़कर दोनों अंगुष्ठोंको अनामिकाओंके मूल पर्वमें लगावे—यही 'आवाहनी मुद्रा' है।

(क) ॐ गणाध्यक्ष नमस्तेऽस्तु गृहाण करुणाकर।
अर्घ्यं च फलसंयुक्तं गन्धमाल्याक्षतैर्युतम्॥

'करुणानिधान गणाध्यक्ष! आपको नमस्कार है। आप गन्ध, पुष्प, अक्षत और फल आदिसे युक्त यह अर्घ्यजल स्वीकार करें।'

(ख) **ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥** (यजु० ३१।४) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि।**

आचमनीय-अर्पण

इसके अनन्तर गंगाजलसे आचमन कराये और नीचे दिया हुआ मन्त्र पढ़े—

(क) **विनायक नमस्तुभ्यं त्रिदशैरभिवन्दित।**
गङ्गोदकेन देवेश कुरुष्वाचमनं प्रभो॥

'देवेश्वर! देववन्दित प्रभो! विनायक! आपको नमस्कार है। आप गंगाजलसे आचमन करें।'

(ख) **ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥** (यजु०३१। ५) **ॐ सिद्धिबुद्धि-सहिताय महागणपतये नमः, मुखे आचमनीयं समर्पयामि।**

स्नानीय-समर्पण

तदनन्तर नीचे दिये हुए मन्त्रको बोलकर गंगाजलसे स्नान करानेकी भावनासे स्नानीय जल अर्पित करे—

(क) **मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम्।**
तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'देव! मन्दाकिनी (गंगा)-का जो जल समस्त पापहारी और शुभ है, वही आपके स्नानके लिये प्रस्तुत किया गया है; आप इसे स्वीकार करें।'

(ख) **ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥** (यजु० ३१।६) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, सर्वाङ्गे स्नानं समर्पयामि।**

पंचामृत-स्नान

इसके बाद नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर पंचामृतसे गणपतिदेवको स्नान कराये—

(क) **पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं पयो दधि घृतं मधु।**
शर्करा च समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! दूध, दही, घी, मधु और शर्कराको एकत्र मिलाकर तैयार किया गया यह पंचामृत मैं ले आया हूँ; इसे आप स्नानके लिये ग्रहण करें।'

(ख) **ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥** (यजु० ३४।११) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि।**
पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

इसके बाद दूध, दही आदिसे पृथक्-पृथक् स्नान कराकर शुद्ध जलसे भी स्नान कराना चाहिये। दूधसे स्नान करानेके लिये मन्त्र निम्नलिखित है—

पयःस्नान

(क) **कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम्।**
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम्॥

'प्रभो! कामधेनुके थनसे प्रकट, सबके लिये परम जीवन, पवित्र तथा यज्ञका हेतुभूत यह दूध आपको स्नानके लिये अर्पित है।'

(ख) **ॐ पयः पृथिव्याम्पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥** (यजु० १८।३६) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पयःस्नानं समर्पयामि।**
पयःस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

दधि-स्नान

(क) **पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम्।**
दध्यानीतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'देव! यह दूधसे उत्पन्न, मीठा-खट्टा, चन्द्रसदृश उज्ज्वल दही मैं ले आया हूँ; आप इसे स्नानके लिये ग्रहण करें।'

(ख) **ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत् प्राण आयूꣳषि तारिषत्॥** (यजु०२३। ३२) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दधिस्नानं समर्पयामि।**
दधिस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

घृत-स्नान

(क) **नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसंतोषकारकम्।**
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'भगवन्! नवनीत (मक्खन)-से उत्पन्न तथा

सबको संतुष्ट करनेवाला यह घृत मैं आपको अर्पित करता हूँ; इसे आप स्नानके लिये स्वीकार करें।'

(ख) **ॐ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम। अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम्॥** (यजु० १७। ८८) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, घृतस्नानं समर्पयामि।**

घृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

मधु-स्नान

(क) **पुष्परेणुसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु।**
तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! यह पुष्पके परागसे प्रकट और तेजकी पुष्टि करनेवाला दिव्य सुस्वादु, मधुर मधु सेवामें प्रस्तुत है; आप इसे स्नानके लिये ग्रहण करें।'

(ख) **ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्त् पार्थिवः रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥** (यजु० १३। २७—२९) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मधुस्नानं समर्पयामि।**

मधुस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

शर्करा-स्नान

(क) **इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिदा शुभा।**
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'जो ईखके सार-तत्त्वसे बनी है, पुष्टि देनेवाली, शुभ तथा मैलको दूर कर देनेवाली है; वह दिव्य शर्करा सेवामें प्रस्तुत है; आप इसे स्नानके लिये स्वीकार करें।'

(ख) **ॐ अपा ꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम्। अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥** (यजु०९। ३) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, शर्करास्नानं समर्पयामि।**

शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

इसके बाद सुगन्ध तैल (इत्र) आदि अर्पित करे।

मांगलिक स्नान (सुवासित तैल या इत्र)

(क) **चम्पकाशोकबकुलमालतीमोगरादिभिः ।**
वासितं स्निग्धताहेतुतैलं चारु प्रगृह्यताम्॥

'प्रभो! चम्पा, अशोक, मौलसिरी, मालती और मोगरा आदिसे वासित तथा चिकनाहटहेतुभूत यह सुन्दर तैल आप ग्रहण करें।'

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, सुवासितं तैलं समर्पयामि।

शुद्धोदक-स्नान

तदनन्तर गंगाजल या तीर्थ-जलसे शुद्ध स्नान कराये। मन्त्र निम्नलिखित है—

(क) **गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।**
नर्मदा सिन्धुः कावेरी स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'इस शुद्ध जलके रूपमें यहाँ गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी उपस्थित हैं; आप स्नानके लिये यह जल ग्रहण करें।'

(ख) **ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे॥** (यजु० ११। ५०) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।**

वस्त्र-समर्पण

(क) **शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम्।**
देहालंकरणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

'प्रभो! यह वस्त्र सेवामें अर्पित है। यह सर्दी, हवा और गरमीसे बचानेवाला, लज्जाका उत्तम रक्षक तथा शरीरका अलंकार है; आप इसे स्वीकार करके मुझे शान्ति प्रदान करें।'

(ख) **ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥** (ऋक्० ३। ८। ४) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, वस्त्रं समर्पयामि।**

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनं समर्पयामि।

उपवस्त्र (उत्तरीय)-समर्पण

(क) **उत्तरीयं तथा देव नानाचित्रितमुत्तमम्।**
गृहाणेदं मया भक्त्या दत्तं तत् सफलीकुरु॥

'हे देव! नाना प्रकारके चित्रों (बेल-बूटों)-से सुशोभित यह उत्तम उत्तरीय वस्त्र मैंने भक्तिपूर्वक अर्पित किया है; आप इसे ग्रहण करें और सफल बनायें।'

(ख) **ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्स्वः। वासो अग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व**

विभावसो॥ (यजु० ११। ४०) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, उपवस्त्रं समर्पयामि। तदन्ते आचमनीयं समर्पयामि।**

(वस्त्रके अभावमें लाल सूत एवं अलंकरणके लिये अक्षत चढ़ाना चाहिये।)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, वस्त्रोपवस्त्रार्थे रक्तसूत्रं समर्पयामि।

अलंकरण

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, अलंकरणार्थमक्षतान् समर्पयामि।

यज्ञोपवीत-समर्पण

(क) **नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।**
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥

'परमेश्वर! नौ तन्तुओंसे युक्त, त्रिगुण और देवतास्वरूप यह यज्ञोपवीत मैंने समर्पित किया है। आप इसे ग्रहण करें।'

(ख) **ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।**
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनं समर्पयामि।

गन्ध

(क) **श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।**
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥

'सुरश्रेष्ठ! यह दिव्य श्रीखण्डचन्दन, सुगन्धसे पूर्ण एवं मनोहर है। विलेपनस्वरूप यह चन्दन आप स्वीकार करें।'

(ख) **ॐ त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत॥** (यजु० १२। ९८) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, गन्धं समर्पयामि।**

अक्षत

(क) **अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः।**
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर॥

'सुरश्रेष्ठ परमेश्वर! ये कुंकुममें रँगे हुए सुन्दर अक्षत हैं; मैंने भक्तिभावसे इन्हें आपकी सेवामें अर्पित किया है; आप इन्हें ग्रहण करें।'

(ख) **ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी।** (यजु० ३। ५१) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, अक्षतान् समर्पयामि।**

पुष्प-माला

(क) **माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।**
मयाहृतानि पुष्पाणि गृह्यन्तां पूजनाय भोः॥

'प्रभो! मालती आदिकी सुगन्धित मालाएँ और फूल मेरे द्वारा लाये गये हैं; आप इन्हें पूजार्थ ग्रहण करें।'

(ख) **ॐ ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥** (यजु० १२। ७७) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पुष्पमालां समर्पयामि।**

मन्दार-पुष्प

(क) **वन्दारुजनमन्दार मन्दारप्रिय धीपते।**
मन्दारजानि पुष्पाणि श्वेतार्कादीन्युपेहि भोः॥

'हे वन्दना करनेवाले भक्तोंके लिये मन्दार (कल्पवृक्ष)-के समान कामनापूरक! मन्दारप्रिय! बुद्धिपते गणेश! मन्दारके तथा श्वेत आक आदिके फूल ग्रहण कीजिये।'

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मन्दारपुष्पाणि समर्पयामि।

शमीपत्र

(क) **त्वत्प्रियाणि सुपुष्पाणि कोमलानि शुभानि वै।**
शमीदलानि हेरम्ब गृहाण गणनायक॥

'गणनायक हेरम्ब! आपके जो प्रिय सुन्दर पुष्प तथा कोमल शुभ शमीपत्र हैं, उन्हें ग्रहण कीजिये।'

(ख) **ॐ य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत॥** (ऋक्० १। २०। २) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, शमीपत्राणि समर्पयामि।**

दूर्वांकुर

(क) **दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मङ्गलप्रदान्।**
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक॥

'गणनायक! आपकी पूजाके लिये मेरे द्वारा अत्यन्त हरे, अमृतमय तथा मंगलप्रद दूर्वांकुर लाये गये हैं, आप इन्हें स्वीकार करें।'

(ख) **ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च॥**

(यजु० १३। २०) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि।

सिन्दूर

(क) सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्धनम्।
शुभदं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! सुन्दर, लाल, सौभाग्यस्वरूप, सुखवर्धक, शुभद एवं कामपूरक सिन्दूर सेवामें प्रस्तुत है; इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः। घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः॥ (यजु० १७। ९५) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, सिन्दूरं समर्पयामि।

नाना परिमलद्रव्य, अबीर-चूर्ण

(क) नानापरिमलैर्द्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम्।
अबीरनामकं चूर्णं गन्धाढ्यं चारु गृह्यताम्॥

'भाँति-भाँतिके सुगन्धित द्रव्योंसे निर्मित यह गन्धयुक्त अबीर-नामक सुन्दर तथा उत्तम चूर्ण ग्रहण कीजिये।'

(ख) ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाᳬंसं परिपातु विश्वतः॥ (यजु० २९। ५१) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि।

दशांग धूप

(क) वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

'वनस्पतिके रससे प्रकट, सुगन्धित, उत्तम गन्धरूप और समस्त देवताओंके सूँघनेयोग्य यह धूप सेवामें अर्पित है। प्रभो! इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्वयं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमᳬं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥ (यजु० १। ८) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, धूपमाघ्रापयामि।

दीप-दर्शन

(क) साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने।
त्राहि मां निरयाद् घोराद्दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते॥

'देवेश! घीमें डुबोयी रुईकी बत्तीको अग्निसे प्रज्वलित करके दीप आपकी सेवामें अर्पित किया गया है; आप इसे ग्रहण करें; यह त्रिभुवनके अन्धकारको दूर करनेवाला है। मैं इष्ट देवता परमात्मा गणपतिको दीप देता हूँ। प्रभो! आप मुझे घोर नरकसे बचाइये। दीपज्योतिर्मय देव! आपको नमस्कार है।'

(ख) ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ (यजु० ३। ९) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दीपं दर्शयामि।

नैवेद्य-निवेदन

दीप-अर्पणके पश्चात् हाथ धोकर नैवेद्य अर्पण करे। नैवेद्यमें भाँति-भाँतिके मोदक, गुड़ तथा ऋतुके अनुकूल उपलब्ध नाना प्रकारके उत्तमोत्तम फल प्रस्तुत करे। नैवेद्यमें देय वस्तुका पहले शुद्ध जलसे प्रोक्षण करे। फिर धेनुमुद्रा दिखाकर देवताके सम्मुख स्थापित करे। इसके बाद निम्नांकित मन्त्रोंको पढ़े—

(क) नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम्॥
शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

'देव! आप यह नैवेद्य ग्रहण करें और अपने प्रति मेरी भक्तिको अविचल कीजिये। वांछित वर दीजिये और परलोकमें परम गति प्रदान कीजिये। शक्कर और खाँड़से तैयार किये गये खाद्य पदार्थ, दही, दूध, घी तथा भक्ष्य-भोज्य आहार नैवेद्यके रूपमें प्रस्तुत हैं; आप यह नैवेद्य कृपापूर्वक स्वीकार करें।'

(ख) ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षᳬं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ अकल्पयन्॥ (यजु० ३१। १३) ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा॥ ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा॥ ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नैवेद्यं मोदकमयं ऋतुफलानि च समर्पयामि।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनीयं मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं च समर्पयामि।

करोद्वर्तनके लिये चन्दन

(क) ॐ चन्दनं मलयोद्भूतं कस्तूर्यादिसमन्वितम्।
करोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर॥

'देव! मलयपर्वतसे उत्पन्न चन्दनमें कस्तूरी आदि मिलाकर मैंने करोद्वर्तन तैयार किया है। परमेश्वर! इसे स्वीकार करें।'

(ख) **अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः॥** (यजु० २०। २७) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, चन्दनेन करोद्वर्तनं समर्पयामि।**

पूगीफलादिसहित ताम्बूल-अर्पण

(क) ॐ पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! महान् दिव्य पूगीफल, इलायची और चूना आदिसे युक्त पानका बीड़ा सेवामें प्रस्तुत है; इसे ग्रहण करें।'

(ख) **ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥** (यजु० ३१। १४) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मुखवासार्थमेलापूगीफलादिसहितं ताम्बूलं समर्पयामि।**

नारिकेलफल-अर्पण

(क) इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥

'देव! यह नारियलका फल मैंने आपके सामने रखा है; इससे जन्म-जन्ममें मुझे सफलता प्राप्त हो।'

(ख) **ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः॥** (यजु० १२। ८९) **ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नारिकेलफलं समर्पयामि।**

दक्षिणा-समर्पण

(क) हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

'सुवर्ण हिरण्यगर्भ ब्रह्माके गर्भमें स्थित अग्निका बीज है। वह अनन्त पुण्य-फल प्रदान करनेवाला है। भगवन्! वह आपकी सेवामें अर्पित है; अतः इसे स्वीकार कर मुझे शान्ति प्रदान करें।'

(ख) **ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥** (यजु० १३। ४)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थं द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि।

नीराजन या आरार्तिक (आरती)

(क) कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं तु प्रदीपितम्।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव॥

'प्रभो! केलेके गर्भसे उत्पन्न यह जलाया गया कपूर है; इसीके द्वारा मैं आपकी आरती करता हूँ। आप इसे देखिये और मेरे लिये वरदायक होइये।'

(ख) **ॐ इदं हविः प्रजननं मे अस्तु, दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त॥**

(यजु० १९। ४८)

आ रात्रि पार्थिवꣳरजः पितुरप्रायि धामभिः। दिवः सदाꣳसि बृहती तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः॥

(यजु० ३४। ३२)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, कर्पूरनीराजनं समर्पयामि।

पुष्पाञ्जलि-समर्पण

(क) नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर॥

'परमेश्वर! यथासमय उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्प मैंने पुष्पांजलिके रूपमें अर्पित किये हैं; आप इन्हें स्वीकार करें।'

(ख) **ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥** (यजु० ३१। १६) **ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥** (यजु० २३। १९) **ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥**

(यजु० २३। १८)

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् काम कामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु॥ कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः।

ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुषान्तादापरार्धात् पृथिव्यै

समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे। आवीक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥ (यजु० १७। १९)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

प्रदक्षिणा

(क) यानि कानि च पापानि ज्ञाताज्ञातकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे॥

'मनुष्यद्वारा जाने या अनजानेमें जो कोई पाप किये गये हैं, वे परिक्रमा करते समय पद-पदपर नष्ट होते हैं।'

(ख) ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ (यजु० १६। ६१)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि।

विशेषार्घ्य-समर्पण

तदनन्तर जल, गन्ध, अक्षत, फल, फूल, दूर्वा और दक्षिणा एक ताम्रमय पात्रमें रखकर दोनों घुटनोंको पृथ्वीपर टेककर उक्त अर्घ्य-पात्र (ताम्र-पात्र)-को दोनों हाथोंकी अंजलिमें ले और उसे मस्तकसे लगाकर निम्नांकित श्लोकोंको पढ़ते हुए श्रीगणपतिको अर्घ्य दे—

(क) रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक।
भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो।
वरदस्त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद॥
अनेन सफलार्घ्येण सफलोऽस्तु सदा मम।

"त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले गणाध्यक्ष! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आप भक्तोंको अभय देनेवाले और भव-सागरसे उनकी रक्षा करनेवाले होइये। दयासागर! आप दो माताओंके पुत्र होनेसे 'द्वैमातुर' कहे गये हैं।

"प्रभो! आप षाण्मातुर स्कन्दके बड़े भाई हैं, वरदाता हैं, वर दीजिये। अभीष्ट वस्तुओंके दाता गणेश! मेरी वाञ्छा पूर्ण कीजिये। इस फलयुक्त अर्घ्य-दानसे आप मेरे लिये सफल—फलदाता होइये।"

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, विशेषार्घ्यं समर्पयामि।

प्रार्थना

विशेषार्घ्य देनेके पश्चात् निम्नांकित श्लोक पढ़कर प्रार्थना करे—

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥
भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय
सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय
भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः॥
विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक॥
लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥
त्वां विघ्नशत्रुदलनेति च सुन्दरेति
भक्तप्रियेति सुखदेति फलप्रदेति।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति
तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव॥
गणेशपूजने कर्म यन्न्यूनमधिकं कृतम्।
तेन सर्वेण सर्वात्मा प्रसन्नोऽस्तु सदा मम॥
अनया पूजया सिद्धि-बुद्धिसहितो महागणपतिः प्रीयतां न मम।

"गणनाथ! आप विघ्नेश्वर (विघ्नोंपर शासन करनेवाले) हैं। वरदाता हैं, देवताओंके प्रिय हैं, लम्बोदर हैं, विविध कलाओंसे पूर्ण हैं, सम्पूर्ण जगत्के हितैषी हैं, गजानन हैं, वैदिक यज्ञसे विभूषित और गौरी (पार्वती)-के पुत्र हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप भक्तोंके संकट मिटानेमें सदा लगे रहते हैं, गणोंके ईश्वर एवं सर्वेश्वर हैं, कल्याणप्रद एवं देवेश्वर हैं, विद्याधर, विकट और वामन हैं तथा भक्तोंपर प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप ब्रह्मरूप, विष्णुरूप, रुद्ररूप और गजरूप हैं; इन

सभी रूपोंमें आपको बार-बार नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वका रूप आपका ही स्वरूप है; आप ब्रह्मचारी हैं; आपको नमस्कार है। विनायक! आप भक्तप्रिय देवता हैं; आपको नमस्कार है। लम्बोदर! आपको मोदक सदा ही प्रिय है; आपको नमस्कार है। देव! आप सदा मेरे सब कार्योंमें विघ्नोंका निवारण करें। गणेश! जो लोग आपको 'विघ्न-शत्रु-दलन', 'सुन्दर', 'भक्तप्रिय', 'सुखद,' 'फलप्रद,' 'विद्याप्रद' और 'अघहर' इत्यादि नामोंसे पुकारकर आपकी स्तुति करते हैं, उनके लिये आप नित्य ही वरदायक हों। गणेशजीकी पूजामें जो कर्म न्यून या अधिक किया गया है, उस सबके द्वारा सर्वात्मा गणपति सदा मुझपर प्रसन्न रहें।''

'इस पूजासे सिद्धि-बुद्धिसहित महागणपति संतुष्ट हों। इसपर उन्हींका स्वत्व है, मेरा नहीं।'

॥ श्रीगणपति-पूजन-विधि सम्पूर्ण॥

~~०~~

सब प्रकारके कष्टोंके निवारणका अचूक उपाय

['ॐ गं गणपतये नमः' मन्त्र-जपका अनुभव]

(लेखक—पं० श्रीअवधेशनारायणजी मिश्र, व्याकरण-साहित्याचार्य)

श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे 'कल्याण' के पाठक भली प्रकार परिचित हैं ही; मैं उनका परिचय क्या दूँ। श्रीभाईजीके स्वजनोंकी परिधि विशाल थी और सभी अपना दुःख-दर्द उनको सुनाया करते थे तथा उनके निवारणके लिये अनुरोध करते थे। परमोच्च कोटिके गृहस्थ संत होनेके नाते श्रीभाईजी लोकसंग्रहकी दृष्टिसे लौकिक कामनाओं एवं आपदाओंसे पीड़ित व्यक्तियोंको कष्टोंके निवारणार्थ यथासम्भव सभी प्रकारके सात्त्विक प्रयत्न करनेके साथ-साथ विश्वम्भर प्रभुको पुकारनेका भी परामर्श देते थे। उनका स्पष्ट मत था कि 'जगत्‌के सामने हाथ फैलाने, दुःख रोनेकी अपेक्षा यह कहीं श्रेष्ठ है कि अशरणशरण भगवान्‌को पुकारा जाय। अपनी बातको स्पष्ट करनेके लिये वे श्रीतुलसीदासजीका यह सवैया सुनाया करते थे—

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं,
जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ,
जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषनकी,
अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे।
तुलसी! भजु दारिद-दोष-दवानल,
संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड २८)

'संसारमें किसीसे (कुछ) माँगना नहीं चाहिये। यदि माँगना ही हो तो जानकीनाथ श्रीरामचन्द्रजीसे मनहीमें माँगो, जिससे माँगते ही याचकता (दरिद्रता, कामना) जल जाती है, जो बरबस जगत्‌को जला रही है। विभीषणकी दशाका विचार करके देखो और हनुमान्‌जीका भी स्मरण करो। गोसाईंजी कहते हैं कि हे तुलसीदास! दरिद्रतारूपी दोषको जलानेके लिये दावानलके समान और करोड़ों संकटोंको काटनेके लिये कृपाणरूप श्रीरामचन्द्रजीको भजो।'

इतना ही नहीं, वे योग्य पण्डितोंके द्वारा आर्त व्यक्तियोंके लिये सकाम अनुष्ठान भी करवाते थे। मुझे भी उनके निर्देशनमें विविध प्रकारके अनेक सकाम अनुष्ठान करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अन्य देवी-देवताओंके अनुष्ठानके साथ-साथ वे भगवान् श्रीगणेशका भी अनुष्ठान करवाते थे। श्रीगणेशके अनुष्ठानमें वे '**ॐ गं गणपतये नमः**' मन्त्रका जप ही विशेषरूपसे करवाते थे। उनकी इस मन्त्रपर बड़ी निष्ठा थी और प्रत्येक विषम परिस्थितिमें वे इसके जपका विधान करते थे। पति-पत्नीके मध्य मनमुटाव, पारिवारिक कलह, फैक्ट्रीमें हड़ताल, व्यापारमें घाटा, मुकदमेबाजी, सरकारी झंझट, ऋण, भीषण व्याधि आदि सभी लौकिक कष्टों एवं झंझटोंके निवारणके लिये वे इस मन्त्रका जप करवाते थे और भगवान् श्रीगणेशकी

कृपासे आर्तजनोंका कष्ट बड़ी सरलतासे निवृत्त भी होता था।

इस मन्त्रके जपकी विधि यह है कि प्रात:काल स्नान आदिसे शुद्ध होकर पवित्र स्थानमें कुश या ऊनके आसनपर पूर्व या उत्तराभिमुख बैठ जाय और भगवान् श्रीगणेशकी प्रतिमा या मँढ़वाये हुए चित्रपटको अपने सम्मुख विराजमान कर ले। चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे श्रीगणेशका पूजन कर प्रथम दिन संकल्प करे कि 'अमुक कार्यकी सिद्धिके लिये इस मन्त्रका प्रतिदिन इतना जप किया जायगा'। तत्पश्चात् भगवान् गणेशका स्मरण करते हुए एकाग्रचित्तसे जप किया जाय। जपके समय आदिसे अन्ततक शुद्ध घीका दीपक श्रीगणेश-विग्रहकी दाहिनी ओर प्रज्वलित रहे। दीपकके नीचे अक्षत आदि रख दिये जायँ। प्रतिदिन १०८ मालाका जप हो तो सर्वोत्तम है, नहीं तो सुविधानुसार ५५, ३१, ११मालाका भी जप किया जा सकता है। कार्यसिद्धितक यह जप चलता रहे। जप व्यक्ति स्वयं भी कर सकता है अथवा सदाचारी सात्त्विक विद्वान् ब्राह्मणद्वारा यथोचित दक्षिणा देकर भी करवा सकता है। जो यज्ञोपवीतधारी न हों, उन्हें 'ॐ' कारको छोड़कर केवल '**गं गणपतये नमः**' मन्त्रका जप करना चाहिये। बिना किसी कामनाके भगवान् गणेशकी प्रसन्नताके लिये ही इस मन्त्रकी प्रतिदिन ५, ११, २१ मालाएँ जप करनेसे जपकर्ताका सर्वविध मंगल होता है। यह परम मंगलकारक मन्त्र है; इसका आश्रय ग्रहण करनेवालोंको भगवान् श्रीगणेशकी कृपा अवश्य प्राप्त होती है।

~~०~~

पारमार्थिक एवं लौकिक मनोरथोंकी पूर्ति करानेवाले कुछ सिद्ध स्तोत्र

नीचे कुछ सिद्ध स्तोत्र दिये जा रहे हैं, जिनका श्रद्धा-भक्तिके साथ अनुष्ठान करनेपर 'पारमार्थिक' और 'भौतिक' लाभ हो सकते हैं। आशा है, श्रद्धालु पाठक इनसे यथोचित लाभ उठायेंगे। ऐसे अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने एक स्थानपर लिखा है—

''यह सत्य है कि भगवान् अपनी मंगलमयी सर्वज्ञता और इच्छासे हमारे लिये जो कुछ भी फल-विधान करते हैं, चाहे वह हमारी सीमित और अदूरदृष्टिके कारण हमें अशुभ या दुःखप्रद ही जान पड़े, वास्तवमें वह परम शुभ और परम मंगलकारी ही होता है। इसलिये भगवान्‌पर और उनकी मङ्गलमयतापर विश्वास करनेवाले भक्त यही चाहते हैं कि उनकी 'मंगलमयी' इच्छा ही सदा सर्वत्र अपना काम करती रहे; हमारी कोई भी इच्छा उस मंगलमयी इच्छामें कभी बाधक हो ही नहीं। तथापि जो लोग भोग-कामना और भोग-वासनाको छोड़ नहीं सकते और कामना एवं आसक्तिसे अभिभूत होकर अन्याय और असत् मार्गका अवलम्बन करके भोग-सुखकी आशा रखते हैं, उनके लिये तो भगवदाराधन और देवाराधन अवश्य ही सेवन करनेयोग्य है। इसमें लाभ-ही-लाभ है। यदि श्रद्धा और विधि पूरी हो तो—'नवीन प्रारब्ध'का निर्माण होकर मनोरथकी पूर्ति हो जाती है। कदाचित् प्रतिबन्धकरूप प्रारब्ध अत्यन्त प्रबल होनेके कारण मनोरथपूर्ति न भी हो तो पुण्यकर्मका अनुष्ठान तो बनता ही है।''

इन स्तोत्रोंके अनुष्ठानके सम्बन्धमें यह निवेदन है कि अनुष्ठानकर्त्ता भगवान् श्रीगणेशकी प्रतिमा या चित्रपटके सम्मुख पवित्र स्थानमें शुद्ध आसनपर बैठे और यथोपलब्ध उपचारोंसे श्रीगणेशका पूजन करके उनका मंगलमय स्मरण करते हुए श्रद्धा-भक्तिके साथ अपनी कामनाके अनुकूल स्तोत्रका कम-से-कम ग्यारह पाठ प्रतिदिन करे; अधिक जितना भी हो उत्तम है। जबतक कामना पूर्ण न हो पाठ बराबर चलता रहे।

अंकके आरम्भमें तथा लेखों एवं लीला-कथाओंमें भी स्थान-स्थानपर अनेक स्तुतियाँ आयी हैं और वे सभी फलप्रदायिनी हैं। श्रीगणेशके कुछ मन्त्रोंका भी प्रसंगानुरूप उल्लेख हुआ है। श्रीगणेश-सम्बन्धी विभिन्न मन्त्र तथा उनकी अनुष्ठान-विधि, नामोंकी व्याख्यासहित 'श्रीगणेश-सहस्रनाम-स्तोत्र', अन्य सिद्ध-अनुष्ठान, फलप्रद-स्तोत्र आदि फरवरीके अंकमें दिये जा रहे हैं।

—सम्पादक

(१)

मंगल-विधानके लिये *

गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः। द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः॥
विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः। द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥
विश्वं तस्य भवेद्वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित्। (पद्मपु० सृ० ६१। ३१—३३)

'गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप, विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल और भवात्मज—ये बारह गणेशजीके नाम हैं। जो प्रातःकाल उठकर इनका पाठ करता है, सम्पूर्ण विश्व उनके वशमें हो जाता है तथा उसे कभी विघ्नका सामना नहीं करना पड़ता।'

(२)

मोक्ष-प्राप्तिके लिये

पञ्चश्लोकिगणेशपुराणम्

श्रीविघ्नेशपुराणसारमुदितं व्यासाय धात्रा पुरा
तत्खण्डं प्रथमं महागणपतेश्चोपासनाख्यं यथा।
संहर्तुं त्रिपुरं शिवेन गणपस्यादौ कृतं पूजनं
कर्तुं सृष्टिमिमां स्तुतः स विधिना व्यासेन बुद्ध्याप्तये॥
संकष्ट्याश्च विनायकस्य च मनोः स्थानस्य तीर्थस्य वै
दूर्वाणां महिमेति भक्तिचरितं तत्पार्थिवस्यार्चनम्।
तेभ्यो यैर्यदभीप्सितं गणपतिस्तत्तत्प्रतुष्टो ददौ
ताः सर्वा न समर्थ एव कथितुं ब्रह्मा कुतो मानवः॥
क्रीडाकाण्डमथो वदे कृतयुगे श्वेतच्छविः काश्यपः
सिंहाङ्कः स विनायको दशभुजो भूत्वाथ काशीं ययौ।
हत्वा तत्र नरान्तकं तदनुजं देवान्तकं दानवं
त्रेतायां शिवनन्दनो रसभुजो जातो मयूरध्वजः॥
हत्वा तं कमलासुरं च सगणं सिन्धुं महादैत्यपं
पश्चात् सिद्धिमती सुते कमलजस्तस्मै च ज्ञानं ददौ।
द्वापरे तु गजाननो युगभुजो गौरीसुतः सिन्दुरं
सम्मर्द्य स्वकरेण तं निजमुखे चाखुध्वजो लिप्तवान्॥
गीताया उपदेश एव हि कृतो राज्ञे वरेण्याय वै
तुष्टायाथ च धूम्रकेतुरभिधो विप्रः सधर्मर्धिकः।
अश्वाङ्को द्विभुजो सितो गणपतिर्म्लेच्छान्तकः स्वर्णदः
क्रीडाकाण्डमिदं गणस्य हरिणा प्रोक्तं विधात्रे पुरा॥
एतच्छ्लोकसुपञ्चकं प्रतिदिनं भक्त्या पठेद्यः पुमान्
निर्वाणं परमं व्रजेत् स सकलान् भुक्त्वा सुभोगानपि।

॥ इति श्रीपञ्चश्लोकिगणेशपुराणम्॥

पूर्वकालमें ब्रह्माजीने व्यासको श्रीविघ्नेश (गणेश)-पुराणका सारतत्त्व बताया था। वह महागणपतिका उपासनासंज्ञक प्रथम खण्ड है। भगवान् शिवने पहले त्रिपुरका संहार करनेके लिये गणपतिका पूजन किया। फिर ब्रह्माजीने इस सृष्टिकी रचना करनेके लिये उनकी विधिवत् स्तुति की। तत्पश्चात् व्यासने बुद्धिकी प्राप्तिके लिये

* 'समुखश्चैकदन्तश्च०' आदि द्वादशनामात्मक प्रसिद्ध स्तोत्र पृ०५२३ पर देखना चाहिये।

उनका स्तवन किया। संकष्टी देवीकी, गणेशकी, उनके मन्त्रकी, स्थानकी, तीर्थकी और दूर्वाकी महिमा यह भक्तिचरित है। उनके पार्थिव विग्रहका पूजन भी भक्तिचर्या ही है। उन भक्तिचर्या करनेवाले पुरुषोंमेंसे जिन-जिनने जिस-जिस वस्तुको पानेकी इच्छा की, संतुष्ट हुए गणपतिने वह-वह वस्तु उन्हें दी। उन सबका वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। अब 'क्रीड़ाकाण्ड'का वर्णन करता हूँ। सत्ययुगमें दस भुजाओंसे युक्त श्वेत कान्तिमान् कश्यपपुत्र सिंहध्वज महोत्कट विनायक काशीमें गये। वहाँ नरान्तक और उसके छोटे भाई देवान्तक नामक दानवको मारकर त्रेतामें वे षड्बाहु शिवनन्दन मयूरध्वजके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने कमलासुरको तथा महादैत्यपति सिन्धुको उसके गणोंसहित मार डाला। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने सिद्धि और बुद्धि नामक दो कन्याएँ उन्हें दीं और ज्ञान भी प्रदान किया। द्वापरयुगमें गौरीपुत्र गजानन दो भुजाओंसे युक्त हुए। उन्होंने अपने हाथसे सिन्दूरासुरका मर्दन करके उसे अपने मुखपर पोत लिया। उनकी ध्वजामें मूषकका चिह्न था। उन्होंने संतुष्ट राजा वरेण्यको गणेशगीताका उपदेश किया। फिर वे धूम्रकेतु-नामसे प्रसिद्ध धर्मयुक्त धनवाले ब्राह्मण होंगे। उस समय उनके ध्वजका चिह्न अश्व होगा। उनके दो भुजाएँ होंगी। वे गौरवर्णके गणपति म्लेच्छोंका अन्त करनेवाले और सुवर्णके दाता होंगे। गणपतिके इस 'क्रीड़ाकाण्ड'का वर्णन पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे किया था।

जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिभावसे इन पाँच श्लोकोंका पाठ करेगा, वह समस्त उत्तम भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परम निर्वाण (मोक्ष)-को प्राप्त होगा।

॥ इस प्रकार 'पंचश्लोकी गणेशपुराण' पूरा हुआ॥

(३)

सर्वविध रक्षाके लिये

गणेशन्यास

श्रीगणेशाय नमः॥ आचम्य प्राणायामं कृत्वा। दक्षिणहस्ते वक्रतुण्डाय नमः। वामहस्ते शूर्पकर्णाय नमः। ओष्ठे विघ्नेशाय नमः। सम्पुटे गजाननाय नमः। दक्षिणपादे लम्बोदराय नमः। वामपादे एकदन्ताय नमः। शिरसि एकदन्ताय नमः। चिबुके ब्रह्मणस्पतये नमः। दक्षिणनासिकायां विनायकाय नमः। वामनासिकायां ज्येष्ठराजाय नमः। दक्षिणनेत्रे विकटाय नमः। वामनेत्रे कपिलाय नमः। दक्षिणकर्णे धरणीधराय नमः। वामकर्णे आशापूरकाय नमः। नाभौ महोदराय नमः। हृदये धूम्रकेतवे नमः। ललाटे मयूरेशाय नमः। दक्षिणबाहौ स्वानन्दवासकारकाय नमः। वामबाहौ सच्चित्सुखधाम्ने नमः।

॥ इति मुद्‌गलपुराणे गणेशन्यासः समाप्तः॥

श्रीगणेशाय नमः—आचमन और प्राणायाम करनेके पश्चात् दाहिने हाथमें '**वक्रतुण्डाय नमः**'—इस मन्त्रको बोलकर वक्रतुण्डका न्यास करे। बायें हाथमें '**शूर्पकर्णाय नमः**'—इस मन्त्रसे शूर्पकर्णका, ओष्ठमें '**विघ्नेशाय नमः**'—इस मन्त्रसे विघ्नेशका, दोनों ओष्ठोंके बंद सम्पुटमें '**गजाननाय नमः**'—इस मन्त्रसे गजाननका, दाहिने पैरमें '**लम्बोदराय नमः**'—इस मन्त्रसे लम्बोदरका और बायें पैरमें '**एकदन्ताय नमः**' से एकदन्तका न्यास करे। सिरमें भी इसी मन्त्रसे एकदन्तका, चिबुक (ठोढ़ी)-में '**ब्रह्मणस्पतये नमः**'—इस मन्त्रसे ब्रह्मणस्पतिका, दाहिनी नासिकामें '**विनायकाय नमः**'—इस मन्त्रसे विनायकका, बायीं नासिका में '**ज्येष्ठराजाय नमः**'—इस मन्त्रसे ज्येष्ठराजका, दाहिने नेत्रमें '**विकटाय नमः**'—इस मन्त्रसे विकटका, बायें नेत्रमें '**कपिलाय नमः**'—इस मन्त्रसे कपिलका, दाहिने कानमें '**धरणीधराय नमः**'—इस मन्त्रसे धरणीधरका, बायें कानमें '**आशापूरकाय नमः**'—इस मन्त्रसे आशापूरकका, नाभिमें '**महोदराय नमः**'—इस मन्त्रसे महोदरका, हृदयमें '**धूम्रकेतवे नमः**'—इस मन्त्रसे धूम्रकेतुका, ललाटमें '**मयूरेशाय नमः**'—इस मन्त्रसे मयूरेशका, दाहिनी बाँहमें '**स्वानन्दवासकारकाय नमः**'—इस मन्त्रसे स्वानन्दवासकारकका तथा बायीं बाँहमें '**सच्चित्सुखधाम्ने नमः**'—इस मन्त्रसे सच्चित्सुखधामका न्यास करे।

॥ इस प्रकार मुद्‌गलपुराणमें '**गणेशन्यास**' पूरा हुआ॥

(४)

समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये

गणेशाष्टक

सर्वे ऊचुः

यतोऽनन्तशक्तेरनन्ताश्च जीवा यतो निर्गुणादप्रमेया गुणास्ते।
यतो भाति सर्वं त्रिधा भेदभिन्नं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेतत्तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता।
तथेन्द्रादयो देवसङ्घा मनुष्याः सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतो वह्निभानूद्भवो भूर्जलं च यतः सागराश्चन्द्रमा व्योम वायुः।
यतः स्थावरा जङ्गमा वृक्षसङ्घाः सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतो दानवाः किंनरा यक्षसङ्घा यतश्चारणा वारणाः श्वापदाश्च।
यतः पक्षिकीटा यतो वीरुधश्च सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतो बुद्धिरज्ञाननाशो मुमुक्षोर्यतः सम्पदो भक्तसंतोषिकाः स्युः।
यतो विघ्ननाशो यतः कार्यसिद्धिः सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतः पुत्रसम्पद् यतो वाञ्छितार्थो यतोऽभक्तविघ्नास्तथानेकरूपाः।
यतः शोकमोहौ यतः काम एव सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतोऽनन्तशक्तिः स शेषो बभूव धराधारणेऽनेकरूपे च शक्तः।
यतोऽनेकधा स्वर्गलोका हि नाना सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतो वेदवाचो विकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

श्रीगणेश उवाच

पुनरूचे गणाधीशः स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः। त्रिसंध्यं त्रिदिनं तस्य सर्वं कार्यं भविष्यति॥
यो जपेदष्टदिवसं श्लोकाष्टकमिदं शुभम्। अष्टवारं चतुर्थ्यां तु सोऽष्टसिद्धीरवाप्नुयात्॥
यः पठेन्मासमात्रं तु दशवारं दिने दिने। स मोचयेद्बन्धगतं राजवध्यं न संशयः॥
विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्। वाञ्छितांल्लभते सर्वानेकविंशतिवारतः॥
यो जपेत् परया भक्त्या गजाननपरो नरः। एवमुक्त्वा ततो देवश्चान्तर्धानं गतः प्रभुः॥

॥ इति श्रीगणेशपुराणे श्रीगणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

सब भक्तोंने कहा—जिन अनन्त शक्तिवाले परमेश्वरसे अनन्त जीव प्रकट हुए हैं, जिन निर्गुण परमात्मासे अप्रमेय (असंख्य) गुणोंकी उत्पत्ति हुई है, सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीन भेदोंवाला यह सम्पूर्ण जगत् जिससे प्रकट एवं भासित हो रहा है, उन गणेशका हम नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे इस समस्त जगत्का प्रादुर्भाव हुआ है, जिनसे कमलासन ब्रह्मा, विश्वव्यापी विश्वरक्षक विष्णु, इन्द्र आदि देवसमुदाय और मनुष्य प्रकट हुए हैं, उन गणेशका हम सदा ही नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे अग्नि और सूर्यका प्राकट्य हुआ; पृथ्वी, जल, समुद्र, चन्द्रमा, आकाश और वायुका प्रादुर्भाव हुआ तथा जिनसे स्थावर-जंगम और वृक्षसमूह उत्पन्न हुए हैं, उन गणेशका हम नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे दानव, किंनर और यक्षसमूह प्रकट हुए; जिनसे हाथी और हिंसक जीव उत्पन्न हुए तथा जिनसे पक्षियों, कीटों और लता-बेलोंका प्रादुर्भाव हुआ, उन गणेशका हम सदा ही नमन और भजन करते हैं। जिनसे मुमुक्षुको बुद्धि प्राप्त होती है और अज्ञानका नाश होता है; जिनसे भक्तोंको संतोष देनेवाली सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं तथा जिनसे विघ्नोंका नाश और समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है, उन गणेशका हम सदा नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे पुत्र-सम्पत्ति सुलभ होती है; जिनसे मनोवांछित

अर्थ सिद्ध होता है; जिनसे अभक्तोंको अनेक प्रकाके विघ्न प्राप्त होते हैं तथा जिनसे शोक, मोह और काम प्राप्त होते हैं, उन गणेशका हम सदा नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे अनन्त शक्तिसम्पन्न सुप्रसिद्ध शेषनाग प्रकट हुए; जो इस पृथ्वीको धारण करने एवं अनेक रूप ग्रहण करनेमें समर्थ हैं; जिनसे अनेक प्रकारके अनेक स्वर्गलोक प्रकट हुए हैं, उन गणेशका हम सदा ही नमन एवं भजन करते हैं। जिनके विषयमें वेदवाणी कुण्ठित है; जहाँ मनकी भी पहुँच नहीं है तथा श्रुति सदा सावधान रहकर 'नेति-नेति'—इन शब्दोंद्वारा जिनका वर्णन करती है; जो सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म हैं, उन गणेशका हम सदा ही नमन एवं भजन करते हैं।

श्रीगणेशजी फिर बोले—जो मनुष्य तीन दिनोंतक तीनों संध्याओंके समय इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके सारे कार्य सिद्ध हो जायँगे। जो आठ दिनोंतक इन आठ श्लोकोंका एक बार पाठ करेगा और चतुर्थी तिथिको आठ बार इस स्तोत्रको पढ़ेगा, वह आठों सिद्धियोंको प्राप्त कर लेगा। जो एक मासतक प्रतिदिन दस-दस बार इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह कारागारमें बँधे हुए तथा राजाके द्वारा वध-दण्ड पानेवाले कैदीको भी छुड़ा लेगा, इसमें संशय नहीं है। इस स्तोत्रका इक्कीस बार पाठ करनेसे विद्यार्थी विद्याको, पुत्रार्थी पुत्रको तथा कामार्थी समस्त मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य पराभक्तिसे इस स्तोत्रका जप करता है वह गजाननका परम भक्त हो जाता है—ऐसा कहकर भगवान् गणेश वहीं अन्तर्धान हो गये।

॥ इस प्रकार श्रीगणेशपुराणमें 'श्रीगणेशाष्टक' पूरा हुआ॥

(५)

विघ्ननाशके लिये

श्रीराधिकोवाच

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम्। विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम्॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्। सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम्॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम्। यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२१। १०३—१०५)

श्रीराधिकाने कहा—जो परम धाम, परब्रह्म, परेश, परम ईश्वर, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं; प्रधान-प्रधान सुर, असुर और सिद्ध जिनका स्तवन करते हैं; जो देवरूपी कमलके लिये सूर्य और मंगलोंके आश्रय-स्थान हैं, उन परात्पर गणेशकी मैं स्तुति करती हूँ।

यह उत्तम स्तोत्र महान् पुण्यमय तथा विघ्न और शोकको हरनेवाला है। जो प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंसे विमुक्त हो जाता है।

(६)

संकटनाशके लिये

संकष्टनाशनस्तोत्रम्

नारद उवाच

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम्। भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुःकामार्थसिद्धये॥
प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम्। तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम्॥
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च। सप्तमं विघ्नराजेन्द्रं धूम्रवर्णं तथाष्टमम्॥
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम्। एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम्॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं परम्॥

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् । पुत्रार्थी लभते पुत्रान् मोक्षार्थी लभते गतिम्॥
जपेद्गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत् । संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः॥
अष्टभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत् । तस्य विद्या भवेत् सर्वा गणेशस्य प्रसादतः॥

॥ इति श्रीनारदपुराणे संकष्टनाशनं नाम गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

नारदजी कहते हैं—पहले मस्तक झुकाकर गौरीपुत्र विनायकदेवको प्रणाम करके प्रतिदिन आयु, अभीष्ट मनोरथ और धन आदि प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये भक्तावास गणेशजीका स्मरण करे; पहला नाम 'वक्रतुण्ड' है, दूसरा 'एकदन्त' है, तीसरा 'कृष्णपिंगाक्ष'है, चौथा 'गजवक्त्र' है, पाँचवाँ 'लम्बोदर', छठा 'विकट', सातवाँ 'विघ्नराजेन्द्र', आठवाँ 'धूम्रवर्ण', नवाँ 'भालचन्द्र', दसवाँ 'विनायक', ग्यारहवाँ 'गणपति' और बारहवाँ नाम 'गजानन' है। जो मनुष्य सबेरे, दोपहर और सायं—तीनों संध्याओंके समय प्रतिदिन इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे विघ्नका भय नहीं होता। यह नाम-स्मरण उसके लिये सभी सिद्धियोंका उत्तम साधक है। इन नामोंके जपसे विद्यार्थी विद्या, धनार्थी धन, पुत्रार्थी अनेक पुत्र और मोक्षार्थी मोक्ष पाता है। इस गणपतिस्तोत्रका नित्य जप करे। जपकर्ताको छः महीनेमें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। एक वर्षतक जप करनेसे मनुष्य सिद्धिको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है।

जो इस स्तोत्रको लिखकर आठ ब्राह्मणोंको अर्पित करता है, उसे गणेशजीकी कृपासे सम्पूर्ण विद्याकी प्राप्ति होती है।

॥ इस प्रकार श्रीनारदपुराणमें 'संकष्टनाशन' नामक गणेशस्तोत्र पूरा हुआ॥

(७)

चिन्ता एवं रोग-निवारणके लिये

मयूरेशस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

पुराणपुरुषं देवं नानाक्रीडाकरं मुदा । मायाविनं दुर्विभाव्यं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
परात्परं चिदानन्दं निर्विकारं हृदि स्थितम् । गुणातीतं गुणमयं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
सृजन्तं पालयन्तं च संहरन्तं निजेच्छया । सर्वविघ्नहरं देवं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
नानादैत्यनिहन्तारं नानारूपाणि बिभ्रतम् । नानायुधधरं भक्त्या मयूरेशं नमाम्यहम्॥
इन्द्रादिदेवतावृन्दैरभिष्टुतमहर्निशम् । सदसद्व्यक्तमव्यक्तं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
सर्वशक्तिमयं देवं सर्वरूपधरं विभुम् । सर्वविद्याप्रवक्तारं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
पार्वतीनन्दनं शम्भोरानन्दपरिवर्धनम् । भक्तानन्दकरं नित्यं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
मुनिध्येयं मुनिनुतं मुनिकामप्रपूरकम् । समष्टिव्यष्टिरूपं त्वां मयूरेशं नमाम्यहम्॥
सर्वाज्ञाननिहन्तारं सर्वज्ञानकरं शुचिम् । सत्यज्ञानमयं सत्यं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
अनेककोटिब्रह्माण्डनायकं जगदीश्वरम् । अनन्तविभवं विष्णुं मयूरेशं नमाम्यहम्॥

मयूरेश उवाच

इदं ब्रह्मकरं स्तोत्रं सर्वपापप्रनाशनम् । सर्वकामप्रदं नृणां सर्वोपद्रवनाशनम्॥
कारागृहगतानां च मोचनं दिनसप्तकात् । आधिव्याधिहरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्॥

॥ इति मयूरेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

ब्रह्माजी बोले—जो पुराणपुरुष हैं और प्रसन्नतापूर्वक नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करते हैं; जो मायाके स्वामी हैं तथा जिनका स्वरूप दुर्विभाव्य (अचिन्त्य)है, उन मयूरेश गणेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परात्पर, चिदानन्दमय, निर्विकार, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित, गुणातीत एवं गुणमय हैं, उन मयूरेशको मैं नमस्कार

करता हूँ। जो स्वेच्छासे ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन सर्वविघ्नहारी देवता मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अनेकानेक दैत्योंके प्राणनाशक हैं और नाना प्रकारके रूप धारण करते हैं, उन नाना अस्त्र-शस्त्रधारी मयूरेशको मैं भक्तिभावसे नमस्कार करता हूँ। इन्द्र आदि देवताओंका समुदाय दिन-रात जिनका स्तवन करता है तथा जो सत्, असत् , व्यक्त और अव्यक्तरूप हैं, उन मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वशक्तिमय, सर्वरूपधारी और सम्पूर्ण विद्याओंके प्रवक्ता हैं, उन भगवान् मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो पार्वतीजीको पुत्ररूपसे आनन्द प्रदान करते और भगवान् शंकरका भी आनन्द बढ़ाते हैं, उन भक्तानन्दवर्धन मयूरेशको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। मुनि जिनका ध्यान करते, मुनि जिनके गुण गाते तथा जो मुनियोंकी कामना पूर्ण करते हैं, उन समष्टि-व्यष्टिरूप मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त वस्तुविषयक अज्ञानके निवारक, सम्पूर्ण ज्ञानके उद्भावक, पवित्र, सत्य ज्ञानस्वरूप तथा सत्यनामधारी हैं, उन मयूरेशको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अनेक कोटि ब्रह्माण्डके नायक, जगदीश्वर, अनन्त वैभवसम्पन्न तथा सर्वव्यापी विष्णुरूप हैं, उन मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ।

मयूरेशने कहा—यह स्तोत्र ब्रह्मभावकी प्राप्ति करानेवाला और समस्त पापोंका नाशक है। मनुष्योंको सम्पूर्ण मनोवांछित वस्तु देनेवाला तथा सारे उपद्रवोंका शमन करनेवाला है। सात दिन इसका पाठ किया जाय तो कारागारमें पड़े हुए मनुष्योंको भी छुड़ा लाता है। यह शुभ स्तोत्र आधि (मानसिक चिन्ता)तथा व्याधि (शरीरगत रोग)-को भी हर लेता है और भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है।

॥ इस प्रकार 'मयूरेशस्तोत्र' पूरा हुआ॥

(८)

पुत्रकी प्राप्तिके लिये

संतानगणपतिस्तोत्रम्

नमोऽस्तु गणनाथाय सिद्धिबुद्धियुताय च । सर्वप्रदाय देवाय पुत्रवृद्धिप्रदाय च॥
गुरूदराय गुरवे गोप्त्रे गुह्यासिताय ते । गोप्याय गोपिताशेषभुवनाय चिदात्मने॥
विश्वमूलाय भव्याय विश्वसृष्टिकराय ते । नमो नमस्ते सत्याय सत्यपूर्णाय शुण्डिने॥
एकदन्ताय शुद्धाय सुमुखाय नमो नमः । प्रपन्नजनपालाय प्रणतार्तिविनाशिने॥
शरणं भव देवेश संततिं सुदृढां कुरु । भविष्यन्ति च ये पुत्रा मत्कुले गणनायक॥
ते सर्वे तव पूजार्थे निरताः स्युर्वरो मतः । पुत्रप्रदमिदं स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥

॥ इति संतानगणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

सिद्धि-बुद्धिसहित उन गणनाथको नमस्कार है, जो पुत्रवृद्धि प्रदान करनेवाले तथा सब कुछ देनेवाले देवता हैं। जो भारी पेटवाले (लम्बोदर), गुरु (ज्ञानदाता), गोप्ता (रक्षक), गुह्य (गूढ़स्वरूप) तथा सब ओरसे गौर हैं; जिनका स्वरूप और तत्त्व गोपनीय है तथा जो समस्त भुवनोंके रक्षक हैं, उन चिदात्मा आप गणपतिको नमस्कार है। जो विश्वके मूल कारण, कल्याणस्वरूप, संसारकी सृष्टि करनेवाले, सत्यरूप, सत्यपूर्ण तथा शुण्डधारी हैं, उन आप गणेश्वरको बारम्बार नमस्कार है। जिनके एक दाँत और सुन्दर मुख है; जो शरणागत भक्तजनोंके रक्षक तथा प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं, उन शुद्धस्वरूप आप गणपतिको बारम्बार नमस्कार है। देवेश्वर! आप मेरे लिये शरणदाता हों। मेरी संतानपरम्पराको सुदृढ़ करें। गणनायक! मेरे कुलमें जो पुत्र हों, वे सब आपकी पूजाके लिये सदा तत्पर हों—यह वर प्राप्त करना मुझे इष्ट है। यह पुत्रप्रदायक स्तोत्र समस्त सिद्धियोंको देनेवाला है।

॥ इस प्रकार 'संतानगणपतिस्तोत्र' पूरा हुआ॥

(९)

श्री एवं पुत्रकी प्राप्तिके लिये

श्रीगणाधिपस्तोत्रम्

सरागिलोकदुर्लभं विरागिलोकपूजितं सुरासुरैर्नमस्कृतं जरादिमृत्युनाशकम्।
गिरा गुरुं श्रिया हरिं जयन्ति यत्पदार्चका नमामि तं गणाधिपं कृपापयःपयोनिधिम्॥
गिरीन्द्रजामुखाम्बुजप्रमोददानभास्करं करीन्द्रवक्त्रमानताघसंघवारणोद्यतम्।
सरीसृपेशबद्धकुक्षिमाश्रयामि संततं शरीरकान्तिनिर्जिताब्जबन्धुबालसंततिम्॥
शुकादिमौनिवन्दितं गकारवाच्यमक्षरं प्रकाममिष्टदायिनं सकामनम्रपङ्क्तये।
चकासनं चतुर्भुजैर्विकासिपद्मपूजितं प्रकाशितात्मतत्त्वकं नमाम्यहं गणाधिपम्॥
नराधिपत्वदायकं स्वरादिलोकदायकं जरादिरोगवारकं निराकृतासुरव्रजम्।
कराम्बुजैर्धरन्सृणीन् विकारशून्यमानसैर्हृदा सदा विभावितं मुदा नमामि विघ्नपम्॥
श्रमापनोदनक्षमं समाहितान्तरात्मना समाधिभिः सदार्चितं क्षमानिधिं गणाधिपम्।
रमाधवादिपूजितं यमान्तकात्मसम्भवं शमादिषड्गुणप्रदं नमामि तं विभूतये॥
गणाधिपस्य पञ्चकं नृणामभीष्टदायकं प्रणामपूर्वकं जनाः पठन्ति ये मुदायुताः।
भवन्ति ते विदाम्पुरः प्रगीतवैभवा जनाश्चिरायुषोऽधिकश्रियः सुसूनवो न संशयः॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यकृतं गणाधिपस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

जो विषयासक्त लोगोंके लिये दुर्लभ, विरक्तजनोंसे पूजित, देवताओं और असुरोंसे वन्दित तथा जरा आदि मृत्युके नाशक हैं; जिनके चरणारविन्दोंकी अर्चना करनेवाले भक्त अपनी वाणीद्वारा बृहस्पतिको और लक्ष्मीद्वारा श्रीविष्णुको भी जीत लेते हैं; उन दयासागर गणाधिपतिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो गिरिराजनन्दिनी उमाके मुखारविन्दको प्रमोद प्रदान करनेके लिये सूर्यरूप हैं; जिनका मुख गजराजके समान है; जो प्रणतजनोंकी पापराशिका नाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं; जिनकी कुक्षि (उदर) नागराज शेषसे आवेष्टित है तथा जो अपने शरीरकी कान्तिसे बालसूर्यकी किरणावलीको पराजित कर देते हैं, उन गणेशजीकी मैं सदा शरण लेता हूँ। शुक आदि मौनावलम्बी महात्मा जिनकी वन्दना करते हैं; जो गकारके वाच्यार्थ, अविनाशी तथा सकामभाव लेकर चरणोंमें प्रणत होनेवाले भक्तसमूहोंके लिये मनचाही अभीष्ट वस्तुको देनेवाले हैं; चार भुजाएँ जिनकी शोभा बढ़ाती हैं; जो प्रफुल्ल कमलसे पूजित होते हैं और आत्मतत्त्वके प्रकाशक हैं, उन गणाधिपतिको मैं नमस्कार करता हूँ। जो नरेशत्व प्रदान करनेवाले स्वर्गादि लोकोंके दाता, जरा आदि रोगोंका निवारण करनेवाले तथा असुरसमुदायका संहार करनेवाले हैं; जो अपने करारविन्दोंद्वारा अंकुश धारण करते हैं और निर्विकार चित्तवाले उपासक जिनका सदा ही मनके द्वारा ध्यान करते हैं, उन विघ्नपतिको मैं सानन्द प्रणाम करता हूँ। जो सब प्रकारके श्रम या पीड़ाका निवारण करनेमें समर्थ हैं; एकाग्रचित्तवाले योगीके द्वारा सदा समाधिसे पूजित हैं; क्षमाके सागर और गणोंके अधिपति हैं; लक्ष्मीपति विष्णु आदि देवता जिनकी पूजा करते हैं; जो मृत्युंजयके आत्मज हैं तथा शम आदि छः गुणोंके दाता हैं, उन गणेशको मैं ऐश्वर्यप्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूँ। यह 'गणाधिपपंचकस्तोत्र' मनुष्योंको अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला है। जो लोग प्रणामपूर्वक प्रसन्नताके साथ इसका पाठ करते हैं, वे विद्वानोंके समक्ष अपने वैभवके लिये प्रशंसित होते हैं तथा दीर्घायु, अधिक श्रीसम्पत्तिसे सम्पन्न तथा सुन्दर पुत्रवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है।

॥ इस प्रकार श्रीशंकराचार्यद्वारा विरचित 'गणाधिपस्तोत्र' पूरा हुआ॥

(१०)

लक्ष्मीप्राप्तिके लिये

ॐ नमो विघ्नराजाय सर्वसौख्यप्रदायिने । दुष्टारिष्टविनाशाय पराय परमात्मने ॥
लम्बोदरं महावीर्यं नागयज्ञोपशोभितम् । अर्धचन्द्रधरं देवं विघ्नव्यूहविनाशनम् ॥
ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः हेरम्बाय नमो नमः । सर्वसिद्धिप्रदोऽसि त्वं सिद्धिबुद्धिप्रदो भव ॥
चिन्तितार्थप्रदस्त्वं हि सततं मोदकप्रियः । सिन्दूरारुणवस्त्रैश्च पूजितो वरदायकः ॥
इदं गणपतिस्तोत्रं यः पठेद् भक्तिमान् नरः । तस्य देहं च गेहं च स्वयं लक्ष्मीर्न मुञ्चति ॥

सम्पूर्ण सौख्य प्रदान करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप विघ्नराज गणेशको नमस्कार है। जो दुष्ट अरिष्ट-ग्रहोंका नाश करनेवाले परात्पर परमात्मा हैं, उन गणपतिको नमस्कार है। जो महापराक्रमी, लम्बोदर, सर्पमय यज्ञोपवीतसे सुशोभित, अर्धचन्द्रधारी और विघ्नसमूहका विनाश करनेवाले हैं, उन गणपतिदेवकी मैं वन्दना करता हूँ। ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः हेरम्बको नमस्कार है। भगवन्! आप सब सिद्धियोंके दाता हैं; आप हमारे लिये सिद्धि-बुद्धिदायक हों। आपको सदा ही मोदक (लड्डू) प्रिय है। आप मनके द्वारा चिन्तित अर्थको देनेवाले हैं। सिन्दूर और लाल वस्त्रसे पूजित होकर आप सदा वर प्रदान करते हैं। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त हो इस गणपति-स्तोत्रका पाठ करता है, स्वयं लक्ष्मी उसके देह-गेहको नहीं छोड़तीं।

(११)

परिवारमें पारस्परिक प्रेम-प्राप्तिके लिये

गणपतिस्तोत्रम्

सुवर्णवर्णसुन्दरं सितैकदन्तबन्धुरं गृहीतपाशकाङ्कुशं वरप्रदाभयप्रदम् ।
चतुर्भुजं त्रिलोचनं भुजङ्गमोपवीतिनं प्रफुल्लवारिजासनं भजामि सिन्धुराननम् ॥
किरीटहारकुण्डलं प्रदीप्तबाहुभूषणं प्रचण्डरत्नकङ्कणं प्रशोभिताङ्घ्रियष्टिकम् ।
प्रभातसूर्यसुन्दराम्बरद्वयप्रधारिणं सरत्नहेमनूपुरप्रशोभिताङ्घ्रिपङ्कजम् ॥
सुवर्णदण्डमण्डितप्रचण्डचारुचामरं गृहप्रदेन्दुसुन्दरं युगक्षणप्रमोदितम् ।
कवीन्द्रचित्तरञ्जकं महाविपत्तिभञ्जकं षडक्षरस्वरूपिणं भजे गजेन्द्ररूपिणम् ॥
विरिञ्चिविष्णुवन्दितं विरूपलोचनस्तुतं गिरीशदर्शनेच्छया समर्पितं पराम्बया ।
निरन्तरं सुरासुरैः सपुत्रवामलोचनैः महामखेष्टकर्मसु स्मृतं भजामि तुन्दिलम् ॥
मदौघलुब्धचञ्चलालिमञ्जुगुञ्जितारवं प्रबुद्धचित्तरञ्जकं प्रमोदकर्णचालकम् ।
अनन्यभक्तिमानवं प्रचण्डमुक्तिदायकं नमामि नित्यमादरेण वक्रतुण्डनायकम् ॥
दारिद्र्यविद्रावणमाशु कामदं स्तोत्रं पठेदेतदजस्रमादरात् ।
पुत्री कलत्रस्वजनेषु मैत्री पुमान् भवेदेकवरप्रसादात् ॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं गणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो सुवर्णके समान गौरवर्णसे सुन्दर प्रतीत होते हैं; एक ही श्वेत दन्तके द्वारा मनोहर जान पड़ते हैं; जिन्होंने हाथोंमें पाश और अंकुश ले रखे हैं; जो वर तथा अभय प्रदान करनेवाले हैं; जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं; जो सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं और प्रफुल्ल कमलके आसनपर बैठते हैं, उन गजाननका मैं भजन करता हूँ। जो किरीट, हार और कुण्डलके साथ उद्दीप्त बाहुभूषण धारण करते हैं; चमकीले रत्नोंका कंगन पहनते हैं; जिनके दण्डोपम चरण अत्यन्त शोभाशाली हैं जो प्रभातकालके सूर्यके समान सुन्दर और लाल दो वस्त्र धारण करते हैं तथा जिनके युगल चरणारविन्द रत्नजटित सुवर्णनिर्मित नुपूरोंसे सुशोभित हैं, उन गणेशजीका मैं भजन करता हूँ। जिनका विशाल एवं मनोहर चँवर सुवर्णमय दण्डसे मण्डित है; जो सकाम

भक्तोंको गृह-सुख प्रदान करनेवाले एवं चन्द्रमाके समान सुन्दर हैं; युगोंमें क्षणका आनन्द लेनेवाले हैं; जिनसे कवीश्वरोंके चित्तका रंजन होता है; जो बड़ी-बड़ी विपत्तियोंका भंजन करनेवाले और षडक्षर मन्त्रस्वरूप हैं, उन गजराजरूपधारी गणेशका मैं भजन करता हूँ। ब्रह्मा और विष्णु जिनकी वन्दना तथा विरूपलोचन शिव जिनकी स्तुति करते हैं; जो गिरीश (शिव)-के दर्शनकी इच्छासे परा अम्बा पार्वतीद्वारा समर्पित हैं; देवता और असुर अपने पुत्रों और वामलोचना पत्नियोंके साथ बड़े-बड़े यज्ञों तथा अभीष्ट कर्मोंमें निरन्तर जिनका स्मरण करते हैं; उन तुन्दिल देवता गणेशका मैं भजन करता हूँ। जिनकी मदराशिपर लुभाये हुए चंचल भ्रमर मंजु गुंजारव करते रहते हैं; जो ज्ञानीजनोंके चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं; अपने कानोंको सानन्द हिलाया करते हैं और अनन्यभक्ति रखनेवाले मनुष्योंको उत्कृष्ट मुक्ति देनेवाले हैं, उन वक्रतुण्ड गणनायकका मैं प्रतिदिन आदरपूर्वक भजन करता हूँ। यह स्तोत्र दरिद्रताको शीघ्र भगानेवाला और अभीष्ट वस्तुको देनेवाला है। जो निरन्तर आदरपूर्वक इसका पाठ करेगा, वह मनुष्य एकेश्वर गणेशकी कृपासे पुत्रवान् तथा स्त्री एवं स्वजनोंके प्रति मित्रभावसे युक्त होगा।

॥ इस प्रकार श्रीशंकराचार्यद्वारा विरचित 'गणपतिस्तोत्र' पूरा हुआ॥

(१२)

पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिके लिये

गजाननस्तोत्रम्

देवर्षय ऊचुः

विदेहरूपं भवबन्धहारं सदा स्वनिष्ठं स्वसुखप्रदं तम्।
अमेयसांख्येन च लक्ष्यमीशं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
मुनीन्द्रवन्द्यं विधिबोधहीनं सुबुद्धिदं बुद्धिधरं प्रशान्तम्।
विकारहीनं सकलाङ्गकं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
अमेयरूपं हृदि संस्थितं तं ब्रह्माहमेकं भ्रमनाशकारम्।
अनादिमध्यान्तमपाररूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
जगत्प्रमाणं जगदीशमेवमगम्यमाद्यं जगदादिहीनम्।
अनात्मनां मोहप्रदं पुराणं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
न पृथ्विरूपं न जलप्रकाशं न तेजसंस्थं न समीरसंस्थम्।
न खे गतं पञ्चविभूतिहीनं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
न विश्वगं तैजसगं न प्राज्ञं समष्टिव्यष्टिस्थमनन्तगं तम्।
गुणैर्विहीनं परमार्थभूतं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
गुणेशगं नैव च बिन्दुसंस्थं न देहिनं बोधमयं न ढुण्ढिम्।
सुयोगहीनं प्रवदन्ति तत्स्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
अनागतं ग्रैवगतं गणेशं कथं तदाकारमयं वदामः।
तथापि सर्वं प्रतिदेहसंस्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
यदि त्वया नाथ धृतं न किंचित्तदा कथं सर्वमिदं भजामि।
अतो महात्मानमचिन्त्यमेवं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
सुसिद्धिदं भक्तजनस्य देवं सकामिकानामिह सौख्यदं तम्।
अकामिकानां भवबन्धहारं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥

सुरेन्द्रसेव्यं ह्यसुरैः सुसेव्यं समानभावेन विराजयन्तम्।
अनन्तबाहुं मूषकध्वजं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
सदा सुखानन्दमयं जले च समुद्रजे इक्षुरसे निवासम्।
द्वन्द्वस्य यानेन च नाशरूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
चतुःपदार्था विविधप्रकाशास्त एव हस्ताः सचतुर्भुजं तम्।
अनाथनाथं च महोदरं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
महाखुमारूढमकालकालं विदेहयोगेन च लभ्यमानम्।
अमायिनं मायिकमोहदं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
रविस्वरूपं रविभासहीनं हरिस्वरूपं हरिबोधहीनम्।
शिवस्वरूपं शिवभासनाशं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
महेश्वरीस्थं च सुशक्तिहीनं प्रभुं परेशं परवन्द्यमेवम्।
अचालकं चालकबीजरूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
शिवादिदेवैश्च खगैश्च वन्द्यं नरैर्लतावृक्षपशुप्रमुख्यैः।
चराचरैर्लोकविहीनमेकं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
मनोवचोहीनतया सुसंस्थं निवृत्तिमात्रं ह्यजमव्ययं तम्।
तथापि देवं पुरसंस्थितं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
वयं सुधन्या गणपस्तवेन तथैव मर्त्यार्चनतस्तथैव।
गणेशरूपाय कृतास्त्वया तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
गजास्यबीजं प्रवदन्ति वेदास्तदेव चिह्नेन च योगिनस्त्वाम्।
गच्छन्ति तेनैव गजानन त्वां गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
पुराणवेदाः शिवविष्णुकाद्याः शुक्रादयो ये गणपस्तवे वै।
विकुण्ठिताः किं च वयं स्तुवीमो गजाननं भक्तियुतं भजामः॥

देवर्षि बोले—जो विदेह (देहाभिमानशून्य)-रूपसे स्थित हैं; भवबन्धनका नाश करनेवाले हैं; सदा स्वानन्दरूपमें स्थित तथा आत्मानन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन अमेय सांख्य ज्ञानके लक्ष्यभूत भगवान् गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो मुनीश्वरोंके लिये वन्दनीय, विधि-बोधसे रहित, उत्तम बुद्धिके दाता, बुद्धिधारी, प्रशान्तचित्त, निर्विकार तथा सर्वांगपूर्ण हैं, उन गजाननका हम भक्तिपूर्वक भजन करते हैं। जिनका स्वरूप अमेय (मानातीत) है; जो हृदयमें विराजमान हैं; 'मैं एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हूँ'—यह बोध जिनका स्वरूप है; जो भ्रमका नाश करनेवाले हैं; जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है तथा जो अपाररूप हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जिनका स्वरूप जगत्को मापनेवाला, अर्थात् विश्वव्यापी है; इस प्रकार जो जगदीश्वर, अगम्य, सबके आदि तथा जगत् आदिसे हीन हैं; तथा जो अनात्मा (अज्ञानी) पुरुषोंको मोहमें डालनेवाले हैं, उन पुराणपुरुष गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो न तो पृथ्वीरूप हैं, न जलके रूपमें प्रकाशित होते हैं; न तेज, वायु और आकाशमें स्थित हैं, उन पंचविध विभूतियोंसे रहित गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो न विश्वमें हैं, न तैजसमें हैं और न प्राज्ञ ही हैं; जो समष्टि और व्यष्टि, दोनोंमें विराजमान हैं, उन अनन्तव्यापी निर्गुण एवं परमार्थस्वरूप गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो न तो गुणोंके स्वामी (प्रधान)-में हैं न बिन्दुमें विराजमान हैं; न बोधमय देही हैं और न ढुण्ढि ही हैं; जिन्हें ज्ञानीजन सुयोगहीन और योगमें स्थित बताते हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो अनागत (भविष्य) हैं, गजग्रीवागत हैं, उन गणेशको हम उस आकारसे युक्त कैसे कहें! तथापि जो सर्वरूप हैं और प्रत्येक शरीरमें

अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। नाथ! यदि आपने कुछ भी धारण नहीं किया है, तब हम कैसे इस सम्पूर्ण जगत्‌की सेवा कर सकते हैं। अतः ऐसे अचिन्त्य महात्मा गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं।

जो भक्तजनोंको उत्तम सिद्धि देनेवाले देवता हैं; सकाम पुरुषोंको यहाँ अभीष्ट सौख्य प्रदान करते हैं और निष्कामजनोंके भव-बन्धनको हर लेते हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो सुरेन्द्रोंके सेव्य हैं और असुर भी जिनकी भलीभाँति सेवा करते हैं; जो समानभावसे सर्वत्र विराजमान हैं; जिनकी भुजाएँ अनन्त हैं और जिनके ध्वजमें मूषकका चिह्न है, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो सदा सुखानन्दमय हैं; समुद्रके जलमें तथा ईक्षुरसमें निवास करते हैं; और जो अपने यानद्वारा द्वन्द्वका नाश करनेवाले हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। विविधरूपसे प्रकाशित होनेवाले जो चार पदार्थ (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) हैं, वे ही जिनके हाथ हैं और उन्हीं हाथोंके कारण जो चतुर्भुज हैं, उन अनाथनाथ लम्बोदर गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो विशाल मूषकपर आरूढ़ हैं, अकालकाल हैं; विदेहात्मक योगसे जिनकी उपलब्धि होती है; जो मायावी नहीं हैं, अपितु मायावियोंको मोहमें डालनेवाले हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो सूर्यस्वरूप होकर भी सूर्यके प्रकाशसे रहित हैं; हरिस्वरूप होकर भी हरिबोधसे हीन हैं तथा जो शिवस्वरूप होकर भी शिवप्रकाशके नाशक (उसे तिरोहित कर देनेवाले) हैं; उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। महेश्वरीके साथ रहकर भी जो उत्तम शक्तिसे हीन हैं; प्रभु, परमेश्वर और परके लिये भी वन्दनीय हैं; अचालक होकर भी जो चालक बीजरूप हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो शिवादि देवताओं, पक्षियों, मनुष्यों, लताओं, वृक्षों, प्रमुख पशुओं तथा चराचर प्राणियोंके लिये वन्दनीय हैं; ऐसे होते हुए भी जो लोकरहित हैं, उन एक—अद्वितीय गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो मन और वाणीकी पहुँचसे परे विद्यमान हैं; निवृत्तिमात्र जिनका स्वरूप है; जो अजन्मा और अविनाशी हैं तथापि जो नगरमें स्थित देवता हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। हम गणपतिकी स्तुतिसे परम धन्य हो गये। मर्त्यलोककी वस्तुओंसे उनका अर्चन करके भी हम धन्य हैं। जिन्होंने हमें गणेशस्वरूप बना लिया है, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। गजानन! आपके बीज-मन्त्रको वेद बताते हैं; उसी बीजरूप चिह्नसे योगी पुरुष आपको प्राप्त होते हैं। आप गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। वेद, पुराण, शिव, विष्णु और ब्रह्मा आदि तथा शुक्र आदि भी गणपतिकी स्तुतिमें कुण्ठित हो जाते हैं, फिर हमलोग उनका क्या स्तुति कर सकते हैं? हम गजाननका केवल भक्तिभावसे भजन करते हैं।

मुद्गल उवाच

एवं स्तुत्वा गणेशानं नेमुः सर्वे पुनः पुनः।
तानुत्थाप्य वचो रम्यं गजानन उवाच ह॥

मुद्‌गल कहते हैं—इस प्रकार गणेशकी स्तुति करके समस्त देवर्षियोंने उन्हें बारम्बार नमस्कार किया। तब गजाननने उन सबको उठाकर उनसे यह मधुर वचन कहा—

गजानन उवाच

वरं ब्रूत महाभागा देवाः सर्षिगणाः परम्। स्तोत्रेण प्रीतिसंयुक्तो दास्यामि वाञ्छितं परम्॥

गजानन बोले—महाभाग देवताओ तथा देवर्षियो! तुम कोई उत्तम वर माँगो। तुम्हारे इस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें उत्तम मनोवांछित वर दूँगा।

गजाननवचः श्रुत्वा हर्षयुक्ताः सुरर्षयः। जगुस्तं भक्तिभावेन साश्रुनेत्राः प्रजापते॥

प्रजापते! गजाननकी यह बात सुनकर देवता और देवर्षि हर्षसे उल्लसित हो, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहाते हुए भक्तिभावसे उनसे इस प्रकार बोले—

देवर्षय ऊचुः

गजानन यदि स्वामिन् प्रसन्नो वरदोऽसि मे। तदा भक्तिं दृढां देहि लोभहीनां त्वदीयकाम्॥
लोभासुरस्य देवेश कृता शान्तिः सुखप्रदा। तया जगदिदं सर्वं वरयुक्तं कृतं त्वया॥
अधुना देवदेवेश कर्मयुक्ता द्विजातयः। भविष्यन्ति धरायां वै वयं स्वस्थानगास्तथा॥
स्वस्वधर्मरताः सर्वे कृतास्त्वया गजानन। अतः परं वरं ढुण्ढे याचमानाः किमप्यहो॥
यदा ते स्मरणं नाथ करिष्यामो वयं प्रभो। तदा संकटहीनान् वै कुरु त्वं नो गजानन॥

देवर्षियोंने कहा—गजानन! स्वामिन्! यदि आप प्रसन्न होकर हमें वर देना चाहते हैं तो अपनी लोभशून्य सुदृढ़ भक्ति दीजिये। देवेश्वर! आपने जो लोभासुरकी शान्ति की है, वह परम सुखदायिनी है। उसीसे आपने सम्पूर्ण जगत्‌को वरयुक्त कर दिया। देवदेवेश्वर! अब द्विजातिगण इस भूतलपर अपने-अपने कर्ममें संलग्न होंगे और हम भी अपने-अपने स्थानोंमें सुखसे रहेंगे। गजानन! आपने सब लोगोंको अपने-अपने धर्ममें तत्पर कर दिया है। ढुण्ढिराज! अब इसके बाद भी हम कोई उत्तम वर माँग रहे हैं। नाथ! प्रभो! जब हम आपका स्मरण करें, गजानन! तब आप हम सबको संकटहीन कर दिया करें।

एवमुक्त्वा प्रणेमुस्तं गजाननमनामयम्। तानुवाचाथ प्रीतात्मा भक्ताधीनः स्वभावतः॥

ऐसा कहकर देवर्षियोंने रोगादि विकारोंसे रहित गजानन गणेशको प्रणाम किया। तब स्वभावतः भक्तोंके अधीन रहनेवाले गणेशने प्रसन्नचित्त होकर उनसे कहा—

गजानन उवाच

यद्यच्च प्रार्थितं देवा मुनयः सर्वमञ्जसा। भविष्यति न संदेहो मत्स्मृत्या सर्वदा हि वः॥
भवत्कृतं मदीयं वै स्तोत्रं सर्वत्र सिद्धिदम्। भविष्यति विशेषेण मम भक्तिप्रदायकम्॥
पुत्रपौत्रप्रदं पूर्णं धनधान्यप्रवर्धनम्। सर्वसम्पत्करं देवाः पठनाच्छ्रवणान्नृणाम्॥
मारणोच्चाटनादीनि नश्यन्ति स्तोत्रपाठतः। परकृत्यं च विप्रेन्द्रा अशुभं नैव बाधते॥
संग्रामे जयदं चैव यात्राकाले फलप्रदम्। शत्रूच्चाटनादिषु च प्रशस्तं तद्भविष्यति॥
कारागृहगतस्यैव बन्धनाशकरं भवेत्। असाध्यं साधयेत् सर्वमनेनैव सुरर्षयः॥
एकविंशतिवारं च एकविंशदिनावधिम्। प्रयोगं यः करोत्येव स सर्वसिद्धिभाग् भवेत्॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां ब्रह्मभूतस्य दायकम्। भविष्यति न संदेहः स्तोत्रं मद्भक्तिवर्धनम्॥
एवमुक्त्वा गणाधीशस्तत्रैवान्तरधीयत॥

॥ इति श्रीमुद्गलपुराणे देवर्षिकृतं गजाननस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

गजानन बोले—देवताओ तथा ऋषियो! आपलोगोंने जो-जो प्रार्थना की है, मेरे स्मरणसे आपकी वे सारी प्रार्थनाएँ सर्वदा एवं अनायास पूर्ण हो जायँगी, इसमें संदेह नहीं है। आपलोगोंद्वारा किया गया मेरा यह स्तोत्र सर्वत्र सिद्धि देनेवाला होगा, विशेषतः यह मेरी भक्ति प्रदान करेगा। देवताओ! यह स्तोत्र पढ़ने और सुननेसे मनुष्योंको पुत्र-पौत्र प्रदान करनेवाला, पूर्ण धन-धान्यकी वृद्धि करनेवाला तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेवाला होगा। इस स्तोत्रके पाठसे शत्रुओंद्वारा किये गये मारण और उच्चाटन आदिके प्रयोग नष्ट हो जायँगे। विप्रेन्द्र! दूसरोंका किया हुआ आभिचारिक प्रयोग और अशुभ कर्म उसमें कभी बाधा नहीं दे सकेगा। यह स्तोत्र संग्राममें विजय और यात्राकालमें उत्तम फल देनेवाला होगा। शत्रुके उच्चाटन आदिके लिये किया गया इसका प्रयोग श्रेष्ठ सिद्ध होगा। जो कारागारमें पड़ा हुआ है, उसके द्वारा पढ़ा गया यह स्तोत्र उसके बन्धनका नाश करनेवाला होगा। देवर्षियो! इस स्तोत्रसे ही सारा असाध्य साधन करना चाहिये। जो इक्कीस दिनोंतक प्रतिदिन इक्कीस बार इसका प्रयोग करता है, वह सम्पूर्ण सिद्धियोंका भागी होगा। मेरी भक्तिको बढ़ानेवाला यह स्तोत्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा ब्रह्मभाव प्रदान करनेवाला होगा; इसमें संदेह नहीं है।

ऐसा कहकर गणेशजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

॥ इस प्रकार श्रीमुद्गलपुराणमें देवर्षिकृत 'गजाननस्तोत्र' पूरा हुआ॥

श्रीगणेश-भक्त केवट भ्रुशुण्डी

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

(गीता ९। ३०-३१)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा निरन्तर भजन करता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है (अर्थात् उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि परमात्माके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है)। इसलिये वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त होता है।'

भगवान् श्रीरामकी भी यही घोषणा है—

'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥'

(मानस ५। ४३। १)

* * *

प्राचीनकालकी बात है, दण्डकारण्य-प्रदेशके नन्दुर नामक प्रसिद्ध नगरमें नामा नामक एक केवट रहता था। नामा अशिक्षित तो था ही, पूर्वकर्मके प्रभाव एवं संग-दोषसे वह अत्यन्त कुटिल और क्रूर भी हो गया था। करुणा तो उसे छू भी न सकी थी। चौरकर्ममें वह बाल्यकालसे ही अभ्यस्त हो गया था। उसकी आयुके साथ ही उसके दुर्गुणोंमें भी वृद्धि होती गयी। यौवनमें प्रवेश करनेतक तो वह घोर तस्कर, मद्य-मांससेवी तथा परदारा और परधनका हरण करनेवाला अत्यन्त निर्मम नरपशु हो गया था। उसकी दुष्प्रवृत्तियोंकी चरितार्थतामें किंचित् भी व्यवधान उपस्थित करनेवालेका जीवन अरक्षित हो जाता था। नामा सर्वथा मिथ्या शपथ लेकर दूसरोंका विश्वास-भाजन बनना चाहता; किंतु मनुष्यका वध कर देना उसके लिये एक खेल था। क्षुद्र स्वार्थपूर्तिके लिये भी वह निरीह व्यक्तियोंकी हत्या कर बैठता था।

अधम नामाकी क्रूरतासे प्रायः सभी लोग भीत और त्रस्त रहते थे। अतः विवश होकर नन्दुर-नगरके नागरिकोंने उसे निर्वासित कर दिया। दुष्ट नामाको अपनी सम्पत्तिके साथ अरण्यमें आश्रय ग्रहण करनेके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रहा। उसने नगरसे दूर उपत्यकाके सघन वनमें ही आवास बनाना अपने लिये सर्वथा निरापद और उपयोगी समझा।

वहाँ सपत्नीक रहता हुआ नामा पूर्ण स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने लगा। सर्वथा निरंकुश क्रूरतम केवट जिसे जहाँ पाता, वहीं लूट लेता। इस प्रकार धनप्राप्तिके लिये उसने अनेक हत्याएँ कीं। वह धनुष-बाण, ढाल-तलवार, पाश तथा अनेक आयुध धारणकर यात्रियोंके लिये दुर्ग्रह बन गया था। उसके पास वस्त्राभूषण तथा विविध सामग्रियोंका ढेर लग गया। अर्थका उसे अभाव नहीं था, किंतु उसका लोभ उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। वह निर्ममतापूर्वक मनुष्य-वध करता ही जाता था। क्रीड़ा करते हुए मूक पशुओंको मार डालनेमें उसे अद्भुत आनन्दकी अनुभूति होती थी।

एक दिन वह वन्य पशुओंको मारता और उन्हें छटपटाकर प्राण-त्याग करते देखकर प्रसन्न होता हुआ एक योजन दूर निकल गया। सहसा उसका पैर एक गड्ढेमें पड़ा। उसे मोच आ गयी। नामा कराह उठा। लँगड़ाता हुआ वह गणेश-तीर्थके समीप पहुँचा। श्रम-निवारणार्थ उसने उक्त गणेशकुण्डमें स्नानकर उसका जलपान किया। कुछ देर बाद वह अपने घरके लिये लौटा। मार्गमें उसने गणपति-स्मरण करते हुए अनन्य गणेशोपासक महामुनि मुद्‌गलको देखा तो पैरकी पीड़ा भूलकर उन्हें मारने दौड़ा; किंतु उसका हाथ जैसे अवसन्न हो गया और उसी समय उसके शस्त्र धरतीपर गिर पड़े। इतना ही नहीं, गजमुखके परम प्रिय भक्त मुद्‌गलके दर्शनसे उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ शान्त और कुटिल बुद्धि परिवर्तित हो गयी। मन-बुद्धिमें इस अकल्पित परिवर्तनसे नामा अत्यन्त विस्मित हुआ।

उसी समय मुसकराते हुए महर्षि मुद्‌गलने उससे पूछा—'अरे! तुम्हारे शस्त्र पृथ्वीपर कैसे गिर पड़े?'

परम वीतराग गजवक्त्रके अनुपम भक्त मुद्‌गलके दर्शनमात्रसे ज्ञान-वैराग्यप्राप्त केवट नामाने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'पूज्य महात्मन्! मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ। मैंने इस गणेशकुण्डमें स्नान किया और फिर आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त होते ही मेरी कुटिल वृत्तियाँ सर्वथा शान्त हो गयीं। धन-वैभव एवं विषयोंसे सर्वथा उपरति हो गयी। ज्ञान प्राप्त हो जानेसे मैं अद्भुत शान्तिका अनुभव कर रहा हूँ।'

शुद्ध अन्तःकरणसे पश्चात्ताप करते हुए केवट नामाने अत्यन्त श्रद्धापूरित स्वरमें हाथ जोड़कर आगे कहा—'करुणामूर्ति महामुने! मैं अन्यतम दुष्ट और पापात्मा हूँ। मेरे पापोंकी कोई गणना और सीमा नहीं है। जन्मसे इस क्षणतक मैंने अनीति, अनाचार, व्यभिचार और हिंसा ही की है; किंतु मैं निश्चय ही भाग्यवान् भी हूँ। जैसे धातुके अन्वेषीको सहसा रत्नोंका अनन्त भंडार प्राप्त हो जाय, उसी प्रकार मुझ धन-लोभी दुरात्माको ज्ञान-वैराग्य-सम्पन्न अनुपम तपस्वी आप-जैसे महापुरुषका दर्शन प्राप्त हो गया। आपके ही प्रभावसे मेरे शस्त्र पृथ्वीपर गिर पड़े और अब ये शस्त्र इस जीवनमें पुनः कभी मुझे स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे।

'दयामय! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ। साधु पुरुष स्वाभाविक ही दुष्टोंपर अनुग्रह करते हैं। आप मुझ पापपरायणपर कृपा करें। इस महामोहमय जगत्से मेरा त्राण करें। मेरा उद्धार कर दें प्रभो!'

नामा केवटके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। वह महामुनिके चरणोंमें साष्टांग लेट गया। वह कहता ही जा रहा था—'प्रभो! मेरा उद्धार कर दें।'

शरणागतरक्षक महामुनि मुद्गलने सदय होकर कहा—'शास्त्रोंके अनुसार तेरा दानादि कर्मोंमें अधिकार नहीं है। तू देवदेव गजाननको प्रसन्न करनेके लिये उनके सर्वसिद्धिप्रदायक मंगलमय श्रेष्ठ नाम-मन्त्रका जप कर।'

केवट नामाने महामुनिके चरणोंपर सिर रख दिया। महामुनिने स्नेहपूर्वक उसके मस्तकपर हाथ फेरते हुए सर्वसिद्धिदाता गजमुखका महिमामय नाम-मन्त्र प्रदान किया—'**गणेशाय नमः।**'

तदनन्तर महामुनिने वहाँ एक लकड़ी गाड़कर केवट नामासे कहा—'तुम यहीं एक आसनपर सर्वथा निराहार रहकर इस नाम-मन्त्रका एकाग्र मनसे जप करो। प्रातः-सायं इस यष्टि-मूलमें जल दे दिया करना। इस प्रकार इस लकड़ीके अंकुरित होने और मेरे यहाँ पुनः लौटनेतक तुम श्रद्धा और विश्वासपूर्वक जप करते रहना।'

परम गाणपत्य मुद्गल चले गये।

निश्चय ही केवट नामाका भाग्य-सूर्य उदित हुआ था। उसने दृढ़ निश्चयके साथ स्त्री-पुत्रकी ममता एवं संसारकी समस्त इच्छाओं और वासनाओंका तत्क्षण त्याग कर दिया। वह अपने गुरुदेवके आदेशानुसार वहीं रोपी हुई यष्टिके सम्मुख इन्द्रियोंको वशमें कर एक आसनपर बैठा और प्रीतिपूर्वक जप करने लगा। आहारके लिये केवल वायु थी। वह दोनों समय यष्टि-मूलको जलसे सींचा करता।

आश्चर्यजनक इन्द्रियनियन्त्रण! अद्भुत निष्ठा!! और अनुपम श्रद्धा-भक्ति!!! तपस्वी कैवर्तका नाम-मन्त्र-जप चलता रहा। सहस्र वर्ष बीते। यष्टि अंकुरित हुई। धीरे-धीरे वह हरित पत्तों और लताओंसे आच्छादित हो गयी। नामाका चर्मावृत अस्थिमात्र शरीर वल्मीकाक्रान्त हो गया।

दयामय महर्षि मुद्गल भी आ पहुँचे। कैवर्तका कठोर तप देखकर वे संतुष्ट हुए। उन्होंने हाथमें जल लिया और उसे अभिमन्त्रित कर कैवर्तमुनिके ऊपर छिड़क दिया। बस, कठोर तपस्वीकी कृशकाया दिव्य एवं दीप्तिमान् हो गयी। उसने गणपतिका सारूप्य प्राप्त कर लिया था। कैवर्त गजमुखके ध्यानके साथ नेत्र बंद किये जप करता जा रहा था। महामुनिके सचेत करनेपर उसने नेत्र खोलकर देखा। उक्त महातपस्वीके नेत्रकी ज्वालासे त्रैलोक्य दग्ध होना ही चाहता था कि महर्षि मुद्गलने उसका निवारण किया।

गजमुख-तुल्य अपने गुरुका दर्शन कर कृतार्थ केवट उनके चरणोंमें लोट गया। उसने श्रद्धाश्रुओंसे गुरु-पद-पद्मोंका प्रक्षालन किया। महर्षि मुद्गलने पुत्रकी भाँति उसे अपने वक्षसे लगा लिया। नामाकी भृकुटिके मध्य एक सूँड निकल आयी थी। इसलिये महामुनिने प्रेमपूर्वक अपने पुत्रका नामकरण किया—'भ्रुशुण्डी।'

फिर महर्षिने भ्रुशुण्डीको एकाक्षर-मन्त्रका उपदेश कर उसे वर-प्रदान करते हुए कहा—'तुम श्रेष्ठ ऋषि हो। इन्द्रादि देव, सिद्ध तथा गन्धर्वोंके भी पूज्य हो। जिस प्रकार परम प्रभु गजमुखके ध्यान और दर्शनसे पापोंका नाश हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी हो। तुम्हारा भ्रुशुण्डी नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो। तुम्हारा दर्शन करनेवाला कृतार्थ होगा और मेरे वचनसे तुम्हारी आयु लक्ष कल्पकी होगी।'

इस प्रकार परम वीतराग महामुनिने भ्रुशुण्डीको अनेक दुर्लभ वर दिये। उसी समय वहाँ इन्द्रादि देवगण और देवर्षि पहुँचे। उन्होंने भ्रुशुण्डीको नमस्कारकर कहा—'भ्रुशुण्डे! आप गणनायक हैं। आपके दर्शनसे हमारे जन्म, माता-पिता, विद्या, तप और यश सभी सार्थक हुए।'

फिर उन समस्त देवताओंने भुशुण्डीकी पूजा की और उनके चरणोंमें प्रणाम कर वे प्रस्थित हुए।

तदनन्तर देवदेव गजवक्त्रके अनन्य भक्त भुशुण्डीने वहाँ मंगलमूर्ति गणेशजीकी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति स्थापित की और वे उनकी षोडशोपचारसे पूजा करते हुए उनके एकाक्षर-मन्त्रका जप करने लगे। उनकी अलौकिक गणेश-भक्ति एवं मन्त्र-जपके प्रभावसे उनके आश्रमके समीप रहनेवाले हिंसक पशुओंने अपनी सहज हिंसा त्याग दी। वहाँ सिंह और मृग तथा नकुल और सर्पादि समस्त जीव वैरभाव त्यागकर एक साथ विचरण करने लगे; सर्वत्र सात्त्विकता एवं शान्तिका साम्राज्य व्याप्त हो गया।

इस प्रकार सौ वर्ष बीते। देवदेव गजानन प्रसन्न होकर भुशुण्डीके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने उनसे कहा—'तुम तो मेरे ही स्वरूप हो गये। अब तप क्यों करते हो? तुम सर्वथा कृतकृत्य हो। आयु पूर्ण होनेपर तुम मेरा सायुज्य प्राप्त कर लोगे।'

भुशुण्डीकी भक्तिसे प्रसन्न परम प्रभु गजाननने आगे कहा—'यह स्थल सिद्धि प्रदान करनेवाला नामल-क्षेत्र (अमलाश्रम-क्षेत्र)[१]-के नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ आकर मेरा दर्शन करनेवालोंकी कामनाएँ पूरी हुआ करेंगी।'

भुशुण्डीने प्रभुके चरणोंपर मस्तक रख दिया और मुसकराते हुए करुणामूर्ति सुमुख अन्तर्धान हो गये।[२]

(गणेशपुराणके आधारपर)

—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे

~~~0~~~

श्रीगणपतिका जयगान

जय-जय जगवन्दन जय गणपति। गिरिजाके नन्दन जय गणपति॥
कैलास-बिहारी जय गणपति। जनके उद्धारी जय गणपति॥
सुर-नर-मुनि-नायक जय गणपति। सबके सुखदायक जय गणपति॥
भव-भीति विभञ्जन जय गणपति। नित-जन-मनरञ्जन जय गणपति॥
दानव-कुल-घालक जय गणपति। सुर-मुनि-प्रतिपालक जय गणपति॥
मायाके चालक जय गणपति। पशुपतिके बालक जय गणपति॥
जग-सृष्टि-रचैया जय गणपति। षण्मुखके भैया जय गणपति॥
देवान्तकदारण जय गणपति। कमलासुरमारी जय गणपति॥
दुख-संकटहारी जय गणपति। सेवक-सुखकारण जय गणपति॥
अघ-ओघ-विदाहन जय गणपति। कृत-मूषक-वाहन जय गणपति॥
बालेन्दु-विभासित जय गणपति। सिन्दूर-प्रकाशित जय गणपति॥
धृतशुण्ड गजानन जय गणपति। मोदित-पञ्चानन जय गणपति॥
सौभाग्य-विधायक जय गणपति। मुद-मङ्गल-दायक जय गणपति॥
मोदक-मधुराशन जय गणपति। बहुविघ्न-विनाशक जय गणपति॥
जम्बूफल-भक्षक जय गणपति। शरणागतरक्षक जय गणपति॥
धृत-अङ्कुश-पाशक जय गणपति। खल-दैत्य-विनाशक जय गणपति॥
गजवदन विनायक जय गणपति। सुन्दर सब लायक जय गणपति॥
सुर-नर-आनन्दन जय गणपति। याचक-हरिचन्दन जय गणपति॥
विद्याके दाता जय गणपति। सद्बुद्धि-विधाता जय गणपति॥
संकट-संहारी जय गणपति। नित-मङ्गलकारी जय गणपति॥

'राम'

~~~0~~~

१. श्रीगणेशके इक्कीस महाक्षेत्रोंमें इस क्षेत्रकी भी गणना की जाती है।

२. श्रीगणेशभक्तोंके और चरित्र मार्च, १९७४ के अंकमें देखने चाहिये।

श्रीगणेशकी आरतियाँ

श्रीगणेशजीकी अनेक आरतियाँ प्रचलित हैं और सभी बड़ी ही भावपूर्ण हैं। यहाँ केवल तीन आरतियाँ, जो तीन प्रसिद्ध श्रीगणेश-भक्तोंद्वारा रचित हैं, दी जा रही हैं।

कविवर मोरोपंतकृत आरती

(संस्कृतमें)

जय देव जय देव गजमुख सुखहेतो।
नेतर्विघ्नगणानां जाड्यार्णवसेतो॥ ध्रु०॥

येन भवदुपायनतां नीता नवदूर्वा।
विद्यासंपत्कीर्तिस्तेनाप्तापूर्वा।

मुक्तिलभ्या सुखतस्तव नित्यापूर्वा।
धार्या जगतः स्थितये भूमौ दिवि धूर्वा॥ जय देव०॥ १॥

प्रथमनमस्कृतिभाक्त्वं तव लोकप्रथितम्।
दृष्टं सद्व्यवहारे गुरुभिरपि च कथितम्।
यः कश्चन विमुखस्त्वयि निजसिद्धेः पथि तम्।
विविधा विघ्ना भगवन् कुर्वन्ति व्यथितम्॥ जय देव०॥ २॥

बालं सकृदनुसरति त्वद्दृष्टिश्चेत्ता।
मनुराशीनिव दासीर्विद्याः स हि वेत्ता।
पविपाणिरिव परं परपक्षाणां भेत्ता।
भवति मयूरोऽहेरिव मोहस्य च्छेत्ता॥ जय देव०॥ ३॥

भावार्थ—सुखकी प्राप्तिके हेतुभूत गजानन देव! आपकी जय हो, जय हो। विघ्नगणोंके नायक तथा जडता (अज्ञान)रूपी सागरसे पार होनेके लिये सेतुरूप विनायकदेव! आपकी जय हो। जिस पुण्यात्माने आपको नूतन दूर्वादलका उपहार अर्पित किया, उसने अपूर्व विद्या, सम्पत्ति एवं कीर्ति प्राप्त कर ली। आपकी कृपासे नित्य, अपूर्व मुक्ति अनायास प्राप्त की जा सकती है। भूतलपर अथवा स्वर्गलोकमें सर्वत्र सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षाके लिये दायित्वका भार आप ही वहन करते हैं। देव! आपकी जय हो! भगवन्! आपके सबसे प्रथम नमस्कार-भाजन (वन्दनीय) होनेकी बात लोकमें प्रसिद्ध है। यह परम्परागत सद्व्यवहारमें भी देखी गयी है तथा गुरुजनोंद्वारा भी बतायी गयी है। जो कोई भी आपसे विमुख हुआ, उसे उसकी साधनाके मार्गपर नाना प्रकारके विघ्न आकर पीड़ा (बाधा) देते हैं। देव! आपकी जय हो। यदि आपकी कृपा-दृष्टि एक बार भी बालकपर पड़ जाती है तो वह मन्त्रराशि-तुल्य उन विद्याओंको इस प्रकार प्राप्त कर लेता है, मानो वे उसकी दासियाँ हों। जैसे वज्रपाणि इन्द्रने पर्वतोंकी पाँखें काट डाली थीं, उसी प्रकार वह परपक्ष (वादीके मत)-का खण्डन करनेमें समर्थ होता है; तथा जैसे मयूर सर्पको विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार वह विद्वान् बालक मोहका छेदन करनेवाला होता है। देव! आपकी जय हो।

~~○~~

प्रसिद्ध गणेशभक्त गोसावीनन्दनकृत आरती

शेंदुर लाल चढ़ायो अच्छा गजमुख को।
दोंदिल लाल बिराजे सुत गौरी-हर को॥
हाथ लिये गुड-लड्डू साँई सुरवर को।
महिमा कहे न जाय लागत हूँ पद को॥ १॥
जय जय जी गणराज विद्या-सुखदाता।
धन्य तुमरा दर्शन मेरा मन रमता॥ ध्रु०॥
अष्टौ सिद्धी दासी संकट को बैरी।
विघ्न विनाशक मंगल मूरत अधिकारी॥
कोटी सूरज प्रकाश ऐसी छबि तेरी।
गण्डस्थल मदमस्तक झूले शशि-बहारी॥ जय० २॥
भाव-भगति से कोई शरणागत आवे।
संतत सम्पत सबही भरपूर पावे॥
ऐसी तुम महाराज मोको अति भावे।
'गोसावीनन्दन' निशि-दिन गुण गावे॥ जय० ३॥

श्रीसमर्थ रामदासकृत आरती (मराठी भाषामें)

सुखकर्ता दुःखहर्ता वार्ता विघ्नाची।
नुरवी पुरवी प्रेम कृपा जयाची॥
सर्वांगीं सुन्दर उटि शेंदुराची।
कण्ठीं झळके माळ मुक्ताफळांची॥
जय देव जय देव जय मङ्गलमूर्ती।
दर्शनमात्रें मन कामना पुरती॥ ध्रु०॥
रत्नखचित फरा तुज गौरीकुमरा।
चन्दनाची उटी कुङ्कुमकेशरा॥
हिरेजडित मुकुट शोभतो बरा।
रुणझुणती नूपुरें चरणीं घागरिया॥ जय०२॥
लम्बोदर पीताम्बर फणिवरबन्धना।
सरल सोंड वक्रतुण्ड त्रिनयना॥
दास रामाचा वाट पाहे सदना।
संकटीं पावावें निर्वाणीं रक्षावें,
सुरवरबन्दना॥ जय० ३॥

~~○~~

क्षमा-प्रार्थना एवं नम्र निवेदन

यं निर्जरासुरनरा अखिलार्थसिद्ध्यै
भूर्यन्तरायहतयेऽनुदिनं नमन्ति।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं
भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि॥

'देवता, असुर और मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि तथा बहुल अन्तरायकी निवृत्तिके लिये प्रतिदिन जिन्हें मस्तक झुकाते हैं, भक्तोंकी कामना-पूर्तिके लिये कल्पवृक्षके समान उदार उन निखिलार्थदाता श्रीगणेशको मैं भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ।'

भगवान् श्रीगणेशकी मंगलमयी अहैतुकी कृपासे उन्हींकी अर्चनाके रूपमें प्रकाशित **'श्रीगणेश-अङ्क'** इन पृष्ठोंमें सम्पन्न हो रहा है। भगवान् अनन्त रूपोंमें विलास कर रहे हैं; जो कुछ भी हमारे देखने-सुनने, जानने और चिन्तन करनेमें आता है, वह सब भगवत्स्वरूप ही है। 'भगवान् ही सब कुछ बने हुए हैं; उनके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं—**'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन।'** अतः किसी भी रूपमें हम उनका भजन कर सकते हैं। निराकार-साकार—सभी रूप उनके हैं। इसी तथ्यको परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके शब्दोंमें हम इस प्रकार समझ सकते हैं—

"सत्य-तत्त्व या परमात्मा एक हैं। वे निर्गुण होते हुए ही सगुण, निराकार होते हुए ही साकार, सगुण होते हुए ही निर्गुण तथा साकार होते हुए ही निराकार हैं। उनके सम्बन्धमें कुछ भी कहना नहीं बनता और जो कुछ कहा जाता है, सब उन्हींके सम्बन्धमें कहा जाता है। अवश्य ही जो कुछ कहा जाता है, वह अपूर्ण ही होता है; पूर्णका वर्णन किसी भी तरह हो नहीं सकता। परंतु परमात्मा किसी भी अवस्थामें अपूर्ण नहीं हैं; उनका आंशिक वर्णन भी पूर्णका ही वर्णन होता है; क्योंकि उनका अंश भी पूर्ण ही है। इन्हीं परमात्माको ऋषियोंने, संतोंने, भक्तोंने नाना भावोंसे पूजा है और परमात्माने उन सभीकी विभिन्न भावोंसे की हुई पूजाको स्वीकार किया है।

"वे परात्पर सच्चिदानन्दघन एक परमेश्वर ही परम तत्त्व हैं। वे गुणातीत हैं, परंतु गुणमय हैं; विश्वातीत हैं, परंतु विश्वमय हैं। सबमें वे ही व्याप्त हैं और जिनमें वे व्याप्त हैं, वे सभी पदार्थ—समस्त चराचर भूत उन्हींमें स्थित हैं। वे विज्ञानानन्दघन परात्पर प्रभु ही ब्रह्मा, महादेव, महाविष्णु, महाशक्ति, अनन्तानन्दमय साकेताधिपति श्रीराम, सौन्दर्यसुधासागर गोलोकाधीश्वर श्रीकृष्ण (भगवान् सूर्य और शिव-पार्वतीके पुत्र गजमुख गणेश) हैं। ये सभी विभिन्न स्वरूप सत्य और नित्य हैं; परंतु अनेक दीखते हुए भी वस्तुतः ये हैं सदा-सर्वदा एक ही।

"साधक या भक्त अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे या इनसे अतिरिक्त अन्य किसी भी एक लीलास्वरूपकी उपासना आवश्यक समझकर किया करते हैं और उनका ऐसा करना है भी बहुत ही ठीक। भगवान्के अनेक रूपोंकी उपासना एक साथ नहीं की जा सकती; चंचल मनको शान्त और एकाग्र करनेके लिये एक ही रूपकी उपासना आवश्यक होती है। अनेक रूपोंकी उपासनासे तो चित्तकी चंचलता और भी बढ़ जाती है। इसलिये विचारशील दिव्यदृष्टिप्राप्त सद्गुरु साधककी रुचि, उसकी स्थिति, पात्रता, अधिकार और परिणामको देखकर उसे किसी एक ही रूपकी उपासना बताकर ऐसा मन्त्र भी देते हैं, जिसके द्वारा वह अपने उपास्यदेवका भजन कर सके। परंतु साथ ही यह भी बतला देते हैं कि तुम्हें जिन भगवान्की उपासना बतलायी गयी है, एकमात्र भगवान् ये ही हैं; ये ही भिन्न-भिन्न देश-काल-पात्रमें पूजित होते हैं। कोई भी स्वरूप तत्त्वतः इनसे भिन्न नहीं है; जब भिन्न ही नहीं, तब छोटे-बड़ेका तो प्रश्न ही नहीं रह जाता। तुम अपने उपास्य रूपको पूजते रहो, परंतु दूसरेके उपास्यदेवसे द्वेष न करो; उसे नीचा न समझो। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम अपने ही उपास्यदेवसे द्वेष करोगे और उसे नीचा समझोगे; क्योंकि तुम्हारे उपास्यदेव भगवान् ही

तो दूसरे लोगोंके द्वारा दूसरे रूपोंमें पूजित होते हैं। यदि तुम यह मान बैठोगे कि दूसरोंके उपास्यदेव भगवान् कोई दूसरे हैं तो ऐसा करके तुम अपने ही भगवान्‌की एक सीमा बाँधकर उसे छोटा और अनेकोंमेंसे एक बना दोगे। फिर वह परात्पर नहीं रहेगा; लोकपालोंकी भाँति एक देवताविशेष रह जायगा। तब ऐसे 'अल्प' और 'सीमाबद्ध' भगवान्‌से तुमको असीम भूमाकी प्राप्ति नहीं होगी। तुम अपने ही दोषसे स्वयं परात्पर परमेश्वरके दर्शनसे वंचित रह जाओगे। इसलिये अपने ही इष्टमें अनन्यभाव रखो, परंतु दूसरोंके इष्टोंको अपने ही इष्टका रूपान्तर समझकर उन सभीका सम्मान करो! दूसरे सभी स्वरूपोंको अपने इष्टके विभिन्न स्वरूप मानना ही 'अनन्यता' है। इसके विपरीत करना तो 'अन्य'को आश्रय देना है, जो अनन्य भक्तके लिये व्यभिचार है।" अस्तु।

शास्त्रोंमें भगवान्‌के सच्चिदानन्दमय पाँच मुख्य विग्रह माने गये हैं। ये सभी विग्रह अनादि, अनन्त एवं परात्पर हैं; सभीके भिन्न-भिन्न लोक हैं, जो चिन्मय एवं शाश्वत हैं। सबके अलग-अलग स्वरूप हैं, अलग-अलग शक्तियाँ हैं, आयुध हैं, वाहन हैं, पार्षद हैं, सेवक हैं, सेवाके विविध प्रकार हैं तथा उपासना एवं अर्चाकी विविध पद्धतियाँ हैं। ये सभी स्वरूप पूर्ण हैं—लीलाक्रमसे ही उनमें परस्पर मुख्यता एवं गौणता दृष्टिगोचर होती है। ये पाँच स्वरूप हैं—शिव, शक्ति, विष्णु, गणेश और सूर्य। इन पाँच देवोंकी एक साथ भी उपासना होती है और पृथक्-पृथक् भी। इन पाँच भगवद्विग्रहोंमेंसे भगवान् शिव, शक्ति, एवं भगवान् विष्णुकी तो 'कल्याण' के द्वारा अर्चना हो चुकी है। इन तीनोंके तत्त्व, स्वरूप, उपासना, लोक, आयुध, वाहन, पार्षद आदिकी विशद चर्चा स्वतन्त्र विशेषाङ्कों, जैसे—**'शक्ति-अङ्क'**, **'शिवाङ्क'**, **'श्रीविष्णु-अङ्क'**-के रूपमें हो चुकी है। श्रीराम और श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भी, जो भगवान् विष्णुके ही अवतार अथवा अवतारी माने गये हैं—एकसे अधिक विशेषाङ्क निकल चुके हैं। भगवान् गणेश एवं भगवान् सूर्यकी अर्चना अभी नहीं हो पायी थी। अतः इस बार भगवान् गणपतिकी अर्चनाके विचारसे यह प्रयास हुआ है।

भगवान् गणेशकी इस अर्चनामें हम तो केवल निमित्त बने हैं; वास्तवमें इस अर्चनाका सम्पूर्ण श्रेय है—हमपर एवं 'कल्याण'पर सदासे अनुग्रह तथा प्रीति रखनेवाले परम पूजनीय आचार्यों, संतों, महात्माओं, भक्तों, विद्वानों, विचारकों, लेखकों, साधकों, स्वजनों आदिको, जिन्होंने अपनी सहज उदारतासे अपनी प्रौढ़ एवं अनुभूतिपूर्ण रचनाएँ भेजकर, अमूल्य सुझाव देकर हमें अंकको इस रूपमें प्रस्तुत करनेका अवसर दिया है। हम अपने उन सभी पूजनीय गुरुजनों एवं बन्धुओंके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं और प्रार्थना करते हैं कि भविष्यमें भी उनका कृपापूर्ण आशीर्वाद और सहयोग हमें इसी रूपमें उपलब्ध होता रहे।

भगवान् गणेशके सम्बन्धमें अनेक भ्रान्तियाँ समाजमें फैली हुई हैं, जैसे—(१) गणेश अनार्य देवता हैं; (२) गणेशका आदि स्थान दक्षिण भारत है; (३) गणेशकी उपासना आदि अति निम्न स्तरकी हैं; (४) गणपतिसम्प्रदाय दसवीं शताब्दीमें प्रादुर्भूत हुआ है, आदि। इसमें दोष किसी विद्वान्‌का नहीं है; आधुनिक पाश्चात्त्य-शिक्षाके द्वारा हमारी संस्कृति, सभ्यता एवं शास्त्रोंपर हमारे विश्वासको शिथिल करनेका जो कुप्रयास हुआ है, उसीका परिणाम है कि हम इस प्रकारकी अनर्गल बातें सोचने-कहने लगे हैं। इस अंकसे इन भ्रान्तियोंका बहुत-कुछ निरसन हो जायगा—ऐसा हमारा विश्वास है। 'कल्याण' तर्क-वितर्ककी शैलीको आदर नहीं देता; यह शान्तभावसे अपनी मान्यताके प्रतिपादनको ही महत्त्व देता आया है। अपनी इस मंगलमयी परम्पराका अनुसरण करके इस अंकमें भगवान् गणेशके परात्पर स्वरूपका विशद विवेचन किया गया है। भगवान् अनन्त हैं; उनके चरित्र एवं गुण भी अनन्त हैं—

'रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो।'

ऐसी स्थितिमें हमारा यह प्रयास अनन्त आकाशकी थाह लेनेके उद्देश्यसे उड़नेवाले क्षुद्र मच्छरकी चेष्टाके सदृश ही है।

भगवान् गणेशके सम्बन्धमें समाज और अधिक जानकारी प्राप्त कर सके, इसके लिये हमने इस अङ्कमें गणेशसम्बन्धी विभिन्न भाषाओंमें उपलब्ध साहित्यकी तालिका देनेका प्रयत्न किया है। आशा है, अध्ययनशील पाठक उसमें उल्लिखित ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेकी चेष्टा करेंगे।

ऋषियोंका उद्घोष है—'**देवो भूत्वा देवं यजेत्**', अर्थात् स्वयं देवस्वरूप होकर—देवत्वको अपनाकर देवताकी अर्चना करें। 'कल्याण' विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र होनेके कारण इसके प्रवर्तक एवं आदि सम्पादक हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ऋषियोंकी इस आज्ञाका आजीवन अक्षरशः पालन करते रहे। वे निरन्तरकी साधनासे भगवान्‌के 'यन्त्र' बन गये थे; देवर्षि नारदके शब्दोंमें—'**तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।**' (नारदभक्तिसूत्र ४)—'भगवान् और उनके भक्तमें कोई अन्तर नहीं रह जाता; भक्त भगवत्स्वरूप ही हो जाता है'—की स्थितिको प्राप्त हो गये थे। इतना होनेपर भी वे अपने व्यावहारिक जीवनमें सदा इस बातके लिये पूर्ण सचेष्ट रहे कि 'कल्याण'में जो-जो बातें लिखी जायँ, वे उनके जीवनमें अवश्य हों। एक बार उन्होंने अपने एक स्वजनसे कहा था—''सम्पादकके रूपमें हम 'कल्याण'में जो-जो बातें लिखते हैं—कम-से-कम वे तो हमारे जीवनमें होनी ही चाहिये। यदि वे हमारे जीवनमें और व्यवहारमें न आयें तो हमें 'कल्याण'में कुछ भी लिखनेका अधिकार नहीं है। कथनी-करनीमें एकरूपता अनिवार्य है; आचरणके बिना उपदेश व्यर्थ है—बकवास है—कुत्तेकी भाँति भूँकना है—

करनी बिन कथनी कथे, अज्ञानी दिन-रात।
कूकर जिमि भूसत फिरे, सुनी-सुनायी बात॥''

—सचमुच श्रीभाईजीका जीवन 'कल्याण'में प्रकाशित उपदेशोंका मूर्तरूप था। इसी हेतु 'कल्याण'का प्रभाव उसके पाठकोंपर बहुत उत्तम एवं ठोस हुआ और उस ('कल्याण')-का नन्हा-सा पौधा सबकी सद्भावना और प्रीतिका रस प्राप्तकर निरन्तर पुष्ट एवं समृद्ध होता गया और आजके विषाक्त युगमें भी बिना किसी विज्ञापन-प्रयत्नके इसकी एक लाख साठ हजार प्रतियाँ प्रतिमास प्रकाशित हो रही हैं तथा इसके पाठक भारतके प्रत्येक कोनेमें तो हैं ही, भारतसे बाहर भी इसकी अच्छी माँग है। अनेकों अहिंदी भाषा-भाषियोंने 'कल्याण' पढ़नेके लिये हिन्दीका ज्ञान प्राप्त किया है! परंतु हमलोग जब अपने जीवनकी ओर देखते हैं तो अपनेको 'कल्याण' की सेवाका सर्वथा अनधिकारी पाते हैं। किंतु मल-मूत्रमें सना हुआ अबोध शिशु माँको ही पुकारता है तथा माँ दौड़कर उसके मलको धोती है। उसे निर्मल-स्वच्छ बनाती है। उसी रूपमें सब प्रकारकी त्रुटियों, अभावों, कमजोरियों और दोषोंसे भरे हुए हमलोगोंने भगवान् गणेशके स्वरूप, नाम, लीला, गुण, प्रभाव, माहात्म्य आदिका स्मरण-चिन्तन किया है और हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि भगवान् गणेश हमारी इस तुच्छ अर्चनासे प्रसन्न ही हुए हैं; अन्यथा इस अर्चनाकी सम्पन्नता सम्भव नहीं थी। अनेक विघ्न उपस्थित हुए, परंतु विघ्नेश्वरने देखते-देखते उनका निराकरण कर दिया।

अङ्कका मुद्रण आरम्भ होते ही मेरे वृक्क एवं हृदयमें विशेष दोष उत्पन्न होनेसे शरीर सर्वथा लाचारीकी स्थितिमें हो गया; किंतु हमारे पुराने सहयोगी, 'महाभारत', 'अग्निपुराण' आदि-आदि शास्त्र-ग्रन्थोंके सुप्रसिद्ध अनुवादक पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, साहित्याचार्यने वाराणसीसे यहाँ पधारकर कार्यको सँभाल लिया। सम्पादकीय विभागके हमारे सभी सदस्य—पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा, श्रीरामलालजी, श्रीमाधवशरण, श्रीदूलीचन्द दुजारी, श्रीराधेश्याम बंका, श्रीहरिकृष्ण दुजारी—जो दीर्घकालतक परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके तत्त्वावधानमें 'कल्याण'का कार्य करते रहे हैं, इन सबका हार्दिक सहयोग तो था ही। इस व्यवस्थाके कारण मेरी सक्रिय उपस्थिति न रहनेपर भी कार्य चलता रहा और वह जिस रूपमें सम्पन्न हुआ है, वह प्रेमी पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत है। इन सभी बन्धुओंकी आत्मीयता एवं प्रीतिको देखते हुए इनके अमूल्य सहयोगके लिये कुछ भी कहना इनको संकोचमें डालना होगा।

कागज एवं आर्ट पेपरकी कमी सामने उपस्थित हुई; पर सिद्धि-सदनकी कृपासे उसकी व्यवस्था भी सरलतासे हो गयी। इसी प्रकार बिजलीका संकट आदि अनेकों परेशानियाँ रहीं और उन्हींके कारण अङ्क लगभग डेढ़ मास विलम्बसे प्रकाशित हो रहा है; परंतु संतोष है कि भगवान् श्रीगणेशकी कृपासे अर्चना सम्पन्न हो गयी। यह अर्चना कितने विधि-विधानपूर्वक, कितनी सरस, कितनी सुवासित, कितनी भावपूर्ण हुई है, इसका निर्णय तो हमारे सहृदय पाठक-पाठिकाएँ ही करेंगे; हमें तो इसमें त्रुटि-ही-त्रुटि अनुभव हो रही है।

इस अङ्कके लिये सामग्री-संचयनका कार्य आरम्भ हुआ परमश्रद्धेय महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराज महाशयके आशीर्वादसे। इतना ही नहीं, शरीरकी अत्यधिक लाचारीकी स्थितिमें भी उन्होंने कृपापूर्वक भगवान् गणेशके सम्बन्धमें अपने विचार प्रेषित कर हमारा उत्साह बढ़ाया। उनकी अहैतुकी कृपा एवं वत्सलताके प्रति हमारा हृदय कृतज्ञतासे भरा है। पूनासे प्रकाशित प्रसिद्ध मराठी 'गणेश-कोश'के सम्पादक एवं गणेशभक्त श्रीअमरेन्द्रजी गाडगील एवं महाराष्ट्रके प्रसिद्ध विद्वान् सम्मान्य पण्डित श्रीदामोदर प्रह्लाद पाठक, शास्त्री, पूर्वोत्तरमीमांसक, व्युत्पत्तिचूड़ामणि, शिक्षा-शास्त्री, काव्यतीर्थ, राष्ट्रभाषाकोविद महोदयके भी हम विशेष रूपसे आभारी हैं। दोनों महानुभाव कृपा करके पूनासे गोरखपुर पधारे और कई दिनोंतक यहाँ रहकर अपने ज्ञानसे हमलोगोंका मार्ग-दर्शन करते रहे। सम्मान्य श्रीपाठक शास्त्रीजीने तो श्रीगणेशसम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर अपने विचार लिपिबद्ध भी किये, जिनमेंसे एक रचना इसी अंकमें प्रकाशित हुई है; शेष सामग्रीका उपयोग विभिन्न लेखोंमें यथावश्यक रूपमें किया गया है।

इसी प्रकार महाराष्ट्र प्रान्तके प्रसिद्ध प्रकाशक 'वोरा एंड कंपनी पब्लिसर्स (प्राइवेट) लिमिटेड'के भी हम कृतज्ञ हैं, जिनके 'श्रीगणेश-कोश'से इस अङ्कके लिये सामग्री जुटानेमें हमें अमूल्य मार्ग-दर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है। हमारे अपने पण्डित श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी एवं पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्रीने भी लेखोंके अनुवाद आदि कार्यमें सदाकी भाँति हमारा पूरा हाथ बटाया है। हम दोनों बन्धुओंके हृदयसे आभारी हैं।

भगवान्की लीला एवं गुणोंका कथन, श्रवण-पठन-मनन आदि भवसागरसे पार होनेके लिये सुदृढ़ नौकारूप है। यही हेतु है कि हमारे शास्त्रोंमें भगवान्के अवतार-स्वरूपोंकी लीला-कथाका प्रमुख रूपसे उल्लेख है। भगवान् विष्णु, भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, भगवान् शिव आदि अवतार-स्वरूपोंकी लीला-कथाओंसे समाज बहुत-कुछ परिचित है; किंतु भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथासे वह विशेष अभिज्ञ नहीं है। अतएव इस अंकमें विभिन्न पुराणों—जैसे, 'ब्रह्मवैवर्तपुराण', 'पद्मपुराण', 'लिङ्गपुराण', 'शिवपुराण', 'गणेशपुराण', 'मुद्गलपुराण' तथा 'महाभारत' आदिके आधारपर भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथा विस्तारसे देनेका प्रयत्न किया गया है। यह कार्य सम्पादकीय विभागके पुराने सम्मानित सदस्य, भगवान्के चरित्र एवं पौराणिक गाथा लिखनेमें पटु तथा हमारे पाठकोंके सुपरिचित पण्डित श्रीशिवनाथजी दुबेने बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति, लगन एवं परिश्रमके साथ पूर्ण किया है। श्रीदुबेजी अपने हैं, अतएव उनके विषयमें कुछ भी कहना अपनी ही प्रशंसा करना होगा।

अन्तमें हम श्रीभाईजीके पुराने सेवक भाई श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालको अन्तर्हृदयसे साधुवाद देते हैं। श्रीभाईजीकी सेवामें छब्बीस वर्ष रहकर उन्होंने जो कुछ सीखा-समझा, उसका सुन्दर उपयोग वे 'कल्याण'में बराबर कर रहे हैं। उनकी संयोजन-कुशलता, सूझ-बूझ, लगन, निष्ठा, अध्यवसाय और सबसे बढ़कर उनके निस्स्वार्थ भावके कारण ही अपनी अत्यधिक रुग्णावस्थामें भी हम 'श्रीगणेश-अङ्क' इस रूपमें सामान्य विलम्बसे प्रस्तुत करनेमें सफल हुए हैं।

इस वर्ष अन्य वर्षोंकी अपेक्षा लेख अधिक आये। विशेषांकके पृष्ठ निश्चित होनेसे सबका उपयोग

सम्भव नहीं हुआ। जो लेख प्रकाशित नहीं हो सके, उनके लेखक महोदयोंने अपनी सहज कृपा एवं प्रीतिवश अपनी अमूल्य रचनाएँ हमें प्रेषित कीं, पर अपनी लाचारीके कारण हम उनका उपयोग नहीं कर सके। स्थान-संकोच आदिके कारण अनेकों गुरुजनोंके महत्त्वपूर्ण लेखोंको भी संक्षिप्त करना पड़ा है। इन सब अवांछनीय अपराधोंके अतिरिक्त हमसे अज्ञान एवं प्रमादवश भी बहुत अपराध हुए होंगे। हम उन सब अपराधोंके लिये हृदयसे क्षमाप्रार्थी हैं।

भगवान् गणेशकी उपासना-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्री, श्रीगणेश-भक्तोंके चरित्र आदि आवश्यक विषय बच गये हैं। अतएव फरवरी एवं मार्चके अंक 'गणेश-अंक' के परिशिष्टांकके रूपमें प्रकाशित हो रहे हैं। पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे दोनों परिशिष्टोंके साथ इस अंकका अध्ययन, मनन एवं परिशीलन करें; इससे उन्हें पूरा परितोष होगा।

पिछले कई मास भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथाओं एवं गुणोंके स्मरण, चिन्तन, पठन एवं लेखनमें बीते—यह हमारा परम सौभाग्य है। भगवान् श्रीगणेशकी कृपासे उनके यशोगानका यह पावनतम एवं मंगलमय कार्य उन्हींकी शक्ति-मतिसे सम्पन्न हुआ है और उन्हींके पावन चरणोंमें यह सभक्ति समर्पित है—**'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'**

बस, भगवान् श्रीगणेशके चरणोंमें विनम्र एवं अनुरोधपूर्ण प्रार्थना है कि वे ऐसी कृपा करें, जिससे जीवनके शेष श्वास भगवत्स्मरणमें ही बीतें।

॥ श्रीगणेशचरणकमलेभ्योऽर्पितम्॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

विनीत—
चिम्मनलाल गोस्वामी
सम्पादक

~~~०~~~

जय जय मतंग-आनन!

गान सरस अलि करत परस मद मोद रंग रचि।
उघटत ताल रसाल करन चल चाल चोप सचि॥
चिंतामनिमय जटित हेमभूषनगन बज्जत।
चलत लोल गति मृदुल अंग नवतुंड बसज्जत॥
लखि प्रनति समय मुख तात को बिहँसि मातु लिय लाय उर।
जय जय मतंग-आनन अमल, जय जय जय तिहुँ-लोक-गुर॥

—महाकवि गुमान मिश्र

~~~०~~~

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यं निर्जरासुरनरा अखिलार्थसिद्धयै भूर्यन्तरायहतयेऽनुदिनं नमन्ति।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि॥

वर्ष ४८ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, फरवरी, १९७४ | संख्या २ पूर्ण संख्या ५६७

वन्दन!

मेश[१] उमेश-दिशामें विराजित,
राजित पावक-कोण महेश हैं।
वायु-दिशा जगदम्बिका दीपित,
निर्ऋति-कोणमें दीन दिनेश हैं॥
मण्डल-मध्य महामहिमान्वित,
मण्डित मोदसे आप गणेश हैं।
वन्दन है, अभिनन्दन है इन्हें,
जो हरते दुख-द्वन्द अशेष हैं॥

'राम'

१. विष्णु।

स्वामिकार्तिकेयद्वारा श्रीगणेशका स्तवन

[भक्तमनोरथसिद्धिप्रद स्तोत्र]

स्कन्द उवाच

नमस्ते योगरूपाय सम्प्रज्ञातशरीरिणे । असम्प्रज्ञातमूर्ध्ने ते तयोर्योगमयाय च॥
वामाङ्गे भ्रान्तिरूपा ते सिद्धिः सर्वप्रदा प्रभो । भ्रान्तिधारकरूपा वै बुद्धिस्ते दक्षिणाङ्गके॥
मायासिद्धिस्तथा देवो मायिको बुद्धिसंज्ञितः । तयोर्योगे गणेशान त्वं स्थितोऽसि नमोऽस्तु ते॥
जगद्रूपो गकारश्च णकारो ब्रह्मवाचकः । तयोर्योगे गणेशाय नाम तुभ्यं नमो नमः॥
चतुर्विधं जगत्सर्वं ब्रह्म तत्र तदात्मकम् । हस्ताश्चत्वार एवं ते चतुर्भुज नमोऽस्तु ते॥
स्वसंवेद्यं च यद्ब्रह्म तत्र खेलकरो भवान् । तेन स्वानन्दवासी त्वं स्वानन्दपतये नमः॥
द्वन्द्वं चरसि भक्तानां तेषां हृदि समास्थितः । चौरवत्तेन तेऽभूद् वै मूषको वाहनं प्रभो॥
जगति ब्रह्मणि स्थित्वा भोगान् भुङ्क्षे स्वयोगतः । जगद्भिर्ब्रह्मभिस्तेन चेष्टितं ज्ञायते न च॥
चौरवद्भोगकर्ता त्वं तेन ते वाहनं परम् । मूषको मूषकारूढो हेरम्बाय नमो नमः॥
किं स्तौमि त्वां गणाधीश योगशान्तिधरं परम् । वेदादयो ययुः शान्तिमतो देवं नमाम्यहम्॥
इति स्तोत्रं समाकर्ण्य गणेशस्तमुवाच ह । वरं वृणु महाभाग दास्यामि दुर्लभं ह्यपि॥
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं योगशान्तिप्रदं भवेत् । मयि भक्तिकरं स्कन्द सर्वसिद्धिप्रदं तथा॥
यं यमिच्छसि तं तं वै दास्यामि स्तोत्रयन्त्रितः । पठते शृण्वते नित्यं कार्तिकेय विशेषतः॥

॥ इति श्रीमुद्गलपुराणे भक्तमनोरथसिद्धिप्रदं नाम गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

स्कन्द बोले—गणेश्वर! सम्प्रज्ञात समाधि आपका शरीर तथा असम्प्रज्ञात समाधि आपका मस्तक है। आप दोनोंके योगमय होनेके कारण योगस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। प्रभो! आपके वामांगमें भ्रान्तिरूपा सिद्धि विराजमान है, जो सब कुछ देनेवाली है तथा आपके दाहिने अंगमें भ्रान्तिधारक रूपवाली बुद्धिदेवी स्थित हैं। भ्रान्ति अथवा माया सिद्धि है और उसे धारण करनेवाले गणेशदेव मायिक हैं। बुद्धि संज्ञा भी उन्हींकी है। गणेश्वर! आप सिद्धि और बुद्धि—दोनोंके योगमें स्थित हैं; आपको बारम्बार नमस्कार है। गकार जगत्स्वरूप है और णकार ब्रह्मका वाचक है। उन दोनोंके योगमें विद्यमान आप गणेश-देवताको बारम्बार नमस्कार है। जरायुज आदि भेदसे चार प्रकारका जो जगत् है, वह सब ब्रह्म है। जगत्में ब्रह्म ही उसके रूपमें भास रहा है। इस प्रकार चतुर्विध जगत् ही आपके चार हाथ हैं। चतुर्भुज! आपको नमस्कार है। स्वसंवेद्य जो ब्रह्म है, उसमें आप खेलते या आनन्द लेते हैं; इसीलिये आप स्वानन्दवासी हैं। स्वानन्दपते! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप भक्तोंके हृदयमें रहकर उनके सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको चोरकी भाँति चरते या चुराते हैं। इसीलिये मूषक (चुरानेवाला) आपका वाहन है। आप जगत्-रूप ब्रह्ममें स्थित रहकर भोगोंको भोगते हैं, तथापि अपने योगमें ही विराजते हैं; इसलिये ब्रह्मरूप जगत् आपकी चेष्टाको नहीं जान पाता। आप चौरकी भाँति भोगकर्ता हैं, इसलिये आपका उत्कृष्ट वाहन मूषक है। आप मूषकपर आरूढ़ हैं। हेरम्ब! आपको बारम्बार नमस्कार है। गणाधीश! आप योगशान्तिधारी उत्कृष्ट देवता हैं। मैं आपकी क्या स्तुति कर सकता हूँ। आपकी स्तुति करनेमें तो वेद आदि भी शान्ति (मौन) धारण कर लेते हैं।

यह स्तोत्र सुनकर गणेशजीने स्कन्दसे कहा—'महाभाग! वर माँगो। वह दुर्लभ होनेपर भी मैं तुम्हें दूँगा। स्कन्द! तुम्हारे द्वारा किया गया यह स्तोत्र योगशान्तिदाता, मुझमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होगा। कार्तिकेय! तुम जो-जो चाहोगे, वह-वह वस्तु तुम्हारे स्तोत्रमें बँधकर मैं निश्चय ही देता रहूँगा। विशेषतः उनको, जो प्रतिदिन इसका पाठ और श्रवण करते होंगे, मैं मनोवांछित वस्तु दूँगा।

॥ इस प्रकार श्रीमुद्गलपुराणमें 'भक्तमनोरथसिद्धिप्रद गणेशस्तोत्र' पूरा हुआ ॥

सकाम दैवी अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें नम्र निवेदन

(नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्राकृतिक जगत् अनित्य, अपूर्ण और विनाशी है; अतएव दुःखालय है। प्राकृतिक वस्तुओं और स्थितियोंमें सुखकी खोज करना वास्तवमें मूर्खता ही है। यहाँ जो कुछ भी मनुष्य प्राप्त करता है वह स्थायी नहीं होता; अधूरा होता है और उसका वियोग अवश्यम्भावी है। यहाँ वास्तविक सुख उसीको मिलता है जो सारे जगत्‌को भगवान्‌में देखता है और भगवान्‌को जगत्‌में भरा देखता है। वही नित्य और पूर्ण परमानन्दस्वरूप भगवान्‌को देखता हुआ नित्य आनन्दमय बना रहता है।

भगवान्‌ने कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

फिर यहाँ जो कुछ भी हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि भोगरूपमें प्राप्त होते हैं, वे सब प्रारब्धके ही फल हैं। कर्म तीन प्रकारके होते हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। इस समय हम जो कुछ भी कर्म फलहेतुसे कर रहे हैं, उन्हें 'क्रियमाण' कहते हैं। फलहैतुक कर्म सम्पन्न होते ही कर्मसंचयके भंडारमें चला जाता है। यह वर्तमानके पूर्वके किये हुए कर्मोंका, जिनका फल अभी नहीं भोगा जा चुका है, संग्रह ही 'संचित' कहलाता है और इस संचितमेंसे कुछ अंश लेकर कर्म-जगत्‌का नियन्त्रण करनेवाली प्रभुशक्ति एक जन्मके लिये जो कुछ फलका निर्माण कर देती है, उसका नाम प्रारब्ध है। इस 'प्रारब्ध'के अनुसार योनि, आयु और फल आदि पहलेसे ही निश्चित हो जाते हैं। अतएव जब, जो कुछ भी प्रारब्धवश फलरूपमें प्राप्त होना है, वह अवश्य होगा ही। उसमें निमित्त तीन हो सकते हैं— 'स्वेच्छा', 'परेच्छा' और 'अनिच्छा'। किसी फलभोगके लिये कोई कर्म हमारी अपनी इच्छासे बन जाय, यह 'स्वेच्छाकृत फलभोग' है; जैसे आगमें हाथ डालनेकी इच्छा होनेपर हाथ डालना और उसका जल जाना। किसी प्रारब्धका फल 'परेच्छा'—दूसरेकी इच्छासे होता है। इसका रूप है—किसी दूसरेके मनमें हमारा अच्छा-बुरा करनेकी इच्छा हो जाना और तदनुसार उस कर्मके सम्पन्न होनेपर हमें फल प्राप्त होना। जैसे—हमारे घरमें आग लगनेवाली हो, पर द्वेषवश दूसरा कोई इच्छा करके आग लगा दे। इसी प्रकार कुछ फल 'अनिच्छा'-से उत्पन्न होते हैं। जैसे—हम रास्तेमें चल रहे हैं। अकस्मात् किसी पेड़की डाल टूटकर हमपर गिर जाय और हमें चोट लग जाय। फलभोगमें प्रारब्धवश परतन्त्र होते हुए भी इन 'स्वेच्छा' और 'परेच्छा' कृत फलभोगोंमें हम अपनी भली-बुरी इच्छाके अनुसार क्रियमाण कर्म करके अपने लिये अच्छे-बुरे संचितका निर्माण करते हैं, जो भविष्यमें हमारे लिये सुख-दुःखका कारण बन सकता है; क्योंकि संचित और प्रारब्धवश अच्छी-बुरी इच्छाओंके उदय होनेपर भी मनुष्यको भगवान्‌ने अच्छे-बुरेकी पहचानके लिये विवेक, आदर्श शुभ कर्म करनेके लिये विधिनिषेधात्मक शास्त्रवाणी और कर्म करनेका अधिकार दिया है। **'कर्मण्येवाधिकारस्ते'** गीताका प्रसिद्ध वचन है। यदि हम शास्त्रकी अवहेलना करके मनमाना अनाचार-दुराचार करते हैं तो उसका फल दुःख और सदाचार-सद्व्यवहार करते हैं तो उसका फल सुख भविष्यमें होगा ही। प्रारब्धका फल अवश्यमेव भोगना ही होगा; इसमें कोई संदेह नहीं। पर जो मनुष्य भगवान्‌के शरणागत होकर अपनेको सर्वतोभावेन भगवान्‌को समर्पित कर चुकते हैं अथवा जिन्हें तत्त्वज्ञानस्वरूप आत्मसाक्षात्कार हो जाता है, उनके शरीरमें प्रारब्धानुसार फलका उदय होनेपर भी उन्हें दुःख-सुख नहीं होता; और सकामभाव न होनेसे नवीन कर्मफल प्रदान करनेवाले कर्म संचितमें वैसे ही नहीं जमा होते जैसे भुने हुए बीज खेतमें डालनेपर भी उनसे अंकुर नहीं निकलते। पूर्वके सारे संचित कर्म भगवान्‌की सहज कृपा अथवा 'ज्ञानाग्नि' से सर्वथा भस्म हो जाते हैं। इस प्रकार वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है; तथापि

शरीरसे प्रारब्धफलका भोग होता ही है। यह 'कर्म-सिद्धान्त' है।

परंतु कुछ ऐसे 'प्रबल कर्म' भी होते हैं—जैसे सकाम भगवदाराधन या देवाराधन, किसी कारणवश शाप या वरदान—जो तत्काल 'प्रारब्ध' बनकर फलदानोन्मुख प्रारब्धके फलको रोककर बीचमें अपना फल भुगता देते हैं। उदाहरणरूपमें किसीके प्रारब्धमें पुत्र-प्राप्तिका संयोग नहीं है; पर वह विधिपूर्वक 'पुत्रेष्टि-यज्ञ' का अनुष्ठान करनेपर नवीन प्रारब्ध-निर्माणके द्वारा पुत्र प्राप्त कर सकता है। ऐसे बहुत-से उदाहरण प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलते हैं। इसी प्रकार किसीके प्रारब्धमें अमुक समय मृत्युका योग है; पर 'मृत्युंजय' आदि अनुष्ठान करनेपर वह अल्पायु मनुष्य 'दीर्घ-जीवन' का सविधि लाभ कर सका है। मार्कण्डेयजीका भगवान् शंकरकी उपासनाके फलस्वरूप अमरत्व प्राप्त करना प्रसिद्ध ही है। इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें 'सकाम उपासना' का विस्तृत उल्लेख है।

यद्यपि सकाम उपासना बुद्धिमानी नहीं है; क्योंकि उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला फल अनित्य, अपूर्ण और दुःखप्रद ही होता है, तथापि **सात्त्विक सकाम उपासनासे भी उपासनाके स्वरूपानुसार न्यूनाधिक रूपमें अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, जिसका फल अन्तमें निष्कामताकी प्राप्ति होता है। भगवान्की उपासना तो किसी भी भावसे की जाय, अन्तमें भगवान्को प्राप्त करानेवाली होती है। भगवान्ने स्वयं अपने 'अर्थार्थी' और 'आर्त' भक्तोंको भी 'उदार' बतलाते हुए अन्तमें उनको अपनी प्राप्ति होनेकी घोषणा की है। *'उदाराः सर्व एवैते'* और *'मद्भक्ता यान्ति मामपि'* (गीता)। अतएव सकाम देवाराधन और भगवदाराधन बुद्धिमानी न होते हुए भी लोकमें समृद्धि, सुख और अन्तमें क्रमानुसार भगवत्प्राप्तिमें हेतु होनेके कारण अकर्तव्य नहीं है; पाप तो है ही नहीं। अवश्य ही 'तामस देवताओं' और 'तामस तत्त्वों' की उपासना कभी नहीं करनी चाहिये और न ऐसी कोई उपासना-आराधना करनी चाहिये जिसमें दूसरेके अहितकी कामना हो।' 'तामस उपासना' और 'पर-अहितकी कामना' से की गयी उपासना—दोनों ही अन्तःकरणकी अशुद्धिमें हेतु और बार-बार आसुरी योनि, दुःख और अधोगतिकी प्राप्तिमें ही कारण होते हैं।**

* * *

सकाम अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि वे सबको समानरूपसे फल देंगे ही या तत्काल ही फल दे देंगे। तत्काल फल न हो तो बार-बार उनका प्रयोग करना चाहिये। एक ही दवा एक रोगीको तत्काल लाभ पहुँचाती है, दूसरेको देरसे पहुँचाती है और किसीको उससे कुछ भी लाभ नहीं होता। इसी प्रकार देवाराधन भी प्रारब्धकी सहज, कठिन या अत्यन्त प्रबल प्रतिबन्धकताके अनुसार कोई तुरंत नवीन प्रारब्ध बनकर फल दे देता है, कोई देरसे और कोई बहुत देरसे फल देता है एवं कोई नहीं भी देता। पूर्वनिर्मित प्रारब्धकी निर्बलता या प्रबलता ही इसमें प्रधान कारण है। परंतु दवाका अनुचित प्रयोग होनेपर उससे या आजकलकी विज्ञापनी विषाक्त दवाइयोंकी प्रतिक्रियाके रूपमें विपरीत परिणाम भी हो जाता है। रोग बढ़ जाता है और कहीं-कहीं रोगी मर भी जाता है। पर सात्त्विक (जिसमें किसी अवैध तामसिक वस्तु या विधिका प्रयोग न हो तथा जो किसी भी दूसरेके लिये जरा भी हानिकारक न हो, ऐसे) देवाराधनमें प्रतिक्रियारूपमें कोई भी हानि नहीं होती; वरं लाभ ही होता है।

एक प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं; उन्होंने अर्थकी प्राप्तिके लिये गायत्रीके पूरे चौबीस पुरश्चरण किये। वे बार-बार पुरश्चरण करते, पर फल कुछ भी दिखायी नहीं देता; तथापि उनकी श्रद्धा नहीं घटी; न धीरज ही छूटा और न वे उकताये ही तथा पुरश्चरण करते ही रहे। जब चौबीस पुरश्चरण पूरे हो गये और कोई प्रत्यक्ष फल नहीं दिखायी दिया, तब भी उनकी गायत्रीदेवीपर तनिक भी अश्रद्धा नहीं हुई; क्योंकि वे परम आस्तिक और शास्त्रविश्वासी थे। दूसरी ओर गायत्रीपुरश्चरणोंके द्वारा पवित्र हुए उनके विशुद्ध हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और सर्वत्याग करके वे संन्यासी हो गये। संन्यास सर्वत्यागमय होता है और यह यथार्थ सर्वत्याग एक 'महान् पुण्यकार्य' होता है। अतः संन्यास-ग्रहण करनेके पश्चात् गायत्रीदेवीने प्रकट होकर उनसे वर माँगनेके लिये अनुरोध किया। संन्यासी महात्माने कहा—'माता! मैंने चौबीस पुरश्चरण श्रद्धा-विधिसहित किये, किंतु आपने दर्शन नहीं दिये। अब मेरे संन्यास-ग्रहण करनेके पश्चात् आपके प्रकट होनेका क्या कारण है?' गायत्रीदेवीने कहा—'वत्स!

तुम्हारे पचीस महापाप थे; चौबीस पुरश्चरणोंसे उनमेंसे चौबीस महापापोंका प्रायश्चित्त हो गया। एक पुरश्चरण और कर लेते तो प्रतिबन्धक हट जाता और मैं प्रकट हो जाती। पर तुमने वह नहीं किया। अब तुम्हारा यह सर्वत्यागरूप संन्यास महान् पुण्य कार्य होनेके कारण इसके फलस्वरूप पचीसवें महापातकका भी प्रायश्चित्त हो गया। अब तुम नवीन फल प्राप्त करनेके अधिकारी हो गये। इसीसे मैं अब प्रकट हो गयी।' संन्यासी महात्माने कहा—'माता! अब तो मैं सर्वत्यागी संन्यासी हूँ। अब न मेरे मनमें कोई कामना है न मुझे कोई आवश्यकता ही। आपकी कृपा बनी रहे। आप पधारें।'

इस कथासे यह सिद्ध होता है कि प्रतिबन्धककी प्रबलतासे देवाराधनका मनोवांछित फल तत्काल न मिलनेपर भी लाभ तो निश्चितरूपसे होता ही है। साथ ही आजकल दवाइयोंमें जान्तव पदार्थों तथा विषका प्रयोग होता है, उनके सेवनमें हिंसा होती है तथा जहरतक खाया जाता है। व्यापार-नौकरी आदिमें असत्य, बेईमानी तथा पराये अहित-साधनका पाप होता है। देवाराधक इन पापोंसे तो बच ही जाता है। यह भी कम लाभ नहीं है। उसकी बुद्धि अहिंसायुक्त तथा जाग्रत् रहती है, जिससे पराया अनिष्ट या अहित करनेवाले विचारों तथा पापोंसे छुटकारा मिलता है। यह याद रखना चाहिये कि जिस-किसी विचार या कार्यसे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका अनिष्ट या अहित होता हो, वही 'पाप' है और जिससे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका इष्ट या हित होता हो, वही 'पुण्य' है। यही पाप तथा पुण्यकी सार्वभौम यथार्थ परिभाषा है। जिससे परिणाममें दूसरोंका अहित होगा, उससे हमारा हित होगा ही नहीं और जिससे परिणाममें दूसरोंका हित होता होगा, उससे हमारा कभी अहित न होकर हित ही होगा—यह सुनिश्चित है।

कहीं-कहीं देवाराधनके सफल न होनेमें श्रद्धा और विधिकी न्यूनता या उसका अभाव भी प्रधान कारण होता है। श्रद्धाकी आवश्यकता तो प्रत्येक कार्यमें है। अश्रद्धासे किया गया कार्य सिद्ध नहीं होता। भगवान् गीतामें कहते हैं—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥
(१७। २८)

'हे अर्जुन! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है—वह समस्त 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है, इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।'

अतएव कोई भी देवाराधन या मन्त्र-प्रयोग हो, अनुष्ठान करनेवालेमें उसके प्रति श्रद्धा-विश्वास अवश्य होना चाहिये। जिस देवता और जिस अनुष्ठान या आराधनमें श्रद्धा होगी, वही फलवान् होगा। किसी भी देवताकी आराधना कौतूहलनिवृत्ति या परीक्षाके लिये नहीं करनी चाहिये। परीक्षाके लिये की गयी आराधनासे तो देवताका अपमान होता है, जिसका फल अनिष्ट भी हो सकता है।

श्रद्धाके साथ सकाम कर्ममें विधिकी भी परमावश्यकता है। जैसे अमुक-अमुक वस्तुओंके अमुक-अमुक निश्चित परिमाणमें मिलानेपर ही किसी अभीष्ट वस्तुका निर्माण होता है, वैसे ही अमुक-अमुक विधिका भलीभाँति पालन होनेपर ही देवताके द्वारा फलका निर्माण होता है। अतएव प्रत्येक अनुष्ठान यथासाध्य विधिवत् ही होना चाहिये।

देवानुष्ठानके समय तन-मन-वचनसे सदाचारका पालन करना चाहिये। अखण्ड ब्रह्मचर्यका (संतान-प्राप्तिके अनुष्ठानमें वैध प्रसंगको छोड़कर) पालन अवश्य-अवश्य होना चाहिये। जपके साथ दशांश हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मणभोजन भी आवश्यक होता है। साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी दूसरेके अनिष्ट या अहितका कोई भी कार्य मन-वाणी-शरीरसे न होने पाये।

किन्हीं ब्राह्मण या ब्राह्मणोंसे अनुष्ठान करवाया जाय तो यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ब्राह्मण सदाचारी हों, अनुष्ठानके समय वे ब्रह्मचर्यका पालन करें और जहाँतक बने, अनुष्ठानकालमें यजमानका ही अन्न ग्रहण करें। ब्राह्मणोंको सम्मानपूर्वक उचित दक्षिणा दी जानी चाहिये; उसमें सौदा या मोल-तोल नहीं करना चाहिये। उनका जी तो दुखाना ही नहीं चाहिये।

किसी दूसरेका अनिष्ट चाहकर कोई भी अनुष्ठान कभी नहीं करना-कराना चाहिये; इससे परिणाममें बहुत बड़ी हानि होती है। अमुक कार्य सफल हो जानेपर

देवताका अमुक कार्य किया जायगा या उसको अमुक चीज भेंट चढ़ायी जायगी अथवा अमुक देवस्थानकी यात्रा की जायगी—इस प्रकार मनौती मानना बहुत निम्न श्रेणीकी देवाराधना है। पहले सेवा करके तब फल माँगना या स्वीकार करना चाहिये। 'देवता हमारा अमुक काम कर देंगे, तब हम देवताकी सेवा-पूजा करेंगे'—यह वृत्ति बहुत नीची है। इसमें देवतापर पूरे विश्वासका अभाव है। यद्यपि इसमें भी प्रयास होता है; अतः देवता स्वभाववश प्रायः नाराज नहीं होते; तथापि है तो यह अविश्वासपूर्ण 'व्यापार' ही। सच्ची बात तो यह है कि देवाराधन निष्काम प्रेमसे होना चाहिये। सेवा करके बदलेमें कुछ भी लेना सेवा नहीं कहलाता; बल्कि वह एक प्रकारका व्यापार हो जाता है। प्रह्लादने भगवान् नृसिंहसे कहा था—'जो सेवा करके बदलेमें कुछ ले लेता है, वह सेवक नहीं है, लेन-देन करनेवाला व्यापारी है'—'**न स भृत्यः स वै वणिक्।**' (श्रीमद्भा० ७।१०।४) पर जो सेवाके पहले ही फल चाहते हैं, वे तो कुशल व्यापारी भी नहीं; उन्हें तो निम्न श्रेणीके स्वार्थी ही कहना चाहिये।

अन्तमें यही नम्र निवेदन है कि मानव-जीवनका लक्ष्य 'भगवत्प्राप्ति' ही है। अन्य जितनी भी लोक-परलोककी वस्तुएँ या स्थितियाँ हैं—सभी अनित्य तथा परिणाम-दुःखद हैं। अतएव सकाम कर्मोंमें प्रवृत्त न होकर निष्काम कर्म, तत्त्वविचार, भगवत्सेवा, भगवत्प्रेम आदि पारमार्थिक साधनोंमें ही लगना चाहिये; उसीमें जीवनकी सार्थकता है। पर जो सकामभावका त्याग नहीं कर सकते, उनकी विविध कामनाओंकी पूर्तिके लिये सकाम उपासनाका विधान है। सकामभाववाले लोग उन दैवी साधनोंका सेवन करके लाभ उठा सकते हैं।

~~~०~~~

श्रीगणपतिके बीजमन्त्रद्वारा संकेतित गूढ अर्थ

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०, शास्त्री)

सजातिकृद्विजातिकृत्स्वनिष्ठभेदवर्जितं
निरञ्जनं च निर्गुणं निराकृतिं च निष्क्रियम्।
सदात्मकं चिदात्मकं सुखात्मकं परं पदं
भजामि तं गजाननं स्वमाययाऽऽत्तविग्रहम्॥

'जो सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित निर्गुण, निरंजन, निराकार, निष्क्रिय, सत्स्वरूप, चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप परम पदरूप हैं; जिन्होंने अपनी मायासे ही शरीर ग्रहण किया है, उन गजाननदेवका मैं भजन करता हूँ।'

* * * *

सम्पूर्ण चैतन्यस्वरूप परात्पर ब्रह्मकी लीलामयी इच्छाशक्तिकी प्रथम स्फुरणा ओंकारनादके रूपमें अभिव्यक्त हुई। यह नाद विश्वरचनाकी प्रक्रियामें अव्यक्त ब्रह्मका प्रथम एजन, कम्पन या उन्मेष था। ओंकारनादसे सभी वर्णोंका प्रकाशन हुआ। फिर वर्णोंसे मन्त्रोंकी सृष्टि हुई। सर्वचैतन्य ब्रह्मके ही सूक्ष्म अभिव्यक्त रूप होनेके कारण सभी वर्ण एवं मन्त्र चैतन्य-शक्तिसे युक्त हैं एवं ब्रह्मके ध्वनि-शरीर, सूक्ष्म-शरीर या शब्दब्रह्म हैं। इनमें ब्रह्मकी चैतन्य-शक्ति निहित है, जिसे जप, चिन्तन और ध्यानकी मन्थनक्रियाद्वारा अभिव्यक्त कर साधक ब्रह्मका साक्षात् अनुभव करता है। जैसे प्राणियोंके शरीरमें जीवात्मा साररूप है, वैसे ही मन्त्रोंका सार आत्मा अथवा उनकी चैतन्यशक्ति उन-उन बीजमन्त्रोंमें निहित है। देवोंने ही प्रत्येक देवताके मन्त्रोंसे उस-उस मन्त्रके बीजको पृथक् किया है। जैसे एक सूक्ष्म बीजमें वृक्षका आकार, गुण, स्वभाव, शक्ति एवं सिद्धि—सब निहित रहती है, वैसे ही किसी मन्त्रदेवताके बीजमें उसके स्वरूप, आकार, तेज, गुण, शक्ति एवं सभी सिद्धियाँ निहित रहती हैं। जीव अपने प्रयत्नसे तो ब्रह्म या देवताको पा नहीं सकता और न त्रिगुणात्मक प्रकृतिसे निर्मित मन आदि साधन ही चैतन्यमय निरुपाधिक या सोपाधिक ब्रह्मतक पहुँचनेमें सहायक बन सकते हैं। पर मन्त्र या बीज स्वयं देवताका चेतनायुक्त ध्वनि-शरीर होनेके कारण साधकके देवतातक पहुँचनेमें निश्चितरूपसे साधन बनते हैं एवं विधिपूर्वक जप किये जानेपर साधककी साधनाके सिद्ध होनेकी भी गारंटी देते हैं।

बीजमन्त्र मन्त्रोंके जीवरूप या वीर्यरूप होते हैं; अतः निर्बीजमन्त्र बीजहीन होनेके कारण साधनाका
~~~

फल नहीं देते[1]। मन्त्रोंका जप बीजमन्त्रसहित ही करना चाहिये। '**भूः**', '**भुवः**', '**स्वः**'—ये तीनों महाव्याहृतियाँ त्रिपदा-गायत्रीके बीजमन्त्र हैं। '**ऐं**' सरस्वतीका, '**हौं**' शिवका, '**दुं**' दुर्गाका, '**क्लीं**' कालीका, '**श्रीं**' लक्ष्मीका एवं '**गं**' गणपतिका बीजमन्त्र है। 'यामलतन्त्र' का कहना है कि 'गुरुदत्त मन्त्र या बीजमन्त्रके जपसे अवश्य ही देवताके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं—**देवतायाः शरीरं तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्॥**' मन्त्रविद्या चिकित्सा एवं ज्यौतिषकी भाँति ही प्रत्यक्ष अनुभवपर आधारित प्रमाणका विषय है। साधकका अनुभव ही उसे पद-पदपर उस शास्त्रकी प्रामाणिकताका विश्वास दिला देता है। मन्त्राभ्याससे केवल देवताका साक्षात्कार ही नहीं, अपितु उसके मननसे विश्वका हस्तामलकवत् ज्ञान एवं संसारबन्धनसे त्राण भी होता है। इसी कारण इसे 'मन्त्र' कहते हैं। मन्त्रमें निष्ठा, सिद्धिमें विश्वास तथा विधिपूर्वक निरवच्छिन्न जप मन्त्रसिद्धिमें कारण हैं। 'सनत्कुमारसंहिता'-का कहना है—'बिन्द्वन्तमन्त्र देवताको प्रसन्न करनेवाले होते हैं एवं प्रणवाद्य नमोऽन्तमन्त्र शान्ति, भोग और सुख देनेवाले होते हैं[2]।' अतः प्रायः बीजमन्त्रोंके साथ अनुस्वाररूप बिन्दु लगाकर उनके प्रारम्भमें '**प्रणव**' तथा अन्तमें '**नमः**' लगाकर उनका जप किया जाता है। इस नियमके अनुसार श्रीगणपतिके बीजमन्त्रका जपके प्रयोजनके लिये रूप होगा—'**ॐ गं नमः।**'

अब मन्त्रकी संकेतार्थ-प्रणालीके अनुसार श्रीगणपतिके बीजमन्त्रके रहस्यार्थपर विचार करें। '**गम्**' के तीन खण्ड हैं—ग्+अ+अनुस्वार (बिन्दु)। सनत्कुमारसंहितामें शिवरात्र (अ० २) और इन्द्ररात्रमें वर्णित प्रत्येक वर्णद्वारा संकेतित देवता तथा तत्त्वके अनुसार गकारका देवता अग्नि है। अकार प्रकाशका—परमशिवका बोधक है तथा बिन्दु देवताकी प्रीति एवं अवस्थातीत (तुरीय) परब्रह्मका संकेतक है। '**नमः**'-पद जीवनिष्ठ अहंकारका निषेध करके देवताके प्रति पूर्ण शरणापन्न होनेका भाव व्यक्त करता है। अतः '**ॐ गं नमः**'-का तात्पर्यार्थ हुआ—'मैं स्वनिहित अहंकार-ममतादिका एवं अविद्यामूलक प्रकृतिका त्याग कर ओंकारवाच्य अग्निरूप गणपतिके शरणापन्न होता हूँ। वे मेरी उपासनासे प्रसन्न होकर कृपापूर्वक शुद्ध प्रकाशरूप परब्रह्मका साक्षात्कार करावें।' श्रीगणेश ज्ञानमय—चिन्मय होनेसे अग्निरूप हैं तथा शिवतैजस होनेसे भी तेजोमूर्ति हैं। 'श्रीगणपतिसहस्रनाम'-में उनका नाम '**शम्भुतेज**' भी है। अग्निपदमें गकारकी सत्ता शम्भुतेज या गणेशकी ज्ञापिका; चित्प्रकाशरूपकी बोधिका है।

गकारबीजके मूलमें गत्यर्थक 'गम्' धातु है तथा इसके द्वारा ब्रह्मतेज, सर्वविघ्ननिवारकता, गुरुपदत्व एवं सर्वसिद्धिप्रदत्व भी संकेतित हैं। गायत्रीतन्त्रके अनुसार गणेश गायत्रीमन्त्रके 'भर्ग' पदके 'ग' (एकादश) वर्णके देवता हैं। 'अहिर्बुध्न्यसंहिता' (अ० ५७। ९—११)-के अनुसार 'भर्ग' विष्णुके संकल्पात्मक तेजका नाम है। इस संहिताके अनुसार सविताका 'भर्ग' ही विष्णुका 'सुदर्शन चक्र' (तेज) है। इस 'भर्ग' पदमें '**गः**' का अर्थ है—'**गमयत्यपि तन्नाशं स्यति बन्धमशेषतः।**'—जो अविद्याजन्य सभी क्लेशोंका नाशकर जन्म-मरणके अथवा अज्ञानके बन्धनको पूरी तरह नष्ट कर देता है।' 'ग'-वर्णवाच्य गणेश ब्रह्मसंकल्पके सक्रिय तेजोरूप हैं, जो ब्रह्मसाधकको योगसाधनाके सभी विघ्नोंका एवं अविद्याजन्य सभी अन्तरायोंका नाश कर उसके चित्तमें ब्रह्मज्ञानको प्रकाशित कर सभी अविद्याजन्य तमका अपहरण करते हैं। इस परमज्ञानके अधिष्ठाता चिन्मय देवता होनेके कारण एवं ब्रह्मका संकल्प-तेज होनेके कारण वे जगत्में विघ्नहर्ता तथा विद्या-बुद्धिके देवताके रूपमें आदिदेवताके स्थानपर पूजनीय हैं। ब्रह्मका संकल्प ही प्रथम ओंकारके नादके रूपमें प्रकट हुआ है; अतः वे ओंकार हैं, ओंकारवाच्य हैं, सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हुए हैं एवं जगत्के कारण हैं। उनकी स्तुति

---

१. समुद्राद् वाङ्मयाद् देवैर्मन्त्रा निर्मथ्य चोद्धृताः॥
तेभ्यस्तथैव बीजानि प्रोद्धृतानि पृथक् पृथक्। प्राणिनां तु यथा जीव इन्द्रियाणां यथा मनः॥
तथा बीजानि मन्त्राणां जीवभूतानि सर्वशः। बीजहीनाश्च ये मन्त्रा निर्बीजास्ते न संशयः॥
(सनत्कुमारसंहिता, शिवरात्र, २।८—१०)

२. बिन्द्वन्तं प्रीतिकृच्चैव॥ ····नमोऽन्तं च वशीकृतम्॥ (वही, अ, ३)
नमोऽन्ताः प्रणवाद्याश्च शान्तिभोगसुखप्रदाः॥ (वही, ब्राह्मरात्र ११।११)

करते हुए कहा गया है—

भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥

'बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति' में 'भर्ग' के 'ग'-वर्णकी व्याख्या करते हुए कहा गया है—''ग'' **इत्यागच्छत्यजस्रम्**',—जैसे सविताका प्रकाश निरन्तर इस धरापर आ रहा है, वैसे ही सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामीरूपमें स्थित ब्रह्मका प्रकाश भी सभीको निरन्तर प्राप्त हो रहा है। इससे यह संकेत मिलता है कि 'ग' बीजमन्त्रके जापकको निरन्तर ब्रह्मप्रकाशसे युक्त होने, अन्तर्यामी ब्रह्मसे हृदयमें संयुक्त होने एवं व्यापक ब्रह्मकी चेतनामें निरन्तर निवास करनेका अनुभव करना चाहिये।

'मौद्गलपुराण' तथा अन्य ग्रन्थोंमें 'गकार' के निम्नलिखित संकेतितार्थ मिलते हैं—

१. 'गकार' मनोवाणीमय सकल दृश्यादृश्यात्मक विश्वका, विराट् ब्रह्मका वाचक है। 'ग' बीजवाच्य गणेश इस ब्रह्मपदके वाच्य एवं प्रापक हैं—

मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम्।
गकारात्मकमेवं तत् तत्र ब्रह्म गकारकः॥

२. 'गण'-पदसे महत्तत्त्व, अहंकारादि विकार एवं सृष्टिसमुदायका बोध होता है। गकार इस गणके चालक होनेके कारण ब्रह्मके गणपतित्वका बोधक है।

३. योगीलोग समाधिद्वारा जिस ब्रह्मको प्राप्त करते हैं, वह 'ग' अक्षरवाच्य है—

'समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्तीति 'गः'।'

४. जो अन्तर्यामिरूपसे सभी चराचर सृष्टिकी गतिका चालक—हेतु है तथा यह सम्पूर्ण स्थावर-जंगम प्रलयदशामें जिसके पास पहुँचता है, वह 'ग' है। वह 'ग'-वर्णवाच्य ब्रह्म ही सभीकी गतिका, धर्माचरणादि साधनका एवं जीवनका चरम लक्ष्य है—

'गम्यते यत्र येन सर्वं चराचरं जगत्। सर्वं जगत् गमयति इति वा। सर्वदेहिनां गतेर्हेतुभूतो वा॥'

५. गत=परायण, आश्रय, पहुँचा हुआ। जो सर्वगत है; सर्वव्यापकरूपमें सभीके पास पहुँचा हुआ है; सभीका परम आश्रय, शरणदाता, रक्षक एवं मोक्ष देकर तारनेवाला है—

'अभवत् परमं ब्रह्म तद्गतं तत्परायणम्॥'

६. 'ग' अक्षर 'गुरु' पदका बोधक है। श्रीगणेश गुरुओंके गुरु एवं ब्रह्मविद्याके आचार्य हैं। उनकी कृपाके बिना योग एवं साधनाके विघ्न दूर नहीं होते तथा बुद्धिमें निर्मल ब्रह्मज्ञान प्रकाशित नहीं होता। श्रीगणपतिकी कृपा होनेपर ही गुरूपदिष्ट मन्त्रके मनन तथा जपसे अज्ञानका नाश होकर इष्टदेवताका स्वरूप प्रकाशित होता है। अतः साधनाके आरम्भमें गुरुमण्डलकी वन्दना करते समय '**श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवम्**'—इस श्लोकसे श्रीगणपतिकी भी गुरुरूपमें वन्दना की जाती है। गुरुरूपमें उपासना किये जानेपर वे साधनामें सिद्धिके प्रदायक बन जाते हैं।

इस प्रकार 'गकार' महत्तत्त्वादि दृश्यादृश्य सृष्टि-गणके स्वामी, योगियोंके परम ध्येय, सर्वान्तर्यामीरूपसे सभीके चालक, सृष्टिके प्रलयस्थान, सर्वगत, सभीके शरणदाता, सबके उद्धारकर्ता, अविद्यानिवारक, मोक्षप्रदायक, सर्वसिद्धिदाता परमगुरु ब्रह्मका वाचक है। जप करते हुए साधकको श्रीगणपतिके इन गुणोंका स्मरण करना चाहिये। मन्त्रके अर्थकी भावना करते हुए एवं तदनुसार हृदयमें देवताके स्वरूपका ध्यान करते हुए जप करनेसे ही मन्त्र सिद्धिदायक होता है। जपके समय मन्त्रमें देवताबुद्धि होनी अत्यन्त आवश्यक है। मन्त्रमें, देवतामें, गुरुमें, मन्त्र-ऋषिमें तथा साधकमें तादात्म्यभाव होनेपर ही मन्त्र चैतन्यशक्तिसे युक्त एवं सद्यःसिद्धिदायक होता है। साधक ऋषि, गुरु, मन्त्र एवं देवताका अपनेमें समारोपण कर उनके साथ अभेद अनुभव करते हुए जप करें। यह अभेद-भावना साधनाका सार एवं सिद्धिका परम मूल है। साधनाकालमें साधकको अपने हृदयमें इष्टदेवताकी निरन्तर उपस्थितिका भान होना चाहिये एवं उसके आहार-विहारादि सभी व्यापार अपने इष्टदेवकी वृत्तिके ही अनुकूल होने चाहिये—

तन्निष्ठस्तद्गतप्राणस्तच्चित्तस्तत्परायणः।
तत्पदार्थानुसंधानं कुर्वन् मन्त्रं जपेत् प्रिये॥

(कुलार्णवतन्त्र)

'जापक अपने इष्टदेवताके प्रति पूर्ण शरणागत होकर देवता एवं मन्त्रमें पूरी निष्ठा रखते हुए, प्राण और चित्तकी वृत्तियोंको मन्त्रस्वरूपके मानस-श्रवण एवं दर्शनमें एकाग्र करते हुए तथा मन्त्रके प्रत्येक पदके अर्थका विचार करते हुए जप करे।'

श्रीगणपतिकी उपासनामें दार्शनिक दृष्टि

(लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीकण्ठजी शर्मा 'चक्रपाणि', शास्त्री)

इस पंचतत्त्वात्मक जगत्‌में जीवमात्र अपना मंगल चाहते हैं। उनका अभीष्ट मंगल दो भागोंमें विभक्त है—श्रेय और प्रेय। यद्यपि 'प्रेय' की ओर अधिक जीवोंका झुकाव है, किंतु 'प्रेय' की परिधिमें आनेवाले सभी पदार्थ नश्वर होते हैं, अतः उनसे शाश्वत सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रेयपदार्थोंका क्षेत्र संकुचित है और श्रेयपदार्थका क्षेत्र विशाल। अतः प्रेय श्रेयको अपने भीतर समेट नहीं सकता; किंतु श्रेय प्रेयको आत्मसात् करनेमें पूर्णतया सक्षम है। धीर विवेकी पुरुष प्रेयको ठुकराकर श्रेयका वरण करते हैं; किंतु जो मन्दबुद्धि मानव है वह लौकिक योग-क्षेमपर दृष्टि रखकर प्रेयको ही अपनाता है—

'श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥'

(कठोपनिषद् १।२।२)

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'—इस उक्तिके अनुसार श्रेयःप्राप्तिके मार्गमें अनेक विघ्न-बाधाएँ आती हैं। इनकी निवृत्तिके लिये विघ्नविनाशन महागणपतिदेवकी प्रथम उपासना या अर्चना नितान्त आवश्यक है। यद्यपि यामलतन्त्रके[1] कथनानुसार गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और दुर्गामें भेद-बुद्धि न रखते हुए एकत्वकी भावनासे ही इनकी पूजा करनी चाहिये, तथापि साधककी रुचिके अनुसार इन पाँचोंमेंसे किसी एकको प्रधान मानकर शेष चारोंको उसका 'अंग' अथवा उसका ही स्वरूपान्तर माना जाता है; इस प्रधान अंगभावसे ही इनका पूजन किया जाता है।

जो गणेशको प्रधान मानते हुए पंचदेवोपासनामें प्रवृत्त होते हैं, उनके लिये निम्नांकित क्रम उपलब्ध है—मध्यभागमें गणेशको विराजित करके ईशानकोणमें विष्णुको, आग्नेयकोणमें शिवको, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्यको तथा वायव्यकोणमें जगदम्बाको प्रतिष्ठित करे[2]। अनुष्ठानमें यह नियम है कि देवताका मुख सदा पश्चिम दिशाकी ही ओर करे।[3] इससे उपासक पूर्वाभिमुख होकर देवाराधन कर सकता है। अंग और अंगी एक हैं; अतः पूर्वोक्त अंगांगिभावसे उपासना करनेपर किसी भी देवतामें प्राधान्य या अप्राधान्यकी दृष्टिका उदय ही नहीं होता। अंग और प्रधानमें अविनाभाव-सम्बन्ध होनेके कारण सभी 'प्रधान' ही सिद्ध होते हैं; अप्रधान कोई नहीं रह जाता।

'सुखं मे भूयाद् दुःखं मा भूत्'—मुझे सुख हो, दुःख न हो—यह कामना सभी प्राणियोंकी होती है। वास्तवमें सुख वही है, जो दुःखसे मिश्रित न हो—**'यन्न दुःखेन सम्भिन्नम्।'** इसका उपाय है—उपादेय साधनका अवलम्बन, अपनी अभिरुचिके अनुसार इष्टदेवकी उपासना—**'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'**—लक्ष्य-प्राप्तिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

उपासना तीन प्रकारकी होती है—वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र। जैसा कि श्रीमद्भागवत (११। २७। ७)-में भगवान्‌ने कहा है—**'वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः।'** तान्त्रिक पद्धतिमें उपासनाके छः आम्नाय निश्चित किये गये हैं—१. दक्षिणाम्नाय, २. ऊर्ध्वाम्नाय, ३. पूर्वाम्नाय, ४.उत्तराम्नाय, ५. पश्चिमाम्नाय तथा ६. पातालाम्नाय (अधराम्नाय)। इनमें सूर्योपासना केवल दक्षिणाम्नायसे ही होती है। इन आम्नायोंमेंसे पूर्वोक्त चार आम्नाय क्रमशः अभेद, सायुज्य, सारूप्य तथा सामीप्य प्रदान करनेवाले हैं। पश्चिमाम्नाय ऐहिक फलकी प्राप्ति कराता है तथा अधराम्नाय लाभ, त्याग और उपकारका उद्भावक होता है। जैसा कि कहा गया है—

दक्षिणोपासकः काल ऊर्ध्वः सायुज्यमाप्नुयात्।
देवतायास्तथा पूर्वः सारूप्यं लभते परम्॥
सामीप्यं चोत्तरे लोके पश्चिमस्त्वैहिकं फलम्।
लाभस्त्यागश्चोपकारो ह्यधो मार्गेऽप्युदर्कयुक्॥

---

१. गणेशार्कहरीशानदुर्गाणां परमार्थवित्। पूजयेदैक्यभावेन देवीभक्तश्च बुद्धिमान्॥

२. हेरम्बस्तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्।
आग्नेय्यां पञ्चवक्त्रं तु नैर्ऋत्यां द्युमणिं यजेत्। वायव्यामम्बिकां चैव यजेन्नित्यमतन्द्रितः॥

३. देवानां हि मुखं कार्यं पश्चिमायां सदा बुधैः।

तान्त्रिक पूजा-क्रममें विभिन्न देवताओंके लिये छहों आम्नायोंमेंसे किसी एकके द्वारा पूजा-विधान निर्दिष्ट है। परंतु श्रीगणपतिदेवके पूजनकी विधि छहों आम्नायोंके द्वारा प्राप्त होती है। यही कारण है कि सभी इष्ट देवताओंके पूजन-क्रममें गणेश-पूजाको प्राथमिकता प्राप्त हुई है। यही गणपतिकी महत्ता और विलक्षणताका द्योतक है। तन्त्र-ग्रन्थोंकी आलोचनासे वैदिक आम्नाय तथा पूर्वोक्त छः आम्नायोंमें गणपतिके बीज और पूजनीय स्वरूपके विषयमें निम्नांकित निर्णय अवगत होता है—

आम्नाय	बीज	उपास्य गणपति
१—वैदिकाम्नाय	**ग**	
(१) दक्षिणाम्नाय	**गं**	**लक्ष्मी-गणेश, हरिद्रागणेश**
(२) ऊर्ध्वाम्नाय	**गौं**	**महागणपति**
(३) पूर्वाम्नाय	**गः**	**विरञ्चिगणपति**
(४) उत्तराम्नाय	**ग्लौं**	**उच्छिष्टगणपति**
(५) पश्चिमाम्नाय	**गं गः**	**क्षिप्रप्रसादनगणपति**
(६) पाताल (अधः)	**गों**	**भीमाद्या प्रभृति आम्नाय**

उपर्युक्त आम्नायोंके सम्बन्धसे बीजमन्त्रोंकी सार्थकता या वर्णबीज-प्रकाश ग्रन्थानुसार इस प्रकार है—मूलबीज है गकार, जो छहों आम्नायोंमें व्यापकरूपसे स्थित है। विश्लेषक अंशका समन्वय यों है—

१—(क) '**ग**' अक्षर वैदिक आम्नायमें उपयुक्त है और हृदयका द्योतक है। अतएव मूलभूत वैदिकाम्नायमें प्रयुक्त हुआ है।

(ख) दक्षिणाम्नायमें अनुस्वारसे वह विशेषित किया गया है। अतः '**गं**' इस रूपमें अनुस्वारविशिष्ट बीज कलानिधितत्त्वका द्योतक है।

२—ऊर्ध्वाम्नायमें बीजमन्त्र '**गौं**' हो गया है। यहाँ मूल बीजमें 'औ' तथा अनुस्वार—ये दो विशेषण जुड़ गये हैं। 'औकार' स्वरोंमें चौदहवाँ अक्षर है, जो षोडशकलापरिपूर्ण परब्रह्म आनन्दकन्द श्रीकृष्णके 'मुरारि' नामका सूचक है। अनुस्वार 'ं' पंद्रहवाँ अक्षर है, जो भगवत्प्रिया श्रीरुक्मिणीके प्रतिपादक श्रीबीजसे अनुप्राणित है। वह श्रीशरीराभिन्न चित्स्वरूप श्रीकृष्णके साथ श्रीमहागणपतिकी अभिन्नताको प्रकाशित करता है। इस भावका समन्वय नारदीय पुराण, उत्तरभाग ५९वें अध्यायमें सूत्ररूपसे संकेतित है। इसकी पुष्टिके लिये कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं। श्रीमद्भागवत (१०।६०।३४)-में रुक्मिणीका कथन है कि '**क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा।**' इस वाक्यमें स्वयं रुक्मिणीने अपनेको 'प्रकृति' कहा है। नारदीय पुराणमें भी '**देवतेजः समुद्भूता मूलप्रकृतिरीश्वरी।**'—इस वाक्यद्वारा उन्हें प्रकृति कहा गया है। श्रीराधिकाजी तथा प्रकृति-पद-प्रतिपादिता रुक्मिणीजीका श्रीकृष्णसे अभेद है—'**कृष्णरूपा महाभागा**' इत्यादि। श्रीगणपति भी श्रीकृष्णसे अभिन्न बताये गये हैं—'**स्वयं कृष्णो गणपतिः**' (ना० पु०)।

३—पूर्वाम्नायमें बीजका स्वरूप '**गः**' है। यहाँ बीजाक्षरके साथ विसर्गका प्रयोग भगवान्‌के नाना रूपोंमेंसे, विशेषतः 'गणनाथ' नामसे आराध्य भगवत्तत्त्वका द्योतक है। विसर्ग सोलहवें स्वरसे सूचित श्रीरमाकान्त भगवत्तत्त्वसे अभिन्नताका अभिव्यंजक है।

४—उत्तराम्नायमें '**ग्लौं**' बीज स्वीकृत है। यहाँ मूल बीज गकारसे अधिक ल्+औ+० अनुस्वार—ये तीन अंश विद्यमान हैं। इनमेंसे 'ल्' भू-बीजका द्योतक है। इसमें उच्छिष्टगणपतिकी उपासना है और उपास्यके आकारका भूगर्भतत्त्वसे विशिष्ट सम्बन्ध सूचित होता है। 'ल्' से गणेशके आयुध वज्रकी भी सूचना मिलती है। 'औ' यह भुवनकोश तथा अग्निकान्ता 'स्वाहा' का द्योतक है। अनुस्वार सूर्य और चन्द्रमाका द्योतक है।

५—पश्चिमाम्नायमें '**गं+गः**'—ये बीजाक्षर प्रयुक्त हुए हैं। उक्त आम्नाय-बीजमन्त्र दक्षिणाम्नाय एवं पूर्वाम्नायकी समष्टि हैं। दक्षिणाम्नायमें ऋद्धि-सिद्धिके लिये लक्ष्मी-गणेशमन्त्रसे उपासना बतायी गयी है। इसके मूलका द्योतक '**गं**' बीज है। पूर्वाम्नाय-मार्गद्वारा ब्रह्मोपासित गणपतिदेवकी आराधना '**गः**' बीजद्वारा निर्दिष्ट है।

६—पातालाम्नाय अथवा अधराम्नायमें '**गों**' बीज प्रयुक्त होता है। गकार तो मूलबीज है ही। शेष हैं—ओकार+अनुस्वार। ओकार तेरहवाँ स्वर है और अनुस्वार पंद्रहवाँ। ओकार व्योमबीज है। वह शून्यतत्त्व या आकाशतत्त्वका बोधक है। बिन्दु (ं) नाद-तत्त्वका निर्देशक है। नाद एकमात्र आकाशमें ही सम्भव है। वह नित्य लयस्थितिका बोधक है। परमानन्दस्वरूप चिद्घन ब्रह्मके बिना अन्यत्र द्वैतका विलय सम्भव नहीं है। इसका आश्रय गकार गणपतितत्त्व ही सिद्ध हुआ। इसके सिवा 'ग'

स्वतन्त्र रूपसे गगनका निर्देशक है। अत: यह त्रिपुटी ही परमानन्दकी स्थिति है। 'ग' गणपतिबीज गायत्रीका आदि अक्षर है; अत: वह गायत्रीमन्त्रोपास्य शुद्ध ब्रह्मका द्योतक है। श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य तत्त्व श्रीकृष्णसे गणपति-तत्त्वकी अभिन्नता है। इस प्रकार श्रीभागवत, श्रीकृष्ण, गायत्री तथा श्रीगणेश—चारों ही एक तत्त्व हैं, भिन्न नहीं।

~~~०~~~

गणपतिके विविध मन्त्र, ध्यान और न्यास आदिका सम्बन्ध एवं रहस्य

(लेखक—श्रीएन्० एच० चन्द्रशेखर स्वामी, एम्० ए०)

देवता कई प्रकारके होते हैं और प्रत्येक देवताका एक आकार होता है, जिसका साक्षात्कार करनेके लिये न्यास-ध्यानसहित मन्त्र-जपकी आवश्यकता होती है। प्रत्येक देवताके भिन्न-भिन्न मन्त्र एवं भिन्न-भिन्न यन्त्र होते हैं। देवताकी उपासना-पद्धति मनोवैज्ञानिक होती है। उसके लिये गुरुसे उपदेश लेना आवश्यक होता है। गाणपत्य-सम्प्रदाय एवं उसकी उपासना-पद्धति भी इसका अपवाद नहीं है।

गणपति-उपासना भारतमें अतिप्राचीन मानी जाती है। वैदिक-धर्मके अतिरिक्त जैन, बौद्ध आदि धर्मोंमें भी इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिनमें 'समष्टि-बोध' होता है, उसे 'गण' कहते हैं; उसका पति—'**गणपति**' कहलाता है।

दार्शनिक दृष्टिसे देखा जाय तो 'गणपति' यह 'त्रितत्त्व' है—पिता—शिव, माता—शक्ति और पुत्र—गणपति। इसकी तुलना ईसाई-सम्प्रदायके 'त्रितत्त्व' के साथ की जा सकती है। परम पिता, परम माता और दिव्य पुत्र—यही उनका सिद्धान्त है। God, the Father, Holy Ghost and the Divine Son यही उनकी Trinity है।

'गणपति' को परमतत्त्व मानकर उनकी सिद्धि और बुद्धि-नामक दो शक्तियोंसे जगत्‌का व्यापार संचालित होता है।

ध्यान और मन्त्रका सम्बन्ध

श्रीगणेशके अनेक प्रकारके ध्यान और मन्त्र हैं। ध्यान और मन्त्रका घनिष्ठ सम्बन्ध है। देवताके ध्यानमें केवल निर्विकल्पभावकी उपासना 'ध्यान' नहीं कही जा सकती; ध्यानका अर्थ है—देवताका सम्पूर्ण आकार एक क्षणमें मानसपटलपर प्रतिविम्बित होना। मन्त्रके मनन और त्राण, दो धर्म होते हैं। मन्त्र नित्य होते हैं; साथ ही देवताके सूक्ष्म-शरीर भी। मन्त्रमें नादशक्ति होती है। मातृकाओंसे मन्त्र बनते हैं। मन्त्रसे देवताका शरीर बनता है, न्यासमें मातृकाओंके विन्याससे देवताका स्वरूप-ज्ञान होता है। विन्यासमें मातृकाओंका वैचित्र्य पाया जाता है। प्रत्येक देवताके न्यासमें अन्तर होता है। मन्त्र स्थूलदृष्ट्या अक्षरसमुदाय होते हैं। उनमें दो वस्तुएँ अभिव्यंजित होती हैं—नाद और प्रकाश। जप, ध्यान आदिके प्रयाससे साधकके चित्तमें नाद प्रकाशरूपमें परिणत होकर साकार देवताके रूपमें स्फुरित होता है। मन्त्रोपासनामें अतिगूढ़ तथ्य निहित हैं। इसमें Sound and light Theory प्रतिपादित है। इसका अतिसूक्ष्म विवरण तन्त्रग्रन्थोंमें पाया जाता है। एक ही क्षणमें ध्यान और मन्त्रोच्चार करनेके लिये यत्नशील साधकको देवताका साक्षात्कार होता है।

ध्यान और मन्त्रका रहस्य

इस प्रसंगमें ध्यान और मन्त्रके सामान्य सिद्धान्तोंको प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा। 'सगुण' अर्थात् साकार देवताकी उपासनामें एक विशिष्ट पद्धति अपनायी जाती है। स्थूल उपासना और मानसिक उपासनामें केवल इतना ही अन्तर है कि स्थूल उपासनामें बाह्यरूपसे षोडशोपचार अथवा पंचोपचार पूजा-द्रव्योंकी आवश्यकता होती है। इसमें उपास्यमूर्ति बाहर स्थूलरूपसे विद्यमान रहती है। वही उपास्यमूर्ति मानसिक उपासनामें मनोभूमिपर अधिष्ठित रहती है। उक्त उपचार-द्रव्य भी मानसिक उपासनामें कल्पित रहते हैं एवं मनोभूमिपर मानसिकरूपसे अर्पित किये जाते हैं। इस प्रकार सगुणोपासना स्थूल और मानस—दो प्रकारकी होती है। ध्यान और मन्त्र द्विविध उपासनाकी दोनों भूमियोंसे सम्बन्ध रखते हैं।

किसी भी देवताकी उपासनामें साधारणतया ऋषि,
~~~

छन्द, न्यास, ध्यान तथा मन्त्र अनिवार्य होते हैं। 'न्यास' साधकके अंगमें भी निहित होते हैं और देवताके भी। मातृकाओं और मन्त्रोंका न्यास होता है। मन्त्रशास्त्रमें वर्णमाला 'मातृका' शब्दसे सम्बोधित है। इनमें एक निरन्तर स्पन्दनशील अखण्ड शक्ति रहती है। उसको पचास (Component unit) मानकर उनका मिश्रण किया गया है। यह प्राचीन ऋषियोंका आविष्कार है। इन मातृकाओंका मिश्रण प्रत्येक देवताके भिन्न-भिन्न मन्त्रोंमें भिन्न-भिन्न रहता है। मन्त्र-शास्त्रमें न्यासका जितना महत्त्व है, उतना ही ध्यानका भी है। ध्यान एकतानताके साथ एक अखण्ड स्वरूपका होना चाहिये। यह साधारण लौकिक विकल्पग्रस्त मनसे सम्भव नहीं। विकल्पका अर्थ है—अनन्त प्रकारके संशयोंसे भरे विचार। इस प्रकारके मनसे एक क्षणमें एक ही अवयवकी धारणा की जा सकती है। होना यह चाहिये कि एक क्षणमें चरणसे मस्तकतक देवताका चित्र चित्तमें उपस्थित हो। यह तभी सम्भव है कि जब अवयवोंकी समष्टिका एक क्षणमें चिन्तन हो। मन्त्र-जपसे साधककी धारणा-शक्ति जब अखण्डताको प्राप्त कर लेती है, तब यह सम्भव होता है। एक ही क्षणमें समग्र रूपको धारण करनेकी शक्ति 'अन्तर्लक्ष्य बहिर्दृष्टि'-से ही सम्भव है, जिसका अर्थ है—निमेष और उन्मेषसे वर्जित बाह्यदृष्टिको स्थिर रखते हुए लक्ष्य—सम्पूर्ण ज्ञानगत मूर्तिको अपने मानसपटलपर लाना। कालबिन्दुमें चलनेवाले उन्मेष और निमेष ही क्रमशः सृष्टि और संहार हैं। इसके अन्तरालमें जो खाई है, वह जबतक पटती नहीं, तबतक अखण्ड ध्यान सम्भव नहीं। एतदर्थ निमेषोन्मेषवर्जित क्रिया आवश्यक है। इस क्रियाको करनेसे क्षणभरमें इच्छामात्रसे अखण्ड आकारका बोध होता है।

मन्त्र एक अव्यक्त देवताशक्तिको अभिव्यक्त करनेवाली बीजशक्ति है। इस बीजको जब साधकके चित्तरूपी क्षेत्रमें डाला जाता है, तब वह अंकुरकी तरह प्रस्फुटित होता है और साकाररूप धारण कर लेता है। आकारका प्रस्फुरण स्वयं महाशक्ति कर लेती है। इसमें साधकको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। जैसे क्षेत्रमें बीज डालनेपर बीजगत आकार स्वभावसे प्रस्फुटित होता है, उसी प्रकार साधकके चित्तमें मन्त्रानुसार आकार प्रस्फुटित होता है। यह कार्य मन्त्रके निरन्तर उच्चारणपूर्वक जप करनेसे होता है। इससे एक ही विकल्पधारा चलती है और अन्तमें यह विकल्पधारा देवताका स्वरूप धारण कर लेती है।

ध्यान एवं मन्त्रोंकी आराधनासे साधकको श्रीगणेशके तत्तद् रूपोंका भ्रूमध्यस्थित प्रभामण्डलमें साक्षात्कार होता है। फलस्वरूप उनके कृपा-प्रसादसे साधककी मनोरथपूर्ति होती है।

~~○~~

श्रीगणेशके विविध मन्त्र*

१-**श्रीमहागणपतिस्वरूप प्रणव-मन्त्र**—'ॐ'।

२-**श्रीमहागणपतिका प्रणव-सम्पुटित बीज-मन्त्र**—'ॐ गं ॐ।'

३-**सबीज गणपति-मन्त्र**—'गं गणपतये नमः।'

४-**प्रणवादि सबीज गणपति-मन्त्र**—'ॐ गं गणपतये नमः।'

५-**नाम-मन्त्र**—

(क) **ॐ नमो भगवते गजाननाय।** (द्वादशाक्षर)

(ख) **श्रीगणेशाय नमः।** (सप्ताक्षर)

(ग) **ॐ श्रीगणेशाय नमः।** (अष्टाक्षर)

६-**उच्छिष्टगणपति-नवार्णमन्त्र**—

ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीउच्छिष्टगणेशनवार्णमन्त्रस्य कङ्कोल ऋषिः, विराट् छन्दः, उच्छिष्टगणपतिर्देवता, अखिलावाप्तये जपे विनियोगः।

* मन्त्रोंके प्रयोगकी पूर्ण विधि स्थान-संकोचके कारण यहाँ नहीं दी गयी है। कुछ प्रमुख मन्त्रोंकी विधि इसी अंकमें है। साधकोंको अपने अभीष्ट मन्त्रके ध्यान, न्यास, पीठ-पूजन आदिकी विधि 'मन्त्रमहार्णव', 'मन्त्रमहोदधि' आदि ग्रन्थोंमें देखनी चाहिये या किन्हीं योग्य विद्वान्से पूछनी चाहिये।

७-द्वादशाक्षर उच्छिष्टगणपतिमन्त्र—

ॐ ह्रीं गं हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीद्वादशाक्षरोच्छिष्टगणपतिमन्त्रस्य मनुः ऋषिः, विराट् छन्दः, उच्छिष्टगणपतिर्देवता, गं बीजम्, स्वाहा शक्तिः, ह्रीं कीलकम्, अखिलावाप्तये जपे विनियोगः।

८-एकोनविंशत्यक्षरोच्छिष्टगणपतिमन्त्र—

ॐ नम उच्छिष्टगणेशाय हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीउच्छिष्टगणेशमन्त्रस्य कङ्कोल ऋषिः, विराट् छन्दः, उच्छिष्टगणपतिर्देवता, अखिलावाप्तये जपे विनियोगः।

९-सप्तत्रिंशदक्षरोच्छिष्टगणपतिमन्त्र—

ॐ नमो भगवते एकदंष्ट्राय हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आं क्रों ह्रीं गं घे घे स्वाहा।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीउच्छिष्टगणेशमन्त्रस्य गणक ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, उच्छिष्टगणपतिर्देवता, गं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, आं क्रों कीलकम्, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

१०-द्वात्रिंशदक्षरहरिद्रागणेशमन्त्र—

ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वर वरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीहरिद्रागणनायकमन्त्रस्य मदन ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, हरिद्रागणनायको देवता, ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

११-षडक्षरवक्रतुण्डमन्त्र—ॐ वक्रतुण्डाय हुम्।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीगणेशमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, निचृत् अनुष्टुप् छन्दः, विघ्नेशो देवता, वं बीजम्, यं शक्तिः, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

१२-एकत्रिंशदक्षरवक्रतुण्डमन्त्र—

रायस्पोषस्य दाता निधिदातान्नदो मतः।
रक्षोहणो वो बलगहनो वक्रतुण्डाय हुम्॥

विनियोग

ॐ अस्य श्रीवक्रतुण्डगणेशमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, विघ्नेशो देवता, वं बीजम्, यं शक्तिः, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

१३-शक्तिविनायकचतुरक्षरमन्त्र—ॐ ह्रीं ग्रीं ह्रीं।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीशक्तिविनायकमन्त्रस्य (शक्तिगणाधिपमन्त्रस्य वा) भार्गव ऋषिः, विराट् छन्दः, शक्तिगणाधिपो देवता (शक्तिविनायको देवता वा), ग्रीं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

१४-अष्टाविंशत्यक्षरलक्ष्मीविनायकमन्त्र—

ॐ श्रीं गं सौम्याय गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीलक्ष्मीविनायकमन्त्रस्य अन्तर्यामी ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, लक्ष्मीविनायको देवता, श्रीं बीजम्, स्वाहा शक्तिः, ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

१५-त्रयस्त्रिंशदक्षरत्रैलोक्यमोहनकरगणेशमन्त्र—

वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं गणपते वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीत्रैलोक्यमोहनकरगणेशमन्त्रस्य गणक ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, त्रैलोक्यमोहनकरो गणेशो देवता, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

१६-सिद्धिविनायकमन्त्र—ॐ नमो सिद्धिविनायकाय सर्वकार्यकर्त्रे सर्वविघ्नप्रशमनाय सर्वराज्यवशकरणाय सर्वजनसर्वस्त्रीपुरुषाकर्षणाय श्री ॐ स्वाहा।

१७-ऋणहर्तृगणेशमन्त्र—ॐ गणेश ऋणं छिन्धि वरेण्य हुं नमः फट्।

१८-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं गौं गः श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।

१९-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं गौं वरदमूर्तये नमः।

२०-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवते गजाननाय।

२१- ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥

२२-बीजाय भालचन्द्राय गणेश परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय हेरम्बाय नमो नमः॥

२३-आपदामपहर्तारं दातारं सुखसम्पदाम्।
क्षिप्रप्रसादनं देवं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

२४-नमो गणपते तुभ्यं हेरम्बायैकदन्तिने।
स्वानन्दवासिने तुभ्यं ब्रह्मणस्पतये नमः॥

२५- शुक्लाम्बरधरं देवं शशिसूर्यनिभाननम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥
२६- नमस्तस्मै गणेशाय ब्रह्मविद्याप्रदायिने।
यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे॥
२७- यद्भ्रूप्रणिहितां लक्ष्मीं लभन्ते भक्तकोटयः।
स्वतन्त्रमेकं नेतारं विघ्नराजं नमाम्यहम्॥
२८-श्रीगजानन जय गजानन।

२९-श्रीगजानन जय गजानन जय जय गजानन।

३०-ह्रीं गं ह्रीं गणपतये नमः।

३१-ॐ वक्रतुण्डाय नमः।

(गणेशगायत्री)

३२-महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

~~०~~

एकाक्षरगणपति-मन्त्रके जपका विधान

स्नान-संध्या-वन्दन आदिसे निवृत्त हो, शुद्ध आसनपर आसीन साधक जप प्रारम्भ करनेसे पूर्व आचमन और प्राणायाम करके निम्नांकितरूपसे संकल्प करे—

संकल्प

ओमद्यैतस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे अमुकजनपदे नगरे ग्रामे वा कलियुगे प्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथावमुक-वासरान्वितायाममुकामुकराशिस्थितेषु सूर्यादिषु नवग्रहेषु सत्सु—एवंविधग्रहगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्य-तिथौ—अमुकगोत्रः अमुकशर्मा (वर्मा गुप्तो वा) श्रीचिन्तामणिगणपतिदेवताप्रीत्यर्थं मम सकलपुरुषार्थ-सिद्ध्यर्थमेकाक्षरगणपतिमन्त्रजपमहं करिष्ये।

संकल्प पढ़कर हाथका जल धरतीपर गिरा दे। तत्पश्चात् शरीरशुद्धिके लिये आसन-विधि, भूशुद्धि, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा करके अन्तर्मातृका-न्यास करे। तदनन्तर शिखा बाँधकर सिद्धासनपर बैठकर ध्यान करे। इन सबकी विधि इस प्रकार है—

निम्नांकित विनियोग और मन्त्र पढ़कर आसन ग्रहण करे—

विनियोग

'पृथ्वीतिमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः कूर्मो देवता सुतलं छन्दः (अनुष्टुप्छन्दः) आसने विनियोगः।'

मन्त्र

**ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥**

'सिद्धासनाय नमः'—इस मन्त्रसे आसनको नमस्कार करे। फिर प्रस्तुत कार्यमें निर्विघ्नतापूर्ण सफलताके लिये विघ्नोंका अपसारण करे। पहले निम्नांकित मन्त्र पढ़कर भैरवसे आज्ञा ले—

मन्त्र

**तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥**

फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर विघ्नकारी भूतोंको भगाये—

**अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूतले स्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥
ॐ नमः शिवाय। शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।**

इस प्रकार उच्चारण करनेके पश्चात् गुरुचतुष्टयको नमस्कार करे—

'ॐ गं गुरुभ्यो नमः। ॐ पं परमगुरुभ्यो नमः। ॐ पं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। ॐ पं परात्परगुरुभ्यो नमः।'

तदनन्तर निम्नांकित चार मन्त्र पढ़कर आचमन करे और हाथ धो ले—

१-ॐ गं आत्मतत्त्वाय नमः स्वाहा। २-ॐ गं विद्यातत्त्वाय नमः स्वाहा। ३-ॐ गं शिवतत्त्वाय नमः स्वाहा। ४-ॐ गं सर्वतत्त्वाय नमः स्वाहा।

मूलमन्त्रसे दोनों हाथोंका संशोधन करे। हाथोंके अग्रभागसे लेकर कोहनीपर्यन्त भागका स्पर्श कर ले। ऐसा करनेसे जपमें सिद्धि प्राप्त होती है। तदनन्तर मूलमन्त्रका विनियोग करे। विनियोगवाक्य इस प्रकार है—

ॐ अस्य श्रीएकाक्षरगणपतिमन्त्रस्य गणक

ऋषिः, निचृद् गायत्रीच्छन्दः, एकाक्षरगणपतिर्देवता, ॐ गं बीजम्, ॐ आं अः शक्तिः, ॐ ग्लौं कीलकम्, मम श्रीगणपतिप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ गणकर्षये नमः शिरसि। ॐ निचृद् गायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे। ॐ एकाक्षरगणपतिदेवतायै नमः हृदि। ॐ गं बीजाय नमः मूलाधारे। ॐ आं अः शक्तये नमः पादयोः। ॐ ग्लौं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ गीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ गूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ गैं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ गौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास

ॐ गां हृदयाय नमः। ॐ गीं शिरसे स्वाहा। ॐ गूं शिखायै वषट्। ॐ गैं कवचाय हुम्। ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ गः अस्त्राय फट्।

इसके बाद '**भूर्भुवः स्वरोम्**' बोलकर दिग्बन्ध करे। (सब दिशाओंकी ओर चुटकी बजाये।)

शापविमोचन-क्रिया

'**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं हूं गं ऐं क्रों कीलय कीलय स्वाहा**'—इस मन्त्रका अपने मस्तकपर हाथ रखकर तीन बार उच्चारण करे। इससे शापविमोचन होता है।

शापोद्धार

शापोद्धारके लिये निम्नांकित मन्त्र पढ़कर यथास्थान न्यास करना चाहिये—

ॐ गं हूं गूं ह्रीं फट् कल्पाद्याय नमः स्वाहा। ॐ गं गणपतये नमः। ॐ सेतवे नमः मुखे। ॐ ह्रीं गं महासेतवे नमः कण्ठे। ॐ अं गं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं ज्ञं ॐ निर्वाणाय नमः नाभौ। ॐ कामराजाय नमः लिङ्गे। ॐ गं महाकुण्डलिन्यै नमः आधारे। ॐ रां रीं रूं रैं रौं रः शाकिन्यै नमः मूर्ध्नि। ॐ ग्लौं गजानन मन्त्रशापं मोचय मोचय गं स्वाहा।

तत्पश्चात् दोनों हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त हो ध्यान करे—

ध्यान

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढं त्रिनेत्रं
पाशं चैवाङ्कुशं वैरदनमभयदं बाहुभिर्धारयन्तम्।
शक्त्या युक्तं गजास्यं पृथुतरजठरं नागयज्ञोपवीतं
देवं चन्द्रार्कचूडं सकलभयहरं विघ्नराजं नमामि॥

'लाल सागरके भीतर एक विशाल नौका है। उसपर खिले हुए लाल कमलका आसन है। उसके ऊपर श्रीगणपति विराज रहे हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे अपनी चार भुजाओंद्वारा पाश, अंकुश, भग्नदन्त और अभयद मुद्रा धारण करते हैं। उनके साथ उनकी शक्ति (सिद्धिलक्ष्मी) भी हैं। वे गजमुख और लम्बोदर हैं। उन्होंने सर्पको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण कर रखा है तथा चन्द्रमा और सूर्य उनके मस्तकके मुकुट हैं। ऐसे सकलभयहारी देवता विघ्नराज गणेशको मैं प्रणाम करता हूँ।'

मानसोपचारपूजन

ध्यानके पश्चात् एकाक्षरगणपतिका मानसोपचारद्वारा पूजन करे। उसकी विधि यों है—

'**ॐ लं पृथिव्यात्मकम् एकाक्षरगणपतये गन्धं परिकल्पयामि नमः। ॐ हम् आकाशात्मकम् एकाक्षरगणपतये शब्दपुष्पं परिकल्पयामि नमः। ॐ यं वाय्वात्मकम् एकाक्षरगणपतये स्पर्शधूपं परिकल्पयामि नमः। ॐ रम् अग्न्यात्मकम् एकाक्षरगणपतये रूपदीपं परिकल्पयामि नमः। ॐ वम् अमृतात्मकम् एकाक्षरगणपतये रसनैवेद्यं परिकल्पयामि नमः। ॐ सं सर्वरसतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मकम् एकाक्षरगणपतये ताम्बूलं परिकल्पयामि नमः।**'

शुद्ध चित्तसे मूलाधारचक्रमें गणेशका चिन्तन करते हुए उनके सम्मुख सात मुद्राएँ दिखाये। दन्त, पाश, अंकुश, विघ्नपरशु, लड्डूक, अभयवरद तथा बीजपूर—ये सात मुद्राएँ हैं। इन मुद्राओंके प्रदर्शनसे सम्पूर्णतः सिद्धि प्राप्त होती है। इसके बाद श्रीगणपतिका स्वागत करे; उनसे संनिकट रहनेके लिये विनती करे—

स्वागत-विनय

स्वागतं देवदेवेश गणेश संनिधो भव।
गृहाण मानसीं पूजां यथार्थभावितामिति॥

इसके बाद मनको गणेशजीमें लगाकर मालाकी प्रार्थना करे—

माला-प्रार्थना

ॐ ऐं ह्रीं अक्षरमालायै नमः। ॐ ह्रीं सिद्ध्यै नमः।
ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥
शुभं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा॥

'अक्षमाले! तुम महामाया हो, सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो। चारों पुरुषार्थ तुममें ही निहित हैं; अतः तुम मेरे लिये सिद्धिदायिनी होओ। भद्रे! तुम मेरा सर्वदा शुभ करो। मुझे यश और बल दो।'

बीजमन्त्र-प्रार्थना

मालाको नमस्कार करके बीजमन्त्रकी प्रार्थना करे—

त्वं बीजं सर्वमन्त्राणां त्वं माला सर्वदायिनी।
त्वं दाता सर्वसिद्धीनामेकाक्षर नमोऽस्तु ते॥

'हे एकाक्षर! तुम सब मन्त्रोंके बीज हो। तुम सब कुछ देनेवाली माला हो। तुम सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता हो। तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रदेवता गणपतिका ध्यान करते हुए स्वच्छ, स्पष्ट एवं मन्द स्वरमें मध्याह्नपर्यन्त जप करे।

मन्त्र है—'**ॐ गं गणपतये नमः।**'

अपने इच्छानुसार १०८ बार या इससे अधिक भी जप करे। जपके अन्तमें मालाको मस्तकपर रखकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव।
शुभं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदे॥

'हे माले! तुम सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न करनेवाली और शुभदायिनी बनो। सब कुछ देनेवाली कल्याणमयी माले! तुम मुझे यश और बल प्रदान करो।'

तदनन्तर उत्तरन्यास करे। आरम्भमें जैसे किया था, उसी प्रकार करन्यास, हृदयादिन्यास करे। फिर मानस-पूजा भी पूर्ववत् करे।

अन्तमें प्रार्थना

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादाद् गणेश्वर॥

'गणेश्वर! आप गुह्य और अतिगुह्य साधनाके संरक्षक हैं; मेरे द्वारा किये गये इस जपको ग्रहण कीजिये। देव! आपके कृपा-प्रसादसे मुझे सिद्धि प्राप्त हो।'

इस मन्त्रको पढ़कर भावनाद्वारा इष्टदेवताके दाहिने हाथमें जप समर्पित करे।

फिर—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

'जिनके स्मरण और नाम-कीर्तनसे तप, यज्ञकर्म आदिमें न्यूनताकी सद्यःपूर्ति होती है, उन अच्युत (श्रीहरि या गणपति)-की मैं वन्दना करता हूँ।'

—यह श्लोक पढ़कर न्यूनताकी पूर्तिके लिये प्रार्थना करे। तत्पश्चात् निम्नांकित वाक्य बोलकर देवताकी प्रसन्नताके लिये अपना जपकर्म उन्हें समर्पित करे—

'**अनेन यथाज्ञानेन यथाशक्त्यनुष्ठितेन एकाक्षरमूलमन्त्रामुकसंख्याकजपाख्येन कर्मणा श्रीचिन्तामणिदेवता प्रीयतां न मम। ॐ तत्सद् गजाननार्पणमस्तु।**'

'इस यथाज्ञान, यथाशक्ति कृत एकाक्षर मूलमन्त्रके अमुकसंख्याक जपकर्मके द्वारा श्रीचिन्तामणिदेवता गणपति प्रसन्न हों। इसपर मेरा कोई स्वत्व नहीं है। यह जप श्रीगजाननको अर्पित हो।'

जहाँ जप करे, उस स्थानकी मृत्तिकाको जलमें मिलाकर उसके द्वारा ललाटमें तिलक लगाये। इससे जपकर्म फलदायक होता है। जैसा कि कहा है—

यत्र स्थले जपं कुर्यात्तत्र सम्प्रोक्ष्य वारिणा।
तद्रेणुतिलकं कुर्यात् तस्मात्तत्फलदं भवेत्॥

~~~ ० ~~~
~~~

ऋणहर्ता गणेश-मन्त्रका विधान

कैलासपर्वते रम्ये शम्भुं चन्द्रार्धशेखरम्।
षडाम्नायसमायुक्तं पप्रच्छ नगकन्यका॥

रमणीय कैलासपर्वतपर छः आम्नायोंसे युक्त चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिव बैठे थे, उस समय गिरिराजनन्दिनी पार्वतीजीने उनसे पूछा—

पार्वत्युवाच

देवेश परमेशान सर्वशास्त्रार्थपारग।
उपायमृणनाशस्य कृपया वद साम्प्रतम्॥

पार्वती बोलीं—सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थ-ज्ञानमें पारंगत देवेश्वर परमेश्वर! इस समय कृपापूर्वक मुझे ऋण-नाशका उपाय बताइये।

शिव उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया भद्रे लोकानां हितकाम्यया।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय॥

शिवजीने कहा—कल्याणि! तुमने लोकहितकी कामनासे यह बहुत उत्तम बात पूछी है; मैं इस विषयमें सब कुछ बताऊँगा; तुम सावधान होकर सुनो—।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीऋणहरणकर्तृगणपतिस्तोत्रमन्त्रस्य सदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीऋणहरण-कर्तृगणपतिर्देवता, ग्लौं बीजम्, गः शक्तिः, गों कीलकम्, मम सकलर्णनाशने जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ सदाशिवर्षये नमः, शिरसि। अनुष्टुपछन्दसे नमः, मुखे। श्रीऋणहर्तृगणेशदेवतायै नमः, हृदि। ग्लौं बीजाय नमः, गुह्ये (मूलाधारे)। गः शक्तये नमः, पादयोः। गों कीलकाय नमः, सर्वाङ्गे।

करन्यास

'ॐ गणेश' अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। 'ऋणं छिन्धि' तर्जनीभ्यां नमः। 'वरेण्यम्' मध्यमाभ्यां नमः। 'हुम्' अनामिकाभ्यां नमः। 'नमः' कनिष्ठिकाभ्यां नमः। 'फट्' करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।'

हृदयादिन्यास

'ॐ गणेश' हृदयाय नमः। 'ऋणं छिन्धि' शिरसे स्वाहा। 'वरेण्यम्' शिखायै वषट्। 'हुम्' कवचाय हुम्। 'नमः' नेत्रत्रयाय वौषट्। 'फट्' अस्त्राय फट्।

ध्यान

सिन्दूरवर्णं द्विभुजं गणेशं लम्बोदरं पद्मदले निविष्टम्।
ब्रह्मादिदेवैः परिसेव्यमानं सिद्धैर्युतं तं प्रणमामि देवम्॥

'सच्चिदानन्दमय भगवान् गणेशकी अंगकान्ति सिन्दूरके समान है। उनके दो भुजाएँ हैं। वे लम्बोदर हैं और कमलदलपर विराजमान हैं। ब्रह्मा आदि देवता उनकी सेवामें लगे हैं तथा वे सिद्धसमुदायसे युक्त हैं। ऐसे श्रीगणपतिदेवको मैं प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार ध्यान करनेके पश्चात् निम्नांकित स्तोत्रका पाठ करे—

सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा सम्यक् पूजितः फलसिद्धये।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे॥
त्रिपुरस्य वधात् पूर्वं शम्भुना सम्यगर्चितः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे॥
हिरण्यकश्यपादीनां वधार्थे विष्णुनार्चितः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे॥
महिषस्य वधे देव्या गणनाथः प्रपूजितः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे॥
तारकस्य वधात् पूर्वं कुमारेण प्रपूजितः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे॥
भास्करेण गणेशस्तु पूजितश्छविसिद्धये।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे॥
शशिना कान्तिसिद्ध्यर्थं पूजितो गणनायकः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे॥
पालनाय च तपसा विश्वामित्रेण पूजितः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे॥
इदं त्वृणहरं स्तोत्रं तीव्रदारिद्र्यनाशनम्।
एकवारं पठेन्नित्यं वर्षमेकं समाहितः॥
दारिद्र्यं दारुणं त्यक्त्वा कुबेरसमतां व्रजेत्।
फडन्तोऽयं महामन्त्रः सार्धपञ्चदशाक्षरः॥

''सृष्टिके आदिकालमें ब्रह्माजीने सृष्टिरूप फलकी सिद्धिके लिये जिनका सम्यक् पूजन किया था, वे पार्वतीपुत्र सदा ही मेरे ऋणका नाश करें। त्रिपुरवधके पूर्व भगवान् शिवने जिनकी सम्यक् आराधना की थी, वे पार्वतीनन्दन गणेश सदा ही मेरे ऋणका नाश करें। भगवान् विष्णुने 'हिरण्यकश्यप' आदि दैत्योंके वधके लिये जिनकी पूजा की थी, वे पार्वतीकुमार गणेश सदा

ही मेरे ऋणका नाश करें। महिषासुरके वधके लिये देवी दुर्गाने जिन गणनाथकी उत्कृष्ट पूजा की थी, वे पार्वतीनन्दन गणेश सदा ही मेरे ऋणका नाश करें। कुमार कार्तिकेयने तारकासुरके वधसे पूर्व जिनका भलीभाँति पूजन किया था, वे पार्वतीपुत्र गणेश सदा ही मेरे ऋणका नाश करें। भगवान् सूर्यदेवने अपनी तेजोमयी प्रभाकी रक्षाके लिये जिनकी आराधना की थी, वे पार्वतीनन्दन गणेश सदा ही मेरे ऋणका नाश करें। चन्द्रमाने अपनी कान्तिकी सिद्धिके लिये जिन गणनायकका पूजन किया था, वे पार्वतीपुत्र गणेश सदा ही मेरे ऋणका नाश करें। विश्वामित्रने अपनी रक्षाके लिये तपस्याद्वारा जिनकी पूजा की थी, वे पार्वतीपुत्र गणेश सदा ही मेरे ऋणका नाश करें।

"यह ऋणहरस्तोत्र दारुण दरिद्रताका नाश करनेवाला है। इसका एक वर्षतक प्रतिदिन एक बार एकाग्रचित्त होकर पाठ करे। जो ऐसा करेगा, वह दुस्सह दरिद्रताको त्यागकर धनकी दृष्टिसे कुबेरकी समता प्राप्त करेगा। यह ऋणहर्ता महामन्त्र 'ॐ' से लेकर 'फट्' तक साढ़े पन्द्रह अक्षरोंका है।"

इस मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—**'ॐ गणेश ऋणं छिन्धि वरेण्यं हुं नमः फट्।'**

स्तोत्रपाठके अन्तमें इस मन्त्रका एक बार जप करनेसे अन्तःकरण पवित्र होता है। इक्कीस संख्यामें इसका पुरश्चरण बताया गया है। छः महीनेतक प्रतिदिन एक सहस्र जप करनेसे साधक गणेशका प्रिय हो जाता है। वह ज्ञानमें बृहस्पति और धनमें धनपति (कुबेर)-के समान हो सकता है। इसका एक पुरश्चरण दस हजार जपका बताया गया है। एक लाख जप करनेसे भलीभाँति मनोवांछित फलकी प्राप्ति हो सकती है। इसके स्मरणमात्रसे भूत, प्रेत और पिशाचोंका भी नाश हो जाता है।

श्रीकृष्णयामलतन्त्रके अन्तर्गत उमामहेश्वर-संवादके रूपमें 'ऋणहर्ता गणेश-स्तोत्र' का ऐसा विधान कहा गया है।

~~○~~

जय गणेश

(रचयिता—पं० श्रीजगन्नारायणजी शास्त्री, आचार्य-त्रय, साहित्यरत्न, मानसशिरोमणि)

जय गणेश भक्तन-हितकारी। विद्यापति, गणपति, असुरारी॥

मङ्गल-मूरति, मोद-विधायक,
मोदक-प्रिय, विघ्नेश-विनायक,
महिमा-अमित, अखिल-अघ-हारी॥ जय गणेश०॥
शंकर-सुवन, सुखद-शुभदायक,
सदय-हृदय, शुचिमय, सुरनायक,
लम्बोदर, सुन्दर, सुखकारी॥ जय गणेश०॥

कृपासिन्धु, गजवदन, मनोहर,
मूषक-वाहन, वरद, वेष-वर,
अभय, अजय, संशय-दुखहारी॥ जय गणेश०॥
प्रथमपूज्य, गणनाथ, गुणाकर,
ऋद्धि-सिद्धि-सुबुद्धि-सुखाकर,
सीता-'रमण'-नाम-उरधारी ॥ जय गणेश०॥

~~○~~

गणपतिसे मंगलकामना

अविरलमदधाराधौतकुम्भः शरण्यः फणिवरवृतगात्रः सिद्धसाध्यादिवन्द्यः।
त्रिभुवनजनविघ्नध्वान्तविध्वंसदक्षो वितरतु गजवक्त्रः संततं मङ्गलं वः॥

जिनका कुम्भस्थल निरन्तर बहनेवाली मदधारासे धुला हुआ है; जो सबके शरणदाता हैं; जिनके शरीरमें बड़े-बड़े सर्प लिपटे रहते हैं; जो सिद्ध और साध्य आदि देवताओंके वन्दनीय हैं तथा तीनों लोकोंके निवासीजनोंके विघ्नान्धकारका विध्वंस करनेमें दक्ष (चतुर) हैं, वे गजानन गणेश आपलोगोंको सदा मंगल प्रदान करें।

अशेषविघ्नप्रतिषेधदक्षमन्त्राक्षतानामिव दिङ्मुखेषु।
विक्षेपलीला करशीकराणां करोतु वः प्रीतिमिभाननस्य॥

श्रीगजाननके शुण्डसे सम्पूर्ण दिशाओंमें जो जलकणोंके छींटे डालनेकी लीला होती है, वह समस्त विघ्नोंके निवारणमें समर्थ मन्त्राक्षपात-सी प्रतीत होती है; वह लीला आपलोगोंको प्रसन्नता प्रदान करे।

उच्चैरुत्तालगण्डस्थलबहुलगलद्दानपानप्रमत्तस्फीतालिव्रातगीतिश्रुतिविधृतिकलोन्मीलितार्धाक्षिपक्ष्मा।
भक्तप्रत्यूहपृथ्वीरुहनिवहसमुन्मूलनोच्चैरुदञ्चच्छुण्डादण्डाग्र उग्रार्भक इभवदनो वः स पायादपायात्॥

जिनके अत्यन्त उन्नत गण्डस्थलपर बहती हुई प्रचुर मदधाराके पानसे माते हुए झुंड-के झुंड भ्रमर गुंजार करते हैं और उस कलरवको सुनकर जो आनन्दातिरेकसे अपनी आँखें अधमुँदी कर लेते हैं; जिनके शुण्डादण्डका अग्रभाग भक्तोंके विघ्नरूपी वृक्ष-समूहोंको जड़-मूलसहित उखाड़ फेंकनेके लिये ऊँचा उठा हुआ है, वे रुद्रकुमार गजानन आपलोगोंको विनाश एवं संकटसे बचायें।

~~○~~

श्रीमहागणपतिसहस्त्रनामस्तोत्रम् (अर्थसहित)

तन्त्रों और पुराणोंमें वर्णित इष्टदेवताके सहस्त्रनामोंद्वारा उनकी स्तुति करनेकी पावन परम्परा अत्यन्त प्राचीन-कालसे चली आ रही है। इनके एक बारके पाठसे नाम-मन्त्रोंकी दस मालाका जप सम्पन्न हो जाता है। भगवान्‌के गुणों और लीला-चरित्रोंको लेकर ऋषियोंद्वारा उपदिष्ट सहस्त्रनामोंके पाठसे नाम-जप, लीला-चिन्तन और ध्यान—सब एक साथ सध जाते हैं; अतः सहस्त्रनामस्तोत्रोंके पठन और श्रवणकी बड़ी महिमा है। इनके द्वारा लोक-लाभ और परलोक-निर्वाह—दोनों सिद्ध होते हैं। भोग और मोक्ष भी करतलगतामलकवत् सुलभ हो जाते हैं।

एक-एक देवताके अनेकानेक सहस्त्रनाम उपलब्ध होते हैं। श्रीविष्णु, शिव, देवीकी विविध शक्तियों तथा श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा आदिके भी अनेक सहस्त्रनाम दृष्टिगोचर होते हैं। एक-एक अक्षरपर भी संकलित सहस्त्रनाम समुपलब्ध हैं। माता कालीके ककारादि और श्रीगणेशके गकारादि सहस्त्रनाम भी प्रकाशमें आये हैं। ये सभी सहस्त्रनाम उन-उन भगवद्विग्रहोंके उपासकोंके लिये बड़े महत्त्वकी वस्तुएँ हैं। इन सबके पठन, श्रवण, मनन और जपसे साधकोंका परम मंगल होता है। इस विशेषाङ्कमें जो इसी 'श्रीमहागणपतिसहस्त्रनाम' को देनेके लिये चुना गया है, इसका एक विशेष कारण है—

गणेशपुराणमें वर्णित इस 'श्रीमहागणपतिसहस्त्रनाम' का महत्त्व बहुत अधिक है। इसे त्रिपुरासुरपर विजय पानेमें असफल होनेपर भगवान् शिवने गणपतिकी अर्चना करके उनके ही श्रीमुखसे प्राप्त किया था। इसके पाठसे विघ्न-बाधाओंका शमन तो होता ही है, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्तिमें भी यह अमोघ है। इसकी फलश्रुति देखनेसे यह पूर्ण विश्वास हो जाता है कि 'श्रीमहागणपतिसहस्त्रनामस्तोत्र' भक्तवांछाकल्पतरु है। कोई भी ऐसा पारलौकिक एवं लौकिक अभीष्ट मनोरथ नहीं, जो इसके सेवनसे अवश्य ही सिद्ध न हो जाय। अनेक उपासकोंका यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि इसके जप या पाठसे असम्भव भी सम्भव हो जाते हैं, कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। इसीलिये इस परमोपयोगी जनहितकारी स्तोत्रको यहाँ अर्थसहित प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, हमारे श्रद्धालु पाठक भी इसके सेवनसे अपने अभीष्टकी सिद्धिमें अग्रसर होंगे। इसके नामोंका पाठ 'खद्योत' भाष्यके अनुसार है।

सहस्त्रनामोंद्वारा दूर्वांकुर आदिसे श्रीगणपतिकी अर्चना भी की जाती है। इसके लिये प्रत्येक नामके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगायी जाती है और 'नमः' पद जोड़ दिया जाता है। हम इन सभी नामोंका चतुर्थ्यन्त रूप भी देना चाहते थे, परंतु स्थानाभावके कारण ऐसा नहीं कर सके। सहस्त्रनामसे अर्चना करनेवाले उपासक उन नामोंके चतुर्थ्यन्त पदकी कल्पना स्वयं कर लें अथवा किसी विद्वान्‌से करवा लें। यहाँ उदाहरणके रूपमें दो-एक नाम लिखे जाते हैं—१. ॐ गणेश्वराय नमः—दूर्वाङ्कुरं समर्पयामि, २. ॐ गणक्रीडाय नमः—दूर्वाङ्कुरं समर्पयामि आदि।

—सम्पादक

व्यास उवाच

कथं नाम्नां सहस्रं स्वं गणेश उपदिष्टवान्।
शिवायैतन्ममाचक्ष्व लोकानुग्रहतत्पर॥ १॥

व्यासजीने पूछा—सम्पूर्ण लोकोंके ऊपर अनुग्रहमें तत्पर रहनेवाले पितामह! गणेशजीने भगवान् शिवके प्रति अपने सहस्रनामोंका उपदेश किस प्रकार किया, यह मुझे बताइये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

देव एवं पुरारातिः पुरत्रयजयोद्यमे।
अनर्चनाद् गणेशस्य जातो विघ्नाकुलः किल॥ २॥

ब्रह्माजीने कहा—ब्रह्मन्! कहते हैं, पूर्वकालमें त्रिपुरारि महादेवजीने जब त्रिपुरविजयके लिये उद्योग किया, उस समय पहले गणेशजीकी अर्चना न करनेके कारण वे विघ्नोंसे घिर गये॥ २॥

मनसा स विनिर्धार्य ततस्तद्विघ्नकारणम्।
महागणपतिं भक्त्या समभ्यर्च्य यथाविधि॥ ३॥
विघ्नप्रशमनोपायमपृच्छदपराजितः।
संतुष्टः पूजया शम्भोर्महागणपतिः स्वयम्॥ ४॥
सर्वविघ्नैकहरणं सर्वकामफलप्रदम्।
ततस्तस्मै स्वकं नाम्नां सहस्रमिदमब्रवीत्॥ ५॥

तदनन्तर विघ्नका क्या कारण है, यह मन-ही-मन निश्चय करके शिवजीने भक्तिभावसे महागणपतिकी विधिपूर्वक पूजा की और उन अपराजित देवने उनसे विघ्नशान्तिका उपाय पूछा। भगवान् शिवद्वारा की गयी उस पूजासे संतुष्ट होकर महागणपतिने स्वयं उनसे अपने इस सहस्रनामका वर्णन किया। यह समस्त विघ्नोंका एकमात्र हरण करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवांछित फलोंको देनेवाला है॥ ३—५॥

विनियोग

अस्य श्रीमहागणपतिसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य महागणपतिर्ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। महागणपतिर्देवता। गं बीजम्। हुं शक्तिः। स्वाहा कीलकम्। चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपादौ विनियोगः।

इस 'श्रीमहागणपतिसहस्रनामस्तोत्रमन्त्र' के महागणपति ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, महागणपति देवता हैं, गं बीज है, 'हुं' शक्ति है एवं 'स्वाहा' कीलक है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये जप आदिमें इसका विनियोग होता है।

ऋष्यादिन्यास

ॐ महागणपतये ऋषये नमः, शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नमः, मुखे। महागणपतिदेवतायै नमः, हृदि। गं बीजाय नमः, गुह्ये। हुं शक्तये नमः, पादयोः। स्वाहा कीलकाय नमः, नाभौ।

—इन छः वाक्योंको पृथक्-पृथक् पढ़कर क्रमशः मस्तक, मुख, हृदय, गुदाभाग, दोनों चरण तथा नाभिका स्पर्श दाहिने हाथसे करे।

ध्यान

हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसा-
दाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया स्वाङ्कस्थया संततम्।
बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक्चक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे॥

जिनका गजराजके समान मुख है; जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है; जिनकी अंगकान्ति अरुण है; जो तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं; जिन्हें हाथमें कमल धारण करनेवाली अंकगत प्रिया (सिद्धि-लक्ष्मी)-का परिष्वंग सदा प्राप्त है तथा जो अपने दस हाथोंमें क्रमशः बीजापूर (बिजौरा नीबू या अनार), गदा, धनुष, त्रिशूल, चक्र, कमल, पाश, उत्पल, धानकी बाल तथा अपना ही टूटा दाँत धारण करते हैं एवं शुण्डमें रत्नमय कलश लिये हुए हैं; उन गणपतिका मैं भजन (ध्यान) करता हूँ।

गण्डपालीगलद्दानपूरलालसमानसान्।
द्विरेफान् कर्णतालाभ्यां वारयन्तं मुहुर्मुहुः॥
कराग्रधृतमाणिक्यकुम्भवक्त्रविनिर्गतैः।
रत्नवर्षैः प्रीणयन्तं साधकान् मदविह्वलम्।
माणिक्यमुकुटोपेतं सर्वाभरणभूषितम्॥

गणेशजीके गण्डस्थलसे मदकी धारा बह रही है। उसका आस्वादन करनेके लिये भ्रमरोंकी भीड़ टूटी पड़ती है। उन भ्रमरोंको वे अपने ताडपत्रके समान कानोंद्वारा बारम्बार हटाते हैं। उन्होंने अपने शुण्डदण्डके अग्रभागमें माणिक्यनिर्मित कलश ले रखा है, जिसके मुखभागसे रत्नोंकी वर्षा हो रही है और जिसके द्वारा वे अपने धनार्थी साधक भक्तोंको तृप्त कर रहे हैं। कपोलोंपर झरते हुए मदसे वे विह्वल हैं। उनके मस्तकपर मणिमय मुकुट शोभा देता है तथा वे सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित हैं। ऐसे महागणपतिका मैं ध्यान करता हूँ।

इस तरह ध्यान करके '**ॐ गणेश्वरः**' इत्यादिसे आरम्भ होनेवाले 'श्रीमहागणपतिसहस्रनामस्तोत्र' का पाठ करना चाहिये—

ॐ गणेश्वरो गणक्रीडो गणनाथो गणाधिपः।
एकदंष्ट्रो वक्रतुण्डो गजवक्त्रो महोदरः॥ ६॥

ॐ सच्चिदानन्दस्वरूप, **१. गणेश्वरः**—आकाशादि प्रपंचके समूहको 'गण' कहते हैं, वह गण उनका स्वरूप है और वे उस गणके ईश्वर हैं, इसलिये जिन्हें 'गणेश्वर' कहा गया, वे श्रीगणेश; **२. गणक्रीडः***—गणक्रीड नामक गुरुस्वरूप; अथवा आकाशादि गणके भीतर प्रवेश करके क्रीड़ा करनेके कारण 'गणक्रीड' नामसे प्रसिद्ध; **३. गणनाथः**—जिनका गणन—गुणोंकी गणना करना अथः—मंगलमय है, वे भगवान् गणपति; **४. गणाधिपः**—आदित्यादि गणदेवताओंके अधिपति; **५. एकदंष्ट्रः**—भूमिका उद्धार अथवा जगत्का नाश करनेके निमित्त जिनकी एक ही दंष्ट्रा (दाढ़) है, वे भगवान् गणेश; **६. वक्रतुण्डः—वक्र**—टेढ़े **तुण्ड**—शुण्डदण्डसे युक्त; **७. गजवक्त्रः**—गज अर्थात् हाथीके समान मुखवाले; **८. महोदरः**—अनन्तकोटि ब्रह्माण्डको अपने भीतर रखनेके कारण महान् उदरवाले॥ ६॥

लम्बोदरो धूम्रवर्णो विकटो विघ्ननायकः।
सुमुखो दुर्मुखो बुद्धो विघ्नराजो गजाननः॥ ७॥

९. लम्बोदरः—ब्रह्माण्डके आलम्बनरूप उदरवाले; **१०. धूम्रवर्णः**—धूम्रके समान वर्णवाले; अथवा वायुका बीज धूम्रवर्णका है, तत्स्वरूप होनेके कारण गणेशजी भी 'धूम्रवर्ण' कहे गये हैं; **११. विकटः**—कट अर्थात् आवरणसे रहित विभुस्वरूप; **१२. विघ्ननायकः**—अभक्त समुदायके प्रति विघ्नोंका नयन करनेवाले; या विघ्नोंके अधिपति; अथवा प्राणियोंका विहनन एवं नयन करनेवाले; **१३. सुमुखः**—मुखका अर्थ है—आरम्भ; जिनसे सम्पूर्ण आरम्भ सुन्दर या शोभन होते हैं, वे; अथवा सुन्दर मुखवाले; **१४. दुर्मुखः**—जिनके मुखका स्पर्श करना दुष्कर है; अथवा अग्नि और सूर्यके रूपमें जिनकी ओर देखना अत्यन्त कठिन है, वे; **१५. बुद्धः**—नित्य बुद्धस्वरूप अविद्यावृत्तिके नाशक; अथवा बुद्धावतारस्वरूप; **१६. विघ्नराजः**—विघ्नोंके साथ विराजमान; अथवा विघ्नोंके राजा; किंवा जो विघ्न—भक्ताधीन तथा राजा हैं, वे भगवान् गणेश; **१७. गजाननः**—गजों—हाथियोंको अनुप्राणित—प्राणशक्तिसे सम्पन्न करनेवाले॥ ७॥

भीमः प्रमोद आमोदः सुरानन्दो मदोत्कटः।
हेरम्बः शम्बरः शम्भुर्लम्बकर्णो महाबलः॥ ८॥

१८. भीमः—दुष्टोंके लिये भयदायक होनेसे 'भीम' नामसे प्रसिद्ध; **१९. प्रमोदः**—अभीष्ट वस्तुके लाभसे होनेवाले सुखका नाम है—'प्रमोद', तत्स्वरूप; **२०. आमोदः**—प्रमोदसे पहले अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिके निश्चयसे जो सुख होता है, उसे 'आमोद' कहते हैं, ऐसे आमोदस्वरूप; **२१. सुरानन्दः**—देवताओंके लिये आनन्दप्रद; **२२. मदोत्कटः**—गण्डस्थलसे झरनेवाले मदके कारण उत्कट; अथवा मदसे आवरणका उत्क्रमण करनेवाले; **२३. हेरम्बः**—'हे' का अर्थ है—शंकर तथा 'रम्ब' का अर्थ है—शब्द। शैवागमके प्रवर्तक होनेसे 'हेरम्ब' नामवाले; अथवा उद्यम-शौर्यसे युक्त होनेके कारण उक्त नामसे प्रसिद्ध; **२४. शम्बरः**—'शम्' अर्थात् सुख है वर—श्रेष्ठ जिनमें, वे; **२५. शम्भुः**—जिनसे 'शम्' अर्थात् कल्याणका उद्भव होता है, वे; **२६. लम्बकर्णः**—भक्तजन जहाँ-कहीं भी गणेशजीका आवाहन या स्तवन आदि करते हैं, वहीं वे जैसे दूर न हों, इस तरह सुन लेते हैं। इसलिये लंबे—सुदूरतक सुननेवाले कान हैं जिनके, वे; **२७. महाबलः**—जिनके अनुग्रहसे बलासुर महान् हो गया, वे; अथवा महान् बलशाली॥ ८॥

नन्दनोऽलम्पटोऽभीरुर्मेघनादो गणञ्जयः।
विनायको विरूपाक्षो धीरशूरो वरप्रदः॥ ९॥

२८. नन्दनः—समृद्धिके हेतुभूत; **२९. अलम्पटः**—पर्याप्त पट—वस्त्रोंसे समृद्ध; अथवा पट ही जिनका अलंकार है, वे; **३०. अभीरुः**—भयशून्य; अथवा भीरु स्वभाववाली स्त्रीसे रहित; **३१. मेघनादः**—मेघगर्जनाके समान नाद या सिंहनाद करनेवाले; अथवा मेघोंके नाशक; **३२. गणञ्जयः**—शत्रुसमूहोंपर अनायास विजय पानेवाले; **३३. विनायकः**—'वि' अर्थात् पक्षिरूप जीवसमुदायके नेता या नायक; **३४. विरूपाक्षः**—

* गणेशके शिष्य गणक्रीड़ हैं, जो विकटके गुरु हैं, विकटके शिष्य विघ्ननायक हैं। ये तीनों गुरु एवं गणेशरूप कहे गये हैं। (खद्योत-भाष्य)

विरूप—विकट दीखनेवाले अग्नि, सूर्य तथा चन्द्ररूप नेत्रोंसे युक्त; ३५. **धीरशूरः**—धैर्य और शौर्यसे सम्पन्न; ३६. **वरप्रदः**—अपने भक्तजनोंको उत्तम एवं मनोवांछित वर प्रदान करनेवाले॥ ९॥

महागणपतिर्बुद्धिप्रियः क्षिप्रप्रसादनः।
रुद्रप्रियो गणाध्यक्ष उमापुत्रोऽघनाशनः॥ १०॥

३७. **महागणपतिः**—गुल्म आदि सेना-भेदोंको 'गण' कहते हैं; वे जिनकी अधीनतामें **महान्**—बहुसंख्यक हैं, वे अथवा महागणोंके अधिपति; ३८. **बुद्धिप्रियः**—निश्चयात्मिका बुद्धि जिनको प्रिय है, वे; अर्थात् संशयनिवारक; ३९. **क्षिप्रप्रसादनः**—भक्तोंद्वारा ध्यान किये जानेपर उनके ऊपर शीघ्र प्रसन्न होनेवाले; ४०. **रुद्रप्रियः**—ग्यारहों रुद्रोंके प्रिय; ४१. **गणाध्यक्षः**—छत्तीस तत्त्वरूप गणसमुदायके पालक; ४२. **उमापुत्रः**—पार्वतीके पुत्र (उमाका पुन्नामक नरकलोकसे उद्धार करनेवाले); ४३. **अघनाशनः**—लम्बोदर या महोदर होनेपर भी स्वल्पमात्र नैवेद्यसे तृप्त होनेवाले (अघन—स्वल्प है अशन—भोजन जिनका, वे); अथवा अघके फलस्वरूप दुःखोंका नाश करनेवाले॥ १०॥

कुमारगुरुरीशानपुत्रो मूषकवाहनः।
सिद्धिप्रियः सिद्धिपतिः सिद्धः सिद्धिविनायकः॥ ११॥

४४. **कुमारगुरुः**—सनत्कुमारस्वरूप होते हुए विद्याका उपदेश करनेके कारण गुरु; अथवा कुमार कार्तिकेयसे भी पहले उत्पन्न होनेके कारण उनके ज्येष्ठ भ्राता; ४५. **ईशानपुत्रः**—भगवान् शंकरके आत्मज; ४६. **मूषकवाहनः**—मूषक (चूहे)-को वाहन बनानेके कारण उक्त नामसे प्रसिद्ध; ४७. **सिद्धिप्रियः**—अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ जिन्हें प्रिय हैं, वे; ४८. **सिद्धिपतिः**—अणिमा आदि आठ सिद्धियोंके पालक; ४९. **सिद्धः**—गोरक्षनाथ आदि सिद्धस्वरूप; ५०. **सिद्धिविनायकः**—भक्तोंतक सिद्धिका नयन करनेवाले (भक्तोंको सिद्धि प्राप्त करानेवाले)॥ ११॥

अविघ्नस्तुम्बुरुः सिंहवाहनो मोहिनीप्रियः।
कटंकटो राजपुत्रः शालकः सम्मितोऽमितः॥ १२॥

५१. **अविघ्नः**—अविभाव; अर्थात् पशुताका हनन (हरण) करनेवाले; अथवा विघ्नोंसे रहित; ५२. **तुम्बुरुः**—तुम्ब (अलावू या लौकी)-के द्वारा जो रव करता है, वह 'तुम्बुरु' है। तुम्बुरु नाम है—वीणाका। वीणापर गणपतिका यशोगान होनेसे वे 'तुम्बुरु' नामसे प्रसिद्ध हैं; ५३. **सिंहवाहनः**—मोर और मूषककी भाँति सिंहको भी वाहन बनानेवाले; अथवा सिंहवाहिनीदेवीसे अभिन्न होनेके कारण सिंहवाहन; ५४. **मोहिनीप्रियः**—मोहिनीपति शिवसे अभिन्न ५५. **कटंकटः**—'कट' का अर्थ है—आवरण या अज्ञान; गणेशजी ज्ञान प्रदान करके उस अज्ञानको भी ढक देते या मिटा देते हैं। इसलिये 'कटंकट' नामसे प्रसिद्ध हैं; ५६. **राजपुत्रः**—राजा वरेण्यके यहाँ पुत्रवत् आचरण करनेवाले; अथवा राजा—चन्द्रमाको पुत्रवत् माननेवाले; ५७. **शालकः**—'श' 'परोक्ष' अर्थमें है और 'अलक' शब्द 'केश' या अंशका वाचक है। जिनका एक अंश भी प्रत्यक्ष नहीं है, जो अतीन्द्रिय हैं, वे 'शालक' हैं, अथवा शालित-शोभित होते हैं, इसलिये 'शालक' हैं; ५८. **सम्मितः**—सर्वव्यापी होते हुए भी अंगुष्ठमात्रसे मित; ५९. **अमितः**—अणु, स्थूल, ह्रस्व और दीर्घ—चारों प्रकारके प्रमाणोंसे मित न होनेवाले॥ १२॥

कूष्माण्डसामसम्भूतिर्दुर्जयो धूर्जयो जयः।
भूपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिरव्ययः॥ १३॥

६०. **कूष्माण्डसामसम्भूतिः**—**'कूष्माण्डैर्जुहुयात्।'**—इस कूष्माण्ड-होमविधिमें जो प्रसिद्ध मन्त्र या साम हैं, वे गणेशजीकी विभूति हैं। अतएव वे उक्त नामसे प्रसिद्ध हैं; ६१. **दुर्जयः**—बलवान् दैत्य जिन्हें मनसे भी जीत नहीं सकते, ऐसे; ६२. **धूर्जयः**—जगच्चक्रकी धुरीको अनायास वहन करनेवाले; ६३. **जयः**—जयस्वरूप; अथवा जय—महाभारत आदि इतिहास-पुराण जिनके रूप हैं, वे; ६४. **भूपतिः**—पृथ्वीके पालक, अथवा भूपति-नामसे प्रसिद्ध अग्निभ्राता; ६५. **भुवनपतिः**—समस्त भुवनोंके स्वामी; अथवा उक्त नामवाले अग्निभ्राता; ६६. **भूतानाम्पतिः**—समस्त भूतोंके पालक अथवा भूतपति नामक अग्निभ्राता; ६७. **अव्ययः**—अविनाशी॥ १३॥

विश्वकर्ता विश्वमुखो विश्वरूपो निधिर्घृणिः।
कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः॥ १४॥

६८. **विश्वकर्ता**—संसारके स्रष्टा; ६९. **विश्वमुखः**—जिनसे विश्वका मुख आरम्भ हुआ है, वे; अथवा विश्व जिनके मुखमें है; या जो मुखकी भाँति विश्वकी वृत्तिके हेतु हैं, वे गणेश; ७०. **विश्वरूपः**—सम्पूर्ण दृश्य-प्रपंच जिनका ही रूप है, वे; अथवा त्वष्टा प्रजापतिके पुत्र देवपुरोहित विश्वरूपसे अभिन्न;

७१. **निधिः**—आकाश आदि सम्पूर्ण जगत्समूह जिनमें नितरां आहित या धृत है, वे; अथवा महापद्म आदि नव-निधि-स्वरूप; **७२. घृणिः**—सूर्यस्वरूप; **७३. कविः**—सृष्टिरूप काव्यके कर्ता; **७४. कवीनामृषभः**—कवियोंमें श्रेष्ठ; **७५. ब्रह्मण्यः**—ब्राह्मण, वेद, तप तथा ब्रह्माके प्रति सद्भाव रखनेवाले; **७६. ब्रह्मणस्पतिः**—ब्रह्म अर्थात् वाणीके अधिपति ॥ १४ ॥

ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिप्रियपतिप्रियः।
हिरण्मयपुरान्तःस्थः सूर्यमण्डलमध्यगः ॥ १५ ॥

७७. ज्येष्ठराजः—'ज्येष्ठ'-संज्ञक साममें राजमान; **७८. निधिपतिः**—नव निधियोंके परिपालक; **७९. निधिप्रियपतिप्रियः**—निधियोंको प्रिय माननेवाले जो कुबेर आदि राजा हैं, उनके द्वारा भी उपास्य; **८०. हिरण्मयपुरान्तःस्थः**—हिरण्यपुर-दहराकाशके मध्यमें विराजमान; (चिन्मय ब्रह्मके निवासस्थान अन्तर्हृदयमें विद्यमान); **८१. सूर्यमण्डलमध्यगः**—सूर्यमण्डलके भीतर स्थित ॥ १५ ॥

कराहतिध्वस्तसिन्धुसलिलः पूषदन्तभित्।
उमाङ्ककेलिकुतुकी मुक्तिदः कुलपालनः ॥ १६ ॥

८२. कराहतिध्वस्तसिन्धुसलिलः—जिन्होंने अपने शुण्ड-दण्डके आघातसे समुद्रके जलको विध्वस्त (निष्कासित) कर दिया था, वे; **८३. पूषदन्तभित्**—वीरभद्ररूपसे दक्षयज्ञमें पूषाके दाँतको तोड़नेवाले; **८४. उमाङ्ककेलिकुतुकी**—उमाके अंकमें बैठकर बालोचित क्रीड़ा करनेका कौतूहल रखनेवाले; **८५. मुक्तिदः**—कारागारकी बेड़ीसे छुड़ानेवाले तथा मोक्षदाता; **८६. कुलपालनः**—वंशके तथा कौलतन्त्रके भी पालक ॥ १६ ॥

किरीटी कुण्डली हारी वनमाली मनोमयः।
वैमुख्यहतदैत्यश्रीः पादाहतिजितक्षितिः ॥ १७ ॥

८७. किरीटी—मस्तकपर मुकुट धारण करनेवाले; अथवा अर्जुनस्वरूप; **८८. कुण्डली**—कानोंमें कुण्डल पहननेवाले; अथवा शेषनागरूपधारी; **८९. हारी**—मुक्ता आदि मणियोंकी माला धारण करनेवाले, अथवा अत्यन्त मनोहर; **९०. वनमाली**—कंधेसे लेकर पैरोंतक लटकनेवाली 'वनमाला' धारण करनेवाले; **९१. मनोमयः**—अपने संकल्पद्वारा निर्मित एक शरीर धारण करनेवाले; **९२. वैमुख्यहतदैत्यश्रीः**—जिनके विमुख हो जानेके कारण दैत्योंकी लक्ष्मी नष्ट हो गयी, वे; **९३. पादाहतिजितक्षितिः**—अपने पैरोंके आघातसे पृथ्वीको नीचे झुका देनेवाले ॥ १७ ॥

सद्योजातस्वर्णमुञ्जमेखली दुर्निमित्तहृत्।
दुःस्वप्नहृत् प्रसहनो गुणी नादप्रतिष्ठितः ॥ १८ ॥

९४. सद्योजातस्वर्णमुञ्जमेखली—तत्काल तैयार की गयी स्वर्णमय मुंजकी मेखलासे मण्डित; **९५. दुर्निमित्तहृत्**—देवमूर्तियोंके फूटने, भूकम्प होने तथा महान् उल्कापात आदिके द्वारा सूचित जो दुर्निमित्त (अपशकुन) हैं, उनका हनन करनेवाले; **९६. दुःस्वप्नहृत्**—बुरे स्वप्नोंके दुष्प्रभावको दूर करके उन्हें सुस्वप्नमें परिणत कर देनेवाले; **९७. प्रसहनः**—भक्तोंके अपराधको सहन करनेवाले भगवान्; **९८. गुणी**—अनेक सद्गुणोंसे सम्पन्न; **९९. नादप्रतिष्ठितः**—प्रणवनादके वाच्यार्थरूपसे प्रतिष्ठित ॥ १८ ॥

सुरूपः सर्वनेत्राधिवासो वीरासनाश्रयः।
पीताम्बरः खण्डरदः खण्डेन्दुकृतशेखरः ॥ १९ ॥

१००. सुरूपः—अधिक लावण्यसे युक्त; अथवा उत्तम तत्त्वका निरूपण करनेवाले; **१०१. सर्वनेत्राधिवासः**—सबके नेत्रोंमें द्रष्टा पुरुषके रूपमें निवास करनेवाले; **१०२. वीरासनाश्रयः**—बायें घुटनेपर दायाँ पैर रखकर बैठना 'वीरासन' कहलाता है, ऐसे वीरासनसे बैठनेवाले; **१०३. पीताम्बरः**—आकाशको पी जानेवाले; अथवा पीतवस्त्र धारण करनेवाले; **१०४. खण्डरदः**—खण्डित दायाँ दाँत धारण करनेवाले; **१०५. खण्डेन्दुकृतशेखरः**—भालदेशमें आधे चन्द्रमाको धारण करनेवाले ॥ १९ ॥

चित्राङ्कश्यामदशनो भालचन्द्रश्चतुर्भुजः।
योगाधिपस्तारकस्थः पुरुषो गजकर्णकः ॥ २० ॥

१०६. चित्राङ्कश्यामदशनः—जिनमें श्यामरंगकी अधिकता है, ऐसे; चित्रोंसे अंकित या अलंकृत श्याम दन्तवाले; **१०७. भालचन्द्रः**—भालदेशमें चन्द्रमाको धारण करनेवाले; अथवा अष्टमीके चन्द्रमाकी भाँति ललाटवाले; **१०८. चतुर्भुजः**—चार भुजावाले; **१०९. योगाधिपः**—'लिंगपुराण' में वर्णित जो लकुलीशादि अट्ठाईस योगाचार्यावतार हैं, उनसे अभिन्न रूपवाले; अथवा योगेश्वर; **११०. तारकस्थः**—तारक अर्थात्

प्रणव-मन्त्रके अभिधेय; **१११. पुरुषः**—समस्त पुरों—शरीरोंमें शयन करनेवाले साक्षी आत्मा; **११२. गजकर्णकः**—हाथीके समान विशाल कानवाले ॥ २० ॥

गणाधिराजो विजयस्थिरो गजपतिध्वजी।
देवदेवः स्मरप्राणदीपको वायुकीलकः ॥ २१ ॥

११३. गणाधिराजः—काव्यके पद्योंमें जो मगण, यगण, रगण और सगण आदि गण आते हैं, उनसे राजमान—शोभायमान; अथवा गणोंके अधिपति; **११४. विजयस्थिरः**—भक्तोंकी विजयमें स्थिररूपसे प्रवृत्त; **११५. गजपतिध्वजी**—अपने ध्वजमें गजराजका चिह्न धारण करनेवाले; **११६. देवदेवः**—देवताओंके भी देवता—इन्द्र आदि देवताओंके उपास्य; **११७. स्मरप्राणदीपकः**—रुद्रद्वारा कामदेवके शरीरके दग्ध कर दिये जानेपर भी उसके प्राणोंको उज्जीवित करनेवाले; **११८. वायुकीलकः**—नवद्वारवाले शरीरमें प्राणोंका स्तम्भन करनेवाले ॥ २१ ॥

विपश्चिद्वरदो नादोन्नादभिन्नबलाहकः।
वराहरदनो मृत्युञ्जयो व्याघ्राजिनाम्बरः ॥ २२ ॥

११९. विपश्चिद्वरदः—राजा विपश्चित्‌को वर देनेवाले; **१२०. नादोन्नादभिन्नबलाहकः**—अपने मन्द या उच्च नाद (घोष)-से मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले; **१२१. वराहरदनः**—महावराहकी दंष्ट्रा (दाढ़)-की शोभाको तिरस्कृत करनेवाले एक दाँतसे सुशोभित; **१२२. मृत्युञ्जयः**—काल, मृत्यु अथवा प्रमादपर विजय पानेवाले; **१२३. व्याघ्राजिनाम्बरः**—वस्त्रके स्थानमें व्याघ्रचर्मको धारण करनेवाले ॥ २२ ॥

इच्छाशक्तिधरो देवत्राता दैत्यविमर्दनः।
शम्भुवक्त्रोद्भवः शम्भुकोपहा शम्भुहास्यभूः ॥ २३ ॥

१२४. इच्छाशक्तिधरः—जगत्‌की सृष्टिकी इच्छा धारण करनेवाले होनेसे इच्छाशक्तिधारी; **१२५. देवत्राता**—दैत्योंके भयसे देवताओंकी रक्षा करनेवाले; **१२६. दैत्यविमर्दनः**—दैत्योंका संहार करनेवाले; **१२७. शम्भुवक्त्रोद्भवः**—शिवके मुखसे प्रकट होनेवाले; **१२८. शम्भुकोपहा**—अपनी बाल-लीलाओंसे भगवान् शिवके क्रोधको हर लेनेवाले; **१२९. शम्भुहास्यभूः**—नादान बालककी भाँति चेष्टा करके शिवको हँसा देनेवाले ॥ २३ ॥

शम्भुतेजाः शिवाशोकहारी गौरीसुखावहः।
उमाङ्गमलजो गौरीतेजोभूः स्वर्धुनीभवः ॥ २४ ॥

१३०. शम्भुतेजाः—शिवके तेजसे सम्पन्न; **१३१. शिवाशोकहारी**—महिषासुर आदिके मर्दनकालमें शिवा (पार्वती)- के बल एवं उत्साहको बढ़ाकर उनके शोकको हर लेनेवाले; **१३२. गौरीसुखावहः**—पार्वतीजीको सुख पहुँचानेवाले; **१३३. उमाङ्गमलजः**—गिरिराजनन्दिनी उमाके अंगोंमें लगे हुए उबटनके मैलसे प्रकट हुए शरीरमें प्रवेश करके उसे सप्राण बनानेवाले; **१३४. गौरीतेजोभूः**—गौरीके तेजसे उत्पन्न; अथवा पार्वतीके तेजकी आधारभूमि; **१३५. स्वर्धुनीभवः**—गंगाजीसे उत्पन्न स्वामिकार्तिकेयसे अभिन्न; अथवा गंगाजीकी उत्पत्तिके हेतुभूत ॥ २४ ॥

यज्ञकायो महानादो गिरिवर्ष्मा शुभाननः।
सर्वात्मा सर्वदेवात्मा ब्रह्ममूर्धा ककुप्श्रुतिः ॥ २५ ॥

१३६. यज्ञकायः—अश्वमेधादि यज्ञस्वरूप; **१३७. महानादः**—उच्चस्वरसे गर्जना करनेवाले; **१३८. गिरिवर्ष्मा**—विराट्‌स्वरूपसे पर्वतोंको शरीरके अवयवरूपमें धारण करनेवाले; **१३९. शुभाननः**—शुभदायक मुखवाले; अथवा मंगल नामवाले प्राणके जनक; **१४०. सर्वात्मा**—सर्वस्वरूप; **१४१. सर्वदेवात्मा**—सकल देवरूप; **१४२. ब्रह्ममूर्धा**—ब्रह्म ही जिनका मस्तक है, वे; **१४३. ककुप्श्रुतिः**—दिशाओंको कानके रूपमें धारण करनेवाले ॥ २५ ॥

ब्रह्माण्डकुम्भश्चिद्व्योमभालः सत्यशिरोरुहः।
जगज्जन्मलयोन्मेषनिमेषोऽग्न्यर्कसोमदृक् ॥ २६ ॥

१४४. ब्रह्माण्डकुम्भः—विशाल ब्रह्माण्ड-कपालद्वय औंधा होकर जिनके लिये घटके समान प्रतीत होता है, वे; **१४५. चिद्व्योमभालः**—चिन्मय आकाशरूप भाल (ब्रह्मरन्ध्र)-वाले; **१४६. सत्यशिरोरुहः**—सत्यलोकरूपी केशवाले; **१४७. जगज्जन्मलयोन्मेषनिमेषः**—जिनके नेत्रके खुलनेपर जगत्‌का जन्म होता है और बंद होनेपर उसका संहार, वे परमेश्वर; **१४८. अग्न्यर्कसोमदृक्**—अग्नि, सूर्य और चन्द्ररूपी नेत्रवाले ॥ २६ ॥

गिरीन्द्रैकरदो धर्माधर्मोष्ठः सामबृंहितः।
ग्रहर्क्षदशनो वाणीजिह्वो वासवनासिकः ॥ २७ ॥

१४९. गिरीन्द्रैकरदः—गिरिराज मेरु जिनका एक दाँत है, वे विराट् पुरुष; **१५०. धर्माधर्मोष्ठः**—धर्म और अधर्मरूप ओष्ठवाले; **१५१. सामबृंहितः**—

सामवेदरूप गर्जनावाले; १५२. **ग्रहर्क्षदशनः**—सूर्य आदि ग्रहों और कृत्तिका आदि नक्षत्रोंको अपने मुखमें दाँतोंके रूपमें धारण करनेवाले; १५३. **वाणीजिह्वः**—वाणीस्वरूप जिह्वावाले; १५४. **वासवनासिकः**—इन्द्ररूप नासिकावाले॥ २७॥

कुलाचलांसः सोमार्कघण्टो रुद्रशिरोधरः।
नदीनदभुजः सर्पाङ्गुलीकस्तारकानखः॥ २८॥

१५५. **कुलाचलांसः**—विन्ध्य आदि कुलपर्वतरूप कंधोंवाले; १५६. **सोमार्कघण्टः**—चन्द्रमा और सूर्यरूप घण्टावाले; १५७. **रुद्रशिरोधरः**—रुद्ररूपी गर्दनवाले; १५८. **नदीनदभुजः**—गंगा आदि नदियाँ और शोणभद्र आदि नद जिनकी भुजाएँ हैं, वे; १५९. **सर्पाङ्गुलीकः**—शेष आदि नाग जिनकी अंगुलियोंमें हैं, वे; १६०. **तारकानखः**—ध्रुव आदि तारोंको नखके रूपमें धारण करनेवाले॥ २८॥

भ्रूमध्यसंस्थितकरो ब्रह्मविद्यामदोत्कटः।
व्योमनाभिः श्रीहृदयो मेरुपृष्ठोऽर्णवोदरः॥ २९॥

१६१. **भ्रूमध्यसंस्थितकरः**—भौंहोंके मध्यभागमें स्थित शुण्डदण्डवाले; १६२. **ब्रह्मविद्यामदोत्कटः**—ब्रह्मविद्यारूपी मदसे उद्भिन्न गण्डस्थलवाले; १६३. **व्योमनाभिः**—आकाशरूप नाभिवाले; १६४. **श्रीहृदयः**—ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद—इन तीनोंको 'श्री' कहते हैं। इनमें संलग्न है हृदय जिनका, ऐसे; १६५. **मेरुपृष्ठः**—सुमेरु पर्वतरूपी पृष्ठभागवाले; १६६. **अर्णवोदरः**—सारे समुद्र जिनके उदरान्तर्गत जल हैं, वे॥ २९॥

कुक्षिस्थयक्षगन्धर्वरक्षःकिंनरमानुषः।
पृथ्वीकटिः सृष्टिलिङ्गः शैलोरुर्दस्रजानुकः॥ ३०॥

१६७. **कुक्षिस्थयक्षगन्धर्वरक्षःकिंनरमानुषः**—यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, किंनर और मनुष्य जिनकी कुक्षिके अन्तर्गत आँतोंके रूपमें विराजमान हैं, वे; १६८. **पृथ्वीकटिः**—विराट् रूपमें पृथ्वी ही जिनका कटिभाग है, वे; १६९. **सृष्टिलिङ्गः**—मैथुनी सृष्टि जिनकी जननेन्द्रियके स्थानमें हैं, वे; १७०. **शैलोरुः**—पर्वत ही जिनके ऊरु (जाँघें) हैं, वे; १७१. **दस्रजानुकः**—दोनों अश्विनीकुमार जिनके दो घुटने हैं, वे॥ ३०॥

पातालजङ्घो मुनिपात्कालाङ्गुष्ठस्त्रयीतनुः।
ज्योतिर्मण्डललाङ्गूलो हृदयालाननिश्चलः॥ ३१॥

१७२. **पातालजङ्घः**—सातों पाताल जिनकी पिंडलियोंके स्थानमें हैं, वे; १७३ **मुनिपात्**—चरणोंकी सेवामें संलग्न मुनि ही जिनके चरण हैं, वे; १७४. **कालाङ्गुष्ठः**—महाकालरूप पादांगुष्ठवाले; १७५. **त्रयीतनुः**—वेदत्रयीरूप शरीरवाले; १७६. **ज्योतिर्मण्डललाङ्गूलः**—शिशुमार संज्ञक ज्योतिर्मण्डल (तारोंका समूह) जिनकी पूँछ है, वे; १७७. **हृदयालाननिश्चलः**—भक्तोंके हृदयरूपी आलान (खंभे)-में बँधकर निश्चलरूपसे रहनेवाले॥ ३१॥

हृत्पद्मकर्णिकाशालिवियत्केलिसरोवरः।
सद्भक्तध्याननिगडः पूजावारीनिवारितः॥ ३२॥

१७८. **हृत्पद्मकर्णिकाशालिवियत्केलिसरोवरः**—हृदयकमलकी कर्णिकासे सुशोभित दहराकाश जिनका क्रीडासरोवर है, वे; १७९. **सद्भक्तध्याननिगडः**—श्रेष्ठ भक्तजन जिन्हें ध्यानरूपी निगड (बन्धन)-से आबद्ध कर लेते हैं, वे; १८०. **पूजावारीनिवारितः**—पूजारूपी साँकलसे अवरुद्ध होनेवाले॥ ३२॥

प्रतापी कश्यपसुतो गणपो विष्टपी बली।
यशस्वी धार्मिकः स्वोजाः प्रथमः प्रथमेश्वरः॥ ३३॥

१८१. **प्रतापी**—देवशत्रुओंको ताप देनेवाले; अथवा पराक्रमसम्पन्न; १८२. **कश्यपसुतः**—महोत्कट विनायक-नामसे कश्यपमुनिके पुत्ररूपमें अवतीर्ण; १८३. **गणपः**—अध्वर्यु और होता आदि गणोंके पालक; १८४. **विष्टपी**—सम्पूर्ण भुवनोंके आधार; १८५ **बली**—बलसम्पन्न; १८६. **यशस्वी**—पुण्य कीर्तिवाले; १८७. **धार्मिकः**—धर्मकी वृद्धि करनेवाले; १८८. **स्वोजाः**—श्रेष्ठ ओजवाले; १८९. **प्रथमः**—सब कार्योंमें प्रथमपूज्य देवता; १९०. **प्रथमेश्वरः**—मुख्य देवता—ब्रह्मा, विष्णु और शिवके भी ईश्वर॥ ३३॥

चिन्तामणिद्वीपपतिः कल्पद्रुमवनालयः।
रत्नमण्डपमध्यस्थो रत्नसिंहासनाश्रयः॥ ३४॥

१९१. **चिन्तामणिद्वीपपतिः**—चिन्तामणि नामक द्वीपके स्वामी; १९२. **कल्पद्रुमवनालयः**—कल्पवृक्षोंके वनमें वास करनेवाले; १९३. **रत्नमण्डपमध्यस्थः**—रत्नमय मण्डपके मध्यमें विराजमान; १९४. **रत्नसिंहासनाश्रयः**—रत्नसिंहासनपर आसीन॥ ३४॥

तीव्राशिरोद्धृतपदो ज्वालिनीमौलिलालितः।
नन्दानन्दितपीठश्रीर्भोगदाभूषितासनः॥ ३५॥

१९५. **तीव्राशिरोद्धृतपदः**[1]—तीव्रा नामक पीठशक्तिने जिनके चरणोंको अपने मस्तकपर धारण कर रखा है, वे भगवान् गणेश; १९६. **ज्वालिनी-मौलिलालितः**—ज्वालिनी नामक शक्ति अपने मुकुटसे जिनके चरणोंका स्पर्श करके लाड़ लड़ाती है, वे; १९७. **नन्दानन्दितपीठश्रीः**—नन्दा नामक शक्ति जिनके पीठकी शोभाका अभिनन्दन करती है, वे; १९८. **भोगदाभूषितासनः**—जिनका सिंहासन भोगदा नामक पीठशक्तिसे विभूषित है, वे॥ ३५॥

सकामदायिनीपीठः स्फुरदुग्रासनाश्रयः।
तेजोवतीशिरोरत्नं सत्यानित्यावतंसितः॥ ३६॥

१९९. **सकामदायिनीपीठः**—जिनका पीठ कामदायिनी-शक्तिसे समलंकृत है, वे; २००. **स्फुर-दुग्रासनाश्रयः**— तेजस्विनी उग्रा-शक्तिसे सुशोभित आसनपर बैठनेवाले; २०१. **तेजोवतीशिरोरत्नं**—तेजोवती नामक शक्तिके सिरके मणिरत्न; २०२. **सत्या-नित्यावतंसितः**—सत्या नामक शक्ति जिन्हें नित्य अपने मस्तकका आभूषण बनाये रखती है, वे॥ ३६॥

सविघ्ननाशिनीपीठः सर्वशक्त्यम्बुजाश्रयः।
लिपिपद्मासनाधारो वह्निधामत्रयाश्रयः॥ ३७॥

२०३. **सविघ्ननाशिनीपीठः**—विघ्ननाशिनी नामक शक्तिसे सुशोभित पीठवाले; २०४. **सर्वशक्त्यम्बुजाश्रयः**—सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त कमलके आसनपर विराजमान; २०५. **लिपि[2]पद्मासनाधारः**—अक्षरोंसे युक्त कमल (मातृकापद्म)-के आसनपर बैठनेवाले; २०६. **वह्नि-धामत्रयाश्रयः**—कमलकी कर्णिकाके ऊपर विराजमान सूर्य, चन्द्र और अग्निसंज्ञक त्रिविध तेजोमण्डलमें स्थित॥ ३७॥

उन्नतप्रपदो गूढगुल्फः संवृतपार्ष्णिकः।
पीनजङ्घः श्लिष्टजानुः स्थूलोरुः प्रोन्नमत्कटिः॥ ३८॥

२०७. **उन्नतप्रपदः**—जिनके पैरोंका अग्रभाग कूर्मपीठके समान ऊँचा है, वे; २०८. **गूढगुल्फः**—जिनके गुल्फ (टखने) मांससे छिपे हुए हैं, वे; २०९. **संवृतपार्ष्णिकः**—जिनके टखनेके नीचेका भाग भी मांसल है, वे; २१०. **पीनजङ्घः**—पीन (मांसल) पिंडलियोंवाले; २११. **श्लिष्टजानुः**—जिनके दोनों घुटने स्पष्ट नहीं दिखायी देते, वे; २१२. **स्थूलोरुः**—मोटी जाँघवाले; २१३. **प्रोन्नमत्कटिः**—ऊँचे कटिप्रदेशवाले॥ ३८॥

निम्ननाभिः स्थूलकुक्षिः पीनवक्षा बृहद्भुजः।
पीनस्कन्धः कम्बुकण्ठो लम्बोष्ठो लम्बनासिकः॥ ३९॥

२१४. **निम्ननाभिः**—गहरी नाभिवाले; २१५. **स्थूलकुक्षिः**—लम्बोदर; २१६. **पीनवक्षाः**—ऊँची छातीवाले; २१७. **बृहद्भुजः**—बड़ी बाँहवाले; २१८. **पीनस्कन्धः**—मांसल कंधेवाले; २१९. **कम्बुकण्ठः**—त्रिवलीयुक्त शंखाकार ग्रीवावाले; २२०. **लम्बोष्ठः**—लटकते हुए ओठोंवाले; २२१. **लम्बनासिकः**—लम्बी नासिका (सूँड़)-वाले॥ ३९॥

भग्नवामरदस्तुङ्गसव्यदन्तो महाहनुः।
ह्रस्वनेत्रत्रयः शूर्पकर्णो निबिडमस्तकः॥ ४०॥

२२२. **भग्नवामरदः**—जिनके बायें दाँतका अग्रभाग टूट गया है, वे; २२३. **तुङ्गसव्यदन्तः**—जिनका दाहिना दाँत ऊँचा है, वे; २२४. **महाहनुः**—लम्बी ठोढ़ीवाले; २२५. **ह्रस्वनेत्रत्रयः**—छोटे-छोटे तीन नेत्रोंवाले; २२६. **शूर्पकर्णः**—सूपके समान विशाल कानवाले; २२७. **निबिडमस्तकः**—घनीभूत कठोर मस्तकवाले॥ ४०॥

स्तबकाकारकुम्भाग्रो रत्नमौलिर्निरङ्कुशः।
सर्पहारकटीसूत्रः सर्पयज्ञोपवीतवान्॥ ४१॥

२२८. **स्तबकाकारकुम्भाग्रः**—जिनके कुम्भस्थल (मस्तक)-का अग्रभाग गुच्छके समान दिखायी देता है, वे; २२९. **रत्नमौलिः**—रत्नमय मुकुटसे मण्डित; २३०. **निरङ्कुशः**—जिनके कुम्भस्थलपर कभी अंकुशका स्पर्श नहीं होता, वे; अथवा परम स्वतन्त्र; २३१. **सर्पहारकटीसूत्रः**—जो सर्पाकार हार और

१. तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामदायिनी, उग्रा, तेजोवती, सत्या और विघ्ननाशिनी—ये नौ पीठशक्तियाँ हैं। पीठगत अष्टदल कमल और उसकी कर्णिकामें ये पूजित होती हैं। इन नौ शक्तियों और कमलके सम्बन्धसे यहाँ क्रमशः दस नाम वर्णित हुए हैं।

२. अष्टदल कमलके आठ किंजल्कोंमें क्रमशः दो-दो स्वर, आठ दलोंमें क्रमशः क, च, ट, त, प, य, श—इन आठ वर्गोंको तथा कर्णिकामें प्रसादको अंकित करनेपर उसे 'लिपिपद्म' या 'मातृकापद्म' कहते हैं। (खद्योत-भाष्य)

कटिसूत्र (मेखला) धारण करते हैं, वे; **२३२. सर्पयज्ञोपवीतवान्**—सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करनेवाले ॥ ४१ ॥

सर्पकोटीरकटकः सर्पग्रैवेयकाङ्गदः।
सर्पकक्ष्योदराबन्धः सर्पराजोत्तरीयकः ॥ ४२ ॥

२३३. सर्पकोटीरकटकः—मुकुट और वलयके रूपमें सर्पको धारण करनेवाले; **२३४. सर्पग्रैवेयकाङ्गदः**—सर्पके ही कण्ठहार और बाजूबंद पहननेवाले; **२३५. सर्पकक्ष्योदराबन्धः**—करधनीके रूपमें सर्पको ही धारण करनेवाले; **२३६. सर्पराजोत्तरीयकः**—नागराज वासुकिको उत्तरीयके रूपमें धारण करनेवाले ॥ ४२ ॥

रक्तो रक्ताम्बरधरो रक्तमाल्यविभूषणः।
रक्तेक्षणो रक्तकरो रक्तताल्वोष्ठपल्लवः ॥ ४३ ॥

२३७. रक्तः—रक्तवर्ण; **२३८. रक्ताम्बरधरः**—लाल वस्त्र धारण करनेवाले; **२३९. रक्तमाल्यविभूषणः**—लाल रंगके ही हार और आभूषण धारण करनेवाले; **२४०. रक्तेक्षणः**—लाल नेत्रोंवाले; **२४१. रक्तकरः**—लाल हाथोंवाले; **२४२. रक्तताल्वोष्ठपल्लवः**—रक्तवर्णके तालु और ओष्ठपल्लव धारण करनेवाले ॥ ४३ ॥

श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेतमाल्यविभूषणः।
श्वेतातपत्ररुचिरः श्वेतचामरवीजितः ॥ ४४ ॥

२४३. श्वेतः—(विद्याकी कामना रखनेवाले साधकोंको भगवान् गणेशके श्वेत रूपका ध्यान करना चाहिये, इस दृष्टिसे श्वेत आदि पाँच नाम दिये जाते हैं—) श्वेतवर्ण; **२४४. श्वेताम्बरधरः**—श्वेत वस्त्रधारी; **२४५. श्वेतमाल्यविभूषणः**—श्वेत माला और आभूषण धारण करनेवाले; **२४६. श्वेतातपत्ररुचिरः**—श्वेतच्छत्र धारण करनेके कारण अत्यन्त सुन्दर दिखायी देनेवाले; **२४७. श्वेतचामरवीजितः**—श्वेत चँवर डुलाकर जिनकी सेवा की जाती है, वे ॥ ४४ ॥

सर्वावयवसम्पूर्णसर्वलक्षणलक्षितः।
सर्वाभरणशोभाढ्यः सर्वशोभासमन्वितः ॥ ४५ ॥

२४८. सर्वावयवसम्पूर्णसर्वलक्षणलक्षितः—सम्पूर्ण अंगोंमें सामुद्रिक शास्त्रोक्त समस्त शुभ लक्षणोंसे परिपूर्ण दिखायी देनेवाले; **२४९. सर्वाभरणशोभाढ्यः**—सम्पूर्ण आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न; **२५०. सर्वशोभासमन्वितः**—लावण्य नामक सम्पूर्ण अंगकान्तिसे शोभायमान ॥ ४५ ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्यः सर्वकारणकारणम्।
सर्वदैककरः शार्ङ्गी बीजापूरी गदाधरः ॥ ४६ ॥

२५१. सर्वमङ्गलमङ्गल्यः—समस्त मंगलोंके लिये भी मंगलकारी; **२५२. सर्वकारणकारणम्**—सम्पूर्ण कारणोंके भी कारण; **२५३. सर्वदैककरः**—जिनका एकमात्र कर (शुण्डदण्ड) सब कुछ देनेवाला है, वे; **२५४. शार्ङ्गी**—शृंगनिर्मित धनुष धारण करनेवाले; (यहाँ 'शार्ङ्गी' आदि नामोंसे उनके दस आयुधोंको लक्षित कराया जाता है); **२५५. बीजापूरी**—बिजौरा नीबू या अनार धारण करनेवाले; **२५६. गदाधरः**—गदाधारी ॥ ४६ ॥

(शुक्लाङ्गो लोकसुखदः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः।
किरीटी कुण्डली हारी वनमाली शुभाङ्गदः * ॥)

इक्षुचापधरः शूली चक्रपाणिः सरोजभृत्।
पाशी धृतोत्पलः शालीमञ्जरीभृत्स्वदन्तभृत् ॥ ४७ ॥

२५७. इक्षुचापधरः—गन्नेका धनुष धारण करनेवाले; **२५८. शूली**—शूलधारी; **२५९. चक्रपाणिः**—हाथमें चक्र धारण करनेवाले; **२६०. सरोजभृत्**—कमलधारी; **२६१. पाशी**—पाशधारी; **२६२. धृतोत्पलः**—उत्पल धारण करनेवाले; **२६३. शालीमञ्जरीभृत्**—धानकी बाल धारण करनेवाले; **२६४. स्वदन्तभृत्**—एक हाथमें अपने दाँतको लिये रहनेवाले ॥ ४७ ॥

कल्पवल्लीधरो विश्वाभयदैककरो वशी।
अक्षमालाधरो ज्ञानमुद्रावान् मुद्गरायुधः ॥ ४८ ॥

२६५. कल्पवल्लीधरः—हाथमें कल्पलता ग्रहण करनेवाले; **२६६. विश्वाभयदैककरः**—जिनका मुख्य कर सम्पूर्ण विश्वसे अभय दान करनेवाला है; अथवा एक हाथमें 'अभय' नामक मुद्रा धारण करनेवाले;

---

* यह श्लोक श्रीभास्करायके खद्योतभाष्यमें नहीं पाया जाता है; अतः इसे श्लोकगणनामें नहीं लिया गया है। इसका अर्थ यों है—(क) **शुक्लाङ्गः**—गौर शरीरवाले; (ख) **लोकसुखदः**—लोगों या लोकोंको सुख देनेवाले; (ग) **सुतन्तुः**—सुन्दर तन्तु (संतति)-रूप; (घ) **तन्तुवर्धनः**—संतति-परम्पराकी वृद्धि करनेवाले; (ङ) **किरीटी**—किरीटधारी; (च) **कुण्डली**—कुण्डलधारी; (छ) **हारी**—हारसे विभूषित या मनोहर; (ज) **वनमाली**—वनमालाधारी; (झ) **शुभाङ्गदः**—सुन्दर बाजूबंद धारण करनेवाले।

२६७. **वशी**—सम्पूर्ण विश्वको वशमें रखनेवाले; २६८. **अक्षमालाधरः**—अक्षमालाधारी; २६९. **ज्ञानमुद्रावान्**—ज्ञानकी मुद्रासे युक्त; २७०. **मुद्गरायुधः**—मुद्गर नामक शस्त्र धारण करनेवाले॥ ४८॥

पूर्णपात्री कम्बुधरो विधृतालिसमुद्गकः।
मातुलिङ्गधरश्चूतकलिकाभृत् कुठारवान्॥ ४९॥

२७१. **पूर्णपात्री**—पूर्णपात्रयुक्त यज्ञस्वरूप; अथवा अमृतसे भरे पात्रवाले; २७२. **कम्बुधरः**—शंखधारी; २७३. **विधृतालिसमुद्गकः**—मदजलसे आर्द्र गण्डस्थलपर मँड़राते हुए भ्रमरसमूहसे युक्त; २७४. **मातुलिङ्गधरः**—बिजौरा नीबू लिये रहनेवाले; २७५. **चूतकलिकाभृत्**—आम्रमंजरीधारी; २७६. **कुठारवान्**—कुठारधारी॥ ४९॥

पुष्करस्थस्वर्णघटीपूर्णरत्नाभिवर्षकः।
भारतीसुन्दरीनाथो विनायकरतिप्रियः॥ ५०॥

२७७. **पुष्करस्थस्वर्णघटीपूर्णरत्नाभिवर्षकः**—शून्यमें गृहीत सुवर्णमय कलशसे पूर्ण रत्नोंकी वर्षा करनेवाले; २७८. **भारतीसुन्दरीनाथः**—सरस्वती, गौरी तथा लक्ष्मीके स्वामी ब्रह्मा, शिव और विष्णुरूप; २७९. **विनायकरतिप्रियः**—विनायक नामवाले अपने गणोंके साथ खेलनेमें रुचि रखनेवाले॥ ५०॥

महालक्ष्मीप्रियतमः सिद्धलक्ष्मीमनोरमः।
रमारमेशपूर्वाङ्गो दक्षिणोमामहेश्वरः॥ ५१॥

२८०. **महालक्ष्मीप्रियतमः**—महालक्ष्मीके प्रियतम (ये महालक्ष्मी विष्णुपत्नी लक्ष्मीसे भिन्न हैं; ये गणेशकी अपनी प्रिया बुद्धिरूपा हैं। सिद्धलक्ष्मी इनकी दूसरी पत्नी हैं); २८१. **सिद्धलक्ष्मीमनोरमः**—सिद्धलक्ष्मीके हृदयवल्लभ; २८२. **रमारमेशपूर्वाङ्गः**—आवरण-देवताओंमें रमा और रमापति (लक्ष्मी तथा विष्णु) गणेशजीके पूर्वभागमें (सम्मुख) विराजमान होते हैं, इसलिये वे उक्त नामसे प्रसिद्ध हैं; २८३. **दक्षिणोमामहेश्वरः**—आवरण-देवताओंमें उमा और महेश्वरको अपने दक्षिणभागमें स्थापित करनेवाले॥ ५१॥

महीवराहवामाङ्गो रतिकन्दर्पपश्चिमः।
आमोदमोदजननः सप्रमोदप्रमोदनः॥ ५२॥

२८४. **महीवराहवामाङ्गः**—पृथ्वी और वराहभगवान्‌को अपने वामांग (उत्तर दिशा)-में रखनेवाले; २८५. **रतिकन्दर्पपश्चिमः**—रति और कामदेवको पीछे या पश्चिमदिशामें स्थापित करनेवाले; २८६. **आमोदमोदजननः** *—'आमोद'-को मोद प्रदान करनेवाले; २८७. **सप्रमोदप्रमोदनः**—'प्रमोद'को प्रमोद देनेवाले॥ ५२॥

समेधितसमृद्धिश्रीर्ऋद्धिसिद्धिप्रवर्तकः।
दत्तसौमुख्यसुमुखः कान्तिकंदलिताश्रयः॥ ५३॥

२८८. **समेधितसमृद्धिश्रीः**—समृद्धियुक्त श्रीको संवर्धित करनेवाले; २८९. **ऋद्धिसिद्धिप्रवर्तकः**—ऋद्धिदेवीमें स्थित सिद्धिके प्रवर्तक; २९०. **दत्तसौमुख्यसुमुखः**—सुमुखको सुमुखता प्रदान करनेवाले; २९१. **कान्तिकंदलिताश्रयः**—कान्तिदेवीके आश्रय-स्थानको अंकुरित करनेवाले॥ ५३॥

मदनावत्याश्रिताङ्घ्रिः कृत्तदौर्मुख्यदुर्मुखः।
विघ्नसम्पल्लवोपघ्नः सेवोन्निद्रमदद्रवः॥ ५४॥

२९२. **मदनावत्याश्रिताङ्घ्रिः**—मदनावतीदेवीसे सेवित चरणवाले; २९३. **कृत्तदौर्मुख्यदुर्मुखः**—दुर्मुखकी दुर्मुखताको काट फेंकनेवाले; २९४. **विघ्नसम्पल्लवोपघ्नः**—विघ्नविस्तारके आश्रय; अथवा विघ्नविस्तारके निवारक; २९५. **सेवोन्निद्रमदद्रवः**—मदद्रवादेवी आलस्यरहित हो सदा जिनकी सेवामें जागरूक रहती हैं, वे॥ ५४॥

विघ्नकृन्निघ्नचरणो द्राविणीशक्तिसत्कृतः।
तीव्राप्रसन्ननयनो ज्वालिनीपालितैकदृक्॥ ५५॥

२९६. **विघ्नकृन्निघ्नचरणः**—विघ्नकृत्‌ने भक्तिभावसे जिनके चरणोंको अपने अधीन करके रखा है, वे; २९७. **द्राविणीशक्तिसत्कृतः**—द्राविणी नामक शक्तिसे सम्मानित; २९८. **तीव्राप्रसन्ननयनः**—तीव्रा नामक शक्तिके प्रति जिनके नेत्र प्रसन्नतासे उत्फुल्ल रहते हैं, वे; २९९. **ज्वालिनीपालितैकदृक्**— जिनकी मुख्य दृष्टि ज्वालिनी-शक्तिके संरक्षणमें संलग्न है, वे॥ ५५॥

मोहिनीमोहनो भोगदायिनीकान्तिमण्डितः।
कामिनीकान्तवक्त्रश्रीरधिष्ठितवसुन्धरः॥ ५६॥

३००. **मोहिनीमोहनः**—मोहिनी-शक्तिको भी मोहित

* यहाँ आवरणमें स्थित युगल देवी-देवोंका वर्णन प्रस्तुत है। ऋद्धि और आमोद—ये एक दम्पति हैं, समृद्धि और प्रमोद द्वितीय दम्पति हैं, सुमुख और कान्ति तृतीय दम्पति हैं, दुर्मुख और मदनावती (मदद्रवा)—ये चतुर्थ दम्पति हैं एवं विघ्न (विघ्नकृत्) और द्राविणी—ये पंचम दम्पति हैं।

करनेवाले; **३०१. भोगदायिनीकान्तिमण्डितः**—भोगदायिनीशक्तिकी कान्तिसे मण्डित चरणपादुकावाले; **३०२. कामिनीकान्तवक्त्रश्रीः**—कामिनी या कामदायिनी नामक शक्तिके सुन्दर मुखकी शोभाके संवर्धक; **३०३. अधिष्ठितवसुन्धरः**—वसुन्धरादेवीको अपने आधारपर प्रतिष्ठित करनेवाले ॥ ५६ ॥

वसुन्धरामदोन्नद्धमहाशङ्खनिधिप्रभुः ।
नमद्वसुमतीमौलिमहापद्मनिधिप्रभुः ॥ ५७ ॥

३०४. वसुन्धरामदोन्नद्धमहाशङ्खनिधिप्रभुः—वसुन्धरा नामक पत्नीके साथ आनन्दमग्न रहनेवाले महाशंख नामक निधिके स्वामी; **३०५. नमद्वसुमतीमौलिमहापद्मनिधिप्रभुः**—जिनके चरणोंमें वसुमती नामक पत्नी अपना मस्तक झुकाती है, उन महापद्म नामक निधिके अधिपति ॥ ५७ ॥

सर्वसद्गुरुसंसेव्यः शोचिष्केशहृदाश्रयः ।
ईशानमूर्धा देवेन्द्रशिखा पवननन्दनः ॥ ५८ ॥

३०६. सर्वसद्गुरुसंसेव्यः—समस्त सद्गुरुओंके द्वारा सम्यक्‌रूपसे आराधनीय; **३०७. शोचिष्केशहृदाश्रयः**—गार्हपत्य आदि पाँच अग्नियोंके हृदयमें ध्येयरूपसे विराजमान; **३०८. ईशानमूर्धा**—भगवान् शंकरके माननीय; **३०९. देवेन्द्रशिखा**—देवराज इन्द्रके आराध्य; **३१०. पवननन्दनः**—वायुको आनन्दित करनेवाले; अथवा प्राणोंके भी प्राण ॥ ५८ ॥

अग्रप्रत्यग्रनयनो दिव्यास्त्राणां प्रयोगवित् ।
ऐरावतादिसर्वाशावारणावरणप्रियः ॥ ५९ ॥

३११. अग्रप्रत्यग्रनयनः—सूक्ष्म एवं नूतन दृष्टिवाले; **३१२. दिव्यास्त्राणां प्रयोगवित्**—दिव्य अस्त्रोंके प्रयोगको जाननेवाले; **३१३. ऐरावतादिसर्वाशावारणावरणप्रियः**—खेल-खेलमें ऐरावत आदि सम्पूर्ण दिग्गजोंको ढँक लेना जिन्हें प्रिय लगता है, वे ॥ ५९ ॥

वज्राद्यस्त्रपरीवारो गणचण्डसमाश्रयः ।
जयाजयपरीवारो विजयाविजयावहः ॥ ६० ॥

३१४. वज्राद्यस्त्रपरीवारः—वज्र आदि अस्त्रों तथा इन्द्र आदि दिक्पालोंसे आवृत; **३१५. गणचण्डसमाश्रयः**—चण्ड आदि गणोंके आश्रय; अथवा गणोंमें जो प्रचण्ड हैं, उनको भी बल या आश्रय देनेवाले; (इसके बाद आठ नामोंद्वारा प्राणशक्तियोंसे गणेशजीकी अभिन्नता बताते हैं। वे शक्तियाँ नौ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—जया, विजया, अजया, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, शौण्डी, अनन्ता और मंगला। ये सब पीठ-शक्तियाँ हैं।) **३१६. जयाजयपरीवारः**—जया और अजयासे घिरे हुए; **३१७. विजयाविजयावहः**—विजयाको विजय देनेवाले ॥ ६० ॥

अजितार्चितपादाब्जो नित्यानित्यावतंसितः ।
विलासिनीकृतोल्लासः शौण्डीसौन्दर्यमण्डितः ॥ ६१ ॥

३१८. अजितार्चितपादाब्जः—अपराजिताशक्तिसे पूजित चरणारविन्दवाले; **३१९. नित्यानित्यावतंसितः**—नित्याशक्तिने जिनके चरणोंको नित्य अपना शिरोभूषण बना रखा है, वे; **३२०. विलासिनीकृतोल्लासः**—विलासिनीकी सेवासे उल्लसित होनेवाले; **३२१. शौण्डीसौन्दर्यमण्डितः**—शौण्डी नामक शक्तिके सौन्दर्यसे मण्डित ॥ ६१ ॥

अनन्तानन्तसुखदः सुमङ्गलसुमङ्गलः ।
इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिनिषेवितः ॥ ६२ ॥

३२२. अनन्तानन्तसुखदः—अनन्ता नामक शक्तिको अनन्त सुख देनेवाले; **३२३. सुमङ्गलसुमङ्गलः**—जिस पीठपर मंगला नामक शक्ति विद्यमान है, उसका नाम 'सुमंगल' है। ऐसा सुमंगल-पीठ जिनके कारण परम मंगलमय होता है, वे गणेशजी 'सुमंगलसुमंगल' हैं; **३२४. इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिनिषेवितः**—इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्तिसे सेवित ॥ ६२ ॥

सुभगासंश्रितपदो ललितालालिताश्रयः ।
कामिनीकामनः काममालिनीकेलिलालितः ॥ ६३ ॥

३२५. सुभगासंश्रितपदः—सुभगादेवीके द्वारा सेवित चरण-कमलवाले; **३२६. ललितालालिताश्रयः**—ललितादेवीके मनोरम आश्रय; **३२७. कामिनीकामनः**—कामिनी या कामकला नामक शक्तिकी कामना रखनेवाले; **३२८. काममालिनीकेलिलालितः**—कामेशी अथवा काममालिनी नामक शक्तिकी क्रीडाओंद्वारा प्रसन्न किये गये ॥ ६३ ॥

सरस्वत्याश्रयो गौरीनन्दनः श्रीनिकेतनः ।
गुरुगुप्तपदो वाचासिद्धो वागीश्वरीपतिः ॥ ६४ ॥

३२९. सरस्वत्याश्रयः—सरस्वती (वाग्देवता)-के आश्रय; **३३०. गौरीनन्दनः**—पार्वतीदेवीको आनन्द प्रदान करनेवाले; **३३१. श्रीनिकेतनः**—लक्ष्मी या शोभाके आगार; **३३२. गुरुगुप्तपदः**—गणक्रीड आदि

गुरुओंद्वारा गोपित पदवाले; **३३३. वाचासिद्धः**—जिनकी भक्तिसे वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है, वे; **३३४. वागीश्वरीपतिः**—वागीश्वरी अर्थात् नकुली नामक शक्तिके प्रियतम ॥ ६४ ॥

नलिनीकामुको वामारामो ज्येष्ठामनोरमः।
रौद्रीमुद्रितपादाब्जो हुम्बीजस्तुङ्गशक्तिकः॥ ६५॥

३३५. नलिनीकामुकः—नलिनी अर्थात् सुरापगा नामक शक्तिके प्राणवल्लभ; **३३६. वामारामः**—वामा नामक शक्ति जिनकी रामा अर्थात् प्रिया हैं, वे; **३३७. ज्येष्ठामनोरमः**—ज्येष्ठा नामक शक्ति जिनकी मनोरमा हैं, वे; **३३८. रौद्रीमुद्रितपादाब्जः**—रौद्रीनामक शक्ति जिनके चरणारविन्दोंको अपनी अंजलिमें बाँधे रखती हैं, वे; **३३९. हुम्बीजः**—'**वक्रतुण्डाय हुम्**'—इस षडक्षर-मन्त्रका अन्तिम वर्ण जो 'हुम्' है, वही समस्त पुरुषार्थोंका बीज (कारण) है; अतएव भगवान् गणपति 'हुं बीज' नामसे प्रसिद्ध हैं; **३४०. तुङ्गशक्तिकः**—उच्चशक्तिसे सम्पन्न; अथवा वक्रतुण्डमन्त्रमें जो 'हुम्' शब्द है, यही उक्त गणेशमन्त्रकी शक्ति है। इसलिये वे उक्त नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ६५॥

विश्वादिजननत्राणः स्वाहाशक्तिः सकीलकः।
अमृताब्धिकृतावासो मदघूर्णितलोचनः॥ ६६॥

३४१. विश्वादिजननत्राणः—विश्वके आदिभूत हिरण्यगर्भके जन्म और पालन जिनसे होते हैं, वे; **३४२. स्वाहाशक्तिः**—'स्वाहा' जिनकी शक्ति हैं, वे; **३४३. सकीलकः**—कीलकयुक्त; **३४४. अमृताब्धिकृतावासः**—सुधासिन्धुमें निवास करनेवाले; **३४५. मदघूर्णितलोचनः**—सुधापानके मदसे अथवा गण्डस्थलसे झरते हुए मदसे घूरते हुए नेत्रवाले॥ ६६॥

उच्छिष्टगण उच्छिष्टगणेशो गणनायकः।
सार्वकालिकसंसिद्धिर्नित्यशैवो दिगम्बरः॥ ६७॥

३४६. उच्छिष्टगणः—उत्कृष्ट और शिष्ट गणोंके स्वामी; **३४७. उच्छिष्टगणेशः**—(**उच्छिष्टे नामरूपं च**) इत्यादि अथर्ववेदीय मन्त्रोंके समूहसे प्रतिपाद्य ईश्वर; अथवा सतत मोदकभक्षणके कारण उक्त नामसे प्रसिद्ध श्रीगणेश; **३४८. गणनायकः**—जिनके गुणोंकी गणना भक्तोंद्वारा होती रहती है, वे; **३४९. सार्वकालिकसंसिद्धिः**—जिनकी सिद्धियाँ सब समय बनी रहती हैं, वे; **३५०. नित्यशैवः**—सदा शिवका चिन्तन करनेवाले; **३५१. दिगम्बरः**—दिशाओंको ही वस्त्र बनानेवाले॥ ६७॥

अनपायोऽनन्तदृष्टिरप्रमेयोऽजरामरः।
अनाविलोऽप्रतिरथो ह्यच्युतोऽमृतमक्षरम्॥ ६८॥

३५२. अनपायः—अविनाशी; **३५३. अनन्तदृष्टिः**—असीम ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न; **३५४. अप्रमेयः**—वाणी, मन एवं ज्ञानेन्द्रियोंसे अगम्य होनेके कारण प्रमाणातीत; **३५५. अजरामरः**—जरा और मृत्युसे रहित; **३५६. अनाविलः**—कालुष्यरहित; **३५७. अप्रतिरथः**—प्रतिद्वन्द्वीसे शून्य; **३५८. अच्युतः**—मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले; अथवा श्रीकृष्णसे अभिन्न; **३५९. अमृतम्**—अमृत या मोक्षस्वरूप; **३६०. अक्षरम्**—व्यापक अथवा अक्षय॥ ६८॥

अप्रतर्क्योऽक्षयोऽजय्योऽनाधारोऽनामयोऽमलः।
अमोघसिद्धिरद्वैतमघोरोऽप्रमिताननः॥ ६९॥

३६१. अप्रतर्क्यः—जिसका वेदोंके द्वारा अनुमोदन न हो, ऐसे तर्कसे अगम्य; **३६२. अक्षयः**—क्षयरहित; **३६३. अजय्यः**—जिन्हें जीता न जा सके, ऐसे; **३६४. अनाधारः**—स्वयं सबके आधार होनेके कारण अपने लिये आधारसे रहित; **३६५. अनामयः**—रोगरहित; **३६६. अमलः**—मलिनतासे शून्य; **३६७. अमोघसिद्धिः**—अमोघ (अव्यर्थ)-सिद्धिवाले, **३६८. अद्वैतम्**—द्वैतप्रपंचसे रहित; **३६९. अघोरः**—शिवरूप; **३७०. अप्रमिताननः**—असंख्य मुखवाले॥ ६९॥

अनाकारोऽब्धिभूम्यग्निबलघ्नोऽव्यक्तलक्षणः।
आधारपीठ आधार आधाराधेयवर्जितः॥ ७०॥

३७१. अनाकारः—निराकार परमात्मा; **३७२. अब्धिभूम्यग्निबलघ्नः**—जलधि या जलकी शक्ति क्लेदन, भूमिकी शक्ति स्तम्भन तथा अग्निकी शक्ति दहनका जिनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे भूमि, जल और अग्निकी शक्तिको प्रतिहत कर देनेवाले; **३७३. अव्यक्तलक्षणः**—बहिर्मुख मानवोंकी बुद्धिमें जिनके स्वरूप-लक्षण तथा तटस्थ-लक्षणकी अभिव्यक्ति नहीं होती, वे; **३७४. आधारपीठः**—पृथ्वीसे लेकर शिवपर्यन्त छत्तीस आधारभूत तत्त्वोंके भी आश्रय; **३७५. आधारः**—अ—विष्णु तथा आ—ब्रह्माको भी धारण करनेवाले; **३७६. आधाराधेयवर्जितः**—आधार-आधेयभावसे रहित, अद्वैतस्वरूप॥ ७०॥

आखुकेतन आशापूरक आखुमहारथः।
इक्षुसागरमध्यस्थ इक्षुभक्षणलालसः॥ ७१॥

३७७. **आखुकेतनः**—मूषकचिह्नसे युक्त ध्वजवाले; ३७८. **आशापूरकः**—सर्वव्यापी होनेसे दिशाओंके पूरक अथवा सबकी आशा पूर्ण करनेवाले; ३७९. **आखुमहारथः**—मूषकरूपी महान् रथ (वाहन)-से युक्त; ३८०. **इक्षुसागरमध्यस्थः**—ईखके रसके सागरमें विराजमान; ३८१. **इक्षुभक्षणलालसः**—ईख खानेकी इच्छा रखनेवाले॥ ७१॥

इक्षुचापातिरेकश्रीरिक्षुचापनिषेवितः।
इन्द्रगोपसमानश्रीरिन्द्रनीलसमद्युतिः॥ ७२॥

३८२. **इक्षुचापातिरेकश्रीः**—इक्षुधन्वा (कामदेव)-से भी अधिक सौन्दर्यश्रीसे सम्पन्न; ३८३. **इक्षुचापनिषेवितः**— इक्षुमय चापकी अधिष्ठात्री देवी अथवा कामदेवसे सेवित; ३८४. **इन्द्रगोपसमानश्रीः**—इन्द्रगोप (बीरबहूटी नामक कीट)के समान अरुण कान्तिवाले; ३८५. **इन्द्रनीलसमद्युतिः** *—इन्द्रनीलमणिके समान श्याम कान्तिवाले॥ ७२॥

इन्दीवरदलश्याम इन्दुमण्डलनिर्मलः।
इध्मप्रिय इडाभाग इराधामेन्दिराप्रियः॥ ७३॥

३८६. **इन्दीवरदलश्यामः**—नीलकमलके समान श्याम; ३८७. **इन्दुमण्डलनिर्मलः**—चन्द्रमण्डलके समान गौर कान्तिवाले; ३८८. **इध्मप्रियः**—अग्निस्वरूपसे काष्ठ या ईंधनके प्रेमी; ३८९. **इडाभागः**—ऋत्विक् और यजमान आदिके रूपमें यज्ञकर्ममें भाग लेनेवाले; ३९०. **इराधामा**—पृथ्वीमें अन्तर्यामीरूपसे अवस्थित; ३९१. **इन्दिराप्रियः**—लक्ष्मीद्वारा पूज्य; अथवा विष्णुरूपसे लक्ष्मीके प्रियतम॥ ७३॥

इक्ष्वाकुविघ्नविध्वंसी इतिकर्तव्यतेप्सितः।
ईशानमौलिरीशान ईशानसुत ईतिहा॥ ७४॥

३९२. **इक्ष्वाकुविघ्नविध्वंसी**—राजा इक्ष्वाकुके विघ्नका नाश करनेवाले; ३९३. **इतिकर्तव्यतेप्सितः**—इतिकर्तव्यता (क्रतुकी अंगभूत सामग्री)-की अपेक्षा रखकर यजमानकी मनोवांछापूर्ण करनेवाले; ३९४. **ईशानमौलिः**—नरेश, भूतेश और सुरेश आदि ईशानों (ईश्वरों)-के शिरोमणि; ३९५. **ईशानः**—ईशोंको जीवन देनेवाले; ३९६. **ईशानसुतः**—ईश्वरपुत्र; ३९७. **ईतिहा**—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषकजनित उपद्रव, शलभ, शुक आदि पक्षी, स्वमण्डल तथा परमण्डल—इन सबसे प्राप्त होनेवाले भयको 'ईति-भीति' कहते हैं; उस 'ईति-भीति' के नाशक॥ ७४॥

ईषणात्रयकल्पान्त ईहामात्रविवर्जितः।
उपेन्द्र उडुभृन्मौलिरुण्डेरकबलिप्रियः॥ ७५॥

३९८. **ईषणात्रयकल्पान्तः**—लोकैषणा, पुत्रैषणा और वित्तैषणा—इन त्रिविध एषणाओंके लिये प्रलयंकर अथवा वैराग्यदायक; ३९९. **ईहामात्रविवर्जितः**—चेष्टामात्रसे शून्य; चित्स्वरूप; ४००. **उपेन्द्रः**—कश्यप और अदितिके यहाँ अवतीर्ण महोत्कट विनायक अथवा वामनसे अभिन्न; ४०१. **उडुभृन्मौलिः**—नक्षत्रपालक चन्द्रमाको भालदेशमें धारण करनेवाले; ४०२. **उण्डेरकबलिप्रियः**—गोल-गोल मिष्टान्नके उपहारको प्रिय माननेवाले॥ ७५॥

उन्नतानन उत्तुङ्ग उदारत्रिदशाग्रणीः।
ऊर्जस्वानूष्मलमद ऊहापोहदुरासदः॥ ७६॥

४०३. **उन्नताननः**—उत्कृष्ट ब्रह्मा आदि देवोंको प्राणवान् करनेवाले; ४०४. **उत्तुङ्गः**—वराहरूपधारी भगवान्‌की दाढ़से तुंगा नामवाली एक नदी प्रकट हुई, जिससे वे भगवान् 'उत्तुंग' कहलाये। उनसे अभिन्न होनेके कारण गणेशजीका भी नाम 'उत्तुंग' है; ४०५. **उदारत्रिदशाग्रणीः**—उदार देवताओंमें श्रेष्ठ; ४०६. **ऊर्जस्वान्**—तेजस्वी; ४०७. **ऊष्मलमदः**—गण्डस्थलसे गर्म-गर्म मदजल बहानेवाले; ४०८. **ऊहापोहदुरासदः**—ऊह (वितर्क) और अपोह (उसके बाध)-से दुष्प्राप्य॥ ७६॥

ऋग्यजुस्सामसम्भूतिर्ऋद्धिसिद्धिप्रवर्तकः।
ऋजुचित्तैकसुलभ ऋणत्रयविमोचकः॥ ७७॥

४०९. **ऋग्यजुस्सामसम्भूतिः**—अपने नि:श्वाससे ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदको प्रकट करनेवाले; ४१०. **ऋद्धिसिद्धिप्रवर्तकः**—राज्यसम्पत्ति तथा अणिमा आदि सम्पत्तियोंको देनेवाले; ४११. **ऋजुचित्तैकसुलभः**—सरलचित्त—निर्मल मनसे ही एकमात्र सुलभ होनेवाले; ४१२. **ऋणत्रयविमोचकः**—देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीनोंसे छुटकारा दिलानेवाले॥ ७७॥

* कामनाभेदसे भिन्न रूप-रंगमें गणेशजीका ध्यान होता है। अथवा भिन्न-भिन्न युगोंमें अवतार लेकर वे अरुण एवं श्याम कान्ति धारण करते हैं। (खद्योत-भाष्य)

लुप्तविघ्नः स्वभक्तानां लुप्तशक्तिः सुरद्विषाम्।
लुप्तश्रीर्विमुखार्चानां लूताविस्फोटनाशनः॥ ७८॥

४१३. स्वभक्तानां लुप्तविघ्नः—अपने भक्तजनोंका विघ्न नष्ट करनेवाले; **४१४. सुरद्विषां लुप्तशक्तिः**—देवद्रोही दैत्योंकी शक्ति नष्ट करनेवाले; **४१५. विमुखार्चानां लुप्तश्रीः**—अपनी पूजासे विमुख या विरुद्ध रहनेवालोंकी धन-सम्पत्तिका नाश करनेवाले; **४१६. लूताविस्फोटनाशनः**—मकड़ी और फोड़े-फुंसी आदि रोगोंका नाश करनेवाले॥ ७८॥

एकारपीठमध्यस्थ एकपादकृतासनः।
एजिताखिलदैत्यश्रीरेधिताखिलसंश्रयः॥ ७९॥

४१७. एकारपीठमध्यस्थः—त्रिकोणचक्रके मध्यभागमें विराजमान; **४१८. एकपादकृतासनः**—काशीमें एक पैरसे खड़े रहनेवाले; **४१९. एजिताखिलदैत्यश्रीः**—समस्त असुरोंकी राज्य-लक्ष्मीको कम्पित कर देनेवाले; **४२०. एधिताखिलसंश्रयः**—अपनी शरण लेनेवाले भक्तोंकी श्रीवृद्धि करनेवाले॥ ७९॥

ऐश्वर्यनिधिरैश्वर्यमैहिकामुष्मिकप्रदः।
ऐरम्मदसमोन्मेष ऐरावतनिभाननः॥ ८०॥

४२१. ऐश्वर्यनिधिः—ऐश्वर्यके आधार अथवा भक्तोंके यहाँ ऐश्वर्य स्थापित करनेवाले; **४२२. ऐश्वर्यम्**—ईश्वरकोटिके पुरुषोंमें ऐश्वर्यरूपा अणिमा आदि विभूतिरूप; **४२३. ऐहिकामुष्मिकप्रदः**—लौकिक और पारलौकिक सुख देनेवाले; **४२४. ऐरम्मदसमोन्मेषः**—जिनकी दृष्टिका उन्मेष (खोलना) विद्युत्के समान प्रकाशमान है, वे; **४२५. ऐरावतनिभाननः**—ऐरावत हाथीके समान मुखवाले॥ ८०॥

ओंकारवाच्य ओंकार ओजस्वानोषधीपतिः।
औदार्यनिधिरौद्धत्यधुर्य औन्नत्यनिस्स्वनः॥ ८१॥

४२६. ओंकारवाच्यः—ओंकार अर्थात् प्रणवके वाच्यार्थरूप; **४२७. ओंकारः**—ओंकार नामवाले; **४२८. ओजस्वान्**—शौर्य और उत्कर्षके कारणभूत तेजसे सम्पन्न; **४२९. ओषधीपतिः**—ओषधियोंके स्वामी चन्द्रमारूप; **४३०. औदार्यनिधिः**—उदारताके सिन्धु; **४३१. औद्धत्यधुर्यः**—अपने भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनके सामने अपना उत्कर्ष प्रकट करनेमें श्रेष्ठ; **४३२. औन्नत्यनिस्स्वनः**—सबकी अपेक्षा उच्चस्वरसे गर्जना करनेवाले॥ ८१॥

अङ्कुशः सुरनागानामङ्कुशः सुरविद्विषाम्।
अः समस्तविसर्गान्तपदेषु परिकीर्तितः॥ ८२॥

४३३. सुरनागानामङ्कुशः—देवलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक—तीनोंको अपने नियन्त्रणमें रखनेवाले; **४३४. सुरविद्विषामङ्कुशः**—देवताओं और विद्वानोंके द्वेषियोंको दण्डित करनेवाले; **४३५. समस्तविसर्गान्तपदेषु परिकीर्तितः अः**—'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त जो ५१ अक्षर हैं, उनके अन्तमें विसर्ग लगानेपर जिसका उच्चारण होता है, वह 'अः' गणेशजीका एक नाम है॥ ८२॥

कमण्डलुधरः कल्पः कपर्दी कलभाननः।
कर्मसाक्षी कर्मकर्ता कर्माकर्मफलप्रदः॥ ८३॥

४३६. कमण्डलुधरः—कमण्डलु धारण करनेवाले अथवा सूँड़से अमृतकलश धारण करनेवाले; **४३७. कल्पः**—प्रलयकालस्वरूप; अथवा निर्माणमें समर्थ; **४३८. कपर्दी**—कौड़ी अथवा जटाजूट धारण करनेवाले; **४३९. कलभाननः**—नाद, कान्ति और प्राणनशक्तिसे सम्पन्न; **४४०. कर्मसाक्षी**—अदृष्ट कर्मोंके भी साक्षी; **४४१. कर्मकर्ता**—कर्मठ पुरुषोंके अन्तःप्रेरक होनेके कारण स्वयं ही कर्म करनेवाले; **४४२. कर्माकर्मफलप्रदः**—स्वर्ग और मोक्षरूप फल देनेवाले॥ ८३॥

कदम्बगोलकाकारः कूष्माण्डगणनायकः।
कारुण्यदेहः कपिलः कथकः कटिसूत्रभृत्॥ ८४॥

४४३. कदम्बगोलकाकारः—समस्त नाड़ियोंका जो उद्गमस्थान है, वहाँ कदम्ब-पुष्पके समान गोल आकारका कोई देवता है, जो गणेशजीसे अभिन्न है; **४४४. कूष्माण्डगणनायकः**—दुष्ट ग्रहोंके नायक (उन्हें नियन्त्रणमें रखनेवाले); **४४५. कारुण्यदेहः**—करुणामूर्ति; **४४६. कपिलः**-कपिलमुनिस्वरूप; **४४७. कथकः**—सम्प्रदायप्रवर्तक; **४४८. कटिसूत्रभृत्**—कांची धारण करनेवाले॥ ८४॥

खर्वः खड्गप्रियः खड्गखान्तान्तस्थः खनिर्मलः।
खल्वाटशृङ्गनिलयः खट्वाङ्गी खदुरासदः॥ ८५॥

४४९. खर्वः—वामनरूप; **४५०. खड्गप्रियः**—खड्ग (तलवार या गैंड़ा) जिन्हें प्रिय हैं; **४५१. खड्गखान्तान्तस्थः**—खड्ग-शब्दगत खकारसे परे जो डकार है, उससे परे जो गकार है, वह गणेशजीका

बीजाक्षर है, उसमें विद्यमान; ४५२. **खनिर्मलः**—आकाशकी भाँति सर्वगत होते हुए निर्लिप्त; ४५३. **खल्वाटशृङ्गनिलयः**—वृक्षविहीन पर्वतके शिखरपर निवास करनेवाले; ४५४. **खट्वाङ्गी**—खट्वांगनामसे प्रसिद्ध अस्त्र धारण करनेवाले; ४५५. **खदुरासदः**—आकाशकी भाँति पकड़में न आ सकनेवाले॥ ८५॥

गुणाढ्यो गहनो गस्थो गद्यपद्यसुधार्णवः।
गद्यगानप्रियो गर्जो गीतगीर्वाणपूर्वजः॥ ८६॥

४५६. **गुणाढ्यः**—अनन्त कल्याणमय गुणगणसे सम्पन्न; ४५७. **गहनः**—जहाँ जाना या पहुँचना सम्भव न हो सके, वे; ४५८. **गस्थः**—अपने बीजस्वरूप गकारमें स्थित; ४५९. **गद्यपद्यसुधार्णवः**—गद्य-पद्यमें काव्यरसामृतके सागर; ४६०. **गद्यगानप्रियः**—गद्य-सामगानके प्रेमी; ४६१. **गर्जः**—मेघगर्जनस्वरूप; ४६२. **गीतगीर्वाणपूर्वजः**—नादसे गीत आदि शब्द प्रकट हुए हैं और नादके अर्थसे देवता आदि; अतः नाद और नादार्थस्वरूप होनेके कारण गीत और देवताओंके पूर्वज॥ ८६॥

गुह्याचाररतो गुह्यो गुह्यागमनिरूपितः।
गुहाशयो गुहाब्धिस्थो गुरुगम्यो गुरोर्गुरुः॥ ८७॥

४६३. **गुह्याचाररतः**—हृदयगुहामें प्रविष्ट जीवात्मा और परमात्माके चिन्तनमें लगे हुए अन्तर्मुख साधकपर संतुष्ट रहनेवाले; ४६४. **गुह्यः**—एकान्तमें जाननेयोग्य; अथवा गुह—कार्तिकेयके हितकारी; ४६५. **गुह्यागमनिरूपितः**—गुह्य अर्थात् एकान्तवेद्य होनेके कारण 'गुह्यागमनिरूपित' के नामसे प्रसिद्ध; ४६६. **गुहाशयः**—हृदयगुहामें शयन करनेवाले अन्तर्यामी पुरुष; ४६७. **गुहाब्धिस्थः**—अव्याकृत आकाश गूढ़ और अगाध होनेके कारण गुहाब्धिके तुल्य है, उसमें विराजमान; ४६८. **गुरुगम्यः**—गुरुके बताये हुए योग या उपायसे प्राप्तव्य; ४६९. **गुरोर्गुरुः**—ब्रह्मा आदिको भी वेदका ज्ञान देनेवाले होनेके कारण गुरुके भी गुरु॥ ८७॥

घण्टाघर्घरिकामाली घटकुम्भो घटोदरः।
(ङकारवाच्यो ङकारो ङकाराकारशुण्डभृत्॥*)
चण्डश्चण्डेश्वरसुहृच्चण्डीशश्चण्डविक्रमः॥ ८८॥

४७०. **घण्टाघर्घरिकामाली**—घण्टाकी तरह मनोहर शब्द करनेवाली किंकिणीको 'घर्घरिका' कहते हैं। बालोचित क्रीड़ाके समय उसकी माला धारण करनेवाले; ४७१. **घटकुम्भः**—उलटे रखे हुए दो घड़ोंके समान दो कुम्भस्थलवाले; ४७२. **घटोदरः**—घटके समान विशाल उदरवाले; ४७३. **चण्डः**—प्रचण्ड पराक्रमी; ४७४. **चण्डेश्वरसुहृत्**—शिवपार्षद चण्डेश्वरके सखा; ४७५. **चण्डीशः**—चण्डीनाथ शिव; ४७६. **चण्डविक्रमः**—अत्यन्त क्रोधशील दुष्टोंपर आक्रमण करके उन्हें वशमें करनेवाले॥ ८८॥

चराचरपतिश्चिन्तामणिचर्वणलालसः।
छन्दश्छन्दोवपुश्छन्दोदुर्लक्ष्यश्छन्दविग्रहः॥ ८९॥

४७७. **चराचरपतिः**—स्थावर-जंगम जगत्के स्वामी; ४७८. **चिन्तामणिचर्वणलालसः**—अपनी अतिशय उदारताके कारण चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पवृक्षके गर्वको चूर्ण करनेकी लालसावाले; ४७९. **छन्दः**—गायत्री आदि छन्दःस्वरूप; ४८०. **छन्दोवपुः**—छन्दोमय शरीरवाले; ४८१. **छन्दोदुर्लक्ष्यः**—वेदसे भी कठिनतापूर्वक लक्षित होनेवाले; ४८२. **छन्दविग्रहः**—अपनी इच्छाके अनुसार या भक्तोंकी भावनाके अनुकूल अवतार-शरीर धारण करनेवाले॥ ८९॥

जगद्योनिर्जगत्साक्षी जगदीशो जगन्मयः।
जपो जपपरो जप्यो जिह्वासिंहासनप्रभुः॥ ९०॥

४८३. **जगद्योनिः**—जगत्के कारण; ४८४. **जगत्साक्षी**—जगत्के साक्षी या द्रष्टा; ४८५. **जगदीशः**—जगत्के स्वामी या रक्षक; ४८६. **जगन्मयः**—जगत्स्वरूप या जगत्के अधिष्ठान; ४८७. **जपः**—जपकर्मरूप; ४८८. **जपपरः**—जपकर्ता; ४८९. **जप्यः**—जपनीय मन्त्ररूप; ४९०. **जिह्वासिंहासनप्रभुः**—जिनके नाम-कीर्तनके समय जो भक्तकी जिह्वारूपी सिंहासनपर विराजमान रहते हैं, वे॥ ९०॥

झलज्झलोल्लसद्दानझङ्कारिभ्रमराकुलः।
टंकारस्फारसंरावष्टंकारिमणिनूपुरः॥ ९१॥

४९१. **झलज्झलोल्लसद्दानझङ्कारिभ्रमराकुलः**—कानोंके हिलानेसे उड़-उड़कर मदजलके आस-पास झंकाररव करनेवाले भ्रमरोंसे व्याप्त; ४९२. **टंकार-**

---

* १-ङकारवाच्यः—ङकारके वाच्यार्थस्वरूप; २-ङकारः—ङकार अक्षररूप; ३-ङकाराकारशुण्डभृत्—'ङ'के आकारकी सूँड़ धारण करनेवाले।

स्फारसंरावः—काँसेकी घंटी या थालीके बजनेसे होनेवाले रण-रणनात्मक रवके समान जिनके आभूषणकी झनकार होती है, वे; **४९३. टंकारिमणिनूपुरः**—बजते हुए रत्नमय पादकटककी ध्वनि फैलानेवाले॥ ९१॥

ठद्वयीपल्लवान्तःस्थसर्वमन्त्रैकसिद्धिदः ।
डिण्डिमुण्डो डाकिनीशो डामरो डिण्डिमप्रियः॥ ९२॥

४९४. ठद्वयीपल्लवान्तःस्थसर्वमन्त्रैकसिद्धिदः—सम्पूर्ण स्वाहान्त मन्त्रोंके एकमात्र सिद्धिदाता; **४९५. डिण्डिमुण्डः**—उलटकर रखे हुए नगाड़ेके समान कुम्भस्थलवाले; **४९६. डाकिनीशः**—योगिनियोंके ईश्वर; **४९७. डामरः**—डामर नामक तन्त्रस्वरूप; **४९८. डिण्डिमप्रियः**—डिण्डिमघोष या दुन्दुभिकी ध्वनिसे प्रसन्न होनेवाले॥ ९२॥

ढक्कानिनादमुदितो ढौको ढुण्ढिविनायकः।
तत्त्वानां परमं तत्त्वं तत्त्वंपदनिरूपितः॥ ९३॥

४९९. ढक्कानिनादमुदितः—पटहध्वनिसे प्रसन्न; **५००. ढौकः**—सर्वगत; अथवा सर्वज्ञ; **५०१. ढुण्ढिविनायकः**—विशिष्ट नायकके रूपमें अन्वेषणीय; **५०२. तत्त्वानां परमं तत्त्वम्**—तत्त्वोंमें परम (छब्बीसवें) तत्त्वरूप; **५०३. तत्त्वंपदनिरूपितः**—'तत्-पदार्थ' और 'त्वम्-पदार्थ' की एकताद्वारा निरूपित॥ ९३॥

तारकान्तरसंस्थानस्तारकस्तारकान्तकः ।
स्थाणुः स्थाणुप्रियः स्थाता स्थावरं जङ्गमं जगत्॥ ९४॥

५०४. तारकान्तरसंस्थानः—आँखकी पुतलीमें चिन्तन करनेयोग्य; **५०५. तारकः**—प्रणवकी भाँति भवसागरसे पार करनेवाले; **५०६. तारकान्तकः**—तारकासुरका संहार करनेवाले; **५०७. स्थाणुः**—सुस्थिर; सर्वथा अकम्पित; **५०८. स्थाणुप्रियः**—शिवके प्रिय पुत्र; **५०९. स्थाता**—युद्धमें दृढ़तापूर्वक डटे रहनेवाले; **५१०. स्थावरं जङ्गमं जगत्**—चराचर जगत्स्वरूप॥ ९४॥

दक्षयज्ञप्रमथनो दाता दानवमोहनः।
दयावान् दिव्यविभवो दण्डभृद्दण्डनायकः॥ ९५॥

५११. दक्षयज्ञप्रमथनः—दक्ष प्रजापतिके यज्ञका विध्वंस करनेवाले शिवरूप; **५१२. दाता**—दानी अथवा शोधक*—पतितपावन; **५१३. दानवमोहनः**—दानवोंको मोहित (तत्त्व-विमुख) करनेवाले; **५१४. दयावान्**—दयालु; **५१५ दिव्यविभवः**—लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाले अथवा दिव्य वैभवसे सम्पन्न; **५१६. दण्डभृत्**—दण्डनीतिके पालक; **५१७. दण्डनायकः**—दण्डके प्रवर्तक॥ ९५॥

दन्तप्रभिन्नाभ्रमालो दैत्यवारणदारणः।
दंष्ट्रालग्नद्विपघटो देवार्थनृगजाकृतिः॥ ९६॥

५१८. दन्तप्रभिन्नाभ्रमालः—सिर हिलानेमात्रसे दन्ताघातके द्वारा बादलोंकी पंक्तिको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले; **५१९. दैत्यवारणदारणः**—दैत्योंको रोकने और विदीर्ण करनेवाले; **५२०. दंष्ट्रालग्नद्विपघटः**—जिनके दाढ़के एक देशमें भी शत्रुओंके हाथियोंका समुदाय संलग्न है, ऐसे; **५२१. देवार्थनृगजाकृतिः**—देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्य और हाथीकी आकृति स्वीकार करनेवाले॥ ९६॥

धनधान्यपतिर्धन्यो धनदो धरणीधरः।
ध्यानैकप्रकटो ध्येयो ध्यानं ध्यानपरायणः॥ ९७॥

५२२. धनधान्यपतिः—धन और धान्यके स्वामी तथा दाता; **५२३. धन्यः**—धनसे सम्पन्न एवं पुण्यवान्; **५२४. धनदः**—धनके दाता; अथवा कुबेरस्वरूप; **५२५. धरणीधरः**—शेषनाग तथा आदिवराहके रूपमें पृथ्वीको धारण करनेवाले; **५२६. ध्यानैकप्रकटः**—एकमात्र ध्यानमें ही प्रकट होनेवाले; **५२७. ध्येयः**—ध्यानमें द्रष्टव्य; **५२८. ध्यानम्**—ध्यानस्वरूप; **५२९. ध्यानपरायणः**—ध्यानमें संलग्न रहनेवाले॥ ९७॥

नन्द्यो नन्दिप्रियो नादो नादमध्यप्रतिष्ठितः।
निष्कलो निर्मलो नित्यो नित्यानित्यो निरामयः॥ ९८॥

५३०. नन्द्यः—आनन्दनीय; **५३१. नन्दिप्रियः**—नन्दिकेश्वरके प्रिय; **५३२. नादः**—नादानुसंधानसे प्राप्त होनेवाले नादस्वरूप; **५३३. नादमध्यप्रतिष्ठितः**—नादमें प्रतिष्ठित; **५३४. निष्कलः**—अवयवरहित; **५३५. निर्मलः**—दोषरहित; **५३६. नित्यः**—नाशरहित; **५३७. नित्यानित्यः**—आकाश और पृथ्वी आदि नित्य एवं अनित्य रूप धारण करनेवाले; **५३८. निरामयः**—अविद्यारूपी महारोगसे शून्य॥ ९८॥

परं व्योम परं धाम परमात्मा परं पदम्।
परात्परः पशुपतिः पशुपाशविमोचकः॥ ९९॥

५३९. परं व्योम—अव्याकृत आकाश या नित्य धामस्वरूप; **५४०. परं धाम**—ज्योतिके ज्योतिःस्वरूप;

* शोधनार्थक 'दै' धातुसे 'दाता' बनता है।

५४१. परमात्मा—सम्पूर्ण जीवोंसे उत्कृष्ट आत्मा—पुरुषोत्तम; **५४२. परं पदम्**—परमपदरूप; **५४३. परात्परः**—परसे भी पर—ब्रह्मा, विष्णु और महेशसे भी उत्तम; **५४४. पशुपतिः**—ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त समस्त जीवोंके पालक; **५४५. पशुपाशविमोचकः**—पशुओं (जीवों)-को विविध पाशों (बन्धनों)-से छुटकारा दिलानेवाले ॥ ९९ ॥

पूर्णानन्दः परानन्दः पुराणपुरुषोत्तमः।
पद्मप्रसन्ननयनः प्रणताज्ञानमोचनः ॥ १०० ॥

५४६. पूर्णानन्दः—क्रिया, कर्ता और कर्मके भेदसे रहित परिपूर्ण सुखस्वरूप; **५४७. परानन्दः**—भूलोकसे लेकर शत-गुणोत्तर बढ़े हुए ब्रह्मलोकपर्यन्तके सम्पूर्ण आनन्दोंको नीचा करके सबसे उत्कृष्ट परमानन्द—महासुखस्वरूप; **५४८. पुराणपुरुषोत्तमः**—क्षर-अक्षरसे भी उत्तम एवं अनादि होनेके कारण पुराणपुरुषोत्तम; **५४९. पद्मप्रसन्ननयनः**—प्रफुल्ल कमलके समान उल्लासयुक्त नेत्रवाले; **५५०. प्रणताज्ञानमोचनः**—शरणागत सेवकोंको तत्त्वज्ञान देकर उनके अज्ञानका निवारण करनेवाले ॥ १०० ॥

प्रमाणप्रत्ययातीतः प्रणतार्तिनिवारणः।
फलहस्तः फणिपतिः फेत्कारः फाणितप्रियः ॥ १०१ ॥

५५१. प्रमाणप्रत्ययातीतः—प्रमाणजनित प्रतीतियोंसे ऊपर उठे हुए नित्यज्ञानैकस्वरूप; **५५२. प्रणतार्तिनिवारणः**—प्रणतजनोंकी पीड़ाको दूर कर देनेवाले; **५५३. फलहस्तः**—भक्तजनोंको अविलम्ब फल देनेके कारण मानो समस्त फलोंको हाथमें ही लिये रहनेवाले; **५५४. फणिपतिः**—शेष और वासुकि नागके भी स्वामी; **५५५. फेत्कारः**—फेत्कार-तन्त्रस्वरूप; **५५६. फाणितप्रियः**—फाणित अर्थात् खाँडके प्रेमी ॥ १०१ ॥

बाणार्चिताङ्घ्रियुगलो बालकेलिकुतूहली।
ब्रह्म ब्रह्मार्चितपदो ब्रह्मचारी बृहस्पतिः ॥ १०२ ॥

५५७. बाणार्चिताङ्घ्रियुगलः—बाणासुरसे पूजित युगल चरणवाले; **५५८. बालकेलिकुतूहली**—बालोचित क्रीड़ाके लिये उत्सुक; **५५९. ब्रह्म**—परब्रह्मस्वरूप; **५६०. ब्रह्मार्चितपदः**—ब्रह्माजीसे पूजित चरणवाले अथवा वेदपूजित पदवाले; **५६१. ब्रह्मचारी**—ब्रह्मचर्यनिष्ठ; **५६२. बृहस्पतिः**—देवगुरु बृहस्पतिरूप ॥ १०२ ॥

बृहत्तमो ब्रह्मपरो ब्रह्मण्यो ब्रह्मवित्प्रियः।
बृहन्नादग्र्यचीत्कारो ब्रह्माण्डावलिमेखलः ॥ १०३ ॥

५६३. बृहत्तमः—बड़ेसे भी बड़े; **५६४. ब्रह्मपरः**—ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ अथवा एकमात्र वेदके ही अनुशीलनमें तत्पर; **५६५. ब्रह्मण्यः**—ब्राह्मणोंको मान देनेवाले; अथवा उनके हितकारी; **५६६. ब्रह्मवित्प्रियः**—ब्रह्मवेत्ताओंके प्रिय अथवा ब्रह्मवेत्ताओंको प्रिय माननेवाले; **५६७. बृहन्नादाग्र्यचीत्कारः**—मेघोंकी गर्जना और बिजलीकी गड़गड़ाहटसे भी अधिक उच्चस्वरसे चीत्कार या गर्जना करनेवाले; **५६८. ब्रह्माण्डावलिमेखलः**—कटिसूत्रमें किंकिणीकी भाँति समस्त ब्रह्माण्डोंको ही गूँथ लेनेवाले अथवा विराट्-रूपधारी ॥ १०३ ॥

भ्रूक्षेपदत्तलक्ष्मीको भर्गो भद्रो भयापहः।
भगवान् भक्तिसुलभो भूतिदो भूतिभूषणः ॥ १०४ ॥

५६९. भ्रूक्षेपदत्तलक्ष्मीकः—भक्तोंको भौंहोंके संकेत-मात्रसे लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) प्रदान करनेवाले; **५७०. भर्गः**—तेजःस्वरूप; **५७१. भद्रः**—भद्रजातीय गजरूप; **५७२. भयापहः**—भयके नाशक; **५७३. भगवान्**—षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न; **५७४. भक्तिसुलभः**—भक्तिके द्वारा ही सुगमतापूर्वक प्राप्य; **५७५. भूतिदः**—अष्टसिद्धियोंके दाता; **५७६. भूतिभूषणः**—भस्म धारण करनेवाले ॥ १०४ ॥

भव्यो भूतालयो भोगदाता भ्रूमध्यगोचरः।
मन्त्रो मन्त्रपतिर्मन्त्री मदमत्तमनोरमः ॥ १०५ ॥

५७७. भव्यः—कल्याणस्वरूप; **५७८. भूतालयः**—पंचभूतों, भूत-प्रेत आदिकों तथा समस्त भूत-प्राणियोंके अधिष्ठान; **५७९. भोगदाता**—प्राणियोंके कर्मानुसार दुःख और सुखका अनुभव करानेवाले; **५८०. भ्रूमध्यगोचरः**—भौंहोंके मध्यभागमें ध्येय; **५८१. मन्त्रः**—विविध मन्त्रस्वरूप; **५८२. मन्त्रपतिः**—मन्त्रणाके अधिकारी, पालक एवं प्रवर्तक; **५८३. मन्त्री**—राज्यसंचालनोपयोगी मन्त्रशक्तिके अधिष्ठाता; **५८४. मदमत्तमनोरमः**—समाधिजनित आनन्दसे मत्त हृदयमें ध्येयरूपसे रमण करनेवाले ॥ १०५ ॥

मेखलावान् मन्दगतिर्मतिमत्कमलेक्षणः।
महाबलो महावीर्यो महाप्राणो महामनाः ॥ १०६ ॥

५८५. मेखलावान्—करधनीसे विभूषित कटिप्रदेशवाले; **५८६. मन्दगतिः**—मन्द पुरुषोंके भी

आश्रयदाता; **५८७. मतिमत्कमलेक्षणः**—सद्बुद्धि देनेवाले कमलोपम नेत्रोंसे युक्त; **५८८. महाबलः**—महाबलसे सम्पन्न; **५८९. महावीर्यः**—महापराक्रमी; **५९०. महाप्राणः**—महान् प्राणशक्तिसे सम्पन्न; **५९१. महामनाः**—महामनस्वी ॥ १०६ ॥

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्ञगोप्ता यज्ञफलप्रदः ।
यशस्करो योगगम्यो याज्ञिको याजकप्रियः ॥ १०७ ॥

५९२. यज्ञः—यज्ञस्वरूप; **५९३. यज्ञपतिः**—यज्ञोंके स्वामी; **५९४. यज्ञगोप्ता**—यज्ञोंके संरक्षक; **५९५. यज्ञफलप्रदः**—यज्ञफलके दाता; **५९६. यशस्करः**—सुयशका विस्तार करनेवाले; **५९७. योगगम्यः**—योगसे प्राप्तव्य; **५९८. याज्ञिकः**—यज्ञकर्ता; **५९९. याजकप्रियः**—यज्ञ करानेवालोंके प्रेमी ॥ १०७ ॥

रसो रसप्रियो रस्यो रञ्जको रावणार्चितः ।
रक्षोरक्षाकरो रत्नगर्भो राजसुखप्रदः ॥ १०८ ॥

६००. रसः—परमानन्दस्वरूप; **६०१. रसप्रियः**—मधुर आदि रसमें प्रीति रखनेवाले; **६०२. रस्यः**—आस्वादके विषय; **६०३. रञ्जकः**—दूसरोंके मनका अनुरंजन करनेवाले; **६०४. रावणार्चितः**—दशमुख रावणके द्वारा भी पूजित; **६०५. रक्षोरक्षाकरः**—राक्षसोंको जलाकर राख कर देनेवाले; अथवा अपनी आराधना करनेवाले राक्षसोंके रक्षक; **६०६. रत्नगर्भः**—पृथ्वीके आश्रय; **६०७. राजसुखप्रदः**—राज-सम्बन्धी सुख देनेवाले ॥ १०८ ॥

लक्ष्यं लक्ष्यप्रदो लक्ष्यो लयस्थो लड्डुकप्रियः ।
लानप्रियो लास्यपरो लाभकृल्लोकविश्रुतः ॥ १०९ ॥

६०८. लक्ष्यम्—प्रणवरूपी धनुषके द्वारा चित्तरूपी बाणसे वेधनेयोग्य ब्रह्म; **६०९. लक्ष्यप्रदः**—निर्विघ्नता-पूर्वक लक्ष्यकी प्राप्ति करानेवाले; **६१०. लक्ष्यः**—**'तत्त्वमसि'**— इत्यादि महावाक्य गत पदोंद्वारा लक्षणाशक्तिसे बोध्य; **६११. लयस्थः**—प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाले; अथवा चित्तलयकी स्थितिमें विद्यमान; **६१२. लड्डुकप्रियः**—लड्डूसे प्रसन्न रहनेवाले; **६१३. लानप्रियः**—गजशालामें प्रीति रखनेवाले; **६१४. लास्यपरः**—विलासयोग्य परमधामवाले; **६१५. लाभकृल्लोकविश्रुतः**—लाभकारी (भक्तोंको शीघ्र वरदान देनेवाले) लोगोंमें श्रेष्ठताके लिये विख्यात ॥ १०९ ॥

वरेण्यो वह्निवदनो वन्द्यो वेदान्तगोचरः ।
विकर्ता विश्वतश्चक्षुर्विधाता विश्वतोमुखः ॥ ११० ॥

६१६. वरेण्यः—गणपतिभक्त राजा वरेण्यसे अभिन्न; **६१७. वह्निवदनः**—अग्निरूप मुखवाले; **६१८. वन्द्यः**—वन्दनीय; **६१९. वेदान्तगोचरः**—उपनिषद्गम्य; **६२०. विकर्ता**—छः भावविकारोंके प्रवर्तक; **६२१. विश्वतश्चक्षुः**—सब ओर नेत्रवाले; **६२२. विधाता**—स्रष्टा; **६२३. विश्वतोमुखः**—सब ओर मुखवाले ॥ ११० ॥

वामदेवो विश्वनेता वज्रिवज्रनिवारणः ।
विश्वबन्धनविष्कम्भाधारो विश्वेश्वरप्रभुः ॥ १११ ॥

६२४. वामदेवः—सुन्दर देवता; अथवा शिवस्वरूप; **६२५. विश्वनेता**—जगत्के नायक; **६२६. वज्रिवज्रनिवारणः**—इन्द्रके वज्रको स्तम्भित कर देनेवाले; **६२७. विश्वबन्धनविष्कम्भाधारः**—विश्वकी सृष्टिके लिये पर्याप्त देशको 'विष्कम्भ' कहते हैं। उसके भी आधार; **६२८. विश्वेश्वरप्रभुः**—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों और उनके अधीश्वरोंके भी ईश्वर ॥ १११ ॥

शब्दब्रह्म शमप्राप्यः शम्भुशक्तिगणेश्वरः ।
शास्ता शिखाग्रनिलयः शरण्यः शिखरीश्वरः ॥ ११२ ॥

६२९. शब्दब्रह्म—परावाणीसे अतीत नादरूपधारी; **६३०. शमप्राप्यः**—मनोनिग्रहसे प्राप्तव्य; **६३१. शम्भु-शक्तिगणेश्वरः**—शैवों और शाक्तोंके समुदायके ईश्वर; **६३२. शास्ता**—'शास्ता' नामसे प्रसिद्ध केरलदेशीय देवतास्वरूप अथवा बुद्धरूप; **६३३. शिखाग्रनिलयः**—शास्ताके शिखाग्रभागमें निवास करनेवाले; **६३४. शरण्यः**—रक्षक; **६३५. शिखरीश्वरः** हिमालयस्वरूप ॥ ११२ ॥

षड्ऋतुकुसुमस्रग्वी षडाधारः षडक्षरः ।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः सर्वभेषजभेषजम् ॥ ११३ ॥

६३६. षड्ऋतुकुसुमस्रग्वी—छहों ऋतुओंमें खिलनेवाले पुष्पोंकी मालासे अलंकृत; **६३७. षडाधारः**—छहों चक्रोंके आधारभूत मूलाधारचक्रस्वरूप; **६३८. षडक्षरः**—छः अक्षरोंवाले वक्रतुण्डमन्त्रस्वरूप; **६३९. संसारवैद्यः**—भवरोगका नाश करनेवाले; **६४०. सर्वज्ञः**—सब कुछ जाननेवाले अथवा बुद्धस्वरूप; **६४१. सर्वभेषजभेषजम्**—समस्त रोगोंकी दवा दिव्य अमृतके भी दोषनिवारक ॥ ११३ ॥

सृष्टिस्थितिलयक्रीडः सुरकुञ्जरभेदनः ।
सिन्दूरितमहाकुम्भः सदसद्व्यक्तिदायकः ॥ ११४ ॥

६४२. **सृष्टिस्थितिलयक्रीडः**—जगत्की सृष्टि, पालन और संहार जिनकी लीलाएँ हैं, वे; ६४३. **सुरकुञ्जरभेदनः**—दानवसे पूजित होकर देवश्रेष्ठोंमें भेद उत्पन्न करनेवाले; अथवा देवराजके भेदक; ६४४. **सिन्दूरितमहाकुम्भः**—सिन्दूरसे अरुण मस्तकवाले; ६४५. **सदसद्व्यक्तिदायकः**—अपने भक्तोंको सदसद्विवेक प्रदान करनेवाले॥ ११४॥

साक्षी समुद्रमथनः स्वसंवेद्यः स्वदक्षिणः।
स्वतन्त्रः सत्यसंकल्पः सामगानरतः सुखी॥ ११५॥

६४६. **साक्षी**—विश्वको साक्षात् देखनेवाले; ६४७. **समुद्रमथनः**—समुद्रमन्थनकालमें देवताओंद्वारा सर्वप्रथम पूजित; ६४८. **स्वसंवेद्यः**—स्वयं ज्योतिस्वरूप; ६४९. **स्वदक्षिणः**—स्वयं समर्थ; ६५०. **स्वतन्त्रः**—अपराधीन; ६५१. **सत्यसंकल्पः**—कभी व्यर्थ न जानेवाले संकल्पसे युक्त; ६५२. **सामगानरतः**—साममन्त्रोंके गानमें संलग्न; ६५३. **सुखी**—सुखका अनुभव करनेवाले॥ ११५॥

हंसो हस्तिपिशाचीशो हवनं हव्यकव्यभुक्।
हव्यो हुतप्रियो हर्षो हल्लेखामन्त्रमध्यगः॥ ११६॥

६५४. **हंसः**—यति-विशेषरूप; अथवा सूर्यरूप; ६५५. **हस्तिपिशाचीशः**—हस्तिपिशाचीश नामक नवाक्षर-मन्त्रके देवता; ६५६. **हवनम्**—आहुतिस्वरूप; ६५७. **हव्यकव्यभुक्**—हव्य-कव्यके भोक्ता देवता-पितृस्वरूप; ६५८. **हव्यः**—हविष्यरूप; ६५९. **हुतप्रियः**—आहुतिमें दिये गये द्रव्यके प्रेमी; ६६०. **हर्षः**—आनन्दस्वरूप; ६६१. **हल्लेखामन्त्रमध्यगः**—हल्लेखा-मन्त्रके मध्यवर्ती—ह्रींकारवाच्य॥ ११६॥

क्षेत्राधिपः क्षमाभर्ता क्षमापरपरायणः।
क्षिप्रक्षेमकरः क्षेमानन्दः क्षोणीसुरद्रुमः॥ ११७॥

६६२. **क्षेत्राधिपः**—प्रयाग आदि क्षेत्रों अथवा शरीर आदिके स्वामी; ६६३. **क्षमाभर्ता**—पृथ्वी अथवा क्षमाको धारण करनेवाले; ६६४. **क्षमापरपरायणः**—क्षमाशील मुनियोंके प्राप्य; ६६५. **क्षिप्रक्षेमकरः**—शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाले; ६६६. **क्षेमानन्दः**-क्षेम और आनन्दस्वरूप; ६६७. **क्षोणीसुरद्रुमः**—भूतलपर कल्पवृक्षके समान समस्त मनोरथोंके दाता॥ ११७॥

धर्मप्रदोऽर्थदः कामदाता सौभाग्यवर्धनः।
विद्याप्रदो विभवदो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥ ११८॥

६६८. **धर्मप्रदः**—धर्म प्रदान करनेवाले, ६६९. **अर्थदः**—धन देनेवाले; ६७०. **कामदाता**—कामप्रद; ६७१. **सौभाग्यवर्धनः**—स्त्रियोंको सौभाग्यवृद्धिका वर देनेवाले; ६७२. **विद्याप्रदः**—ज्ञानदाता; ६७३. **विभवदः**—सम्पत्तिदाता; ६७४. **भुक्तिमुक्तिफलप्रदः**—भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले॥ ११८॥

आभिरूप्यकरो वीरश्रीप्रदो विजयप्रदः।
सर्ववश्यकरो गर्भदोषहा पुत्रपौत्रदः॥ ११९॥

६७५. **आभिरूप्यकरः**—विद्वत्ता एवं सुन्दरता प्राप्त करानेवाले; ६७६. **वीरश्रीप्रदः**—नामस्मरण करनेवाले भक्तोंको वीरोचित लक्ष्मी प्रदान करनेवाले; ६७७. **विजयप्रदः**—विजय देनेवाले; ६७८. **सर्ववश्यकरः**—सबको भक्तके वशमें कर देनेवाले; ६७९. **गर्भदोषहा**—गर्भस्राव या गर्भपात आदि बीजदोषोंको नष्ट करनेवाले; ६८०. **पुत्रपौत्रदः**—पुत्र और पौत्र प्रदान करनेवाले॥ ११९॥

मेधादः कीर्तिदः शोकहारी दौर्भाग्यनाशनः।
प्रतिवादिमुखस्तम्भो रुष्टचित्तप्रसादनः॥ १२०॥

६८१. **मेधादः**—धारणावती बुद्धि प्रदान करनेवाले; ६८२. **कीर्तिदः**—लोकमें कीर्ति देनेवाले; ६८३. **शोकहारी**—ज्ञानदान करके शोक-मोहको हर लेनेवाले; ६८४. **दौर्भाग्यनाशनः**—स्त्रियोंके विधवापन आदि दुर्भाग्यसूचक दोषोंको नष्ट करनेवाले; ६८५. **प्रतिवादिमुखस्तम्भः**—प्रतिकूल बोलनेवाले दुष्टोंका मुख बंद कर देनेवाले; ६८६. **रुष्टचित्तप्रसादनः**—कुपित हुए राजा आदिके चित्तको प्रसन्न (स्नेहयुक्त) करनेवाले॥ १२०॥

पराभिचारशमनो दुःखभञ्जनकारकः।
लवस्त्रुटिः कला काष्ठा निमेषस्तत्परः क्षणः॥ १२१॥

६८७. **पराभिचारशमनः**—दूसरोंके द्वारा किये गये मारण आदि उपायोंको शान्त करनेवाले; ६८८. **दुःखभञ्जनकारकः**—सब दुःखोंको दूर कर देनेवाले; ६८९. **लवः**—लवस्वरूप; ६९०. **त्रुटिः**—सहस्रलवजनित काल; (यहाँ यह परिभाषा समझ लेनी चाहिये—सौ त्रुटियोंका एक तत्पर होता है, तीस तत्परोंका एक निमेष होता है, अठारह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओंकी एक कला होती है।) ६९१. **कला**—तीस काष्ठाका समय; ६९२. **काष्ठा**—अठारह निमेषका समय; ६९३. **निमेषः**—तीस तत्परका काल;

६९४. तत्परः—सौ त्रुटियोंका काल; **६९५. क्षणः**—तीस कलाओंका समय॥ १२१॥

घटी मुहूर्तं प्रहरो दिवा नक्तमहर्निशम्।
पक्षो मासोऽयनं वर्षं युगं कल्पो महालयः॥ १२२॥

६९६. घटी—छः क्षणका समय; **६९७. मुहूर्तम्**—दो घटीका समय; **६९८. प्रहरः**—चार मुहूर्तका समय; **६९९. दिवा**—दिन—चार पहरका समय; **७००. नक्तम्**—रात्रि—चार पहरका समय; **७०१. अहर्निशम्**—दिन-रात—आठ पहरका समय; **७०२. पक्षः**—पंद्रह दिन-रातका समय; **७०३. मासः**—दो पक्षोंका समय; **७०४. अयनम्**—छः मासका समय; **७०५. वर्षम्**—दो अयनोंका मानव वर्ष (तीन सौ साठ मानव वर्षका एक दिव्य वर्ष होता है); **७०६. युगम्**—बारह हजार दिव्य वर्षोंका चतुर्युग; **७०७. कल्पः**—सहस्र चतुर्युगका एक कल्प (जो ब्रह्माका एक दिन है); **७०८. महालयः**—बहत्तर हजार कल्पोंका एक महाप्रलय होता है (जिसमें ब्रह्माका भी लय हो जाता है।)*॥१२२॥

राशिस्तारा तिथिर्योगो वारः करणमंशकम्।
लग्नं होरा कालचक्रं मेरुः सप्तर्षयो ध्रुवः॥ १२३॥

७०९. राशिः—मेष आदि द्वादश राशिरूप; **७१०. तारा**—कृत्तिका आदि नक्षत्ररूप; **७११. तिथिः**—चन्द्रमाकी पंद्रह कलाओंमेंसे एक; **७१२. योगः**—अमृतसिद्धि एवं आनन्द आदि योगरूप; **७१३. वारः**—रविवार आदि सप्तदिनस्वरूप; **७१४. करणम्**—'बव' आदि करणरूप; **७१५. अंशकम्**—अंशस्वरूप; **७१६. लग्नम्**—मेष आदि राशियोंका उदय; **७१७. होरा**—अर्धलग्न; **७१८. कालचक्रम्**—शिशुमारचक्रस्वरूप; **७१९. मेरुः**—सुवर्णमय पर्वतरूप; **७२०. सप्तर्षयः**—कश्यप आदि सात ऋषिरूप; **७२१. ध्रुवः**—उत्तानपादके पुत्ररूप॥ १२३॥

राहुर्मन्दः कविर्जीवो बुधो भौमः शशी रविः।
कालः सृष्टिः स्थितिर्विश्वं स्थावरं जङ्गमं च यत्॥ १२४॥

७२२. राहुः—राहु नामक ग्रह; **७२३. मन्दः**—शनैश्चर; **७२४. कविः**—शुक्र; **७२५. जीवः**—बृहस्पति; **७२६. बुधः**—बुध; **७२७. भौमः**—मंगल; **७२८. शशी**—सोम; **७२९. रविः**—सूर्य; **७३०. कालः**—जगत्का संहार करनेवाले; **७३१. सृष्टिः**—सृष्टिक्रियारूप; **७३२. स्थितिः**—पालनकर्मरूप; **७३३. स्थावरं जङ्गमं विश्वम्**—चराचर जगत्रूप॥ १२४॥

भूरापोऽग्निमरुद्व्योमाहंकृतिः प्रकृतिः पुमान्।
ब्रह्मा विष्णुः शिवो रुद्र ईशः शक्तिः सदाशिवः॥ १२५॥

७३४. भूः—पृथ्वीरूप; **७३५. आपः**—जलरूप; **७३६. अग्निः**—तेजःस्वरूप; **७३७. मरुत्**—वायुरूप; **७३८. व्योम**—आकाशरूप; **७३९. अहंकृतिः**—अहंकाररूप; **७४०. प्रकृतिः**—जगत्का मूलकारण अव्यक्त प्रकृतिरूप; **७४१. पुमान्**—पुरुषरूप; **७४२. ब्रह्मा**—सृष्टिकर्ता; **७४३. विष्णुः**—पालनकर्ता; **७४४. शिवः**—शिव; **७४५. रुद्रः**—संहारकर्ता; **७४६. ईशः**—ईशान; **७४७. शक्तिः**—कामेश्वरी; **७४८. सदाशिवः**—कामेश्वर शिव॥ १२५॥

त्रिदशाः पितरः सिद्धा यक्षा रक्षांसि किंनराः।
साध्या विद्याधरा भूता मनुष्याः पशवः खगाः॥ १२६॥

७४९. त्रिदशाः—देवसमुदायरूप; **७५०. पितरः**—पितृसमूह; **७५१. सिद्धाः**—सिद्धसमुदाय; **७५२. यक्षाः**—यक्षवृन्द; **७५३. रक्षांसि**—राक्षससमूह; **७५४. किंनराः**—किंनरवर्ग; **७५५. साध्याः**—साध्यगण; **७५६. विद्याधराः**—विद्याधरगण; **७५७. भूताः**—भूतगण; **७५८. मनुष्याः**—मनुष्यगण; **७५९. पशवः**—पशुगण; **७६०. खगाः**—पक्षिगण॥ १२६॥

समुद्राः सरितः शैला भूतं भव्यं भवोद्भवः।
सांख्यं पातञ्जलं योगः पुराणानि श्रुतिः स्मृतिः॥ १२७॥

७६१. समुद्राः—विभिन्न समुद्र; **७६२. सरितः**—नदीसमुदाय; **७६३. शैलाः**—पर्वतगण; **७६४. भूतम्**—अतीतकाल; **७६५. भव्यम्**—भविष्यकाल; **७६६. भवोद्भवः**—जगत्की उत्पत्तिके कारण; **७६७. सांख्यम्**—कपिलमुनिद्वारा प्रतिपादित शास्त्र; **७६८. पातञ्जलम्**—पतञ्जलिप्रोक्त योगसूत्र; **७६९. योगः**—नागराज शेषद्वारा प्रतिपादित; **७७०. पुराणानि**—'ब्राह्म' आदि पुराणसमुदाय; **७७१. श्रुतिः**—ऋग्वेद आदि; **७७२. स्मृतिः**—मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र॥ १२७॥

वेदाङ्गानि सदाचारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वं काव्यनाटकम्॥ १२८॥

७७३. वेदाङ्गानि—व्याकरणादि छः वेदांगसमूह; **७७४. सदाचारः**—सदाचर-संग्रहात्मक ग्रन्थ; **७७५.**

* 'लव' से लेकर 'महालय' तक सभी कालभेद महाकालस्वरूप गणपतिके अवयव हैं।

मीमांसा—सोलह अध्यायोंमें वर्णित कर्ममीमांसा—जैमिनिसूत्र तथा चार अध्यायोंमें कथित ब्रह्ममीमांसा; ७७६. **न्यायविस्तरः**—कणाद और गौतम मुनियोंके द्वारा प्रतिपादित न्यायशास्त्र; ७७७. **आयुर्वेदः**—धन्वन्तरिप्रोक्त उपवेद; ७७८. **धनुर्वेदः**—अस्त्रविद्या; ७७९. **गान्धर्वम्**—संगीतशास्त्र; ७८०. **काव्यनाटकम्**—श्रव्य काव्य और दृश्य नाटक॥ १२८॥

वैखानसं भागवतं सात्वतं पाञ्चरात्रकम्।
शैवं पाशुपतं कालामुखं भैरवशासनम्॥ १२९॥

७८१. **वैखानसम्**—विष्णुप्रोक्त वैखानसतन्त्र; ७८२. **भागवतम्**—वैष्णवशास्त्र; ७८३. **सात्वतम्**—सात्वततन्त्रः; ७८४. **पाञ्चरात्रकम्**—पांचरात्र आगम (ये चारों वैष्णवतन्त्र हैं); ७८५. **शैवम्**—शैवतन्त्र; ७८६. **पाशुपतम्**—पाशुपतशास्त्र; ७८७. **कालामुखम्**—कालामुखनामसे प्रसिद्ध तन्त्र; ७८८. **भैरवशासनम्**—भैरवकथित शास्त्र (ये चारों शैवतन्त्र हैं)॥ १२९॥

शाक्तं वैनायकं सौरं जैनमार्हतसंहिता।
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं सचेतनमचेतनम्॥ १३०॥

७८९. **शाक्तम्**—शक्तितन्त्र; ७९०. **वैनायकम्**—विनायकतन्त्र; ७९१. **सौरम्**—सूर्यप्रोक्त तन्त्र; ७९२. **जैनम्**—जैनशास्त्र; ७९३. **आर्हतसंहिता**—आर्हतशास्त्र; ७९४. **सत्**—कारणरूपमें स्थित; ७९५. **असत्**—कार्यरूपमें स्थित; ७९६. **व्यक्तम्**—सर्वकार्यरूप; ७९७. **अव्यक्तम्**—कारणरूप; ७९८. **सचेतनम्**—सचेतन प्राणिमात्र; ७९९. **अचेतनम्**—अचेतन आकाश आदि॥ १३०॥

बन्धो मोक्षः सुखं भोगोऽयोगः सत्यमणुर्महान्।
स्वस्ति हुं फट् स्वधा स्वाहा श्रौषड्वौषड्वषण्णमः॥ १३१॥

८००. **बन्धः**—आत्मामें अनात्माका और अनात्मामें आत्माका जो भ्रम है, तादृश भ्रमात्मक बन्धनरूप; ८०१. **मोक्षः**—अज्ञाननाशरूप; ८०२. **सुखम्**—विशुद्धानन्द; ८०३. **भोगः**—अनुभव; ८०४. **अयोगः**—अनासक्त; ८०५. **सत्यम्**—त्रिकालमें अबाधित; ८०६. **अणुः**—मन-इन्द्रियोंके अगोचर; ८०७. **महान्**—जिससे बढ़कर कोई आनन्द नहीं है, तादृश-भूमा; ८०८. **स्वस्ति**—सम्यक् सत्तावान्; ८०९ **हुम्**—अपनेसे इतरका बाध करनेके कारण हुम्स्वरूप ब्रह्म; ८१०. **फट्**—इतर सत्ताके भ्रमका नाश करनेवाले; ८११. **स्वधा**—श्राद्धरूप; ८१२. **स्वाहा**—यज्ञकर्मरूप; ८१३. **श्रौषड्**—श्रौषट्कारोपलक्षित कर्मरूप; ८१४. **वौषड्**—वौषट्कारोपलक्षित कर्मरूप; ८१५. **वषट्**—वषट्कारोपलक्षित कर्मरूप; ८१६. **नमः**—नमस्कारस्वरूप॥ १३१॥

ज्ञानं विज्ञानमानन्दो बोधः संविच्छमो यमः।
एक एकाक्षराधार एकाक्षरपरायणः॥ १३२॥

८१७. **ज्ञानम्**—मोक्षविषयक ज्ञानस्वरूप; ८१८. **विज्ञानम्**—विज्ञानस्वरूप; ८१९. **आनन्दः**—आत्मानन्दस्वरूप, ८२०. **बोधः**—अन्तर्बोधरूप; ८२१. **संवित्**—बाह्य वृत्तियोंको निरस्त करनेवाला अन्तर्बोध; ८२२. **शमः**—मनोनिग्रह; ८२३. **यमः**—इन्द्रियसंयम; ८२४. **एकः**—एकमात्र अद्वितीय; ८२५. **एकाक्षराधारः**—एक अक्षर 'ग' बीजमात्रमें स्थित रहनेवाली; ८२६. **एकाक्षरपरायणः**—ॐ—इस एकाक्षरमात्रमें स्थित॥ १३२॥

एकाग्रधीरेकवीर एकानेकस्वरूपधृक्।
द्विरूपो द्विभुजो द्व्यक्षो द्विरदो द्वीपरक्षकः॥ १३३॥

८२७. **एकाग्रधीः**—अपने-आपमें एकाग्र रहनेवाली बुद्धिरूप; ८२८. **एकवीरः**—अद्वितीय वीर; ८२९. **एकानेकस्वरूपधृक्**—एक होते हुए भी अनेक रूप धारण करनेवाले; ८३०. **द्विरूपः**—'पर' और 'अपर' ब्रह्मरूपसे दो रूपवाले; ८३१. **द्विभुजः**—दो बाँहोंवाले; ८३२. **द्व्यक्षः**—दो नेत्रोंवाले; ८३३. **द्विरदः**—दो दाँतोंवाले, गजरूप; ८३४. **द्वीपरक्षकः**—सप्तद्वीपाधिपतित्व प्रदान करनेके कारण द्वीपके रक्षक॥ १३३॥

द्वैमातुरो द्विवदनो द्वन्द्वातीतो द्वयातिगः।
त्रिधामा त्रिकरस्त्रेतात्रिवर्गफलदायकः॥ १३४॥

८३५. **द्वैमातुरः**—उमा और गंगा—दो माताओंके पुत्र; ८३६. **द्विवदनः**—अग्निरूप मुख तथा गजमुख दोनोंसे युक्त होनेके कारण दो मुखवाले; ८३७. **द्वन्द्वातीतः**—सर्दी-गरमी आदि द्वन्द्व-दुःखोंसे ऊपर उठे हुए; ८३८. **द्वयातिगः**—रजोगुण और तमोगुण—दोनोंको लाँघ करके विराजमान; ८३९. **त्रिधामा**—सूर्य, चन्द्र और अग्नि—इन त्रिविध तेजोंसे युक्त मूर्तिवाले; ८४०. **त्रिकरः**—तीनों लोकोंके कर्ता; ८४१. **त्रेतात्रिवर्गफलदायकः**—त्रिविध अग्निके चयनसे प्राप्त होनेवाले धर्म, काम और अर्थरूपी फलोंके दाता॥ १३४॥

त्रिगुणात्मा त्रिलोकादिस्त्रिशक्तीशस्त्रिलोचनः।
चतुर्बाहुश्चतुर्दन्तश्चतुरात्मा चतुर्मुखः॥ १३५॥

८४२. **त्रिगुणात्मा**—त्रिगुणमयी मूल प्रकृतिके आधार; ८४३. **त्रिलोकादिः**—तीनों लोकोंके आदिकारण; ८४४. **त्रिशक्तीशः**—'**श्रीं, ह्रीं, क्लीं**'—इन त्रिविध शक्तिमन्त्रोंके अथवा प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति—इन तीनों शक्तियोंके ईश्वर; ८४५. **त्रिलोचनः**—तीन नेत्रोंवाले; ८४६. **चतुर्बाहुः**—चार बाँहवाले; ८४७. **चतुर्दन्तः**—चार दाँतवाले; ८४८. **चतुरात्मा**—आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा और परमात्माके भेदसे चार आत्मावाले; ८४९. **चतुर्मुखः**—मुखमें चार प्रकारके वेद धारण करनेसे चार मुखवाले॥ १३५॥

चतुर्विधोपायमयश्चतुर्वर्णाश्रमाश्रयः।
चतुर्विधवचोवृत्तिपरिवृत्तिप्रवर्तकः॥ १३६॥

८५०. **चतुर्विधोपायमयः**—भेद, दण्ड, साम और दान—ये चार उपाय हैं। इन चारों उपायोंसे उत्पन्न फलके साधक; ८५१. **चतुर्वर्णाश्रमाश्रयः**—चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके विहित कर्मोंद्वारा प्राप्त होनेवाले; अथवा उन वर्णों या आश्रमोंके आधार; ८५२. **चतुर्विधवचोवृत्तिपरिवृत्तिप्रवर्तकः**—अन्तःप्रदेशमें पश्यन्ती, मध्यमा तथा परा—इन तीन वाणियोंके और बाह्यदेशमें वैखरी नामक चतुर्थी वाणीकी वृत्तियोंके परिवर्तनके प्रवर्तक॥ १३६॥

चतुर्थीपूजनप्रीतश्चतुर्थीतिथिसम्भवः।
पञ्चाक्षरात्मा पञ्चात्मा पञ्चास्यः पञ्चकृत्यकृत्॥ १३७॥

८५३. **चतुर्थीपूजनप्रीतः**—चतुर्थी तिथिको पूजन करनेसे प्रसन्न होनेवाले; ८५४. **चतुर्थीतिथिसम्भवः**—चतुर्थी नामक तिथिको प्रकट होनेवाले; ८५५. **पञ्चाक्षरात्मा**—नाद, बिन्दु, मकार, अकार और उकार—ये प्रणवमें स्थित जो पाँच अक्षर हैं, तत्स्वरूप; ८५६. **पञ्चात्मा**—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—इन पाँच विग्रहोंसे युक्त; ८५७. **पञ्चास्यः**—विस्तृत मुखवाले; ८५८. **पञ्चकृत्यकृत्**—सृष्टि, पालन, संहार, तिरोधान और अनुग्रह—ब्रह्मा आदि रूपोंसे इन पाँच कृत्योंको करनेवाले॥ १३७॥

पञ्चाधारः पञ्चवर्णः पञ्चाक्षरपरायणः।
पञ्चतालः पञ्चकरः पञ्चप्रणवभावितः॥ १३८॥

८५९. **पञ्चाधारः**—पाँचों भूतोंके आधार या धारक; ८६०. **पञ्चवर्णः**—सदा करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान वर्णवाले होते हुए भी सत्ययुगमें चन्द्रमाके समान, त्रेतामें अर्जुनवृक्षके समान, द्वापरमें इन्द्रगोप नामक कीटके समान तथा कलियुगमें धुएँके समान वर्णवाले होनेसे पाँच वर्णवाले; ८६१. **पञ्चाक्षरपरायणः**—शिवपञ्चाक्षरमन्त्रका जप करनेवाले; ८६२. **पञ्चतालः**—हाथकी बिचली अँगुलीके अग्रभागसे लेकर अंगुष्ठतककी लम्बाईको 'ताल' कहते हैं। ऐसे पाँच तालके बराबर शरीरवाले, वामनरूप; ८६३. **पञ्चकरः**—पाँच हाथ ऊँचे होनेके कारण 'पञ्चकर' कहे जानेवाले; ८६४. **पञ्चप्रणवभावितः**—पाँच प्रणवोंसे प्रतिपादित या अनुभावित॥ १३८॥

पञ्चब्रह्ममयस्फूर्तिः पञ्चावरणवारितः।
पञ्चभक्ष्यप्रियः पञ्चवाणः पञ्चशिवात्मकः॥ १३९॥

८६५. **पञ्चब्रह्ममयस्फूर्तिः**—सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईश्वर—इन पाँच ब्रह्मस्वरूपोंकी स्फूर्तिसे युक्त; ८६६. **पञ्चावरणवारितः**—पाँच आवरणों अथवा पाँच कोशोंसे आवृत; ८६७. **पञ्चभक्ष्यप्रियः**—लड्डू, मण्डक, पूरी, फेणी (सेवई) और वटक (बड़े) नामवाले पाँच प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंके प्रेमी; ८६८. **पञ्चवाणः**—कामेश्वरी उमा और कामेश्वर शिवके पाँच बीजोंसे युक्त होनेके कारण 'पञ्चवाण' नामसे प्रसिद्ध; ८६९. **पञ्चशिवात्मकः**—पञ्चशिव-बीजस्वरूप॥ १३९॥

षट्कोणपीठः षट्चक्रधामा षड्ग्रन्थिभेदकः।
षडध्वध्वान्तविध्वंसी षडङ्गुलमहाह्रदः॥ १४०॥

८७०. **षट्कोणपीठः**—षट्कोणचक्रसे युक्त पूजापीठवाले; ८७१. **षट्चक्रधामा**—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा—ये छः चक्र जिनके वासस्थान हैं,वे; ८७२. **षड्ग्रन्थिभेदकः**—मूलाधार, आज्ञा और मणिपूर—इन तीन चक्रोंमें दो-दो ग्रन्थियोंका भेदन करनेवाले; ८७३. **षडध्वध्वान्तविध्वंसी**—पद, भुवन, वर्ण, तत्त्व, कला और मन्त्र—इन छहों अध्वाओंको शोधन करनेके कारण उनमें व्याप्त अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेवाले; ८७४. **षडङ्गुल-महाह्रदः**—छः अंगुल गहरे नाभिरूप महान् ह्रदवाले॥ १४०॥

षण्मुखः षण्मुखभ्राता षट्शक्तिपरिवारितः।
षड्वैरिवर्गविध्वंसी षडूर्मिभयभञ्जनः॥ १४१॥

८७५. **षण्मुखः**—छः शास्त्र जिनके मुखमें हैं, वे; ८७६. **षण्मुखभ्राता**—षडानन कार्तिकेयके बड़े

भाई; ८७७. **षट्शक्तिपरिवारितः**—छः शक्तियोंसे घिरे हुए; ८७८. **षड्वैरिवर्गविध्वंसी**—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छः शत्रुओंके समुदायका नाश करनेवाले; ८७९. **षडूर्मिभयभञ्जनः**—भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु—इन छः ऊर्मियोंके भयका निवारण करनेवाले॥ १४१॥

षट्तर्कदूरः षट्कर्मनिरतः षड्रसाश्रयः।
सप्तपातालचरणः सप्तद्वीपोरुमण्डलः॥ १४२॥

८८०. **षट्तर्कदूरः**—छः दर्शनोंमें कथित तर्कोंके अगोचर—वाणीसे अतीत; ८८१. **षट्कर्मनिरतः**—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंमें तत्पर रहनेवाले; ८८२. **षड्रसाश्रयः**—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त—इन छः रसोंके आधार; ८८३. **सप्तपातालचरणः**—तल, अतल, वितल, सुतल, रसातल, महातल और पाताल—ये नीचेके सात लोक जिनके चरणोंके आश्रित हैं, वे; ८८४. **सप्तद्वीपोरुमण्डलः**—जम्बू आदि सात द्वीप जिनके ऊरुमण्डलके आश्रित हैं, वे॥ १४२॥

सप्तस्वर्लोकमुकुटः सप्तसप्तिवरप्रदः।
सप्ताङ्गराज्यसुखदः सप्तर्षिगणमण्डितः॥ १४३॥

८८५. **सप्तस्वर्लोकमुकुटः**—भुवर्लोकसे लेकर गोलोकपर्यन्त सात स्वर्लोक जिनके मुकुट हैं, वे; ८८६. **सप्तसप्तिवरप्रदः**—सूर्यको वर देनेवाले; ८८७. **सप्ताङ्गराज्यसुखदः**—स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और सुहृद्—इन सातों अंगोंसे युक्त राज्यका सुख देनेवाले; ८८८. **सप्तर्षिगणमण्डितः**—कश्यप आदि सात ऋषियों तथा गणदेवताओंसे सेवित एवं सुशोभित॥ १४३॥

सप्तच्छन्दोनिधिः सप्तहोता सप्तस्वराश्रयः।
सप्ताब्धिकेलिकासारः सप्तमातृनिषेवितः॥ १४४॥

८८९. **सप्तच्छन्दोनिधिः**—गायत्रीसे लेकर जगतीपर्यन्त सात छन्दोंके आश्रय; ८९०. **सप्तहोता**—होतासे लेकर उद्गातापर्यन्त सात होता जिनके स्वरूप हैं, वे; ८९१. **सप्तस्वराश्रयः**—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद—इन सात स्वरोंके आश्रय; ८९२. **सप्ताब्धिकेलिकासारः**—सातों समुद्र जिनके क्रीड़ासरोवर हैं, वे; ८९३. **सप्तमातृनिषेवितः**—ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि सात मातृकाओंसे सेवित॥ १४४॥

सप्तच्छन्दोमोदमदः सप्तच्छन्दोमखप्रभुः।
अष्टमूर्तिध्येयमूर्तिरष्टप्रकृतिकारणम्॥ १४५॥

८९४. **सप्तच्छन्दोमोदमदः**—पथ्य-संज्ञक सात छन्दोंके मोदजनक मदसे युक्त; ८९५. **सप्तच्छन्दोमखप्रभुः**—सात छन्दोंके यज्ञके स्वामी; ८९६. **अष्टमूर्तिध्येयमूर्तिः**—अष्टमूर्ति-शिवसे ध्येय मूर्तिवाले; अर्थात् भगवान् शिव भी अपने हृदयमें जिनके स्वरूपका चिन्तन करते हैं, वे; ८९७. **अष्टप्रकृतिकारणम्**—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इन आठ प्रकृतियोंकी उत्पत्तिके कारण॥ १४५॥

अष्टाङ्गयोगफलभूरष्टपत्राम्बुजासनः।
अष्टशक्तिसमृद्धश्रीरष्टैश्वर्यप्रदायकः॥ १४६॥

८९८. **अष्टाङ्गयोगफलभूः**—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—इन आठ अंगोंसे युक्त योगके चित्तवृत्तिनिरोधरूप फल देनेवाले; ८९९. **अष्टपत्राम्बुजासनः**—अष्टदल-कमलपर आसीन होनेके कारण उक्त नामसे प्रसिद्ध; ९००. **अष्टशक्तिसमृद्धश्रीः**—आठ दलोंमें निवास करनेवाली तीव्रा आदि आठ शक्तियोंसे सेवित होनेके कारण बढ़ी हुई श्रीसे सम्पन्न; ९०१. **अष्टैश्वर्यप्रदायकः**—अणिमा आदि आठ सिद्धियोंके दाता॥ १४६॥

अष्टपीठोपपीठश्रीरष्टमातृसमावृतः।
अष्टभैरवसेव्योऽष्टवसुवन्द्योऽष्टमूर्तिभृत्॥ १४७॥

९०२. **अष्टपीठोपपीठश्रीः**—आठ महापीठ और उपपीठोंकी श्री—सम्पत्तिसे युक्त; ९०३. **अष्टमातृसमावृतः**—ब्राह्मी आदि सात मातृकाओंके साथ जो आठवीं महालक्ष्मी हैं, वे आठों आवरणदेवताके रूपमें जिन्हें घेरे रहती हैं, वे; ९०४. **अष्टभैरवसेव्यः**—बटुक आदि आठ भैरवोंसे सेव्य; ९०५. **अष्टवसुवन्द्यः**—धरसे लेकर प्रभासतक आठ वसुओंसे वन्दनीय; ९०६. **अष्टमूर्तिभृत्**—अष्टमूर्तिधारी॥ १४७॥

अष्टचक्रस्फुरन्मूर्तिरष्टद्रव्यहविःप्रियः।
नवनागासनाध्यासी नवनिध्यनुशासिता॥ १४८॥

९०७. **अष्टचक्रस्फुरन्मूर्तिः**—अष्टचक्रवाले यन्त्रमें प्रकाशमान मूर्तिवाले; ९०८. **अष्टद्रव्यहविःप्रियः**—ईख, सत्तू, चिउड़ा, कदली, मोदक, तिल, नारियल और घृतपक्व आदि पदार्थ—इन आठ द्रव्योंके हविष्यसे प्रसन्न होनेवाले; ९०९. **नवनागासनाध्यासी**—कर्कोटक आदि नौ नागोंके आसनपर बैठनेवाले;

९१०. **नवनिध्यनुशासिता**—नौ निधियोंपर अनुशासन रखनेवाले ॥ १४८ ॥

नवद्वारपुराधारो नवाधारनिकेतनः ।
नवनारायणस्तुत्यो नवदुर्गानिषेवितः ॥ १४९ ॥

९११. **नवद्वारपुराधारः**—नौ द्वारोंवाले पुर—शरीरको जीवात्मारूपसे धारण करनेवाले; ९१२. **नवाधार-निकेतनः**—कुलाकुल, सहस्रार, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और लम्बिका—इन नौ आधारोंमें निवास करनेवाले; ९१३. **नव-नारायणस्तुत्यः**—धर्मनारायण, आदिनारायण, अनन्तनारायण, बदरीनारायण, रूपनारायण, शंकरनारायण, सुन्दरनारायण, लक्ष्मीनारायण और साध्यनारायण—इन नौ नारायणोंसे स्तुत्य; ९१४. **नवदुर्गानिषेवितः**—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री—इन नौ दुर्गाओंसे सेवित ॥ १४९ ॥

नवनाथमहानाथो नवनागविभूषणः ।
नवरत्नविचित्राङ्गो नवशक्तिशिरोधृतः ॥ १५० ॥

९१५. **नवनाथमहानाथः**—ज्ञान, प्रकाश, सत्य, आनन्द, विमर्श, स्वभाव, सुभग, प्रतिभ और पूर्ण—इन नौ नाथोंके महानाथ; ९१६. **नवनागविभूषणः**—कर्कोटक आदि नौ नागोंको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले; ९१७. **नवरत्नविचित्राङ्गः**—हीरा, मोती आदि नौ रत्नोंकी शोभासे विचित्र अंगवाले; ९१८. **नवशक्तिशिरोधृतः**—तीव्रा आदि नौ शक्तियोंद्वारा सिंहपर धारित अर्थात् वन्दित ॥ १५० ॥

दशात्मको दशभुजो दशदिक्पतिवन्दितः ।
दशाध्यायो दशप्राणो दशेन्द्रियनियामकः ॥ १५१ ॥

९१९. **दशात्मकः**—दसों दिशाओंमें व्यापक; ९२०. **दशभुजः**—दस भुजाओंसे युक्त; ९२१. **दशदिक्पतिवन्दितः**—इन्द्र आदि दस दिक्पालोंसे स्तुत्य; ९२२. **दशाध्यायः**—चार वेद और छः अंगोंके अध्येता; ९२३. **दशप्राणः**—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—इन दस प्राणोंसे युक्त; ९२४. **दशेन्द्रियनियामकः**—पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले ॥ १५१ ॥

दशाक्षरमहामन्त्रो दशाशाव्यापिविग्रहः ।
एकादशादिभी रुद्रैः स्तुत एकादशाक्षरः ॥ १५२ ॥

९२५. **दशाक्षरमहामन्त्रः**—दस अक्षरवाले महामन्त्र-स्वरूप; ९२६. **दशाशाव्यापिविग्रहः**—दसों दिशाओंमें व्याप्त शरीरवाले; ९२७. **एकादशादिभी रुद्रैः स्तुतः**—ग्यारहसे लेकर एक सहस्रतक रुद्र होते हैं, उन सबके द्वारा स्तुत; ९२८. **एकादशाक्षरः**—एकादश अक्षरवाले मन्त्रस्वरूप ॥ १५२ ॥

द्वादशोद्दण्डदोर्दण्डो द्वादशान्तनिकेतनः ।
त्रयोदशभिदाभिन्नविश्वेदेवाधिदैवतम् ॥ १५३ ॥

९२९. **द्वादशोद्दण्डदोर्दण्डः**—बारह उद्दण्ड (ऊपर उठे हुए) बाहुदण्डोंसे युक्त; ९३०. **द्वादशान्तनिकेतनः**—ललाटसे ऊपर ब्रह्मरन्ध्रतकके स्थानको 'द्वादशान्त' कहते हैं, उसमें निवास करनेवाले; ९३१. **त्रयोदश-भिदाभिन्नविश्वेदेवाधिदैवतम्**—तेरह विश्वेदेवोंके अधिदेवता ॥ १५३ ॥

चतुर्दशेन्द्रवरदश्चतुर्दशमनुप्रभुः ।
चतुर्दशादिविद्याढ्यश्चतुर्दशजगत्प्रभुः ॥ १५४ ॥

९३२. **चतुर्दशेन्द्रवरदः**—चौदह इन्द्रोंको वर देनेवाले; ९३३. **चतुर्दशमनुप्रभुः**—चौदह मनुओंके अधिपति; ९३४. **चतुर्दशादिविद्याढ्यः**—चार (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति), दस (चार वेद और छः वेदांग) आदि विद्याओंसे सम्पन्न; ९३५. **चतुर्दशजगत्प्रभुः**—चौदह भुवनोंके स्वामी ॥ १५४ ॥

सामपञ्चदशः पञ्चदशीशीतांशुनिर्मलः ।
षोडशाधारनिलयः षोडशस्वरमातृकः ॥ १५५ ॥

९३६. **सामपञ्चदशः**—पंद्रह स्तोममन्त्रोंके साथ, जो चार आज्यस्तोत्रसम्बन्धी मन्त्र हैं, वे सामयुक्त होकर गणपतिके स्वरूप हैं, अतः वे उक्त नामसे प्रसिद्ध हैं; ९३७. **पञ्चदशीशीतांशुनिर्मलः**—पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान स्वच्छ; ९३८. **षोडशाधारनिलयः**—षड्दल, नवदल एवं षोडशदल आदि चक्रोंमें निवास करनेवाले; ९३९. **षोडशस्वरमातृकः**—सोलह स्वर अक्षररूप ॥ १५५ ॥

षोडशान्तपदावासः षोडशेन्दुकलात्मकः ।
कलासप्तदशी सप्तदशः सप्तदशाक्षरः ॥ १५६ ॥

९४०. **षोडशान्तपदावासः**—ब्रह्मरन्ध्रके अन्तर्गत कमलकी कर्णिकासे लेकर ऊपरके भागको 'षोडशान्त' कहते हैं। उसमें निवास करनेवाले अर्थात् उन्मनीसे परे विराजमान; ९४१. **षोडशेन्दुकलात्मकः**—अमृता और मानिनी आदि षोडशचन्द्रकलास्वरूप; ९४२. **कलासप्तदशी**—'त्रिपुरागम' में प्रसिद्ध 'सप्तदशी' नामक

कलास्वरूप; ९४३. **सप्तदशः**—सामयुक्त सप्तदशस्तोम-स्वरूप; ९४४. **सप्तदशाक्षरः—वषट् (२), ओश्रावय (४), यज (२), अस्तु श्रौषट् (४), ये यजामहे (५)**—इस प्रकार सत्रह अक्षरोंवाले मन्त्रोंसे यज्ञमें आहुति ग्रहण करनेवाले॥ १५६॥

अष्टादशद्वीपपतिरष्टादशपुराणकृत् ।
अष्टादशौषधीसृष्टिरष्टादशविधिः स्मृतः॥ १५७॥

९४५. **अष्टादशद्वीपपतिः**—'जम्बू' आदि सात द्वीपों और 'सिंहल' आदि ग्यारह उपद्वीपोंके अधीश्वर; ९४६. **अष्टादशपुराणकृत्**—अठारह पुराणोंके कर्ता व्यासरूप; ९४७. **अष्टादशौषधीसृष्टिः**—बारह मुख्य धान्य और छः उपधान्य—इन अठारह ओषधियों (अन्नों)-की सृष्टि करनेवाले; ९४८. **अष्टादशविधिः**—अठारह विधिस्वरूप; (अपूर्व विधि, नियम-विधि और परिसंख्या-विधि—ये प्रयोग और विनियोग आदिके भेदसे नौ प्रकारकी होती हैं। फिर गौणी और मुख्य भेदसे इनके अठारह प्रकार होते हैं।)॥ १५७॥

अष्टादशलिपिव्यष्टिसमष्टिज्ञानकोविदः ।
एकविंशः पुमानेकविंशत्यङ्गुलिपल्लवः॥ १५८॥

९४९. **अष्टादशलिपिव्यष्टिसमष्टिज्ञानकोविदः**—नागरी, द्राविड़ी और आन्ध्री आदिके भेदसे भूतलपर विभिन्न अठारह लिपियाँ हैं। उन भाषाओंको तथा उनके अवान्तर-भेदोंको भी पृथक्-पृथक् एवं समष्टिरूपसे जाननेमें कुशल; ९५०. **एकविंशः पुमान्**—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच विषय और पाँच भूत—इन बीस तत्त्वोंसे परे इक्कीसवाँ तत्त्व आत्मा; ९५१. **एकविंशत्यङ्गुलिपल्लवः**—दस हाथकी अंगुलियाँ, दस पैरोंकी अंगुलियाँ और एक शुण्डदण्ड—इस प्रकार इक्कीस अंगुलिपल्लवोंसे युक्त॥ १५८॥

चतुर्विंशतितत्त्वात्मा पञ्चविंशाख्यपूरुषः ।
सप्तविंशतितारेशः सप्तविंशतियोगकृत्॥ १५९॥

९५२. **चतुर्विंशतितत्त्वात्मा**—प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच विषय और पाँच भूत—इस प्रकार चौबीस तत्त्व हैं; चौबीस तत्त्वस्वरूप; ९५३. **पञ्चविंशाख्यपूरुषः**—चौबीस तत्त्वोंसे परे विद्यमान, पचीसवें तत्त्वस्वरूप पुरुष; ९५४. **सप्तविंशतितारेशः**—अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंके स्वामी; ९५५. **सप्तविंशतियोगकृत्**—सत्ताईस योगोंके कर्ता॥ १५९॥

द्वात्रिंशद्भैरवाधीशश्चतुस्त्रिंशन्महाह्रदः ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वसम्भूतिरष्टात्रिंशत्कलातनुः ॥ १६०॥

९५६. **द्वात्रिंशद्भैरवाधीशः**—बत्तीस भैरवोंके स्वामी (असितांग आदि चार भैरव हैं, जो आठ-आठके समुदाय हैं। इस तरह कुल बत्तीस भैरव हैं); ९५७. **चतुस्त्रिंशन्महाह्रदः**—पुष्कर आदि जो देवताओंद्वारा खोदे गये विशाल सरोवर हैं, वे पवित्र 'महाह्रद' कहलाते हैं। उनकी संख्या चौंतीस बतलायी गयी है। ये चौंतीस महाह्रद जिनके स्वरूप हैं, वे; ९५८. **षट्त्रिंशत्तत्त्वसम्भूतिः**—शैवतन्त्रोक्त जो शिव आदि पृथ्वीपर्यन्त छत्तीस तत्त्व हैं, उनकी उत्पत्तिके कारण; ९५९. **अष्टात्रिंशत्कलातनुः**—अग्निकी दस, सूर्यकी बारह और चन्द्रमाकी सोलह कलाएँ—कुल अड़तीस कलाएँ होती हैं। ये सब जिनके शरीर हैं, वे गणपति॥ १६०॥

नमदेकोनपञ्चाशन्मरुद्वर्गनिरर्गलः ।
पञ्चाशदक्षरश्रेणी पञ्चाशद्रुद्रविग्रहः॥ १६१॥

९६०. **नमदेकोनपञ्चाशन्मरुद्वर्गनिरर्गलः**—उनचास मरुद्गणोंसे नमस्कृत एवं अप्रतिहत गतिवाले; ९६१. **पञ्चाशदक्षरश्रेणी**—पचास अक्षर मालारूप; ९६२. **पञ्चाशद्रुद्रविग्रहः**—श्रीकण्ठ आदि पचास शिवस्वरूप॥ १६१॥

पञ्चाशद्विष्णुशक्तीशः पञ्चाशन्मातृकालयः ।
द्विपञ्चाशद्वपुःश्रेणी त्रिषष्ट्यक्षरसंश्रयः॥ १६२॥

९६३. **पञ्चाशद्विष्णुशक्तीशः**—केशव आदि विष्णुरूप और कीर्ति आदि उनकी शक्तियाँ—ये सब पचासकी संख्यामें हैं; इन सबके स्वामी; ९६४. **पञ्चाशन्मातृकालयः**—पचास मातृका-वर्णोंके आलय अथवा लयस्थान नादस्वरूप; ९६५. **द्विपञ्चाशद्वपुःश्रेणी**—लिंगपुराणमें वर्णित जो बावन पाश हैं, वे नूतन शरीर प्रदान करनेवाले हैं; अतः बावन शरीरपङ्क्तिस्वरूप; ९६६. **त्रिषष्ट्यक्षरसंश्रयः**—तिरसठ अक्षरोंके आधार[1]॥ १६२॥

---

१. वर्णोंकी संख्या तिरसठ अथवा चौंसठ मानी गयी है। इनमें इक्कीस स्वर, पचीस स्पर्श, आठ यादि एवं चार यम कहे गये हैं। अनुस्वार, विसर्ग, दो पराश्रित वर्ण—जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय (≍क और ≍प) और दुःस्पृष्ट लकार—ये तिरसठ वर्ण हैं। इनमें प्लुत लृकारको और गिन लिया जाय तो वर्णोंकी संख्या चौंसठ हो जाती है।

चतुःषष्ट्यर्णनिर्णेता चतुःषष्टिकलानिधिः।
चतुःषष्टिमहासिद्धयोगिनीवृन्दवन्दितः ॥ १६३ ॥

९६७. **चतुःषष्ट्यर्णनिर्णेता**—चौंसठ अक्षरोंके निर्णायक; ९६८. **चतुःषष्टिकलानिधिः**—चौंसठ कलाओंके आधार; ९६९. **चतुःषष्टिमहासिद्धयोगिनीवृन्दवन्दितः**—अक्षोभ्य* आदि चौंसठ महासिद्धों और उतनी ही योगिनियोंके समुदायसे वन्दित॥ १६३ ॥

अष्टषष्टिमहातीर्थक्षेत्रभैरवभावनः ।
चतुर्नवतिमन्त्रात्मा षण्णवत्यधिकप्रभुः॥ १६४॥

९७०. **अष्टषष्टिमहातीर्थक्षेत्रभैरवभावनः**—काशीखण्ड और पद्मपुराणमें शिव-सम्बन्धी अड़सठ महातीर्थ बताये गये हैं। उन सभी तीर्थक्षेत्रोंमें भैरव शिवकी भावना करनेवाले; ९७१. **चतुर्नवतिमन्त्रात्मा**—अड़तीस कलामन्त्र और पचास मातृका कलाएँ—ये अठासी मन्त्र हुए। इनके अतिरिक्त हंस, शुचि, प्रतद्विष्णु, विष्णु, योनि और त्र्यम्बक—ये छः विष्णुकी मूलविद्याएँ हैं। इन सबका योग चौरानबे हुआ। इस प्रकार चौरानबे मन्त्रस्वरूप; ९७२. **षण्णवत्यधिकप्रभुः**—तन्त्रराजमें श्रीचक्रके छियानबे देवता बताये गये हैं। विद्या और गणेशके योगसे अधिक देवता हो जाते हैं। इस प्रकार छियानबेसे अधिक देवताओंके अधिपति॥ १६४॥

शतानन्दः शतधृतिः शतपत्रायतेक्षणः।
शतानीकः शतमखः शतधारावरायुधः॥ १६५॥

९७३. **शतानन्दः**—मानुषादि शतगुणोत्तर आनन्द-स्वरूप; ९७४. **शतधृतिः**—अनन्त ब्रह्माण्डोंको धारण करनेवाले; ९७५. **शतपत्रायतेक्षणः**—प्रफुल्ल कमलके समान विशाल नेत्रवाले; ९७६. **शतानीकः**—बहुसंख्यक सैन्यशक्तिसे सम्पन्न; ९७७. **शतमखः**—सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले इन्द्रस्वरूप; ९७८. **शतधारावरायुधः**—सौ धारों अथवा अरोंसे युक्त 'वज्र' नामक श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले॥ १६५॥

सहस्रपत्रनिलयः सहस्रफणभूषणः।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ १६६॥

९७९. **सहस्रपत्रनिलयः**—ब्रह्मरन्ध्रगत सहस्रदल कमलमें विराजमान; ९८०. **सहस्रफणभूषणः**—सहस्र फणधारी सर्पोंसे विभूषित; ९८१. **सहस्रशीर्षा पुरुषः**—असंख्य मस्तकवाले परमात्मा; ९८२. **सहस्राक्षः**—सहस्रों नेत्रोंवाले ९८३. **सहस्रपात्**—सहस्रों पैरोंवाले॥ १६६॥

सहस्रनामसंस्तुत्यः सहस्राक्षबलापहः।
दशसाहस्रफणभृत्फणिराजकृतासनः ॥ १६७॥

९८४. **सहस्रनामसंस्तुत्यः**—सहस्रनामों द्वारा स्तवनीय; ९८५. **सहस्राक्षबलापहः**—इन्द्रके बलको भी विध्वस्त कर देनेवाले; ९८६. **दशसाहस्रफण-भृत्फणिराजकृतासनः**—दस हजार फण धारण करनेवाले नागराजके ऊपर आसीन॥ १६७॥

अष्टाशीतिसहस्राद्यमहर्षिस्तोत्रयन्त्रितः ।
लक्षाधीशप्रियाधारो लक्षाधारमनोमयः॥ १६८॥

९८७. **अष्टाशीतिसहस्राद्यमहर्षिस्तोत्रयन्त्रितः**—अट्ठासी हजारकी संख्यावाले आदि महर्षियोंके द्वारा किये गये स्तोत्रके द्वारा वशीभूत; ९८८. **लक्षाधीश-प्रियाधारः**—लक्षपतियोंके प्रिय आधार; ९८९. **लक्षाधारमनोमयः**—लक्ष (लक्ष्य)-पर एकाग्र किये गये चित्तवाले; अथवा एकाग्रचित्त सत्पुरुषस्वरूप॥ १६८॥

चतुर्लक्षजपप्रीतश्चतुर्लक्षप्रकाशितः ।
चतुरशीतिलक्षाणां जीवानां देहसंस्थितः॥ १६९॥

९९०. **चतुर्लक्षजपप्रीतः**—चार लाख मन्त्रके जपसे प्रसन्न होनेवाले; ९९१. **चतुर्लक्षप्रकाशितः**—अठारह पुराणोंके चार लाख श्लोकोंद्वारा प्रकाशित रूपवाले; ९९२. **चतुरशीतिलक्षाणां जीवानां देहसंस्थितः**—चौरासी लाख जीवोंके शरीरमें विराजमान॥ १६९॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशः कोटिचन्द्रांशुनिर्मलः।
शिवाभवाध्युष्टकोटिविनायकधुरंधरः ॥ १७०॥

९९३. **कोटिसूर्यप्रतीकाशः**—करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी; ९९४. **कोटिचन्द्रांशुनिर्मलः**—करोड़ों चन्द्रमाओंकी किरणोंके समान निर्मल; ९९५. **शिवा-भवाध्युष्टकोटिविनायकधुरंधरः**—पार्वती और शिवके अधीनस्थ करोड़ों विनायकोंके संचालनका भार ढोनेवाले॥ १७०॥

सप्तकोटिमहामन्त्रमन्त्रितावयवद्युतिः ।
त्रयस्त्रिंशत्कोटिसुरश्रेणीप्रणतपादुकः ॥ १७१॥

९९६. **सप्तकोटिमहामन्त्रमन्त्रितावयवद्युतिः**—

* वर्णोंकी संख्या तिरसठ अथवा चौंसठ मानी गयी है। इनमें इक्कीस स्वर, पचीस स्पर्श, आठ यादि एवं चार यम कहे गये हैं। अनुस्वार, विसर्ग, दो पराश्रित वर्ण—जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय (ᳵक और ᳶप) और दुःस्पृष्ट लकार—ये तिरसठ वर्ण हैं। इनमें प्लुत ऌकारको और गिन लिया जाय तो वर्णोंकी संख्या चौंसठ हो जाती है।

सात करोड़ महामन्त्रोंसे मन्त्रित अवयवोंकी कान्तिसे प्रकाशमान; **९९७. त्रयस्त्रिंशत्कोटिसुरश्रेणीप्रणतपादुकः**—जिनकी चरण-पादुकाओंमें तैंतीस करोड़ देवताओंकी पंक्ति प्रणाम करती है, वे॥ १७१ ॥

(अनन्तदेवतासेव्यो ह्यनन्तमुनिसंस्तुतः *।)
अनन्तनामानन्तश्रीरनन्तानन्तसौख्यदः ।
ॐ इति वैनायकं नाम्नां सहस्त्रमिदमीरितम् ॥ १७२ ॥

९९८. अनन्तनामा—अनन्त नामवाले; **९९९. अनन्तश्रीः**—अनन्तविद्या, सम्पत्ति और कीर्तिवाले; **१०००. अनन्तानन्तसौख्यदः**—अनन्तानन्त सौख्य प्रदान करनेवाले। इस प्रकार गणेशजीके ये सहस्त्रनाम बताये गये॥ १७२ ॥

इदं ब्राह्मे मुहूर्ते वै यः पठेत् प्रत्यहं नरः।
करस्थं तस्य सकलमैहिकामुष्मिकं सुखम्॥ १७३ ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं धैर्यं शौर्यं बलं यशः।
मेधा प्रज्ञा धृतिः कान्तिः सौभाग्यमतिरूपता॥ १७४ ॥
सत्यं दया क्षमा शान्तिर्दाक्षिण्यं धर्मशीलता।
जगत्संयमनं विश्वसंवादो वादपाटवम्॥ १७५ ॥
सभापाण्डित्यमौदार्यं गाम्भीर्यं ब्रह्मवर्चसम्।
औन्नत्यं च कुलं शीलं प्रतापो वीर्यमार्यता॥ १७६ ॥
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं स्थैर्यं विश्वातिशायिता।
धनधान्याभिवृद्धिश्च सकृदस्य जपाद्भवेत्॥ १७७ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें इन नामोंका पाठ करता है, उसके हाथमें लौकिक और पारलौकिक सारे सुख आ जाते हैं। इसके एक बार जप करनेसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धैर्य, शौर्य, बल, यश, धारणावती बुद्धि, प्रज्ञा, धृति, कान्ति, सौभाग्य, अतिशय रूप-सौन्दर्य, सत्य, दया, क्षमा, शान्ति, दाक्षिण्य, धर्मशीलता, जगद्वशीकरण, सबकी अनुकूलता, शास्त्रार्थमें पटुता, सभापाण्डित्य, उदारता, गम्भीरता, ब्रह्मतेज, उन्नति, उत्तम कुल, शील, प्रताप, वीर्य, आर्यत्व, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य, स्थिरता, विश्वमें उत्कर्ष और धन-धान्यकी वृद्धि—ये सभी उत्तम फल प्राप्त होते हैं॥ १७३—१७७ ॥

वश्यं चतुर्विधं नृणां जपादस्य प्रजायते।
राज्ञो राजकलत्रस्य राजपुत्रस्य मन्त्रिणः॥ १७८ ॥
जप्यते यस्य वश्यार्थं स दासस्तस्य जायते।
धर्मार्थकाममोक्षाणामनायासेन साधनम्॥ १७९ ॥

इस मन्त्रके जपसे मनुष्योंके लिये चार प्रकारका वशीकरण सिद्ध होता है—राजाका, राजाके अन्तःपुरका, राजकुमारका तथा राज्यमन्त्रीका। जिसको वशमें करनेके लिये इस सहस्त्रनामका जप किया जाता है, वह उस प्रयोग करनेवालेका दास हो जाता है। इस सहस्त्रनामके द्वारा बिना किसी आयासके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि होती है॥ १७८-१७९ ॥

शाकिनीडाकिनीरक्षोयक्षोरगभयापहम् ।
साम्राज्यसुखदं चैव समस्तरिपुमर्दनम्॥ १८० ॥

यह स्तोत्र शाकिनी, डाकिनी, राक्षस, यक्ष और सर्पके भयका नाश करनेवाला है। साम्राज्यका सुख देनेवाला तथा समस्त शत्रुओंका मर्दन करनेवाला है॥ १८० ॥

समस्तकलहध्वंसि दग्धबीजप्ररोहणम्।
दुःस्वप्नशमनं क्रुद्धस्वामिचित्तप्रसादनम्॥ १८१ ॥

इस सहस्त्रनामसे सब प्रकारके कलह-क्लेशका नाश होता है, इससे जले हुए बीजमें भी अंकुर निकल आते हैं। यह बुरे स्वप्नोंके कुफलको मिटाता है और रोषमें भरे हुए स्वामीके चित्तको प्रसन्न करनेवाला है॥ १८१ ॥

षट्कर्माष्टमहासिद्धित्रिकालज्ञानसाधनम् ।
परकृत्याप्रशमनं परचक्रविमर्दनम्॥ १८२ ॥
संग्रामरङ्गे सर्वेषामिदमेकं जयावहम्।
सर्ववन्ध्यात्वदोषघ्नं गर्भरक्षैककारणम्॥ १८३ ॥

यह सहस्त्रनाम मोहन-आकर्षण आदि छः कर्म, आठ महासिद्धि तथा त्रिकालज्ञानका साधन करनेवाला है। शत्रुओंद्वारा अपने ऊपर प्रेरित कृत्याको शान्त करनेवाला तथा शत्रुमण्डलका मर्दन करनेवाला है। संग्रामकी रंगभूमिमें यह अकेला ही सबको विजय दिलानेवाला है। वन्ध्यापन-सम्बन्धी सम्पूर्ण दोषोंका नाशक और गर्भकी रक्षाका मुख्य साधन है॥ १८२-१८३ ॥

पठ्यते प्रत्यहं यत्र स्तोत्रं गणपतेरिदम्।
देशे तत्र न दुर्भिक्षमीतयो दुरितानि च॥ १८४॥

जहाँ प्रतिदिन गणपतिके इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है, उस देशमें दुर्भिक्ष, ईतिभय और दुराचार नहीं होते॥ १८४ ॥

न तद्गृहं जहाति श्रीर्यत्रायं जप्यते स्तवः।
क्षयकुष्ठप्रमेहार्शोभगंदरविषूचिकाः ॥ १८५ ॥

* **अनन्तदेवतासेव्यः**—असंख्य देवताओंद्वारा सेवनीय; **अनन्तमुनिसंस्तुतः**—अनन्त मुनिगणोंद्वारा संस्तुत।

गुल्मं प्लीहानमश्मानमतिसारं महोदरम्।
कासं श्वासमुदावर्तं शूलं शोफादिसम्भवम्॥ १८६॥
शिरोरोगं वमिं हिक्कां गण्डमालामरोचकम्।
वातपित्तकफद्वन्द्वत्रिदोषजनितज्वरम् ॥ १८७॥
आगन्तुं विषमं शीतमुष्णं चैकाहिकादिकम्।
इत्याद्युक्तमनुक्तं वा रोगं दोषादिसम्भवम्॥ १८८॥
सर्वं प्रशमयत्याशु स्तोत्रस्यास्य सकृज्जपः।
सकृत्पाठेन संसिद्धः स्त्रीशूद्रपतितैरपि॥ १८९॥
सहस्त्रनाममन्त्रोऽयं जपितव्यः शुभाप्तये।

जहाँ इस स्तोत्रका पाठ होता है, उस घरको लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती है। क्षय, कोढ़, प्रमेह, बवासीर, भगंदर, विषूचिका (हैजा), गुल्म, प्लीहा, पथरी, अतिसार, उदरवृद्धि, खाँसी, दमा, ऊपरकी डकार उठना, शूल, शोथ आदि, शिरोरोग, वमन, हिचकी, गण्डमाला (गलसूआ), अरुचि, वात-पित्त-कफजनित द्वन्द्व, त्रिदोषजनित ज्वर, आगन्तुक ज्वर, विषमज्वर, शीतज्वर, उष्णज्वर, एकाहिक आदि ज्वर, यहाँ कथित या अकथित दोषादि-सम्भवरोग—इन सबका इस स्तोत्रके एक बार पाठसे शीघ्र शमन हो जाता है। यह सहस्रनाम एक बारके पाठसे ही सिद्ध हो जाता है। स्त्री, शूद्र और पतितोंको भी शुभकी प्राप्तिके लिये इस सहस्रनामस्तोत्रका जप (पाठ) करना चाहिये॥ १८५—१८९½॥

महागणपतेः स्तोत्रं सकामः प्रजपन्निदम्॥ १९०॥
इच्छितान् सकलान् भोगानुपभुज्येह पार्थिवान्।
मनोरथफलैर्दिव्यैर्व्योमयानैर्मनोरमैः ॥ १९१॥
चन्द्रेन्द्रभास्करोपेन्द्रब्रह्मशर्वादिसद्मसु ।
कामरूपः कामगतिः कामतो विचरन्निह॥ १९२॥
भुक्त्वा यथेप्सितान् भोगानभीष्टान् सह बन्धुभिः।
गणेशानुचरो भूत्वा महागणपतेः प्रियः॥ १९३॥
नन्दीश्वरादिसानन्दी नन्दितः सकलैर्गणैः।
शिवाभ्यां कृपया पुत्रनिर्विशेषं च लालितः॥ १९४॥
शिवभक्तः पूर्णकामो गणेश्वरवरात् पुनः।
जातिस्मरो धर्मपरः सार्वभौमोऽभिजायते॥ १९५॥

महागणपतिके इस स्तोत्रका सकामभावसे जप करनेवाला पुरुष इहलोकमें पृथ्वीपर सुलभ समस्त मनोवांछित भोगोंको भोगकर मनोरथ-फलोंकी प्राप्तिपूर्वक दिव्य एवं मनोरम व्योम-विमानोंपर बैठकर चन्द्र, इन्द्र, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा और शिव आदिके लोकोंमें इच्छानुसार रूप धारण करके विचरता है; जहाँ-जहाँ इच्छा होती है, वहाँ-वहाँ पहुँचता है; अपने बन्धुजनोंके साथ अभीष्ट भोगोंको भोगता है; महागणपतिका प्रिय अनुचर होता है और नन्दीश्वर आदिके साथ आनन्दित हो सकल शिवगणोंद्वारा अभिनन्दित होता है। पार्वती और शिव—ये दोनों पुत्रकी भाँति उसका लाड-प्यार करते हैं। वह शिवभक्त तथा पूर्णकाम होता है। फिर गणेशजीके वरदानसे इहलोकमें धर्मपरायण सार्वभौम सम्राट् होता है और उसे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण रहती हैं॥ १९०—१९५॥

निष्कामस्तु जपन्नित्यं भक्त्या विघ्नेशतत्परः।
योगसिद्धिं परां प्राप्य ज्ञानवैराग्यसंस्थितः॥ १९६॥
निरन्तरोदितानन्दे परमानन्दसंविदि।
विश्वोत्तीर्णे परे पारे पुनरावृत्तिवर्जिते॥ १९७॥
लीनो वैनायके धाम्नि रमते नित्यनिर्वृतः।

जो भक्तिभावसे गणेशके भजनमें तत्पर हो निष्काम-भावसे इस स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, वह योगजनित परम सिद्धिको पा लेता है और ज्ञान-वैराग्यनिष्ठ हो जहाँ निरन्तर आनन्दका उदय होता है, जो परमानन्द संवित्स्वरूप, लोकातीत, पुनरावृत्तिरहित तथा परम पाररूप है, उस गणपतिधाममें नित्यलीन एवं परमानन्दनिमग्न हो रमता रहता है॥ १९६-१९७½ ॥

यो नामभिर्हुतैरेतैरर्चयेत् पूजयेन्नरः॥ १९८॥
राजानो वश्यतां यान्ति रिपवो यान्ति दासताम्।
मन्त्राः सिध्यन्ति सर्वेऽपि सुलभास्तस्य सिद्धयः॥ १९९॥

जो मनुष्य इन सहस्रनामोंद्वारा हवन, अर्चन और पूजन करता है, उसके राजालोग वशमें होते और शत्रु दासवत् हो जाते हैं। उसके सारे मन्त्र सिद्ध होते और उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ सुलभ होती हैं॥ १९८-१९९॥

मूलमन्त्रादपि स्तोत्रमिदं प्रियतरं मम।
नभस्ये मासि शुक्लायां चतुर्थ्यां मम जन्मनि॥ २००॥
दूर्वाभिर्नामभिः पूजां तर्पणं विधिवच्चरेत्।
अष्टद्रव्यैर्विशेषेण जुहुयाद्भक्तिसंयुतः॥ २०१॥
तस्येप्सितानि सर्वाणि सिद्ध्यन्त्यत्र न संशयः।
इदं प्रजप्तं पठितं पाठितं श्रावितं श्रुतम्॥ २०२॥
व्याकृतं चर्चितं ध्यातं विमृष्टमभिनन्दितम्।
इहामुत्र च सर्वेषां विश्वैश्वर्यप्रदायकम्॥ २०३॥

(गणेशजी कहते हैं—) मूलमन्त्रकी अपेक्षा भी यह स्तोत्र मुझे अधिक प्रिय है। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिको मेरे जन्म-दिवसपर इन सहस्रनामोंद्वारा दूर्वार्पण करते हुए विधिवत् मेरा पूजन एवं तर्पण करे। विशेषत: अष्टगन्ध-द्रव्योंद्वारा भक्तिपूर्वक हवन करे। जो ऐसा करता है, उसके सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होते हैं; इसमें संशय नहीं है। इसके जप, पठन-पाठन, सुनना-सुनाना, व्याख्यान, चर्चा, ध्यान, विचार और अभिनन्दन—ये इहलोक और परलोकमें सबके लिये सम्पूर्ण ऐश्वर्यको देनेवाले हैं ॥ २००—२०३ ॥

स्वच्छन्दचारिणाप्येष येनायं धार्यते स्तवः।
स रक्ष्यते शिवोद्भूतैर्गणैरध्युष्टकोटिभिः ॥ २०४ ॥

जो इस स्तोत्रको धारण करता है, वह स्वच्छन्दतापूर्वक कहीं भी क्यों न विचरता रहे, भगवान् शिवके करोड़ों गण उसकी रक्षा करते रहते हैं ॥ २०४ ॥

पुस्तके लिखितं यत्र गृहे स्तोत्रं प्रपूजयेत्।
तत्र सर्वोत्तमा लक्ष्मीः संनिधत्ते निरन्तरम् ॥ २०५ ॥

जिस घरमें इस स्तोत्रको पुस्तकरूपमें लिखकर कोई इसका पूजन करता है, वहाँ सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी निरन्तर निवास करती है ॥ २०५ ॥

दानैरशेषैरखिलैर्व्रतैश्च
तीर्थैरशेषैः सकलैर्मखैश्च।
न तत्फलं विन्दति यद्गणेश-
सहस्रनाम्नां स्मरणेन सद्यः ॥ २०६ ॥

एतन्नाम्नां सहस्रं पठति दिनमणौ प्रत्यहं प्रोज्जिहाने
सायं मध्यंदिने वा त्रिषवणमथवा संततं वा जनो यः।
स स्यादैश्वर्यधुर्यः प्रभवति च सतां कीर्तिमुच्चैस्तनोति
प्रत्यूहं हन्ति विश्वं वशयति सुचिरं वर्धते पुत्रपौत्रैः ॥ २०७ ॥

श्रीगणेशसहस्रनामका स्मरण (जप) करके मनुष्य जिस फलको तत्काल प्राप्त कर लेता है, उसे सब प्रकारके दान, व्रत, तीर्थसेवन और यज्ञोंके अनुष्ठानद्वारा भी नहीं पा सकता। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रात:काल सूर्योदयके समय, मध्याह्नकालमें या सायंकालमें अथवा तीनों समय या सदा ही इन सहस्रनामोंका पाठ करता है, वह सत्पुरुषोंमें ऐश्वर्यशाली होता है, अपनी कीर्तिका अतिशय विस्तार करता है, विघ्नोंको नष्ट कर देता है, संसारको वशमें कर लेता है तथा वह पुत्र-पौत्रोंके साथ सुदीर्घकालतक निरन्तर वृद्धिशील होता है ॥ २०६–२०७ ॥

अकिंचनोऽपि मत्प्राप्तिचिन्तको नियताशनः।
जपेत्तु चतुरो मासान् गणेशार्चनतत्परः ॥ २०८ ॥
दरिद्रतां समुन्मूल्य सप्तजन्मानुगामपि।
लभते महतीं लक्ष्मीमित्याज्ञा पारमेश्वरी ॥ २०९ ॥
आयुष्यं वीतरोगं कुलमतिविमलं सम्पदश्चार्तदानाः
कीर्तिर्नित्यावदाता भणितिरभिनवा कान्तिरव्याधिभव्या।
पुत्राः सन्तः कलत्रं गुणवदभिमतं यद्यदेतच्च सत्यं
नित्यं यः स्तोत्रमेतत् पठति गणपतेस्तस्य हस्ते समस्तम् ॥ २१० ॥

जिसके पास कुछ नहीं है, जो दरिद्र है, वह मेरी प्राप्तिके उद्देश्यसे नियमित आहार करके मुझ गणेशके पूजनमें तत्पर रहकर चार मासतक इस स्तोत्रका जप करे। ऐसा करनेसे वह सात जन्मोंसे चली आनेवाली दरिद्रताका भी उन्मूलन करके महती लक्ष्मीको प्राप्त कर लेता है, यह मुझ परमेश्वरकी आज्ञा है। आयु, आरोग्य, निर्मल कुल, पीड़ितोंको दी जा सकनेवाली सम्पत्ति, नित्य उज्ज्वल कीर्ति, नयी-नयी सूक्ति, रोगहीनताके साथ भव्य कान्ति, सत्पुत्र, मनोनुकूल गुणवती स्त्री और सत्यसंकल्पता—ये सारी वस्तुएँ, जो गणपतिके इस स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, उसके हाथमें आ जाती हैं ॥ २०८—२१० ॥

गणेशस्यैकविंशतिनामपाठः

ॐ गणञ्जयो गणपतिर्हेरम्बो धरणीधरः।
महागणपतिर्लक्षप्रदः क्षिप्रप्रसादनः ॥ २११ ॥
अमोघसिद्धिरमितो मन्त्रश्चिन्तामणिर्निधिः।
सुमङ्गलो बीजमाशापूरको वरदः शिवः ॥ २१२ ॥
काश्यपो नन्दनो वाचासिद्धो ढुण्ढिविनायकः।
मोदकैरेभिरत्रैकविंशत्या नामभिः पुमान् ॥ २१३ ॥
(उपायनं ददेद्भक्त्या मत्प्रसादं चिकीर्षति
वत्सरं विघ्नराजस्य तथ्यमिष्टार्थसिद्धये ॥)
यः स्तौति मद्गतमना मदाराधनतत्परः।
स्तुतो नाम्नां सहस्रेण तेनाहं नात्र संशयः ॥ २१४ ॥

१. गणंजय, २. गणपति, ३. हेरम्ब, ४. धरणीधर, ५. महागणपति, ६. लक्षप्रद, ७. क्षिप्रप्रसादन, ८.

अमोघसिद्धि, ९. अमित, १०. मन्त्र, ११. चिन्तामणि, १२. निधि, १३. सुमंगल, १४. बीज, १५. आशापूरक, १६. वरद, १७. शिव, १८. काश्यप, १९. नन्दन, २०.वाचासिद्ध तथा २१. ढुण्ढिविनायक—ये इक्कीस नाम-मोदक हैं। जो पुरुष इन मोदकस्वरूप इक्कीस नामोंद्वारा (मुझे भक्तिपूर्वक उपहार अर्पित करता है; मेरा प्रसाद चाहता है और अभीष्टसिद्धिके लिये एक वर्षतक मुझ विघ्नराजके इस यथार्थ स्तोत्रका पाठ करता है;) मुझमें मन लगाकर, मेरी आराधनामें तत्पर रहकर मेरा स्तवन करता है, उसके द्वारा सहस्रनामस्तोत्रसे मेरी स्तुति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥ २११—२१४॥

नमो नमः सुरवरपूजिताङ्घ्रये
नमो नमो निरुपममङ्गलात्मने।
नमो नमो विपुलपदैकसिद्धये
नमो नमः करिकलभाननाय ते॥ २१५॥

श्रेष्ठ देवताओंद्वारा पूजित चरणवाले गणेशको नमस्कार है, नमस्कार है। अनुपम मंगलस्वरूप गणपतिको बारम्बार नमस्कार है। एकमात्र जिनसे विपुलपद—परमधामकी सिद्धि होती है, उन गणाधीशको बारम्बार नमस्कार है। प्रभो! गजशावकके समान मुखवाले आपको बारम्बार नमस्कार है॥ २१५॥

॥ इति श्रीगणेशपुराणे उपासनाखण्डे महागणपतिप्रोक्तं गणेशसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

~~~o~~~

श्रीहरिद्रागणेश-सम्बन्धी मन्त्र एवं यन्त्र

तन्त्रोक्त उपासनाओंमें मन्त्रों और यन्त्रोंके प्रयोग प्रचुरतासे उपलब्ध होते हैं। मन्त्रको देवताकी आत्मा कहते हैं और यन्त्रको उनका शरीर। साधकके अभीष्ट प्रयोजनका मनन (निश्चय) और त्राण (रक्षण) करनेसे मन्त्रको '**यथा नाम तथा गुण**' कहा गया है। यन्त्रमें **यन्त्रित** (सीमाबद्ध) होनेके कारण देवताको यन्त्रस्थ मानकर उनकी उपासना की जाती है। अतः यन्त्रका यन्त्रत्व भी सार्थक है। जैसे शरीर आत्माका 'पुर' है, उसी प्रकार यन्त्र 'देवताका पुर' कहलाता है। इस प्रकार यन्त्रकल्पना भगवान्‌के शरीरका ही चित्रण है—'**देवस्य विग्रहो यन्त्रकल्पना**' (श्रीरामपूर्वतापनीय)। इस दृष्टिसे यन्त्र भगवान्‌की आराधनाका एक आवश्यक अंग है। यन्त्रके बिना की गयी पूजासे देवता प्रसन्न नहीं होते—'**विना यन्त्रेण चेत् पूजा देवता न प्रसीदति॥**' (श्रीरामपूर्वतापनीय)

'शारदातिलक'की 'पदार्थादर्श' नामक व्याख्यामें देवपूजाके अनेक प्रतीक बताये गये हैं—जैसे शालग्राम, मणि, यन्त्र, मण्डल और प्रतिमा। इन्हींमें श्रीहरिकी पूजा नित्य करनी चाहिये; केवल भूतलपर मिट्टीकी वेदी बनाकर उसमें पूजनका निषेध है। यथा—

शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च।
नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवलभूतले॥

मन्त्रोंके पदों तथा अक्षरोंके निवेशके लिये यन्त्र-रचना की जाती है; अतः यन्त्रको 'मन्त्रमय' कहा गया है। मन्त्र ही देवताका स्वरूप है; अतः यन्त्रके बिना पूजन करनेपर देवता शीघ्र प्रसन्न नहीं होते—इसीलिये समस्त मन्त्रोंका यन्त्रमें ही पूजन प्रशस्त बताया गया है।[1]

ईशानशिवने शक्तिपूजाके विषयमें कहा है—

शक्तिं निजैक्येन यजेत चक्रे चित्रे पटे वा यजनं न भूमौ।
मोहादसौ स्थण्डिलगां यजेच्चेद् भ्रश्येत्त्रिवर्गादिति मन्त्रसिद्धाः॥

'शक्तिका पूजन अपनेसे अभिन्न मानकर आत्मामें करे; अथवा चक्र (यन्त्र), चित्र एवं पटपर उसका यजन होना चाहिये, भूतलपर नहीं। यदि साधक मोहवश उसे मिट्टीकी वेदीपर पूजता है तो वह धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे भ्रष्ट हो जाता है; ऐसा मन्त्रसिद्ध पुरुष कहते हैं।'

'मन्त्र-महोदधि'में यन्त्रलेखनके लिये इष्टदेवसे

१. यन्त्रं मन्त्रमयं प्राहुर्देवता मन्त्ररूपिणी। यन्त्रेणापूजितो देवः सहसा न प्रसीदति॥
सर्वेषामपि मन्त्राणां यन्त्रे पूजा प्रशस्यते। (शारदातिलक, पदार्थादर्श, त्रयोदश पटल)
~~~

स्वप्नादेश लेनेकी बात बतायी गयी है। किसी शुभ दिनको यतात्मा साधक इष्टदेवकी आराधना करके तीन दिनोंतक केवल हविष्यके भोजनपर रहकर जपपरायण हो रातमें भूमिपर शयन करे। शयनके पूर्व वह देवतासे पूछे—'भगवन्! मैं अमुक यन्त्र लिखना चाहता हूँ, यह मेरे लिये कैसा रहेगा?'—इस प्रकार प्रश्न करके प्रतिदिन इष्टदेवकी पूजा करता रहे। तीसरे दिनकी रातमें साधकको स्वप्नादेश प्राप्त हो सकता है कि 'वह यन्त्र सिद्ध है, साध्य है, सुसिद्ध है अथवा शत्रुभूत है।' शत्रुभूत यन्त्रका लेखन न करे। पूछनेके बाद यदि कोई स्वप्नादेश न प्राप्त हो तो भी उस यन्त्रको न लिखे। दूसरे ही यन्त्रको लिखे।[1]

यन्त्रलेखकको स्नान करके, शुद्ध वस्त्र पहनकर, पुष्प और चन्दनसे भूषित हो, विहित द्रव्योंद्वारा, विहित स्थानपर एकान्तमें बैठकर यन्त्र लिखना चाहिये। सकाम साधक यन्त्रकी कर्णिका या मध्यभागमें निहित बीजमन्त्रके ऊपर अपना षष्ठ्यन्त नाम लिखे। (यथा—**अमुकस्य मम**)। बीज-मन्त्रके नीचे द्वितीयान्त 'साध्य'का नाम लिखे (यथा—**अमुकं कार्यम्**)। बीजमन्त्रके दोनों पार्श्वभागोंमें '**कुरु कुरु**' लिखे। यन्त्रके मध्यभागसे नीचे '**ह्सौः**'—यह बीज लिखे। यह बीजमन्त्र यन्त्रका जीव है। फिर उसके ईशान आदि चार कोणोंमें '**हं सः सो हं**'—इन चार वर्णोंको क्रमशः लिखे। ये यन्त्रके प्राण माने गये हैं। '**इ ई**'—ये दो स्वर नेत्र हैं और '**उ ऊ**'—ये दो स्वर कान हैं। श्रोत्र और नेत्रको यन्त्रके पार्श्वभागोंमें लिखे। तदनन्तर पूर्वादि दस दिशाओंमें दिक्पालोंके बीज लिखने चाहिये—यथा—'**लं रं मं क्षं वं यं सं आं ह्रीं।**' तत्पश्चात् यन्त्र-गायत्रीके चौबीस अक्षरोंको आठ दिशाओंमें बाँटकर प्रत्येक दिशामें तीन-तीन अक्षर लिखे। यन्त्र-गायत्री इस प्रकार है—'**यन्त्रराजाय विद्महे, वरप्रदाय धीमहि। तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्॥**' इस गायत्रीके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंकी सिद्धि होती है।[2]

साध्यका उल्लेख धारणके लिये लिखे गये यन्त्रोंमें ही होता है। उसे भोजपत्र, रेशमी वस्त्र अथवा ताड़पत्रपर लिखकर आवेष्टित करके डोरेसे बाँध दे; फिर सुवर्ण चाँदी अथवा ताँबेकी गुटिकामें रखकर उसके मुँहको लाहसे बंद कर दे। जिस देवताका यन्त्र हो, उसीके बीजसे यन्त्रकी पूजा करे। अथवा मातृकावर्णोंसे भी उसकी पूजा कर सकते हैं। मन्त्रजप करके हवन करे और हवनसे शिष्ट द्रव्य (घृत)-के द्वारा यन्त्रको सिक्त कर दे। इसके बाद उसे मस्तकपर, बाँहमें अथवा गलेमें बाँध ले। यन्त्रसेवी पुरुषको भूतलिपिकी भी उपासना करनी चाहिये। भूतलिपि इस प्रकार है—'**अं इं उं ऋं लृं एं ऐं ओं औं हं यं वं रं लं ङं कं खं घं गं ञं चं छं झं जं णं टं ठं ढं डं नं तं थं धं दं मं पं फं भं बं शं षं सं।**' इस भूतलिपिकी उपासनासे सब यन्त्रोंकी सिद्धि होती है।[3]

ऊपर जो बातें कही गयी हैं, सामान्यतः ये सभी यन्त्रोंके लिये लागू होती हैं। प्रस्तुत हरिद्रागणपति-यन्त्र विशेष यन्त्र है। इसके निर्माणकी विशिष्ट पद्धतिकी ओर 'मन्त्र-महार्णव'में संकेत किया गया है।

प्रायः सभी यन्त्रोंके पूजनमें सर्वप्रथम द्वारपूजन करके पद्मासन आदि आसनसे बैठना चाहिये। फिर भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा एवं मातृकान्यास करना आवश्यक होता है। पीठके उत्तर भागमें वायव्यकोणसे लेकर ईशानकोणतक चतुर्विध गुरुओंका पूजन करे। यथा—**गुरुभ्यो नमः। परमगुरुभ्यो नमः। परात्परगुरुभ्यो नमः। परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः।**

---

१. शुभे दिने समाराध्य स्वेष्टदेवं यतात्मवान्। स्वप्यात्त्रिदिवसं भूमौ हविष्याशी जपे रतः॥
इदं मे लिखितुं यन्त्रमिष्टं तत् कीदृशं प्रभो। इति पृष्ट्वा निजं देवं प्रत्यहं तं समर्चयेत्॥
तृतीये दिवसे रात्रौ स्वप्नं सम्प्राप्नुयान्नरः। सिद्धं साध्यं सुसिद्धं वा शत्रुभूतमथो इदम्॥
शत्रुभूतं लिखेन्नैव तदा तदितरल्लिखेत्। स्वप्नाभावेऽपि तद्धित्वा परं यन्त्रं लिखेत् सुधीः॥
(मन्त्र-महोदधि, तरंग २०)

२. द्रष्टव्य—मन्त्रमहोदधि, तरंग २०।

३. द्रष्टव्य—मन्त्रमहोदधि, तरंग २०।

पीठके दक्षिण भागमें गणेशकी पूजा करनी चाहिये। यन्त्रगत कर्णिकाके निम्नभागमें आधारशक्ति, प्रकृति, कमठ, शेष, पृथ्वी, क्षीरसागर, श्वेतद्वीप, रत्नमण्डप, कल्पवृक्ष—इन नौकी पूजा करे। पीठके पायोंमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी तथा पूर्वादि दिशाओंमें अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यकी अर्चना करे। फिर कर्णिकामें ही अनन्त, पद्म, सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल और वह्निमण्डलका पूजन करे। वहीं सत्त्व, रज और तमकी पूजा करके आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा एवं ज्ञानात्माका पूजन करे। अष्टदल कमलमें देवताकी शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। फिर ध्यान और आवरणपूजन आदि पद्धतिमें निर्दिष्ट क्रमसे करना उचित है।

श्रीहरिद्रागणपति-सम्बन्धी मन्त्र और यन्त्रकी विशेष पूजाविधि

श्रीहरिद्रागणेश-यन्त्रके द्वारा हरिद्रागणपतिके पूजन एवं उनके मन्त्रका अनुष्ठान करनेसे सम्पूर्ण मनःकामनाओंकी पूर्ति होती है। इस यन्त्रसे सारे विघ्नोंका निवारण होकर मंगलकी सृष्टि होती है। श्रीहरिद्रागणेशमन्त्र बत्तीस अक्षरोंका है—'**ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वर वरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।**' इसी मन्त्रका
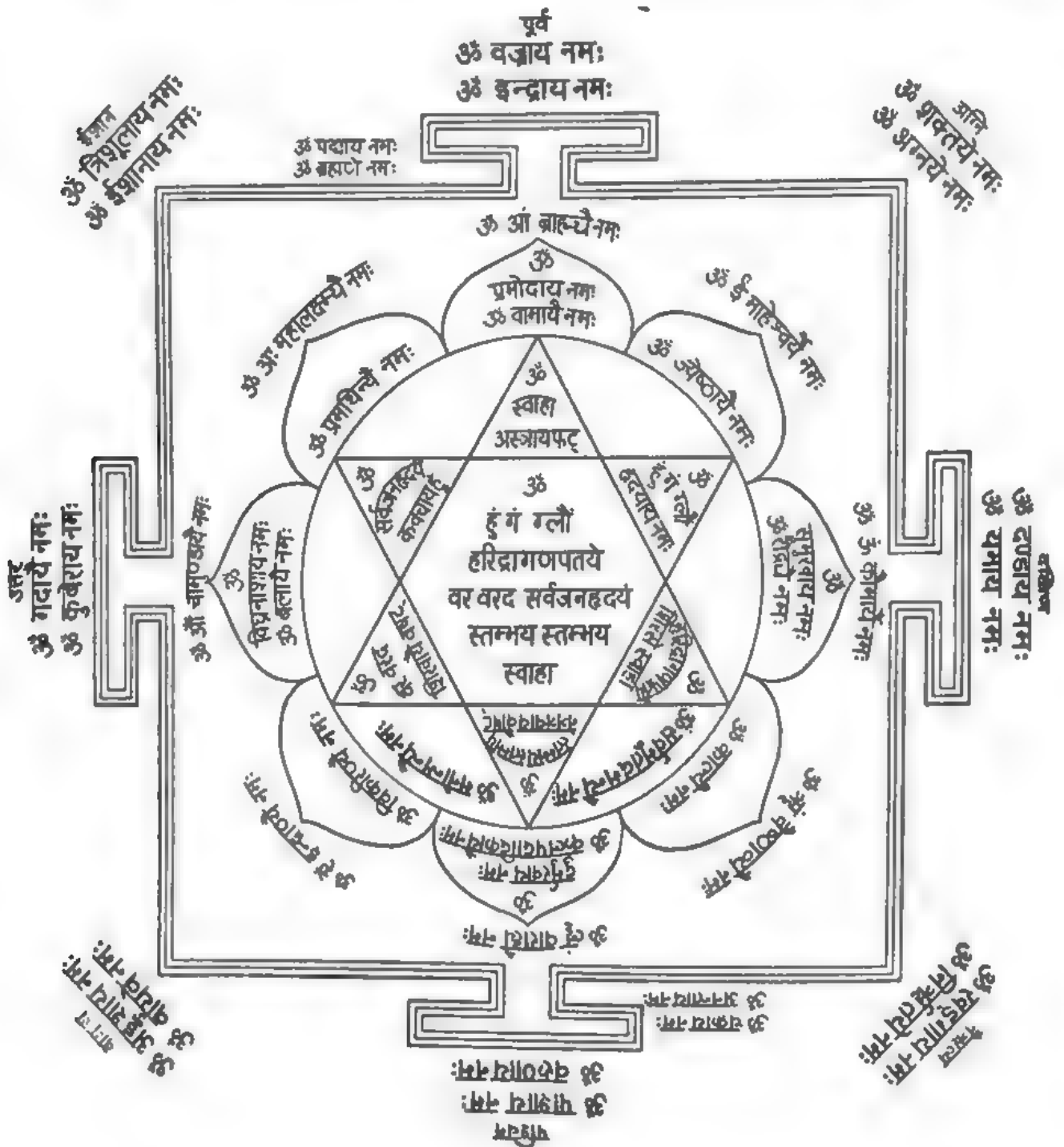
यह यन्त्र है। अभीष्ट-सिद्धिके लिये इसका अनुष्ठान करनेवाले साधकको पूजन आरम्भ करनेसे पूर्व स्नानादिसे निवृत्त होकर पवित्र स्थानमें शुद्ध आसन बिछाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाना चाहिये। भगवत्स्मरणपूर्वक शरीरकी बाह्याभ्यन्तरिक शुद्धि करते हुए अनुष्ठान करनेका संकल्प करना चाहिये। फिर भगवान् गणेश और भगवती गौरी आदिका पूजन तथा कलशस्थापन विधिपूर्वक करना चाहिये, जिससे कि यह अनुष्ठान सानन्द, सोत्साह, सविधि सम्पन्न हो सके।

इस प्रकार श्रीगणेश-गौरी और कलशके पूजनके पश्चात् साधकको नीचे लिखे वाक्य बोलकर अभीष्ट-सिद्धिके लिये विनियोग करना चाहिये।

(१) विनियोग

'अस्य हरिद्रागणनायकमन्त्रस्य मदन ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, हरिद्रागणनायको देवता, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।'

इसके बाद निम्नांकित चार वाक्योंका क्रमशः उच्चारण करके सिर, मुख, हृदय एवं सर्वांगका स्पर्श करना चाहिये।

(२) ऋष्यादिन्यास

(१) मदनर्षये नमः, शिरसि। (२) अनुष्टुप्छन्दसे नमः, मुखे। (३) हरिद्रागणनायकदेवतायै नमः, हृदि। (४) विनियोगाय नमः, सर्वाङ्गे।

(३) करन्यास

(१) ॐ हुं गं ग्लौं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। (तर्जनियोंसे अंगुष्ठोंका स्पर्श)

(२) हरिद्रागणपतये तर्जनीभ्यां नमः। (अंगुष्ठोंसे तर्जनियोंका स्पर्श)

(३) वर वरद मध्यमाभ्यां नमः। (अंगुष्ठोंसे मध्यमाओंका स्पर्श)

(४) सर्वजनहृदयम् अनामिकाभ्यां नमः। (अंगुष्ठोंसे अनामिकाओंका स्पर्श)

(५) स्तम्भय स्तम्भय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। (अंगुष्ठोंसे कनिष्ठिकाओंका स्पर्श)

(६) स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। (दोनों हाथोंकी हथेलियोंका और पृष्ठभागोंका परस्पर स्पर्श)

(४) हृदयादिषडङ्गन्यास

(१) ॐ हुं गं ग्लौं हृदयाय नमः। (दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे हृदयका स्पर्श)

(२) हरिद्रागणपतये शिरसे स्वाहा। (सिरका स्पर्श)

(३) वर वरद शिखायै वषट्। (शिखाका स्पर्श)

(४) सर्वजनहृदयं कवचाय हुम्। (दायें हाथसे बायीं और बायें हाथसे दायीं भुजाके मूलभागका स्पर्श)

(५) स्तम्भय स्तम्भय नेत्रत्रयाय वौषट्। (दाहिने हाथकी अंगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाट-मध्यका स्पर्श करे।)

(६) स्वाहा अस्त्राय फट्। (सिरपरसे हाथ घुमाकर ताली बजाये।)

इस प्रकार विनियोग एवं न्यासके अनन्तर ध्यान करना चाहिये।

(५) ध्यान

पाशाङ्कुशौ मोदकमेकदन्तं करैर्दधानं कनकासनस्थम्।
हारिद्रखण्डप्रतिमं त्रिनेत्रं पीतांशुकं रात्रिगणेशमीडे॥

'जो चार हाथोंमें क्रमशः पाश, अंकुश, मोदक तथा एक दन्त धारण करते हैं; सोनेके सिंहासनपर आसीन हैं; जिनकी कान्ति हरिद्राखण्डके समान पीत है तथा जो त्रिनेत्र एवं पीताम्बरधारी हैं, उन हरिद्रागणेशकी मैं स्तुति करता हूँ।'

(६) पीठ-पूजन

पीठपर सर्वतोभद्रमण्डल अथवा गणेशमण्डलकी रचना करके मण्डलमें मण्डूकादिपरतत्त्वान्तपीठदेवताओंकी स्थापना करके पंचोपचारसे उनका पूजन करे। इसके बाद पूर्वादिक्रमसे आठों दिशाओंमें पीठशक्तियोंकी पूजा निम्नलिखित मन्त्रोंसे करे—

१-ॐ तीव्रायै नमः। २-ॐ चालिन्यै नमः। ३-ॐ नन्दायै नमः। ४-ॐ भोगदायै नमः। ५-ॐ कामरूपिण्यै नमः। ६-ॐ उग्रायै नमः। ७-ॐ तेजोवत्यै नमः। ८. ॐ सत्यायै नमः। (पुनः पीठके मध्यमें) **९-ॐ विघ्ननाशिन्यै नमः।**

(७) यन्त्र-संस्थापन

यन्त्रका निर्माण सोने या चाँदी या ताँबेके पत्रपर अथवा भोजपत्र या काष्ठफलकपर किया जा सकता है। फिर अग्न्युत्तारण करना चाहिये। एतदर्थ यन्त्र यदि धातुपत्रपर निर्मित हो तो यन्त्रको आगमें तपाना चाहिये और काष्ठादिपर निर्मित हो तो उसे अग्निको दूरसे दिखा देना चाहिये। फिर घृत, दूध तथा जलसे संसिक्तकर नवीन वस्त्रसे यन्त्रको स्वच्छ कर लेना चाहिये। इसके अनन्तर '**ह्रीं**

सर्वशक्तिकमलासनाय नमः'—इस मन्त्रको पढ़कर पुष्प अथवा अक्षतका आसन प्रदान करते हुए पीठके मध्यभागमें यन्त्रको स्थापित करना चाहिये। फिर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्राणप्रतिष्ठाकी विधि यह है कि '**ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वर वरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके दाहिने हाथकी अंगुलिसे यन्त्रका स्पर्श कर दे।

(८) केन्द्रस्थदेवाराधन

यन्त्रमें प्राणप्रतिष्ठा करनेके पश्चात् यन्त्रके केन्द्रमें जहाँ श्रीहरिद्रागणेशमन्त्र लिखा है, वहाँ भगवान् श्रीगणेशके पावन विग्रहकी भावना करके गन्ध और पुष्पसे भगवान् श्रीगणेशकी तथा केन्द्रलिखित मन्त्रकी पूजा करनी चाहिये। पूजन करते समय प्रत्येक बार श्रीहरिद्रागणेश-मन्त्रका उच्चारण करके गन्ध-पुष्प अर्पित करे।

केन्द्रस्थ भगवान् गणेशके पूजनोपरान्त आवरण-पूजनके निमित्त अनुज्ञा लेनेके लिये दोनों हाथोंमें पुष्प लेकर निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करे और पुष्पांजलि समर्पित करे—

ॐ संविन्मय परेश त्वं परामृतरसप्रिय।
अनुज्ञां देहि गणप परिवारार्चनाय मे॥

इसे पढ़कर पुष्पांजलि देनेके बाद '**पूजितास्तर्पिताः सन्तु**' कहकर नमस्कार करे।

(९) आवरण-पूजन

प्रथमावरण (षट्कोण)-स्थित देवताओंका आराधन—

(१) ॐ हुं गं ग्लौं हृदयाय नमः, हृदि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(२) ॐ हरिद्रागणपतये शिरसे स्वाहा शिरसि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(३) ॐ वर वरद शिखायै वषट् शिखायां श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(४) ॐ सर्वजनहृदयं कवचाय हुं कवचे श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(५) ॐ स्तम्भय स्तम्भय नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रत्रये श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(६) ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्, अस्त्रे श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

फिर निम्नलिखित मन्त्रसे पुष्पांजलि समर्पित करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥

पुष्पांजलि देकर '**पूजितास्तर्पिताः सन्तु**' कहकर नमस्कार करे।

द्वितीयावरणस्थित देवी-देवोंकी आराधना

क—अष्टदल-कमल-स्थित शक्ति-देवियोंकी पूजा—दाहिने हाथकी तर्जनी अंगुली तथा अंगूठेसे गन्ध-पुष्पादि समर्पित करना चाहिये—

१-ॐ वामायै नमः, वामाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२-ॐ ज्येष्ठायै नमः, ज्येष्ठाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३-ॐ रौद्र्यै नमः, रौद्रीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४-ॐ काल्यै नमः, कालीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

५-ॐ कलपदादिकायै नमः, कलपदादिका-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

६-ॐ विकरिण्यै नमः, विकरिणीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

७-ॐ बलायै नमः, बलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

८-ॐ प्रमथिन्यै नमः, प्रमथिनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(ख) मुख्य देवाग्रस्थित देवियोंकी आराधना

१-ॐ सर्वभूतदमन्यै नमः, सर्वभूत-दमनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२-ॐ मनोन्मन्यै नमः, मनोन्मनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(ग) चतुर्दिक्-स्थित देवोंका आराधन

१-ॐ प्रमोदाय नमः, प्रमोदश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२-ॐ सुमुखाय नमः, सुमुखश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३-ॐ दुर्मुखाय नमः, दुर्मुखश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४-ॐ विघ्ननाशाय नमः, विघ्ननाशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

फिर निम्नलिखित मन्त्रसे पुष्पांजलि समर्पित करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्॥

पुष्पांजलि देकर '**पूजितास्तर्पिताः सन्तु**' कहकर नमस्कार करे।

तृतीयावरणस्थित देवियोंकी आराधना

१-ॐ आं ब्राह्म्यै नमः, ब्राह्मीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२-ॐ ईं माहेश्वर्यै नमः, माहेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३-ॐ ऊं कौमार्यै नमः, कौमारीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४-ॐ ॠं वैष्णव्यै नमः, वैष्णवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

५-ॐ ॡं वाराह्यै नमः, वाराहीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

६-ॐ ऐं इन्द्राण्यै नमः, इन्द्राणीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

७-ॐ औं चामुण्डायै नमः, चामुण्डाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

८-ॐ अः महालक्ष्म्यै नमः, महालक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

फिर निम्नलिखित मन्त्रसे पुष्पांजलि समर्पित करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्॥

पुष्पांजलि देकर '**पूजितास्तर्पिताः सन्तु**' कहकर नमस्कार करे।

अन्तिमावरणस्थित देवोंका आराधन

(क) दिक्पाल-पूजन

भूपुरके बहिर्भागमें स्थित दसों दिक्पालोंका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करना चाहिये।

१-ॐ इन्द्राय नमः, इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२-ॐ अग्नये नमः, अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३-ॐ यमाय नमः, यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४-ॐ निर्ऋतये नमः, निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

५-ॐ वरुणाय नमः, वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

६-ॐ वायवे नमः, वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

७-ॐ कुबेराय नमः, कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

८-ॐ ईशानाय नमः, ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

९-ॐ ब्रह्मणे नमः, ब्रह्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१०-ॐ अनन्ताय नमः, अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

दसों दिक्पालोंकी पूजाके अनन्तर पुष्पांजलि-अर्पण तथा नमस्कार करना चाहिये।

(ख) आयुध-पूजन

१-ॐ वज्राय नमः। २-ॐ शक्तये नमः। ३-ॐ दण्डाय नमः। ४-ॐ खड्गाय नमः। ५-ॐ पाशाय नमः। ६-ॐ अङ्कुशाय नमः। ७-ॐ गदायै नमः। ८-ॐ त्रिशूलाय नमः। ९-ॐ पद्माय नमः। १०-ॐ चक्राय नमः।

दसों आयुधोंका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करनेके बाद पुष्पांजलि-अर्पण तथा नमस्कार करना चाहिये।

यहीं आवरण-पूजनकी क्रिया भी सम्पन्न होती है। आवरण-पूजनके बाद सम्पूर्ण श्रीहरिद्रागणेश-यन्त्रका षोडशोपचार अथवा पंचोपचारसे पूजन करके फिर आरती करनी चाहिये। तदनन्तर बत्तीस अक्षरोंवाले श्रीहरिद्रागणेशमन्त्र '**ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वर वरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा**'का जप करना चाहिये।

(१०) पुरश्चरणविधान एवं फलश्रुति

इसका पुरश्चरण चार लाख जप है। जपके पश्चात् हल्दीचूर्णसे मिश्रित घी और चावलके द्वारा दशांश हवन करना चाहिये। हवनके दशांश संख्यामें तर्पण, उसके भी दशांशद्वारा मार्जन तथा उसके भी दशांश ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाय। ऐसा करनेपर मन्त्र सिद्ध होता है।

मन्त्र सिद्ध हो जानेपर मन्त्रज्ञ पुरुष विभिन्न प्रयोगोंमें मन्त्रका उपयोग करे। इस प्रकार आराधित मन्त्र सिद्ध होकर सम्पूर्ण मनोरथोंका साधक होता है।

शुक्लपक्षकी चतुर्थीको कुमारी कन्याके हाथसे पीसी गयी हल्दीका अपने अंगमें अनुलेपन करके जलमें स्नान करनेके पश्चात् श्रीगणेशजीका पूजन करे। फिर उनका तर्पण करके उनके सामने ही १००८ बार मन्त्र-जप करे। उसके लिये १०० आहुति देकर ब्रह्मचारियोंको घीमें बने हुए पूओंका भोजन कराये। कुमारी कन्याओं और गुरुको भी संतुष्ट करके साधक मनोवांछित वस्तु प्राप्त करता है। लाजाद्वारा हवन करनेसे साधकको कन्याकी प्राप्ति होती है। कन्या भी लाजा-हवन करनेसे श्रेष्ठ वर पाती है। वन्ध्या स्त्री रजस्वला-स्नानके पश्चात् श्रीगणेशजीका पूजन करके एक पल गोमूत्रमें सिन्धु, बचा और हल्दीको पीसकर एक हजार मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित करे। फिर मोदकोंके साथ कन्याओं और ब्रह्मचारी बालकोंको भोजन कराकर उस ओषधिका पान करे। इससे उसको गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति होती है। यह मन्त्र उपासना करनेपर शत्रुओंकी वाणी और शरीरका भी स्तम्भन कर सकता है तथा जल, अग्नि, चोर, सिंह और अस्त्र आदिका भी अवरोध कर सकता है।

~~○~~

श्रीगणनाथसे प्रार्थना

एहो गननाथ! तुम नाथ हो अनाथनके,
नैक करि करुना निहारौ दीन जन पै।
पाथ हूँ न पायो विन्दु-द्वैक, मृग-माया बीच,
उरझयो अनाथ मोह छायो मृग-मन पै॥
तापित अवाँ-सी सिकतामें ह्वै सिथिल आयो,
असरन-सरन्य! मैं रावरी सरन पै।
साँची कहौं गनराज! कोउ ना सुनइया आज,
लाज मम जीवनकी रावरे करन पै॥

पावन तिहारे पद युगल मराल मेरे,
मानस-के भीतर सदैव बिहरयौ करैं।
झाँकी या अनूप बाँकी मूरति सुधाकी सदा,
राजै उर बीच भुज-चारि ठहरयौ करैं॥
वक्रतुण्ड! तेरे कर-लेखनी अनूप उर—
मेरे हरि-महिमाके पृष्ठ फहरयौ करैं।
स्याम-प्रेम-अम्बु-नद-निर्झर-नवीन नित्य—
धारन सहस्त्र झर-झर झहरयौ करैं॥

—विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र, 'विनय'

~~○~~

'श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम!'

रक्तवर्ण शुभ, एकदन्त शुचि, ध्वज-मूषक, शोभित शशि भाल।
वसु कर-कंज-युग, कम्बु, पाश, पुस्तक, त्रिशूलवर, चक्र, माल॥
गज-मुख-धान्य-मञ्जरी राजत, विपद-विघ्न-वारण, शुभधाम।
अखिल अमंगलहर, हर-सुत, श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम॥

—'भाईजी'

~~○~~

गणेशोपासना और ज्यौतिषशास्त्र

(१)

(लेखक—पं० श्रीभोजराज सोहनलाल, शास्त्री)

मानव आरम्भसे ही चिन्तन, मनन और अन्वेषणका अभ्यस्त रहा है। वह केवल स्थूलजगत्‌की चमक-दमकसे ही संतृप्त नहीं, सूक्ष्मजगत्‌के अन्तस्तलतकके रहस्योंको प्रकाशमें लानेके लिये कृत-संकल्प रहता आया है। अनन्तकालसे अनुसंधान करते-करते वह कई उपयोगी तथ्योंको प्राप्त कर चुका है, जो प्रत्यक्ष-जगत्‌में कार्यान्वित होनेवाली घटनाओंके कारणरूप हैं। इन उपलब्धियोंमें मानव-जीवनपर ग्रह-प्रभावकी अवगति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। दार्शनिकोंने यह सिद्ध कर दिया है—'**यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।**' अर्थात् ब्रह्माण्डस्थ ग्रहोंकी प्रतिकृतियाँ प्राणिमात्रके शरीरमें भी विद्यमान हैं। दोनोंके संचार-नियमनमें एकरूपता होनेके कारण मानवकी विविध गति-विधियाँ भी ग्रहोंद्वारा नियन्त्रित होती हैं। किंतु प्रश्न उठता है—'क्या ग्रह स्वेच्छानुसार मनुष्यके भविष्यका विधान निर्धारित करते हैं?' नहीं, सम्पूर्ण स्थूल एवं सूक्ष्मजगत्‌के अधिष्ठाता परमपिता परमात्माके निर्देशानुसार प्राणीके प्रारब्धोंसे होनेवाली भाग्यकी व्यूह-रचनाका प्रतिनिधित्व ही जन्मकालिक ग्रह-स्थिति करती है। अतः '**ग्रहा वै कर्मसूचकाः**'—ग्रह तो केवल कर्माधीन भवितव्यकी सूचना देते हैं।'

ग्रह-सूचित अप्रिय घटनाओंका निवारण करनेके लिये परमेश्वर अथवा उनके सहायक विभिन्न देवताओंका तुष्टीकरण अपेक्षित है। ये देवता विभिन्न ग्रह-मण्डलोंमें निवास करते हैं तथा चराचर-जगत्‌के अधिशासी रूप हैं। समष्टिरूपसे इनकी संख्या तैंतीस करोड़ बतायी गयी है; किंतु हमारे ऋषियोंने इनकी प्रतिभाका तुलनात्मक अध्ययन कर पाँच देवताओंको ही प्रधानतया उपास्य निर्णीत किया है। ये पंचदेव हैं—गणेश, शक्ति, शिव, विष्णु और सूर्य। इनका मूल सम्बन्ध सृष्टिके संयोजक पाँच महातत्त्वोंसे है, जो 'पंचभूत' के नामसे प्रसिद्ध हैं। ये हैं—जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश तथा वायु। गणेशादि देवताओंका जल आदि पंचभूतोंपर क्रमशः आधिपत्य निश्चित किया गया है; किंतु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि आदिस्रष्टा भगवान् विष्णुकी महामाया-शक्तिके द्वारा उत्पन्न पंचभूतोंमें सर्वप्रथम जलतत्त्व ही प्रकट हुआ। अतः कालान्तरमें ब्रह्माजीद्वारा सर्जित विभिन्न देवताओंमें जलतत्त्वके नियामक देवता गणेशको प्राथमिकता मिलना स्वाभाविक था। ऋषियोंने मंगलकामनाके लिये किये जानेवाले प्रत्येक देवपूजा-कर्मके आरम्भमें 'गणेशार्चन' को अनिवार्यरूपसे संयोजित करनेका निर्देश दिया है। गणपति-पूजनका विधान पुरातन है। 'शुक्लयजुर्वेदसंहिता' के '**गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे**' (२३। १९) 'मैत्रायणीय संहिता' के '**तत्कराटाय विद्महे, हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥**' (२।९।६) एवं तैत्तिरीय आरण्यकान्तर्गत 'नारायणोपनिषद्' के '**तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥**' (१०।१) आदि मन्त्र इस परम्पराके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध है कि नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य गणेशोपासनके आचरणमें ही मानवमात्रका हित निहित है।

किसी देवताकी उपासनाको सांगोपांग, यथासमय एवं ग्रहानुकूलतापूर्वक सम्पादित करना ही उसकी सार्थकताका साधक है। एतद्विषयक विशद ज्ञाननिधि एकमात्र ज्योतिर्विज्ञानमें ही संचित है तथा वेदोंके छः अंगोंमें इसे मूर्धन्य (नेत्ररूप) माना गया है। अतः गणेशोपासनाविषयक कुछ उपयोगी तथ्योंको त्रिस्कन्धात्मक-ज्योतिर्ग्रन्थोंसे एकत्रित कर यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। ज्यौतिषशास्त्रके संहिता-ग्रन्थोंमें वर्णित गणपतिप्रतिष्ठोपयुक्त काल इस प्रकार है—

मास—वैशाख, ज्येष्ठ, माघ तथा फाल्गुनादि उत्तरायणगत सूर्यके मास। भाद्रपदमासमें गणेशचतुर्थी भी ग्राह्य है।

तिथि—उपर्युक्त मासोंकी शुक्लपक्षीया २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२।

वार—रवि, मंगल, शुक्र और शनि। मतान्तरेण बुधवार भी स्वीकृत है।

नक्षत्र—सामान्यरूपसे सर्वदेवप्रतिष्ठामें ग्रहण किये हुए नक्षत्रोंके साथ ही गणेशप्रतिष्ठा आर्द्रा, हस्त, अनुराधा, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी तथा रेवतीमें विशेषरूपसे कही गयी है।

लग्न—मिथुन, सिंह, वृश्चिक तथा कुम्भराशिलग्न स्वाधिपति एवं शुभ ग्रहोंसे युत या दृष्ट होनेपर। पुनश्च, केन्द्र-त्रिकोणमें शुभग्रह, षष्ठमें पापग्रह, तृतीय एवं एकादशमें कोई ग्रह तथा अष्टम एवं द्वादशमें ग्रहाभाव अपेक्षित है।

विशेष—प्रतिष्ठापकके चन्द्रबलके साथ-साथ अन्य शुभ योग प्रतिष्ठाकी सार्थकताके द्योतक हैं; किंतु देवशयन, मलमास, गुरु-शुक्रास्त, भद्रा, पात, ताराका निर्बलत्व, तिथि-क्षय-वृद्धि, प्राकृतिक प्रकोप, मासान्त एवं जन्म-मरणाशौचकी विद्यमानता प्रतिष्ठाको निष्फल करते हैं।

गणेशोपासनका मुहूर्त—

संकट-निवारण, अर्थोपार्जन, आरोग्यता-प्राप्ति, वंशवृद्धि आदि स्वार्थ-सिद्धिके किसी भी उद्देश्यकी पूर्तिके हेतु करिष्यमाण गणेशकी आराधनाका शुभारम्भ निम्नलिखित कालशुद्धिमें वांछित एवं फलद है—

मास—चैत्र (मेषार्क एवं शुक्लपक्षसे संयुक्त), वैशाख, श्रावण, आश्विन (शुक्ल), माघ तथा फाल्गुन। गुरु-शुक्रका उदित होना आवश्यक है।

तिथि—भद्रादि कुयोगवर्जित शुक्लपक्षकी २, ३, ५, ७, १०, ११, १३।

वार—रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र।

नक्षत्र—अश्विनी, रोहिणी मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती। ग्रहणयुक्त नक्षत्र त्याज्य है।

लग्न—वृष, मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु, कुम्भ, मीन आदि किसी राशिके उदित होनेपर, जब केन्द्र-त्रिकोणमें सौम्य ग्रह, ३,६,११ वें पापग्रह तथा अष्टम और द्वादश गृह ग्रहविहीन हो। पुनश्च, नवमभाव शुभग्रहसे युक्त अथवा दृष्ट हो तथा भाग्येश निष्कलंक एवं मित्र-क्षेत्री हो।

विशेष—'गणेशचतुर्थी' विशिष्टतः ग्राह्य है तथा उपासकका बलहीन चन्द्र सर्वथा त्याज्य है। पूर्व निश्चित मुहूर्तके दिन यदि कोई बाधा, रोग, उत्पात अथवा कोई अप्रिय घटना उपस्थित हो जाय तो उपासना स्थगित कर दे।

गणेशोपासनाद्वारा निवारणीय रोग—

आकाशादि पंचभूतोंकी महत्ता असीम है। आयुर्वेदके पूर्वाचार्योंने इन पाँच तत्त्वोंसे मानव-शरीरकी नीरोगताका अटूट सम्बन्ध बताया है। तत्त्वविशेषकी विकृतिसे विविध रोगोंका प्रादुर्भाव माना है। पंचभूतों और पंचदेवोंकी एकरूपताके बारेमें हम पहले ही ज्ञात करा चुके हैं। अतः जो रोग जिस तत्त्वसे सम्बद्ध हो, उस अधिपति देवताको संतुष्ट कर नीरोगता उपलब्ध की जा सकती है। यहाँ कुछ ऐसे रोगोंकी सूची दी जा रही है, जिनका निवारण गणपत्याराधनके माध्यमसे सम्भव है। ये रोग हैं—अतिसार, अरुचि, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामला, प्रमेह, जुकाम, जलोदर, क्षय, रक्ताल्पता, रक्तविकृति, संग्रहणी, वमन, स्वप्नदोष, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, शीघ्रपात, रक्त-पित्त आदि-आदि। पुनश्च, भैषजिक-ज्योतिर्विज्ञान (Medical Astrology)-के आधारपर यदि उपर्युक्त अन्यतम रोगकी सूचना पहले ही मिल जाय तो गणेशोपासनका अनुष्ठान प्रारम्भ कर देना चाहिये।

(२)

(लेखक—श्रीभीमाशंकरजी भटोरे)

ज्यौतिषशास्त्रमें श्रीगणेशजीके महत्त्वपूर्ण स्थानको कौन नहीं जानता? इसका वर्णन गणपति महाराजकी कृपासे ही किया जा सकता है। अतएव उनकी प्रार्थना करके आशीर्वाद प्राप्तकर ही मैं कुछ शब्द आपके सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ—

सृष्टिकी रचना करते समय ब्रह्माजीने परमात्माके दर्शन करनेके बाद शक्ति अर्जित की। उस शक्तिके आधारपर दस प्रजापति उत्पन्न किये। उन दस प्रजापतियोंके नाम निम्नांकित हैं—

मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलह, पुलस्त्य, वसिष्ठ, बृहस्पति, भृगु, नारद एवं दक्ष प्रजापति।

उक्त दस प्रजापतियोंके नाम ज्यौतिषशास्त्रमें

निम्नांकित ग्रहोंके नाम हैं—रवि, चन्द्र, मंगल, राहु, केतु, बुध, गुरु, शुक्र, शनि और प्रकृति।

श्रीब्रह्माजीने इन प्रजापतियोंको सृष्टिरचनाके हेतु आज्ञा दी और उन्हें शक्तिसम्पन्न किया। श्रीनारदजीने इस प्रकारकी सृष्टि-रचनामें भाग लेना अस्वीकार किया। किंतु श्रीब्रह्माजीके अप्रसन्न होने तथा शाप देनेके भयसे श्रीनारदजी आज्ञापालन करनेके लिये सहमत हो गये। पहले गन्धर्व एवं किंनरलोककी रचना करके उन्होंने ब्रह्माजीकी स्तुति की; इससे वे प्रसन्न तो अवश्य ही हुए, किंतु सृष्टि-रचनामें शत-प्रतिशत भाग लेनेकी जगह उन्हें साठ प्रतिशतका भागीदार बनाया। तदनुसार सृष्टिकी रचनाका कार्य प्रारम्भ होता है, जिसमें प्राणिमात्रकी आत्मा सूर्यदेव हैं। यथा—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'। चन्द्रमा प्राणिमात्रका मन है। यथा—'**चन्द्रमा मनसो जातः।**' वसिष्ठ=बुध प्राणिमात्रके बुद्धिदाता हैं। क्रतु=मंगल (स्त्रीसंज्ञक) प्राणीमें रज हैं। भृगु=शुक्र (पुरुषसंज्ञक) प्राणीमें वीर्य हैं। बृहस्पति=जीव या गुरुको शत-प्रतिशत जीवोत्पादन या जीव-दानकी शक्ति प्राप्त है एवं नारद=शनिमें साठ प्रतिशत जीव-दानकी शक्ति है।

ग्रहों या प्रजापतियोंके साम्राज्यकी परिकल्पना कीजिये। एक साम्राज्यमें राजा, रानी, राजकुमार, सेनापति, मन्त्री एवं भृत्य होते हैं। इन देवताओंके राज्यकी कल्पनापर दृष्टिपात कीजिये और निर्णय कीजिये कि जिस राज्यमें सेनापति न हो, उस राज्यका क्या हाल होता है? देवगणोंके राज्यकी स्थिति इस प्रकार है—
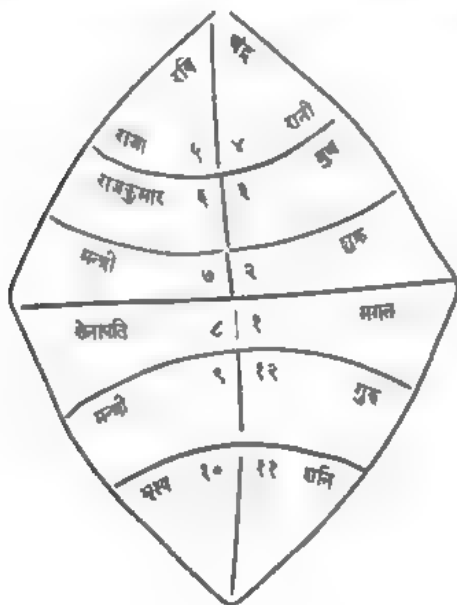
ऊपर लिखे अनुसार शून्यपर ३६०° होते हैं। इन ३६०° को १२ राशियोंमें विभक्त किया है एवं कर्क और सिंह-राशिको छोड़कर प्रत्येक ग्रह दो राशियोंका स्वामी है। तदनुसार मेष और वृश्चिक राशिके स्वामी मंगल हैं। मेष राशिका ० अंशसे श्रीगणेश होता है, जिसपर मंगलका आधिपत्य है। इसलिये ज्यौतिषशास्त्रका श्रीगणेश ही श्रीगणेशके द्वारा होनेसे ज्यौतिषशास्त्रमें इनका महत्त्व बहुत ही अधिक है। गणका अर्थ है समूह; गणोंके सेनापतिको 'गणपति' कहते हैं। अर्थात् गणपति मङ्गलग्रह ही है। चूँकि मंगलग्रहका रंग मूँगेके समान अर्थात् सिन्दूरी है, इसलिये गणपतिको सिन्दूर चढ़ाते हैं और उनकी पाषाणकी मूर्तिको भी सिन्दूरसे ही विभूषित करते हैं। कुछ-कुछ स्थानोंपर गणपतिकी सिन्दूरसे विभूषित विशालकाय मूर्तियाँ विद्यमान हैं एवं वे मंगलनाथ महाराजके नामसे प्रसिद्ध हैं। यह सब प्रमाणित करता है कि गणपति महाराज ही हमारे मंगल ग्रह हैं। एक प्रमाण और भी प्रस्तुत किया जा सकता है, जिससे निश्चय ही सिद्ध होता है कि गणपति और मंगल महाराज एक ही हैं। हमारी पृथ्वी एवं आकाश शून्याकार है। इस शून्यका प्रारम्भ ० अंशसे प्रारम्भ होता है, जो मेषराशिका प्रारम्भ है। इस मेषराशिपर मंगल गणपति महाराज सेनापतिके अस्तित्वको प्रमाणित करते हैं। हमारे गणपति अर्थात् मंगलका आधिपत्य वृश्चिकराशिपर भी है, जो ज्यौतिषके मतानुसार काल-पुरुषका गुप्तांग (जननेन्द्रिय) हैं। मंगल, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, स्त्री-संज्ञक प्राणियों तथा अचेतनमें रजका द्योतक है। अमेरिकाके विद्वानोंका मत है कि रजमें पुरुष-संज्ञक एवं स्त्रीसंज्ञक—दोनों प्रकारके कीटाणु विद्यमान रहते हैं। गृहस्थ-जीवनमें जब स्त्री-पुरुषोंके संसर्गसे पुरुषसंज्ञक कीटाणुओंका वीर्यके कीटाणुओंसे सम्पर्क स्थापित हो जाता है तो गर्भमें दोनोंके पुरुषसंज्ञक कीटाणुओंकी उपस्थितसे पुरुष-बालकके जीवन-निर्माणकी स्थिति बनती है; अन्यथा स्त्रीसंज्ञक बालकका निर्माण होता है।

वैसे तो गुह्यांगोंका सम्बन्ध उदरसे रहता है। उदरमें बड़ी आँतें होती हैं। उदरपर भी मंगलका आधिपत्य होता है। हमारे गणपति महाराजके पर्यायवाची नामोंमेंसे एक नाम 'लम्बोदर' भी है तथा यह भी एक

प्रमाण है कि गणपति हमारे देवताओं तथा ग्रहोंमें मंगल ही हैं।

ज्यौतिष-विज्ञानमें सर्वविज्ञान निहित है; या यों कहिये कि सर्वविज्ञानोंका विज्ञान ज्यौतिष-विज्ञान है; क्योंकि ग्रहों और राशियोंका आधिपत्य संसारकी प्रत्येक अणु-परमाणु वस्तुपर है।

आयुर्वेदके शारीरिकशास्त्रके अन्तर्गत आमाशय और उसके अंदर सुरक्षित नाड़ियों तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके कोषोंका समूह है, जिसमें स्त्रीसंज्ञक प्राणीका गर्भाशय भी होता है, जिसकी शुद्धिके लिये नारीजातिको प्रतिमास मासिकधर्म होता है। इस मासिकधर्मके होनेका कारण मंगलके साथ चन्द्रकी युति है; क्योंकि चन्द्र-ग्रह ही एक ऐसा ग्रह है, जो एक मासमें बारहों राशियोंका चक्कर लगा देता है। अतएव जब-जब भी नारीजातिके जन्मसमयकी स्थितिके मंगलके साथ चन्द्रमाकी युति होती है, तब-तब प्रतिमासमें नारी-समाजको ऋतुधर्म प्राप्त होता है।

जब गर्भाधान हो जाता है, तब एक मासपर्यन्त कलल, रुधिर और शुक्र (वीर्य) मिलते हैं, जिसपर शुक्रका स्वामित्व रहता है। दूसरे महीनेमें वह रुधिर शुक्र जमकर पिण्ड-सा बनता है। इसपर हमारे मंगलका स्वामित्व रहता है। अन्य मासोंमें गर्भपर शरीरके अंगोंके अनुसार अन्य ग्रहोंका आधिपत्य बालकके जन्मपर्यन्त रहता है। उपर्युक्त वर्णनके अनुसार यह श्रीगणेशजीका अर्थात् मंगल महाराजका संसारके चेतन प्राणियोंकी रचनाके श्रीगणेशमें कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है; यह विदित होता है। अचेतन (वृक्ष-लतादि)-में ये स्त्री-केशरका कार्य करते हैं।

धार्मिक कार्योंको प्रारम्भ करते समय भी मंगल महाराजका आह्वान श्रीगणेशके रूपमें सर्वप्रथम करते हैं, जिससे सर्वकार्य उनकी समाप्तिकी अवधिपर्यन्त मंगलमय ही होते रहें।

~~o~~

जय जय जय गणपति गणनायक!

(रचयिता—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

जय जय जय गणपति गणनायक!
करुणासिन्धु, बन्धु जन-जनके, सिद्धि-सदन, सेवक-सुखदायक॥
कृष्णास्वरूप, अनूप-रूप अति, विघ्न-बिदारण, बोध-विधायक।
सिद्धि-बुद्धि-सेवित, सुषमानिधि, नीति-प्रीति-पालक, वरदायक॥
शंकर-सुवन, भुवन-भय-वारण, वारन-वदन, विनायक-नायक।
मोदकप्रिय, निज-जन-मन-मोदक, गिरि-तनया-मन-मोद-प्रदायक॥
अमल, अकल अरु सकल-कलानिधि, रिद्धि-सिद्धिदायक, सुरनायक।
ज्ञान-ध्यान-विज्ञान दान करि निज-जन-मनवाञ्छित फल-दायक॥
प्रथम-पूज्य, सुरसेव्य एक-रद, सदा एकरस, खल-दल-शायक।
विद्या-बल-विवेक-वर-वारिधि, विश्ववन्द्य, विबुधाधिप-नायक॥
चरण-शरण-जन जानि दयानिधि! देहु एक यह वर वरदायक।
जन-जनमें हो नीति-प्रीति नित, रहे न कोउ विषय-विष-पायक॥

~~o~~

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यं निर्जरासुरनरा अखिलार्थसिद्ध्यै भूर्यन्तरायहतयेऽनुदिनं नमन्ति।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि॥

वर्ष ४८ } गोरखपुर, सौर चैत्र, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, मार्च, १९७४ { संख्या ३ पूर्ण संख्या ५६८

नृत्यपरायण गणेश

सुंड करि कुटिल, वितुंड-मुख मोद भरि—
गति-लय-लीन नीके नृत्य में मगन हैं।
चम-चम जोति, पायजेब छम-छम करै,
छहरै है ग्यान-रासि, फहरै बसन है॥
तांडव-प्रचालित प्रचंड भुजदंडन के—
घायल अघात पाय घूमत गगन है।
धन्य-धन्य कहत अधीर है धराधरेन्द्र—
झरनन झारी झारि धोवत चरन हैं॥

~~~ ० ~~~

'राम'
~~~

सिद्धिविनायकस्तोत्रम्

विघ्नेश विघ्नचयखण्डननामधेय श्रीशंकरात्मज सुराधिपवन्द्यपाद।
दुर्गामहाव्रतफलाखिलमङ्गलात्मन् विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्॥
सत्पद्मरागमणिवर्णशरीरकान्तिः श्रीसिद्धिबुद्धिपरिचर्चितकुङ्कुमश्रीः।
दक्षस्तने वलयितातिमनोज्ञशुण्डो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्॥
पाशाङ्कुशाब्जपरशूंश्च दधच्चतुर्भिर्दोर्भिश्च शोणकुसुमस्त्रगुमाङ्गजातः।
सिन्दूरशोभितललाटविधुप्रकाशो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्॥
कार्येषु विघ्नचयभीतविरञ्चिमुख्यैः सम्पूजितः सुरवरैरपि मोहकाद्यैः।
सर्वेषु च प्रथममेव सुरेषु पूज्यो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्॥
शीघ्राञ्चनस्खलनतुङ्गरवोर्ध्वकण्ठस्थूलेन्दुरुद्रगणहासितदेवसङ्घः।
शूर्पश्रुतिश्च पृथुवर्तुलतुङ्गतुन्दो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्॥
यज्ञोपवीतपदलम्भितनागराजो मासादिपुण्यददृशीकृतऋक्षराजः।
भक्ताभयप्रद दयालय विघ्नराज विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्॥
सद्रत्नसारततिराजितसत्किरीटः कौसुम्भचारुवसनद्वय ऊर्जितश्रीः।
सर्वत्र मङ्गलकरस्मरणप्रतापो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्॥
देवान्तकाद्यसुरभीतसुरार्तिहर्ता विज्ञानबोधनवरेण तमोऽपहर्ता।
आनन्दितत्रिभुवनेश कुमारबन्धो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्॥

॥ इति श्रीमुद्गलपुराणे विघ्ननिवारकं श्रीसिद्धिविनायकस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

हे विघ्नेश! हे सिद्धिविनायक! आपका नाम विघ्नसमूहका खण्डन करनेवाला है। आप भगवान् शंकरके सुपुत्र हैं। देवराज इन्द्र आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं। आप श्रीपार्वतीजीके महान् व्रतके उत्तम फल एवं निखिल मंगलरूप हैं। आप मेरे विघ्नका निवारण करें। सिद्धिविनायक! आपके श्रीविग्रहकी कान्ति उत्तम पद्मरागमणिके समान अरुण वर्णकी है। श्रीसिद्धि और बुद्धिदेवियोंने अनुलेपन करके आपके श्रीअंगोंमें कुंकुमकी शोभाका विस्तार किया है। आपके दाहिने स्तनपर वलयाकार मुड़ा हुआ शुण्ड-दण्ड अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है। आप मेरे विघ्न हर लीजिये। सिद्धिविनायक! आप अपने चार हाथोंमें क्रमशः पाश, अंकुश, कमल और परशु धारण करते हैं, लाल फूलोंकी मालासे अलंकृत हैं और उमाके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं तथा आपके सिन्दूरशोभित ललाटमें चन्द्रमाका प्रकाश फैल रहा है; आप मेरे विघ्नोंका अपहरण कीजिये। सभी कार्योंमें विघ्नसमूहके आ पड़नेकी आशंकासे भयभीत हुए ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओंने भी आपकी मोदक आदि मिष्टान्नोंसे भलीभाँति पूजा की है। आप समस्त देवताओंमें सबसे पहले ही पूजनीय हैं। आप मेरे विघ्नसमूहका निवारण कीजिये। सिद्धिविनायक! आप जल्दी-जल्दी चलने, लड़खड़ाने, उच्चस्वरसे शब्द करने, ऊर्ध्वकण्ठ होने, स्थूल इन्दु धारण करने तथा रुद्रगणको साथ रखनेके कारण समस्त देवसमुदायको हँसाते रहते हैं। आपके कान सूपके समान जान पड़ते हैं; आप मोटा गोलाकार और ऊँचा तुन्द (तोंद) धारण करते हैं; आप मेरे विघ्नोंका अपहरण कीजिये। आपने नागराजको यज्ञोपवीतका स्थान दे रखा है; आप मासादि तिथि प्रतिपदामें भी पुण्यदाता चन्द्रमाका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। भक्तोंको अभय देनेवाले दयाधाम विघ्नराज! सिद्धिविनायक! आप मेरे विघ्नोंको हर लीजिये। आपका सुन्दर किरीट उत्तम रत्नोंके सार भागोंकी श्रेणियोंसे उद्दीप्त होता है। आप कुसुम्भी रंगके दो मनोहर वस्त्र धारण करते हैं; आपकी शोभा या कान्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है और सर्वत्र आपके स्मरणका प्रताप सबका मंगल करनेवाला है। सिद्धिविनायक! आप मेरे विघ्न हर लें। सिद्धिविनायक! आप देवान्तक आदि असुरोंसे डरे हुए देवताओंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा विज्ञानबोधके वरदानसे सबके अज्ञानान्धकारको हर लेनेवाले हैं। त्रिभुवनपति इन्द्रको आनन्दित करनेवाले कुमारबन्धो! आप मेरे विघ्नोंका निवारण कीजिये।

इस प्रकार श्रीमुद्गलपुराणमें विघ्ननिवारक 'सिद्धिविनायकस्तोत्र' पूरा हुआ॥

यमराजद्वारा श्रीगणेश-भक्तके माहात्म्यका कथन

[श्रीगणेशाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्]

यम उवाच

गणेश हेरम्ब गजाननेति
महोदर स्वानुभवप्रकाशिन्।
वरिष्ठ सिद्धिप्रिय बुद्धिनाथ
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—दूतो! जो लोग गणेश! हेरम्ब! गजानन! महोदर! स्वानुभवप्रकाशिन्! वरिष्ठ! सिद्धिप्रिय! बुद्धिनाथ!—इस प्रकार उच्चारण करते हों, उनसे अत्यन्त भयभीत रहकर तुम उन्हें दूरसे ही त्याग देना।

अनेकविघ्नान्तक वक्रतुण्ड
स्वसंज्ञवासिंश्च चतुर्भुजेति।
कवीश देवान्तकनाशकारिन्
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

जो अनेकविघ्नान्तक! वक्रतुण्ड! स्वानन्द-लोकवासिन्! चतुर्भुज! कवीश! देवान्तकनाशकारिन्!—इस प्रकार उच्चारण करते हों, उनसे अत्यन्त डरे रहकर उन्हें छोड़ देना (उन्हें पकड़कर लानेकी चेष्टा न करना)।

महेशसूनो गजदैत्यशत्रो
वरेण्यसूनो विकट त्रिनेत्र।
परेश पृथ्वीधर एकदन्त
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

जो हे महेशनन्दन! गजदैत्यशत्रो! वरेण्यपुत्र! विकट! त्रिनेत्र! परेश! पृथ्वीधर! एकदन्त!—इस प्रकार उच्चारण करते हों, उनसे भयभीत रहकर उन्हें दूरसे त्याग देना।

प्रमोद मोदेति नरान्तकारे
षडूर्मिहन्तर्गजकर्ण ढुण्ढे।
द्वन्द्वाग्निसिन्धो स्थिरभावकारिन्
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

हे प्रमोद! मोद! नरान्तकारे! षडूर्मिहन्तः! गजकर्ण! ढुण्ढे! द्वन्द्वरूपी अग्निको शान्त करनेवाले सागर! स्थिरभावकारिन्!—ऐसा उच्चारण करनेवाले व्यक्तियोंको उनसे डरते हुए दूरसे ही छोड़ देना।

विनायक ज्ञानविघातशत्रो
पराशरस्यात्मज विष्णुपुत्र।
अनादिपूज्याखुग सर्वपूज्य
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

हे विनायक! ज्ञानविघातशत्रो! पराशरात्मज! विष्णुपुत्र! अनादिपूज्य! आखुग (मूषकवाहन)! सर्वपूज्य!—इस प्रकार उच्चारण करनेवालोंको भयभीत होकर छोड़ देना।

वैरिञ्च्य लम्बोदर धूम्रवर्ण
मयूरपालेति मयूरवाहिन्।
सुरासुरैः सेवितपादपद्म
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

हे विरंचिनन्दन! लम्बोदर! धूम्रवर्ण! मयूरपाल! मयूरवाहन! सुरासुरसेवितपादारविन्द!—ऐसा उच्चारण करनेवाले व्यक्तियोंको उनसे भय मानकर त्याग देना।

करिन् महाखुध्वज शूर्पकर्ण
शिवाज सिंहस्थ अनन्तवाह।
दयौघ विघ्नेश्वर शेषनाभे
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

हे गजस्वरूप! हे महामूषकध्वज! हे शूर्पकर्ण! हे शिव! हे अज! हे सिंहवाहन! हे अनन्तवाह! हे दयासिन्धो! हे विघ्नेश्वर! हे शेषनाभे!—ऐसा उच्चारण करनेवाले व्यक्तियोंको दूरसे ही त्याग देना और उनसे अत्यन्त भयभीत रहना।

अणोरणीयो महतो महीयो
रवीज्य योगेशज ज्येष्ठराज।
निधीश मन्त्रेश च शेषपुत्र
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

हे सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म और महान्‌से भी अत्यन्त महान्! रविपूज्य! योगेशज! ज्येष्ठराज! निधीश! मन्त्रेश! हे शेषपुत्र!—ऐसा उच्चारण करनेवाले व्यक्तियोंको त्याग देना और उनसे अत्यन्त भयभीत रहना।

वरप्रदातरदितेश्च सूनो
परात्परज्ञानद तारवक्त्र।
गुहाग्रज ब्रह्मप पार्श्वपुत्र
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

हे वरदायक! हे अदितिनन्दन! हे परात्परज्ञानद! हे प्रणवमुख! हे स्कन्दके ज्येष्ठ बन्धु! हे ब्रह्मपते! हे पार्श्वपुत्र!—ऐसा उच्चारण करनेवालोंको छोड़ देना और उनसे डरते रहना।

सिन्धोश्च शत्रो परशुप्रपाणे
शमीशपुष्पप्रिय विघ्नहारिन्।
दूर्वाङ्कुरैरर्चित देवदेव
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

हे सिन्धुशत्रो! हे परशुपाणे! हे शमीशपुष्पप्रिय! हे विघ्नहारिन्! हे दूर्वांकुरपूजित देवदेव!—ऐसा कहनेवालोंको दूरसे ही त्याग देना और उनसे डरते रहना।

धियः प्रदातश्च शमीप्रियेति
सुसिद्धिदातश्च सुशान्तिदातः।
अमेयमायामितविक्रमेति
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

हे बुद्धिप्रद! हे शमीप्रिय! सुसिद्धिदायक! सुशान्ति-प्रदायक! अमेयमाय! अमितविक्रम!—ऐसा कहनेवालोंको दूरसे ही त्याग देना और उनसे डरते रहना।

द्विधाचतुर्थीप्रिय कश्यपार्च्य
धनप्रद ज्ञानप्रदप्रकाश।
चिन्तामणे चित्तविहारकारिन्
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

जो शुक्ल-कृष्ण-द्विविध-चतुर्थीप्रिय! कश्यपपूज्य! धनप्रदायक! ज्ञानप्रदप्रकाश! चिन्तामणे! चित्तविहारकारिन्! —ऐसा उच्चारण करते हों, उनको दूरसे ही त्याग देना और उनसे सदा डरते रहना।

यमस्य शत्रो अभिमानशत्रो
विधूद्भवारे कपिलस्य सूनो।
विदेह स्वानन्द अयोगयोग
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

यमराजके वैरी और अभिमानके शत्रु! कामनाशन! कपिलपुत्र! विदेह! स्वानन्दस्वरूप! अयोगयोग गणेश!—ऐसा उच्चारण करनेवाले व्यक्तियोंको त्याग देना और उनसे डरते रहना।

गणस्य शत्रो कमलस्य शत्रो
समस्तभावज्ञ च भालचन्द्र।
अनादिमध्यान्त भयप्रदारिन्
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

दैत्यगण एवं कमलासुरके शत्रु! तथा समस्त भावोंके ज्ञाता! भालचन्द्र गणेश! आदि, मध्य और अन्तसे रहित तथा भयका नाश करनेवाले गणपते!—ऐसा कहनेवाले व्यक्तियोंको त्याग देना और उनसे डरते रहना।

विभो जगद्रूप गणेश भूमन्
पुष्टेः पते आखुगतेऽतिबोध।
कर्तश्च पालश्च तु संहरेति
वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥

विभो! जगत्स्वरूप! गणेश! भूमन्! पुष्टिपते! मूषकवाहन! पूर्णबोधस्वरूप! स्रष्टा, पालक और संहारक गणपते!—ऐसा उच्चारण करनेवाले व्यक्तियोंको त्याग देना और उनसे डरते रहना।

इदमष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य पठन्ति ये।
शृण्वन्ति तेषु वै भीताः कुरुध्वं मा प्रवेशनम्॥

जो गणेशके एक सौ आठ नामोंका पाठ करते हों, सुनते हों, उनके भीतर कभी प्रवेश न करना और उनसे भयभीत रहना।

भुक्तिमुक्तिप्रदं ढुण्ढेर्धनधान्यप्रवर्धनम्।
ब्रह्मभूतकरं स्तोत्रं जपन्तं नित्यमादरात्॥
यत्र कुत्र गणेशस्य चिह्नयुक्तानि वै भटाः।
धामानि तत्र कुरुत सम्भीता मा प्रवेशनम्॥

॥ इति श्रीगणेशाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

दुण्ढिराज गणेशका यह स्तोत्र भोग और मोक्ष देनेवाला तथा धन-धान्यकी वृद्धि करनेवाला है। इतना ही नहीं, यह ब्रह्मभावकी प्राप्ति करानेवाला भी है। हे यमदूतो! जो लोग प्रतिदिन आदरपूर्वक इस स्तोत्रका जप करते हों, उन्हें त्याग देना। जहाँ-कहीं भी गणेशचिह्नसे युक्त भवन हों, तुमलोग भयभीत रहकर कदापि उसमें प्रवेश न करना।

॥ इस प्रकार 'श्रीगणेशाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र' पूरा हुआ॥

गजमुख-भक्त वरेण्य

(ले०—श्रीमती सावित्रीदेवी त्रिपाठी, बी०ए, बी०एड्०)

माहिष्मतीपुरीके सद्धर्मपरायण प्रजापालक नरेशका नाम वरेण्य था। वरेण्य परम पराक्रमी तथा देवता और ब्राह्मणोंके भक्त थे। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रीतिसहित पुराणकथाश्रवण करते और धर्मपालनके लिये प्राणपणसे सतत प्रस्तुत रहते थे। उनके सर्वथा अनुरूप उनकी रूप-लावण्य-सम्पन्ना पतिव्रता पत्नीका नाम पुष्पिका था।

इन दम्पतिने पूर्वकल्पमें श्रीगणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये अत्यन्त निष्ठापूर्वक सूखे पत्तोंपर जीवननिर्वाह करते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक बड़ी कठिन तपश्चर्या की थी। प्रसन्न गजमुखने उन्हें वर प्रदान किया—'मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।'

जब सिन्दूरासुरकी स्वच्छन्दतासे त्रैलोक्य भयाक्रान्त एवं पीड़ित हुआ, तब सर्वद गजवक्त्र पर्यलीके वनमें त्रैलोक्यवन्दिता जगज्जननी उमाके यहाँ प्रकट हुए। उसी समय माहिष्मती-नरेश वरेण्यकी पत्नी पुष्पिकाने भी प्रसव किया; किंतु उसके पुत्रको एक क्रूरकर्मा राक्षसी उठा ले गयी। पुष्पिका मूर्च्छिता थी। आदिदेव शुण्डदण्डसुशोभित चतुर्भुज गजाननके आदेशसे आशुतोष शिवने नन्दीके द्वारा उन्हें मूर्च्छिता वरेण्य-पत्नी पुष्पिकाके समीप रखवा दिया।

साध्वी पुष्पिकाने मूर्च्छा दूर होनेपर जब अपने सम्मुख चतुर्भुज शिशु गजाननको देखा, तब वह भयवश काँपने लगी। रानीकी परिचारिकाएँ भी उस नवजात शिशुको देखकर भयाक्रान्त हो गयीं। विवशत: उदास-मन नरपति वरेण्यने उस लोकोत्तर शिशुको अरण्यमें एक सरोवरके तटपर रखवा दिया।

इसी समय महर्षि पराशर उसी पथसे जा रहे थे। उनकी दृष्टि उक्त अलौकिक नवजात चतुर्भुज गजवक्त्र शिशुपर पड़ी तो वे अत्यन्त चकित हुए। महामुनिने ध्यानपूर्वक उक्त शिशुके अरुणोत्पलचरणोंमें ध्वज, अंकुश और कमलकी रेखाएँ देखीं तो उन्हें समझते देर न लगी कि ये सर्वलोकत्राता परब्रह्म परमेश्वर लम्बोदर मुझे सनाथ करने यहाँ विराज रहे हैं। मुनिवरने उनके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन्हें अंकमें लेकर अपने आश्रमपर पहुँचे। महर्षिकी परम सौभाग्यवती पत्नी वत्सला अतिशय स्नेहसे उनका पालन करने लगीं।

अपने पुत्रके दिव्यदृष्टिसम्पन्न मुनिवर पराशरद्वारा लालन-पालनका संवाद प्राप्तकर माहिष्मती-नरेश वरेण्यकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने अत्यन्त उत्साहपूर्वक पुत्रोत्सवका आयोजन किया। बाजे बजे। अनेक धार्मिक कृत्योंके साथ ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देकर वरेण्यने उन्हें आप्यायित कर दिया। हर्षातिरेकसे उन्होंने घर-घर मिष्टान्न वितरण करवाया।

जब विश्व-विपत्ति सिन्दूरका गजाननने उद्धार कर दिया, तब इस समाचारसे हर्षित हो वरेण्य द्रुतगतिसे वहाँ पहुँचे। वे देवाधिदेव मूषक-वाहन गजाननके पाद-पद्मोंमें साष्टांग लेट गये। धरतीकी महान् विभूति अपने पुत्र गजाननको त्याग देनेके कारण उनका मन विकल-विह्वल था और प्रभुके सम्मुख वे अत्यन्त लज्जित थे। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उन्होंने अपनी मूढ़ताके लिये करुणामय देवेश्वर गजाननसे बार-बार क्षमाकी याचना की और वे उनका स्तवन करने लगे।

दयामूर्ति मूषक-वाहनने वरेण्यकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर उन्हें अपने वक्षसे लगा लिया और फिर उन्होंने उनसे उनके पूर्वकल्पके तप एवं अपने वरदानका उल्लेख करते हुए कहा—'मेरे अवतारका कार्य पूर्ण हो गया। अब मैं अपने धाम जाऊँगा।'

परमप्रभुके स्वधामगमनके संवादसे वरेण्यने अत्यन्त व्याकुल होकर उनके अभयद चरण पकड़ लिये। उन्होंने देवेशसे अत्यन्त दीनवाणीमें प्रार्थना की—'करुणासिन्धु! आप इस त्रयतापतप्त जगत्से मुक्त होनेका मार्ग बतानेकी दया कीजिये।'

दयाधाम गजानन वहीं एक श्रेष्ठ आसनपर बैठ गये। वरेण्य उनके सम्मुख श्रद्धा-भक्तिकी प्रतिमूर्तिकी भाँति हाथ जोड़े प्रभुके मंगल-मूल मुखारविन्दकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। उनके कान प्रभुकी वाणीकी ओर लगे थे।

दयासागर गजमुखने वरेण्यके मस्तकपर अपना

सर्वफलद मंगलमय कर-कमल रख दिया। तदनन्तर उन्होंने नरेशको आवागमनसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये अपना अमृतमय उपदेश प्रदान किया। वह गजवक्त्र-प्रदत्त अमृतोपदेश 'गणेशगीता' के नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो प्रत्येक गाणपत्यका कण्ठहार है। इस प्रकार 'गणेशगीता' के प्रथम श्रोता माहिष्मती-नरेश वरेण्य थे। जिस प्रकार महायोगेश्वर श्रीकृष्णप्रदत्त 'श्रीमद्भगवद्गीता' सम्पूर्ण वसुंधराके लिये अमृतमयी सिद्ध हुई, उसी प्रकार 'गणेशगीता' अपने लघुतम कलेवरमें भी उपयोगी प्रमाणित हुई। योगेश्वर श्रीकृष्णकथित गीताकी प्रायः समस्त बातें उसमें आ गयी हैं।

श्रीगजानन अन्तर्धान हो गये और परम कृतार्थ विरक्त वरेण्यने राज्यका दायित्व तुरंत अमात्योंको सौंपा और स्वयं तप करनेके लिये अरण्यमें चले गये। श्रीगजाननकी कृपासे उनकी चित्तवृत्तियाँ सर्वथा शान्त हो गयीं तथा उनके तन, मन और प्राण ही नहीं, उनके रोम-रोम गजमुखके ध्यानमें संलग्न हो गये। इस प्रकार परम भाग्यवान् गजमुख-भक्त वरेण्यने परमप्रभु गणेशका अक्षय सुख-शान्ति-निकेतन परम पावन धाम प्राप्त कर लिया। (गणेशपुराणके आधारपर)

~~०~~

श्रीविनायक-भक्त बल्लाल

प्राचीन कालकी बात है। सिन्धुदेशमें पल्ली नामक एक प्रख्यात नगरमें कल्याण नामक एक धन-सम्पन्न सेठ था। कल्याण धर्माचरणसम्पन्न बुद्धिमान् पुरुष था। वह दानी तथा देवता और ब्राह्मणोंका भक्त था। उसके इन्दुमती नामक साध्वी पत्नी थी, जो अत्यन्त रूपवती, पतिप्राणा और पतिवाक्यपरायणा थी।

कुछ दिनों बाद उसके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। कल्याणने प्रसन्नतापूर्वक बालकका सविधि जातकर्म-संस्कार करवाया। ब्राह्मणोंको गोदान, वस्त्राभूषण तथा पुष्कल दक्षिणा प्रदान कर उन्हें संतुष्ट किया। तदनन्तर धनिक कल्याणने दैवज्ञोंसे बालकका नामकरण करनेके लिये प्रार्थना की।

संतुष्ट दैवज्ञोंने कहा—'यह बालक अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट और बलवान् है। इस कारण इसका नाम 'बल्लाल' होना चाहिये।'

सपत्नीक कल्याणने ब्राह्मणों और दैवज्ञोंके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। विप्रों और ज्योतिषियोंने पुत्रसहित धनिक दम्पतिको आशीर्वाद प्रदान कर अपने-अपने घरके लिये प्रस्थान किया।

बल्लाल धीरे-धीरे बढ़ने लगा। पूर्वजन्मार्जित शुभ कर्मोंके फलस्वरूप उसकी अत्यन्त सात्त्विक प्रकृति थी। वह माता-पिता तथा गुरुजनोंके चरणोंमें बड़ी श्रद्धा रखता। उन्हें सदा सम्मान देता। अपने समवयस्क बालकोंके साथ अतिशय प्रेमपूर्ण व्यवहार करता। इस कारण उससे प्रायः सभी प्रसन्न रहते। उसे सबकी आत्मीयता और प्रीति प्राप्त होती थी। सभी बालक उसके साथ रहना चाहते। सभी उसके साथ खेलना चाहते। बालसुलभ क्रीड़ा करते हुए भी वह बालकोंको करुणामय विनायककी मधुर लीला-कथा सुनाया करता। विनायककी मृण्मयी मूर्ति बनाकर पुष्पादिसे उसकी पूजा करता। उसे देखकर उसके अल्पायु मित्र भी करुणा-सागर विनायककी पूजा करने लग जाते।

बल्लाल जब कुछ बड़ा हुआ, तब वह अपने मित्रोंके साथ नगरके बाहर जाने लगा। वह जहाँ-कहीं देवालय देखता, वहीं देवदेव विनायककी पूजा-प्रार्थना कर उनके चरणोंमें बार-बार प्रणाम करने लगता। उसके मित्रगण भी बल्लालका अनुसरण करते।

एक दिनकी बात है। बल्लाल अपनी बाल-मण्डलीके साथ नगरके बाहर वनमें चला गया। वहाँ समस्त बालकोंने क्रीड़ा करते हुए सरोवरमें स्नान किया। फिर उसने एक सुन्दर पत्थर लेकर, उसे स्थापित कर उसमें गणेशजीकी भावना कर ली। बल्लालके साथ उसके मित्रगण अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसपर दूर्वांकुर और मन्दारपत्र चढ़ाने लगे। कुछ बालक गणेशजीका ध्यान और कुछ उनके मंगलमय नामका जप करने लगे। कुछ बच्चे नृत्य करने लगे और कुछ संगीतज्ञ शिशु गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये गीत गाने लगे। कुछ शिशुओंने लकड़ी और पत्तोंसे मण्डपका

निर्माण किया। कुछ बच्चे मानसिक पूजाके द्वारा और कुछ पत्र-पुष्पादिसे अनादिनिधन गजबदनकी उपासनामें दत्तचित्त हो गये। वे उन्हें धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल और दक्षिणा अर्पित करने लगे।

उन गणेश-भक्त बालकोंमें एक बालक पुराणकी कथा कहने लगा और एक पण्डितोंकी तरह उसकी व्याख्या करने लगा। इस प्रकार उनके तन, मन और प्राण गजवक्त्रमें लीन हो गये। भालचन्द्रकी आराधनामें उन्हें क्षुधा-पिपासाकी भी स्मृति न रही।

परमप्रभु विघ्नेश्वरकी प्रीतिने उन शिशुओंके सुकोमल हृदयमें स्थान बना लिया। फलतः वे प्रतिदिन नियमपूर्वक नगरके बाहर उक्त वनमें जाकर अपने परम प्रिय देवदेव विनायककी उपासना करने लगे। माता-पिता शिशुओंको समझाते, बल्लालका साथ छोड़कर समयपर भोजनादि करनेका आग्रह करते। कुछ माता-पिता अपने बच्चोंको डाँटते, पर उन बालकोंके प्राण मंगलमूर्ति गणेशजीमें जैसे बस गये थे। वे कोई-न-कोई बहाना बनाकर भागते हुए बल्लालके पीछे वनमें चले जाते। वहाँ विविध प्रकारकी क्रीड़ा करते और फिर अपने आराध्यकी उपासनामें तल्लीन हो जाते।

जब बालकोंको वनमें जानेसे किसी प्रकार विरत करना सम्भव नहीं रह गया, तब उनके पिता अत्यन्त कुपित होकर धनिक कल्याणके समीप पहुँचे। उन्होंने रोषपूर्वक धनपति कल्याणसे कहा—'सेठ! तुम्हारा पुत्र बल्लाल हमारे बच्चोंका जीवन नष्ट कर रहा है। वह प्रतिदिन उन्हें साथ ले जाकर वनमें पता नहीं क्या करता है? हमारे अबोध बालक समयपर भोजन भी नहीं कर पाते। वे अत्यन्त कृशकाय हो गये हैं।'

बच्चोंके क्रुद्ध पिता कहते जा रहे थे—'तुम अपने पुत्रको नियन्त्रित करो, अन्यथा हम सभी उसे दण्डित करेंगे और इस दुष्टतासे बचनेके लिये हम नरेशके समीप जाकर तुम्हें राज्यके लिये अवांछनीय व्यक्ति भी सिद्ध करनेका प्रयत्न करनेमें संकोच नहीं करेंगे।'

धनिक कल्याण पहले भी अपने पुत्रके सम्बन्धमें इस प्रकारकी बात सुन चुका था। अब अनेक व्यक्तियोंके तीक्ष्णतम उपालम्भसे वह अधीर हो गया। वह संयत नहीं रह सका; क्रोधसे काँपने लगा। उसके नेत्र लाल हो गये। उसने तुरंत हाथमें एक डंडा लिया और उन्मत्तकी तरह द्रुतगतिसे वनके लिये चल पड़ा।

कल्याण क्रोधके वशीभूत हो चुका था; इस कारण उसकी विवेक-बुद्धि सर्वथा लुप्त-सी हो गयी थी। उस समय उसके हृदयमें पुत्र-स्नेह-नामकी जैसे कोई वस्तु ही नहीं रह गयी थी। हाँफता-काँपता वह वनमें वहाँ पहुँचा जहाँ अपने सखाओंसहित बल्लाल देवाधिदेव विनायककी उपासनामें तल्लीन था।

यह दृश्य देखकर जैसे प्रज्वलित अग्निमें घृताहुति पड़ गयी। कल्याण क्रोधोन्मत्त तो था ही, यम-तुल्य निर्दय हो गया था। रोषानलमें जलता हुआ कल्याण अपने सरलतम भक्त पुत्रपर दण्ड-प्रहार करने लगा। बल्लालके मित्र प्राण लेकर भागे, पर हृदयहीन कल्याण अपने अबोध बच्चेको पशुकी तरह पीटता ही जा रहा था। बल्लाल दण्ड-प्रहारसे चीत्कार कर रहा था। उसके अंग-प्रत्यंग दण्डाघातसे फट गये। उनसे रक्त बहने लगा, फिर भी कल्याण उसे मारता ही जा रहा था।

उसने मूर्च्छितप्राय बल्लालको छोड़कर बालकोंके निर्मित मण्डपादिको नष्ट कर दिया। उनके पूजाके उपकरण यत्र-तत्र बिखेरकर सिन्दूरपूजित गणेशजीके पाषाण-विग्रहको उठाकर दूर फेंक दिया।

तदनन्तर उस नरपशुने लताओं और रस्सियोंसे बल्लालके हाथ-पैर खूब कसकर बाँध दिये। वह बन्धन इतना दृढ़ था कि सुकुमार बल्लाल अपने दाँत आदिसे किसी प्रकार भी उसे नहीं छुड़ा सकता था।

फिर निर्मम कल्याणने अत्यन्त कुपित होकर बल्लालसे कहा—'यदि तूने किसी प्रकार मेरे घरमें प्रवेश किया तो मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा। अब तू यहीं वनमें दिन-रात खूब गणेशाराधन कर। तुझे गणेश ही बन्धन-मुक्त करेंगे और अन्न-जल भी वे ही प्रदान करेंगे।'

बकता-झकता कल्याण अपने घर लौटा।

संध्याकाल! निर्जन वन। निरन्न, निर्जल, घायल और सुदृढ़ बन्धनमें जकड़ा बल्लाल रोते-रोते थक गया था। वह पीड़ासे छटपटा एवं कराह रहा था; किंतु अत्यन्त कष्टमें भी वैश्यपुत्र बल्लाल अपने प्राणाराध्य देवदेव विनायकका ध्यान कर रहा था। उसने व्याकुल होकर कहा—'भक्तवत्सल प्रभो! आप विघ्नोंका नाश

करनेवाले कहे जाते हैं। यदि आप दुष्टों और विघ्नोंको समाप्त नहीं करते तो फिर आपका 'दुष्टान्तक' नाम कैसे प्रसिद्ध हुआ? जैसे शेष धरतीको, सूर्यदेव प्रकाशको, सुधांशु सुधाको और अग्निदेव उष्णताको नहीं छोड़ते, उसी प्रकार आप भी अपने भक्तोंका परित्याग नहीं करते।'

फिर बालक बल्लाल ध्वस्त मण्डप एवं यत्र-तत्र बिखरे पूजाके उपकरणोंको देखकर दुःखसे व्याकुल हो अपने पिता (धनपति कल्याण)-को शाप देने लगा— 'जिसने मेरे परम प्रभुके मण्डपको नष्ट किया; मेरे स्वामी देवदेव विनायकके पावनतम विग्रहको फेंक दिया; पूजाके सभी उपकरणोंको नष्ट कर निर्दयतापूर्वक मुझे मारा, वह निश्चय ही अन्धा, बधिर, मूक और कुबड़ा हो।'

फिर अत्यन्त निष्ठाके साथ बल्लालने कहा— 'यदि सर्वपूज्य गणेशजीमें मेरी दृढ़ भक्ति है तो मेरा वचन सत्य हो। कोई मेरे शरीरको नष्ट करके भी आदिदेव गणेशजीकी श्रद्धा-भक्तिसे मुझे विरत नहीं कर सकता? मेरा यह तन, मन और प्राण मेरे प्राणाराध्य गणेशजीपर समर्पित है। मैं कष्टसे तड़प-तड़पकर इस निर्जन अरण्यमें मृत्यु-मुखमें भले चला जाऊँ, किंतु यहाँसे भागकर कहीं नहीं जाऊँगा। अब अपने क्रूर पिताके घरका तो मुखतक भी न देखूँगा।'

सहसा भक्तप्राण सृष्टिपति देवदेव विनायक ब्राह्मणके वेषमें बल्लालके सम्मुख प्रकट हो गये। उन दयामय सर्वसमर्थ विघ्ननाशक प्रभुकी दृष्टि पड़ते ही बल्लालके सुदृढ़ बन्धन छिन्न हो गये। उसका शरीर पूर्ववत् सुन्दर और स्वस्थ हो गया। रक्त और घावके चिह्नका कहीं लेश भी नहीं था। अपनी यह परिवर्तित दशा एवं ब्राह्मणके तेजको देखते ही बल्लालने सोचा— 'निश्चय ही ये मेरे परमाराध्य करुणासिन्धु महामहिम विनायकदेव ही हैं।' और उसी क्षण प्रभु-दर्शनसे उसे निर्मल ज्ञान प्राप्त हो गया। बस, उसने श्रद्धापूर्ण हृदयसे परम प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति करने लगा—

त्वमेव मातासि पितासि बन्धुस्त्वमेव कर्तासि चराचरस्य।
निर्मासि दुष्टांश्च खलांश्च साधून् योनौ वियोनौ विनियुङ्क्ष्यथापि॥
त्वमेव दिक्खकनभोधराब्धिगिरीन्द्रकालानलवायुरूपः।
रवीन्दुताराग्रहलोकपालवर्णेन्द्रियाथौषधिधातुरूपः ॥

(गणेशपुराण १।२२।४५-४६)

'प्रभो! आप ही मेरे माता-पिता और बन्धु हैं। आप ही चराचर जगत्के कर्ता हैं। आप ही दुष्टों, खलों और साधुओंका भी निर्माण करते हैं और उन्हें बुरी-भली योनियोंमें डालते हैं। आप ही सम्पूर्ण दिशाएँ, आकाश, पृथ्वी, समुद्र, गिरिराज, काल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ग्रह, लोकपाल, वर्ण, इन्द्रियाँ, ओषधि और ताम्रादि धातुरूप भी हैं।'

भक्त बल्लालके स्तवनसे प्रसन्न होकर सर्वपूज्य देवदेव विनायकने बल्लालको अपने हृदयसे लगा लिया और वे मेघगम्भीर स्वरमें बोले—'मेरा मन्दिर ध्वस्त करनेवाला नरकगामी होगा। मेरी आज्ञासे तुम्हारा शाप भी सिद्ध होगा। वह अन्धा, बहरा, गूँगा और कुबड़ा तो होगा ही, उसके शरीरसे रक्तस्राव होता रहेगा। उसका पिता उसे मातासहित घरसे निकाल देगा। तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो। मैं तुम्हारी प्रत्येक कामना पूरी करूँगा।'

बल्लालने प्रेम-गद्गद कण्ठसे गजानन प्रभुसे वरकी याचना की—'करुणामय प्रभो! आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें और इस क्षेत्रमें आप स्थिर रहकर लोगोंकी विघ्नोंसे रक्षा करते रहें*।'

भक्तप्राणधन देवदेव विनायकने बल्लालको अभीष्ट वर प्रदान करते हुए कहा—''मुझमें तुम्हारी अनन्य भक्ति होगी। मेरे नामके पहले तुम्हारा नाम प्रख्यात होगा। इस नगरमें 'बल्लाल-विनायक' नामसे गणपति प्रसिद्ध होंगे। भाद्रशुक्ल चतुर्थीको इस तीर्थकी यात्रा करनेवालोंकी प्रत्येक कामना मैं पूर्ण करूँगा।''

इतना कहकर परमप्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये।

भक्त बल्लालकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसका जन्म और जीवन सफल हो चुका था। वहाँ बल्लालने अत्यन्त रमणीय गणेश-मन्दिरका निर्माण करवाया। तदनन्तर वहाँ विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा देवदेव विनायककी सुन्दर मूर्तिकी स्थापना करवायी। बल्लालने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने प्राणनाथ विनायक

*..........देवं त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे। अस्मिन् क्षेत्रे स्थिरो भूत्वा लोकान् रक्षस्व विघ्नतः॥ (गणेशपुराण १।२२।५१)

प्रभुकी षोडशोपचारसे पूजा की। फिर परिक्रमा, प्रार्थना और बारम्बार प्रणाम किया। वहाँ नाम-जप, कथा-कीर्तन एवं विविध प्रकारके महोत्सव होने लगे। सर्वकामद बल्लाल-विनायकके नामसे उक्त गणेश-विग्रहकी सर्वत्र ख्याति हो गयी।

ठीक उसी समय बल्लालका पिता धनपति कल्याण मूक, अन्ध और बधिर हो गया। उसके शरीरसे जहाँ-तहाँ रक्तस्राव होने लगा और दुर्गन्ध निकलने लगी।

पतिप्राणा इन्दुमती अपने पतिकी सहसा ऐसी दुर्दशा देखकर व्याकुल हो गयी। वह सोचने लगी—'मेरे पतिदेव धर्मपरायण, दानी एवं देवता तथा ब्राह्मणोंके भक्त हैं। इनकी शास्त्रोंमें निष्ठा है। परनारीपर इन्होंने कभी कुदृष्टि नहीं डाली। फिर ऐसे निष्पाप पुरुषकी अचानक यह दयनीय स्थिति कैसे हो गयी?'

कल्याणप्रिया इन्दुमती दुःखसे व्याकुल होकर रुदन कर रही थी। फिर उसने सोचा—'इन्होंने मेरे एकमात्र सरलतम भक्त-पुत्रपर निर्दयतापूर्वक दण्ड-प्रहार किया और फिर उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे शून्य वनमें छोड़ आये। कहीं उस भक्त बालकके प्रति दुर्व्यवहारका ही यह भयानक कुफल इन्हें प्राप्त न हुआ हो।'

इन्दुमती दुःखसे अधीर और व्याकुल थी। वह नगर-निवासियोंके साथ उक्त वनमें पहुँची जहाँ उसके पतिने बल्लालको निष्ठुरतापूर्वक पीटकर उसके हाथ-पैर बाँधे थे और फिर जनशून्य वनमें उसे एकाकी छोड़ दिया था। इन्दुमतीने देखा, सिन्दूर-परिपूरित, चतुर्भुज, त्रिनेत्र, भालचन्द्रकी चित्ताकर्षक सुन्दर मूर्ति है और उनके सम्मुख सरलता, निश्छलता एवं भक्तिका सजीव प्रतीक हाथ जोड़े ध्यानस्थ कुमार बल्लाल बैठा है! उसके दीप्तिमय अंगपर दण्डप्रहारजनित कहीं कोई चिह्न नहीं था।

अपने प्राणप्रिय पुत्रके शान्त स्वरूपको देखकर इन्दुमतीने क्रोधावेशमें नागरिकोंसे कहा—'तुमलोग मेरे पुत्रको देखो। तुमलोगोंने मेरे पतिसे सर्वथा झूठी बात कही थी। यदि इसी देवोपम बालकसे तुम्हारे पुत्रोंका जीवन नष्ट हो रहा था, तब अन्य किस बालकके साथ उनका जीवन उन्नत हो सकेगा? तुमलोगोंने मेरे इस पुत्रकी निन्दा की और इसे कठोर दण्ड दिलवाया, यह कम अपराध नहीं है!' पतिकी दारुण दशासे व्याकुल इन्दुमती पुत्र-स्नेहवश चीत्कार कर उठी।

नागरिक भी चकित थे। वे मन-ही-मन पश्चात्ताप कर रहे थे। उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्वक इन्दुमतीसे कहा—'महाभागा! तुम रो क्यों रही हो? तुम अपने पुत्रकी ओर दृष्टिपात करो। यह अरुण वस्त्र धारण किये, लाल चन्दन लगाये, लाल पुष्पोंकी माला पहने सिन्दूरार्चित जगद्वन्द्य वरदाता गजवक्त्रके सम्मुख किस प्रकार ध्यानमग्न बैठा है! इसमें ममता और अहंकारका लेश भी नहीं रह गया है। यह गणेशभक्त बल्लाल शुण्डरहित साक्षात् द्वितीय गणेश प्रतीत होता है।'

रुदन करती हुई इन्दुमतीने अपने पुत्रको वक्षसे सटा लिया और बोली—'बेटा! घर चलो। तुम्हारे पिताकी मति मारी गयी जो उन्होंने इन लोगोंके वचनोंपर विश्वास कर लिया। इस समय वे बड़े कष्टमें हैं। वे अन्धे, बहरे और गूँगे हो गये हैं। उनके शरीरमें सर्वत्र घाव हो गये हैं। घावसे रक्त बह रहा है। उनका सम्पूर्ण अंग काला हो गया है और उनसे दुर्गन्ध निकल रही है। उनके कष्टकी सीमा नहीं है। उन्होंने तुम्हें निर्दयतापूर्वक पीटकर सर्वथा अनुचित किया, किंतु तुम पुत्र-धर्मपर विचार करो; उनकी चिकित्साकी व्यवस्था करो। तुम्हारे कारण उनकी सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। सत्पुत्र और यशस्वी संतानको अपने माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। उनका आदर-सत्कार तथा पालन-पोषण करना सर्वथा उचित है।* तुम ओषधि, मन्त्र तथा देव-प्रार्थना आदिके द्वारा, जिस प्रकार सम्भव हो, अपने पिताको स्वस्थ करो, जिससे मेरा सौभाग्य बना रहे।'

इन्दुमतीकी प्रार्थना सुनकर सर्वथा विरक्त एवं ममताशून्य बल्लालने अत्यन्त शान्त, किंतु दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, 'यहाँ किसका कौन माता-पिता है और कौन किसका पुत्र है? यह सब मंगलमूर्ति भगवान् विनायककी लीला है। मुझे उन अचिन्त्य अनन्त प्रभुकी कृपा प्राप्त हो गयी है। उन्होंने मेरी रक्षा कर मुझे पुनः नवजीवन प्रदान किया है। अब तो वे ही मेरे माता-

* मातापितृवचः कार्यं सत्पुत्रेण यशस्विना। पूजनं च तयोः कार्यं पोषणं पालनं तथा॥ (गणेशपुराण १।२३।२३)

पिता हैं। मैंने अपना तन, मन, प्राण और सर्वस्व उन करुणामय त्रातापर समर्पित कर दिया है।'

बल्लालने शान्तिपूर्वक आगे कहा—'कर्मफल भोगने ही पड़ते हैं। मन्दिर तोड़कर, पूजाके उपकरण फेंककर और गणेशजीके प्रिय शिशुको निर्दयतापूर्वक यातना देकर उसने अपने कर्मका ही फल प्राप्त किया है। तुम मेरा मोह त्यागकर अपने पतिकी सेवा करो। यहाँसे चली जाओ।'

ज्ञानसम्पन्न सर्वथा विरक्त अपने पुत्रका स्पष्ट उत्तर सुनकर कल्याण-पत्नी इन्दुमतीने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक पुनः उससे कहा—'बेटा! तुम अपनी कृपा, स्नेह और अनुग्रहसे मेरे पतिका शाप दूर कर दो।'

सर्वथा निःस्पृह एवं विरक्त बल्लालने उत्तर दिया—'इस जीवनमें तो शाप मिटेगा नहीं, किंतु अगले जन्ममें तुम इसकी माता और यह तुम्हारा पुत्र होगा। उस समय भी उसकी यही दशा रहेगी। इस कारण तुम्हारा पति तुम्हें पुत्रसहित घरसे निकाल देगा। तुम विदेशमें भटकती रहोगी और फिर श्रीगणेशजीके परम भक्त एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके शरीर-वायुके स्पर्शसे तुम्हारा पुत्र स्वस्थ हो जायगा। तदनन्तर तुम्हें दयामय गणेशजीका दर्शन प्राप्त होगा और तुम धन्य हो जाओगी।'

इन्दुमती पुत्रके तिरस्कारसे दुःखी, पर उसके सुनिश्चित आश्वासनसे संतुष्ट होकर वहाँसे लौट आयी।

× × ×

भक्त बल्लाल अपने आराध्य देवदेव विनायककी सप्रीति पूजा कर उनकी प्रार्थना कर रहा था कि उसके सम्मुख श्रीगणेशप्रेषित दिव्य विमान अवतरित हुआ। परम भाग्यवान् बल्लालने अपने परम प्रभु बल्लाल-गणपतिके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया और फिर उस विमानपर बैठकर उनके अत्यन्त सुखद दिव्य धामको चला गया।

देवदेव विनायकके अनन्य भक्त बल्लालकी यह पावन कथा सुननेसे मनुष्यकी मनःकामना पूरी होती है और वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।*

(गणेशपुराणके आधारपर)

—पं० श्रीशिवनाथ दुबे

मुद्गल ऋषि

प्रख्यात गणपति-भक्त भ्रुशुण्डी महर्षि मुद्गलके ही शिष्य थे और सच तो यह है कि वे महर्षि मुद्गलके ही अनुग्रहसे भगवान् गजवक्त्रके कृपापात्र हुए। उन महामुनि मुद्गलने अपने पावन मुद्गलपुराणमें अपने सम्बन्धमें दक्षको प्रायः सब कुछ बता दिया है।

शैशवसे ही इनपर शुभ संस्कार पड़े थे और पूजा-पाठ तथा नाम-जपमें इनकी प्रगाढ़ प्रीति थी। निष्ठा उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती गयी और यौवनमें प्रवेश करते ही इन्होंने तपस्या प्रारम्भ कर दी। कुछ दिनों बाद उपोषण प्रारम्भ किया। पहले पाँच-पाँच दिनका और फिर दस-दस दिनका। उपोषण-समाप्तिके अनन्तर महर्षि मुद्गल किसानोंके फेंके हुए अनाजके दाने एकत्र कर उसीका आहार करते।

एक बारकी बात है। उपोषणके बाद वे व्रत-पारण करने ही जा रहे थे कि द्वारपर एक अतिथिने आकर कहा—'मैं भूखसे व्याकुल हूँ। मुझे अन्न प्रदान करो।'

तपस्वी मुद्गलने अपना आहार अत्यन्त आदरपूर्वक अतिथिको दे दिया और निरुद्विग्न चित्तसे वे तपश्चरणमें लग गये। उपोषणकी समाप्तिपर अन्न ग्रहण करते समय दूसरी बार भी यही हुआ। क्षुधार्त अतिथिने अन्नकी याचना की तथा परम तितिक्षु मुद्गल ऋषिने हर्षपूर्वक अपना आहार अतिथिको समर्पित कर दिया और स्वयं निरन्न तपश्चरणमें लग गये। अनवरतरूपसे छः बार उपोषणके अनन्तर अतिथिने पारणकालमें तपस्वी ऋषिका अन्न ले लिया और मुद्गल ऋषि शान्तिपूर्वक अन्न देकर तपमें लग जाते।

'तुम्हें स्वर्ग-सुख प्राप्त होगा।'—अतिशय प्रसन्न

* यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तः काममवाप्नुयात्॥ (गणेशपु० १।२२।५७)

अतिथिरूपी महर्षि दुर्वासाने कठोर तपस्वी मुद्गल ऋषिको वर प्रदान कर दिया।

सुरेन्द्र-प्रेषित विमानसे उतरकर शचीपति-दूतने मुद्गल ऋषिसे स्वर्ग चलनेकी प्रार्थना की। महर्षि मुद्गलने सहस्राक्षके दूतसे विनयपूर्वक पूछा—'आप कृपापूर्वक मुझे स्वर्गके गुण-दोष बतानेका कष्ट करें।'

देवदूतने विनम्र शब्दोंमें उत्तर दिया—'मुनिवर! स्वर्गलोक भोगभूमि एवं मर्त्यधाम कर्मक्षेत्र है।'

महर्षि मुद्गलने पुनः पूछा—'सर्वोत्तम स्थान एवं उसकी प्राप्तिका साधन बतानेकी दया कीजिये।'

देवदूतने तीनों लोकोंका वर्णन करते हुए कहा—'ब्रह्मस्वरूप होनेके लिये यही धरित्री श्रेष्ठ है। यहाँ कर्मके द्वारा शुद्ध अन्तःकरणमें ज्ञानका उदय होता और मनुष्य सायुज्य भी प्राप्त कर लेता है।'

महर्षि मुद्गलने अत्यन्त आदरपूर्वक देवदूतको वापस लौटाते हुए कहा—'मुझे स्वर्ग-सुख अभीष्ट नहीं।'

मुद्गल ऋषि स्वगोत्रपूर्वज अंगिरा ऋषिके आश्रम पहुँचे। उन्होंने ऋषिके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम कर निवेदन किया—'आप कृपापूर्वक मुझे शाश्वत सुखदायक ज्ञान प्रदान करें।'

ऋषिवर अंगिरा पहले तो मौन थे; किंतु सुयोग्य पात्रका आग्रह भी वे टाल नहीं सके। उन्होंने मुद्गल ऋषिको ब्रह्मज्ञानका बोध कराते हुए कहा—'गणेश ब्रह्मणस्पति हैं। उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण उपासनासे तुम भी ब्रह्मस्वरूप हो जाओगे।'

दयामय ऋषिवर अंगिराने परम तपस्वी मुद्गल मुनिको भगवान् गणेशकी सुविस्तृत, मधुर, मनोहर एवं मंगलमयी लीला-कथा सुनाकर उन्हें गणेशको प्रसन्न करनेके लिये एकाक्षरमन्त्रकी दीक्षा दी और साथ ही उपासनाकी निर्विघ्न सफलताके लिये उन्होंने परम तपस्वी मुद्गल ऋषिको अपना अमोघ आशीर्वाद भी प्रदान कर दिया।

मुद्गल ऋषि शम, दम एवं तितिक्षाका दृढ़तापूर्वक पालन करते और भगवान् गणेशका ध्यान करते हुए एकाक्षरमन्त्रका जप करने लगे। बड़ा कठोर तप किया उन्होंने। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भक्तप्रिय भगवान् गजवक्त्रने मुद्गल ऋषिको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'मैं संतुष्ट हूँ। तुम इच्छित वर माँग लो।'

'आप कृपापूर्वक मुझे अपने लोकोद्धारक पद-पंकजकी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें।'

दयामूर्ति जगत्त्राता गजानन प्रभुने उन्हें अपनी भक्ति प्रदान कर दी और भक्तवर मुद्गल ऋषि उनके पादारविन्दमें तल्लीन हो गये। वे स्वानन्दसुखका आस्वादन करने लगे। अपनी उस आनन्दमग्नावस्थामें ही उन्होंने भगवान् गणेशका परमतत्त्व और रहस्य सुलझानेमें समर्थ प्रसिद्ध मुद्गलपुराणकी रचना की। —शि० दु०

~~~o~~~

गणेश-भक्त दक्ष और भीम

अत्यन्त प्राचीन कालकी बात है। कर्नाटक देशके भानु-नगरमें बल्लभ नामक एक यशस्वी नरेश रहते थे। वे धन-धान्य एवं विद्या-विनयसे सम्पन्न तो थे ही, रूपवान् एवं अद्भुत पराक्रमी भी थे। उनकी कीर्ति सुदूर देशोंतक व्याप्त थी। राजा बल्लभकी सुन्दरी सहधर्मिणीका नाम कमला था। पतिपरायणा कमला अनेक दुर्लभ गुणोंसे गौरवान्वित थी; किंतु उसे कोई संतान नहीं थी; इस कारण वह भक्तिपूर्वक देवाराधन करती रहती थी।

अधिक समय बीत जानेपर उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ; किंतु पुत्रको देखकर प्रसन्न होना तो दूर, कमला चीत्कार कर उठी। सद्यःप्रसूत शिशु मूक, अन्ध, बधिर और कुष्ठी था। उसके शरीरके अनेक स्थानोंसे रक्त बह रहा था और दुर्गन्ध निकल रही थी। कमला अत्यन्त व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगी। रुदन करते हुए वह कह रही थी, 'मुझे ऐसा पुत्र नहीं होता तो अच्छा था। मूक, अन्ध, बधिर और कुष्ठी पुत्र लेकर मैं क्या करूँगी? परमेश्वर मुझे मृत्यु ही दे देते तो यह अधिक अच्छा होता।'

प्राणप्रिया साध्वी कमलाका क्रन्दन और विलाप सुनकर उसके पति नरेश बल्लभने प्रसूति-द्वारपर
~~~

जाकर उसे आश्वस्त करते हुए प्रेमपूर्ण मधुर वाणीमें कहा—'प्रिये! तुम दुःख त्यागकर धैर्य धारण करो। कर्मोंकी गति अत्यन्त अद्भुत होती है। पूर्वजन्मके अशुभ कर्मोंसे प्राणीको दुःख भोगने पड़ते हैं। दुःखी सहसा सुखी हो जाता और सुखी व्यक्तिको दुःख और कष्टमय जीवन व्यतीत करनेके लिये विवश होना पड़ता है।* अतएव तुम चिन्ता मत करो। हम भी पुत्रके सुन्दर स्वास्थ्यके लिये मणि, मन्त्र, ओषधि, जप, तप, देवाराधन और तीर्थ-यात्रा करेंगे।'

अपने पतिके समझानेपर कमलाने स्नान किया और बुद्धिमान् नरेशने बालकके जातकर्मादि संस्कार करवाये। उन्होंने सपत्नीक ब्राह्मणोंकी भक्तिपूर्वक पूजा की और उन्हें विविध वस्त्रालंकार प्रदान किये। फिर आदरपूर्वक भोजन कराया और पुष्कल दक्षिणा प्रदान कर उन्हें संतुष्ट किया।

तदनन्तर भानु-नरेशने ब्राह्मणों, साधुओं, ज्योतिषियों एवं वेदपाठियोंको सादर आमन्त्रित किया। उनको सविधि सम्मानपूर्वक वस्त्रालंकार एवं सम्पत्ति प्रदान कर उन्होंने उनसे बालकका नामकरण-संस्कार करनेकी प्रार्थना की। दैवज्ञोंने विचारपूर्वक बल्लभपुत्रका नामकरण किया—'दक्ष'।

फिर धर्मज्ञ राजा बल्लभने दक्षके स्वास्थ्य-लाभके लिये अनेक प्रकारके अनुष्ठान और जप कराये। मन्त्रोंके प्रयोग करवाये। सर्वोत्तम उपचार किये और स्वयं अपने पुत्रकी रोग-मुक्तिके लिये उन्होंने बारह वर्षतक तपस्या की; किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। दक्ष पूर्ववत् मूक, अन्ध, बधिर और कुबड़ा तो बना ही रहा, उसके गलितकुष्ठमें तनिक भी अनुकूल परिवर्तन नहीं हुआ। उसके अङ्गोंसे रक्त बहता रहा और शरीरसे दुर्गन्ध निकलती ही रही।

दक्षके पिता भानु-नरेश दुःखी तो थे ही, वे अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने अपनी सारी मानसिक अशान्ति एवं दुःखका मुख्य हेतु अपनी सरला साध्वी पत्नी कमला और पुत्र दक्षको समझा। इस कारण उन्होंने निर्ममतापूर्वक मूकान्ध, बधिर और कुष्ठी पुत्रके साथ अपनी सहधर्मिणी कमलाको भी राज्यसे बहिष्कृत कर दिया।

राजा बल्लभकी पतिपरायणा अर्द्धाङ्गिनी कमला सर्वथा विवश, असहाय और निरुपाय थी। पतिपरित्यक्ता रानी कमला रोती हुई अपने राज्यकी सीमासे बाहर निकली। विदेशसे सर्वथा अपरिचित कमलाकी आजीविकाका कोई साधन नहीं था और उसके साथ दुर्गन्धयुक्त मूकान्ध, बधिर, कुबड़ा रुग्ण पुत्र था। वह दुःखसे अधीर और व्याकुल होकर रोती-कलपती रही। उक्त दयनीय परिस्थितिमें भी चोरोंने उसके आभूषणादि छीन लिये। अनाथ रानी अपने तथा अपने अभागे बच्चेकी उदरपूर्तिके लिये भीख माँगने लगी। राजसदनमें दासियोंसे घिरी अत्यन्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाली परम सुन्दरी सुकुमारी कमलाकी देह अत्यन्त कठिनाई और दुःखसे काली पड़ गयी। वस्त्र मैला हो गया; फट गया।

अकल्पित असह्य कष्ट और अपमान सहती हुई दरिद्रा और भिक्षुणी राजरानी कमला अपने साक्षात् पापमूर्ति पुत्रको लेकर गाँव-गाँव भीख माँगती एक शिव-मन्दिरपर पहुँची। थकी-हारी दुःखिनी साश्रुनयना कमलाने भगवान् आशुतोषके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने पुत्र दक्षका मस्तक भी अघनाशन त्रिनयन धूर्जटिके चरणोंपर रखा। तदनन्तर वह अपने मूकबधिरान्ध पुत्रको मन्दिरमें बैठाकर स्वयं समीपस्थ ग्राममें भिक्षा माँगने चली गयी।

भिक्षाटनसे लौटनेपर उसने पुत्र दक्षको खिला-पिलाकर सुला दिया और स्वयं दयानिधान देवाधिदेव महादेवजीके चरणोंमें लेटकर रोने लगी। शोकविह्वला सजलनयना पतिपरित्यक्ता भिक्षाजीविनी रानी कमलाने हाथ जोड़े अत्यन्त व्याकुलतासे प्रार्थना की—'करुणायतन! भोलेनाथ! दया कीजिये। मेरे अपराधोंको क्षमा कर दीजिये। अब मुझसे यह दुःख नहीं सहा जा रहा है।'

दक्षकी माता बल्लभ-पत्नी रानी कमला दुःखसे छटपटाती हुई कुन्देन्दु-गौर त्रिपुरारिके सम्मुख हाथ जोड़े करुण प्रार्थना करती ही रही और प्रार्थना करती हुई वह वहीं सो गयी।

दूसरे दिन कमलाने स्नानोपरान्त निखिलभयहारी शिवकी भक्तिपूर्वक पूजा कर उनके मंगलमय चरणकमलोंमें साष्टांग प्रणाम किया। तदनन्तर वह हाथ जोड़कर

* पूर्वजन्मकृतात्पापाज्जायते दुःखभाङ्नरः। दुःखवान् सुखमाप्नोति सुखवानपि तत्पुनः॥ (गणेशपुराण १।१९।४७)

करुणायतन महेश्वरका स्तवन करने लगी। दु:खातिरेकसे उसके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। उसने पुन: पापनाशक परमप्रभु शिवके चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

सर्वथा अनाथ, परमदु:खिनी, भिक्षाजीविनी कमलाने अपना भिक्षा-भाजन उठाया और अपने पुत्र दक्षका हाथ पकड़कर भिक्षा माँगने निकली। वह कुछ ही दूर गयी थी कि उसे और उसके मूकान्ध बधिर, कुष्ठी पुत्रके शरीरको श्रीगणेशजीके एक अनन्य भक्त पवित्रतम श्रेष्ठ ब्राह्मणकी शरीरवायुका स्पर्श प्राप्त हुआ।

अत्यन्त आश्चर्य! सर्वथा असम्भवको क्षणार्द्धमें सम्भव देखकर कमलाको सहसा विश्वास नहीं हुआ। किंतु सूर्य-दीप्तिकी भाँति निर्भ्रान्त सत्यको प्रत्यक्ष देखकर हर्षातिरेकसे उसका मन-मयूर नृत्य करने लगा। जैसे उसकी सारी आपदा ही दूर नहीं हुई, उसे दुर्लभतम निधि भी प्राप्त हो गयी।

उसके प्राणप्रिय पुत्र दक्षकी देह दिव्य हो गयी। उसके नेत्र प्रफुल्ल कमल-तुल्य हो गये। वह सब कुछ देखने लगा। कानोंसे सब कुछ सुनने लगा। उसका कूबड़ सर्वथा लुप्त हो गया। कुष्ठ, बहनेवाले रक्त और दुर्गन्धके स्थानपर वह परमाकर्षक सर्वांग सुन्दर राजकुमार हो गया। उसकी वाणी मुखरित हो गयी। उसने अपनी परम तपस्विनी माता कमलाके चरणोंपर मस्तक रख दिया और फिर हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे श्रद्धापूरित मधुरतम वाणीमें कहा—'माँ'।*

कमलाने अपने प्राणप्रिय परम सुन्दर कुमार दक्षको हृदयसे लगा लिया। हर्षातिरेकसे उसके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। दक्षने अत्यन्त विनम्र वाणीमें कहा—'माँ! तेरी कठोरतम तपश्चर्या पूर्ण हो गयी। अब मैं तेरी सेवा करूँगा।'

हर्षसे पुलकित कमला अत्यन्त चकित थी। वह अचिन्त्य महिमामय, सर्वान्तर्यामी प्रभुकी कृपाका अद्‌भुत चमत्कार देखकर कहने लगी—'मेरा प्राणप्रिय दक्ष मणि, मन्त्र, ओषधि एवं होम आदिसे अच्छा नहीं हुआ; कठोर तपसे भी यह स्वास्थ्य-लाभ नहीं कर सका; किंतु भक्तिपूर्वक श्रीगणेश-नामके जापक श्रेष्ठ ब्राह्मणकी देहवायुके स्पर्शसे यह नीरोग ही नहीं, परम सुन्दर और परमाकर्षक हो गया। मेरे समस्त पाप-ताप सर्वथा शान्त हो गये। मुझे अधम नारकीय जीवनसे उबारनेवाले वे ब्राह्मणदेव सहसा कहाँ चले गये? मुझे उनका दर्शन कहाँ प्राप्त होगा?'

फिर राजकुमार दक्षकी जननीने दृढ़ताके साथ कहा—'वे दयामूर्ति ब्राह्मणदेव जहाँ कहीं होंगे, मैं उन्हें अवश्य खोजूँगी। अब अपना जीवन सफल बनानेके लिये उनका मंगलदर्शन ही मेरा एकमात्र उद्देश्य होगा। इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिये मैं अपना और अपने पुत्रका जीवन होम दूँगी।'

विघ्नहारी प्रभुके अनन्यभक्त द्विजवरके शरीरकी वायुका स्पर्श क्या हुआ, दु:खिनी कमला और उसके पुत्रकी अपरिसीम विपत्ति और पीड़ा दूर हो गयी; उनके जीवनका स्वर्णिम प्रभात प्रकाशित हो उठा। अब कमला भिक्षा माँगने निकली तो सर्वत्र उसका सम्मान और सत्कार होने लगा। कुलीन धनिक उन्हें अपने यहाँ आदरपूर्वक आमन्त्रित करने लगे। वे उन्हें मूल्यवान् नवीनतम वस्त्र और अलंकार प्रदान कर विविध प्रकारके व्यंजन परसने लगे। सभी सम्पन्न पुरुषोंकी आकांक्षा होती कि यह आदर्श देवी और तेजस्वी कुमार हमारे यहाँ पधारें। धनहीन स्त्री-पुरुष अपनी मधुर वाणी और फल-मूलसे ही उनकी सेवा करना चाहते। इस प्रकार प्रतिदिन सर्वत्र उनकी अभ्यर्थना होती, किंतु कमलाका ध्यान उपलब्ध सुख-सुविधाओंकी ओर रंचमात्र भी नहीं जाता। वह तो उस महिमामय गणपतिके अनुपम भक्त ब्राह्मणके दर्शनके लिये उत्सुक और आतुर थी, जिनकी पावनतम अंगवायुके स्पर्शसे उसे सर्वथा अकल्पित दुर्लभ निधि प्राप्त हो गयी थी तथा उसके समस्त रोग और शोकका निवारण हो गया था।

एक दिनकी बात है। दक्षने अपनी माता कमलाके पास जाकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—'माँ! आज मुझे उक्त श्रेष्ठ ब्राह्मणके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हो गया।'

हर्षातिरेकसे अधीर होकर कमलाने पूछा—'अरे!

* सिन्धु-देशान्तर्गत पल्ली-नगरनिवासी शापग्रस्त धनिक कल्याणका वृत्तान्त इसी अंकमें प्रकाशित 'श्रीविनायक-भक्त बल्लाल' शीर्षक भक्त-गाथामें देखिये। —लेखक

कब? कहाँ? और क्या आज्ञा दी उन्होंने?'

आनन्दविह्वल कुमार दक्षने उत्तर दिया—'आज अभी कुछ ही पहले नगरके एक महानुभावने मेरा परिचय पूछा। मैंने उन्हें अपने जन्मसे लेकर अबतककी अपनी और तुम्हारी सारी घटना सुना दी। मुझे पहले पता ही नहीं था कि हमें नवजीवनप्रदाता वे ही परम पावन ब्राह्मण देवता हैं। उन्होंने दयापूर्वक हमें आदिदेव करुणाब्धि विनायकका अष्टाक्षरमन्त्र प्रदान कर उनकी उपासना करनेकी आज्ञा दी है।'

कमलाकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसे जैसे जीवनकी बहुमूल्य निधि प्राप्त हो गयी। वह अपने पुत्र कुमार दक्षके साथ एक अँगूठेपर खड़े होकर श्रीगणेशजीका ध्यान करते हुए उनके अष्टाक्षरमन्त्रका जप करने लगी। श्रद्धा-भक्तिकी युगलमूर्ति पुत्रसहित माँ निराहार रहकर जप कर रही थी। उनकी सर्वसुखप्रदाता श्रीगणेशजीके पादपद्मोंमें अद्भुत निष्ठा और अनुपम प्रीति थी। माता और पुत्रका सुन्दर शरीर परमप्रभु गजाननके ध्यानमें तल्लीन होकर जप करते हुए अत्यन्त क्षीण हो गया। उनकी दृढ़ श्रद्धा-भक्ति एवं नैष्ठिक जपाराधनसे दयासागर परम तेजस्वी गजमुख उनके सम्मुख प्रकट हो गये।

उन प्रभुके चार भुजाएँ थीं। उनका शरीर विशाल था। वे भगवान् गजमुख अत्यन्त सुन्दर थे। अनेकों सूर्योंके समान तेजस्वी थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानो निशाके अन्तमें सूर्योदय हो गया हो। उनका मस्तक रत्न, सुवर्ण और मुक्ताजटित मुकुटसे मण्डित था। शरीरपर रेशमी पीताम्बर शोभा दे रहा था। वे सोनेके बने हुए बाजूबंदसे विभूषित थे। उनके समीप महान् सिंहासन था, जिसपर वे एक घुटना मोड़कर बैठे थे। सोनेकी करधनी, रत्नजटित अँगूठी उनकी शोभा बढ़ा रही थी। वे अपने उदरपर विशाल सर्प धारण किये हुए थे। उनका आधा शरीर (मुखभाग) हाथीका था और वे एक दाँतसे सुशोभित थे।*

मंगलभवन गजवक्त्रके इस अनिर्वचनीय सुन्दर स्वरूपका कमला और दक्ष अतृप्त नेत्रोंसे दर्शन कर ही रहे थे कि भगवान् गणेश उन्हें उक्त पवित्रतम श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें दीखने लगे। मंगल-मोद-प्रदाता प्रभु गजाननने ब्राह्मणवेषमें कहा—'मैं तुम्हारी श्रद्धा और भक्तिसे प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।'

समस्त पापनाशन एकदन्त प्रभुको ब्राह्मणवेषमें प्रसन्न देखकर कमला और उसका पुत्र उनके भुवनपावन चरण-कमलोंमें लेट गये। फिर कृतार्थ दक्ष उन त्रैलोक्यत्राताकी बद्धांजलि स्तुति करने लगा—

पूर्वजन्मकृतं पुण्यं फलितं मे द्विजोत्तम।
यन्मयाऽदर्शि रूपं ते द्विविधं परमं महत्॥
वैनायकं च वैप्रं च जन्म मेऽजनि सार्थकम्।
कारणानां परं त्वं च कारणं छन्दसामपि॥
परं ज्ञेयं परं ब्रह्म श्रुतिमृग्यं सनातनम्।
त्वमेव साक्षी सर्वस्य सर्वस्यान्तर्बहिस्तथा॥
त्वमेव कर्ता कार्याणां लघुस्थूलशरीरिणाम्।
नानारूप्येकरूपी त्वं नीरूपश्च निराकृतिः॥
त्वमेव शङ्करो विष्णुस्त्वमेवेन्द्रोऽनलोऽर्यमा।
भूवायुखस्वरूपोऽपि जलसोमर्क्षरूपवान्॥
विश्वकर्ता विश्वपाता विश्वसंहारकारकः।
चराचरगुरोर्गोप्ता ज्ञानविज्ञानवानपि॥
भूतं भावि भवच्चैव त्वमेवेन्द्रियदेवताः।
कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च श्रीर्धृतिः कान्तिरेव च॥
त्वमेव सांख्ययोगश्च शास्त्राणि श्रुतिरेव च।
पुराणानि चतुःषष्टिकला उपनिषत्तथा॥
त्वमेव ब्राह्मणो वैश्यः क्षत्रियः शूद्र एव च।
देशो विदेशस्त्वं क्षेत्रं पुण्यक्षेत्राणि यान्युत॥
त्वं प्रमेयोऽप्रमेयश्च योगिनां ज्ञानगोचरः।
त्वमेव स्वर्गः पातालं वनान्युपवनानि च॥
ओषध्योऽथ लतावृक्षकन्दमूलफलानि च।
अण्डजा जारजा जीवाः स्वेदजा उद्भिजा अपि॥
कामः क्रोधः क्षुधा लोभो दम्भो दर्पो दया क्षमा।
निद्रा तन्द्री विलासश्च हर्षः शोकस्त्वमेव च॥

(गणेशपुराण १।२०।३७—४८)

* चतुर्भुजो महाकायो वारणास्योऽतिसुन्दरः। अनेकसूर्यसंकाशो निशि सूर्य इवोदितः॥
रत्नकाञ्चनमुक्तावन्मुकुटभ्राजिमस्तकः। पीतकौशेयवसनो हाटकाङ्गदभूषणः॥
एकजानुनिपातेन संनिविष्टो महासने। कटिसूत्रं काञ्चनीयं मुद्रिकां रत्नसंयुताम्॥
महाहिं जठरे बिभ्रदेकदन्तं गजार्धकम्। (गणेशपुराण १।२०।३१—३४)

'द्विजश्रेष्ठ! आज मेरे पूर्वजन्मका किया हुआ पुण्य फलित हो गया; क्योंकि आज मुझे आपके परम महान् विनायक तथा विप्र द्विविध रूपका दर्शन प्राप्त हुआ। इससे मेरा जन्म सफल हो गया। आप समस्त कारणोंमें परम कारण हैं। वेदोंके प्राकट्यमें भी आप ही हेतु हैं। आप ही सर्वोत्तम ज्ञेयस्वरूप सनातन परब्रह्म हैं, जिसे श्रुतियाँ भी ढूँढ़ती रहती हैं। आप ही सबके साक्षी और अखिल जीव-जगत्के बाहर तथा भीतर विराजमान हैं। लघु तथा स्थूल शरीरवाले जितने भी उत्पन्न प्राणी हैं, उन सबके कर्ता आप ही हैं। आप नाना रूपवाले होकर भी एकरूपी हैं। आप रूप तथा आकारसे रहित हैं। आप ही शिव और विष्णु हैं। आप ही इन्द्र, अग्नि और अर्यमा हैं। पृथ्वी, वायु और आकाश भी आपके ही रूप हैं। जल, सोम तथा नक्षत्ररूप भी आप ही हैं। आप ही जगत्के स्रष्टा, पालक और संहारक हैं। चराचर गुरु ब्रह्माके रक्षक भी आप ही हैं। आप ज्ञानवान् तथा विज्ञानवान् हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ आप ही हैं। आप ही सम्पूर्ण इन्द्रियोंके देवता हैं। कला, काष्ठा, मुहूर्त, श्री, धृति और कान्ति आप ही हैं। आप ही सांख्य, योग, शास्त्र, श्रुति, पुराण, चौंसठ कलाएँ और उपनिषद् हैं। आप ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। देश, विदेश, क्षेत्र और पुण्यक्षेत्र जितने हैं, वे सब आप ही हैं। आप ही प्रमेय और अप्रमेय तत्त्व हैं। आप केवल योगीजनोंके ज्ञानके विषय होते हैं। आप ही स्वर्ग, पाताल, वन, उपवन, ओषधियाँ, लताएँ, वृक्ष, कन्द, मूल और फल हैं। अण्डज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके प्राणी भी आप ही हैं। काम, क्रोध, क्षुधा, लोभ, दम्भ, दर्प, दया, क्षमा, निद्रा, तन्द्रा, विलास, हर्ष और शोक आप ही हैं।'

देवदेव विनायकने दक्षके स्तवनसे संतुष्ट होकर मेघ-गम्भीर स्वरमें मुसकराते हुए कहा—'महाभाग! मैं तुमलोगोंकी भक्ति और स्तवनसे पूर्ण प्रसन्न हूँ; किंतु जिसकी अंग-वायुसे तुम्हारा शरीर दिव्य हो गया, तुम्हें वाणी, श्रवण-शक्ति एवं नेत्र प्राप्त हुए, वही मेरा अन्यतम प्रीति-भाजन श्रेष्ठ ब्राह्मण तुम्हारी समस्त इच्छाओंकी पूर्ति करेगा। वह ध्यान करते ही तुमको दर्शन देगा।'

परमप्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये। कमला अवसन्न रह गयी और दक्ष व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगा। पूर्वजन्मके कितने महान् पुण्य और तपसे सर्वलोकमहेश्वर विनायकने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और तुरंत अलक्षित हो गये। लुटे वणिक्की भाँति दक्ष रोते हुए धरतीपर लोटने लगा। वह छटपटाता हुआ कह रहा था—'प्रभो विनायक! आप हमें छोड़कर कहाँ चले गये? दयाधाम! आप कहाँ मिलेंगे? प्राणनाथ! आप कहाँ मिलेंगे?'

गणेश-भक्त दक्षकी बड़ी विचित्र दशा हो गयी। उसे अन्न, जल, वस्त्र—यहाँतक कि अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही। वह अपने प्राणसर्वस्व विनायकदेवके वियोगमें छटपटाता हुआ पागलोंकी भाँति इधर-उधर दौड़ने लगा। वह पथिकोंसे ही नहीं, वृक्षों, लताओं और वल्लरियोंसे आतुरतापूर्वक एक ही प्रश्न करता—'देवदेव विनायक कहाँ गये? आपने मेरे जीवनधन विनायकको इधर देखा है? आपलोग बोलते क्यों नहीं? सब-के सब मौन क्यों हैं? कृपया मुझे विनायकदेवका पता बता दीजिये।'

दक्ष विनायक-वियोगकी असह्य ज्वालासे झुलस रहा था। वह उन्मत्त-तुल्य प्रलाप करता हुआ धरतीपर गिरकर मूर्च्छित हो गया। उक्त अचेतन स्थितिमें उसे पुनः उसी ब्राह्मणके दर्शन हुए। उन्होंने दक्षसे कहा—'कुमार! मैं मुद्गल ब्राह्मण हूँ। श्रीगणेशजीके प्रकट होनेपर उनसे तुमने जो कुछ माँगा था, वह सब मैं तुम्हें देता हूँ। तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।'

दक्षके नेत्र खुले। अब वह पूर्ण स्वस्थचित्त था, शान्त था। उसने अनुभव किया, 'जैसे मैं अभी सोकर जगा हूँ।' वह अत्यन्त प्रसन्न था। उसने तुरंत जाते हुए एक ब्राह्मणसे पूछा—'आपने गजमुखभक्त मुद्गलमुनिका आश्रम देखा है?'

ब्राह्मणने उत्तर दिया—'प्रख्यात महामुनि मुद्गलका पावनतम आश्रम तो अत्यन्त समीप है।' ब्राह्मणने आश्रमका मार्ग बतला दिया।

दक्ष सर्वाभयप्रद मुद्गलमुनिका ध्यान करता हुआ उनके आश्रमके द्वारपर पहुँचा। आश्रम अत्यन्त दिव्य और नन्दनवनकी भाँति अतिशय सुन्दर तथा सुखद था। वहाँ दक्षने वेद-वेदांगतत्त्वज्ञ एवं सर्वशास्त्रविशारद

सूर्यदीप्ति-तुल्य परम तेजस्वी महामुनि मुद्गलको शिष्योंसे सुशोभित देखा।

महर्षि मुद्गलके सम्मुख चतुर्भुज, त्रिनयन, महाप्रभु विनायकको रत्नकांचननिर्मित, नानालंकारशोभित, परम सुन्दर महनीय मूर्ति थी और वे विधिपूर्वक षोडशोपचारसे उसकी पूजा कर रहे थे।

श्रीगणेशजीके परम प्रेमी महामुनिका दुर्लभ दर्शन प्राप्त होते ही दक्षने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। हर्षातिरेकसे उसके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। मुनिवर मुद्गलने दक्षसे पूछा—'तुम कौन हो? यहाँ किस अभिप्रायसे आये हो? और तुम्हें क्या दुःख है? मुझसे स्पष्ट कहो।'

परमर्षि मुद्गलके वचन सुन कमलानन्दन दक्षने सावधान होकर अत्यन्त श्रद्धाके स्वरमें निवेदन किया— "दयामय! मैं कर्नाटकदेशस्थ भानुनगरके परम पराक्रमी क्षत्रियनरेश बल्लभकी साध्वी पत्नी कमलाका पुत्र हूँ। मैं जन्मकालसे ही मूकान्धबधिर, कुबड़ा और कुष्ठी था। मेरे शरीरके क्षतोंसे रक्त बहता और दुर्गन्ध निकलती रहती थी। मन्त्रौषधियाँ निष्फल हुईं। मेरे पिताके द्वादशवर्षीय तपका भी कोई परिणाम नहीं निकला, तब उन्होंने कुपित होकर मेरे साथ मेरी माताको भी राज्यसे निकाल दिया। मेरी माता कमला भिक्षाटनपर जीवननिर्वाह करती हुई अत्यन्त दुःख पा रही थी।

'भिक्षा माँगती हुई मेरी माँ कौण्डिन्यनगर पहुँची। वहाँ अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी। एक दिन आपकी शरीरवायुके स्पर्शसे हमारा सारा कष्ट जाता रहा। मैं पूर्ण स्वस्थ और सुन्दर हो गया। माँका सर्वत्र सम्मान होने लगा। तब हमलोगोंने आपका दर्शन प्राप्त करनेकी कठोर प्रतिज्ञा की और सर्वत्र आपको ढूँढ़नेमें लग गये।'

भानु-नरेश बल्लभपुत्र दक्ष अत्यन्त विनयपूर्वक आत्मकथा निवेदित कर रहा था—"आपने पुनः कृपा की। आपके आदेशसे हम दोनों निराहार रहकर देवदेव विनायकका जपाराधन करने लगे। क्षिप्रप्रसादन दयामय प्रभु हमारे सम्मुख प्रकट हो गये। देव, ऋषि, गन्धर्व और किंनरोंसे सेवित उन भक्तिप्रिय परशु-कमल-माला-मण्डित और मोदकधारी चतुर्भुज, त्रिनयन, सर्पयज्ञोपवीतधारी, दिव्य वस्त्रालंकारभूषित, परम तेजस्वी प्रभु गजमुखके दर्शन कर हम निहाल हो गये; किंतु कुछ ही क्षणोंमें उन्होंने अपना मंगल-निकेतन गजवक्त्ररूप समेटकर आपके मंगलमय पावन स्वरूपमें दर्शन दिया। मैं हर्ष-गद्‌गद कण्ठसे उन अनिर्वचनीय प्रभुका स्तवन करने लगा। संतुष्ट होकर प्राणेश्वर गणेशजीने आपके स्वरूपमें कहा—'मैं तुम दोनोंकी निष्ठा और तपसे पूर्ण प्रसन्न हूँ; किंतु तुम्हारे समस्त मनोरथ मुद्गल ब्राह्मण पूर्ण करेगा।'

"मेरे जीवनसर्वस्व अन्तर्धान हो गये और मैं मणिहीन फणिकी भाँति छटपटाता हुआ मूर्च्छित हो गया। मेरी अचेतावस्थामें पुनः दयाधाम गणेशजीने आपके ही स्वरूपमें मुझे दर्शन दिया और अत्यन्त प्रीतिपूर्वक कहा—'वर माँगो।'

"मैंने परम प्रभुसे याचना की—'मुझे आपके मंगलमय चरणकमलोंकी सुदृढ़ भक्ति और सुस्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति हो।' और मुझे वह वर प्राप्त हो गया। तदनन्तर आपके अनुग्रहसे मुझे आपके आश्रमका भी पता लग गया और अब भगवान् श्रीगणेशजीकी कृपासे आप मेरे नेत्रोंके सम्मुख हैं। निश्चय ही अब मैं पूर्णतया प्रसन्न हूँ। अब मुझे कोई भी प्राप्य शेष नहीं रह जायगा।" इतना कहकर दक्षने पुनः महर्षि मुद्गलके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया।

'कमलानन्दन! तुम बड़े भाग्यवान् हो।' महामुनि मुद्गलके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे भर गये थे। उन्होंने त्रैलोक्यपावन मंगलमूर्ति गणपतिका ध्यान करते हुए दक्षसे अत्यन्त स्नेहसिक्त स्वरमें कहा—'बल्लभात्मज! तुम अद्‌भुत भक्त हो। तुम्हारी महिमाका वर्णन सम्भव नहीं। मैं सहस्र वर्षोंसे कठोर तप कर रहा हूँ, किंतु इस प्रकार विश्वत्राता गजमुखका मुझे कभी दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी तथा चराचर प्राणिसमुदायके गुरुके भी गुरु हैं; जो रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण—इन तीनोंके नियन्ता और सदा समस्त गुणोंके आश्रय हैं; ब्रह्मा, शिव और विष्णु—इन सबके शरीरोंका जो निर्माण करते हैं; इसी प्रकार जो भूत-प्राणियोंके, विभूतियोंके, तन्मात्राओंके, इन्द्रियोंके और बुद्धिके भी कर्ता हैं; जिन्हें देवता, वेद तथा ऋषि भी यथार्थरूपसे नहीं जान पाते, ऐसे गजाननदेवका तुमने प्रत्यक्ष एवं

स्पष्ट दर्शन किया है।* अतः मैं तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार करता हूँ; क्योंकि तुम मेरे स्वामीके परम भक्त हो।'

महर्षि मुद्गल भक्तवर दक्षके चरणोंमें प्रणाम करने लगे और दक्ष महामुनि मुद्गलके चरणोंमें गिर पड़ा। प्राणप्रिय बन्धु, अनन्य प्रेमी, अभिन्न प्राण और अभिन्न हृदयकी भाँति महामुनि मुद्गल और दक्ष परस्पर आलिंगनबद्ध हो गये। युगल भक्तमूर्तियोंके नेत्र प्रेमाश्रुसे भर गये थे। वे कुछ देरतक इसी स्थितिमें रहे। फिर तो दोनों जैसे दो देह और एक प्राण हो गये। दोनों विघ्नेश्वर विनायकके एकाक्षरमन्त्रका जप करने लगे।

फिर परम तपस्वी विप्रवर मुद्गलने भी अपने प्रिय दक्षको श्रीगणेशजीके एकाक्षरमन्त्रका उपदेश करते हुए कहा—'तुम इस मन्त्रका प्रतिदिन अनुष्ठान करते ही रहना। इससे करुणावरुणालय गजवक्त्र तुमपर सदा प्रसन्न रहेंगे और तुम्हारा मनोवाञ्छित पूर्ण करेंगे। इससे तुम राज्य, सुख, सम्पत्ति और सुयश आदि सब कुछ प्राप्त कर लोगे। इतना ही नहीं, इन्द्रादि लोकपाल भी तुम्हारे वशमें हो जायँगे। तुम जीवनमें समस्त भोगोंका उपभोग करोगे और जीवनान्तमें मोक्ष तुम्हारे करतलगत रहेगा।'

भक्तवर दक्ष अपनी माता कमलाके साथ कुछ समयतक परमर्षि मुद्गल ऋषिके आश्रममें रहा और फिर उनकी अनुमति प्राप्त कर कौण्डिन्यनगरके समीपस्थ सुरम्य अरण्यमें चला गया। वहाँ विविध प्रकारके पुष्पों और मधुर फलोंके वृक्ष थे। मृगादि पशु एवं पक्षी वहाँ निर्भय विचरण किया करते थे। उक्त वनमें स्वच्छ जलपूरित अत्यन्त रमणीय एक सरोवर था और सरोवरके तटपर एक गणेश-मन्दिर स्थित था। मन्दिर तो जीर्ण हो गया था, किंतु गणेशजीकी मूर्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मनोमोहक थी।

क्षत्रिय-पुत्र दक्ष अपनी माताके साथ वहीं रहने लगा। वह वहाँ स्नानादिसे निवृत्त होकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सिन्दूरारुण लम्बोदरकी सविधि पूजा करता। फिर उसने भगवान् गणेशकी प्रीतिके लिये महामुनि मुद्गलप्रदत्त एकाक्षरमन्त्रका जपानुष्ठान प्रारम्भ किया। वह मंगल-मोद-निधान गजमुखकी षोडशोपचारसे पूजा कर दिनभर मन्त्र-जप करता रहता। इस प्रकार वह बारह वर्षतक जप करता ही रहा।

एक दिन प्रतिदिनकी भाँति रात्रिमें दक्षने अपने आराध्यकी पूजा-प्रार्थना की और उनका ध्यान करते हुए शयन किया। रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें उसने एक मदमत्त हाथीको देखा। हाथीके समस्त अंग सिन्दूरसे लाल थे। उसके गण्डस्थलसे मदका स्राव हो रहा था। उसके दाँत बड़े सुन्दर थे। भ्रमर उसके चारों ओर मँडरा रहे थे। सुन्दर गजको देखकर दक्षको लगा, जैसे यह मेरे जीवनधन दूसरे गणेशजी हैं। उसने उक्त गजके कण्ठमें रत्नोंकी माला पहनायी और गजने उसे उठाकर अपने कंधेपर बैठा लिया। तदनन्तर वह हाथी ध्वजा और पताकाओंसे सुशोभित नगरमें प्रविष्ट हुआ। उसी समय दक्षकी निद्रा भंग हो गयी।

कमलानन्दनने तुरंत अपनी माताको स्वप्न सुनाकर उसका फल पूछा। कमलाने प्रसन्नमनसे उत्तर दिया—'बेटा! तुम धन्य हो। तुमने स्वप्नमें गजरूपी विनायकका दर्शन किया है और उनके कंधेपर चढ़नेका फल निश्चय ही राज्य-प्राप्ति है।'

दक्षने तुरंत कहा—'माँ! यदि मुझे राज्य प्राप्त हुआ तो मैं तुमको बहुमूल्य पालकीपर बैठाकर हीरे-मोतीके आभूषण पहनाऊँगा। स्वस्थ सवत्सा गौ एवं सुवर्णादिका दान तो करूँगा ही, व्रतादिके साथ धर्ममय जीवन व्यतीत करूँगा और सर्वोपरि अपने प्राणधन देवदेव विनायककी पूजा-आराधनामें सर्वस्व समर्पित कर दूँगा।'

अपने पुत्रके वचन सुन प्रसन्नतापूर्वक कमलाने कहा—'बेटा! तू राजसिंहासनपर आसीन होगा तो मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होगी। तू चिरायु हो। तेरी धर्ममें मति

* तपामि सुदृढं चाहं दशवर्षशतं तपः। न मे एतादृशो देवो दृष्ट आसीत् कदाचन॥
यः सर्वजगतां नाथश्चराचरगुरोर्गुरुः। यो रजःसत्त्वतमसां नेता नित्यं गुणाश्रयः॥
यो ब्रह्मशिवविष्णूनां शरीराणि करोति हि। भूतानां च विभूतीनां मात्रेन्द्रियधियामपि॥
यं न देवा विदुः सम्यङ् न वेदा नर्षयोऽपि च। एनं गजाननं त्वं हि प्रत्यक्षं दृष्टवान् स्फुटम्॥
(गणेशपुराण १।२१।४३—४६)

हो और तू देवता और ब्राह्मणोंकी सेवामें ही अपना जीवन व्यतीत करता रहे।'

उसी समय कौण्डिन्यनगरके परम धर्मात्मा एवं बुद्धिमान् प्रजापालक नरेशका शरीरान्त हो गया। राजाकी पत्नी सुलभा, उसके अमात्यद्वय—सुमन्त और मनोरंजन तथा समस्त प्रजा इससे अत्यन्त दुःखी थी। और्ध्वदैहिक क्रियाके अनन्तर अत्यधिक चिन्ताकी बात यह थी कि राजाके कोई पुत्र न होनेके कारण राज्यका (शासन करनेवाला) उत्तराधिकारी किसे नियुक्त किया जाय?

महारानी और अमात्यद्वय परस्पर यही मन्त्रणा कर रहे थे कि उसी समय महामुनि मुद्गल वहाँ पहुँच गये। मन्त्रियोंने महर्षिके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें श्रेष्ठ आसन दिया और फिर उन लोगोंने मुनिवर मुद्गलसे राज्यके उत्तराधिकारीके सम्बन्धमें अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा।

महामुनिने परामर्श दिया—'स्वर्गीय नरपाल चन्द्रसेनके प्रसिद्ध गज गहनकी सूँड़में कमलोंकी माला दे दो। हाथी जिस पुरुषको वह माला पहना दे, वही कौण्डिन्यनगरका श्रेष्ठ नरेश हो सकेगा।'

महारानी और अमात्योंने महामुनिका आदेश स्वीकार कर लिया। फिर शुभ ग्रह, शुभ योग और शुभ नक्षत्रयुक्त शुभ वारको नगर-निवासियोंकी उपस्थितिमें चन्द्रसेन-पत्नी रानी सुलभाने आभूषणोंसे सजे उक्त दन्तीकी सूँड़में माला रखकर उससे प्रार्थना की—'तुम अपने भूतपूर्व राजाके स्थानपर योग्यतम नरेशका चयन करो। तुम जिस पुरुषके कण्ठमें यह माला डाल दोगे, वही इस नगरका और तुम्हारा स्वामी हो जायगा।'

उक्त गहन नामक गजराजने अपनी सूँड़ ऊपर उठा ली। ब्राह्मण उसके पीछे आशीर्वचन बोलते हुए चल रहे थे। वन्दीजन विरुदावलि गा रहे थे और अन्य जन जय-जयकार कर रहे थे। हाथी धीरे-धीरे चला। नगरमें पंक्तिबद्ध पुरुष खड़े थे। राज्य-लोभसे माताएँ अपने सजाये बच्चोंको हाथीके आगे कर देती थीं, किंतु जब गहन आगे बढ़ जाता तब वे निराश हो जातीं। राज्यकी कामनासे कितने ही नरपति, योद्धा और सम्मानित व्यक्ति खड़े थे, किंतु हाथी सबको देखता और सूँघता हुआ नगरके बाहर निकल गया। निराश जनसमुदाय अपने-अपने घर लौट गया; किंतु ब्राह्मण, वन्दी और कुछ व्यक्ति उसके पीछे-पीछे जय-जयकार करते चले जा रहे थे।

हाथी धीरे-धीरे वहाँ पहुँचा, जहाँ महिमामयी माता कमलाका अनन्य गणेश-भक्त पुत्र दक्ष देवदेव विनायककी पूजा कर उनके ध्यान एवं मन्त्र-जपमें तल्लीन था। सबके सम्मुख हाथीने उक्त बल्लभनन्दन दक्षके कण्ठमें माला डाल दी। उपस्थित ब्राह्मण मंगल-पाठ और वन्दीजन यशोगान करने लगे तथा जन-समुदायके जय-जयकारके उच्च स्वरसे सम्पूर्ण वनप्रान्त ध्वनित हो उठा।

फिर तो अत्यन्त आदरपूर्वक कमलानन्दन दक्षको राजोचित नवीनतम वस्त्रालंकारोंसे विभूषित किया गया। ध्वजा-पताका एवं तोरणोंसे सजे नगरमें गजारूढ़ दक्ष प्रविष्ट हुआ। उस समय अनेक प्रकारके वाद्य बज रहे थे। मंगल-गीत गाये जा रहे थे और जय-जयकारके साथ उसपर पुष्पवृष्टि होती जा रही थी।

श्रीगणेशजीका अनन्य भक्त और महर्षि मुद्गलका अन्यतम प्रीति-भाजन दक्ष राज्यके सिंहासनपर आसीन हुआ। उसने अपनी पूजनीया जननी कमलाको वस्त्रालंकार आदिसे पूर्ण संतुष्ट कर अमात्योंसहित अन्य सबको सम्मानित एवं पुरस्कृत किया। ब्राह्मणोंकी पूजा कर उन्हें सवत्सा गायें प्रदान कीं तथा विविध प्रकारके दान देकर उनका शुभाशीर्वाद प्राप्त किया।

कौण्डिन्यनरेश दक्ष अनेक नृपतियों, अमात्यों एवं सम्मानित पुरुषोंके साथ राजसिंहासनपर बैठे हुए थे। उन्होंने राजसभामें महर्षि मुद्गलको प्रवेश करते देखा ही था कि तुरंत सिंहासनसे उतरकर द्रुतगतिसे उनके समीप पहुँचे और उन परमर्षिके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम करने लगे। महर्षिने उन्हें उठा लिया।

दक्षने अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें अपने सिंहासनपर बैठाया और उनके संकेत करनेपर दूसरे आसनके समीप बद्धांजलि खड़े होकर उन्होंने अत्यन्त विनीत वाणीमें कहा—'सर्वसमर्थ दयामय प्रभो! मुझ मूकान्धबधिर, कुबड़े-कुष्ठीकी वर्तमान स्थिति आपकी ही कृपाका प्रसाद है। आप मेरी दृष्टिमें साक्षात् देवदेव विनायक ही हैं। आप कृपापूर्वक मेरे मस्तकपर अपना वरद कर-कमल रख दें, जिससे मैं दीर्घकालतक सर्वकाम-भाजन बना रहूँ।'

महामुनि मुद्गलने संतुष्ट होकर कौण्डिन्यनरेश दक्षको आशीर्वाद प्रदान किया—

न ते भयं रिपुकृतं भविष्यति कदाचन।
यं यं कामयसे कामं सर्वतस्ते भविष्यति॥

(गणेशपुराण १। २६। २१)

'तुम्हें शत्रुसे कभी भय नहीं होगा और तुम जो-जो इच्छा करोगे, वह सब पूरी होगी।'

राजा दक्षने महर्षि मुद्गलको अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक ग्राम, वस्त्र, धन और रत्नादि भेंटस्वरूप प्रदान किये। उन्होंने महर्षिके पधारनेपर ब्राह्मणोंको फिर स्वस्थ सवत्सा गायें और वस्त्रादि प्रदान किये। प्रसन्न ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने घर गये। दक्षने अमात्यों तथा अन्य लोगोंको भी ग्राम, वस्त्र और आभूषणादि देकर पूर्ण संतुष्ट कर दिया।

कौण्डिन्यनगरमें एक छोटा-सा गणेश-मन्दिर था। राजा दक्षने उसे अत्यन्त विशाल और भव्य बनवाया। वहाँ प्रत्येक समय विधिपूर्वक पूजा, पाठ एवं जपादिकी समुचित व्यवस्था की गयी। राजा स्वयं अपनी माताके साथ उस मन्दिरमें दर्शन करने जाते।

स्वप्नमें भगवान् गणेशके आदेशसे बल्लभ नामक नरेश अपनी परम रूप-लावण्य-सम्पन्ना वीरसेना-नामकी प्रसिद्ध पुत्रीके साथ कौण्डिन्यनगरमें पहुँचे और उन्होंने अपनी परम गुणवती और शीलवती कन्या वीरसेनाका विवाह दक्षके साथ कर दिया।

कमलानन्दन दक्ष धर्मपूर्ण शासन करते हुए जीवनान्त श्रीगणेशोपासनामें संलग्न थे। महामुनि मुद्गलके वे अत्यन्त कृतज्ञ थे। देवदेव विनायककी कृपासे उन्होंने पृथ्वीपर समस्त भोगोंका निर्विघ्न उपभोग किया और अन्ततः भगवान् गजवक्त्रके वर-प्रभावसे वे आवागमनसे सदाके लिये मुक्त होकर अखण्ड सुख-शान्तिमें निमज्जित हो गये।

दक्षके यशस्वी पुत्रका नाम बृहद्भानु था। बृहद्भानुके खड्गधर नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ और उसके पुत्रका नाम सुलभ था। सुलभकी साध्वी पत्नीने पद्माकर नामक पराक्रमी पुत्रको जन्म दिया। पद्माकरका शरीरान्त होनेपर उसका पुत्र वपुर्दीप्त राज्यका अधिकारी हुआ। वपुर्दीप्तके पुत्रका नाम चित्रसेन था। दक्षके वंशज ये सभी नरेश पराक्रमी, न्यायप्रिय एवं धर्मपरायण थे।

राजा चित्रसेनके वीर पुत्रका नाम भीम था। कौण्डिन्यनरेश भीम परम पराक्रमी एवं दानी थे। उनकी भाग्यशालिनी साध्वी पत्नीका नाम चारुहासिनी था। संतानरहित होनेके कारण चारुहासिनी अत्यन्त दुःखी थी। सहधर्मिणीके दुःखका अनुभव कर राजा भीम भी चिन्तित हो जाया करते।

एक दिन कौण्डिन्यनरेश भीम अपने राज्यका दायित्व अमात्योंको सौंपकर अपनी पत्नी चारुहासिनीके साथ वनमें चले गये। सौभाग्यवश वे श्रेष्ठ मुनि विश्वामित्रके समीप पहुँचे। राजाने महामुनिके चरणोंमें प्रणाम निवेदन कर अपनी पुत्रविषयक कामना व्यक्त की।

मुनिवर विश्वामित्रने प्रजापालक भीमसे कहा— 'पूर्वजन्ममें तुम धन-सम्पन्न व्यक्ति थे। तुम्हारे पूर्वज श्रीगणेशजीके भक्त थे। वे सदा श्रद्धा और भक्तिपूर्वक गणेशजीकी आराधना किया करते थे; किंतु तुमने सर्वथा विपरीत आचरण करना प्रारम्भ किया। तुमने समस्त लौकिक और पारमार्थिक धर्मोंको त्याग दिया और अधर्ममय कुत्सित कर्म करने लगे। इस कारण अब तुम संतान-सुखसे वंचित हो गये हो।'

'इस जन्ममें आजसे पूर्व तुम्हारी सातवीं पीढ़ीमें परम पराक्रमी बल्लभपुत्र मूकान्धबधिर और कुष्ठी दक्ष गणेशजीका अनन्य भक्त था। उसने गणेशजीकी भक्तिसे नवजीवन तो प्राप्त किया ही, समस्त लौकिक सुखोंके साथ परम शान्तिप्रदायिनी मुक्ति भी प्राप्त कर ली।'

महामुनि विश्वामित्रने कौण्डिन्यनरेश भीमको श्रीगणेशजीका एकाक्षरमन्त्र प्रदान कर कहा—'तुम भी कौण्डिन्यनगरके दक्षनिर्मित गणेश-मन्दिरमें श्रीगणेशजीकी पूजा और इस एकाक्षरमन्त्रका जप तथा अनुष्ठान करो। विश्वास करो, श्रीविनायकजी प्रसन्न होकर तुम्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्रदान करेंगे। तुम्हें योग्यतम पुत्र तो उत्पन्न होगा ही, तुम्हारी समस्त कामनाओंकी पूर्ति भी हो जायगी। सर्वफलप्रद भगवान् गणेश तुम्हारा प्रत्येक अभीष्ट तुम्हें प्रदान कर देंगे।'

कौण्डिन्यनरेश भीमने सपत्नीक मुनिवर विश्वामित्रके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उनका

आशीर्वाद प्राप्त कर प्रसन्नमन अपने नगरमें लौट आये। फिर शुभ मुहूर्तमें राजा भीमने अपने परम पुण्यमय पूर्वज दक्षद्वारा निर्मित गणेश-मन्दिरमें पहुँचकर देवदेव विनायकके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और पुनः उन परमप्रभु विनायकको षोडशोपचारसे पूजा कर उनके प्रिय एकाक्षरमन्त्रका वे जप करने लगे।

सुन्दरी चारुहासिनीके पति भीमने उपवासके साथ भगवान् गणेशकी आराधना प्रारम्भ की। वे पूजनोपरान्त दिनभर गणेशजीके एकाक्षरमन्त्रका जप करते रहते और सोते-जागते, उठते-बैठते तथा चलते-फिरते अहर्निश अपने आराध्यदेव गणेशजीका ही स्मरण, चिन्तन, ध्यान एवं भजन करते रहते थे। श्रीगणेशजीकी प्रीतिसे उनके नेत्रोंसे अश्रुपात होता रहता था।

कुछ ही समयमें उनकी बड़ी विचित्र स्थिति हो गयी। जल, थल, आकाश, मार्ग, मनुष्य, वृक्ष, लता, भक्ष्य और पेयादि जिस वस्तुपर उनकी दृष्टि जाती, वहीं उन्हें विनायक प्रभुकी भावना होने लगती। वृक्षोंको अपने प्राणसर्वस्व देवदेव विनायक समझकर वे आलिंगन करने लगते। उनके सम्मुख जो भी जाता, उसे ही विनायक समझकर राजा भीम उसके चरणोंमें प्रणाम करते और उसका आलिंगन करनेके लिये आतुर हो जाते। नगरनिवासी अपने प्रजा-पालक धर्मपरायण नरेशको सर्वथा उन्मत्त और पिशाच समझने लगे।

राजा भीमकी अनन्यतासे देवदेव विनायक अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाके सम्मुख प्रकट होकर उनके मस्तकपर अपना त्रयतापनिवारक मंगलमय पाणिपंकज रख दिया और वे अत्यन्त स्नेहसिक्त स्वरमें बोले—'मेरी अनन्य भक्तिसे तुम मुक्त हो गये। अब तुम अपने इच्छानुसार वर माँग लो।'

परम सौभाग्यशाली राजा भीम अपने प्राणाराध्यका प्रत्यक्ष दर्शन कर उनके चरणोंपर गिर पड़े। फिर गद्‌गद कण्ठसे उन्होंने कहा—'दयामय! मुझे आपके मंगलमय चरणाम्बुजकी सुदृढ़ भक्तिके अतिरिक्त अन्य कुछ अभीष्ट नहीं। आप कृपापूर्वक मुझे यही प्रदान कर दें।'

सर्पयज्ञोपवीतधारी सिन्दूरारुण लम्बोदरने प्रसन्न होकर कहा—'अब तुम राज-सदन जाओ। तुम्हें शीघ्र ही अत्यन्त सुन्दर एवं शुभगुणसम्पन्न यशस्वी पुत्र प्राप्त होगा। तुम यहाँसे जाकर ब्राह्मणोंको पूजादिसे संतुष्ट करो; तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी। मुझमें तुम्हारी भक्ति सतत सुदृढ़ रहेगी।'

इतना कहकर प्रभुवर विनायक अन्तर्धान हो गये।

कृतार्थ कौण्डिन्यनरेश अपने भवन लौटे। उन्होंने सर्वभयापह सर्वकामद गणपतिकी तुष्टिके लिये ब्राह्मणोंकी भक्तिपूर्वक पूजा कर उन्हें प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट किया। वे अपना अधिकांश समय देवदेव विनायककी पूजा और जपमें ही व्यतीत करते।

कुछ ही दिन बाद राजा भीमके अत्यन्त बलवान्, सर्वशास्त्रविशारद, सुन्दर गणेशभक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। वही बालक रुक्मांगद नरेशके नामसे प्रख्यात हुआ।

—शि० दु०

भक्त गणपतिभट्ट और श्रीजगन्नाथ महाप्रभु

(लेखक—पद्मश्री पं० श्रीसदाशिवरथजी शर्मा)

लगभग सोलहवीं शताब्दीके मध्यकी बात है। महाराष्ट्रमें गणपतिभट्ट नामक गणपतिके एक अनन्य भक्त थे। भगवान् श्रीगजवक्त्रके पूजन, उन्हींके स्मरण-चिन्तन, उन्हींकी मंगलमयी लीला-कथाके गान और श्रवण तथा परमप्रभु लम्बोदरके नाम-जपमें ही वे काल-यापन करते। परमप्रभु एकदन्त ही उनके सर्वस्व थे। श्रीभट्टजी किसी देवताका असम्मान तो नहीं करते थे, किंतु श्रीगणेशजीके चरणकमलोंमें उनकी इतनी प्रगाढ़ निष्ठा थी कि वे भगवान् गजमुखके अतिरिक्त अन्य किसी देवताके सम्मुख प्रणाम भी नहीं करते थे।

एक बारकी बात है। श्रीभट्टजी तीर्थ-यात्राके निमित्त निकले। विभिन्न तीर्थोंमें स्नान करते, जहाँ-कहीं श्रीगणेशजीका मंगल-विग्रह होता वहाँ उसका पूजन-आराधन करते, फिर इतर तीर्थके लिये प्रस्थित हो जाते थे। इस प्रकार तीर्थाटन करते हुए वे पुरीधाममें पधारे।

महान् गणेश-भक्त गणपतिभट्टने पुरीमें गणेशजीका

कोई मन्दिर या उनका विग्रह नहीं देखा। इस कारण वे निराश और उदास हो गये। उन्होंने पुरीमें जाकर भी परमप्रभु श्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें प्रणाम तो किया ही नहीं, पुरीधाम छोड़कर अन्यत्र चल पड़े।

मार्गमें मुक्तेश्वर महादेवका मन्दिर पड़ा। श्रीभट्टजी वहाँ विश्राम कर अपने आराध्यदेवके नामका जप करने लगे। उसी समय उनके सम्मुख एक तेजस्वी ब्राह्मण पहुँचे। ब्राह्मणदेव बिना कुछ पूछे श्रीभट्टजीसे कहने लगे—'भट्ट महोदय! क्या आप नहीं जानते कि श्रीजगदीश्वर जगन्नाथजी विशुद्ध भक्तकी तीव्रतम कामनासे अपना स्वरूप भी परिवर्तित करके दर्शन दे देते हैं? आपने दयामय प्रभुके सम्मुख प्रेमपूर्वक उत्तम स्तोत्रका पाठ क्यों नहीं किया?' इतना कहकर ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये।

श्रीभट्टजी अत्यन्त चकित हुए। 'ये ब्राह्मणदेवता कौन थे? मेरे अन्तर्मनकी बात उन्होंने कैसे जान ली? और फिर वे तुरंत चले कहाँ गये? निश्चय ही यह मेरे देवदेव गजकर्ण प्रभुकी प्रेरणा है। उन्होंने ही कृपापूर्वक मेरा मार्ग-निर्देश किया है।'

वे अपने प्राणसर्वस्व गणपतिका स्मरण करते हुए पुनः पावनतम पुरीधामको लौटे। ज्येष्ठ पूर्णिमाका पुनीत दिन था। श्रीभट्टजी श्रीजगन्नाथ महाप्रभुका दर्शन करने पहुँचे। दैववशात् स्नानपूर्णिमाके उत्सवके कारण श्रीविग्रह रमणीय स्नानमण्डपमें विराजमान थे। उक्त मंगलावसरपर भक्तराज गणपतिभट्ट भक्तिपूर्वक 'श्रीगणेश-स्तवराज'का प्रेमपूर्वक पाठ करने लगे। श्रीभट्टजीकी श्रद्धा और विश्वासके फलस्वरूप अद्‌भुत चमत्कार हुआ। भक्तवत्सल महाप्रभु भक्तके भावानुरूप स्वयं श्रीगजवक्त्ररूपमें प्रकट हो गये।

'गणानां त्राणकर्ता च गणेशो ग्राहको ग्रही।'—(गोपालसहस्रनाम) श्रीजगन्नाथजीका सर्वथा अद्‌भुत, अलौकिक विघ्नेश्वर गजमुखके रूपमें प्राकट्य देखकर संतों और भक्तोंका हृदय आनन्दपूरित हो गया। जय-जयकारकी ध्वनि गूँज उठी। श्रीगणेशजीके अनन्य भक्त गणपतिभट्ट भगवान्‌के श्रीचरणोंमें बार-बार दण्डवत्-प्रणाम करते हुए श्रीभगवान्‌के लिये अपने मधुरतम स्तोत्रोंकी वाक्-सुमनांजलि अर्पित करने लगे। उनके नेत्रोंसे अजस्र वारिधारा प्रवाहित हो रही थी। कृतार्थ भक्त गणपतिभट्टने अन्यत्रके लिये यात्रा प्रारम्भ की।

केवल उसी पावन तिथिमें श्रीजगन्नाथभगवान् उक्त प्राकट्य-लीलाकी पुनीत स्मृतिमें श्रीगणेशजीका स्वरूप धारण करते हैं। ज्येष्ठ पूर्णिमाका श्रीगणेश-स्वरूप-दर्शन मुख्य कृत्य माना गया है। श्रीराघवदास मठ तथा श्रीगोपालतीर्थ मठकी ओरसे मूल्यवान् उपकरणोंसे निर्मित श्रीगणेशजीका शृंगार श्रीजगन्नाथजीको चढ़ाया जाता है और महाज्येष्ठामें प्रार्थना की जाती है—

भक्तप्रिय महाबाहो भक्ततोषणविग्रह।
गणेशरूपधृग् विष्णो प्रणमामि जगत्पते॥
गणाध्यक्ष जगन्नाथ सर्वमङ्गलमूर्तये।
नमो विघ्नहरः साक्षाज्जगन्नारायणो हरिः॥*

~~~o~~~

भक्त श्रीगणेश योगीन्द्र

(लेखक—पं० श्रीदामोदर प्रह्लाद पाठक, शास्त्री, पूर्वोत्तरमीमांसक, व्युत्पत्तिचूडामणि, शिक्षाशास्त्री, काव्यतीर्थ, राष्ट्रभाषाकोविद)

वर्तमान गाणपत्य-सम्प्रदायके अनुयायियोंके मूल पुरुष एवं गुरुतुल्य विप्रवर गणेश योगीन्द्र ही हैं। ये महात्मा प्रख्यात मुद्‌गलमुनिके अवतार माने जाते हैं।

इनके पवित्र वंशमें प्रायः सभी उद्भट विद्वान् और गाणपत्य थे। इनके पितामह विप्र सोमनाथ गुजरातमें सोरटी सोमनाथके आंबी नामक गाँवमें रहते थे। सोमनाथ विद्वान्, धर्मात्मा एवं तेजस्वी ब्राह्मण थे। इनकी सहधर्मिणी उमादेवी भी पतिपरायणा एवं धर्मानुरागिणी थीं। इनके चिन्तामणि और मोरेश्वर नामक दो सुयोग्य पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों पुत्र वेद-शास्त्रोंके विद्वान् थे।

एक दिन स्वप्नमें धर्मात्मा सोमनाथसे शृंगेरीमठकी अधिष्ठात्री देवी शारदाने कहा—'शृंगेरीमठके यति

* श्रीरामदासकृत उड़िया भक्तमाला 'दाढ्यता भक्ति'(दाढ्यता भक्ति) में 'गणपतिभट्टस्य गणेशमूर्ति-दर्शनाध्याय'के आधारपर।
~~~

मरणासन्न हैं। उक्त पदका दायित्व सँभालनेके लिये तुम अपने ज्येष्ठ पुत्र चिन्तामणिको वहाँ भेज दो।'

सोमनाथ पत्नी और पुत्रोंसहित शृंगेरी पहुँचे। वहाँ पीठस्थ यति नृसिंहाश्रमाचार्यने भी ऐसा ही स्वप्न देखा था। उन्होंने ब्राह्मण सोमनाथात्मज चिन्तामणिको संन्यासकी दीक्षा देकर उन्हें उक्त पवित्र पीठपर नियुक्त कर दिया।

सोमनाथ अपनी सहधर्मिणी और पुत्र मोरेश्वरके साथ आंबी लौट आये। मोरेश्वर सविधि गृहस्थ हुए, किंतु अधिक दिन व्यतीत होनेपर भी उनके कोई संतान नहीं हुई। पौत्र-मुख देखे बिना ही सोमनाथ और उनकी पत्नी उमादेवीका यथासमय शरीरान्त हो गया।

आचार्यपीठस्थ चिन्तामणि आचार्यने अद्वैतसिद्धान्तकी स्थापनामें सहयोग प्राप्त करनेके लिये विद्वान् मोरेश्वरको शृङ्गेरी बुलाया। मोरेश्वरने उनकी आज्ञाका पालन किया। उन्होंने विरुद्ध मतोंका खण्डन कर चिन्तामणि योगीन्द्राचार्यकी बड़ी सहायता की। तदनन्तर वे आंबी लौट आये।

विद्वान् मोरेश्वर वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये चिन्तित थे। वे सपत्नीक महाराष्ट्रके जाग्रत् गणेश-पीठ मोरगाँव जाकर मयूरेश्वरकी उपासना करने लगे। एक मासतक निरन्तर उपासना कर वे पुनः आंबी आ गये। भगवान् मयूरेश्वरके अनुग्रहसे उनकी धर्मपत्नीने श्रावणशुक्ल ५ शकाब्द १४९९ में पुत्र-प्रसव किया। शृंगेरीपीठस्थ आचार्य चिन्तामणिके अनुज गणेशोपासक विद्वान् पं० मोरेश्वरका यही पुत्र श्रीगणेश योगीन्द्राचार्यके नामसे प्रख्यात हुआ।

श्रीगणेश परम ज्ञान-पिपासु थे। उपनयनके अनन्तर उन्होंने सर्वप्रथम अपने पिता और फिर विनायकशास्त्री नामक गुरुके चरणोंमें बैठकर वेदादि शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। इसके अनन्तर उन्होंने प्रसिद्ध विद्वानोंके पास जाकर बड़े परिश्रमसे षट्शास्त्र, स्मृति, इतिहास, पुराण, ज्यौतिष और योग आदि समस्त शास्त्रोंका सविधि अध्ययन कर लिया। घर लौटनेतक उनके हेरम्ब नामक एक अनुज भी हो गया था।

समस्त शास्त्रोंके प्रकाण्ड विद्वान् श्रीगणेश विद्यासे तृप्त नहीं थे। उन्होंने अपने पिताके चरणोंपर मस्तक रखकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विनीत वाणीमें निवेदन किया—'पिताजी! आपने स्वानन्द-गणेशकी कृपाका जो अलौकिक आनन्द प्राप्त किया, उस आनन्दकी प्राप्तिके लिये आप मुझपर दया कीजिये।'

गणेश-भक्त पिताने पुत्रकी पवित्र कामनासे प्रसन्न होकर पहले तो उससे आवश्यक शास्त्रोक्त तपश्चर्या करवायी, तदनन्तर उसे श्रीगणेशमन्त्रकी दीक्षा दे दी।

श्रीगणेशमन्त्र प्राप्त हो जानेपर गणेशने सविधि अनुष्ठान प्रारम्भ किया। उनकी श्रद्धा-भक्तिसे प्रसन्न होकर गजमुखने प्रकट होकर कहा—'वर माँगो।'

परम भक्त गणेशने अपने आराध्य गजवक्त्रसे याचना की—'मुझे आपके चरणोंकी सुदृढ़ भक्ति प्राप्त हो।' (मुद्‌गलमुनिने भी भगवान् गणेशके सम्मुख यही इच्छा व्यक्त की थी।)

परमप्रभु गजाननने कहा—'आर्यधरापर गणेश-मार्ग लुप्तप्राय है। तुम उक्त भक्ति-योगप्रधान मार्गकी स्थापना करो। तुम शृंगेरी जाकर अपने ज्येष्ठ पितृव्य चिन्तामणि योगीन्द्रसे संन्यासकी दीक्षा लेकर पुनः इस भूस्वानन्द-क्षेत्रमें मेरे समीप आकर अनवरतरूपसे लोकोद्धारका कार्य करते रहो।'

भगवान् मयूरेश्वरने अपना प्रसादमोदक भक्त गणेशके मस्तकपर रखा और अदृश्य हो गये। उक्त दुर्लभतम प्रसादके ग्रहण करते ही भक्त गणेशका सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त कान्तिमान् हो गया।

माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर गणेश शृंगेरी पहुँचे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पितृव्यको सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। उन्होंने कहा—'मुझे भी सुरेन्द्रपाद योगीन्द्रसे यही आज्ञा प्राप्त हुई है।' उन्होंने गणेशको संन्यासकी दीक्षा दे दी और उनका नामकरण किया—'गणेश योगीन्द्र'।

श्रीगणेश योगीन्द्र मोरगाँव आकर मयूरेश्वरके पीछे एक अहातेमें रहते हुए श्रीगणेशोपासनाके साथ लोकोद्धारके शुभ कार्यमें जुट गये। किंतु उनके मनकी एक कामना उत्तरोत्तर तीव्र होती गयी—'साक्षात् स्वानन्द गणेशने मुद्‌गलऋषिको जो शतोपनिषद्-ज्ञान प्रदान किया, वह उपनिषत्पुराण कहाँ मिलेगा?' एतदर्थ श्रीगणेश योगीन्द्र भारत-भ्रमण करने लगे। उक्त प्राचीन ग्रन्थके जहाँ प्राप्त

होनेकी सूचना मिली, वहीं वे गये। इसके लिये उन्होंने काशीमें भी अधिक समयतक निवास किया; किंतु ग्रन्थ कहीं प्राप्त नहीं हुआ। विवशत: वे मोरगाँव जाकर अपने आराध्यदेव प्रभु मयूरेश्वरसे करुणप्रार्थना करने लगे।

एक दिन श्रीगणेश योगीन्द्रके समीप एक ब्राह्मण देवताने आकर कहा—'आप कृपापूर्वक कुछ देरके लिये मेरी यह पोथी अपने पास रख लीजिये। मैं अभी स्नान करके लौटता हूँ।'

ब्राह्मण देवता स्नान करके लौटे। उन्होंने संध्या-वन्दनादिके पश्चात् उक्त ग्रन्थका पाठ करना प्रारम्भ किया। अत्यन्त तेजस्वी, पर सर्वथा सरल ब्राह्मणको देखते ही श्रीगणेश योगीन्द्रका मन उनकी ओर आकृष्ट हो गया। वे ब्राह्मणकी प्रत्येक क्रिया ध्यानपूर्वक देख रहे थे। ब्राह्मणने पाठ-समाप्तिके अनन्तर श्रीगणेश योगीन्द्रके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया। श्रीगणेश योगीन्द्रने ब्राह्मणसे पूछा—'आप किस ग्रन्थका पाठ कर रहे थे?'

ब्राह्मणने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'स्वामिन्! यह 'मौद्गलपुराण'का प्रथम खण्ड है। इसका प्रतिदिन पाठ करनेका नियम होनेसे मैं प्रवासमें भी इसे अपने पास रखता हूँ।'

'मौद्गल'! नाम कानमें पड़ते ही गणेश योगीन्द्रकी विचित्र दशा हो गयी। उनके नेत्र भर आये। 'मैं इसी ग्रन्थरत्नके लिये सर्वत्र भटक आया।'—गद्गद कण्ठसे श्रीगणेश योगीन्द्रने कहा—'यह ग्रन्थरत्न आपके पास है, इस कारण आप निश्चय ही भाग्यवान् हैं।'

ब्राह्मणने सहजभावसे कहा—''इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? गाणपत्योंको 'मौद्गलपुराण' का नित्य पाठ आवश्यक है। मेरे पास तो यह सम्पूर्ण 'मुद्गलपुराण' है।''

अत्यन्त व्याकुलतासे श्रीगणेश योगीन्द्रने कहा—'मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपके मनुष्य-वेषमें मेरे यहाँ साक्षात् भगवान् गणेश ही पधारे हैं। इस ग्रन्थके लिये मैं दीर्घकालसे आकुल हूँ। यदि आप कुछ समयके लिये मुझे इसे दे देनेकी कृपा करें तो मैं इसकी प्रतिलिपि कर शीघ्र ही इसे आपको लौटा दूँगा।'

ब्राह्मणने उत्तर दिया—'गणेश-भक्तोंका वचन कैसे टाला जा सकता है? मैं प्रत्येक चतुर्थीको इसका एक-एक खण्ड आपको देता जाऊँगा। इस प्रकार मुझे भगवद्दर्शनका लाभ प्राप्त होता रहेगा और आपकी लालसाकी पूर्ति भी हो जायगी।'

ब्राह्मण देवता 'मुद्गलपुराण'का उक्त प्रथम खण्ड श्रीगणेश योगीन्द्रको देकर चले गये। इसी प्रकार वे प्रत्येक चतुर्थीको एक खण्ड श्रीस्वामीजीको दे देते और श्रीस्वामीजी उसकी प्रतिलिपि करके ठीक दूसरी चतुर्थीको उन्हें लौटा देते। इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण 'मुद्गलपुराण' लिख लिया।

उसी ब्राह्मणसे प्राप्त कारिकासहित 'मौद्गलादेश'का लेखन श्रीगणेश योगीन्द्रने चतुर्थीसे नवमीतक छः दिनोंमें ही पूरा कर लिया। ब्राह्मण देवता तो आगामी चतुर्थीतक पधारेंगे, यह सोचकर श्रीगणेश योगीन्द्रने उसके शुद्धाशुद्धको देखनेका विचार किया; किंतु ठीक उसी समय ब्राह्मण देवताने आकर कहा—'मौद्गलादेश दीजिये।'

आश्चर्यचकित होकर श्रीगणेश योगीन्द्रने ब्राह्मणसे पूछा—'आप निर्धारित समयसे पूर्व ही कैसे पधारे? मैंने प्रतिलिपि पूरी कर ली, यह आपको कैसे विदित हुआ?'

ब्राह्मणने उत्तर दिया—'इस क्षेत्रमें मेरा एक भाई रहता है। वह महागणेश है। मैं उसीसे मिलने आ गया।'

'आपका भाई? महागणेश? वे इसी क्षेत्रमें रहते हैं और आजतक मैं उन्हें नहीं जान सका? चलिये, मैं भी उनके दर्शन कर लूँ।' कहते हुए श्रीगणेश योगीन्द्र ब्राह्मणका हाथ पकड़कर उनके साथ चल पड़े। ब्राह्मण देवता श्रीगणेश योगीन्द्रके साथ मयूरेश्वर-मन्दिरमें पहुँचे। प्रदक्षिणा पूरी कर दोनों श्रीभगवान्के विग्रहके समीप गये ही थे कि ब्राह्मण देवता अदृश्य हो गये।

श्रीगणेश योगीन्द्र उदास हो गये। वे सोचने लगे—''कितनी करुणा है परमप्रभु गणेशमें! वे कृपापूर्वक स्वयं मेरे यहाँ पधारे और मैं उन्हें पहचान भी नहीं सका; किंतु मेरी कामनापूर्तिके लिये उन्होंने स्वयं मुझे 'मौद्गलपुराण' एवं 'मौद्गलादेश' प्रदान करनेका अनुग्रह किया। यह सोचकर वे प्रसन्न भी हुए और आनन्दमग्न होकर उन्होंने उसी समय भगवान् मयूरेश्वरका गद्गद कण्ठसे स्तवन किया। वह 'विघ्नेशाष्टक स्तुति'के नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीगणेश योगीन्द्रने 'मुद्गलपुराण' और 'कारिकासहित मुद्गलादेश'—इन दोनों ग्रन्थोंपर भाष्य लिखा। इनके अतिरिक्त उन्होंने सर्वसारनिर्णय टीका, गाणकप्रस्थानत्रयी भाष्य, गणेशपुराणान्तर्गत सहस्रनामका शुद्धिकरण और भाष्य, गणेशपुराण-टिप्पणी, पातंजलसूत्रभाष्यपर शान्तिभाष्य, व्यासके ब्रह्मसूत्रोंपर सिद्धान्तलेश नामक निबन्ध-ग्रन्थ और गणेशगीतापर योगेश्वरी नामक (ओवीबद्ध) टीकाके द्वारा विशाल एवं समृद्ध वाङ्मय निर्माण कर श्रीगणेशोपासकोंका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

वे प्रचारक भी अद्भुत थे। श्रीगणेशजीके १०८ क्षेत्रोंमें घूम-घूमकर आपने सर्वत्र गणेश-भक्तियोगका प्रचार किया और इस शुभ कार्यमें उन्हें अकल्पित सफलता भी प्राप्त हुई। श्रीगणेशजीके अनन्य भक्त श्रीगणेश योगीन्द्रने गणेश-गुरुपीठका उद्धार भी किया।

श्रीगणेश योगीन्द्रके भाष्यसे संतुष्ट होकर महामुनि मुद्गलने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर आदेश दिया—'गणेश-मार्ग लुप्तप्राय हो गया है और शुद्ध शास्त्रीय उपासना कहीं नहीं रह गयी है। इस प्रचलित पाषण्डका नाश कर गणेश-पथ-प्रदर्शित करनेके लिये तुम्हारा जन्म मेरे वंशमें हुआ है। तुम ब्रह्मानन्द योगीन्द्रकी शरण ग्रहण कर पूर्वके धर्माचार्योंकी तरह अद्वैत मतकी स्थापनाके लिये कार्य करो।'

महामुनि मुद्गलके आज्ञानुसार श्रीगणेश योगीन्द्र ब्रह्मानन्द योगीन्द्रका शिष्यत्व स्वीकार कर भूस्वानन्द-पीठका कार्य करने लगे।

इस भूतलपर श्रीगणेश योगीन्द्र २२७ वर्षतक जीवित रहे। इतनी दीर्घायु प्राप्त कर उन्होंने महान् कार्य भी किया। उन्होंने जीवनके प्रथम शतकमें गणेशाद्वैत सिद्धान्त एवं द्वितीय शतकमें मिश्रमार्ग (भक्तियोगप्रधान मार्ग)-की स्थापना की।

बौद्ध-धर्मके हीनयान और महायान—दो पन्थोंकी तरह श्रीगणेश योगीन्द्रने गणेश-तत्त्वके प्रचार और प्रसारके लिये दो मार्गोंका निर्देश किया। एक तो शुद्ध गणेशयोगमार्ग अर्थात् दीक्षाप्रधान वैदिक मार्ग। किंतु सर्वत्र मन्त्रसंकर होनेके कारण वैदिक-पथपर आरूढ़ होना कठिन प्रतीत हुआ, इस कारण उन्होंने उक्त मार्गके कुछ भागमें मन्त्रोपदेश अर्थात् भक्तियोगप्रधान भागका मिश्रण कर दूसरे भक्तियोगप्रधान मिश्रमार्गकी स्थापना की। इस प्रकार उनके द्वारा सर्वसाधारणके लिये गणेशतत्त्वका पथ प्रशस्त हो गया।

श्रीगणेश योगीन्द्रके कितने ही शिष्य थे, किंतु उनके यति-शिष्योंमें ये पाँच प्रमुख थे—सिद्धेश्वर, सुब्रह्मण्य, ढुण्ढिराज, कृष्णेन्द्र और राघवेन्द्र। इनमें सिद्धेश्वर श्रीगणेश योगीन्द्रके देहावसानतक उनके पास ही थे। सुब्रह्मण्य दक्षिण भारतके विद्याधीशपुरमें गणेश महाक्षेत्रके योगीन्द्रमठमें गणेश-तत्त्वके प्रचार-प्रसारके लिये भेज दिये गये थे। ढुण्ढिराज काशी भेजे गये थे। कृष्णेन्द्रको श्रीगंगाजीके उत्तरभागमें निर्मित मठ-शाखामें तथा राघवेन्द्रको इसी पवित्रतम कार्यके लिये हिमालय पर्वतके प्रदेशोंमें भेजा गया था।

श्रीगणेश-तत्त्वज्ञानके प्रमुख उद्गाता, गणेश-सम्प्रदायके प्रवर्तक, मुद्गलमुनिके अवतार श्रीगणेश योगीन्द्रकी गुरुपरम्परा भी महागाणपत्योंकी है। (१) श्रीगौडपादाचार्य योगीन्द्र—ये गणेशाथर्वशीर्ष, माण्डूक्योपनिषद्-भाष्यकार, महावाक्यदर्शनकर्ता एवं गणेश-गीतासार ग्रन्थके लेखक थे। इनके शिष्य (२) श्रीमत् शंकराचार्य योगीन्द्रने प्रस्थानत्रयीपर भाष्य प्रस्तुत किया। इनके शिष्य (३) श्रीगिरिजासुत योगीन्द्र थे। इन्होंने गणेशाद्वैतसिद्धान्तकी स्थापना एवं श्रीक्षेत्र मयूरेश्वरके महासिद्धपीठ नामक गणेश-गुरुस्थानादिके उद्धारके साथ अनेक उपयोगी ग्रन्थोंकी रचना की। इनके शिष्य (४) श्रीब्रह्मानन्द योगीन्द्र हुए और इन्हींके शिष्य (५) महान् गाणपत्य श्रीगणेश योगीन्द्र हुए।

स्वनामधन्य श्रीगणेश योगीन्द्रने शक संवत् १७२७ माघ कृष्ण दशमी (सन् १८०५ ई०)-के दिन समाधि ले ली। उनकी समाधि मोरगाँवमें कऱ्हा नदीके तटपर है। श्रीगणेश योगीन्द्रके मराठी-स्तवनकी एक पंक्ति इस प्रकार है—

ॐ नमो गणेशपायांसी। जया नमनें सर्वांसी।
सकल-सिद्धि सरसासीं। पावनी अनंत॥

'जिनके नमनसे समस्त सिद्धियाँ अनन्त कालतक प्राप्त होती हैं, उन गणेशके चरणोंमें मेरा प्रणाम है।'

~~~०~~~
~~~

श्रीगणेश-स्तवनका प्रत्यक्ष फल

(लेखक—श्री १०८ स्वामी नारायणदास प्रेमदासजी उदासीन)

पंचम वेद 'महाभारत'के लेखक श्रीगणपतिकी मंगलमयी लीला-कथाएँ अनेक पुराणादि सद्ग्रन्थोंमें वर्णित हैं; किंतु मैं यहाँपर एक सत्य घटनाका उल्लेख कर रहा हूँ।

सन् १९५६ ई०की बात है। तीन-चार पीढ़ियोंसे दरिद्रताका कष्ट भोगता हुआ एक गृहस्थ परिवार व्याकुल हो गया था। दरिद्रतानिवारणके लिये उसके सारे उपाय और श्रम निष्फल हो चुके थे। एक दिन उस परिवारके एक सदस्य मेरे श्रीदादागुरु (ब्रह्मलीन श्रीमहंत श्री १०८ स्वामी अमरदासजी उदासीन)-के पास आकर अपना दुःख सुनाते हुए रो पड़े—'महाराजजी! हमने जी-तोड़ परिश्रम ही नहीं किया, सब उपाय करके थक गये, किंतु समझमें नहीं आता कि हम किस देवताकी अवज्ञासे इतने कष्ट झेल रहे हैं?'

श्रीगुरुजी महाराजने मुसकराकर कहा—'बेटा! अब सब ठीक हो जायगा।'

इतना सुनते ही उक्त सज्जनके हृदयमें मानो प्रसन्नताके मारे बिजली दौड़ गयी। बोल उठे—'सच?'

श्रीस्वामीजीने उत्तर दिया—'हाँ, सच। पर तुम्हें एक काम करना होगा।'

उक्त सज्जनने तुरंत कहा—'बाबा! आप जो कुछ कहेंगे, हम सब करनेके लिये तैयार हैं। हमें चाहे कितना भी कष्ट हो, पर हम आपकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करेंगे।'

श्रीस्वामीजीने कहा—'तो सुनो। अभी भाद्रमासके शुक्लपक्षकी श्रीगणेश-चतुर्थी आ रही है। उस दिनसे प्रारम्भ कर दूसरे वर्षकी श्रीगणेश-चतुर्थीतक—पूरे बारह मास प्रतिदिन प्रातःकाल स्नानके पश्चात् एक धोती और उत्तरीय धारण करके किसी एकान्त कक्षमें पवित्र आसनपर बैठ जाओ और फिर श्रीगणेशजीका ध्यान करते हुए १०८ दानोंवाली मालासे (श्रीस्वामीजी महाराजने उन्हें चन्दनकी माला दी थी) सात बार भक्तिमूर्ति श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजके इस स्तोत्रका जप किया करो—'

गाइये गनपति जगबंदन।
संकर-सुवन भवानी-नंदन॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक।
कृपा-सिंधु, सुंदर, सब-लायक॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता।
बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

यह स्तोत्र लगभग दस सेकंडमें पूर्ण होता है। और इस प्रकार २० मिनटमें एक मालाका जप हो जाता है। सात मालामें प्रतिदिन ७५६ बार जप होता है, जो एक वर्षमें करीब ढाई लाख हो जाता है।'

उक्त सज्जनने अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक भाद्रपद शुक्ल श्रीगणेश-चतुर्थीसे दूसरे वर्षकी श्रीगणेश-चतुर्थीतक उक्त स्तोत्रका विधिवत् जप किया। श्रीगजाननकी असीम कृपासे वह दरिद्री कुटुम्ब धीरे-धीरे सम्पन्न होता गया और इस समय उसकी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति सराहनीय है।

उक्त सज्जन अब तो भाद्रपद-शुक्लकी श्रीगणेश-चतुर्थीका व्रत-पूजन श्रद्धा और विश्वासपूर्वक ब्राह्मणके द्वारा कराया ही करते हैं और प्रत्येक मासकी कृष्णपक्षकी श्रीगणेश-चतुर्थीके व्रतका पालन भी करते हैं। जो भी सज्जन उपर्युक्त विधिसे श्रीगोस्वामी तुलसीदासविरचित स्तोत्रका विधिवत् जप करेंगे, अवश्य ही उनकी समस्त दरिद्रता और रोगादि नष्ट होंगे और वे विघ्न-विनाशन, मंगल-मूर्ति, सिद्धि-सदन श्रीगणपतिजीकी कृपासे सुख एवं आनन्द-मंगलमय जीवन व्यतीत करेंगे।

श्रीगजाननभगवान्‌की जय!

भगवान् श्रीगणेशके कुछ प्रसिद्ध भक्त

(१)

भक्त श्रीमोरया गोसावी

भगवान् श्रीगणेशके अनन्य भक्त श्रीवामनभट्ट कर्नाटकके बीजापुर जनपदान्तर्गत शालग्राम नामक गाँवमें शकाब्द १२०२ में उत्पन्न हुए। उनके अन्तर्धानका काल शक संवत् १३३२ है। श्रीभट्टजी इस धरतीपर पूरे १३० वर्षतक जीवित थे, किंतु उनके पिताका शरीरान्त थोड़ी अवस्थामें ही हो गया। श्रीभट्टजी पिताकी अस्थिका विसर्जन करनेके लिये कल्हा नदीके पाण्डेश्वरी क्षेत्रमें कमण्डलुतीर्थ गये। वहाँ सविधि अस्थि-विसर्जन करके वे वहींसे अष्टविनायकोंके प्रमुख मोरगाँव (मयूरेश्वर) चले गये। वहाँ उन्होंने मोरेश्वरका भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन किया। उक्त पवित्र क्षेत्र एवं वहाँके श्रीगणेश-विग्रह उन्हें इतने प्रिय लगे कि वे वहीं रहकर उपासना करने लगे। वहाँ उन्होंने आत्मसंयमपूर्वक तीन तपोंका पुरश्चरण किया, फिर चौथा पुरश्चरण सिद्धटेकमें पूर्ण किया।

भक्त वामनभट्टकी निष्ठा एवं उनकी श्रद्धा-भक्तिके वश हो भक्तप्रिय गजमुख उनके सम्मुख प्रकट हो गये। परमप्रभु विनायकने कहा—'तुम्हें यशस्वी भक्त पुत्र प्राप्त होगा और तुम्हारे वंशधरोंकी भावी सात पीढ़ियोंतक उन्हें समस्त सिद्धियोंका लाभ प्राप्त होता रहेगा।'

कृतार्थजीवन भक्तवर वामनभट्ट पुनः मयूरेश्वर आ गये। वहाँ प्रसिद्ध विद्वान् रामशास्त्रीने अपनी सुयोग्य पुत्री रेणुकाका पाणिग्रहण कर लेनेके लिये भट्टजीसे साग्रह प्रार्थना की। आराध्यके आदेशानुसार भट्टजीने परिणय स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपनी साध्वी सहधर्मिणी रेणुकाका नाम पार्वती रखा। पार्वती प्रत्येक रीतिसे पतिकी सेवा कर उन्हें प्रसन्न रखती। उसके कारण श्रीभट्टजीका गार्हस्थ्य-जीवन सुखी था। उनकी उपासनामें किंचित् व्यवधान नहीं पड़ता था।

श्रीभट्टजीने पचास वर्ष पूरे किये और उस समय (माघ शुक्ल ४ शकाब्द १२९७)-की पवित्र तिथिमें उन्हें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। पार्वतीकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी और श्रीभट्टजी भी जगत्त्राता श्रीगणेशजीके आशीर्वादका स्मरण कर मन-ही-मन मुदित हुए। उन्होंने पुत्रका नामकरण-संस्कार करवाया—'मोरेश्वर'। अतिशय स्नेहवश माता-पिता उसे 'मोरया' भी कहते। बालक मोरयाकी अद्भुत क्रीड़ासे माता-पिता आनन्दमग्न होकर त्रैलोक्यपति श्रीगणेशजीकी प्रीतिपूर्वक पूजा एवं उनके मंगलमय नामका जप करने लगते।

किंतु एक दुःखद घटना हो गयी। तब मोरया पाँच वर्षके थे। वे घरके समीप खेल रहे थे। एक विषधर सर्पने अचानक रेंगते हुए आकर फन फैलाया और अबोध शिशु मोरयाको डँस लिया। अत्यन्त तीक्ष्ण विष था उसका। शिशु मूर्च्छित हो गया। उसका सुन्दर मुख श्याम हो गया।

भक्त वामनभट्टकी पचास वर्षकी आयुमें उत्पन्न एकमात्र प्रिय पुत्र। सभी घबरा गये। सभी दुःखी थे और माता पार्वती—उनकी व्यथा-कथा कैसे व्यक्त की जाय। वे गोदमें अपने मूर्च्छित प्राणप्रिय पुत्रको लिये छाती पीटकर चीत्कार एवं करुण विलाप कर रही थीं। नवनीतोपम शिशुका मुख उत्तरोत्तर नीला होता जा रहा था और रह-रहकर उसके मुँहसे फेन निकल आता था।

माताका करुण-क्रन्दन सुनकर समीपस्थ मठसे एक गोसाईं आये। उन्होंने बच्चेको ध्यानपूर्वक देखा और फिर उसके शरीरपर धीरे-धीरे अपना हाथ घुमाया। तदनन्तर उन्होंने पार्वतीदेवीसे कहा—'माँजी! आप चिन्ता न करें। बालक स्वस्थ हो जायगा।' गोसाईंजी चले गये।

वे चले तो गये, पर चमत्कार कर गये। शिशु मोरयाकी मुखाकृति परिवर्तित होने लगी और कुछ ही देरमें उसका मुख पूर्ववत् अरुण हो गया। नेत्र खोलते हुए वह उठकर बैठ गया। कालके गालसे लौटे अपने एकमात्र पुत्र मोरयाको पार्वतीने हर्षोन्मत्त होकर कण्ठसे लगा लिया और वामनभट्ट दौड़े श्रीगजवक्त्रके पाद-पद्मोंमें।

गोसाईजीकी कृपासे बालकने पुनर्जन्म प्राप्त किया, इस कारण माता-पिताने बालकका नाम 'गोसावी' रखा। ये ही गोसावी भविष्यमें प्रसिद्ध गणेशभक्त मोरया गोसावीके नामसे प्रख्यात हुए। श्रीवामनभट्ट एवं उनकी धर्मपत्नीने उन्हें विघ्ननाशक परमप्रभु लम्बोदरके कृपाप्रसादके रूपमें प्राप्त किया था।

मोरया गोसावीने जब आठवें वर्षमें प्रवेश किया, तब उनके पिता श्रीवामनभट्टने उनका उपनयन-संस्कार करवा दिया। शिक्षा प्रारम्भ हुई। कुशाग्रबुद्धि थी मोरयाकी। वे जो कुछ पढ़ते, थोड़े-से परिश्रमसे वह उन्हें कण्ठस्थ हो जाता। वे वेद और शास्त्रोंका गहन अध्ययन कर रहे थे; किंतु जैसे-जैसे उनके शास्त्र-ज्ञानकी वृद्धि हो रही थी, वैसे-ही-वैसे उनकी करुणामय गिरिजानन्दनके चरणकमलोंमें निष्ठा सुदृढ़ होती जाती थी।

उसी समय उनका एक सिद्ध योगिराजसे सम्पर्क स्थापित हो गया। मोरया गोसावीने उनसे योगका ज्ञान प्राप्तकर अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। योगाभ्यास करते-करते उनका मन विरक्त होने लगा। कुछ ही समय बाद एक दिन उन्होंने चुपचाप घर त्याग दिया और मोरगाँव पहुँचे। यह मोरगाँव (मयूरेश्वर) क्षेत्र गणेश-भक्तोंके लिये मातृगयास्वरूप है। उक्त पावन क्षेत्रमें मोरया गोसावीपर नयन भारती नामक एक जितेन्द्रिय महात्माने कृपा की और उनकी संनिधिमें मोरयाने योगाभ्यास किया। उन्हें सहज ही समाधि लगने लगी। तदनन्तर भक्त गोसावीने ४२ दिनोंतक निष्ठापूर्वक एक पुरश्चरण किया। मोरयाकी श्रद्धा-भक्ति एवं उपासनासे आकृष्ट होकर प्रभु चिन्तामणिने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये। तब कृतार्थजीवन मोरया अपने घर लौट गये।

गोसावी दत्तचित्त होकर माता-पिताकी सेवा करने लगे। इस प्रकार आपने ९५ वर्षकी आयुतक घरपर निवास किया। बीचमें पुण्यमयी माता पार्वतीका निधन हो गया और पिता श्रीवामनभट्टने संन्यास ग्रहणकर घर त्याग दिया। भक्तवर गोसावीकी दृष्टिसे अब कोई कार्य शेष नहीं था। इस कारण वे चुपचाप घर छोड़कर पवना नदीके तटपर किवजाईदेवीके मन्दिरमें एकान्त शान्त-जीवन व्यतीत करते हुए भजन करने लगे।

लीलाविहारी भगवान् सुमुखकी कल्याणमयी लीला सर्वथा अकल्पनीय एवं अद्‌भुत होती है। सर्वथा विरक्त भक्त मोरया गोसावीकी ९६ वर्षकी आयुमें उनके प्राणाराध्य एकदन्तने प्रकट होकर आज्ञा प्रदान की—'गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लो।' और देवदेव अन्तर्धान हो गये।

वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करनेवाले परम योगी मोरया गोसावी। ९६ वर्षकी आयु और कन्या-परिणय! सर्वथा अकल्पित और आश्चर्यजनक! पर देवदेव गजमुखका आदेश। मंगलमूर्ति सर्वेश्वर प्राणधनका आज्ञोल्लंघन—गोसावीके लिये असम्भव, सर्वथा असम्भव था। करिवरवदनकी जैसी इच्छा!

हालाहलको अमृतमें परिवर्तित करनेवाले सर्वान्तरात्मा गजकर्णने विधि भी बैठा दी। पुनवले ग्रामके गोविन्दराव कुलकर्णीकी लक्ष्मीस्वरूपा प्रौढ़ा पुत्री उमा जैसे इन्हींकी प्रतीक्षा कर रही थी। परम विरक्त, परम भक्त और परम योगी वृद्ध गोसावी दूल्हा बने। उमाके साथ विवाह हुआ और वे सविधि गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करने लगे; किंतु परम अनासक्तभावसे।

गार्हस्थ्य-जीवनमें भी उनकी उपासना निरन्तर चलती ही रहती थी। वे सतत अपने आराध्य गजवक्त्रका स्मरण करते रहते। मोरया प्रत्येक संकष्टी चतुर्थीके अवसरपर मोरगाँव जाते। प्रतिपदासे चतुर्थीतक भगवान् लम्बोदरकी पूजा एवं आराधना करते। पंचमीको अन्न ग्रहण करते। कुछ ही दिन बाद उनके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। आपने उसका नामकरण किया—'चिन्तामणि'।

मोरया गोसावी संकष्टीके आगमनपर मोरगाँव जाया ही करते। उनके इस यात्राक्रममें गृहस्थीके कारण कभी व्यवधान उत्पन्न नहीं हुआ। किंतु अत्यधिक आयु हो जानेके कारण उनका शरीर यात्राके योग्य नहीं रह गया। मोरया मन-ही-मन व्याकुल हो गये। वे अपने आराध्यके दर्शन और पूजनके बिना अधीर और अशान्त रहते थे। उनकी अत्यधिक व्याकुलता देखकर परमप्रभु गणेशने प्रकट होकर उनसे कहा—'अब तुम मेरे यहाँ आनेका विचार छोड़ दो। मैं ही तुम्हारे यहाँ रहूँगा।'

यह घटना शकाब्द १४१४ की है। मोरया गोसावी कऱ्हा नदीमें स्नान कर रहे थे कि जलमें डुबकी लगाते ही उनके हाथमें श्रीगणेशकी एक सुन्दर मूर्ति आ गयी। मोरयाकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उन्होंने नदीके समीप ही अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उक्त श्रीगणेशविग्रहकी पूजा की। उसे शाक आदिका नैवेद्य अर्पित किया। इसीलिये मोरगाँवमें उक्त स्थल 'पोवली' नामसे आज भी प्रसिद्ध है।

फिर मोरया गोसावीने उक्त मूर्तिको लाकर चिंचवड़में स्थापित किया। मोरया प्रसिद्ध संत थे। अब जगत्राता शुभ-गुण-सदन गजवक्त्रके श्रीविग्रहकी प्राप्ति एवं महान् गणपति-भक्तके कर-कमलोंसे उनकी स्थापनासे सर्वत्र उसकी ख्याति हो गयी। चिंचवड़के गणेशजी सबकी श्रद्धाके केन्द्र हुए और वह चिंचवड़-क्षेत्र श्रीगणेश-भक्तोंका प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल बन गया।

भगवान् गजाननके अनन्य भक्त मोरया गोसावी सिद्ध महात्मा थे। उनके द्वारा कितने ही दीन, दुःखी एवं रोगियोंने अपनी आपदाओंसे मुक्ति प्राप्त की थी। इस कारण समीपके ही नहीं दूरके भी छोटे-बड़े श्रद्धालुजन उक्त श्रीगणेश-विग्रहके दर्शन एवं पूजनके लिये आने लगे। कुछ भक्त श्रीगणेशोपासनाकी शीघ्र सफलताके लिये वहाँ आकर रहने भी लगे। भक्तोंके निवास एवं पूजा-अर्चाके लिये धनके साथ पर्याप्त भूमि भी प्राप्त हो गयी।

सर्वथा विरक्त मोरया गोसावी तो श्रीगणेशाराधनमें तल्लीन रहते, किंतु उनके योग्यतम गणेशभक्त पुत्र चिन्तामणिने व्यवस्थाका सारा दायित्व सँभाल लिया। धन-सम्पत्तिकी सुरक्षा एवं अन्न-वितरण आदिका उन्होंने अत्यन्त सुन्दर प्रबन्ध किया। कुछ ही समय बाद उस स्थानने विशाल संस्थानका स्वरूप ग्रहण कर लिया। स्वयं छत्रपति शिवाजी और अनेक हिंदू सरदारोंने वहाँ जाकर प्रभु गजवक्त्रका दर्शन-पूजन तो किया ही, पुष्कल धनराशि भी प्रदान की। इतना ही नहीं, इस पवित्र संस्थानके लिये मुसलमान बादशाहोंने भी प्रचुर धन दिया।

चिन्तामणिकी सेवाका एक सुपरिणाम यह हुआ कि उनके जन्मदाता सिद्ध संत एवं गणेश-भक्त पिता ही उनके दीक्षागुरु हो गये। फलतः वे भी प्रसिद्ध यथार्थ गणेश-भक्त बन गये। भक्त पिताके भक्त पुत्र संस्थानका कार्य अत्यन्त सुचारुरूपसे करते। इस प्रकार मोरया गोसावीकी दीर्घतम आयु १८६ वर्षकी हो गयी। उन्होंने जीवित समाधि लेनेके अपने निश्चयकी सूचना अपने पुत्ररत्न चिन्तामणिको दे दी।

मार्गशीर्ष कृष्ण ६, शक संवत् १४८३ की बात है। भगवान् गजमुखके अनन्य नैष्ठिक भक्त, श्रीगणेश-भक्तिके प्रचारक, त्याग, तपस्या एवं आदर्श-जीवनकी प्रतिमूर्ति मोरया गोसावीने अपने योग्यतम पुत्र-शिष्यको आध्यात्मिक उपदेश देकर शान्तचित्तसे समाधिमें प्रवेश किया। वे पद्मासन लगाकर बैठ गये। उनके दोनों ओर घृत-दीप जल रहे थे। सम्मुख 'श्रीगणेशपुराण' था।

समाधिकालके कुछ ही पूर्व परम गणेश-भक्त चिन्तामणिने पत्नीसहित अपने सद्गुरु पिताका अन्तिम दर्शन कर उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और फिर समाधिद्वारपर एक शिला रख दी। मोरया गोसावी अपने परम सुहृद्, परम दयालु, परम प्रेमी, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वेश्वर, श्रीगणेशमें विलीन हो गये।

शकाब्द १७२७ तक मोरया गोसावीकी सात पीढ़ियोंतक संस्थानका कार्य उनके वंशधर करते रहे। वे सब-के-सब गजवक्त्रके श्रद्धालु भक्त थे, किंतु बादमें उनकी औरस संतानपरम्परा समाप्त हो गयी। पर गणपति-सम्प्रदायमें भक्तवर मोरया गोसावीका आदरणीय स्थान तो सुरक्षित ही रहा। इनके रचे सुन्दर पद तो महाराष्ट्रमें प्रायः सर्वत्र आदरपूर्वक गाये जाते हैं। मोरया गोसावीकृत गणराज-स्तवनकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अहो मूषकवाहन हो देव देखिले गहन।
महाविघ्नविध्वंसन हो गणराज (मायबाप)॥
अहो फरशु, अंकुश कटी बा घेउनियां झडकरी।
आपुलें ब्रीद साच करी हो गणराज (महाराज)॥
अहो मोरया गोसावी हो मोरया गोसावी देव योगिया गहन।
त्यांचे त्यांचे, हृदयीं संपूर्ण हो नांदतसे॥

(पदांचा गाथा: ३४ वें पदसे)

'हे मूषकवाहन! मैंने बहुत बड़े देव देखे हैं, किंतु महाविघ्नोंका विध्वंस करनेवाला गणराज तू ही है। हे गणराज महाराज! परशु-अंकुश लेकर तू अपना काम

पूरा कर। मोरया गोसावी कहता है—'यह मोरया देव योगियोंके लिये भी असाध्य है। जो (उसके) भक्त हैं, उनके हृदयसिंहासनपर वह विराजमान है।'

(२)

भक्त गोसावीनन्दन

महाराष्ट्रके प्रसिद्ध गणेशोपासकोंमें गोसावीनन्दनको सम्मानित स्थान प्राप्त है। इनके पूर्वज मुरारी पण्डित भी भगवान् गजवदनके भक्त थे। वे भगवान् गणपतिको तुष्ट कर उनकी कृपा-प्राप्तिके लिये मोरगाँव पहुँचे। वहाँ उन्होंने देव-देवेश परमप्रभु गणेशकी अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना प्रारम्भ की। वे अहर्निश गजमुखके ही ध्यानमें तल्लीन रहते थे। सद्यःसिद्धिदाता लम्बोदरने प्रसन्न होकर आज्ञा प्रदान की—'सिंदखेड (जि० बुलढाणा) जाकर निर्लिप्त रहते हुए गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करो।' अतएव मुरारी पण्डित सिंदखेड लौटे एवं गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट हुए। उन्होंने वहाँ एक सुन्दर गणेश-मन्दिर बनवाया और वहीं अपने आराध्यका भजन-पूजन करते हुए जीवन व्यतीत करने लगे। इन्हीं गणेश-भक्त मुरारी पण्डितकी चौथी पीढ़ीमें प्रसिद्ध गणपति-भक्त गोसावीनन्दनने जन्म लिया। इनका वेदान्त, योग एवं काव्यशास्त्रपर असाधारण अधिकार था।

गोसावीनन्दनने समर्थकालीन ख्यातिप्राप्त योगी एवं संत गोपालाश्रमसे दीक्षा प्राप्त की थी। इनकी कुलदेवी तो रेणुकादेवी थीं, किंतु ये उपासक त्रैलोक्यत्राता एकदन्त गणेशके ही थे। श्रीगणेशजीमें इनकी अद्भुत निष्ठा थी। ये अपना अधिकांश समय श्रीगजमुखकी सेवा-पूजा, आराधना एवं जप-प्रार्थनामें ही व्यतीत करते। अपनी रचनाओंके माध्यमसे ये अपने इष्टदेवता श्रीगणेशकी ही अर्चना करते रहते।

वृद्धावस्था निकट आते देखकर भक्त गोसावीनन्दनने नासिक, प्रयाग, अयोध्या और काशी आदि पावनतम तीर्थोंकी यात्रा कर ली। भगवान् सुमुखकी आराधना चलती रही; किंतु शरीरके वृद्ध होनेपर इनकी नेत्र-ज्योति जाती रही। वैसी परिस्थितिमें गोसावीनन्दन दूसरेसे भगवान् गणेशकी पूजा करवाते; किंतु अन्न-ग्रहणके पूर्व दूर्वार्चन तो स्वयं ही कर लेते।

गणेश-भक्त गोसावीनन्दन आदर्श गृहस्थ थे। इनकी पत्नीसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी। विदर्भमें उसका वंश आज भी चल रहा है।

गणेश-भक्त गोसावीनन्दनकी समाधि पुण्यतोया गोदावरीके दक्षिणतटपर श्रीक्षेत्र पैंठणके पास कावसन नामक स्थानमें है। इनके समाधि लेनेके संवत्‌का तो पता नहीं, किंतु इनकी पुण्य-तिथि फाल्गुन शुक्ल पंचमी मानी जाती है।

इनकी कृतियाँ 'ज्ञानदेवी' और 'दासबोध' ग्रन्थोंसे प्रभावित प्रतीत होती हैं। इनकी रचनाओंमें 'ज्ञानमोदक' अथवा 'प्राकृत वेदान्तसार' और 'सीता-स्वयंवर' अधिक प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थोंमें अभंग, अष्टक, पद और आरती हैं। इन ग्रन्थोंके देवी-अष्टक, रेणुकाष्टक, गजाननाष्टक और मल्हारी-अष्टक विशेष प्रसिद्ध हैं।

परमप्रभु गजाननका स्तवन करते हुए ये कहते हैं—

जवली भक्ति आणि मुक्ति! त्याचि शुद्धबुद्धि शोभति!
अभयवरदा गणपति! तूंचि असे॥

'भक्ति और मुक्ति, दोनों तेरे पास हैं! दोनोंकी शुद्ध बुद्धि तुझमें शोभित है। इससे अभयका वरदान देनेवाला तू ही गणेश है।'

(३)

भक्त श्रीगोपालाश्रम

श्रीगोपालाश्रमजी भगवान् गणपतिके कितने प्रसिद्ध एवं सिद्ध भक्त थे, यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीगणेशजीके प्रख्यात भक्त गोसावीनन्दनने इन्हें ही गुरुके रूपमें स्वीकार किया था। भक्तवर गोसावीनन्दनके मनमें श्रीगोपालाश्रमजीके प्रति अद्भुत श्रद्धा एवं भक्ति थी और वह निम्न पंक्तियोंसे विदित भी हो जाती है—

सद्‌गुरु गणेशा अचला। सद्‌गुरु गणेशा अमला।
सद्‌गुरु गणेशा गोपला। नमो तुज॥
भक्त तारावया गणपति। धरिली गोपालाश्रमाकृति।
आतां मजला हेचि गमति। अवयव॥

'हे अचल, अमल, सद्‌गुरुरूप, गोपालरूप गणेश! तुझे मेरा प्रणाम है। मुझे प्रतीत होता है कि तूने भक्तोंका उद्धार करनेके लिये गोपालाश्रमका स्वरूप धारण किया है।'

(४)

भक्त निरंजनस्वामी कर्‌हाडकर

गणपति-भक्त श्रीनिरंजनस्वामी कर्‌हाडकर कर्‌हाड ग्राममें श्रीनरसिंह पाठककी साध्वी सहधर्मिणी कृष्णाबाईकी

कोखसे माघशुक्ल चतुर्थी (शकाब्द १५५९)-के दिन उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमें ही इनका मन भुवनपावन गजमुखकी ओर आकृष्ट हो गया। अतएव ये भवानीनन्दन गणेशके ध्यान, नाम-जप एवं उनकी लीला-कथा-श्रवण आदिमें ही अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। यौवनमें प्रवेश करनेपर तो आपने अपने आराध्यको संतुष्ट करनेके लिये तपश्चरण प्रारम्भ कर दिया। इनके मन, इन्द्रिय एवं प्राण—सभी प्राणधन कृपासिन्धु गजवक्त्रकी कृपाके लिये आतुर थे और उनकी सच्ची प्रीतिके वश हो दयामूर्ति गणेशने उनपर दयाकी दृष्टि कर दी। आदर्श पवित्र चरित्रके कारण वे सर्वसाधारणमें 'देव' नामसे प्रख्यात थे।

प्रत्येक परिस्थितिमें संतुष्ट रहनेवाले श्रीनिरंजनस्वामी पैठणके गजानन-भक्त काशिराजस्वामीके शिष्य थे। ये सर्वथा अकिंचन थे, किंतु अतिशय श्रद्धाके कारण गणेशक्षेत्रोंके दर्शनार्थ कष्ट सहकर भी यात्रा करते। इसी प्रकार इन्होंने काशीकी भी यात्रा की।

अनेक मुमुक्षुओंने श्रीस्वामीजीसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दीक्षा प्राप्त की और गणेशोपासनामें लग गये। इन्होंने शकाब्द १६१४ में पंढरपुरमें 'गणेशगीता'पर टीका लिखी। भगवान् गणेश-सम्बन्धी इनकी स्फुट पद्यबद्ध रचनाएँ भी प्राप्त हैं। श्रीस्वामीजीके पौत्र भगवन्तने इनका जीवन-चरित्र लिपिबद्ध किया है।

(५)

भक्त निरंजनदास बल्लाल

गणेश-भक्त श्रीनिरंजनदासजी सद्गृहस्थ थे। प्रथम पत्नीका शरीरान्त होते ही आपने दूसरा विवाह कर लिया; किंतु कुछ ही समय बाद वह भी मृत्यु-मुखमें चली गयी। उसके वियोगसे निरंजनदासजी अत्यन्त दुःखी हुए, किंतु उसी दुःखके आवेगमें वे संसारके नश्वर स्वरूपका चिन्तन करने लगे। उनका मन क्रमशः विरक्त होता गया। अन्ततः वे घर छोड़कर गणेशगीताके टीकाकार परम गणेशभक्त श्रीनिरंजनस्वामी कर्‌हाडकरके समीप पहुँचे। उनके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम निवेदन कर उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'स्वामिन्! मेरा चित्त इस असार संसारकी कुटिल गति देखकर अत्यन्त व्याकुल हो गया है। आप कृपापूर्वक मुझे शिष्य बनाकर मेरा अशेष हित करनेका अनुग्रह करें।'

श्रीनिरंजनस्वामीने उनकी अनेक विधियोंसे परीक्षा की और उन्हें योग्यतम पात्र समझकर दीक्षा दे दी। सदाचारसम्पन्न निरंजनदासजी दत्तचित्त होकर उपासना करने लगे। धीरे-धीरे उनके हृदयमें ज्ञान-प्राप्तिकी कामना उदित हुई। वे अपने गुरुके समीप पहुँचे। उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनसे ज्ञान-दानकी प्रार्थना की।

योग्य शिष्यके योग्यतम गुरुने आशिष दी—'तुम्हें बिना पढ़े संस्कृत-ज्ञान प्राप्त हो जायगा' और उन्होंने निरंजनदासको गणेशपुराणपर टीका लिखनेका आदेश देते हुए उनका नामकरण किया—'बल्लालदेव'।

निरंजनदास बल्लालने अपने गुरु श्रीनिरंजनस्वामी कर्‌हाडकरके आदेशानुसार 'गणेशगीता'की टीका नामलगाँवमें ज्येष्ठकृष्ण ४ शक संवत् १६५१ को पूर्ण कर ली। वह टीका प्रसाद-गुणमयी है। ग्रन्थसमापन करते समय उन्होंने संत ज्ञानेश्वरकी तरह 'प्रसाद-दान'की याचना की है।

(६)

भक्त यदु माणिक

ये नेवासा गाँवके रहनेवाले थे। इनके कुलदेवता 'माणिक' थे। यह शब्द कैलासान्तर्गत 'माणिकेश्वर' शिवस्थानका संक्षिप्त रूप है। इन्होंने गणेशपुराणके सिंदूराख्यान एवं गणेशगीताकी 'संजीवनी' नामक टीका की थी। कहा जाता है कि यह टीका इन्होंने माणिकेश्वरकी कृपासे लिखी।

इन्होंने अजंठा-समीपस्थ रुद्रेश्वर नामक स्थानमें भगवान् गणपतिकी अत्यन्त निष्ठापूर्वक उपासना की थी। यदु माणिककी प्रीतिसे भगवान् गजानन प्रसन्न हो गये थे। इनकी तपोभूमि रुद्रेश्वर थी, जो अजंठासे लगभग ८ मील दूर सर्वथा एकान्त मनोरम स्थल है। वहाँ श्रीगणेशजीकी एक भव्य प्रतिमा भी है।

गणेशभक्त यदु माणिकके कितने ही सुन्दर गणेश-स्तवन प्राप्य हैं।

(७)

भक्त अंकुशधारी महाराज

कथनमात्र ईशता व्यवहार जाणा।
साक्षादात्मा ब्रह्म गणेश म्हणा॥
नमनमात्र सर्वत्र शांतियोगपणा।
सार्वभौमता ही गणराजीं॥

(अंकुशधारी महाराज)

'जीवात्मासे भिन्न ईश्वर है—यह व्यवहार कथनमात्रके लिये ही है, यह मैंने जाना है। वास्तवमें आत्मा साक्षात् ब्रह्म गणेश ही है। उनको नमस्कार करनेमात्रसे शान्तियोगकी प्राप्ति होती है। यही गणेशजीकी सार्वभौमिकता है।'

* * *

रत्नागिरि जिलेके टिके ग्राममें भगवन्त गंगाधर (नाना साहब टिकेकर) नामक प्रसिद्ध धार्मिक व्यक्ति निवास करते थे। उनकी धर्ममय जीवन व्यतीत करनेवाली पत्नीका नाम अन्नपूर्णा था। मार्गशीर्षशुक्ल ७ (शक संवत् १८०१)-के दिन इनके यहाँ एक पुत्र-रत्न पैदा हुआ। शिशुका नामकरण किया गया—'गजानन'। गजानन अद्भुत गजानन-भक्त थे और यही अंकुशधारी महाराज अथवा टिकेकर शास्त्रीके नामसे प्रख्यात हैं।

गजानन बाल्यकालसे ही अध्यात्म-प्रेमी थे। नौ वर्षकी आयुमें ही उन्होंने मन-ही-मन सर्वश्रेष्ठ देवकी आराधनाका निश्चय कर लिया और इसके लिये वे दत्तचित्त होकर ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे। गजानन बारह वर्षकी आयुतक इंदूरमें विद्याध्ययन कर रहे थे।

शकाब्द १८१३ के मार्गशीर्षकृष्ण चतुर्थी तिथिका मध्याह्नकाल था। उसी समय अत्यन्त मधुर स्वरमें गणपति-गान करता हुआ एक भिक्षुक गजाननके द्वारपर आया। गजाननने उसे भिक्षा दी और पुनः वे घरमें चले गये; किंतु भिक्षुककी मर्मस्पर्शिणी स्वर-लहरीसे आकृष्ट होकर वे पुनः भिक्षुकके दर्शनार्थ द्वारपर आये; पर वहाँ भिक्षुक नहीं था। गजाननने समीपस्थ घरोंमें पूछा, पर सबने एक ही उत्तर दिया—'यहाँ तो कोई भिक्षार्थी नहीं आया था।'

गजाननने स्वयं भिक्षुकको गणपति-पद-गायन करते दूसरे घर जाते देखा था और उसकी मधुर वाणी ही नहीं, उसके शान्त एवं तेजस्वी मुखमण्डलको देखकर वे उसकी ओर आकृष्ट हो गये थे। वे हृदयस्पर्शी तेजस्वी गायकके समीप कुछ देर बैठना चाहते थे, उससे कुछ वार्तालाप करना चाहते थे, पर कोई वश नहीं था। वे उक्त आकर्षक भिक्षुकका मन-ही-मन स्मरण करते हुए लौट आये।

कुछ समय बाद गजानन इंदूर-समीपस्थ सावेर नामक स्थानपर गणेश-संस्थानके दर्शनार्थ पहुँचे। वहाँ उन्होंने जब उक्त संस्थानके अधिपति गणपतिबुवाका भी दर्शन किया, तब वे अत्यन्त चकित होकर सोचने लगे—'मैं जिस मधुर गायक भिक्षुकसे मिलना चाहता था, वे तो ये ही प्रतीत होते हैं।' गजाननने धीरेसे दो-एक व्यक्तियोंसे मनकी बात कही, किंतु वे हँसते हुए कहने लगे—'संस्थानके अधिपति तुम्हारे यहाँ भिक्षाटनके लिये जायँ? सम्भव नहीं, कदापि सम्भव नहीं।'

'तुम्हारा ज्ञातव्य क्या है?' गणपतिबुवाने स्वयं गजाननसे पूछा। सर्वथा सरल एवं निश्छल गजाननने गणपतिबुवाके सम्मुख मनकी बात स्पष्ट व्यक्त कर दी।

गजाननके निष्कपट हृदयका परिचय पाकर सिद्ध गणपति-भक्त गणपतिबुवाने अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तर दिया—'निश्चय ही मेरे वेषमें मंगलमूर्ति श्रीगणेशने ही तुम्हारी भिक्षा ग्रहण कर तुम्हें आज्ञा प्रदान की है।' गणपतिबुवाने प्रतिभाशाली सरलतम गजाननको अपने समीप रहनेका परामर्श दिया और उन्होंने गणपतिबुवाके चरणोंमें रहकर साधन-भजन करना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

'आप मुझे कृपापूर्वक गणेशोपासनाका मार्ग बताइये।' गजाननकी अत्यन्त विनीत प्रार्थना सुनकर सिद्ध महात्मा गणपतिबुवाने उन्हें गणेशाराधनका यथार्थ अधिकार प्राप्त करनेके लिये तप करनेकी आज्ञा दी और गणेश-चरणानुरागी गजानन उनके समीप रहकर उन्हींके निर्देशानुसार तपश्चर्यामें लग गये। उनके सदाचरण एवं तपश्चरणसे प्रभावित होकर परम गाणपत्य गणपतिबुवाने उन्हें गणेशका एकाक्षरमन्त्र प्रदान कर दिया। गणेशानुरागी गजाननने सविधि अनुष्ठान सम्पन्न कर लिया। वे यथार्थ गणेशोपासक होकर शास्त्र-विधिकी बतायी दिनचर्याका सोत्साह पालन करने लगे।

एक बारकी बात है। गणपति-भक्त गजानन रात्रिमें संस्थानके श्रीगणेश-विग्रहके समीप गणेशगीताका पाठ कर रहे थे। वहीं सद्गुरु गणपतिबुवाके पुत्र गजानन और वासुदेव भी प्रेमपूर्वक पाठमें तन्मय थे।

'जय गजानन!' सहसा एक संन्यासीने भिक्षाकी याचना की।

गजानन तुरंत उठे। उन्होंने दिव्य और तेजस्वी

संन्यासी महात्माके चरणोंमें अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया और बोले—'स्वामिन्! इस समय तो मेरे पास ये कुछ दूर्वादल और शमीपत्र ही हैं। आप कृपया इन्हें ही स्वीकार कर लें।'

'कुछ दूर्वादल और शमीपत्र! सर्वोत्तम भिक्षा प्रदान की तुमने।' कहते हुए संन्यासीने गजाननके मस्तकपर अपना हाथ रखा और उनकी ओर वे स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखने लगे।

गणेशभक्त गजाननके तन, मन और प्राणमें जैसे सहसा परिवर्तन हो गया। द्वैतभावके विलीन हो जानेकी अनुभूतिके साथ उनके रोम-रोम आनन्दसे पुलकित हो गये। उसी समय वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणके साथ तेजस्वी संन्यासीने गजाननका नवीन नामकरण किया—'अंकुशधारी'।

अलौकिक संन्यासी अदृश्य हो गये। अंकुशधारी कुछ समझ न सके। उनकी बड़ी विचित्र दशा हो रही थी। वे स्वानन्दमें निमग्न हो गये थे। उन्होंने वहीं दोनों हाथ जोड़े और मन-ही-मन उन महात्माके चरणोंमें श्रद्धापूर्ण प्रणाम निवेदित किया। गजाननके मनने निर्णय दिया—'निश्चय ही तुमपर अनुग्रह करनेके लिये दयालु श्रीगणेश योगीन्द्र प्रकट हुए थे।'

गजानन और वासुदेव—गुरुपुत्रोंने भक्त गजाननसे पूछा—'अरे, आप द्वारपर प्रणाम किसे कर रहे हैं?'

अंकुशधारीने उत्तर दिया—'जय गजाननका उद्घोष करनेवाले तेजस्वी यतिको आपने नहीं देखा! वे बड़े कृपालु थे।'

इतना ही नहीं, श्रीगणेश योगीन्द्रने इन गणपति भक्त अंकुशधारी महाराजपर अद्भुत कृपा-वृष्टि की। वे प्रतिदिन स्वप्नमें अंकुशधारीजीको विधिवत् दीक्षाक्रम बताने लगे। उन्होंने अपने इस कृपा-भाजनको गणपति-सम्प्रदायसे समुचित रीतिसे परिचित कराकर अपने समस्त ग्रन्थोंका ज्ञान प्रदान कर दिया। उनके आदेशानुसार उन ग्रन्थोंका प्रकाशन भी हुआ। श्रीगणेश योगीन्द्रने योग्यतम पात्र अंकुशधारी महाराजको भूस्वानन्द-क्षेत्रमें जाकर उसके पुनरुद्धार करनेका आदेश प्रदान किया और परम कृतज्ञ अंकुशधारी महाराज सोत्साह आज्ञा-पालनमें लग गये। परम भाग्यवान् अंकुशधारी (गजानन) श्रीगणेश योगीन्द्रके अनुग्रहसे महान् गणेशोपासक गणेशपीठके पुनरुज्जीवनकर्ता तो हुए ही, ग्रन्थकर्ता भी बन गये। परम यति श्रीगणेश योगीन्द्रकी सत्प्रेरणासे उन्होंने श्रीब्रह्मभूय महासिद्धिपीठके शुद्ध वैदिक गणेश-मार्गका कार्य पुनः सुन्दर रीतिसे आगे बढ़ाया।

अंकुशधारी महाराजने संस्कृत और मराठी—दोनों भाषाओंमें काव्य प्रस्तुत किये। उन्होंने १७५ प्रकरणोंमें कुल मिलाकर लगभग पचास हजार पदोंकी रचना की है। उनके जीवनकी विशालतम काव्यकृति 'श्रीयोगीन्द्रविजय' है। यह ओवीबद्ध ग्रन्थ गणेशोपासकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी एवं प्रेरणाप्रद है। इस ग्रन्थमें गणेशमार्गका सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान, पुराणोंमें दिये गये योगीन्द्रोंके उपदेश, उनकी कथाएँ और श्रीगणेश योगीन्द्रका उद्बोधक चरित्र आदि प्रभावोत्पादक ढंगसे सविस्तर वर्णित हैं।

अंकुशधारी महाराजके जीवनमें पद-पदपर श्रीगणेश योगीन्द्रकी सहायता प्राप्त होती रही। वे सद्गुरु श्रीगणेश योगीन्द्रके जीवनसे सम्बन्धित घटनाओंको लिखनेकी दृष्टिसे 'गणेशविजय' नामक ग्रन्थ पानेके लिये आतुर थे। सर्वत्र प्रयत्न करनेके अनन्तर उन्होंने द्रविड़देशके तुकिली नामक गाँवमें रहनेवाले गणपतिके परम भक्त, सिद्ध पुरुष साम्बशिवशास्त्रीको पत्र लिखा। उन्होंने स्पष्ट उत्तर दिया—'मेरे पास श्रीगणेश योगीन्द्रसे सम्बन्धित कोई ग्रन्थ नहीं है।'

अंकुशधारी महाराज उनका चरित्र लिखनेके लिये आतुर और अधीर हो रहे थे। विवशतः उन्होंने अपने दो शिष्योंके साथ श्रीगणेश योगीन्द्रकी समाधिके समीप बैठकर २१ दिनोंका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। श्रीगणेश योगीन्द्रने स्वप्नमें उन्हें आदेश दिया—'अनुष्ठान त्यागकर अनुसंधान करो।'

दो-चार दिनमें ही उनके पास हस्तलिखित 'योगीन्द्र-चरित्र' नामक ग्रन्थ डाकसे प्राप्त हुआ और आश्चर्यकी बात तो यह थी कि उसके प्रेषक थे—साम्बशिवशास्त्री।

अंकुशधारी महाराजने प्रसन्नतापूर्वक श्रीशास्त्रीजीको पत्र लिखकर पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया—'यह आश्चर्यजनक घटना मैं श्रीमयूरेश्वरके दर्शनार्थ आनेपर बता दूँगा।'

चार मास बाद श्रीसाम्बशिवशास्त्री श्रीमयूरेश्वरके दर्शनार्थ मोरगाँव पहुँचे तो उन्होंने अंकुशधारी महाराजसे

मिलकर बताया—"मेरे गाँव तुकिलीके समीप श्रीमध्यार्जुन नामक शैव क्षेत्रमें मौन-व्रतधारी, दिगम्बर सिद्ध पुरुष दत्त योगीन्द्र रहते हैं। उनकी आयु, विद्या एवं उपासना आदिके सम्बन्धमें किसीको कुछ पता नहीं। एक दिन उनके शिष्यके द्वारा संदेश प्राप्त कर मैं उनके चरणोंमें उपस्थित हुआ।

"कुशलोपरान्त उन्होंने कहा—'समाधिकी स्थितिमें मुझे विदित हुआ कि भूस्वानन्द मयूरेश्वरमें कोई अंकुशधारी नामक गाणपत्य योगीन्द्र-चरितके लिये व्याकुल है और आपका उनसे परिचय है। श्रीगणेश योगीन्द्रको अंकुशधारीके माध्यमसे गणेशधर्मका प्रचार-प्रसार अभीष्ट है। वह चरित्र मैंने स्वयं लिखा है। उसे आप उनके पास भेज देनेका कष्ट स्वीकार करें।' फिर उक्त ग्रन्थ मैंने तुरंत आपकी सेवामें भेज दिया।"

सद्‌गुरुकी अद्‌भुत कृपाका अनुभव कर अंकुशधारी महाराजकी विचित्र दशा हो गयी। उनके नेत्र सजल हो गये और वाणी सर्वथा मूक थी। उन्होंने इस चामत्कारिक घटनाका उल्लेख श्रीगणेश योगीन्द्रके उपोद्‌घातमें स्वयं किया है।

गणेश-धर्मके प्रचार और प्रसारके शुभ कार्यमें निरन्तर श्रम करते रहनेसे उनका शरीर उत्तरोत्तर व्याधिग्रस्त एवं अशक्त होता गया। इस कारण वे शक संवत् १८४१ (सन् १९१९ ई०) वैशाख पूर्णिमाके अवसरपर अपना भौतिक कलेवर त्यागकर अपने परमाराध्यके शाश्वत आनन्दनिकेतन चरणकमलोंमें विलीन हो गये।

(८)

भक्त साम्बशिवशास्त्री

भगवान् गणपतिके परम भक्त साम्बशिवशास्त्री द्रविड़ देशके तुकिली नामक गाँवमें रहते थे। 'योगीन्द्र-विजय' नामक ग्रन्थ-रत्नकी प्राप्तिके लिये अंकुशधारी महाराजने इनसे पत्र-व्यवहार किया था। इन्होंने उन्हें स्पष्ट लिख दिया था कि 'उक्त ग्रन्थ मेरे पास नहीं है।' किंतु गजाननकी प्रेरणासे सिद्ध मौनी दत्त योगीन्द्रने इन्हें बुलाकर अंकुशधारी महाराजको भेजनेके लिये उक्त ग्रन्थ प्रदान किया था, जिसे इन्होंने उनकी सेवामें तुरंत भेज दिया और स्वयं मयूरेश्वरक्षेत्रमें जाकर अंकुशधारी महाराजको ग्रन्थ-प्राप्तिकी चामत्कारिक घटनाका विवरण सुनाया।*

परम भक्तियोगी साम्बशिवशास्त्रीने श्रीचोलदेशमें अपना नाम 'श्रीभक्तपालक भक्त' बतलाया था। ये शिवांशरूप माने जाते हैं। तीव्रतम उपासनाके प्रभावसे इन्होंने स्वानन्ददेशकी कृपा प्राप्त की और उसी शक्तिके प्रभावसे ये पाखण्ड-पथका खण्डन करनेमें समर्थ सिद्ध हुए। भगवान् गजमुखके आदेशानुसार मोरेश्वरके 'श्रीब्रह्मभूय महासिद्धि-पीठ'के उद्धारार्थ निर्वाणदीक्षासिद्ध श्रीसाम्ब-शिवयोगीके बुलाये जानेका उल्लेख मिलता है। इन्हें श्रीपीठपर स्थापित कर अंकुशधारी योगीन्द्र इनके शिष्य हुए और इन्हींकी संनिधिमें रहकर उन्होंने भारतधरापर गणेश-सम्प्रदायका प्रचार और प्रसार करनेमें सफलता प्राप्त की।

(९)

भक्त लम्बोदरानन्दस्वामी

कर्‌हाड गाँवके रहनेवाले श्रीरामचन्द्र गणेश जोशी बाल्यकालसे ही भगवान् गजमुखके भक्त थे। वयस्क होते ही इन्होंने मोरगाँव जाकर योगीन्द्रमठके ब्रह्मानन्द योगीन्द्रसे गणेशोपासना और योगीन्द्र-सम्प्रदायकी दीक्षा ग्रहण कर ली। इनका साम्प्रदायिक नाम गणेशानन्द था, पर सर्वसाधारणमें ये लम्बोदरानन्दस्वामीके नामसे प्रख्यात हुए।

लम्बोदरानन्दस्वामीके मनमें कुछ कामना थी। इस कारण वे अपने एक मित्रके साथ श्रीपरशुरामजीके दर्शनार्थ यत्र-तत्र भ्रमण करने लगे। इस प्रकार रेणुकानन्दनके दर्शनार्थ उन्होंने पावनतम नर्मदाकी परिक्रमा प्रारम्भ की। एक दिन परिक्रमाके मार्गमें सहसा इनके सम्मुख श्रीपरशुरामजी प्रकट हो गये। श्रीस्वामीजीने अत्यन्त विनयपूर्वक उनसे अपनी कामना व्यक्त की। श्रीपरशुरामजीने उत्तर दिया—'लालसा-पूर्तिके लिये तपश्चरण करो।'

'मैं कहाँ, किस प्रकार तपश्चर्या करूँ?' परम भाग्यवान् लम्बोदरानन्दजीके पूछनेपर स्थान और विधि बतलाते हुए श्रीपरशुरामजीने कहा—'मैंने जिस ब्रह्मगिरि (सह्याद्रि)-पर तप किया था, तुम उसी कनकेश्वर नामक पुण्य क्षेत्रमें रहकर श्रीलक्ष्मी-गणेशकी आराधना करो। वहाँ तुम्हारी कामना पूर्ण हो जायगी।'

* शक संवत् १८३० से १८३३ के मध्य।

इतना ही नहीं, उसी समय श्रीपरशुरामजीने श्रीस्वामीजीको पीतवर्ण शुभ्र संगमरमरकी श्रीगणेश-लक्ष्मीकी और क्षेम-लाभसहित बुद्धि-सिद्धिकी एक छोटी, पर अत्यन्त सुन्दर मूर्ति देते हुए आदेश दिया—'इस प्रतिमाको सम्मुख रखकर ध्यान-धारणा करना। केवल ध्यान-धारणा ही करना; यह मूर्ति पूजाके लिये नहीं है।' इतना कहकर भक्तहितैषी परम दयालु श्रीपरशुरामजी अन्तर्धान हो गये।

श्रीस्वामीजीने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर मन-ही-मन श्रीपरशुरामजीके चरणोंमें प्रणाम किया और वहाँसे कनकेश्वर चल पड़े। यह पुनीत क्षेत्र (कनकेश्वर) कुलाबा जनपदान्तर्गत अलिबाग तहसीलमें प्रसिद्ध है। समुद्रतलसे लगभग २००० फीटकी ऊँचाईपर अवस्थित इस स्थलकी प्राकृतिक छटा अत्यन्त मनोहर है। इस एकान्त, शान्त एवं पावन क्षेत्रसे पश्चिमके विशाल समुद्रका सौन्दर्य दीखता रहता है। करुणामूर्ति पार्वतीवल्लभ शिवका निवास होनेके कारण इस पवित्र भूमिकी बड़ी महिमा है।

लम्बोदरानन्दस्वामी पुण्यभूमि कनकेश्वर पहुँचकर श्रीपरशुरामजीके आदेशानुसार अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति एवं विश्वासपूर्वक श्रीलक्ष्मी-गणेशको संतुष्ट करनेके लिये उनका ध्यान, भजन एवं आराधना करने लगे। भगवान् परशुरामकी अव्यर्थ वाणी यथाशीघ्र फलद सिद्ध हुई। श्रीस्वामीजीका मनोरथ सफल हुआ।

श्रीस्वामीजीने उक्त पवित्र क्षेत्रमें एक सुन्दर गजानन-मन्दिर निर्माण करानेका निश्चय किया। उनके उद्योगसे गणेश-मन्दिर तैयार हो गया। तदनन्तर उन्होंने श्रीगणेशप्रतिमाके लिये बड़ोदाके नवकोटनारायण और प्रसिद्ध गणेश-भक्त गोपालराव मैराळसे सम्पर्क स्थापित किया। श्रीमैराळजीने श्रीस्वामीजीकी शुभेच्छाका आदर करते हुए अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सिद्धि-बुद्धि और क्षेम-लाभसहित श्रीगणेशजीकी सुन्दर मूर्ति कनकेश्वर भिजवा दी। उक्त प्रतिमा शक संवत् १९७८ की ज्येष्ठकृष्ण चतुर्थी (सन् १८७६ ई०)-के दिन सविधि स्थापित हुई। श्रीगणेशजीके उक्त विग्रहका नाम 'श्रीरामसिद्धि-विनायक' है। श्रीपरशुरामजीद्वारा प्रदत्त मूर्ति तो उन्हींके आदेशानुसार पूजित नहीं हुई। हाँ, उसका दर्शन अवश्य करा दिया जाता है।

श्रीलम्बोदरानन्दस्वामीने अपना सम्पूर्ण जीवन श्रीरामसिद्धिविनायककी सेवा और आराधनामें व्यतीत किया। उक्त मन्दिरमें प्रायः पूजनोत्सव होता रहता है, किंतु अत्यन्त करुणहृदय श्रीस्वामीजी दूसरेके दुःखका अनुभव करते ही व्याकुल हो जाते थे। वे दीन-दुःखियोंके दुःख एवं रोगियोंके व्याधि-निवारणके कार्यमें भी लगे रहते। गणेशोपासकोंका मार्ग-दर्शन एवं उन्हें प्रत्येक रीतिसे सहयोग प्रदान करना तो उनका परम धर्म था।

श्रीगणेश-प्रीति-प्रतिमा श्रीलम्बोदरानन्दस्वामीने शक संवत् १८२४ की ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी (सन् १९०२)-को समाधि ले ली। उनकी समाधि श्रीरामसिद्धिविनायक-मन्दिरके समीप ही स्थित है।

(१०)

भक्त राघवचैतन्य

भक्त राघवचैतन्य संत तुकारामकी गुरुपरम्पराके आदि पुरुष कहे जाते हैं। ये गिरनारसे महाराष्ट्र गये थे। इन्होंने लेण्याद्रिके समीप भगवान् गणेशकी उपासना की थी। इनकी रचनाओंसे विदित होता है कि ये तन्त्रके साधक थे। 'महागणपतिस्तोत्र'के रचयिता गणपति-भक्त राघव-चैतन्य ही थे।

(११)

भक्त गणेश दैवज्ञ

समुद्रके तटपर नन्दिग्राम (नांदगाँव)-में जोशी-कुलोत्पन्न ज्यौतिषके प्रसिद्ध विद्वान् कमलाकरभट्ट भगवान् गजमुखके अनन्य भक्त थे। उनके यहाँ प्रतिदिन प्रेम और उत्साहपूर्वक गणपतिकी उपासना होती रहती थी। उनके पुत्र केशवभट्ट भारतीय ग्रह-गणितके क्रान्तिकारी पुरुष कहे जाते हैं।

उस समय आर्य, सौर और ब्राह्म—ग्रहगणितके तीन पक्ष थे और प्रत्येक पक्ष अपने दृष्टिकोणसे पंचांग-निर्माण करता था। किंतु अत्यन्त प्रतिभाशाली श्रीगणेशचरणानुरागी केशवभट्टने ग्रहगणित और प्रत्यक्ष व्यवहारमें कुछ अन्तर देखा तो उन्होंने पक्षपातशून्य होकर ग्रहोंका परिशीलन प्रारम्भ किया। उन्होंने लघु-वेधशाला स्थापित की और प्रत्यक्ष ग्रह-स्थितिका अध्ययन-अनुशीलन करनेके अनन्तर ग्रहगणितविषयक 'ग्रहकौतुक' नामक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा, जिसे प्रसिद्ध ज्योतिर्विदोंने भी स्वीकार किया।

किंतु एक बार केशवभट्टके ग्रहणविषयक गणितमें कुछ अन्तर पड़ गया। बस, द्वेष रखनेवाले विपक्षियोंने

उनकी आलोचना शुरू कर दी। जब एक मुसलिम सूबेदारने केशवभट्टका उपहास किया, तब वे अत्यन्त दुःखी हुए। दुःखके आवेशसे व्याकुल होते ही उन्होंने अपने कुलदेवता श्रीगणेशजीकी आराधना कर अनुष्ठान प्रारम्भ किया और अन्तमें उन्होंने अत्यन्त करुण स्वरसे प्रार्थना की—'प्रभो! उपहाससे मेरा हृदय अधीर और अशान्त हो गया है। मुझे तो केवल आपके मंगलमय चरणकमलोंका ही अवलम्ब है। शीघ्र संतुष्ट हो जानेवाले प्रभु! मुझपर अनुग्रह कीजिये। दयासागर दया कीजिये!'

करुणामय गजमुख प्रसन्न हुए। उन्होंने केशवभट्टसे स्वप्नमें कहा—'तुम्हारे ज्यौतिषकी महत्त्व-वृद्धिके लिये मैं स्वयं तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट होऊँगा।'

भाग्यवान् केशवभट्टकी अधीरता और अशान्ति दूर हुई। उनकी व्यथा तो शान्त हुई ही, वे अत्यन्त प्रसन्न होकर निरन्तर मन-ही-मन भगवान् गणेशका ध्यान और स्मरण करने लगे। इस प्रकार भगवान् गणेशकी कृपासे नन्दिग्राम (शकाब्द १४२०)-में केशवभट्टकी सौभाग्यशालिनी साध्वी सहधर्मिणी लक्ष्मीदेवीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वही बालक भारतवर्षका प्रख्यात ज्यौतिषशास्त्रज्ञ गणेश दैवज्ञके नामसे प्रख्यात हुआ।

गणेश कुलपरम्परानुसार ज्यौतिषके अध्ययन-अनुशीलनसे प्रसिद्ध दैवज्ञ हुए। आकाशके ग्रहोंको देख-देखकर पंचांग-साधनके लिये उन्होंने ग्रहलाघव, लघुनिधिचिन्तामणि, बृहत्-तिथिचिन्तामणि, लीलावतीटीका, सिद्धान्तशिरोमणिटीका और मुहूर्ततत्त्वटीका आदि ग्रन्थोंकी रचना की। साथ ही उन्होंने आर्य, सौर और ब्राह्म—तीनों पक्षोंके ग्रह-गणितशास्त्रकी त्रुटियोंको दूरकर सर्वथा निर्दोष पंचांगगणित सर्वसाधारणके लिये सुलभ कर दिया। उक्त शास्त्रको देखते ही तीनों पक्षधरोंने अपना आग्रह छोड़कर ग्रहलाघव गणितका आश्रय ले लिया। 'ग्रहलाघव' ग्रन्थ पंचांगशास्त्रका गुरुग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। वेधशास्त्रमें गणेश दैवज्ञ भास्कराचार्यसे भी श्रेष्ठ माने जाते हैं। गणेशभक्त केशवभट्टके आत्मज गणेशकी 'दैवज्ञ' उपाधि सार्थक सिद्ध हुई।

केशवभट्ट एवं उनके सुयोग्य पुत्र गणेश दैवज्ञ—ये दोनों भगवान् गणेशके कृपाफल हैं। इनके निवाससे नांदगाँव भारतीय ज्योतिर्विदोंका तीर्थस्थल बन गया।

गणेश दैवज्ञके पुत्रका नाम भी केशव था और उनके पुत्र (अर्थात् गणेश दैवज्ञके पौत्र)-का नाम भी गणेश ही था। उक्त केशवात्मज (गणेश दैवज्ञके पौत्र) गणेशने 'सिद्धान्तशिरोमणि' ग्रन्थकी 'शिरोमणिप्रकाश' नामक टीका लिखी।

(१२)

हरभटबाबा पटवर्धन

श्रीहरभटबाबाके जन्म एवं देह-त्यागकी सुनिश्चित तिथि विदित नहीं, पर इतना तो निर्विवाद है कि वे रत्नागिरिसे ग्यारह मील दूर कोतवड़े नामक गाँवमें उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमें ही कटूक्तियोंसे क्षुब्ध होकर उन्होंने घर त्याग दिया और घूमते-फिरते एक सुन्दर गणेश-मन्दिरपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने एकभुक्त रहकर गजवक्त्रको प्रसन्न करनेके लिये अनुष्ठान प्रारम्भ किया। कुछ दिनों बाद उन्होंने सोचा, 'इस प्रकार गजानन प्रसन्न नहीं होंगे।' बस, वे केवल दूर्वांकुरका रस ग्रहण कर आराधना करने लगे। दुर्बल हो जानेपर भी वे अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुए; श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रीगणेशोपासना करते ही रहे। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हुए। हरभटबाबाका अनुष्ठान चलता ही रहा।

देवदेव गजमुख प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वप्नमें कहा—'तुम्हें विद्या प्राप्त होगी। तुम्हारी दरिद्रता नष्ट हो जायगी और तुम्हारे वंशज राजवैभव प्राप्त करेंगे।'

वरद गणपतिके समस्त आशीर्वचन सर्वथा सत्य प्रमाणित हुए। श्रीहरभटबाबाका विवाह गणपति बुवे स्थानके शेंड्ये शास्त्रीकी पुत्रीके साथ हुआ।

कापशीकर सरदार घोरपड़ेके उपाध्याय होनेके कारण वे उनके साथ कोंकण पहुँचे और इचलकरंजीके जागीरदार नारो महादेवके आश्रयमें रहने लगे। कुछ समय बाद नारो महादेवके पुत्र चि० व्यंकटराव घोरपड़ेका परिणय श्रीमंत पेशवा बालाजी विश्वनाथजीकी सुन्दरी पुत्री अनुबाईके साथ हुआ।

श्रीहरभटबाबा विवाहकी सारी व्यवस्था कर रहे थे। श्रीपेशवा उनके श्रम एवं सद्गुणोंसे अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने आग्रहपूर्वक श्रीहरभटबाबाको अपने पास रख लिया। वहाँ हरभटबाबाके सात पुत्र हुए। वे सभी सुयोग्य एवं पराक्रमी हुए। श्रीमंत पेशवाने उनके एक पुत्र गोविन्द पंतकी नियुक्ति सरदारके पदपर कर दी।

इस प्रकार सम्मानित गार्हस्थ्य-जीवनका निर्वाह

करते हुए भी हरभटबाबा मनसे सर्वथा विरक्त थे। वे नित्य नियमितरूपसे श्रीगणेशोपासना करते। कुछ समय बाद तो उन्होंने गृह त्यागकर सविधि संन्यास ग्रहण कर लिया।

श्रीहरभटबाबाने सम्पूर्ण भारतवर्षकी यात्रा की। तीर्थोंमें स्नान-दर्शन करते हुए वे पूना पहुँचे। वहाँ मूठा नदीके तटपर ओंकारेश्वर-मन्दिरके समीप उन्होंने अपना आश्रम स्थापित कर लिया। त्याग, वैराग्य, उपासना एवं परहितसाधनके कारण वे सर्वप्रिय रहे। श्रीहरभटबाबा पटवर्धन मिरज, सांगली और तासगाँव संस्थानोंके मूल पुरुष स्वीकार किये जाते हैं।

मार्गशीर्ष कृष्ण १ श्रीहरभटबाबा पटवर्धनकी पुण्यतिथि मानी जाती है।

(१३)

गणपति बुवा सावेरकर

रत्नागिरिके समीप शिरगाँव नामक ग्राममें सदाशिवभट गणेशभट म्हसकर नामक एक आस्तिक पुरुष रहते थे। वे भगवान् गणपतिके अनन्य भक्त थे; किंतु चालीस वर्षकी आयु हो जानेपर भी किसी संतानके न होनेसे चिन्तित रहते थे। वे पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे पत्नीसहित श्रीबल्लालेश्वर (जि० कुलाबा) पहुँचे। पति-पत्नी दोनों अत्यन्त श्रद्धापूर्वक कठोर नियमोंका पालन करते हुए भगवान् गजाननकी उपासना करने लगे। म्हसकरजी स्वयं प्रतिदिन तीन सहस्र गायत्री-मन्त्र जपते और अपनी सहधर्मिणीके साथ श्रीगणेशकी २१०० परिक्रमा करते थे। अत्यन्त सात्त्विक जीवन व्यतीत करते हुए वे नियमित रूपसे यह कार्यक्रम चलाते। इस प्रकार इक्कीस वर्षतक पति-पत्नी वांछितफलदाता श्रीगणेशकी अनवरत उपासना करते ही रहे। श्रीबल्लालेश्वर प्रसन्न हुए। दम्पतिने पुत्र प्राप्त किया। शिशुका नामकरण किया गया—'वासुदेव बुवा।'

उपनयनके अनन्तर वासुदेव बुवाकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। उन्होंने ग्यारह वर्षकी आयुमें ही वेदाध्ययन कर लिया। गुरुजीके समीप प्रायः श्राद्ध-भोजनका निमन्त्रण आता; किंतु वासुदेव बुवा गुरुके कहनेपर भी श्राद्धान्न ग्रहण करने नहीं जाते थे। एक बार तो गुरुके श्राद्ध-भोजनका आग्रहपूर्ण आदेश भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया, तब क्रुद्ध होकर गुरुने कहा—'तुम्हें जहाँ सात्त्विक राजभोग सुलभ हो, वहीं चले जाओ।'

वासुदेव बुवाने अत्यन्त शान्तिपूर्वक गुरु-चरणोंमें प्रणाम किया और चुपचाप सांगली चले गये। वहाँ उन्होंने मधुकरी माँगकर अपनी शिक्षा पूरी की।

एक बारकी बात है। भीषण गरमीका मध्याह्नकाल था। वासुदेव बुवा मधुकरी माँगने गये थे। मधुकरी तो प्राप्त हो गयी थी; किंतु तप्त धरतीपर उनके पैर बुरी तरह जल रहे थे। इस स्थितिमें वासुदेव बुवा वेदकी आवृत्ति करते हुए पुण्यतोया कृष्णाके तटपर पहुँचे।

कृष्णा-तटपर कवठेकर नामक एक योगी बैठे थे। उन्होंने वासुदेव बुवाकी स्थितिका अनुमान कर उन्हें अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने समीप बुलाकर कहा—'बेटा! तू प्रतिदिन इक्कीस दूर्वांकुरोंसे गणेशकी पूजा करना। तुम्हें मोरयाकी कृपा प्राप्त होगी।'

वासुदेव बुवाने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक गणेशकी उपासना प्रारम्भ की। नौ दिनोंके बाद वे श्रीमन्त चिन्तामणिराव अप्पासाहेब सांगलीकरके यहाँ भिक्षार्थ पहुँचे। स्वप्नादेशके अनुसार उन्होंने वासुदेव बुवाको अपने यहाँ रहकर अध्ययन करते रहनेका अनुरोध किया। वासुदेव बुवाने उनके यहाँ रहना स्वीकार कर लिया, किंतु तितिक्षामय वासुदेव बुवाको सम्पन्न परिवारकी सुविधा सह्य नहीं हो सकी। उन्होंने अपनी झोली उठायी और वहाँसे चल दिये। मधुकरी वृत्तिसे अन्यत्र रहने लगे।

योगिराज कवठेकरके पुनः दर्शन हुए तो वासुदेव बुवाने उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर श्रीगणेशोपासनाकी दीक्षा प्रदान करनेकी प्रार्थना की। योगिराजने उन्हें दीक्षा देकर आशीर्वाद भी प्रदान किया—'अब मोरया तुम्हारा सर्वत्र कल्याण करेंगे।'

वासुदेव गणेशवाड़ी पहुँचे। वहाँ उन्होंने खेड़ी गणपतिकी सेवा की। फिर कुछ समय बाद वे भूस्वानन्द-क्षेत्र (मोरगाँव)-में जाकर कठोर तप करने लगे। वे प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर प्रतिदिन तीन सहस्र गायत्री-जप, तदनन्तर तीन सहस्र उपासना-मन्त्रका जप पूरा कर मधुकरीके लिये निकलते। कुछ समय बाद तो वे माँगी हुई मधुकरी दूसरोंको देकर स्वयं दूर्वांकुरोंका रस पीकर साधन-भजन करने लगे। वे दूर्वाएँ भी स्वयं खेतोंमें जाकर ले आते।

इस प्रकार उन्हें गणेशोपासना करते हुए पूरे नौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब माघशुक्ल चतुर्थीको स्वप्नमें

प्रकट होकर मयूरेश्वरने उनसे कहा—'तुम्हारी उपासना पूरी हुई। अब तुम लुप्तप्राय गणेशोपासनाके पुनरुज्जीवनका कार्य करो।'

वासुदेव बुवाने केवल गणेश-सेवाकी याचना की। तब मयूरेश्वरने कहा—'मैं सदाके लिये तुम्हारे पास आ गया हूँ।' इतना कहकर देवदेव मयूरेश्वरने वासुदेव बुवाके हाथमें एक मन्दारमूर्ति और उपोषणके पारणार्थ पक्वान्न-पूरित थाली दे दी।

गणेश-भक्त वासुदेव बुवाके नेत्र खुले तो स्वप्नमें प्राणाराध्य मयूरेश्वरप्रदत्त मन्दारमूर्ति और पक्वान्नोंकी थाली देखकर उन्होंने उनकी आज्ञाके पालनका निश्चय किया। उन्होंने सविधि पारण किया और दयाधाम गणेशके आदेशानुसार कार्यमें लग गये। अब वे गणपति बुवाके नामसे सर्वत्र प्रख्यात हो गये।

गणपति बुवाके समीप जानेके लिये अनेक व्यक्तियोंको स्वप्नमें आदेश प्राप्त हुआ। फलतः लोग उनके चरणोंमें उपस्थित होकर उनके कथनानुसार गाणपत्य-सम्प्रदायके प्रचारका कार्य करने लगे। बंबईके 'धागजी काका', बड़ोदाके नवकोटनारायण गोपालराव मैराळ, इंदूरके दाजी साहेब किबे, ग्वालियरके सदाशिवभाऊ फडनवीस, संभाजीराव आंग्रे आदि बहुसंख्यक सम्मानित व्यक्ति गणपति बुवाकी सेवामें उपस्थित हो उनके परामर्शके अनुसार गणेश-कार्यमें सहयोग प्रदान करने लगे।

स्वयं गणपति बुवा गाणपत्य सम्प्रदायके प्रचारार्थ सर्वत्र भ्रमण कर रहे थे। वे इंदूर गये। उन्होंने मालवाके काशी-रामेश्वरके मार्गपर अवस्थित सावेर-ग्रामको अपने पवित्रतम उद्देश्यकी पूर्तिमें उपयोगी समझकर वहीं रहनेका निश्चय किया। वहाँ उन्होंने गजाननकी स्थापना की और एक संस्थानका निर्माण किया। वहाँ अभ्यागतोंके निवास और भोजनकी व्यवस्था की। उक्त संस्थानमें धर्म और जातिका विचार किये बिना अतिथिमात्रको अन्न प्रदान किया जाता था।

मोरगाँवके योगीन्द्रमठके संस्थापक अंकुशधारी महाराजको दीक्षा देनेवाले गणपति बुवा ही थे।

गणपति बुवा अपने अन्तिम श्वासतक गाणेश-मार्गका प्रचार-प्रसार करते रहे। वे श्रावण शुक्ल २, संवत् १९१८ को शरीर त्यागकर अपने आराध्यमें विलीन हो गये।

(१४)

श्रीनागेश्वर बाबा

गणेशभक्त नागेश्वर बाबाका जन्म सन् १८३८ ई० में महाड (जि० कुलाबा)-में हुआ था। उनके व्यवसायी पिता जहाजोंसे माल मँगाने और भेजनेका काम करते थे। अतएव नागेश्वर भी बाल्यकालसे यही काम सीख रहे थे। व्यावसायिक दृष्टिसे अठारह वर्षकी आयुमें उन्हें मालवा जानेका अवसर प्राप्त हुआ। उस समय (सन् १८५७ ई०) उत्तरभारतमें स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिये संग्राम छिड़ा था। युवक नागेश्वर भी उसमें सम्मिलित हो गये।

घटना-विशेषके कारण सहसा उनका मन परिवर्तित हुआ और वे स्वतन्त्रता-संग्रामसे पृथक् होकर तीर्थ-यात्राके लिये चल पड़े। वे अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे तीर्थोंमें स्नान, पूजन और दर्शन करते जा रहे थे कि मार्गमें उन्हें एक गोसावी मिले। उन्होंने नागेश्वरको एक शालग्राम देकर श्रीरामोपासनाकी विधि बता दी। नागेश्वर श्रद्धा और विधिपूर्वक प्रतिदिन शालग्रामजीकी पूजा करने लगे।

एक बार वे एक धर्मशालामें ठहरे। वहाँ उनकी अन्य वस्तुओंके साथ शालग्रामजी भी चोरी चले गये। इस घटनासे नागेश्वर अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने तुरंत उपवास प्रारम्भ कर दिया। श्रीशालग्रामजीके वियोगमें निष्ठापूर्वक उपवास करते समय उन्हें स्वप्नमें आदेश प्राप्त हुआ—'मैं प्रयाग-दुर्गमें अमुक स्थानपर हूँ। तुम वहाँ जाओ।'

नागेश्वर प्रयाग पहुँचे और स्वप्नके आदेशके अनुसार दुर्गके उक्त स्थलको खोदनेपर एक गोल पाषाण निकला। नागेश्वरने बर्तुलाकार पाषाण उठा लिया, पर वे मन-ही-मन सोचने लगे—'मैं इसे किस दृष्टिसे देखूँ? इसका नामकरण क्या करूँ?' इसी प्रकार सोचते हुए वे सो गये। रात्रिमें पुनः स्वप्न हुआ—'पाषाण फोड़ो। उसमें तुम्हारे उपास्यदेव हैं।'

पत्थर फोड़ते ही उससे श्रीगणेशकी मन्दारमूर्ति निकली। नागेश्वरने मूर्तिको मस्तकपर चढ़ाया और तबसे वे नागेश्वर बाबा (और गणपति बुवा करमरकर) कहे जाने लगे। किंतु श्रीगणेशोपासनाके लिये उन्हें मन्त्रकी आवश्यकता प्रतीत हुई। इस कारण वे उज्जैनके समीप सावेर नामक गणेश-स्थलपर महान् गाणपत्य वासुदेव बुवा म्हसकरके चरणोंमें पहुँचे।

उन्होंने कृपापूर्वक नागेश्वर बाबाको दीक्षा दी और फिर वे विधिपूर्वक श्रीगणेशोपासनामें लग गये।

नागेश्वर बाबा उस समय ग्वालियरमें थे। ग्वालियरके तत्कालीन महाराजा जयाजीराव शिंदेजीने ग्वालियरमें ही रहनेके लिये उनसे प्रार्थना की, किंतु नागेश्वर बाबाने सुस्पष्ट कह दिया—'तपश्चरणार्थ नर्मदा-तट श्रेष्ठ है; मैं वहीं जाऊँगा।'

नागेश्वर बाबा चांदोदमें नर्मदा-तटपर पहुँचे; किंतु उस समय उनके छोटे भाई वामनराव बड़ोदामें रह रहे थे। इस कारण बाबा बड़ोदा चले गये। नागेश्वर बाबाके पवित्र चरित्र एवं तपश्चर्यासे बड़ोदा-निवासी अत्यन्त प्रभावित हुए। उनके भावपूर्ण मधुर कीर्तनसे तो श्रोता झूम उठते। नागेश्वर बाबाके कीर्तनमें अधिकांश नगर-निवासी एकत्र होते। वहाँके प्रेमी भक्तोंके अतिशय प्रेमाग्रहके कारण बाबाके लिये वहाँसे बाहर जाना उत्तरोत्तर कठिन होता गया।

उस समय बड़ोदामें महमदवाड़ी नामक स्थान सुन्दर और श्रेष्ठ था। नागेश्वर बाबाके गुरुघरानेका एक गणपति-मन्दिर भी उसी क्षेत्रमें था। महागाणपत्य नवकोटनारायण गोपालराव मैराळके ऐश्वर्यसे महमदवाड़ीकी ख्याति सर्वत्र थी। वहीं नागेश्वर बाबाने एक भव्य एवं विशाल गणपति-मन्दिर निर्माण करानेका संकल्प किया। समस्त बड़ोदावासियोंने इस शुभ कार्यके लिये उत्साह प्रकट किया।

सिद्धनाथ सरोवरके पश्चिम सुविस्तृत भागमें मन्दिरकी आधारशिला रखी गयी और कुछ ही समयमें मन्दिर बनकर तैयार हो गया। तदनन्तर मन्दिरमें प्रतिमा प्रतिष्ठित करनेका प्रश्न उपस्थित हुआ। गोपाळराव मैराळने नागेश्वर बाबासे निवेदन किया—'मेरे पास शुभ्र संगमरमरसे निर्मित एक सुन्दर गणेश-प्रतिमा है; किंतु उसके गण्डस्थलपर किंचित् काले दाग हैं। इस कारण अबतक वह मूर्ति कहीं स्थापित नहीं की जा सकी।'

नागेश्वर बाबाने उस प्रतिमाको मँगवाकर देखा तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'यह तो भगवान् गणपतिके अवतारकी मूर्ति है। सिन्दूरासुरके वधके समय क्रोधावेशमें भगवान् गजाननके गण्डस्थलसे जो मदस्राव होने लगा था, ये काले दाग उक्त मदस्रावके ही चिह्न हैं। इस मन्दिरमें यही दुर्लभ मूर्ति प्रतिष्ठित होगी।'

श्रीनागेश्वर बाबाने श्रावण कृष्ण ५ (संवत् १९२९)-के दिन समारोहपूर्वक उक्त मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। वहाँ उक्त अवतार-मूर्तिकी पूजा-अर्चा विधिपूर्वक की जाती है और प्रतिवर्ष वैशाख पूर्णिमा, ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी, भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी और माघशुक्ल चतुर्थीके अवसरोंपर अत्यन्त उत्साहपूर्वक गणेश-जन्मोत्सव मनाया जाता है।

बड़ोदानरेशके राजवंशके सभी लोग नागेश्वर बाबाको पिता-तुल्य सम्मान प्रदान करते थे। गणेशजीके अनन्य भक्त परम तपस्वी बाबा १५ फरवरी, सन् १९२८ ई० के दिन स्वानन्द-धामवासी हुए।

(१५)

गणेशोपासक गोपालराव मैराळ

गोपालराव मैराळ बड़ोदाके धन-सम्पन्न ब्राह्मण-वंशमें उत्पन्न हुए थे। वे बाल्यकालसे ही भगवान् गणेशके भक्त थे। गोपालराव सदाचार-सम्पन्न तो थे ही, शम, दम, त्याग एवं तितिक्षासे पूर्ण जीवन-निर्वाह करते थे। सम्पत्तिजनित दोष उन्हें स्पर्शतक नहीं कर सके। ब्राह्मणपुत्र होनेके कारण प्रारम्भमें उन्होंने अध्ययन किया और गार्हस्थ्य-जीवनमें प्रविष्ट होते ही बड़ोदामें अपने आराध्यदेव भगवान् गणपतिका एक सुन्दर मन्दिर निर्माण करवाया।

गोपालरावजी सर्वसाधन-सम्पन्न थे, तथापि श्रीगणेशके विग्रहकी सेवा-पूजा प्रातःकालसे शयनपर्यन्त अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक वे स्वयं करते। परशु, कमल, मोदक एवं अभयदयुक्त प्राणाराध्यकी सेवाके बिना उन्हें कुछ भी प्रिय नहीं लगता था और उनके उपास्य देव विनायक उनकी सेवासे संतुष्ट थे, इसका प्रमाण भी प्राप्त हो जाता था।

भगवान् गणेशके अनन्य भक्त गोपालराव प्रतिदिन देवदेव गणेशका षोडशोपचारसे पूजन करते, उन्हें षड्रस नैवेद्य अर्पित करते, तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन प्रदान करके ही पत्नीसहित प्रसाद ग्रहण करते। गोपालरावने अपने मनुष्य-जीवनका प्रत्येक पल और सम्पत्तिका एक-एक पैसा अपने इष्टकी सेवा-पूजा, उनके मन्दिरोंके जीर्णोद्धार तथा गणेशोपासकोंकी

प्रत्येक रीतिसे सत्कार-सहायतामें व्यय किया। वे प्रतिपल गणेश-नामका जप करते रहते। गणेशभक्ति उनके जीवनका आधार थी। वे महाराजा मल्हाररावके दीवान थे।

मैराळ-मन्दिरके द्वारा आज भी उनका पावन स्मरण हो जाया करता है।

(१६)

रघुनाथ महाराज गोडबोले

रघुनाथ महाराज गोडबोलेका जन्म शकाब्द १८०४ की मार्गशीर्ष पूर्णिमाके दिन हुआ था। अत्यन्त प्रतिभाशाली रघुनाथ महाराजके पूर्वके संस्कार अत्यन्त शुभ थे। दसवें वर्षमें ही जब वे पाठशाला जा रहे थे, एकान्त वनमें उन्हें श्रीविट्ठलका प्रत्यक्ष दर्शन हो गया। बस, उन्होंने अध्ययन छोड़कर शास्त्रोक्त उपासना-ज्ञानके लिये काशीकी यात्रा कर दी, किंतु काशीमें किसी योग्य गुरुके न मिलनेसे वे पुनः वापस लौट आये।

परम भाग्यवान् रघुनाथ महाराजको भुसावल गाँवमें जगज्जननी ललिताम्बाने दर्शन देनेकी कृपा की। भगवती जगदम्बाकी सत्प्रेरणासे नांदेड गाँवमें सिद्धपुरीके रहनेवाले नागेश शास्त्रीने उन्हें 'श्रीगुरुपरम्परा' नामक ग्रन्थ पढ़नेके लिये दिया। श्रीरघुनाथ महाराज संस्कृतसे सर्वथा अपरिचित थे; किंतु जगदीश्वरीके अनुग्रहसे ग्रन्थका स्पर्श करते ही उन्हें संस्कृतका ज्ञान स्वतः हो गया। वे रघुनाथ महाराजके नामसे प्रख्यात हुए।

रघुनाथ महाराज गोडबोले देशाटनके लिये निकले। वे दक्षिण भारत, काश्मीर और नेपाल आदि घूमते हुए बुलडाणा पहुँचे। वहाँ उन्हें गणेश-मन्त्रकी प्राप्ति हुई। उन्होंने अपने समीप आनेवाले स्त्री-पुरुषोंको गणेशाराधनके मार्गमें प्रवृत्त किया। आज भी उनके शिष्य-परिवार भगवान् गजाननकी उपासनामें लगे रहते हैं।

उन्होंने १ अगस्त, सन् १९४६ ई० को समाधि ग्रहण की।

(१७)

नागेशपण्डित शेष

नागेशपण्डित नांदेडके प्रसिद्ध विद्वान् गोपालपण्डितके पुत्र थे। सद्यःसिद्धिदाता भगवान् गणेशकी इनपर अद्भुत कृपा थी। एक प्रख्यात आख्यायिकामें प्रसिद्ध है कि अपने भक्त नागेशपण्डितके पुत्रको सुलाते समय स्वयं भगवान् गणेश डोरी पकड़कर पालनेको झुलाया करते थे। नागेशपण्डितकी निम्नांकित संस्कृत आरती महाराष्ट्रमें अत्यधिक प्रिय है—

विघ्नध्वान्तविनाशनसुप्रभमुखकमलं
दिव्यज्ञानानन्दितमेकामलरदनम्।
मोदकमोदं देवं जय मङ्गलसदनं
वाञ्छितफलदं वन्दे स्तम्बेरमवदनम्॥
जय देव जय देव जय मङ्गलमूर्ते
दीपार्तीमङ्गीकुरु पूजां सुमुहूर्ते॥
भ्रमदलिकुम्भं शुण्डास्तम्भितमददम्भं
सिन्दूरारुणशोभं कृतरिपुसंक्षोभम्।
शंकरवंशस्तम्भं निर्जितमददम्भं
व्यापितसकलारम्भं वन्दे ब्रह्मनिभम्॥ जय देव०॥
वृन्दारकवृन्दैरपि वन्दितपदकमलं
कमलजकमलाधववर्णितगुणगणममलम्।
विद्यामण्डितदेहं पण्डितकुलपालं
शेषस्त्वामहमीडे सततं खलकालम्॥ जय देव०॥

'जिनका उत्तम प्रभासे विभासमान मुखारविन्द विघ्नरूपी अन्धकारका विनाश करनेवाला है; जो दिव्य ज्ञानजनित आनन्दमें मग्न रहते हैं; जिनके एक ही निर्मल दन्त प्रकाशमान है; जो मोदक (मिष्ठान्न)-से मुदित होनेवाले देवता हैं; विजय और मंगलके आवासस्थान हैं; जिनका मुख हाथीके मुखके सदृश है तथा जो मनोवांछित फल देनेवाले हैं, उन श्रीगणेशकी मैं वन्दना करता हूँ।'

'हे मंगलमूर्ति देवता! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। शुभ मुहूर्तमें आपकी पूजा की गयी है; इसे तथा इस दीपमयी आरतीको आप स्वीकार करें। जय देव! जय देव!'

'जिनके कुम्भस्थलपर भ्रमरोंकी भीड़ मँड़रा रही है; जिन्होंने शुण्डदण्डके प्रहारसे मदासुरके दम्भको स्तम्भित कर दिया था; जिनके अंगोंपर सिन्दूरकी अरुण शोभा फैल रही है; जिन्होंने शत्रुदलमें हलचल मचा दी थी; जो शंकरकुलके रक्षास्तम्भस्वरूप हैं; जिन्होंने मद एवं दम्भको पराजित कर दिया है; जो सम्पूर्ण कर्मोंके आरम्भमें प्रथमपूज्यके रूपमें व्याप्त हैं; उन ब्रह्मतुल्य महामहिम गणेशकी मैं वन्दना करता हूँ। जय देव! जय देव!'

'देवताओंके समुदाय भी जिनके चरणारविन्दोंकी वन्दना करते हैं; ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके गुणोंका

बखान करते हैं; जिनका स्वरूप निर्मल है; जिनकी देह विद्यासे मण्डित है; जो पण्डितकुलके पालक हैं तथा दुष्टोंके लिये कालरूप हैं, उन आप गणपतिकी मैं नागेश निरन्तर वन्दना करता हूँ। जय देव! जय देव!'

(१८)

गजानन दैवज्ञ

ज्यौतिषपरम्पराके विद्वान् पण्डित गजानन दैवज्ञ नांदेडनिवासी थे। ये राजमान्य दैवज्ञ थे। सद्गुण-सम्पन्न एवं भगवान् गणेशके उपासक थे। इन्हें पुण्यतोया गोदावरीमें श्रीगणेशकी प्रतिमा प्राप्त हुई थी, जिसे दैवज्ञ महोदयने कार्तिककृष्ण ४ (संवत्का पता नहीं)-के दिन जोसालगली (नांदेड)-में सविधि स्थापित कर दिया। गजानन दैवज्ञ नियमितरूपसे विविध उपचारोंके द्वारा अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने प्राणाराध्य गजवक्त्रकी उपासना करते थे। इन्हें मंगलमूर्ति गणेशकी कृपा प्रत्यक्ष प्राप्त थी।

(१९)

रामकृष्ण बापू सोमयाजी

माझा प्राणसखा गणराज।
जो स्मरणमात्रें निजभक्ताचें येउनि करितो काज॥
सुंदर उंदिर वाहन ज्याचें
सिंदुर अंगीं साज॥ माझा प्राण सखा गणराज॥
सिद्धिप्रद मयूरेश्वर राखी
रामकृष्णाची लाज॥ माझा प्राणसखा गणराज॥

"मेरा प्राणसखा गणराज है, जो केवल स्मरणमात्रसे ही अपने भक्तोंका कार्य करता है। जिसका सुन्दर वाहन 'मूषक' है और जिसके शरीरपर सिन्दूर सुशोभित है, मेरे प्राणसखा गणराज, सिद्धिप्रदाता मयूरेश्वर! 'रामकृष्ण'की लाज रखो।'

× × ×

रामकृष्ण बापू नांदेडके रहनेवाले थे। वे स्वयं पण्डित, कवि एवं अनुष्ठान करनेवाले अत्यन्त सदाचारी पुरुष थे। दामोदरानन्दस्वामी उनके गुरु थे। पण्डित श्रीमयूरेश्वर उर्फ बाबा महाराजके वे विशिष्ट कृपाभाजन थे।

रामकृष्ण बापू भगवान् गणेशके भक्त थे। उन्होंने अपने गुरुके आदेशानुसार 'गुरु-परम्परा' नामक संस्कृत-ग्रन्थ लिखा। उक्त ग्रन्थमें १०७ अध्याय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य पद, अभंग और आरती आदि उनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं।

शकाब्द १८२२ में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। उनकी वस्त्रसमाधि सिद्धनाथपुरीमें उनके घरमें ही है। समाधिके समीप उनकी स्थापित श्रीगणेश-प्रतिमा भी है।

वे गणपतिका भजन करनेके लिये सबको प्रेरणा प्रदान करते रहते थे। वे स्वयं कहते हैं—

गणराज दयालु भजावा हो॥
देवी,रवी,हरी,हर संतोषा एकच सतत पुजावा हो॥ ध्रु०॥
दुर्लभ जाणुनिया नरदेह विषयसंग त्यजावा हो॥
रामकृष्ण म्हणे प्रबोधमय तो नच मनांतुनी जावा हो।
गणराज दयालु भजावा हो॥

"दयालु गणराजका भजन कीजिये। देवी, सूर्य, विष्णु, शंकर—इन्हें संतुष्ट करनेके लिये निरन्तर इन्हींकी पूजा कीजिये। दयालु गणराजका भजन कीजिये। यह मनुष्य-शरीर अत्यन्त दुर्लभ है, यह जानकर विषय-संगको त्याग दीजिये। 'रामकृष्ण' कहते हैं—ज्ञानमय गणराजका स्मरण होता रहे, उनका मनसे कहीं न जाना हो। दयालु गणराजका भजन कीजिये।"

(२०)

दामोदरानन्द स्वामी

अधिकारी सत्पुरुष एवं कल्याणमूर्ति श्रीगजाननके प्रसिद्ध भक्तोंमें श्रीदामोदरानन्दस्वामीका नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। वे संत श्रीशुकानन्द महाराजके शिष्य थे। 'गुरुपरम्परा'-जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थके रचयिता गणपति-भक्त कवि रामकृष्ण सोमयाजीके विद्यागुरु थे। इसीसे उनकी विद्या एवं साधन-सम्पन्नताका अनुमान किया जा सकता है।

(२१)

मोरेश्वर शास्त्री जोशी

नांदेडनिवासी मोरेश्वर शास्त्री जोशी न्याय और संस्कृतके विद्वान् तो थे ही, त्याग, तपस्या एवं गणेश-भक्तिकी जैसे प्रतिमा थे। उनका अधिकांश समय गणेशाराधनमें ही व्यतीत होता। 'नांदेडक्षेत्रविजय' नामक एक ओवीबद्ध ग्रन्थ उन्होंने शकाब्द १८२६ के मध्य लिखा था। '**विधिशकुलजाल मयूरेश्वरवाणी। श्रीगणेशकृपें वदे निर्वाणी।**…' यह उनका उद्गार है। अन्तमें उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया था।

इसी प्रकार रामानन्दस्वामी त्रिकुटकर, चिन्तामणि

गोसावी, गणपतिस्वामी, प्रमेहशास्त्री और अण्णासाहेब देशपांडे—ये सभी गणपतिके प्रसिद्ध भक्त नांदेड-परिसरमें रहते थे। अपनी परम्पराका निर्वाह करनेवाले ये गणपति-भक्त अपने पवित्रतम कर्मोंसे अत्यधिक यशस्वी हो चुके हैं।

(२२)

श्रीमत् शंकराचार्य शिरोळकर स्वामी (मठ संकेश्वर)

श्रीमत् शंकराचार्य शिरोळकर स्वामी अपने पूर्वाश्रममें भगवान् गणेशके अनन्य भक्त थे। इस कारण उन्होंने पहले मोरगाँव, तदनन्तर चिंचवड़में परमप्रभु गजवक्त्रको संतुष्ट करनेके लिये अत्यन्त कठोर तपस्या की। उनके निष्ठापूर्ण तपसे प्रसन्न मयूरेश्वरने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देनेकी कृपा की थी।

'श्रीशंकराचार्यके पीठपर अधिष्ठित होकर मैं वैदिक तत्त्वज्ञानका प्रचार-प्रसार करता।'—श्रीस्वामीजीकी यह कामना थी। अपनी इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिये उन्होंने चिंचवड़में अत्यन्त कठोर तप किया। उनकी तपस्या सफल हुई। वे शंकराचार्य-पीठपर नियुक्त कर दिये गये।

श्रीशिरोळकर स्वामी अपने पूर्वाश्रममें सुपटु चित्रकार थे। उन्होंने अपने हृदयमें श्रीमोरया गोसावीके जिस स्वरूपका दर्शन किया, उसे चित्रित कर दिया। वह चित्र प्रामाणिक माना जाता है और देऊलवाड़ामें भगवान् श्रीगजाननके विग्रहके निकट दर्शनार्थ सुरक्षित है।

'तूझिये भेटिची बहू आस रे मोरया'—श्रीस्वामीजी जब इस पदका गद्‌गद कण्ठसे गान करना प्रारम्भ करते तो उनके नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह चलने लगता। उनका मोरया-सम्बन्धी प्रिय श्लोक यह है—

गणेशो वः पायात् प्रणमत गणेशं जगदिदं
गणेशेन त्रातं नम इह गणेशाय महते।
गणेशान्नास्त्यन्यत् त्रिजगति गणेशस्य महिमा
गणेशे मच्चित्तं निवसतु गणेश त्वमेव माम्॥

'गणेश तुमलोगोंकी रक्षा करें; गणेशको प्रणाम करो; गणेशने इस जगत्‌की रक्षा की है; इस लोकमें महान् देवता गणेशको नमस्कार है; गणेशके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं; तीनों लोकोंमें गणेशकी महिमा विख्यात है; मेरा चित्त गणेशमें निवास करे और हे गणेश! तुम मेरी रक्षा करो।'

उक्त श्लोकमें गणेश शब्दका सभी विभक्तियोंमें प्रयोग हुआ है। श्रीशिरोळकर स्वामीकी समाधि मोरगाँवमें मयूरेश्वर-मन्दिरके पिछले प्रांगणमें है।

(२३)

भक्तराम मल्हारि

गणेश वाड्मयोपासकोंमें भक्तराम मल्हारि (अथवा मल्हारी)-का नाम विशेषरूपसे प्रख्यात है। **'श्रीमद्‌गणेशगायत्री-जप-विधानम्'** नामक उनके प्रसिद्ध ग्रन्थसे उनकी उपासना-मार्गकी योग्यता समझी जा सकती है। 'छप्पन गणेश-स्थान' नामक (मराठी भाषामें) उनका एक प्रसिद्ध 'कटाव' है।

भक्तराम मल्हारिके कुलदेवता मल्हारि थे, पर उनके उपास्यदेव गणेश थे। उनकी रचनाएँ तो प्राप्त होती हैं, किंतु उनके समयका पता नहीं चलता। मराठीमें भगवान् गणेश एवं चतुर्थी-व्रत आदिपर उनके अनेक सुन्दर पद प्राप्त हैं।

गणेश-स्तवन

गजानन गजानन भज रे मना,
अशी काय नरतनु येईल पुन्हां॥
विषयाचें सुख येथें वाटे तुज जरि गोड।
परि अवघड पुढें यमयातना॥ गजानन० १॥
घटांत गं गंगारे छटांत गं गंगारे,
पटांत गं गंगारे, नटांत गं गंगारे॥ गजानन० २॥
वनांत गण गंगारे, जनांत गण गंगारे,
मनांत गण गंगारे, खणांत गं गंगारे,
भक्तराम चिंतन उमजुनि प्रातःस्मरणा
गजवदना॥ गजानन० ३॥

चतुर्थी-व्रत

विघ्नेशा व्रत हे चतुर्थी बरवि कां
माझा (माझी) न पुरवि॥ १॥
भक्तां मंगल गौरवि सुखकरवि।
अज्ञानता दूर करवि॥ २॥
कार्या लागुनि गौरवि
तरि भक्तजना तरवि॥ ३॥

ते श्री वर्णित शांभवि शुभ रवि।
मल्लारी नामें कवि॥ ४॥

(२४)

इस्लामपुरकर

प्रख्यात गणपति-उपासकोंमें इनका नाम लिया जाता है। ये प्रसिद्ध कीर्तनकारोंके वंशज थे और स्वयं भी अत्यन्त सुन्दर कीर्तन करते थे। कहा जाता है, रेठरे (महाराष्ट्र)-में अब भी उनके वंशज रहते हैं।*

—शिवनाथ दुबे

~~०~~

भगवद्भक्तोंकी अलौकिक महिमा

भगवान्‌के भक्त भगवत्स्वरूप ही होते हैं। उनकी मन-बुद्धि लीलामय भगवान्‌में ओत-प्रोत रहती है और मन एवं बुद्धिद्वारा ही इन्द्रियादिका व्यापार परिचालित होता है। इसलिये भक्तोंके कार्य-कलाप और विचार-व्यापारको भी भगवान्‌की ही लीलाके तुल्य समझना चाहिये। जैसे भगवान्‌के धाम, लीला क्षेत्र आदि तीर्थस्थल हैं, उसी प्रकार भक्तोंके निवास-स्थान और कर्म-क्षेत्र भी तीर्थ ही बन जाते हैं।

भगवान् प्रेमके कारण भक्तोंके पीछे-पीछे घूमा करते हैं; उनके सुख-दुःखमें अपना सुख-दुःख मानते हैं। उनके लिये अपनी आन-बान और स्वयं श्रीलक्ष्मीजीतककी चिन्ता नहीं करते। भक्तोंकी मान-मर्यादा और सुख-दुःखको अपना समझनेका तो उन्होंने मानो अटल व्रत ही ले रखा है—

हम भगतन के भगत हमारे।
सुन अरजुन! परतिग्या मेरी, यह व्रत टरत न टारे॥

ऐसे महामहिम, भाग्यवान् और भगवत्स्वरूप भक्तोंके स्मरण-ध्यानमात्रसे ही पापराशि भस्म हो जाय, मुक्ति दासीकी तरह पीछे-पीछे घूमे और प्रभुके चरणोंमें अचल मति, रति और गति प्राप्त हो जाय तो कौन-सा आश्चर्य है। भगवान्‌की तरह महापुरुषोंके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है। उनके स्वरूपका ध्यान करनेसे उनके भाव, गुण और चरित्र हृदयमें आ जाते हैं, उनका स्वरूप चित्तमें अंकित हो जाता है और जैसे प्रकाशके आते ही अन्धकार मिट जाता है, वैसे ही भक्तोंके चरित्र-गुणादिकी स्मृति अन्तःकरणमें आते ही समस्त कलुषको नष्ट कर देती है।

भगवान्‌के भक्तोंकी महिमा अनन्त और अपार है। श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराण आदिमें जगह-जगह उनकी महिमा गायी गयी है; किंतु उसका किसीने पार नहीं पाया। वास्तवमें भक्तोंकी तथा उनके गुण, प्रभाव और संगकी महिमा कोई वाणीके द्वारा गा ही नहीं सकता। शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया है अथवा वाणीके द्वारा जो कुछ कहा जाता है, उससे भी उनकी महिमा अत्यन्त बढ़कर है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

~~०~~

* यहाँ दिये गये गणेश-भक्तोंके अधिकांश चरित्र मराठीके 'श्रीगणेश-कोश'के आधारपर प्रस्तुत किये गये हैं। एतदर्थ हम उक्त कोशके सम्पादक एवं श्रीगणेश-भक्तोंके चरित्र-लेखक महोदयोंके हृदयसे आभारी हैं। —लेखक

श्रीगणेशपुराण—एक परिचय

अत्यन्त प्राचीन कालकी बात है। सौराष्ट्रदेशके प्रसिद्ध देवनगरमें शास्त्र-मर्मज्ञ सोमकान्त नामक धर्मपरायण एक नरेश थे। वे अतिशय सुन्दर, विद्वान्, धनवान्, तेजस्वी एवं पराक्रमी थे। उनकी बुद्धिमती, अनिन्द्य सुन्दरी, धर्मपरायणा सती पत्नीका नाम सुधर्मा था। सुधर्माके गर्भसे हेमकण्ठ नामक अत्यन्त सुन्दर, शूर, पराक्रमी एवं विद्या-विनय-सम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ। हेमकण्ठ अपने माता-पिताके सर्वथा अनुकूल था और वह सोमकान्तके शासन-कार्यमें दक्षतापूर्वक सहयोग प्रदान करता रहता था। रूपवान्, विद्याधीश, क्षेमकर, ज्ञानगम्य और सुबल नामक पाँच स्वामिभक्त अमात्य भी राजा सोमकान्तकी प्रत्येक रीतिसे सेवा किया करते। सोमकान्तके राज्यमें प्रजा समृद्ध एवं सुखी थी। वह सर्वथा निरापद जीवन व्यतीत करती थी। साधु और ब्राह्मण निश्चिन्त होकर श्रीभगवान्‌की आराधना किया करते थे।

सहसा सोम-तुल्य राजा सोमकान्तको गलितकुष्ठ हो गया। उनके शरीरमें सर्वत्र घाव हो गये। उनसे रक्त और पीब बहने लगा। नरेशने प्रख्यात चिकित्सकोंसे अनेक उपचार करवाये, किंतु उनसे उनको कोई लाभ नहीं हुआ। यशस्वी नरपति अत्यन्त निर्बल तो हो ही गये थे, उनके व्रणोंमें कीड़े पड़ गये और उनसे दुर्गन्ध निकलने लगी।

अत्यन्त दुःखी होकर देवनगर-नरेशने अपना शेष जीवन अरण्यमें जाकर तपश्चरणमें व्यतीत करनेका निश्चय किया। उन्होंने विधिपूर्वक अपने सुयोग्य पुत्र हेमकण्ठको आचार, धर्म और नीतिकी शिक्षा दी। तदनन्तर उसे राज्य-पदपर अभिषिक्त कर दिया। नरेशने अपने परम बुद्धिमान् एवं राजभक्त क्षेमकर, रूपवन्त और विद्याधीश नामक अमात्यत्रयको युवराजके सहयोगसे सुचारुरूपसे राज्य-संचालनका आदेश प्रदान किया।

तदनन्तर राजा सोमकान्तने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की। फिर उन्हें विविध प्रकारके व्यंजनोंसे तृप्त कर बहुमूल्य दक्षिणाएँ प्रदान कीं। राजा वनके लिये प्रस्थित हुए तो प्रजावत्सल नरेशके वियोगकी कल्पनासे समस्त प्रजा व्याकुल हो गयी। हेमकण्ठके दुःखकी सीमा नहीं थी। वह प्रजाके साथ रोता हुआ पिताके साथ पीछे-पीछे चल रहा था। किंतु नरेशने अपनी सहधर्मिणी सुधर्मा तथा सुबल और ज्ञानगम्य—दो अमात्योंके अतिरिक्त अन्य सबको समझाकर लौट जानेका आदेश दिया। हेमकण्ठको विवशतः अपनी प्रजाके साथ लौटना पड़ा।

चिन्तित, दुःखी, पीड़ित, निराश और उदास नरेश अपनी पत्नी सुधर्मा और दोनों अमात्योंके साथ वनके कष्ट सहते चले जा रहे थे। सती सुधर्मा अपने पतिकी निरन्तर सेवा किया करती और दोनों मन्त्री उनके लिये फल-फूल ढूँढ़कर ले आते। इस प्रकार यात्रा करते हुए वे सघन वनमें एक सरोवरके तटपर पहुँचे।

सोमकान्त व्रणोंकी पीड़ा और यात्राके कष्टसे लेट गये थे। सुधर्मा उनके चरण दबा रही थी। दोनों मन्त्री फल-मूलके लिये कुछ दूर निकल गये थे।

उसी समय जल भरनेके लिये कलश लिये एक तेजस्वी मुनिकुमार सरोवरके तटपर पहुँचे। सती सुधर्माने उन मुनिपुत्रसे पूछा—'आप किसके पुत्र हैं और यहाँ कैसे पधारे हैं?'

अत्यन्त मधुर वाणीमें ऋषिकुमारने उत्तर दिया—'मैं महात्मा भृगुकी सती पत्नी पुलोमाका पुत्र हूँ। च्यवन मेरा नाम है। आपलोग कौन हैं और इस निबिड़ वनमें कैसे आये हैं?'

अत्यन्त दुःखी सुधर्माने मुनिकुमारसे अपना विस्तृत परिचय देते हुए कहा—'महात्मन्! परम प्रतापी, समस्त ऐश्वर्योंका उपभोग करनेवाले मेरे स्वामी पता नहीं, किस कर्मका फल भोग रहे हैं? ऋषि स्वाभाविक दयालु होते हैं। आप दयापूर्वक हमारे कल्याणका कोई उपाय कीजिये।' अत्यन्त दुःखके कारण रानीके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे।

मुनिपुत्र च्यवनने चुपचाप सरोवरके जलसे कलश भरा और शीघ्रतासे अपने आश्रम पहुँचे। वहाँ महर्षि भृगुने उनसे विलम्बका कारण पूछा तो उन्होंने राजा सोमकान्तकी दुर्दशा और उनकी पत्नीकी अद्भुत सेवाका अत्यन्त करुण वर्णन सुनाया। कृपामय महात्मा

भृगुने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! तुम उन लोगोंको यहीं ले आओ।'

च्यवन पुनः सरोवर-तटपर पहुँचे। तबतक राजाके दोनों अमात्य भी वहाँ आ गये थे। च्यवनने महारानीसे कहा—'माता! मेरे तपस्वी पिताने आपलोगोंको आश्रममें बुलाया है।'

सुधर्मा अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह अपने पति एवं सेवकोंसहित मुनिपुत्रके पीछे-पीछे महर्षिके आश्रमपर पहुँची।

महर्षि भृगुका आश्रम अत्यन्त पवित्र एवं सुखद था। उसमें सर्वत्र विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्प खिले थे। आश्रममें वृक्षोंपर विविध प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे थे। विडाल, नेवला, बाज, मयूर, सर्प, गज, गाय, सिंह और व्याघ्र आदि सभी प्राणी अपना वैरभाव त्यागकर एक साथ सुखपूर्वक रह रहे थे। वेद-पाठ हो रहा था और यज्ञ-धूमसे समस्त आश्रम पावनताका विग्रह बना हुआ था।

सोमकान्त, उनकी पत्नी सुधर्मा और दोनों मन्त्रियोंने व्याघ्रचर्मपर आसीन परम तेजस्वी तपस्वी महर्षि भृगुको देखा तो दण्डकी भाँति उनके चरणोंपर गिर पड़े। नरेशने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'प्रभो! आपके दर्शनसे मेरे पुण्य उदित हो गये। मैंने जीवनभर धर्मका पालन किया है, किंतु पता नहीं, मेरे किस महान् पातकसे मेरी ऐसी दुर्दशा हो रही है कि मेरा जीवन दुर्वह हो गया है। मेरे सभी प्रयत्न विफल हो गये हैं। अब मैं आपकी शरणमें हूँ। आपके आश्रममें हिंस्र पशुओंने भी अपना सहज वैर त्याग दिया है। दयामय! आप मुझपर दया करें।'

नरेशके करुण वचन सुन महर्षि भृगु कुछ क्षणोंके लिये ध्यानस्थ हुए और फिर उन्होंने उनसे कहा—'राजन्! तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें रोगसे छूटनेका उपाय बताऊँगा। अभी तुमलोग यात्रासे थके हुए हो; स्नान, भोजन और विश्राम करो।'

वहाँ सबने तेल लगाकर स्नान किया और फिर वे भोजन करने बैठे। अनेक प्रकारके सुस्वादु षड्रस व्यंजन थे। राजा, रानी और अमात्य उक्त पवित्रतम आहारसे पूर्ण तृप्त हुए और फिर परम त्यागी महर्षि भृगुके आश्रममें राज्योचित व्यवस्थासे चकित-विस्मित नरेश अपनी पत्नी एवं सेवकोंसहित सुकोमल शय्यापर विश्राम करने लगे।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणोदय हुआ। महर्षि भृगु स्नान, संध्या, जप और होम आदिसे निवृत्त हुए ही थे कि दैनिक कृत्य कर राजा सोमकान्तने अपनी सहधर्मिणी सुधर्मा एवं अमात्योंसहित महामुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके सम्मुख बैठ गये।

'राजन्! पूर्वके जिन कुकर्मोंसे तुम्हें गलितकुष्ठकी यह दारुण यातना सहनी पड़ रही है, उसे बता रहा हूँ; तुम ध्यानपूर्वक सुनो!' करुणहृदय महात्मा भृगु राजा सोमकान्तको उनके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाते हुए कहने लगे—''विन्ध्यगिरिके निकट कोल्हार नामक सुन्दर नगरमें चिद्रूप नामक एक धन-वैभवसम्पन्न वैश्य था। पतिके अनुकूल जीवन व्यतीत करनेवाली उसकी सुन्दरी पत्नीका नाम सुभगा था। तुम उसी सुभगाके पुत्र थे। तुम्हारा नाम था कामद।''

एकमात्र पुत्र होनेके कारण माता-पिताने तुम्हारा अतिशय प्रीतिपूर्वक पालन किया। युवक होनेपर कुटुम्बिनी नामक सुन्दरी और सद्धर्मपरायणा युवतीसे तुम्हारा विवाह हुआ। कुटुम्बिनीके गर्भसे तुम्हारे सात कन्याएँ और पाँच पुत्र उत्पन्न हुए।

कुछ समय बाद तुम्हारे पिता चिद्रूपका शरीरान्त हो गया। तुम्हारी पतिपरायणा माता सुभगा अपने पतिके साथ सती हो गयी। तुम धनसम्पन्न और पूर्ण स्वतन्त्र थे। दुराचरणमें तुमने अपना सर्वस्व नष्ट कर दिया। यहाँतक कि घर भी बिक गया। तुम्हारी सरला पत्नी समझाती, पर तुम उसकी उपेक्षा कर देते। विवशतः वह अपनी संततियोंके साथ अपने पिताके घर जाकर जीवन-निर्वाह करने लगी।

तुम दुराचरण-सम्पन्न सर्वथा निरंकुश थे। बलपूर्वक दूसरेका धन छीनकर मद्य, मांस और परस्त्रीका सेवन करते। तुम्हारी दुष्टता पराकाष्ठापर पहुँच गयी, तब राजाज्ञासे तुम नगरसे निर्वासित कर दिये गये। तुम वनमें पहुँचे। वहाँ तुम दस्यु-जीवन व्यतीत करने लगे। तुमसे भयभीत होकर मनुष्य ही नहीं, पशु भी प्राण बचाकर भागते थे।

तुम पर्वतकी गुफामें रहते थे। तुम्हारे श्वशुरने तुमसे भयभीत होकर तुम्हारी पत्नी और बच्चोंको तुम्हारे पास पहुँचा दिया। तुम्हारी पत्नीके पास वस्त्राभरण थे और तुम्हारे पुत्र भी तेजस्वी थे; किंतु तुम रात्रिमें यात्रियोंको लूटकर उनके धन और स्त्रीका उपभोग करते।

तुम सर्वथा निर्दय और हृदयहीन हो गये थे। एक बार एक ब्राह्मण अपनी युवती पत्नीके साथ उधरसे जा रहे थे। तुमने उन्हें पकड़ लिया। ब्राह्मणने करुण प्रार्थना की, धर्मोपदेश दिया, पर तुमपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तुमने उन दीन ब्राह्मणदेवताका मस्तक उतार लिया। इस प्रकार तुम प्रतिदिन स्त्री, वृद्ध और बालकोंकी निर्दयतापूर्वक हत्या करते ही रहे। तुम सर्वथा विवेक-भ्रष्ट हो गये थे।

तुम्हारा यौवन तो हत्या, लूट, परधन एवं परदारापहरणमें बीता; पर देखते-ही-देखते वृद्धावस्था आ गयी। तुम निर्बल हो गये। तुम्हारा शरीर काँपने लगा और तुमको अनेक प्रकारके कष्ट होने लगे। इस स्थितिमें तुम्हारा स्वजन या हितैषी कोई नहीं रहा। पुत्र और नौकर आदि सभी तुम्हारा तिरस्कार करते रहते।

तुम निरन्तर दुःखी रहने लगे। तुमने सोचा, 'अपना शेष धन दान कर दूँ।' तुम्हारी प्रार्थनासे एक ब्राह्मण वनमें गये। उनकी प्रार्थनापर ऋषिगण तुम्हारे पास आये, पर जब तुमने अपना धन उन्हें स्वीकार करनेके लिये आग्रह किया तो वे तुरंत उलटे पैर वापस चले गये। सबने एक ही बात कही—'तेरे-जैसे अधम, हत्यारे, मद्यप, परस्त्रीगामी एवं क्रूरतम पापात्माका दिया धन लेनेका साहस कौन करेगा?'

तुम रोगाक्रान्त थे। मुनियों और ब्राह्मणोंके वचन सुन मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगे। तुम्हारा हृदय हाहाकार कर रहा था, पर कोई वश नहीं था। तुम्हारे पास चाँदी, सोना और रत्नादि अधिक थे। तुमने ब्राह्मणोंके परामर्शसे एक पुरातन गणेश-मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया। मन्दिरके भव्य और आकर्षक बनवानेमें तुम्हारा सारा धन समाप्त हो गया। कुछ तुम्हारी स्त्री और कुछ तुम्हारे पुत्रों और मित्रोंने ले लिया। कुछ ही समय बाद तुम्हारा देहावसान हो गया।

यमदूतोंने तुम्हें बड़ी यातना दी। यमके पूछनेपर तुमने पहले पुण्यकर्मोंका फल प्राप्त करना स्वीकार किया। फलतः अत्यधिक कान्तिपूर्ण गणेश-मन्दिरका जीर्णोद्धार करानेके कारण तुम सुन्दर राजा सोमकान्त हुए और तुम्हें अत्यन्त रूपवती धर्मपत्नी भी प्राप्त हो गयी।''

सर्वथा निःस्पृह, परम वीतराग, दयामूर्ति महर्षि भृगु राजा सोमकान्तको उसके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुना रहे थे, किंतु ऋषि-वचनोंपर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। राजाके मनमें संदेह उत्पन्न होते ही उनके शरीरसे विविध रंगके पक्षी निकल पड़े और उनके अंग-प्रत्यंग नोच-नोचकर खाने लगे।

दुःखसे छटपटाते हुए राजाने महामुनि भृगुसे करुण प्रार्थना की—'मुनिनाथ! आपके इस वनमें पशु भी अपना सहज वैर त्याग देते हैं, फिर आपकी शरणमें आये मुझ कुष्ठीको ये पक्षी कष्ट क्यों दे रहे हैं? आप कृपापूर्वक मेरी रक्षा करें।'

'तुमने मेरे वचनपर संदेह किया, इस कारण मैंने तुम्हें इतना अनुभव करा दिया। अब ये पक्षी शीघ्र चले जायँगे।' महर्षिने क्षणभर ध्यानस्थ होनेके अनन्तर कहा—'तुम्हारे पातक महान् हैं, तथापि मैं उन्हें दूर करनेका उपाय बताऊँगा।'

'हुं' महामुनि भृगुके उच्चारण करते ही समस्त पक्षी अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर महात्मा भृगुने राजा सोमकान्तको गणेशका 'अष्टोत्तरशतनाम' सुनाया और उससे अभिमन्त्रित जल राजाके शरीरपर छिड़क दिया। उक्त जलका छींटा पड़ते ही राजाकी नासिकासे एक छोटा काले मुखवाला बालक धरतीपर गिर पड़ा। थोड़ी ही देरमें वह अत्यन्त विशाल और भयानक हो गया। उसके मुखसे अग्निकी ज्वालाएँ निकल रही थीं। वहाँ सर्वत्र रक्त और पीब फैल गया। भयाक्रान्त आश्रमवासियोंको भागते देखकर महर्षि भृगुने उस पुरुषसे उसका परिचय पूछा।

उक्त भयानक पुरुषने उत्तर दिया—'मैं प्रत्येक प्राणीके शरीरमें रहनेवाला पापपुरुष हूँ। आपके अभिमन्त्रित जलका छींटा पड़नेसे इस राजाके शरीरसे निकला हूँ। आप मुझे निवास एवं भक्ष्य प्रदान कीजिये; अन्यथा मैं आपके सम्मुख ही सबके साथ इस राजा सोमकान्तको भी खा जाऊँगा।'

महामुनि भृगुने वहाँसे हटकर एक शुष्क आम्रवृक्षके कोटरकी ओर संकेत करते हुए उक्त पापपुरुषसे कहा—'नीच! तू सूखे पत्तोंको खाकर इस कोटरमें रह; अन्यथा मैं तुझे भस्म कर दूँगा।'

महामुनि भृगुकी वाणी सुनकर पापपुरुषने उस वृक्षका स्पर्श किया ही था कि पक्षियोंसहित वृक्ष तुरंत जलकर भस्म हो गया। मुनिसे भयभीत पापपुरुष भी उस भस्ममें छिप गया। इसके अनन्तर महर्षि भृगुने राजा सोमकान्तके समीप जाकर कहा—"जब तुम 'गणेशपुराण' सुनना प्रारम्भ करोगे, तब इस भस्मसे पुनः नया आम्रवृक्ष उगेगा। जिस प्रकार यह वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ता जायगा, उसी प्रकार तुम्हारे पाप भी नष्ट होते जायँगे।"

चकित होकर नरेशने अत्यन्त विनयपूर्वक महर्षिसे पूछा—'मुनिवर! ऐसा पुराण तो मैंने न कहीं देखा और न सुना ही है। वह कहाँ प्राप्त होगा और उसके वक्ता कहाँ हैं?'

दयालु मुनि भृगुने कहा—"पहले उसे वेदगर्भ ब्रह्माने महर्षि व्यासको सुनाया था और उनकी कृपासे वह पापनाशक 'गणेशपुराण' मुझे प्राप्त हुआ। तुम तीर्थमें जाकर पहले 'गणेशपुराण'-श्रवणका संकल्प कर लो।"

महर्षि भृगुकी आज्ञासे राजा सोमकान्तने प्रख्यात भृगुतीर्थमें स्नान किया और फिर पवित्र मनसे हाथमें जल लेकर संकल्प किया—'मैं श्रद्धा और विधिपूर्वक गणेशपुराण-श्रवण करूँगा।'

राजाके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। संकल्पका जल धरतीपर छोड़ते ही वे पूर्णतया रोगमुक्त होकर पूर्ववत् सुन्दर और तेजस्वी हो गये। गलितकुष्ठकी पीड़ाकी बात तो दूर—शरीरपर उसका कोई चिह्न भी कहीं शेष नहीं रहा।

हर्षमग्न नरेश महामुनिके समीप पहुँचे तो उनके चरणोंपर गिर पड़े। उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'मुनिनाथ! अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि गणेशपुराण-श्रवणके संकल्पका जल छोड़ते ही मेरी सारी व्याधियाँ दूर हो गयीं।'

महामुनिने राजाका हाथ पकड़कर उठाया और उन्हें बैठनेके लिये एक आसन दिया। राजाने हाथ जोड़कर कहा—'दयामय! आपकी दयासे मेरा सारा कष्ट दूर हो गया। अब आप कृपापूर्वक मुझे 'गणेशपुराण'की कथा सुनाइये।'

मुनिवर भृगुने कहा—'राजन्! मैं यह पुराण तुम्हें सुनाता हूँ; ध्यानपूर्वक सुनो।'

महर्षिने पापनाशक परम पावन गणेशपुराणकी कथा प्रारम्भ करनेके पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये सर्वप्रथम गणेश-वन्दना की—

नमस्तस्मै गणेशाय ब्रह्मविद्याप्रदायिने।
यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे॥

(गणेशपुराण १।१।१)

'जिनका नाम विघ्नोंका समुद्र सोख लेनेके लिये अगस्त्यका काम करता है, उन ब्रह्म-विद्या-प्रदाता गणेशको नमस्कार है।'

इस प्रकार गणेशपुराण गणेश-वन्दनसे प्रारम्भ हुआ।

पुराण-शब्दका साधारण अर्थ है—पुराना। जिस ग्रन्थमें पुरातन कथाओंका संकलन है, वह 'पुराण' है। किंतु 'पुराण' शब्दकी व्याख्या अत्यन्त विस्तृत है। श्रीमद्भागवतके मतानुसार पुराणके दस लक्षण हैं—

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।

(श्रीमद्भा० १२।७।९-१०)

"पुराणोंके पारदर्शी विद्वान् बतलाते हैं कि पुराणोंके दस लक्षण हैं—'विश्वसर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था (प्रलय), हेतु (ऊति) और अपाश्रय।'

किंतु श्रीलोमहर्षण सूतने पुराणके निम्नलिखित पाँच लक्षणोंका ही उल्लेख किया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

'मन्वन्तरविज्ञान, सृष्टिविज्ञान, प्रतिसृष्टिविज्ञान, वंशविज्ञान और वंश्यानुचरितविज्ञान।'

ये पाँचों लक्षण भी पाँच-पाँच प्रकारके बताये गये हैं; किंतु विस्तार-भयसे यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

'पुराण' अनादि हैं। प्रारम्भमें एक ही पुराण था, पर था अत्यन्त विस्तृत। उसकी श्लोक-संख्या शतकोटि थी। उसे लोकपितामहने ऋषियोंको सुनाया था। फिर वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादिकालीन पुराणको लुप्त होते देखकर भगवान् कृष्णद्वैपायनने पुराणोंका प्रणयन किया। उन्होंने पुराणोंकी श्लोक-संख्या चार लाख कर दी और उन पुराणोंमें निष्ठाके अनुरूप आराध्यकी प्रतिष्ठा कर कृपामूर्ति महर्षि व्यासने चारों वर्णोंके लिये वेदार्थ सहज सुलभ कर दिया।

अष्टादश पुराण प्रसिद्ध हैं, किंतु कुछ विद्वान् उनके महापुराण, उपपुराण, अतिपुराण और पुराण भेद करते हैं और इन प्रत्येककी भी अष्टादश संख्या बतलाते हैं।* इस प्रकार गणेशपुराण अतिपुराण है। किंतु इस पंचलक्षणात्मक पुराणकी अपनी विशिष्टता है। आदिदेव गणपतिके उपासकोंका तो यह प्राणप्रिय कण्ठहार है ही, समस्त आस्तिक-समुदायका अत्यन्त प्रिय और आदरणीय ग्रन्थ है। गणेश-साहित्यमें इसका स्थान प्रधान है। 'मुद्गलपुराण' से भी प्राचीन होनेके कारण स्वाभाविक ही इसकी मान्यता अधिक है।

श्रुतियोंमें जिस सर्वात्मा, सर्वत्र, अनादि, अनन्त, अखण्ड-ज्ञानसम्पन्न पूर्णतम परमात्मा और उनके पंचदेवात्मक स्वरूपका वर्णन किया गया है, उसके अनुसार परब्रह्म परमेश्वर गणेशका विस्तृत विवेचन 'गणेशपुराण'में किया गया है। वहाँ आदिदेव गणेशको प्रणवरूपी बताया गया है और कहा गया है कि 'समस्त देवता और मुनि उन्हीं परमप्रभुका स्मरण करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र उन्हींकी पूजा करते हैं। वे सर्वकारण-कारण प्रभु ही समस्त जगत्के हेतु हैं। उन्हींकी आज्ञासे विधाता सृष्टि रचते हैं, विष्णु पालन एवं शिव संहार करते हैं। उन्हीं परमप्रभुके आदेशसे सूर्यदेव चलते हैं, वायु बहती है, पृथ्वीपर वृष्टि होती है और अग्नि प्रज्वलित होती है। अमित महिमामय प्रभु मंगलमय हैं, करुणामय हैं।'

गणेशपुराण दो खण्डोंमें विभक्त है। पूर्वार्ध (उपासना-खण्ड)-में ९२ अध्याय और ४,०९३ श्लोक हैं। दूसरा उत्तरार्ध (क्रीड़ाखण्ड) १५५ अध्यायमें पूर्ण हुआ है। उसकी श्लोक-संख्या ६,९८६ है। इस प्रकार सम्पूर्ण गणेशपुराण २४७ अध्यायों और ११,०७९ श्लोकोंमें वर्णित है। पुराणकी दृष्टिसे इसका कलेवर भी लघु नहीं है। इसके प्रधान विषय प्रथमेश्वर गणेश ही हैं।

अत्यन्त प्रांजल भाषामें गणेश-स्वरूप, गणेश-तत्त्व, गणेश-महिमा, गणेश-मन्त्र-माहात्म्य एवं गणेशकी सुमधुर लीला-कथाके माध्यमसे महिमामय गणेश-स्तवन 'गणेशपुराण'- में इस प्रकार वर्णित हैं कि श्रोता अन्ततक भगवान् गणेशके ध्यानमें तन्मय रहता है। लीला-कथा उसके मर्मको स्पर्श करती चलती है। गणेशपुराणमें आद्यन्त सत्त्वकी प्रतिष्ठा एवं तमका विरोध पाया जाता है। आसुरी प्रवृत्तियोंके विनाश एवं दैवी-सम्पदाओंकी स्थापना एवं वृद्धिके लिये ही गजमुखकी अवतारणा होती है। एक बार ग्रन्थ आरम्भ कर लेनेपर पाठक और श्रोताके लिये उसे बीचमें छोड़ देना सहज सम्भाव्य नहीं होता। किंतु गणेशके गम्भीरतम वचनोंको समझनेके लिये विद्या, बुद्धि एवं गहन विचारके साथ श्रद्धा और भक्ति भी अपेक्षित है।

शौनकमुनिने बारह वर्षोंका ज्ञानयज्ञ किया था। वहाँ अठारह पुराणोंकी मंगलमयी कथा हुई थी। उस कथासे अतृप्त ऋषियोंने सूतजीसे श्रीभगवान्‌की भुवनपावनी लीला-कथा और सुनानेकी प्रार्थना की। तब सूतजीने

* (१) महापुराण—ब्राह्म, पद्म, शिव, विष्णु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड और ब्रह्माण्ड।

(२) उपपुराण—भागवत, माहेश्वर, ब्रह्माण्ड, आदित्य, पराशर, सौर, नन्दिकेश्वर, साम्ब, कालिका, वारुण, औशनस, मानव, कापिल, दुर्वासस्, शिवधर्म, बृहन्नारदीय, नारसिंह और सनत्कुमार।

(३) अतिपुराण—कार्तव, ऋजु, आदि, मुद्गल, पशुपति, गणेश, सौर, परानन्द, बृहद्धर्म, महाभागवत, देवी, कल्कि, भार्गव, वसिष्ठ, कौर्म, गर्ग, चण्डी और लक्ष्मी।

(४) पुराण—बृहद्विष्णु, शिव उत्तरखण्ड, लघु बृहन्नारदीय, मार्कण्डेय, वह्नि, भविष्योत्तर, वराह, स्कन्द, वामन, बृहद्वामन, बृहन्मत्स्य, स्वल्पमत्स्य, लघुवैवर्त और पाँच प्रकारके भविष्य।

उन्हें गणेशपुराण सुनाकर तृप्त किया। यज्ञके नष्ट होनेपर दक्ष अत्यन्त दुःखी थे। उस समय महर्षि मुद्गलने उन्हें गणेशपुराणकी लीला-कथा सुनायी और वहीं ब्रह्मासे सुने हुए महर्षि व्यास-कथित गणेशपुराणको महामुनि भृगुने देवनगरनरेश सोमकान्तको उनके लौकिक एवं पारलौकिक मंगलके लिये सुनानेकी कृपा की।

उपासनाखण्डमें परात्पर परमेश्वर, सच्चिदानन्दघन गणेशका विस्तृत वर्णन है। गणेश जगत्कर्ता, जगत्स्वरूप, जगत्पालक, जगदाधार, सर्वसमर्थ, सर्वान्तर्यामी, सर्वत्र एवं सर्वान्तरात्मा हैं। ब्रह्मादि देव उनकी इच्छाका अनुसरण करते हैं। वे भक्तोंके विघ्नोंका विनाश करनेवाले मंगलमूर्ति, मंगलालय, विघ्नकर्ता, विघ्नहर्ता एवं विघ्नराज हैं। वे परब्रह्मस्वरूप सर्वानन्द-प्रदाता सर्वानन्दमय हैं।

पितामहने सृष्टिरचना प्रारम्भ की, उस समय गणेशने उन्हें सहायता प्रदान की। इस वर्णनके अनन्तर महर्षि भृगुने गृत्समद, रुक्मांगद एवं त्रिपुरासुरका वृत्तान्त सुनाया। फिर उन्होंने महिमामय 'गणेशसहस्रनाम'का गान किया। इसी 'गणेशसहस्रनाम'के द्वारा भगवान् शंकर त्रिपुर-वध करनेमें सफल हुए।

इसके बाद गणेशपार्थिव-पूजा, गणेशव्रत, संकष्ट-चतुर्थीव्रत, अंगारकचतुर्थीव्रत एवं उसका माहात्म्य सुनाकर महामुनिने सोमकान्तको गणेशद्वारा चन्द्रमाको शाप-प्रदान एवं उनपर अनुग्रहकी कथा सुनायी। तदनन्तर उन्होंने दूर्वा-माहात्म्यका वर्णन किया।

फिर उपासनाखण्डमें पुत्रप्राप्त्यर्थ संकष्टचतुर्थीव्रतके सोद्यापन वर्णनके अनन्तर तारकासुर-वध, काम-दहन, परशुरामका तप एवं उन्हें गणेश-दर्शनकी प्राप्ति आदि कथाओंमें सर्वत्र करुणामूर्ति प्रभु गणेशकी करुणा, उनकी भक्तवत्सलता एवं महिमाके दर्शन होते हैं।

इसके बाद स्कन्दोत्पत्ति, मदनकी पुनरुत्पत्ति, देवर्षि नारदकी प्रेरणासे शेषके द्वारा गजाननकी आराधना एवं स्तुतिका विशद वर्णन करते हुए गजवक्त्रका माहात्म्य गान किया गया है। गजवक्त्रके मंगलमय नाम और रूपका निरूपण करनेके साथ उपासनाखण्ड पूरा हुआ है।

इसके अनन्तर गणेशपुराणके उत्तरार्ध (क्रीडाखण्ड)-में देवाधिदेव गजमुखके अवतरित होकर पृथ्वीका भार उतारनेकी पुण्यमयी कथाका वर्णन किया गया है। उन कथाओंमें गणेशकी बाल-लीलाओं, असुर-संहार एवं भक्तोंकी कामना-पूर्तिका मर्मस्पर्शी चित्रण है। गणेशपुराणके क्रीडाखण्डके अनुसार सर्वसमर्थ भक्तवत्सल करुणामय गणेश प्रत्येक युगमें त्रैलोक्यविजयी अजेय असुरके वधके लिये अवतरित होते हैं। अनीति, अधर्म एवं अनाचरणसम्पन्न असुरोंका विनाश होता है और धर्ममूर्ति परमात्मा गजानन धर्मकी स्थापना करते हैं। धरणीका भार उतरता है और दुःखी देवता, ऋषि तथा ब्राह्मणादि प्रसन्न होकर अपने धर्मका पालन करने लगते हैं।

सत्ययुगमें परमप्रभु गणेशका प्रथम अवतार महोत्कट विनायकके रूपमें हुआ था। परमतेजस्वी परमप्रभु विनायकके दस भुजाएँ थीं और सिंह उनका वाहन था। वे महात्मा कश्यपकी परम सती सहधर्मिणी अदितिके यहाँ प्रकट हुए थे। उस अवतारमें उन्होंने देवान्तक और नरान्तक-जैसे दुर्दान्त असुरोंका वध किया था।

त्रेतामें इन त्रैलोक्यत्राता प्रभुने शिवप्रिया पार्वतीके यहाँ अवतार लिया। उनकी अंगकान्ति चन्द्र-तुल्य थी। उनके छः हाथ थे और उनका वाहन मयूर था। उन्होंने माता-पिता, ऋषियों, ऋषिपत्नियों एवं मुनि-पुत्रोंको अलौकिक सुख प्रदान किया। तदनन्तर अनेक असुरोंके साथ वरप्राप्त महादैत्य सिन्धुका वध कर त्रैलोक्यमें धर्मकी स्थापना की। देवता, मुनि, ब्राह्मणों एवं सद्धर्मपरायण पुरुषोंका दुःख दूर हुआ; उन्हें सुख-शान्ति प्राप्त हुई।

द्वापरमें सिन्दूरासुरके क्रूरतम शासनमें त्रैलोक्य विकल-विह्वल हो गया था। देवता और ऋषि आदि तपस्वी गिरि-गुफाओं और अरण्योंमें छिप गये थे। उस समय परमप्रभु विनायक गौरीके यहाँ प्रकट हुए। अपने दिये वचनके अनुसार उन्होंने भगवान् शिवसे कहा कि 'आप मुझे राजा वरेण्यकी सद्यःप्रसूता सहधर्मिणी पुष्पिकाके समीप पहुँचा दें।' आशुतोष शिवकी आज्ञासे नन्दी उन्हें वरेण्य-पत्नी पुष्पिकाके प्रसूति-गृहमें रख आये। वे परमप्रभु अरुणवर्णके थे। उनके चार भुजाएँ थीं और उनका वाहन मूषक था। उनका नाम 'गजानन' प्रसिद्ध हुआ।

महर्षि पराशर एवं उनकी सती धर्मपत्नी वत्सलाने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक उन परमप्रभु गजाननका पालन किया। उन दयामयने महादैत्य सिन्दूरको मुक्ति प्रदान कर त्रैलोक्यकी भयानक विपत्तिका निवारण किया।[1]

तदनन्तर करुणामय गजाननने अपने पिता राजा वरेण्यके अशेष कल्याणके लिये उन्हें अमृतमय उपदेश दिया। वह 'गणेशगीता'के नामसे प्रसिद्ध है। इस गीतामें भगवान् गजाननने सर्वप्रथम सांख्यसारतत्त्वका प्रतिपादन किया है। तदनन्तर कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं कर्मसंन्यासयोगका निरूपण कर योगाभ्यासकी प्रशंसा करते हुए बुद्धि-योग और उपासना-योगका सुविस्तृत वर्णन किया है। फिर करुणामय प्रभु गजाननने विश्वरूपदर्शन एवं क्षेत्रज्ञानज्ञेय-विवेकका अत्यन्त प्रभावोत्पादक निरूपण करते हुए योगोपदेशपूर्ण एवं विविध कल्याणकर वचनोंसे अपना सदुपदेश पूर्ण किया। गोपालनन्दन योगेश्वर श्रीकृष्ण-कथित श्रीमद्भगवद्गीताकी भाँति यह गणेशगीता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं परमोपयोगी है। श्रीमद्भगवद्गीताके प्रायः समस्त विषय इस गणेशगीतामें आ गये हैं।

इसके अनन्तर गणेशपुराणमें कलिमें होनेवाले अधर्म एवं अनाचारका वर्णन करते हुए इस युगके अन्तमें सर्वभूतहितैषी गणेशके अवतारका वर्णन है। कलिमें जब पापका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा तब वे प्रभु गणेश श्याम कलेवरमें अवतरित होंगे। उनका नाम 'धूम्रकेतु' होगा। उनके दो भुजाएँ होंगी। अश्वारूढ़ धूम्रकेतु पापोंका सर्वनाश कर धर्मकी प्रतिष्ठा कर देंगे और फिर सत्ययुगके मंगलमय चरणोंसे धरती प्रमुदित होगी।

राजा सोमकान्तने यह पुण्यमयी गणेश-लीला-कथा अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एक वर्षतक सुनी। उस कथा-श्रवणके अद्भुत प्रभावसे वे रोगसे सर्वथा मुक्त एवं परम पवित्र हो गये। उनके लिये पवित्रतम गणेश-लोकसे विमान अवतीर्ण हुआ। गणेश-दूतोंने राजासे उस विमानमें बैठनेकी प्रार्थना की, तब अत्यन्त उपकृत भाग्यवान् राजा सोमकान्तने महर्षि भृगुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी अनुमति प्राप्त कर अपनी सहधर्मिणी और अमात्यद्वयसहित विमानमें बैठ गणेश-लोकके लिये प्रस्थित हुए। विमानमें आरूढ़ होनेपर राजाके पूछनेपर गणेश-दूतोंने काशी विश्वेश्वरके आवरणगत रहनेवाले छप्पन गणेशका नाम और उनके स्मरणका माहात्म्य सुनाया।

पुराणके अन्तिम अध्यायमें उसके श्रवणका माहात्म्य गान किया गया है। गणेशपुराणके पाठ, श्रवण और उसकी पूजाकी तो अमित महिमा बतायी ही गयी है, ग्रन्थरत्नके लिखने और उसे घरमें रखनेका भी फल बतलाते हुए कहा गया है—

यस्य गेहे गणेशस्य पुराणं लिखितं भवेत्।
न तत्र राक्षसा भूताः प्रेताश्च पूतनादयः॥
ग्रहा बालग्रहा नैव पीडां कुर्वन्ति कर्हिचित्।
तद्गृहं हि गणेशेन रक्ष्यते सर्वदा स्वयम्॥
इदं पुराणं शृणुयात् पूजयेद् वा समाहितः।
तस्य दर्शनतः पूता भवन्ति पतिता नराः॥

(गणेशपुराण २।१५५।९—११)

इस प्रकार इन ललित कथाओंके माध्यमसे इस पुराणके द्वारा पाठकों एवं श्रोताओंको आसुरी प्रवृत्तियोंसे सतत सजग रहनेकी प्रेरणा तो प्राप्त होती ही है, दैवी सम्पदाओं एवं उनके मूलस्रोत परब्रह्म परमेश्वर गजवक्त्रके चरणकमलोंमें श्रद्धा और भक्ति भी उदित होती है। उस श्रद्धा-भक्तिसे दयामय गणेश सहज ही द्रवित होकर भक्तका लोक एवं परलोक—दोनों सफल कर देते हैं।[2] अनन्त जन्मोंकी ज्वाला सदाके लिये शान्त कर अक्षय सुख-शान्ति प्रदान कर देते हैं। निश्चय ही यह गणेशपुराण गणेशोपासकोंके लिये सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ-रत्न है।

—शिवनाथ दुबे

~~○~~

१. दयामय गणेशके इन अवतारोंकी परम पुण्यमयी लीलाकथा इसी अंकके 'श्रीगणेश-लीला' शीर्षकमें पढ़नी चाहिये।
२. पुराणं हि गणेशस्य काममोक्षप्रदं नृणाम्। (गणेशपुराण २। १५५। २९)

मुद्गलपुराणका परिचयात्मक अध्ययन

(लेखक—श्रीरामलाल)

मुद्गलपुराण महर्षि मुद्गल और प्रजापति दक्षके संवादरूपमें महर्षि व्यासकी असाधारण देन है। इसमें आद्यपूज्य श्रीगणेशजीके अमित रहस्यपूर्ण चरित्रका अत्यन्त भक्तिपूर्ण वर्णन सुलभ है। श्रीगणेशजीकी प्रसन्नता और कृपासे ही मुद्गलपुराणका महत्त्व—सारतत्त्व (श्रीगणेशजीके) उपासक और भक्तकी समझमें आ सकता है। श्रीगणेशजी सदा ज्योतिर्मय हैं; वे समस्त ज्योतियोंकी ज्योति—चिन्तामणि हैं—

'सदा ज्योतिर्मयः साक्षाज्ज्योतिषां ज्योतिरुच्यते।'

(मुद्गलपुराण ५।४०।४७)

नाम-रूपविहीन श्रीगणेशजीका वेदोंमें वर्णन मिलता है। उनकी उपासनासे ब्रह्मभूयपदकी प्राप्ति होती है। मुद्गलपुराणमें श्रीशिवका श्रीविष्णुके प्रति कथन है—

'योगपूर्णं गणेशाख्यं ब्रह्मभूयपदप्रदम्।'

(२।३।२२)

श्रीगणेशजी योगियोंके हृदयमें नित्य संस्थित, बुद्धिप्रकाशक और समस्त सिद्धियोंके प्रदायक हैं। मुद्गलपुराणका समारम्भ ही उनके सिद्धिप्रद मंगलमय ध्यानसे किया गया है—

ध्याये स्थिरेण मनसा गणेशं सर्वसिद्धिदम्।
बुद्धिप्रकाशकं पूर्णं योगिनां हृदि संस्थितम्॥

(मुद्गलपुराण १।१।१)

मुद्गलपुराण अत्यन्त प्राचीन पौराणिक वाङ्मय है, जो शौनकके आग्रहसे रोमहर्षण नामक सूतद्वारा पूर्वकल्पमें नैमिषारण्यमें एकत्र वेदाध्यायी तथा यज्ञपरायण ऋषियोंके सम्मुख प्रकट किया गया था। व्यासके शिष्य सूतने व्यासके श्रीमुखसे सुना हुआ वेदशास्त्रार्थसम्पन्न, सर्वमान्य, सर्वसंशयनाशक मुद्गल-दक्षके संवादरूपमें प्रकट 'मुद्गलपुराण'का निरूपण किया। सूतने कहा—

'सकलं कथयिष्यामि व्यासेन कथितं च यत्।'

(मुद्गलपुराण १।१।३५)

यह निर्विवाद है कि यह पुराण समस्त महापुराणों तथा उपपुराणोंके रचयिता महर्षि व्यासकी वाणीका ही पुण्य प्रसाद है।

इस पुराणकी भूमिकामें सूतका कथन है कि 'दक्षप्रजापतिने मदोन्मत्त होकर शिवभागविहीन यज्ञका आरम्भ किया। दक्षकी कन्या बिना निमन्त्रणके ही यज्ञमें सम्मिलित हुईं; उनसे अपने पतिदेव शिवका अपमान नहीं सहा गया। रुद्रने विघ्न उपस्थित किया; वीरभद्रने यज्ञ-विध्वंस किया। यज्ञ-विध्वंससे व्याकुल दक्षको मुद्गलमुनिने श्रीगणेशके स्मरणका उपदेश दिया, जिनकी कृपासे यज्ञ पूर्णरूपसे समाप्त हो।' इसी प्रसिद्ध पौराणिक कथासे श्रीमुद्गलपुराणका आरम्भ होता है। इस भूमिकामें मुद्गलका प्रख्यात गणेशभक्तके रूपमें परिचय उपलब्ध होता है। उपर्युक्त दक्ष-यज्ञमें सूर्यके समान प्रकाशमान योगीन्द्र मुद्गलमुनिका आगमन हुआ। वे गणेशभक्त, सर्ववन्द्य, महायशस्वी और तपोनिधि थे—

तत्राजगाम भगवान् साक्षात् सूर्य इवोदितः।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो योगीन्द्रो मुद्गलो मुनिः॥
गणेशभक्तप्रवरः सर्ववन्द्यो महायशाः।
तपसां कर्मणां साक्षान्निधिरेष सनातनः॥

(मुद्गलपुराण १।१।५५-५६)

मुद्गलमुनिने दक्षसे कहा कि 'तुम चिन्ता मत करो; विघ्नराज श्रीगणेशका स्मरण करो; उनसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि सुलभ है, कुछ दुर्लभ नहीं है'—

मा चिन्तां कुरु भो दक्ष प्रजापालेन्द्रसत्तम।
विघ्नराजं स्मर त्वं वै तेन सर्वं न दुर्लभम्॥

(मुद्गलपुराण १।१।५९)

उन्होंने अमित विस्तारपूर्वक श्रीगणेशके अनेकों अवतार-चरित्रोंका वर्णन कर प्रजापति दक्षको श्रीगणेशजीकी कृपा तथा भक्तिसे सम्पन्न कर दिया।

मुद्गलपुराणके परिचयात्मक अध्ययनके संदर्भमें श्रीमुद्गलमुनिका संक्षिप्त तथा गणेशभक्तिपरक चरित्रका चिन्तन आवश्यक है। इस पुराणके प्रथम खण्डके अठारहवेंसे इक्कीसवें अध्यायोंमें उनके तपोमय गाणपत्य जीवनकी झाँकी मिलती है। मुद्गलमुनिके तपसे भयभीत होकर इन्द्रने महर्षि दुर्वासाके द्वारा उसे भंग कराना चाहा; दुर्वासाने छः बार परीक्षा लेनेके बाद उन्हें

स्वर्ग-प्राप्तिका वरदान दिया। विमान लेकर देवदूतके उपस्थित होनेपर उससे स्वर्गमें पुण्य क्षीण होनेपर पतनकी बात सुनकर उन्होंने कर्मभूमिपर ही रहनेका संकल्प किया। वे तप करनेके लिये अंगिरामुनिके आश्रममें गये। अंगिरामुनिने उन्हें ब्रह्मणस्पति श्रीगणेशका स्वरूप समझाया। उन्हें उनके भजनका उपदेश दिया। उनसे श्रीगणेशके अवतारोंका वर्णन किया। उन्होंने मुद्गलको एकाक्षर-मन्त्र प्रदान किया, जिसके जपसे गणेशजीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। मुद्गलमुनिके स्तुति करनेपर गणेशजी उन्हें अपनी भक्ति प्रदान कर अन्तर्धान हो गये। मुद्गलपुराणमें उल्लेख है—

न मुद्गलसमो भक्तो गणेशस्य प्रदृश्यते।
न भूतो न भविष्यद् वा भक्तराजः स एकराट्॥

(मुद्गलपुराण १।२०।२४)

शौनककी सूतके प्रति उक्ति है कि 'मुद्गलसे श्रेष्ठ मेरी जानकारीमें कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। उनके द्वारा उक्त मुद्गलपुराण साक्षात् उन्हींका रूप है'—

न मुद्गलसमं किंचिन्मया ज्ञातं परात्परम्।
तेनोक्तं मौद्गलं सूत मुद्गलेन सदृक् परम्॥
वेदशास्त्रपुराणानां नानामतनिकृन्तनम्।
मौद्गलं मुद्गलाकारं सर्वसारप्रकाशकम्॥

(मुद्गलपुराण ९।१८।३-४)

महायोगी मुद्गलद्वारा प्रोक्त मुद्गलपुराण उपपुराण होते हुए भी महापुराणोंसे भी अधिक महत्त्वका निश्चित किया गया है। बिना उसके अध्ययनके गणेशजीका स्वरूप पूर्णरूपसे नहीं समझा जा सकता। साक्षात् श्रीगणेशजीकी स्वीकृति है—

न मौद्गलं विना विप्राः स्वरूपं मे यथार्थतः॥
ज्ञायते केनचित् क्वापि पूर्णं सर्वप्रकाशकम्।

(मुद्गलपुराण ९।४१-४२)

इस पुराणमें ४२८ अध्याय हैं तथा यह नौ खण्डोंमें पूर्ण हुआ है। इसके पहले आठ खण्डोंमें विभिन्न प्रसिद्ध पौराणिक कथाओंसे युक्त क्रमशः श्रीगणेशके आठ अवतार—अष्टविनायक—वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज और धूम्रवर्णका चरित्र वर्णित है। अंगिराने संक्षेपमें मुद्गलसे इन आठ अवतारोंकी ओर संकेत किया, जिनका दक्षके प्रति योगीन्द्र मुद्गलने विस्तारसे मुद्गलपुराणके उपर्युक्त खण्डोंमें निरूपण किया। अंगिराने कहा कि 'वक्रतुण्ड' देहके अधिपति हैं, मत्सरासुरको मारनेवाले हैं एवं उनका वाहन सिंह है। 'एकदन्त' देहीके अधिपति हैं, मदासुरहन्ता हैं और मूषक उनका वाहन है। 'महोदर' ज्ञान-ब्रह्म-प्रकाशक हैं, मोहासुरके विदारक हैं एवं मूषक उनका वाहन है। 'गजानन' ज्ञानियोंके सिद्धिदाता हैं, लोभासुरके प्रहारक हैं तथा मूषकवाहन हैं। 'लम्बोदर' क्रोधासुरके नाशक हैं, शक्तिब्रह्म हैं और मूषकवाहन हैं। 'विकट' कामासुरके नाशक हैं, उनका वाहन मयूर है; वे सौरब्रह्मधर हैं। 'विघ्नराज'का वाहन शेष है, ममतासुरके नाशक हैं तथा विष्णुब्रह्म हैं। 'धूम्रवर्ण' अभिमानासुरके नाशक हैं, उनका वाहन मूषक है, वे शिवात्मा हैं। (मुद्गलपुराण १। २०। ५—१२)-में इसका वर्णन मिलता है।

मुद्गल-दक्षके संवादरूपमें वर्णित यह पुराण भवरोग-नाशक है। सूतका कथन है—

'सारं सर्वत्र सम्पूर्णं भवरोगविमोचनम्॥'

(मुद्गलपुराण १।२।४)

इस पुराणका नवाँ खण्ड तो साक्षात् पूर्णयोगप्रदायक है। केवल इसीके श्रवणसे समस्त शेष आठ खण्डोंके श्रवणका फल प्राप्त हो जाता है—

नवमः सर्वदः साक्षात् पूर्णयोगप्रदायकः॥
एकस्य श्रवणेनैव खण्डस्यास्य महामते।
सम्पूर्णमुद्गलस्थं यत् फलं प्राप्नोति मानवः॥

(मुद्गलपुराण ९।४०।१-२)

गणेशजीके परमभक्त मुद्गलने दक्षसे कहा कि 'गणेशजी देवेश्वर, सर्वादिपूज्य और सर्वपूज्य हैं। उनका ज्येष्ठराज-नाम वेद-प्रतिपादित है'—

ज्येष्ठराजेति यद्वाक्यं वेदेन प्रतिपादितम्।
ज्येष्ठभावाच्च तस्यापि ज्ञातव्यं सर्वसम्मतम्॥

(मुद्गलपुराण १।५।५)

इसके प्रथम खण्डमें ५४ अध्याय हैं। इसमें वक्रतुण्ड-चरित्र निरूपित है। प्रकृति-पुरुषद्वारा सृष्टिकी रचना श्रीगणेशकी कृपासे ही सम्भव हो सकी। विराट् पुरुषने स्थावर-जंगम जगत्की सृष्टि की। विराट् पुरुषसे ही पंचदेवोंकी उत्पत्ति हुई। उसके मुखसे विष्णु, नेत्रसे शिव, नाभिसे ब्रह्मा, वामांगसे मोहिनी शक्ति और दक्षिणांगसे रविकी उत्पत्ति हुई। पंचदेवोंने

विघ्नराज गणेशकी स्तुति की। उनको वरदान देकर गणेशजी अन्तर्धान हो गये। पाँचोंमें एक-दूसरेसे बड़ा होनेकी स्पर्धा उत्पन्न हुई। अन्तमें शक्तिने समाधान किया—

'वयं पञ्च समा नाथ नान्तरं दृश्यते क्वचित्।'

(मुद्गलपुराण १।१४।२८)

श्रीगणेशने उनको दर्शन दिया। पंचदेवोंने उनकी स्तुति की—

नमस्ते वक्रतुण्डाय त्रिनेत्रं दधते नमः।
चतुर्भुजाय देवाय पाशाङ्कुशधराय च॥

(मुद्गलपुराण १।१५।१०)

मुद्गलपुराणके प्रथम खण्डमें यह निरूपित है कि उपर्युक्त पंचदेव श्रीगणेशके कृपापूर्ण वरदानसे अपने-अपने कार्यमें तत्पर रहते हैं।

श्रीवक्रतुण्डने मत्सरासुरका नाश किया। मत्सरासुरने कठोर तपके द्वारा शंकरजीको प्रसन्न कर अभय वरदान प्राप्त किया। उसने आकाश, पाताल और मृत्युलोकपर आधिपत्य प्राप्त कर लिया। ब्रह्मा, विष्णु और शंकरजीके लोकोंपर विजय प्राप्त की तथा ब्रह्माण्डपर उसका अधिकार हो गया। इन्द्रपदपर अधिकार कर उसने सर्वत्र सुयोग्य प्रधान-प्रधान दैत्योंको त्रैलोक्यके शासनका दायित्व सौंपा। ब्रह्मयोगी दत्तात्रेयकी सम्मतिसे शंकरजीने गणेशजीकी आराधना की। देवता और ऋषि आदि भी उनकी आराधनामें तत्पर हो गये। इसपर वक्रतुण्ड प्रकट हो गये। वे परम तेजस्वी और सिंहपर सवार थे। देवताओंने प्रार्थना की कि 'हे देव! आप मत्सरासुरका नाश कीजिये; हमलोग उससे अत्यन्त उत्पीड़ित हैं।' गणेशजीने मत्सरासुरके नाशका वचन दिया। देवताओं और दैत्योंमें भयानक युद्ध छिड़ गया। वक्रतुण्ड सिंहारूढ़ होकर युद्धभूमिमें आये। उन्होंने मत्सर दैत्यसे कहा कि 'यदि तुम देवोंका विद्वेष छोड़ दोगे तो मैं तुम्हारा वध नहीं करूँगा।' मत्सर उनके शरणागत हो गया। उनकी स्तुति की। उसने शान्ति प्राप्त की। देवता और ऋषियोंने भगवान् वक्रतुण्डकी स्तुति की—

सदा ब्रह्मभूतं विकारादिहीनं विकारादिभूतं महेशादिवन्द्यम्।
अपारस्वरूपं स्वसंवेद्यमेकं नमामः सदा वक्रतुण्डं भजामः॥

(मुद्गलपुराण १।३९।२)

गणेशजीने ब्रह्मासे उत्पन्न दम्भ दैत्यका मद शान्त किया। उसने ब्रह्मासे अभयदान पाकर समस्त ब्रह्माण्डपर अधिकार कर लिया। देवताओंको पराजित कर दिया। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर—सब के-सब पीड़ित हो उठे। देवोंसहित ब्रह्माने दम्भासुरके नाशके लिये गणेशजीका ध्यान किया। वे प्रकट हो गये और दम्भके नाशका वचन दिया। शुक्रकी सम्मतिसे दम्भासुर श्रीगणेशजीकी शरणमें आ गया। उसने उनकी स्तुति की—

नमस्ते ब्रह्मरूपाय ब्रह्माकारशरीरिणे।
ब्रह्मणे ब्रह्मदात्रे च गणेशाय नमो नमः॥

(मुद्गलपुराण १।४५।९)

वह गणेशजीका भक्त हो गया। श्रीगणेशजीने दम्भको शान्तकर देवशक्तिका संवर्धन किया। दम्भासुरके आख्यानका यही रहस्य है।

श्रीगणेशजीकी पूजाके बिना ही बलिने यज्ञका आरम्भ किया, इससे उसमें विघ्न उपस्थित हुआ। वामनने गणेशजीको षडक्षर-मन्त्रके जपद्वारा प्रसन्न कर बलिपर विजय प्राप्त की। बलिने पातालका आधिपत्य पाया और इन्द्रने अपना पद प्राप्त किया। श्रीगणेशजीकी कृपासे विश्वामित्रने ब्रह्मर्षिपद प्राप्त किया। विश्वामित्रका आख्यान अत्यन्त ललित ढंगसे इस खण्डमें वर्णित है। याज्ञवल्क्यने उन्हें अभिमान और मत्सरके त्यागकी सीख दी। उन्होंने विश्वामित्रको गणेशद्वारा शिवको फिर काशीमें प्रवेश करानेका आख्यान सुनाया। ब्रह्माने अनावृष्टिको रोकनेके लिये दिवोदासको काशीका राजा बनाया, वृष्टि हुई। राजाने शंकरसे पार्वतीसहित मन्दरपर रहनेका निवेदन किया। शंकरजी काशीका वियोग सह न सके। शंकरजीने गणेशकी आराधना की। उनको मदरहित और अहंकारशून्य देखकर गणेशजीने दर्शन दिया। शिवजीने उनकी स्तुति की। गणेशजीकी कृपासे शंकरजीका काशीमें आगमन हुआ। शंकरजीने दिवोदासको मोक्ष प्रदान किया। याज्ञवल्क्यने विश्वामित्रसे कहा—

'शरणं गणराजं तं याहि तेन सुखं भवेत्॥'

(मुद्गलपुराण १।५२।२८)

याज्ञवल्क्यने उन्हें गणपतितत्त्वका ज्ञान प्रदान किया। विश्वामित्रने अहंकार और मत्सरका त्याग कर गणेशजीकी प्रसन्नतासे ब्रह्मर्षिपद प्राप्त किया।

वक्रतुण्डका चरित्र भुक्ति-मुक्तिप्रद और सिद्धिदायक है। इसके श्रवणसे पापका नाश होता है।

मुद्गलपुराणके दूसरे खण्डमें चौहत्तर अध्याय हैं। इसमें भगवान् एकदन्तका चरित्र वर्णित है। एकदन्तका माहात्म्य भुक्ति-मुक्तिप्रद है। ब्रह्मा विष्णुके नाभि-कमलपर आसीन थे कि चारों ओर जल उमड़ पड़ा। सृष्टिरचनामें व्यवधान उपस्थित होनेपर उन्होंने गणेशजीसे रक्षा करनेकी प्रार्थना की। उन्होंने वटपत्रपर गणेशजीका बालरूपमें दर्शन किया। ब्रह्माने उनकी स्तुति की—

नमस्ते गणनाथाय प्रलयाम्बुविहारिणे।
वटपत्रशयायैव हेरम्बाय नमो नमः॥

(मुद्गलपुराण २।१।३२)

ब्रह्माजीने श्रीगणेशकी कृपासे सृष्टि की। इसी खण्डमें श्रीगणेशजीकी प्रसन्नतासे विष्णुद्वारा मधु-कैटभ-वधकी कथा वर्णित है। स्वायम्भुव मनुके दोनों पुत्रों—प्रियव्रत और उत्तानपादके आख्यानके अन्तर्गत जडभरत और ध्रुवके चरित्रपर गणेश-भक्तिपरक प्रकाश डाला गया है। ऋषभके पुत्र भरतने मृगशावकमें स्नेह-निष्ठाके परिणामस्वरूप मृगयोनि प्राप्त की, पुलहाश्रममें ऋषि-मुनियोंका सत्संग श्रवणकर तथा पुलहद्वारा गणेश-मूर्तिके पूजनसे प्रेरणा पाकर अङ्गिराके कुलमें जडभरतके नाम-रूपमें जन्म लेकर उन्होंने गणेश-भक्तिके प्रभावसे बलिके लिये भद्रकालीके सामने प्रस्तुत किये जानेपर भी प्राणरक्षामें सफलता प्राप्त की। श्रीगणेशका ध्यान करते हुए उन्होंने कपिलाश्रममें उपदेश प्राप्त करनेके लिये शिविकापर आसीन राजा रहूगणके जाते समय उन्हें आत्मज्ञानोपदेश प्रदान किया। मयूरेश-क्षेत्रमें जडभरतको गणेशजीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। जडभरतने उनकी स्तुति की—

नमः शान्तिस्वरूपाय शान्तिदाय कृपालवे।
विघ्नेशाय नमस्तुभ्यं हेरम्बाय नमो नमः॥

(मुद्गलपुराण २।२२।५)

ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने उन्हें अचल पद प्रदान किया। नारदके उपदेशसे मयूरेश-क्षेत्रमें ध्रुवने षडक्षर-मन्त्रका जप कर तथा गणेश-मूर्तिकी मन्दिरमें स्थापना कर गाणपत्य-पद प्राप्त किया।

दूसरे खण्डमें ही वेन, पृथु आदिका आख्यान वर्णित है। गणेशजीने महिषासुरके पुत्र गजासुरका वध कर देवता और ऋषियोंको अभयदान दिया। उन्होंने मदासुरको शान्त किया। उसने शक्तिसे अभयदान पाकर त्रैलोक्यका अधिपतिपद प्राप्त किया; देवशक्तियाँ पराजित हुईं। मदासुरने प्रमदासुरकी कन्यासे विवाह किया तथा अपने तीनों पुत्र विलासी, लोलुप और धनप्रियके साथ वह त्रैलोक्यका ऐश्वर्य भोगने लगा। यज्ञादि सत्कर्म नष्ट होने लगे। सनत्कुमारने देवताओंको गणेशपूजनका परामर्श दिया और कहा कि 'भगवान् एकदन्त ही बाह्यान्तरस्थित मद दैत्यका विनाश करनेमें समर्थ हैं।'

देवताओंके तपसे धर्मरक्षणमें तत्पर एकदन्तने प्रसन्न होकर मदासुरको शान्त किया। शिव-पार्वतीकी तपस्यासे पुत्ररूपमें प्रकट होकर गणेशजीने दुर्मति-दैत्यका वध किया।

इसी खण्डमें महर्षि अगस्त्य, कपिलमुनि आदिके चरित्रका वर्णन है। कपिलके तपसे प्रसन्न होकर गणेशजीने गणासुरका वध किया। भगवान् एकदन्तका चरित्र सर्वसिद्धिकर है—

'सर्वसिद्धिकरं प्रोक्तमेकदन्तचरित्रकम्।'

(मुद्गलपुराण २।७४।२८)

तीसरे खण्डमें इक्यावन अध्याय हैं। इसमें भगवान् गणेशके महोदर-अवतारकी लीलाएँ अंकित हैं। मुद्गलने दक्षसे कहा कि 'महोदर-चरित्रका वर्णन सूर्यने बालखिल्य मुनियोंसे किया। ब्रह्मासे सूर्यको गणेश-तत्त्वका पता चला; सूर्यने उनकी प्रसन्नताके लिये तप किया। उनकी मूर्तिकी स्थापना कर पूजन किया। गणेशजीने उनको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कृतार्थ किया।' सूर्यका वचन है—

'पूजयामि सदा देवं गणेशानं भजामि तम्।'

(मुद्गलपुराण ३।३।६७)

भगवान् महोदरने मोहासुरको शान्त किया। मोहासुरकी उत्पत्ति भगवान् शिव (के वीर्य)-से बतायी गयी है। सूर्यको तपसे प्रसन्नकर उसने अभयदान तथा त्रैलोक्यका राज्य प्राप्त किया। उसकी पत्नीका नाम मदिरा था। उसके पाँच पुत्र थे। उसकी सेनाने समस्त ब्रह्माण्डको जीत लिया। सूर्यने देवताओंसे कहा कि 'यह दैत्य गणेशजीके ही हाथसे पराजित होगा।'

देवताओंने तपसे गणेशजीको प्रसन्न किया। वे मूषकपर सवार होकर उसे मारने चल पड़े। नारदके उपदेशसे मोहासुरने गणेशकी शरणागति प्राप्त की। गणेशजीने उसको अपने भजनकी सीख दी तथा प्राणियोंको मोहविहीन करनेका आदेश दिया—

स्वस्थाने तिष्ठ दैत्येन्द्र स्वधर्मस्थितमादरात्।
नरं मोहविहीनं च तं कुरुष्व भजस्व माम्॥

(मुद्गलपुराण ३।१०।४५)

इसी खण्डमें नर-नारायण, मान्धाता, अम्बरीष, सगर और भगीरथ आदिका आख्यान वर्णित है। इसमें श्रीरामका अवतार-चरित्र भी निरूपित है। शिवने रामके पूछनेपर गणेश-तत्त्वका वर्णन किया। रामने लक्ष्मणसहित गणेशका भजन कर शान्ति प्राप्त की। रामने उनकी स्तुति की—

'विघ्नेशाय गणानां वै पतये ते नमो नमः॥'

(मुद्गलपुराण ३।२६।७८)

श्रीगणेशजीके वरदानसे रामने रावणका वध किया। उन्होंने अगस्त्यको बुलाकर गणेशजीकी मूर्ति स्थापित करायी।

इसी खण्डमें पुरूरवा आदिका चरित्र वर्णित है। भार्गव परशुरामने गणेशजीको प्रसन्न कर परशु प्राप्त किया तथा उनके वरदानसे कार्तवीर्यका वध किया।

इस खण्डके उपसंहारमें श्रीकृष्ण तथा पाण्डव-कौरवोंके चरित्रपर प्रकाश डाला गया है। विष्णुने लक्ष्मीसे कहा कि 'मैं अपने कुलदेव गणेशका भजन करता हूँ'—

तारकं सर्वभूतानां सर्वेभ्यः सिद्धिदायकम्।

* * *

कुलदेवं गणेशानं भजामि सर्वभावतः।

(मुद्गलपुराण ३।४२।१७-१८)

नारायणकी सम्मतिसे लक्ष्मीने गणेशकी आराधना की। गणेशने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि 'ज्ञानारि दैत्यके नाशके लिये मैं तुम्हारे पुत्ररूपमें उत्पन्न होऊँगा।' मूर्ति स्थापित कर लक्ष्मीने गणेश-पूजा की।

दुर्बुद्धिके पुत्र ज्ञानारि दैत्यने शंकरसे अभयदान पाकर त्रैलोक्य-विजय की। विष्णुकी सम्मतिसे देवोंने गणेशकी आराधना की। गणेशने लक्ष्मीपुत्र पूर्णानन्दके नाम-रूपमें प्रकट होकर ज्ञानारि दैत्यका नाश कर दिया। भगवान् महोदरका पुण्यचरित्र अज्ञानान्धकारका नाश करता है।

चौथे खण्डमें बावन अध्याय हैं। इसमें लोभासुरके नाशक श्रीगणेशके गजानन-अवतारका वर्णन है। लोभासुरके नाशके लिये देवता और ब्राह्मणोंने 'गणेशचतुर्थीव्रत'का अनुष्ठान किया। गजाननने प्रकट होकर लोभासुरका नाश किया। मुद्गलने दक्षसे कहा कि 'गजाननका चरित्र योगशान्तिपदप्रदायक है'—

'गजाननस्य माहात्म्यं योगशान्तिपदप्रदम्।'

(मुद्गलपुराण ४।१।१४)

इस खण्डमें 'संकष्टचतुर्थीव्रत'की महिमापर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। गणेशका भजन वेदोंमें सर्वसिद्धिकर कहा गया है।

वसिष्ठने दशरथसे अनेक चतुर्थीव्रतोंका आख्यान सुनाया। दक्षसे मुद्गलने कहा कि 'कुबेर शिव-पार्वतीका दर्शन करने कैलास गये। वे जगदम्बाके रूपसे मोहित हो गये। देवीको क्रोध आ गया। शोकाकुल कुबेरसे लोभासुरकी उत्पत्ति बतायी गयी है। लोभासुरने तपसे शंकरको प्रसन्न कर अभयदान पाया। उसने त्रैलोक्य-विजय की। रैभ्यकी सम्मतिसे लोभासुरके नाशके लिये देवताओंने तपसे गणेशजीको प्रसन्न किया। लोभासुर गजाननकी शरणमें आ गया, शान्त हो गया। गणेशजीने उसे स्वभक्ति प्रदान की।'

ब्रह्माकी जृम्भासे प्रकट सिन्दूरासुरका गजाननने मान मर्दित किया। विघ्नासुर भी गजाननका भक्त हो गया।

पाँचवें खण्डमें पैंतालीस अध्याय हैं। इसमें श्रीगणेशके लम्बोदर-अवतारकी कथा कही गयी है। इसमें असित-ध्रुवके संवादके रूपमें गणेशभक्तिपरक आख्यान, भस्मासुरके वृत्तान्त आदिका वर्णन है। लम्बोदरद्वारा क्रोधासुरके नाशका वर्णन विशिष्टरूपमें मिलता है। विष्णुके मोहिनीरूपसे शिवके चित्तमें क्रोध आ गया। उन्होंने मनका निग्रह किया। उनसे क्रोधासुरकी उत्पत्ति हुई। क्रोधासुरने रविको तपसे प्रसन्न कर अभयदान और त्रैलोक्य-राज्य प्राप्त किया। वसिष्ठके परामर्शसे देवताओंने उसके नाशके लिये तप किया। गणेशजी प्रकट हो गये।

क्रोधासुर उनके शरणागत हो गया। लम्बोदरने उसको शान्त किया। उसने उनकी स्तुति की।

महिषासुरके वधके लिये जगदम्बा शक्तिने श्रीगणेशकी आराधना की। देवीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गणेशजीने उनको दर्शन दिया। देवीने महिषासुरपर विजयके लिये वर माँगा—

'जयं देहि गणाधीश महिषस्य वधाय वै।'

(मुद्गलपुराण ५।१३।५८)

देवीने उनकी मूर्ति स्थापित कर पूजा की; महिषासुरका वध किया। देवीभक्त राजा सुरथने तपकर गणेश-भक्ति प्राप्त की। ब्रह्माके श्वाससे उत्पन्न मायाकर दैत्यने उनसे अभयदान प्राप्तकर पाताल आदिको अपने वशमें कर लिया। गणेशने शेषके तपसे प्रसन्न होकर उसके पुत्ररूपमें प्रकट होकर मायाकर दैत्यका वध किया।

इस खण्डमें श्रीगणेशजीकी मानस-बाह्यपूजा, दूर्वामाहात्म्य आदिका वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें गृत्समदकी गणेश-भक्तिका भी निरूपण किया गया है। इसमें 'गार्ग्य-ऐल'के संवादके अन्तर्गत ऐलके गणेशभक्त-रूपमें प्रतिष्ठित होनेकी बात कही गयी है। राजा ऐल गणेशके दर्शनसे ज्योति:स्वरूप हो गया—

'गणेशदर्शनेनैव ज्योतीरूपो बभूव ह॥'

(मुद्गलपुराण ५।४५।२८)

इस पुराणके छठे खण्डमें पैंतालीस अध्याय हैं। इस खण्डमें गणेशके 'विकट' रूपका वर्णन किया गया है। इसमें कामासुर, कमलासुर आदिका वृत्तान्त चित्रित है।

कामासुरकी उत्पत्ति विष्णुसे बतायी गयी है। उसने शंकरजीको तपसे प्रसन्न कर ब्रह्माण्ड-विजय की। उसने महिषासुरकी पुत्रीसे विवाह किया। मुद्गलने कामासुरके नाशके लिये देवताओंको श्रीगणेशका भजन करनेके लिये परामर्श दिया। देवोंके तपसे प्रसन्न होकर गणेशने मयूरपर आरूढ़ होकर दर्शन दिया; देवताओंने उनसे कामासुरके नाशकी प्रार्थना की। कामासुरने आकाशवाणी सुनी कि 'ब्रह्म मयूरेश्वर तुम्हारा नाश करेंगे।' वह मूर्च्छित हो गया। उसने गणेशकी स्तुति की; गणेशने उसे शान्त किया।

गणेशने सिन्धु असुर और उसके सेनापति कमलासुरका वध किया। महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वतीने भगवान् गणेशकी वन्दना की।

इसके सातवें खण्डमें सोलह अध्याय हैं। इसमें विघ्नराजका चरित्र निरूपित है। इसमें पार्वतीके हास्यसे उत्पन्न ममासुरका वृत्तान्त वर्णित है। पार्वतीके परामर्शसे गणेशको प्रसन्न कर उसने अभयदान प्राप्त किया। शम्बरासुरकी कन्या मोहिनीका पाणिग्रहण कर उसने त्रैलोक्यका राज्य प्राप्त किया। सत्कर्म—यज्ञादिका उसने विध्वंस किया। देवशक्तियाँ पराजित हुईं। देवताओंने विघ्नराजकी आराधना की। गणेशजीने दर्शन देकर ममासुरके नाशका आश्वासन दिया। गणेशजीने उसका गर्व हरण किया। वह शान्त हो गया।

इस खण्डमें लक्ष्मी-विनायक-चरित्र तथा शूर्पकर्णावतार आदिका वर्णन है। एक बार प्रयागमें माघमासमें मकरके अवसरपर उपस्थित दत्तने ब्रह्मा-विष्णु-शंकर आदिको गणेश-तत्त्वका बोध प्रदान किया। उन्होंने कहा—

'गणेशो ब्रह्मणां नाथो वेदेषु परिकीर्तितः।'

(मुद्गलपुराण ७।१३।१८)

इस पुराणके आठवें खण्डमें पचास अध्याय हैं। इसमें धूम्रवर्ण विनायकका चरित्र वर्णित है। इसमें गणेशकी भक्तिद्वारा अहंकारासुरके शान्ति प्राप्त करनेका वृत्तान्त उपलब्ध होता है। 'अहं' असुरकी उत्पत्ति सूर्यसे बतायी जाती है। उसने तपके द्वारा गणेशको प्रसन्न कर अभयदान पाया। उसने दिग्विजय की, त्रैलोक्यका आधिपत्य प्राप्त किया। उसने प्रमदासुरकी कन्या ममतासे विवाह किया। उससे उत्पीड़ित देवताओंने गणेशजीकी आराधना की। धूम्रवर्णने दर्शन दिया। देवताओंने अहंकार दैत्यके नाशकी प्रार्थना की। अहंकारासुर धूम्रवर्णसे पराजित हुआ। उसने गणेशजीकी स्तुति की, उनकी भक्ति प्राप्त की। देवताओंने अहंकारको शान्त देखकर गणेशजीकी स्तुति की—

'नमो धूम्रवर्णाय सर्वेश्वराय।' (मुद्गलपुराण ८।८।८)

इसी खण्डमें वर्णित है कि गणेशजीकी कृपासे शिवजीने त्रिपुरासुरको मार डाला। गणेशजीने शिवजीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर 'वज्रपञ्जरकस्तोत्र' प्रदान किया।

शिवजीने गणेशकी कृपासे अन्धकासुरका नाश किया। इस खण्डमें सब मासोंके लिये गणेशके व्रतानुष्ठानका वर्णन मिलता है तथा मलमास और उसमें गणेश-पूजनके माहात्म्यपर प्रकाश डाला गया है। इसी खण्डमें भक्त बल्लाल आदिकी गणेश-भक्ति निरूपित है।

इस पुराणके अन्तिम नवें खण्डमें इकतालीस अध्याय हैं। यह खण्ड पूर्णयोगप्रदायक है। इसमें अष्टविनायकचरित्र आदिके माहात्म्य और श्रवणफलपर विचार किया गया है। इसमें मुद्गलमुनिने आठों विनायकोंके योगस्वरूपका वर्णन किया है। मायाका परित्याग करनेपर मनुष्य श्रीगणेश-ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करता है, वह ब्रह्माकार हो जाता है—

'अतो मायां परित्यज्य ब्रह्माकारो भवेन्नरः।'

(मुद्गलपुराण ९।६।५१)

इस खण्डमें योगगीताका बारह अध्यायों और ९८९ श्लोकोंमें वर्णन उपलब्ध होता है।

मुद्गलपुराणके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि गणेशजी अनादि, सनातन, आद्य ब्रह्म परमात्मा हैं, जिनकी ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा देवता, ऋषि आदि मूर्ति-स्थापना कर उपासनामें निरन्तर तत्पर रहते हैं। वे समानरूपसे असुरों और सुरोंका हित-चिन्तन करते हैं और जिस पक्षमें आसुरी सम्पत्ति बढ़ती है, उसका दमन कर मंगलका विस्तार करते हैं। मुद्गलपुराणका स्पष्ट संकेत है कि प्रत्येक मनुष्यके अन्तःकरणमें मत्सर, मद, मोह, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ममता और अज्ञानका निवास होता है। इन दुर्गुणोंका श्रीगणेशजीकी आराधनासे नाश होता है। मनुष्य उनकी कृपासे कल्याण प्राप्त करता है। श्रीगणेशजी समस्त विघ्नोंका नाश करते हैं। मुद्गलपुराणका श्रवण कर दक्षने गणेशकी कृपासे अपना अधूरा यज्ञ पूर्ण किया। प्रजापति दक्षने समानरूपसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी प्रसन्नता प्राप्त की। मुद्गलमुनिने इस पुराणका समापन करते हुए दक्षको समझाया कि 'समस्त चराचर विश्व गणेशमय है; उनका भजन परम श्रेयस्कर है'—

विश्वं चराचरं सर्वं जानीयात्तत्स्वरूपकम्।
सर्वेषां हितभावेन भजेत्तं द्विरदाननम्॥

(मुद्गलपुराण ९।९।२८)

श्रीगणेशजी दिव्य सम्पत्तिका संरक्षण कर सबको समानभावसे निष्पक्षरूपमें मंगलमयी सिद्धियाँ प्रदान करते हैं। मुद्गलपुराणके पठन-श्रवण और अध्ययनसे मन पवित्र होता है, बुद्धिमें सद्भावका उदय होता है और आत्मा श्रीगणेश-भक्तिमें निमग्न हो उठती है।

~~~o~~~

श्रीगणेशके पाद-पद्मोंमें प्रणति

सुंदर लसत बिसाल भाल सिंदूर पूरबर।
मनहुँ मुदित गिरि उदित अरुन प्रतिबिंब सूर-कर॥
सुंडादंड सुरेस बेष इक रदन बिराजत।
लंबोदर भुज चारि चारु उत्तम बपु छाजत॥
अघहर गिरीस-गिरिजातनय भयो जासु जस धवल जग।
कर जोरि 'वीर' अति मुदित मन करत प्रनति प्रति तासु पग॥

—'वीर' कवि

~~~o~~~

गणेशगीताका संदेश

(लेखक—डॉ० जी० वी० टागरे, एम्० ए०, बी०टी०, पी-एच्० डी०)

दार्शनिक तथा धार्मिक ग्रन्थ 'गणेशगीता' 'गणेशपुराण'- के क्रीडाखण्डका एक भाग है। सिन्दूरासुरका वध कर अपने अवतारके प्रयोजनको पूरा करनेके बाद इहलोकसे प्रयाण करते समय श्रीगणेशजीने अपने पिता वरेण्यके सामने इसका वर्णन किया था। प्रस्तावनामें लिखा है कि 'जब श्रीगणेशजीने सिन्दूरासुरका संहार किया, तब देवताओं और मुनियोंने उनकी स्तुति की। तब राजा वरेण्यने पहचाना कि यह मेरा ही त्यक्त पुत्र है, जिसने यह दुष्कर कार्य कर दिखाया है।' उन्होंने घोर पश्चात्ताप किया और नम्रतापूर्वक उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे संसारसे मुक्तिका मार्ग दिखलायें। गणेशजीने राजाको बैठाया और अपना हाथ उनके सिरपर रखकर आशीर्वाद दिया। उनके सारे संशयोंको दूर किया और उन्हें अपना विश्वरूप दिखलाया। तत्पश्चात् राजा वरेण्यने अपना राज-पाट त्यागकर जंगलमें जाकर तप किया और गणेशजीमें लीन होकर परमपदको प्राप्त किया। (गणेशपुराण १३७। २२—६१)

'गणेशगीता'में ग्यारह अध्याय हैं, जो 'गणेशपुराण'के १३८ वें अध्यायसे १४८ वें अध्यायतक विस्तृत हैं। गणेशगीताके उपक्रम और उपसंहारसे पता चलता है कि यह प्रथमतः योगसम्बन्धी ग्रन्थ है, जिसमें चरमतत्त्वकी अनुभूतिकी ओर ले जानेवाले अनुशासन निहित हैं। प्रत्येक अध्यायके अन्तमें पुष्पिकामें कहा गया है कि 'गणेशगीतामें उपनिषदोंके अर्थ गर्भित हैं और यह एक शास्त्र है जो योगरूपी अमृतका अनुसंधान करता है।' जैसे—

ॐ तत्सदिति श्रीगणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीमन्महागणेशपुराणे क्रीडाखण्डे गणेशवरेण्यसंवादे सांख्यसारार्थयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः॥

'गणेशगीता' पर श्रीमद्भगवद्गीताका प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है। किंतु दोनोंके उपदेशोंमें विभिन्नता है; क्योंकि दोनोंके लक्ष्यमें अन्तर है। गीतामें अर्जुनको युद्ध करनेके लिये उत्साहित किया गया था, यद्यपि उसने अपने सगे-सम्बन्धियोंकी हत्याकी अपेक्षा सांसारिक जीवनसे ही विराम लेना पसंद किया था। इधर गणेशगीतामें राजा वरेण्यने अपना राज-पाट त्याग दिया और वनमें जाकर गणेशगीता-श्रवण कर मुक्ति प्राप्त की। (गणेशगीता १। ३८)

योगका सिद्धान्त

'गणेशगीता'का उद्देश्य योगकी व्याख्या करना है। उसके प्रारम्भमें राजा वरेण्यने श्रीगणेशजीसे योगका विषय समझानेकी प्रार्थना की है। गणेशजी कहते हैं कि 'राजन्! मैं योगामृतसे पूर्ण गीता कहूँगा; तुम सुनो'—

'शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप।'

(गणेशगीता १। ६)

उपसंहारके श्लोकोंमें गणेशजी कहते हैं—'इस प्रकार मैंने कृपा करके तुम्हें विस्तारपूर्वक सांगोपांग योगशास्त्रका उपदेश दिया, जो योग अनादि-सिद्ध है तथा जिसे मैंने तुम्हारे सिवा और किसीके सामने प्रकट नहीं किया है, मेरे द्वारा कहे गये इस योगका तुम अभ्यास करो। इसे तुम गुप्त ही रखना; इससे तुम्हें अनुत्तम सिद्धि प्राप्त होगी।'—

इति ते कथितो राजन् प्रसादाद्योग उत्तमः।
साङ्गोपाङ्गः सविस्तारोऽनादिसिद्धो मया प्रिय॥
युङ्क्ष्व योगं मयाऽऽख्यातं नाख्यातं कस्यचिन्नृप।
गोपयैनं ततः सिद्धिं परां यास्यस्यनुत्तमाम्॥

(गणेशगीता ११। ३५-३६)

प्रारम्भिक अध्यायमें निषेधात्मकरूपसे योगकी व्याख्या की गयी है। जैसे—'श्रीसम्पन्न होना योग नहीं, राजत्वकी प्राप्ति योग नहीं, देवताके रूपमें स्वर्गमें स्थान पाना योग नहीं अथवा अष्ट-सिद्धियोंकी प्राप्ति भी योग नहीं। योग है—आत्माका ब्रह्ममें विलीन हो जाना, अपने भीतर ब्रह्मका अनुभव करना। ऐसा मनुष्य शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और मुझ गणेशमें अभेदबुद्धि रखता है तथा मुझको सर्वत्र और सबमें देखता है।'

(गणेशगीता १। ६—२१)

गणेशगीता ब्रह्मानुभूतिकी साधनाका मार्ग बतलाती

है और इसको 'योग'के नामसे पुकारती है; चाहे वह ज्ञानयोग हो या कर्मयोग अथवा भक्तियोग। गणेशगीता अध्याय ३। ४—७ में लिखा है कि 'ज्ञानके द्वारा ही मनुष्य संसारके बन्धनसे मुक्त होकर परम मोक्षको प्राप्त होता है।' आगे अध्याय ४। १५, २१ श्लोकोंमें योगकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—'जिनका आत्म-सम्बन्धी अज्ञान विशुद्ध विवेकके द्वारा प्राप्त ज्ञानसे नष्ट हो गया है, उसे पूर्णब्रह्मकी अनुभूति होती है। वह अपने मन और इन्द्रियोंको पूर्णतः वशमें कर लेता है तथा सारे विकारोंसे मुक्त होकर अपने आत्मामें ही रमण करता हुआ आनन्द प्राप्त करता है।' यथा—

विवेकेनात्मनोऽज्ञानं येषां नाशितमात्मना।
तेषां विकाशमायाति ज्ञानमादित्यवत् परम्॥
आनन्दमश्नुतेऽसक्तः स्वात्मारामो निजात्मनि॥

आगे चलकर इसी अध्यायके २५ से ३४ वें श्लोकतक राजयोगका वर्णन है। उसीकी व्याख्या करते हुए गणेशजी कहते हैं कि 'श्रेष्ठ प्राणायाम छत्तीस मात्राका होता है। इस प्रकारके बारह प्राणायामसे धारणा होती है और दो धारणाओंसे योग होता है।' तथापि अन्तमें कहा है कि 'योग और संन्यास—दोनों समान फल प्रदान करते हैं तथा जो मुझे त्रिलोकीके अधिपति तथा विभुरूपमें जानता है, वह मुक्ति प्राप्त करता है'—

एवं योगश्च संन्यासः समानफलदायिनौ॥
जन्तूनां हितकर्त्तारं कर्मणां फलदायिनम्।
मां ज्ञात्वा मुक्तिमाप्नोति त्रैलोक्यस्येश्वरं विभुम्॥

(गणेशगीता ४। ३६-३७)

ज्ञानयोग

हम पूर्णताके लक्ष्यको ज्ञानके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। वह लक्ष्य है—तात्त्विकी आध्यात्मिक प्रज्ञा। 'गणेशगीता' श्रीगणेशजीको परब्रह्म, अविकारी, अप्रमेय, अपरिणामी, अव्यक्त, सर्वव्यापी, आनन्दस्वरूप परतत्त्व मानती है—

अविकारोऽप्रमेयोऽयमव्यक्तो विश्वगोऽव्ययः॥
अहमेव परं ब्रह्माव्ययानन्दात्मकं नृप।

(गणेशगीता १। २८-२९)

श्रीगणेशजीका ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवोंके साथ तादात्म्य है। वे एक होकर अनेक रूपोंमें दीखते हैं (**एकं नानेव भासते**)। वे जगत्‌में अन्तर्निहित हैं और सब पदार्थोंमें व्याप्त हैं। वे अजन्मा हैं, अव्यक्त हैं, स्थावर-जंगमकी आत्मा हैं, अनादि और परमेश्वर हैं—

अहमेव परो ब्रह्मा महारुद्रोऽहमेव च।
अहमेव जगत्सर्वं स्थावरं जङ्गमं च यत्॥
अजोऽव्ययोऽहं भूतात्मानादिरीश्वर एव च।

(गणेशगीता ३। ८-९)

तत्त्व अर्थात् आत्माके अस्तित्वकी अनुभूति-विषयक यह ज्ञान इस योगकी नियमित साधनाके द्वारा हृदयंगम होता है। यद्यपि 'ज्ञान' शब्द विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञानके लिये प्रयुक्त होता है, तथापि ज्ञानयोग पूर्णत्वका बौद्धिक मार्ग नहीं है; बल्कि यह विशुद्ध लोकातीत आध्यात्मिक प्रज्ञा है। यही आध्यात्मिक प्रज्ञा अग्निके समान सब प्रकारके कर्मोंको क्षणभरमें दग्ध कर देती है—

'विविधान्यपि कर्माणि ज्ञानाग्निर्दहति क्षणात्।'

(गणेशगीता ३। ४५)

यह परम श्रेष्ठ यज्ञ माना गया है। यह आध्यात्मिक ज्ञान ही सर्वोच्च स्वर्ग अथवा मोक्षका साधन है, जिसमें सारे कर्म विलीन और दग्ध हो जाते हैं—

सर्वेषां भूप यज्ञानां ज्ञानयज्ञः परो मतः।
अखिलं लीयते कर्म ज्ञाने मोक्षस्य साधने॥

(गणेशगीता ३। ३९)

कर्मयोग

कर्म-विहीन जीवन एक असम्भव बात है। प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार विवश होकर कुछ-न-कुछ काम करता है। (गणेशगीता २। ४) किसी अभिलषित लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये जो कर्म किये जाते हैं, वे बन्धनके हेतु हैं। परंतु जो कर्म बिना आसक्तिके अथवा फलाभिलाषारहित होकर किये जाते हैं, वे चित्तको शुद्ध करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष केवल कर्मोंके न्यासको 'संन्यास' नहीं कहते—

'केवलं कर्मणां न्यासं संन्यासं न विदुर्बुधाः।'

(गणेशगीता ४। ६)

कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले फलकी आशाको त्यागकर जो कर्म किये जाते हैं, वे अकर्मकी अपेक्षा श्रेष्ठ होते

हैं। जब कर्म भगवदर्पित नहीं होता तब वह बन्धनकारक होता है। अतएव मनुष्यको इच्छाओं और आसक्तियोंसे ऊपर उठकर कर्म करते रहना चाहिये।

(गणेशगीता २।८)

योगके जाननेवाले चित्तकी शुद्धिके लिये शारीरिक कर्मफलकी आशाका त्याग करते हैं और अपने-आपको वाचिक, बौद्धिक तथा मानसिक कर्मोंमें लगाये रखते हैं—

कायिकं वाचिकं बौद्धमैन्द्रियं मानसं तथा।
त्यक्त्वाऽऽशां कर्म कुर्वन्ति योगज्ञाश्चित्तशुद्धये॥

(गणेशगीता ४।१०)

यहाँ यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि श्रीशंकराचार्य-जैसे ज्ञानयोगके कट्टर उपदेष्टाने भी चित्तकी शुद्धिके लिये निष्काम कर्मकी क्षमताको स्वीकार किया है।

'ज्ञानेनैव मोक्षः सिध्यति, किंतु तदेव ज्ञानं सत्त्वशुद्धिं विना नोत्पद्यते''''तस्मात् सत्त्वशुद्ध्यर्थं सर्वेश्वरमुद्दिश्य सर्वाणि वाङ्मनःकायलक्षणानि श्रौतस्मार्त्तानि कार्याणि समाचरेत्।' (सनत्सुजातीयभाष्य)

'ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। परंतु वह ज्ञान हृदयकी शुद्धिके बिना उत्पन्न नहीं होता। अतएव हृदयकी शुद्धिके लिये वेद और स्मृतियोंमें बतलाये गये सारे वाचिक, मानसिक और कायिक कर्मोंको श्रीभगवान्‌को समर्पित करते रहना चाहिये।'

गणेशगीता ज्ञानकी प्राप्ति हो जानेके बाद भी लोक-संग्रहके लिये कर्म करते रहनेका आदेश देती है—

'लोकानां संग्रहायैतद् विद्वान् कुर्यादसक्तधीः॥'

(गणेशगीता २।२५)

सारांश यह है कि यदि एक ज्ञानी पुरुष अहंता और ममतासे विच्छिन्न होनेकी भावनाकी साधना करता है और अपने दैनिक कार्योंको तथा विशिष्ट कर्मोंको प्रभुको समर्पित करता है तो वह परम गतिको प्राप्त करता है—

नित्यं नैमित्तिकं तस्मान्मयि कर्मार्पयेद् बुधः।
त्यक्त्वाहंममताबुद्धिं परां गतिमवाप्नुयात्॥

(गणेशगीता २।३०)

भक्तियोग

भगवान् गणेशजी अनुग्रह करनेवाले देवता हैं। वे आत्मविश्वास, प्रेम और भक्तिपूर्वक आत्मसमर्पणके लिये साधकको अनुप्राणित करते हैं। वे तार्किकोंकी आध्यात्मिक खींचतानके परे हैं। यद्यपि योगी ज्ञानीसे, कर्मनिष्ठसे और तपोनिष्ठसे भी श्रेष्ठ होता है, परंतु गणेशजीके मतसे उन सबमें मेरा भक्त पुरुष ही श्रेष्ठतम है—

ज्ञाननिष्ठात् तपोनिष्ठात् कर्मनिष्ठान्नराधिप।
श्रेष्ठो योगी श्रेष्ठतमो भक्तिमान् मयि तेषु च॥

(गणेशगीता ५।२७)

गणेशगीता देवमूर्तिकी पुष्पों, फलों और भोजनके पदार्थोंको निवेदन करके, धूप-दीप आदि प्रदान कराके सगुण भक्ति-पूजा करनेपर विशेष जोर देती है।

(गणेशगीता ७।६—१६)

यह नवधा भक्तिके मार्गका उपदेश करती है; परंतु मानसिक पूजाको अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है—

'त्रिविधास्वपि पूजासु श्रेयसी मानसी मता।'

(गणेशगीता ७।१०)

भक्ति मनुष्यको वासनाकी प्रबलतापर विजय प्राप्त करानेमें सहायक होती है। इस आत्मसंयमसे वह ज्ञान उत्पन्न होता है, जो साधकको परम गति प्रदान करता है। (गणेशगीता ३।४७) भक्त भगवान्‌के लिये जीवन धारण करता है, सारे कर्म प्रभुके प्रीत्यर्थ करता है, सारी आसक्ति और मत्सरताका त्याग करता है, सबको समभावसे देखता है और इस प्रकार वह प्रभुके साथ एकत्वको प्राप्त हो जाता है—

मद्भक्तो मत्परः सर्वसङ्गहीनो मदर्थकृत्।
निष्क्रोधः सर्वभूतेषु समो मामेति भूभुज॥

(गणेशगीता ८।२५)

इस प्रकार गणेशगीता भक्तिके मार्गका समर्थन बड़ी दृढ़तापूर्वक करती है।

गणेशगीता अद्वैत शास्त्र है

गणेशगीतामें ऐसे उपदेश हैं जो अद्वैतको समझनेमें पर्याप्त सहायक हैं। इसमें आध्यात्मिक साधकोंके हृदयंगम करनेयोग्य तत्त्वोंका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१-चरम तत्त्व परमब्रह्म गणेश अद्वयतत्त्व है।

२-यह द्वन्द्वात्मक जगत् मायिक है।

३-आत्मा परमात्माके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

४-ज्ञान परमगतिका साधन है, जिसकी प्राप्तिमें कर्म और भक्ति महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरणके समर्थनमें 'गणेशगीता'से अनेक अवतरण उद्धृत किये जा सकते हैं। परंतु उससे एक पृथक् ही लेख तैयार हो जायगा। यहाँ स्थानाभावके कारण उसका सारांश भी नहीं दिया जा सकता।

'गणेशगीता'के व्यापक प्रचारकी आवश्यकता है। अतः अबतक इसका जैसा अध्ययन हुआ है, उससे कहीं अधिक गम्भीर अध्ययन एवं प्रचारकी भी आवश्यकता है।

~~~o~~~

श्रीगणेशसे क्षमा-प्रार्थना

भजनं न कृतं समर्चनं तव नामस्मरणं न दर्शनम्।
हवनं प्रियमोदकार्पणं नवदूर्वा न समर्पिता मया॥

न च साधुसमागमः कृतस्तव भक्ताश्च मया न सत्कृताः।
द्विजभोजनमप्यकारि नो बत दौरात्म्यमिदं क्षमस्व मे॥

न विधिं तव सेवनस्य वा न च जाने स्तवनं मनुं तथा।
करयुग्मशिरःसुयोजनं तव भूयाद् गणनाथ पूजनम्॥

अथ का गणनाथ मे गतिर्न हि जाने पतितस्य भाविनी।
इति तप्ततनुं सदाऽव मामनुकम्पार्द्रकटाक्षवीक्षणैः॥

इह दण्डधरस्य संगमेऽखिलधैर्यच्यवने भयंकरे।
अविता गणराज को नु मां तनुपातावसरे त्वया विना॥

वद कं भवतोऽन्यमिष्टदाच्छरणं यामि दयाघनादृते।
अवनाय भवाग्निभर्जितो गतिहीनः सुखलेशवर्जितः॥

हे गणनाथ! मैंने कभी आपका भजन-पूजन नहीं किया। आपका नामस्मरण और दर्शन नहीं किया। आपके लिये हवन भी नहीं किया। आपको मोदक प्रिय है, किंतु उसका भी अर्पण मैंने नहीं किया और न कभी नूतन दूर्वा-दल ही समर्पित किया। मैंने सत्संग नहीं किया, आपके भक्तोंका सत्कार भी नहीं किया और न कभी ब्राह्मण-भोजन ही कराया। यह कितने खेदकी बात है! प्रभो! मेरी इस दुष्टताको क्षमा कीजिये। गणनाथ! मैं आपके सेवनकी विधि नहीं जानता। मुझे आपके स्तवन और मन्त्रका भी ज्ञान नहीं है। केवल अपने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ लेता हूँ—यही आपका पूजन हो जाय। गणनाथ! मुझ पतितकी कौन-सी गति होनेवाली है, यह मैं नहीं जानता। इस चिन्तासे मेरे तन-मन संतप्त रहते हैं। आप कृपासे भीगी हुई कटाक्ष-दृष्टिसे देखकर मेरी रक्षा करें। गणराज! इस लोकमें जब मेरे देहपातका अवसर आयेगा और सम्पूर्ण धैर्यको नष्ट कर देनेवाले दण्डधारी यमराजसे भेंट होगी, उस समय आपके बिना कौन मेरी रक्षा करेगा। मुझे भवाग्निने भूँज डाला है। मैं गतिहीन हो गया हूँ। सुखका तो लेशमात्र भी नहीं रह गया है। आप अभीष्ट मनोरथ देनेवाले तथा दयाके घन—कृपाकी वृष्टि करनेवाले मेघ हैं; आपको छोड़कर दूसरे किसकी शरणमें मैं अपनी रक्षाके लिये जाऊँ? आप ही मेरे शरण्य हैं।

(मुद्गलपुराणोक्त श्रीगणेशापराधक्षमापनस्तोत्रसे)

~~~o~~~